Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080152

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

080152

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

080152

080152

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

आनन्द पढ़िए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुफा से गगन की ओर ३
—कैलाशप्रकाश वर्मा

प्राणवायु आक्सीजन १०
—सत्यकुमार

तरह-तरह के पक्षी १५
—कुँवर सुरेशसिंह

विद्युतोत्पादन के नये साधन २२
—जगदीशचन्द्र गोविल

पुल २६
—डा. नरेन्द्रमोहन बंसल

जब हम शुक्रग्रह से लौटे ३४
—द्रोणवीर कोहली

रॉबर्ट मिलिकन ४०
—राजेन्द्रकुमार

टाइटेनियम ४३
—आदित्यगोपाल भिगारन

जब पेड़-पौधे बीमार पड़ते हैं ४९
—कुमारी रेखा टण्डन

स्थायी स्तम्भ

विचित्र संसार ३२
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ४८
विज्ञान क्लब ५५
इनाम लो ५९
आपके प्रश्न ६०
करो और देखो ६३
तुम्हारी कलम से ६४

अपनी बात

अमरीका के स्वास्थ्य, शिक्षा एवं जन-क
विभाग के प्रमुख अधिकारी डा. एल्सवर्थ एस.
विगत मास, एक सप्ताह के लिए भारत आये औ
की हाई स्कूल कक्षाओं में प्रचलित विज्ञान की अ
एवं अध्यापन-विधियों का निरीक्षण किया। उन
यात्रा अमरीका की 'अन्तर्राष्ट्रीय विकास एजेन्
तत्त्वावधान में थी।

अपने अवलोकनों के अन्तर्गत, भारत में किये
शिक्षा सम्बन्धी नवीन प्रयोगों से वे काफी प्र
हुए। उन्होंने यहाँ के नये विधि-विधानों के प्रति
व्यक्त करते हुए कहा कि अन्य देशों की विधि
अन्धानुकरण न करके, अपने यहाँ की विशिष्
स्थितियों के अनुकूल ही शिक्षा-प्रणाली बनाना
की कुंजी है। सफलता-प्राप्ति के लिए रच
प्रवृत्तियों और सूझ-बूझ की परम आवश्यकता है

वे यह जानकर भी प्रभावित हुए थे कि अ
विधियाँ सुधारने के निमित्त भारत में गत व
प्रशिक्षण-शिविर लगाये गये थे जिनकी संख्
वर्ष १६ और आगामी वर्ष ६४ कर दी जाएगी।
और भावी अध्यापकों की अध्यापन-योग्यता को
की दिशा में उन्होंने यह भी संकेत किया कि
विज्ञान के सिद्धान्त, तथ्य और फार्मूले विद्या
समझाने मात्र से ही योग्यता नहीं आ जाती। वि
को इस ढंग से पढ़ाया जाए कि शिक्षण उनके जी
अंग बन जाए, न कि एक बोझ। यह भी देखना
है कि विज्ञान और गणित आदि का इतना भा
जाए जो समूचा पाठ्यक्रम ही असन्तुलित हो

विद्वान डा. ओबर्न के ये दिशा-सूचन म
अनुकरण योग्य हैं, इसमें सन्देह नहीं।

वर्ष ४ अंक १२

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : आराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुफा से गगन की ओर

कैलाशप्रकाश वर्मा

आदि मानव को खुला आकाश और खुली धरती के अतिरिक्त अन्य किसी स्थल की आवश्यकता नहीं थी। खुले जंगलों में, अधिकतर जलाशयों के निकट दिनभर घूमना, शिकार करना, पेट भरना और रातों को कहीं भी पड़ रहना, यही उसकी नित्यचर्या थी। उसे न कुछ जुटा रखने की चिन्ता थी, न छिन जाने की आशंका। दिन की धूप और रात की सर्दी से सताये जाने पर किसी पेड़ की नीची डाल पर जानवर की खाल फैलाकर छप्पर बना लिया। यों, डाल पर खाल की वह छाजन ही शायद सबसे पहली झोंपड़ी रही होगी।

समय बीतता गया। मानव ने अग्नि से प्रथम परिचय प्राप्त किया और उससे शरीर तापने तथा शिकार के कच्चे मांस को पकाने की दो प्राथमिक और महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ पूरी कीं। कुछ बीज की बुवाई और अनाज की प्राप्ति का भी ज्ञान अर्जित कर लिया। तब उसे अपना भोजन-भण्डार सुरक्षित रखने के लिए पृथक स्थान की आवश्यकता प्रतीत हुई। वही उसकी गृह-निर्माण प्रवृत्ति का आरम्भ था और तभी सबसे पहले पहाड़ को चीरकर गुफा बनायी गयी। वह आदिमयुग का गुहानिवासी मानव था।

तब से अब को जोड़ता यह सूत्र

गुहा-निर्मायक उस आदि-मानव और आज के गगन-चुम्बी भवन-निर्मायक कुशल इंजीनियर के मध्य युगों लम्बी, इस खाई को पाटने वाली कहानी बड़ी विलक्षण है। तब से अब तक मानव की निर्माण-कला ने बहुरूपी, बहुरंगी उतार-चढ़ाव देखे हैं। गुफा के अंधियारे से निकलकर पेड़-पत्तों से लदे मचान, घास-फूस की छवाई और मिट्टी की लिपी-पुती झोंपड़ियों को आबाद करती हुई यह कहानी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आज के रूप में हमारे सामने हैं। हमारा आज का खगोलवेत्ता अपने शक्तिशाली दूरदर्शी से चन्द्रमा के धरातल का आभास पा लेता है। आने वाले युग में जब प्रथम मानव चन्द्रमा पर अपनी विजय-पताका फहराएगा, तब वहाँ से दूरदर्शी द्वारा देखने पर पृथ्वी का धरातल उसे मिस्र के विशाल पिरामिडों तथा अमरीका की गगन-चुम्बी इमारतों से चित्रित अवश्य दिखेगा।

अर्द्ध कुशल कारीगर और कुशलतम इंजीनियर

वैसी गुफाएँ और वैसी कच्ची-पक्की झोंपड़ियाँ आज भी प्रचलित हैं। सभ्यता से सर्वथा अपरिचित आदिवासी प्रायः ही प्रत्येक महाद्वीप में रहते हैं। उनका रहन-सहन आदि-काल की बहुत-सी बातें याद दिलाता है। उनमें भी अर्द्धकुशल कारीगर मिल जाते हैं जो पत्तियों, टहनियों, घास-फूस, बाँस, मिट्टी तथा टेढ़े-मेढ़े पत्थरों को काट-छाँटकर, गढ़ कर झोंपड़ियाँ खड़ी कर लेते हैं। उनकी वह निर्माण-कला, जैसी भी कच्ची-पक्की है, उन्हें प्राचीन परम्परा के अनुसार अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में मिलती आयी है।

इस प्रकार गृह-निर्माताओं का एक पृथक वर्ग—राज, मिस्त्री, कारीगर आदि नामों से

तुर्किस्तान के पहाड़ी क्षेत्रों में इस मध्यवर्ती स्थल का नाम है केप्पाडोशिया (Cappadocia)। आज के शान्त ज्वालामुखी एरसियास (Erciyas) ने हजारों वर्ष पूर्व अपने विस्फोट के समय इस स्थल पर सैकड़ों फुट मोटी लावा, राख और धूल आदि की परतें बिछा दी थीं। कालान्तर में जल और वायु द्वारा उनका क्षरण होते-होते वे शंकुओं के आकार में चट्टानें रह गयीं। तत्पश्चात् आज से १२००-१५०० वर्ष पूर्व मध्य यूरोप से आये हुए साधुओं ने इन्हीं नर्म चट्टानों को काट-छाँटकर गुफाओं, सुरंगों जैसे स्थल अपने रहने के योग्य बना लिये। आज भी ये गुफाएँ वहाँ के निवासियों के खूब काम आती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें ऐसे ही घर में रहना पड़ता है। न्यूगिनी के निवासी दलदलीय विस्तारों में रहते हैं और मच्छरों से बचने के लिए चटाइयों की ऐसी ही सुरंग बनाकर उसमें सोते-बैठते हैं

पुकारा जाने लगा। आज तो वास्तुकला, गृह-निर्माण, इंजीनियरिंग आदि कार्य विज्ञान के इतने जटिल विषय माने जाते हैं कि वर्षों के परिश्रम के पश्चात् इनमें दक्षता प्राप्त होती है। यही विकसित विज्ञान हमें स्टील और कन्क्रीट के बल पर गुफा से निकालकर गगन की ओर १००-१०० मंजिलों और १२००-१५०० फुट ऊँचे अति विशाल भवनों की ओर लिये जा रहा है।

ये झोंपड़ियाँ, ये खोलियाँ

आइए, कुछ आदिवासियों तथा वनवासियों की झोंपड़ियों, खोलियों का अवलोकन करें।

दक्षिणी अफ्रीका के जूलू (Zulu) निवासी जिन झोंपड़ियों के समूहों में रहते हैं, उन्हें क्राल (kraals) कहते हैं। उनमें मुखिया की झोंपड़ी मध्य में होती है और शेष लोगों की उसके इर्द-गिर्द बिखरी रहती हैं। उनके लिए वे झोंपड़ियाँ केवल वर्षा तथा शीत से रक्षा के लिए और खाना बनाने के समय काम आती हैं। वृक्षों की टहनियों तथा घास द्वारा सुदृढ़ बुनाईयुक्त उन झोंपड़ियों का प्रवेश-द्वार छोटा ही रखा जाता है।

न्यूजीलैण्ड के माओरिस (Maoris) लोग आकर्षक नक्काशी डिजाइनयुक्त काठ के मकानों में रहते हैं। गाँवों में उन छोटे-छोटे मकानों के अतिरिक्त एक-एक केन्द्रीय घेरा भी रहता है जो मिलने-बैठने तथा पंचायत करने के काम आता है। वैसे घेरे ८० फुट लम्बे, ३० फुट चौड़े और २० फुट ऊँचे होते हैं।

बोर्नियो निवासी डायाक (Dayaks) लोग तो और भी लम्बे-चौड़े घेरों में रहते हैं। उनके घेरे कई सौ फुट लम्बे और पचास फुट तक चौड़े होते हैं। उनमें एक साथ ५०-६० परिवार रहते हैं। उन घेरों में प्रत्येक झोंपड़ी जमीन में गड़े लट्ठों पर खड़ी की जाती है। बाँस की सीढ़ियों के सहारे चढ़कर झोंपड़ियों में प्रवेश किया जाता है। झोंपड़ियों को घास-पतवार से छवाया जाता है।

न्यूगाइना में अब भी पेड़ों पर झोंपड़ियाँ

इन सूडान-निवासियों को रात्रि में वन्य पशुओं का हमेशा डर रहता है। अतः अपने घरों का प्रवेश-द्वार भूमि से चार फुट ऊँचा और चाभी की शक्ल का बनाते हैं ताकि कोई भी पशु सहज ही प्रवेश न कर सके

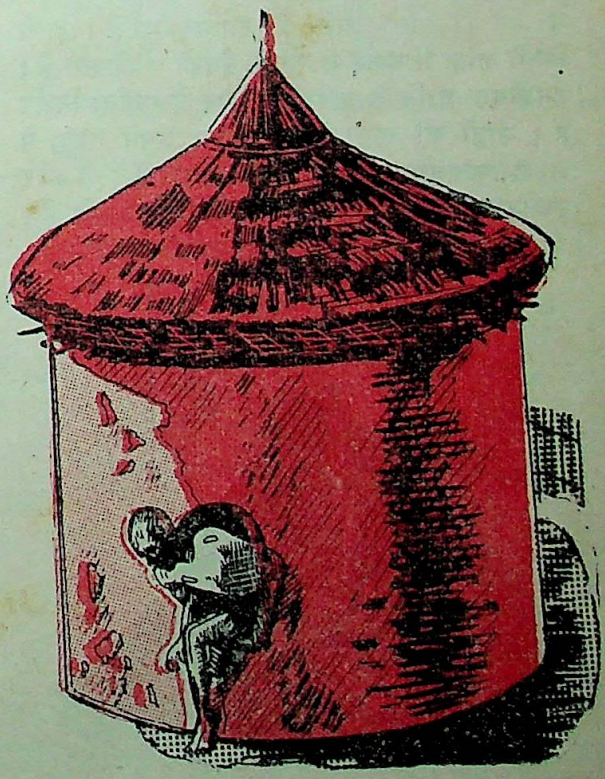

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाकर रहने वाले पाये जाते हैं। उनकी झोंपड़ियाँ ऊँची डालों पर बनी होती हैं। उन्हें घास तथा पत्तों से छवाया जाता है। उन्हें मजबूत बनाने के लिए बेंत के सरकण्डे भी काम में लाते हैं।

अफ्रीकी कांगों के जंगलों में बौने रहते हैं। वे अधिकांशतः खानाबदोश जीवन व्यतीत करते हैं। जहाँ टिक गये, वहीं अस्थायी झोंपड़े खड़े कर लिये और चले तो सब कुछ पीछे छोड़ दिया। झोंपड़ी बनाने के लिए वे प्रथम तो वृक्षों की डालें कुछ भूमि में गाड़कर शेष लम्बाई को झुकाकर मेहराब जैसी बना लेते हैं। तैयार हो जाने पर एक प्रवेश-द्वार खुला रखकर बाकी सब कुछ पत्तों से ढँक देते हैं। अन्दर का फर्श मिट्टी से लिपा-पुता रहता है। उसी पर रात को सोते हैं।

रेड-इण्डियनों की तम्बू जैसी झोंपड़ियों को विगवान (wigwan) कहते हैं। उनका अधिक प्रचलित नाम टीपी (teepee) भी है। पहले समय में पशुओं की साफ की हुई खालों से ये बनायी जाती थीं। भूमि में लट्ठे गाड़ कर उनके ऊपर शंकु के आकार में ये बनायी जाती थीं। इन्हें हलके, सुनहरे रंगों से रंग कर निचले भाग पर पृथ्वी के और ऊपर की ओर आकाश के दृश्य, चाँद-सितारों के चित्र आदि से चित्रित किया जाता था। अब तो इनका चलन घट चला है और जो थोड़ी-सी प्रचलन में हैं, वे खाल के बजाय कैनवस की बनायी जाती हैं।

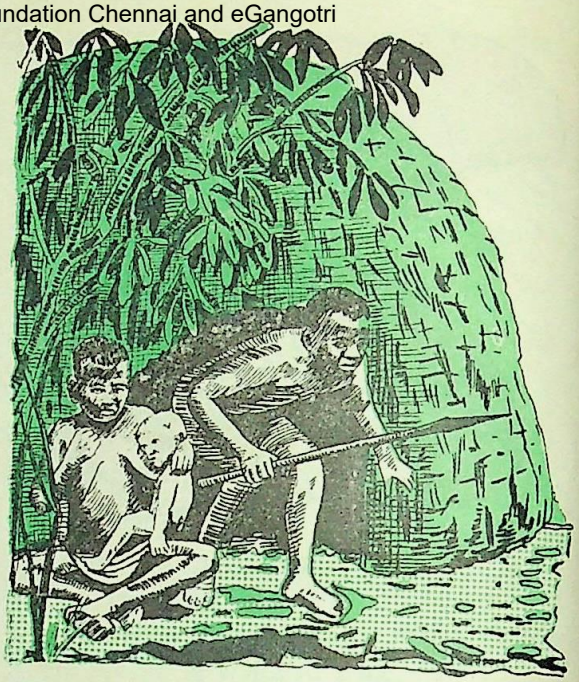

मध्य अफ्रीका के कांगो-निवासी ये बौने, सारा समय शिकार में ही बिताते हैं। अतः केवल पत्तों और मिट्टी से बनी ऐसी झोंपड़ियाँ जहाँ जी चाहा, खड़ी कर लेते हैं

ये लैप (Lapp) जाति के खानाबदोश हैं। कभी किसी जगह टिककर न रहना, इनकी विशेषता है। रेनडीयर जाति के बारहसिंगों पर ये पूर्णतः निर्भर हैं। उन्हीं की खाल से बनाये हुए अपने तम्बू, ये आवश्यकतानुसार चाहे जहाँ जमा लेते हैं और उखाड़कर, बिस्तर की तरह लपेटे लिये चलते हैं। एक प्रकार से यह इनका सफरी घर है

ध्रुवप्रदेशों के निवासियों की हिम-कुटीरों को इगलू (igloo) कहते हैं। हड्डी की बनायी हुई छुरी से बर्फ के चौकोर चौके काट-काट कर उन्हें ईंटों की भाँति चुनते-रखते जाते हैं। चुनते-चुनते उन्हें गोल खोली के रूप में बना लेते हैं। अन्दर बैठने-सोने के लिए बर्फ की ही चौकियाँ बनायी जाती हैं। जाने-आने का मार्ग एक सुरंग के रूप में बनाया जाता है। आप सोचते होंगे, ऊपर बर्फ, नीचे बर्फ, अगल-बगल और चारों ओर बर्फ ही बर्फ की ठण्डक में रहा कैसे जाता होगा? यथार्थ यह है कि उस खोली की अन्दर की दीवारें भीतर की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गर्मी को बाहर जाने से तथा बाहर की सर्दी को अन्दर आने से रोके रहती हैं।

टिकाऊ निर्माण—मकान, महल आदि

समय के साथ मानव को अपनी आवश्यकताएँ और सम्पन्नता बढ़ने के साथ-साथ अधिक टिकाऊ आवास-निवास की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। अतः मिट्टी, घास-पात और झाड़-झंखाड़ के दायरे से निकलकर उसने साफ-सुथरे काष्ठ-खण्ड तथा पहाड़ी पत्थर काम में लाना आरम्भ किया और क्रमशः ईंट, चूना, सीमेन्ट, कन्क्रीट तथा स्टील तक आ पहुँचा।

निर्माण कार्यों में पत्थर का उपयोग सबसे अधिक काल तक चलन में रहा। प्राचीन दुर्ग, लम्बी दीवारें और महल आदि सैकड़ों, हजारों वर्ष पश्चात् आज भी काल के थपेड़े सहते हुए अडिग खड़े हैं। मिस्र के विश्वाश्चर्य स्वरूप पिरामिडों से बढ़कर प्रस्तर-निर्माण के अन्य उदाहरण कहाँ मिलेंगे? प्रस्तर-निर्माण से पूर्व जब लोगों को पत्थर दुष्प्राप्य रहते थे, तब अधिकांश काठ का ही उपयोग किया जाता था। प्राचीन ब्रिटेन और यूनान के निवासी काठ के बड़े-बड़े लट्ठों के केबिन बनाकर रहते थे। एंग्लो-सेक्सन लोग पेड़ के तनों को चीरकर चार मेहराबों का रूप देते हुए खम्भे सरीखे खड़े कर लेते थे। बाद में लकड़ी का ढाँचा पूरा खड़ा करके उसे मिट्टी की मोटी तह से लीप देते थे। सूख कर वह तह सुदृढ़ दीवार का काम देती थी। उन केबिनों को क्रक काटेज (cruck cottage) कहते थे।

ईंटों के प्रयोग ने भवन-निर्माण में प्रस्तर और काष्ठ-युग के लिए तो एक क्रान्ति ही ला दी और उन्हें बहुत पीछे छोड़ दिया। लन्दन की ऐतिहासिक आग में उस समूचे नगर का भस्म हो जाना मुख्यतः उन दिनों के बने हुए लकड़ी के मकानों के ही कारण था। तत्पश्चात् तो राख की उन ढेरियों पर जो गगनचुम्बी भवन खड़े हुए, उनके निर्माण में ईंटों का ही प्रमुख हाथ रहा। भारी-भरकम पत्थरों को ढोने और आवश्यक जगह लाने-ले जाने में जितनी अधिक असुविधा रहती थी, उतनी ही अधिक सुविधा और सहजता ईंटों के प्रयोग में रहती थी। हालैण्ड और बेल्जियम में ईंट-निर्मित भवनों के अनेक आकर्षक और प्रसिद्ध भवन दर्शनीय हैं।

सीमेन्ट, कन्क्रीट, स्टील का युग

प्राचीन रोम-निवासियों द्वारा भी कन्क्रीट के प्रयुक्त किये जाने के उल्लेख प्राप्त हैं। उन दिनों कन्क्रीट में मिलाने के लिए सीमेन्ट का अस्तित्व न होने के कारण अन्य विभिन्न पदार्थों के मिश्रण उपयोग में आते थे। स्टील गर्डर्स (steel girders) अर्थात इस्पात की बनी शहतीरों के उपयोग में बड़ी सुविधा यह रहती है कि इमारत को चाहे जितनी ऊँचाई तक उठाया जा सकता है।

सीमेन्ट, कन्क्रीट का उपयोग आवश्यकतानुसार दो प्रकार से किया जा सकता है—बाक्स भरकर अथवा लोहे की सलाखों का ढाँचा बनाकर। द्वितीय प्रकार को रीनफोर्स्ड कन्क्रीट (reinforced concrete) कहते हैं।

आगे-पीछे, ऊपर-नीचे और अगल-बगल बर्फ ही बर्फ की इन इगलू (igloo) नामक झोंपड़ियों में रहने वाले हिम-निवासी, इन्हीं में गर्मी का भी आनन्द ले लेते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

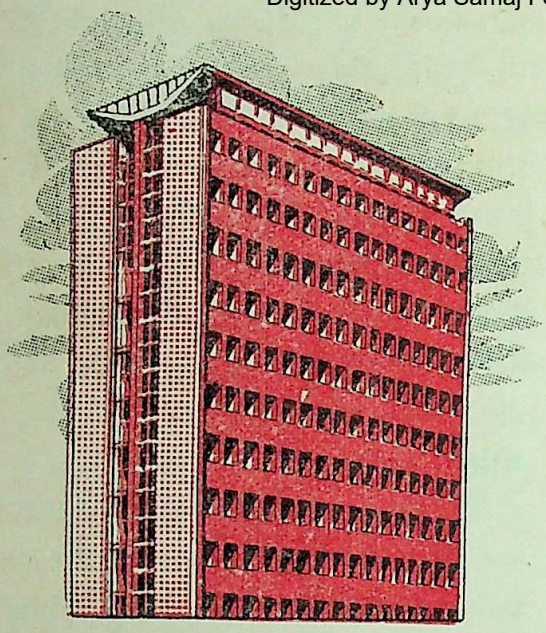

कन्क्रीट के उपयोग ने आधुनिक भवनों की भव्यता और सुन्दरता में चार चाँद लगा दिये हैं

कन्क्रीट बनाने के लिए कुटी हुई रोड़ी, रेती और सीमेन्ट को विभिन्न अनुपातों में मिला कर पानी से साना जाता है। बाक्सिग के लिए स्तम्भ जैसा लकड़ी का एक पोला ढाँचा खड़ा करके उसमें पतला सना हुआ कंक्रीट भर दिया जाता है। सूख जाने पर लकड़ी के ढाँचे के तख्ते खोल दिये जाते हैं और तैयार ढाँचा अत्यधिक मजबूत बन जाता है। उस पर न आग का जोर चल सकता है, न पानी का; न वह गर्मी पाकर फैलता है, न सर्दी पाकर सिकुड़ता है। इसी प्रकार रीनफोर्स्ड कन्क्रीट के लिए लोहे की सलाखों का ढाँचा बनाकर उसमें कन्क्रीट भर दिया जाता है। इस प्रकार का बना स्तम्भ पहले प्रकार से कई गुना अधिक मजबूत रहता है।

स्टील गर्डर और रीनफोर्स्ड कन्क्रीट के आधार पर ही आधुनिक इमारतें ऊँचाई तथा स्वरूपता में बढ़ा-चढ़ाकर बनायी जा रही हैं। सम्पन्न देश तो मानो इसकी होड़ में लगे हैं। अमरीका के शिकागो और न्यूयार्क जैसे महानगर तो गगनचुम्बी इमारतों के संसार-प्रसिद्ध केन्द्र हैं। उनमें भी १२५० फुट ऊँची और १०२ मंजिल की एम्पायर स्टेट बिल्डिंग तो ऊँचाई और भव्यता के लिए अन्यतम है तथा संसार के आश्चर्यों में से एक है। उस महानगरी में वह इमारत मानो एक छोटा-सा उपनगर ही है जहाँ सुबह से शाम तक हजारों नहीं लाखों व्यक्तियों का आना-जाना हो जाता है। वास्तविकता भी यही है कि जो शहर अधिक फैले, अधिक विस्तृत नहीं हैं, फिर भी अत्यधिक सटे हुए और व्यस्त हैं, उनके लिए आकाश से बातें करती हुई अट्टालिकाएँ वरदान स्वरूप हैं।

घर बनाइए—पहले छत, पीछे नींव

शीघ्र ही उस युग को बिदा दी जाने वाली है जबकि घर का आधार नींव माना जाता था ; नींव रखने के अर्थात् शिलान्यास के प्रसंग को पूजन आदि से मनाया जाता था। अभी कुछ समय तक तो विज्ञान का यह एक आश्चर्य ही बना रहेगा कि आप १०वीं-२०वीं मंजिल की छत से भवन बनाना शुरू कीजिए और नीचे उतरते-उतरते, पहली मंजिल तक उतर आइए—नीचे तहखाना भी बनाते चलिए और नींव रखिए अन्त में ! इंग्लैण्ड में १७ मंजिल की एक इमारत इसी आश्चर्य का पहला नमूना है।

मधु-छत्ता और गुम्बद···भविष्य के भवन

अमरीका के वर्तमान कुशलतम इंजीनियरों में बक फुलर (Buck Fuller) का स्थान अग्रिम पंक्ति में है। उनका मत है कि भविष्य के भवन निर्मित करने के लिए हमें जंगल की मधुमक्खियों से दीक्षा लेनी पड़ेगी ! बस, मधुमक्खियों की भाँति कोई भी उपयुक्त स्थल चुनना होगा। तत्पश्चात् त्रिकोणों, षट्कोणों और अष्टकोणोंयुक्त गुम्बद खड़ा करना शेष रह जाएगा। देखना केवल यह होगा कि गुम्बद का वह खोल आवश्यक रूप से मजबूत हो। वे विविध कोणीय आकृतियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लकड़ी, धातु अथवा प्लास्टिक की बनायी जा सकेंगी। उस प्रकार के गृह-निर्माण विज्ञान के ज्याडेसिक (geodesic) अर्थात भू-गणितीय कहा जाएगा।

उस प्रकार के तम्बू जैसे गुम्बद में किसी भी खम्भे की आवश्यकता न रहेगी। वैसे गुम्बदों का प्रचलन कुछेक देश-विदेशों में आरम्भ भी हो गया है। ये गुम्बद छोटे से छोटे चाहिए तो १० गज व्यास के घेरे में और बड़े से बड़े चाहिए तो तीन मील के गोल घेरे में भी खड़े किये जा सकते हैं। मेलों, नुमाइशों में, आमोद-प्रमोद के स्थलों पर, खेल-कूद के मैदानों पर ऐसे गुम्बद बहुत उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। इन्हें बार-बार खोलने-बाँधने के भी झंझट से मुक्ति पाने के लिए इनके छोटे तथा मध्यम कद के नमूने हेलीकॉप्टर द्वारा चाहे जहाँ ले जाये जा सकेंगे।

खुले उद्यानों में ऐसा एक गुम्बद खड़ा करके, उसे प्लास्टिक से ढँककर सर्दियों में शीत से बचते हुए धूप का आनन्द लिया जा सकता है तथा वर्षा में रिमझिम की बहार का अन्दर बैठे आनन्द लिया जा सकता है। इसके

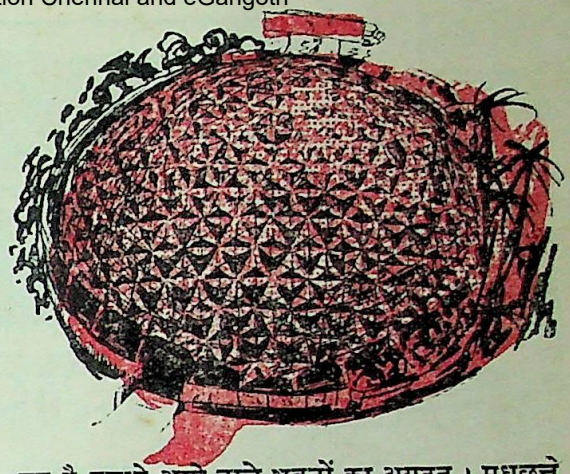

यह है हमारे आने वाले भवनों का अग्रदूत। मधुछत्ते जैसा यह गुम्बद-घर, अमरीका के हेनरी केसर की अपनी अनोखी कल्पना है और उनके प्रयोगों को आश्चर्यजनक सफलता मिली है। २००० दर्शकों को समाने वाला यह गुम्बद केवल १५ मिनट में खड़ा करना सीखा जा सकता है और १८-२० घण्टे में खड़ा किया जा सकता है। हेनरी केसर ने ऐसे गुम्बदों के नगर के नगर खड़े करने के लिए फिलहाल हवाई द्वीपों को चुना है

प्रवर्तक बक फुलर की यह कल्पना कि समूचे न्यूयार्क नगर को एक ही गुम्बद में ले लिया जाए, कदाचित आज स्वप्नवत प्रतीत हो किन्तु युग-निर्माताओं के ऐसे ही तो स्वप्न सत्य बनकर संसार को चकित करते रहे हैं!

बुलन्द दरवाजा अब बुलन्द न रहेगा!

फतेहपुर सीकरी (आगरा) का ऐतिहासिक बुलन्द दरवाजा अभी तक किसी भी भवन अथवा दुर्ग के दरवाजे से सर्वाधिक ऊँचा होने का स्थान प्राप्त किये हुए था। अब अमरीका में बन रहे एक वस्तुतः गगन-चुम्बी भवन का प्रवेश-द्वार ५२४ फुट अर्थात् औसतन ४५ मंजिल ऊँचा रहेगा। १० एकड़ भूमि घेरे हुए वह इमारत क्षेत्रफल में संसार के सबसे बड़े केऑप्स (Cheops) पिरामिड (मिस्र) से भी अधिक होगी। अन्तरिक्ष-उड्डयन के अन्तर्गत एपोलो योजना का एक अंग, यह इमारत ३६० फुट ऊँचे अन्तरिक्ष-यान के एक गैराज (garage) के रूप में रहेगी।

आइए, गेहूँ को ठिकाने लगाएँ

हमारे यहाँ की नहीं, यह बात वहाँ (अमरीका) की है जहाँ गेहूँ के अतिरिक्त ढेरों को ठिकाने लगाने की नित्य नयी युक्तियाँ निकाली जाती हैं। गेहूँ की चिप्स, टाफी, मिठाइयाँ, पापड़, कुरेरियाँ, सेव आदि अनेक बानगियाँ न केवल गेहूँ की खपत बढ़ा रही हैं, बल्कि चावल के अभाव को भी रोके हुए हैं। स्टेन्फोर्ड रिसर्च इन्स्टीट्यूट के वैज्ञानिकों ने यह नया कदम उठाया है।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

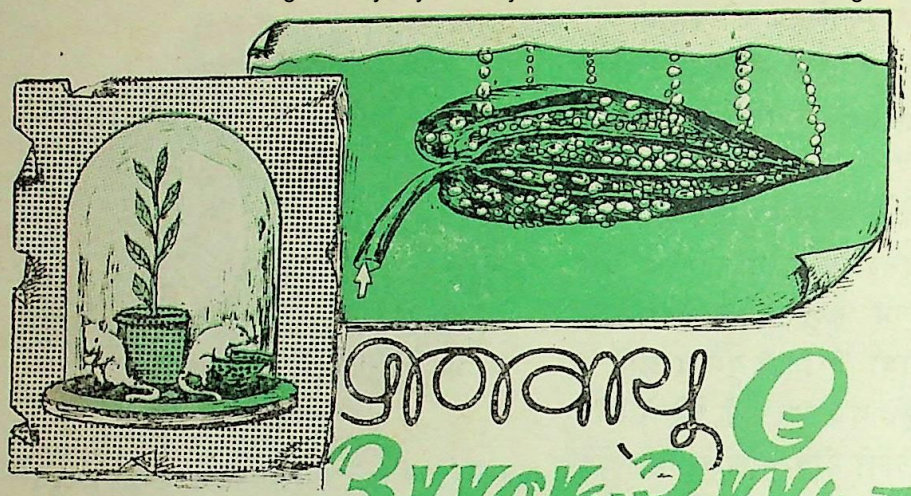

प्राणवायु ऑक्सीजन

सत्यकुमार

बरमिंघम (इंग्लैण्ड) में १ अगस्त १८७४ को आक्सीजन की खोज का शताब्दी-समारोह एक प्रस्तर-मूर्ति के अनावरण द्वारा किया गया। उस मूर्ति के हाथ में एक परिवर्द्धक लेंस दिखाया गया है। वह मूर्ति जोसेफ प्रीस्टले (Joseph Priestley) की है। उसी ने सर्वप्रथम आक्सीजन की प्राप्ति के लिए लाल मरक्यूरिक आक्साइड को गरम करने के लिए उस पर लेंस द्वारा सूर्य की किरणें केन्द्रित की थीं। फलस्वरूप आक्सीजन गैस निकली, जो विज्ञान की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण खोज मानी गयी। आक्सीजन को हम प्राणवायु के नाम से भी पुकारते हैं।

जीव-जगत के लिए आक्सीजन अनिवार्य

प्रीस्टले ने इस गैस को 'विचित्र वायु' कहा था। इससे पूर्व प्रीस्टले ने जितनी गैसें प्राप्त की थीं वे अग्नि को बुझा देती थीं। यह गैस उनसे विपरीत थी और अग्नि को अधिक तेज कर देती थी। प्रीस्टले को आश्चर्य इस बात का था कि उस गैस से उसकी मोमबत्ती बुझी नहीं सो तो ठीक, पर वह तेज क्यों हो गयी? चूहों पर भी प्रयोग करके प्रीस्टले देख चुका था कि साधारण वायु से भरे जार में चूहा मुश्किल से १५ मिनट जीवित रहता है, जबकि आक्सीजन से भरे जार में ३० मिनट के बाद भी मरा नहीं। फिर उसने इस गैस को स्वयं भी सूँघा तो उसे साधारण वायु-सी लगी; किन्तु शरीर के अन्दर उसे लगा, जैसे फेफड़ों को श्वास लेने में कुछ भी श्रम नहीं करना पड़ा और उसने बड़ा हलकापन अनुभव किया। तभी प्रीस्टले की दीर्घ दृष्टि में एक और स्वप्न तैर गया···· ऐसे रोगियों को जिन्हें श्वास लेने में कठिनाई होती हो, आक्सीजन दिया जा सकता है। वही स्वप्न साकार भी हो गया। निमोनिया आदि में ही नहीं, पहाड़ों पर चढ़ने के लिए, खानों में उतरने के लिए, आग लग जाने पर धुएँ आदि में घुसकर जान-माल निकालने के लिए, समुद्र के गर्भ में उतरने के लिए और अन्तरिक्ष में उड़ानों के लिए, सर्वत्र ही तो आक्सीजन पर निर्भर रहना पड़ता है!

आक्सीजन एक मापदण्ड भी

१७७८ में फ्रेन्च वैज्ञानिक लेवाशिये के आक्सीजन पर विस्तृत प्रयोगों के पश्चात् इसे बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया। अधिकांश धातु व अधातु इसके साथ संयोग करके आक्साइड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाते हैं। इसी कारण इसे परमाणु-भार, तुल्यांक-भार, संयोजकता आदि के लिए माप-दण्ड स्वरूप स्वीकार किया गया है। अनेक रासायनिक क्रियाओं में भाग लेने के कारण यह वायुमण्डल में, पृथ्वी के जीवों, वनस्पतियों और खनिजों में निरन्तर गतिशील रहता है। पृथ्वी के बाह्य स्तरों पर उपलब्ध प्रमुख तत्त्वों में सबसे अधिक मात्रा इसी की है। पृथ्वी का तीन चौथाई जल है और जल का ८९% आक्सीजन है। भूमि के अन्दर आक्सीजन नाइट्रोजन के साथ मिलकर नाइट्रेट बनाता है जो वनस्पति जगत का आवश्यक अंग है। वायुमण्डल में भी लगभग २१% आक्सीजन है और वही हमारा प्राणाधार है। प्राणीमात्र सो रहा हो या जाग रहा हो, उसे श्वास लेने की, श्वास में आक्सीजन की आवश्यकता पड़ती ही है। इसीलिए कहा गया है—'जब तक साँसा, तब तक आसा।' श्वास चलना अर्थात् आक्सीजन लेने का अर्थ है जीवन अन्यथा मृत्यु।

रासायनिक गुण

आक्सीजन रंगहीन, गंधहीन एवं स्वाद-हीन गैस है। यह जल में बहुत थोड़ी मात्रा में घुलनशील है। मछली इत्यादि पानी के जीव अपने शरीर की विशिष्ट रचना के कारण जल में घुले आक्सीजन को लेते रहते हैं। कुछ समुद्री जन्तु ऐसे भी हैं जो पानी में घुला आक्सीजन नहीं ले पाते। समुद्री दानव व्हेल पानी से आक्सीजन नहीं ले पाता। अतः उसे श्वास लेने के लिए पानी की सतह के ऊपर आना पड़ता है। उसके फेफड़े इतने बड़े होते हैं कि उनमें भरी वायु के सहारे वह पानी के अन्दर लगभग एक घण्टा रह सकता है।

पेड़-पौधों को भी प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में सूर्यताप के साथ-साथ आक्सीजन अनिवार्य है। उस क्रिया में पौधों का कार्बन पानी से संयोग करके स्टार्च आदि बनाता है और आक्सीजन विसर्जित करता है। इसीलिए बाग-बगीचों की वायु दिन के समय ताजगी देने वाली तथा स्वास्थ्यवर्द्धक होती है।

प्रयोगशाला में आक्सीजन-प्राप्ति

प्रयोगशाला में पोटैशियम क्लोरेट, पोटैशियम नाइट्रेट, पारे का लाल आक्साइड, बेरीयम पराक्साइड में से किसी भी एक को गरम करके आक्सीजन प्राप्त किया जा सकता है। ये सभी पदार्थ आक्सीजन के यौगिक हैं तथा इनसे आक्सीजन की पर्याप्त मात्रा प्राप्त हो सकती है। इन पदार्थों को गर्म करने पर इनसे आक्सीजन मुक्त हो जाता है।

आक्सीजन का औद्योगिक उत्पादन

इसकी अनेक विधियाँ हैं। वायु को अत्यधिक ठण्डा करके, उस पर पर्याप्त दबाव डालकर उसे द्रवित कर लिया जाता है। इस प्रकार आक्सीजन द्रव-रूप ले लेता है। उस द्रव का वाष्पीकरण कर लेते हैं। नाइट्रोजन का क्वथनांक अपेक्षाकृत कम होने के कारण वह पहले उड़ जाता है। शेष द्रव में

प्रीस्टले ने अगस्त १७७४ में सर्वप्रथम अपनी प्रयोग-शाला में आक्सीजन उत्पादित करने के लिए ट्यूब में रखे मरक्यूरिक आक्साइड को दो लेंसों द्वारा सूर्य की किरणें केन्द्रित करके तप्त किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकांश आक्सीजन रह जाता है।

दूसरी विधि में जल में थोड़ा-सा तनु सल्फ्यूरिक एसिड मिलाकर अम्लीय करके उसके विद्युत-विश्लेषण द्वारा आक्सीजन प्राप्त करते हैं। जल में आयतन के हिसाब से दो भाग हाइड्रोजन व एक भाग आक्सीजन होता है। धनाग्र पर आक्सीजन व ऋणाग्र पर हाइड्रोजन एकत्र हो जाता है। आक्सीजन स्वयं नहीं जलता किन्तु वस्तुओं के जलने में सहायता करता है और उस वस्तु का आक्साइड बना देता है। लकड़ी, कोयला, मोमबत्ती, भोजन आदि में कार्बन होता है। जब ये पदार्थ जलते हैं तब इनसे कार्बन डाइ-आक्साइड बनता है। आक्सीजन में गन्धक व फास्फोरस जलाने से आक्साइड बनते हैं। अधातुओं के इस प्रकार बने आक्साइड अम्लीय होते हैं और उनका घोल अम्ल कहलाता है। इसी गुण के कारण लेवाशिये ने इसका नाम 'आक्सीजन' अर्थात् 'आक्साइड बनाने वाला' रखा था। इसके विपरीत धातुओं के आक्साइड क्षारीय होते हैं और उनके घोल क्षार कहलाते हैं। मैगनीशियम, सोडियम अथवा लोहे का तार सुर्ख गरम करके आक्सीजन में उतारा जाए तो बहुत तीव्र चमक के साथ जलने लगता है।

यह अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र-एटलस, एक गरज के साथ भूमि से उठते हुए वे बर्फकण झटकाए दे रहा है जो इसमें ईंधन के लिए भरे हुए द्रवीय आक्सीजन के कारण वायुमण्डल ने बाहर से लपेट दिये हैं

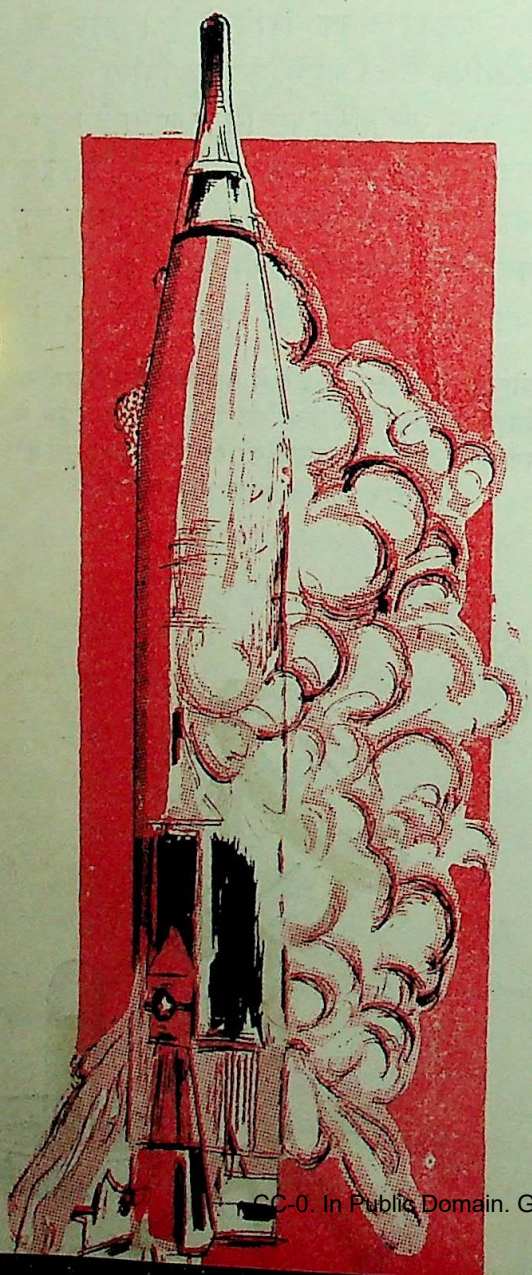

द्रवीय आक्सीजन

कुछेक उद्योगों में प्रायः द्रवीय आक्सीजन प्रयुक्त करते हैं। गैस रूप में आक्सीजन अधिक स्थान घेरता है। एक पौण्ड गैस पर २४०० पौण्ड प्रति इंच दबाव डालने के पश्चात् भी उसे रखने के लिए ३ किलोग्राम वजन का पात्र चाहिए; जबकि एक पौंड द्रवीय आक्सीजन $\frac{1}{5}$ किलोग्राम के हलके पात्र में रखा जा सकता है। अनुमान लगाया गया है कि आक्सीजन किसी भी पात्र में गैसीय की अपेक्षा द्रवित अवस्था में ८०० गुना अधिक रखा जा सकता है। द्रवीय आक्सीजन को लोहे के बड़े-बड़े सिलिण्डरों में संग्रहीत करते हैं। उन्हें लॉक्स (lox) कहते हैं।

अनेक उद्योगों में आक्सीजन

आक्सीजन को ऐसीटिलीन के साथ जलाने से (oxy-acetylene flame) ५५००°C तक ताप प्राप्त किया जाता है। इस ताप पर अधिकांश धातुएँ पिघल जाती हैं। अतः धातुओं को काटने या जोड़ने के लिए यह अत्युत्तम साधन है। वेल्डिंग करने वाले इसी ज्वाला का उपयोग करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

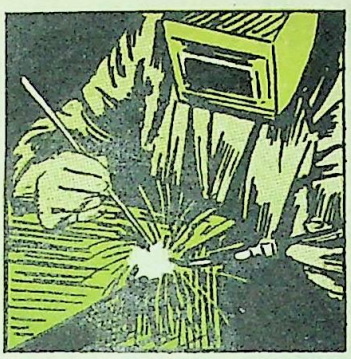

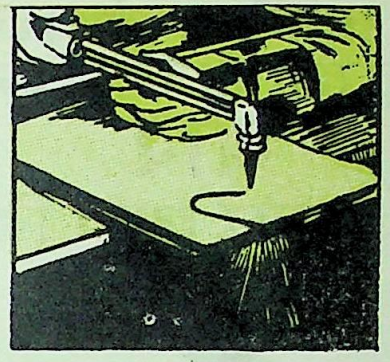

ऐसीटिलीन गैस से संयुक्त आक्सीजन, अति तीव्र आक्सी-ऐसीटिलीन ज्वाला उत्पन्न करता है जिसका ५५००°F तक का विलक्षण ताप अधिकांश धातुओं को पिघलाने के लिए पर्याप्त है। अतः इसका उपयोग धातु-संधान (बायें) तथा धातु-छेदन (दायें) में किया जाता है

एमोनिया तथा एथिलीन आक्सीजन द्वारा बनाये जाते हैं। एमोनिया व उसके लवणों के अनेक उपयोग हैं। एथिलीन प्लास्टिक उद्योग की नींव है। सल्फ्यूरिक एवं नाइट्रिक एसिड बनाने, क्लोरीन बनाने, एल्डीहाइड व कीटोन वर्ग के पदार्थ बनाने आदि के उद्योग इसी पर निर्भर हैं। अन्तरिक्ष यानों के लिए तो अपने साथ द्रवीय आक्सीजन ले जाना नितान्त अनिवार्य ही है। धातुओं पर प्लास्टिक की पालिश भी आक्सी-ऐसीटिलीन ज्वाला से की जाती है। इससे उन धातुओं पर जंग लगने की सम्भावना नहीं रहती। इसी प्रकार आक्सीजन व हाइड्रोजन के मिश्रण से आक्सी-हाइड्रोजन ज्वाला भी बनती है जो तीव्र ताप देती है।

जिन रासायनिक क्रियाओं में वायु प्रयुक्त होती है, उनमें मुख्यतः आक्सीजन ही काम आता है। अतः पेनिसिलिन, फास्फोरिक अम्ल, फिनायल, पोटैशियम परमैंगनेट, जिंक आक्साइड आदि के उत्पादन में अब वायु का स्थान आक्सीजन ले रहा है।

पश्चिमी देशों में भीड़भाड़ के स्थानों पर आक्सीजन उत्पादक यंत्र लगाकर वायुमण्डल में आक्सीजन की मात्रा बढ़ाने तथा उसके द्वारा जनता की थकान, सिरदर्द आदि कम करने के प्रयोग किये गये हैं। खेल-प्रतियोगिताओं के पूर्व भी खिलाड़ियों को आक्सीजन देकर उनमें अधिक स्फूर्ति उत्पन्न करने के प्रयोग किये गये हैं।

आक्सीजन का महत्त्व इसी से स्पष्ट है कि इसके बिना दो-चार मिनट से अधिक हमारा जीवित रहना असम्भव है। यह हमारे शरीर में पहुँचे हुए खाद्यपदार्थों का आक्सीकरण करके शक्ति उत्पन्न करता है। हमारे रक्त के लाल कण आक्सीजन ही लेते हैं। इसी के प्रभाव से उनमें हीमोग्लोबिन बनता है। रक्त द्वारा आक्सीजन शरीर के समस्त भागों में पहुँच जाता है। भोजन के आक्सीकरण से जो कार्बन-डाइआक्साइड बनता है वह हमारे प्रश्वासों के साथ बाहर निकलता जाता है।

सृष्टि की समस्त जैविकतथा रासायनिक क्रियाओं का मुख्य आधार आक्सीजन है। इसीलिए इसे 'प्राण-वायु' कहा जाता है।

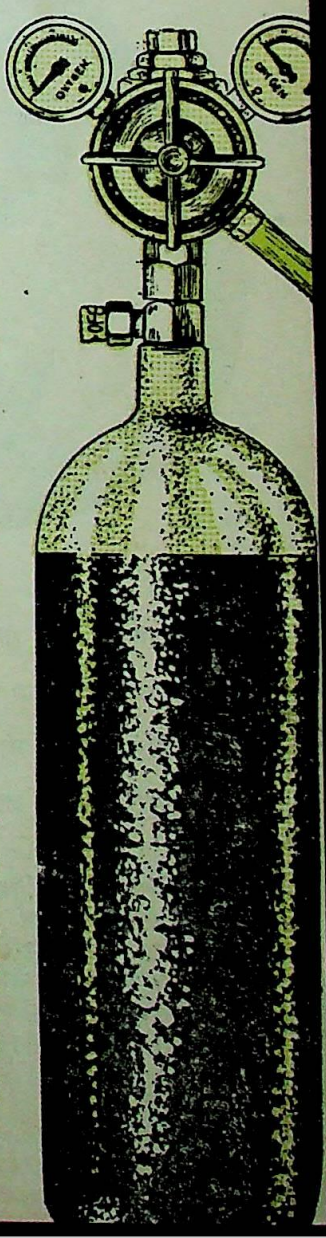

जगह-जगह आक्सीजन ले जाने की आवश्यकता पड़ने पर उसे द्रवावस्था में ले जाना असुविधापूर्ण रहता है। अतः उसे गैस रूप में चापित करके, ऐसे मजबूत, लोहे के सिलिण्डरों में भरकर ले जाया जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आपने अपने बच्चे की सुरक्षा के लिए इन चार बातों की ओर ध्यान दिया है ?

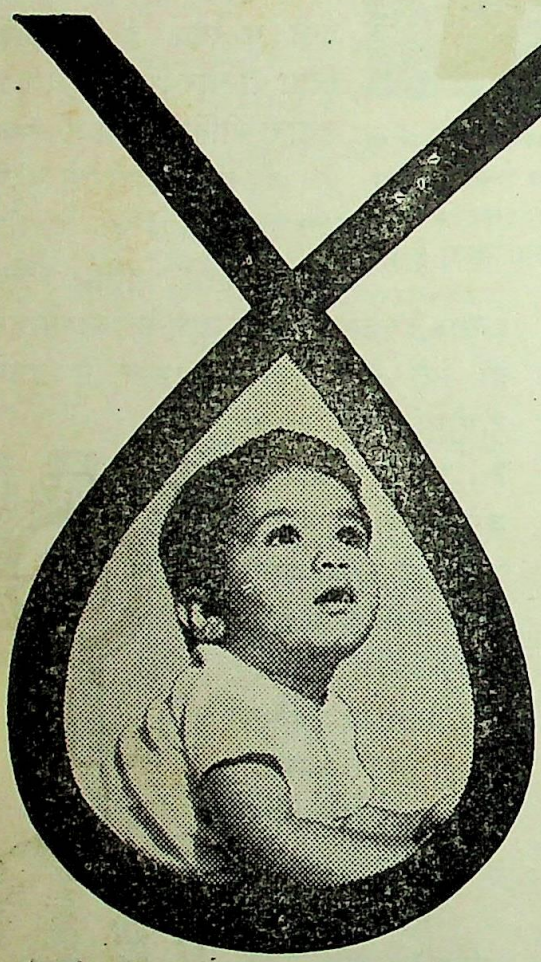

चेचक का टीका-

बच्चा छः मास का होने से पहले ही उसे यह टीका लगाना चाहिए।

तीन टीके-

डिपथेरिया, कुकुर खांसी, धनुस्तम्भ से बचने के लिए तीन टीके लगाये जायें। ये टीके बच्चे की ६ महीने से १२ महीनों की अवधि में लगाने होंगे। जब बच्चा तीन साल का हो तो फिर ये टीके लगाये जायें और आखिरी बार जबकि वह पाँच साल का हो एक और टीका लगाया जाये।

पोलियो से बचने के लिए टीका-

पोलियो का टीका तीन बार लगाया जाता है। पहला उस समय जबकि बच्चे की आयु छः महीने की होती है, दूसरा चार हफ्तों के बाद और तीसरा आठ हफ्तों के बाद

जीवन बीमा

एक शिक्षावृत्ति बीमा पालिसी के द्वारा आपके लड़के की ऊँची शिक्षा का प्रबन्ध हो जाता है। प्रीमियमों को आसान किश्तों में दिया जा सकता है। बच्चे की एक वर्ष से पाँच वर्ष की आयु के बीच यह पालिसी लेना उचित होगा। इससे प्रीमियम की रकम बहुत कम देनी पड़ती है। पिता के प्यार का छत्र उठ जाने पर भी बीमे की पूरी रकम दी जाएगी। बचत का और कोई तरीका आपके बच्चे के लिए ऐसा लाभ नहीं पहुँचा सकता।

इस योजना का पूरा विवरण कोई भी एजेंट प्रसन्नता के साथ आपको देगा। या जन सम्पर्क अधिकारी, जीवन बीमा निगम, जीवन केन्द्र, जमशेदजी टाटा रोड, बम्बई-१ से आप इस सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

जीवन बीमा

सुरक्षा का बेजोड़ साधन है।

ASP/LIC-Z-10 Hindi

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

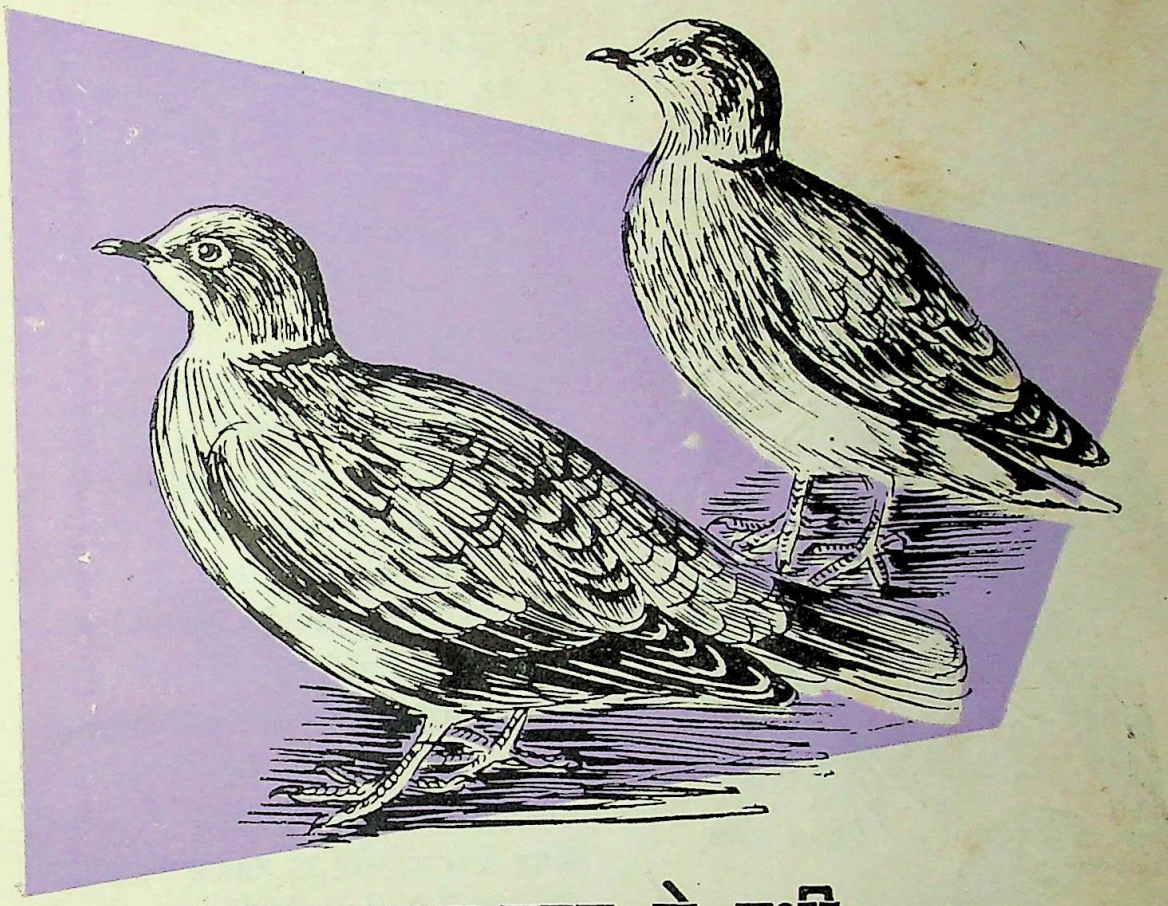

तरह-तरह के पक्षी

कुँवर सुरेशसिंह

अनेक छोटे पंछी-पखेरू नित्य ही हमारे घर-आँगन को गुंजित करते रहते हैं। प्रकृति ने पंछी-पंछी में कुछ न कुछ विशेषता दी है। इन्हें निकट से देखना-परखना एक रोमांचक मनोरंजन बन सकता है। इन पंक्तियों में कबूतर, हंसावर, जलरंक एवं अन्य ऐसे छोटे पक्षियों का सामान्य परिचय ही प्रस्तुत है।

कबूतर

लगभग ५००० वर्ष पूर्व मनुष्यों द्वारा कबूतर पालने का प्रमाण मिस्र के भित्ति-चित्रों से मिलता है। वहाँ से ईरान, बगदाद आदि अरब के देशों में भी कबूतर-पालन आरम्भ हुआ। १८४८ की फ्रान्स-क्रान्ति में संदेशवाहक के रूप में कबूतरों का व्यापक प्रयोग किया गया था। आज विज्ञान के युग में भी इनकी उपयोगिता कम नहीं है। आज भी इनकी टाँगों अथवा पीठ पर एक पोली नली में युद्ध सम्वाद भेजने के लिए इनका उपयोग होता है।

बेल्जियम संसार में कबूतरों का सबसे अधिक शौकीन देश है। वहाँ इनके उड़ान पर घोड़ों की रेस की तरह लाखों की हार-जीत हो जाती है। वहाँ के सभी गाँवों में कबूतरों के क्लब कायम हैं। हमारे देश में भी गिरहबाज, लक्का, लोटन, अम्बरसरे, चीना, शीराजी, गोला आदि अनेक जातियों के कबूतरों को शौकीन लोग पालते हैं।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पालतू कबूतर चार श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं :

१. **पाउटर कपोत**—इनकी ग्रासनली बड़ी और अलग रहती है, जिसे ये फुलाकर बड़ी कर सकते हैं।

२. **कैरियर**—इनमें निम्न तीन तरह के कपोत बहुत प्रसिद्ध हैं : (अ) **कैरियर**—इनकी चोंच लम्बी और आँख का घेरा बिना परों का रहता है। (ब) **रुन्ट**—इनका कद बड़ा और चोंच लम्बी, भारी रहती है। (स) **बार्ब**—इनकी चोंच छोटी और आँख का घेरा नंगा रहता है। इसकी भी अनेक उपजातियाँ हैं।

३. **फेनटेल**—इनमें निम्न चार कपोत प्रसिद्ध हैं : (क) **टरबिट और आउल**—इनकी चोंच छोटी और मोटी होती है तथा गले के पर तिरछे रहते हैं। (ख) **टम्बलर**—ये उड़ते-उड़ते उलटकर गिरह लगाते रहते हैं। ये ही गिरहबाज कहलाते हैं। (ग) **फ्रिलबैक**—इनकी दुम के पर ऊपर की ओर उठे रहते हैं। ये लक्का भी कहलाते हैं। (घ) **जैकोबिन**—इनके गले के पर कंठेनुमा उभरे-उभरे रहते हैं।

४. **ट्रम्पटर**—इनके गले के नीचे के पर फूले हुए और इनकी बोली बहुत कर्कश होती है।

प्रायः जंगली कबूतरों से पालतू जातियाँ बनायी जाती हैं। जंगली कबूतर सभी देशों में फैले हुए हैं। ये करीब १५ इंच लम्बे स्लेटी रंग के होते हैं। इनमें नर, मादा एक जैसे होते हैं। ये दाना और बैज चुगने वाले पक्षी हैं। ये अधिकतर गिरोहों में रहते हैं। मादा साल में दो बार भूमि पर दो-चार तिनके रखकर दो-दो सफेद अण्डे देती है। बच्चे कुछ दिनों तक बिना पंख के असहाय रहते हैं। उनके मुँह में अपनी चोंच डालकर माँ-बाप एक प्रकार का रस देते रहते हैं जो उनके शरीर के भीतर अन्न की थैली में एकत्र होता रहता है।

हरितवर्ण कपोत-युगल (ऊपर नर, नीचे मादा)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी कबूतर एक-पत्नीव्रती होते हैं। बड़े झुण्डों में एक साथ रहने पर भी नर अपनी ही मादा से जोड़ा बाँधकर जीवन बिताता है। दोनों पर घोंसला बनाने, अण्डा देने और बच्चों को खिलाने का भार रहता है। इन का मुख्य भोजन दाना है। इनका गोश्त कड़ा और हलकी-सी गंधयुक्त होता है ।

पण्डकियाँ स्वभाव में कबूतरों जैसी होकर भी कद में छोटी होती हैं। इनका रंग अलग-अलग रहता है । ये बहुत सीधी होती हैं। इन्हें आबादी के भीतर आसानी से देखा जा सकता है। इनका गोश्त अपेक्षाकृत नर्म और स्वादिष्ट होता है ।

कबूतरों के ही वर्ग के हारिल भी हमारे परिचित पक्षी हैं । ये हरे और धानी रंग के सुन्दर पक्षी हैं । इनकी कई जातियाँ पायी जाती हैं । इनमें कोकला सबसे प्रमुख हैं । ये स्वादिष्ट मांस के लिए प्रसिद्ध हैं।

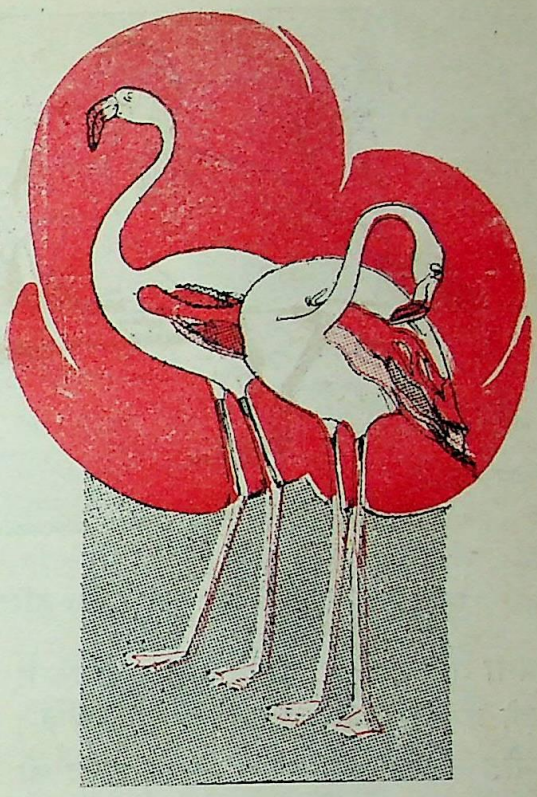

हंसावर का विशिष्ट मुद्रारत जोड़ा

हंसावर

हंसावर को हंसों या बतों के बीच का पक्षी कहना अनुचित न होगा। शरीर-रचना में जहाँ ये महावकों से मिलते-जुलते हैं, शक्ल-सूरत में ये हंस और बतों जैसे ही हैं। इसी कारण कहीं-कहीं इन्हें बकहंस भी कहा जाता है। ये अपने ढंग के निराले पक्षी हैं। अतः इनके झुण्ड में अन्य कोई चिड़िया नहीं आती।

ये सफेद रंग के पक्षी हैं। इनके कुछेक पर गुलाबी रहते हैं। इनके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं । कद में नर-पक्षी मादा से कुछ बड़ा रहता है। इन पक्षियों की टाँगें और गरदन लम्बी होती हैं। इनकी दुम छोटी और डैने औसत माप के रहते हैं। इनकी चोंच की बनावट बड़ी विलक्षण होती है जिससे इन्हें पहचानने में भूल नहीं हो सकती। वह न बहुत लम्बी, न बहुत छोटी और मोटी होती है जो बीच से नीचे की ओर मुड़ी रहती है। चोंच का ऊपरी पल्ला निचले पल्ले से छोटा रहता है जो उस पर ढक्कन की तरह फिट बैठ जाता है। बत्तखों की चोंच की तरह इनकी चोंच पर भी पतली झिल्ली चढ़ी रहती है। सिरे का थोड़ा भाग अन्य पक्षियों की चोंच जैसा कड़ा रहता है। इनके किनारे बत्तखों की चोंच की तरह दाँतेदार रहते हैं।

हंसावर अपनी लम्बी गरदन को झुका-कर, चोंच को छिछले पानी में डुबोकर सर को उलट देते हैं जिससे इनकी चोटी जमीन की ओर हो जाती है। फिर ये अपनी चोंच को घुमाकर कीचड़ और पानी को बाहर निकाल देते हैं। केवल छोटे-छोटे कीड़े, घोंघे, कटुए आदि भीतर रह जाते हैं।

इनकी लम्बी टाँगों में आगे की ओर तीन छोटी उँगलियाँ रहती हैं जो बत्तखों की तरह एक मजबूत झिल्ली से जुड़ी रहती हैं। पीछे की ओर एक छोटा-सा अँगूठा रहता है।

हंसावर छिछले पानी या दलदलों में ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल और हरित पाँवयुक्त टिमटिमे

अपना अधिक समय बिताते हैं। आवश्यकता पड़ने पर ये बड़ी खूबी से तैर भी लेते हैं। जमीन से उड़ते समय इन्हें सारस आदि की तरह कुछ दूर दौड़ना पड़ता है लेकिन ऊपर उठ जाने पर ये अच्छी तरह उड़ लेते हैं। उड़ते समय अपनी गरदन को आगे की ओर और टाँगों को बगुले की तरह पीछे की ओर निकाले रहते हैं। बत्तखों के समान आकाश में त्रिकोण बनाकर उड़ते हैं।

इनकी बोली बड़ी बतों जैसी होती है। कभी-कभी ये बतों की तरह अपने दोनों डैनों को फड़फड़ाकर उड़ते हैं। दिन के समय चराई के बाद और रात में बसेरा लेते समय अकसर एक टाँग पर ही खड़े रहते हैं और अपनी लम्बी गरदन को घुमाकर पीठ पर रखकर बड़े आराम से सो लेते हैं।

ये दूर-पास प्रवास तो करते हैं लेकिन बत्तखों की तरह लम्बी यात्रा करना पसन्द नहीं करते। हमारे यहाँ ये जाड़े में उत्तर-पश्चिम और अफ्रीका से आते हैं और प्रायः सभी देशों में पाये जाते हैं।

इनका घोंसला भी विचित्र होता है। ये बड़े-बड़े गिरोहों में एक साथ ही छिछले पानी में अपने घोंसले बनाते हैं जो मिट्टी के गोल टीलों जैसे जान पड़ते हैं। मिट्टी के उन घोंसलों का ऊपरी भाग कुछ पोला और गहरा रहता है। उसी में मादा दो अण्डे देती है। अण्डों को सेने के लिए जब ये अपने टीलेनुमा घोंसले पर बैठते हैं तो दूर से अजीब-सा लगता है। इनके बच्चे अण्डे से बाहर निकलने पर दूसरे पक्षियों की भाँति असहाय न रहकर चंचल और भागने में समर्थ होते हैं।

जलरंक

पनलवों को यह सुन्दर नाम जल के निकट रहने के कारण मिला है। ये चहों के निकट सम्बन्धी हैं। इनका सारा समय उन्हीं की तरह पानी के निकट बीतता है। वहीं ये कीड़े-मकोड़ों की तलाश में दौड़ते रहते हैं। इनकी बहुत-सी जातियाँ हैं जिनमें इतना थोड़ा अन्तर रहता है कि एक दूसरे को अलग पहचानना कठिन हो जाता है। कुछ अपनी टेढ़ी चोंच के कारण पहचान लिये जाते हैं। कुछ अपनी बहुत लम्बी टाँगों के कारण अलग नजर आ जाते हैं। कुछ के पाँवों के अँगूठे जड़ के पास थोड़ी दूर तक आपस में जुड़े रहते हैं और कुछ के अलग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सब छोटे कद के पक्षी हैं। इनका रंग लगभग सफेद रहता है। इनमें कुछ तो यहीं के बारहमासी पक्षी हैं और कुछ यहाँ जाड़ों में बाहर से आकर गर्मियाँ आरम्भ होते ही लौट जाते हैं। ये कभी पेड़ पर नहीं बैठते। इनका सारा समय भूमि पर ही बीतता है। ये सब गरम देश के पक्षी हैं और सारे संसार के गरम देशों में फैले हुए हैं। भूमि पर ये काफी तेजी से भाग लेते हैं साथ ही हवा में भी बहुत अच्छी तरह उड़ लेते हैं।

इनके नर-मादा प्राय: एक ही रंग-रूप के होते हैं। संकट को निकट देखकर ये चीं-चीं कर के उड़ जाते हैं और थोड़ी ही दूर पर फिर पानी के किनारे उतर पड़ते हैं। ये बहुत चंचल पक्षी हैं। प्राय: ही ये छोटे झुण्डों में रहते हैं। इनका मांस स्वादिष्ट होता है। इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, छोटे कटुए, घोंघे आदि हैं।

इनका अण्डे देने का समय वर्षा-ऋतु है। ये पानी के निकट दलदल या नरकुल के बीच घास-फूस का कटोरानुमा घोंसला बनाते हैं। घोंसला भूमि पर ही रखा रहता है। उसमें मादा तीन-चार अण्डे देती है। अंडे सफेद हरछौंह पत्थरी या भूरे रंग के होते हैं। उन पर चित्तियाँ और बिन्दियाँ भी पड़ी रहती हैं।

इनका वंश बहुत बड़ा है। इनमें मुख्य हैं: ओहारी, करलू, गोइयार, गुदेरा, गैरिया, गुटती, गेहवाला, टिमटिमा, सुरमा, चितला सुरमा, चुपका, पेनेवा, टुटुआरी, टिलुआ, गौर, रुझनी, पनलवा, लमगोड़ा, सूजी, सामुकभंगा, मलगुजहा-पिलपावा।

सारंग पक्षी

सारंग को तिलौर भी कहते हैं। ये भूमि-चारी पक्षी हैं। इसीलिए पानी के निकट रहने की अपेक्षा ये ऐसे खुले और सूखे मैदानों में रहते हैं जहाँ छोटी-मोटी झाड़ियाँ और घास हो। इनमें से कुछेक तो नदियों के कछार को भी पसंद करते हैं और कुछ पठार के खुले हुए मैदानों को। इनमें से अधिकांश हमारे यहाँ के बारहमासी पक्षी हैं जो यहीं थोड़ा बहुत स्थान-परिवर्तन करते रहते हैं और यहाँ से बाहर नहीं जाते। ये बहुत कम संख्या में होने के कारण बहुत कम ही दिखाई पड़ते हैं।

ये कभी वृक्ष पर नहीं बैठते। इनका सारा समय भूमि पर ही बीतता है। इनके पाँवों की उँगलियाँ छोटी होती हैं और पिछले अँगूठे का अभाव रहता है। इनमें कुछेक तो तीतर की तरह चितले रहते हैं और कुछ के नर पक्षी काले और मोर जैसे सुन्दर होते हैं। इनके नर

दलदलीय, काष्ठीय और हरित भूमि में विचरने वाले तीन श्रेणी के जलरंक

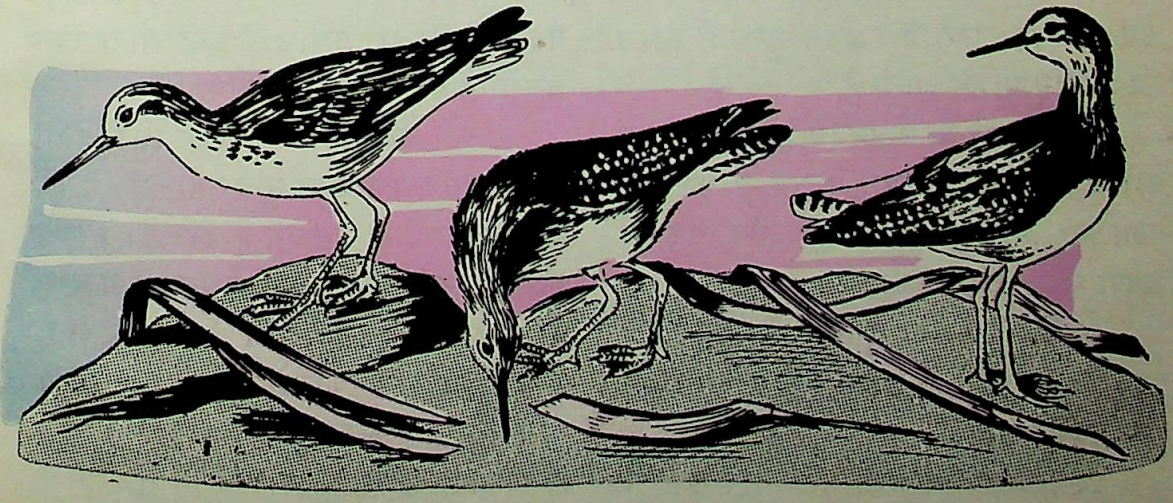

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मादा में अन्तर रहता है। नर की पोशाक बहुत सुन्दर और भड़कीली होती है।

तिलौर वास्तव में अफ्रीका के पक्षी हैं। वहाँ इनकी लगभग २५-३० जातियाँ पायी जाती हैं। ये सब अपने स्वादिष्ट मांस के लिए प्रसिद्ध हैं। ये अकेले, जोड़े में अथवा दो-चार के गोलों में दिखाई पड़ते हैं। इनका शिकार सहज नहीं होता। खतरा देखकर पहले तो ये तीतर आदि की तरह भूमि पर ही भागना पसन्द करते हैं लेकिन अधिक दबाव पड़ने पर ये हवा में उड़ भी जाते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-फूस, कीड़े-मकोड़े और दाना आदि है, लेकिन ये छिपकली आदि छोटे जीव-जन्तुओं और सरीसृपों को भी बड़े चाव से खाते हैं।

जोड़ा बाँधने के समय नर-तिलौर मोर की तरह मादा के सामने बहुत सुन्दर ढंग से नृत्य का प्रदर्शन करता है। उस समय उसकी पोशाक सुन्दर और भड़कीली हो जाती है। मादा को ये केवल अपना सुन्दर नृत्य ही नहीं दिखाते, बल्कि पंख फैलाकर हवा में ऊपर उड़ते और नीचे उतरते भी हैं। मादा भूमि पर तीतर आदि की तरह किसी छिछले गढ़े में अपने अण्डे देती है। अण्डे हरछौंह, भूरे रंग के होते हैं और उन पर प्रायः चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। अण्डे से बाहर निकलने पर इनके बच्चे असहाय न रहकर तुरन्त ही इधर-उधर भागने लगते हैं। इनमें मुख्यतः निम्न छः जातियाँ पायी जाती हैं :

१. तूगदार या साहन चिड़िया—यह इस परिवार का सबसे बड़ा, करीब ३ फुट का पक्षी है। इसकी पीठ चितली और सिर का ऊपरी भाग काला रहता है।

२. तिलौर—यह तूगदार से बहुत छोटा पक्षी है। इसका सिर काला नहीं रहता। यह भी चितला पक्षी है।

३. छोटा तिलौर—यह रंग-रूप में तिलौर जैसा है। कद में उससे कुछ छोटा होता है।

४. होबार—यह लगभग सवा दो फुट का पक्षी है। इसकी पोशाक काली, सफेद और भूरी रहती है।

५. चरत—यह होबार के बराबर होता है। इनमें नर काले और भूरे एवं मादाएँ भूरी और चितली होती हैं।

६. खर मोर—यह छोटे तिलौर के बराबर होता है। इसका रंग काला और भूरा रहता है। इसके डैनों पर चौड़ी काली और सफेद पट्टियाँ पड़ी रहती हैं।

जलकपोत

जलकपोत के वर्ग में केवल दो पक्षी हैं। ये अपने पाँव की बहुत लम्बी उँगलियों के कारण अन्य पक्षियों से सर्वथा भिन्न होते हैं। ये सभी गर्म देशों में फैले हुए हैं। इन्हें देश को छोड़कर प्रवास करना पसन्द नहीं। ये ताल और झीलों को रहने के लिए चुनते हैं।

ये छोटे कद के पक्षी हैं। देखने में ये जल-कुक्कुट से जान पड़ते हैं लेकिन इन्हें जल-कुक्कुट के सम्बन्धी न कहकर चहे, बटान, पनलवों के समान कहना उपयुक्त रहेगा।

अपनी लम्बी उँगलियों के सहारे ये पानी के ऊपर तैरने वाली घास-फूस या कमल के पत्तों पर ऐसे दौड़ते रहते हैं मानो भूमि पर दौड़ रहे हों। इनका भोजन पानी के कीड़े-मकोड़े हैं जिनकी तलाश में इन्हें सारा दिन जलाशयों में ही बिता देना पड़ता है।

इनकी चोंच बटान की तरह छोटी होती है और इनके पंख बहुत सुन्दर होते हैं। इनके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं। ये पेड़ों पर कभी नहीं बैठते। इन्हें जलाशयों में देखा जा सकता है। ये काफी निडर हैं, अतः इनके शिकार में कठिनाई नहीं पड़ती। ये भूमि पर भी सरलता से दौड़ लेते हैं। आवश्यकता पड़ने पर ये पानी में तैर लेते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

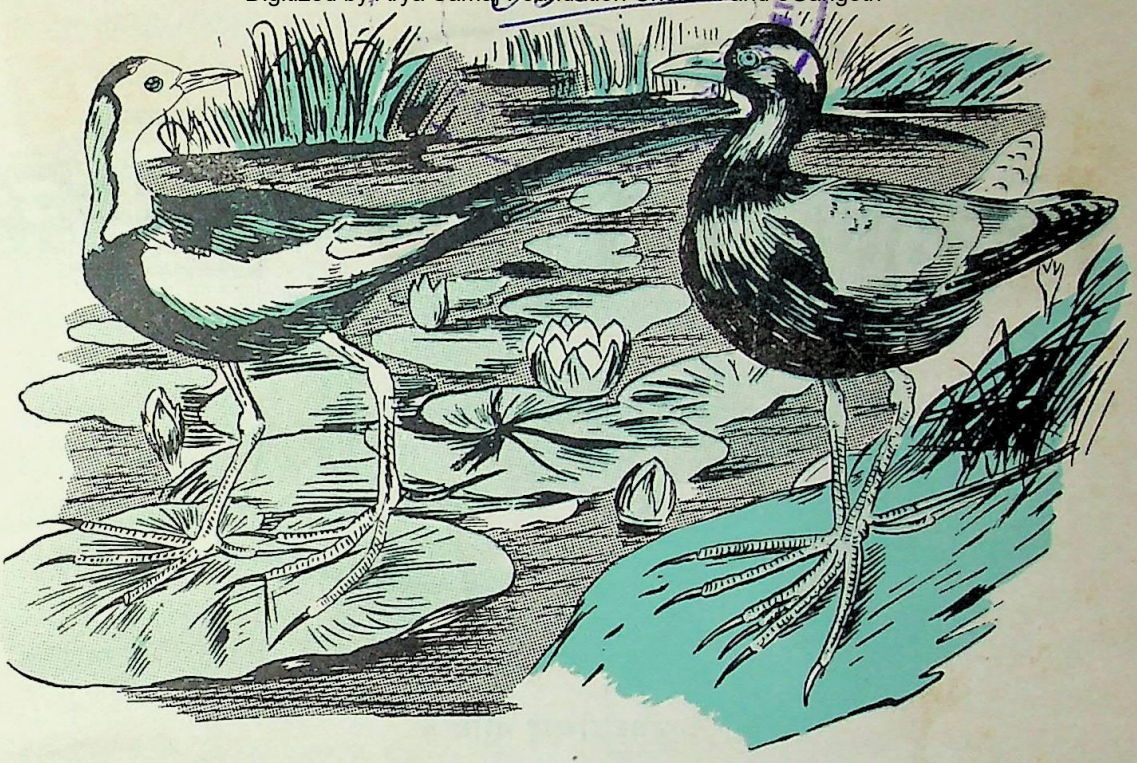

लम्बी दुम वाला और उसी के निकट खड़ा हुआ ललछौंह पंख वाला जलकपोत

और डुबकी भी लगा लेते हैं। इनकी उड़ान बड़ी निर्बल होती है। ये छोटे-बड़े झुण्डों में रहते हैं और संकट निकट देखकर 'टीं-टीं' की तेज आवाज करके उड़ जाते हैं। इनका मांस नरम और स्वादिष्ट होता है। इनका जोड़ा बाँधने का समय वर्षा-ऋतु है। मादा किसी चौड़ी पत्ती पर घास-फूस का घोंसला बनाकर प्रायः चार अण्डे देती है। हमारे यहाँ केवल दो जलकपोत पक्षी पाये जाते हैं जो जलमोर तथा जलमखानी के नाम से प्रसिद्ध हैं।

कीट, पतंगों की रंग-रुचि

सामान्यतः माना जाता है कि पुष्पों की गन्ध से ही तितलियाँ, पतंगे आदि आकर्षित होते हैं किन्तु सूक्ष्म अवलोकन द्वारा विदित हुआ है कि इनकी भी रंगों के प्रति अपनी-अपनी अलग रुचि है। मधुमक्खी सामान्यतः लाल किन्तु विशेषतः नीले पुष्पों की ओर, तितलियाँ मुख्यतः लाल, पतंगे खासकर सफेद और फीके पीले किन्तु तीव्र गन्धयुक्त पुष्पों की ओर तथा घरेलू मक्खियाँ कत्थई और लाल पुष्पों की ओर आकर्षित होती हैं।

टेप रिकार्डर की मदद लीजिए

ऐसी बस्तियों तथा कालोनी में जहाँ चोर प्रायः ही चक्कर लगाते हों, आप लेटे-लेटे ही उन्हें चक्कर में डालकर रफूचक्कर कर सकेंगे। इसके लिए दरवाजे पर कोई भी अल्सेशियन या शिकारी कुत्ता पालने की झंझट क्यों पालते हैं? किसी मौके पर कुत्तों के भौंकने और लड़ने की आवाज को अपने टेप रिकार्डर में भर लीजिए। जरा भी आहट या खटका होने पर उसे चालू कर दीजिए; कुत्ते को ही भूँकता हुआ समझकर चोर भी चालू हो जाएगा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

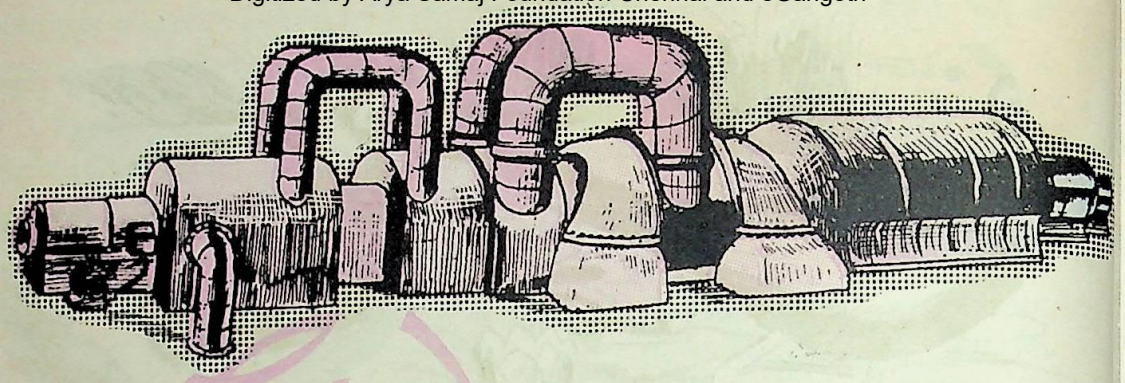

विद्युतोत्पादन के नये साधन

जगदीशचन्द्र गोविल

आज हम विद्युत-शक्ति पर इतने अधिक निर्भर हैं कि बिना बिजली के एक दिन तो क्या, कुछ घण्टे भी काम चलाना दूभर हो जाता है। जब कभी किसी शहर में थोड़ी देर के लिए बिजली चली जाती है तो कैसी परेशानियाँ पैदा हो जाती हैं। पंखे, कूलर, हीटर, रेडियो, लिफ्ट, सिनेमा और मशीनें सभी कुछ चलना बन्द हो जाता है। रात के समय तो बिजली का फेल हो जाना किसी अभिशाप से कम नहीं। मकानों, बाजारों तथा सड़कों पर अँधेरा हो जाने के कारण चारों ओर भयावह निस्तब्धता छा जाती है। विद्युत-शक्ति के बिना उद्योगों का विकास किसी भी हालत में सम्भव नहीं। निश्चय ही, विद्युत-शक्ति मनुष्य के लिए एक दैवी वरदान है।

विद्युत शक्ति प्राप्त करने के दो प्रचलित साधन हैं—एक तो साधारण अथवा वोल्टा के सेलों द्वारा तथा दूसरा, डाइनेमो अथवा जनरेटर द्वारा। साधारण सेल का निर्माण सन् १८०० के लगभग इटली के एक वैज्ञानिक एलेक्जेण्डर वोल्टा ने सबसे पहले किया था। अतः इसे वोल्टा सेल कहते हैं। साधारण सेल जस्ते सरीखे पदार्थ की ऊर्जा को रासायनिक क्रियाओं द्वारा विद्युत ऊर्जा में परिणत कर देता है। इन सेलों से थोड़ी ही शक्ति वाली विद्युतधारा प्राप्त होती है। इस कारण इनका उपयोग टार्च, बिजली की घण्टी तथा टेलीफोन आदि में ही किया जा सकता है। गाँवों में जहाँ बिजली नहीं होती, रेडियो चलाने के लिए भी साधारण शुष्क सेलों का प्रयोग किया जाता है, किन्तु थोड़े समय पश्चात् ही वे बेकार हो जाते हैं और उन्हें बदलना पड़ता है।

बड़े उद्योगों में जहाँ मशीनें चलाने के लिए प्रबल विद्युतधारा की लगातार आवश्यकता होती है, साधारण सेल सर्वथा अनुपयुक्त ठहरते हैं। अधिक शक्ति की विद्युतधारा केवल जनरेटरों से ही प्राप्त की जा सकती है। जनरेटर सरीखे विद्युत्-उत्पादकों के लिए हम माइकेल फैरेडे के आभारी हैं जिनके द्वारा सन् १८३१ में की गयी खोजों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण ही यह सम्भव हो पाया है। विद्युत जनरेटर विद्युत-चुम्बकीय उत्पादन की क्रिया के आधार पर कार्य करता है तथा यान्त्रिक ऊर्जा को विद्युत-ऊर्जा में परिणत कर देता है। जनरेटर में एक घूमने वाला भाग होता है जिसे परिभ्रमक अथवा रोटर (rotor) कहते हैं। रोटर को चलाने के लिए आवश्यक यान्त्रिक ऊर्जा वाष्प-टर्बाइनों अथवा बाँध बनाकर रोके गये पानी द्वारा चालित जल-टर्बाइनों की सहायता से प्राप्त की जाती है। छोटे पैमाने पर जनरेटरों को चालू रखने के लिए पेट्रोल या डीजल इंजन भी इस्तेमाल होते हैं। पन-बिजलीघर उन्हीं देशों में स्थापित किये जा सकते हैं जहाँ जल-शक्ति प्राप्त करना सुलभ होता है। इसके विपरीत, कोयला-सम्पन्न देशों में अधिकतर थर्मल पावर-स्टेशन ही बनाये जाते हैं।

आधुनिक युग में वाष्प-टर्बाइनों को चलाने के लिए परमाणु रीएक्टर प्रयुक्त किये जा रहे हैं। इन रीएक्टरों में परम्परागत ईंधन के बजाय यूरेनियम जैसे भारी तत्त्वों का प्रयोग किया जाता है। यूरेनियम के परमाणु में निहित ऊर्जा को नाभिकीय विखण्डन द्वारा उष्मा के रूप में विमुक्त किया जा सकता है। इस प्रकार प्राप्त उष्मा से पानी की भाप तैयार करके वाष्प-टर्बाइनें चलायी जाती हैं। यद्यपि विद्युत उत्पादन का यह तरीका सिद्धान्त रूप में कोई नया नहीं है किन्तु जनरेटरों को चलाने के लिए शक्ति प्रदान करने का यह तरीका अवश्य नया है। अधिकांश समृद्धिशाली देशों में परमाणु-बिजलीघर बनाये जाने की योजनाएँ लगभग पूरी की जा चुकी हैं। अमरीका के इलिनॉय राज्य में स्थापित परमाणु-बिजलीघर तो सन् १९६० से एक बड़े पैमाने पर विद्युत पैदा कर रहा है। भारत में भी बम्बई से साठ मील उत्तर में तारापुर नामक स्थान पर प्रथम परमाणु-बिजलीघर स्थापित करने की योजना कार्यान्वित की जा चुकी है। आशा है कि निर्माण कार्य आरम्भ हो जाने पर वह पाँच वर्ष के भीतर बनकर तैयार हो जाएगा। तब भारत में बिजली प्राप्त करने का वह सबसे बड़ा स्रोत होगा तथा उस प्रकार उत्पादित विद्युत शक्ति बहुत सस्ती भी पड़ेगी। परमाणु रीएक्टर द्वारा चालित टर्बो-जनरेटर का एक लाभ यह भी है कि इसे एक स्थान से दूसरे स्थान तक सहज ही ले जाया जा सकता है। इस कारण दुर्गम स्थानों पर बिजली का उत्पादन करके उद्योग-धन्धे स्थापित करना सरल होगा। सम्भवतः निकट भविष्य में परमाणु शक्ति वाले जनरेटर अन्तरिक्ष यानों के इंजनों में भी प्रयुक्त हो सकेंगे।

टर्बो-जनरेटरों को चलाने के लिए एक अन्य प्रकार के परमाणु रीएक्टर को प्रयुक्त करने की योजना है। उसे थर्मोन्यूक्लियर रीएक्टर का नाम दिया गया है। ये रीएक्टर हाइड्रोजन जैसे हलके तत्त्वों द्वारा परमाणु नाभिकों के परस्पर जुड़ने की संश्लेषण क्रिया

रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा विद्युतोत्पादन तथा विद्युत-संग्रह के दो उदाहरण—संचायक (accumulator) **तथा शुष्क बैटरी** (dry battery)

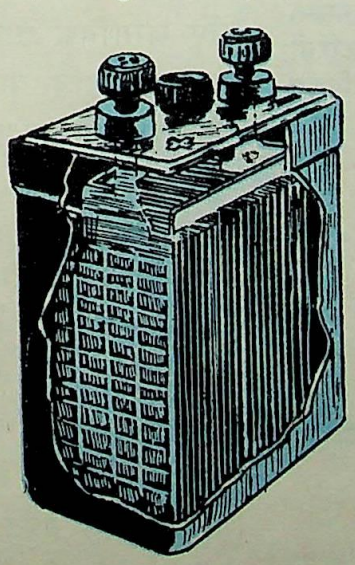

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर आधारित होंगे। नाभिकीय विखण्डन की अपेक्षा संश्लेषण क्रिया में अधिक ऊर्जा विमुक्त होती है। अतः थर्मोन्यूक्लियर रीएक्टरों की सहायता से विद्युत-शक्ति का उत्पादन बहुत अधिक बढ़ाया जा सकेगा। यद्यपि इन रीएक्टरों को व्यावहारिक रूप देना अभी तक सम्भव नहीं हो पाया है परन्तु वैज्ञानिकों को विश्वास है कि वे कुछ ही वर्षों में इस दिशा में सफलता प्राप्त कर लेंगे और तब पृथ्वी का परम्परागत ईंधन समाप्त हो जाने का भय सदैव के लिए दूर हो जाएगा।

सामान्य ईंधन, जल-शक्ति तथा परमाणु ऊर्जा से विद्युत शक्ति प्राप्त करने के साथ ही वैज्ञानिकों का ध्यान शक्ति के अक्षुण्ण भण्डार, सूर्य की ओर गया। सूर्य से अपार शक्ति, प्रकाश और उष्मा लगातार विकीरित होती रहती है। सूर्य के इस विकिरण को किस प्रकार विद्युत-शक्ति में परिणत किया जाए, यह एक समस्या थी। इस समस्या का एक सीधा हल तो यह था कि सूर्य-विकिरण को विशाल परवलयाकार दर्पणों की सहायता से एक नन्हें विन्दु अथवा स पर केन्द्रित करके अथवा किसी काली स पर उसका शोषण करके पानी की भाप तै कर ली जाए और फिर उससे टर्बो-जनरे चालू करके बिजली पैदा की जाए। फ्रा और इजराइल में सौर-शक्ति से विद्युत प्र करने का यह तरीका अपनाया भी जा है किन्तु इस प्रकार सूर्य-विकिरण का अल्प ही विद्युत-शक्ति में बदला जा सकता है।

आजकल वैज्ञानिक ऐसी बैटरी विकास करने में जुटे हुए हैं जिसकी सहाय से सूर्य के प्रकाश को सीधे ही विद्युतधारा परिणत किया जा सकता है। इसे सौ बैटरी के नाम से पुकारते हैं। व्यावहारि रूप में सौर-बैटरी का निर्माण सबसे प अमरीका की बेल टेलीफोन कम्पनी तथा की इन्स्टीट्यूट फॉर सेमी-कण्डक्टर्स किया था। ये बैटरियाँ सूर्य-विकिरण विद्युत के अर्द्धचालकों की सहायता से विद्यु धारा में परिणत कर देती हैं। अर्द्धचालक पदार्थ होते हैं जिनकी विद्युत-संवाहक चालक और पृथक्कारी के बीच होती है—जैसे जर्मेनियम, कॉ मियम सल्फाइड तथा सिलिक आदि। सौर-सेल के निर्माण लिए आर्सेनिक तथा बोरॉन सामान्य अशुद्धि वाला सिलिक ही सबसे उपयुक्त पाया गया है इसके लिए शुद्ध सिलिकॉन क्रिस्टल में ठोस-विसरण-रीतिद्वा आर्सेनिक या बोरॉन की अत्य थोड़ी-सी मात्रा मिला देना पर्याप्त होता है। आर्सेनिक यु सिलिकॉन, बोरॉन युक्त सिलिक से भिन्न होता है। आर्सेनिक मि सिलिकॉन में बहुत से इलेक्ट्र स्वतन्त्र हो जाते हैं। इस कार

तीन टन कोयला जितनी ऊर्जा दे सकता है, उतनी ऊर्जा केवल एक एकड़ भूमि पर गिरती हुई सूर्य-रश्मियाँ सुबह से शाम तक हमें दे जाती हैं। इस हिसाब से समस्त भू-मण्डल पर आती हुई सौर-ऊर्जा के समकक्ष ऊर्जा उत्पादित करने के लिए ४×१००^{२१} टन कोयला प्रतिदिन चाहिए। इसका अर्थ है, आज के प्राप्य भूमिगत कोयले और पेट्रोलियम के समस्त भण्डार का शीघ्र समाप्त हो जाना! अतः वैज्ञानिकों ने सौर-बैटरियों (चित्र में प्रदर्शित) का आविष्कार करके सीधे ही सौर-ऊर्जा से विद्युत उत्पादित करने में सफलता प्राप्त कर ली है

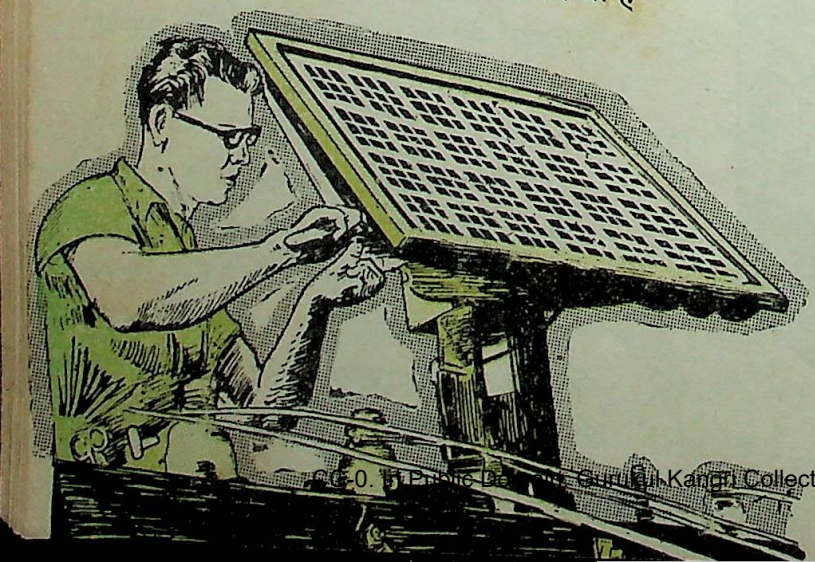

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसे n—सिलिकॉन कहते हैं। बोरॉन की अशुद्धि वाले सिलिकॉन में बहुत से धनावेश स्वतन्त्र रहते हैं जिसके कारण उसे p—सिलिकॉन कहते हैं। वैसे दोनों ही दशाओं में सिलिकॉन का सम्पूर्ण क्रिस्टल पूरी तरह आवेश-रहित रहता है।

सौर-सेल का निर्माण करने के लिए n और p दोनों प्रकार के सिलिकॉन का प्रयोग किया जाता है। सेल का भीतरी भाग n—सिलिकॉन का तथा बाहरी भाग p—सिलिकॉन का बना होता है। ये भाग क्रमशः सेल के ऋण तथा धन इलेक्ट्रोड की तरह कार्य करते हैं। उस सतह के जहाँ दोनों प्रकार के सिलिकॉन एक-दूसरे को स्पर्श करते हैं p—n जंकशन कहते हैं। यह सेल एक पतले वेफर जैसी लगती है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई सिलिकॉन के क्रिस्टल के आकार पर निर्भर करती है। प्रायः यह लम्बाई में ६ से. मी. तथा चौड़ाई में १½ से. मी. से अधिक नहीं होती। इसकी मोटाई एक मि.मी. के लगभग होती है जिसमें p—सिलिकॉन की तह केवल ·००२ मि.मी. ही मोटी रखी जाती है ताकि सूर्य की किरणें p—n जंकशन तक प्रविष्ट हो सकें। सेल से बाहर किसी सर्किट में विद्युतधारा प्राप्त करने के लिए सेल के भीतरी और बाहरी भागों में टाँका लगाकर अलग-अलग तार जोड़ दिये जाते हैं। सैकड़ों सेलों को शृंखला-बद्ध करके सौर-बैटरी बना ली जाती है।

सेल की सुप्त अवस्था में स्वतन्त्र ऋण तथा धन आवेश समान रूप से सम्पूर्ण सेल पर फैले रहते हैं किन्तु जब सूर्य का प्रकाश उन पर पड़ता है तब सेल उत्तेजित हो उठती है। प्रकाश फोटॉन द्वारा प्रेरित p—n जंक्शन के समीप से ऋण तथा धन आवेश निकलकर क्रमशः n तथा p भागों में इकट्ठा होने लगते हैं। इस दशा में सेल के बाहरी परिपथ को पूर्ण कर देने पर उसमें इलेक्ट्रॉन की धारा बहने लगती है। वह उस समय तक बहती रहती है जब तक कि सेल पर पड़ने वाला प्रकाश हटा न लिया जाए। सिलिकॉन की प्रत्येक सेल का वोल्टेज ·३३ और आन्तरिक प्रतिरोध लगभग २ ओह्म (Ohm) के बराबर होता है। इस सेल के प्रति वर्ग मीटर खुले भाग से ११६ वाट विद्युत-शक्ति प्राप्त होती है। खुले स्थानों में प्रत्येक वर्ग मीटर सतह पर सूर्य की सीधी पड़ती हुई किरणों द्वारा १०८० वाट तक शक्ति हमें मिल सकती है। इस हिसाब से सिलिकॉन-सेल सूर्य-ऊर्जा के केवल १०·७ प्रतिशत भाग को विद्युत-शक्ति में परिणत कर पाती है। सैद्धान्तिक रूप से सिलिकॉन सेल की कार्यदक्षता २१·७ प्रतिशत होनी चाहिए किन्तु व्यावहारिक रूप में यह केवल १०·७ प्रतिशत तक ही पहुँच पायी है।

रूस तथा अमरीका में सिलिकॉन-बैटरियों को टेलीफोन तथा अन्य छोटे यन्त्रों को चलाने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है। वहाँ ऐसे रेडियो सेट भी बनाये गये हैं जिन्हें दिन में सौर-बैटरियों द्वारा तथा रात में सिलिकॉन-बैटरियों द्वारा चलाया जा सकेगा। अन्तरिक्ष में छोड़े गये मानव-निर्मित उपग्रहों पर लगाये विद्युत-चालित यन्त्रों के परिचालन के लिए ये बैटरियाँ प्रयुक्त की जा चुकी हैं। इन्हीं बैटरियों द्वारा उपग्रहों के यन्त्रों को लम्बे समय तक चालू रखना सम्भव हो पाया है। अमरीका के एक्सप्लोरर-६ नामक उपग्रह पर लगे चार पैडलों में आठ हजार सिलिकॉन सेलें फिट की गयी थीं। सौर-बैटरियाँ बहुत हलकी होती हैं तथा इनमें न तो रोटर जैसा कोई घूमने वाला भाग होता है और न कोई तेज रासायनिक घोल की ही इनमें आवश्यकता होती है। सूर्य के प्रकाश द्वारा बरसों तक इनसे विद्युत शक्ति प्राप्त की जा सकती है। [क्रमशः]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

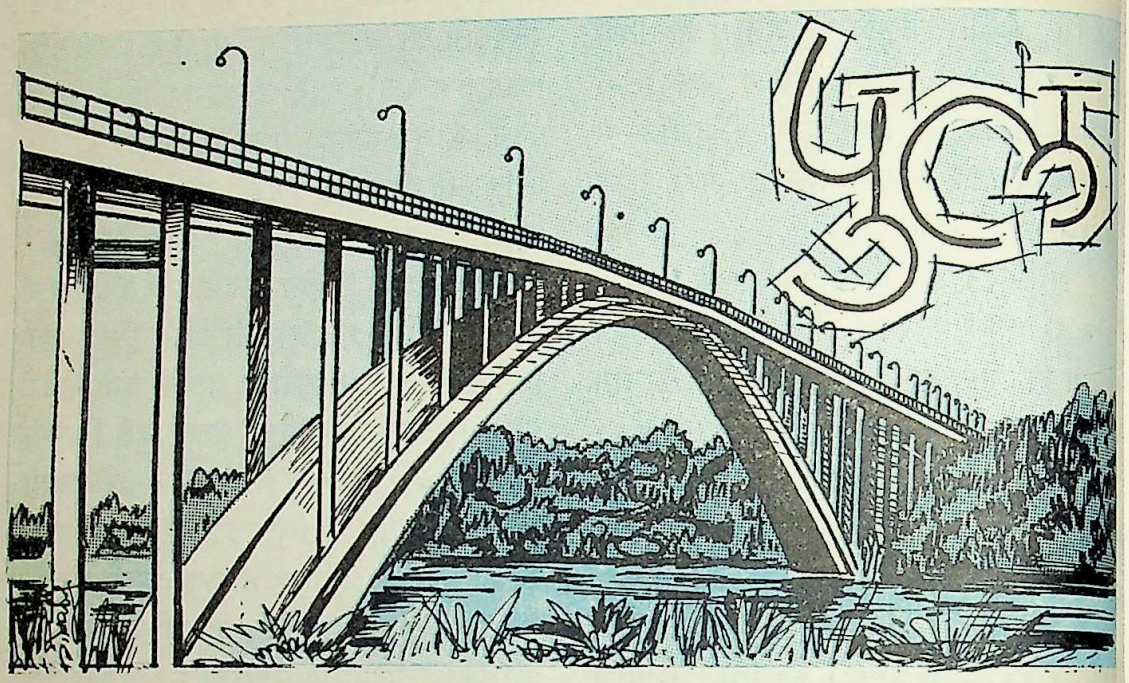

डा. नरेन्द्रमोहन बंसल

प्रारम्भ में पुल बनाये नहीं गये, स्वयं ही बनते चले। प्रकृति अपना काम करती रही। कहीं पेड़ का लट्ठा गिरा, कहीं हवा-पानी ने चट्टानों को काट-छाँटकर, घिसकर एक पतली मेहराब बना दी तो कहीं दो किनारों के वृक्षों की लताएँ फैलती-बढ़ती एक झूले के रूप में बन गयीं। इस प्रकार इस प्राकृतिक पुलों में ही मानव को शहतीर (beam), मेहराब (arch) तथा झूलते हुए (suspension) पुलों के प्रारूप मिल गये।

आवश्यकता-जन्य आविष्कार

आवश्यकता सदैव ही आविष्कार की जननी रही है। आदिकाल के मानव को शिकार की खोज में दूर-दूर भटकना पड़ता था। जंगल-जंगल घूमते हुए प्रायः ही झरने, नाले और कहीं-कहीं ऐसी नदी से भी सामना पड़ जाता था जिसे वह तैरकर पार न कर सके। तब जहाँ, जैसे उसका वश चलता, वह अपना काम निकाल लेता था। कहीं लट्ठे पर ही बैठकर तैर जाता था तो कहीं पेड़ को काट-गिराकर दोनों किनारे मिला लेता था। यों प्रकृति के पश्चात् पुल बनाने वाला पहला मानव वही होगा जिसने पेड़ काटकर उस पर से नदी-नाला पार किया होगा।

कांस्य-युग आते-आते मानव एकाकी तथा भटकने वाले जीवन को काफी पीछे छोड़ कर समूह में जहाँ-तहाँ अपने ठिकाने से जम कर रहने लगा था। वह सोचने लगा था कि नदी-नाले पार करने के पुराने ढंग स्थायी तथा सुविधाजनक नहीं। अतः वह बड़े-बड़े लट्ठों के अतिरिक्त शिलाखण्डों को भी काम में लेने लगा और कहीं-कहीं लताओं को बटकर रस्सेनुमा बनाकर उन पर झूलता हुआ निकलने लगा। अधिक पुरानी नहीं और प्राप्त प्राच्यावशेषों के आधार पर लगभग ६००० वर्ष पूर्व की बात करें तो ज्ञात होगा कि युग-प्रति युग पुल बनाने के लिए मानव वे ही साधन काम में लाता रहा है जो उस काल में उपलब्ध थे। इस प्रकार सर्वप्रथम काष्ठ, तत्पश्चात् पत्थर और अन्त में शताब्दियों पश्चात् १९वीं शताब्दी के आरम्भ में लोहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपयोग में आता रहा। इस्पात और सीमन्ट तो २०वीं सदी की देन हैं।

पूर्वकाल में पुल-निर्माण की कला अविकसित रूप में रही होने के कारण पुल बनाने में सूक्ष्म गणनाओं को अवकाश नहीं था और केवल सफल-असफल प्रयोगों पर ही सब कुछ निर्भर था। अतः युगों पुराने पुलों में सुरक्षित रहे आने के उदाहरण बहुत कम हैं और वे ध्वस्त भी हो चुके हैं। बेबीलोन की खुदाई में ६००० वर्ष पुराने पुलों की मेहराबें मिली हैं जो ईंट और पत्थरों की बनी हैं। लगभग २२०० वर्ष पूर्व का एक पुल ईंटों का बना ऐसा भी मिला है जो ६०० फुट लम्बा है और बेबीलोन में यूफ्रेटिस नदी के ऊपर बनाया गया था। अमरीका का मेरीलैण्ड पुल, पत्थर का बना, ६१२ फुट लम्बा, आज १०० वर्ष पुराना हो जाने पर भी वैसा ही काम दे रहा है जैसा आरम्भ में देता था। इस पुल का निर्माण जॉन मैक कार्टने (John McCartney) नामक आइरिश इंजीनियर को सौंपा गया था। उसने बड़ी चतुराई से दूर-दूर तक खोजकर ऐसे कारीगर जुटाये जो अपने काम में सानी नहीं रखते थे। जब यह पत्थर का पुल बनकर तैयार हुआ तब बड़े-बड़े इंजीनियर यह देखकर स्तब्ध रह गये थे कि पत्थर का होते हुए भी उस पुल में और कागज पर दिखाये गये प्लान में पाव इंच का भी अन्तर नहीं था!

ऐसे पत्थर के पुलों में दृढ़ता और स्थायित्व पूरा होने पर भी तीन बड़ी असुविधाएँ सामने आती हैं—अत्यधिक लागत, इधर-उधर खिसकाने की गुंजाइश का अभाव तथा खम्भों के बीच का स्थान अचल रहने से कभी बड़े जहाज आदि के निकलने की असम्भावना।

जैसे प्रयोजन, वैसे पुल

विभिन्न प्रयोजनों के अनुसार पुलों को मुख्यतः निम्न प्रकारों में बाँटा गया है:

जलवाहक पुल (acqueducts); घाटियों के मध्य का पुल (viaducts); व्यस्त मार्गों के ऊपर का पुल (road and rail bridges) आदि तथा ऐसे भागों को जोड़ने

जल और वायु अपने प्रभाव से मानव के लिए असम्भवप्राय कैसे विलक्षण रूप पृथ्वी और पर्वतों को दे सकते हैं, इसके अनेक उदाहरणों में से एक यह है—प्राकृतिक पुल

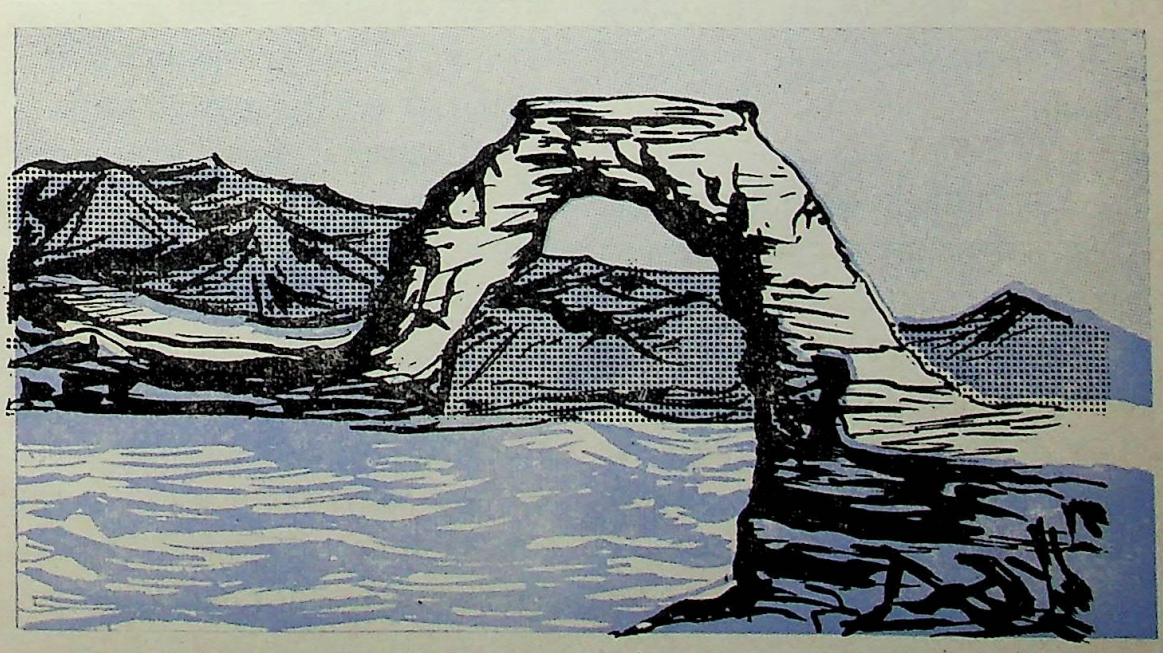

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज भी प्रचलित और अति सामान्य प्रकार का, केवल पेड़ के तने का पुल

वाले पुल जो मार्ग अथवा विभिन्न रुकावटों के कारण परिवहन के योग्य न हों। इस प्रकार साधनों की दृष्टि से भी पुलों का यह विभाजन किया गया है—लकड़ी का पुल, ईंट-पत्थर का पुल, सीमेन्ट का पुल, लोहा, इस्पात, एल्यूमीनियम तथा कन्क्रीट का पुल। विभिन्न आकृतियों के अनुसार भी विभाजन किया गया है। यथा—शहतीर (beam) का, कैंचीनुमा (trusses), मेहरावयुक्त (arch), झूलता हुआ (suspension), तथा तैरता हुआ (floating)।

पुल बनाने से पहले

ऊपर गिनाए हुए प्रकारों में शहतीर का पुल ही प्रारम्भिक पुल का प्रतीक है। जैसा कि आरम्भ में कहा गया है, आदि-मानव ने पेड़ का तना काट-गिराकर झरने या नाले को पार किया था। उन दिनों शहतीर लकड़ी के ही हुआ करते थे। लोहा, इस्पात, सीमेन्ट और कन्क्रीट तो बहुत बाद में आये हैं। शहतीर चाहे कैसा भी हो, यह समझना आवश्यक है कि उस पर भार या दबाव पड़ने की क्या प्रतिक्रिया होगी। यह एक सरल प्रयोग द्वारा समझा जा सकेगा। रबर की एक मोटी पट्टी का टुकड़ा चित्र में दिखाए अनुसार उसे दो पुस्तकों का पुल-सा बनाकर बीच में रख दीजिए। अब उसे जरा दबाइए। आप देखेंगे कि ऊपर की सतह दबाव के कारण नीचे की ओर झुक गयी है तथा नीचे की सतह तनाव के कारण बाहर की ओर खिंच आयी है। स्पष्ट है कि ऊपर की सतह पर दबाव अर्थात् कम्प्रेशन (compression) तथा नीचे की सतह पर खिंचाव अर्थात् टेन्शन (tension) पड़ रहा है अतः पुल बनाने से पहले इन्हीं दो प्रतिक्रियाओं की गणना करनी पड़ती है।

रबर के इस टुकड़े में आप यह भी देखेंगे कि मोटाई में ऊपर से नीचे की ओर दबाव घटता-घटता एक ऐसी रेखा पर पहुँचता है जहाँ न तो ऊपर का दबाव रहता है, न नीचे का खिंचाव ही। उस मध्य रेखा को शून्य अथवा तटस्थ रेखा कहते हैं। वहीं से नीचे के खिंचाव की सीमा शुरू हो जाती है।

इस प्रकार हमने देखा कि शहतीर पर अधिकतम दबाव ऊपरी तथा निचली सतह पर ही पड़ता है। अतः दो शहतीरों को बीच में एक अवलम्ब द्वारा H के आकार में जोड़ कर और भी अधिक मजबूती प्राप्त की जा सकती है। एक तथ्य यह भी है कि एक चौड़ी प्लेट जितना भार खड़ी अवस्था में सह सकती है, लेटी अवस्था में उसका अत्यन्त अल्पांश सह सकेगी। जहाँ अधिक लम्बे शहतीर उपलब्ध नहीं होते, वहाँ त्रिभुजाकार अर्थात् कैंचीदार रचना का आश्रय लेना पड़ता है। उदाहरणार्थ एक दफ्ती से तीन समान पट्टियाँ काटकर उन्हें एक त्रिकोण के रूप में पिनों द्वारा कस लीजिए। आप देखेंगे कि उस त्रिकोण आकृति में काफी मजबूती आ जाएगी और कोणों पर दबाव या खिंचाव भी दिया जा सकेगा। कैंची के इस सिद्धान्त पर पुल बनाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रथम प्रयोग इटली के इंजीनियर आन्द्रे पैलेदियो (Andre Palladio) ने १७वीं शताब्दी में किया था। पैलेदियो का पुल-निर्माण में गणित-ज्ञान उसके पश्चात् तीन शताब्दियों तक अप्रतिम रहा था, क्योंकि इटली के बैसेनो (Bassano) नगर के निकट उसका बनाया हुआ १०८ फुट लम्बा कैंचियों का पुल आज भी अच्छी हालत में है। एक बात यह भी है कि तत्पश्चात् ३०० वर्षों तक पुनः कैंची का पुल बनाने का साहस किसी ने किया ही नहीं।

झूलते पुल, भारत की देन

दक्षिण अमरीका, अफ्रीका और पूर्वीय एशिया, विशेषतः भारत ने झूलते हुए पुलों की पहल की है। इसका प्रारम्भिक रूप केवल एक रस्से से टोकरी या पिंजरा लटकाकर नदी पार करने का था। तत्पश्चात् दो समान्तर रस्सों के सहारे एक लम्बा तख्ता लटकाया जाने लगा। आधुनिक झूलते (suspension) पुल का प्रारूप भी वही था। बाहुधरन अर्थात् कैन्टीलीवर (cantilever) पुलों की भी सूझ देने में भारत का बड़ा हाथ रहा है। कलकत्ते का हावड़ा पुल १९५० तक बने हुए विश्व-प्रसिद्ध बाहुधरन पुलों में तृतीय स्थान पर रहा है।

ये विश्व-प्रसिद्ध पुल

पुल-निर्माण में रोमन शासकों का सर्वाधिक भाग रहा है। उनके बनाये हुए लकड़ी और पत्थरों के कुछेक पुल तो २००० वर्ष पुराने होते हुए भी आज अपना गौरव सुरक्षित रखे हुए हैं। अकेले रोम नगर में टाइबर नदी पर उनके बनाये हुए आठ पुलों में से छः आज भी देखे जा सकते हैं। इनमें पान्ते द आगस्टो (Ponte de Augusto) नामक पुल अत्यन्त प्रसिद्ध है।

मध्य युग के पुल

रोमन काल के पश्चात् १२वीं शताब्दी से १६वीं शताब्दी तक पुल-निर्माण के शास्त्रीय ज्ञान पर पादरियों का आधिपत्य रहा। उनके द्वारा बनाये गये कहीं लकड़ी के, कहीं पत्थर के पुलों में से अनेक तो काफी प्रसिद्ध हैं। लन्दन के आधुनिक पुल से पहले जो पुल बनाया गया था वह ६०० वर्ष तक अत्यन्त लोकप्रिय रहा था। चेकोस्लोवाकिया के प्रेग स्थित कार्ल्सब्रुक (Karlsbrucke) पुल को तैयार होने में १५० वर्ष लगे थे!

१८वीं शताब्दी के पुल

यह युग वैज्ञानिक जागृति का था, अतः पुलों के निर्माण में वैज्ञानिकता, गणना और सूझ-बूझ का बाहुल्य रहा। १७४७ में सम्राट १५वें लुई के संरक्षण में विश्व की प्रथम निर्माण-शिक्षण संस्था (engineering school) जिसकी अध्यक्षता में खोली गयी वह था जीन पेरानेट (Jean Perronet) जिसे आधुनिक पुल निर्मायकों का पिता कहा जाता है। पेरिस स्थित पान्ते द ला कान्कार्ड (Ponte de la Concorde) उसी का बनाया हुआ पुल अपने युग का सर्वश्रेष्ठ पुल माना जाता था। उसी कोटि का इंजीनियर ब्रिटेन का जॉन रेनी (John Rennie) था जिसके बनाये हुए दो प्रसिद्ध पुलों—टेम्स नदी पर वाटरलू पुल तथा न्यू लन्दन ब्रिज—में से यह न्यू लन्दन ब्रिज उसके पुत्र ने पूरा किया था।

आधुनिक पुल

आधुनिक पुलों में बाहुधरन आकृति के पुल अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। विश्व का सर्वप्रथम बाहुधरन पुल १८६७ में जर्मनी की मेन नदी पर बनाया गया। तब से इस कार्य की गति बढ़ती चली और १८८२-८९ में सर जॉन फाउलर (Sir John Fowler) तथा सर बेन्जामिन बेकर (Sir Benjamin Baker) द्वारा स्काटलैण्ड में फोर्थ नदी पर बनाया गया १७०० फुट लम्बा फर्थ ब्रिज १९५० तक विश्व का अद्वितीय पुल माना जाता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

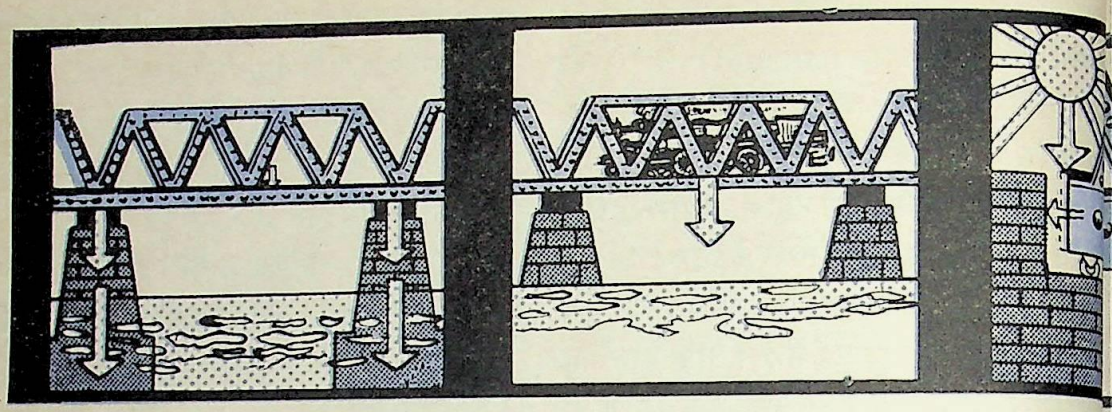

पुल के खम्भों पर पड़ने वाले विभिन्न दबाव (बायें से दायें)—स्वयं पुल के ढाँचे ट्रेन अ
सूर्य ताप के द्वारा धातु-प्रसारण के फलस्वरूप उत्पन्न खिंचाव तथा ट्रेन के भार उत्पन्न

सबसे लम्बा पुल होने का भी इसका रिकार्ड २८ वर्षों तक अक्षुण्ण रहा। १९२७ में कनाडा का सेन्टलारेन्स नदी पर बनाया गया क्वेबेक ब्रिज अपनी १८०० फुट लम्बाई का अजेय अग्रस्थान आज भी बनाये हुए है। इस पुल के निर्माण के पीछे घोर परिश्रम, निराशा में आशा, निरुत्साह में उत्साह और दो-दो बार अन्तिम घड़ी पर टूट गिरने तथा असंख्य प्राणों की बलि ले लेने की लम्बी कहानी है। संक्षेप में यही कि १९०७ के प्रथम प्रयास में ८२ और १९१६ के द्वितीय प्रयास में १२ प्राणों की बलि लेकर १९१७ के तृतीय प्रयास में यह खड़ा किया जा सका था।

कोठियों का प्रथम उपयोग

पुलों के खम्भे बनाने के दरम्यान पानी को अलग रखे रहने के लिए कोठियों (caissons) का उपयोग सर्वप्रथम अमरीका के कैप्टन जेम्स ईड्ज (Captain James Eads) ने सेन्ट लुई के निकट मिसीसिपी नदी पर किया। उसने नदी में १०० फुट की गहराई तक कोठियाँ उतारकर खम्भे खड़े करने का नया प्रयोग प्रस्तुत किया। उस प्रयोग की अद्भुत सफलता इससे आँकी जा सकती है कि १९१५ में बनाया गया न्यूयार्क का विश्व-प्रसिद्ध ३ मील लम्बा हैलगेट ब्रिज न्यूयार्क और न्यू इंग्लैण्ड को जोड़ता है। इसकी इस्पात की मेहराब ९७७ फुट लम्बी है और पानी की सतह से १४० फुट ऊँचे इस पुल पर रेल-गाड़ियाँ धड़धड़ाती हुई निकली चली जाती हैं।

उठने-घूमने वाले पुल

अनेक बार किन्हीं खास पुलों के नीचे से छोटे-बड़े जहाजों को भी गुजरने की आवश्यकता पड़ जाती है। ऐसे स्थलों पर खुलने, उठने अथवा घूमनेवाले पुल काम आते हैं। ये कई प्रकार के होते हैं। कहीं तो बीच में से दोनों

यह है कलकत्ता हावड़ा
बाहुधरन पुलों Cant

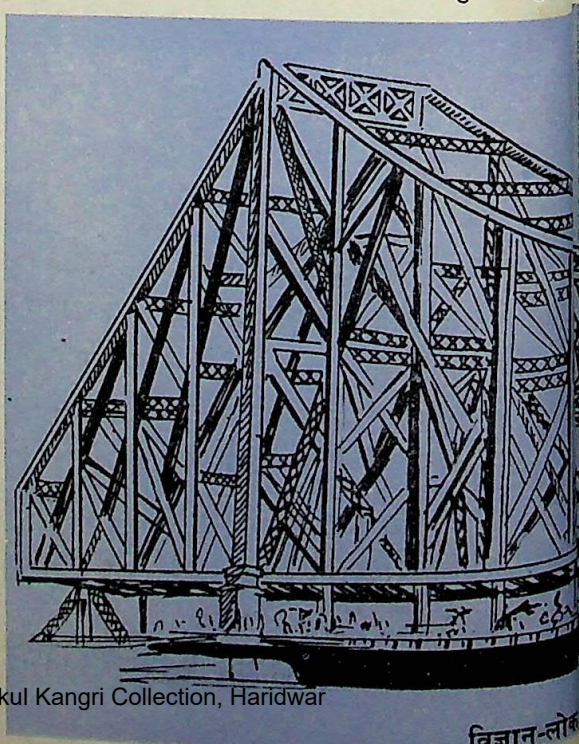

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

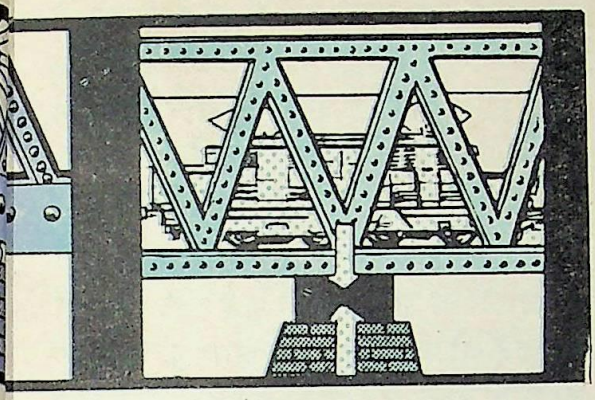

ट्रेन आदि वाहनों का भार ;
उत्पन्न दबाव तथा खिचाव

हिस्से थोड़ी लम्बाई तक ऊपर उठाये जाते हैं, कहीं एक भुजा ऊपर उठायी जाती है और कहीं एक भुजा को क्षैतिज अवस्था में त्रिज्या की भाँति घुमा दिया जाता है। उठनेवाले पुलों में लन्दन का पुल प्रसिद्ध है। इसी प्रकार पेन्सिलवेनिया (अमरीका) का न्यूयार्क ब्रिज १३५ फुट ऊँचा केवल १ मिनट में उठ आता है।

झूलनेवाले पुल

इनमें प्रारम्भिक पुलों का एक उदाहरण हरिद्वार का प्रसिद्ध लक्ष्मण-झूला कहा जा सकता है। आधुनिक पुलों में बीच-बीच में कैंचियाँ इस प्रकार लगायी जाती हैं कि पुल पर पड़ता हुआ भार एक ही स्थल पर केन्द्रित न होकर दोनों केबुलों पर बँटता रहे। यद्यपि ऐसे पुल निर्माण-कौशल के प्रभाव से झूलते या हिलते नहीं दिखते, किन्तु वास्तव में तरंगों और प्रकम्पनों से ये पुल प्रभावित होते ही रहते हैं। इसीलिए विशेषत: झूलते हुए पुलों पर किसी भी सैनिक टुकड़ी को कदम मिलाकर चलने नहीं दिया जाता। ऐसे पुलों में विश्व-प्रसिद्ध पुल हैं—जॉर्ज वाशिंगटन ब्रिज, न्यूयार्क; डिला वेयर ब्रिज, फिलाडेल्फिया; गोल्डन गेट ब्रिज, सानफ्रान्सिस्को तथा ओकलैण्ड ब्रिज, सानफ्रान्सिस्को।

सीमेन्ट के पुल

सीमेन्ट-कन्क्रीट के पुल अपनी अप्रतिम मजबूती और आकर्षक रूप के लिए अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध हो रहे हैं। इंग्लैण्ड के फ्लफ स्टेड तथा वाटरलू ब्रिज तो प्रसिद्ध हैं ही, भारत में भी नवनिर्मित अनेक ऐसे पुल अत्यन्त आकर्षक हैं। ●

हावड़ा पुल। १९३८-४३ में निर्मित यह पुल १९५० तक लम्ब विस्तार के Cantilever Bridges) में संसार में तृतीय स्थान पर (1500 ft. Span) था

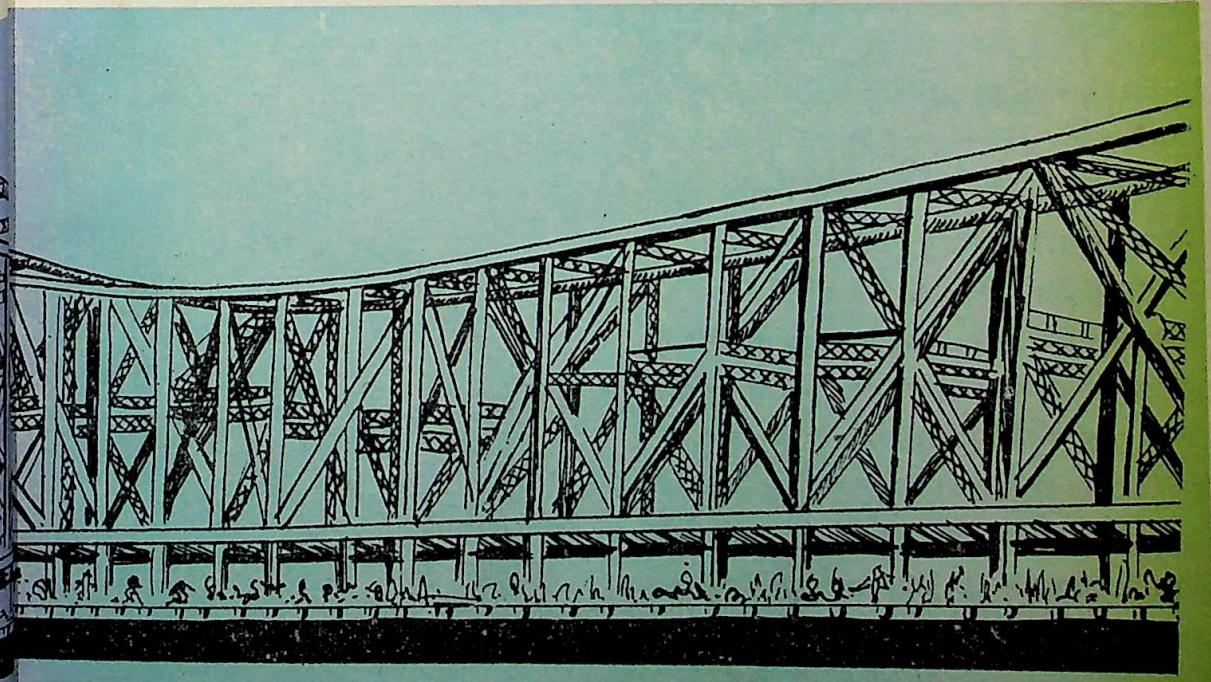

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

यों चम्मच का आविष्कार हुआ

आविष्कारक था फ्रान्स का सम्राट् हेनरी तृतीय (१५५१-१५८९)। उसे अपने दूधिया सफेद कालर का बहुत खयाल और शौक था। उस पर उसे एक दाग भी सहन न था। खाने के समय वह प्रायः ही संकट में पड़ जाता था जब कि उँगली से खाते-पीते एकाध बूँद कालर पर टपक जाया करती थी। इसके लिए उसने अपने रेस्तराँ के मालिक को टीन का एक ऐसा काँटा बनाने को सुझाया जिसका सिरा मोड़कर उससे खाना खाया जा सके। वस्तु बहुत ही नगण्य होने पर भी सम्राट का मान रखने के लिए उसने अपने लोहार से वैसे १२ काँटे बनवा दिये। संयोगवश उन काँटों ने अपेक्षित उद्देश्य पूरा कर दिया और उसी क्षण से मानो खाद्य-विज्ञान में चम्मच के आविष्कार ने एक नयी क्रान्ति ला दी!

दो बाप का बेटा!

हर किसी के लिए यह एक मोटी गाली हो सकती है किन्तु सृष्टि में एक जीव ऐसा भी है जो अपनी पहचान इसी प्रकार करा सकता है। वह है, जावा में पाया जानेवाला सिमिटार बैबलर (Simitar Babbler) नामक पक्षी। यह जिस घोंसले में पैदा होता है उसके मालिक सदैव ही एक मादा और दो नर होते हैं। प्रकृति का यह वैचित्र्य अब भी वैज्ञानिकों के लिए अबूझ है। वहाँ के निवासी निस्संकोच इसका परिचय देते हुए कहते हैं—'इस पक्षी की माँ हमेशा दो पति रखती है!'

खारी झील, मीठा भी!

राजस्थान (भारत) की साँभर झील नमक उत्पादन के लिए संसार-प्रसिद्ध है। प्रतिवर्ष अक्टूबर से मई, आठ मास तक लगभग दो लाख टन नमक देने के पश्चात् जून से सितम्बर तक के चार महीने उसका खारापन मानो अन्तर्ध्यान हो जाता है। वे चारों महीने चतुर्मास अर्थात् भरपूर वर्षा के दिन होते हैं जबकि अरावली की गिरिमालाओं से नद-नदी उफन-उफनकर इसे छलाछल कर देते हैं। उन दिनों इसका पानी शुद्ध और मीठा हो जाता है जो पीने तथा कृषि आदि अन्य अनेक कार्यों में आता है। इसका यह क्रम आज-कल से नहीं, युग-युगों से चल रहा है!

चार पौण्ड प्रतिदिन बढ़ता है

ब्रिटेन में अतलांतिक के सागर-तटों पर सील (Seal) नामक स्तनपायी प्राणियों की भरमार रहती है। भारी-भरकम काया वाले इन प्राणियों को समुद्री गाय भी कहा जाता है। बड़े होने पर इनके शरीर के रोयें भूरे रंग के हो जाते हैं किन्तु बाल्यावस्था में दूधिया सफेद रहते हैं। जन्म के समय इनका बछड़ा केवल ३० पौण्ड वजन का होता है। माँ का दूध चरबीप्रधान तथा अत्यन्त गरिष्ट होने के कारण बछड़ा उसे पीते-पीते इस तरह मोटा होता जाता है कि प्रतिदिन लगभग चार पौण्ड बढ़ते-बढ़ते तीन सप्ताह पश्चात् समुद्र में स्वतन्त्र विचरने लायक होता है, तब तक १०० पौण्ड का हो जाता है! वैज्ञानिकों का कहना है कि दूध पीकर यह बछड़ा गुब्बारे की तरह फूलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन भारत के स्टेनो

उनके आगे आज के स्टेनो कुछ भी नहीं। आज के स्टेनो की भाँति मेज-कुर्सी, गद्दी-डेस्क तथा कापी और फिसलने वाली सुन्दर पेन-पेन्सिल जैसा उनके पास कुछ भी नहीं होता था फिर भी उनकी विलक्षणता को पाना आज भी सहज नहीं। उन दिनों उनके बॉस अर्थात् सेठ-साहूकार, महाजन आदि व्यापार के सिलसिले में एक स्थल से दूसरे स्थल तक तेज ऊँटनी, घोड़ी, या पालकी में सवार, चलते जाते थे और उनके स्टेनो को ताड़पत्रों पर लोहे की कील आदि से संकेत-भाषा में उनके आदेश दौड़ते-दौड़ते अंकित करने पड़ते थे। उन्हें पारिश्रमिक भी मील-दर-मील की यात्रा के हिसाब से मिलता था !

भौगोलिक वैचित्र्य

ग्रेट ब्रिटेन के ये देश हैं अथवा कैलेण्डर ? वेल्स के चारों ओर १२ द्वीप हैं (वर्ष के १२ मास); इंग्लैण्ड के चारों ओर २४ द्वीप हैं (वर्ष के २४ पखवारे); आयरलैण्ड के चारों ओर ५२ द्वीप हैं (वर्ष के ५२ सप्ताह) और स्काटलैण्ड के चारों ओर ३६५ द्वीप हैं (वर्ष के ३६५ दिन) !

अनेक आँखों वाली बाला

रोजा कुलेशोव ऐसी ही सोवियत बाला है जिसके शरीर में न दिखनेवाली किन्तु सब कुछ दिखाने वाली आँखों की गिनती ही नहीं ! मास्को की बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएँ उसकी जाँच करने में व्यस्त हैं। प्रयोगकर्ताओं ने पाया है कि यह बाला रंगों और अक्षरों की पहचान जीभ के तथा हाथ-पाँव की उँगलियों के अग्रभाग से स्पर्श द्वारा कर लेती है। सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात परीक्षकों ने यह भी ज्ञात किया है कि इसकी उँगलियों के अग्रभाग में प्रति वर्ग मिलीमीटर, दस प्रकाश-संवेदक तन्तु हैं जो इसे यह विलक्षणता प्रदान किये हुए हैं।

यह फिल्म-हीरो कुत्ता

'लार्ड राय' इस कुत्ते का नाम है और फिल्म-ऐक्टिंग इसका काम। यह कुत्ता होते हुए भी दिखाना चाहता है कि छोटे-छोटे प्राणी इससे मित्रता गाँठकर, इसके निकट निश्शंक खेलते रह सकते हैं। इस समय यह एक छड़ी को मुँह में दबाए, अपने दोनों कपोत-मित्रों को सैर कराने निकला है। दोनों कबूतर ऐसे बेखटके बैठे हैं मानो अपने नीड़ के निकट किसी टहनी पर मस्त टिके हों।

आइन्स्टीन गणित में फेल थे !

बे-पर की नहीं, बड़े पते की बात है यह ! जिस संसार-प्रसिद्ध, अप्रतिम गणितज्ञ आइन्स्टीन को आगे चलकर न्यूटन और कोपर्निकस जैसी विश्व-विभूतियों के समकक्ष स्थान मिलने को था, वह सोलह वर्ष की आयु में ज्यूरिक की फेडरल पॉलीटेकनीक कालेज की प्रवेश-परीक्षा के गणित विषय में बुरी तरह फेल होकर रह गया था। दूसरे वर्ष रटाई का आसरा लेकर, घोट-घाटकर कहीं पास हो पाया था !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब हम शुक्र ग्रह में चोर

द्रोणवीर कोहली

हाँ, यह संयोग ही था कि सुन्दर को 'मान्धाता' अन्तरिक्ष-यान में यात्रा करने का अवसर मिला।

चन्द्रमा पर स्थापित अड्डे से उड़ान भरकर 'मान्धाता' अपनी यात्रा के दूसरे चरण में आकाश की अनन्त, असीम गहराइयों में फिसलता चला जा रहा था। स्फटिक की खिड़की के पास बैठा सुन्दर गहरे सोच में डूबा था। वह नहीं जानता था कि अन्तरिक्ष-यात्रा इतनी कष्टकर सिद्ध होगी। विज्ञान का विद्यार्थी होने के कारण बहुत दिनों से वह अन्तरिक्ष-यान पर बैठकर चाँद, शुक्र और दूसरे ग्रहों की यात्रा करने को छटपटाता रहता था। संयोग ने, या यों कहिए कि भाग्य ने (हालाँकि इक्कीसवीं सदी में अब भाग्य नाम की कोई वस्तु नहीं थी) उसे 'मान्धाता' पर ला पटका था और यों उसका चिर-स्वप्न साकार हो रहा था।

निस्सन्देह यह संयोग ही तो था!

खिड़की के पास बैठकर उस दिन की एक-एक बात सुन्दर के मस्तिष्क में चक्कर काट रही थी। किस प्रकार 'मान्धाता' यान में छोटे-मोटे कामों के लिए चुना गया लड़का एकाएक बीमार पड़ गया था और उड़ान से दो घण्टे पहले 'राष्ट्रीय अन्तरिक्ष-यात्रा अभियान' के अधिकारी उपयुक्त व्यक्ति खोज रहे थे। अभियान के निदेशक डाक्टर शिवचरणजी सुन्दर के साइन्स-टीचर के गहरे दोस्त थे। सुन्दर महत्त्वाकांक्षी था। ऐसे ही उद्यमी और योग्य व्यक्ति की उन्हें तलाश थी। सुन्दर के पिताजी ने पहले तो एकदम 'ना' कह दिया था कारण कि वह उनका इकलौता बेटा था और उम्र भी उसकी पन्द्रह साल से अधिक नहीं थी; परन्तु डाक्टर शिवचरण तथा साइन्स-टीचर के कहने से वे मान गये थे। पर जब सुन्दर को यह शुभ समाचार सुनाया गया कि वह 'मान्धाता' पर उस रुग्ण लड़के के स्थान के लिए चुन लिया गया है तो सहसा उसे विश्वास ही नहीं हुआ था।

अब तो अविश्वास करने की बात नहीं थी!

सुन्दर ने एक गहरा निश्वास छोड़ा और सामने के केबिन की ओर देखा।

केबिन में चार्टों के अम्बार के पीछे नेवीगेटर महेन्द्रसिंह बैठा था और पेंसिल से दाँत कुरेदते हुए वह किसी गहरे सोच में डूबा था। तभी 'मान्धाता' का रसायनशास्त्री धर्मपाल वहाँ आया और महेन्द्रसिंह के साथ बैठकर बातें करने लगा।

"महेन्द्र भाई!" धर्मपाल बोल रहा था—"छह-सात दिनों से हम शुक्र ग्रह की परिक्रमा कर रहे हैं और अभी तक हम उसके धरातल के बारे में कोई जानकारी हासिल नहीं कर सके।"

"नहीं भाई!" महेन्द्र कह रहा था—"ऐसी बात नहीं है। आखिर हमने यह तो जान ही लिया कि शुक्र ग्रह इतना गर्म नहीं है जितना कि हम समझते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। याद है, तब हम कितने निराश हुए थे, जब अपने राकेटों के माध्यम से हमने यह अनुमान लगाया था कि शुक्रग्रह पर तापमान ८००°F तक है और इतनी गर्मी में जीवन पनप नहीं सकता ? पर अब हम यह तो जान ही गये कि वह औसत तापमान था····यहाँ कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जो इससे भी अधिक गर्म हैं और कुछ ऐसे हैं जो बहुत ठण्डे हैं। ····जरा इस पर नजर डालो।"

महेन्द्रसिंह ने सामने वाले चार्ट पर पेंसिल दौड़ायी और फिर एक काला स्थान दिखाते हुए कहा—"यहाँ शायद पर्वत हैं। इन्हीं के समीप हमने अधिकतम ताप होने का अनुमान लगाया है। बड़ी विचित्र बात है यह ! पृथ्वी पर पहाड़ घाटियों-मैदानों से अधिक ठण्डे होते हैं। लगता है, यहाँ शुक्रग्रह पर उलटी ही बात है।"

यह सुनकर सुन्दर के कान खड़े हो गये। धर्मपाल कह रहा था—"बड़ी अजीब बात है ! आखिर, इसका क्या कारण हो सकता है ?"

"मेरे विचार से तो शुक्रग्रह पर ज्वालामुखी है परन्तु इसका असली कारण क्या है, यह तो हम शुक्र-ग्रह पर उतरकर ही मालूम कर सकते हैं।"

"तो क्या 'मान्धाता' से कोई यान शुक्रग्रह की ओर भेजा जाए यह पता लगाने के लिए ?"

महेन्द्रसिंह ने कहा, "हाँ, इसके लिए हमने चाँद के अपने अड्डे से अनुमति माँगी है।"

"वे हरगिज इसकी अनुमति नहीं देंगे। अँधेरे में छलाँग लगाने वाली बात हुई न ?" धर्मपाल ने शंका के स्वर में कहा।

"देखिए, क्या होता है !" महेन्द्रसिंह पेंसिल लेकर चार्ट पर फिर झुक गया।

सुन्दर ने स्फटिक की खिड़की से बाहर देखा। सामने ही शुक्रग्रह का एक पक्ष दिखाई दे रहा था, जो वहाँ से कुछ ही हजार मील दूर था। 'मान्धाता' अब चाँद और शुक्र के बीच की विभाजक रेखा से गुजर रहा था और ग्रह का अंधकारपूर्ण पक्ष, जिस पर एक विचित्र-सी, मटमैली रोशनी पड़ रही थी और जिसका रहस्य अभी तक कोई वैज्ञानिक भेद नहीं पाया था, सामने आने लगा था।

सुन्दर उस नीली-सी, अपार्थिव चमक को बड़े कौतूहल से देख रहा था। तभी उसे याद हो आया कि प्राचीन काल में नक्षत्रशास्त्री इस अद्भुत रोशनी के बारे में कैसी-कैसी कल्पनाएँ किया करते थे ! वह सब याद करके सुन्दर के चेहरे पर एक मुस्कराहट खेल गयी। ऐसी कई किंवदन्तियाँ प्रचलित थीं कि यह रोशनी उस होली की है जो शुक्रग्रह के निवासी अपने धार्मिक उत्सवों पर जलाते हैं। अब तो वैज्ञानिकों को विश्वास ही नहीं होता था कि शुक्रग्रह पर जीवन पनप सकता है !

सुन्दर की आँखों के सामने चाँद पर स्थापित अपने अड्डे का दृश्य नाच गया। वह कल्पना करने लगा कि अब वहाँ 'अन्तरिक्ष परिषद्' इस पर बहस कर रही होगी कि 'मान्धाता' से कोई छोटा यान शुक्रग्रह पर भेजा जाए या नहीं। उसे लगा कि परिषद् के अध्यक्ष डा. मनोहर सेठी अपनी बात मनवाने के लिए अड़े हुए हैं और खूब गरमागरम बहस चल रही है। चाँद पर उनका अड्डा चन्द्रमा पर रहने वाले लोगों के भूगर्भस्थ नगर में बनाया गया था और अब वह सिर्फ भारत के नियन्त्रण में नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रण में था। भारत ने इस अभियान में सबसे अधिक सहयोग किया था, इसलिए डा. सेठी को परिषद् का अध्यक्ष बनाया गया था।

इतनी वैज्ञानिक प्रगति के बावजूद पृथ्वी वालों के लिए शुक्रग्रह अभी एक रहस्य ही बना हुआ था। उसके इर्द-गिर्द इतना घना कुहरा छाया रहता था कि चन्द्रमा पर लगे शक्तिशाली दूरदर्शी उसके रहस्यों को भेदने में समर्थ नहीं थे।

तभी जोर की घण्टी बजी और सुन्दर चौंक पड़ा। महेन्द्रसिंह ने चोंगा उठाकर कान से लगाया और कहा, "बहुत ठीक ! मैं अभी उसे भेजता हूँ।"

शुक्रग्रह का प्रभायुक्त वायुमण्डल मानो हमारे 'मान्धाता' को आमन्त्रित कर रहा था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर चोंगा यथास्थान रखकर उसने सुन्दर को अपने पास बुलाया। सुन्दर हड़बड़ाकर उठा और महेन्द्र के सामने जाकर खड़ा हो गया। सुन्दर थककर चूर हो चुका था और उस समय नींद लेना चाहता था। महेन्द्र ने कहा, "क्यों, भाई, तबीयत तो ठीक है न तुम्हारी ! जाओ, तुम्हें कन्ट्रोल रूम में बुलाया गया है।"

सुन्दर को उस समय बड़ी कोफ्त हो रही थी। तंग गलियारे से होता हुआ वह कन्ट्रोल रूम की ओर बढ़ा। चन्द्रमा के निवासियों ने इन्हें कृत्रिम गुरुत्वाकर्षण का रहस्य बता दिया था। इसलिए 'मान्धाता' में स्पेस-सूटों की सहायता के बिना भी बड़ी आसानी से चला-फिरा जा सकता था। कन्ट्रोल रूम के इस्पाती दरवाजे पर आकर उसने दस्तक दी और भीतर चला गया।

भीतर कैप्टन प्रेमसागर बैठा था। सुन्दर को देखते ही वह बोला—"सुन्दर ! हम लोगों के सामने एक बड़ी कठिनाई आ खड़ी हुई है। शुक्रग्रह का पता लगाने के लिए हमें इजाजत तो मिल गयी है पर जिन दो आदमियों को हम यान में भेजना चाहते थे, उनमें से एक बीमार पड़ गया है। क्या तुम उसकी जगह जाना चाहोगे ? सोच लो, बड़ा मुश्किल काम है।"

सुन्दर को एकदम विश्वास नहीं हुआ। कहीं वह सपना तो नहीं देख रहा है ? शुक्रग्रह पर जाने की खुशी में वह अब तक की सब मुसीबतों को भूल गया। आह्लाद और विस्मय से उसका रोयाँ-रोयाँ काँपने लगा।

तो क्या यह भी एक संयोग था ?

कैप्टन कह रहा था—"सुन्दर, मैं जानता हूँ, तुम यह सोच रहे हो कि 'मान्धाता' पर जितने यात्री हैं, उनमें से सिर्फ तुम्हें ही क्यों चुना गया ! तो सुनो, शुक्रग्रह पर जाने वाले यान में एक निश्चित वजन वाले ही दो व्यक्ति जा सकते हैं और हम सब में तुम्हीं एक ऐसे व्यक्ति हो जो इस आवश्यकता को पूरी करते हो। उस यान में तुम्हारे साथ बलराज जाएगा। बोलो, तैयार हो ?"

न करने का सवाल ही नहीं था ! ऐसा स्वर्ण अवसर जीवन में उसे फिर कहाँ मिलेगा ? झट बोला—"मैं जरूर जाऊँगा, मैं जरूर जाऊँगा !" उसकी खुशी छिपाए न छिपती थी।

प्रेमसागर ने उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—"शाबास ! तुम जैसे युवक ही भारत के गौरव हैं। जाओ, नीचे बलराज तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।"

सुन्दर को जैसे पंख लग गये। लम्बी सीढ़ियाँ फाँदता हुआ वह नीचे पहुँचा जहाँ शुक्रग्रह की पड़ताल के लिए भेजा जाने वाला यान तैयार किया जा रहा था। उसका चालक बलराज और दूसरे मिस्त्री उसके पुर्जों की जाँच कर रहे थे।

सुन्दर को देखते ही बलराज ने तपाक से कहा, "अरे, सुन्दर ! सचमुच तुम जैसा भाग्यशाली इस यान पर कोई नहीं। किसे मौका मिलता है इतनी छोटी उम्र में इतना बड़ा काम करने का ?"

सुन्दर के पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे थे। बोला—तो कब चलना है हमें ?"

बलराज ने कहा, "पहले डाक्टर से अपनी जाँच तो करवा लो ! फिर तैयारी करके हम कूद पड़ेंगे, एक घण्टे बाद !"

डाक्टर ने सुन्दर की अच्छी तरह जाँच की। उसमें कोई कमी नहीं पायी गयी। फिर शुक्रग्रह की ओर कठिन यात्रा करने के लिए उसे आवश्यक बातें बतायी गयीं। जब सब तैयारियाँ पूरी हो गयीं, तब सुन्दर ने प्रेशर-सूट और कनटोप पहना और बलराज के साथ यान में जा बैठा। दोनों के नाम पर यान का नाम रखा गया 'सुन्दर बल'। उसमें वे जाकर अपने-अपने स्थानों पर पेटियाँ कसकर बैठ गये। बलराज चोंगे पर 'मान्धाता' के कन्ट्रोल रूम से कुछ देर तक बातें करता रहा। वहाँ से अन्तिम निर्देश पाकर उड़ान भरने के लिए दोनों तैयार हो गये। बोर्ड पर हरी रोशनी बुझ गयी और लाल रोशनी जल उठी। फिर एक आवाज गूँजी, जो कैप्टन सेठी की थी—"तीन मिनट बाद 'सुन्दर बल' उड़ेगा। बलराज, तुम्हें सब निर्देश मिल चुके हैं। तुम लोगों को शुक्रग्रह की एक ही बार परिक्रमा करनी है। उसके जितने निकट से हो सके, तुम्हें निकलना है और फिर एक चक्कर काटकर 'मान्धाता' पर लौट आना है। अच्छा, मेरा आशीर्वाद ! कुशलपूर्वक लौटना।"

सुन्दर को लगा, जैसे समय की गति ही रुक गयी है। "पाँच····चार····तीन ···दो····एक····जीरो····" बलराज ने बटन दबाया और राकेट की मोटरें चालू हो गयीं। उनके प्रकम्पन से सारा यान हिल गया। बहुत अधिक दबाव के कारण दोनों फोम-रबर के गद्दों में धँसते चले गये। सुन्दर ने एक लाल-सी धुंध में से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेडार के स्क्रीन पर ग्रह की रूपरेखा को लक्ष्य किया। ज्यों-ज्यों उनका यान नीचे उतरता जाता था, ग्रह बड़ा होता जा रहा था। बलराज ने मोटरें बन्द कर दीं। इससे दबाव कम हो गया। बोला, "दस मिनट में हम बादलों में जा पहुँचेंगे।"

"फिर क्या होगा ?" सुन्दर ने पूछा।

"अगर हम बादलों की छत के नीचे जाने में सफल हो गये, तो हमें शुक्रग्रह का धरातल दीख पड़ेगा। पर, तुम अपने कैमरे तैयार रखो।"

सुन्दर व्यूफाइंडर के साथ आँख लगाकर देखने लगा। यान के नीचे सूरज की रोशनी में बादलों का फर्श दौड़ता हुआ ऐसा लग रहा था, मानो कोई बर्फ का सागर हो।

अचानक बलराज के मुँह से चीख सुनकर सुन्दर ने मुड़कर उसकी तरफ देखा। वह बड़ी तेजी से रेडार के ट्रांसमीटर के बटन दबा-घुमा रहा था। स्क्रीन पर कुछ भी स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा था और उस पर लहरें-सी दौड़ रही थीं।

"क्या हुआ ?" सुन्दर ने घबराकर पूछा।

बलराज ने कहा—"हमारी सिगनल व्यवस्था में विकिरणों से बाधा पैदा हो रही है। हम शायद आयनमण्डल (आयनोस्फीयर) में से गुजर रहे हैं। जरा रेडियो खोलकर तो देखो !"

ट्रांसमीटर का स्विच दबा दिया गया। इनका यान 'मान्धाता' से बहुत दूर आ चुका था।

सुन्दर ने संकेत भेजा और उत्तर पाने के लिए दूसरा बटन दबाया। इससे केबिन में भयंकर गड़गड़ाहट गूँजने लगी जो सुन्दर ने तत्काल बटन दबाकर बन्द कर दी।

बलराज ने प्रसन्न होकर कहा, "ठीक है। हम ठीक रास्ते पर जा रहे हैं।"

"ग्रह पर पर्वतों से कैसे बचेंगे ?"

"शुक्रग्रह पर कोई भी पर्वत २०,००० फुट से अधिक ऊँचा नहीं है। अगर हम दस मील ऊपर रहें, तो कोई दिक्कत नहीं होगी। अब जरा मजबूती से पकड़कर बैठो। मैं अब एयर-ब्रेकें लगाने जा रहा हूँ।"

उसने लीवर खींचा। यान के छोटे पंख बाहर निकल आये। भारी होते जा रहे वायुमण्डल में प्रवेश करने से यान थर्राने लगा था। केबिन का ताप बढ़ता जा रहा था, हालाँकि उसको ठण्डा रखने वाला प्लांट चालू था। बलराज ताप दर्शाने वाले मीटर को गौर से देख रहा था। आहिस्ता-आहिस्ता थर्राहट कम होने लगी और ताप गिरने लगा। बलराज ने चैन की साँस ली और चेहरे से पसीना पोंछा।

सुन्दर ने व्यूफाइंडर के साथ आँख लगा रखी थी। बोला, "कुछ दिखाई नहीं पड़ता। कितनी ऊँचाई पर होंगे हम ?"

"शायद बीस मील। दस मील से नीचे हम नहीं जाएँगे····"

ये शब्द उसके मुँह से निकलते ही यान के साथ कोई चीज जोर से टकरायी। साथ ही लम्बी शूँ···· करके हवा निकली और इनके कनटोप-मुखौटे एकदम बन्द हो गये। प्रेशर-सूट फैलने लगे और इन्हें चक्कर आने लगे, जी मिचलाने लगा। बलराज ने पूछा, "सुन्दर ! ठीक तो हो ?"

"हाँ, पर यह हुआ क्या ?"

"कोई चीज हमारे यान से टकरायी है। ईश्वर जाने इतनी ऊँचाई पर क्या चीज थी ! हमारी हवा निकल गयी है। चिन्ता की कोई बात नहीं। स्पेस-सूटों के कारण हमें कष्ट नहीं होगा। पर स्टीयरिंग उखड़ चुका है। हमें उतरना पड़ेगा।"

सुन्दर का कलेजा धक् से रह गया। पर वह बलराज पर यह कमजोरी प्रकट नहीं करना चाहता था।

"देखो, जरा व्यूफाइंडर से देखो"—बलराज ने कहा।

सुन्दर को बादलों के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। फिर देखते ही देखते प्रकाश का स्थान अंधकार ने ले लिया। बलराज से जब उसने यह बात कही, तो वह बोला—"चिन्ता की कोई बात नहीं। हम शुक्रग्रह की परिधि में आ गये हैं। अब हमें ईंधन बन्द करके नीचे उतरना होगा।"

यान डगमगाने लगा था। गद्देदार सीटों और रबर की पेटियों के कारण उनके शरीर को कोई चोट नहीं लगी। यान भारी वायुमण्डल में तेजी से प्रवेश कर रहा था। सुन्दर बड़े शान्त भाव से ऊँचाई नापने वाले मीटर को देख रहा था, जिसका अंक बड़ी तेजी से नीचे गिरता जा रहा था।

मीटर का अंक जीरो पर आते ही एक भयंकर झटका लगा और यान किसी से टकराया। फिर उछला, टकराया, घूमा, लुढ़का और नाक के बल धँस गया। यान की बत्तियाँ बुझ गयीं। सुन्दर उलटा लटक गया पर जल्द सम्हल गया। सबसे पहले उसे बलराज का ध्यान आया। अँधेरे में उसने पुकारा, "बलराज !"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर कोई उत्तर नहीं। "बलराज !" फिर भी कोई उत्तर नहीं।

सुन्दर ने हाथ बढ़ाकर आपत्कालीन स्विच दबा दिया। यान के केबिन में धीमा प्रकाश हो उठा और सुन्दर ने देखा, बलराज अपनी सीट पर अचेत पड़ा था।

सुन्दर ने जल्दी-जल्दी अपनी पेटियाँ खोल डालीं, सीट से नीचे उतरा और जाकर बलराज की पेटियाँ खोलने लगा। फिर उसे सहारा देकर बैठा दिया। चिन्तित होकर उसने बलराज के मुखौटे में झाँककर देखा। बलराज का चेहरा एकदम पीला पड़ गया था, आँखें बन्द थीं, और उसके होंठों में से खून की पतली धार निकल रही थी।

सुन्दर ने तुरन्त बलराज के आक्सीजन की जाँच की। फिर फर्स्ट-एड की पेटी से एक छोटी-सी प्लास्टिक की ट्यूब निकाली और उसकी टोपी उतार कर ट्यूब का मुँह बलराज के मुखौटे के एक वाल्व में लगा दिया। उसका तत्काल असर हुआ। बलराज के नासापुट फैलने-सिकुड़ने लगे, पलकें हिलने लगीं और चेहरे का रंग लौट आया। थोड़ी ही देर में उसने आँखें खोल दीं और चिन्तित सुन्दर को अपने ऊपर झुका हुआ देखकर वह धीरे से मुस्करा दिया।

सुन्दर ने पूछा, "अब कैसी तबीयत है ?"

बलराज ने कहा, "मेरे सिर में चोट लग गयी थी और जीभ दाँतों से कट गयी थी। वैसे मैं बिलकुल ठीक हूँ। लगता है, हम लोग शुक्रग्रह पर गिर पड़े हैं। स्क्रीन पर मुझे लगा था, जैसे हम पानी के किसी समुद्र में कूदने जा रहे हैं। पर हम तो किसी ठोस जगह से टकराए हैं। चलो, बाहर निकलकर देखें।"

दोनों एक साथ यान के दरवाजे की ओर बढ़े। भारी-भरकम दरवाजा खोलकर उन्होंने बाहर झाँका, तो भयंकर गति से चलने वाली हवा के थपेड़े उनके शरीर से टकराए।

यान का अगला हिस्सा काली मिट्टी में धँस गया था। चारों तरफ उफनता हुआ पानी था और तेज हवा के झोंके लहरों से टकरा रहे थे। नीचे एक तरफ एक ज्वालामुखी आग उगल रहा था। उसका लावा उबलते हुए समुद्र में गिर रहा था। इन्हें मुखौटों के भीतर भी वह भयंकर आवाज सुनाई पड़ रही थी। पानी और हवा की गर्ज और बिजली की कड़कड़ाहट इतनी भयंकर थी कि उस शोर में कुछ भी सोच पाना सम्भव नहीं था। तभी सुन्दर के कानों में बलराज की आवाज पड़ी—"सुन्दर ! इस मुसीबत से हम कैसे निकलेंगे ?"

दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े यान के पिछले भाग में पहुँचे, जो ऊपर उठा हुआ था। वहाँ जाकर सारी बात उनकी समझ में आ गयी कि किस कारण वे शुक्रग्रह पर गिरे। ज्वालामुखी से उड़ती हुई एक बहुत बड़ी चट्टान यान के पिछले हिस्से में अब भी धँसी हुई थी।

"तो इसी के कारण हमारा यान यहाँ गिरा !" बलराज ने कहा—"लगता है, ज्वालामुखी फटने से यह सब हुआ। खुशकिस्मत समझो कि सिर्फ एक चट्टान ही यान से टकरायी। यदि ज्वालामुखी के मुँह में जा पड़ते तो हमारी हड्डियाँ तक न मिलतीं।"

इसके बाद दोनों ने बड़े श्रम से उस चट्टान को अलग किया। चट्टान भरभराकर नीचे गिर पड़ी।

वहाँ से वे केबिन में लौट आये। केबिन में जहरीली वायु भर गयी थी। उसको निकालकर वे कुछ देर सुस्ताने के लिए बैठ गये। एयरकंडीशनिंग प्लांट चल रहा था। इससे उन्हें काफी राहत मिली। बाहर भयंकर गर्मी थी। थोड़ी देर बाद बलराज ने मोटरें चलायीं और अपने फँसे हुए यान को उड़ाने का उपक्रम किया, पर यान इतनी बुरी तरह उस काली मिट्टी में फँसा हुआ था कि बलराज और सुन्दर के सब प्रयत्न व्यर्थ गये।

बलराज एकदम निराश हो गया। सुन्दर ने कहा, "अब सिर्फ एक ही उपाय है। नीचे उतरकर आस-पास की जमीन खोदकर यान को निकालने की कोशिश की जाए।"

इसके अलावा और कोई चारा नहीं था पर खुदाई के लिए भी उनके पास कोई औजार नहीं थे। फिर भी जो छोटा-मोटा औजार उनके हाथ लगा, उसे लेकर वे नीचे उतरे और मिट्टी खोदने लगे। यह कोई आसान काम नहीं था। बहुत जल्दी वे थक गये। गर्मी के मारे उनका बुरा हाल हो रहा था। साँस फूल रही थी। आखिर थक-हारकर वे वहीं बैठ गये।

सुन्दर उफनते हुए पानी को एकटक देख रहा था। बार-बार उसके मन में यह बात आ रही थी, 'क्या अब यहीं रहकर उन्हें अपने प्राणों की आहुति देनी होगी ? क्या यहीं, भयंकर गर्मी में तड़प-तड़पकर जान देनी होगी ?' तभी सामने कोई हिलती हुई चीज देखकर वह चौंक पड़ा। उसने बलराज की बाँह पकड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ली और सामने की ओर संकेत किया। वह इतना घबरा गया था कि उसके मुँह से शब्द ही नहीं निकल रहे थे ! करीब पचास गज की दूरी पर, धुंध के बीच, समुद्र में से लम्बी गर्दन वाले किसी दैत्याकार प्राणी ने सिर निकाला था।

"यह क्या बला है ?" सुन्दर को जैसे साँप सूँघ गया।

बलराज ने बिना चौंके उत्तर दिया, "प्लीसियोसारस है शायद। इसके चार बड़े-बड़े पैर, छोटी-सी पूँछ होती है। यह प्राणी लाखों वर्षों पहले पृथ्वी पर पाया जाता था।....अरे, यह तो हमारी तरफ ही चला आ रहा है ! भागो ऊपर !"

दोनों भागकर यान पर चढ़ने लगे। वह प्राणी भी तेजी से उनकी तरफ झपटा। ज़ोर-जोर से वह साँस लेता हुआ पानी में से निकला। दोनों भय से काँप रहे थे। जब उसने अपना विशाल जबड़ा खोला, तो उसके लम्बे-लम्बे दाँत देखकर बलराज और सुन्दर की घिग्घी बँध गयी और प्राण बचाने की कोशिश में वे तावड़-तोड़ भागे। सौभाग्य से आक्रमण होने से पहले ही वे दरवाजे में पहुँच चुके थे। फुर्ती से दरवाजा बन्द करके वे भीतर छिपकर बैठ गये।

प्लीसियोसारस ने क्रुद्ध होकर यान पर थप्पड़ मारा। सारा यान एकबारगी थर्रा उठा। यान पर दाँत चलाने की आवाज भी सुनाई पड़ने लगी। फिर उसने इतनी जोर से दूसरा झटका मारा कि यान दूसरी ओर झुक गया।

भयभीत अवस्था में भी सुन्दर को अचानक एक बात सूझ गयी। चिल्लाकर वह बोला—"बलराज ! जल्दी से मोटरें चालू करो। यह यान को उखाड़ रहा है।"

बलराज फुर्ती से उछला। बटन दबाकर उसने मोटरें चालू कर दीं। इधर प्लीसियोसारस ने जोर से एक झटका और मारा। सब इंजन चालू हो जाने से यान एकदम उठा और ऊपर उड़ गया। कुछ क्षणों तक वह हवा के भयंकर थपेड़ों से जूझता रहा, फिर बादलों में समा गया। प्लीसियोसारस यह देखकर इतना भयभीत हुआ कि वहाँ से उछलकर पानी में गिरा और फिर बाहर नहीं निकला।

आध घण्टे बाद 'सुन्दर बल' 'मान्धाता' के साथ सम्पर्क स्थापित करने में सफल हुआ। कैप्टन प्रेमसागर कुछ चिन्तित स्वर में उनसे पूछ रहे थे, "हलो ! बलराज ! तुम लोग पन्द्रह मिनट लेट हो ! कहाँ रह गये थे ?"

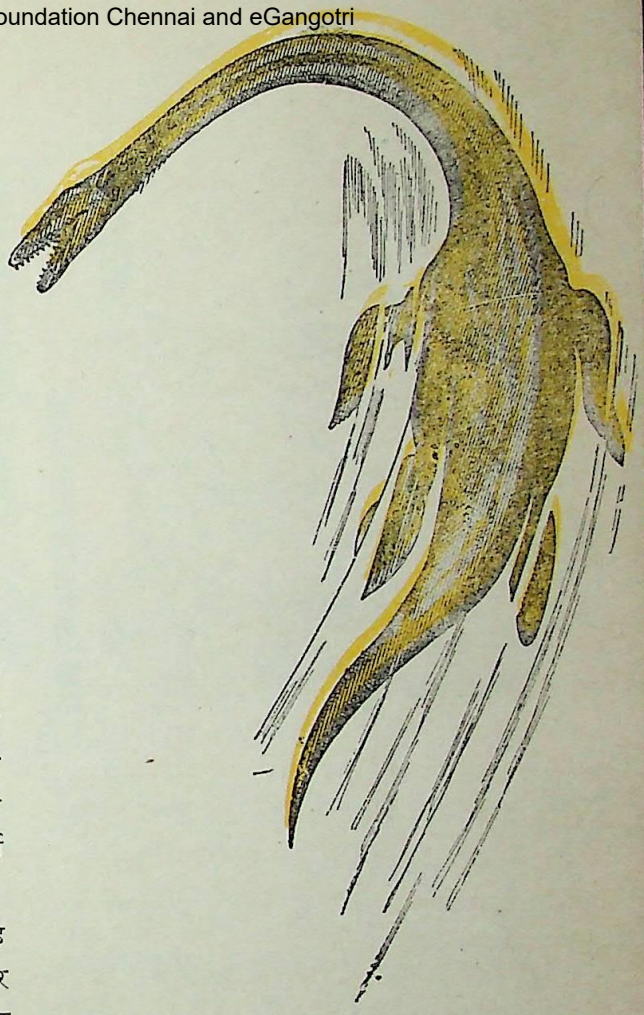

दैत्याकार प्लीसियोसारस को अपनी ओर झपटते देख हम दोनों जान बचाकर भागे

बलराज ने सुन्दर की ओर देखा। वह धीरे से मुस्करा दिया। फिर उसने कैप्टन को जवाब दिया, "कैप्टन ! आपको विश्वास नहीं होगा ! वहीं आकर सब बताएँगे।"

"मान्धाता' पर उतरकर जब उन्होंने शुरू से आखीर तक सब बयान किया, तो सचमुच किसी को विश्वास ही नहीं हुआ।

सुन्दर की आँखों के आगे बार-बार उस वीभत्स प्राणी की आकृति नाच रही थी, जिसकी बदौलत आज वे कुशलता से लौटे थे। वह सोच रहा था कि कई बार जीवन में संयोग से क्या से क्या हो जाता है ! संयोग से वह 'मान्धाता' पर नियुक्त हुआ, संयोग से शुक्रग्रह पर उतरा और फिर संयोग ही देखिए कि प्राणघातक प्लीसियोसारस के कारण उसकी प्राण रक्षा हुई ! ●

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

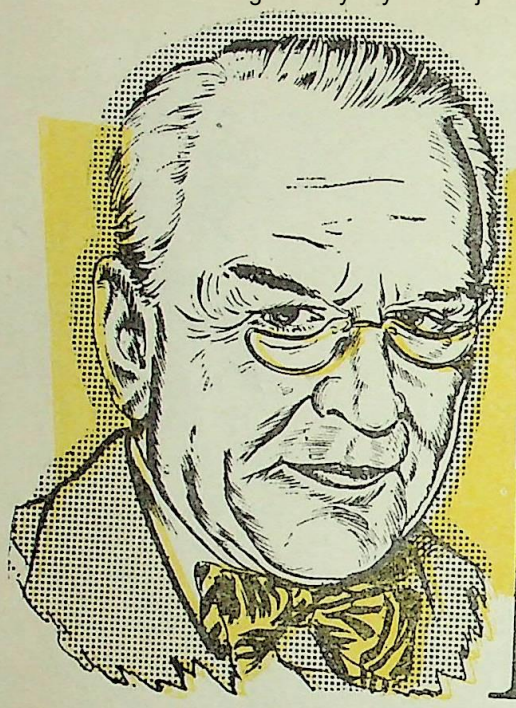

रॉबर्ट मिलिकन

राजेन्द्र कुमार

जब और जहाँ इलेक्ट्रॉनिकी की चर्चा होगी, रॉबर्ट एण्ड्रयूज मिलिकन की स्मृति स्वतः उभर आएगी। सबसे पहले आयरलैण्ड के जॉर्ज जॉन्स्टन स्टोने (George Johnstone Stoney) ने १८९० में विद्युदणु जैसी वस्तु का आभास पाया और उसे समझने-समझाने के लिए इलेक्ट्रॉन शब्द की रचना की। तब से स्काटलैण्ड के सी. टी. आर. विल्सन और अमरीकन वैज्ञानिक रॉबर्ट मिलिकन द्वारा प्रयोगसिद्ध प्रमाण प्रस्तुत कर देने तक जॉन्स्टन के कथन पर विश्वास रखकर इलेक्ट्रॉनों का अस्तित्व भी मानने को कोई वैज्ञानिक तैयार नहीं था। अतः इस सर्वथा नये क्षेत्र में मिलिकन के मौलिक संशोधन कार्य प्रशंसनीय माने गये और उन्हें १९२३ में भौतिकी का नोबुल पुस्कार दिया गया।

चमत्कारिक विद्युदणु

हमारा वर्तमान जीवन जिसके द्वारा सबसे अधिक प्रभावित है, वह है चमत्कारिक विद्युदणु। इन्हीं का वह समूह है जो ऋणा-वेशित अवस्था में प्रत्येक परमाणु के चारों ओर विद्युतगति से चक्कर लगाता है। इनका नियन्त्रण अत्यन्त कठिन रहा है। इन्हें नियन्त्रित करके धारा रूप में किसी भी उचित माध्यम से प्रवाहित किया जाए तो ये विलक्षण कार्य कर दिखा सकते हैं। निर्वात इलेक्ट्रॉन ट्यूब तथा ट्रान्जिस्टर के क्रिस्टल ऐसे माध्यम हो सकते हैं। अतः जॉन्स्टन द्वारा सैद्धान्तिक रूप से इलेक्ट्रॉनों की उपस्थिति घोषित किये जाने के पश्चात् भी इनका परिचय पाने में लोगों को ५-७ वर्ष लग गये।

१८९७ में इंग्लैण्ड के सर जोसेफ जॉन थामसन ने रायल इन्स्टीट्यूट के प्रोफेसरों के समक्ष घोषित किया कि उन्होंने एक प्रकार के ऐसे सर्वथा नवीन विद्युदणुओं से साक्षात किया है जो तब तक के माने जाते सूक्ष्मतम हाइड्रोजन-परमाणु से भी १००० गुना सूक्ष्म और विद्युतावेशित हैं। उन्होंने आगे कहा: "इससे यह सिद्ध होता है कि परमाणु अविभाज्य नहीं है क्योंकि उसके सूक्ष्मतम ऋणावेशित अणु विद्युत के प्रभाव से पृथक किये जा सकते हैं। उन विद्युदणुओं की संहति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबों में एक समान रहती है। एक प्रकार से परमाणु की संरचना ही ये विद्युदणु करते हैं।"

विद्युदणुओं की उपस्थिति प्रमाणित करने के लिए स्काटलैण्ड के सी. टी. आर. विल्सन ने अपना प्रसिद्ध वाष्पकक्ष (क्लाउड चैम्बर) का प्रयोग प्रस्तुत किया। उस कक्ष में कुहासा सरीखा माध्यम उत्पन्न करके विद्युदणुओं का फोटोग्राफ लेने में वह सफल रहा। फिर भी स्पष्टीकरण की आवश्यकता बनी रही और उसका श्रेय मिलिकन ने प्राप्त किया।

प्रतिभावान मिलिकन

इलिनॉय (अमरीका) के मोरिसन नगर में २२ मार्च १८६८ को मिलिकन का जन्म हुआ। १८९१ में ओकरलिन कालेज से स्नातक की उपाधि प्राप्त की और १८९५ में कोलम्बिया विश्वविद्यालय से डाक्टरेट किया। शीघ्र ही उन्होंने जर्मनी के बर्लिन और गोटिन्जन विश्वविद्यालयों में अल्पकालीन कार्य करने के आमन्त्रण स्वीकार किये। दूसरे वर्ष १८९६ में शिकागो विश्वविद्यालय के प्रो. ए. ए. माइकेलसन ने इन्हें अपना सहकारी नियुक्त कर लिया। वहाँ ये १९१० में प्रधान प्राध्यापक बन गये।

शृंखला, प्रयोगों और पुरस्कारों की

१९१० के पश्चात् मिलिकन के नये-नये प्रयोगों की जो शृंखला चल पड़ी सो १९२३ में नोबुल पुरस्कार मिलने तक अपने चरम पर पहुँच गयी। इनका सर्वप्रथम और सर्वाधिक महत्त्व का वह प्रयोग था जिसमें उन्होंने विल्सन के क्लाउड चैम्बर की विधि को परिष्कृत करके विद्युदणुओं के विद्युतावेश का सही मापांकन प्रस्तुत किया। उस अद्भुत सफलता पर नेशनल एकेडेमी ऑफ साइन्सेज ने १९१३ में इन्हें कॉमस्टॉक (Comstock) पुरस्कार प्रदान किया। उक्त प्रयोग का विस्तृत एवं मनोरंजक वर्णन १९२४ में प्रकाशित The Electron में लिखित है। १९१५ में इन्हें उक्त एकेडेमी का सदस्य भी बना लिया गया। १९१६ में इन्होंने आइन्स्टीन के प्रसिद्ध फोटोइलेक्ट्रिक समीकरण $^1/_2\, mv^2 = Ve = hu - p$ पर तथा मैक्सप्लैंक के स्थिरांक h का मूल्यांकन निकालने के लिए कुशलतम प्रयोग किये। फलस्वरूप आइन्स्टीन के समीकरण की पुष्टि हुई और h का मूल्यांकन $6{\cdot}57 \times 10^{-27}$ निर्धारित किया गया।

१९२१ में मिलिकन ने वह पद भी त्याग दिया और केलीफोर्निया इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी में नार्मन ब्रिज लेबोरेटरी ऑफ फिजिक्स का निदेशक-पद स्वीकार कर लिया। अपनी प्रतिभा के बल पर वहाँ की एक्जीक्यूटिव काउन्सिल के चेयरमैन भी बन गये और उस पद को १९४५ में अपने निवृत्त होने तक योग्यता से निभाया। उसी दौरान में १९२२ से १९३२ के मध्य, दस वर्ष तक लीग ऑफ नेशन्स में संयुक्त राज्य अमरीका का प्रतिनिधित्व करते रहे। इसके अतिरिक्त केलीफोर्निया स्थित सान मेरिनो की हंटिंग्टन लाइब्रेरी और आर्ट गैलरी के बोर्ड ऑफ

मिलिकन द्वारा प्रयुक्त तैल-बिन्दु उपकरण—
१. विद्युतावेशित धातु-प्लेटें ; २. तेल की बूँदें इस छिद्र से गिरायी जाती हैं; ३. सूक्ष्मदर्शी ; ४. विद्युत की उच्च धारा लाने वाले तार ; ५. दो विरोधी विद्युतावेशों के मध्य स्थिर खड़ी हुई तेल की बूँद

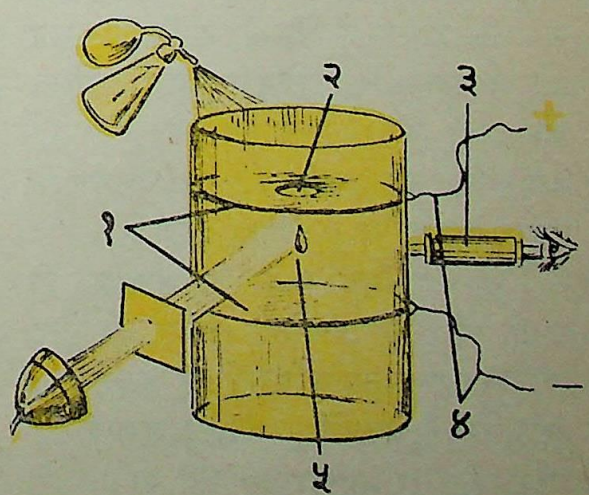

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डाइरेक्टर्स के भी अध्यक्ष-पद पर काम करते रहे। केलीफोर्निया की इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी में मिलिकन ने मुख्यतः अन्तरिक्ष (Cosmic) किरणों पर महत्त्वपूर्ण शोधकार्य किये। जिनका वर्णन इनके ग्रन्थ Cosmic Rays में है।

प्रसिद्ध तैल-बिन्दु प्रयोग

मिलिकन का यह प्रयोग प्रसिद्ध है। इसी के द्वारा उन्होंने सिद्ध किया था कि विद्युदणु का ऋणावेश, हाइड्रोजन के धनावेश के समान ही होता है। यह इस प्रकार है :

मध्य में निश्चित माप का रिक्त स्थान छोड़कर धातु की दो प्लेटों को समान्तर अवस्था में रखा गया। ऊपर की प्लेट के बीचोबीच एक छिद्र किया गया ताकि उसमें से तेल की बूँद गुजारी जा सके। दोनों प्लेटों को उच्च नावेशित धन तथा ऋणावेशित कर दिया गया। तत्पश्चात् तेल की एक-एक बूँद उस छिद्र में टपकाते गये और उन पर विद्युतावेशों की प्रक्रिया का अवलोकन किया गया। अवलोकन करने के लिए तेल-बिन्दु पर एक ओर से तीव्र प्रकाश फेंका गया और दूसरी ओर से सूक्ष्मदर्शी की सहायता से निरीक्षण किया गया। प्रकाश-किरण को भी फिल्टर से गुजारा गया ताकि कोई भी ताप-रश्मि बूँद तक पहुँचकर उसमें अनपेक्षित हलचल न मचा दे। इस अवलोकन द्वारा ज्ञात किया गया कि प्रत्येक बूँद किसी न किसी—धन अथवा ऋण—विद्युतावेश से अवश्य आवेशित हो जाती थी। इतने पर भी जो बूँद अप्रभावित रह जाती उसे एक्स-किरण के प्रहार से प्रभावित कर दिया जाता।

जो बूँद जिस आवेश से आवेशित हो जाती थी उसे प्रतिरोधी आवेश की प्लेट की ओर भागना अनिवार्य हो जाता था। उदाहरणार्थ, धनावेशित बूँद को ऋणावेशित प्लेट की ओर भागना अनिवार्य था। उनके भागने की गति को इस प्रकार नियन्त्रित रखा गया कि वह गुरुत्वाकर्षण बल के समान ही रहे। फलतः वैसे नियन्त्रित बिन्दु को अधर में ही लटके रह जाना पड़ा। भागने का वह वेग, प्लेटों के मध्य के अन्तर, विद्युतधारा की मात्रा तथा स्वयं बिन्दु के आवेश पर निर्भर रहता था। अतः बिन्दु की संहति ज्ञात कर लेने पर उसके भागने की गति की गणना की जा सकती थी।

इतने पर भी बिन्दु की संहति ज्ञात करना अत्यन्त कठिन था। इसमें सन्देह नहीं कि संहति तो वस्तु के क्षेत्रफल से घनत्व का गुणनफल करके ज्ञात की जा सकती है किन्तु उसके लिए बिन्दु का पूर्णतः कन्दुकाकार होना भी अनिवार्य है। तत्पश्चात् उस बूँद की त्रिज्या ज्ञात करना तो और भी दुष्कर है। यद्यपि उस प्रयोग में प्रयुक्त सूक्ष्मदर्शी का वीक्ष्य-लेंस स्केलयुक्त था, तथापि बूँद जैसी वस्तु की त्रिज्या ज्ञात करना सहज तो नहीं था।

मिलिकन ने तनिक लम्बी विधि से ही सही, अति शुद्ध माप निकालकर सबों को चकित कर दिया। उन्होंने प्लेटों को विद्युत-रहित कर दिया और बूँद को गुरुत्वाकर्षण के बल पर नीचे गिरने दिया। गिरने की उस गति को एक विराम-घड़ी (stopwatch) द्वारा माप लिया। अब यह एक सहज तथ्य है कि सीमित वायु के माध्यम में किसी भी वस्तु के गिरने की गति सदैव एक समान रहती है। अतः इसी के आधार पर विविध गणनाओं द्वारा मिलिकन ने बूँद की त्रिज्या ज्ञात कर ली और तत्पश्चात् उसके आवेश का वेग भी ज्ञात कर लिया। मिलिकन ने इस प्रयोग को अनेक बार इसलिए दुहराया कि अन्ततः शुद्धतम परिणाम प्राप्त किया जा सके।

केलीफोर्निया के सान मेरिनो स्थान पर १९ दिसम्बर १९५३ को ८५ वर्ष की परिपक्वावस्था में मिलिकन की मृत्यु हुई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

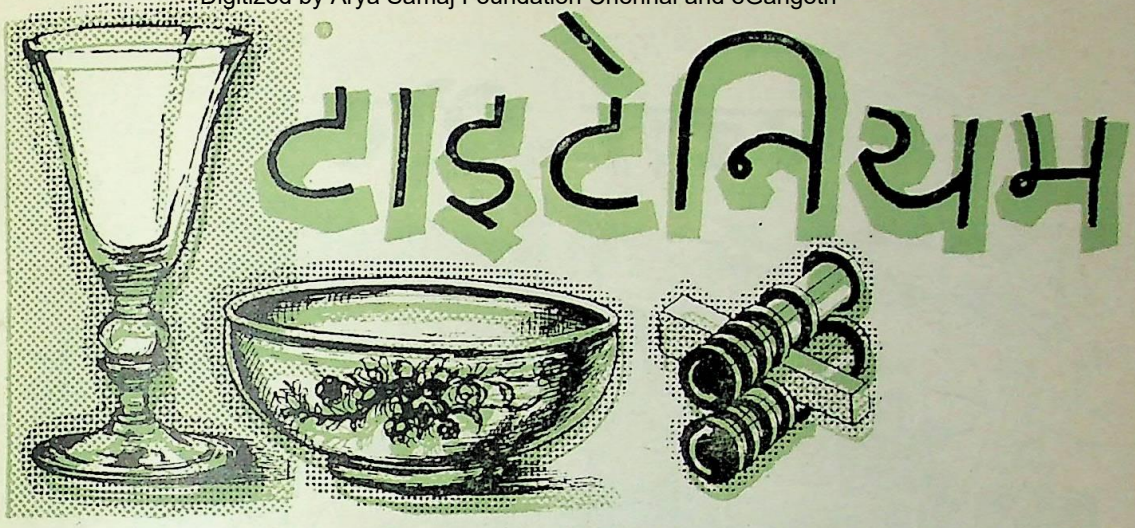

टाइटेनियम

आदित्यगोपाल झिंगरन

आधुनिक युग की धातु टाइटेनियम से बहुत कम लोग परिचित होंगे पर इसका उपयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है।

मिश्रधातुओं में दो प्रकार के फेरोटाइटेनियम का उत्पादन किया जाता है। एक प्रकार में कार्बन की मात्रा अधिक होती है जिसको इस धातु के अयस्क रूयूटाइल (rutile) को कार्बन से मिश्रित करके इस्पात के उष्मक पर विद्युत-भट्ठी द्वारा प्राप्त किया जाता है। कार्बन रहित फेरोटाइटेनियम एल्यूमीनियम के अवकरण से तैयार किया जाता है। जर्मनी में थर्माइट-अवकरण की विधि का उपयोग किया जाता है। थर्माइट विधि में एल्यूमीनियम के चूर्ण तथा आयरन आक्साइड को गर्म किया जाता है जिसके द्वारा ३५००° C तक का ताप प्राप्त होता है।

फेरोटाइटेनियम का उपयोग इस्पात के व्यवसाय में शोधक के रूप में किया जाता था। आक्सीजन तथा नाइट्रोजन के प्रति इसका विशेष आकर्षण है। अतः इन तत्त्वों को पृथक करने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। अब इसका उपयोग क्रोमियम-निकेल वाले इस्पात में किया जाता है जिसके कारण प्राप्त मिश्रधातु अधिक प्रतिरोधी हो जाती है। स्टेनलेस स्टील की और जस्ती चादरें तथा एनेमल के बर्तनों को अधिक टिकाऊ बनाने में भी यह स्थान पाता है। यह निकेल, कोबाल्ट तथा एल्यूमीनियम आदि के साथ मिश्रधातु बनाने में सहायक है। इसका उपयोग स्थायी चुम्बक बनाने में भी किया जाता है।

टाइटेनियम-युक्त इस्पात अधिक शक्ति वाला तथा आघात और अपघर्षण का अधिक प्रतिरोधी हो जाता है। यह कहा जाता है कि प्रत्यास्थता को बिना घटाए हुए किसी भी धातु की शक्ति को १५% तक बढ़ाया जा सकता है। ऐसा इस्पात गीयर्स (gears), नोदक धुरीदण्ड (propeller shafts) तथा पहियों के धुरे बनाने में काम आता है। कार्बन के प्रति इसके आकर्षण तथा शमन करने की क्षमता के कारण यह मशीनों के लिए भी उपयुक्त है। इस प्रकार की एक विशेष मिश्रधातु कोनेल (konel) है जिसमें ७३% निकेल, १७% कोबाल्ट, ७·५% आयरन तथा २·५% टाइटेनियम होता है। इस मिश्रधातु की शमन शक्ति का अनुमान ११००°F पर इसकी तनाव-क्षमता से किया जा सकता है जो ७५,००० पौंड प्रति वर्ग इंच से भी अधिक होती है।

टाइटेनियम के यौगिकों द्वारा चमकदार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा और

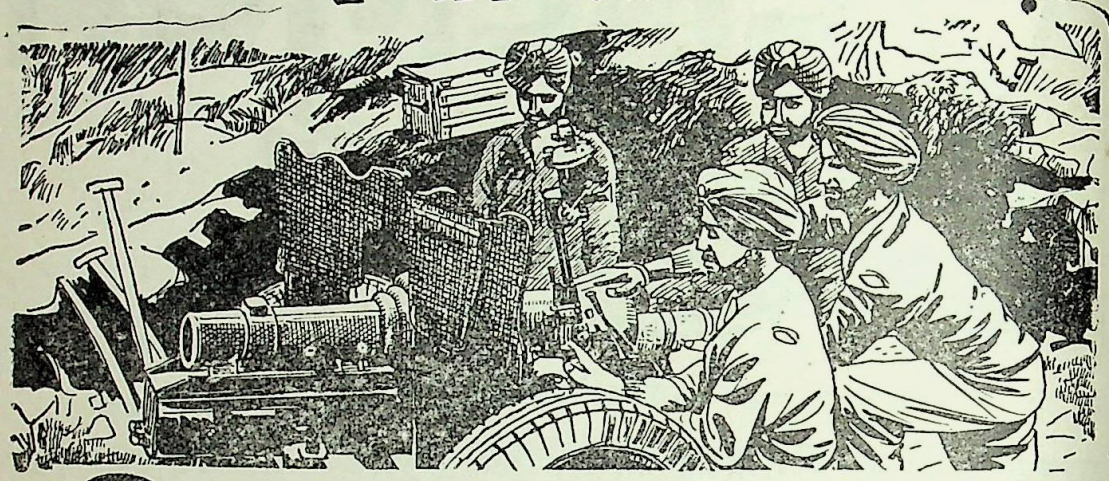

विकास का काम

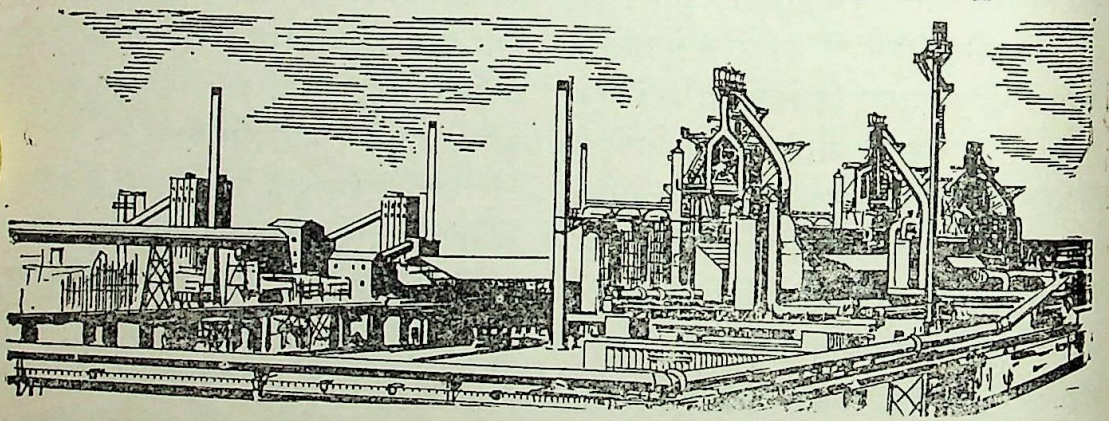

साथ साथ चलता है

देश की विकास योजनाएं हमारी रक्षा-व्यवस्था का अभिन्न अंग हैं। संकट का सामना करने के लिए नई प्राथमिकताएं निश्चित की गई हैं और बिजली योजनाओं, इस्पात, मशीन, मशीनी औजार, बिजली का साज-सामान, कोयला खनन, रेलवे जैसे बुनियादी उद्योगों, इंजीनियरी और चिकित्सा कर्मचारियों के प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर तेजी से अमल करने की व्यवस्था की गई है।

शक्ति की ठोस बुनियाद पर ही रक्षा की तैयारी निर्भर करती है। यही हमारी समस्या का एकमात्र हल है। इस कार्य में मन, वचन और कर्म से पूरा पूरा सहयोग दीजिए। भारत के करोड़ों नागरिकों की निरन्तर और निस्वार्थ सेवा-भावना और कठोर परिश्रम से ही देश की रक्षा-सामर्थ्य बढ़ सकती है।

योजना को सफल बनाइये

भारत की रक्षा-व्यवस्था को सुदृढ़ कीजिए

डी ए-६३/३६

४४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

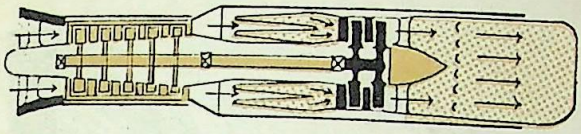

चित्र में प्रदर्शित जेट इंजन का पिछला भाग बनाने में टाइटेनियम तेजी से इस्पात का स्थान ले रहा है। इसके द्वारा इस्पात जैसी ही मजबूती बनाये रखकर टाइटेनियम के उपयोग से इंजन का भार काफी घटाना सम्भव हो सका है

स्पेक्ट्रम (spectrum) प्राप्त किया जाता है। गैस मेन्टल तथा आर्क लैम्प में भी इन का उपयोग किया जाता है। इसमें साधारण रूप से टाइटेनियम ऋणाग्र में रहता है जो ताँबे के धनाग्र के ऊपर रहता है। प्रकाश पूर्णतया चाप से ही निकलता है और इसका रंग शुद्ध श्वेत होता है जो टाइटेनियम के ही कारण होता है। आर्क लैम्प में दिष्टधारा (direct current) की आवश्यकता होती है और विद्युदाग्र के लिए फेरोटाइटेनियम आक्साइड तथा कार्बाइड मिश्रणों का उपयोग किया जाता है। केवल टाइटेनियम डाइ-आक्साइड का उपयोग नहीं किया जाता क्योंकि वह अच्छा संवाहक नहीं है। इसे क्रोमाइट, मैगनेटाइट आदि के साथ गलन (fusion) के बाद उपयोग में लाते हैं।

टाइटेनियम के अनेक यौगिकों का उपयोग कपड़ा, ऊन, कागज तथा चमड़ा आदि रंगने में किया जाता है। चमड़े अथवा वस्त्र को टाइटेनियम के लवण के विलयन में डुबोकर भाप द्वारा सुखाने पर जलीय डाइआक्साइड अवक्षेपित हो जाता है। यह स्थायी लाक्षक (permanent lacques) बनाता है जिसके कारण देदीप्यमान रंग चढ़ जाते हैं। ऐसे पदार्थों को रंग-स्थापक (mordants) कहते हैं। अच्छे तथा कीमती कपड़ों के लिए कार्बनिक अम्लों के लवणों का उपयोग किया जाता है ताकि रेशे को हानि न पहुँचे। चमड़ा रंगने के लिए पोटैशियम-टाइटेनियम आक्जेलेट का उपयोग किया जाता है जिसके द्वारा भूरे से लेकर पीले तक के अनेक रंग प्राप्त किये जाते हैं। टाइटेनियम-लैक्टेट चमड़े के व्यवसाय में कोरीक्रोम के नाम से प्रसिद्ध है।

टाइटेनियम यौगिकों का उपयोग चीनी मिट्टी के उद्योग (ceramic industry) में भी रंग के लिए किया जाता है। रूटाइल का उपयोग पोर्सिलेन में मनमोहक पीले रंग के लिए किया जाता है। यूरेनियम यौगिक तो बहुत कीमती होते हैं। उनके स्थान पर रूटाइल का उपयोग किया जाता है। हलका रंग प्रदान करने के लिए, कृत्रिम दाँतों के लिए तथा पोर्सिलेन में केवल अल्प मात्रा में यह ०·५% ही काफी है। अधिक गहरे रंग के लिए ५% तक का उपयोग किया जा सकता है। अतः इससे मन चाहे गहरे अथवा हलके रंग प्राप्त किये जा सकते हैं। नीलम के रंग का भी कारण, जहाँ तक विश्वास है, टाइटेनियम ही है क्योंकि इसी रंग के कृत्रिम पत्थर एल्यूमिन टाइटेनियम डाइआक्साइड तथा आयरन आक्साइड द्वारा तैयार किये गये हैं।

इस धातु को काँच में मिलाया जाता है। यह काँच से अंशतः अथवा पूर्णतः सिलिका को विस्थापित कर सकता है। ऐसा काँच

अन्तरिक्ष से आते रहने वाले हमारे मेहमान, ये उल्का-प्रस्तर भी टाइटेनियम की प्रचुर मात्रा के स्रोत होते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ हद तक अपारदर्शी हो जाता है और रंग-रहित ऐसा काँच तो पराबैंगनी प्रकाश के लिए अपारदर्शक होता है। नीले अथवा बैंगनी रंग के काँच भी टाइटेनियम के मिश्रण से प्राप्त किये जाते हैं। टाइटेनियम कार्बाइड बहुत ही कठोर होता है और उसका उपयोग कृत्रिम अपघर्षक के रूप में किया जाता है।

प्रथम विश्व युद्ध में लगभग १६० टन टाइटेनियम केवल टाइटेनियम टेट्राक्लोराइड के लिए प्रयुक्त किया गया जिसका उपयोग क्षोभक धुएँ के लिए हुआ। यह गुण इस तथ्य पर निर्धारित है कि जब यह पदार्थ कार्बन डाइआक्साइड की उपस्थिति में नम वायु के सम्पर्क में आता है तो इसका तुरन्त विश्लेषण हो जाता है जिसके अन्तर्गत उक्त प्रकार की क्रिया होती है।

टाइटेनियम की उपयोगिता साबुन के लिए भी है। कैल्सियम कार्बोनेट को वसा

इसे गौर से देखिए, यह जख्मों पर बाँधने की पट्टी है जिस पर पानी की बूँदें ऐसे तैर रही हैं मानो तेल की सतह पर हों। टाइटेनियम ने इसमें भी अपना हिस्सा बँटाकर इसे जलाभेद्य (waterproof) बना दिया है

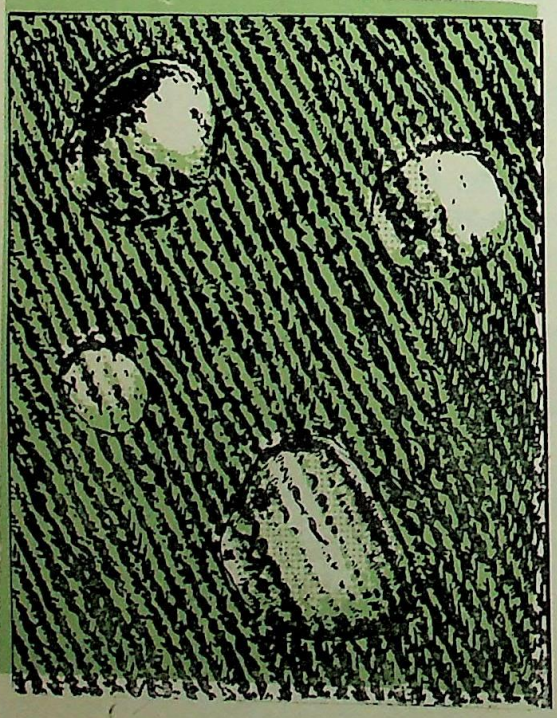

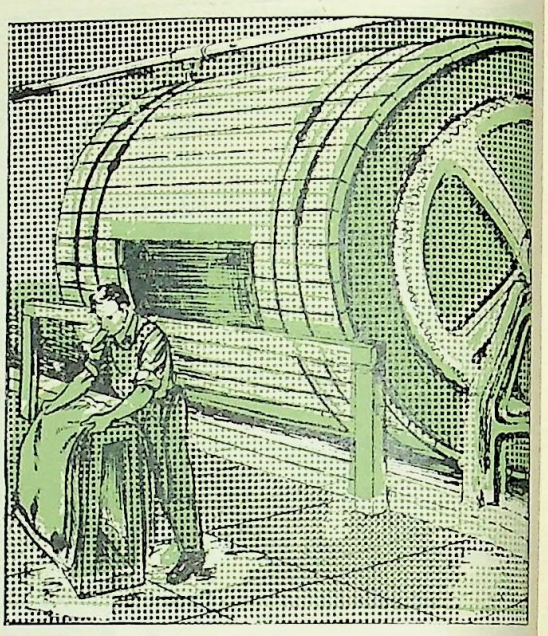

बड़े पैमाने के चर्म-उद्योगों में चमड़ा साफ करने तथा रंगने आदि में अन्य पदार्थों के साथ टाइटेनियम भी प्रयुक्त होता है

अम्लों में निलम्बित करके टाइटेनियम टेट्राक्लोराइड का धीरे-धीरे विलयन करते हुए मिलाते हैं। इस प्रकार के साबुनों का उपयोग पेंट तथा वार्निश के लिए विशेष रूप से हितकारी है तथा अन्य क्षेत्रों में भी इनका उपयोग किया गया है।

टाइटेनियम रंग

इस क्षेत्र में बड़ी उन्नति हुई है। सर्वप्रथम टाइटेनियम डाइआक्साइड तथा बेरियम सल्फेट के साथ १९२४ में पिगमेंट तैयार किया गया। इस क्षेत्र में उन्नति का कारण यह भी है कि कच्चा माल भारत से ही प्राप्त हो जाता है। टाइटेनियम रंग की विशेषता उसकी अपारदर्शिता है। यह पदार्थ हाइड्रोजन सल्फाइड की उपस्थिति में भी स्थायी रहता है, भार में हलका होता है, विषैला नहीं होता तथा तेल में सरलता से इसका विक्षेपण हो जाता है।

कागज के व्यवसाय में कागज को अपारदर्शी बनाने के लिए टाइटेनियम डाइआक्साइड का उपयोग किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार से प्राप्त कागज चिकना होता है और छपाई के लिए उत्तम रहता है। टाइ-टेनियम-युक्त कागज, जो सफेद, जलरोधक तथा अपारदर्शी होता है, डबल रोटी के लपेटने के लिए उत्तम होता है क्योंकि उसमें चिकनाहट आदि के धब्बे पड़ने का भय नहीं रहता। लिनोलियम जो कमरों में बिछाने के लिए बहुतायत से काम आता है, इस पदार्थ द्वारा अधिक चमकदार तथा स्थायी हो जाता है। श्वेत रबर टाइटेनियम आक्साइड के मिश्रण से बनाया जाता है जिसका उपयोग गर्म पानी की बोतलों, दस्तानों, टेनिस के जूतों आदि अनेक पदार्थों में किया जाता है। इसके द्वारा रबर पेंट भी तैयार किया जाता है।

छपाई तथा सुन्दर स्याही में भी टाइटेनियम डाइआक्साइड का उपयोग होता है क्योंकि इसके मिलावट से रंग स्थायी रहता है। टाइटेनियम द्वारा आकर्षक रंग विज्ञापन हेतु उत्पन्न किये जाते हैं। रेशम पर छपाई अब टिन आक्साइड के स्थान पर टाइटेनियम डाइआक्साइड द्वारा ही की जाती है क्योंकि टिन आक्साइड की भाँति यह समय के प्रभाव से पीला नहीं पड़ता। प्लास्टिक व्यवसाय में भी टाइटेनियम आक्साइड द्वारा सफेद अथवा हलके रंग प्राप्त किये जाते हैं जो अपारदर्शी होते हैं। साबुन, टूथपेस्ट आदि पदार्थों में टाइटेनियम आक्साइड का उपयोग किया जाता है। मुँह पर लगाने वाले पाउडरों में जिंक आक्साइड के स्थान पर टाइटेनियम आक्साइड का उपयोग किया जाता है क्योंकि यह पदार्थ विषैला नहीं है तथा इसके अत्यधिक अपारदर्शी गुण के कारण रंग बहुत ही अल्प मात्रा में मिलाने की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार टाइटेनियम धातु का महत्त्व हमारे लिए बहुत अधिक है। ●

समझिये

कि समस्या क्या है ?
विकास और सुरक्षा का बहुत निकट का सम्बन्ध है।
खेतों और कारखानों में आप जितना उत्पादन
बढ़ाएंगे देश को उससे उतनी ही अधिक ताकत मिलेगी।

सुदृढ़ रक्षा के लिए जी तोड़ मेहनत करें।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

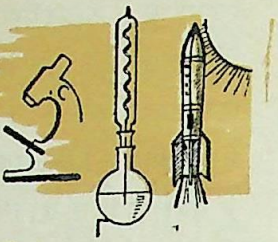

कागज के कपड़े-बिस्तरे भी !

कागज के नोटों द्वारा मुद्रा प्रसार और किताबों द्वारा शिक्षा प्रसार तो अब उतनी नयी वस्तु नहीं रहे जितनी कागज की अन्य वस्तुएँ अब मैदान में आ रही हैं। समझ लीजिए, प्रस्तर-युग, हिम-युग, कांस्य-युग, लौह-युग, ताम्र-युग और यन्त्र-युग के बाद अब कागज-युग भी आने को है। अमरीका और पश्चिम जर्मनी में निर्मित स्टील की जैसी मजबूती के टिकाऊ कागजों की अनेक वस्तुएँ काफी प्रसिद्ध हो चुकी हैं। अब कम-टिकाऊ वस्तुएँ ऐसी बनने लगी हैं जिन्हें निस्संकोच प्रयुक्त कीजिए और फेंककर नयी ले लीजिए। काफी समय पहले कागज की आस्तीनें और कालर पहनना फैशन माना जाता था। अब फैशन पुनः उन वस्तुओं को हमारे सामने ला रहा है, किन्तु आधुनिकता लिए हुए।

जहाँ अस्पतालों में पहनने-ओढ़ने के कपड़ों को कीटाणुरहित करना न केवल एक समस्या, बल्कि खर्चीला झंझट प्रतीत होता है, वहाँ कागज की कमीजें, पाजामे, गाउन, क्राकरी, तौलिये, चादरें, तकिये के गिलाफ और बेडिंग नये वरदान स्वरूप उपलब्ध हैं। छूत की बीमारी वालों के लिए इससे उत्तम परिधान और क्या हो सकता है ?

टिड्डी मारिए, अनाज खानेवालों को नहीं

टिड्डीमार दवाओं से बड़ा संकट तब उपस्थित हो जाता है जब उन दवाओं का जहरीला प्रभाव अनाज खाने वाले मानवों, प्राणियों और पक्षियों की भी जान का ग्राहक बन जाता है। परिणाम यह होता है कि जिस उद्देश्य के लिए टिड्डियों को मारकर फसल को बचाने का झूठा सन्तोष पा लिया जाता है वह उद्देश्य ही परास्त हो जाता है और लोग अनाज की कमी से न मरे तो जहरीले प्रभाव से मरे ! पश्चिम जर्मनी ने अपनी पूर्वकालीन, जग-विख्यात कीटमार दवा ई-६०५ का और भी विकसित रूप प्रस्तुत करके एशिया और अफ्रीका जैसे विशाल देशों के लिए अत्यन्त उपयोगी वस्तु प्रदान की है।

अनुमान है कि १००० टन टिड्डी १००० टन अनाज बरबाद कर सकती है। साथ ही, जहरीली दवाओं के प्रयोग से खेतों में असंख्य पक्षी भी मारे जाते हैं। इन दोनों बृहत् हानियों से अब बचा जा सकेगा।

यह दो-मुँहा इंजन

सामान्यतः रेलवे इंजन दोनों ओर आगे-पीछे दौड़ लेते हैं, किन्तु पीछे दौड़ने में उन्हें उलटा तथा अपेक्षाकृत अधिक बल लगाना पड़ता है। अतः ऐसी उलटी यात्रा कुछ ही दूर तक उचित रहती है। ब्रिटेन में निर्मित रूस के इस अतिविशाल इंजन को विश्व-प्रसिद्ध ट्रान्स-साइबेरियन एक्सप्रेस की अत्यधिक कठोर यात्रा कराने में विशेष बल लगाना पड़ता है। इस हेतु इस इंजन में बॉयलर तो सामान्य इंजनों की भाँति एक ही है किन्तु संचालक यंत्र-सज्जा दोनों ओर रखी गयी है। इसे इस योग्य भी बनाया गया है कि यह छोटे मोड़ भी सरलता से ले सके।

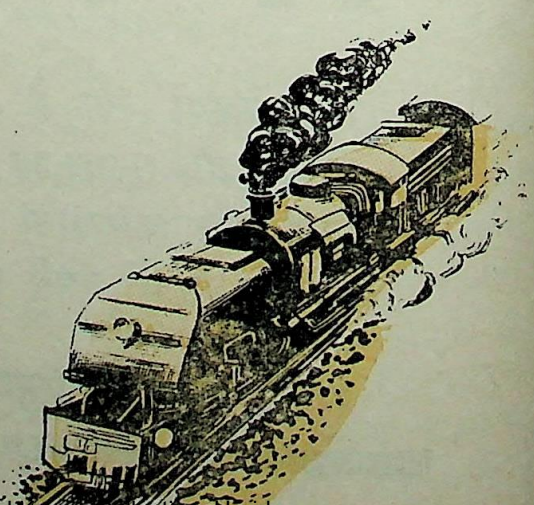

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

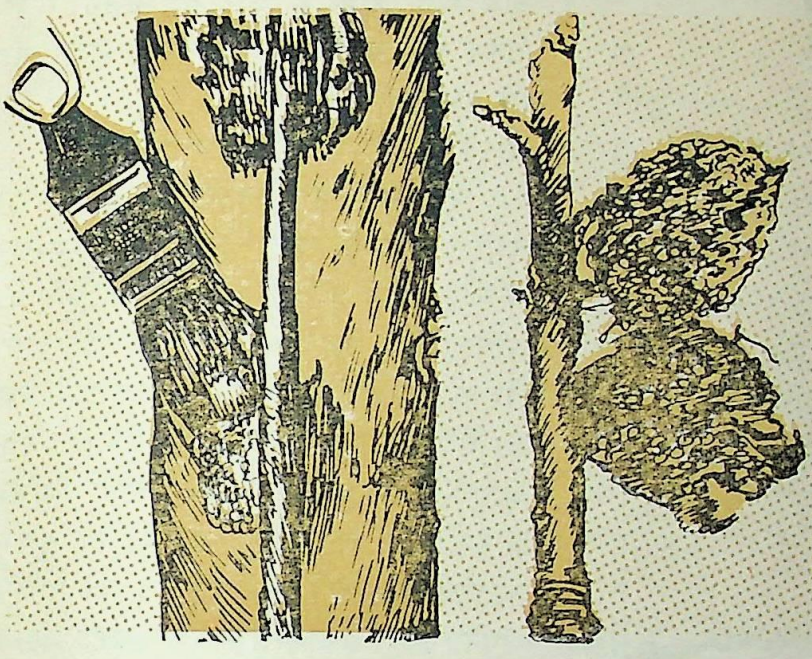

जब पेड़-पौधे बीमार पड़ते हैं

कुमारी रेखा टण्डन

पेड़-पौधों में भी जान है। चोट-खरोंच इनको भी लगती है। ये भी बीमार पड़ते हैं। अन्तर यह है कि कोई-कोई ही इनके दर्द को जानता है। स्वयं ये चीख-पुकार नहीं करते। अधिकांश तो जहाँ तक बनता है, समय पाकर सहते-सहते जी लेते हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं जो समाप्त ही हो जाते हैं। कहीं भारी हिमपात वृक्षों को ढँक लेता है, जिसके भार तले कोमल शाखें टूट गिरती हैं। कहीं तेज आँधी-अंधड़ पेड़-पौधों को जड़ समेत ही उड़ा ले जाते हैं अथवा विशाल वृक्षों की कमर तोड़कर रख देते हैं। आकाश की बिजली, लम्बे समय तक पानी का नितान्त अभाव अथवा विनाशकारी बाढ़ का तो कहना ही क्या ? कहीं तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े तनों को खोखला किये देते हैं तो कहीं कुतरने वाले बिलकारी जन्तु कुतर-कुतरकर खाये जाते हैं। कभी मनुष्य बागबानी के शौक में अपने तेज औजारों से जहाँ-तहाँ अनावश्यक काट-छाँट कर बैठता है। ऐसे अनेक जख्म प्रायः ही परजीवी विषाणुओं के आक्रमण के लिए मानो द्वार खोल देते हैं। ऐसे जख्मों की देखभाल समय पर न की जाए तो पौधा नष्ट हो सकता है। ये ही अवसर ऐसे हैं जब क्षत-विक्षत पेड़-पौधों को सहायता की आवश्यकता होती है।

सर्वथा असहाय तो नहीं

प्रत्यक्ष में ये असहाय भले ही दिखते हों, वास्तविकता यह है कि उचित वातावरण तथा साधन उपलब्ध होने पर ये अपने टूटे अंगों के स्थान पर नये अंग उत्पन्न कर लेने में समर्थ हैं। इस नवोत्पादन के लिए इन्हें उस नये अंग से शक्ति प्राप्त होती है जो जख्म लगते ही एक ओर उभर आता है। प्रायः ही जख्म लगने पर निकट ही एक सफेद पदार्थ द्रव के रूप में झलकने लगता है। उसे कैलस (callus) कहते हैं। पौधों की अन्तःत्वचा तथा अन्य अंगों से निर्मित वह कैलस न केवल जख्म की सतह को सूख जाने से रोकता है, बल्कि विषैली फन्जाई आदि के आक्रमण से भी बचाता है। कैलस से ही उन नयी कोशाओं का जन्म होता है जो मृत कोशाओं की स्थानपूर्ति करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्छी लगाकर चल दिये—यह पेड़ शिकायत कर रहा है उन नीम-हकीम बागबानों की जो यहाँ से कलम काटकर अन्यत्र रोपने के लिए, इस पेड़ पर जहाँ जी चाहा, जख्म किये और चलते बने

टूटे अंगों का पुनर्निर्माण

टूटे अंगों का पुनर्निर्माण कलिकाओं द्वारा भी होता है। कलिकाओं में पुनर्निर्माण की विलक्षण क्षमता होती है। सामान्यतः कलिकाएँ तनों में जहाँ-तहाँ निष्क्रिय पड़ी रहती हैं। उन्हें पोषण भी पौधों के समस्त अंगों से बचा-खुचा, इतना ही मिलता है कि बस, जीवित रहें, फलें-फूलें नहीं। जब भी कोई टहनी अथवा अन्य अंग टूट गिरता है, उस स्थान पर भोजन पहुँचना बन्द हो जाता है। उसके स्थान पर ऐसी सुप्त कलियों को वह अतिरिक्त पोषण मिल जाता है। पोषण की बढ़ी हुई मात्रा तथा अन्य हारमोन द्वारा नया जीवन पाकर उस कली की लम्बी, गहरी नींद खुल जाती है और वह सजग, सचेष्ट होकर जहाँ पहले कोई कली हो ही नहीं, वहाँ भी उभर आती है।

मानवीय सहायता से त्वरित प्रगति

पुनर्निर्माण और पुनरुत्पादन का यह क्रम तभी चलता है जबकि अनुकूल परिस्थितियों में कोई बाधा न खड़ी हो। इसके लिए यह आवश्यक है कि ऐसे पेड़-पौधों को चारों ओर कोटाणुनाशक दवाएँ छिड़ककर विभिन्न परजीवी कीटाणुओं से मुक्त और सुरक्षित रखा जाए। जल का पर्याप्त साधन तथा विभिन्न हारमोनयुक्त रासायनिक पदार्थों की सुचारु व्यवस्था भी होनी चाहिए। जब तक पत्तियाँ उगने और प्रकाश-संश्लेषण द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाने योग्य न हो जाएँ, तब तक की प्रारम्भिक सहायता के लिए पत्तियों के भोजन—कार्बोहाइड्रेट तथा प्रोटीन का भी प्रबन्ध रखना चाहिए। यदि वह पौधा अनेक की भीड़ में इस बुरी तरह से फँसा हो कि प्रकाश तथा श्वास भी लेना दूभर हो तो उसे यथाशीघ्र वहाँ से सावधानीपूर्वक उखाड़कर अन्यत्र रोप देना चाहिए। दूसरे शब्दों में, प्रकृति तो अपना पुनरुत्पादन का कार्य अति मन्द गति से करेगी ही, आप अपनी सहायता तथा कौशल से इस कार्य में आश्चर्यजनक प्रगति ला सकते हैं।

निकटकालीन प्रगति

इधर कुछेक वर्षों में पेड़-पौधों की सर्जरी और सुश्रूषा ने काफी प्रगति की है। साथ ही, आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ भी प्राप्त की हैं। काट-छाँट, साज-सँवार, दवाओं के छिड़काव तथा रंग-रोगन आदि द्वारा अगणित क्षत-विक्षत वृक्षों को पुनर्जीवन दिया गया है। मनुष्यों की सर्जरी से पौधों की सर्जरी सर्वथा भिन्न है। इसका कारण यह है कि मनुष्यों की अपेक्षा पेड़-पौधों में पुनरुज्जीवन की क्षमता कहीं अधिक है। मनुष्यों में तो अंग-वृद्धि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीमाएँ होती हैं, पेड़-पौधे इस बन्धन से भी मुक्त हैं। मनुष्यों में टूटे हुए अंगों के स्थान पर नये अंग नहीं उत्पन्न होते। यदि छोटे-मोटे रूप में होते भी हैं तो वे स्वतन्त्र और सबल नहीं होते; केवल टूटे हुए स्थान की रक्षा करने योग्य बने रहते हैं। पेड़-पौधों में यह त्रुटि नहीं पायी जाती। अनेक पेड़ तो चोट लगने के स्थान को तुरन्त ही रेजिन अथवा लैटेक्स जैसे अपने स्राव द्वारा ढँक लेते हैं ताकि खुले जख्म पर कोई भी विषाणु धावा न बोल दे। यह स्राव वही काम करता है जो हमारे जख्मों पर मरहम तथा प्लास्टर करते हैं। कभी कोई प्रचण्ड तूफान किसी पेड़ को गिरा कर ठूँठ जितना ही छोड़ दे तो वर्षभर में ही उसके चारों ओर नवपल्लव, नयी शाखाएँ उग आएँगी और पुराना ठूँठ उनमें छिप जाएगा। इसके लिए आवश्यक समय उस पेड़ की जाति तथा उसके गिर्द के वातावरण पर बहुत निर्भर करेगा।

पेड़-पौधों में सर्जरी

ऐसे नवोत्पन्न शाखा-पल्लवों में से १-२ पुष्ट शाखाओं को छोड़कर यदि अन्य सब काट गिरा दी जाएँ तो वे ही १-२ पुष्ट अंग समय पाकर पितृ-वृक्ष से भी अधिक सुडौल बन निकलेंगे। विशेषतः मूल्यवान काष्ठ के तथा घनी छाया देने वाले आहत वृक्षों को कुशल बागबान छुरी, कुल्हाड़ी द्वारा पुनरुज्जीवित कर देते हैं। वृक्षों की परिचर्या का इतिहास बहुत पुराना है। प्राप्त विवरणों से ज्ञात होता है कि प्राचीन बेबीलोन, असीरिया तथा ईरान के बागबान आवश्यकतानुसार पेड़-पौधों का स्थानान्तरण करते थे तथा विविध प्रकार से परिचर्या भी करते थे।

आज अधिक विकसित, अधिक वैज्ञानिक

आज यह कला अधिक विकसित, अधिक वैज्ञानिक हो गयी है। आज का उद्यानशास्त्री यह जानता है कि पेड़-पौधों के लिए कौनसे जीवाणु हानिकारक हैं, उन्हें कैसे दूर रखा जा सकता है, भूमि की क्षारीयता तथा अम्लीयता संतुलित रखते हुए उर्वरता कैसे बनायी रखी जा सकती है, विभिन्न ऋतुओं का क्या-क्या प्रभाव रहेगा आदि। इसलिए वह इस बात की पूरी सावधानी रखता है कि पेड़-पौधों के सड़े-गले और रोगी अंग काटकर फेंक दिये जाएँ और हानिकारक जीवाणु न बढ़ने पाएँ इसके लिए भूमि की उलट-पुलट तथा दवाओं का प्रयोग होता रहे।

पेड़ के तने पर कोई भी जख्म अथवा गलित अंग के कारण गड्ढे बन जाने पर कुशल वृक्ष-सर्जन (tree surgeon) उसकी चिकित्सा एक आपरेशन की भाँति ही करेगा। वह सड़े-गले तथा चोट खाये स्थल को अपने चाकू, छुरी तथा बरमे आदि से तब तक काटे-

जख्म इस पेड़ पर भी है किन्तु बागबान की कुशलता का प्रतीक जो है! जख्म को काट-छाँटकर, दवा, रसायन आदि के मरहम लगा दिये गये हैं ताकि इस पेड़ का जीवन अकारण ही अल्प न रह जाए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

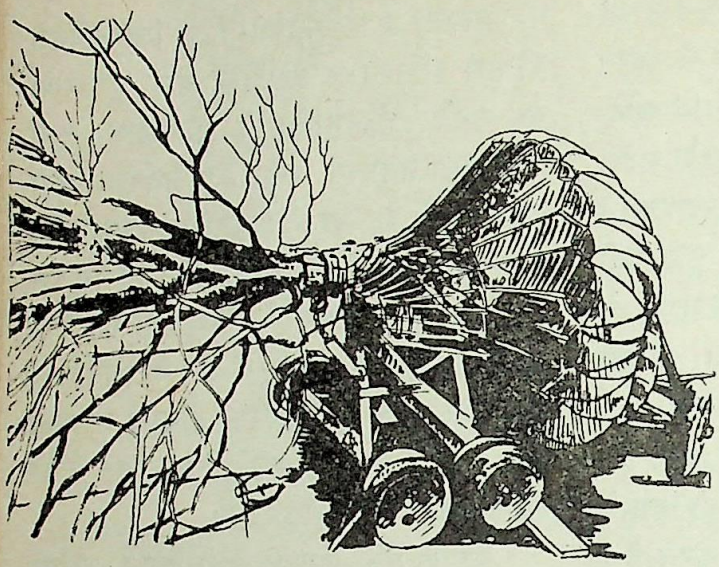

इस पेड़ का मानो पीहर छूट रहा है। स्थानान्तरण के लिए आवश्यक है कि जड़ों को मिट्टी समेत (काफी मिट्टी समेत) उठाया जाए (खींचना या उखाड़ना नहीं) और दूसरे स्थान पर पहुँचने तक उनकी आर्द्रता कम न हो इसलिए चित्र में दिखाए अनुसार निम्न भाग को पोलीथिन की चादर से लपेट दिया जाए

छीलेगा जब तक कि स्वस्थ भाग न दिखाई दे। फिर वह उसे दवा के घोल से धोएगा। धोने के पश्चात् रेजिन तथा अलसी के तेल से बनाया हुआ मरहम उस पर लगाएगा। सतह को चारों ओर से ठीक करके कैलस के नवांकुरों को उगने-उभरने योग्य बना देगा। बीच-बीच में ऐसे रोगी वृक्षों की मिजाजपुरसी भी की जाएगी ताकि उनके विकास में कोई बाधा उपस्थित न हो। तने के खुले हुए गड्ढे पेड़ को अधिक खराब न करें, इस हेतु पहले समय में उनमें कन्क्रीट आदि भर देते थे किन्तु अब नवीन पद्धति के अनुसार उन्हें छीलकर सपाट कर लिया जाता है ताकि नये अंकुरों को वहाँ उभरने का अवसर रहे।

अनावश्यक अंगों की काट-छाँट का यद्यपि महत्त्वपूर्ण भाग है, फिर भी एक कुशल बागवान नासमझी से चाहे जहाँ काट-छाँट नहीं करता। वह हर कार्य विशिष्ट प्रयोजन से ही करता है। कहीं पेड़ की शाखाएँ टेलीफोन के तारों में उलझ जाती हैं, तो कहीं ऐसे खम्भों तथा मार्गों पर झुक आती हैं कि रास्ता ही रुक जाता है। उन्हें तो काट-फेंकना ही पड़ता है। प्रायः सूखी हुई टहनियाँ तथा पत्ते एक स्वस्थ पेड़ का सौन्दर्य नष्ट करते रहते हैं। तब उन्हें भी काट गिराना होता है ताकि पेड़ से व्यर्थ का बोझ हट जाए और उसे खुली श्वास लेने में तथा शीघ्र विकसित होने में सहायता मिले।

इस काट-छाँट के लिए कैंचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। आधा इंच तक की मोटी टहनियाँ काटने के लिए लम्बे हत्थों वाली हाथ की कैंची ठीक रहती है। अधिक मोटी शाखाओं के लिए घुमावदार फल की कैंची आवश्यक है। जो शाखाएँ ऊँचाई पर हों और जहाँ हाथ सरलता से न पहुँचता हो, उनके लिए लम्बे बाँस में बिठायी हुई कैंची काम में ली जाती है। ऐसी बाँसयुक्त कैंची लगभग १२ फुट तक की लम्बी रखी जाती है।

वैसे तो काट-छाँट का समय पेड़-पौधों की विभिन्न जातियों तथा ऋतु की अनुकूलता पर निर्भर रहता है, फिर भी सर्दियों के उतार और वसन्त के आरम्भकाल में जबकि पेड़-पौधे अपनी शीत-निद्रा के अन्तिम चरण पर होते हैं, यह कार्य सामान्यतः उपयुक्त समझा जाता है। काट ऐसे स्थान पर लगाया जाता है जहाँ निकट में घनी पत्तियाँ हों ताकि नवकलिकाओं तथा कैलस आदि को बनने-बढ़ने और पोषण प्राप्त करने में सुविधा रहे।

कभी-कभी पेड़ अपने पाँवों पर आप ही कुल्हाड़ी मार लेते हैं। यह इस प्रकार कि उनकी जड़ें भूमि में धँसते जाने का अपना क्रम भूलकर तने से ही लिपटना शुरू कर देती हैं। तने का दम घुटने लगता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे के भाग में पोषक द्रव्य न पहुँच पाने पर पेड़ निर्बल रह जाता है। ऐसी जड़ों को भी काटकर अलग कर देना पड़ता है।

आकाशीय विद्युत से पेड़ को बचाने के लिए विविध प्रबन्ध करने पड़ते हैं। ऊँचे भवनों पर लगाये जाने वाले ताँबे के विद्युत-दण्ड बेशकीमती वृक्षों पर लगाये जाते हैं ताकि बिजली गिरने पर भी वे अप्रभावित रहें। जहाँ भूमि अधिक कठिन हो और पोषक तत्त्वों का संचार न हो पाता हो वहाँ पेड़ के चारों ओर भूमि में सूराख करके सूखे तथा तरल उर्वरक पहुँचाये जाते हैं।

किसी पेड़ को स्थानान्तरित करना बड़ा कौशलसाध्य कार्य है। इस कार्य में अनेक व्यक्तियों की एक साथ जरूरत पड़ती है। खोदते समय यह सावधानी बरती जाती है कि जड़ों के साथ काफी मिट्टी निकल आए। तत्पश्चात् मिट्टी समेत जड़ों को एक गोल घेरे के रूप में कैनवस में लपेटा जाता है जिससे कि वह रास्ते में सूख न जाए। यह स्थानान्तरण का कार्य भी पेड़ों की शीत-निद्राकाल में किया जाता है।

बीमार पेड़-पौधों को रासायनिक पदार्थ भूमि द्वारा तथा ऊपर से छिड़ककर तो पहुँचाये ही जाते हैं; किन्तु अब नवविकसित रसायन-चिकित्सा (chemotherapy) के अन्तर्गत मानवों की भाँति इंजेक्शन लगाने के भी सफल प्रयोग किये गये हैं। इस विधि द्वारा पेड़-पौधों में जिस पदार्थ का अभाव हो वही सरलता से उनके जीवद्रव में इंजेक्शन की सहायता से सीधे ही पहुँचा दिया जाता है।

चाहे नव-पल्लवित पौधों का संरक्षण करना हो, चाहे उन्हें अपेक्षित आकार-प्रकार में बनाना हो अथवा जीर्ण वृक्षों को पुनर्यौवन ही क्यों न देना हो, एक वनस्पति-चिकित्सक का कार्य काफी जटिल है। ●

यहाँ से काटिये

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृष्णा दीदी,

मुझे विज्ञान क्लब का सदस्य बना लीजिए।

जन्म-दिन _____ आयु _____

नाम _____

घर का पता _____

_____

_____

स्कूल का नाम _____

शिक्षा _____ रुचि _____

यहाँ से काटिये

यहाँ से काटिये

यहाँ से काटिये

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप चाहे दफ्तर में काम करते हों
अथवा खेत या कारखाने में,
समय की पुकार है कि
आप इतनी मेहनत से काम करें
जितनी कि पहले कभी न की हो।
काम या उत्पादन पहले से
दुगुना कर दें, और इससे भी
कुछ अधिक! याद रखें कि आपका
अधिक परिश्रम राष्ट्र को
अधिक बलवान बनाता है।

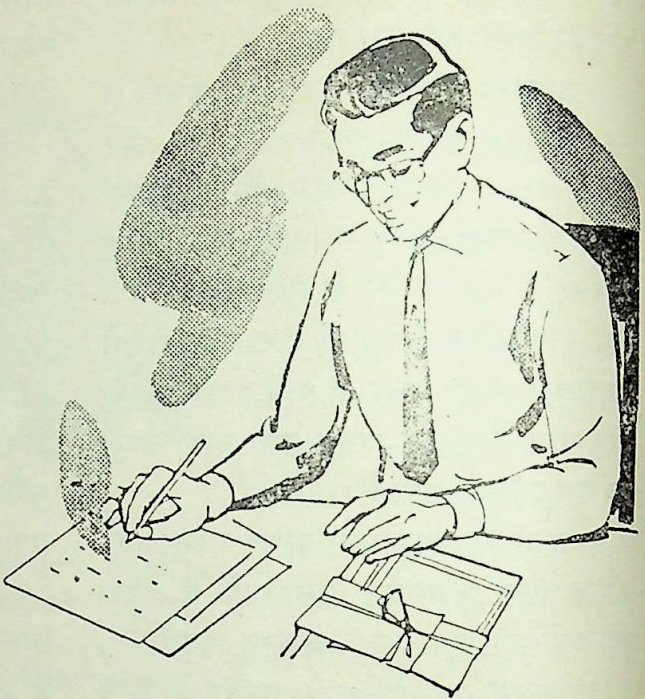

जी तोड़ मेहनत करें

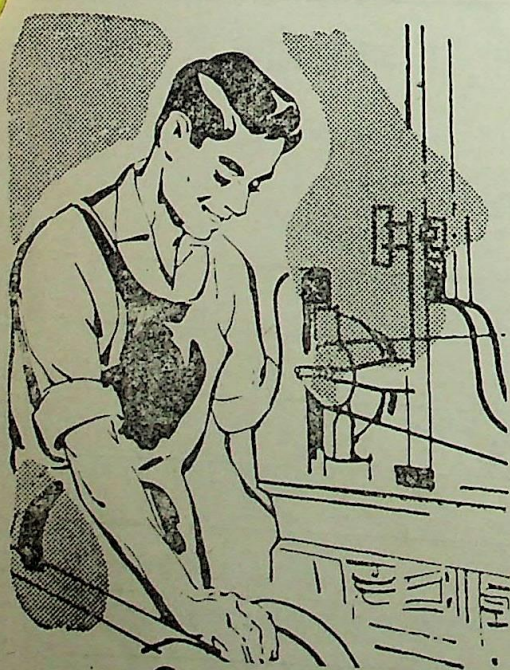

अधिक उत्पादन, सुदृढ़ रक्षा के लिए

DA63/F15

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो,

यह जनवरी का महीना है। फरवरी, मार्च अर्थात् तुममें से अनेक की वार्षिक परीक्षा के दिन अब क्षितिज पर दिखने लगे है। 'दिवस जात नहीं लागहिं बारा' के अनुसार परीक्षाएँ न सही, परीक्षाओं की तैयारी का भार तो तुम्हारे सिर पर खड़ा ही है। छुट्टियों, त्यौहारों के दिन बीत चुके हैं और आगे भी आएँगे किन्तु तन-मन लगाकर पढ़ाई पर जोर देने के तो ये ही दिन हैं।

विगत मास इलाहाबाद से सहायक शिक्षा-निदेशक, उत्तर प्रदेश ने छात्रों के लिए १०वीं वैज्ञानिक प्रतियोगिता आयोजित की थी। उसमें छात्रों द्वारा निर्मित नये वैज्ञानिक मॉडल तथा मननयोग्य निबन्ध आदि आमन्त्रित किये थे। आशा है, तुम में से अनेक ने उसमें भाग लिया होगा। परिणाम तो आएगा तभी ज्ञात होगा। मेरे मत से ऐसे आयोजन स्वस्थ वातावरण में सम्पन्न और सफल किये जाएँ तो देश के होनहार छात्रों को काफी बल दे सकते हैं।

विज्ञान-लोक के नवम्बर अंक में डाल्टन गंज के प्रेमचन्द जैन (४९१६) ने **पक्षियों का गृहनिर्माण** और **चन्द्र-अभियान** बहुत पसन्द किया है; इन्दौर से कु. प्रमोदिनी (१०६१४) ने **लियो नार्दो-द-विंशी, बाल-पाइण्ट पेन** और **इन्हें आक्सीजन नहीं चाहिए** मनोरंजक कहा है। इसी प्रकार ग्वालियर से विष्णुभगवान (५२९१) ने लिखा है कि उनकी मित्र-मण्डली ने दिसम्बर अंक के **प्लाज्मा टार्च, सूर्यवर्ष** तथा **जन्तु मशीन के सदृश चलते हैं** लेख विशेष पसन्द किये हैं।

१९६४ का यह नववर्ष तुम सबों को शुभ हो।

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४६ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

कृष्णसिंह पुंडीर (१२८९) नगलापिथौरा, प्रदीप कुमार श्रीवास्तव (४०३३) लखनऊ, प्रदीपकुमार (४१३५) इलाहाबाद, करनसिंह मोगरा (१०१५४) उदयपुर।

द्वितीय पुरस्कार

गजेन्द्रपालसिंह (१६०५) मेरठ, सुधीरकुमार राठौर (१६१९) आगरा, शैलेन्द्रनाथ (४७१८) आगरा, शान्तिलाल सरणोत (६४७४) उदयपुर, अब्दुल हई कुरैशी (६७४१) रायपुर, सुरेशकुमार (७१९०) अमृतसर, सज्जनसिंह सुराना (७६८०) उदयपुर, वल्लभदास पारिख (७७५८) उदयपुर, निसार अहमद कुरैशी (७७६६) रायपुर, शशीकान्त गुप्ता (१०६९४) आगरा, हरीओम (११२०१) मेरठ, कृष्णकुमार (११२०२) मेरठ, राधेश्याम शर्मा (११५४९) मेरठ, अतुलकुमार (११७६९) लखनऊ।

तृतीय पुरस्कार

भुवनेश्वर गुप्ता (९१४) आगरा, गोपाल माधव (२३७९) मेरठ, अमिता रानी साह (२७५६) अलमोड़ा, संजय गुप्ता (३४६७) लखनऊ, रणजीत सिंह (४७२४) नई दिल्ली, कौशलकिशोर (६५७३) नेतरहाट, नरेशकुमार (७५५६) अमृतसर, देवेन्द्र कुमार (७७३५) भोपाल, मोहिनी शहानी (७८२७) रांची, नरेन्द्र बंसल (७८२८) आगरा, गोपी शहानी (८४८९) रांची, सुरेन्द्रकुमार (१०६७६) सागर, जी. एम. अग्रवाल (११०३१) मेरठ, नर्मदाप्रसाद (११२०५) जबलपुर।

कूपन : प्रतियोगिता संख्या ४८

नाम.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृष्णकुमार
(स. सं. ३११२)

अरुणकुमार
(स. सं. ५४१४)

महेशदत्त
(स. सं. ६७७३)

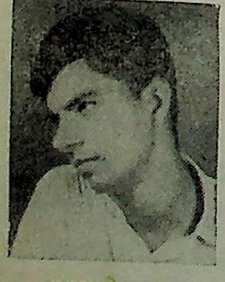

कृष्णगोपाल
(स. सं. ७८४३)

७५४९ कु. एन. ललिथा (११) जमशेदपुर, ५० कु. एन. विशालम (१६) जमशेदपुर, ५१ अरुणकुमार (१३) बुलन्दशहर, ५२ प्रकाशनाथ (१२) मेरठ, ५३ बलराम (१८) लोहारदगा, ५४ घेवरचन्द (१२) फारबिसगंज, ५५ कु. गीता (१०) पूसा, ५६ नरेशकुमार (१५) अमृतसर, ५७ सुधीरकुमार (१३) आगरा, ५८ सुनीतकुमार (१२) आगरा, ५९ रामचन्द्र (१४) चित्तौड़गढ़, ६० कु. ऊषा (१४) फतेहगढ़, ६१ रामअवतार (१६) फिरोजाबाद, ६२ अरहन्तकुमार (१४) मेरठ, ६३ सुधारानी (२०) दिल्ली, ६४ सुखदेव (२१) बीना, ६५ मुरारीलाल (१३) करनाल ६६ तिलकराज (१४) लश्कर, ६७ अनिलकुमार (१३) लखनऊ, ६८ सर्वोत्तम (१७) दिल्ली, ६९ केदारनाथ (१७) करेरा, ७० बलदीप (१८) इन्दौर, ७१ करमवीर (१३) इन्दौर, ७२ आनन्द नारायण (१४) बिलासपुर, ७३ प्रकाश पुरुषोत्तम (१३) लश्कर, ७४ तिलकराज (१३) कालका, ७५ मृणालकान्ति (१४) मोदीनगर, ७६ कु. अरुणा (१५) मुरादनगर, ७७ कैलाशचन्द्र (१३) अलीराजपुर, ७८ संजीवकुमार (१०) दिल्ली, ७९ बलराम (२९) दिल्ली, ८० विपिनचन्द्र (४३) दिल्ली, ८१ वृजेन्द्रनाथ (१६) लखनऊ, ८२ पुरुषोत्तम (१६) निवाई, ८३ चन्द्रकरन (२०) ब्यावर, ८४ लालसिंह (१८) बड़नगर, ८५ सुरेन्द्रकुमार (१०) जयपुर, ८६ जयकुमार बसंतराव (१६) देवास, ८७ शीलचन्द्र (१४) हटा, ८८ इन्द्रप्रकाश (१६) दिल्ली, ८९ यशवंत (१६) सिवनीमालवा, ९० सतीशकुमार (१४) बम्बई, ९१ जवाहर (१४) इन्दौर, ९२ कु. मीरा (१७) बीना, ९३ भूपेन्द्र (१७) उदयपुर, ९४ राजेन्द्र (१७) इन्दौर, ९५ परशुराम (१५) जेलगढ़ा, ९६ रमेशचन्द्र (१८) मैनपुरी, ९७ नारायण (१९) दिल्ली, ९८ सुरेन्द्रकुमार (१३) जोधपुर, ९९ अमरिन्द्रजीत (१४) दिल्ली, ७६०० लक्ष्मणकुमार (१८) जबलपुर, १ नरेशकुमार (१७) शिमला, २ मनमोहन (१५) ब्यावर, ३ गोविन्दप्रसाद (१७) महू, ४ जीवनभाई (२०) लीवोंद्रा, ५ अशोककुमार (१०) भोगाँव, ६ प्रमोदकुमार (१५) उज्जैन, ७ कु. अमरगीती (१४) अजमेर, ८ महेशचन्द्र (१६) कोसी कलाँ, ९ वैदेहीशरण (१७) जमशेदपुर, १० शैलेन्द्रकुमार (९) किशनपुर, ११ जीतेन्द्रकुमार (१३) भागलपुर, १२ ओमप्रकाश (१५) लखमिनियाँ, १३ प्रदीप (१५) कानपुर, १४ रमेश (२०) तारापुर, १५ घनश्याम (१४) तारापुर, १६ आलोककुमार (१३) गोरखपुर, १७ रामअधार (१४) अहरौला, १८ सन्तोषकुमार (१४) लश्कर, १९ शम्भूशरण (१०) कैरिया, २० महेशबिहारीलाल (१८) नई दिल्ली, २१ चैतन्यदेव (१८) फर्रुखाबाद, २२ निर्मलकुमार (१४) बड़वासी, २३ आनन्दकुमार (१६) नजफगढ़, २४ श्यामप्रसाद (१५) जयनगर, २५ नटवरलाल (१५) महू, २६ सीताराम (२८) महू, २७ नरेन्द्रकुमार (१२) भिवानी, २८ सोभागचन्द (१६) लाडनूँ, २९ जीवराम (१७) रायपुर, ३० अजीत (१३) नागदा, ३१ दीन दयाल (१२) गौदारी, ३२ अमरीक (१५) सहारनपुर, ३३ राजेन्द्र (१२) सवाईमाधोपुर, ३४ अनन्तराम (१७) जबलपुर, ३५ राधाकृष्ण (१७) पिपरिया, ३६ सत्यप्रकाश (१५) लश्कर, ३७ नरेन्द्रकुमार (१३) आगरा, ३८ त्रिलोकचन्द्र (११) मांगलिया, ३९ विनोदकुमार (१६) हरौली, ४० गोपालचन्द्र (१६) बागबाहरा, ४१ रवीन्द्रनाथ (१६) कूँड़ाघाट, ४२ लक्ष्मीकान्त (१७) इन्दौर, ४३

देवदास
(स. सं. ८४३

पवनकुमार
(स. सं. ८८१

विजयकुमार
(स. सं. ८८१

रामसुन्दर
(स. सं. ९१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बसन्तकुमार
(स. सं. ९१४१)

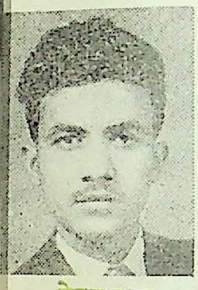

वेदप्रकाश
(स. सं. ९४५२)

कौशिकराय
(स. सं. ९७७१)

सुभाष भाटिया
(स. सं. १०२०२)

नुसतकुमार (१२) निरबुसालियरोड, ४४ जसविन्दरसिंह (१०) डालटनगंज, ४५ भूषणकुमार (१५) छिन्दवाड़ा, ४६ पूरनमल (१४) खरसिया, ४७ प्रेमचन्द (१८) कतरास बाजार, ४८ विश्वनाथ (१५) बाह, ४९ राजनचन्द्रकान्त (१२) देवास, ५० नरेन्द्रप्रसाद (१३) गिरिडीह, ५१ श्यामनारायण (१५) इलाहाबाद, ५२ गोपालकृष्ण (१४) अलीगढ़, ५३ रमेशकुमार (१५) बरौनी जंकशन, ५४ बजरंगलाल (१५) सक्ती, ५५ रामनरेश (१५) नेतरहाट, ५६ कृष्णकुमार (१७) लखनऊ, ५७ खैराजमल (१६) इटारसी, ५८ हरिद्वारलाल (१९) डालटनगंज, ५९ हेला रामचरन (१७) बर्नपुर, ६० विट्ठल भाई (१८) महेमदाबाद, ६१ भेदीराम (२२) तुमसर, ६२ सुरेन्द्रकुमार (१६) जोधपुर, ६३ नरेशकुमार (११) इन्दौर, ६४ स्नेहकुमार (१४) देवघर, ६५ निशिकान्त (१६) किशनगंज, ६६ कृष्णमोहन (१५) सबौर, ६७ आनन्दीप्रसाद (१२) दानापुर, ६८ श्रवणकुमार (१८) मेरठ, ६९ रामपाल (१७) हथनापुर, ७० सुरेशकुमार (१०) मदनगंज ७१ कृष्णकुमार (१२) मदनगंज, ७२ महेशचन्द्र (१६) विदिशा, ७३ हरिश्चन्द्र (१५) जमशेदपुर, ७४ दिलीपकुमार (१२) जमशेदपुर, ७५ शिवकुमार (१५) रायपुर, ७६ दिनेशचन्द्र (१६) शिवपुरी, ७७ सन्तोषकुमार (१४) सागर, ७८ अवतार (१४) नई दिल्ली, ७९ गोपालकृष्ण (१३) जयपुर, ८० विपिनकुमार (१४) सिकन्दराबाद, ८१ सज्जनसिंह (१५) उदयपुर, ८२ सुधीरकुमार (१२) इटावा, ८३ आलोककुमार (७) बस्ती, ८४ अनिलेशकुमार (१५) बस्ती, ८५ प्रहलादराय (१५) सीकर, ८६ रामसिंह (१६) श्रीगंगानगर, ८७ अम्बिकाप्रसाद (१५) शिवपुर, ८८ श्रीपादनारायण (१४) बस्ती, ८९ कु. विजया (१६) बस्ती, ९० कु. मैमूना (२२) नासिक, ९१ कु. लक्ष्मीबाई (१२) बेलपहार, ९२ राधाकृष्ण (१५) पटना, ९३ चन्दादेवी (११) नौरंगाबाद, ९९ मंगलराम (१८) बराँवकाला, ९५ सुरेन्द्रकुमार (१२) जयपुर, ९६ सुरेन्द्रकुमार (१२) आगरा, ९७ आनन्दकुमार (१५) सतना, ९८ अशोककुमार (१२) आगरा ९९ कृष्णकुमार (१४) कुरुक्षेत्र, ७७०० प्रदीपकुमार (१६) किशनगंज, १ जगदीश्वर (१५) सौनी, २ सुभाषचन्द्र (१६) दिल्ली, ३ सत्यपाल (१६) शाहदरा, ४ शम्भुप्रसाद (१४) चम्पारण, ५ हरिवंश (१७) चकिया, ६ अशोककुमार (१५) लखनऊ, ७ कुमार बैराखी (१५) राँची, ८ शिवदत्त (१५) कुरुक्षेत्र, ९ रामलाल (१७) मनासा, १० अरुणकुमार (१३) पटना, ११ गणेशचन्द्र (१३) बागबाहरा, १२ अरविन्दकुमार (१३) कटिहार, १३ नरेन्द्रकुमार (११) दतिया, १४ देवेन्द्र (१५) इनई, १५ शिवकुमार (१७) ऋषीकेश, १६ प्रतापचन्द्र (१२) काजिमाबाद, १७ राजीव (१२) ग्वालियर, १८ सुलोमप्रकाश (१७) अलीगढ़, १९ रघुनाथप्रसाद (१८) भागलपुर, २० विनोदकुमार (१४) रीवाँ, २१ राजेन्द्रप्रसाद (१६) बिजनौर, २२ विष्णुप्रकाश (१४) अजमेर, २३ अनूपकुमार (१६) जैतवार, २४ कु. अर्चना, (१४) जैतवार, २५ अयोध्याप्रसाद (१६) सतना, २६ दिलीप (१६) बम्बई, २७ विनोदचन्द्र (१२) अलीगढ़, २८ योगेशचन्द्र (१४) अलीगढ़, २९ मेकवान (१४) थासद, ३० जगदीशचन्द्र (१४) सुसनेर, ३१ अजीतकुमार (१०) बरियातू, ३२ रमेशचन्द्र (१५) देवली, ३३ ललितकुमार (१५) जगदलपुर, ३४ रविकान्त (१४) जबलपुर, ३५ देवेन्द्रकुमार (१६) भोपाल, ३६ सुदर्शनकुमार (१८) मेरठ, ३७ रतीशचन्द्र (१४) समस्तीपुर, ३८ अशोककुमार (१२) बाढ़, ३९ अश्वनीकुमार (१४) रतलाम, ४० धनराजप्रसाद (१८) गांगई, ४१ सच्चिदानन्द (९) राँची।

मानेशंकर
(स. सं. १०८२७)

बलजीतसिंह
(स. सं. १०९७९)

जयप्रकाश
(स. सं. ११००९)

कृष्णकुमार
(स. सं. ११०२२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव-विज्ञान

की

हाई स्कूल तथा हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए

पृष्ठों में प्रयोगशाला

का प्रयोजन प्रस्तुत करती हैं

प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान

एवं

प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान

लेखक—आर. डी. विद्यार्थी
एम.एस-सी., एफ.एन.ए.

सरल चित्रों, अभ्यास-पाठों, उपयोगी प्रश्नों तथा

पृथक् अभ्यास के लिए अन्त में सादे पृष्ठों सहित

ये प्रकाशन

अपने ढंग के अनूठे हैं।

मूल्य प्रत्येक का २) : रजिस्टर्ड डाक-व्यय १) प्रति सेट

प्रकाशक

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४८

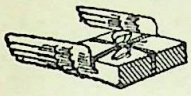

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : ३१ जनवरी

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५५ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४८ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ जनवरी तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४८ के प्रश्न

१. मंगल ग्रह पृथ्वी के निकटतम किस दूरी तक और कब-कब आता है ?

२. वैकुअम क्लीनर का आविष्कार किसने किया ?

३. लिडाइट (lyddite) क्या है, कैसे बनाया जाता है ?

४. डी. सी. तथा ए. सी. विद्युतधाराओं का प्रतिरोधन किस यंत्र द्वारा कम या अधिक किया जा सकता है ?

५. हिरन के पंजे में कितनी उँगलियाँ होती हैं ?

६. चाहे जहाँ घिसने पर जलनेवाली दियासलाई का आविष्कार कब और किसने किया ?

७. किसी प्रबल विस्फोट के कारण प्रायः इमारतों को दोहरी हानि किस प्रकार पहुँचती है ? स्पष्ट कीजिए।

८. प्लेटिनाइट (platinite) क्या है, किस काम आता है ?

९. पृथ्वी के किस भाग पर सूर्यास्त के समय सूर्य चमकीले हरे रंग का दिखता है ?

१०. बढ़िया फाउन्टेन पेन के स्वर्ण निब का पॉइण्ट किन धातुओं का बनाया जाता है ?

प्रतियोगिता संख्या ४६ के प्रश्नों के उत्तर

१. इलेक्ट्रोएन्सेफेलोग्राफ (electroencephalograph) द्वारा।

२. यह रेडियोसक्रिय स्ट्रान्शियम है जो परमाणु बम के विस्फोट के पश्चात् वायुमण्डल में ऊँचा उठता हुआ स्ट्रेटोस्फीयर तक पहुँच जाता है। वहाँ वर्षा के जल में मिश्रित होकर पृथ्वी पर बरसता है तो वनस्पतियों को विषाक्त कर देता है। उन वनस्पतियों के उपयोग से अस्थि-कैंसर (bone cancer) जैसे घातक रोग मनुष्य को घेर लेते हैं।

३. इसे नाइटशेड (Nightshade) कहते हैं। इसका सत् एट्रोपीन (Atropine) नेत्र-चिकित्सा में बहुत काम आता है। इसकी बूँद, दो बूँद पुतलियों को फैला देती है जिससे नेत्र काफी बड़े प्रतीत होते हैं। प्राचीन इटालियन महिलाएँ इसका उपयोग सौन्दर्यवृद्धि में करती थीं।

४. पूँछ के सिरे पर।

५. कम से कम २१५,००० मील की दूरी पर।

६. लेवाशिये (Lavoisier) ने १७७० में।

७. कम से कम १८,००० मील प्र.घ. के वेग से।

८. मोटे शीशे का गिलास पहले चटखेगा क्योंकि बाहर-भीतर की सतहों का असमान प्रसारण पतले गिलास की अपेक्षा अधिक रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

प्रवीण शाह (९७६०) गोंदिया

प्रश्न—ऑटो वान ग्वेरिक (Otto Van Guerick) कौन था और किस लिए प्रसिद्ध है ?

उत्तर—जर्मन वैज्ञानिक था। वायु का दाब सिद्ध करने का इसका वह सार्वजनिक प्रदर्शन (१६५४) प्रसिद्ध है जिसमें दो गोलार्द्धों को निर्वात तथा सील-बन्द करके दोनों ओर ८-८ घोड़ों का बल लगाने पर भी पृथक् न किया जा सका था।

परमानन्द पटेल (५९६) सक्ती

प्रश्न—लिटमस का घोल किस प्रकार बनाया जाता है ?

उत्तर—प्रायः पत्थरों के बीच उगने वाली लाइकेन (lichen) नामक फन्जाई से बनाया जाता है। उक्त फन्जाई को खमीर की भाँति उठाया जाता है, तत्पश्चात् उस पर पोटैशियम कार्बोनेट की प्रक्रिया करायी जाती है। औद्योगिक रूप से बड़े पैमाने पर हालैण्ड तथा दक्षिणी अफ्रीका में उत्पादित किया जाता है। प्रयोगशाला में संश्लेषित रूप से भी बनाया जा सकता है।

रोहितासचन्द्र (१०९४५) सिरसा

प्रश्न—मोम कैसे बनता है ? कहाँ से प्राप्त होता है तथा इसमें क्या-क्या पदार्थ रहते हैं ?

उत्तर—यह अनेक जन्तुओं तथा वनस्पतियों से प्राप्त होता है। अधिकतर तो शहद की मक्खियों के छत्ते को पानी में उबालने से ऊपर तिर आता है। संश्लेषित रूप से भी बनाया जाता है। इसमें १२-१५% सेरोटिक अम्ल (cerotic acid) तथा ८०-८५% माइरिसिन (myricin) रहता है।

शिवराजकिशोर (११८३८) मेरठ

प्रश्न—क्रिप्टोगेमी (cryptogamy) का क्या अर्थ है ? उदाहरण भी दीजिए।

उत्तर—'क्रिप्टास' अर्थात् गुप्त और 'गेमी' अर्थात् विवाह। वनस्पति-विज्ञान में यह नाम पौधों के उस उपवर्ग का है, जिनमें वृक्ष पुष्पित न होकर केवल बीजाणुओं द्वारा ही पुनरुत्पन्न होते हैं।

पुरुषोत्तमलाल अग्रवाल (७१६७) गुना

प्रश्न—लेसर-किरण की खोज किसने की और कब ?

उत्तर—डा. सी. एच. टाउन्स तथा डा. ए. एल. शेलो ने संयुक्त रूप से १९५८ में।

निरंजनप्रकाश (३६१६) पुष्कर

प्रश्न—$E = mc^2$ इस समीकरण से क्या तात्पर्य है ? संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—यह वह प्रसिद्ध समीकरण है जो महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने २६ वर्ष की युवावस्था में प्रस्तुत करके रेडियोसक्रिय ऊर्जा का स्पष्ट ज्ञान सर्वप्रथम कराया था। इसमें E ऊर्जा है, m संहति है और c प्रकाश की गति की संख्या का वर्ग है। दूसरे शब्दों में ऊर्जा उस संहति के समान है जो संहति प्रकाश-गति के वर्ग से गुणनफल करके प्राप्त होती है।

वी. उदगीथराव (९७७५) मद्रास

प्रश्न—समुद्री मील (nautical mile) क्या है और कैसे मापा जाता है ?

उत्तर—यह मील ६०८० फुट का माना जाता है। जहाज की गति लॉग (log) यन्त्र के द्वारा मापी जाती है। इस यन्त्र में नीचे की ओर दो छिद्र होते हैं, जिनमें एक में से लम्बी रस्सी गुजरती है। उस रस्सी में निर्धारित अन्तरों पर गाँठें बाँधे रखते हैं जिनसे मापने में सुविधा रहती है। उन गाँठों अर्थात् नाट्स (knots) से ही जहाज की गति 'नाट्स' में अंकित की जाती है।

अरुणकुमार (७५५१) बुलन्दशहर

प्रश्न—मिट्टी के तेल में कौन-कौन से ज्वलनशील पदार्थ होते हैं ?

उत्तर—यह पेट्रोलियम से प्राप्त होता है। अतः इसमें ज्वलनशील द्रवीय हाइड्रोकार्बनिक पदार्थ रहते हैं। विभिन्न उपयोगों के लिए इसे भिन्न-भिन्न श्रेणी तक शोधित किया जाता है।

श्यामनारायण (१०२९२) बीकानेर

प्रश्न—बिजली के पंखे को मन्द अथवा तेज चलाने पर बिजली कम-ज्यादा खर्च होती है क्या ?

उत्तर—तेज चलते हुए को मन्द करने पर खर्च में कमी नहीं पड़ती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुभाषचन्द्र मेहता (१०५६२) कानपुर

प्रश्न—सबसे अधिक आयु प्राप्त, आज भी जीवित वस्तु कौनसी है और कहाँ है ?

उत्तर—केलीफोर्निया (अमरीका) के अति विशालकाय रेडवुड (redwood) वृक्ष, ५००० से भी अधिक वर्ष के हैं।

रविन्दरसिंह (३८१७) इटारसी

प्रश्न—हीलियम की सर्वप्रथम किसने खोज की ?

उत्तर—लाकियर (Lockyer) ने १८६८ में।

गिरीशकुमार वर्मा (१०७६५) सबलगढ़

प्रश्न—विरंजक चूर्ण क्या है, किस प्रकार बनाया जाता है ?

उत्तर—इसका व्यावसायिक नाम ब्लीचिंग पाउडर है। छोटे या बड़े पैमाने पर यह बुझे हुए चूने को क्लोरीन गैस के साथ क्रिया कराने पर बनाया जाता है। सफेदी लाने के अतिरिक्त यह तीव्र कृमि-नाशक भी है और इसका उपयोग जहरीली मस्टर्ड गैस (mustard gas) को निष्क्रिय करने में भी होता है।

कामताप्रसाद (८२१३) सीकर

प्रश्न—क्या कारण है कि बद्रीनाथ जैसे ठण्डे स्थानों में भी गर्म पानी के कुण्ड मिलते हैं ?

उत्तर—स्थानों की ठण्डक बाह्य कारणों—हिम आदि—से होती है। पृथ्वी के गर्भ से उन बाह्य कारणों का न कोई सम्बन्ध है, न प्रभाव ही। गर्म कुण्ड तो भू-गर्भ के निवासी हैं और जब भी, जहाँ भी, अवसर पाते हैं, फूट निकलते हैं। इनका विस्तृत विवरण विज्ञान-लोक मई, ६३ में प्रकाशित है। केवल बद्रीनाथ ही क्यों, हिमाच्छादित ध्रुवीय देशों में भी गर्म जल के कुण्ड बहुतायत से पाये जाते हैं।

वृजेश्वरप्रसाद (३९७२) ललितपुर

प्रश्न—एस्केलेटर (escalator) **और लिफ्ट में मुख्य अन्तर क्या है ?**

उत्तर—लिफ्ट से तुम्हारा आशय एलीवेटर (elevator) से है। एलीवेटर द्वारा तो तुम एक केबिन में खड़े-बैठे, चाहे जिस मंजिल पर चढ़ सकते हो, जबकि एस्केलेटर एक घूमती हुई सीढ़ी है, जिसके एक ही पग पर खड़े-खड़े तुम ऊपर पहुँच जाओगे और पूरी सीढ़ी न चढ़नी पड़ेगी।

उत्सवलाल (१०४९८) अजमेर

प्रश्न—काम्प्टन प्रभाव क्या है ?

उत्तर—१९२३ में ए. एच. काम्प्टन द्वारा एक्स-किरणों का वह तथ्य है जिसके अनुसार मुक्त विचरते इलेक्ट्रॉनों द्वारा एक्स-किरणें विशृंखलित हो जाती हैं और फलतः उनकी तरंग-लम्बाई बढ़ जाती है।

सुबोधकुमार जैन (१००७७) मेरठ

प्रश्न—सितार में लगे हुए तार से तो ध्वनि उत्पन्न की जा सकती है किन्तु उसी तार को दीवार पर दो खूँटियों से तान दें तो वैसी ध्वनि क्यों उत्पन्न नहीं होती ?

उत्तर—सितार के नीचे जो तुम्बा लगा होता है वह गूँज (resonance) उठाने का काम करता है। उसके अभाव में वैसी ध्वनि उत्पन्न नहीं की जा सकती। एक स्वरित्र को (tuning fork) को बक्से पर रखकर तथा अधर उठाकर बजाने पर रहस्य ज्ञात हो जाएगा।

देवेन्द्रकुमार भारल (७७३५) भोपाल

प्रश्न—एनेमलिंग (enamelling) **किस प्रकार किया जाता है ? इसका आरम्भ कब से हुआ ?**

उत्तर—कदाचित तुम्हारा आशय एनेमल पेंटिंग से है। इसके आरम्भ का निश्चित सूत्र अभी तक नहीं मिल पाया है। अब तक के प्राप्य अवशेषों तथा चिह्नों पर आज से ६००-७०० वर्ष पूर्व भी इस कला के सूत्र मिलते हैं। साधारणतया तो धातु अथवा चीनी मिट्टी के पात्रों पर रंग-बिरंगे धात्विक आक्साइड अथवा विविध खनिज पदार्थों को बारीक काँच के साथ मिश्रित करके चित्रकारी में भर दिये जाते हैं। तत्पश्चात् भट्ठी के उच्च ताप में गर्म करने पर वह पिघलकर इकसार हो जाता है और ठण्डा होने पर काँच अपनी चमक का गुण प्रदर्शित करता है।

आलोक भट्टाचार्य (८७००)

प्रश्न—खजूर का वृक्ष कितने समय तक फल दे सकता है ?

उत्तर—८ वर्ष की आयु से आरम्भ करके प्रायः १०० वर्ष तक।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र को सुरक्षा के लिए

जरूरत है

बड़े पैमाने पर नवीनतम अस्त्र-शस्त्रों की

और

तेजी से औद्योगिक विकास की।

दोनों कार्यों के लिए

बहुत बड़ी मात्रा में धन की

आवश्यकता है।

हमें क्या करना है ?

"हम अधिक से अधिक पैसा बचाएँ, उसे रक्षा बांडों में लगाएँ और देश की रक्षा के काम को आगे बढ़ाएँ।"

—जवाहरलाल नेहरू

अधिक से अधिक बचत कीजिए

और

बचत का धन

राष्ट्रीय सुरक्षा बचत योजनाओं—

- १० वर्षीय सुरक्षा डिपाजिट प्रमाण पत्र
- १२ वर्षीय राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमाण पत्र

में लगाइए।

बचत योजनाओं में लगाया गया धन

आपके और देश के काम आता है

सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करो और देखो—

एक बाल मौसम का हाल!

शिम्भूशरण (स. सं. १५०४)

मौसम का हाल, विशेषत: वायु की आर्द्रता मापने के लिए मौसमघरों में जटिल यंत्रसज्जा रखनी पड़ती है। आप एक सरल और सस्ता वायु-आर्द्रतामापी बना सकते हैं। आर्द्रता ज्ञात हो जाने पर आने वाले मौसम का अन्य सरसरा पूर्वज्ञान भी तनिक अभ्यास के अनन्तर होने लगता है।

आवश्यक वस्तुएँ

१ लकड़ी की पट्टी ½ इंच मोटी, २ इंच चौड़ी, १२ इंच लम्बी; १ दफ्ती का टुकड़ा, दो ½ इंच के पेच, १ लोहे या पीतल का छल्ला, १ लगभग १२ इंच लम्बा बाल।

अब शुरू कीजिए

दफ्ती में से लकड़ी की पट्टी के बराबर १२ × २ इंच की एक पट्टी काट लीजिए। उसे सरेस द्वारा उस पट्टी पर चिपका दीजिए। बची हुई दफ्ती में से ३ इंच लम्बी सुई घड़ी के काँटे जैसी, चित्र में दिखाए अनुसार काट लीजिए। नीचे की नोक को स्याही से रंग लीजिए और ऊपर के सिरे पर पेच की मोटाई के बराबर एक सूराख कर लीजिए। कागज की दो बेलनाकार बत्तियाँ पेन्सिल पर चढ़ाकर बना लीजिए। पट्टी के ऊपरी सिरे पर एक पेच कस दीजिए और ७ इंच नीचे, दूसरा पेच इतना ढीला कसिए कि वह गरारी की तरह घूम सके। दोनों पेचों पर कागज की १-१ बत्ती लपेट दीजिए। अब बाल के एक सिरे में छल्ला बाँधकर उसका दूसरा सिरा ऊपर वाले पेच पर कसकर बाँध दीजिए। दूसरे पेच पर बाल की केवल एक लपेट देकर छल्ले को लटकने दीजिए। गत्ते की सुई जो आपने बना रखी है, उसे इस दूसरे पेच पर फिट बिठा दीजिए। पट्टी के नीचे बायें कोने पर 'शुष्क' और दायें कोने पर 'आर्द्र' शब्द लिख दीजिए। आपका आर्द्रतामापी तैयार हो गया।

अब इसे काम करने दीजिए

इस आर्द्रतामापी को कमरे की ऐसी सपाट दीवार पर टाँगिए जैसे घड़ी टाँगते हैं। सही, सपाट दीवार पर टँगा हुआ आपका यह यन्त्र अपने उस छल्ले को मुक्त रूप से हिलने देगा जैसे घड़ी का पेण्डुलम।

ज्यों ही वायु में आर्द्रता बढ़ेगी, बाल उससे प्रभावित होकर लम्बाई में तनिक बढ़ेगा। फलस्वरूप बीच के पेच पर लपेट में अन्तर आ जाएगा और सुई कुछ ऊपर को उठकर दायीं ओर 'आर्द्र' संकेत को इंगित करेगी। इसी प्रकार वायु में शुष्कता बढ़ने पर क्रियाविधि उलटेगी और सुई बायीं ओर 'शुष्क' शब्द की ओर आपका ध्यान खींचेगी। ●

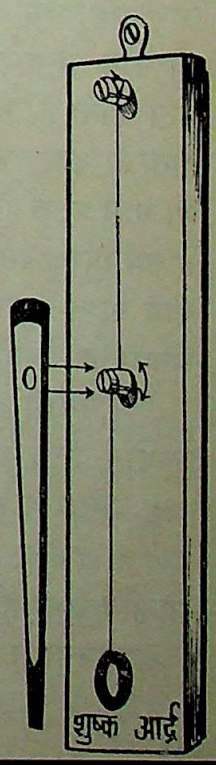

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी कलम से—

बहुउपयोगी मोम

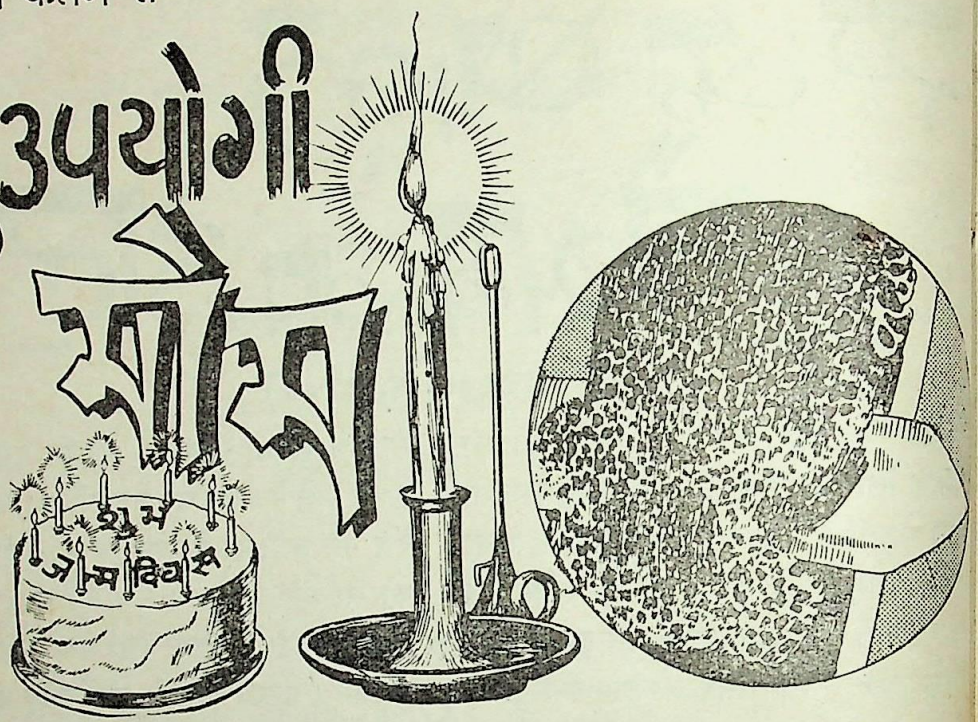

एन. जे. आसनाणी (स. सं. १०१८६)

मोम भले ही बहुत आकर्षक न हो, परन्तु वर्षों से हमारे लिए उपयोगी रहा है। मोम सबसे पहले कैसे प्राप्त हुआ उसके बारे में हम बहुत निश्चित नहीं हैं। मोम कई पदार्थों से प्राप्त होता है। तम्बाकू, सेब, नाशपाती तथा बल्क और चीड़ के वृक्षों से भी मोम प्राप्त होता है। गुलाब के तेल में मोम होता है, मधुमक्खियों के छत्तों में मोम होता है; यहाँ तक कि मगरमच्छ के यकृत से भी मोम प्राप्त होता है। रसायन में पेट्रोलियम से सर्वप्रथम, बर्मा पेट्रोलियम द्वारा १९४९ में मोम प्राप्त किया गया था।

अनेकानेक उपयोग

मोमबत्ती बनाने में मोम का प्राथमिक उपयोग होता था। आज भी होता है। इसके रासायनिक व भौतिक गुणों के कारण आज-कल तो इसका उपयोग अनेक व्यवसायों में भी होने लगा है।

मोमवाला कागज बनाने के लिए इसका उपयोग प्रचुरता से होता है। बिस्कुट, वेफ चाकलेट आदि को एयरटाइट पैक करने विशेषतः मोमी कागजों का उपयोग हो है। इन कागजों की सहायता से खाद्य-पदा को सीलन से बचाया जा सकता है। मो चढ़ी हुई लकड़ी पर अम्लों तथा क्षारों दुष्प्रभाव नहीं पड़ता, अतः प्रयोगशाला टेबिलों पर मोम की परत चढ़ायी जाए उन्हें खराब होने से बचाया जा सकता है वाटरप्रूफ वस्तुएँ बनाने में भी मोम अधिक उपयोग होता है।

कुछ जगहों पर दियासलाई की तीलि पर मोम लगाया जाता है। अनेक विद्यु यंत्रों में भी मोम का उपयोग होता है। मो विद्युत-प्रतिरोधक भी है। इसलिए समुद्र बिछाये जाने वाले केबुलतारों के संधान त ट्रांसफार्मर में भी इससे काम लिया जाता

कपड़ा, चमड़ा, डोरी आदि पर भी म लगाया जाता है। सूत को मोम से घिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उससे वाटरप्रूफ कपड़ा बनाया जाता है। जूते की पालिश बनाने में इसका बड़े पैमाने पर उपयोग होता है।

मोम के उपयोगों की सूची और भी बढ़ायी जा सकती है। सन्तरे, नीबू, आम वगैरह फलों को सुरक्षित रखने तथा उनका संग्रह करने को उन पर मोम का आवरण चढ़ाया जाता है। दवाओं और शृंगार-प्रसाधनों में भी मोम का उपयोग किया जाता है।

जब पहली मोमबत्ती बनी

मध्ययुगीन मिस्र देश की बात है, एक धर्माचार्य भेड़ की चर्बी को पिघलाकर अपनी मशालें उसमें डुबो रहा था। उसका आशय था कि इस प्रकार वे मशालें अधिक देर तक तीव्र प्रकाश देती रहेंगी। पास ही एक प्याले में सूत की बटी हुई २-३ बत्तियाँ पड़ी थीं। अचानक थोड़ी-सी पिघली हुई चर्बी उस प्याले में छलक पड़ी। कार्य समाप्त होने पर उन्होंने उन बत्तियों को उठाना चाहा तो वे जमी हुई चर्बी समेत उठ आयीं। उनके सिरे को उन्होंने जलाया तो वे भी तीव्र प्रकाश देने लगीं। इससे पूर्व ऐसा प्रयोग कहीं नहीं किया गया था। माना जाता है कि मोमबत्ती बनाने का वही प्रथम सफल प्रयोग था।

रासायनिक गुण

रासायनिक दृष्टि से देखें तो मोम 'पैरेफिन' अर्थात हाइड्रोकार्बन है। इसमें पन्द्रह से लेकर सत्तावन तक कार्बन के परमाणु होते हैं। रुथेनियम उत्प्रेरक से जो पैरेफिन प्राप्त होता है, उसमें ६७० तक कार्बन-परमाणु रहते हैं। भौतिक दृष्टि से मोम अर्द्ध-पारदर्शक पदार्थ है। यह पीला तथा सफेद होता है। विभिन्न मिश्रणों द्वारा रंगीन मोम भी प्राप्त किया जा सकता है। सामान्यतः मोम ४८°C ताप पर पिघलता है किन्तु विशेष विधि से तैयार किया गया मोम ९०-९५°C ताप तक बगैर पिघले रह सकता है।

द्रवीय मोम से मोमबत्तियाँ बनाता हुआ कुशल कारीगर

चर्च अतलांतिक पार करेगा

क्रिस्टाफर रेन ने १६७० से १६८६ तक परिश्रम करके लन्दन में जो ऐतिहासिक सेन्ट मेरी चर्च बनाया था वह बमबारी द्वारा ध्वस्त पड़ा हुआ है। अमरीका उस चर्च को अतलांतिक पार कराकर अपने यहाँ प्रतिष्ठापित करेगा। यह इसलिए कि ब्रिटेन के अवकाश प्राप्त प्रसिद्ध प्रधान-मन्त्री चर्चिल जब फल्टन (अमरीका) की वेस्टमिनिस्टर कालेज में १९४६ में गये थे तब उन्होंने जो वक्तव्य दिया था वह आज भी स्मरणीय है। उसी स्मृति को मूर्त रूप देने के लिए निर्णय किया गया है कि लन्दन के इस चर्च की ईंट-ईंट, पत्थर और मलबे को ढोकर अतलांतिक पार अमरीका लाया जाए और उसी कालेज के निकट इसे पुनः खड़ा किया जाए। इसके परिवहन की लागत का अनुमान मात्र एक करोड़ रुपये का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशिष्ट वर्ग एकत्रित हों तो

हाईलैण्ड चीफ

माल्टेड व्हिस्की

एक अरोध्य प्रलोभन है

जब कभी मित्रगण सम्मिलित होते हैं तो अच्छी व्हिस्की से अधिक सुखद और कुछ नहीं है। उस सभा को अविस्मरणीय बनाने के हेतु आप उत्तम विधि तथा सावधानी से मिश्रित हाईलैण्ड चीफ से अधिक अच्छा चुनाव नहीं कर सकते।

डायर मीकिन ब्रूअरीज़ लि० स्थापित १८५५

जगदीश मेहरा द्वारा एज्युकेशनल प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा के लिए प्रका
[मुखपृष्ठ बृजवासी फाइन आर्ट ऑफसेट वर्क्स, मथुरा में मुद्रित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH
WORKBOOK

- A modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.
Book II.....Price : Re. 1.00
Book III.....Price : Re. 1.20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.

Educational Publishers, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price: 75 nP. January 1964 Regd. No. A 1410

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीहारिका

कहानी मासिक

६० नये पैसे

अब ----------

सब जगह उपलब्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

७५ नये पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अन्दर पढ़िए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये विचित्र धानीधुक्त प्राणी	३
—कुमारी प्रमिला	
विद्युतोत्पादन के नये साधन	११
—जगदीशचन्द्र गोविल	
प्लैनेटेरियम	१५
—गुणाकर मुले	
पुनर्नवा	१८
—आर. एन. सिंह	
गीयर	२३
—मनोज श्रीवास्तव	
हमारी आँख	२७
—डा. त्रिलोक मजूपुरिया	
टीशो ब्रेह	३०
—राजेन्द्रकुमार	
नाइट्रोजन	३३
—सत्यकुमार	
मर-मरकर जीते हैं ये मृत्युंजयी प्राणी	३९
—जगदीशचन्द्र अग्रवाल	
प्रकृति संतुलन बनाती है, हम बिगाड़ते हैं	४३
—बनवारीलाल	
मॉल्चिंग	४८
—बृजेन्द्रप्रसाद पालीवाल	
उड़ते पंछी, देश पराये	५४
—प्रेमलाल टण्डन	

स्थायी स्तम्भ

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ	३८
विचित्र संसार	५१
विज्ञान क्लब	५७
इनाम लो	६०
करो और देखो	६१
तुम्हारी कलम से	६३
आपके प्रश्न	६४

वर्ष ५

अंक १

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

अपनी बात

इस अंक से **विज्ञान-लोक** अपने पाँचवें वर्ष
कर रहा है। नूतन वर्ष-प्रवेश के इस अवसर प
चार वर्षों की अपनी उपलब्धियों की ओर विह
करते हुए आत्मसन्तोष तो होता ही है, आभार
गौरवानुभव भी होता है कि सुहृद् पाठकों औ
लेखकों ने जिस मुक्त स्नेह और सहयोग का
समझा है, वह स्वयं में असीम है।

हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य अभी शैशव
है। अभी इस लक्ष्य के आगे काफ़ी दीर्घ यात्राप
और उस पथ पर अग्रसर होते हुए लक्ष्य मि
प्रत्येक विज्ञानरत व्यक्ति का पुनीत कर्तव्य है।
वैज्ञानिक गति-प्रगति से हम आज ही परिचि
भारत के जन-जन से अपेक्षित है। इसके लिए
गतिविधियों से सम्पर्क बनाये रखना आवश्यक है
ही, यह तभी सम्भव होगा जब हमारा वैज्ञानि
परावलम्बी न रहकर स्वाश्रयी बने।

विज्ञान-लोक इस लक्ष्य-पूर्ति में अपना
योग जिस रूप में विगत चार वर्षों से देता
उसका श्रेय सुहृद् पाठकों तथा सुविज्ञ लेखकों
आशा है, नये उत्साह से इस नये वर्ष में
संचित अनेक अभिलाषाओं के अनुसार समय
नया देते रहकर **विज्ञान-लोक** को जन-जन के
निकट ला सकेंगे।

यह सब आप ही के सहयोग से सम्भव है

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रागैतिहासिक युग के प्रतीक विचित्र धानीयुक्त प्राणी

कुमारी प्रमिला

अनेक विचित्रताओं से भरे और केवल आस्ट्रेलिया तथा अमरीका में पाये जाने वाले कुछेक धानीयुक्त प्राणी आज भी विचर रहे हैं और लाखों वर्ष पूर्व, सृष्टि के आरम्भ में भी थे। मोटे तौर पर इन्हें पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है—दो गर्भाशय-युक्त (*Didelphids*); धब्बेदार पूँछयुक्त (*Dasyurids*); नन्हे (*Caenolestids*); खरगोश के आकार के (*Peramelids*) तथा अंगुलियों से अधिक काम लेने वाले (*Phalangerids*)। इनके उत्पत्ति-इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा सहित इनमें से कुछेक अति विचित्र प्राणियों का सामान्य परिचय इस लेख में प्रस्तुत है।

ऐसी थी पृथ्वी उन दिनों

अनुमान है कि आरम्भकाल में हमारे इस ग्रह पर न ऊँचे पर्वत थे, न गहरी घाटियाँ; न हिमाच्छादित ध्रुव प्रदेशों की ठिठुराती सर्दी और न मरुस्थलों का झुलसाता ताप। सर्वत्र लगभग एक समान ही जलवायु था और गहरे सागरों की अपेक्षा कम गहरे समुद्र पृथ्वी को घेरे हुए थे। परिणामतः पृथ्वी पर वनस्पतियों का एकछत्र राज्य था। वे परिस्थितियाँ उन दैत्याकार जन्तुओं के लिए सर्वथा उपयुक्त थीं, जिन्हें हम डिनासर कहते हैं। जन्तु-जगत के नाम पर भी जिधर देखिए, रेप्टाइल ही रेप्टाइल छाये हुए थे।

दाँतों बीच बेचारी जीभ

उन कम अनुकूल परिस्थितियों में भी कुछेक प्राणी ऐसे थे जो खुले में विचरते नहीं थे और घने जंगलों, पहाड़ों, तथा जहाँ सम्भव हुआ, वहीं लुके-छिपे फिरते थे। उनकी शरीर-रचना में अवश्य अनेक ऐसी विशेषताएँ थीं जिन विशेषताओं से बड़े-बड़े डिनासर और सरीसृप भी वंचित थे।

ये नन्हें प्राणी रोयों तथा बालों से भरपूर शरीर के थे और काफी गर्म रक्त के थे। फल-स्वरूप शीत तथा ताप से ये अपनी रक्षा भली-भाँति कर लेते थे। बदलते हुए जलवायु तथा सम-विषम परिस्थितियों को सहते रहकर आज भी इनके बने रहने का एक कारण इनका गर्म रक्त और बालों भरा शरीर कहा जा सकता है। इन्हें दूसरी सुविधा यह थी कि ये स्तनपोषी थे। अतः गर्भ से परिपक्व शिशु को जन्म देते थे। इसका लाभ यह था कि जहाँ सरीसृपों के अण्डे अधिकांश ही नष्ट होते रहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे, इन स्तनपोषी जीवों के शिशु पूर्ण अंगों सहित जन्म लेकर स्वाश्रयी होने तक मातृ-छाया में सुरक्षित रहते थे।

धानीयुक्त प्राणी भी

इन्हीं समूहों में धानीयुक्त प्राणी भी थे जो आज भी देखने को मिलते हैं। इनका भी एक युग था जब ये पृथ्वी पर चारों ओर फैले हुए थे। अब तो ये अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा भूमध्य रेखावर्ती कुछेक द्वीपों में ही हैं। इनमें एक ओर तो आस्ट्रेलिया का रेड कंगारू है जो अपने पूरे आकार में सात फुट ऊँचा होता है और दूसरी ओर ब्राजील का श्रू ओपोसम (shrew opossum) है जो आपकी मुट्ठी में आ सकता है। इन्हीं में डिप्रोटोडोन (*Diprotodon*) नामक एक विशाल जन्तु था जो हिप्पोपोटेमस जैसा था।

विविधतापूर्ण विभिन्नता

इनमें विभिन्नता बहुत है। कोई तो कंगारू की तरह पेट के आगे बड़ी-सी थैली लटकाये फिरता है, किसी के शरीर पर छिछले प्याले जैसी पर्त रहती है, किसी के केवल कान जैसा एक छोटा-सा पर्दा लटका रहता है तो किसी के यह भी नहीं होता। इन्हें इन धानियों की आवश्यकता इसलिए पड़ती है कि इनके बच्चे अपरिपक्व भ्रूणावस्था में ही प्रसबित हो जाते हैं। फलस्वरूप मादा के स्तनों से चिपके ही चिपके उन्हें परिपक्व होने तक रहना पड़ता है। जीवित रहने के संघर्ष में प्राय: ही यह होता है कि जो शिशु माँ के स्तन को नहीं पाते, उन्हें समाप्त हो जाना पड़ता है।

दो गर्भाशययुक्त (*Didelphids*)

यह इस वर्ग का प्रथम समूह है। इस समूह के प्राणी दक्षिणी अमरीका के अमेजन क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इनकी मादाएँ दो गर्भाशययुक्त होने के कारण ही इन्हें यह नाम दिया गया है। ये एक प्रकार से सर्वभक्षी हैं यहाँ तक कि एक दूसरे को भी खा जाने में नहीं हिचकते। दिन के उजाले में इनकी दृष्टि क्षीण रहती है। अत: ये अधिकतर रातों को ही बाहर निकलते हैं। इनकी जीवनशक्ति काफी सबल है। इस वर्ग में प्राय: निम्न छः जाति के अमरीकन ओपोसम का समावेश किया जाता है—सामान्य (common opossum); चार आँखोंयुक्त (four eyed opossum); ऊन के गाले जैसे (woolly opossum); चूहे जैसे (mouse opossum); छछूँदर जैसे (shrew opossum) तथा जलचारी (water opossum)।

ये अमरीकन ओपोसम विशिष्ट शरीर रचना के कारण अपनी अलग ही श्रेणी बनाये हुए हैं। इनमें कोई तो बिल्ली जैसा और कोई नन्हें चूहे जैसा नजर आता है। सामान्य

ऊन के गाले जैसा ओपोसम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओपोसम, चूहे जैसे ओपोसम तथा जलनिवासी ओपोसम के संक्षिप्त परिचय निम्न हैं :

सामान्य ओपोसम

ये उत्तरी यूनाइटेड स्टेट्स से अर्जेण्टाइना तक फैले हुए हैं। इनकी पीठ पर भूरे बाल तथा पेट पर सफेद रोयें रहते हैं। उत्तरी क्षेत्रों से नीचे उतरते-उतरते मध्य अमरीका में आने तक इनके पेट के रोयें बहुत हलके रह जाते हैं। इनके पाँव थोड़े लम्बे और पूँछ अधिक लम्बी होती है। ये मनुष्यों की भाँति हाथों से भी खूब काम लेते हैं। ये अपनी पूँछ से भी अनेक काम निकालते हैं, जिनमें पेड़ की डाल से लटकना-झूलना मुख्य काम है। मादा के प्रायः १३ स्तनाग्र होते और शिशु एक साथ में १७-१८ तक प्रसवित होते हैं। परिणाम यह होता है कि जीवन-संघर्ष में केवल ७-८ ही बचते हैं और शेष नष्ट हो जाते हैं।

मूषक ओपोसम

यह ओपोसम चूहे से बड़ा नहीं होता। इसकी पीठ पर गहरे कत्थई तथा पेट पर सफेद रोयें रहते हैं। इसकी पूँछ रोमहीन होती है। इसकी काली आँखें बड़ी तथा इस तरह बाहर निकली पड़ती हैं मानो कोई इसका गला दबोच रहा हो। लम्बी थूथन तथा पैने दाँतोंयुक्त यह अपना मुँह पूरा (१८०° कोण तक) खोल लेता है। चाल-ढाल में यह बहुत तेज है और जरा भी छेड़ने पर मुँह फाड़कर डराने की चेष्टा करता है। कभी-कभी तो यह १५-२० मिनट तक अपना खुला मुँह बन्द करना भूल जाता है। इसका शिशु चावल के दाने से बड़ा नहीं होता।

जलनिवासी ओपोसम

यह इस वर्ग का अति विस्मयकारी प्राणी है। इसे यह नाम इसलिए दिया गया है कि यह जलचारी भी है। शिकार हेतु पानी में तैरने तथा डुबकी लगाने के लिए इसके पंजे बत्तख की तरह झिल्ली से जुड़े रहते हैं। इसकी पीठ पर रेशम से मुलायम, काले तथा पेट पर सफेद बाल रहते हैं। इसकी पूँछ चूहे जैसी लम्बी होती है। इसके माथे के बीचोबीच एक सफेद बिन्दी रहती है जिससे यह अलग ही पहचाना जा सकता है। अकसर लोग इसे ऊदबिलाव भी समझने की भूल कर बैठते हैं। कभी-कभी यह तीव्र दुर्गन्ध फेंकता है जिसका कारण अभी तक अज्ञात है।

जलचारी ओपोसम (water opossum)

धब्बेदार पूँछयुक्त (*Dasiurids*)

यह समूह जेबी चूहों (*Phascogales*) का—धानीयुक्त जेबी चूहों का है। यह दूसरी बात है कि वह धानी पीठ या पेट में न होकर इनके गाल में रहती है। इस वर्ग में निम्न श्रेणियाँ मुख्य हैं—चौड़े पाँव वाले (broad footed); चपटे सिर वाले (flat headed); झब्बेदार पूँछ वाले (brush tailed); कलँगीदार पूँछ वाले (crest tailed); सँकरे पाँव वाले (narrow footed) तथा थैली-युक्त जरबो (pouched Jerboas)।

चौड़े पाँवोंयुक्त (*Broad footed*)

ये प्राणी चूहे जैसे हैं। इनके चूहे जैसी ही लम्बी, नोकदार पूँछ होती है जो नन्हें रोंयों से छायी रहती है। इनके पंजों में नाखून नहीं होते। इनकी थैली कहीं तो जेब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

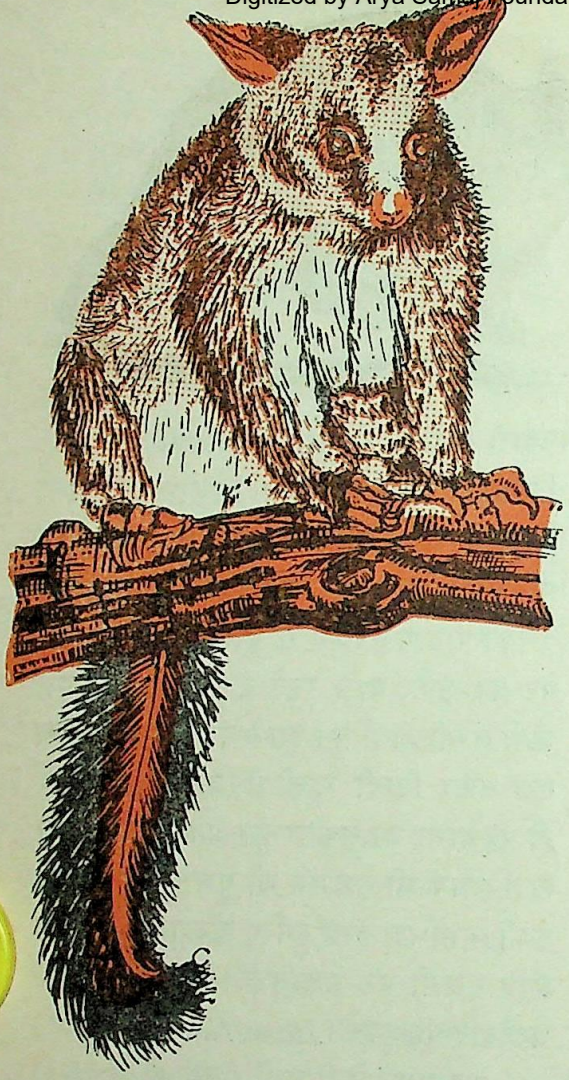

झब्बेदार पूँछयुक्त फैलेन्जर (Phalanger)

जैसी होती है और कहीं दो धारियाँ मात्र दिखती हैं। इनके पंजे यद्यपि गद्दीदार होते हैं फिर भी उनमें चारों ओर किनारी रहती है जिससे इन्हें पेड़ों पर चढ़ने तथा चट्टानों पर दौड़ने में सुविधा रहती है। इनका मुँह छछूँदर जैसा और कान छोटे परन्तु नोकदार होते हैं। ये अधिकतर कीटभक्षी हैं किन्तु अन्य छोटे जन्तुओं का भी आहार करते हैं। संकटकाल के लिए ये अपनी पूँछ में अतिरिक्त भोजन वसा के रूप में संग्रहीत किये रहते हैं।

डेसीयुरिस (*Dasyures*)

इस समूह में अधिकतर बिल्ली, छछूँदर और भेड़िये के आकार के प्राणी हैं। इनमें मुख्य हैं—आस्ट्रेलियाई बिल्लियाँ (Australian Cats), तस्मानिया का शैतान (Tasmanian Devil), धानीयुक्त भेड़िया (Pouched Wolf), नम्बैट्स (Numbats) धानीयुक्त छछूँदर (Marsupial Moles)

आस्ट्रेलियाई बिल्लियाँ

ये केवल आस्ट्रेलिया में पायी जाती हैं। इसलिए वहाँ वाले इन्हें देशी बिल्लियाँ (native cats) भी कहते हैं। २॥-३ फुट लम्बे इनके शरीर पर छोटी-बड़ी चित्तियाँ रहती हैं। इनकी धानी संकुचित नहीं होती। मादा के छह स्तनाग्र होते हैं और २४-२५ बच्चे एक साथ जनमते हैं। परिणाम यही होता है कि जिन्हें वे स्तनाग्र मिल गये, वे तो इस पार, और जो रह गये वे समाप्त। स्वभाव से ये निडर प्राणी हैं और शत्रु को तनिक भी निर्बल पाकर समाप्त ही कर देते हैं।

तस्मानिया का शैतान

इसके दाँत रीछ जैसे तीक्ष्ण होने के कारण इसे रीछ (badger) भी कहते हैं। यह अधिकतर बिल बनाकर रहता है और पेड़ों पर चढ़ने में असुविधा अनुभव करता है। बिल बनाने योग्य इसके पंजे मजबूत भी होते हैं। इसका शरीर अधिकांश काला तथा सफेद चित्तीयुक्त रहता है। इसकी धानी अर्द्ध चन्द्राकार और केवल दो स्तनाग्रयुक्त होती है। यह भी स्वभाव से कुटिल तथा हिंसक है।

धानीयुक्त भेड़िया

धानीयुक्त मांसाहारी प्राणियों में यह बहुत बड़ा माना जाता है। इसके कान और पूँछ भेड़िये जैसे होते हैं। किसी-किसी की पूँछ कुत्ते जैसी छोटी और नोकदार होती है। तस्मानिया के पर्वतीय क्षेत्रों में दो-चार के अथवा बहुसंख्यक गिरोहों में ये विचरते रहते हैं। ये छोटी-छोटी टोलियाँ बाँधकर रात को शिकार की टोह में निकलते हैं। सामान्यत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये कुत्तों से अधिक तेज नहीं दौड़ते किन्तु पीछा किया जाने पर कंगारू जैसी लम्बी छलाँगें मारते हुए निकल भागते हैं। इनके दाँतों की रचना इतनी विलक्षण है कि वैसी अन्य भूमिचारी, स्तनपायी प्राणियों में नहीं पायी जाती। इनकी थैली छिछले प्याले के रूप में होती है। कंगारू की भाँति इसके भी बच्चे अर्द्ध परिपक्वावस्था में उत्पन्न होते हैं।

नम्बैट्स

यह नन्हा जन्तु जेबी चूहे से अधिक मिलता-जुलता है। इसकी पीठ का भाग गहरा कत्थई और पेट का भाग खुलता सफेद होता है। इसकी पूँछ गिलहरी जैसी झब्बेदार होती है। यह अधिकांश कीटभक्षी जीवन व्यतीत करता है। जहाँ तक इसे दीमक मिलती रहेगी, यह दूसरी ओर रुख भी न करेगा। इसे दीमकों के स्थल भलीभाँति ज्ञात रहते हैं। वहाँ पहुँचकर यह लकड़ी को अपने पंजों से खुरचता है और अपनी लम्बी, चिपचिपी जीभ से दीमकों को गटकता जाता है। इसकी मादा धानीरहित होती है।

धानीयुक्त छछूँदर

ये प्राणी छछूँदर जैसे हैं। इन्हें धानीयुक्त छछूँदर कहते हैं। इनका मुँह कड़ी थूथनदार, त्वचा भी कड़ी, पूँछ छोटी और गद्दीदार, पाँव तीखे नाखूनों से सज्जित होते हैं। शरीर पर सफेद तथा अन्य रंगों के रोयें रहते हैं। ये नेत्रहीन होते हैं और कानों के नाम केवल दो छिद्र रहते हैं। ये भूमि में बिल बनाकर रहते हैं। केंचुआ इनका मुख्य आहार है। जागृतावस्था में ये घोर परिश्रमरत रहते हैं किन्तु कभी-कभी काम करते-करते अचानक ऐसे ऊँघ जाते हैं मानो बेहोश हो गये हों!

सीनोलेस्टिड्ज (*Caenolestids*)

इस वर्ग के जन्तु लुप्तप्राय हैं। लगभग १०० वर्ष पूर्व अर्जेण्टाइना में इनके कुछ जीवाश्म मिले थे। तत्पश्चात् ३०-३५ वर्षों तक यह निश्चित न किया जा सका कि इन्हें किस श्रेणी में रखा जाए। सन् १९०० के लगभग इनसे मिलता-जुलता एक अन्य जन्तु कोलम्बिया में तथा दूसरा दक्षिण अमरीका के इक्वेडोर में पकड़ा गया। फिर भी इनका निश्चित वर्गीकरण सम्भव न हो सका। वे पकड़े गये जन्तु देखने में चूहे जैसे थे। उनका चूहे जैसा मुँह, वैसी ही पूँछ और वैसे ही छोटे रोयें थे। उनके दाँत अवश्य विचित्र थे जो ठीक गिलहरी जैसे थे। उनकी धानी भी छोटी और छिछली थी।

पेरामेलिड्ज (*Peramelids*)

आस्ट्रेलिया में पाये जाने वाले ये प्राणी बेण्डीकूट्स (Bandicoots) कहलाते हैं। इनमें मांसाहारी तथा शाकाहारी, दोनों प्रकार पाये जाते हैं। इनकी शरीर-रचना ऊपर वर्णित फेस्कोगेल्स (Phascogales) से मिलती-जुलती है। अन्तर केवल यह है कि इनके पिछले पंजे की दूसरी और तीसरी अंगुली जुड़ी रहती है। पंजों की यह रचना इन प्राणियों के लिए तथा चीते, हिरन, कंगारू आदि के लिए इस दृष्टि से उपयोगी रहती है कि इन्हें चट्टानों जैसी पथरीली सतहों पर दौड़ना पड़ता है। इनमें मुख्य हैं—लम्बी नाक वाले (long nosed); छोटी नाक वाले (short nosed); न्यूगिनी निवासी (New Guinea); खरगोश जैसे (rabbit) तथा शूकरपाद (pig footed)।

इनमें शूकरपाद इसलिए सरलता से पहचाने जा सकते हैं कि उनके अगले पंजों की दूसरी और तीसरी अंगुली ही विकसित रहती है और चौथी अंगुली खूँटी जैसी रह जाती है। इसी कारण इनका अगला पंजा शूकर के पंजे जैसा रहता है। चारों पाँवों पर खड़ा होने पर यह एक मृगशावक (हिरन के बच्चे) जैसा लगता है। इसकी धानी पीछे की ओर खुली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

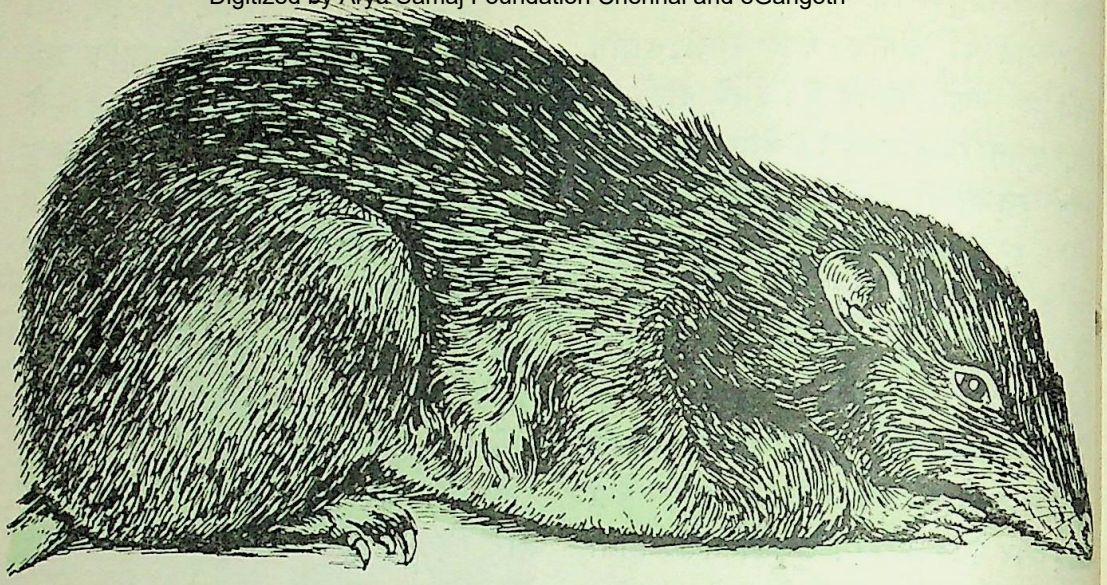

लम्बी नाक वाला बेण्डीकूट (Bandicoot)

रहती है। इसके स्तनाग्र तो आठ होते हैं किन्तु शिशु एक बार में दो ही पलते हैं।

फैलेन्जेरिड्ज (*Phalangerids*)

प्रस्तुत वर्ग का यह पाँचवाँ और वृहत् समूह है। इस समूह में तीन मुख्य भाग हैं—क्वाला (koala); वोम्बैट्स (wombats) और हनी सकर्स (honey suckers)। ये सभी प्राणी लम्बी पूँछ और रोयों भरे शरीर के होते हैं। इनमें भी दो-तीन प्रकार के जन्तु तो और भी विचित्र होते हैं। उनके अगले-पिछले पाँवों के मध्य पैराशूट जैसी झिल्ली रहती है जो छोटी-छोटी उड़ानों में बहुत सहायक होती है। 'उड़न गिलहरी' इसी का एक उदाहरण है। तस्मानिया, आस्ट्रेलिया, न्यूगिनी, पूर्वी द्वीप समूह, अम्बोनिया, सेलेबस और टिमोर तक में ये फैले हुए हैं।

इनमें सर्वप्रथम पाया जाने वाला जन्तु कसकस (cuscus) था जिसे ग्रीक भाषा में *phalanger* नाम इसलिए दिया गया कि वह बड़ी चपलता से अपनी अंगुलियाँ काम में लाता था। इस समूह के समस्त प्राणियों की दूसरी और तीसरी अंगुली मूल स्थान पर परस्पर जुड़ी रहती है और इनका अँगूठा समस्त अंगुलियों के सामने की ओर ऐसे रहता है जैसे मानव का अँगूठा। इनकी थानी आगे की ओर खुली रहती है। इनके पंजे पूरी पाँच अंगुलियोंयुक्त होते हैं। इनमें क्वाला (koala) और वोम्बैट (wombat) के पूँछ नहीं होती। इनमें हनी सकर्स (Honey suckers), डरमाउस (Dormouse), फेदर टेल्ड (Feather tailed), रिंग टेल्ड (Ring tailed), उड़न फैलेन्जर्स (Flying Phalangers), झब्बेदार पूँछयुक्त (Brush tailed), कसकसेज (Cuscuses), क्वाला (Koala) और वोम्बैट्स (Wombats) तथा कंगारू आदि सम्मिलित हैं। कंगारू परिवार का विस्तृत वर्णन विज्ञान-लोक फरवरी १९६३ के अंक में दिया जा चुका है। शेष में से कुछेक के परिचय निम्न भाँति हैं:

उड़न फैलेन्जर्स

आस्ट्रेलियावासी इन्हें sugar squirrel, squirrel glider और yellow bellied glider आदि नामों से पुकारते हैं। इनकी बाह्याकृति के कारण इन्हें उड़ने वाली गिलहरियाँ (flying squirrels) भी कहते हैं। इनके शरीर अत्यन्त मुलायम, रेशमी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोयों से भरे रहते हैं। इनके मुँह गिलहरी जैसे छोटे तथा नुकीले और पूँछ लम्बी, झब्बेदार होती है। ये तीव्र स्वर में चिचियाते हैं। नन्हें कीट और कोमल पत्तियाँ तो इनका भोजन हैं ही, फलों के रस भी ये खोज-खोजकर चूसते रहते हैं। इनके शरीर का रंग ऊपर की ओर आकर्षक स्लेटी तथा नीचे की ओर सफेद रहता है। पीठ के बीचोबीच, गर्दन से पूँछ तक लम्बी, काली रेखा खिंची रहती है। स्वभाव से ये लड़ाकू हैं किन्तु पालतू भी शीघ्र हो जाते हैं। मादा अपने बच्चों के प्रति विशेष ममत्व दिखाती है और थैली में टिके हुए बच्चों को दूध पिलाते समय प्यार से चाटकर सहलाती जाती है।

झब्बेदार पूँछयुक्त

आस्ट्रेलिया के धानीयुक्त नन्हें प्राणियों का सही प्रतीक इन्हीं को माना जाता है। इनके चेहरे लोमड़ी से किंचित मिलते-जुलते हैं। शेष आकृति में ये कंगारू जैसे लगते हैं। इनका शरीर ठोस और मजबूत होता है। इनकी पूँछ लम्बी और झब्बेदार होती है किन्तु उसके सिरे का थोड़ा-सा भाग केशरहित होता है ताकि ये पेड़ की डाल पर सहज लटके रह सकें। इनमें लम्बे कान वालों की पूँछ का सिरा गुम्मटदार और छोटे कान वालों की पूँछ का सिरा नोकदार रहता है। सामना पड़ जाने पर ये टोली बाँधकर कुत्तों के गिरोह से लड़ते-झगड़ते भाग निकलते हैं और पालतू अवस्था में बड़े विनोदपूर्ण रहते हैं।

कसकसेज

बेडौल शक्ल-सूरत के ये प्राणी रात्रि-विचरण करते हैं। इनका सिर औंधी कटोरी जैसा, आँखें बड़ी और सटी हुई तथा शरीर रोयों से भरा रहता है। पूँछ का भी कुछ भाग रोयोंयुक्त और कुछ रोयों रहित रहता है। विभिन्न क्षेत्रों में पाये जाने वाले इन प्राणियों

उड़न गिलहरी (Flying Phalanger)

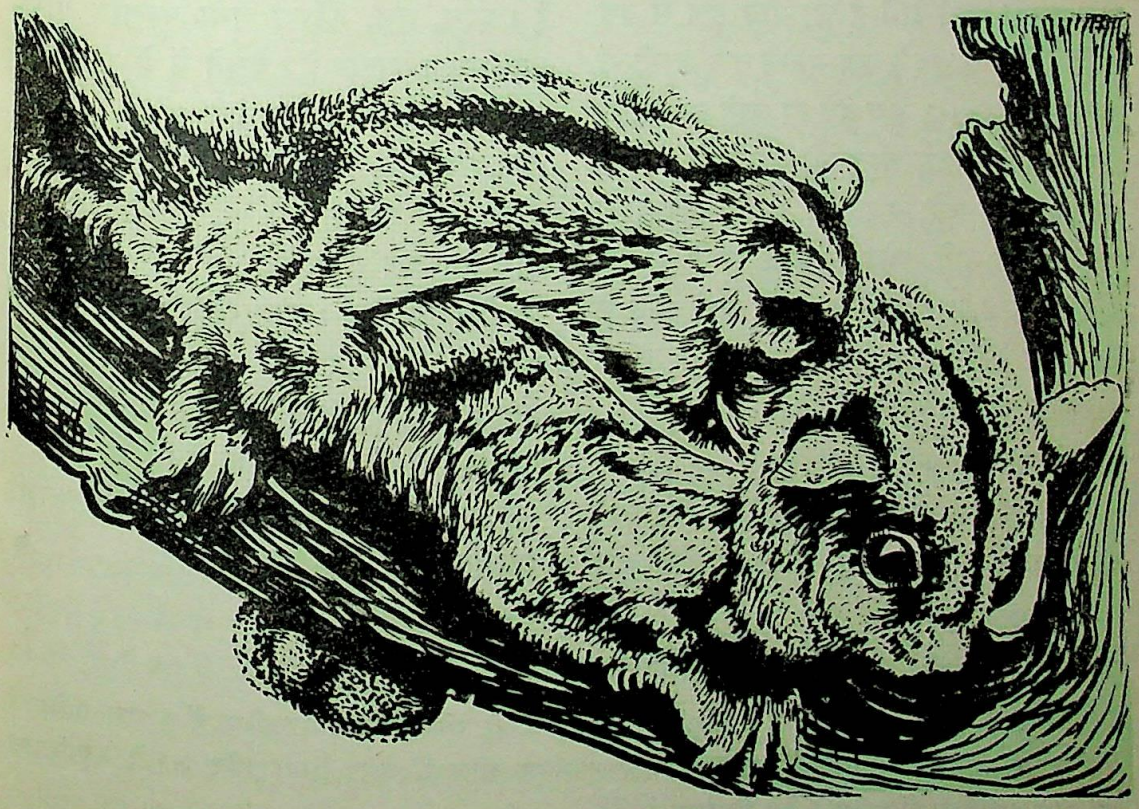

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रंग-रूप में भी काफी भिन्नता रहती है। स्वभाव से ये बेहद सुस्त हैं और आँखें जड़ तथा बिलकुल भाव-शून्य रहती हैं। इनमें नर और मादा विभिन्न रंगों के होते हैं और स्थान तथा वातावरण बदलने पर इनका रंग भी बदलता रहता है।

क्वाला

यह बिना पूँछ का बड़ा ही सीधा-सादा प्राणी है। इससे किसी को खतरा नहीं और इसे सबसे खतरा है। इसकी नाक बड़ी, गोल और गुदगुदी होती है तथा आँखें और कान छोटे होते हैं। यह अपने अगले पंजों से मनुष्य के हाथों की तरह काम लेता है। इसके हाथ की पहली अंगुली अन्य अंगुलियों के सामने इस प्रकार रहती है जैसे हमारा अँगूठा। इसके पंजे मजबूत और तीखे नाखूनों-युक्त होते हैं। यूकेलिप्टिड (eucalyptid) नामक वृक्ष वर्ष में एक बार सुगंधित तेलयुक्त पत्ते पल्लवित करता है तब वे पत्ते यह बड़े चाव से खाता है। इसकी मादा एक बार में एक या दो बच्चे देती है जो पौन इंच से बड़े नहीं होते। वे बच्चे छह महीने तक धानी में रहते हैं और ५-६ इंच बड़े हो जाने पर बाहर निकलते हैं। तत्पश्चात् भी यद्यपि वे माँ की पीठ पर लदे-लदे फिरते हैं, ३-४ महीने आगे तक धानी नहीं छोड़ते। जब कभी उनकी शरारत बढ़ जाती है तब मादा उन्हें पीठ के बल पटककर अपने गद्दीदार पंजों से उनकी मरम्मत भी करती रहती है।

वोम्बैट्स

ये कुशल बिलकारी जन्तु हैं। इनके आगे के दाँत केवल दो ऊपर और दो नीचे होते

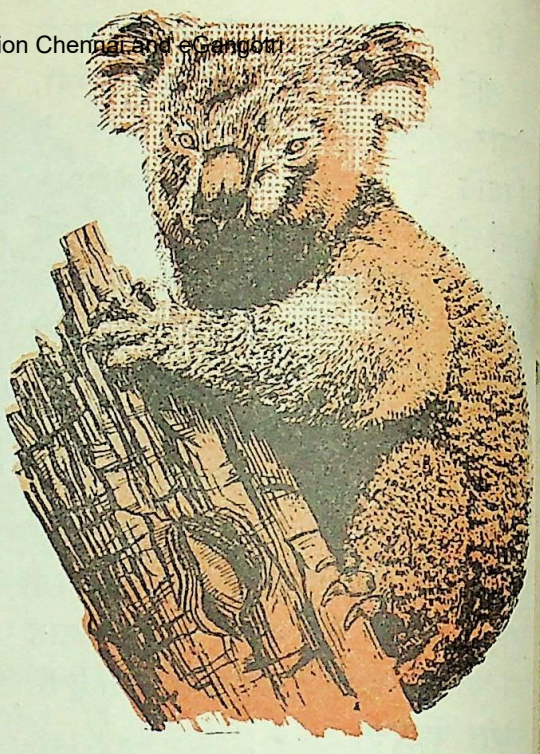

क्वाला (Koala)

हैं। वे दाँत बराबर बढ़ते रहते हैं। ये काफी लम्बी—कहीं-कहीं सौ-सवासौ फुट लम्बी सुरंगें खोद लेते हैं और उसके अन्दर भी पत्तियों, टहनियों का घोंसला बनाकर रहते हैं। घास, जड़ें, कोंपलें तथा फन्जाई आदि इनके मुख्य आहार हैं। देखने में ये रीछ जैसे लगते हैं। इनके पूँछ नहीं होती। इनके हाथ-पाँव छोटे, कद ठिगना और काठी मजबूत होती है। इनमें भी दो श्रेणियाँ हैं। एक की नाक बिलकुल रोमरहित होती है और दूसरी में रोमाच्छादित। रोमाच्छादित नाक वाले प्राणियों के शरीर के रोयें छोटे और सख्त होते हैं जबकि रोमरहित नाक वालों के रोयें नर्म, रेशमी और लम्बे होते हैं।

इन विचित्र प्राणियों की विचित्रताओं का अन्त नहीं है।

पुराना दीजिए, नया लीजिए-लेंस

चश्मे का नहीं, आँखों का ! कील (प. जर्मन) के प्रो. थील की यह उपलब्धि है। एक प्रयोग में उन्होंने एक जानवर की आँख निकालकर उसे रासायनिक घोल में घुला लिया और अपनी नवाविष्कृत विधि द्वारा कृत्रिम लेंस तैयार कर दिखाया !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

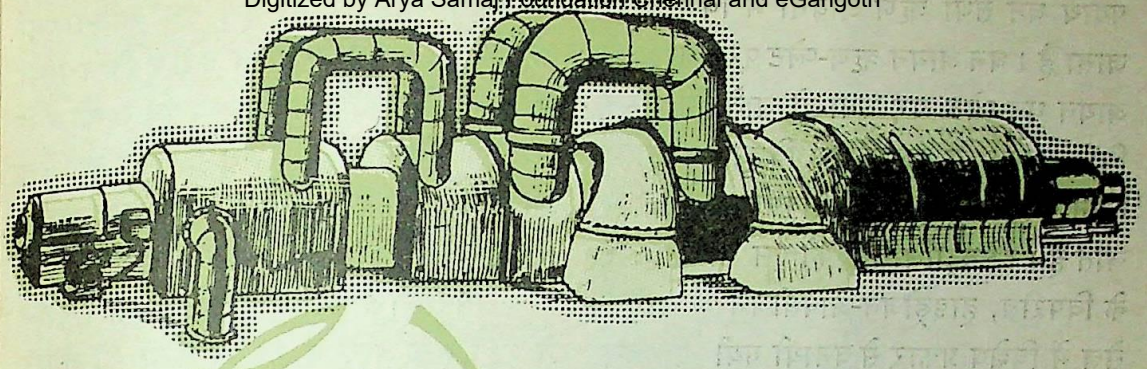

विद्युतोत्पादन के नये साधन

जगदीशचन्द्र गोविल

बिजलीघरों में उत्पादित विद्युतधारा को दूर-दूर की बस्तियों तक पहुँचाने तथा मोटर, रेलगाड़ी आदि के लिए प्रयुक्त करने में बहुत असुविधा रहती है। अतः वैज्ञानिक ऐसे साधनों में लगे हुए हैं जिनके द्वारा उत्पादित विद्युतधारा सामान्य बिजलीघरों के वगैर ही चाहे जहाँ उपयोग में लायी जा सके।

फ्यूएल सेल

वैज्ञानिकों को इससे बहुत आशाएँ हैं। फ्यूएल सेल अर्थात् ईंधन का सेल साधारण रासायनिक सेलों से बिलकुल भिन्न प्रकार की होती है। इसमें न तो वोल्टा के सेल की भाँति धातु की प्लेट आवश्यक होती है, न संचायक सेल की तरह यह विद्युत ऊर्जा का केवल संचय ही करके रह जाती है। यह वास्तव में एक ऐसी बैटरी है जो द्रव अथवा गैसीय ईंधन की रासायनिक ऊर्जा को सीधे ही विद्युत में परिणत कर देती है। इसके द्वारा कमरे के सामान्य ताप पर बिना किसी बाधा के, लगातार विद्युतधारा उपलब्ध की जा सकती है।

फ्यूएल सेल का आविष्कार वैसे तो सन् १८३९ में इंग्लैण्ड के भौतिकविद सर विलियम ग्रोव ने किया था किन्तु तत्पश्चात् लगभग एक शताब्दी बाद ही वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। अतः सन् १९३२ में केम्ब्रिज के फ्रान्सिस बेकन ने ग्रोव-सेल के आधार पर हाइड्रोजन और आक्सीजन द्वारा चालित प्रथम फ्यूएल सेल का निर्माण किया। भविष्य में इस सेल के एक विकसित स्वरूप का उपयोग अमरीका द्वारा कुछ अन्तरिक्ष उड़ानों में यंत्रों के संचालन के लिए किये जाने की काफी सम्भावना है।

फ्यूएल सेल में विद्युत-विश्लेषण की सामान्य क्रिया के ठीक विपरीत क्रिया सम्पन्न होती है। विद्युत-विश्लेषण की सीधी क्रिया उत्पन्न करने के लिए एक इलेक्ट्रोलाइट के घोल में दो प्लेटों के रूप में विद्युदाग्र खड़े कर दिये जाते हैं। उन प्लेटों को एक बैटरी से जोड़ देने पर इलेक्ट्रोलाइट में विद्युतधारा प्रवाहित होने लगती है। फलतः इलेक्ट्रोलाइट का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ धन तथा ऋण आयनों में विभक्त हो जाता है। धन आयन ऋण-प्लेट पर तथा ऋण आयन धन-प्लेट पर जमा हो जाते हैं। अम्ल मिश्रित जल का इस प्रकार विद्युत-विश्लेषण करने पर हाइड्रोजन तथा आक्सीजन पृथक हो जाते हैं। इलेक्ट्रोलिसिस की इस सीधी क्रिया के विपरीत, हाइड्रोजन-आक्सीजन के फ्यूएल सेल में विशेष प्रकार से बनायी गयी प्लेटिनम धातु की बनी दो प्लेटों का किसी उपयुक्त इलेक्ट्रोलाइट के माध्यम से सम्पर्क करा दिया जाता है। फिर एक प्लेट के नीचे हाइड्रोजन तथा दूसरी प्लेट के नीचे आक्सीजन पहुँचायी जाती है। इस क्रिया में हाइड्रोजन परमाणुओं के इलेक्ट्रॉन स्वतंत्र होकर अपनी निकटवर्ती प्लेट पर जमा होने लगते हैं। इलेक्ट्रॉनरहित धनावेशित हाइड्रोजन-परमाणु इलेक्ट्रोलाइट के माध्यम से गुजरकर दूसरी प्लेट पर पहुँच जाते हैं जहाँ वे अपना धनावेश ऋण-प्लेट को दे देते हैं और स्वयं आक्सीजन से मिलकर पानी में परिवर्तित हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों प्लेटों के बीच विभवान्तर उत्पन्न हो जाता है तथा उन्हें किसी बाहरी सर्किट में जोड़ देने पर उस सर्किट में विद्युतधारा बहने लगती है।

हाइड्रोजन-आक्सीजन फ्यूएल सेल का सिद्धान्त है तो अत्यन्त सरल, किन्तु इसे बड़े पैमाने पर प्रयुक्त करने में अनेक कठिनाइयाँ भी हैं। पहली बात तो यह है कि गैसीय हाइड्रोजन और आक्सीजन को संचित करने के लिए बड़े सिलिण्डरों की आवश्यकता होती है और दोनों कुछ महँगी भी पड़ती हैं। दूसरे, इस सेल की प्लेटों के लिए आवश्यक प्लेटिनम

हाइड्रोजन-आक्सीजन द्वारा विद्युतोत्पादन

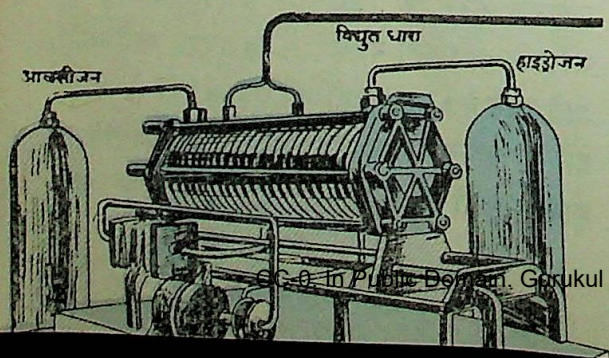

भी बहुत महँगी पड़ती है। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए सस्ते द्रवीय ईंधन तथा प्लेटिनम के बजाय किसी अन्य पदार्थ की बनी प्लेटों के प्रयोग किये जा रहे हैं ताकि इस सेल की कार्यदक्षता बढ़ायी जा सके और कम लागत पर इन सेलों का उत्पादन किया जा सके।

अमरीका के जनरल इलेक्ट्रिक कारपोरेशन ने १९६२ के अन्त में फ्यूएल सेलों को तैयार करने और उन्हें सुधारने का कार्य सबसे पहले प्रारम्भ किया था। इस कम्पनी के डबल्यू. टी. ग्रब तथा एल. डबल्यू. नीडरेच ने ऐसे फ्यूएल सेल का निर्माण किया है जिसमें हाइड्रोजन और आक्सीजन के स्थान पर क्रमशः हाइड्रोकार्बन सैटेन (cetane) और साधारण वायु का उपयोग किया जाता है। इस सेल की कार्यदक्षता बढ़ाने के लिए विशेष प्रकार की प्लेटें भी बनायी गयी हैं तथा इसमें फास्फोरिक एसिड के इलेक्ट्रोलाइट का प्रयोग किया गया है। इस प्रकार के सेल की कार्यदक्षता अब ४०-५०% तक पहुँच पायी है। आशा की जाती है कि शीघ्र ही कच्चे खनिज तेल तथा सामान्य कोयले का उपयोग फ्यूएल सेल में ईंधन के रूप में किया जा सकेगा। तब निश्चय ही इन सेलों का उपयोग घरों, कारखानों, ट्रैक्टरों, मोटरों और छोटी बस्तियों के बिजली घरों में करना सुविधाजनक रहेगा।

बैक्टीरिया सेल

हाल ही में अमरीका के डा. एफ. टी. सिसलर ने बिद्युत पैदा करने वाली एक अनोखी तरह की सेल का निर्माण किया है। इस सेल में किसी भी प्रकार के आर्गेनिक पदार्थ को ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। उचित प्रकार के बैक्टीरिया द्वारा इन आर्गेनिक पदार्थ के विघटित किये जाने पर विद्युत शक्ति की प्राप्ति हो सकती है। फ्यूएल सेल की भाँति ही इस सेल में भी धन और ऋण दो खण्ड होते हैं जिनका एक इलेक्ट्रोलाइट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा आपस में सम्पर्क रहता है। इसके 'अ' खण्ड में समुद्र जल और आक्सीजन तथा 'ब' खण्ड में शक्कर, आलू, तालाब की काई या गोबर अथवा खाद आदि के माध्यम में जीवाणु रख दिये जाते हैं। ये जीवाणु उस माध्यम में रासायनिक प्रक्रिया सम्पन्न करते हैं जिसके फलस्वरूप विद्युत उत्पन्न होती है। खमीर और बिसायँध पैदा करने वाले जीवाणु इस कार्य के लिए अधिक उपयोगी पाये गये हैं। जीवाणुओं का प्रयोग किये जाने के कारण इस सेल को बायोइलेक्ट्रिक अथवा बैक्टीरिया सेल कहते हैं। इसकी कार्यदक्षता ३५-४०% के लगभग होती है। आशा है कि भविष्य में इसे और भी अधिक विकसित किया जा सकेगा। बैक्टीरिया सेल से कई लाभ हैं। यह वजन में हलकी होती है तथा इसमें ताप भी उत्पन्न नहीं होता। इसके पुर्जे जल्दी खराब नहीं होते।

रेडियो आइसोटोप जनरेटर

४ अक्टूबर १९५७ को रूस द्वारा प्रथम मानवनिर्मित उपग्रह छोड़ा गया था। उसके साथ ही कृत्रिम उपग्रहों के युग का आरम्भ हुआ। प्रारम्भ में उपग्रहों में फिट किये गये यंत्रों के संचालन के लिए संचालक बैटरियाँ और सौर बैटरियाँ प्रयुक्त की गयी थीं। वे बैटरियाँ थोड़े ही समय बाद बेकार हो गयीं। सौर बैटरियों का उपयोग भी केवल उन्हीं उपग्रहों में ठीक रहता है जो अपने परिभ्रमण के दरम्यान अधिकतर सूर्य के प्रकाश की ओर रहते हैं। इस कारण उपग्रहों में विद्युत शक्ति प्राप्त करने के लिए और भी नये साधनों की खोज की गयी। अन्त में एक ऐसे परमाणु-यंत्र का निर्माण किया गया जिसके द्वारा लगातार विद्युत पैदा की जा सकती है। इस नये जनरेटर में सामान्य धातु प्लूटोनियम-२३९ के समस्थानिक प्लूटोनियम-२३८ को ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया गया है। एक छोटी परन्तु सुदृढ़ कैप्स्यूल के भीतर प्लूटोनियम-२३८

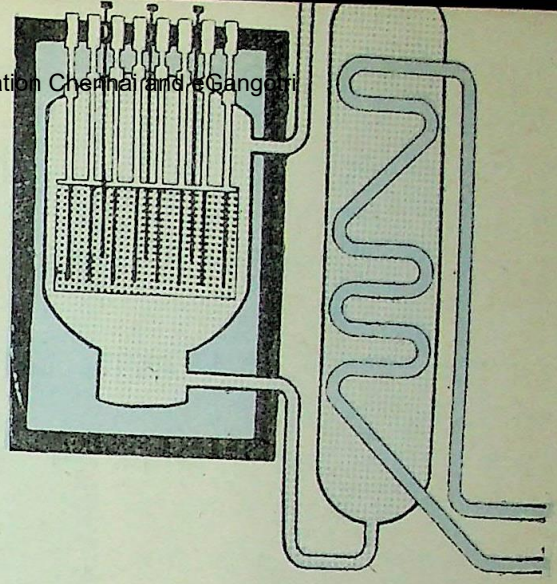

रीएक्टर (बायें) द्वारा उत्पादित तप्त गैसें ब्वायलर (दायें) में वाष्प की अति उच्च दाब उत्पन्न करती हैं। वही दाब जेनरेटर को गतिमान करके उससे विद्युत उत्पादित कराती है

की तनिक-सी मात्रा भरकर उसे नीबू के आकार के एक गोले के केन्द्र पर रख दिया जाता है। प्लूटोनियम-२३८ रेडियोधर्मी है। इसलिए इसके स्वतः विघटन के कारण काफी अधिक मात्रा में ताप विसर्जित होता है। उस ताप को थर्मोकपुल द्वारा सीधे ही विद्युत शक्ति में परिणत कर लिया जाता है।

प्लूटोनियम-२३८ का अर्द्ध जीवनकाल ९० वर्ष है अर्थात् इतने समय में इसकी एक निश्चित मात्रा की रेडियोधर्मिता आधी रह जाती है। अतः प्लूटोनियमयुक्त जनरेटर से वर्षों तक लगातार विद्युतशक्ति प्राप्त की जा सकती है। अन्य रेडियोसक्रिय पदार्थों की अपेक्षा प्लूटोनियम से विशेष लाभ यह है कि इससे कहीं अधिक मात्रा में ताप विमुक्त होता है। इस प्रकार का जनरेटर आकार में बहुत छोटा, वजन में हलका और काम में पूर्ण रूप से विश्वसनीय है। इसके द्वारा उपग्रह में लगे यंत्रों को बहुत लम्बे समय तक सक्रिय रखा जा सकता है। ऐसा रेडियो आइसोटोप जनरेटर सर्वप्रथम अमरीका द्वारा छोड़े गये उपग्रह ट्रान्जिट-४ ए में प्रयुक्त किया गया था। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनों के हाथ मजबूत करने के लिए

और

देश के सर्वांगीण विकास के लिए

अपना योगदान कीजिए

अधिक से अधिक बचाइए

तथा

अपनी बचत

- १२ वर्षीय राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमाण-पत्र
- १० वर्षीय सुरक्षा डिपॉजिट प्रमाण-पत्र
- १५ वर्षीय वार्षिकी पत्र
- बढ़ने वाली सावधिक योजना, एवं
- डाकघर बचत बैंक

इन राष्ट्रीय बचत योजनाओं में लगाइए।

इस प्रकार

आय कर रहित ब्याज प्राप्त करने के साथ देश को मजबूत बनाइये।

विशेष जानकारी के लिये अपने

जिला संगठनकर्त्ता राष्ट्रीय बचत

से सम्पर्क स्थापित करें।

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्षत्रविद्या का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव-सभ्यता का। दूरदर्शी के निर्माण से पहले आकाशीय-पिण्डों की गति-विधि का अवलोकन निरी आँखों से ही होता रहा था। वह बहुत ही परिश्रम और धीरज का काम था। महीनों, वर्षों तक तारों की गति का अवलोकन करके आकाशीय-पिण्डों के बारे में सही जानकारी प्राप्त हो पाती थी। सर्वसाधारण के लिए उस प्रकार का अध्ययन सम्भव नहीं था। सर्वप्रथम गैलिलियो ने १६१० में दूरदर्शी बनाया। तभी मानव आकाशीय-पिण्डों को अधिक निकट से देख सका। दूरदर्शी की क्षमताओं में दिनो-दिन वृद्धि होती गयी। आज

गुणाकर मुले

तो अमरीका स्थित संसार का सबसे बड़ा २०० इंच व्यास वाला हेल दूरदर्शी करोड़ों प्रकाश-वर्ष की दूरियों पर स्थित आकाश-पिण्डों को हमारी आँख के निकट ले आता है।

आकाशीय - पिण्डों सम्बन्धी हमारा ज्ञान मुख्यतः प्रकाश-किरणों और कुछ हद तक अन्य विद्युत-चुम्बकीय तरंगों पर आधारित है। यन्त्रों की सहायता से इन विविध तरंगों को ग्रहण किया जाता है। उन यंत्रों की जटिलता केवल विशेषज्ञों तक ही सीमित है। आदि-काल से आकाश के जिन ज्योति-पुंजों को मानव देखता आया है, उनका स्पष्टी-करण जनसाधारण को सुलभ होना अभी शेष है। मानव की यह चाह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

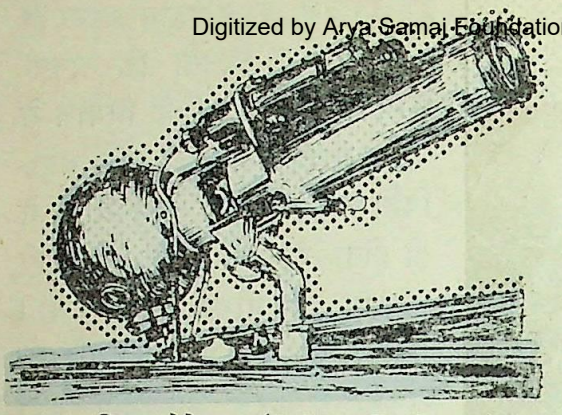

इकलिप्स प्रोजेक्टर (Eclipse Projector)

रही है कि बिना प्रयास ही वह चन्द्रमा की समस्त कलाओं को देख ले, प्रमुख नक्षत्र मण्डलों और तारों को देख ले और बारहों राशियों में सौर-मण्डल के ग्रहों की गति का अवलोकन कर ले।

इसके लिए ऐसे यंत्रों की आवश्यकता थी जो एक ही घेरे में व्योम-मण्डल को दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत करे। अतः वैसा यंत्र भी अन्ततः तैयार हो ही गया। यह उस एक प्रकार का जटिल प्रोजेक्टर है जिसे जर्मनी की एक प्रसिद्ध फर्म ने तैयार किया है। जिस गोलाकार गुम्बद में इस यंत्र को रखकर प्रदर्शित किया जाता है उसे प्लैनेटोरियम (planetarium) कहते हैं। आकाशमण्डल को एक गोलाकार छत के रूप में पिण्डों की सही एवं सापेक्ष दूरियों के साथ अंकित करने का यह सफल प्रयास है।

इस यंत्र के निर्माण की कहानी बड़ी रोचक है। हीडेलबर्ग वेधशाला के डाइरेक्टर डा. मैक्स वुल्फ के सुझावों के अनुसार १९१२ में म्यूनिख म्यूजियम के डायरेक्टर ने कार्ल जाइस फर्म को एक ऐसा यंत्र बनाने का आदेश दिया जो आकाश-मण्डल को वास्तविकता के साथ प्रस्तुत कर सके। लगभग दस वर्षों के परिश्रम के पश्चात् १९२३ में प्रो. वाउयेरसफेल्ट ने एक यंत्र तैयार किया जो कृत्रिम रूप से आकाश-मण्डल को एक अर्द्ध गोलाकार गुम्बद में इस प्रकार अंकित करता था मानों आकाश के ज्योतिर्पुंज गुम्बद में उतर आए हों। इस नवीन यंत्र ने तुरन्त ही खगोलविदों, वैज्ञानिकों एवं जनसाधारण को अत्यन्त प्रभावित किया।

प्रारम्भिक प्रोजेक्टर में एक कमी थी। वह इस प्रकार बनाया गया था कि उसके द्वारा कुछ ही भाग के आकाश-पिण्ड दिखाई देते थे। इस पर प्रो. वाउयेरसफेल्ट के सहयोगी डा. विलिगेर ने सुधार करके १९२६ में एक नया प्रोजेक्टर तैयार किया जो समस्त ज्योतिर्पुंजों को प्रक्षेपित करने में समर्थ था। तब से १९५३ तक वैसे २५-३० प्रोजेक्टर संसार के विभिन्न नगरों में लगाये गये हैं।

द्वितीय महायुद्ध के बाद जर्मनी के बँटवारे के साथ-साथ वहाँ की प्रयोगशालाओं, यंत्र सज्जाओं, निर्मायक संस्थानों तथा वैज्ञानिकों का भी बँटवारा हो गया। कार्ल जाइस फर्म को भी उसी बँटवारे का शिकार होना पड़ा और वह सोवियत के हाथ लगी। किसी प्रकार उक्त फर्म के अधिकांश कार्यकर्ता अमरीकनों द्वारा पश्चिम जर्मनी लाये गये और ओबेरकोरवेन्स्याल पर उसकी पुनः स्थापना हुई। डा. वाउयेरसफेल्ट भी ओबेरकोरवेन चले आये।

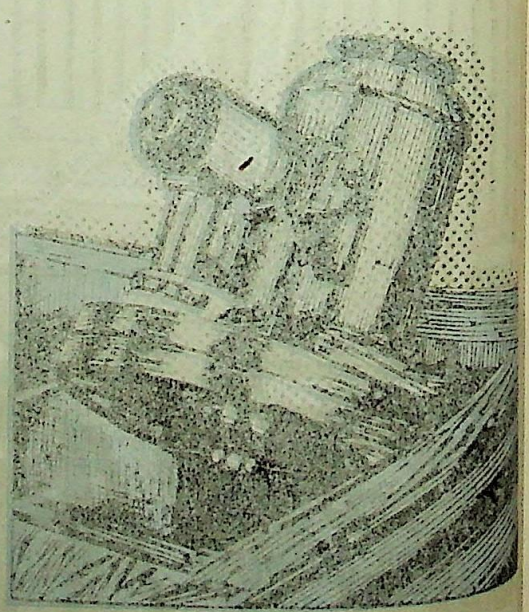

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय कार्ल जीस की फर्म जेना और ओबेरकोरवेन दोनों स्थानों से प्रोजेक्टरों का उत्पादन कर रही है।

यह प्रोजेक्टर एक डुगडुगी के आकार का होता है। यह लगभग दो टन भारी होता है और इसमें छोटे-छोटे सौ प्रोजेक्टरों का समायोजन होता है। इस यंत्र की जटिलता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि यह लगभग २९००० कल-पुर्जों से तैयार किया जाता है। इस यंत्र के दो गोलों में से प्रत्येक में व्योम-मण्डल के अर्द्ध-गोलार्द्ध के तारों के लिए प्रोजेक्टर स्थापित होते हैं। ये प्रोजेक्टर कुल मिलाकर लगभग ९००० ज्योतिर्पुंजों को प्लैनेटेरियम की गोल छत पर अंकित कर सकते हैं। सूर्य, चन्द्र और ग्रहों के लिए इस यंत्र के गोलों को जोड़ने वाले सिलिण्डर में स्वतंत्र प्रोजेक्टर स्थापित रहते हैं। इस सम्पूर्ण यंत्र का संचालन भवन के एक कोने में स्थापित कन्ट्रोल-डेस्क से होता है। गोलाकार भवन के बीचोबीच यह यंत्र स्थापित रहता है। यंत्र के चारों ओर वृत्ताकार घेरे में दर्शकों की सीटें रहती हैं। कुर्सियाँ इस प्रकार पीछे झुक सकती हैं कि आवश्यकतानुसार छत को आराम से देखा जा सके। प्रदर्शन आरम्भ होने पर धीरे-धीरे अंधकार छा जाता है और छत पर आकाश के ज्योतिर्पुंज प्रकट होते हैं। कन्ट्रोल-डेस्क से पूर्व-निर्धारित कार्यक्रमानुसार अष्टग्रह-योग, रात्रि-आकाश, अन्तरिक्ष यात्रा आदि दृश्य अंकित होने लगते हैं। साथ ही कन्ट्रोलर व्यक्ति उन रहस्यों का स्पष्टीकरण करता जाता है। सोचिए, वह दृश्य कैसा रोमांचकारी होगा जहाँ भवन के बाहर दिन की रोशनी, गर्दीला आकाश, शहर का कोलाहल और भवन के भीतर वातानुकूलित प्लैनेटेरियम गहन अन्धकार और नक्षत्रों का संगीत हो!

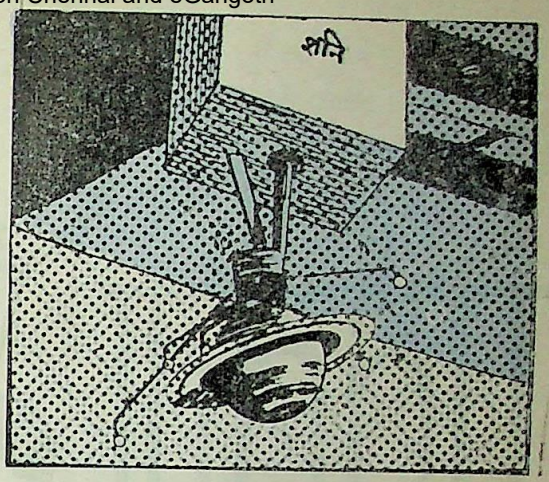

न्यूयार्क स्थित हेडन (Hayden) प्लैनेटेरियम में लटका हुआ सनीचर। यह कृत्रिम ग्रह अपने उपग्रहों सहित, गोल घेरे में अन्तरिक्ष का सही नमूना है

इस समय संसार के विभिन्न नगरों में जो २५-३० प्लैनेटेरियम स्थापित हुए हैं, उनमें सबसे बड़ा मास्को नगर में है। उसके गुम्बद का व्यास २५ मीटर है। वैसा ही एक प्लैनेटेरियम १९६२ में कलकत्ता में भी स्थापित किया गया है। विशालता की दृष्टि से संसार में इसका दूसरा स्थान है। कलकत्ते के प्रसिद्ध चौरंगी मैदान में विक्टोरिया मेमोरियल के निकट यह प्लैनेटेरियम स्थित है। इसकी गोलाकार छत का व्यास २३ मीटर है। प्रतिदिन बँगला, हिन्दी और अंग्रेजी में वार्ता सहित कलकत्ता का रात्रि आकाश, अन्तरिक्ष-यात्रा आदि दृश्य प्रस्तुत किये जाते हैं। भारत के प्रसिद्ध बिड़ला संस्थान के उद्योग से स्थापित इस प्लैनेटेरियम का नाम 'बिड़ला प्लैनेटेरियम' है। आशा है कि निकट भविष्य में ही दिल्ली, बम्बई, मद्रास आदि प्रमुख नगरों में भी इस प्रकार के प्लैनेटेरियम स्थापित हो सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनर्नवा

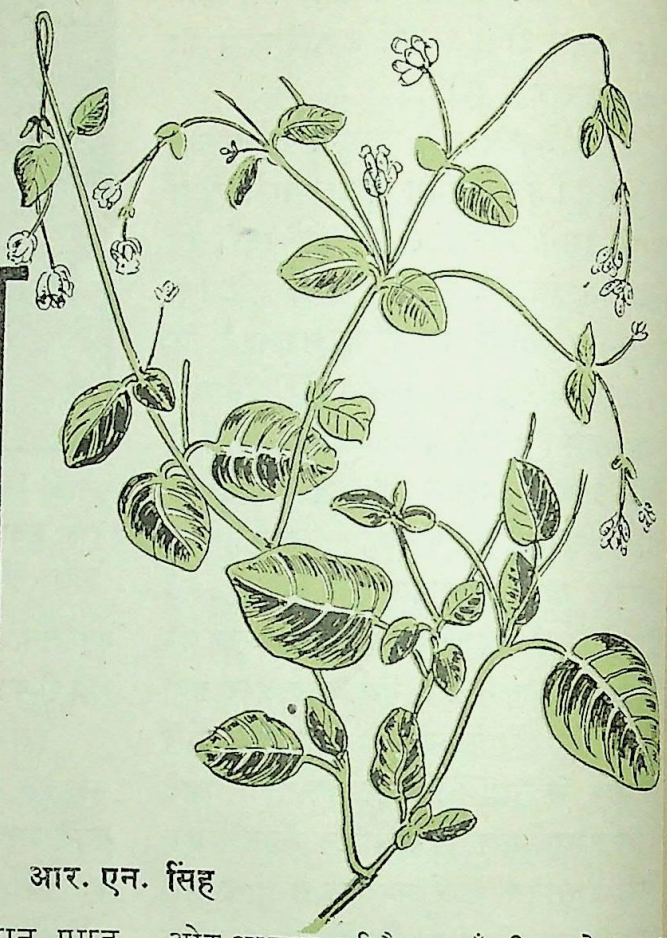

आर. एन. सिंह

भारत को प्रकृति के अनेक वरदान प्राप्त हैं। यहाँ पर एक ओर हिन्द महासागर की गहराई है तो दूसरी तरफ हिमालय की ऊँची पर्वतश्रेणियाँ हैं, एक ओर मरुभूमि है तो दूसरी तरफ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ संसार में सबसे अधिक वर्षा होती है, एक ओर मैदानी उपजाऊ जमीन है तो दूसरी तरफ ऊसर तथा जंगली प्रदेश हैं। जलवायु तथा जमीन की ऐसी विभिन्नता से यहाँ हर प्रकार की वनस्पतियाँ पैदा होती हैं जिनका उपयोग जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किया जाता है। अनेक वनस्पतियों का उपयोग चिकित्सा क्षेत्र में किया जाता है। इसीलिए भारत को ओषधियों का भण्डार भी कहा जाता है।

कुछ काल तक भारतीय वनस्पतियों का चिकित्सा के लिए उपयोग भारत तक ही सीमित था। आज इनके जादुई प्रभाव को देखकर संसार के चिकित्सकों की दृष्टि इनकी ओर आकृष्ट हुई है। यहाँ की सबसे बहुमूल्य तथा संसार-प्रसिद्ध वनस्पति पुनर्नवा है।

'पुनर्नवा' शब्द से प्रतीत होता है कि पर्याप्त अध्ययन के पश्चात् ही इसका यह नाम रखा गया है। 'पुनर्नवा' का अर्थ है—फिर से नया बनाना या नया बनना। इसका पौधा बरसात के बाद सूख जाता है और केवल जड़ें जमीन में पड़ी रहती हैं। पुनः वर्षा होने पर ये फिर हरी-भरी हो जाती हैं तथा नये पत्ते, नयी शाखाएँ निकल आती हैं। इसका प्रयोग उचित रूप से करने पर यह अनेक असाध्य रोगों को दूर करके शरीर को नया रूप देती है। इसके गुण-धर्म के अनुकूल इसे शोथघ्नी भी कहते हैं, अर्थात् शोथ (*oedema*) रोग से मुक्ति दिलाने वाली। वर्षा ऋतु में यह वनस्पति हरी-भरी रहती है। अतः इसे वर्षाभू भी कहते हैं। गदहपूरना, विषखपरा, साँठ तथा ठीकरी आदि इसके अन्यान्य नाम हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी प्रशंसा में वैद्यक ग्रन्थों में बहुत कुछ लिखा गया है। चरक, सुश्रुत आदि में इसका उल्लेख है। धनवन्तरि, भावप्रकाश तथा निघण्टु में तो इसका भेद-प्रभेद के साथ विस्तृत वर्णन है। शोथ, पाण्डु, हृद्रोग, गुर्दे की पथरी, विबंध, उदरशूल, बवासीर, सर्पविष तथा आँख और चर्म के रोगों में इसके प्रयोग चमत्कारिक सफलता देते हैं।

इस शताब्दी के आरम्भ से इसके रासायनिक विश्लेषण तथा परीक्षण आरम्भ किये गये हैं। १९१० में डा. एल.एम. घोषाल ने परीक्षण करके इसमें ०.०५३% क्षारीय पदार्थ, कुछ तैलीय पदार्थ तथा क्लोराइड, सल्फेट और नाइट्रेट के रूप में कुछ लवणों की उपस्थिति बतायी। ताजा अवस्था में इसमें जल-भाग अधिक होने से अल्कलाइड (alkaloid) की मात्रा बहुत थोड़ी प्राप्य थी। अतः १९२३ में डा. आर.एन. चोपड़ा ने सूखी पुनर्नवा का विश्लेषण किया और उसमें ०.०१% क्षारीय पदार्थ तथा ६.४१% पोटैशियम नाइट्रेट और उसके अन्य लवणों की उपस्थिति ज्ञात की। १९२४ में डा. दत्त और डा. अग्रवाल द्वारा परीक्षण किये जाने पर इसमें ०.०५१% Boerhavic acid नामक अम्लीय पदार्थ तथा टेनिन (tannin) भी पाया गया। डा. वसु और उनके सह-योगियों ने १९४७ में विशेष रूप से इसका रासायनिक अध्ययन किया और इसका सूत्र $C_{17}H_{22}N_{20}$ निर्धारित किया।

इनके साथ-साथ इसके गुण जानने के भी प्रयत्न किये गये। इस सम्बन्ध में डा. चोपड़ा के प्रयत्न विशेष महत्त्वपूर्ण रहे हैं। उन्होंने इस वनस्पति के प्रारम्भिक प्रयोग चूहे तथा गिनीपिग जैसे निम्नकोटि के प्राणियों पर किये और पाया कि नस में इसका इन्जेक्शन देने से श्वासगति बढ़ जाती है, रक्तचाप में निश्चित तथा स्थायी वृद्धि होती है और वृक्कों की उत्तेजना से मूत्र विसर्जन में वृद्धि होती है। सामान्यतया त्वचा तथा श्लेष्म झिल्ली पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

भारत में निम्न तीन प्रकार की पुनर्नवा प्राप्त होती है—श्वेत, रक्तिम तथा नीली।

श्वेत पुनर्नवा

इसे श्वेतपुष्पी पुनर्नवा कहते हैं क्योंकि इसका फूल सफेद होता है। यह *nyctaginaceae* कुल की वनस्पति है। इसकी शाखाएँ भूमि पर चारों ओर ४-५ फुट तक लम्बी फैली रहती हैं। शाखाएँ खुलते हरे रंग की, नर्म तथा गूदेदार होती हैं। प्रत्येक शाखा पर ३-४ इंच के अन्तर से गाँठें होती हैं और प्रत्येक गाँठ से पत्तियाँ तथा शाखा-प्रशाखाएँ निकलती हैं। पत्तियाँ नीचे से सफेदी मिश्रित हरी तथा ऊपर से हरी, मुलायम, गूदेदार और १-१ इंच लम्बी, गोल, लम्बगोल होती हैं। शाखाओं के सिरे पर सफेद रंग के छोटे-छोटे फूल गुच्छों के रूप में निकलते हैं। इसके बीज महीन, चपटे, गोल तथा कलछौंह लाल रंग के होते हैं। इसकी जड़ें ऊपर से भूरी, अन्दर

जड़ों शाखाओं तथा पत्र-पुष्प सहित पुनर्नवा

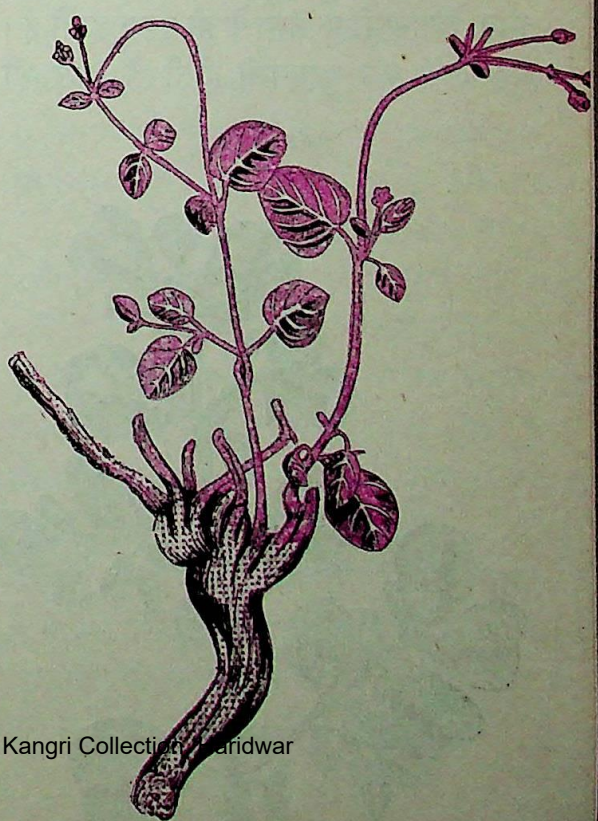

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से सफेद, , १ इंच मोटी, मुलायम, सीधी, ३-४ फुट तक जमीन में रहती हैं। इसमें कहीं-कहीं बारीक उपमूल भी रहते हैं। इसका पौधा कई साल तक जीवित रहता है और वर्षा से वसन्त ऋतु तक हरा-भरा रहता है। गर्मी में पत्तियाँ तथा शाखाएँ प्रायः सूख जाती हैं और जड़ें जमीन में दबी रहती हैं। उन्हीं से प्रत्येक वर्षा ऋतु में नयी शाखाएँ तथा पत्तियाँ निकलती हैं। इस जाति की पुनर्नवा अल्प मात्रा में जयपुर तथा शिवपुरी के निकट प्राप्त होती है।

इसकी एक उपजाति भी होती है जिसे श्वेतमुक्ता पुनर्नवा कहते हैं। यह विशेष रूप से शिवपुरी के निकट गुना जिले में प्राप्त होती है। इसकी जड़ ऊपर से सफेद, मटमैली और भीतर से सफेद तथा रेशेदार होती है जो आसानी से नहीं टूटती। यह जड़ १ इंच तक मोटी होती है और जमीन में ३-४ फुट तक चली जाती है। इसकी प्रत्येक गाँठ पर दो पत्तियाँ होती हैं जिनकी संधियों से शाखाएँ निकलती हैं। इसके फूल छोटे, खुलते गुलाबी रंग के होते हैं और शाखाओं के सिरे पर गुच्छों में निकलते हैं। शेष रचना प्रायः श्वेतपुष्पी पुनर्नवा के ही सदृश होती है। यह उससे कम गुणवाली होती है फिर भी उसके स्थान में प्रयुक्त की जा सकती है।

रक्तिम पुनर्नवा

यह लाल फूल वाली पुनर्नवा है। यह मैदानी तथा जंगली प्रदेशों में उत्पन्न होती है परन्तु अधिक ऊँचाई वाले स्थानों पर नहीं उगती। इसकी जड़ ऊपर से लाल, मटमैली और भीतर सफेद, रेशेयुक्त होती है तथा जल्दी नहीं टूटती। इसकी मोटी जड़ ३-४ फुट तक जमीन के अन्दर चली जाती है। इसकी शाखाएँ लाल रंग की, मुलायम तथा ४-५ गज तक लम्बी जमीन पर फैली रहती हैं। हर गाँठ से पत्तियाँ तथा शाखा-प्रशाखाएँ निकलती हैं। पत्तियाँ ½, १ इंच लम्बी, गोल, लम्बगोल, ऊपर से ललछौंह हरी तथा नीचे से खुलते रंग की होती हैं। शाखाओं के सिरों पर लाल रंग के छोटे-छोटे फूल गुच्छों के रूप में निकलते हैं। इसके बीज काले, मटमैले तथा बारीक होते हैं।

नीली पुनर्नवा

इसे नीले फूल वाली तथा कहीं-कहीं काले फूल वाली पुनर्नवा कहते हैं। यह विशेषतः उत्तर प्रदेश के मैदानों, जंगलों में झाड़ियों के ऊपर फैली हुई मिलती है। इसकी जड़ ऊपर से हलके लाल तथा भीतर से सफेद २ इंच तक मोटी, बिना रेशे की तथा ३-४ फुट जमीन में सीधी धँसी हुई होती है। इसकी डालियाँ हरी और नर्म होती हैं जिन पर ७-८ गाँठें होती हैं। हर गाँठ पर लम्बी, कँगूरेदार पत्तियाँ होती हैं। गाँठों से ही शाखाएँ निकल कर झाड़ियों पर ५-६ फुट तक फैल जाती हैं। पत्तियों की संधियों से ४-५ इंच लम्बे डण्ठल निकलते हैं जिन पर नीले रंग के फूलों के गुच्छे सुशोभित होते हैं। इसके बीज छोटे मटमैले रंग के होते हैं।

पथरचटा

पुनर्नवा को ठीक से न पहचानने के कारण इसके स्थान पर जिस दूसरी वनस्पति

पथरचटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अधिकतर प्रयोग किया जाता है वह पथरचटा है। अतः इसके बारे में भी कुछ जान लेना आवश्यक है। पथरचटा का वैज्ञानिक नाम *Trianthema Monoguina* है जो *ficodae* परिवार की है। इसकी जड़ सफेद, मोटी, मुलायम तथा गूदेदार होती है। यह १ फुट के घेरे में जमीन पर फैलती और ४-५ इंच की गहराई तक जमीन में उतरती है। यह बरसात में खूब प्राप्त होती है और फिर सूख जाती है। इसकी शाखाएँ तथा पत्ते नमकीन और खट्टे होते हैं। यह फूलों के रंगों के आधार पर सफेद तथा लाल होती है। पुनर्नवा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है और उसके स्थान पर अज्ञानतावश इसका प्रयोग करने से हानि ही होने की सम्भावना है।

चिकित्सा में उपयोग

पुनर्नवा के प्रत्येक अंगों का अलग-अलग विश्लेषण करने पर पता चला कि इसका 'पुनर्नवीन' नामक सक्रिय तत्त्व अधिकतर जड़ों तथा पत्तियों में होता है। इसीलिए इसकी जड़ों तथा पत्तियों का प्रयोग मनुष्य करता रहा है। यह तत्त्व पर्याप्त मात्रा में प्राप्त न होने के कारण इसके सत्त्व का ही प्रयोग अधिक प्रचलित है। सत्त्व के रूप में इसमें क्षारीय तथा पोटैशियम नाइट्रेट आदि लवण काफी मात्रा में होने से इसके प्रयोग से मूत्र विसर्जन अधिक होता है और यकृत तथा पेट की खराबी से उत्पन्न होने वाले जलोदर और शोथ आदि रोगों में बहुत लाभ होता है। यह अपना कार्य हृदय तथा वृक्क की सहायता से करता है। अतः इनमें यदि पहले से ही खराबी हो तो लाभ कम होता है। यह पसीना लाकर ज्वर को उतारता है, पीलिया रोग में लाभ पहुँचाता है, गुर्दे की पथरी को गलाकर निकालता है और आँख तथा त्वचा के रोगों को भी दूर करता है।

पुनर्नवानिर्मित कुछेक ओषधियाँ बाजार

पुनर्नवा की जड़ तथा सूखी शाखाएँ

में प्राप्त होती हैं। इनकी प्रयोगविधि निम्न भाँति है। ये कुशल चिकित्सक के परामर्श से ही लेनी चाहिए।

सत् पुनर्नवा (तरल)—३० से १२० बूँद तक की मात्रा दिन में ३-४ बार। **हरी पुनर्नवा**—१ से २ चम्मच दिन में २-३ बार। **पुनर्नवासव, पुनर्नवारिष्ट**—२-२½ तोले मात्रा बराबर जल के साथ भोजन के बाद दिन में दो बार। **पुनर्नवार्क**—१-२ तोले दिन में ३ बार। **पुनर्नवाक्वाथ**—४ से ८ तोला तक दिन में ३-४ बार। **पुनर्नवा-मण्डूर**—४ से ८ रत्ती तक दिन में २-३ बार।

इनके अतिरिक्त पुनर्नवा की ताजा पत्तियों या जड़ों का रस भी स्वतन्त्र रूप से अथवा अन्य ओषधि के सहपान अर्थात् अनुपान के रूप में किया जा सकता है। सबसे अधिक गुणकारी श्वेतपुष्पी पुनर्नवा है। इसके न मिलने पर ही अन्य जाति की पुनर्नवा का प्रयोग करना चाहिए।

पुनर्नवा भारतीय ओषधि का एक अमूल्य रत्न है। इसने अपने अद्वितीय गुणों के कारण अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त की है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ का मस्तिष्क गर्व से ऊँचा था।

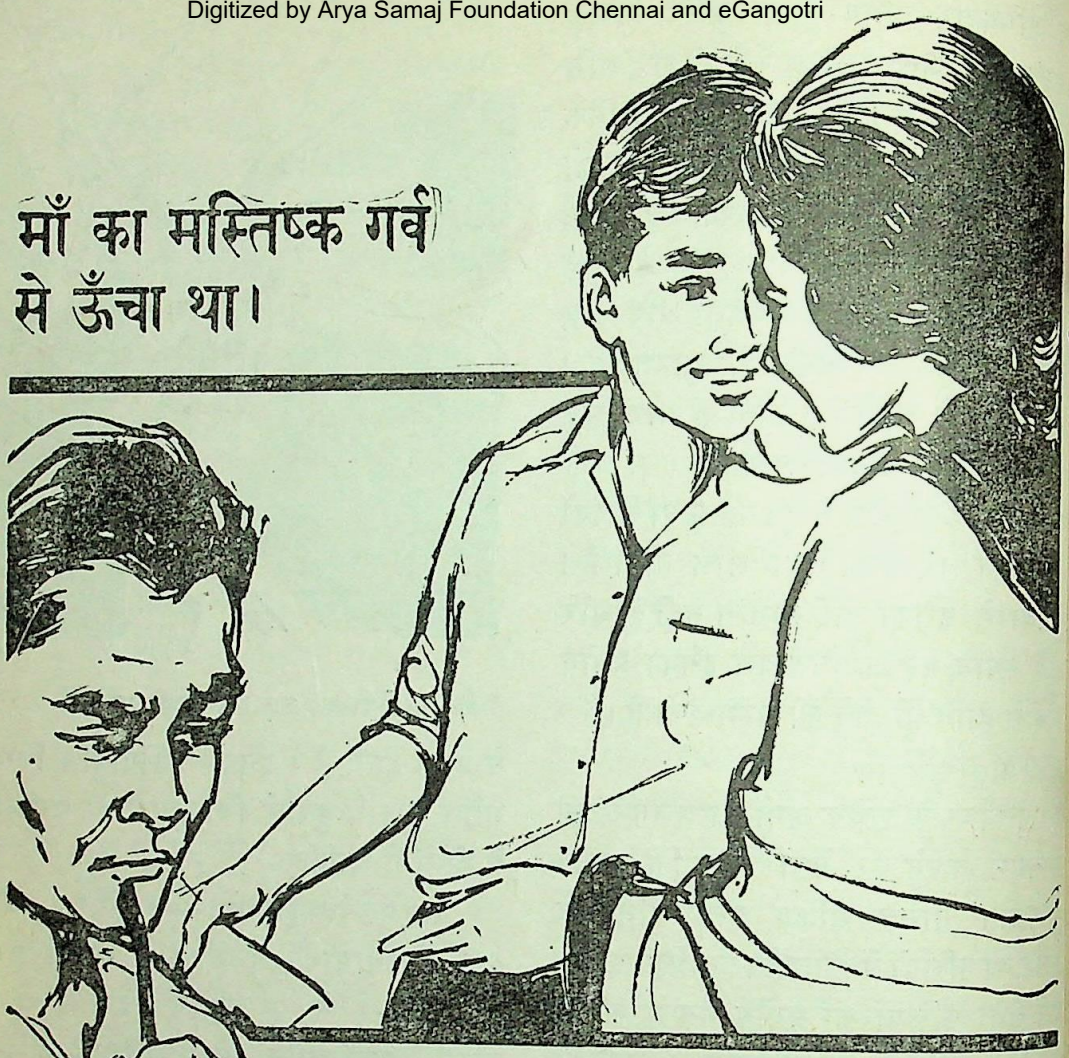

और बाप की गर्दन शर्म से झुकी थी।

उनके लड़के ने मैट्रिक की परीक्षा में ७०% अंक पाये थे। सामान्यतया ऐसे अवसरों पर सब खुश रहते हैं।...,लेकिन बाप अपने आप पर झुँझलाते हुए कहता है, "मैं कैसे उसे बतलाऊँ कि मेरे पास इतना अधिक रुपया नहीं है जिससे मैं उसे कालेज में दाखिल करा सकूँ।" आज बाप की यह दशा न होती यदि उसने एक शिक्षावृत्ति बीमा पालिसी ले ली होती। लड़के और लड़की को ऊँची शिक्षा दिलाने का यह सब से **विश्वसनीय मार्ग** है।

मान लीजिए, आपकी आयु २५ वर्ष और आपके लड़के की १ वर्ष की है तो आपको प्रति मास २० रुपये ३३ नये पैसे देने पड़ेंगे। और जब आपके लड़के की आयु १८ वर्ष की हो जायेगी तब उसे पाँच वर्ष तक हर छमाही पर ५०० रुपये मिल जायेंगे। **यदि कोई बीमेदार पूरे प्रीमियम अदा न कर सके और बच्चे के सिर से उसके प्यार का छत्र उठ जाये तोभी हर छः महीने पर पाँच सालों तक उस बच्चे को यह रकम मिलती रहेगी।** बचत का और कोई तरीका ऐसा लाभ नहीं दिला सकता।

अपने लड़के के भविष्य को भाग्य पर न छोड़िए। तुरंत ही उसके लिए एक शिक्षावृत्ति बीमा पालिसी ले लीजिए ताकि वह इस रकम से ऊँची शिक्षा पा सके और स्पर्धा से भरे हुए इस विश्व में कदम रख सके।

जीवन बीमा सुरक्षा का बेज़ोड़ साधन है।

ASP/LIC-2-11. Hindi

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

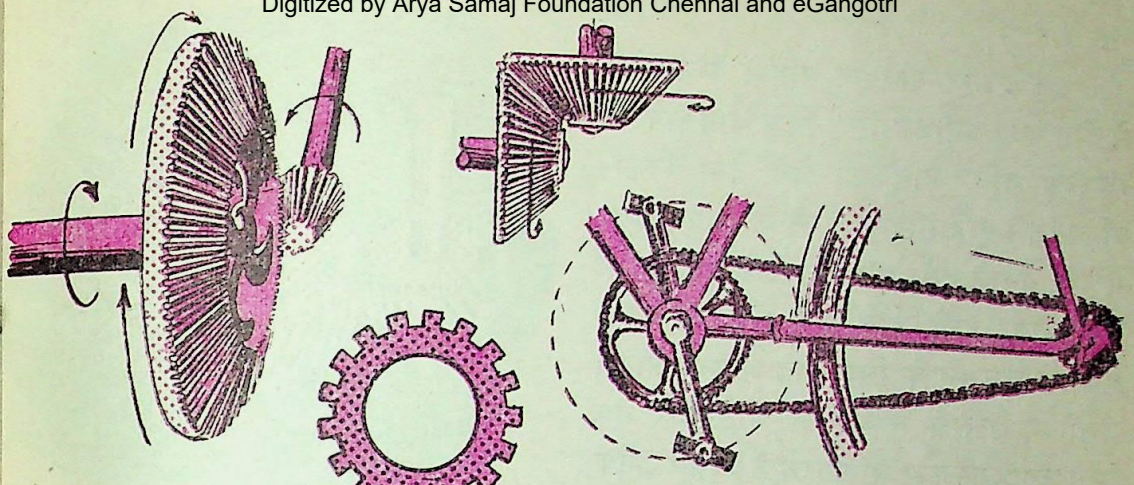

गीयर

मनोज श्रीवास्तव

आज मशीनों का बोलबाला है। मशीनों में भी उन मशीनों का महत्त्व प्रथम स्थान पर है जो विविध मशीनें बनाती हैं। इन्हीं मशीनों द्वारा छोटे-बड़े उद्योगों में काम आने वाली विभिन्न मशीनें तैयार की जाती हैं। ये मशीनें उन यंत्रों के लिए आकार में बिलकुल एक समान तथा किसी भी आवश्यक संख्या में विविध पुर्जे तैयार कर देती हैं। इनसे यह विशेष सुविधा है कि किसी भी यंत्र का कोई भी पुर्जा घिसने या टूटने पर ठीक वैसा ही नया बनाया जा सकता है। औजारों का काम करने वाली ऐसी मशीनें धातुओं की गलाई, कटाई, दबाई, ढलाई, घिसाई, छिलाई आदि अनेक कार्य सम्पन्न करती हैं।

अत्यन्त प्राचीनकाल से मध्ययुग तक

प्राच्यालेखों से ज्ञात होता है कि प्रस्तर-युगीन मानव ने लगभग ३५००० वर्ष पूर्व अपने शारीरिक बल की सहायता के लिए यंत्र बल का उपयोग प्रारम्भ किया था। तब से यंत्र-बल के प्रयोगों की दिशा में यथासाध्य प्रगति होती रही है। १७वीं शताब्दी के प्रसिद्ध कलाकार वैज्ञानिक लियोनार्दो ने भी अपने लेखन-संग्रह में जिन अनेक यंत्रों के उल्लेख किये हैं उनमें खराद, लीवर तथा गीयर आदि के उपयोग सन १५०० से भी पूर्व होते रहने का लिखा है। ऐसे यंत्रों का प्रचलन १८वीं शताब्दी के उत्तरकाल के लगभग ही प्रारम्भ हो पाया क्योंकि उससे पहले यांत्रिक चालक शक्तियाँ अस्तित्व में ही नहीं थीं और उनके स्थान पर मानव-बल का उपयोग उपयुक्त नहीं हो सकता था।

दाँतेदार पहिया—गीयर का प्रादुर्भाव

छोटे-छोटे पहियों को दाँतेदार बनाकर वाष्प तथा पानी द्वारा उनसे गति प्राप्त करना अल्पविकसित रूप में पहले से प्रचलित था ही, औद्योगिक जागृति के साथ उसमें सुधार भी होने लगे। पूर्वकाल में बड़े दाँतेदार पहिये संचालन की सुविधार्थ लोहे के बजाय लकड़ी के बनाये जाते थे। कालक्रम से उनके उपयोग में भी नवीनताएँ जुड़ने लगीं। फलतः एक ही प्रकार की गति प्राप्त करने के अतिरिक्त एक से अधिक छोटे-बड़े पहियों के संयोजन द्वारा मन्द अथवा तीव्र, जैसा भी आवश्यक हो, गति-वैविध्य भी सम्पन्न किया जाने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार दाँतेदार पहियों के उपयोग से तीन मुख्य प्रयोजन सिद्ध किये जाने लगे—स्वतन्त्र गति, गति का वेग तथा दिशा-परिवर्तन। इन्हें सम्पन्न करने के लिए पहियों में दाँते बनाने तथा उन पहियों के संयोजन में विभिन्नता रखी जाने लगी। इनकी कार्य-प्रणाली समझने के लिए यदि अधिक जटिल यंत्रों का उल्लेख न करें तो मोटरकार एक ऐसा उदाहरण कहा जा सकता है जिसमें अनेक प्रकार के गीयरों का समावेश हो जाता है। इससे पहले सरलतम उदाहरण बाइसिकिल का अत्यन्त प्रचलित है।

बाइसिकिल में पैडिलयुक्त बड़ा चेनव्हील पिछले पहिये के छोटे फ्रीव्हील के साथ एक लम्बी चेन द्वारा जुड़ा रहता है। अत: पाँवों के जोर से घूमता हुआ चेनव्हील छोटे फ्रीव्हील को भी गति प्रदान करता है। दोनों को समान बल पहुँचाते रहना लम्बी चेन का काम रहता है। गति में विभिन्नता लाने के लिए पहियों को छोटा-बड़ा तथा कम-अधिक दाँतोंयुक्त रखा गया है। सामान्यत: बड़े पहिये में ४८

यह है गीयर का $\frac{1}{4}$ अनुपात। जब तक बड़े पहिये का चौथाई भाग (१२ दाँते) घूमेगा, छोटा पहिया (कुल १२ दाँत) पूरा घूम जाएगा

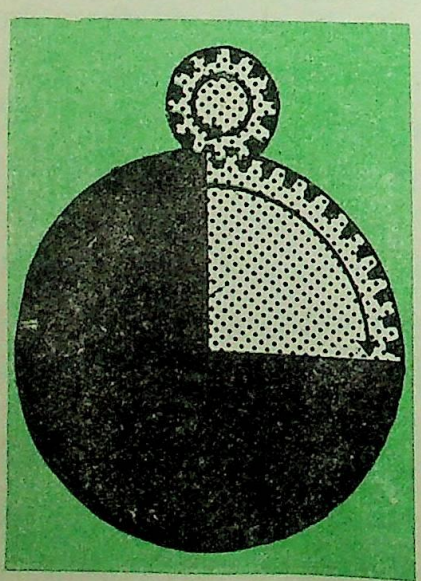

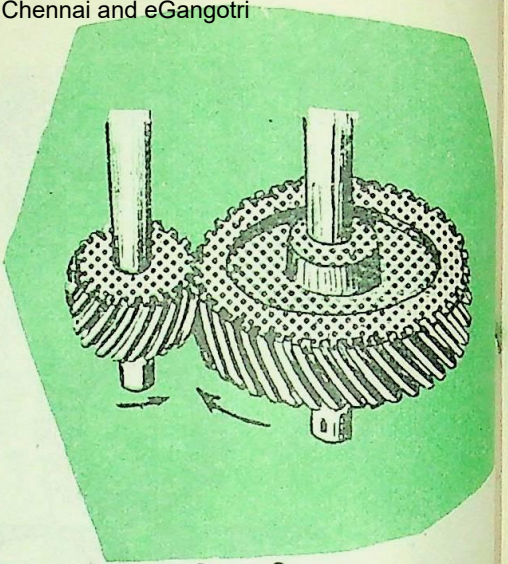

जिन गीयरों से अधिक शक्ति, दाब तथा भार का ... लिया जाए, उनके दाँते सीधे नहीं तिरछे काटे जा...

तथा छोटे में २२, १८, १६ तक भी दाँते ... जाते हैं। छोटा पहिया यदि १६ दाँतों ... हुआ तो बड़े पहिये के एक चक्कर पर वह ... तीन चक्कर घूम जाएगा। फलस्वरूप गाड़ी ... पहिये को पाँवों की इकाई से तीन गुना अधि... वेग मिलेगा। इस प्रतिफल (४८÷१६ = ३ ; १:३) को गीयर-अनुपात कहते हैं। इ... से बाइसिकिल का गति-अनुपात भी ज्ञ... किया जा सकता है। मान लीजिए कि चे... व्हील से जुड़े हुए पैडिल की लम्बाई ७ ... और टायर युक्त पहिये का व्यास २६ इंच ... अब यह ज्ञात करना है कि चेनव्हील के ... चक्कर में पहिया कितना घूमा, अर्थात ब... सिकिल कितनी आगे बढ़ी और दोनों का गी... अनुपात क्या है। पहिये का व्यास २६ ... होने का अर्थ है कि उसकी परिधि लगभग ... इंच है। अत: ऊपर लिखे अनुसार जब चेनव्ह... के एक चक्कर में पहिया तीन बार घूमेगा ... वह बाइसिकिल को ८२ × ३ = २४६ ... आगे बढ़ाएगा। इसके अतिरिक्त पैडिल ७ ... लम्बे होने से चेनव्हील के एक चक्कर ... लगभग ४४ इंच की परिधि बनाएँगे। इसी...

गति-अनुपात $\frac{४४}{३ \times ८२} = ०.१८$ रहेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

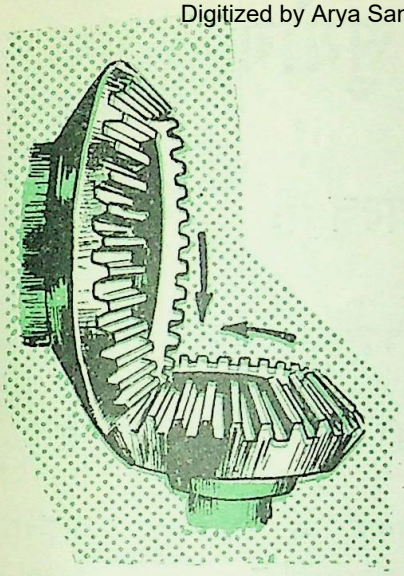

बेवेल गीयर द्वारा क्षैतिज गति को ऊर्ध्वाधर (अथवा उलटा भी) में बदला जा सकता है

मोटरकार में गीयर संयोजन इतना सरल नहीं होता। वाइसिकिल की तरह एक गीयर से दूसरे गीयर को सीधे ही गति प्रदान करना कहीं-कहीं हानिकारक भी होता है। जिस यंत्र की गति निर्धारित कर दी जाती है उसे अधिक गति वाले गीयर से सीधे ही जोड़ देने में टूट-फूट की सम्भावना रहती है। यदि संचालक गीयर ६०० चक्कर प्रति मिनट घूमता है और गति प्राप्त करने वाले यंत्र को केवल १५० चक्कर घूमना आवश्यक है तो गीयरों का संयोजन इस प्रकार करना पड़ेगा कि मूल गति अंतिम रूप में चौथाई रह जाए। इस प्रयोजन के लिए गीयर के दाँते बिलकुल सीधे न रखकर तिरछे रखे जाते हैं जिन्हें हेलिकल गीयर (helical gears) कहते हैं। ऐसी तिरछी अवस्था में दाँते सीधे की अपेक्षा अधिक बल सहन करने के योग्य होते हैं।

मोटरकार के गीयरों में उल्लेखनीय हैं गीयर-बाक्स, डिफरेन्शियल गीयर और स्टीयरिंग गीयर। गीयर-बाक्स में छोटे-बड़े गीयरों का ऐसा कुशल संयोजन रखा जाता है जो कार की चढ़ाई-उतराई में तीव्रतम, मन्दगति, और उलटी गति को पूर्ण नियंत्रित रखते हैं।

डिफरेन्शियल गीयर एक लम्बी शाफ्ट द्वारा आगे इंजन से पीछे के पहियों को बदली हुई दिशा में गति प्रदान करता है। इसमें बेवेल (bevel) तथा पिनियन गीयर (pinion gear) मुख्य कार्य करते हैं। इसी प्रकार वर्म गीयर (worm gear) की सहायता से स्टीयरिंग आगे के पहियों को दायें-बायें घुमाता है।

दाँते यदि बाहर लगाना सम्भव नहीं तो भीतर की ओर लगाये जाते हैं, जिन्हें भीतरी गीयर (internal gears) कहते हैं। रुई धुनने तथा लकड़ी के लट्ठे छीलने के बेलन प्रायः अन्दर की ओर दाँतेदार होते हैं।

जलयान के इंजन में गीयरों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। गीयरों द्वारा यह सम्भव हो सका है कि पुराने ढंग के भारी इंजनों के स्थान पर कम जगह घेरने वाले, हलके तथा तीव्र गति देने वाले इंजन लगाये जाएँ। इनमें जहाँ तीव्र गति को मन्द करने की आवश्यकता होती है, वहाँ रिडक्शन गीयर (reduction gears) लगाये जाते हैं। बिजली की ट्रेनों में स्वतः खुलने-बन्द होने वाले दरवाजे गीयर की व्यवस्था से ही चलते हैं। उनमें नीचे की ओर एक सीधी लम्बी पट्टी रहती है जिसमें दाँते होते हैं। उस पर दूसरा पहिया जो दाँतेदार और गोलाकार होता है, सरकता है।

स्पष्ट है कि गीयरों का उपयोग न केवल मानव-बल को अनेक गुना बढ़ा देता है, बल्कि गति की तीव्रता पर भी नियन्त्रण रखने और गति को अपेक्षित दिशा देने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ●

बाहर के अतिरिक्त अन्दर भी दाँतों की आवश्यकता पड़ जाती है। एतदर्थ भीतरी गीयर का एक नमूना

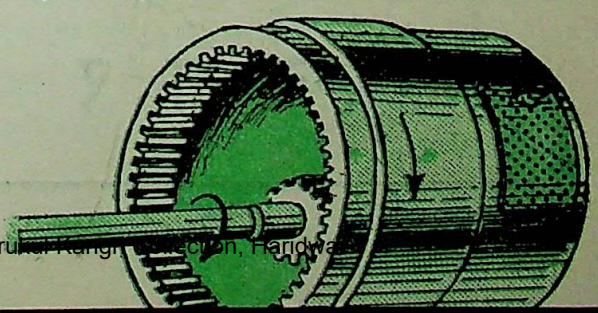

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सेवा का सुयोग

'सफाई ही देवत्व है'

यह एक पुरानी कहावत है

स्वच्छ वातावरण से आनन्द की आभा निकलती है

उससे कहीं अधिक बीमारियों को रोकने में सहायता मिलती है

रेलवे प्लेटफार्मों पर, प्रतीक्षालयों और गाड़ियों में

जहाँ कहीं भी मनुष्य इकट्ठे होते हैं

आरोग्यता के लिए सफाई रखना बहुत जरूरी है

ऐसा करने में आप भी रेलवे की

सहायता कर सकते हैं

आवश्यकता पड़ने पर हर स्टेशन पर उपलब्ध

सफाई कर्मचारियों की सेवाओं का

उपयोग कीजिये और

सफाई रखने में सहायता कीजिये।

उ त्त र रे ल वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारी आँख

डा. त्रिलोक मजूपुरिया

हमारी समस्त इन्द्रियों में आँख का महत्त्व सबसे अधिक है। आँख के होते, सब कुछ है; आँख के जाते, अँधेरा ही अँधेरा है। हमारी कोमलतम इन्द्रिय भी यही है। ठोस वस्तु तो अलग, केवल पवन का झोंका, चकाचौंधयुक्त प्रकाश अथवा किसी की जरा भी टेढ़ी नजर इसे सह्य नहीं है। आश्चर्य है कि आँखों ही आँखों में सब कुछ समझा देने वाले इस विलक्षण अंग की रक्षा के प्रति हम अनभिज्ञ हैं, उदासीन हैं।

एक बेशकीमती कैमरे की भाँति ही रंग-बिरंगी दुनिया की रंगीनियाँ दिखाने वाले अपने इस जीवित कैमरे के प्रति अत्यधिक सावधानी की, निरंतर सफाई की, स्वस्थ रखने की, सुरक्षा तथा रोगी अवस्था में उपचार की आवश्यकता है। इसकी जटिल रचना के सूक्ष्म विवेचन में न उतरें तो भी इसकी सामान्य कार्यप्रणाली समझ लेना उपयोगी ही रहेगा।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, आँख एक कैमरा ही है। कैमरे के लेंस की भाँति इसमें भी बीचोबीच एक गोल छिद्र होता है जिसे तारा (pupil) कहते हैं। इस तारे का नियंत्रण चारों ओर के एक अन्य गोल उपतारे (iris) से होता है। एक गेंद के समान हमारे नेत्र-गोलक की तीन परतें होती हैं—शुक्ल पटल (sclerotic); मध्य पटल (choroid) तथा दृष्टिपटल (retina)। इनमें शुक्ल पटल का वह भाग जो तारे के आगे होता है, पारदर्शक तथा उभरा हुआ होने से एक लेंस का काम करता है। मध्य पटल में रक्त-केशिकाएँ रहती हैं तथा यह पीछे की ओर अँधेरा कक्ष बनाये रहने में योग देता है। तीसरा पटल, दृष्टिपटल है। यही मानो कैमरे की संवेदनशील प्लेट है जिस पर बाहरी वस्तु का उलटा बिम्ब पड़ता है। यह भाग मस्तिष्क से संवेदनशील तंतुओं तथा ग्रन्थियों (nodes) और सूचिकाओं (cones) द्वारा सम्बन्धित रहता है। इन्हीं की सहायता से हम देखने का आभास करते हैं। बरौनियों (eyebrows) युक्त, ऊपर-नीचे की पलकें (eyelids) हमारे नेत्रों की रक्षा करती हैं। ऊपरी पलकों के बाहरी कोनों में अश्रु-ग्रन्थियाँ स्थित हैं और दूसरे कोने में छिद्र हैं जो नासिका में खुलते हैं। तभी तो आँसुओं के साथ नाक भी चल निकलती है!

दृष्टि-दोष एवं उपचार

हमारी दृष्टि-क्षमता इस पर निर्भर रहती है कि बाहरी वस्तु से आने वाली प्रकाश-किरणें दृष्टिपटल पर किस अवस्था में पड़ती हैं। इसमें अव्यवस्था आ जाने पर मुख्यतः चार दृष्टि-दोष उत्पन्न हो जाते हैं—निकट-दृष्टि (short sight); दूर-दृष्टि (long sight);

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषम-दृष्टि (astigmation) तथा ऐंची आँख (squint eye)।

निकट-दृष्टि—अधिकतर लेटे-लेटे अथवा अत्यधिक पास रखकर पुस्तक पढ़ने से शुक्ल-पटल पर अस्वाभाविक जोर पड़ता है। फलतः नेत्रगोलक अपेक्षाकृत लम्बा हो जाता है। ऐसी अवस्था में निकट की वस्तु तो स्पष्ट दिखाई पड़ती है, दूर की नहीं। ऐसे रोगी को नतोदर (concave) लेंस के चश्मे पहनाये जाते हैं।

दूर-दृष्टि—शुक्ल-पटल अधिक छोटा अथवा चपटा हो जाने के कारण हमें दूर की वस्तु तो दिखाई दे जाती है किन्तु निकट की नहीं। इसका कारण यह है कि प्रकाश-किरणें दृष्टिपटल पर पहुँचने तक केन्द्रित होकर बिम्ब नहीं बना पातीं और मालूम होता है मानो उसके पीछे की ओर बिम्ब बनाएँगी। इसके लिए उन्नतोदर (convex) लेंसयुक्त चश्मे उपयोग में लाये जाते हैं।

विषम-दृष्टि—इस दोष में एक आँख निकट की, तो दूसरी आँख दूर की वस्तु देख पाती है। ऐसी दशा में बेलनाकार लेंसों का उपयोग किया जाता है।

ऐंची आँख—दोनों आँखों का सामंजस्य बनाये रखने के लिए इनमें परस्पर ६-६ मांस-पेशियाँ रहती हैं। जब तक इनमें सहयोग रहता है, वस्तु का एक ही संयुक्त प्रतिबिम्ब दिखता है। इनमें असहयोग तथा असामंजस्य आ जाने पर दोनों आँखें दो विभिन्न दिशाओं में देखने लगती हैं। इसका इलाज किसी चश्मे से नहीं हो सकता। इसके लिए शल्यक्रिया का आश्रय लेना पड़ेगा।

दृष्टिसंवेदक तन्तु-समूह (शलाकाएँ तथा शंकु) सब से नीचे की पंक्ति में देखे जा सकते हैं

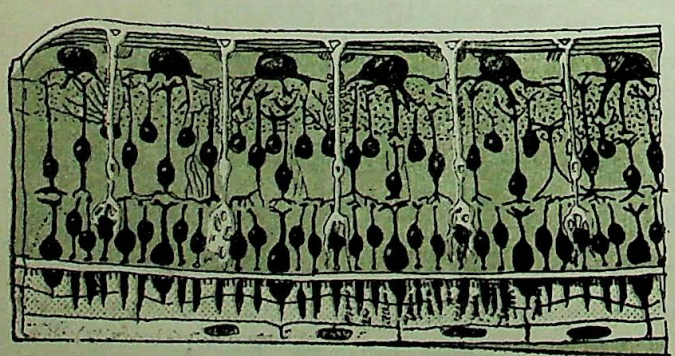

अन्य सामान्य रोग

नित्य ही आँखों की सफाई न करने से अनेक बीमारियाँ आ घेरती हैं। पेट में कब्ज बढ़ते ही आँख लाल हो आती है। अतः इन्हें ठण्डक, स्वास्थ्य और सफाई के लिए कुछ घरेलू क्रियाएँ की जानी चाहिए। शुद्ध का या सुरमा लगाना, त्रिफले के पानी से धो दुखने पर फिटकरी के पानी से धोना गर्मी से लाल हो आने पर गुलाबजल से आदि ऐसे सरल घरेलू नुस्खे हैं जिनके पालन से आँखों का मानो बीमा कराया सकता है। आँखों के कुछ सामान्य रोग उनके उपचार निम्न प्रकार हैं :

फुल्ली—शुक्ल पटल का जो भाग के आगे रहता है, उसके किनारों पर फ पड़ जाते हैं। आँख बहुत दर्द करती है रोगी इसे बन्द ही रखना चाहता है। और भी बिगड़ने पर दृष्टि चले जाने संकट उपस्थित हो जाता है। दाँतों तथ की खराबी, अपौष्टिक भोजन तथा अ मुँह से साँस लेना इस रोग के कारण हैं। इसका इलाज सूर्यरश्मि पौष्टिक भोजन है।

रोहे—जब ऊपरी पलकों पड़ जाते हैं तब आँखों में किर हट और खुजली होने लगती है को रोहे पड़ना कहते हैं। इसका प्रकाश की ओर पूरी आँख खो नहीं सकता। इसके उपचा लिए नर्म रुई के फाहे को मन्द कास्टिक सोडा के भिगोकर बहुत सावधानी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

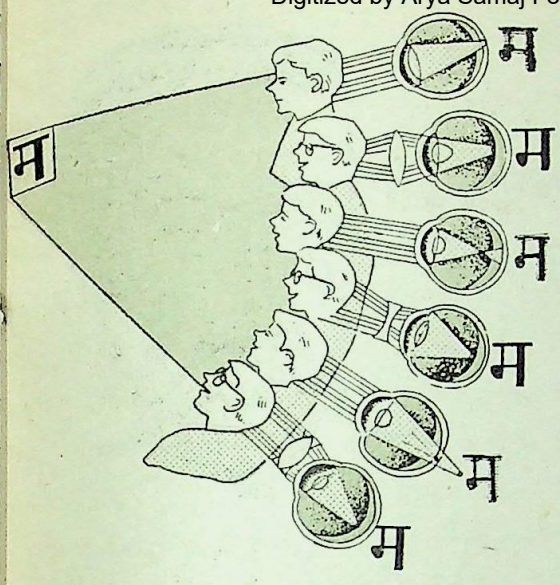

दृष्टि-दोष की विभिन्न अवस्थाएँ—दीर्घ-दृष्टि, संतुलित दृष्टि, निकट-दृष्टि, संतुलित दृष्टि, तिरछी दृष्टि तथा संतुलित दृष्टि

चाहिए। सफाई करके पेनिसिलिन मरहम लगाना चाहिए।

मोतियाबिन्द—कभी-कभी चोट के कारण यह रोग हो जाता है। प्रायः इसे वंशानुगत भी मानते हैं। इस रोग में लेंस की पारदर्शिता मारी जाती है और दाल के दाने के बराबर ठोस दाना लेंस को बन्द कर देता है। इसका एकमात्र इलाज आपरेशन है।

इस दोष के कारण दृष्टिपटल किसी-किसी रंग का बिम्ब और संवेदन नहीं ग्रहण कर पाता। अधिकांशतः लाल, हरा, नीला और पीला रंग इस गिनती में आता है। जिस व्यक्ति में पूर्णतः रंग-अंधापा आ जाता है, उसे प्रत्येक वस्तु भूरी दिखायी देती है।

अतः सबसे मूल्यवान इस अंग की रक्षा और स्वास्थ्य हमारा प्रथम लक्ष्य होना चाहिए। तीव्र प्रकाश से बचने के लिए धूप के चश्मे (goggles), दृष्टि-दोष रोकने के लिए आवश्यक नम्बर के चश्मे तथा नित्य-प्रति की सफाई करते रहने में किंचित भी संकोच से काम न लेना चाहिए।

साधन नहीं, क्षमता बढ़ाइए

केलिफोर्निया के डा. फ्रीडमेन (Dr. Friedman) **को आशंका है कि यदि मानव ने शारीरिक क्षमता बढ़ाने की ओर ध्यान न दिया तो अन्तरिक्ष-उड़ानों में यंत्रसज्जा चाहे जितनी प्रगति कर ले, एक ऐसा संकटकाल भी आ सकता है जब कि मानव की कुछेक आवश्यकताएँ अपूर्त ही रह जाएँ। अतः मानव को अपनी सहनशक्ति सामान्य नहीं, विशिष्ट स्तर पर लानी चाहिए; उदाहरणार्थ दक्षिण अमरीकी इण्डियन आक्सीजन की कमी में भी कार्यरत रह लेते हैं, तिब्बत के लामा हिमांक के वातावरण में भी असुविधा अनुभव नहीं करते, एस्किमो चरबीप्रधान खाद्य पर ही निर्भर रह लेते हैं, भारत के अनेक हठयोगी अंगारों पर चलते हैं और अनेक ऐसे हैं जो महीनों निराहार रह सकते हैं।**

नजर अपनी-अपनी.....

...कमाल अपना-अपना, यह सच कर दिखाया है सेम कोलिन्स नामक एक अमरीकी गोताखोर ने। वर्षों पहले उसने कहीं पढ़ लिया था कि अफ्रीका के दक्षिण-पश्चिम सागर के किनारे-किनारे एक ब्रिटिश-अमरीकी साझे की वृहत हीरक खान का एक अल्प भाग सागर की लहरों में बहकर दूसरे किनारे ठहर गया है। खान के अधिपतियों ने न तो कुछ परवाह की और न उस पर परिश्रम ही करना लाभदायक समझा। इधर सेम कोलिन्स ने कमर कस ली और जब कि खान के मालिक अपनी ओर परिश्रम करके प्रति २० टन मलबे से एक हीरा प्राप्त करने का औसत ला पाते हैं, कोलिन्स १० ही टन मलबे से एक हीरा प्राप्त कर लेता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक तारे ने जिसको पुकारा

टीशो ब्रेह

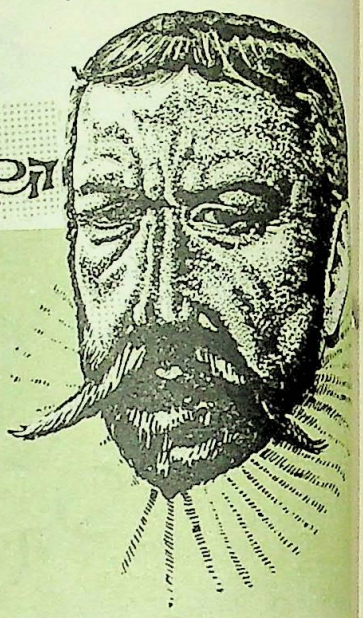

राजेन्द्रकुमार

जिसने इतिहास-प्रसिद्ध, महान नक्षत्रविज्ञ कोपर्निकस के छोड़े हुए कार्य को सम्हाला, जिसने प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू के कुछेक अटल माने जाते रहे खगोलीय सिद्धान्तों को जड़ समेत हिलाया और जिसके शुद्धतम नक्षत्रावलोकनों पर आधारित रहकर ज्हॉन केप्लर ने अपने तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त प्रस्तुत किये, वह था टीशो ब्रेह (Tycho Brahe)।

जीवन का पूर्वकाल

१४ दिसम्बर १५४६ को स्केनिया (डेन्मार्क) के एक उच्च घराने में ब्रेह का जन्म हुआ। तेरह वर्ष की आयु में उसके चाचा स्टेनो बेल ने उसे कोपनहेगन विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए भेजा। वहाँ २१ अगस्त १५६० को सूर्यग्रहण पड़ा तो उसके समय आदि के विषय में ज्योतिषियों द्वारा की गयी पूर्व-घोषणाओं की सचाई पर वह मुग्ध हो गया। नक्षत्र-विद्या ने उसका मन मोह लिया और इस नयी विद्या के रस में वह डूबने-उतराने लगा। तब तक अधिक शक्तिशाली दूरदर्शी उपलब्ध नहीं थे। स्वनिर्मित उपकरणों द्वारा ब्रेह तारों के अध्ययन में रातें बिताने लगा। सब कुछ गुपचुप ही चला जा रहा था। चाचा समझता था कि भतीजा पढ़ाई नाम कमा रहा है, किन्तु वास्तविकता कुछ ही रूप में थी। अन्दर ही अन्दर, ब्रेह साधारण विद्यार्थी मिटकर असाधारण नक्षत्र विज्ञ बनता जा रहा था।

नयी खोजें, नयी हलचलें

ब्रेह १७ वर्ष का हुआ तो चाचा ने कानून पढ़ने के लिए लीपजिग विश्वविद्यालय में भेजा। वहाँ अपने आकाशीय अध्ययन उसने वृहस्पति और शनि ग्रहों को परस्पर निकट आते हुए देखा। तत्पश्चात् ११ नवम्बर १५७२ को उसने काश्यपी (Cassiopeia) तारासमूह में एक नया ही तारा अलग, प्रकाश से जगमगाता हुआ देखा। वही तारा उसके भाग्य-सितारे को चमकाने वाला सिद्ध हुआ। उसने सोचा कि उसके पुरोगामी नक्षत्र वेत्ताओं की तब तक बनायी हुई नक्षत्र तालिकाओं में सुधार और संशोधन का पर्याप्त अवकाश है। उसने यह भी देखा कि उस तारे की चमक आरम्भ में तो शुक्र तारे जैसी थी, किन्तु क्रमशः घटते-घटते दो वर्षों में वह लुप्त भी हो गया! इसके अतिरिक्त यह भी ज्ञात हुआ कि पृथ्वी से वह तारा बहुत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अपेक्षा बहुत दूरी पर था।

ब्रेह की इस खोज ने तत्कालीन नक्षत्र-विदों और सामान्य जनता में हलचल मचा दी। ब्रेह ने सिद्ध किया कि प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू का वह सिद्धान्त तथ्यपूर्ण नहीं जिसमें वे कह गये हैं कि चन्द्रमा से आगे अन्तरिक्ष में सब कुछ स्थिर है, अपरिवर्तनीय है। उसके बाद १५७७ में उदित नये पुच्छल तारे ने अरस्तू के इस दूसरे सिद्धान्त की भी जड़ें हिला दीं कि पुच्छल तारे पृथ्वी के ही वायुमण्डल से उठते हैं। ब्रेह ने प्रदर्शित किया कि पृथ्वी से उस पुच्छल तारे की दूरी चन्द्रमा की अपेक्षा कम से कम तीन गुना अधिक थी।

नक्षत्रविद्याप्रेमी ब्रेह

२६ वर्ष का युवा ब्रेह नक्षत्रविद्या के आकर्षण से पूर्णतः अभिभूत हो चुका था। इसी विद्या को अपना लक्ष्य मानकर उसने उत्तरी यूरोप की प्रसिद्ध संस्थाओं, विश्वविद्यालयों और वेधशालाओं की यात्राएँ कीं; गणमान्य नक्षत्रविदों से दीक्षा ली और उस ज्ञानयात्रा के पश्चात् स्वदेश लौट आया। उन दिनों नक्षत्रविद्या में दखल देना और दार्शनिक अरस्तू के सिद्धान्तों का प्रतिवाद करना पुराने खयाल के रईसों को सह्य नहीं था और इसके अतिरिक्त ब्रेह की पत्नी उच्च कुल की नहीं थी। इसलिए ब्रेह को उन्मुक्त सहयोग मिलने में प्रारम्भिक कठिनाइयाँ रहीं।

आज की बृहत् वेधशालाओं की अग्रदूत

डेन्मार्क का तत्कालीन सम्राट फ्रेडरिक द्वितीय ब्रेह के अनुसन्धानों से प्रभावित हो चुका था। उसने ब्रेह को अपने आश्रय में बुला लिया। कोपनहेगन और एलसिनोर के मध्य ह्वेन (Hven) द्वीप ब्रेह को सौंप दिया और वहीं वेधशाला खड़ी करने के लिए आवश्यक उपकरणों तथा धन आदि समस्त साधनों की सुविधा भी प्रदान की। यों, १५७६ में उस समय की संसार की सर्वश्रेष्ठ वेधशाला की आधारशिला रखी गयी। प्रयोग-कक्षों, अतिथि-भवनों तथा समस्त सुविधाओं सहित उस भव्य वेधशाला के बाह्य भाग को यूरेन बोर्ग (Uran borg) अर्थात् हवाई किला (castle of the air) का नाम दिया गया और भूमिगत भाग को स्टेल बोर्ग (Stell borg) अर्थात् तारा नगरी (city of stars) नाम दिया गया। उस वेधशाला की खूबी यह थी कि आज जैसे आधुनिक उपकरण न होते हुए भी ब्रेह के उपकरण उन दिनों के अन्यान्य उपकरणों से ५०-६० गुना अधिक क्षमतावान तथा शुद्धमापी थे।

उस ह्वेन वेधशाला के स्थापना-काल

इतिहास-प्रसिद्ध ब्रेह-निर्मित ह्वेन वेधशाला

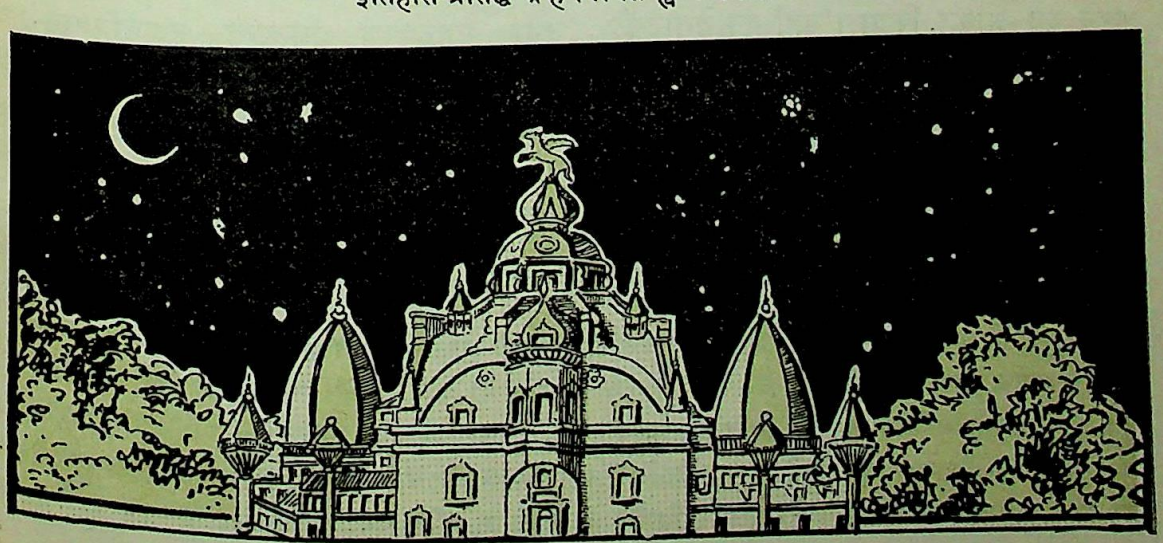

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१५७६-१५९६) में ब्रे ह ने सम्राट फ्रे डरिक तथा राजकुमार क्रिश्चियन चतुर्थ के संरक्षण और उदार सहयोग में स्वयं कठिन परिश्रम करते हुए और अपने सहयोगी दल से भी कराते हुए अनेक महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये। ब्रे ह की कीर्ति ने अनेक लोगों को आकर्षित किया जिनमें उल्लेखनीय थे स्काटलैण्ड के (तत्पश्चात् इंग्लैण्ड के भी) सम्राट जेम्स द्वितीय। सम्राट जेम्स ने तो ब्रे ह की प्रशस्ति अपनी स्वलिखित काव्य-पंक्तियाँ भेंट करके की थी!

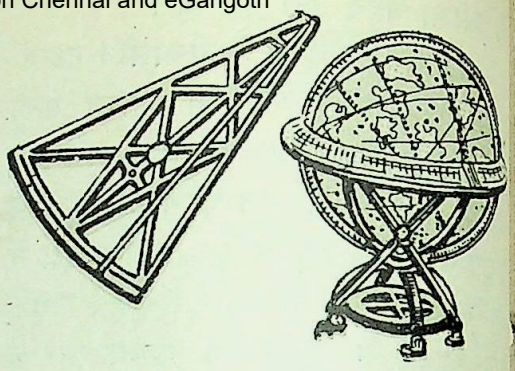

ऐसे थे वे साधारण उपकरण जिनके द्वारा ब्रे ह ने ब्रह्माण्ड के अभेद्य रहस्यों को सहज तथ्यों के रूप में हमारे सामने रखा

तेज-मिजाजी ने खटा उखाड़ा

मिजाज की तेजी, सहयोगियों से सीमोपरान्त परिश्रम लेने की प्रकृति और खुले हाथों राजकोष का अपव्यय, इन तीनों ने मिल कर ब्रे ह के अनेक द्वेषी और शत्रु भी उत्पन्न कर दिये। संकट तब और भी बढ़ गया जब सम्राट फ्रे डरिक चल बसे। शत्रुओं को अवसर मिला और उन्होंने ब्रे ह की जड़ खोदना आरम्भ कर दिया।

भाग्य-सितारा फिर भी प्रबल था

ब्रे ह का भाग्य-सितारा १५९७ में कुछ काल के लिए ओट में हो गया किन्तु १५९९ आते-आते पुनः चमका। उस वर्ष रोमन सम्राट रुडोल्फ द्वितीय ने अपनी राजधानी प्रेग (चेकोस्लोवेकिया) में ब्रे ह को आमन्त्रित किया और वहीं राज्याश्रय में नयी वेधशाला खड़ी करने का आग्रह किया। वहाँ का बेनाटकी किला (Castle of Benatky) सम्राट ने ब्रे ह को सौंप दिया। साथ ही, आकर्षक पेन्शन भी बाँध दी और अन्य अनेक सुविधाएँ प्रदान कीं। ब्रे ह ने वहाँ नया सहकारी दल तैयार किया और दो ही वर्ष के अल्प समय में अपनी नयी खोजों द्वारा सम्राट को चकित कर दिया। उसी दौरान में ब्रे ह को अपने शिष्यों में ज्हॉन केप्लर भी प्रारब्ध के पुरस्कारस्वरूप मिला जिसने संसार-प्रसिद्ध नक्षत्रवेत्ताओं में अपना स्थान बनाकर अपने आचार्य टीशो ब्रे ह का नाम और भी जगमगा दिया।

जीवन-मंच का यवनिका-पतन

प्रेग की वेधशाला को ब्रे ह की सेवाओं का, ब्रे ह के पाण्डित्य का और ब्रे ह की विलक्षण प्रतिभा का लाभ दो ही वर्ष मिल सका। अनेक स्वलिखित (जिनमें प्रथम ग्रन्थ केप्लर द्वारा सम्पादित) ग्रन्थों में अनन्त अन्तरिक्ष और तारकलोक के रहस्योद्घाटन तथा महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त नक्षत्रविज्ञान-जगत को भेंट करके २४ अक्टूबर १६०१ को टीशो ब्रे ह ने इस असार संसार से विदा ली।

पिघलती पथरियाँ

गुर्दे की पथरियाँ चिकित्साकाल के आरम्भ से ही बड़ी समस्या खड़ी करती रही हैं और अब तक एकमात्र इलाज आपरेशन ही रहा है। आपरेशन के पश्चात् भी कई हठीली पथरियाँ तो पुनः सिर उठा लेती हैं। अब अमरीका के डा. विलियम मलवाने (Dr. William Mulvaney) ने हिमिएसिड्रीन (hemiacidrin) नामक एक ऐसी तरल ओषधि तैयार की है जो ४० प्रतिशत तक सफल सिद्ध हुई है और इसके प्रभाव से न केवल पथरी घुलकर विलीन हो जाती है, बल्कि पुनः उभरती भी नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाइट्रोजन

7625

सत्यकुमार

आक्सीजन को प्राणवायु कहा जाता है पर नाइट्रोजन का नाम लवाशिये ने प्राणशून्य वायु (Azote) रखा था; क्योंकि यह गैसीय अवस्था में वायुमण्डल में ७९% होने पर भी बहुत थोड़े पदार्थों से संयोग करता है और जीव-जगत के लिए इसका प्रत्यक्ष महत्त्व नहीं दीख पड़ता। हम जब श्वास लेते हैं तो आक्सीजन के साथ नाइट्रोजन भीतर जाता है परन्तु श्वास छोड़ने पर कार्बन डाइ-आक्साइड के साथ यह बाहर भी आ जाता है। रक्त में यह बहुत थोड़ी मात्रा में घुलता अवश्य है परन्तु इसका कोई प्रत्यक्ष उपयोग दृष्टिगोचर नहीं होता।

यह तो हुई स्वतंत्र नाइट्रोजन की बात। अब यदि हमने इसे अन्य तत्त्वों से संयुक्त कर लिया तो इसकी उपयोगिताओं का अन्त न पा सकेंगे। कुछेक का उल्लेख करें तो यह हमारे भोजन का आवश्यक अंग है और वनस्पति-जगत का तो प्राणतत्त्व ही है क्योंकि उसके लिए आवश्यक खाद का यह प्रमुख अंग है। विस्फोटकों में नाइट्रोजन अनिवार्यतः होता ही है। अमोनिया, नाइट्रिक अम्ल, सायनेमाइड, नाइट्राइड इत्यादि महत्त्वपूर्ण रसायन इसी के यौगिक हैं। कृत्रिम रंग नाइट्रोजन की देन हैं। सबसे अधिक तो यह प्रोटीन में रहता है। प्रोटीन प्राणियों तथा पेड़-पौधों के लिए अत्यावश्यक है, क्योंकि उसका मुख्य कार्य पौधों तथा जीवों के तन्तुओं का निर्माण करना है।

१७७२ में रदरफोर्ड ने नाइट्रोजन की खोज की। उसने एक पात्र में बन्द वायु के अन्दर फास्फोरस जलाकर इसे प्राप्त किया था। लवाशिये ने इसका विस्तृत अध्ययन किया तथा इसका नाम प्राणशून्य वायु रखा क्योंकि वायु में से प्राणवायु आक्सीजन निकाल लेने पर यही शेष रहा था। यह शोरे (नाइटर) में विद्यमान है, अतः चेपटल ने १८८३ में इसका नाम 'नाइट्रोजन' रखा। वायु में यह ७९% है। अतः वायु से आक्सीजन निकालकर इसे सहज अवशिष्ट रूप में प्राप्त किया जा सकता है। अमोनियम नाइट्राइट अथवा अमोनियम डाइक्रोमेट को गरम करने से भी यह प्राप्त होता है। बड़े पैमाने पर

विद्युत स्फुलिंग नाइट्रोजन के अणु को परमाणुओं में विच्छेदित कर देता है। विद्युत प्रवाह बन्द किये जाने पर विभाजित परमाणु पुनः संयुक्त होकर अणु बना लेते हैं और इस क्रिया में दीप्त भी हो उठते हैं

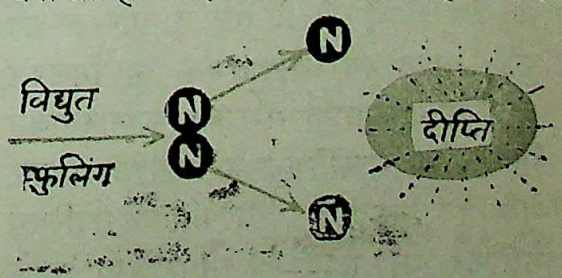

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

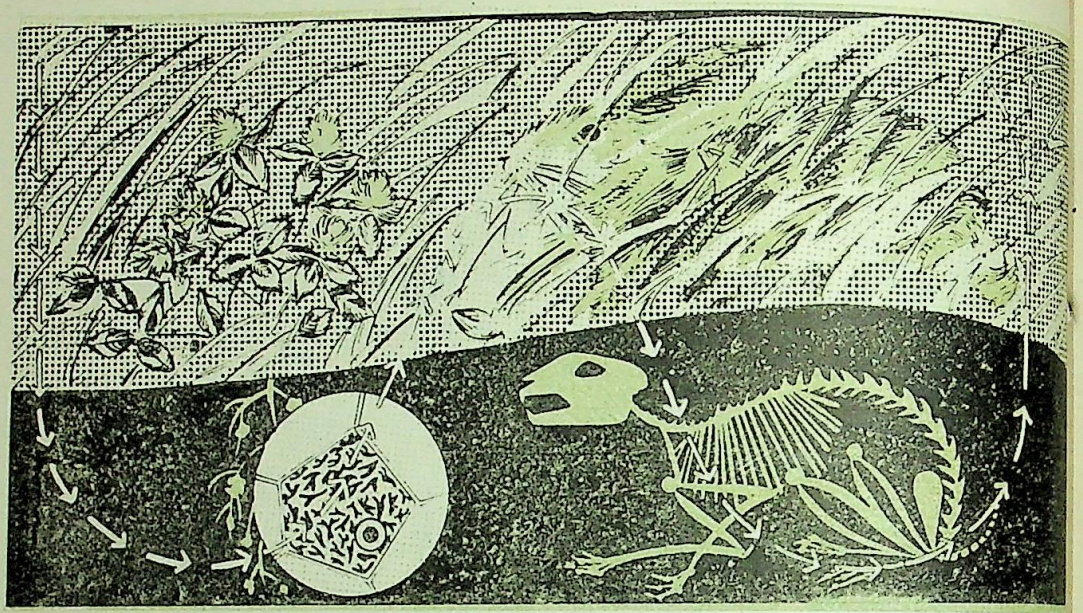

भूमिगत बैक्टीरिया वायुमण्डल के नाइट्रोजन को नाइट्रेट लवणों में परिवर्तित करके पौधों का पोषण करते हैं। उन पौधों को जीव-जन्तु खाते हैं। मृत जीव-जन्तुओं से बैक्टीरिया नाइट्रोजन विमुक्त करके पुनः वायुमण्डल को लौटा देते हैं। यही है नाइट्रोजन-चक्र।

नाइट्रोजन उत्पादित करने के लिए द्रवीय वायु का वाष्पीकरण करते हैं। इसका क्वथनांक काफी नीचा (—१९५°C) होने के कारण उपरोक्त क्रिया में यही पहले प्राप्त होता है।

यह रंगहीन, गंधहीन, स्वादहीन गैस है। यह जल में बहुत कम घुलनशील है। भार में भी कुछ हलका ही है। यह श्वसन क्रिया में सहायक नहीं है पर विषैला भी नहीं है।

पेड़, पौधे, मनुष्य, पशु भी नाइट्रोजन बड़े पैमाने पर खपाते हैं, फिर भी वायुमण्डल में नाइट्रोजन की कमी नहीं पड़ती। इसका कारण है 'नाइट्रोजन चक्र' (nitrogen cycle); अर्थात् जितना नाइट्रोजन वायुमण्डल से लिया जाता है, उतना ही घूम-फिरकर वायुमण्डल में फिर पहुँचा दिया जाता है। जब आकाश में विद्युत कौंधती है तब वायुमण्डल का कुछ नाइट्रोजन आक्सीजन से मिलकर नाइट्रिक आक्साइड और अधिक आक्सीजन मिलने पर नाइट्रोजन पराक्साइड बनकर भूमि पर बरसता है। तब भूमि पर उपस्थित भास्मिक आक्साइडों के साथ क्रिया करके यह नाइट्रेट बना लेता है। उसी दरम्यान कुछ नाइट्रोजन हाइड्रोजन से मुक्त होकर अमोनिया भी बनाता है। अतः अमोनिया भी पृथ्वी पर बरसता है। वनस्पति-जगत इन्हीं नाइट्रेट व अमोनियम लवणों पर आधारित रहता है। पौधों में पहुँचकर यह धीरे-धीरे प्रोटीन तथा एमीनो अम्ल आदि जटिल यौगिकों में बदल जाता है। वह प्रोटीन भोजन के रूप में प्राणियों की शरीर-रचना में प्रयुक्त होता है। लिगुमिन (legumine) किस्म के पौधे अपने पोषण के लिए सीधे वायुमण्डल से नाइट्रोजन प्राप्त कर लेते हैं।

जीवों व वनस्पतियों द्वारा वायुमण्डल से लिया गया यह नाइट्रोजन मृत जीवों, मल-मूत्र, तथा सड़ी-गली वस्तुओं से वायुमण्डल को पुनः प्राप्त हो जाता है। भूमिगत अनेक बैक्टीरिया भी नाइट्रोजनीय पदार्थों को नाइट्रेट, नाइट्राइड आदि में परिवर्तित करके नाइट्रोजन मुक्त कर देते हैं। इस प्रकार नाइट्रोजन जो कल वायुमण्डल से पेड़-पौधों में पहुँचा था, आज हमारे शरीर में है और आने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले कल के दिन वह भूमि में होगी और परसों पुनः वायुमण्डल में ! सृष्टि का यह क्रम चलता ही रहता है। प्रयोगशाला में भी नाइट्रोजन को आक्सीजन, हाइड्रोजन आदि अनेक पदार्थों से संयुक्त किया जा सकता है।

खाद के रूप में नाइट्रोजनीय पदार्थों का महत्त्व किसी से छिपा नहीं। नाइट्रोजन के अनेक यौगिक तथा अमोनियम सल्फेट, अमोनियम नाइट्रेट, अमोनियम क्लोराइड, अमोनियम फास्फेट, सोडियम नाइट्रेट, पोटैशियम नाइट्रेट, कैल्सियम नाइट्रेट, सायनेमाइड, यूरिया आदि असंख्य उर्वरक उपलब्ध हैं। सिन्दरी (भारत) के कारखाने में मुख्यतः अमोनियम सल्फेट का उत्पादन किया जाता है। पौधों में जड़ों को छोड़कर अन्य हिस्सों की वृद्धि के लिए नाइट्रोजन आवश्यक है। नाइट्रोजन पर्याप्त मात्रा में मिलने पर ही पत्तियाँ हरी रहती हैं अन्यथा लाल-पीली हो जाती हैं। पत्तियों का सरसता, फलों का मोटापा तथा दाने की सम्पन्नता नाइट्रोजन पर ही निर्भर है। अन्य आवश्यक तत्त्व फास्फोरस, पोटैशियम आदि को भी यही संतुलित रखती है। नाइट्रोजन की कमी से पौधा पूरा नहीं बढ़ पाता और जड़ के आसपास ही फैलकर रह जाता है। सेल्युलोज के साथ कोशाभित्ति बनाने में भी नाइट्रोजन काम आता है।

नाइट्रोजन से कार्बनिक यौगिक (एमीन) बनते हैं। ये ओषधियों तथा रंगों में प्रयुक्त होते हैं। संश्लेषित रंगों का आविष्कार भी अचानक ही हो गया था। हुआ यह कि पर्किन नाम का रसायनरसिक एक छात्र एनिलीन से क्विलीन (कुनैन) बनाने का प्रयत्न कर रहा था। संयोगवश उससे एक गुलाबी सा पदार्थ बन गया। उसने उसी का व्यावसायिक रूप में निर्माण किया। वही पहला सफल कृत्रिम रंग था। उस आविष्कार के समय

पेड़-पौधों की जिन भूमिगत जड़ों पर गाँठें उभरी रहती हैं, उनमें बैक्टीरिया पलते रहते हैं। वे ही बैक्टीरिया वायुमण्डल से नाइट्रोजन लेकर भूमि को नाइट्रोजन-सम्पन्न करते हैं

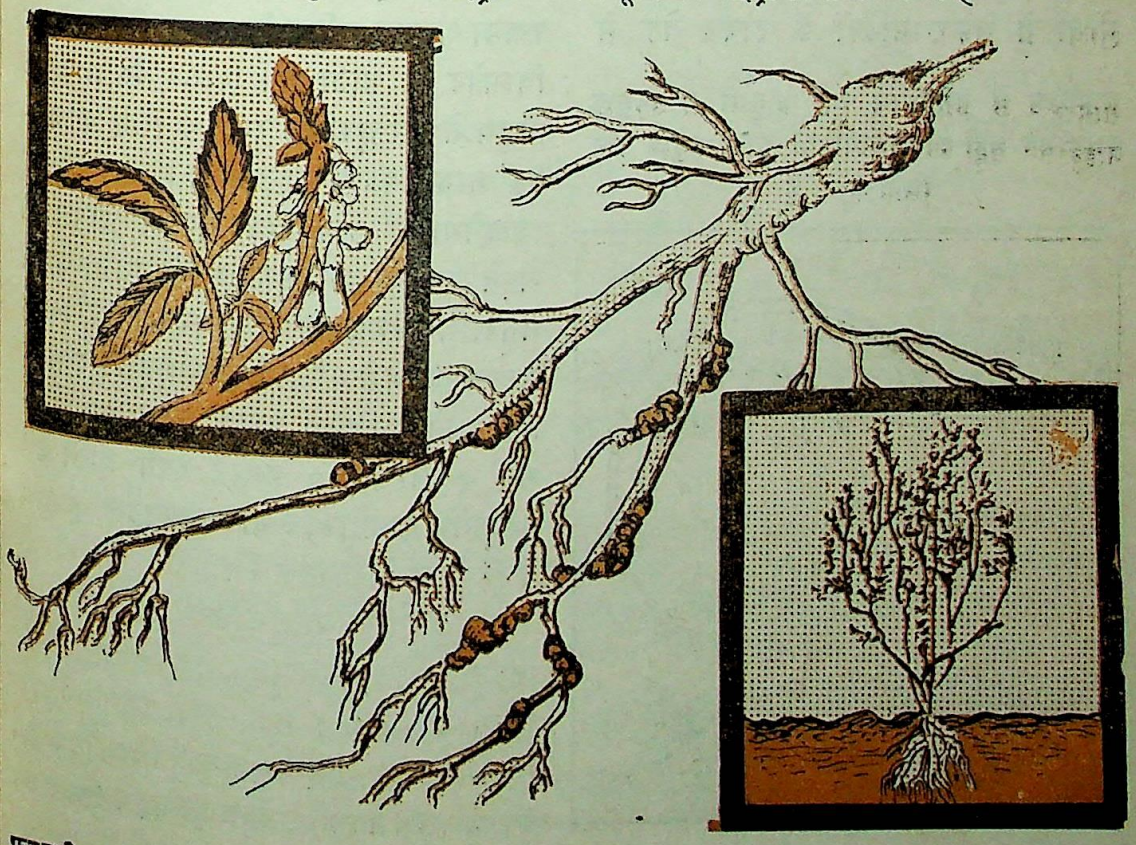

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी आयु केवल १८ वर्ष की थी। फिर तो एनिलीन से अनेक कृत्रिम रंग बनाने का ताँता लग गया! एनिलीन कोलतार से प्राप्त किया जाता है। अतः इन कृत्रिम रंगों को कोलतार का रंग भी कहा जाता है। काले कोलतार में इतने सुन्दर रंग छिपे पड़े हैं, यह किसे ज्ञात था! कोकेन और नोवोकेन भी एमीनो यौगिक हैं जो ओषधियों में, विशेषतः दन्त-चिकित्सा में प्रयुक्त होते हैं।

एमीन की तरह एमाइड भी नाइट्रोजन के यौगिक हैं। यूरिया साधारण एमाइड है। यह खाद के काम आता है। वैसे यह कार्बनिक रसायन में आदि-यौगिक है। जटिल एमाइडों में एक्रोमाइसिन, टेरामाइसिन व ऑटोमाइसिन प्रसिद्ध ओषधियाँ हैं।

द्वितीय विश्व युद्ध में रेशम की कमी पड़ जाने पर प्रोटीन पर प्रयोग करके संश्लेषित रेशे बनाये गये। वे ही आज नायलान नाम से विख्यात हैं। नायलान सुन्दर ही नहीं, रेशम से कहीं अधिक टिकाऊ भी है। हमारे मोजों से लेकर मोटरों के टायर तक में नायलान प्रयुक्त होता है। रेशमी कपड़ों को तो कीड़ा लग जाता है, परन्तु नायलान को कीड़ा लगने का सवाल नहीं।

सागरतल में समाधिस्थ मृत जन्तुओं से विमुक्त नाइट्रोजन वहीं की वनस्पतियों द्वारा प्रयुक्त कर लिया जाता है

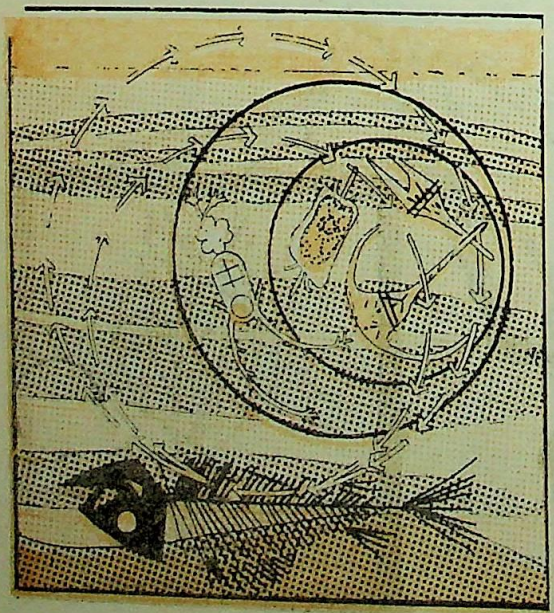

एमीनो अम्लों से सम्बन्धित एक अन्य प्रमुख ओषधि स्ट्रेप्टोमाइसिन है जिसके निर्माण के लिए १९५२ में वेक्सगेन को नोबेल पुरस्कार दिया गया था। पोटैशियम साइनाइड अति प्रसिद्ध और तीव्रतम विष है। इस पर अम्लों की क्रिया कराने से हाइड्रोसायनिक अम्ल गैस बनती है। बहुत से देशों में यही गैस सुँघाकर मृत्यु दण्ड दिया जाता है।

नाइट्रिक अम्ल में नाइट्रोजन होता है जिससे अनेक नाइट्रेट लवण तथा नाइट्रो यौगिक बनते हैं। सबसे प्रसिद्ध कार्बनिक नाइट्रेट—ग्लिसराइल ट्राइनाइट्रेट है। वैसे यह नाइट्रोग्लिसरीन के गलत नाम से विख्यात है। यह प्रमुख विस्फोटक है। युद्ध के अतिरिक्त शान्तिकाल में पहाड़ों को काटकर सुरंगें, सड़कें बनाने तथा खानों में यह विस्फोटक काम आता है। इस विस्फोटक को सुरक्षित रखना अत्यन्त कठिन है। जरा-सी ठेस से ही विस्फोट हो जाता है। १८६२ में आल्फ्रेड नोबुल ने इसे सुरक्षित रखने के लिए 'कीजल गर' नामक पदार्थ का उपयोग किया था। इसे 'डाइनेमाइट' नाम दिया गया। नोबुल ने अपने आविष्कृत विस्फोटकों से इतनी अधिक धनराशि अर्जित की कि उस राशि के एक बड़े भाग के ब्याज से प्रतिवर्ष पाँच नोबुल पुरस्कार दिये जाते हैं जिनमें प्रत्येक की लागत लगभग १ लाख २० हजार रुपये होती है। सेल्युलोज ट्राइनाइट्रेट भी 'गनकाटन' के नाम से विख्यात विस्फोटक है।

बेन्जीन के साथ नाइट्रो वर्ग लगाने से नाइट्रोबेन्जीन बनता है। यह विषैला है, पर विस्फोटक नहीं। एक अन्य यौगिक ट्राइनाइट्रोफीनोल (पिक्रिक अम्ल) विस्फोटक है। यह पीले रंग का और बहुत ही कड़वे स्वाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

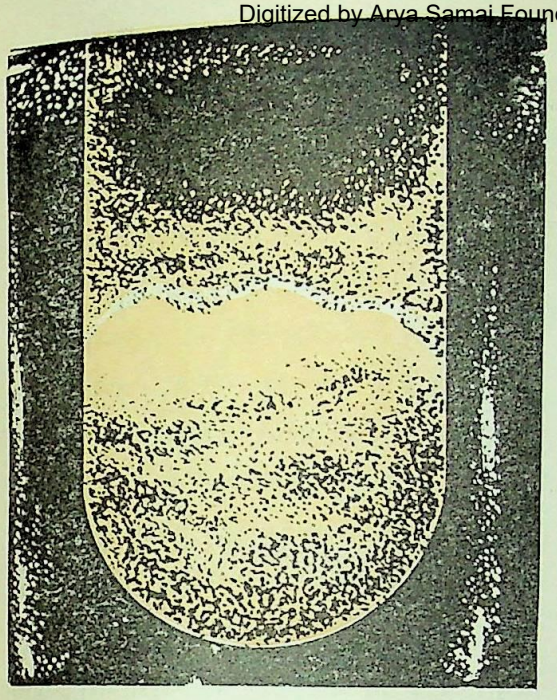

नाइट्रोजन के अणुओं को विभाजित अवस्था में ही विशेष शीत द्वारा स्थिर करके उनका निरीक्षण करना अब सम्भव है। धीरे-धीरे पुनः संयुक्त होने की अवस्था में उनकी दीप्ति भी चित्र में प्रदर्शित है

अम्ल है। इसमें एक हाइड्रौक्सी अम्ल के स्थान पर मेथिल वर्ग आ जाए तो ट्राइ-नाइट्रोटाल्युइन (T.N.T.) बनता है। यह भी तीव्र विस्फोटक है।

आज की बहुप्रचलित 'सल्फा' ओषधियों में भी नाइट्रोजन होता है। सल्फोनामाइड वर्ग से सेक्रीन बनायी जाती है जो चीनी से ५५० गुना मीठी होती है। आर्सेनिक की उपस्थिति में बनाया गया यौगिक आर्सेफीमेनिन तो सिफिलिस जैसी भंयकर बीमारी के लिए राम-बाण ओषधि है। चोट, घाव इत्यादि के लिए नाइट्रो वर्ग की ओषधि मरथाथोलेट काम आती है जिसमें एक परमाणु पारे का भी होता है। हमारे शरीर में एक पदार्थ प्रोटोपोर-फाइरीन-IX है। वह लोहे के एक परमाणु के साथ संयुक्त होकर जो यौगिक बनाता है उसे 'हीमो' कहते हैं। वह 'ग्लोबिन' नाम के प्रोटीन से संयुक्त होकर हीमोग्लोबिन बनाता है। वही हमारे रक्त को लाल रंग प्रदान करता है। पौधों की हरियाली के लिए उत्तरदायी यौगिक क्लोरोफिल में भी नाइट्रोजन विराजमान है।

अनेक विषैले पदार्थों, तम्बाकू के निकोटीन और अफीम के मारफीन आदि में भी नाइट्रोजन सम्मिलित है। यह वर्ग अल्कलाइड के नाम से विख्यात है। मलेरिया के लिए कुनैन, रक्तचाप के लिए रेसरपीन, अचेत करने के लिए मार्फिया आदि अल्कलाइड वर्ग के पदार्थों से ही बनाये जाते हैं। अनेक विटामिनों में नाइट्रोजन रहता है। प्रसिद्ध ओषधि पेनिसिलिन, चाय, काफी तथा नींद लाने वाली गोलियाँ भी नाइट्रोजन से मुक्त नहीं।

नाइट्रोजन के यौगिकों का अन्त कहाँ? वास्तव में समूची सृष्टि ही नाइट्रोजनमय है। हमारी रग-रग और श्वास-प्रश्वास में नाइट्रोजन है। वायुमण्डल के इस अक्रिय नाइट्रोजन, इस प्राणशून्य गैस को देखकर कौन अनुमान कर सकता है कि यह इतने बड़े करिश्मे दिखा सकता है? ●

गिरने भी दीजिए!

कभी-कभी अचानक गिरती हुई चीज को थामने का प्रयत्न करना बड़े संकट में डाल सकता है। तेज धार के औजार अथवा टूटती हुई शीशी या गिलास को थामने की कोशिश में व्यक्ति प्रायः ही चोट खा बैठता है। यदि वस्तु भारी हुई तो हाथ-पाँव भी तोड़ सकती है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि मानव मात्र में यह प्रवृत्ति किसी अभ्यासवश नहीं, बल्कि सहज स्वभावगत है। रसोई घर में गर्म चम्मच अथवा चिमटे को भूल से पकड़ लेते हैं, उसी प्रकार एक लोहार भी गिरते हुए सोल्डर को लपकते वक्त ८००°C की तप्त नोक को हाथ से पकड़ लेता है और चीखकर पीछे हट जाता है। खयाल है कि आदि मानव बड़े जतन से बनायी हुई अपनी वस्तुओं को गिरने और टूटने से बचाने के लिए इसी प्रकार लपक लेने का अभ्यस्त रहा होगा। आज इसे बदलने की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

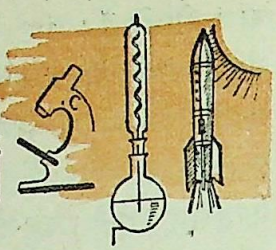

डूबते को सहारा

नौ-सेना के एक अधिकारी ने कल्पना की कि कोई व्यक्ति यदि अकस्मात् डूब रहा हो और नाक तक पानी आते-आते यदि वह रिस्ट-वाच की तरह कलाई पर बँधी किसी वस्तु का बटन दबा दे तो क्या ही अच्छा हो कि उसमें जादू की तरह एक गुब्बारा निकलकर उसे डूबने से बचा ले ! अमरीका की डेविस एण्ड मेकगिल कम्पनी ने उस कल्पना को साकार कर दिखाया है। चित्र में प्रदर्शित बालक कलाई पर वही रक्षा-पहुँची बाँधे हुए है जिसका बटन दबाते ही यह गुब्बारा बाहर निकल आता है। बटन के दबाने से एक छोटा सा कारतूस विस्फोट करके कार्बन डाइ-आक्साइड गैस मुक्त कर देता है। वह गैस इस गुब्बारे में भरते-भरते गुब्बारा ऊपर उठ आता है। उस पर अपनी ठोड़ी टिकाए हुए व्यक्ति तैरकर बाहर आ सकता है। यह गुब्बारा औसतन २०० पौण्ड वजन के व्यक्ति को झेल सकता है तथा हवा निकालकर पुनः काम में लाया जा सकता है

स्वचालित मौसमघर

ब्रिटिश वायु अनुसन्धान-केन्द्र के डा. एन. ई. राइडर के सुझावों के अनुसार 'जादुई बक्सा' के नाम से एक छोटा किन्तु सर्वांग सम्पूर्ण और स्वचालित ऐसा मौसमघर बनाया गया है जो अत्यन्त लोकप्रिय सिद्ध होगा। केवल एक टेलीफोन-केबिन जितनी छोटी कोठरी में इसे रखा जा सकेगा। इसकी बहु-संख्यक यंत्रसज्जा इतनी क्षमतापूर्ण होगी कि चौबीसों घण्टे वह वायुमण्डल के विवरण देता रहेगा। उनसे वायुमण्डलीय दाब, उच्च तथा निम्न ताप, पवन की गति और दिशा, वायु की आर्द्रता, वर्षा की सम्भावना तथा बरसने के समय वर्षा का वेग और परिमाण आदि सभी कुछ ज्ञात किया जा सकेगा।

अस्पताल जो उड़कर पहुँचेगा !

अब अस्पतालों को भी पंख लगाये जाएँगे। हेलीकॉप्टर में एक्स-रे यंत्र, आपरेशन के औजार, टेबुल, स्ट्रेचर आदि रखकर उसे एक उड़ता हुआ पॉलीटेकनीक अस्पताल का रूप देकर, जहाँ आवश्यकता हुई, उड़ा ले जाने के सफल प्रयोग सोवियत संघ में किये जा रहे हैं।

टेलस्टार की एक और बड़ी उपलब्धि

उपग्रह के माध्यम से ६००० मील के अन्तर पर स्थित दो देशों के मध्य फोन-वार्ता का संवाद पहले दिया जा चुका है। ६ नवम्बर को उपग्रह टेलस्टार के माध्यम से लन्दन (इंग्लैण्ड) और शिकागो (अमरीका) के चिकित्सकों के मध्य महत्त्वपूर्ण विचार विनिमय की वार्ता सम्पन्न की गयी। रॉयल कालेज ऑफ सर्जन्स, लन्दन के चिकित्सकों ने अमरीकन सोसाइटी ऑफ एनेस्थेटिस्ट्स से कुछेक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये और उन्हें भी कुछेक प्रश्नों के उत्तर दिये। वह वार्ता टेलीविजन की सहायता से सचित्र रखी गयी थी। देखने वालों का कहना है कि दृश्यांकन तथा ध्वन्यांकन काफी स्पष्ट थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

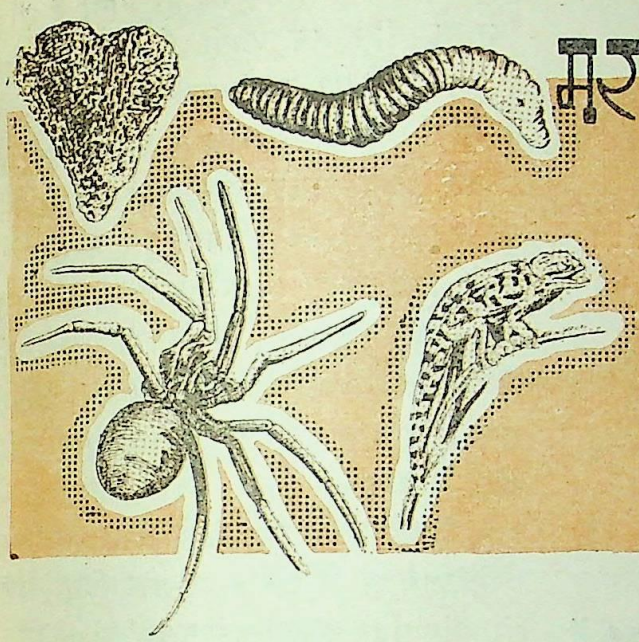

मर-मरकर जीते हैं ये मृत्युंजयी प्राणी

जगदीशप्रसाद अग्रवाल

पुराणों में उल्लेख है कि रावण के दस सिर थे जिसके कारण उसे 'दशशीश' भी कहते थे और ज्योंही उनमें से कोई कट गिरता था, उसकी जगह नया उग आता था। ऐसे ही ग्रीक पुराणों में नौ सिर के दैत्य 'हाइड्रा' का जिक्र आता है। उसमें भी सिरों के कट-कटकर नये उगने की करामात थी। आज के मनुष्यों में कटे-टूटे अंगों के पुनरुत्पादन की यह क्षमता, अति अल्प, कहने भर को है तो सही! यदि ऐसा न होता तो मनुष्य के क्षतिग्रस्त अंग सदैव के लिए उसका साथ छोड़ जाते। आधुनिक सर्जरी की सहायता से आज मनुष्य बन्दर, कुत्ते आदि के गुर्दे, हृदय, फेफड़े जैसे नये अंगों का रोपण कराकर तथा अन्य मनुष्य का रक्तदान लेकर अपना काम चला लेता है। वैसे एक छोटा सा भी अंग टूटे बाद नया उत्पन्न करना सम्भव नहीं।

प्राणियों में नये अंगोत्पादन की क्षमता विकास-क्रम से उलटे अनुपात में चलती है; अर्थात् मनुष्य जैसे पूर्ण विकसित प्राणी में शून्यवत् तथा अविकसित जीवों में अत्यधिक रहती है। सृष्टि में ऐसे जन्तुओं (विशेषतः समुद्री जीवों) की कमी नहीं जो कटे-टूटे अंगों की स्थानपूर्ति नये अंगों द्वारा कर लेते हैं। स्टेन्टर (Stentor) के शरीर का ६०वाँ तथा हाइड्रा और प्लेनेरिया (Planaria) के शरीर का ३००वाँ भाग टूटकर समूचा नया शरीर उत्पन्न कर सकता है। भूमिचारी जन्तुओं की अपेक्षा जलचारी जीवों में यह क्षमता अधिक रहती है और उनकी यह क्षमता प्रौढ़ावस्था के पश्चात् उत्तरकाल में क्रमशः घटती रहती है। साथ ही, बारम्बार इसका उपयोग होने से भी यह क्षमता घटती है।

इस क्षमता पर युवावस्था तथा जननांगों का विशेष प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ हमारे शरीर में पलते रहने वाले फीताकृमि जैसे परजीवी कीट अधिक वेग से प्रजनन सम्पन्न करते हैं। फलस्वरूप वे इस क्षमता से प्रायः वंचित ही रहते हैं। दूसरी ओर, प्रयोगस्वरूप एक जीवित स्पंज को लेकर कुचल-कूटकर बारीक कर लीजिए और बारीक कपड़े में छान भी लीजिए। तत्पश्चात् उसे पानी में तैरने दीजिए। आप देखेंगे कि छितराये हुए वे कण छोटे-छोटे समूह बनाकर पानी में ठहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

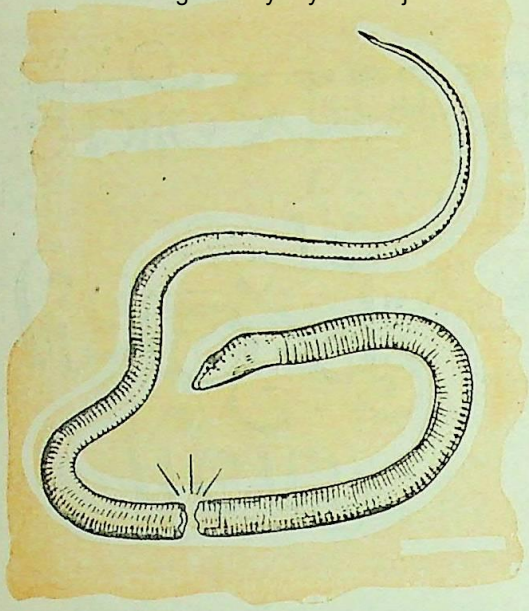

छिपकली परिवार का यह ग्लास स्नेक वास्तव में छिपकली ही है। इसकी पूँछ क्या है, शीशे की छड़ है जो तड़ से टूटना जानती है तो समय पाकर जुड़ना भी !

जाएँगे और कुछ दिन बाद पूरा नया स्पंज बन जाएगा। दूसरे प्रयोग में स्पंज को कूटने के बजाय गन्ने की भाँति पोर-पोर काटकर पत्थरों के ढेर में अलग-अलग दबा दीजिए। गुलाब की कलम की तरह हर टुकड़ा नया स्पंज बन जाएगा !

एककोशीय जीवों में अलैंगिक प्रजनन (asexual reproduction) इसी प्रकार होता है। अमीबा (Amoeba), यूग्लीना (Euglena) और पैरामीशियम (Paramaecium) सन्तानोत्पादन के लिए अपने शरीर को विभाजित करते रहते हैं। वे विभाजित टुकड़े पृथक पूर्ण जीव बन जाते हैं। हाइड्रा देखने में फूलदान जैसा लगता है और पानी में किसी पत्थर के सहारे चिपका रहता है। इसका शरीर पेड़ के तने जैसा होता है जिसके सिरे पर अनेक शाखाएँ निकली रहती हैं। वे शाखाएँ बढ़ते-बढ़ते पृथक हो जाती हैं स्वतन्त्र जीव बन जाती हैं। एक शा के पृथक होने पर दूसरी शाखा उसका स्थ ले लेती है। ग्रीक पुराण के दैत्य हाइड्रा इसकी प्रकृति समान होने के कारण ही भी हाइड्रा नाम दिया गया है। सागरतट फूलों जैसी चादर बिछाने वाले सी-एनिमो (Sea Anemones), रंग-बिरंगी छतरि जैसी थिरकती हुई जेली फिश (Jelly fish) तथा विभिन्न आकर्षक मूँगे (corals) भी श्रेणी में आते हैं।

शिकार के लिए पानी में तैरते, फिर प्लेनेरिया को यदि काटकर छोड़ दिया तो नवोत्पादन की शक्ति से उसके कटे हुए नये प्लेनेरिया बन जाएँगे। केंचुओं के बा भी यही बात पायी जाती है किन्तु यथार्थ सामान्य मान्यता से कुछ भिन्न है। माना ज है कि केंचुए को कहीं से भी काट दीजिए, हुए भागों के नये केंचुए बन जाएँगे। इ लिए आवश्यक है कि इसके दो-चार ख

यह है स्टारफिश, कोई भी अंग टूटने की देर नहीं, कि नया तैयार !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

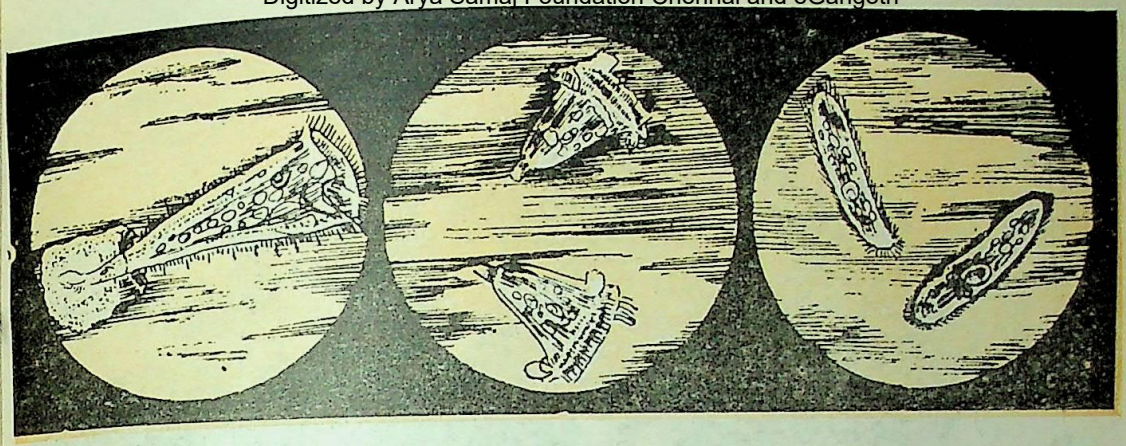

तीन विलक्षण सूक्ष्मजीव (बायें से दायें)—**पैरामीशियम, वर्टिसेला तथा स्टेन्टर**

अगले और आठ-दस पिछले से काटा जाए तभी यह सम्भव है, अन्यथा बीचोबीच से काट देने पर तो वह समाप्त ही हो जाएगा। देखा गया है कि बिल से निकलता हुआ केंचुआ यदि किसी पक्षी के झपट्टे में आता-आता टूट जाता है तो शेष आधा भाग तड़प-तड़पकर जान दे देता है।

Salamacina, Nais, Chaetogaster तथा *Syllis* नामक समुद्री कृमियों में तो मर-मरकर जीना जन्मजात प्रवृत्ति है। समुद्री मकड़ी (*Pycnogonidae*), शम्बूक (Freshwater mussel), शुक्ति (Oyster), घोंघा (Snail) तथा मन्थर (Slug) आदि जीव अपने शरीर का कोई भी अंग टूट जाने पर नया उत्पन्न कर लेते हैं। इसी प्रकार सलामाण्डर (Salamandar), ट्राइटन (Triton) नामक शंख तथा गोह (Newt) आदि जीव अपने हाथ-पाँव, पूँछ आदि अंग क्षतिग्रस्त हो जाने पर नये प्राप्त कर लेते हैं।

इन केकड़ा महाशय की तो बस, कुछ न पूछिए। टेढ़े-मेढ़े अंगों की कोई गिनती नहीं। खूबी यह कि जरा कोई टूटा-फूटा कि नया तैयार!

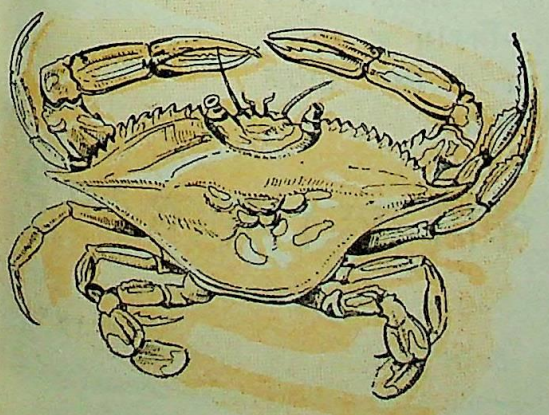

स्टारफिश भी कम मनोरंजक नहीं। तारे जैसी इसकी किसी भी भुजा को काट देखिए, उसी से नयी स्टारफिश बन जाएगी। मोती-व्यावसायिक गोताखोर इन्हें अपनी मोती-उत्पादक सीपियों के लिए विनाशक समझते थे और जहाँ इन्हें पाते थे या इन्हें खोज-खोजकर काट-काटकर फेंक देते थे। इससे वे समझते थे कि बस, छुटकारा पा लिया! किन्तु स्थिति उलटी ही बनती थी। काटे जाने पर ये मृत्युंजयी जीव नष्ट होने की अपेक्षा उतने टुकड़ों से उतनी ही संख्या में नये बन जाते थे और हजामत के बाल की तरह कटते-कटते बढ़ते जाते थे। स्टारफिश में एक खूबी और है। कोई अपाच्य वस्तु पेट में उतर जाने पर अथवा किसी की दाब में आ जाने पर ये अपना समूचा पेट और पाचन-तंत्र बाहर निकाल फेंकती हैं और नया प्राप्त कर लेती हैं। एक अन्य समुद्री जीव, कुकुम्बर (Cucumber) भी ऐसा ही धोखेबाज है।

सच पूछिए तो मर-मरकर जीना इन्हीं जीवों का काम है! ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

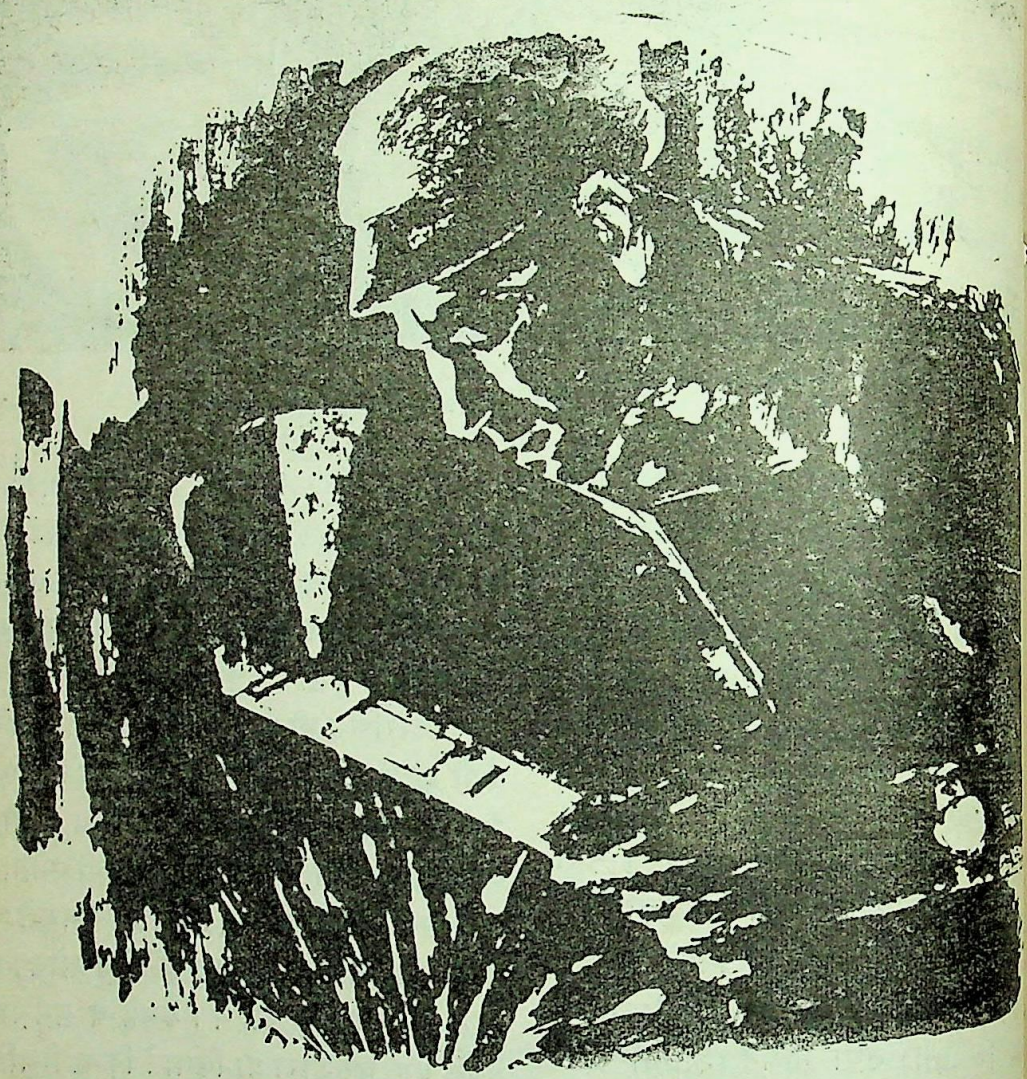

देश रक्षा में इससे क्या मदद मिलेगी?

सावधानी और पूरी कुशलता से कार्य करने वाले कामगर—कल-कारखानों से अधिक उत्पादन—विकास के अधिक साधन, देश रक्षा के लिए अधिक रसद और साज-सामान

देश रक्षा में आपका काम बहुत महत्व का है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति संतुलन बनाती है, हम बिगाड़ते हैं

बनवारीलाल

जड़ हो अथवा चेतन, समूची सृष्टि में असन्तुलन कहीं भी खोजे न मिलेगा। घने जंगल, हरे-भरे खेत, कलकल करते झरने, सरित-कूल, झील और तालाब, यहाँ तक कि, पर्वतश्रृंग, घाटियाँ और रेगिस्तान तक नजर दौड़ायें तो प्रकृति का करिश्मा ही करिश्मा नजर आएगा।

जन्तुओं की आबाद नगरी

उदाहरणार्थ, जंगल केवल जंगल नहीं है; वन्य प्राणियों, छोटे-बड़े जन्तुओं, कीट-पतंगों और पेड़-पौधों तथा झाड़ियोंयुक्त एक घनी आबादी है। जहाँ जिसे सुरक्षा मिली, जहाँ जिसने सुविधा पायी, वहीं घोंसला, बिल, गुफा तथा सुरंग जैसी अपनी किलेबन्दी बनाकर जम गया, बस गया। परस्पर सहकार की मानो एक कालोनी आबाद हो गयी। इसी प्रकार एक हरी-भरी घाटी भी एक गुंजान बस्ती-सी नजर आएगी। खिलते-मुस्कराते फूल कीटों, पतंगों तथा तितलियों को अपना परागकोष लुटाते हैं तो वे कीट भी पुरस्कार-स्वरूप पुष्प-परागण सम्पन्न कराते हैं। एक ओर नन्हें पौधे केंचुओं को पोषण प्रदान करते हैं तो दूसरी ओर केंचुए मिट्टी को पोली करके, अधिक उर्वर बनाकर, पौधों को उगने-उभरने में सहायता प्रदान करते हैं।

यह सन्तुलन

दूसरे उदाहरणस्वरूप यदि हम तालाब से कुछेक मछलियों को निकालकर अपने घर में पानी की नाँद में छोड़ दें तो हम देखेंगे कि मछलियाँ ऊपर ही ऊपर रहना चाहती हैं और पानी नीचे से गँदला होते-होते बदबू देने लगता है। यदि तुरन्त ही हम पानी नहीं बदलते तो वे मछलियाँ जीवित न रह सकेंगी। आखिर क्यों? इसका कारण यह है कि हमारे उस नाँद के पानी का अति सीमित आक्सीजन वे मछलियाँ कभी का काम में ले चुकीं और नया आक्सीजन उन्हें मिला नहीं। इसके अतिरिक्त उनके शरीर से निष्काषित दूषित पदार्थ उसी पानी में संचित होते रहे और पानी को साफ होने का अवकाश ही न मिला।

तालाब में परिस्थिति सर्वथा भिन्न और मछलियों के अनुकूल थी। वहाँ अन्यान्य साधनों के साथ एक ओर तो जलीय पौधे आक्सीजन की पूर्ति कर रहे थे और दूसरी ओर बैक्टीरिया मृत जन्तुओं का और भी सूक्ष्म-संस्कार कर-करके उन्हें पौधों के लिए उपयोगी तत्त्वों में बदल रहे थे। इस प्रकार उस तालाब के समस्त निवासी परस्पर सहयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

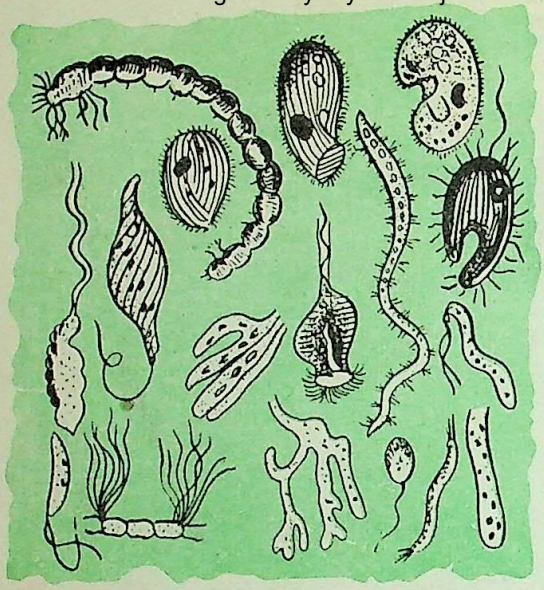

कारखानों की गंदगी जब नहरों, नदियों में बहा दी जाती है तब चित्र में दिखाये हुए एककोशीय रोगाणु पानी को इतना विषाक्त कर देते हैं कि उसमें नहाना अथवा उसका पानी पीना अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो सकता है

द्वारा जी रहे थे, जीने दे रहे थे और सृष्टि का सन्तुलन निभाते जा रहे थे।

इस हाथ ले, उस हाथ दे

मानवों की तरह जन्तुओं और वनस्पतियों में भी सहकारी समितियाँ हैं। हमारी ही भाँति उनमें भी कहीं-कहीं उत्पादक और उपभोक्ता के मध्य स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना सम्भव नहीं हो पाता। अनेक पौधे ऐसे हैं जो कार्बन डाइआक्साइड पचाते हैं और आक्सीजन तथा अन्य खाद्य-तत्त्व उत्पादित करते हैं। अन्य श्रेणियों के ऐसे भी पौधे हैं जो आक्सीजन तथा अन्य खाद्य-तत्त्व हज्म करते हैं और कार्बन डाइआक्साइड उत्पन्न करते हैं।

सन्तुलन का निर्वाह

सृष्टि द्वारा इस सन्तुलन का निर्वाह सचमुच आश्चर्य का विषय है। उदाहरणार्थ यदि तालाब की वनस्पतियों को प्रकृति बढ़ने दे तो वे कोने-कोने तक छा कर पानी को ढँक लेंगी और उसमें रहने वाले जन्तुओं का दम ही घुटकर रह जाएगा। इसके विपरीत यदि प्रत्येक मछली के प्रत्येक अण्डे को फल फूलने की आजादी दे दी जाए तो तालाब खाने ही खाने वालों की भरमार हो जाए और खाद्य कुछ भी न बचेगा।

फिर यदि तालाब की समस्त वनस्पति को देश निकाला दे दिया जाए तो मछलि को पानी में आक्सीजन देने वाला कोई रहेगा और वनस्पतियों के विछोह में मछलि भी मर मिटेंगी। सृष्टि के विधान में लिखी अगर-मगर की अवस्थाएँ उपस्थित की नौबत ही नहीं आती और वह नौबत स्व मेव नहीं आती जब तक कि हम ही उ अनपेक्षित हस्तक्षेप न करें। प्रकृति इस निरन्तर सजग और सचेष्ट रहती है कि सी से बाहर किसी भी जन्तु अथवा वनस्पति आबादी न बढ़ने पाए जो इस सन्तुलन बिगाड़ दे।

जंगलों में भी अनुशासन

जंगलों में भी घने वृक्षों, झाड़ियों, भु मुटों तथा उनमें रहने वाले छोटे-बड़े प्राणि में असन्तुलन नहीं मिलेगा। तरह-तरह पत्तियाँ, फल-फूल तथा कन्द-मूल आदि विभि प्राणियों की उदरपूर्ति करते हैं। सूखी त सड़ी-गली पत्तियाँ बैक्टीरिया-जगत का पोष करती हैं। बैक्टीरिया उनका क्रमशः विच्छेद करके उन्हें नाइट्रोजन-सम्पन्न खाद परिवर्तित कर देते हैं। जंगल का अप सफाई-विभाग भी तैनात रहता है। यदि सु आप किसी जन्तु को मरा हुआ पड़ा देखेंगे शाम तक उसका नामोनिशान भी न पाएँ चील, कौवे, गिद्ध, भालू, लोमड़ी तथा कीड़े मकोड़े तुरन्त अपना काम शुरू कर देंगे औ उस धरती को ऐसे साफ कर देंगे मानो कि ने झाड़ू फेर दी हो।

सृष्टि में शिकार करने वाले सबल प्रा हैं तो शिकार होने वाले निरीह भी; कि इसका अर्थ यह नहीं कि वह जंगल एक यु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थली ही बना रहे जहाँ केवल मारने और खा जाने का बोलबाला हो।

जब सन्तुलन बिगड़ता है

यह सन्तुलन कभी-कभी सृष्टि की खिलवाड़ तथा अधिकतर मनुष्य के अनधिकृत हस्तक्षेप से जब बिगड़ जाता है तब उसके परिणाम भयंकर होते हैं। कभी-कभी यह हो जाता है कि लगातार चलते हुए अन्धड़ और तूफान किसी जंगल में चीड़ के वृक्षों पर बसेरा ले रहे कठफोड़वा के समूहों को तितर-बितर कर देते हैं। तब उन पक्षियों को वह जंगल छोड़कर अज्ञात स्थलों को भागना पड़ता है। उनके जाते ही गुबरीले कीड़ों और अन्यान्य कीटों की बन आती है जो प्रायः पेड़ों की छाल पर निर्भर रहते हैं और वहीं-कहीं कठफोड़वा की नजरों से बचे हुए छिपे रहते हैं। कुछ ही समय में वे कीड़े पेड़ों पर से छाल को ऐसे उतार देते हैं मानो किसी से कपड़े उतरवा लिये हों। परिणाम यह होता है कि पेड़ के तने जल्द ही सूख जाते हैं और ऐसे पेड़ बिजली की एक ही चपेट में सारे जंगल में आग फैला सकते हैं।

यह तो प्रकृति की बात है जो अपवाद रूप से कभी-कभी ही होती है किन्तु मानव तो प्रायः ही अपनी कारगुजारी दिखाता रहता है। जब तक आदिमानव वन्य पशुओं की भाँति भोजन और शिकार की तलाश में घूमता-फिरता था तब तक वह पशुओं के साथ ही प्रकृति के विधान में यथास्थान जमा हुआ था। जब से उसने हल जोतना सीख लिया और अपना अन्न आप ही उपजाने लगा, तब से नक्शा ही बदल गया। मानव अब अन्नोत्पादन के साथ-साथ सन्तानोत्पादन भी बढ़ाने लगा। परिणाम यह हुआ कि उसे रहने-बसने तथा खेती-बाड़ी के लिए अधिकाधिक भूमि की आवश्यकता पड़ने लगी।

सफाई या सफाया ?

अधिक···अधिक, और भी अधिक खुली

प्रकृति की दी हुई इस वन-सम्पदा को मानव ने जब-जब और जहाँ-जहाँ अपने यंत्रोद्योग-प्रसार के लिए मिटाकर साफ किया है, वहीं उसने अपने पाँवों पर कुल्हाड़ी मारी है। वन और जीवन में घनिष्ठता तो है ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमि की तलाश में कभी-कभी मानव किस प्रकार विनाश को आमन्त्रित कर बैठता है, यह निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा।

एक वन-विभाग के अधिकारी ने अपने क्षेत्र के एक छोटे किन्तु घने जंगल के बारे में सोचा कि वह जंगल ही क्या, जिसमें पेड़ों के अतिरिक्त झाड़ियाँ, झाड़-झंखाड़, कूड़ा-करकट और जमाने भर का कचरा भरा रहे! अतः उसने निर्णय कर लिया कि उस जंगल की सफाई ऐसी होनी चाहिए जैसे एक गृहिणी घर के कूड़े को बुहार-फेंककर घर को चमका देती है। तुरन्त उसने मजदूरों का एक दल इस काम पर लगा दिया। देखते-देखते मजदूरों ने सीधे, तने, साफ-सुथरे पेड़ों को छोड़कर बाकी सबों की सफाई कर डाली। सूखे पत्ते और टहनियों के ढेर जला दिये, घास खुरचकर रख दी, झाड़ियाँ उखाड़कर धरती साफ कर दी। वह अधिकारी यह देखकर बहुत खुश हुआ कि वह जंगल एक पार्क जैसा लगने लगा और लम्बे पेड़ ऐसे लग रहे थे मानो ड्राइंग रूम में कुरसियाँ सजाकर रखी हों।

दो वर्ष बीतते न बीतते उस क्षेत्र का ऐ नक्शा बदला कि पहचानना ही मुश्किल गया। पेड़ों की डालियाँ नंगी हो चलीं पत्ते ऐसे रह गये मानो उनकी जान ही सोख हो। कितने ही वृक्ष आँधी-तूफान से उखड़े जहाँ-तहाँ लेटे, बिछे पड़े थे। पतझर अभी था किन्तु जहाँ देखो वहीं पीलिया बढ़ता रहा था।

सच पूछो तो उसने सफाई की धुन सफाया ही कर डाला था। कूड़े के साथ काम की वस्तुएँ भी उखाड़ी, फेंकी और दी गयी थीं। घनी झाड़ियों से भी पेड़ों बहुत सहारा मिलता है। सफाई के दौरान पेड़ों, झाड़ियों और झुरमुटों में छिपे ला पक्षी तथा अन्यान्य जीव-जन्तु किनारा कर तब बीजों का प्रसारण, फूलों का परागण मिट्टी की उर्वरता कौन सम्पन्न करता पक्षीगण सुबह से शाम तक जिन लाखों की मकोड़ों को चुन-चुनकर खाते थे और परिवार का पेट-भरते थे, उनकी अनुपस्थि में वे कीड़े निर्भय होकर पेड़ों पर ही घ

हरित भूमि-विस्तारों पर आवश्यकता से अधिक पशुओं की चराई कराने का परिणाम क्या हो है, यह इन मरु-विस्तारों से पूछिए जो मानव की उन भूलों के परिणाम हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलते रहे और मनमानी करते रहे। चारों ओर से आक्रान्त, बेचारे पेड़, पोषण के अभाव में गिरते-टूटते गये। घोर वर्षा के जल को और उफनते नदी-नालों को रोकने के लिए झाड़ियाँ तथा अन्य कुछ भी वनस्पति छोड़ी ही नहीं गयी थी, क्योंकि उन्हें सफाई जो करनी थी! अतः पानी का तेज बहाव उर्वरा मिट्टी को भी घसीटता ले गया—दूर, बहुत दूर, जहाँ से मिट्टी कभी लौटकर नहीं आती।

रेगिस्तान भी

आज के अनेक मरुस्थलीय भूमि-खण्ड किसी जमाने के हरे-भरे चरागाह थे। मनुष्य को अपनी गायें, भैंसे, भेड़-बकरियाँ तथा अन्य मवेशी चराने को जहाँ हरियाली नजर आती रही, वहीं उन्हें पेलता रहा। घास की कालीन सिमटते ही पृथ्वी का पट निर्वस्त्र हो गया और प्रखर सूर्य-ताप तथा प्रचण्ड वायु उसकी आर्द्रता, उसकी जान सोखते रहे। इर्द-गिर्द के पेड़, झाड़ियाँ निर्जीव होती रहीं और भले-चंगे चरागाह मरुस्थल बनते रहे।

ये कारखाने

आज के हमारे कारखानों को क्या कहिए! औद्योगीकरण की यह दौड़ निश्चय ही सृष्टि के सन्तुलन को एक आत्मघाती चुनौती है। मिला, कारखानों तथा रसायनशालाओं के उच्छिष्ट पदार्थ बेखटके नदी-तालाबों में बहा दिये जाते हैं। कालान्तर में वह जल अपने अन्दर की वनस्पतियों तथा जन्तुओं की सम्पत्ति खो बैठता है। शेष रह जाते हैं बैक्टीरिया अधिकांश हानिकारक, रोगोत्पादक बैक्टीरिया, जो उस पानी में नहाने तथा पीने वालों की अच्छी तरह खबर ले लेते हैं। कभी-कभी महामारी भी फैला देते हैं। एक स्थिति ऐसी आ जाती है जब उस पानी को साफ करना एक वृहत खर्च की योजना का विषय बन जाता है।

सब कुछ होते हुए भी आज का मानव लाखों वर्ष पीछे हटकर वैसा आदिमानव तो न बनना चाहेगा जो जानवरों की खाल ओढ़े, पत्थरों के हथियार लिये, सुबह से शाम तक शिकार की तलाश में भटके और जो कुछ कंधे पर ढोकर लाये, उसे कच्चा-पक्का खाकर अपनी खोह में पड़ा रहे। आज का मानव तो विज्ञान के बल पर सातवें आसमान के कुलाबे मिला रहा है। अतः इसके लिए बुद्धिमानी यही है कि वह प्रकृति के उन रहस्यों का पता लगाये, उन्हें सोचे-समझे और ऐसी क्रियाओं में सहयोग दे जिनसे प्रकृति अपना सन्तुलन अक्षुण्ण बनाये रखती है। ●

अंधे भी घर बनाते हैं!

घर भी ऐसे, जिनकी विशालता उनके बनाने वालों की सूक्ष्मता देखते हुए एम्पायर स्टेट बिल्डिंग को भी अँगूठे के बराबर बौनी कर दे! वे बनाने वाले जन्मांध होते हैं और सहकारिता के बल पर आश्चर्यजनक निर्माण कर दिखाते हैं। कभी किसी दीमक-घर को देखिएगा। क्या तो सूक्ष्मदर्शी में दिखने योग्य दीमक का शरीर और क्या उसकी बिसात! ४० फुट तक ऊँचे उनके हवाघर और उनकी एकड़ के विस्तार में फैली हुई दीमक-नगरी अनुपात में कितने ही न्यूयार्क जैसे महानगरों को उनके गगनचुम्बी भवनों समेत पीछे कर देगी!

बेबी हेलीकॉप्टर

पश्चिम जर्मनी के इंजीनियरों ने D-32 नामक एक ऐसा बेबी हेलीकॉप्टर बनाया है जिसे तह करके १० फुट लम्बे बक्से में रखकर आप चाहे जहाँ ले जा सकेंगे। उड़ान में भी यह अधिक सुविधाजनक तथा खतरे से मुक्त है, क्योंकि इसकी रफ्तार ६० मी. प्र. घ. के अन्दर ही रहती है। छुट्टियाँ मनाने वाले किशोर छात्र गण, खेतों में काम कर रहे किसान तथा सामान्यजनों के लिए यह न केवल सुविधापूर्ण सवारी का काम देगा, बल्कि रोचक भी रहेगा। अभी प्रारम्भावस्था होने से इसका मूल्य अत्यधिक बैठता है, किन्तु उत्पादन बढ़ने से २०-२५ हजार रुपये तक का भी मिल सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

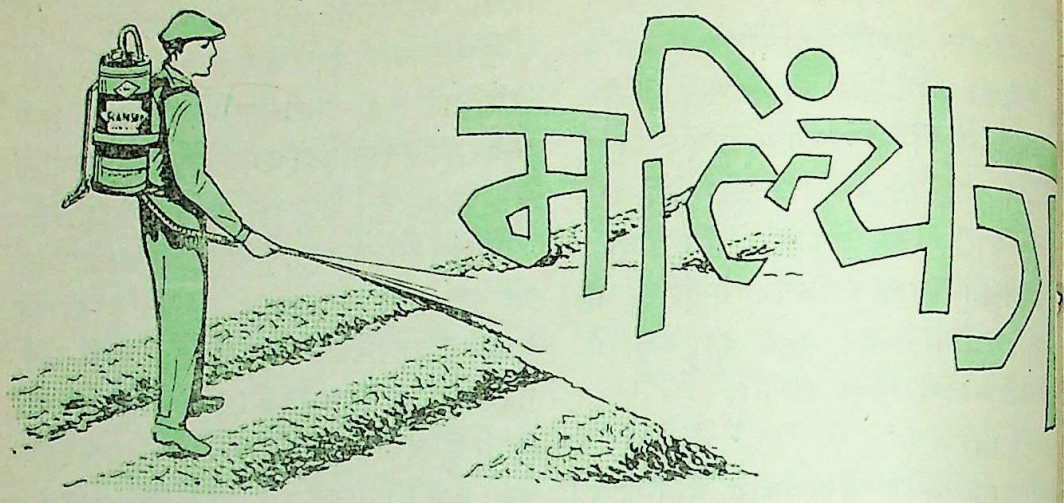

बृजेन्द्रप्रसाद पालीवाल

खेतों तथा क्यारियों को घास-फूस, पत्तियाँ, काँटेदार झाड़ियाँ तथा लकड़ी के बुरादे जैसी हलकी वस्तुओं से ढाँपने की क्रिया को मल्चिग (mulching) कहते हैं। हमारे यहाँ पौधे तथा सब्जियाँ बोते समय तेज धूप, पक्षियों द्वारा बीजों की खुली लूट तथा चौपायों द्वारा पौधों को रौंदे जाने से बचाने के लिए घास-फूस और झरबेरी तथा जवासे की झाड़ियों की हलकी-फुलकी तहें डाल दी जाती हैं। इस विधि से सूर्य के प्रखर ताप से कोमल अंकुरों तथा नाजुक पौधों की रक्षा हो जाती है। साथ ही, नव-पल्लवों की नमी अधिक देर तक बनी रहती है। इसके द्वारा पौधें शीघ्र बढ़ते हैं, पानी का व्यय काफी घट जाता है तथा ताप तो ताप, शीत तथा ओले-पाले से भी रक्षा हो जाती है। यह सब कुछ होते हुए भी यह क्रिया कष्टसाध्य, तथा महँगी होने के कारण केवल गिनी-चुनी, ऊँचे दाम पर बिकने वाली सब्जियों और फलों के लिए ही काम आती है।

नयी खोज, नयी क्रान्ति

पोलीथिन की चादर ढाँपने की नयी प्रथा ने उपरोक्त पुराने ढंग में क्रान्ति ला दी है। इस चादर के उपयोग से सभी उद्देश्य पूरे हो जाते हैं। पौधों की रक्षा के साथ-साथ जल-वाष्पन में कमी तथा व्यर्थ के खर-पतवार की रोकथाम भी होने लगी है। पूरे खेत में मल्चिग तो खर्चीला और कष्टसाध्य रहा है। अतः प्रयोगस्वरूप क्यारियों की चौड़ाई के बराबर पट्टियाँ काटकर काम में ली जाती हैं। तीन मिलीमीटर मोटी और काली मल्च पट्टियों को लम्बी क्यारियों पर ढाँपकर दोनों सिरों को भूमि में जमा दिया जाता है। मल्चिग की यह क्रिया आरम्भ में हाथों से ही करनी पड़ती थी। उसमें समय अधिक लगता था। बीच-बीच में पौधों के उठाव के लिए चद्दर में सूराख भी छोड़ने पड़ते थे। अब तो इस क्रिया के लिए यन्त्र उपलब्ध हैं जिनसे मल्चिग और भी सरल हो गया है। यन्त्र द्वारा बुवाई, खादमिश्रण, बीजारोपण, मल्चिग की चादर फैलाना, उसके किनारे जमाना तथा बीच-बीच में सूराख छोड़ने के सभी कार्य सम्पन्न हो जाते हैं। मल्चिग की चद्दर से भूमि को कोई रासायनिक हानि नहीं पहुँचती। कुछ समय पश्चात् चिथड़े फटते तथा वर्षा के पानी में गलते-गलते यह स्वतः भूमिसात् हो जाती है।

मल्चिग के लिए खेत को भली भाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समतल किया जाता है। ढेले तथा नुकीले ठूंठ आदि हटा दिये जाते हैं ताकि चादर फट न जाए। अमरीका में इस विधि का उपयोग खरबूजा, तरबूज, टमाटर, भिण्डी तथा मटर आदि बढ़िया फल-सब्जियों के लिए किया जाता है।

अमरीका की एस्सो (Esso) पेट्रोलियम कम्पनी ने एक ऐसा द्रव तैयार किया है जो मल्चिंग के लिए काफी सस्ता और सरल है। बुवाई की हुई क्यारियों तथा उगी हुई फसल पर यन्त्र द्वारा उस द्रव को छिड़कने से एक ऐसी झिल्ली बन जाती है जो निम्न कार्य करती है : भूमि को उष्मा देना, जल-वाष्पन को रोकना, वर्षा के जल से भूमि के कटाव को रोकना और पौधों के लिए उपयोगी रसायनों को व्यर्थ ही भूमि में शोषित हो जाने से रोकना।

यह श्वेत द्रव राल-मिश्रित पेट्रोलियम का एक अंश है। साधारण ताप पर इसका उपयोग पम्प द्वारा फुहार के रूप में किया जा सकता है। उस फुहार को तीन इंच से दस इंच तक की चौड़ी पट्टी के रूप में इस प्रकार बरसाया जाता है कि पौधों पर इसकी ५-१० मिलीमीटर पतली झिल्ली ढँक जाती है। इस द्रव की १५० गैलन मात्रा एक एकड़ भूमि के लिए पर्याप्त होती है। यह झिल्ली वर्षा तथा ताप से २-२॥ मास तक अप्रभावित रहती है। नन्हें पौधे इसे सरलता से छेदकर बाहर निकल आते हैं। उद्देश्य पूरा होने पर इस झिल्ली को मिट्टी में मिला दिया जाता है।

इस एस्सो कम्पनी के रसायनज्ञों ने छोटे-बड़े खेतों में विभिन्न दृष्टिकोणों से अनेक सफल परीक्षण करके ही कृषि-जगत् को इस पेट्रोलियम-मल्च की देन दी है। इस झिल्ली में सूर्य की किरणें भी सोख लेने की क्षमता है। फलतः मल्च की गयी भूमि में सामान्य भूमि की अपेक्षा २०८°F तक की तापवृद्धि पायी जाती है। मल्च की यह चादर भूमिसात् होने पर जैविक खाद की भाँति ही भूमि-कणों को सुधारती है, क्योंकि इसमें कार्बन की प्रचुरता रहती है। इसके प्रयोग से सब्जियों की उपज में कितनी वृद्धि प्राप्त की गयी है, यह नीचे की तालिका से ज्ञात होगा :

फसल	प्रतिशत उपज	
	बिना मल्च	मल्च द्वारा
गाजर	८·९ से २७·५	१४·८ से ३८·६
प्याज	८·२ से १८·९	१२·२ से २३·०
खीरा	११·०	१५·१
बन्दगोभी	१०·५	१३·६
शलजम	१६·२	२२·७
मूली	४·२	५·८

छोटे पैमाने पर पेट्रोलियम-मल्चिंग के लिए पोर्टेबुल-स्प्रेयर जैसे छोटे यन्त्र द्वारा कन्धे पर लटकाये ही लटकाये छिड़कने का काम लिया जा सकता है। बड़े-बड़े फार्मों पर मल्चिंग के लिए एस्सो कम्पनी ने बड़े यन्त्र बनाये हैं जो मल्चिंग के साथ-साथ अन्य अनेक कार्य भी सम्पन्न कर देते हैं।

पौधे रोपना, मिट्टी इकसार करना और मल्च करते जाना, तीनों क्रियाएँ एक ही बार में सम्पन्न करने वाला आधुनिक यंत्र

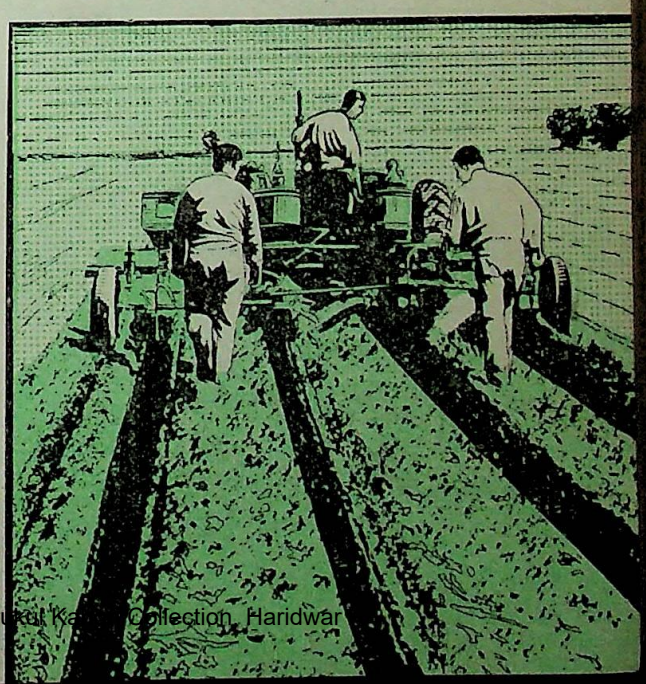

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खेतों में प्लास्टिक-चद्दर नयी मशीन द्वारा

अमरीकी वैज्ञानिकों ने एक ऐसे कृषि-यन्त्र का विकास किया है, जो अपने-आप बुवाई के लिए तैयार खेत में पोलीथिलीन की चद्दर बिछाता जाता है और उस तह को भेदकर बीज भी जमीन में बोता चला जाता है। अमरीका में इस मशीन की प्रारम्भिक परीक्षा भी हो चुकी है।

'मल्चर-सीडर' नामक इस यन्त्र को चलाने के लिए मनुष्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस विधि को 'मेकेनाइज्ड प्लास्टी-कल्चर' का नाम दिया गया है तथा इसके आविष्कार के फलस्वरूप विशाल पैमाने पर कृषि उत्पादन के क्षेत्र में पहली बार प्लास्टिक-चद्दर को घास-फूस अवरोधक पदार्थ के रूप में प्रयुक्त करना सम्भव हो गया है। हाथों द्वारा बिछायी जाने वाली प्लास्टिक-चद्दरें पिछले कई वर्षों से छोटे-छोटे किसानों और बागबानों द्वारा उक्त कार्य के लिए प्रयुक्त की जा रही हैं।

पौधों और खेतों की रक्षा के लिए प्लास्टिक की यह परत घास-फूस की बाढ़ को रोकती है, मिट्टी के ताप को बढ़ा देती है, बुवाई के मौसम में खेतों की मिट्टी को ढीली और भुरभुरी रखती है और पोषक तत्त्वों के क्षरण तथा जलवाष्पन को रोकती है।

प्लास्टिक की इस प्रकार की परत [illegible] कर बड़े पैमाने पर जो फसलें उगायी जा [illegible] हैं, उनके सम्बन्ध में प्राप्त विवरणों के अनु[illegible] फसलों के उत्पादन में दुगुनी तक की वृद्धि [illegible] है। अब तक इस प्रकार की विधि का उप[illegible] टमाटर, खरबूजा, कुकरमुत्ता, काली मि[illegible] अनन्नास, एगप्लान्ट, स्ट्राबेरी और शकरक[illegible] की फसलें उगाने के लिए सफलतापूर्वक कि[illegible] गया है। १९६२ की वसंत ऋतु में पहली [illegible] बड़े पैमाने पर कपास की फसल बोने के स[illegible] पोलीथिलीन की परत काम में लायी गयी

प्लास्टिक-परत और मल्चर-सीडर [illegible] विकास अमरीका की स्पेन्सर केमिकल कम्प[illegible] और यूनियन कारबाइड कारपोरेशन [illegible] मिलकर किया है। एक ही यंत्र से विभि[illegible] चौड़ाई की परतें बिछायी जा सकती हैं।

यह मशीन एक ट्रैक्टर के साथ जोड़ [illegible] जाती है। जब ट्रैक्टर ३ मील प्रति [illegible] की गति से खेत में चलता है तो मशीन [illegible] आगे की ओर लगी दो डिस्कें मिट्टी में छि[illegible] नालियाँ बनाती जाती हैं। स्प्रिंग से [illegible] किये हुए रबड़ के पहिये परत के बाहरी [illegible] को इन नालियों पर फैलाते जाते हैं, साथ [illegible] डिस्कों की एक दूसरी जोड़ी परत को [illegible] प्रकार मजबूत करती जाती है कि वह [illegible] में उड़ न सके। मशीन के सामने लगा [illegible] कूड़े को इधर-उधर हटाता जाता है।

मशीन में आवश्यक परतें, बीज [illegible] सीड-कवर मौजूद रहते हैं। जैसे ही ट्रै[illegible] चलता है, परत बिछती जाती है और बी[illegible] थोड़ी-थोड़ी दूरी के अन्तर से मिट्टी में द[illegible] जाती है। एक ट्रैक्टर से इस प्रकार की [illegible] मशीनें जोड़ी जा सकती हैं। फसल के [illegible] 'डिजर्ट स्टर्न व्हीलर' नामक एक [illegible] मशीन, जिसमें काँटे लगे रहते हैं, इस [illegible] को खेतों से समेट लेती है।

सिंचाई व्यवस्था तथा क्यारियों की रचना के अनुकूल एक ही साथ ५–६ क्यारियों की पंक्तियों के पौधों की रोपाई तथा मल्चिंग इस यंत्र द्वारा की जाती है

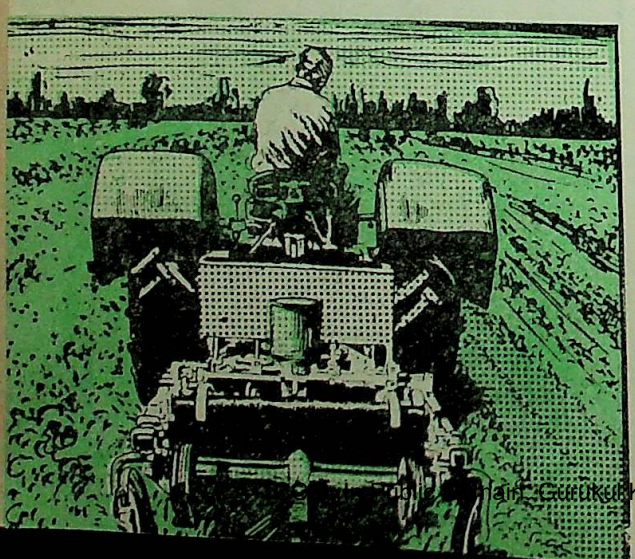

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

ये जानते हैं, इन्हें कब मरना है !

किस साल के किस महीने की कौनसी तारीख को इन्हें मरना है, ये बखूबी जानते हैं। ये हैं तेमने (Temne) जाति के नेता—अपने छोटे से समुदाय के एक तरह से राजा ही। इनका अभिषेक बड़े ठाटबाट से किया जाता है। अभिषेक के दिन इन्हें समुद्रतट पर ले जाया जाता है। वहाँ इनकी आँखों पर पट्टी बाँध दी जाती है और इनसे कहा जाता है कि अपनी मुट्ठी को अधिक से अधिक फैला कर, जितना हो सके, कंकड़ एक ही बार में भर लें। बस, उस एक मुट्ठी कंकड़ों की गिनती ही इनके जीवन के गिनती के दिन होते हैं। अन्तिम दिन फिर उसी ठाटबाट से इनके जीवन को समाप्त कर दिया जाता है—एक जहर का प्याला पेश किया जाता है और महल के बाहर चार कहार एक ताबूत लिये खड़े रहते हैं जिसमें इनके मृत शरीर को रखकर कब्रगाह पर ले जाया जाता है।

जिन्दगी बढ़ती है, आयु घटती है

ब्रह्मदेश के मेरग्वी (Mergui) द्वीप-समूह के निवासी ओरांग साकिया (Orang Sakya) जाति के लोगों की यह सूझ है। उनके यहाँ शिशु जनमते ही ६० वर्ष की आयु का माना जाता है और ज्यों-ज्यों वह बढ़ता है, वर्षों की संख्या घटती जाती है। उन्होंने सामान्य अंक शून्य का रखा है, अर्थात् औसत आयु ६० वर्ष। यदि शून्य के आगे भी व्यक्ति जीवित रहा तो उसे बोनस के रूप में १० वर्ष और दिये जाते हैं जो पुनः उलटे चलते हैं।

फलने से पहले काट गिराते हैं

इस पेड़ को फलने नहीं दिया जाता। इसके फलने का अर्थ होगा बड़ी आर्थिक हानि। यह भारत का प्रसिद्ध पामवृक्ष है जिससे साबूदाना (sago) प्राप्त किया जाता है। कुल १५ वर्ष की आयु में यह केवल १४ वें वर्ष फलने के निकट पहुँचता है और तभी काट गिराया जाता है। यदि उस अन्तिम वर्ष इसे फलने दिया जाए तो इसके तने में जो कम से कम ७०० पौण्ड गूदा भरा रहता है, उसे यह सोख जाएगा। वही गूदा पहले ही से निकाल लिया जाता है और अनेक विधियों से गुजार कर अन्ततः साबूदाने में परिणत कर लिया जाता है। साबूदाने का यह उत्पादन अपने क्षेत्र के निवासियों की प्रमुख आजीविका है।

यह कबूतरी तीसरी बीवी है

यह बात ऐसे देश की है जहाँ के लोग एक पत्नी के मरने पर दूसरी तो ले आते हैं किन्तु तीसरी लाने में वहम करते हैं। उनके लिए तीन की संख्या बेहद अशुभ और डरावनी ठहरती है। वे डरते हैं कि तीसरी पत्नी घर में लाने पर या तो वह स्वयं अथवा उसका पति अकाल मृत्यु को प्राप्त होगा। अतः तीसरी पत्नी की बात आने पर वे शंका-निवारण के लिए एक कबूतरी से विवाह कर लेते हैं। तत्पश्चात् चौथी पत्नी के रूप में तीसरी स्त्री से विवाह करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेलीफोन द्वारा तार जल्दी पहुंचता है

अपना तार भेजते समय पते में पाने वाले के नाम के साथ उनका टेलीफोन नम्बर भी लिख दें जैसे कि :

माथुर
टे०फो० ४७६३६
नई दिल्ली

ज्यों ही यह संदेश तारघर में पहुंचेगा, टेलीफोन पर उन्हें पढ़ कर सुना दिया जाएगा। इससे संदेशवाहक के पहुंचने में लगने वाला समय बच जाएगा।

यह सस्ता भी पड़ सकता है क्योंकि टेलीफोन का नम्बर तथा उसके पूर्व लिखा जाने वाला 'टे०फो०' शब्द दोनों एक ही शब्द गिना जाता है।

यह सुविधा उन सभी स्थानों के लिए है जहां स्थानीय टेलीफोन व्यवस्था उपलब्ध है।

संदेश की एक प्रति उसी दिन पहली डाक से भेज दी जाती है।

टेलीफोन पर तार प्राप्त कीजिए

कुछ शहरों में आप टेलीफोन पर तार उस स्थिति में भी प्राप्त कर सकते हैं जबकि तार के पते में आपका टेलीफोन नम्बर नहीं दिया गया हो। इसके लिए आपको तारघर में अपना टेलीफोन नम्बर रजिस्टर करवाना होगा।

हमें उत्तम सेवा का अवसर दीजिए

डाक-तार विभाग

डीए ६३/३५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाल यह भी, बाल वह भी !

हाल ही में बाल का एक प्रकरण कश्मीर से उठा और कालमों को रँग गया। वैसा एक अन्य प्रकरण १९वीं शताब्दी में एक फ्रेन्च रईस पॉसेन (Pausanne) ने खड़ा किया था और अपने एक बाल पर २३ वर्ष मुकदमा लड़कर ४० हजार रुपया वसूल किया था ! हुआ यह कि उसने ४० हजार की लागत में एक मकान खरीदने का सौदा किया और उन दिनों के रिवाज के अनुसार बन्धक के रूप में अपने सिर का एक बाल रखवा दिया। संयोग-वश मकान बेचने वाला मुकर गया तो उसने अपना बाल वापस माँगा। बाल जब न मिला तो उस रईस ने मुकदमा लड़ा और २३ वर्ष बाद, हर्जे-खर्चे सहित बाल की कीमत के रूप में ४० हजार रुपया वसूल पाया !

ये बकरे पेड़ पर चढ़ते हैं

फिर भी इनके गड़रियों को अचम्भा नहीं होता। ये मोरक्को निवासी बकरे हैं और इनसे अधिक विशेषता उन पेड़ों में है जिन पर ये चढ़ते हैं। वे पेड़ मजबूत टहनियों और पत्तों से लगभग ढँके ही रहते हैं और ऊँचे भी अधिक नहीं होते। उनमें जो नन्हें फल लगते हैं उन्हें बकरे बड़े चाव से खाते हैं और वहाँ के निवासी उन फलों से उपयोगी तेल भी निकालते हैं।

ये अतिविचित्र मानव जातियाँ

इनकी विचित्रता इन्हीं की है, अन्यत्र देखने को भी नहीं। दक्षिण अमरीका के इन मानवों की विचित्रताएँ देखिए।

होंठ हिले नहीं, बात हो भी गयी—अमेजन की तराइयों में रहने वाले कोरिया जाति के ये व्यक्ति बगैर होंठ हिलाए बात करके मानो एक प्राकृतिक असम्भाविता को सम्भव कर दिखाते हैं। और भी विलक्षणता यह है कि स्त्री और पुरुष एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न भाषा बोलते हैं किन्तु तनिक कठिनाई से ही सही, दोनों समझ लेते हैं और पारिवारिक शान्ति भी भंग नहीं होने पाती।

जो दीखे सो उलटा—केम्पा जाति के ये लोग पेरू निवासी हैं। प्रकृति ने इनकी आँखों के लेंस में वह खूबी दी है जो इन्हें हरेक सीधी चीज उलटी दिखाती है। कोई पुस्तक अथवा चित्र देखने का मौका आने पर ये उसे उलट कर ही देखते हैं !

बिना पानी, जिन्दगानी—पाराग्वे-निवासी (Paraguay) चाने जाति के ये लोग पानी के मोहताज कभी नहीं रहते। इसका मुख्य कारण कदाचित यह है कि खारे पानी के अतिरिक्त पीने योग्य मीठे पानी की एक बूँद भी इन्हें उपलब्ध नहीं। इसकी पूर्ति ये लोग मक्का से नशीला पेय बनाकर कर लेते हैं।

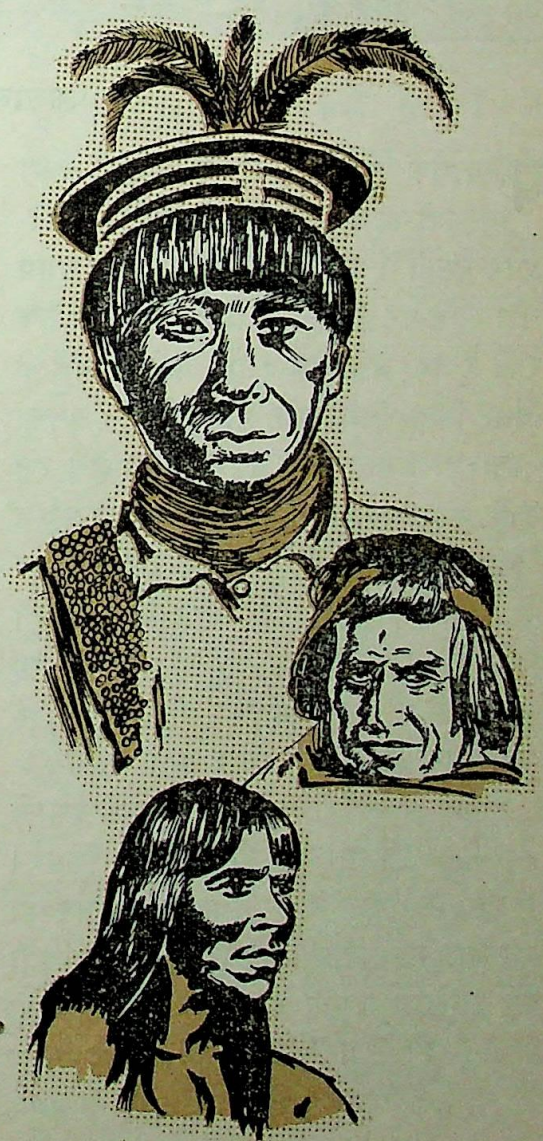

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

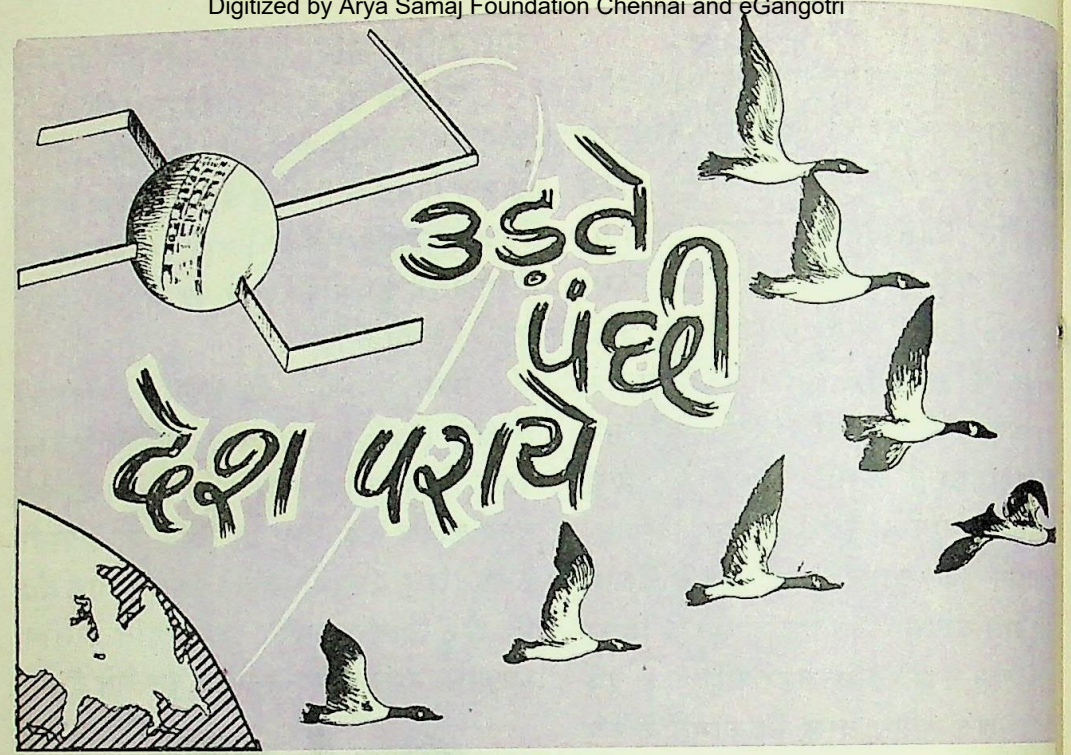

प्रेमलाल टण्डन

परिव्राजक अर्थात् घुमक्कड़ पक्षियों तथा प्राणियों का यह स्वभाव होता है कि अपने-अपने समूहों में वर्ष के अन्दर निर्धारित समय और स्थल पर ही आते हैं, निर्धारित काल तक रहते हैं तथा जैसे बिन-बुलाये आये थे, वैसे ही बिना विदा लिये चले भी जाते हैं। इनका यात्रा-पथ अनन्त और अबूझ रहता है। इस मनोरंजक रहस्य ने प्रायः ही मानव को प्रेरित किया है कि वह पंछियों के उन पराये देशों का पता लगाये जहाँ से वे आते हैं और जहाँ चले जाते हैं। उन विविध प्रयासों में एक यह प्रकार भी था कि वे पक्षियों और प्राणियों के शरीर पर कुछ स्थायी चिह्न लगा देते थे।

सैकड़ों वर्षों से चली आ रही इस प्रथा ने आधुनिक विज्ञान को भी प्रभावित किया। विज्ञान के सुयोग से इसमें पर्याप्त सुधार भी हुए और इस शताब्दी के आरम्भ से ही पक्षियों को चिह्नित करने की प्रथा लोकप्रिय हो चली। कुछ ही वर्षों में ऐसे जन्तुओं की संख्या लाखों तक पहुँच गयी जिन्हें धातु के हलके कालर या छल्ले पहनाकर तथा अन्यान्य चि लगाकर छोड़ा जाता रहा और लौटने जिनका अध्ययन किया गया। यह ज्ञात क की लालसा बराबर बनी रही कि पक्षी वायुमण्डल में किस ऊँचाई तक उड़ानें भ हुए किन अनजाने विस्तारों में खो जाते दक्षिण ध्रुव के पेन्गुइन प्रजननक्रिया के पश्च अपना क्रीडांगण छोड़कर कहाँ चले जाते घुमक्कड़ विशालकाय समुद्री पक्षी किस निकल जाता है तथा अमरीकी बारहसि और कैरीबियन कछुआ किन दूर देशों चक्कर लगा आते हैं। जैसा भी है, परिव्राजक प्राणियों का प्रवास-ज्ञान, दि ज्ञान तथा समय-ज्ञान चमत्कारिक है।

परिस्थिति - विज्ञान (Ecology) जन्तुओं की इन गतिविधियों के विवरणों विशेष महत्त्व है। इन्हीं विवरणों से यह करने में सहायता मिलती है कि अमुक अमुक समय, अमुक ही स्थल पर क्यों है। वे कैसी परिस्थितियाँ हैं जो उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

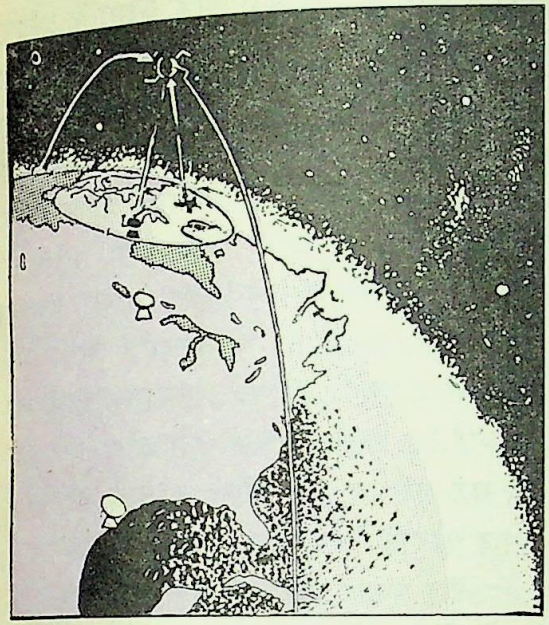

ट्रान्जिस्टरयुक्त पक्षी द्वारा प्रेषित संकेत २०० मील की ऊँचाई और ८०० मील की दूरी तक परिक्रमा करते हुए कृत्रिम उपग्रह द्वारा ग्रहण किये जा सकते हैं

लिए प्रेरित करती हैं? उन विशिष्ट स्थलों की परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए सूर्य-रश्मियों तथा अवरक्त किरणों का विकिरण और अवशोषण, भूमि तथा वायु के ताप, आर्द्रता, अवक्षेपन तथा वायुमण्डलीय दाब का अध्ययन आवश्यक है। इन अवलोकनों के लिए आज के विज्ञान ने नवीनतम और बढ़े-चढ़े क्षमतायुक्त साधन प्रस्तुत किये हैं।

विगत वर्षों में जब ऐसे वैज्ञानिक साधन उपलब्ध नहीं थे तब पक्षियों के लौट आने तक अन्वेषकों को प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। तभी वे अनुमान लगा पाते थे कि जहाँ से वे पक्षी लौटे हैं, वहाँ की परिस्थिति कैसी रही होगी, अनेक प्राणियों में यह क्षमता होती है कि वे स्वयं को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेते हैं। अतः उनमें दिखाई पड़ने वाले परिवर्तनों से पर्याप्त अनुमान लगाये जा सकते हैं।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् रेडार और विगत ३-४ वर्षों से ट्रान्जिस्टर के प्रयोग ने इस विषय में चमत्कारिक क्रान्ति ला दी है। जिन दिनों रेडार का उपयोग इन कार्यों के लिए किया जाता था उन दिनों रेडार की सीमाओं के अन्दर ही उड़ने वाले पक्षियों को एक प्रकार से 'देखना' भी सम्भव था। अब ट्रान्जिस्टरों तथा विविध माइक्रोइलेक्ट्रानिक अति सूक्ष्म संयंत्रों द्वारा और भी चमत्कारिक उपलब्धियाँ सम्भव हैं। एक नन्हा रेडियो-ट्रान्समीटर जो बैटरियों सहित २-२॥ तोला से अधिक वजनी न होगा, पक्षियों के शरीर पर फिट करके छोड़ देने से सम्वाद-समाचार स्वतः मीलों दूर से मिलते रहते हैं। अब तक कितने ही मुर्ग-मुर्गियाँ, खरगोश, सेही, स्कंक, बीवर, हिरन, बत्तखें तथा हंस आदि से ऐसे रोचक यंत्रों द्वारा सम्पर्क बनाये रख सके हैं। कितने ही विवरण काफी मनोरंजक तथा महत्त्वपूर्ण रहे हैं। जब-जब किसी स्थल विशेष की बदली हुई परिस्थिति के फलस्वरूप ट्रान्जिस्टरयुक्त प्राणी के शरीर में अन्तर पड़ा है, रेडियो संकेतों द्वारा संग्राहक केन्द्र पर वह प्रदर्शित होता रहा है।

इन रेडियो संकेतों में भी एक कठिनाई यह रही कि पृथ्वी के गोलाकार के अनुरूप ये संकेत मुड़ नहीं पाते। फलस्वरूप अनेक संकेत

ऐसे कृत्रिम उपग्रह द्वारा प्रेषित संकेत १२०० मील तक की दूरी से भी भू-स्थित केन्द्र पर ग्रहण किये जा सकते हैं

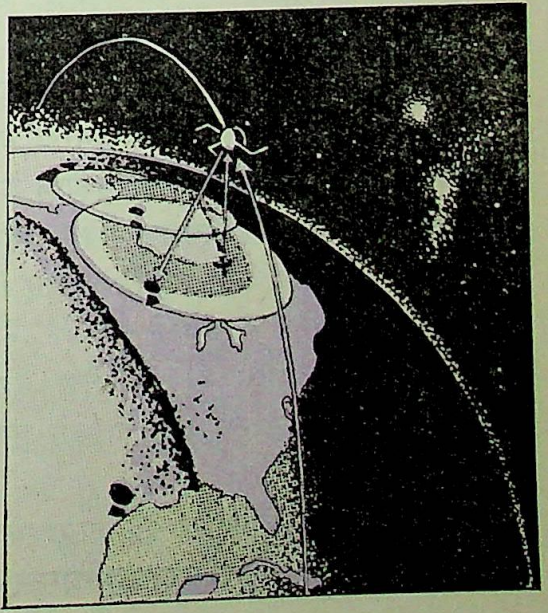

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

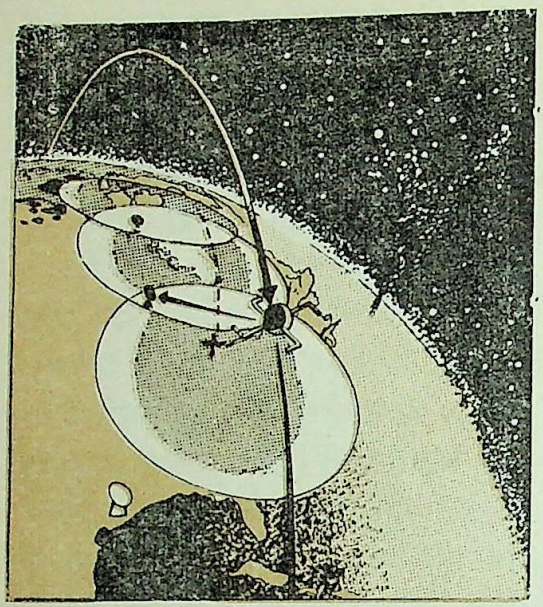

कृत्रिम उपग्रह द्वारा पृथ्वी को एक ही दृष्टि में १६०० मील तक का विस्तार मानो 'देखा' जा सकता है

अन्तरिक्ष में भी विलीन होते रहे हैं। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव न था कि जगह-जगह रिसीवर तथा ऊँचे एरियल खड़े किये जाएँ। इस कठिनाई का एक ही हल जो सम्भव हो पाया, वह था कृत्रिम उपग्रह।

इस कार्य के लिए बनाया गया कृत्रिम उपग्रह वह आश्चर्यजनक यंत्र है जिसके द्वारा पृथ्वी के किसी भी छोर पर तथा सतह से कितनी भी ऊँचाई पर परीक्षण-पात्र पक्षी आवश्यक विवरण पृथ्वी पर भेजने में समर्थ है। पक्षी के लिए ऐसे यंत्र का वजन भी ४०, ५० या ६० ग्राम से अधिक न होना आवश्यक है। ऐसे यंत्रों में एक रिसीवर तथा एक एण्टिना लगा रहता है। स्पष्ट संकेत पाने के लिए उसमें ५०० माइक्रोवाट शक्ति की विद्युत भी उत्पादित होती रहनी चाहिए। इसके द्वारा ८०० मील की ऊँचाई तथा २००० मील की लम्बाई और २००० मील की चौड़ाई के क्षेत्र तक से संकेत ग्रहण किये जा सकते हैं।

ऐसे उपग्रह के लिए यह भी आवश्यक होगा कि वह संग्राहक केन्द्र तथा ट्रान्जिस्टर-युक्त पक्षी के मध्य आवश्यक सीमा के अं
ही रहे। इससे प्राप्त संकेतों को जब का
पर उतारा जाएगा तब S की आकृति प्रं
होगी। यह उन तरंगों का वक्र-रेखीय
रहेगा जो ट्रान्जिस्टरयुक्त प्राणी से प्राप्त क
उपग्रह द्वारा संग्राहक केन्द्र तक पहुँचे
जाएँगी। इसकी जटिल क्रिया डाप्लर प्र
(Doppler effect) के अन्तर्गत आती
इसी से उदाहरणार्थ यह अनुमान लगाया
सकेगा कि जिस पक्षी की हमें टोह मिल
है, वह लगभग ५० मील लम्बाई और
मील चौड़ाई के विस्तार में होना चाहिए।

इस प्रकार दूर-दूर तक विचरने
प्राणियों के विवरण प्राप्त करके उन स्
की भौगोलिक परिस्थितियाँ ज्ञात की
सकती हैं और मालूम किया जा सकता है
उन प्राणियों की घुमक्कड़ प्रवृत्ति के
उनका सहज स्वभाव उत्तरदायी है अ
उन क्षेत्रों की बदलती हुई परिस्थिति
पृथ्वी पर उपलब्ध प्राकृतिक साधनों
अन्यान्य वस्तुओं के उचित उपयोग के
तथा भौगोलिक परिस्थिति के सम्यक् ज्ञा
लिए ऐसे विवरण अत्यन्त आवश्यक हैं।

एक प्रयोगस्वरूप १ अक्टूबर १९६२
कनाडा (अमरीका) के सात हंसों
ट्रान्जिस्टरयुक्त करके उत्तरी ध्रुव की ओ
छोड़ा गया था। यात्रा के प्रथम १२ दिन
तो उनकी गतिविधियों के संकेत बरा
मिलते रहे किन्तु अधिक लम्बी उड़ान
जाने वाली संध्या को ज्योंही उन्होंने क्षि
पार किया, संग्राहक केन्द्र से उनका सम्पर्क
गया। उस परिस्थिति में यदि यंत्र-सज्जि
कृत्रिम उपग्रह उन पर दृष्टि जमाये रहता
उनके संकेत-प्रसारण में बाधा न पड़ती।

इस दिशा में और भी सम्पन्नता प्र
कर लेने पर दूर उड़कर जाने वाले पक्षि
के पराये देश अवश्य ही पराये न रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !

विज्ञान-लोक के पाँचवें वर्ष का प्रथम अंक—यह फरवरी अंक तुम्हारे सामने है। पिछले चार वर्षों की इस सहयात्रा पर विहंगम दृष्टि करती हूँ तो तुम सबों का स्नेहपूर्ण सहयोग ही वह मुख्य आधार पाती हूँ जिसके बल पर **विज्ञान-लोक** का आज यह स्वरूप बन सका है। आशा है, नये वर्ष की नयी मंजिल नये उत्साह से तय की जा सकेगी।

तुम्हारे ढेर सारे पत्रों में से कुछ का ही उल्लेख करूँ तो विगत जनवरी अंक में द्रोणवीर कोहली की वैज्ञानिक कहानी—**जब हम शुक्रग्रह से लौटे** मनवेन्द्रसिंह (६०३३) सहारनपुर तथा कन्हैयालाल (१०४३२) टीकमगढ़ ने विशेष पसन्द की है। निरंजन-प्रकाश (३६१६) पुष्कर ने **आक्सीजन** तथा कृष्णचन्द्र (५२९२) आगरा ने नयी धातु **टाइटेनियम** और **गुफा से गगन की ओर** लेख अत्यन्त रोचक बताये हैं। **विद्युतोत्पादन के नये साधन** जैसी नवीनतायुक्त और भी सामग्री की माँग विनोदकुमार (६७१७) जसीडीह; गिरीशचन्द्र (११५७) आगरा और लाजपत-राय (६४५४) वाराणसी ने की है।

पिछले अंकों में कई बार सूचनाएँ दोहराने पर भी मैं देखती हूँ कि अभी तक निम्न दो बातों पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है और इन्हीं के कारण रचनाओं के प्रकाशन तथा प्रतियोगिता-पूर्तियों के पुरस्कारों से अनेक को वंचित रह जाना पड़ता है :

१. प्रतियोगिता-पूर्ति के साथ सम्बन्धित कूपन संलग्न करना,

२. रचनाएँ केवल अप्रकाशित विषयों पर ही भेजना।

सस्नेह तुम्हारी

कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४७ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

सुधीरकुमार राठौर (१६१९) आगरा, शान्ति-लाल सरणोत (६४७४) उदयपुर, सज्जनसिंह सुराना (७६८१) उदयपुर, वल्लभदास पारेख (७७५८) उदयपुर, अनिलकुमार (८८६१) रांची, शशिकान्त गुप्ता (१०६६४) आगरा, राजेन्द्रप्रसाद वर्मा (११९७०) कुल्टी।

द्वितीय पुरस्कार

गिरीशचन्द्र अग्रवाल (११५७) आगरा, गजेन्द्र-पालसिंह (१६०५) मेरठ, गोपाल माधव (२३७९) मेरठ, निरंजनप्रकाश माथुर (३६१६) पुष्कर, रणजीत सिंह (४७२४) नई दिल्ली, सत्यपाल अग्रवाल (५३२३) दिल्ली, हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१) लखनऊ, जगदीश-प्रसाद बन्सल (११९८३) आगरा, कु. मंजुला सिरोही (११९८४) मेरठ।

तृतीय पुरस्कार

गोविन्दस्वरूप (२२८२) इलाहाबाद, रमेशचन्द्र शर्मा (२७६८) कोटा, रवीन्द्रकुमार मेहरा (३८४७) अजमेर, चन्द्रमोहनसिंह (४८४४) अजमेर, जागेश्वरप्रसाद सोनी (५३०७) जबलपुर, प्रकाश जोशी (६११७) अजमेर, सुरेशकुमार गुप्ता (७१९०) अमृतसर, पुरुषोत्तमकुमार (७३४१) जगदलपुर, ललितकुमार (७७३३) जगदलपुर, कृष्णगोपाल भंडारी (८१३८) कटनी, वेंकटलाल माहेश्वरी (९८९९) कटनी, कु. शीला गोयल (१००३६) जबलपुर, अजमतअली (१०७३४) ज़गदलपुर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिवजी पाण्डेय
(स. सं. ८६०२)

निर्मलकुमार
(स. सं. ८७८१)

हेमराज शर्मा
(स. सं. ९०४२)

पवनकुमार जैन
(स. सं. ९१००)

७७४२ बलराम (१५) रांची, ४३ राजेशकुमार (१३) अलीगढ़, ४४ सुरेन्द्रपाल (१७) बम्बई, ४५ प्रद्युम्नकुमार (१४) अलीगढ़, ४६ वासुदेव (१६) रुड़की, ४७ गोरधनलाल (१८) चित्तौड़गढ़, ४८ इनायतअली (१८) भाटापारा, ४९ जयनन्दन (२०) मुरादाबाद, ५० रामशरण (२०) कानपुर, ५१ नरेन्द्रकुमार (१४) जोधपुर, ५२ निर्मलकुमार (१५) जमशेदपुर, ५३ निरंजन-प्रसाद (१४) पटना, ५४ अजयकुमार (१३) रांची, ५५ रवि (१३) लखनऊ, ५६ शरदकुमार (१४) झांसी, ५७ बाबूभाई (१९) वैहर, ५८ वल्लभदास (१५) उदयपुर, ५९ उदयचन्द्र (१७) हीराकुड, ६० रामानन्द (११) फारबिसगंज, ६१ हरिमोहन (१०) सहर्षा, ६२ योगध्यान (१६) नई दिल्ली, ६३ गिरीशकुमार (१३) रायपुर, ६४ अहमद खाँ (१६) रायपुर, ६५ बालकृष्ण (१४) रायपुर, ६६ निसारअहमद (१३) रायपुर, ६७ अशोककुमार (१४) पटना, ६८ वीरेन्द्रपाल (१६) सहारनपुर, ६९ रणवीर (१४) रोहतक, ७० अनिलकुमार (१४) रायपुर, ७१ कन्हैयालाल (१५) बीकानेर, ७२ संजय (११) अहमदाबाद, ७३ जीवाराम (१७) अलीगढ़, ७४ मोहनलाल (१२) दरियापुर नेवादा, ७५ नरेन्द्रकुमार (१४) सारंगगढ़, ७६ टीकाराम (१४) बुलन्दशहर, ७७ सुरेन्द्रकुमार (१६) बूँदी, ७८ बल्देवकृष्ण (१४) मेरठ, ७९ रमेशचन्द्र (१५) आगरा, ८० हुबराज (१६) मीरगंज, ८१ राजेन्द्र-पाल (१५) मथुरा, ८२ प्रमोदकुमार (१३) इलाहाबाद, ८३ राधेश्याम (२८) गोरखपुर, ८४ कु. ममता (१०) पडरौना, ८५ श्यामनारायण (१४) वाराणसी, ८६ आत्माराम (१६) गौहाटी, ८७ गंगाधर (१४) धार, ८८ विजयकुमार (१५) डोंगरगाँव, ८९ वीरेन्द्र (१२) जमशेदपुर, ९० राजेश्वरराम (१७) शाहाबाद, ९१ विष्णुदेवप्रसाद (१४) बड़ारा, ९२ कु. सुधा (१६) महाराजगंज ९३ प्रदीपकुमार (१३) कानपुर, ९४ तारकराज (१४) वाराणसी, ९५ स्वर्णसिंह (१७) गोरखपुर, ९६ उमेशचन्द्र (१४) ब्यावर, ९७ प्रभातबाबू (१०) महासमुन्द, ९८ अपलम चपलम (१६) फारबिसगंज, ९९ सुनिलकुमार (१४) नैनीताल, ७८०० जयप्रकाश (१२) वाजपट्टी, १ भागीरथ (१९) हीनू, २ वीरेन्द्रकुमार (१५) कौलारस, ३ हरनारायण (११) ब्यावर, ४ वीणाकुमारी (१५) महेन्द्रू, ५ विजयकुमार (१७) नागपुर, ६ महावीरप्रसाद (१९) भद्रक, ७ कुलदीपसिंह (२०) चन्दौसी, ८ सुदामा (१७) विलास-पुर, ९ नरभेराम (१७) विलासपुर, १० ब्रिजलाल (१७) औरंगाबाद, ११ मिश्रीलाल (१७) रायपुर, १२ जगदम्बाप्रसाद (१७) मोहम्मदपुर, १३ सज्जनलाल (१२) पूर्णिया, १४ बबुलन (१५) मानपुर मठियां, १५ कृष्णकुमार (१८) सागर, १६ रमा-कान्त (१४) भोगांव, १७ मोहनचन्द्र (१५) गोरखपुर, १८ जगमोहन (१५) वीरगढ़, १९ सावन्तसिंह (१७) आलीराजपुर, २० अशोककुमार (१३) सहारनपुर, २१ सुखदेवराज (१५) मुजफ्फरनगर, २२ बद्रीप्रसाद (१५) गोरखपुर, २३ दिनेशपाल (१५) ठाकुरगंज, २४ भंवरलाल (१८) बीकानेर, २५ वेदप्रकाश (१४) शिवपुरी, २६ विष्णुप्रसाद (१८) शिवपुरी, २७ कु. मोहिनी (१४) रांची, २८ नरेन्द्र (१५) आगरा, २९ श्यामसुन्दर (१६) कटनी, ३० विनयकुमार (१४) रफीगंज, ३१ रामचन्द्रप्रसाद (१५) बरौनी, ३२ जीवद्द (१२) कटिहार, ३३ आनन्दकुमार (१२) कुरुक्षेत्र, ३४ संतोषप्रसाद (१४) जसवन्तनगर, ३५ राजीव (११)

रामाशंक
(स. सं. १०

चन्द्रप्रकाश
(स. सं. १

महेंद्र
(स. सं. १

शंकर
(स. सं. १

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्वालियर, ३६ भरतकुमार (१४) आनंद, ३७ रविकुमार (१७) डोंगरगढ़, ३८ हुसैनमुहम्मद (१६) पासीगंन, ३९ हरीप्रकाश (१५) लखनऊ, ४० सुभाषचन्द्र (१३) शिवपुरी, ४१ प्रकाशनारायण (१५) बिलासपुर, ४२ पारसनाथ (१२) डाल्टनगंज, ४३ कृष्ण-गोपाल (१६) बस्ती, ४४ ज्योतिस्वरूप (१५) वाराणसी, ४५ ओमकुमार (१२) भागलपुर, ४६ बाबूलाल (१३) रतनगढ़, ४७ जयन्तकुमार (१४) कदमा, ४८ हरिश्चन्द्र (१५) अलमोड़ा, ४९ दिनेशचन्द्र (१७) गरोठ, ५० अरविन्दकुमार (१८) होशंगाबाद, ५१ कु. बीना (१३) कानपुर, ५२ मिनहाजुररहीम (१६) रायगढ़, ५३ कु. रीता (१३) कोरबा, ५४ रेवतीरमण (१७) हराजी, ५५ कु. रजनी (१६) वाराणसी, ५६ सन्तोषकुमार (१२) जसीडीह, ५७ इन्द्रमन (१७) पिपरिया, ५८ ब्रजेश्वरलाल (१६) सुपौल, ५९ सत्यप्रकाश (१७) अम्बरनाथ, ६० राजेन्द्र-कुमार (१६) लक्ष्मीपुरी, ६१ कैलाशबाबू (१२) अलीगढ़, ६२ दत्तात्रय (१५) भिलाई, ६३ रामविनोद (११) बहरामपुर, ६४ कु. शशिबाला (१५) इलाहाबाद, ६५ रामगोपाल (१६) अकलेरा, ६६ ओंकारचन्द्र (१७) हाटा, ६७ मथुराप्रसाद (१२) दानापुर, ६८ मदनगोपाल (१४) रांची, ६९ अनीशकुमार (२०) कलकत्ता, ७० कु. भानुमती (१०) गया, ७१ विवेकानन्द (१३) जमशेदपुर, ७२ सतवंत (१४) हनुमानगढ़, ७३ धर्मपाल (१८) मथुरा, ७४ राधेश्याम (१६) छिवरामऊ, ७५ नरेन्द्रपाल (१६) मेरठ, ७६ सोमेश्वर (१६) रायगढ़, ७७ राजेन्द्रप्रसाद (१६) अमरपुरा, ७८ बलबीरसिंह (१५) कदमा, ७९ रमेशकुमार (१६) जबलपुर, ८० जगदीश (१७) फीना, ८१ आनन्दकुमार (१२) करजापट्टी, ८२ विष्णुप्रकाश (१७) देवली, ८३ ज्ञानप्रकाश (७) कुरुक्षेत्र, ८४ विनोदकुमार (१४) रामपुर, ८५ जयकुमार (१५) बड़नगर, ८६ राधेश्याम (१७) टूण्डला, ८७ प्रभातकुमार (१२) रांची, ८८ मदनप्रसाद (१४) चनपटिया, ८९ हनुमंतदामोदर (१४) लश्कर, ९० मदनगोपाल (१७) कलकत्ता, ९१ सुरेन्द्रकुमार (१३) लुधियाना, ९२ रामावतार (१३) मुकुन्दगढ़, ९३ सुरेशचन्द्र (८) अकोला, ९४ राजकुमार (१५) मुकुन्दगढ़, ९५ बृजमोहन (१७) आगरा, ९६ राजेन्द्र (१३) फतेहगढ़, ९७ अवधेशकुमार (१५) चन्दौसी, ९८ सन्तोषकुमार (१३) आरा, ९९ धनीराम (२४) बारेन्दा, ७९०० राजशेखर (१४) रतैठा, १ फणिकान्त (१०) रांची, २ बिरेन्द्रप्रसाद (१४) लोहारदगा, ३ रामानन्दप्रसाद (१३) मुजफ्फपुर, ४ क्रान्तिकिशोर (१८) दिल्ली, ५ ओमप्रकाश (१७) डाल्टनगंज, ६ रघुवीरप्रसाद (१६) पिपरिया, ७ पारसमल (१८) जावद, ८ मोहनसिंह (१६) पीलीभीत, ९ अरविन्दकुमार (१५) सिवनी मालवा, १० कालिकाप्रसाद (१५) सिवनी मालवा, ११ जमनाप्रसाद (१५) सिवनी मालवा, १२ नीलकंठराव (१६) मालेगांव, १३ रोशनअली (१३) रायपुर, १४ वीरेन्द्र-कुमार (१५) महनार, १५ वीरेन्द्रकुमार (११) दहिला, १६ भूपेन्द्रकुमार (१३) सहर्षा, १७ कु. सामफूलदेवी (९) गया, १८ तौखीअली (१२) भिण्ड, १९ शान्तीलाल (१४) भीलवाड़ा, २० विनोदचंद (१८) गढ़ी, २१ कु. वी. आर. रमा (१२) भिलाई, २२ गयाप्रसाद (१६) रायपुर, २३ प्रदीपकुमार (१४) इलाहाबाद, २४ सुबोधशंकर (१४) इलाहाबाद, २५ रामबाबू (१६) औरैया, २६ भानुप्रताप (१६) बाबागंज, २७ आदित्य (१५) लश्कर, २८ विष्णुप्रसाद (१६) नौतनवां, २९ मोतीलाल (१६) दिघा, ३० श्रीकृष्ण (१३) अलीगढ़ ।

जगदीशप्रसाद
(स. सं. १०९७६)

ओमप्रकाश
(स. सं. १०९८१)

रत्नेशकुमार
(स. सं. १०९८६)

गिरीशकुमार
(स. सं. ११०१२)

रमेशचन्द्र
स. सं. १०१९०)

कमलकुमार
स. सं. १०३२०)

किशोर वाष्णेय
सं. १०९७०)

निल कपूर
सं. १०९७४)

फरवरी १९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४९

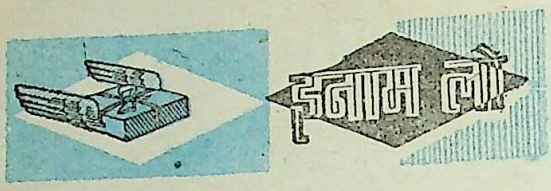

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : २९ फरवरी

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५७ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४९ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर २९ फरवरी तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ४९ के प्रश्न

१. सूर्य और चन्द्रमा से पृथ्वी तक प्रकाश आने में क्रमशः लगभग कितना समय लगता है ?

२. दीवार घड़ी सर्वप्रथम किसने, कब बनायी ?

३. ताप-अंक को C. और F. में परस्पर किन सूत्रों द्वारा बदलेंगे ?

४. मधुमक्खियाँ अपने छत्ते में मोम कहाँ से एकत्र करती हैं ?

५. गनमेटल में सामान्यतः क्या-क्या धातुएँ, किस अनुपात में मिश्रित रहती हैं ?

६. किस वृक्ष पर पत्तियों से भी पहले फू उग आते हैं ?

७. अतलांतिक और प्रशान्त महासागर, को किस पर्वत-शिखर से दायें-बायें दिखाई देंगे ?

८. घोंघे की आँखें कहाँ होती हैं ?

९. सल्फीकृत (sulphuretted) हाइड्रोजन कि स्वचालित उपकरण द्वारा तैयार किया जाता है ? यंत्र की क्रियाविधि का भी संक्षेप में संकेत कीजि

१०. आक्सी-ऐसीटिलीन ज्वाला किस उच्च अंक तक का ताप दे सकती है ?

प्रतियोगिता संख्या ४७ के प्रश्नों के उत्तर

१. औप्थैल्मोस्कोप (Opthalmoscope) द्वारा।

२. वाएडियोटेप (Videotape)।

३. कोई सम्बन्ध नहीं। हाइपो का रासायनिक नाम सोडियम थायोसल्फेट $Na_2S_3O_3$ है। नाम में समानता है, किन्तु सोडियम हाइपोसल्फाइट निगेटिव धोने में काम नहीं आता।

४. हर्टिजन ने मैक्सवेल के इस सिद्धान्त का समर्थन अपने प्रयोगों द्वारा १८७५ में किया था कि विद्युच्चुम्बकीय तरंगों की गति प्रकाश-गति के लगभग ही है।

५. दक्षिण अमरीका के दक्षिण-पश्चिमी और, इक्वेडार पर कोटोपैक्सी (Cotopaxi) १९५०० फुट ऊँचा सक्रिय ज्वालामुखी है।

६. नहीं बदलती। शरीर के प्रायः समस्त अंग अवस्था के साथ थोड़े-बहुत बदलते रहते हैं कि उँगलियों की रेखाएँ उस नियम का अपवाद यदि ये भी बदलती रहतीं तो मानव-मानव परीक्षण-विधान ही अस्त-व्यस्त हो जाता।

७. क्लार्क मैक्सवेल (Clark Maxwell) १८६४ में।

८. संश्लेषित रबर के एक बहुप्रचलित प्र का व्यावसायिक नाम है।

९. विलियम एच. ब्रेग ने अपने पुत्र विलि एल. ब्रेग के साथ एक्स-रे तथा मणिभ-संरचना शोधकार्य करके १९१५ में सम्मिलित नोबुल पुरस्क प्राप्त किया था।

१०. प्रतिदीप्ति (flourescence) के गु संश्लेषित पदार्थों के मिश्रण से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करो और देखो—

अपना प्रोजेक्टर बनाइए

रणजीतसिंह स. सं. (४७२४)

आप भी एक साधारण फिल्म प्रोजेक्टर सरलता से बनाकर अपना तथा मित्रों का मनोरंजन कर सकते हैं।

आवश्यक वस्तुएँ

एक गत्ते का डिब्बा ८″ × ७″ × ६″, दो उन्नतोदर लेंस (focal length 10/20 c.m.), गत्ते की एक ट्यूब ८″ लम्बी तथा २″ व्यास की, एक टेबिल-लैम्प, १०० वाट का बल्ब, मेज, पर्दा, कुछ फोटो के निगेटिव या पुरानी फिल्म की पट्टी, दो चर्खियाँ १″ व्यास की तथा एक बड़ा नतोदर शीशा।

अब शुरू कीजिए

गत्ते के डिब्बे में चित्रानुसार १-१ छिद्र ३″, २″ तथा १″ व्यास के (कुल ३ छिद्र) कर लीजिए।

अब ८″ लम्बी गत्ते की ट्यूब में सावधानी से दोनों उन्नतोदर लेंस फिट कर दें। उस ट्यूब को डिब्बे के २″ छिद्र में बिठा दीजिए।

एक बड़ा नतोदर शीशा लें (बिस्कुट के टिन की चमकीली चद्दर का हो तो अच्छा है)। उसमें सावधानी से बीचोबीच १″ व्यास का छिद्र कर दें। उसे अच्छी तरह चमकाकर लैम्प के पीछे फिट कर दें। कमरे के दरवाजे आदि बन्द करके बल्ब जला दें। ट्यूब को आगे-पीछे सरकाएँ तथा प्रोजेक्टर और पर्दे के बीच की दूरी को भी बदलकर चित्र को अच्छी तरह फोकस कर लें। लीजिए, आपका प्रोजेक्टर तैयार है। अपने मित्रों को पर्दे

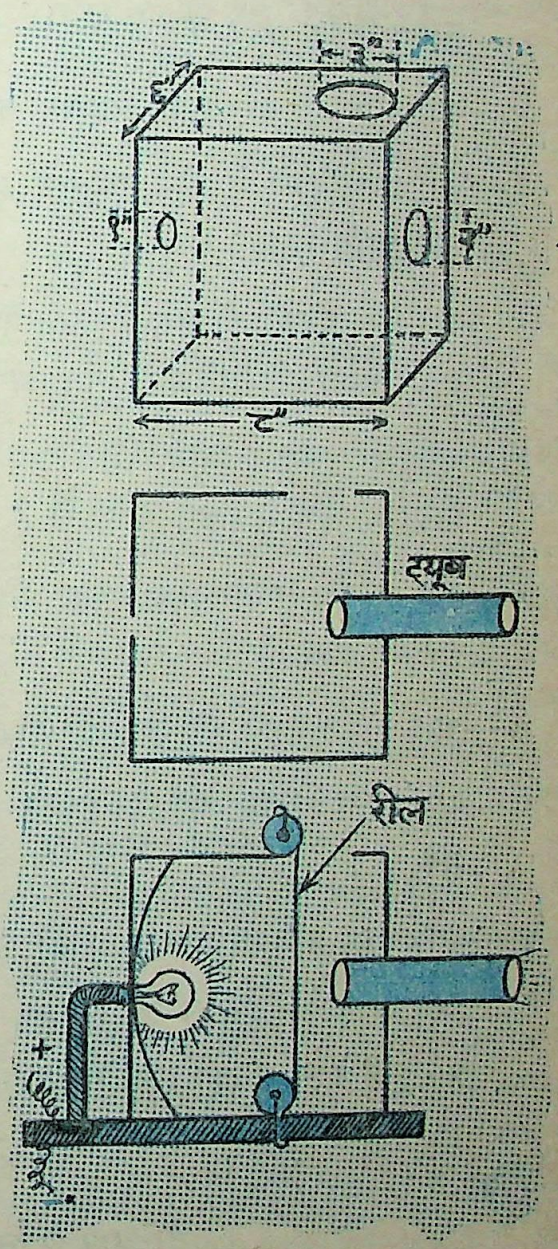

तथा प्रोजेक्टर की बीच में बिठा लें। आप रील घुमाते जाइये, पर्दे पर चित्र नजर आते रहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राथमिक शिक्षा प्रसार पर्व

(२० जनवरी से २६ जनवरी, १९६४ तक)

इस अवसर पर आप कृपया निम्नलिखित प्रश्नों पर सोचें—

१—क्या आप बच्चों के सामने ऐसे काम करने से बचते हैं जिन्हें आप नहीं चाहते हैं कि बच्चे करें ?

२—क्या आप जो बच्चों को सिखाना चाहते हैं वह स्वयं करके दिखाते हैं ?

३—क्या आप बच्चे से कोई नुकसान होने पर नाराज न होकर उसके साथ सहानुभूति दिखाते हैं ?

४—क्या आप बच्चों को श्रम के कामों में आनन्द लेने देते हैं—जैसे झाड़ू लगाना, कपड़े धोना, रोटी बेलना, सूत कातना, क्यारी गोड़ना, पौधा लगाना ?

५—क्या आप स्कूल जाने योग्य अपने सभी बच्चों (लड़के-लड़कियों) को नियमित रूप से स्कूल भेजते हैं ?

६—क्या आपने अपने गाँव अथवा मोहल्ले की पाठशाला के भवन-निर्माण में सहयोग दिया है ?

७—क्या आपने स्कूल की जलपान योजना में योग दिया है ?

८—क्या आप पाठशाला की उन्नति में अपने मित्रों का सहयोग प्राप्त कर सके हैं।

९—क्या आप प्रतिवर्ष पाठशाला की उन्नति में सहयोग प्रदान करते हैं ?

१०—क्या आप अध्यापकों के सम्मान में खड़े होकर उन्हें स्नेह से नमस्कार करते हैं और उनका समुचित सम्मान करते हैं ?

यदि हाँ,

तो आप अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं।

शिक्षा प्रसार विभाग, उत्तर प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी कलम से—

अन्तरिक्ष में आणविक शक्ति का उपयोग

शिम्भूशरण (स. सं. १५०४)

सोवियत संघ ने ४ अक्टूबर १९५७ को प्रथम मानव-निर्मित उपग्रह अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित करके विज्ञान-जगत के नये अध्याय का सूत्रपात किया था। तब से इस दिशा में सोवियत संघ और अमरीका ने नये-नये कदम बढ़ाकर विज्ञान-प्रेमियों को नयी प्रेरणा, नया उल्लास दिया है।

विगत सितम्बर १९६३ में अमरीका ने एक नयी उपलब्धि द्वारा सौर-बैटरियों का झंझट भी शून्यवत् कर दिया। अब तक के प्रक्षेपित समस्त कृत्रिम उपग्रहों में संचालन-शक्ति सौर-बैटरियाँ ही उत्पादित करती थीं। सूर्य की रश्मियाँ वे सीधे ही विद्युत में परिणत कर देती थीं। समय के साथ-साथ उनके भी उपयोग में असुविधा प्रतीत होने लगी—विशेषत: यह कि उनकी यंत्र-सज्जा को घूमने-फिरने के लिए चारों ओर स्थान अधिक चाहिए तथा सूर्य रश्मियों को केन्द्रित करने के लिए बड़े-बड़े दर्पण चाहिए। इतने पर भी उसमें चाहे जब संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जिसका अर्थ है उनका निष्क्रिय हो जाना।

इस दिशा में अमरीका ने सितम्बर १९६३ में जो उपग्रह छोड़ा उसमें परमाणु-शक्ति का उत्पादक यंत्र लगाने का सफल प्रयोग किया है। रेडियोसक्रिय तत्त्व प्लुटोनियम का ईंधन रखकर उसे 'SNAP (System for Nuclear Auxiliary Power) पैकेट' का नाम दिया गया है। अभी प्रायोगिक रूप से बनाया गया यह पैकेट केवल ४½ पौण्ड वजन का है और कम से कम पाँच वर्ष तक उपग्रह के यन्त्रों का संचालन करता रहेगा।

विभिन्न रेडियोसक्रिय तत्त्वों की भाँति प्लुटोनियम भी विघटित होता रहता है। उसका वह विघटन ही ताप विमुक्त करता है। एक थर्मोकपुल द्वारा वह उत्पन्न ताप विद्युत में परिवर्तित हो जाता है। वही विद्युत उपग्रह के यंत्रों का संचालन करती है। इन SNAP पैकेटों में दो विशेष सुविधाएँ हैं—एक तो यह कि शक्ति उत्पादित करने के लिए इसके किसी भी यंत्र को गतिमान होने की आवश्यकता नहीं। फलत: वैसे किसी भी गतिहीन यंत्र-भाग के घिसने-टूटने का प्रश्न ही नहीं। दूसरे यह कि प्लुटोनियम के विघटन द्वारा शेष रहे पदार्थ में से यहाँ के विशाल परमाणु-शक्ति उत्पादक केन्द्रों द्वारा प्लुटोनियम पुन: प्राप्त किया जा सकेगा।

प्रथम प्रायोगिक अणु-पैकेट के पश्चात् केलीफोर्निया के वैज्ञानिक अब और भी वृहत्तर पैकेट बनाने में प्रयत्नशील हैं जो लगभग तीस पौण्ड वजन का होगा और शून्याकाश के कल्पनातीत शीत से भी अप्रभावित रहेगा। इन पैकेटों का उपयोग टेलस्टार जैसे संचार-ग्रहों तथा मानवयुक्त-यानों में भी करने का लक्ष्य है।

इस नवीन आविष्कार का भविष्य निश्चय ही अत्यन्त उज्ज्वल है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

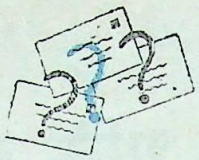

लखनजी (२१४६) आरा

प्रश्न—वर्षा का माप किस यंत्र द्वारा करते हैं ?

उत्तर—विभिन्न प्रकार के रेन-गेजों (rain gauges) द्वारा। इनमें एक प्रकार टिपिंग बकेट (Tipping Bucket) का है। उसमें नन्हीं नाजुक प्यालियाँ तराजू के पलड़े की तरह टिकी रहती हैं और $\frac{1}{100}$ इंच वर्षा जैसी सूक्ष्म मात्रा से भी प्रभावित हो जाती हैं। वे भरी हुई वर्षा की बूँदों को एक-दूसरे में उलटती रहती हैं और उसी के साथ विद्युत-संकेत द्वारा एक ग्राफ पर माप अंकित करती जाती हैं। दूसरे प्रकार में तुलाएँ होती हैं जो वर्षा की बूँदों का भार अंकित करती हैं।

रमेशचन्द्र लोकवानी (९०२०) कोटा

प्रश्न—किसी गर्म वस्तु को मुँह में रखने पर उसकी गर्माहट मुँह तक ही सीमित रहती है, भोजन-नली में उतरते ही उसका असर जाता रहता है, क्यों ?

उत्तर—लार-ग्रन्थियों का एक कार्य यह भी है कि तेज गर्म या ठण्डी वस्तु को तुरन्त शरीर के भीतरी ताप के स्तर पर ले आएँ ताकि ग्रास-नली से आगे की यात्रा संकटप्रद न हो। वैसे अत्यधिक गर्म पदार्थ देर तक आँतों तथा पेट को व्याकुल किये रहते हैं।

कुँवर आनन्द (७१५५) फिरोजपुर

प्रश्न—कपूर किससे प्राप्त होता है ? इसकी उत्पादन-विधि क्या है ?

उत्तर—जापान के दक्षिण में फारमोसा द्वीप में बहुतायत से पाये जाने वाले वृक्ष *cinnamomum camphora* से प्राप्त किया जाता है। उस वृक्ष की टहनियों को पानी भरे पात्र में भरकर उनका आसवन किया जाता है। उनसे उठती वाष्प दूसरे पात्र में श्वेत कणों के रूप में जमकर एकत्र हो जाती है। व्यावसायिक पैमाने पर संश्लेषित विधि द्वारा इसका उत्पादन *a-pinene* नामक एक टर्पेण्टाइन यौगिक से कर लिया जाता है। संसार की आधी आवश्यकता तो संश्लेषित कपूर से ही पूरी हो जाती है।

वैद्यनाथप्रसाद (१०३३४) मधुबनी

प्रश्न—स्टेथोस्कोप का आविष्कार किसने किया

उत्तर—फ्रेन्च चिकित्सक लीनेक (Laenn ने १८१९ में।

बसन्तकुमार (१०७५१) इलाहाबाद

प्रश्न—वर्तनांक क्या है ? कैसे मापा जाता है

उत्तर—प्रकाश-रेखा का वर्तन होने पर माध्यमों के लिए आपतन-कोण के ज्या तथा कोण के ज्या के मध्य एक निश्चित अनुपात होता उसी को वर्तनांक कहते हैं। यह रिफ्रेक्टोमी (refractometer) से मापा जाता है।

रवीन्द्रकुमार (७३९२) नई दिल्ली

प्रश्न—टेलीपैथी क्या है ?

उत्तर—यह मनोवैज्ञानिक विषय है। अ सहानुभूति को ही टेलीपैथी कहते हैं। उदाहर अत्यन्त घनिष्ट दो व्यक्तियों में सैकड़ों, हजारों की दूरी हो, एक-दूसरे से सर्वथा अदृश्य हों, भी एक का छोटा-सा दर्द, दूसरे में तत्क्षण प्रति- जगा दे, यह टेलीपैथी का ही काम है।

शिशु बन्सल (१०२४८) रोजा (शाहजहाँपु

प्रश्न—मनुष्य के शरीर में विद्युत के झटके क्या प्रतिक्रिया होती है जो उसकी मृत्यु हो जाती है ?

उत्तर—विद्युत का झटका सबसे पहले रज्जु, मस्तिष्क और ज्ञानतन्तुओं को सुन्न कर है। अधिक प्रबल होने पर उन्हें निष्क्रिय भी देता है, फलतः हृदय का स्पन्दन रुक जाता जिसका अर्थ है प्रत्यक्ष मृत्यु। ऐसी मृत्यु तात्का चिकित्सा, विशेषतः हृदय की मालिश द्वारा भी जा सकती है।

पवनकुमार (९१००) सरसावा (सहारनपु

प्रश्न—साइकिल में काम आने वाली गो किस वस्तु की बनी होती हैं तथा उनमें चमक प्रकार दी जाती है ?

उत्तर—ये सामान्य बाल-बेयरिंग हैं जो स्टी की बनी होती हैं। मोटरकार में विशेष मजबूती लिए गनमेटल की बेयरिंग काम में लायी जाती ऊपर की क्रोमियम-पालिश के कारण इनमें च स्थायी रहती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिनकुमार (९२६२) हरदोई

प्रश्न—क्या कारण है कि जानवर अपने कान सकते हैं, मनुष्य नहीं ?

उत्तर—जरा और गौर से देखिए। बन्दर, गिलहरी आदि जो जन्तु मनुष्यों की भाँति थों का सहज उपयोग कर लेते हैं, वे घोड़े, कुत्ते, र गधों की तरह कान नहीं पटपटा सकते क्योंकि ठे-बैठे मक्खी मारने को इनके हाथ वह काम दे ही हीं सकते। प्रकृति ने अंग-विभाजन बहुत सोच-समझकर ही किया है।

तीतेन्द्रप्रसाद सिंह (९७०२) पटना

प्रश्न—फास्फोरस के बारे में शुरू से आखीर परिचय दीजिए।

उत्तर—जुलाई-१९६२ का विज्ञान-लोक देखें।

ोयल मैसी (१०८७४) फरुखाबाद

प्रश्न—टेलीफोन का स्वरयंत्र तथा श्रवणयंत्र ने की सरल विधि कहाँ से ज्ञात की जाए ?

उत्तर—टेलीफोन-निर्माण संस्थान, बंगलोर से ात कीजिए।

स्नेहप्रभा (१४२२) दिल्ली

प्रश्न—सुना है, एवरेस्ट से भी ऊँचा पर्वत-शिखर है ?

उत्तर—ठीक सुना है, किन्तु है यह प्रकृति का गूढ़ वैचित्र्य ही। पर्वतों की ऊँचाई जो प्रचलित रूप में सागर-सतह से मापी जाती है, उस दृष्टि से तो एवरेस्ट ही सर्वोच्च है। तथ्य यह है कि स्वयं सागर की सतह भी सब जगह समान नहीं है। पृथ्वी के केन्द्र से यदि ऊँचाई मापी जाए (और, मापी जानी भी चाहिए क्योंकि पर्वत पृथ्वी पर ही तो टिके हैं !) तो दक्षिण अमरीका स्थित इक्वेडोर प्रदेश का शिम्बोरेजो (Chimborazo) पर्वत-शिखर एवरेस्ट से भी लगभग एक मील ऊँचा है ! इसका कारण यह है कि शिम्बोरेजो के अक्षांश पर समुद्र की सतह हिमालय के अक्षांश पर स्थित समुद्री सतह से एक मील नीची है !

मानसिंह भण्डारी (१०६२५) गुलाबपुर

प्रश्न—सेण्टीग्रेड पैमाने का आविष्कार किसने किया ?

उत्तर—सेलसियस (Celsius) ने, १७४२ में।

ब केवल मेट्रिक बाट और पैमानों का प्रयोग ही कानूनी है

आदि में लेन-देन न कीजिए

केवल

लिटर में खरीदिये

DA 63/443

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप चाहे दफ्तर में काम करते हों
अथवा खेत या कारखाने में,
समय की पुकार है कि
आप इतनी मेहनत से काम करें
जितनी कि पहले कभी न की हो।
काम या उत्पादन पहले से
दुगुना कर दें, और इससे भी
कुछ अधिक! याद रखें कि आपका
अधिक परिश्रम राष्ट्र को
अधिक बलवान बनाता है।

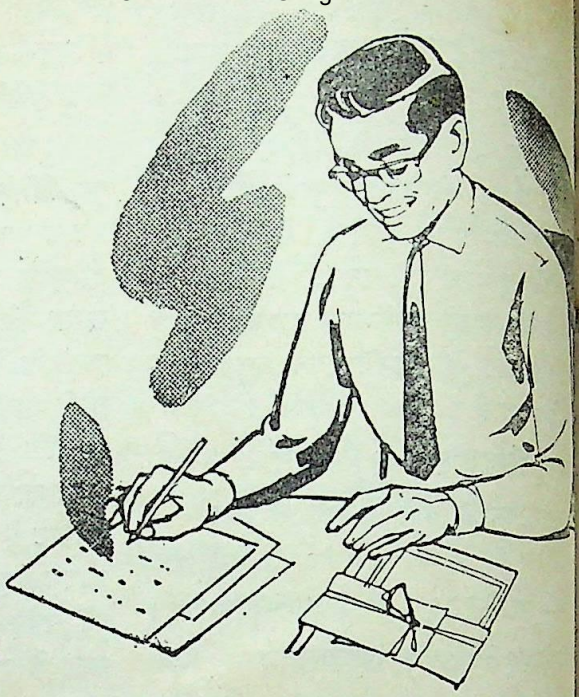

जी तोड़ मेहनत करें

अधिक उत्पादन, सुदृढ़ रक्षा के लिए

जगदीश मेहरा द्वारा रमेश प्रिंटिंग प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूज पेपर्स, आगरा के लि
[मुखपृष्ठ वृजवासी फाइन आर्ट ऑफसेट वर्क्स, मथुरा में मुद्रित]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH WORK BOOK

- A modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded.*
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly.*
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress.*
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.
Book II.....Price : Re. 1·00
Book III.....Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीहारिका

कहानी मासिक

६० नये पैसे

अब ---------- ----------

सब जगह उपलब्ध है।

श्रीराम मेहरा एन्ड कम्पनी, आगरा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

गुरुकुल

७५
नये पैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अन्दर पढ़िये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंगूर
—कीर्तिमोहन

हाइड्रोजन ७
—सत्यकुमार

मृदाहीन कृषि ११
—सी. एल. संधी

आश्चर्यजनक किरणें, लेसर १५
—अशोककुमार चौबे

लार ग्रन्थियाँ १८
—महेशसिंह

पाइथागोरस २१
—गुणाकर मुले

जब बादल घिर-घिर आते हैं २६
—ओमशंकर बाजपेयी

प्राणियों का स्वर-संगीत ३२
—डा. त्रिलोक मजूपुरिया

यन्त्रबल के प्रारम्भिक प्रयोग ३५
अवधबिहारीलाल

चन्दा के देश में ३९
—कुमारी मालती

धूल ही धूल ४४
—रमेशचन्द्र

उत्तर-ध्रुव का रीछ ५०
—विशम्भरदत्त नौटियाल

आग, पानी में लगाते हैं ५२
—नरेन्द्रमोहन माहेश्वरी

स्थायी स्तम्भ

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ४३
विचित्र संसार ४७
विज्ञान क्लब ५५
इनाम लो ५८
आपके प्रश्न ५९
करो और देखो ६१
तुम्हारी कलम से ६४

वर्ष ५

अंक २

अपनी बात

प्रसन्नता का विषय है कि १९६४-६५ भारत ने सोवियत संघ से वैज्ञानिक और सम्बन्ध और भी दृढ़ बनाने की दिशा में एक बढ़ाया है।

इसी मास, हमारे शिक्षामंत्री श्री छा सांस्कृतिक सम्बन्ध विषयक सोवियत संघ समिति के अध्यक्ष एस. के. रोमानोव्स्की ने और सांस्कृतिक विनिमय के समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं। १९६२-६३ की कार्यक्रम कहीं अधिक विस्तृत है।

इस समझौते के अनुसार अयनमण्डल, भू तथा कास्मिक किरणों के अध्ययन जैसे महत्व में सोवियत संघ के सहयोग से भारत प्रगति प्राप्त करेगा, इसमें सन्देह नहीं। क्षेत्र में, वह भी विशेषतः अन्तरिक्ष उड्डय में सोवियत संघ का अपना अद्वितीय स्था सर्वविदित है।

यह बढ़ाया हुआ नया पग आगामी दिन वैज्ञानिक उपलब्धियों से संसार में विशिष्ट प्राप्त करेगा, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

इस नये कदम का स्वागत है।

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

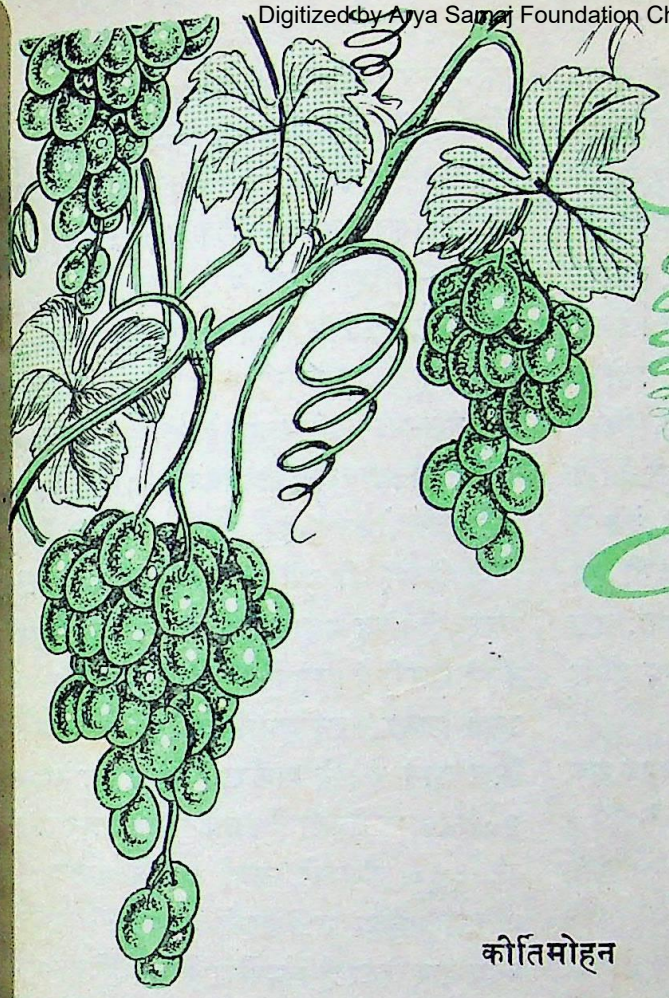

धर्म-ग्रन्थों के अंगूर

कीर्तिमोहन

अंगूर की कहानी मानव-कहानी के लगभग ही आरम्भ होकर साथ-साथ चली है। संसार के समस्त धर्म-ग्रन्थों और पुराणों में जहाँ-जहाँ मदिरा का उल्लेख आता है, वह मदिरा-रसायन इन अंगूरों की ही तो आभारी है! मिस्र की अनेक प्राचीन (५००० वर्षों से भी अधिक) ममियों में अन्यान्य वस्तुओं के साथ अंगूर के बीज भी पाये जाते रहे हैं। अनुमान है कि सर्वप्रथम मध्य यूरोप के कैस्पियन समुद्रवर्ती क्षेत्र में अंगूर की बाग-बानी का प्रयोग किया गया था। वहाँ से वह उद्योग एशिया माइनर, यूनान तथा इटली के सिसिली द्वीप तक पहुँचा। उन दिनों कैस्पियन के अंगूर श्रेष्ठ और अति प्रसिद्ध थे। इटली से आगे बढ़कर अंगूर फ्रान्स (आज से २५०० वर्ष पूर्व) और वहाँ से इंग्लैण्ड (आज से ८०० वर्ष पूर्व) भी पहुँचे। अपनी इस पश्चिम-यात्रा के साथ-साथ अंगूर भारत होकर पूर्वीय देशों में भी पहुँचते रहे। ज्यों-ज्यों नये देश बसते गये, अंगूर भी जड़ें जमाते गये। उल्लेखनीय रूप से एशिया में चमन, यूरोप में फ्रान्स और अमरीका में केलीफोर्निया के अंगूर अति उत्तम माने जाते हैं।

अंगूर की सामान्य बेल

अंगूर-बेल की जड़ों में भिन्न-भिन्न जातियों के अनुसार विभिन्नता रहती है। वह विभिन्नता इस बात पर निर्भर करती है कि अमुक बेल बीज से, कली से, कलम से अथवा किस प्रकार उगायी गयी है। इसका मुख्य तना सुदृढ़, ठिगना और गहरे कत्थई रंग का होता है। तने से जो टहनियाँ निकलती हैं, वे हलकी या गहरी हरी रंगत से पहचानी जा सकती हैं कि वे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१,२,३ या कितने वर्ष की है। टहनियों पर कुछ-कुछ दूरी से सन्धि-ग्रन्थियाँ रहती हैं जो समय पाकर कली रूप में प्रस्फुटित होती हैं और नये पत्तों को जन्म देती हैं। क्रम से तीसरी, चौथी ग्रन्थि पर एक ओर पत्ता और दूसरी ओर अंगूरों का गुच्छा अथवा बेल को ऊपर सहारा देकर चढ़ा ले जाने वाला तन्तु उगता है। इनमें कुछ ग्रन्थियाँ ऐसी होती हैं जिन पर पत्तों के साथ-साथ पृथक् अंकुर भी फूटते हैं, जिन्हें कक्षस्थ प्ररोह (axillary bud) कहते हैं। वे प्ररोह अपने अलग ही अंगूर के गुच्छे देने में समर्थ होते हैं; किन्तु देते हैं मुख्य टहनी का गुच्छा तैयार हो जाने के बाद ही। अतः उस प्रकार की बेलें दोहरी फसलें देने योग्य होती

हरी-भरी पत्तियों तथा अंगूर के गुच्छों से लदी एक डाल
१. अंगूरों का गुच्छा ; २. नयी कोंपल ; ३. तंतु ; ४. मुख्य टहनी ; ५. एक वर्षीय टहनी ; ६. दो वर्षीय टहनी ; ७. बड़ी डाल

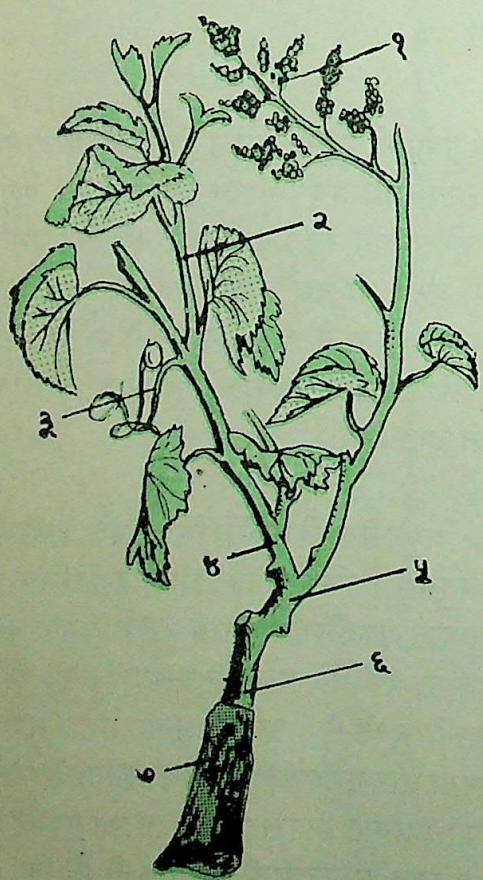

है। कुछ जाति की अंगूर-बेलों के पुष्प नर-स्त्री-केसरयुक्त होते हैं, अन्यथा सामान्यतः पुंकेसर और स्त्री-केसर पृथक्-पृथक् पुष्पों होते हैं। इन बेलों में बेर जैसे लगनेवाले फ को ही अंगूर कहते हैं। फल में स्पष्ट तीन होते हैं—बाह्यावरण, गूदा और बीज। का आकार-प्रकार भी बेल की जाति पर नि रहता है। इसके बीज में १०% से २ तक तैल-भाग भी रहता है जो फल को उ अर्द्धपरिपक्वावस्था में पोषण प्रदान करता

अंगूर में पोषकतत्त्व

पोषण की दृष्टि से अंगूर का अत्यं महत्त्व है। वह महत्त्व इसकी शर्करा-सम्प की आभारी है। ग्लूकोज तथा फ्रुक्टोज ना इसके शर्करातत्त्व हमारे शरीर में तुरन्त मिल जाते हैं। ये शर्कराएँ अंगूर का ल २०% भाग घेरती हैं। एक पौण्ड अंगूर मा को ३६० कैलॉरी ऊर्जा प्रदान करता औसत मनुष्य २४ घण्टों में २५०० कैल व्यय कर लेता है। शर्करा के अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थ भी अंगूर में हैं। फास्फोरस, लोहा, ताँबा, कोबाल्ट जस्ता इनमें मुख्य हैं। ये पदार्थ भी शरीर के पोषण के लिए अत्यावश्यक हैं। में विटामिन A, B_1, B_2 तथा C भी रहते

अंगूर, चमत्न-चमत्न के

भिन्न-भिन्न उपयोगों के आधार पर अं को मुख्यतः निम्न पाँच समूहों में बाँटा है—१. वाइन ग्रेप्स (wine grape २. रेजिन ग्रेप्स (raisin grapes), ३. टे ग्रेप्स (table grapes), ४. स्वीटजूस (sweetjuice grapes) तथा ५. कैं ग्रेप्स (canning grapes)। इन पाँचों स में अंगूरों की कम से कम ८००० प्रकार बेलें पायी जाती हैं। कहने को अंगूर-अंगूर समान हैं और सिद्धान्त रूप से इन्हें खमीर उठाकर, कुचलकर, निचोड़कर इनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त की जा सकती है तथा ताजे अथवा सुखा कर किशमिश के रूप में भी खाये जा सकते हैं; किन्तु उत्तम मदिरा प्राप्त करने योग्य केवल गिनती की ही कुछ जातियाँ, बढ़िया किशमिश के लिए केवल तीन ही जातियाँ, ताजा खाने के लिए केवल १०-१२ जातियाँ और अमरीका का प्रसिद्ध अंगूर-रस तैयार करने के लिए केवल एक ही जाति काम में आती है।

वाइन ग्रेप्स

इस जाति की बेलें केवल मदिरा-प्राप्ति के लिए लगायी जाती हैं। इनमें शर्करा कम और अम्लीयता अधिक पायी जाती है। इनके विपरीत, मद्धिम प्रकार की मदिरा बनाने के अंगूर कम अम्लीयता और अधिक शर्करायुक्त होते हैं। व्हाइट रायस्लिंग (white riesling) तथा सेमिलन (semillon) ऐसे अंगूरों के उदाहरण हैं।

रेज़िन ग्रेप्स

ये अधिकतर किशमिश बनाने के काम में आते हैं और ताजा हालत में रसीले और स्वादिष्ट भी बहुत होते हैं। आकार में ये छोटे तथा स्पर्श में चिपचिपे नहीं होते। ये बीज-रहित होते हैं। मस्केट ऑफ एलेक्जेण्ड्रिया (Muscat of Alexandria), ब्लैक कोरिंथ (Black Corinth) और थामसन सीडलेस (Thompson Seeldess) इनमें मुख्य हैं।

टेबुल ग्रेप्स

ये अंगूर ताजे ही खाये जाते हैं। दावतों की शोभा इन्हीं से बनती है। इस हेतु इनके लिए कद में बड़ा, आकार में गोल तथा रंग-रूप में चमकदार और आकर्षक होना आवश्यक है। बड़े-बड़े डाइनिंग टेबुलों की सजावट में इनका भी बड़ा हाथ रहता है। दूर-विदेशों में ये अपने आकर्षक रूप में पहुँच सकें इसके लिए इन्हें लकड़ी के बुरादे तथा रुई आदि जैसे नर्म पैकिंग में रखना पड़ता है। इन्हें बेल से तोड़ते समय यह देखना पड़ता

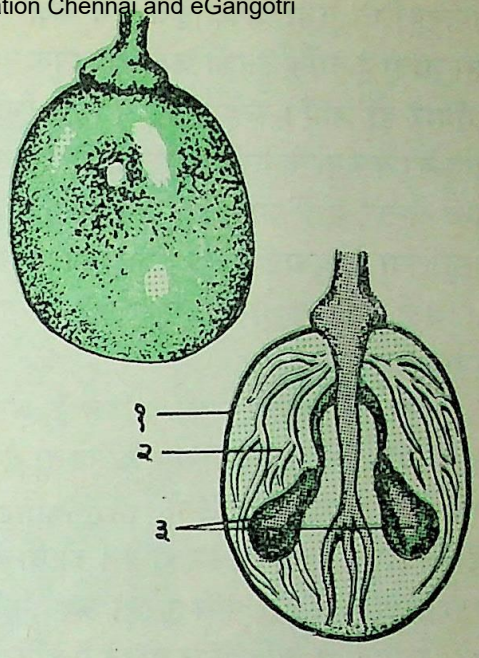

अंगूर के तीन स्पष्ट भाग—१. बाह्यावरण, २. शर्करा और अम्लयुक्त स्वादिष्ट गूदा तथा ३.बीज-युगल

है कि इनका छिलका चमकीले रंग का, दमदार हो और ढीला-ढीला न हो जिससे यातायात में ये खराब न हो जाएँ। केलीफोर्निया के टोके (tokay), एम्परर (emperor), मलागा (malaga) तथा दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया और सुल्तानिया के अंगूर श्रेष्ठता में प्रसिद्ध हैं।

अंगूरों के रस का भी दूध की भाँति पास्च्युरीकरण अर्थात् संरक्षण किया जाता है। फ्रूट-कैनिंग किये हुए अंगूर एक देश से दूसरे देश को भेजने में सुविधाजनक रहते हैं। अंगूर के जम, जेली और सलाद अत्यन्त स्वादिष्ट होते हैं।

अंगूरों की खेती

विटासेई *(vitaceae)* परिवार की इस वनस्पति को उत्तरी गोलार्द्ध के उष्ण प्रदेशों का जलवायु अत्यधिक अनुकूल रहता है। सामान्य जाति के अंगूरों की खेती बीजों की बुवाई द्वारा, टहनियाँ काटकर उनकी गड़ाई द्वारा तथा कलमें रोपकर की जाती है। प्रथम वर्ष तो इन्हें विशेष-निर्मित काँच के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तापानुकूलित तथा अपेक्षाकृत गर्म कक्षों में रखा जाता है ताकि इनकी जड़ें आवश्यक रूप में तैयार हो जाएँ। इन्हें रोपने में भिन्न-भिन्न जाति की कलमों के लिए क्यारियों में भिन्न-भिन्न अन्तर छोड़े जाते हैं। अमरीका तथा आस्ट्रेलिया में बुवाई यन्त्रों द्वारा की जाती है। अतः वहाँ क्यारियों में काफी अन्तर छोड़ना पड़ता है।

अंगूर की खेती काफी जटिल है और कुशल व्यक्ति ही अच्छी फसल दे सकता है। समय-समय पर इसकी छँटनी (prunning) बड़ी आवश्यक रहती है। इसकी बेल को नीचा ही रखा जाता है और पाँच फुट से ऊपर नहीं बढ़ने दिया जाता ताकि अंगूर तोड़ने में सुविधा रहे। लम्बी, फैलती बेलों को छड़ियों-डण्डों के सहारे टिका-टिकाकर फैलाया जाता है। तैयार अंगूर के गुच्छों को लम्बी कैंचियों द्वारा काटा जाता है और पैकिंग करने तक बड़ी कोमलता और सावधानी से धरा-उठाया जाता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, केलीफोर्निया अंगूरोत्पादक देशों में अग्र स्थान पर है और संसार की अंगूर-खपत में टेबुल ग्रेप्स २०% तथा रेजिन ग्रेप्स ४००% उत्पादित करता है।

दक्षिणी अमरीका के अर्जेण्टाइना प्रदेश में अंगूरों से मदिरा का आसवन बड़े पैमाने पर किया जाता है

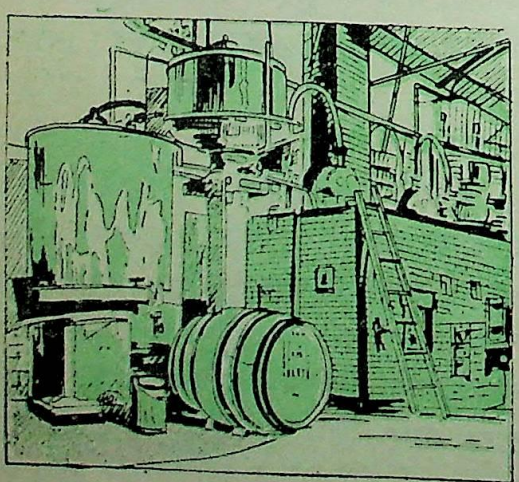

अंगूर की खेती के दुश्मन भी कम नहीं फाइलोजेरा (phylloxera) और निमे (nematode) इसके दो प्रमुख विनाशक जीव हैं। अन्य कीटों में लीफहॉपर (le hopper), रूटवर्म (rootworm), रेड स्पाइडर (redspider) तथा बेरीमॉ (barrymoths) भी सम्मिलित हैं। डी.डी.टी. (D. D. T.), मैलेथियन (ma thion), क्रायोलाइट (cryolite) फास्फेटयुक्त विभिन्न कृमिनाशक दव द्वारा नष्ट किया जा सकता है। फफूंद इसके लिए हानिकारक है।

एक-एक गुच्छे में इतने अधिक ल लटक सकते हैं कि सभी को बढ़ना फलना-फूलना असम्भव हो जाए। अतः आवश्यक हो जाता है कि गुच्छों को सावध से काट-छाँटकर हलके-पतले करते रहें। कार्य के लिए भी अत्यन्त कुशल व्यक्ति आवश्यकता रहती है। इनकी काट-छाँ जिस पर भी जरा खरोंच लगी, वही बेकार हो जाएगा।

लन्दन के हेम्प्टन कोर्ट में १६वीं शता का प्रसिद्ध राजमहल है। उसके लम्बे अहाते में उगायी जाने वाली अंगूर की यूरोप भर में प्रसिद्ध हैं। वहाँ १७६८ में का विशाल हालनुमा कक्ष बनाकर अंगूर का वृक्षारोपण किया गया था। एक फसल में भरे-पूरे गुच्छों से लदी से भी अधिक डालें उस पर से उ जाती हैं।

अंगूर ने सदैव ही मानव आनन्दोत्सवों का नेतृत्व किया है। कवि ने अपनी काव्यकृतियों में, चित्रकारों अपने चित्रों में तथा मूर्तिकारों ने प्रस्तरांकनों में अंगूर की जो भूरि-भू प्रशंसा की है, वह अकारण नहीं, अर्थ ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

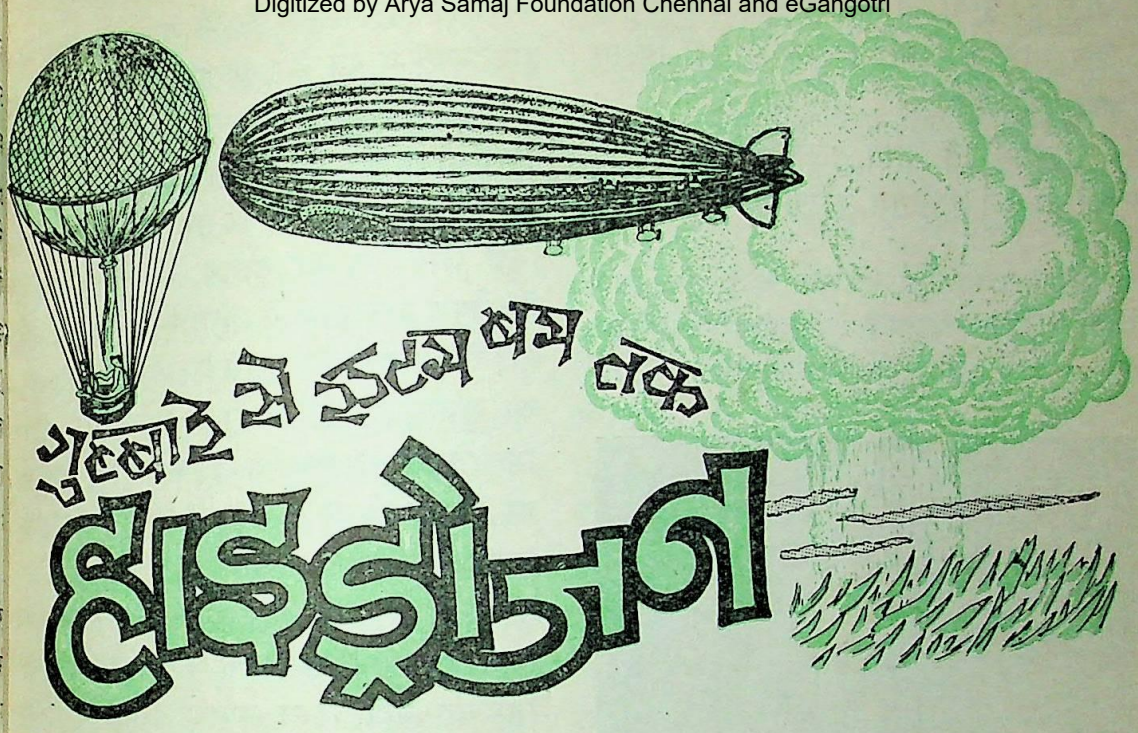

गुब्बारे से एटम बम तक हाइड्रोजन

सत्यकुमार

संसार की सर्वप्रथम उड़ान थी वह ! आयोजक था फ्रान्सनिवासी डा. चार्ल्स और यात्री था साहसी रोजियर। तीन लाख व्यक्ति अचरज से दाँतों तले अँगुली दबाये खड़े थे। एक बड़ा-सा गुब्बारा उठा और उसमें बैठा रोजियर भी करतलध्वनि के बीच पृथ्वी से उठने लगा। उस गुब्बारे में भरा था गैसीय हाइड्रोजन, गैसों और पदार्थों में सबसे हलका—हाइड्रोजन।

यह गैस अति ज्वलनशील है और पीली लौ से जलती है। रोजियर ने इसका एक अन्य प्रयोग भी दिखाया। उसने जादू का तमाशा दिखाने के लिए हाइड्रोजन को जार से खींच कर श्वास में भर लिया और ज्योंही उसे मुँह से बाहर निकाला, वह गैस प्रज्वलित हो उठी। लगता था कि अग्नि उगलता कोई दैत्य खड़ा हो। दूसरी बार जब उसने असावधानतावश हाइड्रोजन और वायु का मिश्रण लेकर वही प्रयोग करना चाहा तो ऐसा धमाका हुआ कि उसे लगा, उसकी बत्तीसी बाहर जा उड़ी हो।

खोज और प्रारम्भिक प्रयोग

वान हेलमोन्ट और रॉबर्ट बॉयल को इस गैस का ज्ञान था। केवेण्डिश ने १७६६ में अनेक धातुओं पर सल्फ्यूरिक तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की क्रिया से हाइड्रोजन बनाया। उसने इसे ज्वलनशील गैस कहा। यद्यपि केवेण्डिश ने हाइड्रोजन सर्वप्रथम नहीं बनाया परन्तु विस्तृत अध्ययन तो प्रथम बार उसी ने किया था। अतः इसके प्रथम अध्ययन का श्रेय केवेण्डिश को ही दिया गया। १७८३ में लेवाशिये ने इसका नाम हाइड्रोजन अर्थात जल निर्मायक गैस रखा क्योंकि उसने ज्ञात किया कि इसके जलने की क्रिया के फलस्वरूप जल प्राप्त होता है।

हाइड्रोजन की प्राप्ति

हाइड्रोजन मुक्त अवस्था में बहुत कम प्राप्य है। सूर्यमण्डल की गैसों, ज्वालामुखी पर्वत से निकलने वाली गैसों तथा तेल के कुओं से निकलने वाली गैसों में यह पाया जाता है। अधिकांश यह संयुक्त अवस्था में ही पाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। पृथ्वी का तीन चौथाई भाग जल है और भार के हिसाब से जल में नवाँ हिस्सा हाइड्रोजन है।

हाइड्रोजन प्राप्त करने का मुख्य स्रोत जल ही है। सोडियम, पोटासियम, कैल्सियम

हाइड्रोजन-परमाणु का इलेक्ट्रान चारों ओर इतनी तेजी से चक्कर काटता है कि परमाण पर एक ठोस खोल-सा प्रतीत होता है

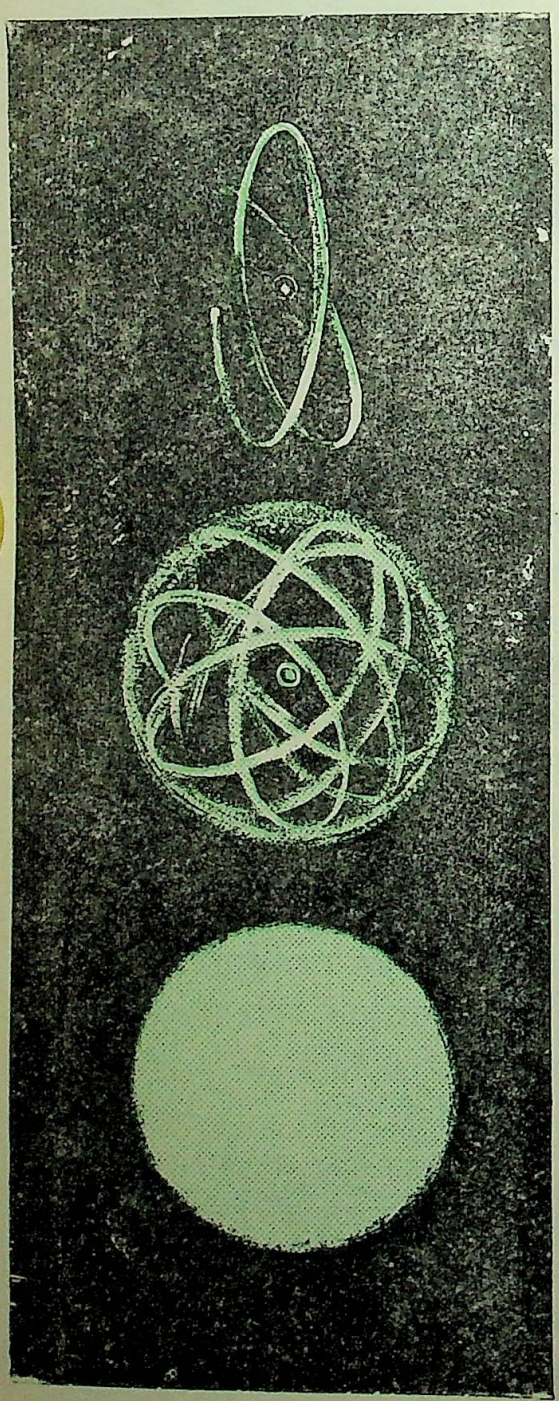

आदि साधारण ताप पर ही जल के संयोग हाइड्रोजन दे देते हैं। एल्यूमिनियम, जस्ता मैगनीशियम उबलते हुए पानी के साथ क्रिया करके हाइड्रोजन देते हैं। लोहा, कोबाल्ट, निकि आदि गरम किये जाने पर तथा वाष्प प्रवाहित किये जाने पर हाइड्रोजन देते हैं। विद्युत विश्लेषण द्वारा जल से औद्योगिक पैमाने पर हाइड्रोजन उत्पादित करते हैं। शुद्ध जल विद्युत का सुचालक नहीं होता। अम्ल या क्षार मिलाने पर वह सुचालक हो जाता है। क्षार पर हाइड्रोजन अन्य धातुओं से पृथक होकर एकत्र हो जाता है। वास्तव में यह धातु गुण है। इसीलिए हाइड्रोजन जैसे सर्वप्रथम तत्त्व का स्थान अभी तक आवर्त-तालिका में निश्चित नहीं किया गया है। वैसे गुणों के अनुसार इसे प्रथम वर्ग में धातुओं के साथ तथा सातवें वर्ग में हैलोजन (halogens) के साथ रखा जा सकता है।

अनेक गुण-सम्पन्न हाइड्रोजन

हाइड्रोजन रंगहीन, गंधहीन व स्वादहीन गैस है। पैलेडियम तथा प्लेटिनम जैसी धातु हाइड्रोजन का शोषण कर लेती हैं। हाइड्रोजन तथा पलोरीन गैस अँधेरे में संयोग कर हाइड्रोफ्लोरिक अम्ल बनाती हैं। यह अम्ल काँच पर क्रिया करता है। अतः गटापार्चा बोतलों में रखा जाता है। काँच पर क्रिया करने के कारण इसका उपयोग काँच की वस्तुओं पर चित्रांकन तथा नक्काशी आदि के लिए किया जाता है।

हाइड्रोजन व क्लोरीन गैसें सूर्य के प्रकाश में संयोग करके हाइड्रोजन क्लोराइड गैस बनाती हैं। यह गैस जल में घुलकर हाइड्रो क्लोरिक अम्ल अर्थात नमक का तेजाब बनाती है। यह अम्ल क्लोरीन व क्लोराइड के उत्पादन में, रंग के उद्योग में, कपड़ा बनाने में, चमड़ा पकाने में तथा अम्लराज बनाकर उसमें सोना प्लेटिनम आदि घुलाने में काम आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रोमीन के साथ हाइड्रोजन उच्च ताप पर संयोग करके हाइड्रो ब्रोमाइड बनाता है जो जल में घुलकर हाइड्रोब्रोमिक अम्ल कहलाता है। वह अम्ल कार्बनिक रसायन में प्रतिकर्मक के रूप में प्रयुक्त होता है। उसके अनेक महत्त्व-पूर्ण लवण भी हैं। सिल्वर ब्रोमाइड फोटोग्राफी में तथा पोटासियम ब्रोमाइड नींद लाने वाली ओषधियों में प्रयुक्त होता है।

आयोडीन के साथ इसका संयोग इतना सरल नहीं है। ताप के अतिरिक्त इसे उत्प्रेरक की भी आवश्यकता पड़ती है। प्राय: प्लेटिनम की उपस्थिति में वह क्रिया सम्पन्न होती है। इसका घोल हाइड्रोआयोडिक अम्ल कहलाता है। अस्थायी होने के कारण यह अम्ल एक प्रबल अवकारक है। सिल्वर आयोडाइड भी फोटोग्राफी में प्रयुक्त होता है। पोटासियम आयोडाइड अनेक ओषधियों (टिंचर आयो-डीन आदि) तथा रंग बनाने में काम आता है।

ऐमोनिया के साथ हाइड्रोजन के लवण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वे लवण नाइट्रिक अम्ल, यूरिया, सोडियम कार्बोनेट, बाइकार्बोनेट, संश्लेषित रेशम, वसा विलयन तथा ऐमोनियम सल्फेट (खादें) आदि बनाने में काम आते हैं। जब प्रथम महायुद्ध में मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को ऐमोनियम लवण भेजना बन्द कर दिया तब वहाँ के वैज्ञानिकों ने दूसरा साधन तैयार कर लिया। १९१७ में वहाँ के हेबर नामक वैज्ञानिक ने नाइट्रोजन व हाइड्रोजन से ऐमो-निया बनाने की विधि आविष्कृत की जो आज भी बहुप्रचलित है। इस विधि में उच्च दाव तथा ताप पर लौह चूर्ण के उत्प्रेरक की उपस्थिति में नाइट्रोजन व हाइड्रोजन का संयोग हो जाता है।

यह गंधक से भी उच्च ताप पर संयोग करके हाइड्रोजन सल्फाइड गैस बनाता है। यह गैस प्रयोगशालाओं के लिए अत्यावश्यक है। इसकी दुर्गंध के बावजूद इसका उपयोग कम नहीं है। इसकी जगह दूसरा कोई गंधहीन या गंधयुक्त इतना ही उपयोगी पदार्थ प्राप्य नहीं है। गुणात्मक विश्लेषण के अन्तर्गत धातुओं को पहचानने के लिए उन्हें विभिन्न वर्गों में विभक्त करने में यह गैस काम आती है।

पैट्रोल का महत्त्व किसे ज्ञात नहीं ? पैट्रो-लियम नामक खनिज पदार्थ से वह प्राप्त किया जाता है। पैट्रोलियम पृथ्वी के गर्भ से प्राप्त किया जाता है। पैट्रोल के अतिरिक्त किरासन, वैसेलीन, मोम, आदि अनेक उपयोगी पदार्थ पैट्रोलियम के आसवन से प्राप्त होते हैं। पैट्रोल स्वयं कई हाइड्रोकार्बनों का मिश्रण होता है। जर्मनी में पैट्रोलियम भी सहज प्राप्य नहीं था; अत: वहाँ के वैज्ञानिकों ने कार्बन व हाइड्रोजन का संश्लेषण करके कृत्रिम पैट्रोल बना लिया।

हाइड्रोजन के अन्य भी अनेक हाइड्रोकार्बन बनते हैं। उनमें कुछ संतृप्त होते हैं और कुछ असंतृप्त। संतृप्त यौगिकों में मैथेन आदि गैसें हैं जो ईंधन के रूप में प्रयुक्त होती हैं। पदार्थों के गलने-सड़ने से मैथेन स्वयं बनती रहती है। पैट्रोलियम से प्राप्त यौगिक संतृप्त हाइड्रो-कार्बन की श्रेणी में आते हैं।

असंतृप्त हाइड्रोकार्बनों में एथिलीन व ऐसीटिलीन गैसें प्रमुख हैं। एथिलीन फलों को सुरक्षित रखने व कृत्रिम रूप से पकाने के काम आती है। एथिलीन की उपस्थिति में आलू की वृद्धि अधिक होती है। अल्कोहल पौलिथीन तथा प्लास्टिक के निर्माण में भी एथिलीन प्रयुक्त होती है।

ऐसीटिलीन गैस वेल्डिंग उद्योग की जान है। यह गैस उच्च ताप व तीव्र प्रकाश, दोनों देती है। आक्सीजन के साथ संयुक्त होकर आक्सीऐसीटिलीन ज्वाला ३२००°C से ५५००°C तक का उच्च ताप देती है। धातुओं को काटने व जोड़ने में इसका उपयोग होता है। ऐसीटिलीन गैसयुक्त कार्बाइड लैम्पों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

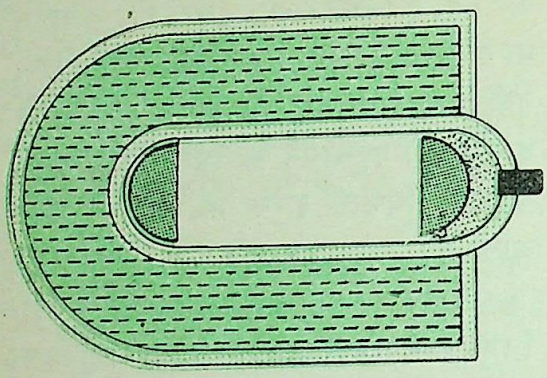

हाइड्रोजन-बम अधिकांश एक एटम बम ही है जो ड्यूटीरियम आक्साइड (हैवी वाटर) की काफी मोटी तहों से आवरित रहता है

उपयोग प्रचलित है ही। ऐसीटिक अम्ल, ऐलकोहल, ऐसीटेल्डीहाइड, संश्लेषित कपूर, रबर तथा प्लास्टिक बनाने में यह काम आती है।

इनके अतिरिक्त ऐरोमैटिक (सुगंधित) हाइड्रोकार्बन भी होते हैं, जैसे—बेन्जीन जो उत्तम विलेयक है। इसमें रबर, चमड़ा आदि अनेक पदार्थ घुल जाते हैं। इससे नाइट्रोबेन्जीन भी बनता है। प्रबल कीटाणुनाशक, नेप्थेलीन इन्हीं हाइड्रोकार्बनों से बनता है। इनसे अनेक रंग, थैलिक अम्ल तथा अन्य यौगिक बनते हैं। ऐंथ्रेसीन कृत्रिम रंग बनाने में काम आता है।

वानस्पतिक तेलों से घी-निर्माण आज का प्रमुख उद्योग है। हाइड्रोजन द्वारा उनको संतृप्त किया जाता है। यह क्रिया निकेल के चूरे (nickel filings) जैसे उत्प्रेरक की उपस्थिति में होती है। तैलीय पदार्थों के गुणों में इतना अन्तर आ जाता है कि ये साधारण ताप पर द्रव की अपेक्षा ठोस हो जाते हैं। कोटोजम, डालडा, आदि नामों से आज वनस्पति घर-घर में प्रचलित है।

उत्प्रेरकों की उपस्थिति में यह कार्बन मोनोक्साइड से संयोग करके फार्मेल्डीहाइड तथा मेथिल ऐलकोहल बनाता है। फार्मेल्डीहाइड का ४० प्रतिशत घोल फार्मेलीन के नाम से मृत जीवों के नमूने सुरक्षित रखने में काम आता है। ऐलकोहल विभिन्न वार्निश, पालिश, ओषधियाँ, सुगंधियाँ व बैकेलाइट जैसे प्लास्टिक बनाने के काम आता है।

आक्सीजन-हाइड्रोजन युक्त आक्सीहाइड्रोजन ज्वाला २८००°C तक का ताप देती है। यदि निम्न दाब पर हाइड्रोजन को विद्युत चाप द्वारा प्रभावित किया जाए तो हाइड्रोजन के अणु अपने परमाणुओं में विखण्डित हो जाते हैं। जब वे परमाणु पुनः संयुक्त होकर हाइड्रोजन अणु बनाते हैं तब ४०००°C तक का उच्च ताप उत्पन्न होता है। उसे 'परमाणु हाइड्रोजन ज्वाला' कहते हैं।

हाइड्रोजन के दो समस्थानिक भी हैं। इन्हें ड्यूटीरियम व ट्रिटियम कहते हैं। परमाणु रिएक्टरों में, परमाणुशक्ति प्राप्त करने में, अनेक ओषधियाँ बनाने में इनका उपयोग होता है। परमाणु बम के बाद हाइड्रोजन बम का नाम अब तो सब को ज्ञात हो चुका है।

परमाणुभार, अणुभार, तुल्यांकभार, वाष्प-घनत्वादि अनेक मापों में हाइड्रोजन मानदण्ड का काम देता है। इसी की इकाई सर्वाधिक मान्य है।

कीट पतंगों की रंग-रुचि

पुष्पों की गन्ध तथा स्वर-संगीत के अतिरिक्त रंग-रूप की चमक-दमक के प्रति भी कीट-पतंगों की रुचि विकसित पायी जाती है। अँधेरे से उजाले की ओर दौड़ते हुए पतंगे तथा रंग-बिरंगे, चटक चमकीले पुष्पों की ओर आकर्षित होने वाले कीटों का अपना निश्चित विधान रहता है। अमुक अमुक ही रंग के पुष्प पर बैठेगा। पुष्प-परागण के लिए प्रकृति का यह विधान कितना अर्थ पूर्ण है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृदाहीन कृषि

सी. एल. संघी

भूमि पर तो खेती आदिकाल से होती आ रही है परन्तु भूमिरहित खेती आज के विज्ञान की ही देन है। इस प्रकार की खेती अमरीका और ब्रिटेन में तो काफी प्रगति कर चुकी है परन्तु भारत में अभी यह प्रयोगावस्था में ही है। जैसा कि नाम से बोध होता है, इस प्रकार की खेती में भूमि का उपयोग नहीं किया जाता और कंकड़, पत्थर, निष्क्रिय बालू तथा पानी में ही पौधे उगाये जाते हैं। इस विधि द्वारा घरों की छतों और बरामदों पर, या किसी भी जगह जहाँ गमले रखे जा सकें, तरकारी तथा फूलों के पौधे उगाये जा सकते हैं। यह विधि ऊसर भूमि, पथरीली भूमि तथा मरुभूमि के लिए वरदान है।

पौधों की जीवन-क्रिया

भूमिरहित खेती की जानकारी करने से पहले पौधों की जीवन-क्रिया समझ लेना उपयुक्त रहेगा।

बीज—पौधे का बीज, प्रकृति का एक अद्भुत चमत्कार है। प्रत्येक सूखे बीज के अन्दर एक समूचा पौधा विद्यमान रहता है। अनुकूल ताप तथा जल के संयोग से वह बीज अंकुरित हो उठता है।

पत्तियाँ—पत्तियों रूपी प्रयोगशाला में ही पौधे के भोज्य पदार्थों का निर्माण होता है। यदि पत्ती का सेक्शन काटकर सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखें तो हमें छोटे-छोटे छिद्र दिखाई देंगे जिन्हें 'स्टोमेटो' (stomato) कहते हैं। उन छिद्रों के मुँह पर जालीदार वाल्व लगे होते हैं जो उनके खुलने-बन्द होने की क्रिया को नियंत्रित करते हैं। उन्हीं छिद्रों द्वारा पौधे साँस लेते हैं तथा जलवाष्पन भी करते हैं। पत्ती के ऊपरी भाग में लम्बे कोष होते हैं जिनमें क्लोरोफिल भरा रहता है। क्लोरोफिल की सहायता से ही पत्तियाँ सूरज के प्रकाश की उपस्थिति में, जल तथा कार्बन डाइआक्साइड को शर्करा और श्वेतसार में बदल देती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तने—पौधे के तने में दो प्रकार के माड़ी-कोष होते हैं। एक प्रकार के कोष विभाजित होते रहते हैं तथा दूसरे प्रकार के कोष बढ़ते रहते हैं। दोनों प्रकार के कोषों में वनस्पति का जीवनरस भरा रहता है। तने की नोक पर विभाजित होने वाले तथा मध्य भाग में बढ़ने वाले कोष पाये जाते हैं।

जड़ें—जड़ों के मुख्य दो कार्य होते हैं—पौधे को स्थिर रखना तथा उसके लिए पानी व पोषक लवण एकत्र करना। जड़ों की नोकें तथा रोयें ही अधिक उपयोगी एवं कार्यशील होते हैं। पानी व लवण एकत्र करने के साथ-साथ ये प्रोटीन भी बनाते रहते हैं। पौधों में मुख्यत: निम्न १४ तत्त्व पाये जाते हैं, जो तीन समूहों में विभाजित हैं—

समूह १ : कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन।

समूह २ : नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटासियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम।

समूह ३ : मैंगनीज, बोरन, जस्ता, गंधक, लोहा, ताँबा।

पहले समूह के तीनों तत्त्वों को पौधे वायु और जल से प्राप्त कर लेते हैं। दूसरे समूह के तत्त्व जड़ों द्वारा शोषित किये जाते हैं। तीसरे समूह के तत्त्वों की पौधों के लिए अल्पमात्रा ही पर्याप्त होती है। अत: उन्हें अल्पमात्री तत्त्व कहते हैं। इनमें से कुछेक की विशिष्ट उपयोगिताएँ निम्न भाँति है।

नाइट्रोजन—इसके द्वारा प्रोटीन बनता है तथा पत्तियाँ अधिक हरी दिखती हैं। यह नाइट्रेट-लवणों के द्वारा ग्रहण किया जाता है। इसकी न्यूनता होने पर पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और फल-फूल भी कम लगते हैं। बाहर से यह तत्त्व पौधों को नाइट्रेट, यूरिया तथा अमोनियमसल्फेट के घोलों के रूप में दिया जा सकता है।

फास्फोरस—इसके द्वारा जड़ें स्वस्थ बनती हैं और फल शीघ्र पकते हैं। यह पौधों के अन्दर अम्ल तथा क्षार के सं को बनाए रखता है। इसकी कमी पर पौधों के कोषों का विभाजन उनकी वृद्धि रुक जाती है। यह फ के घोल के रूप में दिया जा सकता है।

पोटासियम—इसकी उपस्थिति पत्तियाँ श्वेतसार तथा जड़ें अमीनो एसिड पाती हैं। इसकी कमी के कारण पौधे रोगावरोधक शक्ति भी कम पड़ जाती यह तत्त्व पोटासियम के नाइट्रेट, क्लोर तथा फास्फेट के रूप में दिया जा सकता

कैल्सियम—इससे जड़ें अधिक बढ़ और कोषों की झिल्ली मजबूत होती है।

मैग्नीशियम—यह तत्त्व क्लोरोफि निर्माण में सहायता करता है।

अल्पमात्री तत्त्व—इनकी सूक्ष्म म ही कभी-कभी पौधों की दुगुनी वृद्धि कर सहायक होती है। साथ ही इनकी अ मात्रा पौधों के लिए घातक भी सिद्ध हो है। इनकी कमी के कारण फल-फूल कम हैं तथा पौधे रोग-ग्रस्त हो जाते हैं।

भूमिरहित खेती

इस विधि में तीन प्रकार से पौधे ल जाते हैं—पानी में, रेत में, तथा क पत्थरों में।

संक्षेप में ये विधियाँ निम्न भाँति

पानी में पौधे लगाना—इस विधि पौधों को लवणों के घोल में इस प्र लटकाया जाता है कि उनकी जड़ें घो डूबी रहें। सहारे के लिए तारों की जाल पात्र के मुँह पर बिठा दिया जाता है। के नीचे के पात्र में भूसे की ४-५ इंच मोट बिछा दी जाती है। भूसा न हो तो एक को चीरकर बीच में रुई भर दी जाती है पौधे अपनी स्थिति में खड़े रहने के साथ बढ़ भी सकें। फिर उस पात्र में आवश्यक भर दिया जाता है। पात्र को प्रकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी में पौधा लगाना

रखना चाहिए अन्यथा उसमें हानिकारक काई आदि उग आएगी। जड़ों को वायु देने के लिए या तो घोल में एक नली द्वारा समय-समय पर हवा बुदबुदाई जाए या पौधे को थोड़े समय के लिए घोल से ऊपर उठा लिया जाए। इस विधि में जड़ों को पोषक तत्त्व ग्रहण करने के लिए अधिक शक्ति व्यय नहीं करनी पड़ती।

रेत में पौधे लगाना—इस विधि में मोटी बालू को गमलों में भरने से पहले अच्छी तरह धोने के बाद सुखाकर २००°F तक गर्म कर लिया जाता है। गमले से सटाकर पोषक तत्त्वों के घोल का एक पात्र रखा जाता है जिसमें से घोल एक नली द्वारा बालू पर बूंद-बूंद गिरता रहता है। वे बूंदें रिसती-रिसती नीचे रखे एक अन्य पात्र में गमले के छिद्र से गिरती रहती हैं। तह पात्र भर जाने पर पुनः गमले में उलट दिया जाता है। इस घोल को कम से कम प्रति सप्ताह बदल दिया जाता है। बीज की अंकुरणावस्था में घोल को पानी से १:३ के अनुपात में मन्द करके प्रयुक्त करना चाहिए। घोल को उड़ने से बचाने के लिए गमले पर सेलोफेन का पारदर्शी कागज लगाया जा सकता है।

कंकड़ पत्थरों में पौधे लगाना—इस विधि में रेती के स्थान पर कंकड़, बजरी आदि का प्रयोग किया जाता है। ६ इंच की तह में सबसे नीचे कंकड़ फिर बजरी तथा सबसे ऊपर थोड़ी रेती डाली जाती है। पात्र में भरने से पहले इन सभी वस्तुओं को पानी से अच्छी तरह धो लिया जाता है। पात्रों को पोषक घोल से भर दिया जाता है, जो धीरे-धीरे नीचे रखे पात्र में एकत्रित होता रहता है। इस प्रकार जड़ें नमी व वायु के सम्पर्क में रहती हैं। इस विधि द्वारा जड़ों को वायु अधिक सरलता से मिलती है।

भूमिरहित खेती के लाभ

उपरोक्त विधियों के मुख्य लाभ निम्नांकित हैं—१. जहाँ खेती के योग्य भूमि नहीं होती वहाँ भी पौधे उगाये जा सकते हैं। २. स्थान के अभाव का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ३. भूमि के सम्पर्क से होने वाले रोग नहीं होते। ४. इनके इर्द-गिर्द व्यर्थ की खर-पतवार नहीं उगती। ५. कीटाणुओं के आक्रमण से अधिकांश रक्षा हो जाती है। ६. पौधों की वृद्धि पर नियंत्रण रखा जा सकता है। ७. अनेक बिना ऋतुओं की तरकारियाँ भी उपजाकर अर्थ-लाभ किया जा सकता है।

पौधों की देखभाल

बीच-बीच में पौधों की जाँच करते रहने पर निम्न लक्षणों से यह ज्ञात किया जा सकता है कि उनमें किन पोषण तत्त्वों की कमी है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

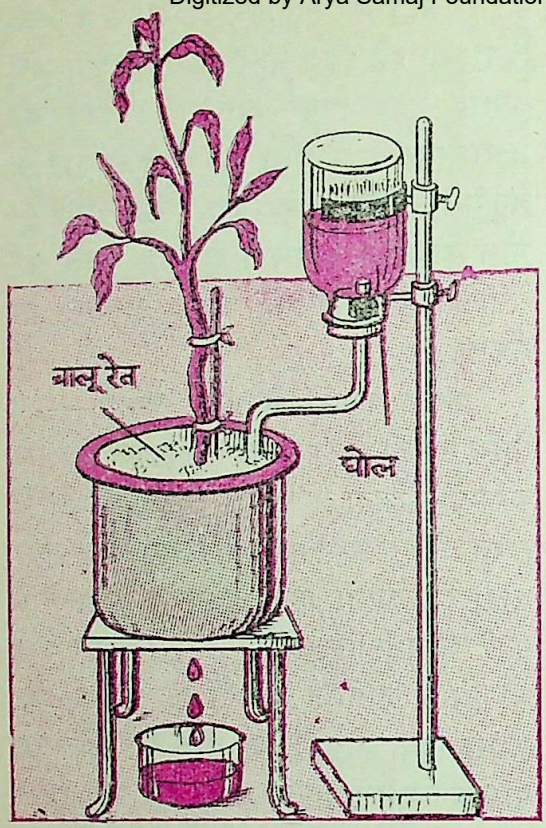

रेत में पौधा लगाना

(१) यदि पौधा बौना हो, डालियाँ दुर्बल हों, नयी कोपलें कम हों, पत्तियाँ हलके हरे रंग की तथा आकार में कुछ छोटी हों, नीचे की पत्तियाँ ऊपर की पत्तियों की अपेक्षा पीली हों तथा पीली पत्तियाँ सूखने पर हलके भूरे रंग की हो जाती हों, तो नाइट्रोजन की कमी होगी। (२) यदि पत्तियाँ तो गहरे हरे रंग की हों किन्तु उनकी वृद्धि कम हो, निचली पत्तियाँ नसों के बीच पीली या बैंगनी रंग की हों तथा पत्तियाँ शीघ्र झड़ने लगें तो फास्फोरस की कमी प्रदर्शित होगी। (३) निचली पुरानी पत्तियाँ धब्बेदार हो जाएँ तथा किनारों पर निर्जीव पड़ जाएँ, उनका पीलापन किनारों से आरम्भ होकर मध्य की ओर बढ़ने लगे, किनारे भूरे पड़कर नीचे मुड़ने लगें तथा पुरानी पत्तियाँ झड़ने लगें तो ये लक्षण पोटासियम की कमी दर्शाएँगे। (४) यदि अचानक २४ घण्टे पहले ही निचली पुरानी पत्तियों में नसों के बीच के भाग पीले पड़कर धीरे-धीरे निर्जीव होने तो मैग्नीशियम की कमी समझनी चाहि (५) यदि नयी पत्तियों की नसों के बीच पन हो और कोपलें ठीक हों तो यह लोह कमी का लक्षण कहा जाएगा। (६) यदि पत्तियों में नसों के बीच पीलेपन के साथ कुछ निर्जीव भाग जाली के रूप में दिखाई तथा फूल कम और हलके रंग के लगें तो मैंग की कमी समझें। (७) यदि नयी पत्तियाँ ह हरे रंग की तथा नसें और भी हलके रंग की और पुरानी पत्तियाँ शीघ्र न सूखें, तो गन्धक की कमी के कारण होगा। (८) चू कमी से कोंपलों का मुरझाना तथा नयी प का नोक व किनारों पर से फटना, मृ प्रदर्शित होगा। (९) बोरन की कमी से मुरझाएँगी, नयी पत्तियाँ अपने आधा फटने लगेंगी तथा तना व छोटी प कुरकुरी पड़ जाएँगी।

इन लक्षणों का भली प्रकार अध्य करके पोषक घोल में आवश्यक तत्त्वों की मा बढ़ा सकते हैं। ग्रीष्मकाल में नाइट्रोजन तथा शरद ऋतु में पोटासियम का अ उपयोग करें। यदि पौधों की वृद्धि कम मा दे तो अल्पमात्री तत्त्वों को छोड़कर सभी त की मात्रा बढ़ा सकते हैं। पौधों को अत्यधि धूप, कोयले और स्टोव की गैसों से बच चाहिए। कभी-कभी पौधों के ऊपर जल छि कर नमी का उचित प्रबन्ध रखना चाहि इसके द्वारा पत्तियों की सतह के छिद्रों पर धूल धुल जाएगी और तने के निचले भा जमे हुए पोषक लवण घोल में प्रवाहित रहेंगे।

इन विधियों से आप अपने घर में टमा मटर, बैंगन, गोभी, आलू, मूली, गाजर, पा तोरई, करेला आदि सब्जियाँ और गुल चमेली, मोगरा, गेंदा, सूरजमुखी आदि आसानी से लगा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्चर्यजनक किरणें

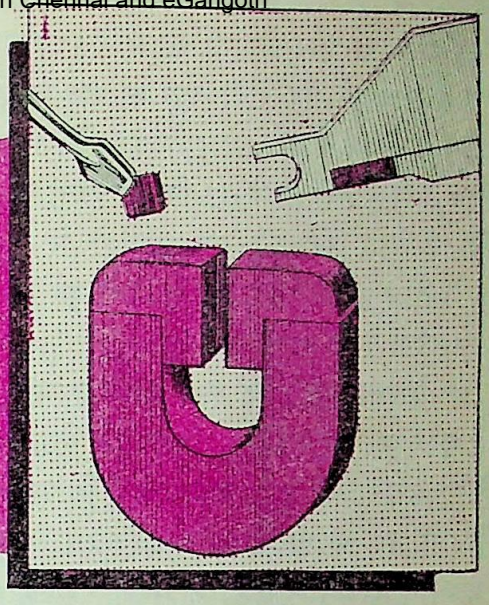

अशोककुमार चौबे

वैज्ञानिक ऐसे-ऐसे नवीन कार्य कर रहे हैं, जिनमें से अनेक तो हमारी कल्पना-शक्ति से भी परे हैं। प्रकाश-विज्ञान में उन्होंने जो नवीन खोज की है वह 'लेसर' के नाम से प्रसिद्ध है और उसका प्रथम प्रयोग तीन वर्ष पूर्व किया गया था।

लेसर-यन्त्र साधारण प्रकाश को अत्यन्त तीव्र कर देता है और उसकी फैली किरणों को घनी कर देता है। साधारणत: प्रकाश के अणु विभिन्न लम्बाइयों की किरणें उत्पन्न करते हैं। वे किरणें एक दूसरे के रास्ते में आती हैं जिसके फलस्वरूप प्रकाश घटता है और इधर-उधर फैल जाने से उसकी तीव्रता कम हो जाती है। लेसर-यन्त्र प्रकाश के अणुओं से समान ही लम्बाई की किरणें उत्पन्न करता है और वे एक ही केन्द्र पर केन्द्रित होती हैं। ये किरणें इतनी सघन फिर भी इतनी सूक्ष्म होती हैं कि एक इंच के १० लाखवें भाग तक भी ये प्राप्त की जा सकती हैं। इनकी प्राप्ति से रेडार जैसे शक्ति-शाली संचार-साधनों के मार्ग प्रशस्त हो गये हैं।

इन लेसर-किरणों ने संसार को चकित कर दिया है। वैज्ञानिकों को आशा है कि केवल एक लेसर-किरण द्वारा टेलीफोन पर १० करोड़ वार्तालाप या एक हजार टेलीविजन कार्यक्रम एक साथ भेजे जा सकेंगे। संसारभर के रेडियो, टेलीविजन, टेलीटाइपराइटरों तथा टेलीफोनों द्वारा एक ही समय भेजे गये समस्त संवाद एक ही लेसर-यंत्र द्वारा उत्पन्न किरणों से भेजे जा सकेंगे। इस प्रयोग से पूर्व यह कल्पना भी नहीं थी कि ऐसी कोई प्रकाश-किरण संभव हो सकेगी जो रश्मियों से भी कई गुना तीव्रतर हो और जो एक ही सेकण्ड में एक मोटी छड़ में छिद्र कर दे और हीरे जैसे कठोरतम पदार्थ को भी सरलता से छेद दे।

लेसर की खोज सर्वप्रथम कोलम्बिया विश्वविद्यालय के डा. सी.एच. टाउन्स (C.H. Townes) तथा टेलीफोन लेबोरेटरीज के डा. ए. एल. शैलो (A. L. Shalow) द्वारा १९५८ में की गयी। तत्पश्चात् इसका प्रयोग १९६० में डा. टी. एच. मेमैन (T. H. Maiman) तथा अन्य लोगों ने प्रारम्भ किया।

लेसर-यन्त्र का आवश्यक भाग रूबी लेसर (Ruby Laser) है जिसमें १० से.मी. लम्बी तथा १ से.मी. से कम व्यास की रूबी छड़ होती है। यह एक नली जैसे लैम्प से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवृत रहती है। वह लैम्प कुण्डलाकार में छड़ के चारों ओर लिपटा रहता है। लैम्प के प्रकाशित होने पर रूबी छड़ के एक सिरे से अत्यन्त चमकीली लाल रंग की किरणें निकलती हैं। वे ही लेसर किरणें होती हैं। वे किरणें लाल रंग की सूर्य-रश्मियों से अनेक गुना तीव्र होती हैं। ३०-३५ मील दूर से भी वे किरणें देखी जा सकती हैं।

देखना यह है कि रूबी छड़ के परमाणुओं में क्या होता है जो लेसर किरणों के निर्माण के लिए उत्तरदायी है! हम जानते हैं कि परमाणु में नाभिक के चारों ओर इलेक्ट्रान अपनी-अपनी कक्षाओं में तेजी से घूमते रहते हैं। वे इलेक्ट्रान बाहर से आने वाले प्रकाश को ग्रहण करने के बाद केन्द्र से दूर उच्च शक्ति वाली कक्षाओं में चले जाते हैं। इस क्रिया में वे प्रकाश किरणों को विकीरित करते हैं। वे प्रकाश किरणें विशेष रंग की होती हैं।

रूबी में कुछ भाग एल्यूमिनियम आक्साइड के तथा कुछ भाग क्रोमियम के परमाणुओं का होता है। क्रिया में भाग लेने वाले इलेक्ट्रान क्रोमियम परमाणु के ही होते हैं। उस मिश्रित प्रकाश से हरे रंग की किरणें ले लेने के बाद इलेक्ट्रान उच्च शक्ति वाली कक्षा में चले जाते हैं तथा शीघ्र ही लौट भी आते हैं। इस क्रिया में लाल प्रकाश निकलता है। प्रकाश के इस प्रकार आवेशित अवस्था में निकलने पर ही किरणों का नाम Light Amplification by Stimulated Emission of Radiation के प्रथमाक्षरों LASER से (लेसर) दिया गया है।

इस प्रकाश की मुख्य विशेषता प्रकाश धाराओं का संघनन है। दूसरे शब्दों में धाराएँ सागर-तरंगों की भाँति एक निश्चित क्रमपूर्वक एक ही दिशा में अग्रसर होती प्रकाश की ये नियमित धाराएँ अद्भुत क्षमता पूर्वक सम्वाद-वहन का कार्य करती सम्वाद-वहन करने वाली इन किरणों सम्पूर्ण नियमितताओं को प्रेषक पर कि शक्ति द्वारा परिवर्तित तथा नियंत्रित कि जा सकता है और तभी ये टेलीविजन के तथा संवादों का वहन कर सकती हैं।

इन लेसर-किरणों में संवाद वहन की इतनी अधिक शक्ति है कि उसके

इसी बिगुल की पुकार चन्द्रमा तक पहुँची थी। इसी लेसर-लैम्प में कुण्डलाकार लैम्प (अ) रूबी छड़ के परमाणुओं को आवेशित करके दौड़ाता है। रूबी छड़ के दोनों सिरों पर फिट किये हुए दर्पणों के द्वारा परावर्तित हुए वे परमाणु परस्पर टकराते हैं। परिणामतः अति तीव्र आवेगयुक्त प्रकाश की अत्यन्त पतली रेखा (स) एक ओर के दर्पण के सूची छिद्र से प्रक्षेपित होती है

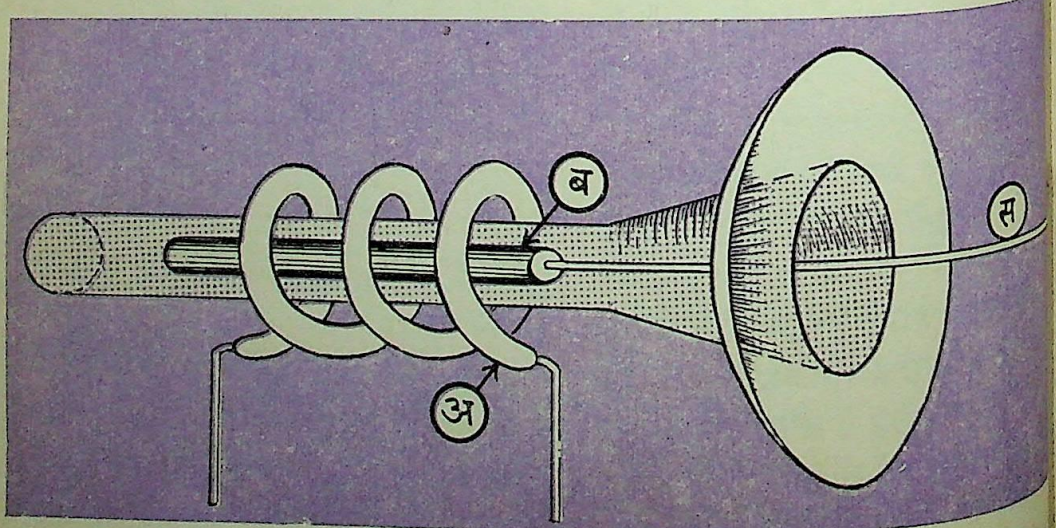

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेलीविजन या टेलीफोन पर लाखों संदेश एक साथ ही भेजा किया जा सकता है।

साथ वहन किये जा सकते हैं। इनकी शक्ति किरणों की आवृत्ति से लाखों गुना अधिक होती है। अतः संवाद वहन करने की इनकी सामर्थ्य भी रेडियो तरंगों की अपेक्षा कहीं अधिक होती है।

ये किरणें स्वतः तो अत्यन्त सघन होती ही हैं, वीक्षों तथा लेंसों द्वारा और भी घनी की जा सकती है। मैसेशुसेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलाजी द्वारा ये किरणें सर्वप्रथम १९६२ में चन्द्रमा पर भेजी गयी थीं। वे किरणें चन्द्रमा के लगभग दो मील व्यास के क्षेत्र को प्रकाशित करके लौट आयी थीं। इनका उपयोग युद्धकाल में भी किया जा सकता है। इनके द्वारा शत्रुओं के उपग्रहों, विध्वंसक यानों और प्रक्षेप्यास्त्रों

इन किरणों के लिए बादल, धुआँ, कुहरा आदि बाधक हो सकते हैं। उस दशा में अवरक्त किरणों (infra red rays) की सहायता ली जा सकती है। अवरक्त किरणें बादल, धुआँ तथा कुहरे को सरलता से भेद सकती हैं।

आने वाले युगों में यदि आज के स्वप्न साकार हुए और ग्रहों पर मानव पहुँच सका तो पृथ्वी से वार्तालाप करने के लिए लेसर किरणों का ही एक-मात्र सहारा रहेगा। इनकी सहायता से अन्तरिक्ष यात्रा के दौरान में भी बातचीत की जा सकेगी। साथ ही, दो विभिन्न यानों में जाने वाले अन्तरिक्ष यात्री भी परस्पर बातचीत कर सकेंगे।

समझिये

कि समस्या क्या है ?
विकास और सुरक्षा का बहुत निकट का सम्बन्ध है।
खेतों और कारखानों में आप जितना उत्पादन
बढ़ाएंगे देश को उससे उतनी ही अधिक ताकत मिलेगी।

सुदृढ़ रक्षा के लिए जी तोड़ मेहनत करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

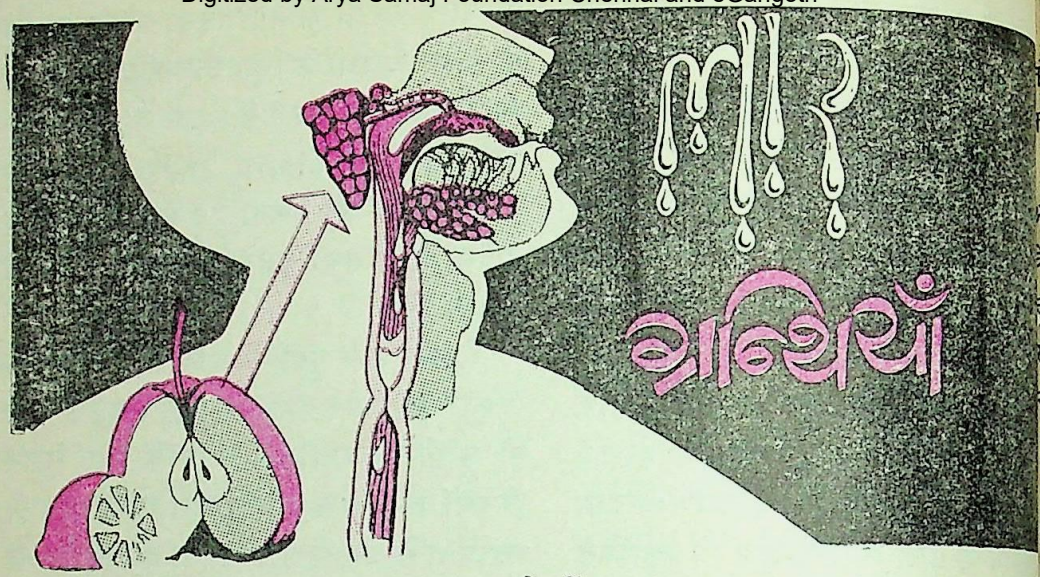

लार-ग्रन्थियाँ

महेशसिंह

हमारा शरीर-यंत्र अधिकतम जटिल और सर्वांग-सम्पूर्ण है। सृष्टि के रचना-कौशल का यह सर्वोत्कृष्ट नमूना है। इसमें लार-ग्रन्थियों का वही महत्त्व है जो किसी मशीन में स्नेहक (lubricant) का होता है। जिस प्रकार स्नेहक के अभाव में यंत्र के पुर्जे घर्षण तथा ताप से शीघ्र घिस या टूट जाते हैं, उसी प्रकार लार के अभाव में हमारा प्रत्येक ग्रास प्रथम तो कण्ठनाल में उतरेगा ही कठिनता से और यदि बलपूर्वक उतारें भी तो नाल को छीलता हुआ उतरेगा। फलतः कण्ठनाल तथा आहारनाल जैसे हमारे उपयोगी तंत्र चुटीले हो जाएँगे और जीवन भी संकट में पड़ जाएगा। अतः हमारी सुरक्षा के लिए प्रकृति ने स्वचालित स्नेहक तंत्र हमें लार-ग्रन्थियों के रूप में दिया है।

जब कण्ठ सूखता है

व्यायाम, दौड़, परिश्रम तथा गर्मी की दशा में हमारे तीव्रगामी श्वास-प्रश्वासों के कारण मुँह के अन्दर की आर्द्रता तेजी से उड़ती जाती है। तब इन लार ग्रन्थियों के लिए कसौटी-काल उपस्थित हो जाता है। उस अवस्था में आर्द्रता पुनः स्थापित करने में ये ग्रन्थियाँ अपना बहुमूल्य योग देती हैं। खेलकूद के अन्तर्गत बाधा-दौड़ में भाग लेने वाले खिलाड़ी जानते हैं कि दौड़ के बीच, बिस्कुट चबाकर गले के नीचे उतारने की कैसी विकट होती है! कारण स्पष्ट है कि कण्ठ सूखा होता है और बिस्कुट स्वयं भी सही आर्द्रता सोख लेते हैं। अतः उस ग्रास निगलना दुष्कर ही होता है। उस अवस्था लार का व्यय उसके उत्पादन की अपेक्षा बढ़ जाता है और मुँह के अन्दर की कण्ठनाल की दीवारें सूख जाती हैं। इन दीवारों का सूखना प्यास लगने के पर्याप्त नहीं; शरीर का जलभाग भी आवश्यकता से अधिक शोषित हो जाता है वास्तविक प्यास लगती है।

जब मुँह में पानी आता है

लार-स्रवन शरीर की अन्य अनेक क्रियाओं की भाँति स्वप्रेरित क्रिया है। इसके लिए पृथक् प्रयत्न नहीं करना पड़ता। प्रायः ही क्रिया आनन्दानुभूति से युक्त रहती है। किसी स्वादिष्ट खाद्य या पेय के याद आने देर है, ग्रन्थियाँ द्रवित हो उठती हैं और स्रवित लार दोनों ओर की लारवाहिनि द्वारा मुँह में उतर आती है। तभी कहा जाता है कि मुँह में पानी भर आया। लार-ग्रन्थि के इस स्वचालन में मुख्य हाथ तंत्रि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्र का है जो मस्तिष्क के अधीन काम करता है।

किसी स्वादिष्ट वस्तु की गंध, स्पर्श, दर्शन अथवा स्मरण मात्र से लार-ग्रन्थियों से संयुक्त वे तंत्रिकाएँ सक्रिय हो उठती हैं जो मस्तिष्क तक संदेश पहुँचाती हैं। प्रत्युत्तर में वापसी संदेश लाने वाली तंत्रिकाएँ लार-ग्रन्थियों को सक्रिय होने का आदेश देती हैं।

पानी, पानी में अन्तर है

मुँह में पानी भर आता है, यह तो ठीक, किन्तु पानी, पानी में अन्तर तो अवश्य ही रहता है। उदाहरणार्थ, यदि मुँह में असावधानतावश तेजाब प्रवेश कर जाए तो लार की असाधारणतया अधिक मात्रा मुँह को भर देगी। उस समय स्रवित होने वाली लार अलग ही रासायनिक गुणोंयुक्त होगी और उसका एकमात्र कार्य यह होगा कि वह तेजाब की तीव्रता को घटा दे और इस प्रकार भीतर के कोमल अंगों को हानि से बचाये। इसके विपरीत, ग्रास चबाने की क्रिया में लार की केवल संतुलित मात्रा स्रवित होती है और वह भी ऐसी भिन्न रासायनिक गुणों की; जो पाचन-क्रिया में सहायक हो तथा ग्रास के परिवहन में स्नेहक का काम दे। इन दो स्पष्ट प्रकारों के लार-द्रव दो विभिन्न लार-कोशिकाओं द्वारा स्रवित होते हैं। प्रथम प्रकार का स्राव जल-प्रधान होता है और द्वितीय प्रकार का स्राव टायलीन (ptyalin) नामक रसयुक्त पाचक तथा स्नेहक होता है।

पाचन-क्रिया की मान्यता बदली

१८वीं शताब्दी से पूर्व समझा जाता था कि भोजन के ग्रास पर आहारनाल तथा आमाशय में पेशियों के संकोचन के फलस्वरूप यांत्रिक दबाव पड़ता है जो उस ग्रास से रासायनिक रस निचोड़ लेता है। वे ही रस भोजन को पचाते हैं। अनेक प्रयोगों के पश्चात् यह सिद्ध किया जा सका कि यांत्रिक दबाव के बगैर भी भोजन उन रसों द्वारा पचाया जाता है। उदाहरणस्वरूप एक प्रयोग किया गया जिसमें चारों ओर सूराखदार एक पीतल की गोली में कबाब भरकर उसे एक व्यक्ति के पेट में उतारा गया। ४८ घण्टे पश्चात् उस गोली को एनीमा द्वारा निकालकर देखा गया तो वह खाली हो चुकी थी। स्पष्ट था कि शरीर के पाचक रसों ने उसे पचा लिया था और पेशियों के संकोचन का यांत्रिक बल उस पीतल के खोल द्वारा रोके रखा गया था। उन सूराखों के मार्ग से ही पाचक रसों के आवागमन ने अपना कार्य पूरा कर लिया था।

संरचना तथा अवस्थिति

लार-स्रावक ये ग्रन्थियाँ मुँह के अन्दर चारों ओर छायी हुई हैं। होंठ, गाल, मसूड़े, जीभ और तालु की सतहों के अन्दर इन ग्रन्थियों के जूथ के जूथ छाये हुए हैं। ये होंठों, गालों में अधिक और जीभ के दोनों ओर तथा ऊपर-नीचे भी असंख्य हैं। इन छोटे-छोटे समूहों के अतिरिक्त इनके ये तीन बड़े समूह भी उल्लेखनीय हैं—१. कानों के निकट (parotid), २. जीभ के नीचे (sublingual), ३. निचले जबड़े के नीचे (submandibular)। ठोस गुच्छाकार के ये ग्रन्थि-समूह असंख्य कोशाओं के बने होते हैं। कोशाओं के बीच-

कानों के निकटस्थ लार-ग्रन्थियों का वृहत समूह

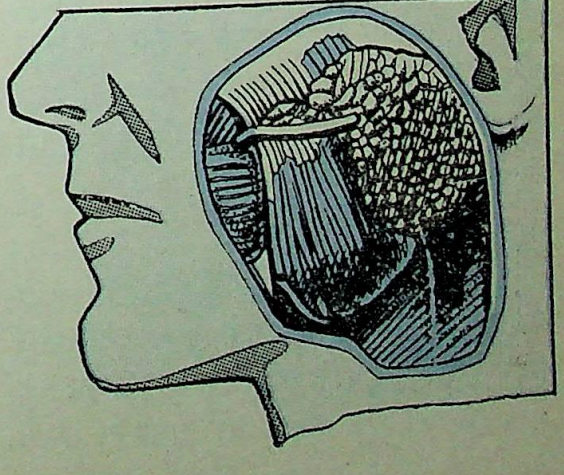

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

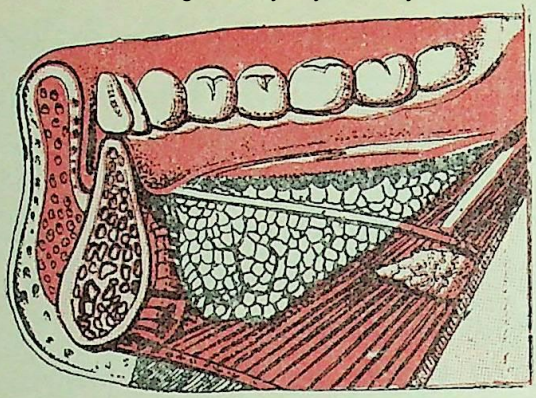

जीभ के नीचे लार-ग्रन्थियाँ

बीच में नलिकाएँ रहती हैं जो स्राव को वहन करती हुई मुख्य नलिकाओं तक पहुँचती हैं। वे मुख्य नलिकाएँ एकत्रित स्राव को मुखगुहा तक लाती हैं।

कानों के निकट

यह सबसे बड़ा ग्रन्थि-समूह है। जैसा कि चित्र (पृष्ठ १९) में दिखाया गया है, ये ग्रन्थियाँ त्वचा के नीचे, दोनों ओर कानों से सटकर एक छत्ते के रूप में अवस्थित हैं। इनकी मुख्य लारवाहिनी को स्टेन्सन (stensen) कहते हैं। यदि आप मुँह खोलकर शीशे में देखें तो पीछे की ओर, ऊपर के जबड़े के द्वितीय दाँत के निकट ही इस मुख्य वाहिनी का मुख द्वार दिखाई देगा।

जीभ के नीचे

यह सबसे छोटा ग्रन्थि-समूह है। जीभ के नीचे मुख-धरातल पर ये ग्रन्थियाँ फैली हुई हैं। इस समूह की भिन्नता यही है कि इसमें छोटी-छोटी नलिकाएँ किसी मुख्य वाहिनी में नहीं जुड़तीं बल्कि उन नलिकाओं का ही जाल बिछा रहता है। वे नलिकाएँ सीधे ही मुँह के धरातल में खुलती हैं।

निचले जबड़े के नीचे

ऊपरी तौर पर दिया हुआ यह नाम भ्रामक है क्योंकि वास्तव में ये लार-ग्रन्थियाँ निचले जबड़े के नीचे नहीं, किन्तु उस जबड़े के मध्य में जो एक गड्ढा सा होता है, उसमें रहती हैं। प्रत्येक ग्रन्थि की अपनी नलिका होती है जो जिह्वामूल (frenul में खुलती है।

जब ये रोगाक्रान्त होती हैं

कण्ठशोष—विशेष अवस्था में उत्प रोग को जेरोस्टोमिया (xerostomia) हैं। यह संकुचित अथवा अल्प स्राव के स्वरूप होता है। अधिकतर तो यह मान व्यग्रता के कारण होता है। भय, आतंक जैसी त्रस्तावस्था में प्रायः ही कण्ठ सूख है। न्यायालयों में इस स्थिति का दृश्य देखने को मिल जाता है जबकि न्याय घोषणा से पूर्व ही आतंकित होकर अप तीव्र कण्ठशोष का अनुभव करता है। आदि के कारण उत्पन्न होने वाली क की ऐसी स्थिति इस परिभाषा के अ नहीं आती।

अतिस्राव—यह दशा कण्ठशोष के विपरीत है। पारा तथा पोटासियम आयोड आदि विषैले पदार्थों के खान-पान से अत्यधिक मात्रा में निकलने लगती जीभ, मुखतल तथा गाल का कैंसर की दशा में तो लार का अतिस्राव दुखदायी हो जाता है।

हमारे शरीर में प्रकृति द्वारा स्थापि स्नेहक तंत्र को सदैव स्वस्थ रखना हम हित में है।

निचले जबड़े के नीचे लार-ग्रन्थियां

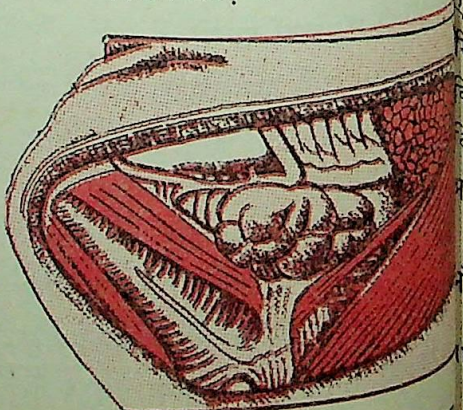

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिसने संख्या को सृष्टि और सृष्टि को संख्यामय देखा

पाइथागोरस

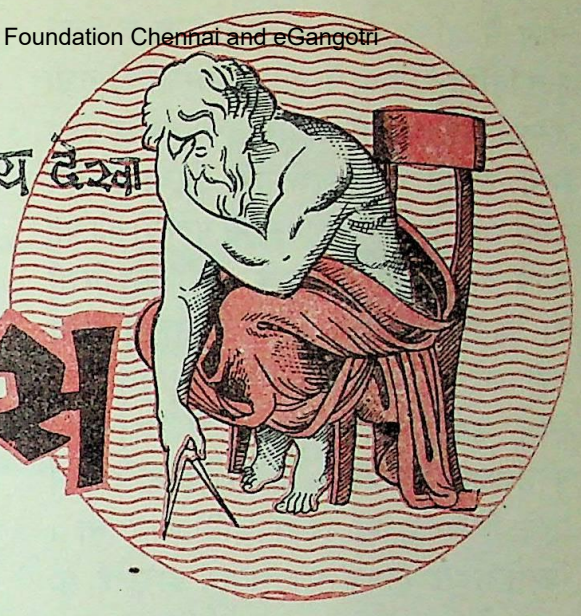

गुणाकर मुले

पाइथागोरस के नाम से स्कूल-कालेज का हर विद्यार्थी परिचित है, क्योंकि उसने ज्यामिति का वह प्रमेय पढ़ा है जो पाइथागोरस-प्रमेय नाम से प्रसिद्ध है। यह बात बहुत कम लोग जानते होंगे कि पाइथागोरस ने गणित में अन्य कौन से आविष्कार किये, उसने भारत की यात्रा करके यहाँ के गणित से क्या नया सीखा तथा उसके स्थापित स्कूल के सैद्धान्तिक आधार क्या थे।

जीवनारम्भ

ग्रीस के निकट, एजियन समुद्र के मध्य, सामोस (Samos) द्वीप में ईसा से लगभग ५८० वर्ष पूर्व पाइथागोरस का जन्म हुआ। इनके गुरु, मिलेटस निवासी थेलस (Thales) इतिहास-प्रसिद्ध ग्रीस के सात सयानों (Seven Wise Men of Greece) में से एक थे। उनके आदेश पर पाइथागोरस ने मिस्र देश में जीवन का आरम्भकाल व्यतीत किया। वहाँ लगभग २२ वर्ष रहकर उन्होंने विभिन्न विज्ञान, विशेषत: गणित का गहन अध्ययन किया।

तत्पश्चात् लगभग १२ वर्ष इराक, ईरान और भारत की यात्रा में व्यतीत करके पाइथागोरस स्वदेश लौट आये। तब तक उनकी आयु ५० वर्ष के लगभग हो चुकी थी। वे सामोस में रह नहीं पाये। सामोस छोड़कर दक्षिण इटली के क्रोटोना (Crotona) नगर में जा बसे। वहाँ मिलो नामक एक व्यक्ति के अतिथि बने रहे। वहीं लगभग ६० वर्ष की आयु में मिलो की तरुण एवं सुन्दर कन्या थिओना से विवाह किया। कहा जाता है कि थिओना ने अपने पति की एक जीवनी भी लिखी थी। आज वह अप्राप्य है।

क्रोटोना में बस जाने के बाद पाइथागोरस ने गणित और दर्शनशास्त्र पर व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। सभी वर्गों के लोग इनके विद्वत्तापूर्ण भाषण सुनने आते थे। वहाँ वैधानिक रूप से सार्वजनिक भाषणों में स्त्रियों का आना निषिद्ध था फिर भी बड़ी संख्या में स्त्रियाँ आ ही जाती थीं। नियमित रूप से भाषण सुनने वालों में इनकी पत्नी थिओना भी थी।

इनके भाषण इतने प्रभावशाली होते थे कि नियमित रूप से भाषण सुनने वालों ने क्रमश: अपना एक स्वतन्त्र संगठन तैयार कर लिया। वही संगठन पाइथागोरस-स्कूल के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस संगठन के अपने कुछ विशिष्ट नियम थे, यथा—संस्था की सभी वस्तुओं पर सदस्यों का समान अधिकार तथा सभी सदस्यों के दार्शनिक विचारों एवं मान्यताओं में समानता। सभी सदस्यों को यह शपथ लेनी पड़ती थी कि वे अपनी गुप्त विद्या को किसी भी बाहरी व्यक्ति के सामने प्रकट नहीं करेंगे। सदस्यगण पाँच कलायुक्त गण-चिह्न लगाते थे। आरम्भ में तो उस संस्था की शिक्षाएँ मौखिक रहती थीं, किन्तु बाद में उन्हें लिपिबद्ध भी किया जाने लगा था। फिलोलाड्स नामक एक सदस्य द्वारा ई. पू. ३७० में लिखा गया एक ग्रन्थ किसी प्रकार प्रसिद्ध ग्रीक दार्शनिक प्लेटो के हाथ लगा था। उस पाइथागोरस-स्कूल ने गणित के क्षेत्र में, विशेषतः अंकशास्त्र और ज्यामिति में ऐतिहासिक उन्नति की थी। उस संगठन का यह नियम था कि प्रत्येक खोज तथा आविष्कार को पाइथागोरस के नाम से जोड़ा जाए। अतः आज यह ज्ञात करना सम्भव नहीं कि कौनसी खोज स्वयं पाइथागोरस ने की और कौनसी उसके शिष्यों ने।

पाइथागोरस का प्रसिद्ध प्रमेय

आजकल पढ़ाई जाने वाली ज्यामिति प्रसिद्ध ग्रीक गणितज्ञ यूक्लिड (लगभग ३३०-२७५ ई. पू.) के ग्रन्थ 'एलिमेंट्स' (Elements) पर आधारित है। उसी ग्र
४७वाँ प्रमेय 'पाइथागोरस-प्रमेय' के न
प्रसिद्ध है जिसमें प्रदर्शित है कि स
त्रिभुज के कर्ण पर आधारित चौरस
त्रिभुज के लम्ब और पाये पर आध
चौरसों के योग के तुल्य है। इस प्रमे
ज्यामिति में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

यहाँ पर प्राचीन भारत के रेखा
का भी किंचित उल्लेख उचित रहेगा।
कालीन भारत में यज्ञ आदि के लिए जो
बनायी जाती थी उसके निर्माणार्थ ज्यामि
आकारों का निश्चित विधान था। वह वि
हमें शुल्वसूत्र ग्रन्थों में मिलता है। ये
ज्यामिति के ग्रन्थ हैं। उन ग्रन्थों में भी पा
गोरस के प्रमेय का उल्लेख मिलता है। सा
$३^२ + ४^२ = ५^२$ का सम्बन्ध भी अन्य
सम्बन्धों सहित मिलता है। इससे यह
उठता है कि क्या पाइथागोरस सचमु
भारत आया था, और उसने भारत
प्राचीन ज्यामिति को सीखा था? पाइथो
के अन्य आविष्कारों से इस बात की
अवश्य होती है।

पाइथागोरस का संख्याशास्त्र

पाइथागोरस के उस स्कूल ने एक वि
संख्याशास्त्र को जन्म दिया। सम
लौकिक और विषम अर्थात् दैनिक,

त्रिभुज संख्याओं में प्रदर्शित ३, ६ और १०

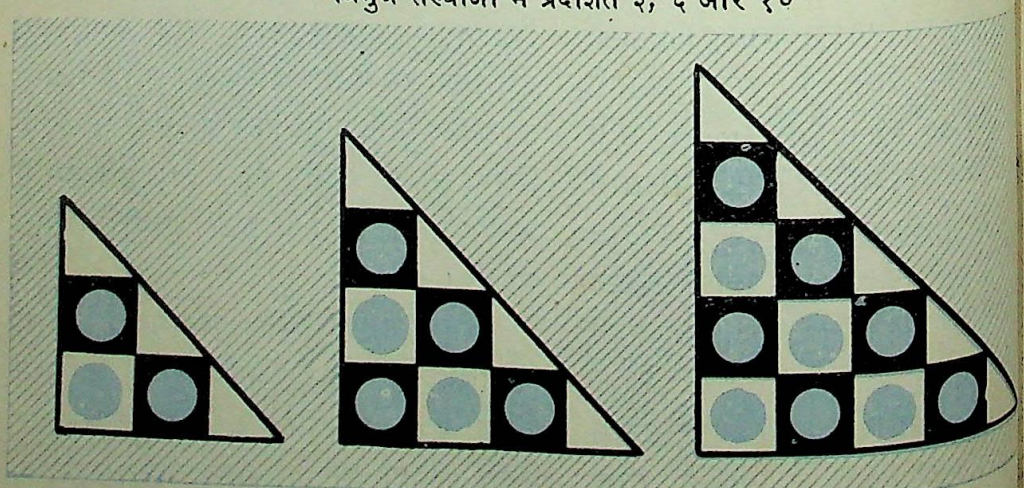

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

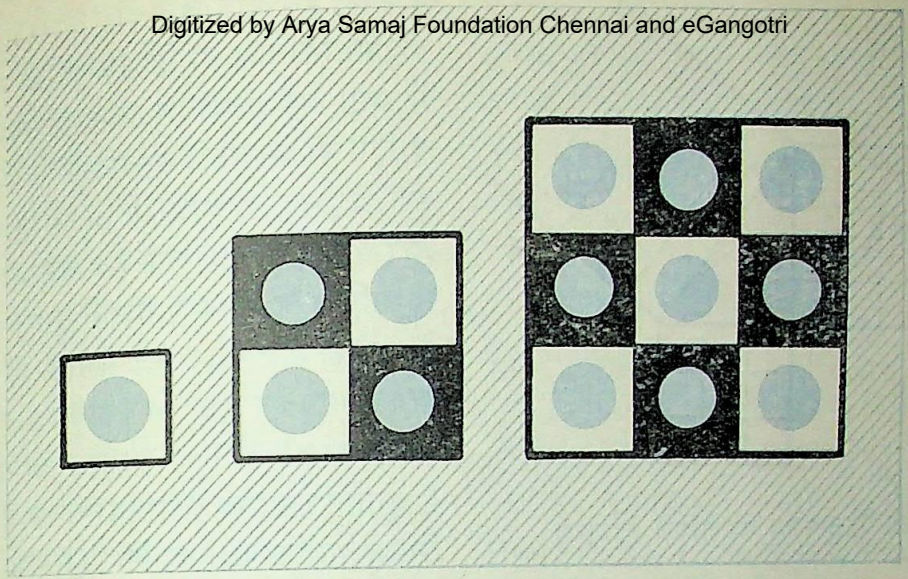

वर्ग-संख्याओं में प्रदर्शित १, ४ और ९

स्पष्ट भागों में समस्त संख्याओं को विभाजित किया गया। उसी से विषम संख्याओं को शुभ और सम-संख्याओं को अशुभ मानने की एक प्रथा चल पड़ी। संख्याओं के सम्बन्ध में कुछ और भी विचित्र मान्यताएँ थीं, जैसे—एक का अंक विचार का; दो तर्क का; चार न्याय का; पाँच विवाह का द्योतक है, आदि। इसी प्रकार ज्यामिति में एक का अंक बिन्दु का; दो रेखा का; तीन समतल का और चार ठोस का प्रतीक माना जाता था। ४, ९, १६ आदि वर्ग संख्याएँ कहलाती थीं। चित्र में प्रदर्शित रेखाचित्र को देखिए तो पता चलेगा कि पहली वर्ग-संख्या ४, पहली दो विषम-संख्याओं के योग के तुल्य है ($१ + ३ = ४$)। यह उस वर्ग-संख्या को दर्शाता है जिसकी एक भुजा २ है।

दूसरी वर्ग-संख्या ९, प्रथम तीन विषम संस्थाओं का योग है ($१ + ३ + ५ = ९$) इसकी एक भुजा ३ है।

तीसरी वर्ग-संख्या १६ है। यह प्रथम चार विषम संख्यायों का योग ($१ + ३ + ५ + ७ = १६$) है। इसकी एक भुजा ४ है। यही दूसरे शब्दों में :

$$२ \times २ = ४$$
$$३ \times ३ = ९$$
$$४ \times ४ = १६$$

इसी प्रकार उदाहरणार्थ प्रथम न विषम संख्याओं का योग $न \times न = न^२$ अर्थात् बीज-गणित का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र हाथ लग गया।

वर्ग-संख्याओं की तरह, पाइथागोरस ने कुछ संख्याओं को त्रिभुज-संख्या नाम दिया। नीचे की आकृति से ज्ञात होगा कि ३, ६ और १० त्रिभुज-संख्याएँ हैं।

इन तीनों त्रिभुजों में हम यह विचित्र बात देखते हैं कि :

प्रथम दो संख्याओं का योग, $१ + २ = ३$, प्रथम त्रिभुज-संख्या; प्रथम तीन संख्याओं का योग, $१ + २ + ३ = ६$ दूसरी त्रिभुज-संख्या; प्रथम चार संख्याओं का योग, $१ + २ + ३ + ४ = १०$ तीसरी त्रिभुज-संख्या; $१ + २$ या $१ + २ + ३ + ४$ को यदि हम श्रेणी का नाम दें और इसकी प्रत्येक संख्या को पद कहें तो इस क्रम की किसी भी श्रेणी के पहले और अंतिम पद के योग को श्रेणी के सम्पूर्ण पदों की संख्या से गुणा करने पर और २ से भाग देने पर श्रेणी का योग एक त्रिभुज संख्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

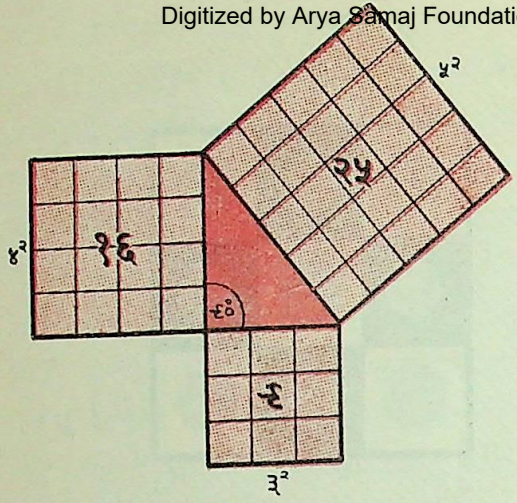

पाइथागोरस-प्रमेय का सचित्र उदाहरण

के रूप में प्राप्त होता है। गणित में ऐसी श्रेणी को हम अंकगणितीय-श्रेणी कहते हैं।

पाइथागोरस १० को परिपूर्ण संख्या मानते थे। १, २, ३ और ४ का योग १० है। इन संख्याओं के अनुपात, $\frac{३}{१}$, $\frac{३}{२}$, $\frac{४}{३}$ (हरात्मक श्रेणी Harmonic Progression) में तंतु की लम्बाई और उसके कंपायमान-स्वर का तारत्व (pitch) प्रदर्शित होता है। अतः हम देखते हैं कि पाइथागोरस ने वस्तु-जगत को संख्या-जगत के रूप में देखा। उनके लिए संख्या का अर्थ वस्तुओं के केवल गुणों से ही नहीं था (२ बिल्लियाँ, ३ पुस्तकें आदि) बल्कि उनका मत था कि संख्याएँ ही संसार की मौलिक सत्ताएँ हैं और इन्हीं सत्ताओं से संसार की सभी वस्तुओं को जाना जा सकता है। इसीलिए तो पाइथागोरस कहते थे—'देवताओं और मानवों को जन्म देने वाले, हे अंको! हमें आशीर्वाद दो।' आरम्भ में उन यह भी विश्वास था कि किन्हीं दो लम्बा में ऐसी एक निश्चित लम्बाई अवश्य हो चाहिए जो उन दोनों लम्बाइयों में समान जैसे, ३$\frac{१}{२}$ इंच लम्बाई को ७ समान भागों और ५ इंच लम्बाई को १० समान भागों विभाजित किया जाए तो ७ समान भागों से प्रत्येक भाग और १० समान भागों में प्रत्येक भाग एक दूसरे के बराबर होगा। दू शब्दों में, ३$\frac{१}{२}$ और ५ का एक सामान्य म $\frac{१}{२}$ होगा। इस प्रकार, पाइथागोरस और उ शिष्यों का विश्वास था कि किसी भी लम्ब (या उसको दर्शाने वाली संख्या) को छो इकाई से ठीक-ठीक मापा जा सकता है।

अपरिमेय संख्या

ऊपर कहा जा चुका है कि पाइथागो इस तथ्य से परिचित थे कि समकोण त्रिभुज दो छोटी समान भुजाओं पर आधारित चौर का योग उसके कर्ण पर आधारित चौरस बराबर होगा, अब, मान लीजिए कि चि 'अ ब क ड' चौरस की प्रत्येक भुजा १ इ लम्बी है, तो क्या 'अ क' लम्बाई को हम ठी ठीक माप सकेंगे? पाइथागोरस के सिद्धान्त अनुसार अ ब क ड चौरस का क्षेत्रफल हो $१^२ + १^२ = २$, इसलिए 'अ क' भुजा लम्बाई एक ऐसी संख्या होगी जिसका वर्ग है। गणित के चिह्न में इस लम्बाई को $\sqrt{२}$ लिखेंगे। यह एक ऐसी संख्या है जिस कोई सुस्थिर मान नहीं है। सन्निकट मान

कर्ण की लम्बाई का अनिश्चित मान, पाइथागोरस के लिए विषम चिन्ता का विषय बन गया

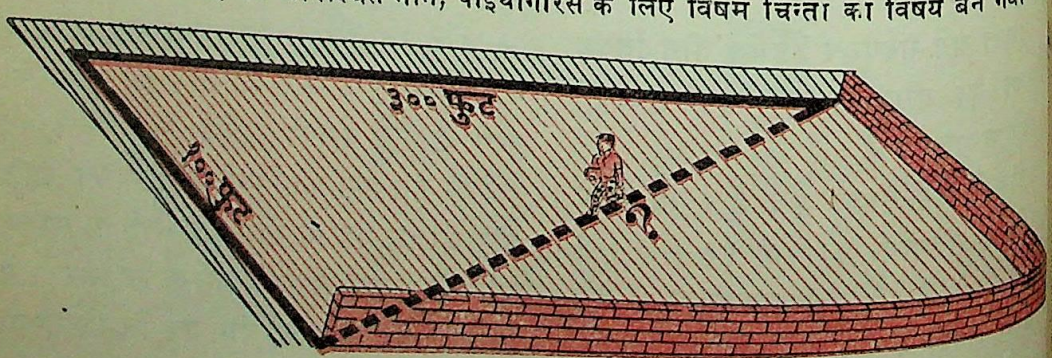

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि $\sqrt{2}$ का मान १·४१ और १·४२ के बीच या पाँच दशमलव स्थानों तक कहें तो १·४१४२ और १·४१४३ के बीच है। यह आश्चर्य की बात है कि हमारे देश के शुल्वसूत्र ग्रन्थों में भी $\sqrt{2}$ की विचित्रता का उल्लेख है और ५ दशमलव स्थानों तक $\sqrt{2}$ का मान सही रूप में प्रदर्शित है!

इस प्रकार यहाँ पाइथागोरस के सामने एक ऐसी संख्या या लम्बाई का प्रश्न उपस्थित हुआ जिसे दूसरी किसी भी संख्या या लम्बाई से मापा नहीं जा सकता था। गणितशास्त्र में ऐसी संख्याओं को अपरिमेय संख्याएँ (irrationals) कहते हैं। इस असमंजस से पाइथागोरस को गहरा धक्का पहुँचा। संख्याओं के सम्बन्ध में उनकी जो मान्यताएँ थीं, वे ढह गयीं। इससे पाइथागोरस-स्कूल के सदस्य इतने विचलित हुए कि उन्होंने अपरिमेय संख्या के आविष्कार को दबाए रखना ही उचित समझा। इतना ही नहीं, उन्होंने यह नियम भी बना दिया कि स्कूल का जो भी सदस्य इस रहस्य को कहीं बाहर प्रकट करेगा, उसे प्राणदण्ड दिया जाएगा। पाइथागोरस की मृत्यु के पश्चात् लगभग १५० वर्ष तक यह रहस्य गुप्त ही रहा। तत्पश्चात् एक ग्रीक गणितज्ञ इउडोक्सस ने इस प्रकार की अपरिमेय संख्याओं का ज्यामिति में प्रयोग किया। अब तो आधुनिक गणित में इन अपरिमेय-संख्याओं का बहुत ही व्यापक महत्त्व हो गया है।

अन्य आविष्कार

पाइथागोरस-स्कूल ने गणित के अनेक नवीन शब्दों को जन्म दिया—उदाहरणार्थ गणित के लिए अंग्रेजी शब्द 'मैथेमैटिक्स' (mathematics), पैराबोला (parabola) इलिप्स (ellipse) और हाइपरबोला (hyperbola)। इसी स्कूल ने सर्वप्रथम यह प्रतिपादित किया कि पृथ्वी अपनी धुरी पर परिक्रमा करती है। मिस्रवासियों को केवल तीन ही समठोस (regular solids) ज्ञात थे, यथा—घन (cube), समचतुष्फलक (tetrahedron) और सम-अष्टफलक (octahedron)। पाइथागोरस ने शेष दो समठोसों—समद्वादशफलक (dedecahedron) और समविंशतिफलक (icosahedron) की खोज की।

वास्तव में पाइथागोरस और उसके द्वारा संस्थापित स्कूल की गणितशास्त्र को जो देन है, उसका ग्रीक गणित में सर्वोच्च स्थान है। पाइथागोरस की कई धारणाएँ आधुनिक काल के गणित में पूर्ण रूप से विकसित हैं। ●

पानी पर चलता है, धरती पर तैरता है

केलीफोर्निया के प्रसिद्ध मोटर-निर्मायक संस्थान एफ. एम. सी. कारपोरेशन ने एक ऐसा सुदृढ़ जल एवं भूमिचारी हाइड्रोफाइल यान बनाया है जो पहिये ऊँचे कर लेने पर तूफानी लहरों में भी ३५ नाट्स की गति से बढ़ा चला जाता है और पहिये टिका देने पर ४० मी. प्र. घ. की गति से सड़कें इस तरह नापता जाता है मानो फिसला जा रहा हो।

गर्भस्थ शिशु को हवा खींच लाएगी

प्रायः ही जब हठीले शिशु गर्भ से बाहर आने में बखेड़ा खड़ा करते हैं तब चिकित्सक द्वारा औजार आदि की सहायता लेना जच्चा और बच्चा दोनों के लिए हानिकारक हो जाता है। अब स्वीडन में आविष्कृत नवीन पद्धति द्वारा वैकुअम अर्थात् हवा के जोर से ऐसे संकटपूर्ण प्रसव अत्यन्त सरलता तथा सुरक्षापूर्वक सम्पन्न कराये जा सकेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

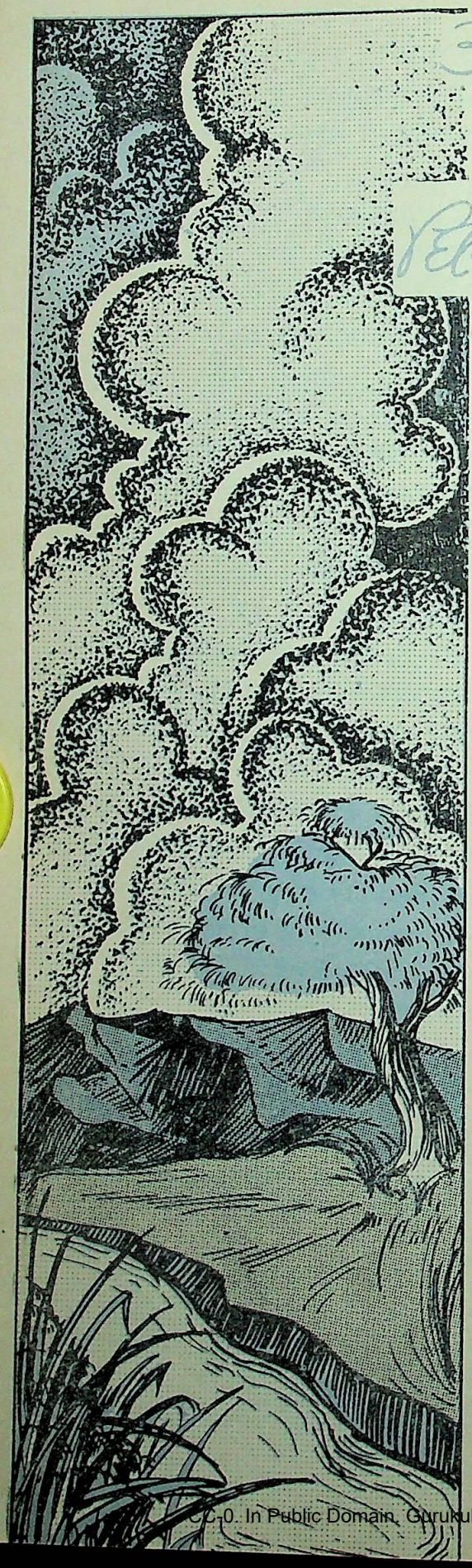

जब बादल घिर-घिर आते हैं

ओमशंकर बाजपेयी

झुलसाती गर्मियों के पश्चात् जब आकाश में तैरते हुए बादल दिखाई पड़ते हैं तब प्रत्येक व्यक्ति आशाभरी दृष्टि से उन्हें देखता निहारता और सोचता है कि अब वर्षा होगी और महीनों की प्यासी धरती अपनी प्यास बुझाएगी, वातावरण शीतल होगा। यदि सौभाग्य हुआ तो बादल वृक्षों तथा खेतों पर जीवनदायिनी वर्षा करते हुए निकल जाते हैं। ये वर्षा के बादल किधर से आते और कहाँ चले जाते हैं, किस प्रकार पैदा होते, बढ़ते तथा मिट जाते हैं, क्या प्रत्येक बादल वर्षा करता ही है, क्या ये बादल सिर्फ पानी ही बरसाते हैं, गहरे काले बादलों के बीच लपकती हुई बिजली क्या है, आदि प्रश्न सहज स्वाभाविक हैं। लोग विस्मय से बादलों को देखते और प्रकृति की शक्तियों को सराहते हुए संतोष कर लेते हैं।

बादलों के बीच

बादलों की ओर मनुष्य का ध्यान उस समय आकृष्ट हुआ जबकि वह उनके समीप पहुँच सका। वायुयानों के बन जाने से नये-नये वायुमार्ग खुल गये। वर्ष के प्रायः सभी दिन विमान आकाश मार्ग पर बादलों को चुनौती देते हुए तैरते हैं। कई बार तो विमान बादलों को नीचे छोड़कर और भी ऊँचे आकाश में निकल जाते हैं। वहाँ उन्हें बादलों की कई जातियाँ मिलती हैं, जिनके व्यवहार भिन्न भिन्न होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बादल उठता है

ग्रीष्मकाल में सूर्य का ताप वायुमण्डल को भेदता हुआ पृथ्वी तक आता है। फलतः पृथ्वी गरम हो जाती है और इसके सम्पर्क में आने वाली वायु भी गरम हो जाती है। वह गरम वायु हलकी होकर ऊपर उठने लगती है और उसमें अनेक संवाहनधाराएँ उत्पन्न हो जाती हैं। जिस स्थल की वायु ऊपर उठती है, वहाँ की समीपवर्ती ठण्डी वायु उसका स्थान लेने आ दौड़ती है। उठती वायु हलकी होने के कारण फैलती जाती है और धीरे-धीरे ठण्डी भी होती जाती है। एक ऐसी स्थिति आ जाती है जब उसकी आर्द्रता बादल से बदलकर सूक्ष्म जलबिन्दुओं में परिणत हो जाती है। तब वह बादल चमकदार रुई के ढेर जैसा दिखाई देने लगता है।

यदि ध्यान से देखा जाए तो ज्ञात होगा कि ये बादल अपने आधार पर समतल और शिखर पर अनियमित आकार के होते हैं। सच बात तो यह है कि प्रत्येक बादल पृथ्वी से उठती हुई संवाहनधारा पर बैठा रहता है और जैसे-जैसे वह धारा ऊँची होती जाती है, बादल भी ऊँचाई प्राप्त करता जाता है।

बादल झुकता है

जब उस उठते हुए बादल का ताप चारों तरफ की वायु के ताप के बराबर हो जाता है तब वह ठहर जाता है। तत्पश्चात् ज्योंही उस बादल का ताप चारों ओर के ताप से भी कम हो जाता है, वह नीचे जाने लगता है और पुनः अपने समान ताप के वायु-तल पर आकर रुक जाता है।

ये बादल सदैव ही वर्षा नहीं करते। वर्षा के लिए पर्याप्त आर्द्रता की आवश्यकता होती है तथा वायु का ताप भी इतना कम होना चाहिए कि वह आर्द्रता जल की बूँदों में परिणत हो जाए। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि ऊपर से बरसता हुआ वर्षा का जल तप्त वायु के सम्पर्क से पुनः वाष्पित होकर ऊपर उठते हुए बादलों के साथ लौट जाता है। छोटे-छोटे बादलों के टुकड़े वर्षा नहीं कर पाते और यदि करते भी हैं तो उनके पानी की बूँदें इतनी छोटी और हलकी होती हैं कि वे हवा में ही लटकी, तैरती रह जाती हैं। वर्षा की सघनता में बादल पृथ्वी के काफी निकट आ जाते हैं। २००० फुट से ३०-३५ हजार फुट तक की ऊँचाई तक बादलों में क्रियाशीलता पायी जाती है।

बादलों की संरचना वायु तथा पानी पर ताप के प्रभाव के कारण होती है। वायु सदैव उच्च दाब वाले स्थानों से चलकर कम

कीटों और पक्षियों का भी अपना विशिष्ट ही ऋतु-ज्ञान होता है। जाला बुनती हुई मकड़ी तथा असामान्य रूप से उड़ती एक चिड़िया निश्चय ही ऋतु-परिवर्तन की सूचना देती है

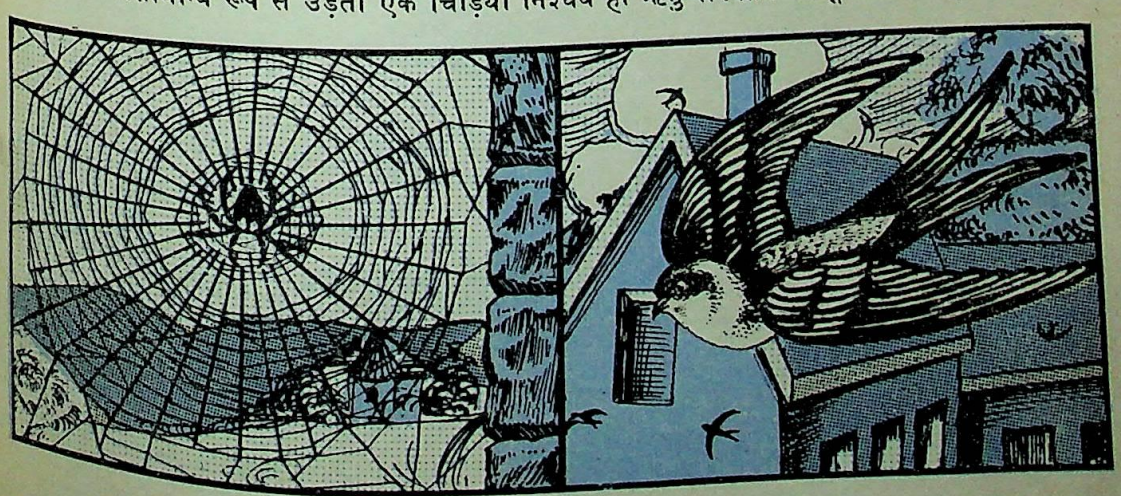

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश रक्षा में इससे क्या मदद मिलेगी ?

काम का तुरत निपटान—योजनाओं के कार्यों पर शीघ्रता से अमल—विकास के अधिक साधन, देश रक्षा के लिए अधिक रसद और साज-सामान

देश रक्षा में आपका काम बहुत महत्व का है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाब वाले स्थानों की ओर अग्रसर होती है और उसी के साथ बादल भी चलते हैं। यही कारण है कि जुलाई मास में उमस या घुटन बढ़ते ही वर्षा हो जाती है। यह हुई साधारण बादलों की बात। इनमें क्युमुलोनिम्बस (Cumulonimbus) जैसे असाधारण बादल भी विचरते हैं जिनके चंगुल में फँसे बाद निकलना कठिन हो जाता है। इन्हें संक्षेप में Cb बादल कहेंगे।

बादलों से बचते हैं

वायुयान को उठाने से पूर्व यानचालक ऋतुविशेषज्ञ से यह ज्ञात कर लेता है कि रास्ते में कैसा मौसम मिलेगा, कहीं Cb बादल तो नहीं मिलेंगे, आदि आदि। यह सब ज्ञात करके ही वह अपनी उड़ान का मार्ग निर्धारित करता है। इसके अतिरिक्त रेडार की निरन्तर सहायता से उसे आगामी वायु-परिवर्तनों को लक्ष्य में रखना पड़ता है। बादलों के साथ तूफानी हवाएँ भी शामिल रहती हैं जो यान को खतरे में डाल सकती हैं।

बादलों की रचना अनेक प्रकार की होती है। १५००० फुट तक की ऊँचाई वाले Cb बादल ऐसे पाये जाते हैं जिनमें नीचे से उठती हुई वायु का वेग ६००० फुट प्रति मिनट तक का होता है। इसी प्रकार तीव्र तूफान वाले भाग में नीचे उतरती हुई वायु का वेग २००० फुट प्रति मिनट तक पाया जाता है। इनकी चपेट में फँसने वाला यान किस दुर्गति को प्राप्त होगा, यह अनुमान लगाया जा सकता है। पानी में उठती हुई विनाशकारी भँवर में घिर जाने पर जैसे नाविक असहाय हो जाता है, उससे कहीं बुरी हालत में यानचालक पड़ जाता है।

इन बादलों में न केवल यह उछाल-पटक की प्रवृत्ति होती है बल्कि इनका जल भी विभिन्न स्थितियों में पाया जाता है। इनके निचले भाग में पानी की बड़ी-बड़ी बूँदें होती हैं जो नीचे की ओर बरसती हैं, मध्य भाग में हिम जैसा शीतल जल तथा ऊपर के भाग में स्वयं हिम रहता है। विद्युत की लपक इस बात का संकेत करती है कि कितनी विपुल विद्युतशक्ति इन बादलों में रहती है। इसी विद्युतशक्ति के धन तथा ऋण आवेश जब एक-दूसरे से पृथक होते हैं तब दामिनि दमकती है और साथ ही मेघ गर्जना भी सुनाई पड़ती है। यानचालक उस तड़ित प्रकाश के कारण कुछ क्षण के लिए चकाचौंध में आ जाता है। विद्युत के प्रभाव से यान की संचार-व्यवस्था भी कुछ समय के लिए अस्त-व्यस्त हो जाती है तथा उसका दिक्सूचक ठीक से दिशा ज्ञान नहीं कराता। ऐसी स्थिति में मार्ग से भटक जाने

'दामिनि दमक रही घन माहीं....' इस आकाश-विद्युत को यदि बाँधा जा सकता तो इसकी एक-एक कड़क, एक भरी हुई ट्रेन को ५०० मील दौड़ा ले जाने योग्य शक्ति प्रदान करती

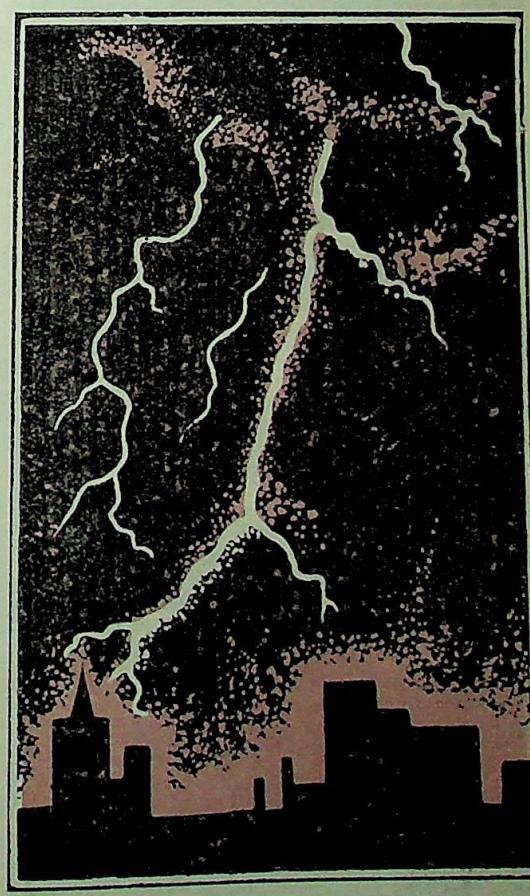

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की पूरी सम्भावना रहती है और या
शीघ्र ही किसी स्थान पर उतारने के
बाध्य होना पड़ता है।

कभी-कभी तो इन बादलों से बड़े-बड़े
यान पर इतने जोर से टकराते हैं कि वह
ग्रस्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त यान
बादलों के हिम जैसे शीतल जल से
गुजरता है तो उसके ऊपर हिम जमने
है। वह हिम न केवल काफी भार बढ़ा
बल्कि ऐसी स्थिति भी उत्पन्न कर देता
उसके अचानक नीचे गिर आने तक का
उत्पन्न हो जाता है। सोचिये, यदि आप
में बैठे हों और अचानक उसके पाँखें तथा
पर आग की लपटें दिखाई पड़ने लगें तो
लगेगा ? यात्री सहसा इतना घबरा
कि शायद वह होश हवास ही खो बैठे
यह है कि यदि यान ऐसे बादल से गुजर
जिसमें धनावेश ऋणावेश से अलग हो गय
तो यान की सतह पर धनावेश कूद आत
फलतः प्रकाश की लपटें दिखाई पड़ती
लपटें हानिकारक नहीं होतीं किन्तु
उत्पादक तो होती ही हैं। उन लपटों को
हुए वह यान ज्योंही ऋणावेश में प्रवेश
है, इसका धनावेश यान से उछलकर बाद
टूट पड़ता है और साथ ही कर्णभेदी गड़ग
भी उत्पन्न होती है। यों यान तो विद्

←ये उमड़ते-घुमड़ते बादल (नीचे से ऊपर) **स्तरी** (nimbostratus) ३००० फुट की ऊँच **ये घने बादल प्रायः ही निरन्तर वर्षा** कर **होते हैं। कपासी** (cumulus) ३००० से **फुट की ऊँचाई तक कपास के गाले जैसे** दि **स्तरी** (stratus) ३००० फुट के नीचे **रहने वाले ये बादल अधिकतर** फुहारें बरस **स्तरीकपासी** (stratocumulus) ६००० फु **की ऊँचाई तक पहुँचते हैं और** लुढ़कते हु **कभी समूचे आकाश को ढँक लेते हैं।** क **(cumulonimbus) १५००० फुट** तक **पर मँडराते, ये बादल वृहत तथा भारी** होते **प्रायः ही तूफान उठाते हैं। भारी** गरज के **ओले भी बरसाते हैं**

Gangotri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से मुक्त हो जाता है किन्तु यह दृश्य कैसा दहलाने वाला होगा यह तो भुक्तभोगी ही समझ सकता है।

बादलों की बहुउपयोगिता

सृष्टिमात्र के लिए वर्षा संजीवनी है। इसके अभाव में जीव-जगत त्राहि-त्राहि कर उठता है। यदि वर्षा लम्बे समय तक नहीं होती तो अकाल पड़ जाता है। इसीलिए बादलों का विशेष महत्त्व है क्योंकि बिना बादल, वर्षा कैसी ?

बादलों का केवल इतना ही महत्त्व नहीं। वे सूर्य के तीव्र ताप से पृथ्वी की रक्षा करते हैं, पेड़-पौधों तथा अन्य जीवधारियों को शीतलता प्रदान करते हैं और पृथ्वी से परावर्तित प्रकाश तथा ताप को बाह्याकाश में लौट जाने से रोकते हैं। यही कारण है कि सर्दियों में जब तक बादल छाये रहते हैं, सर्दी कम मालूम होती है। युद्धकाल में भी वायुसेना के लिए बादलों का होना शत्रुओं से छिपकर बच निकलने तथा चुपके से आक्रमण कर देने में सहायक होता है। पिछले महायुद्ध में अंग्रेजी

[शेष पृष्ठ ३४ पर]

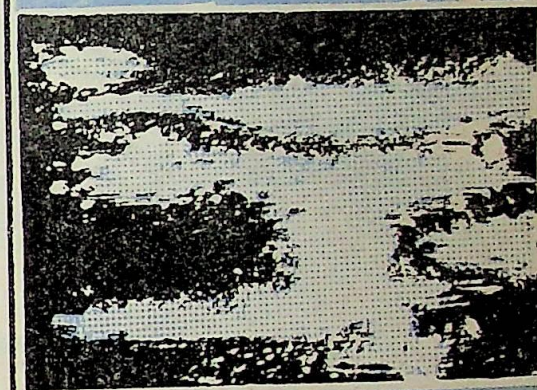

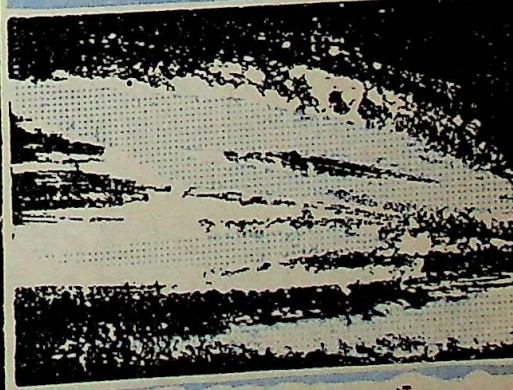

ये बादल घिर-घिर आते हैं (नीचे से ऊपर)→ कपासीमध्य (altocumulus) १५००० फुट की ऊँचाई पर ये बादल पट्टीदार तहों के रूप में विचरते हैं और ओलों की अपेक्षा पानी से ही अधिक भरे रहते हैं। स्तरीमध्य (altostratus) १८००० फुट तक की ऊँचाई नापते हैं और इनके आरपार सूर्य तथा चन्द्र धुँधले दिखते भी हैं। पक्षाभकपासी (cirrocumulus) २१००० फुट की ऊँचाई के ये बादल प्रायः कम ही नजर आते हैं। इनसे भी ऊँचे विचरते बादलों के ये अवशेष स्वरूप रहते हैं और पानी में फैलती लहरियों जैसे दिखते हैं। पक्षाभस्तरी (cirrostratus), २७००० फुट से कम की बात नहीं करते। ये हिमकणों के बने होते हैं और दूधिया रंग के दिखते हैं। इनमें छिपे चाँद-सूरज अपने गिर्द गोल प्रभा से युक्त दिखने लगते हैं। पक्षाभ (cirrus), सर्वोच्च ऊँचाई ३०००० फुट की इन्हीं के हिस्से आयी है। कहीं छल्लेदार, तो कहीं पक्षी के बिखरे परों के रूप में ये विचरते हैं। इनमें भी अधिकतर हिमकण ही रहते हैं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणियों का स्वर-संगीत

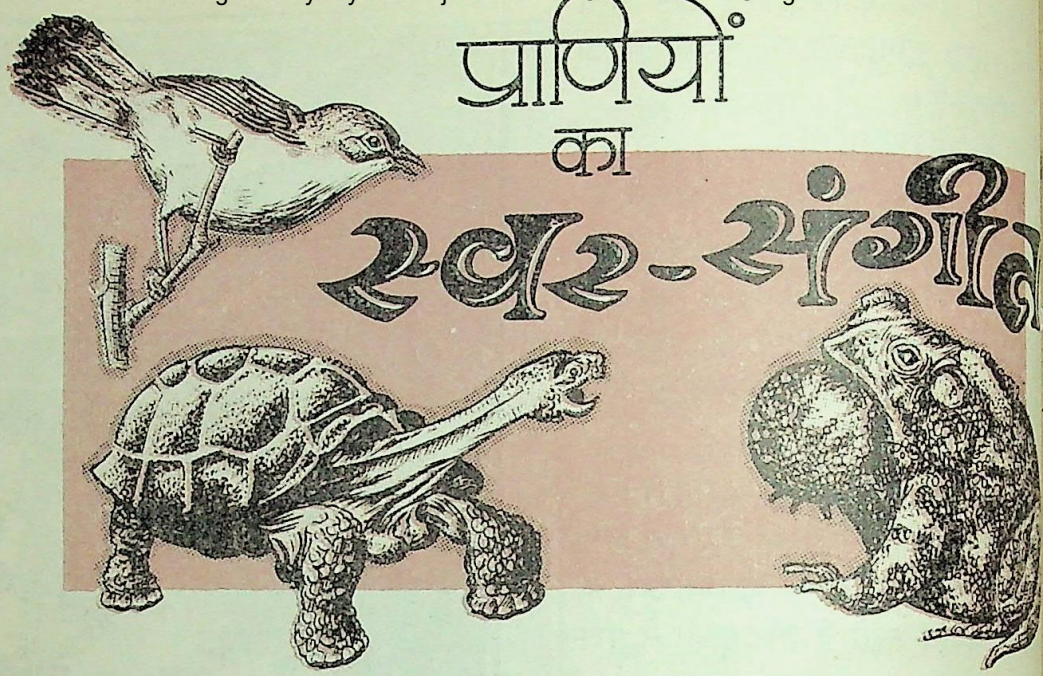

डा. त्रिलोक मजूपुरिया

संगीत से प्रेम होना एक नैसर्गिक गुण है। प्राणी-जीवन से इसका महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। छोटे-छोटे प्राणी भी संगीत से प्रसन्नता अनुभव करते हैं। चिड़ियाँ प्रसवकाल में विशेषत: संगीतप्रेमी हो जाती हैं। स्वर-संगीत से वे अपने सहचर को आमंत्रित करती हैं। कभी-कभी विशेष प्रकार के स्वर से भय की सूचना भी परस्पर प्रसारित की जाती है।

बन्दर, लंगूर, वनमानुष आदि नाना प्रकार का कोलाहल करते हैं। घड़ियाल तथा भेक भी अपने सामूहिक स्वर के लिए प्रसिद्ध हैं। गिबन जाति के वानर की आवाज लगभग एक मील दूर से सुनाई देती है। दक्षिणी अमरीकी बन्दर हाउलर भी ऐसी ही तीव्र आवाज फेंकता है। नर सेही अपनी मादा को मुग्ध करने के लिए एक विशेष प्रकार की आवाज करता है।

मेढक की टर्र-टर्र तो सभी को विदित है। इनमें भी नर ही शोरगुल करता है और मादा प्राय: मूक रहती है। तरुनिवासी मेढकों का कण्ठ पुकारते-पुकारते गुब्बारे जैसा हो जाता है। ब्राजील में पाये जाने वाले मेढक की आवाज ऐसी प्रतीत होती है मानो धातु के टुकड़े लयबद्ध टकरा रहे हों। उन मेढकों का वह सामूहिक गान तनिक भी विक्षेप से बन्द हो जाता है। उन्हें पकड़ने का प्रय करने पर वे ऐसी आवाज करते हैं मानो आर्त

सीटी बजाने वाले इस नन्हे चिड़े ने सीटी बजा ही अपनी माँ को बुलाया है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी बिल्ली को घायल कर दिया हो। मादा भेकों के विषय में प्रसिद्ध है कि वे प्रसवकाल में बड़ी मधुर ध्वनि सुनाती हैं और भय की सूचना देते समय उनकी आवाज कुत्ते की सी हो जाती है।

समुद्री शेरों को भी संगीत अत्यन्त प्रिय है। संगीत के प्रति उनका मोह इतना प्रबल है कि भीषण आँधी-तूफान भी उन्हें विचलित नहीं कर पाते। गीदड़ और भेड़िये भी अपनी प्रिय आवाज सुनकर आकाश की ओर मुँह करके चिल्लाने को बाध्य हो जाते हैं।

मच्छर अपनी फसल में एक विशेष विद्युतोत्पादक यंत्र पर बलि चढ़ जाते हैं। वह यंत्र एक मधुर स्वर करता है। यंत्र से उठते हुए मधुर स्वर की ओर झुंड के झुंड मच्छर आकर्षित होते हैं और उससे

भारत का लम्बी पूँछ का लंगूर

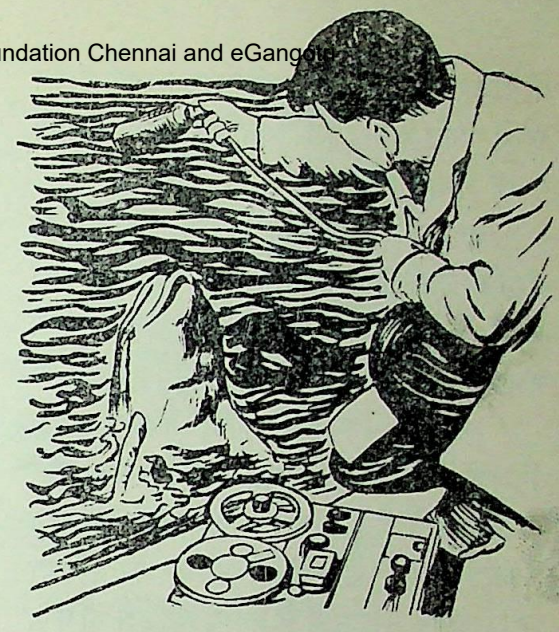

टेप-रिकार्डर पर अंकित की जा रही पौपस की सीटी तथा अन्य ध्वनियाँ

स्पर्श करते ही नष्ट हो जाते हैं।

कहा जाता है कि मकड़ी संगीत से आकर्षित होकर अपने स्थान से बाहर निकल आती है। इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त प्रसिद्ध किंवदन्ती है कि पेलीसन नामक एक फ्रेन्च लेखक को किसी अपराध में कैद कर लिया गया था। उसकी जेल कोठरी में एक मकड़ी भी रहती थी। वह मकड़ी पेलीसन की बाँसुरी सुनकर निकल आती थी और उसके स्वर-निर्देशन पर घूमती जाती थी। जेलर ने एक दिन इसे प्रमाणित करने के लिए पेलीसन से कहा। ज्योंही वह मकड़ी बाँसुरी के स्वर पर बाहर आयी, उस निर्दयी जेलर ने उसे कुचल दिया।

कीटों में भी यह स्वभाव अधिकता से पाया जाता है। हरी घास में पाये जाने वाले टिड्डे, झींगुर आदि चिरपरिचित स्वर गुंजाते ही रहते हैं। प्रायः वह स्वर उनके अंगघर्षण से उत्पन्न होता है, ठीक ऐसे ही जैसे सितार के तार को झंकृत करने से ध्वनि निकलती है। टिड्डों, झींगुरों की ध्वनियों को रिकार्ड भी किया गया है। कीटों पर भी मनुष्यों की भाँति सुहावनी ऋतु का प्रभाव पड़ता है। सुहावने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वातावरण में वे आनन्द-विभोर होकर गुंजन करने लगते हैं और प्रतिकूल अवस्था में उनका गुंजन लुप्त हो जाता है।

जापान में कीटों का रिकार्ड किया हुआ संगीत उत्सवों पर बजाया जाता है। वहाँ कीटों के ऐसे विक्रय-केन्द्र भी हैं जहाँ अपनी पसंद के कीट खरीदे जा सकते हैं।

वहाँ के निवासी कीटों को आकर्षक पिंजड़ों में पालते हैं। पिंजड़े लकड़ी अथवा तार के बने होते हैं। इनका उसी प्रकार सम्मान किया जाता है जैसे किसी मन्दिर की प्रतिमा का। प्रत्येक मौसम में वे अपनी विभिन्न रुचि के कीट संग्रहीत किये रहते है। शरद के आरम्भ में वे उन्हें वंश-वृद्धि के लिए छोड़ देते हैं।

अतः स्पष्ट है कि मनुष्य में ही नहीं जन्तुओं तथा नन्हें कीटों में भी संगीत के प्रति विशेष रुचि होती है। विभिन्न प्रकार की ध्वनियों से वे अपने हर्ष, उल्लास, सुख-दुःख भय आदि का आभास करते-कराते हैं। दादुरध्वनि वर्षा के आगमन का संदेश सुनाती है, तो कोयल की कुहू-कुहू भी वासन्ती चेतना भर देती है। पपीहे की पियु-पियु में विरह वेदना झलकती है तो मेघछटा को देखकर मोर भी नाचता हुआ मुक्त कण्ठ से पुकार उठता है। संगीत की यह अनुभूति सृष्टि में सर्वत्र पाई जाती है।

जब बादल घिर-घिर आते हैं

[पृष्ठ ३१ का

वायुसेना ने जर्मनी द्वारा हथियाये हुए फ्रान्स पर बिगड़े मौसम का सहारा लेकर बादलों के ऊपर ही ऊपर से दुश्मन को धोखा देकर अचानक हमला कर दिया था। लड़ाकू विमान लड़ते-लड़ते बादलों में विलीन हो जाते हैं। बादलों में दृष्टि दूर तक नहीं जाती और आपस में टकराकर चूर हो जाने का भी भय रहता है।

जाति-जाति के बादल

बादलों की दस प्रमुख जातियाँ हैं जिनका निर्धारण उनकी औसत ऊँचाई के आधार पर किया जाता है। साफ आकाश में काफी ऊँचाई पर ऊपर की ओर मुड़े हुए जो हलके बादल दिखाई देते हैं, वे पृथ्वी से लगभग २०००० फुट की ऊँचाई पर होते हैं। उनमें हिमकण मौजूद रहते हैं। उन बादलों से वर्षा नहीं होती। वे पक्षाभ कहलाते हैं। पक्षाभकपासी १८००० से २१००० फुट पर तथा पक्षाभस्तरी २४००० से २७००० फुट पर, इन्हीं की दो उपजातियों के बादल हैं।

इनके पश्चात् मध्यवर्गीय बादल आते हैं। उनकी औसत ऊँचाई ९००० फुट से १८००० तक होती हैं। वे कपासीमध्य १२००० से १५००० फुट पर तथा स्तरीमध्य १५००० से १८००० फुट पर होते हैं। उनके घने होने पर हलकी वर्षा की सम्भावना रहती है। उनसे नीचे रहने वाले बादल स्तरीकपासी ८००० से ९००० फुट पर होते हैं जिनकी अनेक जातियाँ पायी जाती है। कपासीवर्षी ९००० से १५००० फुट पर होते हैं।

अन्तिम श्रेणी के बादलों में वर्षी ३००० फुट पर, कपासी ४००० फुट तथा वर्षास्तरी ५००० फुट तक पाये जाते हैं। इन सबों में कपासीवर्षी बादल ही वर्षाकारक होते हैं। ये ही बादल मूसलाधार वर्षा करते हैं तथा बिजली कड़काते हैं। इन बादलों में अपार जलराशि रहती है। यदि ये एक स्थान पर फट पड़ें तो प्रलय ही उपस्थित कर दें। पिछले वर्ष ही तो हजारों टन बरसाकर इन बादलों ने पहलगाँव में विनाश ढहा दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

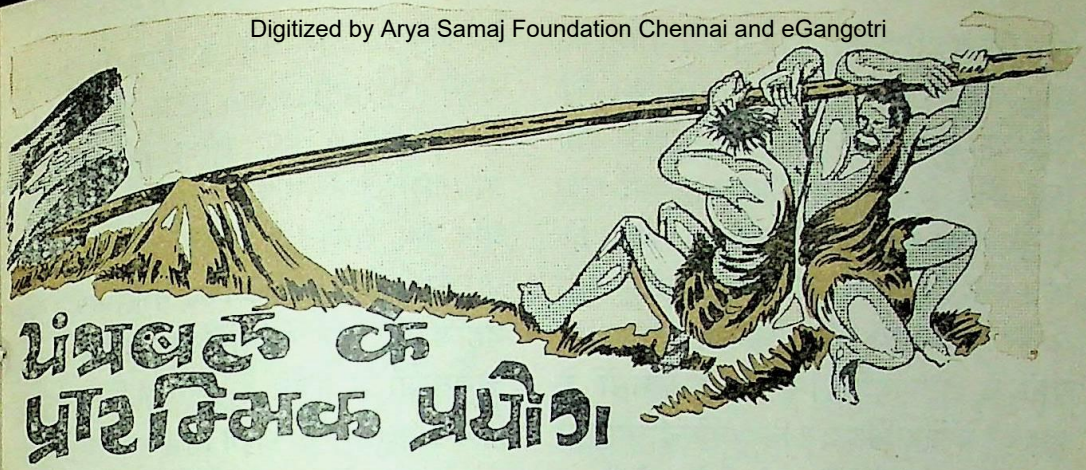

पंप्रलय के प्रारम्भिक प्रयोग

अवधबिहारीलाल

आज के मानव की दिनचर्या यांत्रिक उपलब्धियों से पग-पग पर आवृत्त है। प्रातः आँख खुलने से लेकर रात्रि-शयन तक उसकी गाड़ी यंत्र-बल पर ही चलती है। उदाहरणार्थ, व्यक्ति की आँख खुलते ही बिजली का स्विच खुल जाता है जो सुबह की चाय और इलेक्ट्रिक शेव का काम देती है। वह नहा-धोकर जो कपड़े पहनता है उन्हें भी बनाने में यंत्रों का मुख्य हाथ रहा है। नाश्ते की मेज पर सजी हुई प्लेटें, काँटें, छुरी, चम्मच सभी कुछ तो यंत्रों द्वारा निर्मित है। तब तक उसके आगे सुबह का अखबार आ जाता है जो रात भर किसी प्रेस के मशीनी जंजाल से छूटकर गर्म-ताजा खबरें लाया है। बस, सब कुछ निबटाकर वह काम पर दौड़ जाता है और जिस बस या लोकल ट्रेन पर सवार होता है वह तो दौड़ती-भागती मशीन है ही!

आदिम युग का मानव

आज से हजारों वर्ष पूर्व परिस्थिति अकल्पनीय रूप से विचित्र थी। उस युग का मानव इतना विकसित, इतना सम्पन्न नहीं था। न उसके तन पर कपड़ों का भार था, न मन पर ज्ञान-विज्ञान का बोझ। उलटे उसकी कठिनाइयाँ बढ़ाने की परिस्थितियों में कोई कमी नहीं थी। खुले जंगल में हिंसक पशुओं के बीच वह इस तरह रह रहा था जैसे दाँतों के बीच जीभ। यहाँ तक कि कन्द मूल, फल खाने के लिए उसे वन्य पशुओं से संघर्ष करना पड़ता था। बात केवल इतनी थी कि वह अपनी थोड़ी-सी सूझ-बूझ के सहारे ही पशु-पक्षियों से यथासंभव चतुराई सीखता रहा था। उसी दौरान में कभी पेड़ काट-गिराकर पुल बनाने, कभी गोल लट्ठों पर लुढ़काकर बोझों को ढोने, कभी रस्सों से झूलकर लम्बी छलांग भरने जैसे प्रयोग करते-करते अनजाने ही रोलर, लीवर, गीयर, पेण्डुलम, पुली जैसे यांत्रिक सिद्धान्तों के बीज बोता रहा। उसके वे परिश्रम व्यर्थ नहीं गये। बीज फले और खूब फलते चले। हमारा आज का यांत्रिक युग बहुत अंशों में आदिमयुग का ही आभारी है।

पशु-बल से मानव-बल तक

क्रमशः कुत्ते, घोड़े, बैल, तथा हाथियों से मानव ने मित्रता गाँठी और कुत्तों से हलकी-फुलकी गाड़ियाँ, घोड़ों से हल तथा खेती-बारी, बैलों से भारी गाड़ियाँ तथा हाथियों से पहाड़ों के पत्थर और बड़े-बड़े पेड़ ढोने का काम लिया जाता रहा। मध्य युग आते-आते सम्पन्न तथा धनिक वर्ग सोचने लगा कि जब गुलामों के रूप में मानव-बल उसे काफी सस्ता पड़ जाता है तब वन्य पशुओं को सिखाने-खिलाने की मुसीबत क्यों पाली जाए? अतः शासकों ने पराजित देशों के लोगों को जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान देने के प्रतिफल में उन्हें गुलाम बनाने की प्रथा चलायी। ऐसे गुलामों के आधे सिर मूँड़ दिये जाते थे और उनके कंधे गर्म लोहे से दाग दिये जाते थे। मिस्र के प्राच्यावशेषों तथा प्रस्तर चित्रों से आज भी देखा जा सकेगा कि किस प्रकार दैत्याकार प्रस्तर मूर्तियाँ कुछ तो लीवर तथा पुली जैसे टेढ़े-मेढ़े अविकसित यंत्रों से तथा अधिकांश लाखों गुलामों के बाहुबल से पिरामिड जैसे विश्वप्रसिद्ध स्मारकों के निर्माणार्थ ढोये और खड़े किये जाते थे।

आवश्यकताओं से जन्मे आविष्कार

यंत्र की अनेक में से एक सरल व्याख्या यह भी है कि यंत्र वह साधन है जिसके द्वारा मानव-बल बढ़ा-चढ़ाकर अधिक बृहत् कार्यों में लगाया जा सके। इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि प्रत्येक आविष्कार किसी न किसी तीव्र आवश्यकता की ही कोख से जन्मा है। उदाहरणार्थ, हमें तन ढँकने के लिए वस्त्र की आवश्यकता पड़ी तो चर्खे-करघे अस्तित्व में आ गये, भोजन के लिए अन्न की खोज हुई तो हल के विभिन्न रूप सामने आये, गहरे कुओं से पानी, स्रोतों से तेल तथा खानों

चित्र के अनुसार यदि बाहरी चक्र की त्रिज्या, भार लटकाने वाले केन्द्रीय चक्र की त्रिज्या से दस गुनी है, तो यह बालक सामान्य की अपेक्षा बीस गुना अधिक वजन उठा लेगा

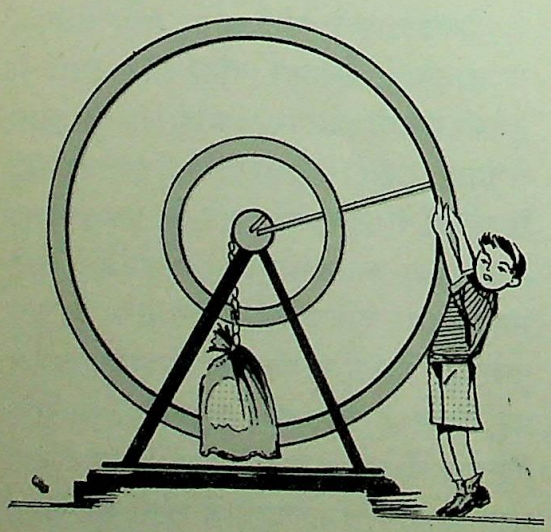

से कोयला निकालने के लिए विशाल पहिये (Windlasses) चरस, गरारियाँ लीवर तैयार हुए, शीघ्र आने-जाने यातायात के लिए पहिया घूमा, गाड़ियाँ और रथ तैयार हुए। इसी प्रकार सरिताएँ पार करने के लिए नावें, बजरे, जहाज अस्तित्व में आये। व्यापार-विभाग धोखेबाजी से बचने के लिए काँटे-तराजू जिनमें संतुलन का सूक्ष्म सिद्धान्त प्रयुक्त हु

बल प्रयोग के क्षेत्र में क्रमशः मानव से पशु-बल और पशु-बल से यंत्र-बल आते-आते मानव विविध साधनों से परिचित होता चला। जिस ताप तथा शक्ति को हम मध्यकाल की देन मा हैं, वह वस्तुतः २००० वर्ष पूर्व भी लोगों ज्ञात थी। प्राप्त प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध चुका है। अतः अनुमान है कि बीच के काल में वाष्प-शक्ति का विज्ञान भूला-बि पड़ा रहा और १७वीं शताब्दी में पुनर्ज होकर जब हमारे सन्मुख आया तब उसे उसी युग की देन मान लिया। तत्पश्च २५०-३०० वर्षों में जिस द्रुतगति से विज्ञान आगे बढ़ा है, उसके द्वारा सभी ज हैं कि ताप और वाष्प के पश्चात् विद्युत, सूर्य और परमाणु शक्तियों का हमें प्राप्त होता रहा है।

यंत्र-बल का प्रादुर्भाव

१८वीं शताब्दी यंत्र-युग का उदय मानी जाती है। समाज-व्यवस्था का कि ज्ञान-प्रसार की उत्कण्ठा तथा उद्योग-व्य की उत्तरोत्तर उन्नति ने तत्कालीन वैज्ञा को नये-नये यंत्र बनाने के लिए प्रोत्सा किया। उसी का दूसरा खेदपूर्ण पहलू यह कि श्रमिकों और कारीगरों को सदैव यह रहता था कि यंत्रों का प्रचलन उ आजीविका छीन लेगा। अतः आरम्भ में घटनाएँ बहुत सामान्य हो गयीं कि पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

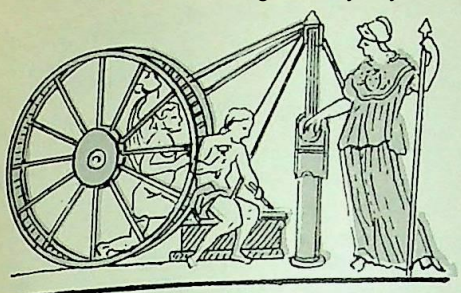

रोमन काल का एक प्राचीन मानव-चालित यंत्र। विशाल भवनों के स्तम्भ खड़े करने के लिए आवश्यक मसाले इसी प्रकार के यंत्रों द्वारा तैयार कराये जाते थे

का कोई माडल बना तो उसे मल्लाहों ने चुपके से डुबो दिया और करघा बना तो श्रमिकों ने तोड़-फोड़ दिया, जला दिया। उन्हीं दिनों पेपिन नामक वैज्ञानिक ने एक वाष्पकुकर (Pepin's Digester) प्रस्तुत करके वाष्प शक्ति से प्रथम परिचय कराया। तब से आज तक वाष्प-शक्ति का उपयोग हम बड़े-बड़े यंत्रों में करते आये हैं जिनमें बॉयलर मुख्य है और उसी के आधार पर स्टीम-इंजन चालित ट्रेनें आज के यातायात और परिवहन की रीढ़ बनी हुई हैं।

विद्युत-शक्ति

प्रथम प्रयोग के क्षण से ही बिजली को एक ऐसी जादूगरनी माना जाता रहा है जो स्वयं कभी नजर नहीं आती किन्तु बड़े-बड़े काम चुटकियों में बजा लाती है। सन् १८०० की प्रारम्भिक क्षीण धारायुक्त वोल्टा की बैटरी से लेकर ६० वर्ष पश्चात् ही १८६० की प्रथम विद्युत मोटर तक महान वैज्ञानिक माइकेल फैरेडे के असंख्य विद्युत प्रयोगों की शृङ्खला अटूट रही है। विद्युत मोटर तो दोहरा कार्य सम्पन्न करती है—चालक शक्ति मिलने पर विद्युत उत्पन्न करती है और विद्युत मिलने पर चालक शक्ति देती है। विद्युत शक्ति में एक विशेषता और भी है जो अन्य शक्तिओं में संभव नहीं—वह है, सैकड़ों-हजारों मील दूर इसे ले जाने की सुविधा अर्थात एक स्थान पर विद्युत उत्पादित कीजिए और तारों ही तारों पर दूसरे स्थान पर ले जाकर उसका उपयोग कीजिए। विगत १०० वर्षों से भी कम समय में विद्युत शक्ति ने कैसी दीर्घ और दुर्गम मंजिलें तय की हैं, यह सभी जानते हैं।

गैस-शक्ति

पृथ्वी के गर्भ में छिपे हुए हाइड्रोकार्बन समूह के ज्वलनशील गैसों की उपयोगिता भी सर्वमान्य है। उससे पहले भूमिगत तेलों का उपयोग होता था। तेलों के उपयोग में यह सुविधा थी कि उन्हें पात्रों में भरकर चाहे जहाँ ले जाया जा सकता था। इसके विपरीत, गैसों की समस्या टेढ़ी थी। इन्हें लाने-ले जाने के लिए तब तक प्रतीक्षा करनी पड़ी जब तक उपयुक्त पदार्थों के बने पाइपों का निर्माण न कर लिया गया। जहाँ भूमिगत तेल प्राप्य नहीं, वहाँ ज्वलनशील गैसों से काम लिया जाता है। उदाहरणार्थ, इटली, फ्रान्स और इंग्लैण्ड में तेल-स्रोतों के अभाव को ज्वलनशील गैसों द्वारा पूरा करने के लिए गैस-उत्पादक स्थलों की खोज बराबर की जाती है। इसी अभाव-पूर्ति की दिशा में एक नया प्रयोग यह भी किया जा रहा है कि कोयलों की खुदाई में कोयलों की जिन चट्टानों का खोदना अधिक

यह है रोमन काल का स्वचालित अग्निशामक। पात्र क में फैलती हुई तप्त वायु दायें पात्र ख के पानी को इस प्रकार दबाएगी कि बायीं ओर के पात्र ख से पानी ऊपर उठकर ग स्थान से फुहारों के रूप में बरसकर अग्नि को बुझा देगा

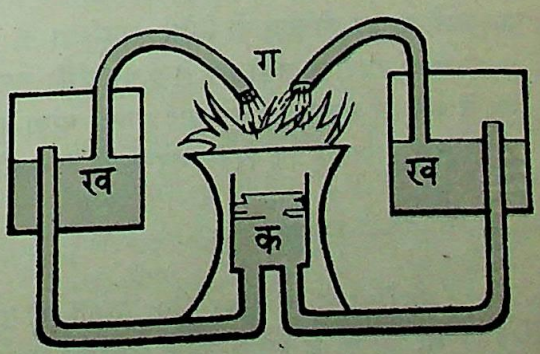

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खर्चीला प्रतीत होता है उनसे वहीं का वहीं कोलगैस प्राप्त कर ली जाती है।

सौर-शक्ति

इस युग में कैसा भी यंत्र हो, बिना शक्ति के नहीं चल सकता। इस समय तो शक्ति की प्राप्ति भूगर्भ में युगयुगों से संचित शक्ति, स्रोतों, मुख्यतः कोयला तथा पैट्रोलियम से की जा रही है। विश्व में उन संचित शक्ति-स्रोतों को चाहे जितना असीम मान लिया जाए फिर भी वे असीम तो नहीं कहे जा सकेंगे। नित्य की बढ़ती हुई माँग और शक्ति के नवोत्पादन का अभाव कभी भी वह घड़ी ला सकता है जब ये संचित शक्ति-भण्डार जवाब दे जाएँ। अतः जैसे इतिहास स्वयं को दोहराता है, वैसे ही आज का वैज्ञानिक भी पुनः प्रकृति की ओर आशा-दृष्टि लगाए हुए है और जल तथा वायु के साथ-साथ सूर्य से भी शक्ति की याचना कर रहा है। सौर-शक्ति का पहला उपयोग आर्कमिडीज ने किया था जिसने विशाल दर्पणों द्वारा सूर्य की किरणें शत्रुपोतों पर केन्द्रित करके तहलका मचा दिया था। आज उसी का अत्याधुनिक रूप अन्तरिक्ष-उड़ान में सौर-बैटरियों के रूप में किया जा रहा है।

आणुविक-शक्ति

इस शक्ति का प्रथम परिचय हेनरी बैकेरेल को १८२८ में हुआ जब यूरेनियमयुक्त पदार्थों के निकट रखी हुई उसकी फोटो अचानक अनदेखे ही रेडियोसक्रियता प्रभावित हो गयीं और धुँधली पड़ गयीं। दिशा में गहन अध्ययन व प्रयोगों के फ १९०२ में रदरफोर्ड ने तथा १९० आइन्स्टीन ने और भी नये तथ्य प्रस्तुत अणु-परमाणु में कैसी-कैसी दानवीय छिपी हैं यह इससे ज्ञात होगा कि हिरो और नागासाकी पर गिराये गये एटम ब लगभग सवा दो करोड़ किलोवाट विसर्जित हुई थी। उतनी शक्ति उत्पन्न के लिए जहाँ एटम बम में यूरेनियम-२३ एक किलोग्राम से भी कम मात्रा प्रयुक्त थी वहाँ उसके लिए २०,००० टन अथवा ७००० टन कोयला आवश्यक अनुमान है कि एक तीव्र भूकम्प में दस एटम बमों के बराबर शक्ति लग जाती उस एटम बम से भी बढ़कर १० करो TNT की शक्ति के बराबर हाइड्रोज बनाये होने का दावा सोवियत रूस ने है। विनाशक उद्देश्यों को यदि छोड़ दें और शान्ति के लिए भी परमाणुशक्ति उपयोगों की सम्भावनाएँ अनन्त हैं।

यों, शारीरिक शक्ति से प शक्ति तक की मानव की यह चर्चा रोचक तो नहीं!

काँटे से काँटा (निकालिए नहीं) फँसाइए

रबर में पंक्चर रबर से ही बन्द कीजिए। ट्रैक्टरों आदि में प्रयुक्त होने वाले अतिविशाल ट जब कभी पंक्चर हो जाए तो विशेष असुविधा के निवारणार्थ गुडइयर कम्पनी ने पौलीयुरेथेन urethane) रबर को सूखी बर्फ में पत्थर जैसी जमाकर ९-१० इंच के ऐसे स्क्रू बनाये हैं जो पं मुँह में कसे जा सकते हैं। कसे बाद उनका मत्था काट दिया जाता है और टायर की गति के उत्पन्न ताप द्वारा वह स्क्रू पिघल कर टायर से घुलमिल जाता है और पंक्चर स्वयं बन्द हो जाता है

यह अजेय विक्रमांक

अमरीका के जो वाकर (Joe Walker) द्वारा अपने X-15 यान से लगभग ६७ मील ऊँच ४१०४ मी. प्र. घ. के वेग से उड़ान भरने का विक्रमांक अभी तक अजेय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

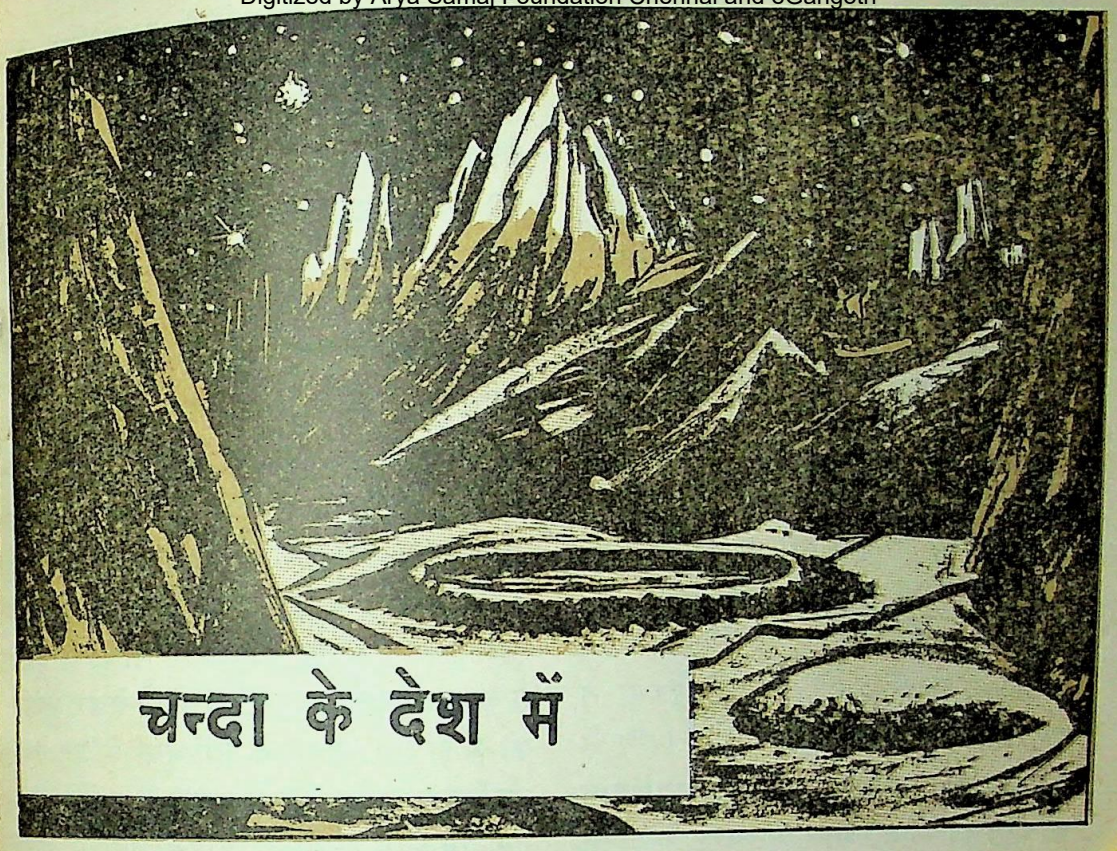

चन्दा के देश में

कुमारी मालती

गैलीलियो ने १६१० में अपने आविष्कृत दूरदर्शी द्वारा पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी दस गुना घटा दी थी। वही दूरी आज पालोमर के संसार प्रसिद्ध विशालतम दूरदर्शी ने दस हजार गुना घटा दी है। उस जादूभरी आँख की सहायता से आप चन्द्रमा को लगभग २३८८६० मील की दूरी के स्थान पर केवल २४ मील की दूरी पर ऐसे देख सकेंगे मानो बगैर दूरदर्शी के आप मसूरी के किसी ऊँचे स्थल पर खड़े होकर हिमालय की २०-३० मील दूर की कोई पर्वतश्रेणी देख रहे हों।

अभी तो इसी का सहारा है

चन्द्रमा पर पहुँचने के लिए आज का मानव लालायित है। अपनी आँखें चाँद की ओर जमाये वह अपने पाँव राकेट की ओर बढ़ाता चला आ रहा है। लेकिन यह सब कुछ इतना सरल नहीं। अभी इसमें समय लगेगा। तब तक कृत्रिम उपग्रहों तथा अन्य साधनों की सहायता से कम से कम इतना तो पूर्वज्ञान प्राप्त कर ही लें कि वहाँ पहुँचने पर किन परिस्थितियों का सामना करना पड़ेगा अथवा जिस चन्द्रलोक में हमें प्रवेश करना है वह कैसा है! इसमें सन्देह नहीं कि अब तक के प्राप्त विवरणों के आधार पर वहाँ की परिस्थितियाँ जितनी अधिक रोचक हैं, जीवन-धारण के योग्य उतनी ही कम हैं।

चन्द्रमा की उत्पत्ति

इस प्रश्न के विभिन्न उत्तर केवल अनुमानों के आधार पर दिये जाते रहे हैं। प्रामाणिक रूप से कुछ भी कह सकना कठिन है। सामान्यतः एक मत यह भी है कि कुछेक अन्य ग्रहों के अपने-अपने उपग्रहों की भाँति चन्द्रमा भी पृथ्वी का ही टूटा हुआ एक भाग है और आज जहाँ प्रशान्त महासागर है, वहीं-कहीं से टूटकर अलग हो गया है। दूसरा मत क्वीपर (Kuiper) का है जिसके अनुसार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रमा पृथ्वी का कोई भाग नहीं, भागीदार अवश्य है अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में जिन गैसीय बादलों से पृथ्वी ने रूप धारण किया उसी बादल से स्वतन्त्र रूप चन्द्रमा ने भी धारण किया है।

आँकड़ों में चन्द्रमा

पृथ्वी से चन्द्रमा की दूरी २३८८६० मील है। सूर्य की दूरी (लगभग ९३० लाख मील) के आगे तो यह दूरी नगण्य है। चन्द्रमा की यह दूरी ज्ञात करना रेडार द्वारा ही संभव हो सका है। रेडार द्वारा प्रक्षेपित रेडियो-लहरें अकल्पनीय तीव्र गति से अन्तरिक्ष को पार करके, चन्द्रमा से टकराकर चन्द मिनटों में ही पृथ्वी पर लौट आती हैं। उनके इस आने-जाने में लगने वाले समय की गणना से दूरी ज्ञात कर ली जाती है। इसी विधि से सौरमण्डल के अन्यान्य ग्रहों की दूरियाँ ज्ञात की गयी हैं। २२८७ मील प्रति घण्टे के वेग से अपने कक्षापथ पर चक्कर लगाता हुआ यह चन्द्रमा २१६० मील व्यास का है, अर्थात् हमारी पृथ्वी से लगभग चौथाई है। हम इसका केवल ५९ प्रतिशत भाग ही देख पाते हैं। उसी का दूरदर्शी द्वारा अवलोकन करने पर अनुमान

शक्तिशाली दूरदर्शी द्वारा देखे गये चन्द्रमा के विविध गह्वर

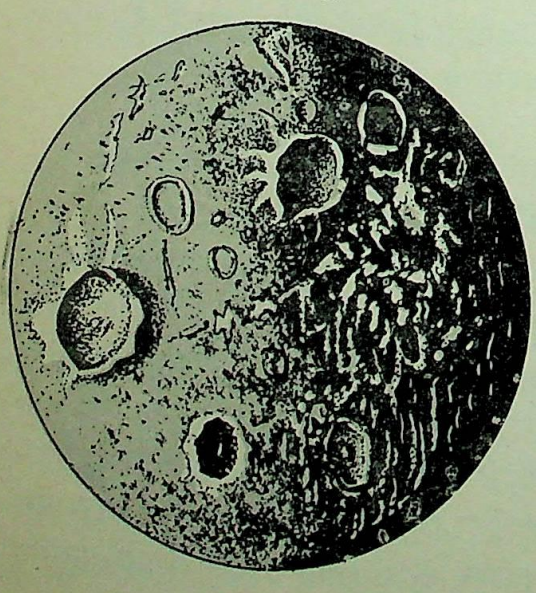

लगाया जाता है कि इसमें ज्वालामुखी असंख्य मुहाने खुले पड़े हैं जिनमें कुछेक १००-१०० मील व्यास के हैं! उच्च शिखर भी २५ हजार फुट का मालूम है। इसकी आयु अनुमानतः ४५० करोड़ की है।

इसका दूसरा पहलू

आदिकाल से इधर तक गोल-मटोल जैसा यह चन्द्रमा संसार को लुभाता आ था। अभी तक इसका दूसरा पहलू अबूझ रहस्य था लेकिन अब वह रहस्य नहीं, एक मनोरंजक तथ्य बन गया १९५९ की ७ अक्टूबर को सोवियत रा ल्यूनिक-३ ने केवल ४० हजार मील की से चन्द्रमा के दूसरे पहलू का फोटो लेकर पृ को भेजा है। मानव के इतिहास में यह अप्रतिम उपलब्धि मानी जाती है, क्योंकि तक यह कार्य किसी के लिए सम्भव तो क कल्पना में भी नहीं आया था। इसके दूर ओर भी गैसीय बादलों के घने जमाव हैं।

तीव्र विरोधी परिस्थितियाँ

चन्द्रमा पर वातावरण के विरोधाभ इतने तीव्र हैं कि कल्पना चकराकर रह जा है। वहाँ का एक दिन हमारे यहाँ के दो सप्त जितना होता है। उन दो सप्ताहों तक दिन है तो दिन ही दिन, और रात है तो ही रात रहेगी। वहाँ वायुमण्डल का सर्व अभाव है। अतः पृथ्वी की भाँति मनोर सूर्योदय अथवा सूर्यास्त के दृश्य वहाँ कोम कल्पनाएँ न जगा सकेंगे। वहाँ सूर्य ऐसे दी पड़ेगा मानो स्विच दबाकर बल्ब एकदम जल दिया गया हो। ऐसे ही अचानक बुझ जाएगा।

और वहाँ की सर्दी-गर्मी? उसे सह करने के लिए तो आपको अपने परिधान में व्यवस्था करनी होगी। पृथ्वी की अपेक्षा वह सूर्य निकट होने के कारण तथा वायुमण्डल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नितान्त अभाव होने के कारण न तो सूर्य के ताप का कुछ भी अंश शोषित हो पाएगा और न धरातल से समस्त ताप उड़ जाने पर रोक लग सकेगी। फलतः गर्मी ऐसी कि पानी उबलने से भी दो डिग्री ऊपर अर्थात २१४°F और सर्दी शून्य से भी २४३ डिग्री नीचे !

वायुमण्डल के अभाव का एक अतिरिक्त प्रभाव यह भी होगा कि खुले वातावरण में दो व्यक्ति बात ही न कर सकेंगे। कुछ भी सुनाई न पड़ेगा। जिस चीख-पुकार से पृथ्वी वालों के कान बहरे हो जाते हैं, वह वहाँ केवल होंठों-होंठों में ही रह जाएगी। तब आपको चलता-फिरता टेलीफोन अपने साथ रखना पड़ेगा।

चन्द्रमा पर गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी की अपेक्षा ५ गुना कम है। यह बड़े मनोरंजक दृश्य उपस्थित करेगा। वहाँ तो आप पृथ्वी के तेज से तेज अन्तर्राष्ट्रीय विजेता से कहीं आगे निकल जाएँगे ! साधारण प्रयास से ही ३०-३० फुट कूदते जाएँगे। भारोत्तोंलन में भी आप अजब करिश्मे दिखाएँगे। आपकी फेंकी हुई गेंद जिस वेग से ३००० फुट तक की दूरी नाप लेगी उसके आगे तो कुशलतम बल्लेबाज के भी पाँव उखड़ जाएँगे ! सोचिये, तब आप कितने बड़े ओलम्पिक खिलाड़ी माने जाएँगे ! चन्द्रमा पर खाने को कुछ न मिलेगा, न कुछ उपजाया जा सकेगा। पृथ्वी से अपने साथ लाये हुए भोजन पर ही निर्भर रहना होगा।

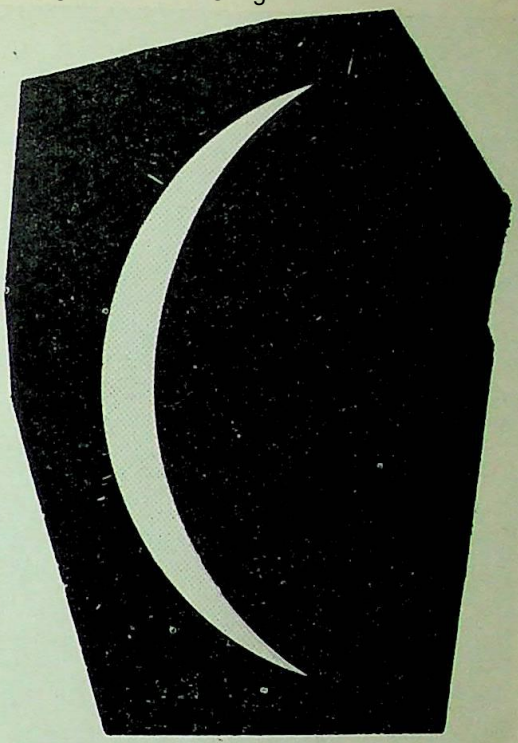

मनोरजंक दृष्टिभ्रम ; यह चन्द्रमा नहीं, शुक्र है ! इसका अपना घना वायुमण्डल है और लगभग पृथ्वी जितना ही बड़ा है। यह भी प्रायः चन्द्रमा जैसी ही कलाएँ दिखाता है और कभी-कभी तो तीव्र प्रकाश के कारण दिन में भी दिखाई दे जाता है

अतः अन्तरिक्षयान में भोजन सामग्री भी ऐसी रखी जानी आवश्यक होगी जो भार में कम से कम हो और पौष्टिकता में अधिक से अधिक।

लाल, हरा, नीला चन्द्रमा

सूर्य द्वारा प्रकाशित इस पृथ्वी की शंक्वाकार छाया से जब-जब चन्द्रमा को गुजरना

पृथ्वी पर यदि आपका वजन १०० पौंड है तो ग्रहों अथवा चन्द्रमा पर कितना रहेगा ?

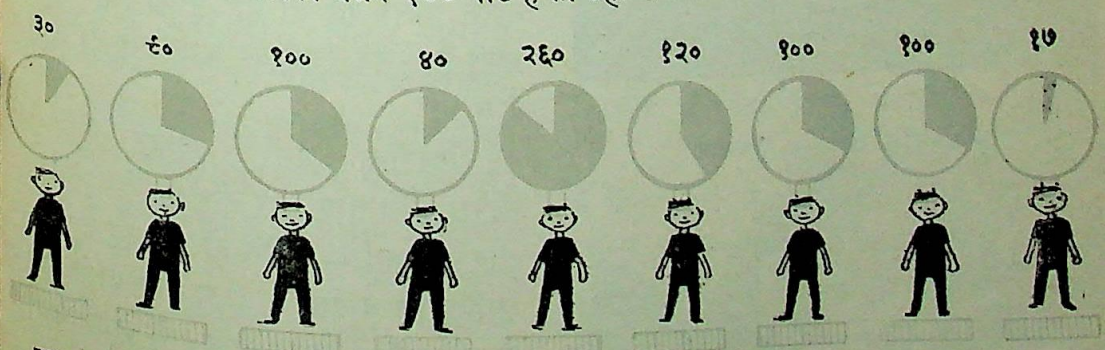

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

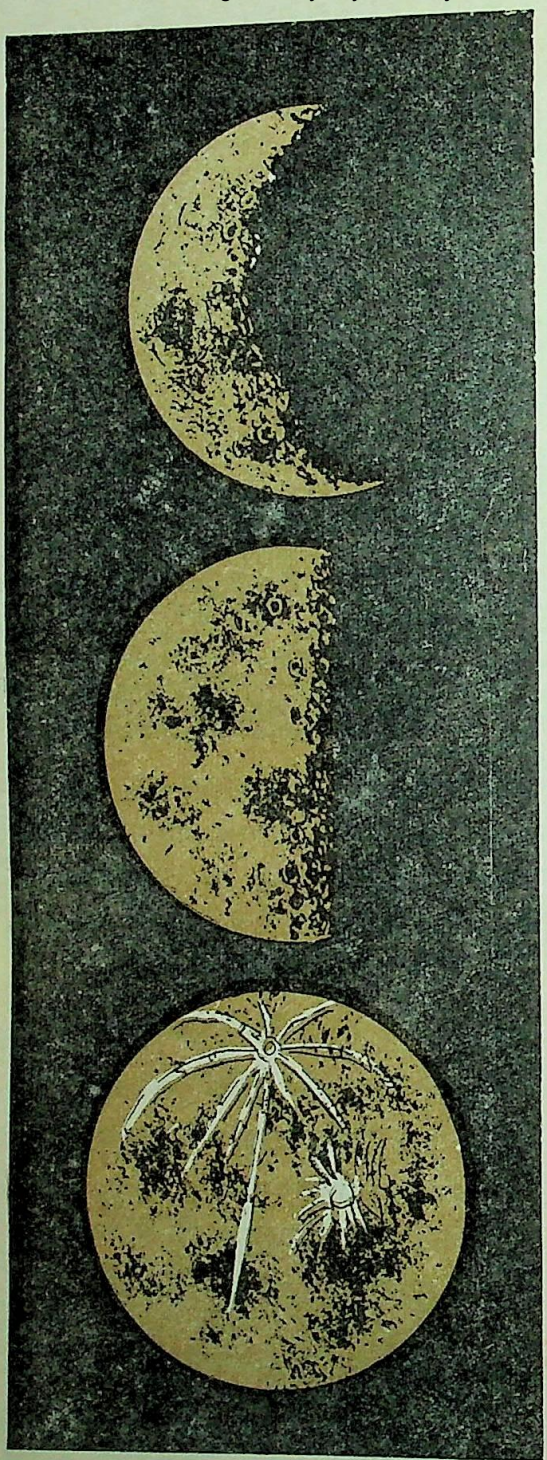

चन्द्रमा की विविध कलाएँ (ऊपर से नीचे)—
चतुर्थांश, अर्द्धचन्द्र, पूर्णचन्द्र

पड़ता है, तब उस छाया में छिप जाने के कारण चन्द्रग्रहण की अवस्था कही जाती है। ग्रहणावस्था में भी जब कभी पृथ्वी से परावर्तित प्रकाश पहुँच जाता है तो उसके प्रभाव से चन्द्रमा का प्रकाशहीन गोला दिखाई भी पड़ता है। उस अवस्था में अपवादस्वरूप कभी सूर्य के प्रकाश की रक्त-रश्मियों अ हरित किरणों के केन्द्रित हो जाने से च चमकीला लाल तथा हरा भी देखा गया नीला चन्द्रमा दिखना भी एक अलभ्य दृश्य इधर सन् १९४७, १९४९ तथा १९५० एक-एक बार देखा गया है।

चन्द्र-ज्योत्स्ना या भू-ज्योत्स्ना

चन्द्रमा की सतह इतनी घटिया कि की है कि सूर्य के प्रकाश का कुल केवल प्रतिशत भाग ही परावर्तित हो पाता इसकी भी सतह यदि शुक्र जैसी उत्तम तो यही चन्द्रमा रातों को चाँदी का बनकर चमकता!

चन्द्रमा, हमारा प्रथम पड़ाव

चन्द्रमा ही हमारा प्रथम और सहज होने के कुछ विशेष कारण हैं। प्रथम तो कि सौरमण्डल में यही ग्रह पृथ्वी के निकट है। द्वितीय निकटतम ग्रह शुक्र है इसकी अपेक्षा कम से कम सौ गुना अ दूरी पर है। दूसरा कारण यह है कि अभी केवल चन्द्र के ही बारे में अधिक से अ जानकारी प्राप्त की गयी है। तीसरी सु यह है कि चन्द्रमा को ही प्रथम पड़ाव बना वहाँ से दूसरे ग्रहों की जानकारी प्राप्त की सकेगी तथा आवश्यक एवं सम्भव हुआ चन्द्रमा से ही आगे की उड़ानें भरी जा सक नयी दुनिया की खोज और विजय पर नि करने वालों को जो यह पृथ्वी छोटी लगी है, उनके लिए यह अन्तरिक्ष तो है न!

उपरोक्त वर्णनों से चन्द्रमा कैसा नीरस, तीव्र ताप और शीतयुक्त तथा अ धारण के अयोग्य प्रतीत हो, हमें यह न भू चाहिए कि चन्द्रमा न होता तो कहाँ से ह महासागरों में ज्वार आते! ये दोनों कि धरा-जीवन के लिए अमृतमयी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

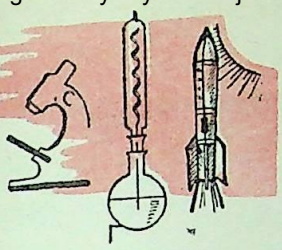

प्लास्टिकोत्पादक देवदार

राल-स्रावक देवदार वृक्ष की राल से अब तक के प्राप्य प्लास्टिकों से कहीं अधिक मजबूत प्लास्टिक उत्पादित किया जा सकेगा। अमरीकी कृषि-वैज्ञानिकों ने इस दिशा में सफल प्रयोग करके बताया है कि पेट्रोलियम से प्लास्टिक प्राप्त की जाने वाली विधि से कहीं अधिक सरल यह नयी विधि है। इस प्लास्टिक का उपयोग भारी मोटरों तथा अन्य गाड़ियों की बाडी बनाने में किया जा सकेगा। यह प्लास्टिक पानी भी बहुत कम सोखता है और अम्लों से भी प्रभावित नहीं होता।

और अब हाइड्रोफाइल भी

एयरोफाइल (aerofoil) नाम वायुयान की पाँखों के उस डिजाइन का है जिसके द्वारा यान को वायु में अधिक से अधिक उठान तथा कम से कम खिचाव प्राप्त हो। अब जलयानों में भी तीव्रतर वेग प्राप्त करने के लिए उसी सिद्धान्त की आवश्यकता पड़ी है जिससे पानी का अवरोध न्यूनतम किया जा सके। बड़े जहाजों में तो यह अधिकांश इस प्रकार सम्भव हो जाता है कि उसका अग्रभाग अधिक से अधिक धारा अवरोधक (stream-lined) बना लिया जाए, किन्तु सामान्य आकार के जहाजों में वह विधि इतनी लाभप्रद नहीं हो पाती। अतः हाइड्रोफाइल (hydro-foil) डिजाइनयुक्त जहाज इस प्रकार बनाये जा रहे हैं कि जहाज का अग्रभाग अधिकतर पानी से उठा ही रहे। इससे वही सुविधा रहती है जो स्कीइंग (skiing) अर्थात पानी पर फिसलने के खेल में रहती है। यह कल्पना नयी न होने पर भी (१८८७ में प्रस्तुत) ऐसे यानों का प्रचलन द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी द्वारा अधिकता से किया गया। आज तो ऐसे यान पानी पर ७५ मी. प्र. घ. गति प्राप्त कर लेते हैं।

स्टील की चादर के पार देखिए !

जो अभी तक सम्भव न था, वह अमरीका के पेन्सिलवेनिया स्थित स्टील कारपोरेशन के अनुसन्धानकेन्द्र ने सम्भव कर दिखाया है। उसने अभी प्रयोगस्वरूप ही इतना बारीक इस्पात बनाया है कि उसके आरपार शीशे की तरह देखा जा सकता है। हाथ में पकड़े हुए ऐसा मालूम होता है मानो रेशमी जाली का रूमाल हो जिसके पार अँगुलियाँ साफ दीख सकती हैं। जंग लगने के खतरे से सर्वथा मुक्त, यह स्टील भवन-निर्माण में क्रांति ला देगा।

सात टन और केवल दो हाथ !

सात टन वजन का लोहे का शहतीर एक ही व्यक्ति सरलता से खींचे लिये जा रहा है। इसमें अवश्य कोई नयी बात है। यह भार न तो किसी पहियेदार ट्राली पर है और न कोई अन्य छिपा साधन ही है। जिन थैलों पर शहतीर फिसलता जा रहा है, वे थैले नाइलॉन के हैं और उनमें हवा भरी है। अत्यधिक मजबूत, ये थैले अधिकतम भार सहने में समर्थ हैं और इनका यह नवीन उपयोग लोकप्रिय सिद्ध हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

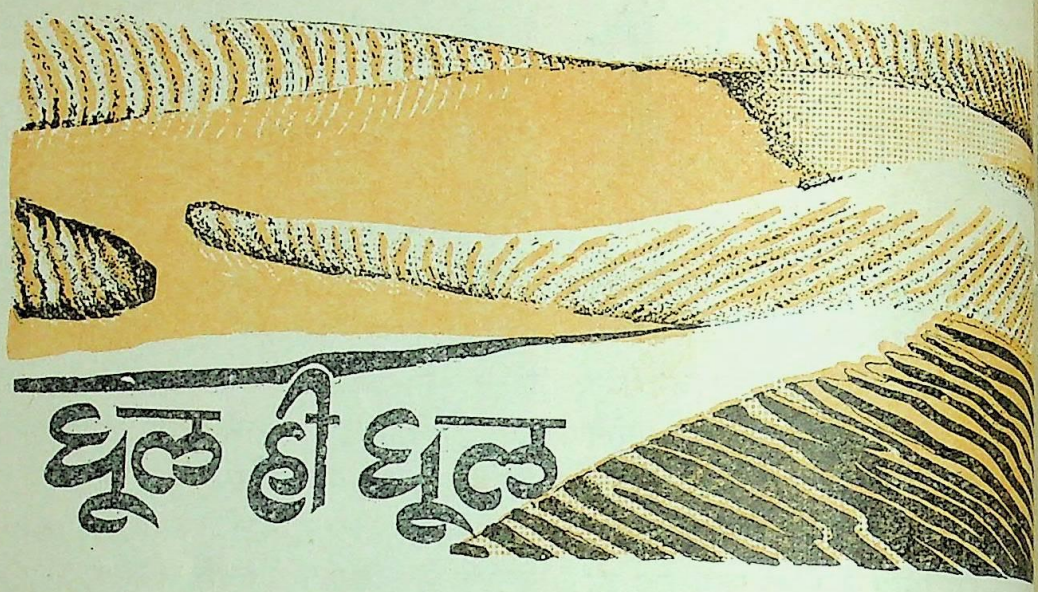

धूल ही धूल

रमेशचन्द्र

सामान्य धूल को इस लेख के लिए वैज्ञानिक भाषा में रजकण भी कहेंगे। इन रज-कणों के अतिरिक्त लकड़ी के बुरादे की रज, आटे की रज, कोयले की रज और विभिन्न धुओं में व्याप्त रजकण तो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं। चूना, पत्थर तथा संगमरमर आदि की खानों में उड़ने वाली रज भी इसी सूची में आ जाती है। ऐसी खानों की रज से उत्पन्न व्याधियों को सिलिकोसिस (silicosis) कहते हैं। इतना ही नहीं, कुछेक भयानक बीमारियाँ फैलाने में भी धूल का बड़ा हाथ रहता है। पान के शौकीन बड़ी शान से जहाँ-तहाँ पीक की पिचकारी दे मारते हैं। इसी तरह टी.बी. अथवा अन्य संक्रामक रोग से पीड़ित व्यक्ति भी चाहे जहाँ थूकता रहता है। उन्हीं में बिलबिलाते रोगाणु धूल के सहारे हवा में उड़कर अन्य स्वस्थ व्यक्ति पर आक्रमण कर देते हैं।

धूल का यह पहलू इतना घिनौना, अस्वास्थ्यकर और अरुचिकर होते हुए भी इसका दूसरा पहलू इतना उपयोगी है कि उसके बिना इस सृष्टि में एक पग भी चलना असंभव है। यह आगे चलकर स्पष्ट हो जाएगा कि सृष्टि में यदि धूल न होती तो आकाश के बदरंग हो जाते, उगते हुए सूरज के लिए की उपमा अस्त हो जाती और कोमल कल्प जगाने को इन्द्रधनुषी आभाएँ न हों सबसे बढ़कर तो यही कि वर्षा की संभा ही न होती क्योंकि वायुमण्डल में व्याप्त कणों तथा महासागरों से उड़कर छोटे लवण-कणों और विद्युतावेशित आयनों (ion आदि से ही संयोग करके वायुमण्डल जल-वाष्प जलपूर्ण मेघ बनकर पुनः पर बरसती है और संसार को नवजी देती है।

यह सच है कि सामान्यतः दृष्टि उठा देखने से वायुमण्डल में ऐसे रजकण नजर आते जैसे कि ऊपर लिखे गये हैं। ये रज इतने सूक्ष्म होते हैं कि सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही जा सकते हैं। इन्हें देखने का एक सरल उ यह भी है कि किसी बन्द अँधेरे कमरे में दर के छिद्र से सूर्य की एक प्रकाश-रेखा दीजिए। आप देखेंगे कि कैसे कोटि-कोटि कण आपस में टकराते, उठते-गिरते अधिकतर गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के नीचे ही बैठते नजर आते हैं। वास्तव में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कणों के इस आधार, के बगैर प्रकाशरेखा अप्रकाशमान ही रहती।

मुख्य स्रोत

वायुमण्डल में रजकण फैलने के निम्न मुख्य स्रोत माने जाते हैं—(१) अधजले ईंधनों से, (२) वन-प्रान्तरों की अग्नि से, (३) आकाशीय उल्काओं से, (४) महासागरों से, (५) ज्वालीमुखी की क्रियाशीलता से तथा (६) भूमि की सतह से।

अधजले ईंधनों से—घरों तथा कारखानों में यह एक सामान्य बात है कि ईंधन पूरी तरह प्रज्वलित होने से पहले काफी देर तक धुँधुआता रहता है। वह धुन्ध, वह धुआँ वायु-मण्डल को रजकणों की एक बड़ी-मात्रा से भरता रहता है। कुम्हारों का भी बर्तन पकाने के लिए जब आवाँ लगता है तब उनके धुएँ से कैसी घुटन छा जाती है! सर्दियों में, जबकि कुहरा भी छाया रहता है, धुएँ की धुन्ध दम घोंटने वाली बन जाती है।

वन-प्रान्तरों की अग्नि से—जंगलों की आग में प्रतिवर्ष लाखों वृक्ष भस्म हो जाते हैं। जंगलों में फैलने वाली आग के कई कारण हो सकते हैं; जैसे—लापरवाही से सुलगती छोड़ी हुई कैम्प-फायर; पिकनिक के पश्चात् अरक्षित छोड़ी हुई सुलगती आग; कूड़े तथा पत्तियों के ढेर को असावधानतापूर्वक जलाना; आकाशीय बिजली का गिरना; लुटेरों की मुठभेड़ में आग्नेयास्त्रों की वर्षा; तथा रेलवे इंजनों से किनारे की सूखी घास में चिनगारियों का गिरना।

आकाशीय उल्काओं से—रातों को तो गिरती हुई उल्काएँ अपने तीव्र प्रकाश के कारण सहज ही नजर आती रहती हैं किन्तु दिन में भी जो बराबर गिरती रहती हैं, वे सूर्य के प्रकाश में नजर नहीं आतीं। उनमें से अधिकांश तो मार्ग में ही विलीन हो जाती हैं। केवल बड़ी उल्काएँ पत्थर के रूप में पृथ्वी तक पहुँच पाती हैं। जो उल्काएँ वायुमण्डल में गैस बनकर छा जाती हैं उनके रजकण क्रमशः वर्षा के साथ पृथ्वी पर बरसते हैं। अनुमान है कि प्रति वर्ष २००० टन से भी अधिक मात्रा में वे रजकण वायुमण्डल में भर जाते हैं। वर्षाजल तथा सागर-तल में अवक्षेपित मिट्टी एवं क्षारों के अध्ययन से इस कथन की पुष्टि होती है।

महासागरों से—वायु के प्रचण्ड झकोरे सागर-फेन को मीलों दूर उड़ा ले जाते हैं। उनके साथ लवण तथा अन्य क्षारों के सूक्ष्म रजकण वायुमण्डल के अन्य रजकणों से मिल जाते हैं। सोडियम क्लोराइड, कैल्सियम क्लोराइड, मैग्नीशियम क्लोराइड तथा पोटासियम ब्रोमाइड जैसे क्षारों की तहें सागर से सुदूरवर्ती क्षेत्रों में पायी गयी हैं। अनुमान है कि प्रति वर्ष लगभग २० करोड़ टन नमक के कण वायुमण्डल में भर जाते हैं।

ज्वालामुखी की सक्रियता से—जब-जब ज्वालामुखी विस्फोट करता है, वह अनेक पदार्थ ऊँचे आकाश में उछाल फेंकता है। उनमें जो भारी होते हैं वे तो पुनः उसके मुहाने के गिर्द एकत्र हो जाते हैं और जो सूक्ष्मकण होते हैं वे मीलों दूर हवा में उतराते हुए पहुँच जाते हैं। उल्लेख है कि १८८३ में इण्डोनेशिया के काराकोटा (Karakota) ज्वालामुखी का विस्फोट होने पर धूल के बादल वायुमण्डल में तीन वर्ष तक छाये रहे थे। कभी-कभी यह धूल आश्चर्यजनक तेजी से दूर-दूर तक पहुँच

उल्काएँ भी धूल की राशि बढ़ाने में बड़ा योग देती है। अधिकांश तो आकाश से गिरते-गिरते अति उच्च ताप के कारण वायुमण्डल में भस्मीभूत हो जाती हैं और राख-धूल में परिवर्तित हो जाती हैं। जो बहुत बड़े खण्ड होते हैं वे बचे-खुचे पृथ्वी पर शिलाखण्ड के रूप में आ गिरते हैं

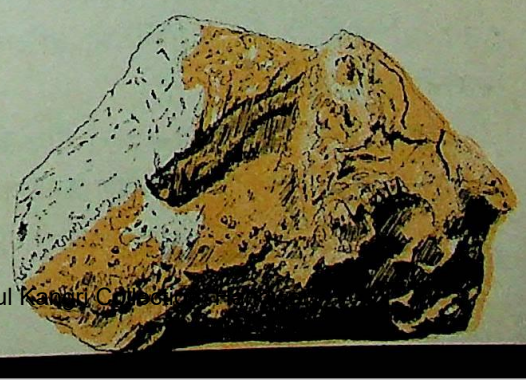

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

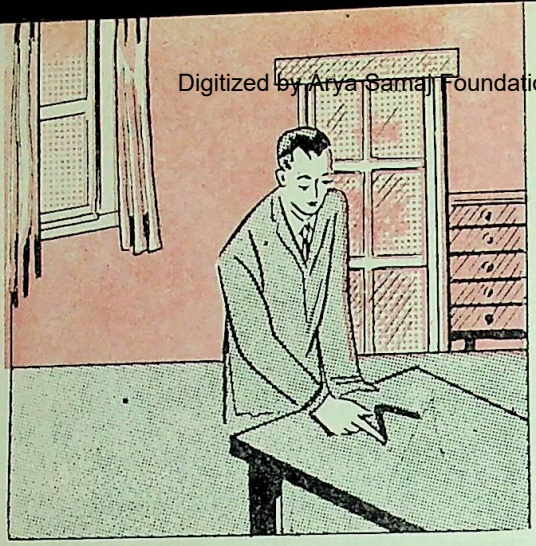

धूल से कहाँ तक बचिएगा ? खिड़कियों, दरवाजों से आती हुई धूल इस मेज पर इस तरह बिछी है कि अंगुली से कोई भी डिजाइन बनायी जा सकती है

जाती है। एक उदाहरण में एक ज्वालामुखी के विस्फोट से ४० घण्टे के अन्दर ही १० मील के क्षेत्र में ४ फुट मोटी तथा ८०० मील के क्षेत्र में २ इंच मोटी धूल की तह जम गयी थी ! ओकलहोमा (Oklahoma) तथा कान्सास (Kansas) के प्रदेशों में १५ से २० फुट मोटी ज्वालामुखीय धूल की परतें खोदकर उस धूल से अनेक बहुमूल्य पदार्थ प्राप्त किये गये थे।

धरती की धूल

हमारी इस धरती की धूल भी वायुमण्डल का काफी भाग घेरे रहती है। मीलों लम्बे रेगिस्तानों, जंगलों और पहाड़ों के खुले विस्तारों से पवन के झकोरे, आँधी, तूफान और बवण्डर आदि धूल के बादल उड़ाते चलते हैं और चाहे जहाँ धूल बिछाते हुए निकल जाते हैं। प्रायः एक-एक क्षेत्र में टनों वजन की धूल उड़कर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पहुँच जाती है। इसके परिणाम भी विनाशकारी निकलते हैं क्योंकि धूल के साथ उपजाऊ मिट्टी भी खिंची चली जाती है धूल के ये बादल कभी-कभी इतने घने होते हैं कि दिन में भी बत्तियाँ जलानी पड़ती हैं।

धूल के ये बादल सैकड़ों-हजारों मील की यात्राएँ सहज ही कर लेते हैं। दक्षिण अमरीका के मैक्सिको की धूल उत्तर अमरीका के उ... सिरे तक और अफ्रीका के सहारा रेगिस्... की धूल उत्तरी यूरोप तक पहुँच जाना ... बात है। रेगिस्तानों की रक्तवर्ण धूल जब ... से मिलकर बरसती है अथवा हिमपात से ... जाती है तब प्रायः ही लोगों को खूनी वर्षा ... लाल बर्फ के नजारे देखने को मिलते हैं।

धूल न होती तो ?

यह अनुमान सही है कि धूल के बगैर ... कुछ धूल ही होता। धूल ही सूर्य के प्रकाश ... शोषित तथा संचित करके हमें संतुलित ... देती है। यदि धूल न होती तो सूर्य के उ... तथा अस्त होने के समय ऐसा मालूम ... मानो किसी ने बिजली का स्विच खोल या ... दिया। उषाकाल और संध्याकाल की मनो... सुषमा धूल की ही आभारी है। धूल-वि... जगत में सूर्य का प्रकाश न तो परावर्तित ... न प्रसारित। यह धूलकणों का ही प्रभाव है ... सूर्य के प्रकाश की विभिन्न रंग-रश्मियाँ ... शोषित होकर आकाश में मुख्यतः नीली ... कभी-कभी बहुरंगी आभाएँ दिखाती हैं।

धूलकणों की महानता तब और भी प्र... होती है जब वर्षा से इनका सीधा सम्... हमारी समझ में आ जाता है। वायुमण्डल ... जल-वाष्प इन्हीं के संयोग से संघनित ... है। जल-वाष्प संघनित होकर ही जलक... परिवर्तित होती है। जल-कणों का समूह ... भरा बादल बनकर हमारी पृथ्वी पर ... की वर्षा करता है। यह तो कल्पना में भी ... आ सकता कि यदि मेघवर्षा न होती तो ... जगत के लिए जीवनधारण कैसे संभव हो...

वायुमण्डल में व्याप्त ये धूलकण एक ... रक्षा आवरण का भी कार्य करते हैं जो ... में सूर्य का प्रचण्ड ताप हम तक केवल सह... मात्रा में ही पहुँचाते हैं और रात को ... धरातल का समूचा ताप ही कहीं न उड़ ... इसकी रक्षा करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

जब मनई मैना से हारा

डा. राबर्ट गासेट अमरीका के प्रसिद्ध मनोचिकित्सक हैं। कुछ दिन उनका यह प्रयोग बड़ी सफलता के साथ चला कि देखें, मैना अथवा नन्हे बालक में कौन जल्दी बोली की नकल करना सीखता है! कुछ दिन बाद वे यह देखकर चिन्तित हो गये कि मैना असाधारण रूप से बहुत कुछ जल्दी सीख गयी है, खासकर साथी मित्रों को गालियाँ सुनाना! खोज करने पर ज्ञात हुआ कि उनके अनजाने, रातों को उनके अन्य सहकारी मैना को गालियाँ सिखाने का अपना अलग प्रयोग करते रहे थे। अब वे इस प्रयोग पर उतर आये हैं कि मैना वह गालियाँ कितनी जल्द भुला सकती है!

म्याऊँ को समझने में दस वर्ष !

पश्चिम जर्मनी की मेक्स प्लान्क इन्स्टीट्यूट के डा. पाल लेहोसेन जीव-मनोविज्ञान के विभागीय अध्यक्ष हैं। दस वर्ष की तपस्या के बाद वे म्याऊँ का जो रहस्य हमारे सामने लाये हैं, वह यह है :

बिल्लियाँ भी मानवों की तरह स्पष्ट सामाजिक स्तरों तथा मर्यादाओं का पालन करती हैं, ऊँच-नीच के भेद-भाव मानती हैं। उच्च जाति की बिल्ली म्याऊँ करे तो समझ लीजिए वह निम्न जाति की बिल्ली को कुछ आदेश सुना रही है। निम्न जाति की बिल्ली की म्याऊँ का अर्थ है, उच्च जाति की बिल्ली को मैत्री का आह्वान, बिल्ली के बच्चे जब मस्ती में होते हैं तभी म्याऊँ करते हैं और बुड्ढी बिल्ली म्याऊँ के द्वारा यह कहती है कि 'मुझे मारना मत, मैं बच्चों जैसी असहाय हूँ!'

सैक्रेटरी पक्षी को क्यों कहते हैं ?

...और, यह सैक्रेटरी पंख फड़फड़ा कर चोंच बन्द कर लेगा! अफ्रीका में पाये जाने वाले इस पक्षी को सैक्रेटरी नाम इसलिए दिया गया है कि कानों के पास इसके पर कुछ अधिक लम्बे और पंखदार कलम की शक्ल के होते हैं। देखने में ऐसा मालूम होता है मानो पुराने ढंग का कोई मुनीम कान में कलम खोंस कर बैठा हो। गिद्ध से मिलता-जुलता यह पक्षी स्वभाव और रहन-सहन में भी गिद्ध जैसा ही है। अधिकतर अपना शिकार यह दबे पांवों चलकर झपटता है। सर्प भी इसका एक आहार है। सर्प को यह या तो पंखों की चपेट से अथवा ऊँचे उड़कर वहाँ से पत्थर पर पटक कर मार देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ का मस्तिष्क गर्व से ऊँचा था।

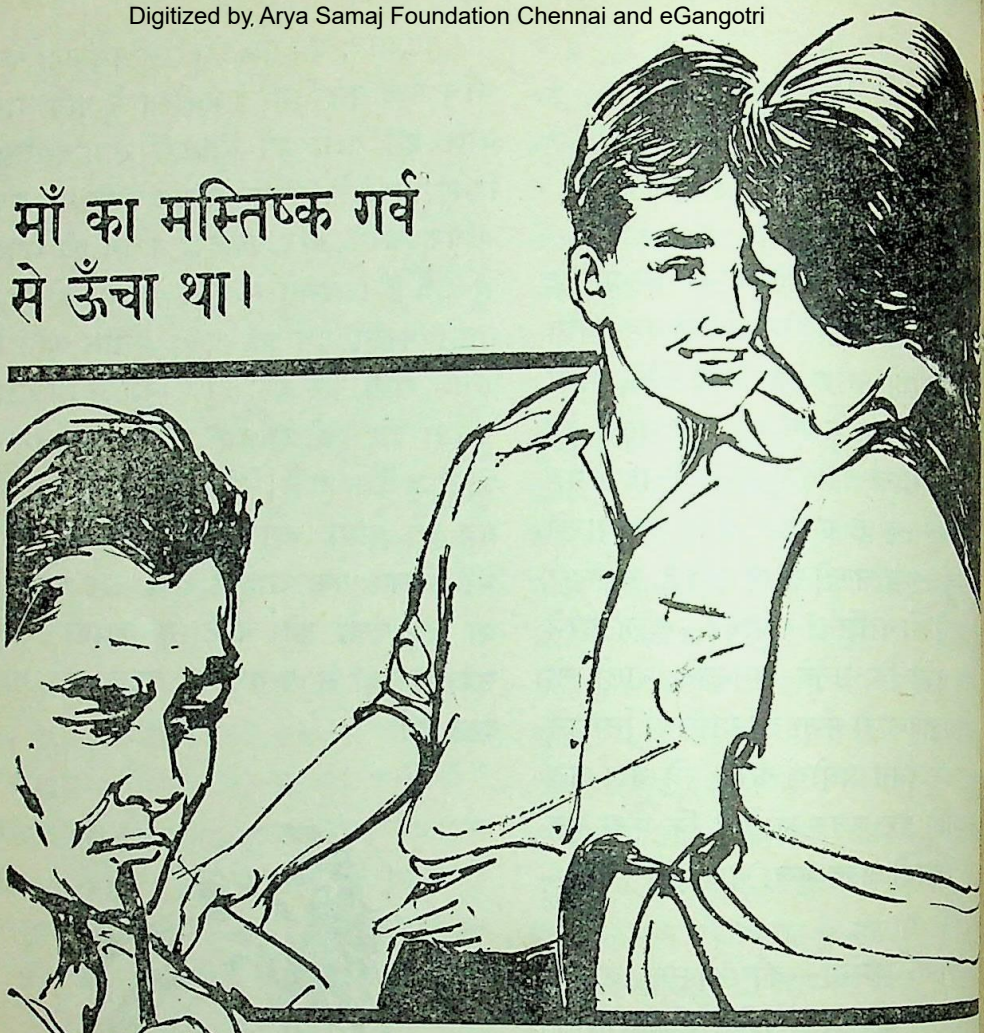

और बाप की गर्दन शर्म से झुकी थी।

उनके लड़के ने मैट्रिक की परीक्षा में ७०% अंक पाये थे। सामान्यतया ऐसे अवसरों पर खुश रहते हैं।...लेकिन बाप अपने आप पर झुँझलाते हुए कहता है, "मैं कैसे उसे बताऊँ कि मेरे पास इतना अधिक रुपया नहीं है जिससे मैं उसे कालेज में दाखिल करा सकूँ। आज बाप की यह दशा न होती यदि उसने एक शिक्षावृत्ति बीमा पालिसी ले ली होती। लड़के और लड़की को ऊँची शिक्षा दिलाने का यह सब से **विश्वसनीय मार्ग** है। मान लीजिए, आपकी आयु २५ वर्ष और आपके लड़के की १ वर्ष की है तो आपको मास २० रुपये ३३ नये पैसे देने पड़ेंगे। और जब आपके लड़के की आयु १८ वर्ष की जायेगी तब उसे पाँच वर्ष तक हर छमाही पर ५०० रुपये मिल जायेंगे। **यदि कोई बीमे पूरे प्रीमियम अदा न कर सके और बच्चे के सिर से उसके प्यार का छत्र उठ जाये तोभी हर छः महीने पर पाँच सालों तक उस बच्चे को यह रकम** मिलती रहेगी। वचत का और कोई तरीका ऐसा लाभ नहीं दिला सकता। अपने लड़के के भविष्य को भाग्य पर न छोड़िए। तुरंत ही उसके लिए शिक्षावृत्ति बीमा पालिसी ले लीजिए ताकि वह इस रकम से ऊँची शिक्षा पा सके और स्पर्धा से भरे हुए इस विश्व में कदम रख सके।

जीवन बीमा सुरक्षा का बेज़ोड़ साधन है।

ASP/LIC-2-11. Hindi

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणियों में सहकारिता

प्राणियों में सहकारिता कहीं-कहीं अत्यन्त विलक्षण पायी जाती है और प्रकृति का वैचित्र्य यह है कि वह विलक्षणता उनमें जन्म-जात होती है। हाथियों में यह काफी विकसित रूप से पायी जाती है। हाथियों को जब यह पता चलता है कि उनके झुण्ड की कोई हथिनी प्रसवकाल के निकट है तो वे कम से कम एक मील लम्बा चौड़ा ऐसा प्रसूति-घेरा बना लेते हैं जिसमें किसी को भी प्रवेश नहीं करने देते। रात-दिन अपनी हुंकारों से वातावरण गुँजाये रहते हैं ताकि शत्रुओं, विशेषत: बाघ आदि को निकट आने का साहस न हो। प्रसव के समय एक अन्य हथिनी प्रसूता की सखी बन जाती है और अन्त तक मित्रता निभाती है। सद्यजात शिशु की वे दोनों देखभाल करती हैं और दाई रूप में आयी हुई हथिनी अपनी सखी के आराम का पूरा खयाल रखती है। इतने पर भी शेर, चीते प्राय: २५% शिशुओं का शिकार कर ही लेते हैं। इसके लिए वे पहले माता-हथिनी को भगाते हैं, तत्पश्चात् दाई हथिनी को भी आतंकित करके बच्चे को उठा ले जाते हैं।

विचित्र जन्तुओं की अनसुनी विचित्रताएँ

निम्न जन्तुओं के बारे में प्रचलित मान्यताएँ यथार्थताओं से कितनी परे हैं, यह जान लेना आवश्यक है :

बसिलिस्क (basilisk) एक दक्षिण अमरीकी छिपकली जैसा रेप्टाइल है। माना जाता है कि यह पानी के ऊपर उड़कर एक ही फूँक में अपने शत्रु का शिकार कर लेता है। सच यह है कि पानी के ऊपर सरपट दौड़ लेना ही इसकी विशेषता है। दौड़ने की तेजी में कभी-कभी तो यह एकाध मील तक भी पानी पर इस तरह सरपट भागता है मानो सड़क पर घोड़ा दौड़ रहा हो। दौड़ने का काम यह केवल अपने पिछले पाँवों से ही लेता है।

शुतुरमुर्ग के लिए माना जाता है कि मौत का पीछा पड़ने पर यह रेत में गर्दन छिपा लेता है और मान लेता है कि मौत टल गयी। यह मान्यता कहीं-कही तो कहावत का भी रूप ले चुकी है। तथ्य यह है कि दूर से संकट का आभास होने पर अपनी ऊँची लहराती गर्दन को छिपाने भर के लिए यह जमीन से सटकर लेट जाता है किन्तु आक्रमणकारी के निकट आने पर तो यह अन्य प्राणियों की भाँति जान बचाकर भाग ही खड़ा होता है।

'छछूंदर जैसा अंधा', एक लोकोक्ति बन चुकी है किन्तु कितनी निराधार है! यह सच है कि छछूंदर स्पष्ट नहीं देख सकते, किन्तु दिन और रात का अन्तर, अँधेरे-उजाले का फर्क तो वे समझ ही लेते हैं!

रीछ शीत-निद्रा में खो जाते हैं, यह भी गलत है। यह अवश्य है कि अन्य प्राणियों की अपेक्षा उत्तर ध्रुवीय रीछ शीतकाल में अधिकांश सोया ही रहता है किन्तु शीत-निद्रा बिलकुल ही भिन्न वस्तु है। सामान्यत: लम्बी नींद सोने में रीछ की शारीरिक अन्तर्क्रियाएँ यथावत् चलती रहती हैं और वह बीच-बीच में एकाध दिन के लिए जाग भी उठता है। इसके विपरीत, शीत-निद्रा में तो प्राणी की शारीरिक क्रियाएँ भी मानो छुट्टी ले लेती हैं और इतनी मन्द हो जाती हैं कि प्राणी को उठाकर पटक दें तो भी वह नहीं जगेगा!

वृक्ष ही मोटर गेराज भी, शीतल कक्ष भी

विक्टोरिया-प्रपात के निकटवर्ती जंगलों में बाओबाब (Baobab) नामक वृक्ष काफी विशालकाय होते हैं। ७० फुट ऊँचे और ११-१२ फुट व्यास के मोटे तनों को खोखला करके कहीं तो गर्मी से बचने के लिए उन्हें शीतल-कक्षों में परिणत कर लिया गया है और कहीं मोटरें खड़ी करने के लिए गेराज में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

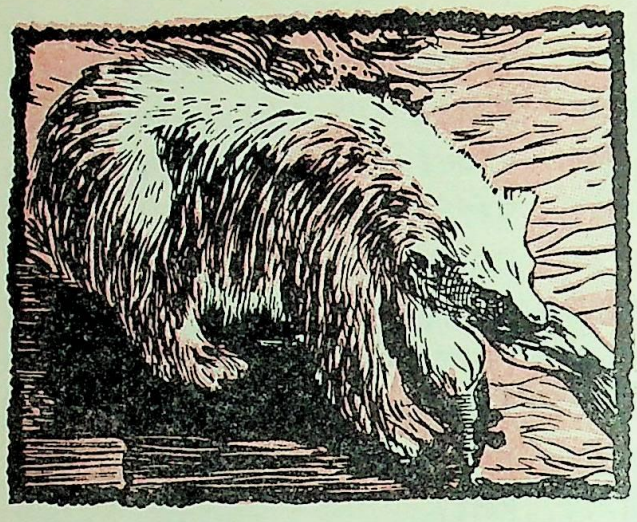

उत्तर-ध्रुव का रीछ

विश्वम्भरदत्त नौटियाल

संसार में अनेक विचित्र प्राणी हैं। उत्तर ध्रुव का रीछ भी अपने आकार-प्रकार और चरित्रगत विशेषताओं में कुछ कम विचित्र नहीं है। यह अनन्त हिमाच्छादित उत्तर ध्रुव में रहता है। इसे पानी का रीछ भी कहते हैं।

यह अपने विशाल शरीर और अपरिमित शक्ति के कारण मांसाहारी जानवरों में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसकी लम्बाई ९½ फुट, ऊँचाई ८½ फुट और भार १६०० पौण्ड तक होता है। विशालकाय शरीर, लम्बा सिर, बलिष्ठ हाथ-पाँव, वृहत गर्दन और श्वेत शरीर पर काली नाक के द्वारा यह दूर से ही पहचाना जा सकता है। इसका पुट्ठों वाला पिछला भाग कन्धों की अपेक्षा कुछ ऊपर उठा होता है। यह अपने पाँवों को लम्बे वृत्त में सरलता से घुमा सकता है। तैरने में इसके पाँव बहुत सहायक होते हैं। इसकी आँखों की पलकों पर ऐसी झिल्ली रहती है जो बर्फ की चकाचौंध तथा हिम-कुहासे में धूप के चश्मे का काम देती है। इसके पाँवों के तलवों पर छोटे-छोटे रोयें होते हैं जो बर्फ की फिसलनें वाली सतहों पर चलने में सहायक होते हैं।

यह रीछ तैरने में बड़ा कुशल है। बर्फीले हिमसागर में यह २५ मील प्रति घण्टे की से तैर लेता है। यह पानी में निस्पंद ह भी लम्बे समय तक तैरता रह सकता इसका कारण यह है कि इसके तलवों रोयें और झिल्ली पर तेल की ग्रन्थियाँ चर्बी की मोटी तह विशेष सहायक होती

अदम्य शक्ति और तैरने की कला के ही प्रकृति ने इसे सूँघने की भी अद्भुत श दी है। अपनी असाधारण तीव्र दृष्टि से लगभग एक मील की दूरी तक देख लेत किन्तु सूँघता उससे भी दूर तक है। की चर्बी को तो यह २० मील की दूरी सूँघ लेता है! यही गुण प्रायः इसके संकट का भी कारण बन जाता है शिकारी इसे अपनी ओर आकर्षित कर लिए सील की चर्बी जलाते हैं। यह उसके लोभ में उसी ओर जा पहुँचता है अपने प्राणों को संकट में डाल बैठता सैलानी फोटोग्राफर भी इसका चित्र लेने लिए सील की चर्बी ही जलाते हैं।

सील और सफेद बत्तख इसके मुख्य भ रहते हैं। जब ये दोनों इसे सरलता से नहीं होते तब इसे घास पर निर्भर रहना है। बत्तखों के झुण्ड के साथ छिपे-छिपे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सील के शिकार में निकला हुआ यह रीछ-युगल तैरते हुए हिम-खण्ड पर चढ़ रहा है

थोड़ी दूर तो तैरता जाता है किन्तु ज्योंही उन्हें इसका पता चलता है वे तुरन्त डुबकी लगा जाती हैं। साथ ही यह भी डुबकी लगाकर एकाध बत्तख को मुँह में दाब लाता है।

सील के शिकार करने का इसका ढंग निराला है। सील की टोह में यह बर्फ की चट्टान की ओट में बड़ी सावधानी से लेट जाता है और दूर से ही पहचानी जाने वाली अपनी काली नाक को सफेद पंजों में छिपा लेता है। ज्योंही सील खुली वायु के लिए सिर बाहर निकालती है, यह उस पर धावा बोल देता है और अपने मजबूत तथा नुकीले पंजों से उसे समाप्त कर देता है। कभी-कभी यह बर्फ के अन्दर तैरती सील के गड्ढों के पास एक विचित्र आवाज करता है जिससे सील डर के मारे भागने का प्रयास करती हैं किन्तु यह एक न एक को धर दबोचता है।

इसे अपने शत्रुओं से भी बहुत सावधान रहना पड़ता है। व्हेल तथा वालरस इसके जानी दुश्मन हैं। वालरस शरीर और शक्ति में इससे तिगुना होता है। वह इतना शक्तिशाली होता है कि इस विशालकाय रीछ की उसके सामने एक नहीं चलती और वह इसे पकड़कर इसकी बोटी-बोटी उड़ा देता है। जहाँ तक बुद्धिमानी का प्रश्न है, वालरस पिछड़ा ही रहता है। दिन के समय जब आलसी वालरस झपकी लिए रहता है तब रीछ बड़ी फुर्ती और सतर्कता से बर्फ के शिलाखण्डों को इसके सिर पर लुढ़का देता है और जब वालरस संज्ञाशून्य हो जाता है तब यह उसे समाप्त करके अपने साथियों सहित भोज में जुट जाता है।

इसकी मादा अपनी संतान के प्रति विशेष वात्सल्य रखती है। पाँच वर्ष की आयु से नर-मादा गृहस्थ जीवन प्रारम्भ कर देते हैं। जून-जुलाई इनका प्रजननकाल होता है। मादा गर्भवती होने पर नर से पृथक् हो जाती है। जनवरी मास के लगभग मादा एक या दो बच्चों को जन्म देती है। इसका शिशु जन्म के समय शरीर में दस इंच और भार में दो पौण्ड होता है। उसका पालन-पोषण यह तब तक करती है जब तक कि वह अपने पैरों पर खड़ा न हो जाए। मार्च-अप्रैल तक मादा अपनी माँद में ही रहती है। नवजात शिशु को अपने रोयेंदार पेट से सटाकर रखती है। १७ महीने में इसका शिशु २०० पौण्ड वजनी हो जाता है। तत्पश्चात् भी कम से कम दो साल तक यह उसे शिकार की शिक्षा देती है। उस दौरान में वह शिशु माता के दूध पर ही विशेष आश्रित रहता है।

आर्थिक दृष्टि से यह बड़ा महत्त्वपूर्ण प्राणी है। इसका मांस स्वादिष्ट तो होता ही है, खाल भी कम उपयोगी नहीं है। इसकी खाल के कोट, और दाँत तथा हड्डियों की फैन्सी वस्तुएँ बनती हैं। इसकी खाल को कमरों में शोभा के लिए लटकाया जाता है।

यह रीछ अधिकतर ध्रुवीय प्रदेश, उत्तरी अमरीका, अलास्का तथा उत्तरी लेब्रोडोर में पाया जाता है। सर्दियों में यह दक्षिण की ओर उतर आता है और वसन्त में पुनः उत्तर की ओर चला जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नरेन्द्रमोहन माहेश्वरी

समुद्र में डूबे हुए जहाजों के मलबे को काटने, छाँटने तथा ऊपर लाने का कार्य गहरे गोताखोरों का ही रहता है। पिछले वर्षों तक इस कार्य में अत्यधिक कठिनाई रहती थी कारण कि प्रायः ही यह कार्य काफी गहराई में करना पड़ता था और धातुओं को काटने के लिए पुराने औजार उपलब्ध होने की वजह से गोताखोर शीघ्र ही थक जाता था तथा काम भी अधिक नहीं हो पाता था। कई घण्टों के कठिन परिश्रम के पश्चात् २-२॥ फुट तक ही कटाई हो पाती थी।

पुराने से नये की ओर

इधर के वर्षों में उन पुराने साधनों को छोड़कर नये साधनों को अपनाया जा रहा है। गोताखोरों के लिए अब तक जो काम थका देने वाला था वह अब एक प्रिय उद्योग बन गया है। नये साधनों से कम परिश्रम में अधिक श्रम कर लिया जाता है। प्रथम महायुद्ध से कुछ ही पहले ऑटोजेन (autogene) ज्वाला द्वारा धातु छेदने का कार्य प्रारम्भ किया गया और वह ज्वाला अत्यन्त उपयोगी पायी गयी। वह ज्वाला चाहे जैसी कठोर धातु तथा स्टील आदि को अपने स्पर्श बिन्दु पर पिघलाकर काटती चली जाती है। आज गोताखोरों को आरी, छेनी, हथौड़े जैसे पु औजारों से सिर मारने की जरूरत नहीं इस ज्वाला की नोक पर वह अपना कार्य कर लेता है। जो स्टील प्लेट पहले घण्टे २-२॥ फुट कटती थी वह अब मिनटों में ली जाती है।

पानी में आग

पानी में आग हो या आग में सामान्यतः जीत पानी की ही रहेगी आग बुझकर रह जाएगी। विज्ञान ने सामान्यता में भी विशेषता उत्पन्न कर और अब पानी में आग लगाना इस सत्य है कि गोताखोर एक विशेष लैम्प पानी में उतरता है और यों काम शुरू देता है मानो सूखी जमीन पर खड़ा युद्धकाल में ऐसे लैम्प का आविष्कार जा चुका था। तब से गोताखोर का कार्य भी सरल हो गया है।

यह आविष्कार निस्सन्देह चमत्कार ही साबित हुआ। प्रारम्भ में तो ३५०° तक की इस तप्त ज्वाला को से बचाये रखने के लिए एक ऐसे रक्षक का उपयोग किया जाता रहा जिसमें अत्यधिक दाब की संपीड़ित वायु अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेग से पानी को दूर किये रहती थी। तत्पश्चात् उसमें और भी सुधार होते-होते उस आवरण की आवश्यकता ही मिटा दी गयी।

समय के साथ-साथ इसकी विधि और साधनों को और भी संशोधित करते रहने की आवश्यकता बनी रही। प्रारम्भिक प्रयोगों में जैसे धातु छेदने तथा धातुसंधान के लिए एक गोताखोर गोले का भी उपयोग किया जाता रहा किन्तु उससे सफलता कम प्राप्त हुई और विविध कठिनाइयों के निवारण में उसकी क्षमता भी कम पायी गयी। अतः ज्वाला को एक ऐसे पाइप में रखकर प्रयोग करना पड़ा जिसका मुँह प्लेट की सतह पर वैकुअम पाइप की तरह जम जाता था। उसमें यह कठिनाई प्रतीत होने लगी कि अन्दर ही अन्दर ज्वाला क्या काम कर रही है—अथवा कर भी रही है या नहीं, यह मालूम नहीं हो पाता था। साथ ही साथ उसका मुँह ऊबड़-खाबड़ सतह पर जम भी नहीं पाता था।

अनेक कठिनाइयों का एक हल

इन सब कठिनाइयों का हल पेइलन विधि (Peillon process) ने प्रस्तुत किया। अनेक प्रयोगों के पश्चात् यह निर्धारित किया गया कि स्थिर विद्युत-चाप की ज्वाला (steady electric arc flame) पानी के अन्दर भी अपने चारों ओर धात्विक वाष्प (metallic vapour) का ऐसा अभेद्य आवरण खड़ा किये रहती है जिसमें पानी प्रवेश कर ही नहीं सकता। जब से पानी में आग लगाने का यह नुस्खा अचूक साबित हुआ तब से पानी की तह में काम करने वालों को मानो वरदान मिल गया। फिर तो चाहे पानी का बाँध हो, झील हो, बन्दरगाह के निकट की खाड़ी हो अथवा समुद्र हो, पानी पर आग की इस विजय ने मरम्मत-कार्यों की अनन्त संभावनाओं के द्वार खोल दिये!

इस विधि में निहित एक बड़े खतरे का निवारण भी आवश्यक था। पानी से बाहर तो इलेक्ट्रिक वेल्डर रबर-आवरित यन्त्रों से बेखटके काम कर सकता है किन्तु पानी के अन्दर रबर के दस्ताने अथवा रबर-आवरित हैण्डिलों पर विद्युत-पृथक्कारी विशेष मसालों का आवरण चढ़ाना पड़ा।

कार्यकुशलता अत्यावश्यक

साधनों की सुलभता और क्षमता अवश्य अपना काम करती रहें किन्तु गोताखोर मैकेनिक की कार्य-कुशलता सर्वप्रथम आवश्यक है। उसे अपने यन्त्र-संयन्त्रों का तथा अपने कार्य का सूक्ष्म ज्ञान होना एक अनिवार्यता है। युद्ध के दौरान में तथा युद्धोत्तर काल में इनका कार्य बहुत बढ़ जाता है। इनके कार्य, क्षमताएँ तथा साधनों का उत्तरोत्तर विकास होने के साथ-साथ अब यह आवश्यक नहीं

चारों ओर पानी है फिर भी बीच में ३०००°C के उच्च ताप की यह ज्वाला डूबे हुए जहाज की इस्पाती प्लेट को काटने का अपना काम किये जा रही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा कि डूबे हुए जहाजों को अत्यधिक परिश्रम से बाहर खींचा जाए, धूप-हवा में सूखने दिया जाए तब कहीं मरम्मत की जाए। अब तो एक प्रकार से पानी के अन्दर ही गोता खोरों का वर्कशाप रहता है।

यह बहुमूल्य वरदान

आज के युग में विशेषतः युद्धोत्तर काल के लिए इन कार्यों की सफलता और सम्पन्नता अत्यधिक उपयोगी वरदान सिद्ध हो रही है। युद्ध के दौरान में खाना, कपड़ा, हथियार आदि रसद से भरे जहाज प्रायः ही टारपीडो तथा बम आदि की मार से असहाय होकर समुद्र के पेट में जा समाते हैं। ऐसे जहाजों को उभारना अथवा आवश्यक मरम्मत कार्यों के पश्चात् पुनः कार्य के योग्य बनाना अब उतना कठिन नहीं जितना इन आविष्कारों के पूर्व था। पूर्व-काल में ऐसे कार्यों के लिए जितने दिन-महीने लगते थे, लगभग उतने ही घण्टे आज नवीन विधियों द्वारा लगते हैं।

अन्य उपयोग भी

इसका कार्यक्षेत्र केवल जहाजों मरम्मत तक ही सीमित न समझा जाए। बड़े बाँध, पुल, सुरंगें, बन्दरगाह के कि तथा पानी में डूबी हुई पाइप लाइनें सभी दायरे में आ जाती हैं। इनके वे भाग निरन्तर पानी में रहते हैं, समय-समय मरम्मत के पात्र हो ही जाते हैं। तब सहायता को यही विधि काम आती है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता एक समय के दुरूह और दुर्गम कार्य को ऐसी विधि ने सहज कर दिखाया है ४०००°C की तीव्रतः तप्त अग्निशिखा पानी में खेलती रखकर धातु-छेदन तथा संधान के कार्य निर्बाध किये जाती है।

समाचार पत्र पंजीयन (केन्द्रीय) कानून, १९५६ के आठवें नियम के साथ पढ़ी जाने प्रेस तथा पुस्तक-पंजीयन कानून की धारा १९ 'डी', उपधारा 'बी' के अन्तर्गत अपेक्षित विज्ञान-ज्योति नामक समाचार-पत्र से सम्बन्धित स्वामित्व और अन्य बातों का विवरण—

प्रपत्र ४

१. प्रकाशन का स्थान :	आगरा
२. प्रकाशन की आवर्तिता :	मासिक
३. मुद्रक का नाम :	जगदीश मेहरा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	हास्पिटल रोड, आगरा
४. प्रकाशक का नाम :	जगदीश मेहरा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	हास्पिटल रोड, आगरा
५. संपादक का नाम :	शंकर मेहरा
राष्ट्रीयता :	भारतीय
पता :	हास्पिटल रोड, आगरा
६. कुल पूँजी के एक से अधिक शेयर वाले भागीदार :	मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा

मैं, जगदीश मेहरा, घोषित करता हूँ कि मेरी जानकारी और विश्वास के अ ऊपर दिये गये विवरण सही हैं।

दिनांक : २९ फरवरी, १९६४

जगदीश मेह
(प्रकाशक के हस्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यारे बच्चो !

इस मार्च अंक के साथ ही तुम में से अनेक के परीक्षा के दिन भी बिलकुल निकट आ लगेंगे। आशा है, तुम सबने वार्षिक परीक्षा के लिए भरपूर तैयारियाँ कर रखी होंगी। तुम्हारे पत्रों की मुझे प्रतीक्षा रहेगी।

नये वर्ष का प्रथम अंक (फरवरी अंक) तुम सबों ने बहुत सराहा है और तद्विषयक तुम्हारे पत्र हर डाक से बराबर आ रहे हैं। उक्त अंक में **'प्लैनेटेरियम'** लेख के प्रशंसक हैं—बीकानेर से श्रीकृष्ण कोठारी (८०११) तथा लखनऊ से हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१)। पुष्कर से निरंजनप्रकाश माथुर (३६१६) ने **'गीयर'** तथा **'विचित्र धानीयुक्त प्राणी'** लेख पसन्द किये हैं। आगरा से शिम्भूशरण (१५०४) तथा शशिकान्त गुप्ता (१०६६४) ने **'नाइट्रोजन'** और **'मल्चिंग'** पर दी गयी सामग्री नवीन तथा रोचक बतायी है और प्रचलित विषयों पर ऐसी ही नवीनता देते रहने का आग्रह भी किया है। मद्रास से उदगीथराव (९७७५); इटारसी से रविन्दर सिंह (३८१७) तथा सक्ती से परमानन्द पटेल (५९६) के मत से **'प्रकृति संतुलन···'** और **'उड़ते पंछी, देश पराये'** अत्यन्त मनोरंजक रहे।

आपके प्रश्न प्रति मास बड़ी संख्या में मेरे पास आते हैं। उनमें नवीनता, उपयोगिता और ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से बहुत थोड़े ही प्रकाशन योग्य निकल पाते हैं। अतः सरल प्रश्नों के स्थान पर नवीन और ज्ञानविज्ञान बढ़ाने वाले प्रश्न ही भेजने चाहिए।

परीक्षाओं में तुम्हारी सफलता के लिए अग्रिम शुभकामनाओं सहित,

तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४८ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

महेन्द्रकुमार गुप्त (५८६) इलाहाबाद, केवलकृष्ण गुप्ता (४७२६) पिलानी, मंजु गुप्ता (७२९०) लखनऊ, शशीकान्त गुप्ता (१०६९४) आगरा, आलोक अदावाल (१०७९०) इलाहाबाद।

द्वितीय पुरस्कार

वीरप्रकाश (११९४) गोरखपुर, कृष्णसिंह पुण्डीर (१२८९) नगला पिथौरा, सुधीरकुमार राठौर (१६१९) आगरा, संजय गुप्ता (३४६७) लखनऊ, सत्यपाल अग्रवाल (५३२३) दिल्ली, नरेश मजीठिया (७५५६) अमृतसर, वल्लभदास पारेख (७७५८) उदयपुर, नरेन्द्र बंसल (७८२८) आगरा, वाधूमल (८६४७) कटनी, हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१) लखनऊ, कल्पना श्रीवास्तव (११८६७) लखनऊ, अनिल मेहरा (१२२३८) लखनऊ।

तृतीय पुरस्कार

भुवनेश्वर गुप्ता (९१४) आगरा, प्रमोदकुमार शर्मा (११८५) इलाहाबाद, आनन्दनारायण श्रीवास्तव (२५२७) लखनऊ, निरंजनप्रकाश माथुर (३६१६) पुष्कर, रणजीतसिंह (४७२४) नई दिल्ली, शान्तिलाल सरणोत (६४७४) उदयपुर, पुरुषोत्तमकुमार सूरी (७३४१) जगदलपुर, ललितकुमार राव (७७३३) जगदलपुर, सज्जनसिंह सुराना (७६८१) उदयपुर, मोहनी शहानी (७८२७) रांची, वेंकटलाल माहेश्वरी (९९९९) कटनी, शीला गोयल (१००३६) जबलपुर, सतीशचन्द्र कान्त मिश्रा (१००४९) मेरठ।

क्रम : प्रतियोगिता संख्या ५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

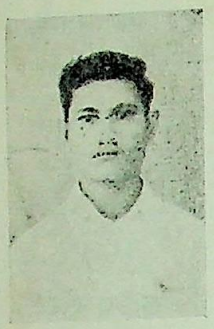

बृजमोहन
(स. सं. ६५६०)

महेशचन्द्र
(स. सं. ७३५५)

अरुणकुमार
(स. सं. ८३४२)

मनोहर ठाकुर
(स. सं. ८३९८)

७९३१ राजकिशोर (१८) खरगू चाँदपुर, ३२ विजयकुमार (१५) लुधियाना, ३३ मोसेस मारगन (१२) मथुरा, ३४ सुरेश (१४) हरदा, ३५ कौशलकिशोर (१७) श्रीगंगानगर, ३६ देवीकिशन (१४) विदिशा, ३७ पी. वी. उपाध्याय (१३) विदिशा, ३८ जगन्नाथप्रसाद (१३) विदिशा, ३९ नरेशचन्द्र (१४) नैनीताल, ४० विनोदकुमार (१४) नैनीताल, ४१ रामशंकर (१५) बिलासपुर, ४२ सुरेन्द्रकुमार (१३) छपरा, ४३ राजकुमार (१६) दिल्ली, ४४ रवीन्द्रकुमार (१३) इन्दौर, ४५ उदितनारायण (१२) कारजपट्टी, ४६ त्रियुगनारायण (१२) कारजपट्टी, ४७ रामप्रसाद (१४) किशनगंज, ४८ नन्दकुमार (१४) पूर्णियाँ, ४९ प्रदीपचन्द्र (१५) रायपुर, ५० बृजेशचन्द्र (१६) फर्रुखाबाद, ५१ रमाकर (१३) चाईबासा, ५२ पुष्कर (१२) चाईबासा, ५३ ज्योतिस्वरूप (१५) वाराणसी, ५४ रामशंकर (१६) कुरहनी, ५५ वीरेन्द्रकुमार (१२) गंगेया, ५६ रघुनाथराम (१५) आरा, ५७ सतीशकुमार (७) तेलाड़ी, ५८ शोभनलाल (१४) सन्थाल परगना, ५९ सुभाषचन्द्र (१५) नांवा, ६० विजयमोहन (१२) हदगाँव, ६१ प्रबोध (१३) कोटा, ६२ मुकुटदेश (१५) दिल्ली, ६३ शेखरदेव (११) जियाराम राघोपुर, ६४ देवेन्द्रकुमार (१०) सिमराही, ६५ यशोदानन्द (१५) मधुबनी, ६६ ओमप्रकाश (१८) सिकन्दा, ६७ प्रवीणकुमार (१३) अजमेर, ६८ अशोककुमार (१४) चाईबासा, ६९ बब्बन (१४) कोपा, ७० जियाउद्दीन (१५) चिरकुण्डा, ७१ लक्ष्मीनारायण (१८) रायपुर, ७२ नरेन्द्रप्रताप (१५) सहजनवाँ, ७३ रामचरनलाल (१६) जयपुर, ७४ रमाकान्त (१३) लखनऊ, ७५ सतीशचन्द्र (१४) इलाहाबाद, ७६ किसुन (१६) टाटानगर, ७७ रमाकान्त (१५) भाटापारा, ७८ विजयकुमार (१६) अमृतसर, ७९ शैलेष (११) आगरा, ८० गिरधरगोपाल (१९) कोटा, ८१ देवेन्द्रनाथ (१३) लखनऊ, ८२ अखिलेश्वरदयाल (११) लखनऊ, ८३ सीताराम (१५) हुगली, ८४ भोलासिंह (११) चेरों, ८५ हेमकान्त (१८) टटुआर, ८६ मदनगोपाल (१३) भदवरगढ़, ८७ गुरशरनसिंह (१५) नई दिल्ली, ८८ गोपालकृष्ण (१४) भोपाल, ८९ सत्यनारायण (१३) चित्तौड़गढ़, ९० उमेशचन्द्र (१३) पटना, ९१ गोविन्दप्रसाद (१५) नीमच, ९२ पार्वती कुमारी (१३) मुन्डारा, ९३ सुभाषचन्द्र (१५) अहमदाबाद, ९४ प्रेमराज (१८) जयपुर, ९५ सुन्दरलाल (१६) रायबरेली, ९६ पूर्णरंजन (१२) पटना, ९७ रविन्द्रकुमार (१३) धौलपुर, ९८ हरेकृष्ण (१६) बलुआ बाजार, ९९ राजेन्द्रनाथ (१७) वाराणसी, ८००० आदर्श (१३) पटियाली, १ हेमराज (१५) धमतरी, २ कु. प्रमिला (११) अकोला, ३ अशोककुमार (१५) सागर, ४ विजयकान्त (१३) मसौढ़ा, ५ राजशेखर (१४) रतैढ़ा, ६ उदयशंकर (१४) नवगछिया, ७ विजयकुमार (१४) वैद्यवाटी, ८ गौरीशंकर (१६) डुमरी, ९ मनपाल (१८) बड़ौत, १० गिरधारीलाल (१४) बीकानेर, ११ सुशीलकुमार (१६) बीकानेर, १२ श्रीकृष्ण (१४) बीकानेर, १३ श्यामलाल (१४) गंगाशहर, १४ प्रदीपकुमार (१४) सीतापुर, १५ रमेशचन्द्र (१५) कानपुर, १६ जसपाल (१५) बुलन्दशहर, १७ काजीमुहम्मद (१५) बुलन्दशहर, १८ मशकूर-आलम (१३) बुलन्दशहर, १९ नरेन्द्रकुमार (१५) जयपुर, २० धर्मपाल (१६) मेरठ, २१ अशोककुमार (१६) फारबिसगंज, २२ धर्मनाथप्रसाद (२०) मुंगेर, २३ इन्द्रप्रकाश (१४) चित्तौड़गढ़,

दिनकर
(स. सं.

हसमुखकु
(स. सं.

अवधेशकु
(स. सं.

सुरेश
(स. सं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

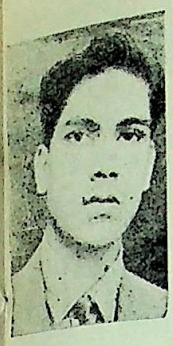

अमरचन्द्र कोठारी
(स. सं. ९३२३)

विष्णुकुमार
(स. सं. ९६०९)

वेदप्रकाश
(स. सं. ९७७०)

रमेशचन्द्र
(स. सं. १०१९२)
मार्च १९६४

२४ सुजितकुमार (१४) चक्रधरपुर, २५ देवव्रत (१४) कोठरीव, २६ बजरंगलाल (१५) जाटाबांस, २७ मधुसूदन (१७) झालावाड़, २८ बंशराज (१५) वाराणसी, २९ मृत्युञ्जय (१४) लखीमपुर खीरी, ३० रजनीश (११) नई दिल्ली, ३१ सुरेशनारायण (१३) अजमेर, ३२ महावीरप्रसाद (१६) आगरा, ३३ मुक्तेश्वर (१६) वाराणसी, ३४ राधाकृष्ण (१५) फारबिसगंज, ३५ दिलीपकुमार (१५) इन्दौर, ३६ दीपिन्द्र (१३) लुधियाना, ३७ त्रिपुरारीशंकर प्रसाद (१०) हिनू, ३८ चन्द्रशेखर (९) हिनू, ३९ विनोदकुमार (१४) रांची, ४० हिब्बानफारूकी (१४) दरगाह बेला, ४१ घनश्याम (२३) शिवपुरी, ४२ अखिलेशचन्द्र (९) नागपुर, ४३ मुकुन्दचन्द्र (१६) खेड़ा, ४४ विनोदकुमार (१४) कन्नौज, ४५ कैलाशचन्द्र (१५) झुनझुनूँ, ४६ रमाकान्त (१७) ब्यावर, ४७ गंगाविशन (१५) ब्यावर, ४८ शोभाराम (१७) भंडारा, ४९ दिलीपकुमार (१२) बम्बई, ५० मोहनलाल (१६) लुधियाना, ५१ जितेन्द्रकुमार (१३) लुधियाना, ५२ अजयकुमार (१८) भागलपुर, ५३ प्रेमज्योति (११) झाझा, ५४ नवलकिशोरप्रसाद (१६) भोजपुर, ५५ सुनहरीलाल (२०) अलीगढ़, ५६ सुनीलकुमार (११) बलरामपुर, ५७ हरिसिंह (१२) देयालपुर, ५८ सुशीलाकुमारी (१४) नागौर, ५९ राजेन्द्रकुमार (१४) लखनऊ, ६० गोविन्दलाल (१४) रतलाम, ६१ राकेशकुमार (१५) लुधियाना, ६२ शिवचरन (१८) नई दिल्ली, ६३ सुभाषचन्द्र (१९) उदयपुर, ६४ शिवशंकर प्रसाद (१७) हरदिया, ६५ कैलाशचन्द्र (१६) कानपुर, ६६ कृष्णकुमार (१६) नई दिल्ली, ६७ चांदमल (१५) चित्तौड़गढ़, ६८ अशोक कुमार (१४) लखनऊ, ६९ रामकुमार (१८) नई दिल्ली, ७० विपेन्द्र (१६) रायपुर, ७१ राजेश (१४) गोरखपुर, ७२ गिरीशचन्द्र (१७) बिलासपुर, ७३ प्रकाशचन्द्र (१४) शाजापुर, ७४ त्रिपतकुमार (१५) लखनऊ, ७५ तेजमल (१२) आसीन्द, ७६ सुनीलकुमार (१४) कवादपुर, ७७ अजयकुमार (१३) अहमदाबाद, ७८ मोतीलाल (१६) छतरपुर, ७९ रामकिशोर (२०) छतरपुर, ८० राजीवरंजन (१३) गिरिडीह, ८१ शिवशंकर (१४) अलमोड़ा, ८२ मोहनसिंह (१७) प्रतापगढ़, ८३ हसमुख (१५) मेहसाना, ८४ केवलराम (१९) जोधपुर, ८५ सतीशकुमार (१२) लखनऊ, ८६ सुखदयाल (१८) मेरठ, ८७ सुभाषचन्द्र (१६) बस्ती, ८८ मिश्रीलाल (१७) रायपुर, ८९ जगदीशप्रसाद (१५) चूरू, ९० सुहासआत्माराम (१२) जबलपुर, ९१ ज्ञानेन्द्रकुमार (१५) हरदा, ९२ प्रकाशचन्द्र (१३) चैनपुर, ९३ बबुलन (१५) मानपुर मठिया, ९४ बलदेवराज (१३) मुजफ्फरनगर, ९५ अनिलकुमार (१४) बिलासपुर, ९६ अरुणकुमार (१७) बिलासपुर, ९७ जयराजबिहारी (१४) इलाहाबाद, ९८ कु. चम्पा (१६) इन्दौर, ९९ गोविन्दराम (१५)थानेसर, ८१०० आदित्यकुमार (१३) कुरुक्षेत्र, १ सुनीलकुमार (१२) भागलपुर, २ अनिरुद्धराय (१३) नेतरहाट, ३ राजेन्द्रकृष्ण (१४) चिताखेड़ा, ४ कु. शान्तिदेवी (१२) शिकोहाबाद, ५ अवनिकुमार (१४) बलभद्रपुर, ६ हरिश्चन्द्र (१५) अहमदाबाद, ७ कृष्णकुमार (११) नई दिल्ली, ८ किशनलाल (१६) पूर्णियाँ, ९ नरेन्द्रकुमार (१६) मुरार, १० मदनविभूषण (१२) आरा, ११ आनन्द (१७) मुजफ्फरपुर, १२ दलजीत (१५) कानपुर, १३ सुरेशकुमार (१४) जयपुर, १४ कमलकुमार (१४) मुरैना, १५ फूलचन्द (१८) सागर, १६ कैलाशचन्द्र (२०) चोरेपुरा, १७ नारायणकुमार (१४) टीकमगढ़, १८ ब्रजबिहारीप्रसाद (१३) घोसी, १९ अरुणकुमार (१६) मुरादाबाद।

राजेन्द्रप्रसाद
(स. सं. १०८१०)

स्वर्णिमप्रभात
(स. सं. १०८२३)

महावीरप्रसाद
(स. सं. १०८२४)

जीवनचन्द्र
(स. सं. १०९८०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५०

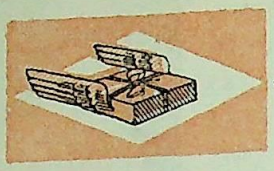

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पु
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पु
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पु

अन्तिम तिथि : ३१ द

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लि पृष्ठ ५५ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५० का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५० के प्रश्न

१. काले हंस अधिकतर कहाँ पाये जाते हैं ?

२. कौनसा तारा पृथ्वी के सबसे निकट है ?

३. किरासन तेल की खोज सर्वप्रथम किसने की?

४. Benzine, Benzene तथा Benzol में कौनसे दो नाम एक ही पदार्थ के लिए हैं ?

५. किस प्रकार के दर्शी द्वारा एक वस्तु के पाँच समान प्रतिबिम्ब देखे जा सकते हैं तथा उसकी रचना किस प्रकार की होती है ?

६. प्लाज्मा-टार्च द्वारा उच्चतम किस अंक तक का ताप प्राप्त किया जा सकता है ?

७. हमारे शरीर में कौनसा पदार्थ सू प्रकाश में विटामिन-डी का निर्माण करता है ?

८. मुर्गी के अण्डे से चूजा प्रायः कितने दि निकलता है ?

९. ओलम्पिक प्रतियोगिताओं को पुनरुज्जी करके उन्हें आधुनिक स्वरूप देने का श्रेय किस तथा किस दिन यह स्वरूप देने का अन्तिम लिया गया था ?

१०. ज्वार के समय समुद्र में दिखने अतिरिक्त जल कहाँ से आता है ?

प्रतियोगिता संख्या ४८ के प्रश्नों के उत्तर

१. ३½ करोड़ मील की दूरी तक, १७ वर्ष में एक बार।

२. एच. सी. बूथ (H.C.Booth) ने।

३. तीव्र विस्फोटक है। ब्रिटेन के लिड (Lyd) नामक नगर पर इसका नाम पड़ा है। पिक्रिक एसिड में नाइट्रोबेन्जीन और वैसेलीन मिलाकर प्रथम बार वहीं पर यह बनाया गया था।

४. रीओस्टेट (rheostat) द्वारा।

५. केवल चार।

६. ज्हॉन वाकर(John Walker)ने, १८२८ में।

७. विस्फोट के प्रथम चरण पर प्रबल वायु-तरंगों से कुछ इमारतें गिर जाती हैं, कुछ हिल हैं। विस्फोट के स्थल पर उत्पन्न निर्वात क्षेत्र भरने के लिए उसी वेग से जब वायु पुनः दौड़ तो बाकी कसर पूरी कर देती है।

८. यह ४०% निकिल-मिश्रित धातु है जि प्रसारण काँच के बराबर रखा जाता है। बिजली के बल्बों में तारों को काँच की नल अन्दर जोड़ने में यह विशेषतः काम आती है।

९. दक्षिणी ध्रुव प्रदेश में।

१०. ओस्मियम (osmium) और इरी (iridium) के मिश्रण से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

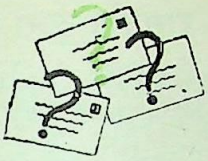

मृणालकान्त (७५७५) मोदीनगर

प्रश्न—आधुनिक क्रिकेट का आरम्भ कब और किस रूप में हुआ ?

उत्तर—लगभग सन् १७७० से। उन दिनों बल्ला केवल एक मुड़ी हुई छड़ी, आज की हाकी जैसा होता था और केवल दो स्टम्प के बीच में एक खूँटी टिकाकर खेला जाता था।

सविता बोस (६६०) बिलासपुर

प्रश्न—यदि संसार को वनस्पति-शून्य कर दिया जाए···?

उत्तर—तो क्या दशा होगी, इसका सचित्र वर्णन गत मास के विज्ञान-लोक में 'प्रकृति सन्तुलन····' शीर्षक लेख में मिलेगा।

विनोद दुबे (६४४८) हाथरस

प्रश्न—पहाड़ कैसे बने ?

उत्तर—पृथ्वी अपने जन्म के समय तप्त गैसों और उबलते, उफनते लावा के एक पिण्ड के रूप में थी और चारों ओर सागरजल से लिपटी हुई थी। कालान्तर में ताप गिरने और शीत फैलने के फलस्वरूप इसकी सतह कठोर पपड़ी के रूप में जमने लगी। उसी क्रिया में उठी हुई सतहें पहाड़ और झुरियों का तथा गड्ढे-दर्रे गहरी घाटियों का रूप लेते गये। वही प्रारम्भिक आग अभी पृथ्वी के गर्भ में छिपी है और जब कभी वह फुंकार उठती है तो भूकम्प उत्पन्न होकर कहीं नये पर्वत-शिखर उठा देता है तो कहीं गहरे सागर लहरा देता है।

शशिकान्त गुप्ता (१०६६४) आगरा

प्रश्न—श्री अरुण एम. ए. लिखित 'सचित्र गृह ज्ञान' नामक पुस्तक में लिखा है कि जिराफ के जीभ ही नहीं होती। अन्य २-३ पुस्तकों में भी पढ़ने को मिलता है कि जिराफ गूंगा होता है जबकि विज्ञान-लोक अक्टूबर १९६३ के 'भोजन की तलाश' लेख में लिखा है कि जिराफ के हाथ भर की (१।। फुट लम्बी) जीभ होती है। किसे सच मानें ?

उत्तर—जिराफ के १।। फुट लम्बी जीभ होती है, यह प्रमाणित सत्य है।

कीर्तिशंकर वर्मा (७०५६) रांची

प्रश्न—आग की लपटों के ऊपर से उस पार की वस्तु काँपती क्यों नजर आती है ?

उत्तर—तप्त वायु जो लहरों के रूप में ऊपर उठती है, उसके कारण।

शिम्भूशरण (१५०४) आगरा

प्रश्न—सभी दीवार-घड़ियां १ बजे का एक ही घण्टा बजाती हैं तो क्या कोई घड़ी तेरह घण्टे नहीं बजा सकती ?

उत्तर—अभी तक ऐसा एक ही उदाहरण मिला है। मैनचेस्टर में व्हाइट हाउस के निकट एक बड़ा कार्यालय है जिसके कार्यकर्ता स्वभावतः खाने की छुट्टी के बाद एक बजे काफी लेट आते थे और कहते थे कि एक का घण्टा उन्हें सुनाई ही नहीं पड़ा। अतः उक्त कार्यालय ने एक स्विस कम्पनी से ऐसी अनोखी घड़ी बनवाकर टावर पर लगवायी है जो एक बजे तेरह घण्टे दूर-दूर तक सुनाती है ताकि देर से आने वालों को अब कोई बहाना न रहे !

कु. अमरगीति (७६०७) अजमेर

प्रश्न—ताँबे को अंग्रेजी में कापर (Copper) नाम क्यों दिया गया ?

उत्तर—क्योंकि पूर्वकाल में यह सबसे पहले काइप्रस (Kypros) नामक द्वीप पर खानों में पाया गया था। यह द्वीप भूमध्य सागर में सीरिया से ६० मील पश्चिम की ओर है।

सुभाषचन्द्र मेहता (१०५६२) कानपुर

प्रश्न—सबसे अधिक आयु प्राप्त, आज भी जीवित वस्तु कौनसी है और कहाँ है ?

उत्तर—केलीफोर्निया (अमरीका) के अति विशालकाय रेडवुड (redwood) वृक्ष, ५००० से भी अधिक वर्ष के हैं।

देवेन्द्रप्रसाद (६५८०) सहर्षा

प्रश्न—सूर्य किन-किन तत्त्वों से बना है ?

उत्तर—इसमें सर्वाधिक भाग हाइड्रोजन का है। उसके अतिरिक्त, कार्बन, आक्सीजन, और हीलियम आदि गैसें तथा कैल्सियम, लोहा, मैग्नीशियम और निकिल जैसी धातुएँ, सभी कुछ तप्त, प्रज्वलित गैसीय रूप में विद्यमान हैं। दूसरे शब्दों में, सूर्य अति तप्त गैसों का एक पुंज है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबोधकुमार (१०८८४) आगरा

प्रश्न—मनुष्य की आयु औसतन १०० वर्ष क्यों नहीं होती ?

उत्तर—सृष्टि का विधान तो जीवेम् शरदः शतम् का ही है किन्तु यह तो व्यक्तिगत रहन-सहन और परिस्थिति पर सर्वथा निर्भर है। सोवियत और उसके निकटवर्ती देशों में अब भी औसत १००-१२५ वर्ष की आयु का है, जहाँ १२५-१५० वर्ष तक के भी वयोवृद्ध मिलते हैं।

वासुदेव शर्मा (१०६२८) अलवर

प्रश्न—क्या कारण है कि वायुमण्डल शान्त रहने पर भी आकाश में बादल तेजी से भागते रहते हैं ?

उत्तर—वायुमण्डल शान्त दीखने की हमारी दृष्टि-सीमा अत्यन्त अल्प है, अन्यथा मीलों की जिस ऊँचाई पर वे बादल होते हैं, वहाँ तो पृथ्वी की तीव्र गति के कारण तेज पवन बहता ही रहता है !

कृष्णकुमार (९६) टीकमगढ़

प्रश्न—जब काँच ऊष्मा का अधम संचालक (bad conductor) है तब लालटेन आदि की चिमनियों में ताप पहुँचाने पर काँच में प्रसारण क्यों होता है ?

उत्तर—अधम संचालक (bad conductor) ही है न ; अ-संचालक (non conductor) तो नहीं ! इस नाते अपेक्षाकृत काफी विलम्ब से प्रभावित होता है।

मातादीन गुप्ता (५२९२) सबलगढ़

प्रश्न—ऐसीटिलीन की विशेषताएं तथा उपयोग क्या-क्या हैं ?

उत्तर—कार्बनयुक्त कैल्सियम अर्थात् कैल्सियम कार्बाइड का पानी से संयोग होते ही तीव्र वेग तथा उष्मा उत्पन्न करती हुई यह गैस विमुक्त होती है। सामान्यतः इसका उपयोग तीव्र प्रकाश प्राप्त करने के लिए होता है। इसके विशेष उपयोग यन्त्रोद्योग में होते हैं जिनमें मुख्य हैं—आक्सीजन से युक्त आक्सी-ऐसीटिलीन ज्वाला द्वारा धातु-संधान जिसमें ३०००°C से ५५००°C तक का ताप प्राप्त होता है तथा अनेक जटिल रासायनिक यौगिक बनाने में इससे मध्यस्थ पात्र का काम लिया जाता है। संश्लेषित रबर, तथा प्लास्टिक उद्योगों में भी इसका उपयोग होता है।

रामनाथ गुप्ता (१३१७) दिल्ली

प्रश्न—पृथ्वी की वास्तविक परिधि २ सितम्बर १९६२ के हिन्दुस्तान २४९०२ मील तथा एलेक्जेण्डर वेदी द्वारा अनूदित 'पृथ्वी और २४८४७ मील लिखी हैं ; तो किसे

उत्तर—अधूरा तथ्य देने का यही सत्यता यह है कि पृथ्वी शुद्ध गोलाकार ध्रुवों पर चपटी है। अतः उत्तर-दक्षिण पूर्व-पश्चिम का व्यास लगभग २६½ मील है। इसी कारण परिधि में भिन्नता है। का व्यास ७९२६½ मील है। इसी हिसाब परिधि ज्ञात हो जाएगी।

नवतेजसिंह (१०७६६) नई दिल्ली

प्रश्न—रेडियोधर्मी पदार्थों से जो होता है, वह दिखाई देता है क्या ?

उत्तर—दिखाई ही देता तो रेडि आविष्कार का तथा अन्तरिक्ष-किरणों की चमत्कार ही नष्ट न हो जाता ! यह विकिरण अदृश्य अथवा मित्र की भाँति अपने कार्य सम्पन्न करता रहता है।

उमेशचन्द्र आजाद (६८३८) कानपुर

प्रश्न—किसी जीव में क्रोमोसोम संख्या से कम हों तो उसकी सन्तान में आ जाएगा ?

उत्तर—कम होने का प्रश्न ही नहीं निर्धारित संख्या विभिन्न जीवों में और जोड़ों में रहती है ; उदाहरणार्थ मा जोड़े। प्रजनन के समय पिता की ओर ४८ और माता की ओर से उसके पूरक परस्पर संयोग करके ही २४-२४ जोड़े बनाते हैं। इनका विशेष कार्य तो सन्तान (रंग) प्रदान करना होता है। अतः जो होंगे, वे नष्ट हो जाएँगे, किन्तु सन्तान से ही बनेगी।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, सदस्य संख्या के अतिरिक्त और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल छड़ी से दिशा और समय की ज्ञान

सुरेशकुमार (स. सं. २२२२)

यह विधि वर्जीनिया (अमरीका) की फाल्स चर्च सीनियर हाई स्कूल के एक छात्र, बॉब ओवेनडॉफ की सूझ है। यह विधि निम्न चित्रों की सहायता से इस प्रकार समझी जा सकती है।

तीन-चार फुट लम्बी एक छड़ी को जमीन में लम्ब-सीध में गाड़ दें। सूर्य के प्रकाश में जहाँ उसकी छाया का अंतिम सिरा हो, वहाँ एक पत्थर रख दें। (चित्र १) १५-२० मिनट खड़े रहें। आप देखेंगे कि छाया का वह सिरा घूमता हुआ दूसरे स्थान पर आ जाएगा। वहाँ भी एक छोटा सा पत्थर रख दें (चित्र २)।

दोनों पत्थरों के मध्य एक रेखा खींचें। यह रेखा पूर्व से पश्चिम की रेखा रहेगी। जहाँ पहला पत्थर रखा है वहाँ पूर्व और जहाँ दूसरा रखा है वहाँ पश्चिम रहेगा।

इस रेखा को थोड़ा और आगे बढ़ा दें।

चित्र १

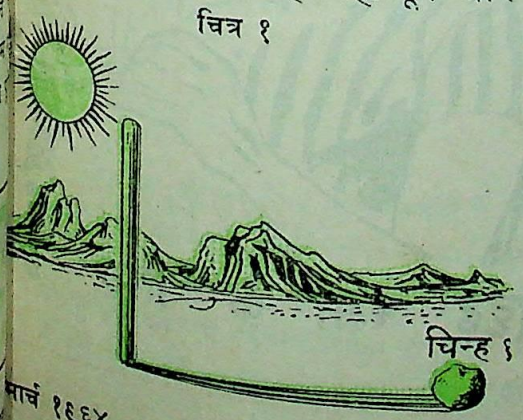

चित्र २

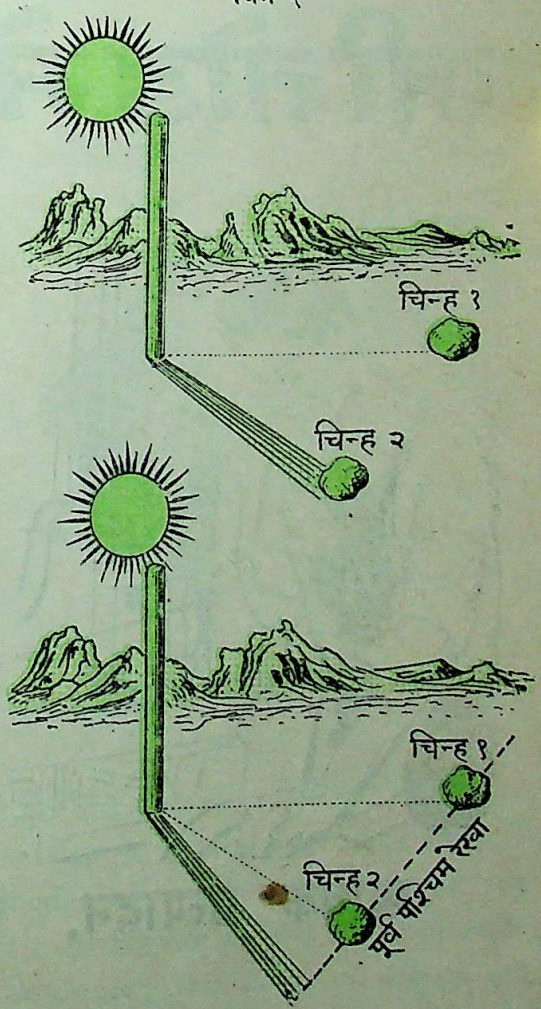

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप चाहे दफ्तर में काम करते हों
अथवा खेत या कारखाने में,
समय की पुकार है कि
आप इतनी मेहनत से काम करें
जितनी कि पहले कभी न की हो।
काम या उत्पादन पहले से
दुगुना कर दें, और इससे भी
कुछ अधिक! याद रखें कि आपका
अधिक परिश्रम राष्ट्र को
अधिक बलवान बनाता है।

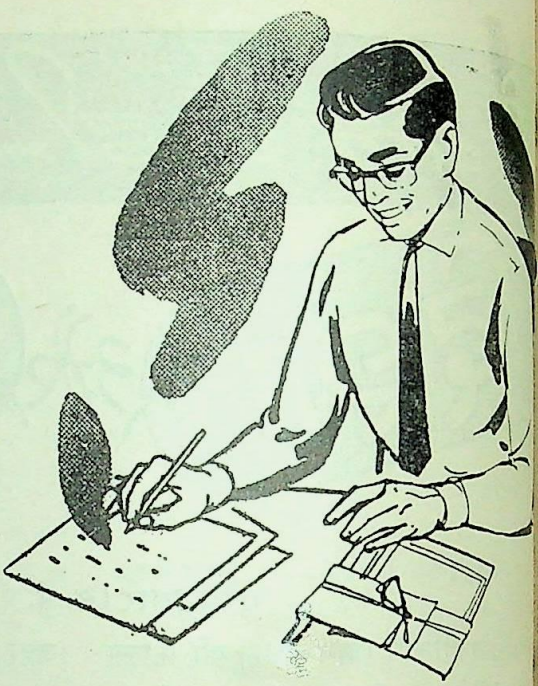

जी तोड़ मेहनत क

अधिक उत्पादन, सुदृढ़ रक्षा के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

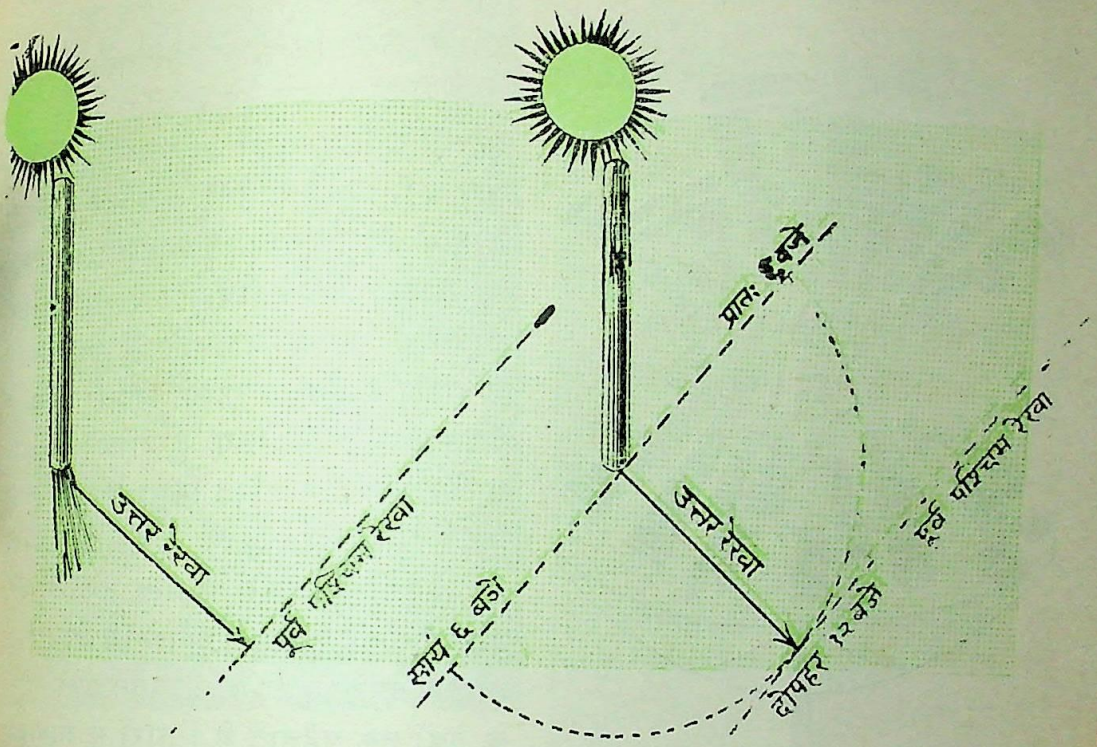

अ चित्र ३ ब

इस पर गड़ी हुई छड़ी के द्वारा भूमि पर बने छेद से एक लम्ब डालें। पूर्व-पश्चिम वाली रेखा पर पड़ने वाली यह सबसे छोटी रेखा होगी। इसके तीर का फलक सीधे उत्तर की ओर संकेत करेगा (केवल उत्तरी गोलार्द्ध में)। (चित्र ३–अ)

पूर्व-पश्चिम रेखा के समान्तर, उसी छेद को स्पर्श करती हुई एक और रेखा खींचें। अब छड़ी के पेंदे में एक धागा बाँधकर (धागे की लम्बाई पूर्व-पश्चिम रेखा से उत्तर रेखा के मिलन-बिन्दु तक) पूर्व पश्चिम रेखाओं को स्पर्श करता हुआ एक अर्द्ध वृत्त खीचें। उस गोलार्द्ध में उपरोक्त मिलन-बिन्दु पर १२ का अंक लिख दें। समान्तर रेखा पर जिन दो स्थलों पर अर्द्ध वृत्त की परिधि मिलती है वहाँ दायीं ओर प्रातः ६ तथा बायीं ओर सायं ६ लिख दें। इस परिधि को १२ समान भागों में बाँट दें। यह आपकी घड़ी और दिशासूचक दोनों का काम देगी।

निर्जन स्थल पर, जंगल हो या रेगिस्तान, आप इसके द्वारा सही-सही दिशा तथा समय ज्ञात कर सकेंगे। ●

रेडियोसक्रियता पहिचानिये, खेल-खेल में

अमरीका की न्यूक्लियर सेल्स कम्पनी ने केवल कुछ लाल दाने रखा हुआ एक ऐसा खिलौना बनाया है जिससे आप ज्ञात कर सकेंगे कि किसी भी आणविक विघटन के फलस्वरूप आपके इर्दगिर्द रेडियोसक्रियता कितनी है और लगभग कितनी देर में विलीन हो जाएगी। उस नन्हीं-सी डिबिया को जरा ही हिला देने पर उसके ढक्कन में स्थैतिक विद्युत उत्पन्न हो जाती है जो लाल दानों को अपनी ओर उठाये रखती है। वातावरण में रेडियोसक्रियता प्रस्तुत होने पर वह विद्युत अदृश्य हो जाती है और दाने नीचे गिर पड़ते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

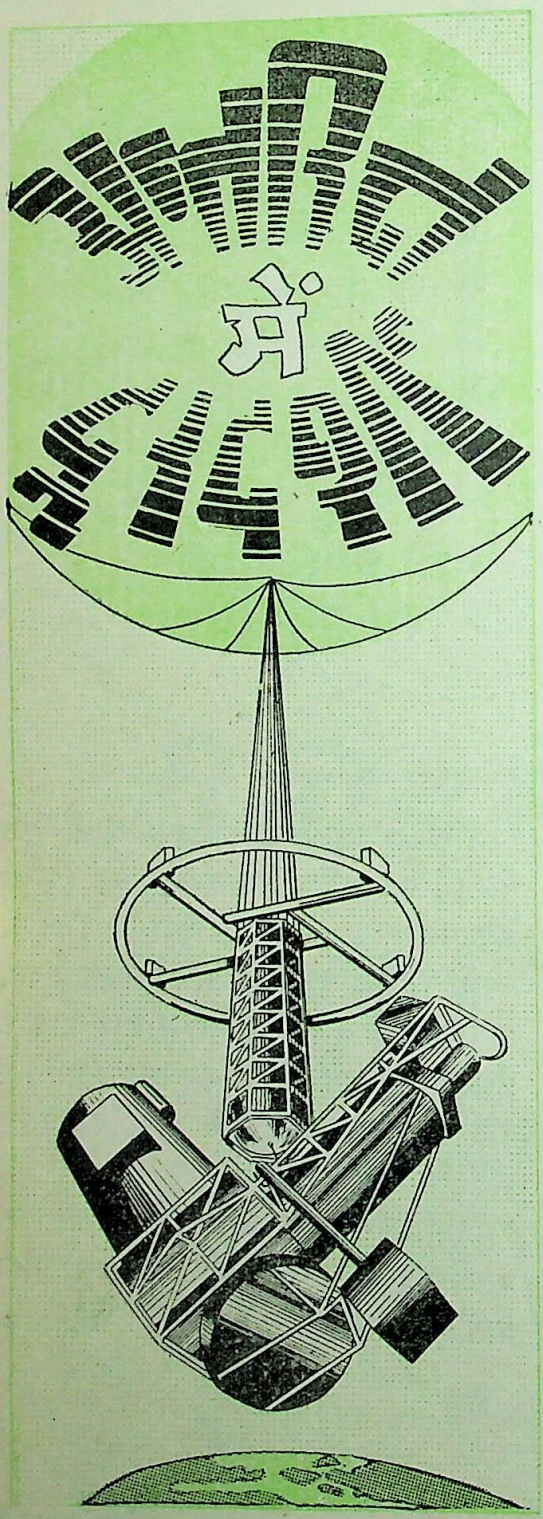

पहला दूरदर्शी १६वीं शताब्दी में बना। तब से दूरदर्शियों के आकार-प्रकार में निरन्तर संशोधन और संवर्धन होते आये हैं। प्रत्येक नया यन्त्र पिछले माडल से बढ़ा-चढ़ा रहा है। उन हाथ-दो हाथ बड़े लेंसों से लेक आज दो-दो सौ इंच तक के अति विशाल ले दूरदर्शी के लिए बनाये जा चुके हैं। फिर आज प्रतीत हो रहा है कि कदाचित शीघ्र ही लेंसों की विशालता यहीं कहीं सीमित होक रह जाएगी। इस दीर्घदृष्टि के अनुसार आवश्यक समझा जा रहा है कि अनन्त अन्तरिक्ष के अनबूझ रहस्यों को और भी स्पष्ट देखने-समझने के लिए दूरदर्शियों को अन्तरिक्ष में ही स्थापित किया जाए।

तब से अब तक

१९वीं शताब्दी के अन्त तक बड़े-बड़े दूरदर्शी वर्तक लेंसोंयुक्त होते थे। वे लेंस दूरस्थ तारों से आते हुए प्रकाश का वर्तन करके दर्शक के नेत्रों तक पहुँचाते थे। तारों से आते हुए मन्द प्रकाश को लेंस की सतह पर अधिक से अधिक ग्रहण करने के लिए क्रमशः लेंस छोटे

शिम्भूशरण (स. सं. १५०४)

से बड़े और काफी बड़े बनाये जाने लगे। शीघ्र ही लेंसों को बड़ा बनाने की भी सीमा उपस्थित हो गयी क्योंकि उनमें निम्न मुख्य कठिनाइयाँ सिर उठाने लगीं—१. अत्यधिक बड़ा लेंस अपने ही असह्य भार से आकार में विकृत होने लगा क्योंकि स्वभावतः काँच सूक्ष्म रूप में स्थितिस्थापक तो है ही। अतः आकार में विकृति आने से तारों के बिम्ब में त्रुटि आने लगी। २. बहुत बड़े लेंस बनाने में यह कठिनाई भी रहने लगी कि उन्हें ढालते समय सतह पर वायु के बुलबुलों को पूरी तरह हटाया न जा सका। वे ही बुलबुले तारों के बिम्ब में विकृति उत्पन्न करने लगे। ३. उतने बड़े लेंस का और धातु की जिन नलियों में उन्हें फिट किया जाता था, उनका कुल भार इतना अधिक होने लगा कि समूचा ढाँचा काफी भा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तरिक्ष-दूरदर्शी का यह नया डिजायन सोवियत वैज्ञानिकों ने तैयार किया है। नक्षत्रावलोकन-विशेषज्ञ अपने विभिन्न उपकरणों तथा सहकारी दल सहित इस भाग के परिधि-भाव में बैठेगा। यह यान परिक्रमा लगाने के साथ-साथ अपनी धुरी पर भी घूमता रहेगा ताकि कृत्रिम गुरुत्वाकर्षण बना रहे। इससे कार्यकर्त्ताओं को भारहीन दशा की असुविधाएँ न उठानी पड़ेंगी और ये सुचारु रूप से कार्य कर सकेंगे। इनका प्रचलन बढ़ने से पुराने ढंग के भारी भरकम दूरदर्शी केवल संग्रहालय की वस्तु रह जायेंगे

और दृढ़ बनाना आवश्यक हो गया। आखिर इसकी भी सीमा तब आ गयी जब विस्कन्सिन (अमरीका) की यर्क्स वेधशाला में तीन फुट से भी अधिक व्यास का तथा कई टन भारी लेंस दूरदर्शी में लगाकर उसे संसार का सबसे बड़ा घोषित किया गया।

जब और भी बड़ा दूरदर्शी बनाने की आवश्यकता पड़ी तब वर्तक लेंस को तिलांजलि देकर परावर्तक दर्पणों को अपनाया गया। इन दर्पणों से परावर्ती सतह का विस्तार आश्चर्य-जनक रूप से बड़ा बनाना सम्भव हो सका और आज संसार का सबसे बड़ा दर्पणयुक्त दूरदर्शी केलीफोर्निया (अमरीका) की माउण्ट पालोमर वेधशाला में स्थापित है। उसका व्यास २०० इंच है। उसकी सहायता अनेक तारों-नक्षत्रों का अवलोकन सहज सम्भव है जो यर्क्स के दूरदर्शी की पकड़ में नहीं आ पाते थे। अब तो सोवियत संघ में और भी बड़ा दूरदर्शी बनाया जा रहा है जो अपने २३६ इंच व्यास के कारण संसार में सबसे बड़ा माना जाएगा।

इतने पर भी एक प्रकार से विशाल दूरदर्शी के निर्माण की सीमा भी आ लगेगी। तब मानव की असीम जिज्ञासा की पूर्ति के लिए फिर कुछ न कुछ नया खोजना पड़ेगा। यह इसलिए और भी आवश्यक होगा कि पृथ्वी पर स्थापित बड़े से बड़ा दूरदर्शी भी वायुमण्डलीय परिवर्तनों और बाधाओं पर तो नियन्त्रण नहीं रख सकेगा! अतः वैज्ञानिकों की आकांक्षा है कि अन्ततः चन्द्रमा पर तो वेधशाला बनानी है ही; तब तक अन्तरिक्ष में ही दूरदर्शी स्थापित करने के प्रयोग क्यों न कर लिए जाएँ? अन्तरिक्ष में, वह भी विशेषतः चन्द्रमा पर वायुमण्डल इतना क्षीण है कि प्रकाश-किरणों को कोई भी बाधा न रहेगी और नक्षत्रलोक की निराली दुनिया स्पष्ट की जा सकेगी।

अभी इस क्षेत्र में प्रारम्भिक प्रयोगस्वरूप ऊर्ध्वाकाशगामी गुब्बारे तथा कृत्रिम उपग्रहों में दूरदर्शी भेजकर अवलोकन किये जा रहे हैं और रेडियो द्वारा उनके चित्र पृथ्वी पर प्राप्त किये जा रहे हैं। आश्चर्य नहीं कि निकट भविष्य में अत्यधिक सम्पन्न वेधशाला सफलतापूर्वक अन्तरिक्ष में स्थापित की जा सकेगी। इस लेख के शीर्ष चित्र में ऐसी ही एक वेधशाला का प्रारूप दिखाया गया है जो सोवियत वैज्ञानिकों ने तैयार किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे

सूचना

भारी लगेज का बुकिंग

तथा

साथ में लगेज का लाना-ले-जाना

समय-समय पर सूचित करते रहने के बावजूद देखा गया है कि यात्रीगण अब भी अपने साथ भारी बक्से, ट्रंक तथा सूटकेस आदि ट्रेन में लिये चलते हैं जिससे अन्य यात्रियों को बेहद तकलीफ होती है। अतः इण्डियन रेलवेज कान्फ्रेन्स एसोसिएशन के नियम नं. ६०६ के कॉन्सि टैरिफ नं. १८, भाग १ को संशोधित किया गया है जो १ अगस्त, १९६३ से निम्न भाँति लागू है:

६०६—वातानुकूलित तथा प्रथम श्रेणी के यात्रियों के लिए साथ रखने योग्य लगेज

यात्री अपने साथ डब्बे में वे ही छोटे अदद निजी सामान के तौर पर रख सकेंगे जिनकी उसे यात्रा के दौरान में जरूरत हो और जो डब्बे में इस प्रकार रखे जा सकें कि अन्य यात्रियों को असुविधा न हो और यात्रियों के उठने-बैठने तथा सोने और सुविधापूर्वक चलने फिरने के लिए आवश्यक स्थान में कमी न करें।

ऐसे ट्रंक, सूटकेस और बक्से जिनकी बाहरी लम्बाई १०० से. मी., चौड़ाई ६० से. मी. और ऊँचाई २५ से. मी. से अधिक हो, अपने साथ डब्बे में न रखे जा सकेंगे और उन्हें ब्रेकवान में रखना आवश्यक होगा। इस नियम के उल्लंघनकर्ता यात्री को ऐसे सामान का वजन बगैर किसी कटौती या रिआयत के, पूरा चार्ज देना होगा। साथ ही, ऐसे सामान को, जहाँ भी चेकिंग में पाया जाएगा, वहीं से आगे की यात्रा के लिए ब्रेकवान में भेज दिया जाएगा। चार्ज में रिआयत केवल उसी दूरी तक के लिए दी जाएगी, जितनी दूर वह सामान ब्रेकवान में सफर करेगा। जितनी दूरी तक ऐसा सामान यात्रियों के डब्बे में ले जाया गया होगा, उतनी दूरी तक का चार्ज, बगैर किसी रिआयत के, पूरा-पूरा वसूल किया जाएगा। उपरोक्त नियम ऐसे लगेज पर लागू नहीं किया जाएगा जो किसी यात्री अथवा दल द्वारा पूरा डब्बा रिजर्व कराकर उनके ले जाया जा रहा हो। इसके अपवाद में ये वस्तुएँ भी सम्मिलित रहेंगी—बिस्तरे, टोकरियाँ, हैण्डबैग, छतरियाँ, छड़ियाँ, सुराहियाँ आदि। इण्डियन रेलवेज कान्फ्रेन्स एसोसिएशन के नियम नं. ६०५ के टैरिफ नं. १८, भाग १ की धारा सं. १ तथा ४ में गिनायी हुई वस्तुएँ किसी भी हालत में निजी सामान की तरह डब्बे में अपने साथ न ले जायी जा सकेंगी। ऐसा समस्त सामान यात्रीगण अपनी निजी जिम्मेदारी पर ही ले जा सकेंगे।

जो भी यात्री इस नियम का उल्लंघन करेगा, स्वयं को अभियोग का उत्तरदायी बनाएगा।

ये नियम (६०६) द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के यात्रियों पर भी लागू रहेंगे तथा इस नियम के शीर्षक को निम्न भाँति परिवर्तित करके पढ़ा जाए :

६०६ (१) द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के यात्रियों के लिए साथ रखने योग्य लगेज

—चीफ कमर्शियल सुपरिंटेंडेंट

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा प्रिन्टिंग प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा के लिए प्रकाशित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH
WORK BOOK

- A modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded.*
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly.*
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress.*
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.
Book II.....Price : Re. 1·00
Book III.....Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price : 75 nP. March 1964 Regd. No. L 1410

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्च अंक

अब सब जगह उपलब्ध है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पेटेन्ट मेडिसिन्स हॉस्पिटल रोड आगरा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

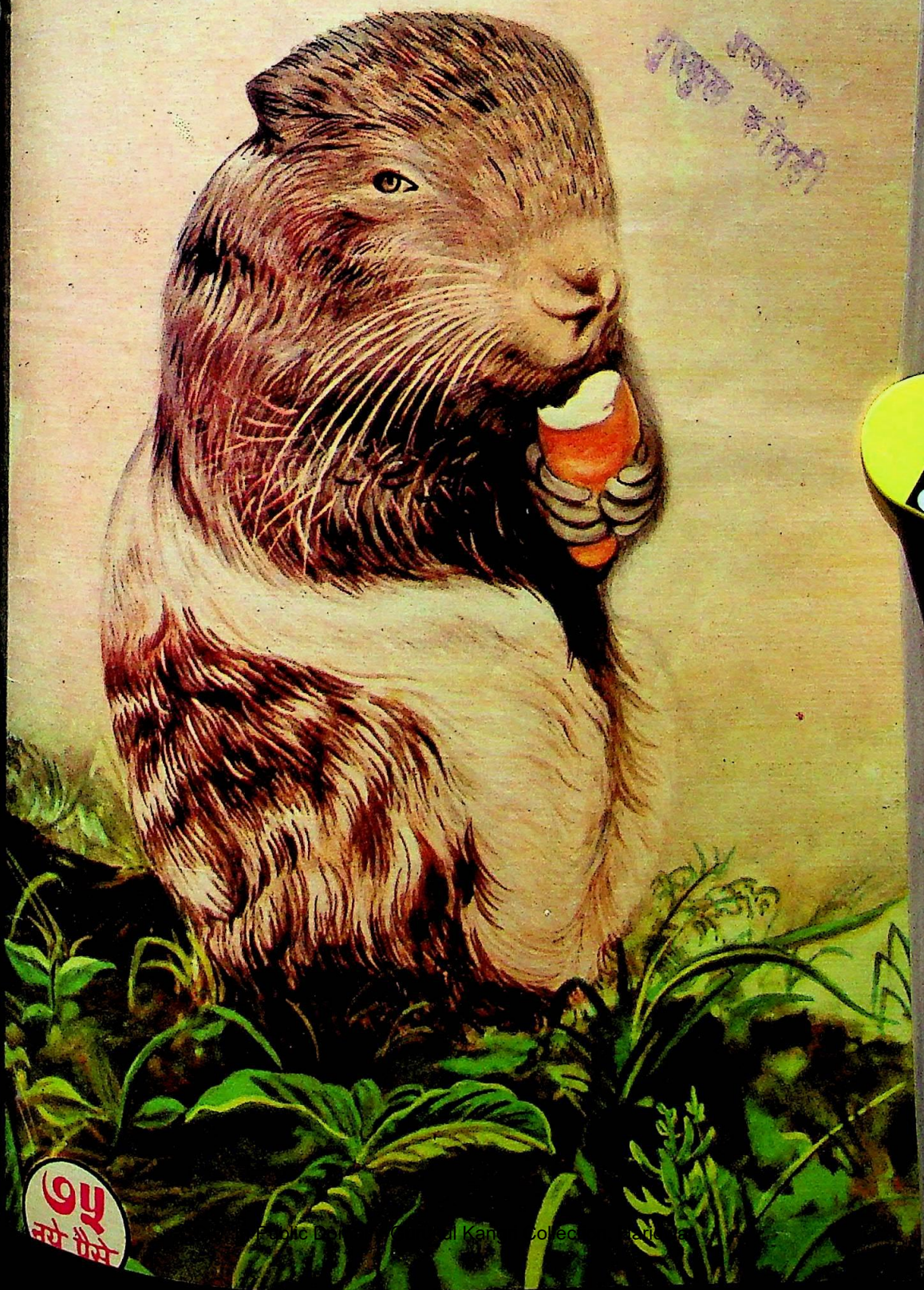

७५ नये पैसे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाँति-भाँति के बिलकारी जन्तु ३
—नरेन्द्रसिंह माथुर

अन्तरिक्ष यात्री की पुकार पर ८
—डा. चन्द्रकुमार

रोथियम ११
—सत्यकुमार

बनौले से धागे तक १४
—मुरारीलाल माहेश्वरी

अन्य १८
—गुणाकर मुले

मारियल २३
—अरुणचन्द मिश्र

प्लूट्रान २७
—अशोककुमार चौबे

गराबैंगनी किरणें ४३
—कुमारी अनुराधा

जीवन फासिल्स ४७
—बनवारीलाल

प्रोफेसर आगस्टे पिकार्ड ५१
—भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

प्राणियों में आत्मनिर्भरता ५५
—कुमारी रेखा टण्डन

स्थायी स्तम्भ

विचित्र संसार ३३
वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ४२
विज्ञान क्लब ५९
जानना लो ६२
तुम्हारी कलम से ६३
आपके प्रश्न ६५

वर्ष ५

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

अपनी बात

संसार के प्रगतिशील देशों से सांस्कृतिक वैज्ञानिक सम्बन्ध उत्तरोत्तर दृढ़ करने की दि भारत सतत सचेष्ट है और समय-समय पर वि से वैज्ञानिकों को आमन्त्रित करता रहता है।

पिछले मास के अतिथि-वैज्ञानिकों में प्र उल्लेखनीय हैं सोवियत संघ के क्षुद्रजीवाणु सं के अध्यक्ष, अकादमीशियन एन. ए. क्रासिलनि युनेस्को के तत्त्वावधान में आयोजित व्याख्यान के अन्तर्गत उन्होंने अपनी भारत-यात्रा के स जिन प्रमुख विश्वविद्यालयों तथा वैज्ञानिक सं से भेंट की उनमें मद्रास, अन्नमलाई तथा राज के विश्वविद्यालय, बंगलोर का विज्ञान-संस्थान, दि का आजाद मेडिकल कालेज, पिम्परी का एण्टीबा प्लाण्ट और कोयम्बटूर तथा पूना आदि उल्ले हैं। इन संस्थाओं में उनके दिए गए विद्वत्पूर्ण व्या वैज्ञानिक साहित्य की अमूल्य निधि रहेंगे।

दूसरे उल्लेखनीय अतिथि थे सोवियत वि अकादमी के कारेस्पान्डिग सदस्य, अलैक्जान्दर कु ये भारत सरकार के परमाणु शक्ति आयोग के नि निमन्त्रण पर यहाँ आए थे। ए. कुजिन रेडियो विज्ञान के विशेषज्ञ हैं और २०० से भी अधिक के रचयिता हैं। विगत पुगवाश सम्मेलन में पढ़ा गया तेजसक्रियता विषयक निबन्ध बहुत गया था।

वैज्ञानिकों का यह आदान-प्रदान वैज्ञानि को समुचित बल देता है, इसमें सन्देह नहीं।

अंक ३

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेसर्स न्यूज पेपर्स, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय

हमारे खाद्य और आहार के प्रतिद्वन्द्वी

आँखि-आँखि के बिलकारी जन्तु

नरेन्द्रसिंह माथुर

आकाश के तारे कदाचित् गिने जा सकें किन्तु पृथ्वी-पटल पर इन कुतरने वाले बिलकारी जन्तुओं का गिनना संभव नहीं। पृथ्वी का कोई कोना इनसे खाली नहीं। पानी तक में तो ये घर बसाने से नहीं चूकते! इनमें प्रायः सभी जन्तु शाकाहारी हैं। वस्तुतः वह शाकाहार नाममात्र का है, ये तो अनाज के खेत के खेत साफ करते रहते हैं। रहने की जगह और अनाज के दानों का सफाया करने वाले ये जन्तु सदैव ही मानव-जाति के लिए एक विकट समस्या रहे हैं। इस लेख में इनकी कुछ विशिष्ट जातियों का परिचय प्रस्तुत है।

इनका इतिहास पुराना है

प्राप्त जीवाश्म इनके अत्यन्त प्राचीन होने के संकेत देते हैं। अनुमान है कि इनका इतिहास ५० लाख वर्ष से भी प्राचीन है। इनका अवतरण कीटभक्षी जन्तुओं से माना जाता है। वे जन्तु आज के छछूंदर, सेही आदि से मिलते-जुलते रहे होंगे। इनके प्रागैतिहासिक पूर्वज अन्यान्य डिनासरों जैसे दैत्याकार न रहे होंगे। उत्तरी अमरीका में प्राप्त अवशेषों से ज्ञात हो सका है कि इनमें बड़े से बड़ा जन्तु एक लाख वर्ष पूर्व आज के रीछ जैसा रहा होगा। वर्तमान में बड़े से बड़ा बिलकारी जन्तु दक्षिणी अमरीका में पाया जाता है जो एक शूकर जितना बड़ा है।

यह विचित्रता इन्हीं की है

अन्य प्राणियों से सर्वथा भिन्न, एक विचित्रता इनमें यह पायी जाती है कि समय-समय पर (अनियमित रूप से ही) इनकी कुछ जातियाँ तेजी से समाप्तप्राय होती जाती हैं, तो तुरन्त ही कुछ समय बाद उनकी संख्या पुनः तेजी से बढ़ने लगती है। इसके कारणों के प्रति तरह-तरह के अनुमान लगाये जाते हैं। किसी काल में इनका शिकार करने वाले मांसाहारी जन्तुओं का एकदम बढ़ जाना तथा अनाज का अकाल पड़ जाना, इनके विनाश के कारण हो सकते हैं। इसी प्रकार अनाज की प्रचुरता तथा सन्तानोत्पादन में आकस्मिक वृद्धि इनकी संख्या तेजी से बढ़ने के कारण माने जा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामान्य शरीर-रचना

इनकी शरीर-रचना के जिन लक्षणों में प्रायः सामान्यता पायी जाती है, वे इस प्रकार हैं।

अगले दांत इनके प्रमुख जातिसूचक हैं। ऊपर और नीचे के जबड़ों में एक जोड़ी तीखें, और बड़े दांत इनके लिए सब कुछ हैं। जबड़ों में पीछे की ओर काफी दूरी तक ये दांत जमे रहते हैं। ये इनके कुतरने वाले दांत हैं। अन्दर की ओर कुछ खाली जगह छोड़कर पिछले चबाने वाले दांत होते हैं। इनके नुकीले और काटने, चीरने वाले दांत न होने से वह बीच की खाली जगह एक पोल के रूप में रहती है।

कुतरने वाले दांत इनका एकमात्र अवलम्ब होने के कारण, प्रकृति ने उनकी रचना में पूरी सावधानी बरती है। उन्हें सदैव ही तीक्ष्ण बनाये रखने के लिए इन्हें किसी के यहाँ धार रखवाने नहीं जाना पड़ता। वे दांत स्वतः ही तीखे होते जाते हैं। दांतों के बाहर का वज्रावरण अन्दर के अस्थि-भाग से कहीं अधिक कठोर होता है। फलतः अन्दर और बाहर के भाग घिसते रहने में जो अन्तर पड़ जाता है, वही इनकी धार बनाये रखता है। यहाँ यह भी शंका उपस्थित हो सकती है कि दांतों को निरन्तर चलाते ही रहने से वे जल्द ही घिस-घिस कर ठूँठ जैसे न रह जाते होंगे! इसकी भी समुचित व्यवस्था इनकी दंत-रचना में रखी गयी है। दांतों की जड़ में अस्थि के नर्म गूदे का ऐसा अक्षय स्रोत रहता है जो दांत घिसता है तो नया बनता-बढ़ता भी जाता है।

भाँति-भाँति के बिलकारी जन्तु

मुखपृष्ठ पर जो अनोखा जन्तु आप देख रहे हैं, वह पेकाराना (*Pacarana*) श्रेणी का है। इसे अनोखा इसलिए कहा गया है कि इसके जैसा नमूना अन्यत्र देखने में ही नहीं आया। पेरू (दक्षिण अमरीका) के जंगलों में

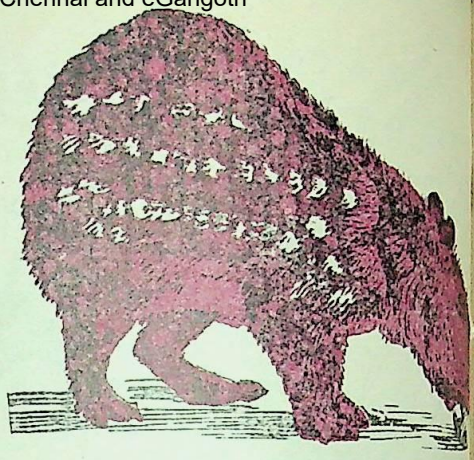

अति विचित्र, लडाकू और तेज दौड़नेवाला पाका

केवल एक बार १८७२ में यह प्राणी देखा गया था। काफी लम्बे समय तक इसके दूसरे नमूने न मिलने के पश्चात् धीरे-धीरे एक-दो करके दक्षिण अमरीका में जो थोड़े से जन्तु मिले, वे अजायबघरों की शोभा बढ़ा रहे हैं। लम्बे बालों से भरे इसके शरीर पर बड़ी-बड़ी चित्तियाँ भी पायी गयी हैं। इसकी पूंछ काफी लम्बी होती है। यह भूमि के अन्दर बिल बना कर रहता है। यह डरपोक नहीं है और खतरे का सामना डटकर करता है।

केपीबारा (*Capybara*) समस्त बिलकारी जन्तुओं में अत्यधिक लोकप्रिय सिद्ध हो रहा है। इसका कारण यह है कि वर्तमान बिलकारी जन्तुओं में यह सबसे बड़ा है। प्रत्येक अच्छे अजायबघर में इसे देखा जा सकता है। थूथन सरीखे मुँह से लेकर पूँछ के सिरे तक चार फुट लम्बा तथा २२० पौण्ड तक के वजन का यह जन्तु पाया गया है। शरीर के बाल सेही के काँटे जैसे नहीं तो अपेक्षाकृत कठोर तो होते ही हैं। स्वभाव से यह नम्र है। जल में यह पानी के निकट रहना पसन्द करता है और पाले जाने पर शीघ्र ही हिल-मिल जाता है। इसकी मादा एक वर्ष में २-२, ३-३ करके छह बच्चे देती है। बड़े होने तक बच्चे माँ के साथ ही साथ लगे फिरते हैं। नर अनेक मादायें साथ में रखते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीका के पाका (*Paca*) तथा अगोटी (*Agouti*) प्रदेशों के नामों पर से कथित पाकागोटी (*Pacagouti*) नाम की इस श्रेणी में चार जाति के जन्तु हैं—१. पाका (*Paca*), २. पहाड़ी पाका (*Mountain Paca*), ३. अगोटी (*Agouti*) तथा ४. अकोशी (*Acouchi*)।

पाका—शरीर में ये भी दो फुट से कम नहीं होते। मेक्सिको और अर्जेण्टाइना के जंगलों में ये प्राय: प्रति एकड़, ५०-६० तक की संख्या में पाये जाते हैं। ये अधिकतर अजायबघरों तथा सर्कसों की शोभा बढ़ाने के काम आते हैं। 'बताइए, यह कौन है?' "संसार का सबसे बड़ा चूहा'—आदि शीर्षक देकर वे इनकी नुमाइश करते हैं और इनसे अच्छा पैसा कमाते हैं। शरीर में भारी होने पर भी जब दौड़ने का काम आता है तो ये तेज दौड़ने वाले चौपायों में आगे ही रहते हैं। ये बड़े विकट लड़ाकू हैं और अपने तीक्ष्ण दांतों से चाहे जैसी मोटी वस्तु को चीर कर रख देते हैं। पालतू अवस्था में ये पिल्ले की तरह मालिक के साथ-साथ रहते हैं और किसी को भी हानि नहीं पहुँचाते। अंजीर इन्हें बेहद पसन्द है।

इनकी त्वचा पतली और कोमल होती है। अंधाधुंध अपनी सुरंग में या कांटों के बीच भागने से अकसर इनकी खाल की धज्जियाँ उड़ जाती हैं किन्तु चमत्कारिक रीति से जल्द ही नयी खाल रोयों सहित उग आती है। इनकी आँखें बड़ी, मूँछें घनी और घ्राण-शक्ति तीव्र होती है।

पहाड़ी पाका—उपरोक्त पाका का संक्षिप्त संस्करण सरीखा यह जन्तु इक्वेडोर और कोलम्बिया में पाया जाता है। रंग में भूरा यह जन्तु बड़े विस्तारों को अपनी सुरंगों से पोला कर देता है। शीतनिद्रागत प्राणियों की भाँति यह भी पहले ही अपने शरीर में चर्बी की काफी मात्रा संचित करके अर्द्धशीत-निद्रा में लीन हो जाता है। उपरोक्त मैदानी पाका की अपेक्षा यह शरीर में तो छोटा होता ही है, इसकी आँखें भी छोटी होती हैं। इसके

गाइना में पाया जानेवाला छः इंच का नन्हा एक्युशी

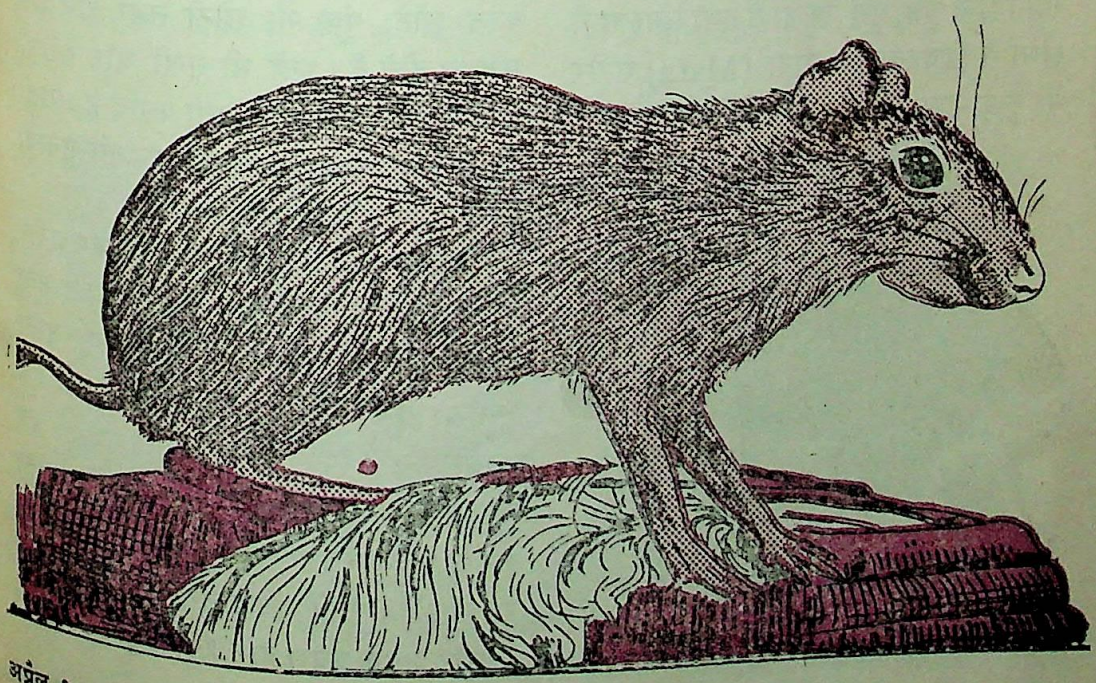

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजे अवश्य उनसे अधिक लम्बे, पतले होते हैं और तलवों में धारियाँ पड़ी रहती हैं।

अगोटी—ये भी मेक्सिको तथा अर्जेण्टाइना में पाये जाते हैं। स्वभाव से ये बड़े अस्थिर चित्त के और उद्वेगपूर्ण पाये जाते हैं। उसी उद्वेग के वश ये अकारण ही परस्पर लड़ते रहते हैं। खाते समय ये अपने निवाले को हाथ में पकड़े हुए उँगलियों से बड़ी कुशलतापूर्वक काम लेते हैं। इनके शरीर में संवेदनशील ग्रन्थियाँ अधिकता से रहती हैं जिनके कारण ये अपने रोयों को इच्छानुसार हिला-डुला सकते हैं। तैरना इनके लिए सहज बात है और लम्बी छलांगें भरना इनकी विशेषता है।

अकोशी—गाइना में पाया जाने वाला यह जन्तु उपरोक्त जन्तुओं से सर्वथा भिन्न है। यह पालतू अवस्था में अपना बुद्धि-कौशल प्रदर्शित करता है। इसका शरीर ५-६ इंच लम्बे, रंग-बिरंगे, आकर्षक बालों से युक्त रहता है और उन बालों को यह भी इच्छानुसार हिला-डुला सकता है। उत्तेजित अवस्था में यह पिछले पाँवों को पटकता है, दांत किटकिटाता है और बाल खड़े कर लेता है।

मारा—यह जन्तु अर्जेण्टाइना और पेटागोनिया के खुले, सूखे जंगलों में तथा रेगिस्तानी क्षेत्रों में विचरता है। मारा (Mara) शरीर में कुछ बड़ा है और दूर से एक भरे-पूरे

अर्जेण्टाइना निवासी, तेज-तर्रार, मारा

नन्हे किन्तु सुदृढ हाथ-पांवयुक्त, नन्हा टुकोटुको

कुत्ते जैसा दिखता है। दौड़ने में यह बहुत तेज है। अगोटी की भाँति यह भी चित्त का अस्थिर और निरर्थक भाग-दौड़ करने वाला है। जरा सी ही घबराहट में यह परिणाम को सोचे बिना अंधी छलांगें लगाता है और प्रायः ही अपने प्राण संकट में डाल बैठता है। इसकी हिरन जैसी लम्बी, सुन्दर आँखें होती हैं और सूर्य की धूप में पड़े रहना इसे बहुत भला लगता है। यह शाकाहारी है और सुरंग बनाकर रहता है।

टुकोटुको—अर्जेण्टाइना-निवासी यह नन्हा जन्तु अपने प्रागैतिहासिक पूर्वजों का प्रतीक, एक जीवित फासिल सरीखा है। यह टुकोटुको (Tucotuco) बहुत कम पाया जाता है। इस जाति में छह इंच के नन्हे से लेकर एक फुट तक के बड़े जन्तु भी पाये जाते हैं। इनके कान छोटे, पूँछ भी छोटी तथा हाथ-पाँव मजबूत होते हैं। इन्हें भी सूखी और रेतीली भूमि में बिल बनाकर रहना पसन्द है। रात को ये बिलों में रहते हुए भी दूर तक सुनायी पड़ने वाला शोर मचाते हैं।

विकाशा—विशाल, भारी भरकम शरीर वाला विकाशा (Vicacha) बिलकारी जन्तु दक्षिण अमरीका भर में खूब पाया जाता है। दो फुट लम्बे शरीर से छोटी, ८ इंच लम्बी पूँछ फरफराती रहती है। २००० वर्ग फुट तक के विस्तार में बीसियों बिल बना कर ये एक-एक बिल में २५-३० की संख्या में रह लेते हैं। इनके बिल नन्हीं गुफा जैसे होते हैं और उनके प्रवेश द्वार १-१॥ फुट चौड़े होते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं ताकि सरलता से बाहर-भीतर आ-जा सकें। मानवजाति के लिए ये अधिक उपयोगी नहीं हैं, अतः इनका शिकार निर्बाध रूप से होता है।

चिंचिला

उपरोक्त श्रेणियों से पृथक, चिंचिला (Chinchilla) अपने बेशकीमती रोयों के कारण दक्षिण अमरीका का प्रसिद्ध पशुधन है। झब्बेदार पूँछयुक्त यह जन्तु शरीर में जितना छोटा है, रूप में उतना ही दूसरों से बढ़ा-चढ़ा है। इसका रोयाँ आकर्षक हलके रंग का और रेशम जैसा मुलायम होता है। वह इतना मुलायम होता है कि यदि आँखें बन्द हों तो हाथ में लिए हुए भी यह मालूम न पड़ेगा कि हाथ में कुछ है भी या नहीं। एक समय था जब इसके रोयों की माँग औद्योगिक पैमाने पर इतनी बड़ी होने लगी कि ये तेजी से लुप्त होते दिखने लगे। कई बार तो इन्हें लुप्त हुआ समझ भी लिया गया किन्तु ये पुनः उभर आए। उदाहरणार्थ एम. एफ. चैपमेन नामक एक अमरीकन इंजीनियर दूर जंगलों से बड़े परिश्रम के पश्चात् पाँच वर्ष का समय लगाकर इनके १०-१२ नमूने बड़ी सावधानी-पूर्वक रेफ्रीजरेटर आदि में रख कर लाया।

अमरीका का अनमोल, पशुधन, चिंचिला

तत्पश्चात् इनकी नस्ल बढ़ी। आज उत्तरी अमरीका में इनकी संख्या लगभग ७० हजार है। ये अधिकतर रातों को ही बाहर निकलते हैं। शिकारी इन्हें पकड़ने के लिए सिखाये हुए ऊदबिलाव आदि जन्तु इनके बिलों में छोड़ देते हैं। तब ये दूसरे सिरे से भाग निकलते हुए जाल में फँस जाते हैं।

जहाँ प्रकृति ने एक ओर इन्हें भूमि-क्षेत्र और खाद्यों के बारे में मानव का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी बना रखा है, वहाँ दूसरी ओर इनकी खाल और रोयों की बहुमूल्यता को मानवोपयोगी भी बना रखा है। ●

२½ फुट का वृहत् शरीरधारी, दक्षिण अमरीका निवासी, विकाशा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बचाओ! बचाओ!!

अन्तरिक्ष यात्री की पुकार पर

डा. चन्द्रकुमार

आज तो यह सम्भव है कि यदि कोई हवाई जहाज घनघोर जंगल में भटक जाए, तूफानी सागर की चपेट में आ जाए, ध्रुवीय हिमखण्डों में उलझ जाए तो वायु संवाद पाते ही उड़नदस्ते उसकी सहायतार्थ रवाना किये जा सकते हैं और यथासम्भव रक्षा भी की जा सकती है। आने वाले कल के लिए आज के वैज्ञानिक बराबर प्रयत्नरत हैं कि यदि किसी अन्तरिक्षयान से 'बचाओ-बचाओ' का संदेश मिला तब क्या किया जा सकता है?

हजारों मीलों की ऊँचाई पर

अन्तरिक्ष-उड़ान में हजारों मील की ऊँचाई पर रक्षा के प्रश्न का उत्तर खोजने की भूमिकास्वरूप अमरीका के यू. एस. एयर फोर्स की हवाई रक्षक शाखा को आशा है कि इस दिशा में अवश्य कुछ किया जा सकेगा। उक्त शाखा का अनुमान है कि कम से कम ३०० मील और अधिक से अधिक १० हजार मील की ऊँचाई के मध्य परिक्रमा करने वाले उपग्रह ऐसी सेवाओं के अधिकतर पात्र रहेंगे।

पृथ्वी पर लौटने की विकट समस्या

उपरोक्त यू. एस. एयर फोर्स के निर्देशन में शिकागो की इलीनॉय इन्स्टीट्यूट आफ टेक्नालाजी के आर्मर रिसर्च फाउण्डेशन ने इस समस्या का हल खोजना आरम्भ किया है कि दुर्घटनाग्रस्त अन्तरिक्ष-यान अथवा उपग्रह को उसके कक्षापथ से निकालकर पुनः पृथ्वी पर किस प्रकार लाया जाए। उनका अनुमान है कि ऐसे कम्प्यूटर यंत्र बनाये जाएँगे जो दुर्घटनाग्रस्त यान के कक्षापथ का निश्चित पता दे सकें। वह निश्चित संकेत मिलने पर ही पृथ्वी से सहायक यान उस ओर छोड़ा जा सकेगा। सहायक यान उसके पास तक पहुँचने पर अपना एक पृथक रक्षकयान उस ओर भेजेगा जो संकटग्रस्त यान को साथ लेकर अपने सहायक यान के निकट आ जाएगा ताकि या तो किसी भी अन्तरिक्ष-प्लेटफार्म पर टिका जा सके अथवा पृथ्वी पर लौटा जा सके। गणना है कि कम से कम ३०० मील की ही ऊँचाई पर कक्षागत यान २५ लाख वर्ग मील के घेरे में कहीं भी पृथ्वी पर उतर सकता है। उदाहरणार्थ, आस्ट्रेलिया की सीध में ३०० मील ऊपर उड़ता हुआ अन्तरिक्ष-यान अपने कक्षापथ से मुक्त होकर लगभग समूचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राज्य अमरीका की सीध में उतर पायेगा। यह समस्या तब और भी कठिनाई उपस्थित करेगी जबकि वह यान कक्षापथ से पृथ्वी के वायुमण्डल को चीरता हुआ ३६००० फुट प्रति सेकण्ड के वेग से पृथ्वी की ओर तीर की तरह आएगा।

आर्मर रीसर्च का गहनतर अध्ययन

ऊपर लिखित आर्मर रिसर्च ने इस विषय के प्रत्येक पहलू पर गहन अध्ययन किया है। एक साधन जो उनकी कल्पना में है, वह यह है कि केवल तीन व्यक्तियोंयुक्त एक सहायक यान भेजा जाए जो संकटग्रस्त यान को एक वृहद पैराशूट में फाँस कर उतार लाए। दूसरी ओर केलीफोर्निया के स्पेस जनरल कार्पोरेशन का सुझाव एक ग्लाइडर सरीखे रक्षकयान के लिए है जो ठीक वही काम करेगा जो डूबते हुए जलयान के लिए लाइफबोट करती है। उक्त कार्पोरेशन के मैनेजर डा. आर. एफ. ब्राड्स्की ने उस ग्लाइडर सरीखे यान को 'प्राजेक्ट फर्स्ट' का नाम दिया है। उन्होंने प्रस्तावित किया है कि जहाँ तक सम्भव हो, प्रत्येक अन्तरिक्षयान को ऐसे ग्लाइडर उसी प्रकार रखने चाहिए जैसे प्रत्येक जहाज अपने साथ लाइफबोट रखता है।

अन्तरिक्ष में ही यान-मरम्मत भी

मानवरहित स्वचालित अन्तरिक्ष-यान की अन्तरिक्ष में ही मरम्मत करने के लिए अमरीका की डगलस एयरक्राफ्ट कम्पनी ने हाल ही में एक योजना प्रस्तावित की है। इसके लिए एक ऐसा त्रिकोणाकार यान राकेट द्वारा भेजा जाएगा जो एक अन्य छोटा मरम्मत करने वाला यान अपने साथ ले जाएगा और उसे संकटग्रस्त यान के कक्षापथ पर छोड़ देगा। वही त्रिकोणाकार यान आवश्यकतानुसार एक से अधिक बार भी मरम्मत के लिए जरूरी सामान और इंजीनियर-दल आदि पहुँचाता रहेगा।

थैले में बन्द करके पृथ्वी को लौटेगा

चित्र में दिखाये अनुसार रक्षकदल अपने यानों को संकटग्रस्त यान के इर्द-गिर्द चलाते रहेंगे और निश्चित संकेत पाते ही पौलिथिलीन के एक वृहद बैलून के रूप में बनकर खुले मुँह उस यान की ओर बढ़ेंगे। बैलून का निचला चिलम जैसा भाग व्यक्तियों के लिए रहेगा। बैलून में यान को लेते ही उसका मुँह बन्द कर दिया जाएगा। तत्पश्चात् एक स्वचालित विस्फोटक द्वारा वह कक्षापथ से निकल कर पृथ्वी की ओर उन्मुख हो जाएगा। इस लौटती यात्रा में एक अतिरिक्त पैराशूट की सहायता लेना आवश्यक होगा। व्यक्ति-युक्त वह चिलम जैसा भाग पाँच घण्टे तक व्यक्तियों को निरापद रूप से ग्रहण किये रहेगा। उससे तो कहीं पहले उस समस्त जत्थे को धरती पर उतार लिया जाएगा। उपरोक्त संस्था के स्पेस मैनेजर की गणना है कि यान को बैलून में लेने की घड़ी से लेकर उसे कक्षा-

मानवरहित यान की मरम्मत के लिए त्रिकोणाकार कल्पित यान का डिजाइन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पथ से निकालकर पृथ्वी की ओर उन्मुख करने में कुल २६ मिनट लगने चाहिए।

तीन प्रकार के रक्षाकार्य

अमरीका की जनरल डिनेमिक्स, एस्ट्रानाट्स स्टडीज के डी. विन्सेण्ट फ्रीमैन ने अपना अभिमत प्रदर्शित किया है कि अन्तरिक्ष में सुरक्षाकार्य तीन प्रकार का हो सकता है—१. ऐसे व्यक्ति की रक्षा जो अपने यान से बाहर विस्थापित है और संयोगवश संज्ञाशून्य भी है; २. समूचा यान ही भटक सकता है और यदि उसके अन्दर कोई व्यक्ति भी है तो उसके साथ ही यान को बचाना; ३. ऐसा यान जो साधारण मरम्मत से ठीक हो सकता हो, उसे वहीं ठीक करके सही मार्ग पर भेजना।

डी. विन्सेण्ट का अनुमान है कि पहली स्थिति तो अपवादस्वरूप ही समझी जानी चाहिए। यह सम्भव है कि ऐसा व्यक्ति अपने यान से बाहर निकलकर, अपने अन्तरिक्ष-परिधान में उसी यान से एक रस्से द्वारा सम्पर्क बनाये उसकी मरम्मत में लगा हो। ऐसी अवस्था में पृथ्वी से सहायता भेजने की अपेक्षा वहीं घूमते हुए अन्यान्य अन्तरिक्ष-यानों में से किसी की भी सहायता लेना सुविधाजनक होगा।

दूसरी स्थिति में संकटग्रस्त यान को बैलून में लपेटकर लाने की जो विधि ऊपर की पंक्तियों में दर्शायी है, वही काम देगी। तीसरी अवस्था में निश्चय ही यह प्रयत्न किया जाएगा कि वहीं घूमते हुए अन्य यानों में किसी भी यान की सेवा का लाभ लिया जाए किन्तु परिस्थिति विषम होने पर उक्त यान के व्यक्तियों को दूसरे यान में ले लिया जाए।

यद्यपि यह सम्भावना आज अधिक निकटस्थ प्रतीत नहीं होती, तथापि डी. विन्सेण्ट और डा. आर. एफ. ब्राउस्ट की दूरदर्शिता और अथक परिश्रम अन्तरिक्ष में रक्षाकार्य का मार्ग प्रशस्त करेंगे इसमें सन्देह नहीं।

संकटग्रस्त यान को वृहत् थैले में बन्द करने के दो क्रम; खुले मुँह, निकट पहुँचना और थैले में बन्द कर लेना

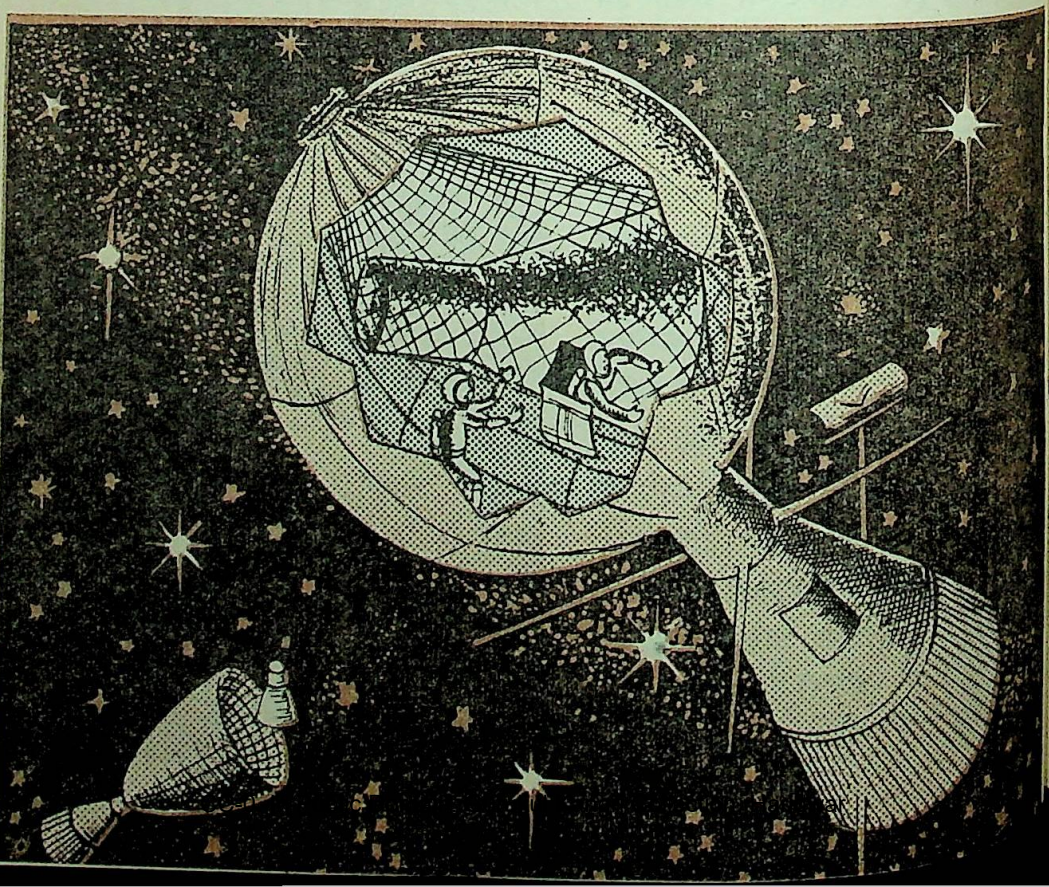

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबसे हलकी, बहुउपयोगी धातु

लीथियम

सत्यकुमार

लीथियम सबसे हलकी धातु है। ठोस पदार्थों में यह सबसे हलका है। यह 'कार्क' से भी हलका है और पानी की सतह पर तैरता रहता है। परन्तु कार्क की तरह यह निर्लेप भाव से पानी पर नहीं तैरता रहेगा। यह बड़ी तीव्र गति से, विस्फोटात्मक प्रकृति से तैरता है। लीथियम पर जल की क्रिया करने से हाइड्रोजन बनती है और जल उदासीन न रह कर लीथियम हाइड्रोक्साइड बनने के कारण क्षारीय हो जाता है। इन गुणों के आधार पर लीथियम की गणना सोडियम, पोटाशियम इत्यादि क्षारीय धातुओं में होती है। उन्हीं धातुओं की तरह, नमी से इसकी रक्षा करने को या इसे सुरक्षित रखने को मिट्टी के तेल या अन्य किसी हाइड्रोकार्बनीय तेल को प्रयुक्त करते हैं। लीथियम के हलकेपन का इस तथ्य से अनुमान हो सकता है कि हलका समझे जाने वाले एल्युमीनियम धातु के एक वर्ग फुट का भार ८५ किलोग्राम होता है, जबकि लीथियम के एक वर्ग फुट का भार केवल १६ किलोग्राम होता है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक बर्जीलियस के शिष्य एर्फवेडसन ने १८१७ में लीथियम की खोज की। उसने 'पेटेलाइट' नाम के खनिज पदार्थ से इस पदार्थ का आक्साइड प्राप्त किया। इस पदार्थ के गुण क्षारीय थे परन्तु यह सोडियम, पोटाशियम या मैगनीशियम का यौगिक नहीं था। सोडियम व पोटाशियम वनस्पति जगत से प्राप्त किये गये थे, लीथियम आक्साइड की प्राप्ति खनिज पदार्थ से हुई अतः बर्जीलियस व एर्फवेडसन ने इसका नाम लीथियम (लीथिया = पत्थर) रख दिया। 'पेटेलाइट' में लीथियम के अतिरिक्त एल्युमीनियम व सिलीका होते हैं। अगले वर्ष एक अन्य खनिज 'लेपिडोलाइट' से भी एर्फवेडसन ने लीथियम यौगिक प्राप्त किया। किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी एर्फवेडसन लीथियम धातु नहीं प्राप्त कर सका। ब्रेण्ड ने व बाद में डेवी ने लीथियम धातु की प्राप्ति की। १८५५ में बुन्सेन व मैथीसेन ने सफलतापूर्वक लीथियम धातु की काफी मात्रा प्राप्त की। उन्होंने लीथियम क्लोराइड के अवकरण द्वारा धातु प्राप्त की थी।

लीथियम प्रकृति में अनेक पदार्थों में मिलता है किन्तु इसकी मात्रा प्रायः बहुत कम होती है। १४० खनिज पदार्थों में लीथियम का होना निश्चित हो चुका है। अल्पमात्रा में दूध, रक्त तथा मिट्टी में लीथियम पाया गया है। तम्बाकू की राख में पर्याप्त लीथियम कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लीथियम की गिनती मूल्यवान धातुओं में होती है। लीथियम धातु के स्वयं के उपयोग कम हैं। अन्य धातुओं के साथ अति अल्पमात्रा में यह अनेक उपयोगी पदार्थों में प्रयुक्त होता है। १८८० तक लीथियम केवल आश्चर्य की वस्तु रहा। उस समय एडीसन ने विद्युत् बैटरियों में लीथियम का प्रयोग किया और तब से विद्युत् द्वारा चलने वाले अनेक माध्यमों में लीथियम प्रयुक्त होता रहा है।

ताँबा धातु व काँसे के शोधन के लिए लीथियम उत्तम धातु है। इनमें उपस्थित आक्सिजन या अशुद्धियों के साथ लीथियम संयोग कर उन्हें शुद्ध कर देता है। अधिक उपयुक्त इसलिए भी है कि लीथियम हलका होने के कारण उसके यौगिक भी हलके होते हैं और इस प्रकार वह अशुद्धि पिघली हुई धातु या मिश्रधातु के ऊपर तैरती रहती है और सहज पृथक् की जा सकती है। इसी प्रकार इस्पात बनाने में जब ताप १०००° के ऊपर पहुँचता है तो लोहे के साथ आक्सिजन संयोग करने लगती है। इस्पात से इस आयरन आक्साइड की अशुद्धि को दूर करने के लिए उसे गंधक के अम्ल में डुबोना पड़ता है। इस क्रिया में बहुत व्यय होता है अतः यदि इस्पात बनते समय ही किसी प्रकार आक्सिजन को दूर रखा जाए तो यह समस्या ही पैदा नहीं होगी। फलस्वरूप इस्पात उद्योग में जब लोहा गरम किया जाता है तो चारों ओर लीथियम की वाष्प का वायुमण्डल बना दिया जाता है, जिससे आक्सिजन लीथियम के सम्पर्क में न आये।

लीथियम का एक प्रमुख उपयोग चीनी के बर्तनों के निर्माण में है। इसका द्रवणांक १८०° से. होने के कारण यह सहज पिघल जाता है तथा चीनी के बर्तनों पर नक्काशी आदि में प्रयुक्त होता है।

लीथियम क्लोराइड नमी का शोषण नहीं करता है अतः इसका उपयोग वातानुकूलन में किया जाता है। 'टेलीविजन' चित्र नलिका में लीथियम स्तेमाल होता है। तैल उद्योग तथा विटामिन 'ए' के निर्माण में भी लीथियम काम आता है।

वायुमण्डल से हीलियम प्राप्त करने पर उसमें नाइट्रोजन की अशुद्धि रह जाती है। लीथियम नाइट्रोजन से संयुक्त होकर लीथियम नाइट्राइड बनाता है अतः यह हीलियम के शुद्धीकरण में भी प्रयुक्त होता है।

सीसा धातु में लीथियम मिलाकर उसे कठोर किया जा सकता है। एल्युमीनियम में १% लीथियम मिला देने पर इस मिश्रधातु का उपयोग अनेक उपयोगी वस्तुएँ जैसे कार व ट्रक के ढाँचे बनाने में होता है। बेरीलियम व मैगनीशियम में भी लीथियम मिला दिये जाने से अभूतपूर्व गुण आ जाते हैं। धातुओं में लीथियम मिला दिये जाने पर उनमें कठोरता, मोर्चा न लगना इत्यादि अनेक गुण आ जाते हैं।

लीथियम के अनेक लवण जैसे सेलिसलेट, बैंजोएट, सिट्रेट, कार्बोनेट इत्यादि गठिया के रोग में औषधि के रूप में प्रयुक्त होते हैं।

लीथियम-नाभिक का विशालित दृश्य

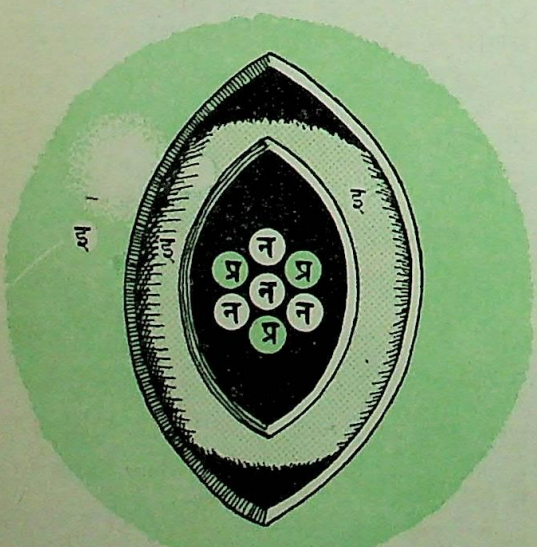

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगों के लिए उत्तरदायी शरीर में बनने वाला यूरिक लीथियम अम्ल लवणों के साथ विलेय लीथियम यूरेट बनकर निकल जाता है। शरीर रोगमुक्त हो जाता है।

लीथियम चटक लाल रंग की ज्वाला से जलता है अतः इसके लवणों का उपयोग आतिशबाजी में भी किया जाता है। लीथियम क्लोराइड भी प्रायः इसमें स्तेमाल होता है। लीथियम क्लोराइड का एक अन्य उपयोग एल्युमीनियम के पात्रों आदि में टाँका लगाना भी है। तामचीनी (एनेमल) उद्योग में लीथियम क्लोराइड काम आता है। लीथियम हाइड्रोक्साइड का क्षारीय संग्रहण सैलों में भी प्रयोग होता है।

संश्लेषण विधि से एमोनिया के औद्योगिक निर्माण में, लीथियम उत्प्रेरक की तरह भी प्रयुक्त होता है।

दाँतों के लिए बनाये जाने वाले अनेक प्रकार के सीमेन्टों में लीथियम बोरेट भी काम आता है। पनडुब्बियों में वायु के शुद्धीकरण के लिए भी लीथियम काम आता है। द्वितीय महायुद्ध में लीथियम का प्रयोग अनेक महत्त्वपूर्ण सैनिक कार्यों के लिए किया गया। लीथियम का हाइड्रोजन के साथ एक यौगिक बनता है लीथियम का हाइड्राइड। यह जल के साथ क्रिया कर तुरन्त हाइड्रोजन बनाता है। लीथियम हाइड्राइड की गोली पर समुद्र के जल की क्रिया से हाइड्रोजन बनाकर गुब्बारे में भर लेते हैं। इस गुब्बारे को उड़ाकर उस पर रेडियो का 'एरियल' लगा लिया जाता

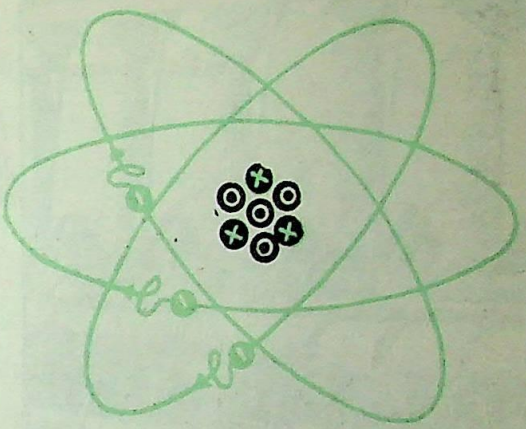

यह लीथियम का परमाणु है इसके नाभिक में ३ प्रोटान और ४ न्यूट्रान हैं। अन्दर की ओर २ एलेक्ट्रान हैं और बाहर की ओर केवल एक। लीथियम अपना यह तीसरा एलेक्ट्रान चाहे जिस दूसरे तत्त्व को देने के लिए तत्पर रहता है

था और इस प्रकार जल या अम्बर कहीं भी रेडियो की व्यवस्था कर ली जाती थी।

लीथियम का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपयोग हाइड्रोजन बम में है। इसमें लीथियम की अधिक मात्रा लगभग ५ टन प्रयुक्त होती है। वैसे लीथियम यूरेनियम से सस्ता है। यूरेनियम की अपेक्षा विश्व में लीथियम व उसके खनिज भी अधिक हैं। इसके अतिरिक्त लीथियम से यूरेनियम की अपेक्षा तिगुनी शक्ति प्राप्त होती है। परमाणु शक्ति के युद्ध में ही नहीं शान्तिकाल में भी अनेक उपयोग हैं। इस प्रकार लीथियम का प्रयोग सदा होता रह सकता है। आजकल इसकी माँग बहुत अधिक है किन्तु इसका निष्कर्षण उतना नहीं हो पा रहा है। ●

शिशु के लिए अचूक भविष्यवाणी

१७००० से अधिक परीक्षणों द्वारा यह अचूक रूप से कहा जा सका है कि शिशु-जन्म के पश्चात् एक मिनट में तथा पाँच मिनट के अन्दर निम्न पाँच परीक्षण किए जाने पर बालक के स्वस्थ और सुखी जीवन के बारे में निश्चित रूप से भविष्यवाणी की जा सकेगी। इन परीक्षणों में अधिक अंक प्राप्त करने का अर्थ है स्वास्थ्य और सुख तथा न्यून अंकों का अर्थ है रोगी और दुखी जीवन। परीक्षण ये हैं—१. सरल, सहज श्वसन, २. सुगठित स्नायु, ३. हृत्स्पन्दन, ४. प्रतिवर्ती क्रिया तथा ५. रक्त का वर्ण, लाल अथवा मटमैला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

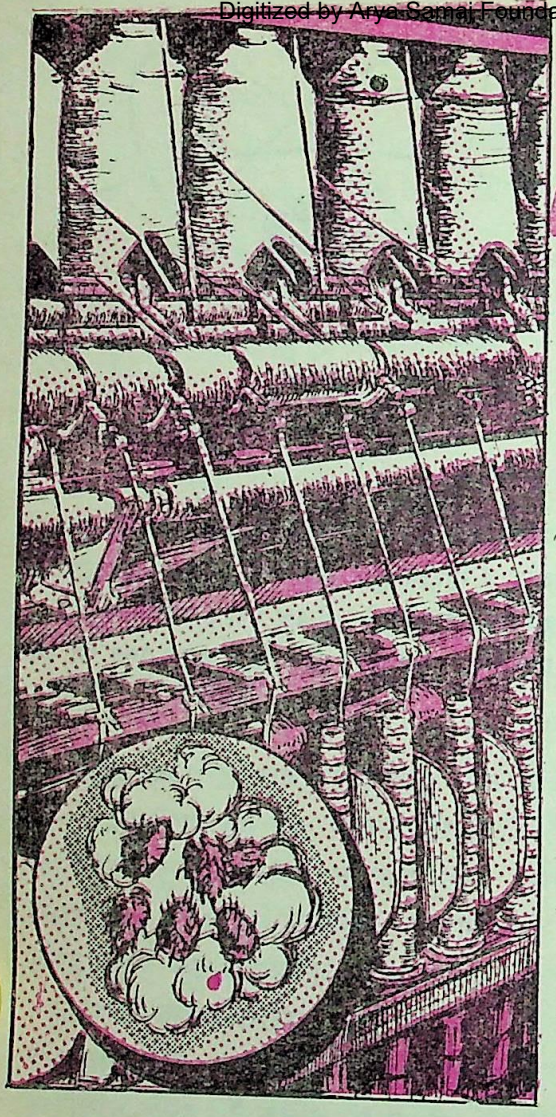

बिनौले से धागे तक

मुरारीलाल माहेश्वरी

रुई का पौधा उन गिने-चुने पौधों में से है जिनका कोई भी अंग फेंका नहीं जाता, पूरा का पूरा काम में आ जाता है। रासायनिक दृष्टि से रुई एक शुद्धतम सेल्यूलोज का ही रूप है। इसका सेल्यूलोज जिन अनेक वस्तुओं के बनाने में काम आता है उनमें से कुछेक इस प्रकार गिनायी जा सकती हैं—सेल्यूलॉइड, फोटो-फिल्में, रेयॉन, कागज, गनकॉटन, वारनिश, जलरोधक पेकिंग के कागज आदि। इसके बीज के छिलके भी विविध उर्वरक तथा कार्डबोर्ड (गत्ते) तैयार करने के रेशे बनाने में काम आते हैं। इसका बीज जिसे 'बिनौला' कहते हैं, पेल कर उससे तेल निकाला जाता है। वह तेल शोधित रूप में खाने के काम आता है तथा कम शोधित अवस्था में साबुन, मोमबत्ती, ऑइलक्लॉथ और संश्लेषित चमड़ा तैयार करने में प्रयुक्त होता है।

भाँति-भाँति की रुई और उनके उत्पादक

उत्तमता की दृष्टि से विभिन्न स्तरीय रेशोंयुक्त रुई की उपज होती है। रुई-उत्पादक देशों में अधिकता की दृष्टि से अमरीका और उत्तमता की दृष्टि से मिस्र अग्रणी है। मिस्र का 'इजिप्शियन काटन' अद्वितीय है। इसका रेशा सबसे लम्बा और रेशम जैसा होता है।

अभावों ने आविष्कारों को जन्म दिया

सूती वस्त्रों की बढ़ती हुई माँग ने और उत्पादन के तीव्र अभाव ने स्वभावतः ही अनेक आविष्कारों को जन्म दिया। उन्हीं में मुख्यतः हैं—कपास चुनने के यन्त्र, कपास ओटने और रुई साफ करने के यन्त्र, रुई की पूनी बनाने से लेकर सूत तैयार करने तक की मशीनरी, सूत से कपड़े बुनने की टेक्सटाइल मशीनरी आदि आदि। इन सीमित पंक्तियों में समूचा वस्त्र बनने तक के विधि-विधान की चर्चा का समावेश करना सम्भव नहीं है। अतः बिनौले से धागे तक का ही विषय यहाँ चर्चित है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुई के उत्पादन की मात्रा और उत्तमता अनेक बातों पर निर्भर है। इनमें मुख्य हैं—बीज की जाति, भूमि की उर्वरता, ऋतु की अनुकूलता तथा कृषि-कुशलता। बीज बोने के ३-४ महीने पहले से ही कृषक का कार्य आरम्भ हो जाता है। अथक परिश्रम से उसे हल जोत-जोत कर भूमि को आवश्यक रूप में तैयार करना पड़ता है। भूमि तैयार हो जाने पर खेत को क्यारियों में बाँटा जाता है। आजकल तो प्रत्येक कार्य के लिए चलती-फिरती मशीनें हैं, अतः क्यारियों के बीच काफी खुली जगहें छोड़नी पड़ती हैं ताकि भारी-भरकम मशीनों के पहियों से फसल खराब न हो।

बीज बोने के १२-१५ दिन पश्चात् कोंपलें फूटने लगती हैं। पौधे ४-६ इंच ऊँचे उभर आने पर इर्द-गिर्द की खर-पतवार साफ कर दी जाती है। जलवायु के आकस्मिक परिवर्तनों के प्रति यह पौधा अत्यन्त संवेदन-शील है। पानी और नमी की अधिकता इसके लिए हानिकारक है। इसी प्रकार सूखे की अधिकता इसकी वृद्धि को रोक देती है और पौधा समय से पूर्व ही पक कर छोटे रेशे की रुई दे चुकता है। विभिन्न वानस्पतिक रोग तथा झींगुर और घुन आदि जीव भी इसके प्रबल शत्रु हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि जलवायु पर किसी का वश नहीं। अतः रुई की खेती करने वाले वर्षा की अनिश्चितता के भरोसे नहीं बैठे रहते और यही पसन्द करते हैं कि अपेक्षा-कृत गर्म मौसम में ही खेती तैयार की जाए और पानी की पूर्ति नहरों द्वारा की जाए।

पौधा तैयार हो जाने पर कपास का खेत ऐसा लहलहा उठता है मानो दूधिया चादर बिछा दी हो। फूला-फूला, भरा-भरा रुई के गालेयुक्त कपास अत्यन्त आकर्षक दृश्य उपस्थित करता है। कपास बीनने का यन्त्र बनने से पहले यह काम श्रमिकों से ही लिया जाता था। कई गज लम्बा एक-एक थैला प्रत्येक बीनने वाले के कंधे से लगा-लगा दूर तक पीछे को घिसटता चलता था। उसी में बिनौले तोड़-तोड़ कर भरे जाते थे।

कपास की तीन अवस्थाएँ—**फूल, रुई, बिनौले**

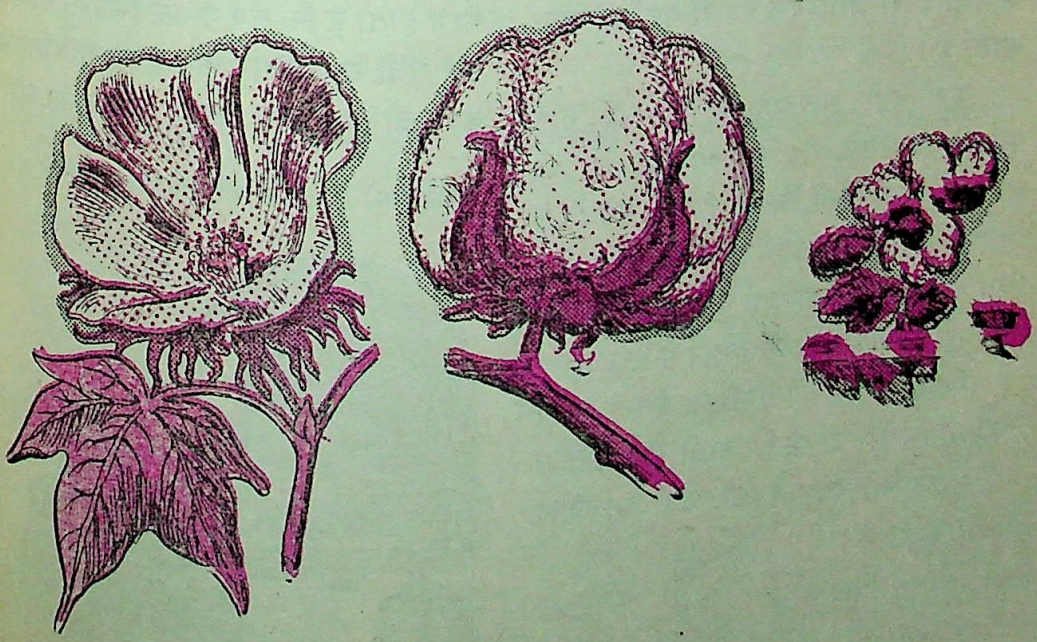

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कंधे से लटकते, इस लम्बे सरकते थैले में १०० पौण्ड तक रुई बीनकर भरी जा सकती है

खेतों के निकट ही जिनिंग मशीनें लगायी जाती हैं। वे मशीनें बिनौले और रुई को अलग-अलग कर देती हैं। बिनौलों का इस प्रकार वहीं का वहीं अलग हो जाना इसलिए आवश्यक है कि रुई को दूर देशों में भेजना पड़ता है। उस अवस्था में बीजयुक्त रुई व्यर्थ का भार ही बढ़ाने का काम करेगी। अत: रुई को अलग करके उसे बड़ी-बड़ी गाँठों में पैक किया जाता है और ट्रकों, रेलों तथा जहाजों द्वारा आवश्यक स्थलों पर पहुँचाया जाता है।

बड़ी-बड़ी मण्डियों में रुई की गाँठें पहुँचने पर उनके सौदे किये जाते हैं। रेशे की लम्बाई, रेशम जैसी चिकनाई तथा सफेदी के आधार पर मूल्य निर्धारित किये जाते हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मिस्र की रुई—इजिप्शियन काटन संसार में श्रेष्ठ मान्य है। मण्डियों से रुई की गाँठें सूत बनाने वाली स्पिनिंग मिलों को भेजी जाती हैं। वहीं से वस्त्र बनने की कहानी का नया परिच्छेद आरम्भ होता है।

तोड़ा, धोवा, फिर तोड़ा

रुई को भी अजीब परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। पहले तो बिनौले से तोड़ी जाती है, फिर गाँठों में बाँधी जाती है और स्पिनिंग मिल में पुनः गाँठें खोलकर मशीन द्वारा तोड़ी जाती है। जिस कमरे में इसे तोड़ा जाता है उसे ब्लोइंग रूम (Blowing Room) कहते हैं और तोड़ने वाली मशीन को ब्लोअर (Blower) कहते हैं। उस तोड़-धोने की ही क्रिया के बीच में भिन्न-भिन्न जाति की रुई को मिलाया भी जाता है ताकि विभिन्न आवश्यक प्रकार के सूत तैयार किये जा सकें। बढ़िया-घटिया रुई का निश्चित अनुपात में मिश्रण किया जाता है। इन कार्यों में मुख्य तीन मशीनें काम करती हैं—बेल ब्रेकर (Bale Breaker), ओपनर (Opener) और स्कचर (Scutcher)। ये मशीनें काँटेदार रोलर हैं जो विभिन्न रुई को एक ही इकसार तह के रूप में तैयार कर देती हैं। उस तह को लैप (lap) कहते हैं।

यद्यपि वह लैप एक तह के रूप में होता है फिर भी उसके अन्दर रेशे अस्त-व्यस्त हालत में रहते हैं। तब कार्डिंग मशीन (Carding Machine) से कार्ड-रूम में काम लिया जाता है। यह कार्ड मशीन का काम होता है कि लैप के अस्त-व्यस्त रेशों को इस खूबी से इकसार कर दे मानो बालों में कंघी की हो। कंघी किया हुआ वह लैप मशीन

क्यारियों से कपास बीननेवाला आधुनिक यंत्र

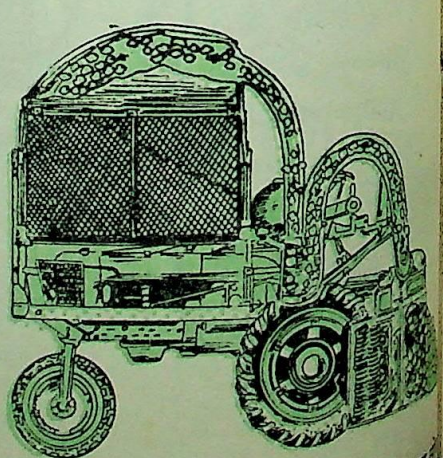

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

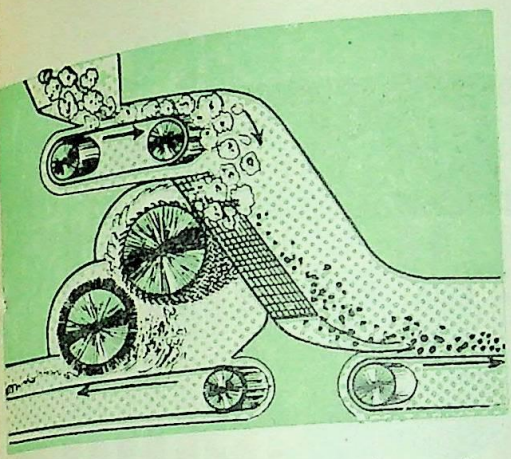

यह जिनिंग मशीन है। यहाँ बिनौले से रुई पृथक होकर दूसरी ओर नर्म गाले के रूप में बाहर निकलती है

में कुछ दूरी तक ऐसा तैरता चलता है जैसे निर्मल जलधार बही चली जा रही हो। अन्ततः कार्ड मशीन से वह नर्म और लगभग पारदर्शक जैसा गोल रस्से के रूप में बाहर निकलता है। तब उसे कार्ड स्लाइवर (card sliver) कहते हैं। जहाँ अधिक बारीक और बढ़िया सूत की आवश्यकता हो, वहाँ इस स्लाइवर को पुनः कंघी दी जाती है ताकि रहे-सहे छोटे-मोटे रेशे साफ हो जाएँ, निकल जाएँ।

उस प्रकार के अनेक स्लाइवर एक साथ एक-एक ड्रा-फ्रेम (Draw Frame) से गुजारे जाते हैं। उस ड्रा-फ्रेम में ये स्लाइवर कई बेलनों से दबते हुए निकलते हैं। बेलनों के उन जोड़ों को रौलर्स (Rollers) कहते हैं। आरम्भिक सिरे के रौलर मन्द गति से और अन्तिम सिरे के रौलर तनिक तीव्रगति से घूमते हैं। फलतः स्लाइवर का वह रस्से का रूप क्रमशः पतली रस्सी जैसा होते-होते मोटे सूत के रूप में बाहर निकलता है।

ड्रा-फ्रेम के पश्चात् उस मोटे सूत को स्पीड फ्रेम (Speed Frame) से गुजारा जाता है। वहाँ से वह बारीक होकर निकलता है तब उसे इण्टरमीडियेट (intermediate) अथवा रोविंग (roving) कहते हैं। उस समय वह काठ की फुकनियों अर्थात् बाबिनों (bobbins) पर लिपटा रहता है। रोविंग की क्रिया में ही उस सूत को थोड़ा-सा बल भी दे दिया जाता है ताकि आगे चलकर स्पिनिंग की क्रिया में वह टूट न जाए। यहीं से स्पिनिंग की अन्तिम और सबसे महत्त्वपूर्ण क्रिया आरम्भ होती है।

झीनी-झीनी कताई

कारखानों में सूत की कताई आजकल दो प्रकारों से होती है। लगभग २० वर्ष पूर्व एक ही विधि—म्यूल स्पिनिंग (mule spinning) प्रचलित थी। तत्पश्चात् उसमें अनेक संशोधन किये गए और नयी विधि को

[शेष पृष्ठ २२ पर]

कुछेक प्राचीनकालिक यंत्र—१. स्पिनिंग व्हील (१८वीं शताब्दी); २. व्हिट्ने-निर्मित जिन (१९वीं शताब्दी); ३. भारत की तकली और चर्खा

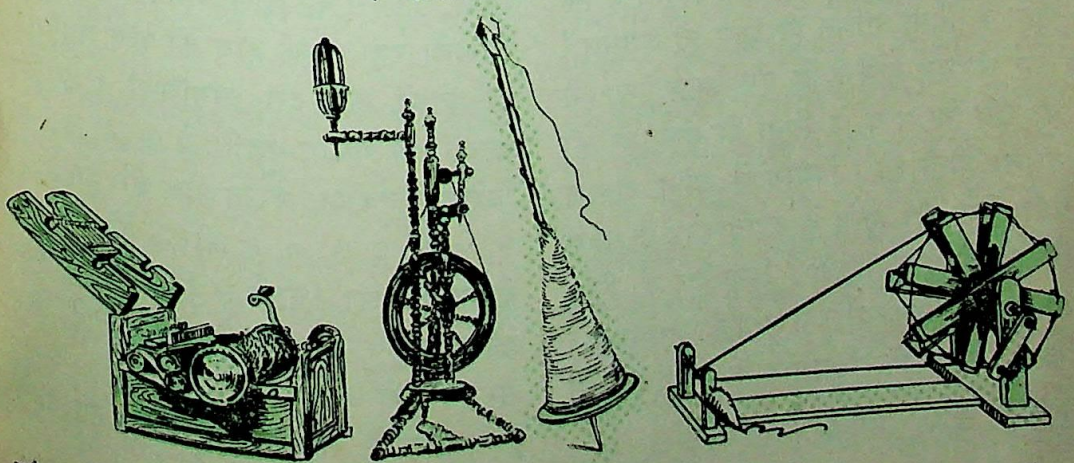

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

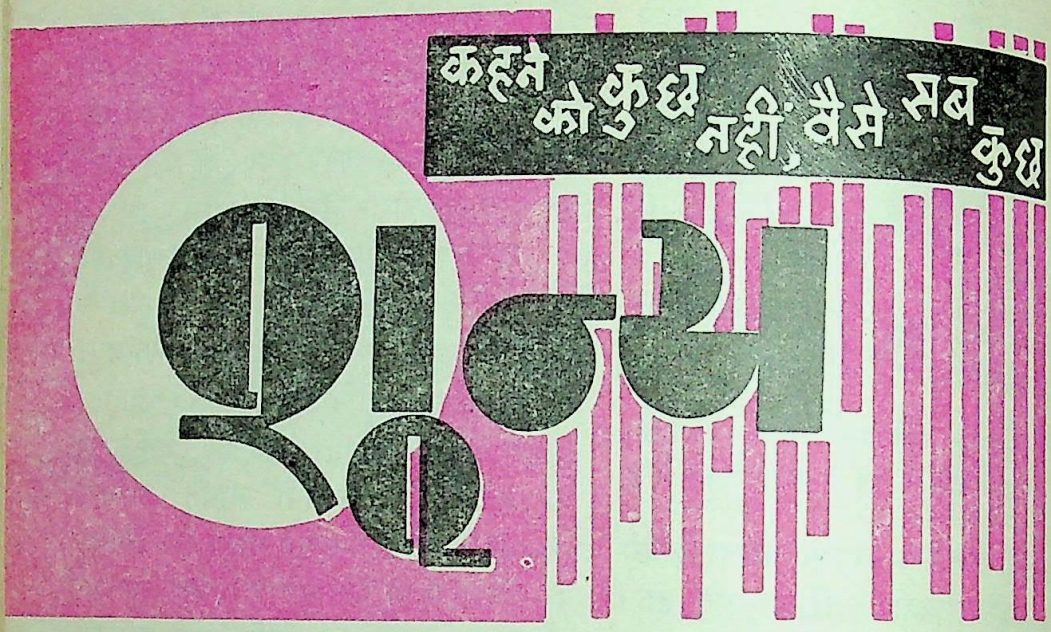

गुणाकर मुले

शून्य का अर्थ है, किसी वस्तु का अभाव; अर्थात् 'कुछ नहीं !' और उसी 'कुछ नहीं' के लिए मानव ने एक चिह्न बनाया ० ! बाजार में जाइये—एक वस्तु मिलेगी, दो वस्तुएँ मिलेंगी·····, परन्तु जरा शून्य वस्तु तो माँगकर देखिए ! लोग कहेंगे—कैसा पागल है ! तो जिस आदमी ने पहले-पहल शून्य का आविष्कार किया होगा, शायद उसे भी लोगों ने पागल ही कहा होगा ! लेकिन अपनी गणित की पुस्तक के पन्ने पलटकर देखिए । गणित की गणनाओं में शून्य के न होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती । ऐसा लगता है कि शून्य के बिना गणित ही शून्य हो जाएगा ! फिर भी यह सत्य है कि एक समय ऐसा भी था जब कि शून्य के बिना ही संख्याओं की गणना होती थी । दिमाग में अनेक सवाल पैदा होते हैं : शून्य के आविष्कार के पहले गिनती कैसी होती थी ? किस देश में, किस समय और किस व्यक्ति ने शून्य का आविष्कार किया ? और फिर, संसार के सभ्य देशों में शून्य का प्रचार कैसे हुआ ?

शून्य के पहले

आदमी ने पहले-पहल बोलना सीखा तो उसकी उस आदिम-भाषा में एक, दो आदि लघु संख्याओं के लिए भी शब्द अवश्य नहीं होंगे । मानव का शब्द भंडार बढ़ता गया साथ-साथ इन शब्दों का चित्रलिपि में भी अंकन भी करने लगा । उसी प्रकार अंकों के लिए; जैसे १, २, ३ आदि के लिए उसने I, II, III या —, =, ≡ जैसी लकीरों का अंकन किया । कागज का आविष्कार तो बहुत बाद में हुआ । आरम्भ में वह पत्थर, गीली मिट्टी, पेपिरस की छाल, चमड़ा आदि पर ही लिखता रहा । एक हाथ की पाँच अंगुलियाँ, दो हाथों की दस अंगुलियाँ । इसलिए आरम्भिक गणना-पद्धति में ५ या १० को विशेष महत्त्व था; परन्तु आज जैसे हम १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ और ० को मिलाकर केवल १० अंक-चिह्नों से बड़ी-से-बड़ी संख्या को व्यक्त कर सकते हैं, वैसा उनके लिए सम्भव नहीं था ।

आज से लगभग छह हजार वर्ष पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न लिपियों में १० का अंक

मिस्र, बेबीलोन, प्राचीन रोमन, चीनी, भारतीय, मलाया, आधुनिक इंगलिश

मेसोपटोमिया में क्रमशः सुमेरियन, बेबीलोनियन और असिरियन सभ्यताओं का विकास हुआ। गणितशास्त्र में भी उन्होंने काफी प्रगति कर ली थी, परन्तु उनकी भी अंक-पद्धति में शून्य नहीं था।

ग्रीक जाति ने ई. पू. की शताब्दियों में गणितशास्त्र को उच्च शिखर पर पहुँचाने के लिए अद्‌भुत प्रयास किये। इसी जाति ने पाइथोगोरस, यूक्लिद, आर्किमीडिज जैसे महान् गणितज्ञों को जन्म दिया। परन्तु बड़ी संख्याओं को व्यक्त करने के लिए इनकी अंक-पद्धति भी कष्टप्रद थी। इन्होंने अपनी वर्ण-माला के अक्षरों का ही अंकों के लिए इस्तेमाल किया। ग्रीक वर्णमाला में २४ अक्षर थे। १ से ९ तक के लिए प्रथम ९ अक्षर; १० से ९० तक के लिए बाद के ९ अक्षर और १०० से ९०० तक के लिए और बाद के ९ अक्षर! इस प्रकार, ३ और अक्षरों को बनाकर अपनी अंक-पद्धति के लिए २७ अक्षर-संकेतों का प्रयोग किया। शून्य का ज्ञान न होने से बड़ी-बड़ी संख्याएँ लिखने में दिक्कत होती थी। १०,००० को वे M अक्षर द्वारा प्रकट करते थे।

रोमन-अंक तो आज भी पुरानी घड़ियों आदि पर चलते हैं। इनमें

I V X L C D M
१ ५ १० ५० १०० ५०० १०००

और यदि २७५२८९९ लिखना हो तो रोमन गणितज्ञों को लिखना पड़ता था—

CIↃCIↃDCCLCIↃCIↃ
DCCCLXXXXCVIIII

हमारे देश में बहुत प्राचीन काल से गणना का आधार दस ही रहा है। बड़ी-बड़ी संख्याओं का उल्लेख भी मिलता है। परन्तु राजा अशोक आदि के ई. पू. के जो शिलालेख मिलते हैं उनमें शून्य का कहीं पता नहीं चलता। एक, दो और तीन के लिए प्रायः –, = और ≡ रेखाएँ मिलती हैं। १० के लिए ∝ चिह्न और आगे के अंकों के लिए भी इसी प्रकार स्वतन्त्र चिह्न मिलते हैं। जिस प्रकार, उस समय की लिपि को ब्राह्मी-लिपि कहा जाता है, उसी प्रकार अंकों को ब्राह्मी-अंक कहा जाता है।

शून्य का आविष्कार

हम देख चुके हैं कि सभी प्राचीन सभ्यताओं की अंक-पद्धति में शून्य का अभाव था और उस अभाव के कारण बड़ी-बड़ी संख्याओं को लिखने में और अंकगणित के परिकर्मों में बड़ी कठिनाई होती थी। भारत के ब्राह्मी-अंकों में भी यही कठिनाई थी। हर संख्या के लिए एक संकेत—यह तो बड़ी परेशानी है! ई. पू. दूसरी या तीसरी शताब्दी में भारत का एक विद्वान सोचने लगा—क्या यह सम्भव नहीं है कि केवल दस चिह्नों से ही समस्त संख्याओं को व्यक्त किया जा सके? सोचते-सोचते अन्त में उसे एक सरल पद्धति मिल ही गयी। १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ और ० से समस्त संख्याएँ लिखने की 'स्थानमान-पद्धति' का आविष्कार उसने कर लिया! लिखने का आधार दस ही रहा। यह पद्धति अब सम्पूर्ण संसार में प्रचलित है। शून्य और स्थानमान-पद्धति के बिना, हिन्दू अंक उसी प्रकार के अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंकों से न तो श्रेष्ठ होते और न संसार के सभ्य लोगों में उनका आदर होता।

इतना बड़ा आविष्कार ! फिर भी, हम नहीं जानते कि उस महान् भारतीय आविष्कारक का नाम क्या था; वह किस समय और किस स्थान पर पैदा हुआ था ! इतना तो निश्चित है कि शून्य और स्थान-मान-पद्धति का आविष्कार भारत में ही हुआ है। अभिलेखों में स्थानमान-पद्धति का सर्व-प्रथम प्रयोग संखेड़ा से प्राप्त गुर्जरों के दानपत्र में, जो ई. स. ५९४ का है, मिलता है। शून्य के लिए लघुवृत्त का प्रयोग सर्वप्रथम ८वीं शताब्दी के जयवर्धन द्वितीय के राघोली के दानपत्र में मिलता है। इसके बाद तो कई दानपत्रों में स्थानमान पद्धति और शून्य का प्रयोग हुआ है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि भारत में शून्य और स्थानमान-पद्धति का आविष्कार ईसा की बाद की शताब्दियों में हुआ है। इस पद्धति के प्रसार के लिए भी कई शताब्दियाँ लगी होंगी। साहित्यिक-ग्रंथों के आधार पर यह निर्णय निकाला जा सकता है कि ई. पू. दूसरी या तीसरी शताब्दी में शून्य और इस नवीन पद्धति का भारत में आविष्कार हो चुका था।

शून्य का आकार

भारत के प्राचीन ग्रंथों के उल्लेखों से पता चलता है कि ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में शून्य की गणना अंकों में की जाती थी और उसे सूचित करने के लिए एक सांकेतिक चिह्न भी था। परन्तु इस सांकेतिक चिह्न का आकार ठीक-ठीक क्या था, इसके बारे में संदेह है। बसाली हस्तलिपि की प्राप्त प्रति में, जो ८वीं शताब्दी की है, शून्य के लिए बिन्दु का प्रयोग हुआ है। पुरालेख-सम्बन्धी जो प्रमाण उपलब्ध हैं (जैसे, जयवर्धन द्वितीय का राघोली का दानपत्र, ग्वालियर का आन्तलेख आदि) उनमें शून्य के लिए लघुवृत्त का प्रयोग हुआ है।

अरब में हिन्दू अंक

अरब जाति का क्रमबद्ध इतिहास ई. स. ६२२ से आरम्भ होता है जबकि मोहम्मद साहब मक्का से मदीना गये थे। बाद के दो सौ वर्षों में अरब साहित्य और विज्ञान की स्थापना हुई। यह कार्य विदेशों से लायी गयी सामग्री के आधार पर हुआ। संस्कृत, ग्रीक और फारसी ग्रंथों के अरबी में अनुवाद हुए। अरब वालों के पास अपने संतोषजनक अंक-संकेत नहीं थे। सातवीं शताब्दी के अन्त तक वे अंकों के लिए ग्रीक-अक्षरों का इस्तेमाल करते थे। खलीफा अलमंसूर (७५३-७७४ ई.) के राज्य-काल में सिन्ध से बगदाद कुछ दूत गये थे, जिनमें कुछ ऐसे भी विद्वान थे जो अपने साथ संस्कृत में लिखे गणित और ज्योतिष के ग्रंथ भी लेते गये थे। इन ग्रंथों का अरबी में अनुवाद हुआ। विद्वानों का मत है कि इसी समय भारतीय अंक-पद्धति का अरब में प्रवेश हुआ। इस संदर्भ में अलबेरुनी का उल्लेख अवश्य होगा। अलबेरुनी लगभग दस वर्ष तक भारत में रहा और भारत के साहित्य एवं विज्ञान का अध्ययन करता रहा है। भारतीय अंकों पर उसने दो पुस्तकें लिखी हैं जो 'किताब अल्-अरकाम' (अंक विद्या की पुस्तक) और 'तस्किरा की अल-हिसाब व अल-मद् बि अल-अरकाम अल सिन्द व अल-हिन्द' (अंकगणित तथा सिन्ध व हिन्द की अंक गणना पद्धति का विवेचन) नामों से प्रसिद्ध हैं। 'तारीख अल-हिन्द' (भारत का इतिहास) में वह लिखता है : "जिस प्रकार भारत में भिन्न-भिन्न स्थानों में वर्णमाला के आकार भिन्न-भिन्न हैं; ठीक उसी प्रकार अंकों के आकारों में भी भिन्नता है। हम लोग जिन अंकों का प्रयोग करते हैं, वे हिन्दू अंकों के सर्वोत्तम आकारों से उत्पन्न हुए हैं।...हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

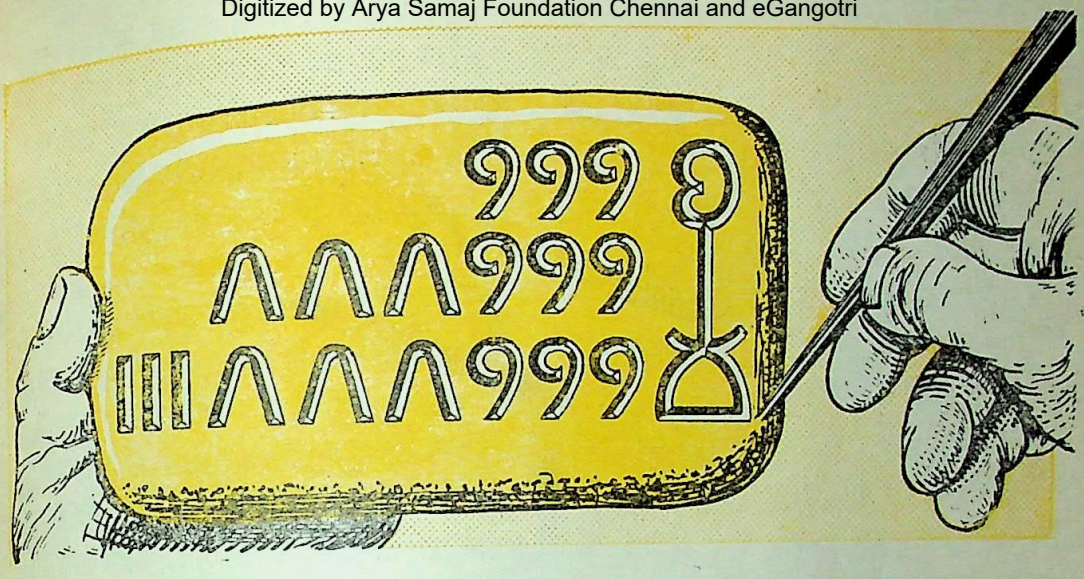

मिट्टी की तख्ती पर लिखित प्राचीन लेख्यानुसार, अंकों में १ ९ ६ ३

एक पुस्तक लिखी है जिसमें हमने दिखाया है कि हिन्दू लोग इस विषय में हम लोगों से कितने आगे बढ़े हुए हैं।" अलबेरुनी (ई. १०३०) ने आधुनिक अंकों को 'अल-अरकाम अल-हिन्द' (हिन्द के अंक) कहा है!

यूरोप में हिन्दू अंक

यूरोप में हिन्दू अंकों का प्रवेश कब और कैसे हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। सबसे पहले ब्वैथियस (ल. ५०० ई.) की रेखागणित की एक हस्तलिपि में, जो दसवीं शताब्दी की है, ये अंक मिलते हैं। कुछ अन्य हस्तलिपियों में तो शून्य भी मिलता है। अनुमान है कि ईसा की पाँचवी शताब्दी में व्यापारी मार्गों द्वारा हिन्दू-अंकों का यूरोप में प्रवेश हुआ। सेबोख्त (६६२ ई.) के ग्रंथ से पता चलता है कि सातवीं शताब्दी में हिन्दू-अंकों की ख्याति सीरिया तक पहुँच चुकी थी। हिन्दू-अंकों का उल्लेख करते हुए वह कहता है—"मैं हिन्दुओं के शास्त्रों के सभी विवेचन को छोड़ता हूँ·····न उनकी विज्ञान विषयक विलक्षण गवेषणाओं के विषय में कहूँगा, जो ग्रीक लोगों की गवेषणाओं की अपेक्षा अधिक कौशलपूर्ण हैं और न उनकी वर्णनातीत गणना के विषय में ही। मैं केवल यह कहना चाहता हूँ कि यह गणना नौ चिह्नों की सहायता से की जाती है। यदि वे लोग जो केवल ग्रीक भाषा बोलने के कारण ही यह समझते हैं कि वे विद्या की सीमा पर पहुँच गये हैं; इन बातों को जाने तो समझ जाएँगे कि उन लोगों के अतिरिक्त भी ऐसे लोग हैं जो कुछ जानते हैं।"

फिर भी, १२वीं शताब्दी तक यूरोप के देशों में हिन्दू-अंकों का खुलकर प्रयोग नहीं हो पाया था। सम्भवतः इटली के पीसा नगर का लियानार्डो फिबोनकी ही ऐसा व्यक्ति था जो इन अंकों को यूरोप में फैलाने में अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ। ई. १२०२ में उसने 'लिबर एबैकी' नाम की पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उसने हिन्दू-अंकों को समझाया है। उसने कहा कि यूरोप की अंक-पद्धतियाँ हिन्दुओं की पद्धति के सामने दोषपूर्ण हैं। यद्यपि लियोनार्दो जैसे व्यक्तियों ने हिन्दुओं के अंकों का जोरदार समर्थन किया; फिर भी शून्य के प्रयोग से अनभिज्ञ, यूरोप-निवासियों ने आरम्भ में इस नवीन पद्धति का डटकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोध किया। इसमें दो-तीन शताब्दियों का समय गुजर गया। १५वीं शताब्दी के मध्य तक यूरोप के सभी राष्ट्रों ने हिन्दू-अंकों को सामान्य रूप से स्वीकार कर लिया था, परन्तु इनका सर्व-सामान्य प्रयोग १७वीं शताब्दी में ही हुआ।

यूरोप के विद्वानों ने भारतीय अंक-पद्धति की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। फ्रान्स का महान् गणितज्ञ लापलेस (१७४९-१८२७ ई.) लिखता है : "१० चिह्नों द्वारा सभी संख्याओं को व्यक्त करने की विधि हमें भारत से ही मिली है। इन दस चिह्नों में से प्रत्येक का अपना स्थानमान और परममान आज हमें इतना सरल प्रतीत होता है कि हम इस विधि के महत्त्व पर विचार करना ही भूल जाते हैं। इसकी अतीव सुगमता, अंकगणित के परिकर्मों को सुगम बनाने की क्षमता, इसे मानव आविष्कारों में सर्वोच्च स्थान प्रदान करती है। यदि हम याद करें कि प्राचीन काल के दो महान् गणितज्ञों—आर्किमीडिज और एपोलोनियस की प्रतिभाएँ भी पद्धति को खोज नहीं पायी, तो भारतीयों के इस आविष्कार की महत्ता और भी बढ़ जाती है।"

शून्य की महत्ता के बारे में अमरीका के प्रो. हालस्टैड लिखते हैं—"शून्य के आविष्कार की जितनी भी स्तुति की जाए, कम है। निरर्थक शून्य को केवल स्थान, संज्ञा, आकृति एवं संकेत ही नहीं बल्कि एक उपयोगी शक्ति प्रदान करना हिन्दू-जाति की, जहाँ से इसकी उत्पत्ति हुई है, एक विशेषता है। यह निर्वाण को विद्युत्-शक्ति में परिवर्तित करने के समान है। गणित सम्बन्धी कोई भी आविष्कार ज्ञान एवं शक्ति को आगे बढ़ाने में इतना प्रबल सिद्ध नहीं हुआ है।" ●

बिनौले से धागे तक

[पृष्ठ १७ का शेष]

रिंग स्पिनिंग (ring spinning) का नाम दिया गया। सिद्धान्ततः तो दोनों विधियाँ समान ही हैं। अन्तर केवल सूत को बटने, बल देने के प्रकार में है। म्यूल स्पिनिंग में ड्रा-फ्रेम से तैयार किया गया रोविंग और भी अधिक रोलरों से दाबकर बारीक निकाला जाता है। सूत की बाबिन एक ट्राली पर फिट रहती है। ट्राली के आगे-पीछे घूमने के साथ-साथ सूत में बल पड़ता जाता है। रिंग स्पिनिंग में यह कार्य काफी तीव्र गति से सम्पन्न किया जाता है। उसमें रोविंग तो वैसे ही रोलरों से दबता हुआ बारीक सूत के रूप में निकलता है किन्तु सूत में बल देने के लिए बाबीन के नीचे C के आकार की एक तार की क्लिप फिट रहती है जिसे ट्रेवेलर (traveller) कहते हैं। यह ट्रेवेलर ही घूम-घूमकर सूत को बाबिन पर लिपटने के साथ-साथ बल देता जाता है।

धागा तैयार है

सूत को उस अवस्था में सूत ही कहते हैं जबकि उसे कपड़ा बुनने के काम में लेना होता है। आवश्यकतानुसार और भी अधिक बल देकर उसी सूत को जब मजबूत बना लेते हैं, तब वह धागे का रूप ले लेता है जो सिलाई के काम आता है। तैयार होने पर धागे को बाबिन से उतार कर रीलों पर चढ़ा लिया जाता है और सूत की अट्टियाँ अथवा कोन बना ली जाती हैं। सूत की विभिन्न मोटाइयों को काउन्ट्स (counts) कहते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मानव-इतिहास वस्त्र-परिधान के विषय में एक नये ही मोड़ पर है और बिनौले से सूत तक की इन जटिलताओं से मुक्ति पाकर वह सीधे ही संश्लेषित रेशों को अपनाने जा रहा है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

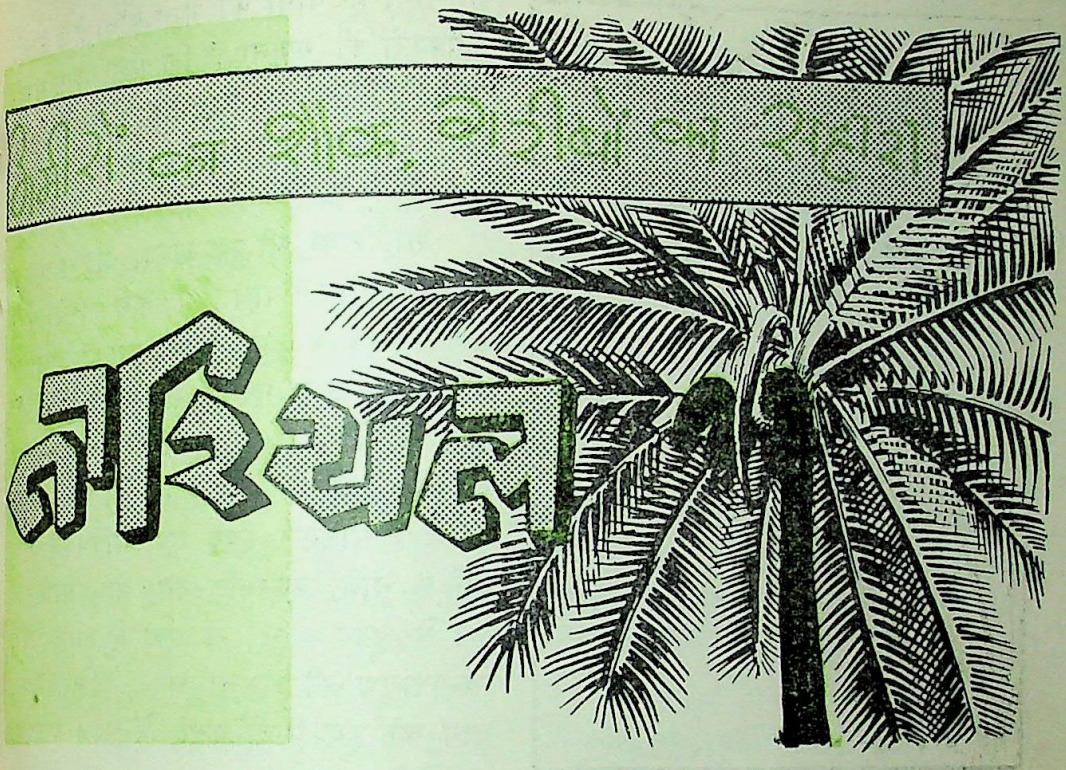

नारियल

अरुणचन्द्र मिश्र

नारियल, शब्द के साथ ही समुद्र किनारे का वह दृश्य हमारे सामने उपस्थित हो जाता है जिसमें मीलों की लम्बाई तक समुद्र के किनारे-किनारे लम्बे, ऊँचे वृक्ष समुद्री पवन झकोरों में लहराते, झूमते रहते हैं। यह तो ज्ञात नहीं किया जा सका कि इनका मूल स्थान होने का श्रेय किस स्थल को है किन्तु ६००-७०० वर्ष तक के विवरणों से पता चलता है कि यह अफ्रीका तथा कुछेक प्रशान्त महासागरीय तटवर्ती प्रदेशों से जगह-जगह फैला है। प्रशान्त महासागर में पोलिनेशियन द्वीप समूह (हवाई, न्यूजीलैण्ड, ईस्टर आदि), हिंद महासागर में श्रीलंका तथा अफ्रीकी समुद्रतट नारियल के प्रमुख प्राप्ति-स्थल हैं। व्यावसायिक रूप से नारियल का उत्पादन भूमध्य रेखा से २० अक्षांश उत्तर और दक्षिण से अधिक दूरी के स्थलों पर सुविधापूर्ण नहीं किया जा सकता। जो स्थल भूमध्य रेखा से जितना निकट होगा, नारियल का उत्पादन उतना ही उत्तम होगा।

यह नारियल का वृक्ष है

धरती से उठकर आसमान को छू लेने की लालसा रखने वाले इस वृक्ष को देखिए। (Palm) परिवार के विभिन्न वर्गों में से कोकस न्यूसीफेरा (*cocos nucifera*) वर्ग का यह नारियल एक पाम ही है। खाना और पीना दोनों ही एक साथ देने वाला नारियल का यह पेड़ ४०००, ६००० और ८००० तक की संख्या में अपनी लम्बी जड़ें भूमि में फैलाये रहता है। अधिकांश जड़ें डेढ़ फुट से गहरी नहीं उतरतीं और कुछेक ही ऐसी होती हैं जो चार फुट गहरी जाती हैं। वैसे लम्बाई में ये चारों ओर २०-२५ फुट तक चली जाती हैं। जहाँ कुछ नरम भूमि होती है, वहाँ ३०-३० फुट तक भी लम्बी चली जाती हैं। लगभग पेंसिल जितनी इनकी मोटाई ठेठ तक इकसार रहती है। इनके रोम-मूल नोक पर एक सख्त खोल से ढँके सुरक्षित रहते हैं जिनसे सटकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

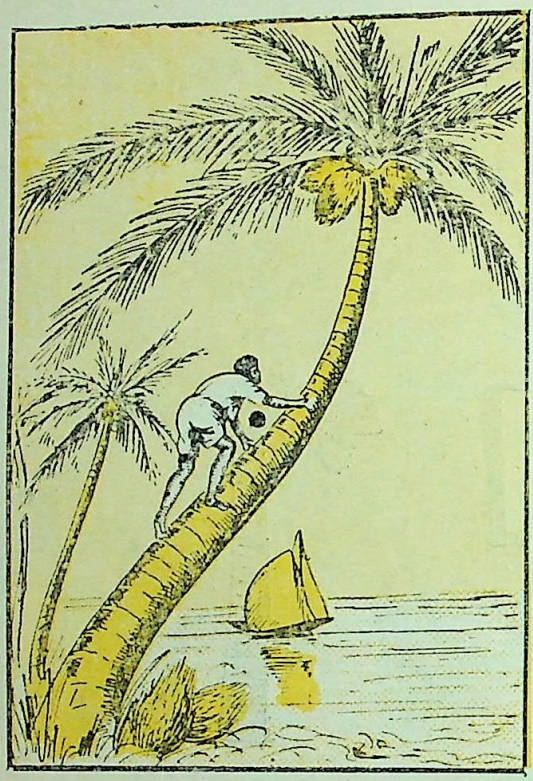

छुरी लगे लम्बे बाँस पर निर्भर न रहकर, यह फुर्तीला युवक पेड़ पर सरपट चढ़ा चला जायगा और नारियल तोड़-तोड़ कर गिराता जायगा

केवल दो इंच का भाग अत्यन्त कोमल और खुला रहता है। यह खुला भाग ही भूमि से पोषक रसों का शोषण करता है। शेष समस्त लम्बाई तक वह जड़ पुनः कठोर खोल से आवरित रहती है और जल की अधिकता से तथा ताप और जलाभाव से भली प्रकार सुरक्षित रहती है। अनुकूल जलवायु प्राप्त करते ही जड़ की वह नोक पुनः आगे बढ़ने लगती है।

प्यास बुझाने वाला बेहद प्यासा है

किसी भी प्यासे को अपने यहाँ से निराश न लौटाने वाला यह नारियल का पेड़ स्वयं सदैव प्यासा ही प्यासा रहता है। शायद उसी प्यास को बुझाने के लिए इसने समुद्रतट को अपना घर बनाया है। नारियल के कृषिकारों का कहना है कि औसत २००० पौण्ड वजन के नारियल के एक वृक्ष में १२०० पौण्ड तक तो पानी ही पानी का भाग होता है! उन्हें कृषकारों की गणना है कि एक पौण्ड सूखी गिरी तैयार करने के लिए नारियल को ४०० ५०० पौण्ड पानी पचाना पड़ता है।

लम्बे वृक्ष की लम्बी डाल, लम्बे पात

सौ, सवा सौ फुट लम्बा, लहराता हुआ पेड़ अपने डाल-पात भी कम लम्बे नहीं रखता। १८-२० फुट लम्बी इसकी डालों डेढ़, दो फुट लम्बे, नुकीले पत्ते लगते हैं। इन पत्तों में छिपे, शाखा-मूलों से लटके, कई नारियल के गुच्छे रहते हैं। वे ही इसके बीज भी हैं। नारियल स्वयं एक परिपक्व बीज होने के नाते, वनस्पति-जगत के असाधारण रूप से वृहद बीजों में एक है। यह बीज स्व-परागण की क्षमतायुक्त है। जिस सफेद भाग को हम गिरी कहते हैं, वह वस्तुतः भ्रूणपोषी (endosperm) खाद्य है जो इसमें में छिपे भ्रूण अर्थात् नवांकुरित बीज का एकमात्र आहार है। अर्द्धपरिपक्वावस्था में यह गिरी का भाग अत्यन्त मृदु और शीतल पेय के रूप में रहता है और पक जाने पर कठोर दूधिया सफेद गिरी बन जाता है।

बीज से फल बनने तक

औद्योगिक रूप से नारियल का बीज-रोपण केवल नारियल को नर्म भूमि में दबा कर सम्पन्न किया जाता है। वह नारियल लम्बाई में एक पार्श्व से रखा जाता है और ऊपर भी मिट्टी की एक हलकी पर्त बिछा दी जाती है। तीन मास बीतने पर अंकुर फूटता है और नवपल्लव दस मास का होने पर आवश्यक नर्सरी, बाग-बगीचा अथवा खेत में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। दीर्घकाल अर्थात् १४-१५वें वर्ष में यह फल देने योग्य होता है और ५०, ७० तथा १०० वर्ष की आयु तक भी फल देता रहता है। उत्तम वृक्ष की प्राप्ति कुशल कृषि तथा वृक्षों के मध्य अधिकाधिक खुली जगह छोड़ने पर निर्भर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहती है। इसका उत्तम मान २५-३० फुट तक का स्थान छोड़ने का है। फल लगने के पश्चात् यद्यपि गिरी तो नवें महीने में ही तैयार हो जाती है किन्तु इसके बाह्यावरण में तेल-कोशिकाओं का निर्माण तो १४-१५वें महीने में ही आरम्भ होता है।

फल लागे अति दूर

नारियल का फल मिष्ट, मृदु, पौष्टिक और बहुगुणी होता है। इनकी ऊँचाई को देखते हुए इन्हें तोड़ गिराने के लिए लम्बे-लम्बे बाँसों को एक-दूसरे में फिट करके सिरे पर हाथ भर लम्बी छुरी बाँध ली जाती है। कहीं इनके पक कर गिरना आरम्भ होने तक की प्रतीक्षा की जाती है, तो कहीं बन्दरों को सिखाकर उनकी सेवा का लाभ लिया जाता है। जो चढ़ने में अधिक कुशल नहीं, वे रस्सों के सहारे इंच-इंच ऊपर को रेंगते, चढ़ते हैं किन्तु श्रीलंका की ओर के किशोरवय बालकों और युवकों को इतना विलक्षण अभ्यास रहता है कि वे पेड़ पर सरसराते हुए खुले हाथों चढ़ जाते हैं, मानो किसी कगार पर दौड़े जा रहे हों!

अंग-अंग का उपयोग

नारियल तोड़ लेने पर यदि उससे तेल निकालना अभीष्ट है तो उसे कुछेक सप्ताह तक सूखने के लिए पड़ा रखते हैं। इस प्रयोजन के लिए फल पकने से कुछ समय पहले भी उतार लेते हैं। सूखकर तैयार हो जाने पर उसमें ५० प्रतिशत तक तेल निकाला जा सकता है। इस तेल-प्रेषक गुण ने आज नारियल को उस अद्वितीय स्तर पर पहुँचा दिया है जहाँ इसकी खपत इसके विपुल उत्पादन से कभी हार नहीं सकती। इंग्लैण्ड में जहाँ मक्खन का प्रायः ही अभाव रहता है, यह तेल उसकी स्थानपूर्ति में काम आता है। अमरीका में साबुन, सुगंधियुक्त तेलों तथा मार्गरीन आदि में इसकी वृहद खपत होती है।

तेल निकालने के प्राचीन तरीके बहुत पिछड़े हुए थे। कहीं तो केवल काठ के बड़े टब में गिरी भरकर ऊपर से पत्ते ढँक दिये जाते थे और कुचल कर जितना भी मिल जाए, तेल प्राप्त कर लिया जाता था। कहीं चमड़े के थैलों में गिरी भरकर पेलते थे, तो कहीं खरल-मूसल का सहारा लिया जाता था। सभी साधनों में बड़ी त्रुटि यही थी कि तेल बहुत कम निकल पाता था और काफी भाग फेंका जाता था। आधुनिक यांत्रिक कोल्हुओं-एक्सपेलरों (expellers) द्वारा ६५ प्रतिशत तेल निकाल लिया जाता है और जो खली बच रहती है, वह गाय-भैंसों को खिलायी जाती है।

नारियल को प्रकृति ने जब सुदृढ़ जटा का आवरण पहनाया तब मानव ने उसे उल्लेखनीय रूप से उपयोगी भी बना लिया। इससे तैयार होने वाला रेशा कॉयर (coir) अत्यन्त मजबूत रस्से बनाने में काम आता है। इसकी पतली रस्सियाँ मैटिंग, चटाइयाँ, पायदान आदि बनाने में काम आती हैं। इसके बने रस्से सील पाकर सवायी लम्बाई तक

इस आधुनिक द्वि-अर्थी यन्त्र द्वारा नारियल के कोपरे की सुखाई, पकाई के पश्चात् तेल भी निकाला जाता है

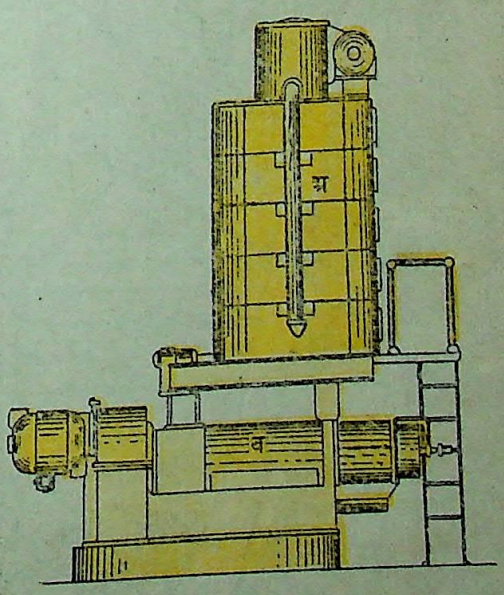

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खिंच आते हैं। यह गुण अन्य किसी रेशे में नहीं है। हाँ, सूखा पड़ा-पड़ा रस्सा चटख कर खराब हो जाता है।

इसकी जटा सोफा, कोच, कुर्सी तथा गद्दी के अन्दर भरने में काम आती है। निम्न कोटि के रेशेयुक्त छिलके एक उत्तम ईंधन का काम देते हैं। जटा छीलकर उतारने का काम काफी कसरती है। इसके लिए हाथ-पैरों में ताकत, फुर्ती और कुशलता की आवश्यकता है। इसके कुशल कारीगर हाथ-पांवों में चमड़े के दस्ताने, तथा चमड़े का तहमद बाँधकर जमीन में गाड़ी हुई पैनी सलाखों की सहायता से इस फुर्ती से छीलते हैं कि सुबह से शाम तक १००० नारियलों की जटायें उतारकर रख देते हैं।

इससे आगे का भी कार्य इतना ही कष्ट और कौशलसाध्य है। साधारणतया आप यदि छिले हुए नारियल से भी गिरी निकालना चाहें और बगैर हाथ या अँगुली में जरा भी चोट खाये, ६-७ मिनट में तथा वह भी साबुत निकाल लें तो बड़ी बात कही जायगी।

नीचे से ऊपर तक इस झोंपड़ी का अस्तित्व नारियल ही को आभारी है

कारखानों में विशेष आकार की छुरी से गिरी निकालने वाले एक मिनट में ३ नारियलों की गिरी बिलकुल साबुत निक लेते हैं। साथ ही, गिरी दूधिया सफेदी तनिक भी म्लानता न आने पाये इस वे उन्हें स्टीम द्वारा नर्म भी नहीं करते।

साबुत गिरी पर से लाल छिलका उता वाले कारीगर अलग होते हैं। वे भी एक मि में ३-४ नारियल की रफ्तार से छिलके ल लेते हैं। वही लाल छिलका तेल-भण्डार है जिससे तेल निकालने वाले ६०-६५ प्रति तेल निकाल लेते हैं।

गिरी की यांत्रिक यात्रा

छिले-छिलाये सफेद गोले से लेकर आ गले उतरने तक गिरी को एक लम्बी यांत्रि यात्रा से गुजरना पड़ता है। कारखाने में गो को पहले आधे-आधे करके उनका पानी निक लिया जाता है और कन्वेयरों के सहारे धुलाई में भेज दिए जाते हैं। धुलने के साथ वि रंजक द्वारा उनकी रही-सही म्लानता वि विजातीय रंग की झाँई साफ कर दी जाती वहाँ से उन पर तेज छुरियाँ अपना काम कर उन्हें स्टेनलैस स्टील के पात्रों में रुई के गा के रूप में जमा कर देती हैं। रुई के गाले जै वह चूरा ७५ फुट लम्बी और १० फुट चौ विशाल भट्ठियों में सुखाने के लिए भेजा जा है। सूखने पर उसे धीरे-धीरे ठण्डा होने दि जाता है। ठण्डा होने के पश्चात् विभिन्न भा की छलनियों में छानकर छोटे-बड़े आका के अलग-अलग थोक कर लिए जाते हैं। अन्त में १००-१०० पौण्ड माल कागज बहुपरतीय मोटी थैलियों में भरकर भेजने लिए तैयार किया जाता है।

अतः बगैर अतिशयोक्ति के कहा जा सकता है कि सृष्टि में केवल गिने-चुने पा जाने वाले बहुउपयोगी वृक्षों में नारिय सचमुच सहसोपयोगी ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमाणु-नाभिक का विस्फोटक

न्यूट्रान

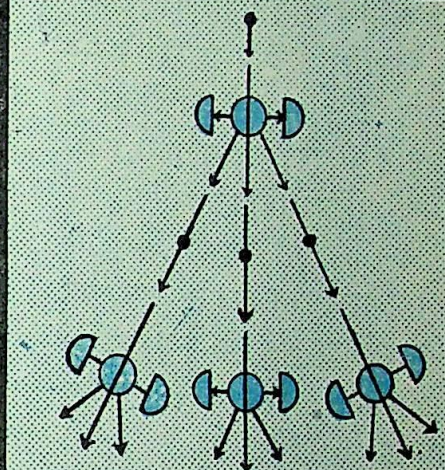

अशोककुमार चौबे

न्यूट्रान एक आवेशरहित कण है, जिसकी मात्रा प्रोटान की मात्रा के लगभग ही है। इसकी खोज न्यूक्लीयर विज्ञान में अति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके प्रायोगिक उपयोग अधिक हैं। उदाहरणार्थ जब कभी न्यूट्रान तथा अन्य तत्त्वों में क्रिया की जाती है, यह उन तत्त्वों में कृत्रिम रेडियोसक्रियता (artificial radioactivity) उत्पन्न कर देता है। यही नहीं, न्यूट्रान कुछ भारी तत्त्वों को विभिन्न भागों में तोड़ भी देता है। इस क्रिया में बहुत ऊर्जा विकोरित होती है। न्यूट्रान की खोज ने परमाणु के नाभि की संरचना को भी बदल दिया है। न्यूट्रान की खोज के बाद से ही नाभि में दो प्रकार के कण माने जाते हैं— एक प्रोटान तथा दूसरे न्यूट्रान। यही नहीं, न्यूट्रान की खोज के पूर्व ही १९२० में जिस समय नाभि (nucleus) में प्रोटान तथा इलैक्ट्रान कण माने जाते थे, लार्ड रदरफोर्ड ने प्रोटान के समान ही मात्रा वाले कण की कल्पना की थी। उस समय की नाभि-संरचना के अनुसार सबसे सरल हाइड्रोजन परमाणु की नाभि में एक प्रोटान तथा एक इलैक्ट्रान माना जाता था। इन दोनों को आपस में मिलकर एक लगभग प्रोटान के सम मात्रा वाले आवेश-रहित कण का निर्माण कर देना चाहिए, जिसकी रदरफोर्ड ने कल्पना की थी।

अल्फा (α) कणों की हल्के तत्त्वों पर क्रिया करते समय न्यूट्रान की खोज की गयी थी। न्यूट्रान के अन्वेषण का सबसे अधिक श्रेय प्रोफेसर चैडविक को दिया जाता है।

यदि पोलोनियम (Po) रेडियोसक्रिय तत्त्व से [illegible] अल्फा कणों का [illegible] ऊर्जा 5 [illegible] हल्के तत्त्वों पर क्रिया कराई [illegible] पालन करने में सामान्यतः प्रोटान कण उत्पन्न हो जाता है लेकिन १९३० में दो जर्मन वैज्ञानिकों बोथे एवं बेकर ने बेरीलियम (Be) की अल्फा कणों से क्रिया कराते समय यह पाया कि प्रोटान के स्थान पर कोई दूसरा

सबकी विचित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कण उत्पन्न होता है जिसकी उत्पत्ति का बोध गाइगर के प्वाइन्ट काउन्टर (Geiger's Point Counter) से किया जा सका। क्रिया में Be तथा α-कणों के स्रोत दोनों को ही जस्ता तथा पीतल की मोटी-मोटी पट्टिकाओं में बन्द कर दिया गया जिससे α-कण या क्रिया में उत्पन्न इलैक्ट्रान या एक्स-किरणें बाहर न आ सकें और उन्हीं पट्टिकाओं द्वारा शोषित कर ली जाएँ लेकिन फिर भी इस नये प्रकार के कण का प्रभाव देखा जा सका। उस समय यह विचार किया गया कि ये कण भी γ-किरणें (gamma rays) अर्थात् फोटान (photon) की ही प्रकृति के हैं।

इन नये कणों के द्वारा दूसरे तत्त्वों के रूप परिवर्तन की क्रिया (transmutation process) का अध्ययन करते समय पेरिस में जोलिअट क्यूरी (Joliot Curie) ने एक महत्वपूर्ण अनुभव किया। उन्होंने देखा कि जिस समय हाइड्रोजन युक्त पदार्थों जैसे पैराफिन, पानी, कागज तथा सेलोफेन (cellophane) आदि पर इन नये कणों की क्रिया की गई, क्रिया में प्रोटान कण उत्पन्न हुए। पैराफिन से निकलने वाले प्रोटान का वायु में क्षेत्र ४० से. मी. पाया गया तथा गणना द्वारा इनकी ऊर्जा ५ Mev पायी गई। ५ से. मी. तक अपना प्रभाव दिखाने वाले तथा ५०० गौस तीव्रता वाले चुम्बकीय क्षेत्र का इन नवीन कणों पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। यदि नवीन कणों को फोटान की ही भाँति मान लिया जाए तथा जिस प्रकार फोटान, तत्त्वों से क्रिया करने पर काम्पटन इलैक्ट्रान का निर्माण करते हैं उसी प्रकार इन फोटान की सी प्रकृति वाले कणों द्वारा प्रोटान का निर्माण भी मान लिया जाए तब इन नवीन कणों की ऊर्जा लगभग ५० Mev होनी चाहिए। इससे कम ऊर्जा होने पर प्रोटान का उत्पादन नहीं हो सकता लेकिन शोषण विधि द्वारा जब इन कणों की ऊर्जा की गणना की गई तो वह केवल ७ Mev ही आई, जो कि प्रोटान उत्पादन क्रिया के लिए बहुत ही कम थी। α-कणों की Be पर क्रिया होने से उत्पन्न नवीन कणों के निर्माण को निम्न समीकरण द्वारा दर्शाया जा सकता है।

$$4Be^9 + 2He^4 \rightarrow 6C^{13} + h^2 \text{ (नवीन कण)}$$

आणविक भट्ठी में कैडमियम की छड़ें न्यूट्रानों का अवशोषण करती हुई भट्ठी का ताप नियन्त्रित रखती हैं

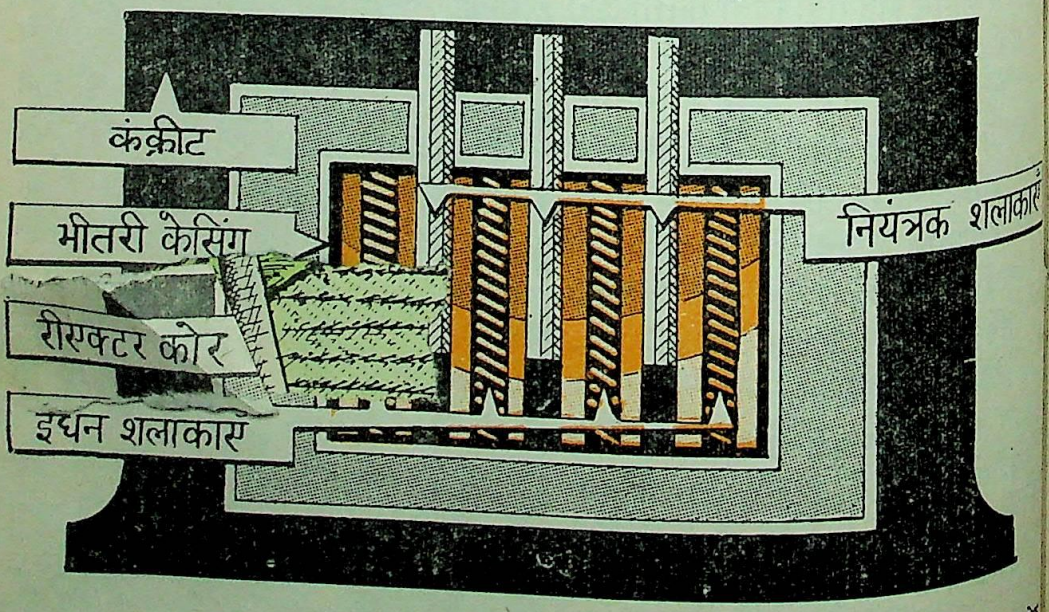

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

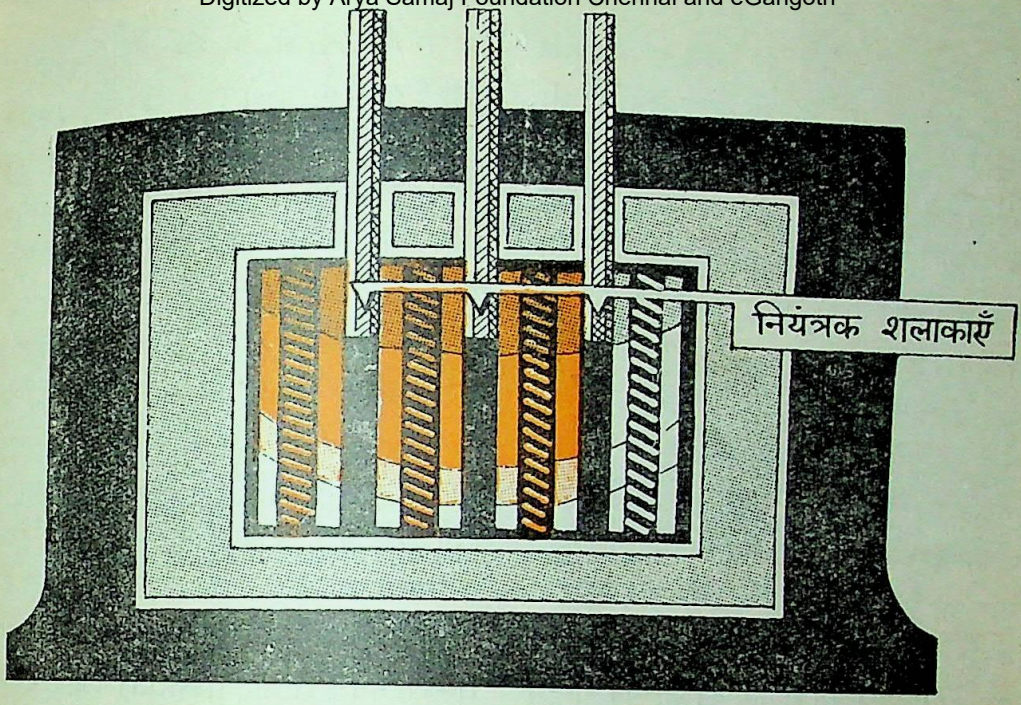

कैडमियम की छड़ें ऊपर उठाने पर न्यूट्रानों को टिके रहने का अवकाश मिल जाता है जिससे ताप बढ़ता है

इस समीकरण में लिखे हुए तत्त्वों की मात्रा द्वारा ऊर्जा की गणना करने पर यह पाया गया कि उत्पन्न γ-किरणों (gamma rays) की ऊर्जा अधिक से अधिक १५ Mev हो सकती है जो कि ५० Mev से बहुत ही कम है। अतः यह नवीन गामा-किरणें नहीं हो सकते।

इस समस्या का समाधान करने के लिए कि नवीन कण क्या हैं, प्रोफेसर चैडविक ने रदरफोर्ड द्वारा कल्पित आवेशरहित कण (न्यूट्रान) पर पुनः विचार किया। चैडविक ने विभिन्न हल्के तत्त्वों जैसे He, Li, C, N, O आदि, पर Be तथा अल्फा कणों से बनने वाले इन नवीन कणों की क्रिया का अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि यदि इन नवीन कणों को γ-किरण मान लिया जाए तो इन क्रियाओं में प्राप्त γ-किरणों की ऊर्जा वास्तविक प्राप्त γ-किरणों की ऊर्जा से बिल्कुल ही भिन्न थी तथा जिस प्रकार से क्रिया में भाग लेने वाले तत्त्वों को बदला गया, उन तत्त्वों के परमाणुभार तथा परमाणु संख्या का प्राप्त किरणों की ऊर्जा पर भी प्रभाव पड़ता गया। चैडविक ने कहा कि यह सभी कठिनाइयाँ उस समय प्रायः समाप्त हो जाएँगी जब Be तथा α-कणों से बनने वाले नवीन कणों को 'फोटान' न मानकर 'न्यूट्रान' मान लिया जाए जो आवेशरहित हैं तथा इनकी मात्रा लगभग प्रोटान की मात्रा के ही समान है। यही नहीं, चैडविक ने प्रयोग द्वारा अपने कथन की सत्यता भी सिद्ध कर दी।

चैडविक ने हाइड्रोजन तथा नाइट्रोजन आदि पर न्यूट्रान की क्रिया से बनने वाले हाइड्रोजन न्यूक्लीयस (प्रोटान) तथा नाइट्रोजन के सबकी विचित्रता, अधिकतम गति की गणना की थी। इसने प्रत्यास्थतीय संघट्ट के नियमों का पालन करके क्रिया में भाग लेने वाले न्यूट्रान की गति तथा मात्रा की भी गणना की। न्यूट्रान की मात्रा प्रोटान की मात्रा के लगभग १·१५ गुनी पायी गयी तथा गति ३×१०^{९} से. मी. प्रति सैकिण्ड। इस प्रकार निश्चय हो गया कि न्यूट्रान भी एक नया कण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यूट्रान की खोज हो जाने के पश्चात् प्रयोगशाला में एक न्यूट्रान स्रोत बनाना भी परमावश्यक हो गया जिससे न्यूट्रान के विभिन्न गुणों का अध्ययन किया जा सके। प्रयोग द्वारा यह पाया गया कि न केवल कुछ हल्के तत्त्व ही अल्फा कणों द्वारा क्रिया करने पर न्यूट्रान निकालते हैं बल्कि लगभग सभी तत्त्व, उच्च ऊर्जा युक्त कणों द्वारा जैसे प्रोटान, ड्यूट्रान, तथा फोटान द्वारा क्रिया करने पर न्यूट्रान निकालते हैं। इन सभी क्रियाओं द्वारा प्राप्त न्यूट्रान उच्च ऊर्जा से युक्त होते हैं। इनकी गति भी उच्च होती है तथा इन्हें 'तीव्र न्यूट्रान' कहते हैं। इनकी गति हाइड्रोजन युक्त पदार्थ पर आपतित करने से कम की जा सकती है।

न्यूट्रान की एक संकीर्ण धारा प्राप्त करना इतना सरल कार्य नहीं है जितना कि प्रोटान तथा अन्य आवेशयुक्त कणों की संकीर्ण धारा प्राप्त करना है। डनिंग ने सन् १९३८ में न्यूट्रान की एक सघन धारा प्राप्त करने के लिए एक उपकरण तैयार किया था।

ऐवरसोल्ड (Aebersold) ने सन् १९३९ में संकीर्ण तथा तीव्र न्यूट्रान पुंज प्राप्त करने के हेतु एक अन्य उपकरण का प्रयोग किया था। साइक्लोट्रान नामक मशीन से प्राप्त तीव्रगति वाले ड्यूट्रान कण की Be पर क्रिया की गयी थी। क्रिया में निकलने वाली गामा किरणों को शीश पट्टिकाओं द्वारा शोषित कर लिया गया। न्यूट्रान कहीं छितर कर पानी से सैकेण्डरी न्यूट्रान न बना दें इसलिए पानी की सतह पर २·५ से.मी. मोटी शीशा धातु की पर्त चढ़ा दी गयी थी। इस प्रकार तथा कुछ अन्य विधियों द्वारा तीव्र तथा संकीर्ण न्यूट्रान पुंज प्राप्त किया गया।

इस प्रकार प्राप्त तीव्र न्यूट्रान पुंजों के द्वारा विभिन्न प्रकार के प्रयोग किए जा चुके हैं। न्यूट्रान ऐसी-ऐसी आश्चर्यजनक क्रियाओं का प्रतिपादन करते हैं जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। कृत्रिम रेडियो सक्रियता में न्यूट्रान का बहुत योग रहा है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपयोग तो परमाणु विखण्डन (atomic fission) में हुआ है। इस क्रिया में जब न्यूट्रान यूरेनियम जैसे भारी तत्त्व से क्रिया करता है तो यूरेनियम के परमाणु अन्य छोटे टुकड़ों में बँटकर छिन्न जाते हैं। इस क्रिया में कुछ द्रव्यमान का ह्रास होता है जो कि आइन्सटीन के द्रव्यमान तथा ऊर्जा सम्बन्धी समीकरण ($E=mc^2$) द्वारा ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। क्रिया में यूरेनियम के परमाणु बेरियम तथा क्रिप्टान में परिवर्तित हो जाते हैं तथा द्वैतिक (secondary) न्यूट्रान भी प्राप्त होते हैं। इस प्रकार एक न्यूट्रान द्वारा क्रिया प्रारम्भ करने पर न्यूट्रान की एक अविरल धारा प्राप्त होती है जो क्रिया को निरन्तर बनाये रखती है तथा समस्त यूरेनियम पदार्थ को विखण्डित

इलैक्ट्रान ऋणावेशित होते हैं। अतः वे नाभिक की ओर झुकते हैं। प्रोटान और अल्फा-कण धनावेशित होते हैं। अतः वे नाभिक से दूर हटते हैं तथा न्यूट्रान सर्वथा आवेशहीन होते हैं। अतः वे नाभिक को सीधे भेद कर निकल जाते हैं

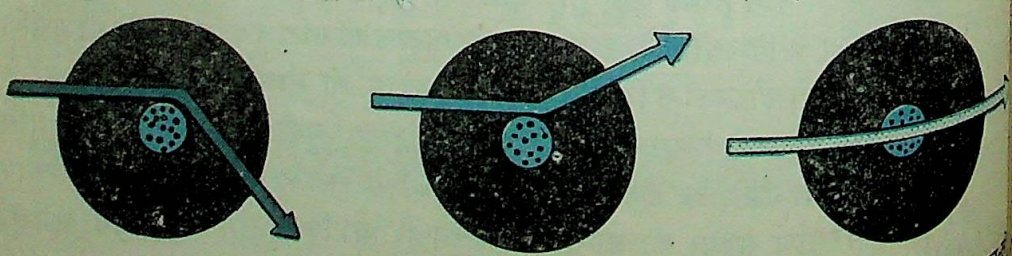

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

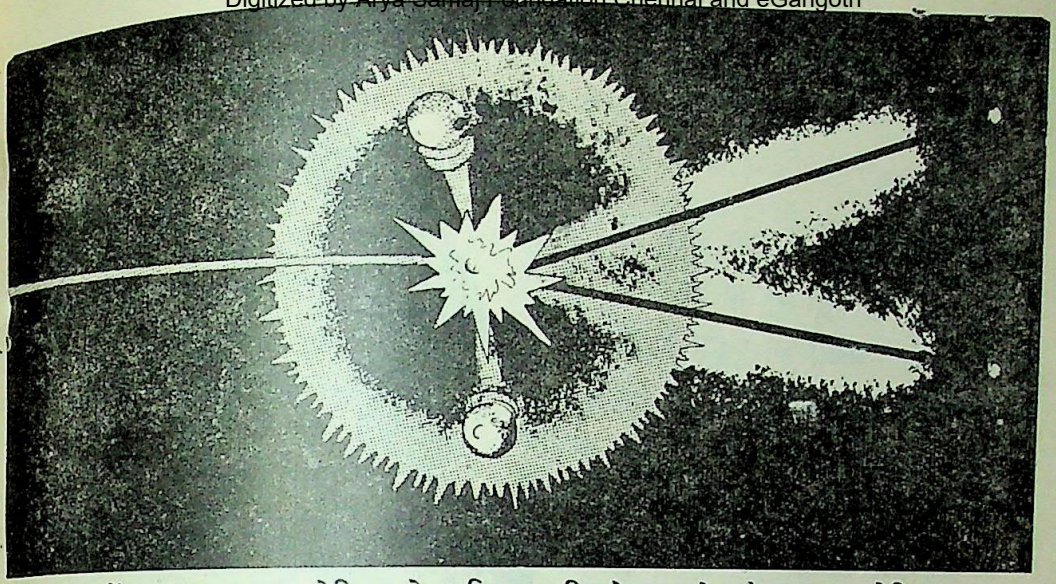

न्यूट्रानकणों का सतत प्रहार यूरेनियम के नाभिक का विस्फोट कर देता है, फलस्वरूप बेरियम और क्रिप्टान के विखण्डित परमाणु छितरा जाते हैं

करके असीमित ऊर्जा में परिवर्तित कर देती है। इसी क्रिया का प्रयोग एटम बम आदि बनाने में किया गया है। इस क्रिया का एक शान्तिमय उपयोग परमाणु रीएक्टर (Atomic Reactor) बनाने में भी किया गया है। इन क्रिया-कारकों से बहुत ही उच्च ताप प्राप्त किया जा सका है तथा इस प्रकार प्राप्त ताप का उपयोग बड़ी-बड़ी मशीनों तथा कारखानों के चलाने में किया जा सकता है।इसी क्रिया का प्रयोग करते हुए बम्बई के पास ट्रोम्बे में परमाणु भट्टियों (Atomic furnaces) का निर्माण किया गया जो कि परमाणु बिजली घर बनाने में तथा अन्य प्रयोगों में बहुत ही सहायक सिद्ध हुई है। ऐसे ही एक परमाणु बिजलीघर का निर्माण तारापुर में भी किया जा रहा है।

न्यूट्रान द्वारा उत्पन्न विभिन्न क्रियाओं तथा उन क्रियाओं के उपयोगों का अध्ययन इतना विशाल है कि उसे लेखनीबद्ध करना सरल कार्य नहीं। आधुनिक युग में हमारे वैज्ञानिक निरन्तर उच्च ऊर्जा युक्त न्यूट्रान को नई-नई मशीनों द्वारा बनाने में जुटे हुए हैं तथा उसकी विभिन्न तत्त्वों पर क्रियाओं का अध्ययन कर रहे हैं। कह नहीं सकते किस दिन न्यूट्रान की कोई नई क्रिया मालूम हो जाए जो संसार को आश्चर्यचकित करदे। ●

खून की रंगत बदलते हैं

आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व, संयुक्त राज्य अमरीका में स्थित पर्वतीय प्रदेश केण्टकी के पूर्वीय भाग में एक फ्रेन्च सैनिक जाकर बस गया। वहाँ उसे एक छोटी जागीर भी दे दी गयी। इतने समय पश्चात् आज उसके वंशज एक छोटे से समाज के रूप में संगठित हैं। उन सबकी विचित्रता यह है कि उनका खून लाल न होकर नीला है, क्योंकि उस फ्रेन्च सैनिक का ही खून नीला था।

अब वहीं के मेडिकल कालेज के डा. एम. काएन ने अमेरीकन मेडिकल ऐसोसिएशन की पत्रिका में इसका कारण खोजकर प्रकाशित कराया है और उसका उपचार भी सुझाया है। उनके मत से इसका कारण यह है कि उन व्यक्तियों के रक्त में २०-२५ प्रतिशत आक्सीजनवाहक होमोग्लोबिन-कोशाओं के स्थान पर आक्सीजनहीन मीथेमोग्लोबिन कोशाएँ विद्यमान हैं। अतः आक्सीजन का अभाव नीला वर्ण प्रस्तुत कर देता है। इसके उपचार स्वरूप मिथाइलीन ब्लू का इंजेक्शन मीथेमोग्लोबिन में परिवर्तित करके खून की रंगत बदल देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप चाहे दफ्तर में काम करते हों
अथवा खेत या कारखाने में,
समय की पुकार है कि
आप इतनी मेहनत से काम करें
जितनी कि पहले कभी न की हो।
काम या उत्पादन पहले से
दुगुना कर दें, और इससे भी
कुछ अधिक! याद रखें कि आपका
अधिक परिश्रम राष्ट्र को
अधिक बलवान बनाता है।

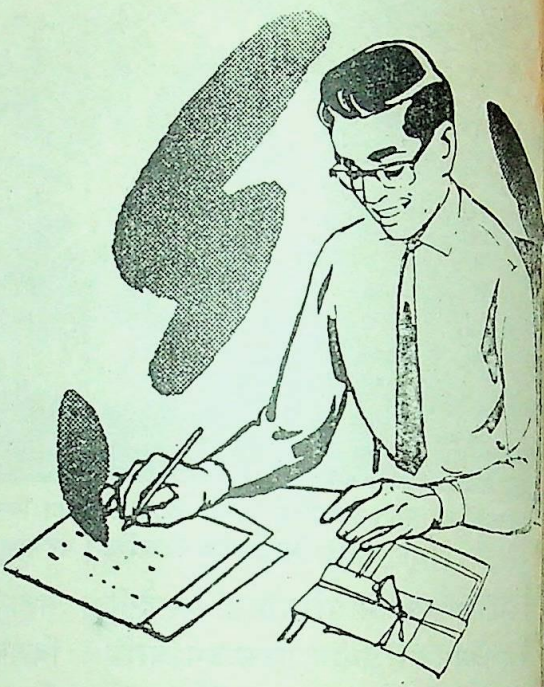

जी तोड़ मेहनत करो

अधिक उत्पादन, सुदृढ़ रक्षा के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

तरु-तरुवर पाती भये

जीन-द-सेन्त्युल (Jean De Santeul) फ्रान्स का मध्यकालीन महाकवि ऐसा था जो लैटिन भाषा में अपनी संसार-प्रसिद्ध रचनायें वृक्षों के तनों पर लिख-लिख कर जंगल के जंगल भर गया। कागज जैसी वस्तु उसने जीवन में निकट आने ही न दी। लेखनी भी उसकी ऐसी-वैसी नहीं थी। अपनी प्रेमिका एक अनिन्य सुन्दरी की स्वर्णिम हेयरपिन का एक कांटा ही उसकी लेखनी थी। फ्रान्स भर के अनेक प्रसिद्ध भवन उसकी रचनाओं, सूत्तियों से आज भी सुशोभित हैं। उसका काम केवल यही था कि स्फुरणा हुई और किसी भी वृक्ष के तने पर अंकित कर दी। उस अवस्था में किसी भी प्रकाशक के लिए काव्यों का संग्रह करने के निमित्त वृक्ष-दर-वृक्ष भटकना कदापि संभव न होता। अतः उस महाकवि के एक मित्र ने ही यह बीड़ा उठाया और एक-एक वृक्ष पर अंकित उसकी कृतियों का संकलन किया। तब कहीं तीन वृहद ग्रन्थों में वह संकलन बन पाया।

यह नींद, एक मुसीबत !

चींटी हो या हाथी, निरीह जन्तुओं के लिए कभी-कभी नींद एक मुसीबत ही रहती है। फ्रेन्च सम्राट् लुई १४वें का एक हाथी लगातार पाँच वर्ष तक लेट न सका था। बेचारे को खड़े पाँवों ही नींद का कर्जा चुकाना पड़ा था। उसके विशाल दाँतों तथा सिर को टिकाये रखने के लिए पत्थर का एक ऐसा छज्जा बनाया गया था जिसमें दाँतों को पिरोकर टिकाने के लिए दो बड़े सूराख भी रखे गये थे। सच तो यह है कि प्राणी डीलडौल में जितना विशाल, नींद की समस्या भी उतनी ही विशाल रहती है। वानरों में अनेक तो ऐसे हैं जो वृक्षों पर रैनबसेरा कर लेते हैं किन्तु भीमकाय गोरिल्ला का सोना भी एक भीमकार्य ही रहता है। बेचारे को शाम ही से अनुकूल स्थल खोज लेना पड़ता है और घास-फूस, पत्ते, टहनियों का बिस्तर तैयार करना पड़ता है, तब कहीं अपने परिवार को सुलाकर स्वयं सोता-ऊँघता, चौकीदारी करता रहता है। बत्तखों की भी कुछ न पूछिए। कोई-कोई (अधिकतर हिमनिवासिनी) तो नींद में ऐसी खो जाती है कि सर्दी की एक ही लपेट उन्हें जमाकर बर्फ बना देती है। प्रायः प्रकृति द्वारा रेफ्रीजरेशन की हुई ऐसी बत्तखें हिमखण्डों में पायी जाती रही हैं। हाँ, चींटियाँ बड़े नखरे से सोती हैं। जहाँ भी धरती में नन्हा गड्ढा मिला, उसी में सिमटकर सो जाती हैं। विशेषता तो यह है कि नींद टूटने पर जब चलती-फिरती हैं तो अपनी छहों टाँगें और सिर ठीक हमारी तरह अँगड़ाई में तानकर जमुहाई लेती हैं !

आँखों से आँखों को धोखा

बात शहजादे खुसरो की है—अमर ताज के निर्माता शाहजहाँ के ज्येष्ठ भ्राता—सम्राट्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँगीर के ज्येष्ठ पुत्र खुसरो को। सन् १६०६ में जहाँगीर ने खुसरो को विद्रोहियों से मिल जाने के अपराध में आँखें निकाल लेने की कठोर सजा सुना दी। उसमें खुसरो की यह माँग रियायत स्वरूप स्वीकार कर ली गयी कि उस सजा को वह स्वयं ही सम्पन्न करेगा और शाही जल्लाद से गर्म सलाख द्वारा आँख फोड़े जाने की क्रिया को समझने के साथ-साथ मजबूत सुई-डोरा भी माँग लिया। सब वस्तुएँ देकर शहजादे को तहखाने में बन्द कर दिया गया। निश्चित घड़ी पर शहजादे ने अपने अंधी-आँखों की पलकों को सुई-डोरे से मजबूत सी लिया और आवश्यक जाँच के बाद सारा सामान वहाँ से हटा लिया गया।

एक ही वर्ष बीतते न बीतते सम्राट् को अपने इस कृत्य पर बेहद पछतावा हुआ और वह इतनी कड़ी सजा दे देने की अपनी मूर्खता पर पछताने लगा। दूर-दूर से हकीम बुलवाए गए कि शहजादे की आँखें पुनः ज्योति पा जाएँ किन्तु सबों ने बड़े दुख के साथ निराशा ही दर्शायी। आखिर एक अत्यन्त निपुण हकीम सामने आया और बड़ी कुशलता से उसने सिये हुए पलकों को डोरा काट कर मुक्त किया। तभी सब यह देखकर हर्षाश्चर्य से चकित रह गए कि आँखें तो ज्यों की त्यों सलामत थीं और शहजादे ने केवल भुलावा देने के लिए पलकों को ही सीकर छुट्टी पाली थी!

एक शाल बनने में १० हजार वर्ष!

कम नहीं, पूरे १० हजार वर्ष लगे हैं। १४ फुट लम्बी और १/६ इंच मोटी रंग-बिरंगी शाल बनाने में। अन्तर यही है कि वह शाल मानव ने नहीं, प्रकृति ने स्वयं बनायी है। पश्चिमी आस्ट्रेलिया में येलिनयूप (Yellingoup) नामक भूमिगत कन्दरा में वह शाल फैली-तनी देखी जा सकती है। भूमि की परतों में रिसते हुए जल-बिन्दु कैल्सियम की सहायता से जो अवशैल (stalaclite) और उच्छशैल (stalagmite) बनाते रहते हैं, उन्हीं के विचित्र संयोगवश, एक लम्बी चादर के में कैल्सियम की यह शिला तानों-बानों बनती आयी है और मनोहारी रंगों ने निराला आकर्षण दिया है। भू-शास्त्रियों अनुमान है कि इसे तैयार होने में कम से १० हजार वर्ष लगे होंगे।

सवाई का रहस्य जानिये

जयपुर (राजस्थान) का राजपरि अपने प्रत्येक व्यक्ति के नाम के आगे सवा (शहर के आगे भी—सवाई माधोपुर आ जो लगाता है, वह प्रथा सम्राट् औरंगजे काल से चली आ रही है। रहस्य यह है तत्कालीन महाराजा-जयपुर की चमत्का हाजिरजवाबी से औरंगजेब इतने प्रभावि कि उन्होंने 'सवाये' अर्थात् समस्त प्रजा के मुकाबले बुद्धि में सवाये होने का खिताब भेंट किया था जो आज भी आ रहा है।

तीरंदाज नाग

नागों में भी अनेक ऐसे हैं जिन्हें आत्म कारी को काटने की आवश्यकता नहीं फिर भी अपना कान निकाल लेते हैं। की तकलीफ उठाने से पहले वे अपने विष की ऐसी तीखी पिचकारी तीर की छोड़ते हैं जो शिकार ८-१० फुट दूर हो भी उसकी आँखों पर अचूक बैठती पिचकारी अपना काम कर जाती है शिकार का काम तमाम हो जाता है।

एक ही बात ने दो मारे!

फ्रेन्च करोड़पति ह्यूज जेक (Hughes Jacqueton) इस सदमे से गया कि वह अपने उत्तराधिकारी भती केवल तीन लाख रुपया छोड़ सकेगा। भतीजा जिसने जीवन भर सौ रुपये देखे थे, इस खुशी में मर गया कि उसे लाख रुपया उत्तराधिकार में मिलेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे

सूचना

१ अप्रैल १९६४ से समय सारिणी में आवश्यक संशोधन किये जा रहे हैं और कुछेक थ्रू/ट्रेनों की चाल बढ़ायी जा रही है। महत्त्वपूर्ण परिवर्तन निम्न भाँति रहेंगे :

१. **नयी ट्रेनें जारी की गयीं :**

(१) अमृतसर और अटारी के मध्य एक-एक ट्रेन आने-जाने वाली (९ ए. ए./१० ए. ए.)

(२) मेड़ता रोड और मेड़ता सिटी के मध्य एक-एक ट्रेन आने-जाने वाली (७ जे. एम. एम./८ जे. एम. एम.)

(३) सदर बाजार और गढ़ी हरसराऊ के मध्य दोनों ओर से एक-एक बार के लिए डीजल रेल-कार। (१ बी. डी. जी./२ बी. डी. जी.)

(४) फीरोजपुर और फाजिल्का के मध्य एक-एक ट्रेन आने-जाने वाली (७ एफ. एफ./८ एफ. एफ.)

(५) नई दिल्ली और मद्रास के मध्य द्वि-साप्ताहिक सदर्न एक्सप्रेस (२१ डाउन/२२ अप)

२. **आगे तक बढ़ायी गयी ट्रेनें :**

(१) दिल्ली और जीन्द के मध्य चलने वाली १ डी. जे/२ डी. जे ट्रेन जाखल तक आएगी-जाएगी।

३. **यात्रियों के लिए नया स्टेशन जारी किया गया :**

(१) मेरठ कैन्ट और दौराला के मध्य पब्लिखास।

४. **ट्रेनों की चाल बढ़ायी गयी :**

(१) जोधपुर-डीगाना और रतनगढ़-चूरू सेक्शनों के मध्य ९४ डाउन जोधपुर मेल की ७ मिनट से।

(२) चूरू-रतनगढ़ और डीगाना-जोधपुर सेक्शनों के मध्य ९३ अप जोधपुर मेल की १३ मिनट से।

५. **रुकने के नये स्थल निर्धारित किये गये :**

(१) १ ए टी एफ टिन्डौली पर।

(२) ३५४ डाउन दिल्ली आजादपुर पर।

(३) ६ एम डी सहीबाबाद पर।

(४) ३९ अप/४० डाउन अछल्दा पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) ३९ अप बरहन पर ।
(६) ९ अप अन्जी शाहाबाद पर ।
(७) ३७२ डाउन पब्लिखास पर ।
(८) ११२ अप अजगेन पर ।
(९) १ जे जे बी/२ जे जे बी जिप्सम हाल्ट पर ।
(१०) २ एफ टी डी हरनगऊ, मितावली और महरावल पर ।
(११) १३ अप दिल्ली शहादरा पर ।
(१२) १ बी आर एस/२ बी आर एस जीताखेड़ी, औरंगनगर और मेयर हाल्ट पर।
(१३) १ बी डी एफ/२ बी डी एफ धनकोट पर ।

६. रुकने के स्थल बन्द किये गये :

(१) ५१ अप मलियाबाद और अन्जी शाहाबाद पर ।
(२) २७ अप/२८ डाउन कुरुक्षेत्र पर।
(३) २ एफ टी डी मैनपुरी कचहरी, पखना, उरगपुर, टिन्डौली और अरावन पर।
(४) १ ई टी डी टिन्डौली और अरावन पर ।
(५) २ बी आर एफ जीताखेड़ी, औरंगनगर और मेयर हाल्ट पर ।

७. नये कनेक्शन जारी किये गये :

(१) ५१ अप का ५५ अप से मुरादाबाद पर ।
(२) २०८ डाउन का १ अप (मीटर गेज, वेस्टर्न रेल्वे) से फुलेरा पर।
(३) ५ के एम/६ के एम का ५५ अप से हापुड़ पर ।
(४) २ एफ टी डी का ५ के एम से खुर्जा पर ।
(५) २ बी एस का ३७६ डाउन से बालामऊ पर ।
(६) ४ बी एस का ६१ अप/६५ अप से बालामऊ पर ।
(७) ३ एस एस का ६१ अप/६५ अप से रौसा पर ।
(८) ४४ अप का ३० डाउन से लखनऊ पर ।
(९) ५१ अप का ६० डाउन (मीटर गेज, एन. ई. रेल्वे) से बरेली पर ।
(१०) ३५१ अप का ११ अप (मीटर गेज, एन. ई. रेल्वे) से बरेली पर ।
(११) २ जे एस बी का ६६ डाउन (मीटर गेज, वेस्टर्न रेल्वे) से भोलड़ी पर।
(१२) ६ जे एम एम का २१० डाउन और १ जे एम बी से मेड़ता रोड पर।

८. गाड़ियों के समय में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन :

(१) नं. ४ डाउन दिल्ली-पानीपत पैसेन्जर पानीपत से ८ बजकर २५ मिनट के बदले ७ बजकर २५ मिनट पर छूटेगी और दिल्ली ११ बजकर २० मिनट के बदले १० बजकर १५ मिनट पर पहुँचेगी ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) नं. ४२ डाउन मेरठ एक्सप्रेस दिल्ली ६ बजकर ५ मिनट के बदले ६ बजकर २० मिनट पर पहुँचेगी।

(३) नं. ११ अप हावड़ा-दिल्ली एक्सप्रेस दिल्ली ६ बजकर २० मिनट के बदले ६ बजकर ५ मिनट पर पहुँचेगी।

(४) नं. २ डाउन कालका-दिल्ली-हावड़ा मेल दिल्ली से ८ बजकर ४० मिनट के बदले ८ बजकर ३० मिनट पर छूटेगा।

(५) नं. ३० डाउन लखनऊ मेल दिल्ली से २१·०० बजे के बदले २० बजकर ४५ मिनट पर छूटेगा और लखनऊ ७ बजकर २५ मिनट के बदले ७ बजकर १० मिनट पर पहुँचेगा।

(६) नं. ८४ डाउन लखनऊ एक्सप्रेस दिल्ली से १९ बजकर ५ मिनट के बदले २१ बजकर ५ मिनट पर छूटेगी और लखनऊ ५ बजकर ४५ मिनट के बदले ७ बजकर २५ मिनट पर पहुँचेगी।

(७) ५५ अप मुरादाबाद-दिल्ली एक्सप्रेस मुरादाबाद से १६ बजकर १५ मिनट के बदले १६ बजकर ४५ मिनट पर छूटेगी और दिल्ली २० बजकर ५ मिनट के बदले २० बजकर ३५ मिनट पर पहुँचेगी।

(८) २ एफ टी डी दिल्ली-फरुखाबाद पैसेन्जर दिल्ली से १५·०० बजे के बदले १३ बजकर ३५ मिनट पर छूटेगी और फरुखाबाद ३ बजकर ५० मिनट के बदले २ बजकर ३० मिनट पर पहुँचेगी।

(९) ३ ए सी आगरा-कानपुर पैसेन्जर कानपुर से १८ बजकर ५ मिनट के बदले १७ बजकर ४५ मिनट पर छूटेगी।

(१०) २३१ अप दिल्ली-अहमदाबाद जनता एक्सप्रेस दिल्ली से १७ बजकर १० मिनट के बदले १७ बजकर ४५ मिनट पर छूटेगी।

(११) १ बी डी आर दिल्ली-रेवाड़ी पैसेन्जर दिल्ली से १८ बजकर १० मिनट के बदले १८ बजकर २५ मिनट पर छूटेगी।

(१२) १ बी एस बालामऊ-सीतापुर पैसेन्जर बालामऊ से ८ बजकर ४० मिनट के बदले ७ बजकर ३५ मिनट पर छूटेगी और सीतापुर कैन्ट ११ बजकर २० मिनट के बदले १० बजकर ४५ मिनट पर पहुँचेगी।

(१३) २ बी एस सीतापुर-बालामऊ पैसेन्जर सीतापुर कैन्ट से ११ बजकर ४० मिनट के बदले ११ बजकर ५ मिनट पर चलेगी और बालामऊ १४ बजकर ४० मिनट के बदले १४ बजकर ५ मिनट पर पहुँचेगी।

(१४) ३ बी एस बालामऊ-सीतापुर पैसेन्जर बालामऊ से १५ बजकर ५ मिनट के बदले १४ बजकर ४० मिनट पर छूटेगी और सीतापुर कैन्ट १८ बजकर १० मिनट के बदले १७ बजकर ३५ मिनट पर पहुँचेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१५) ४ बी एस सीतापुर बालामऊ पैसेन्जर सीतापुर कैन्ट से १८ बजकर ३५ मिनट के बदले १७ बजकर ५५ मिनट पर छूटेगी और बालामऊ २१ बजकर ५० मिनट के बदले २१ बजकर १५ मिनट पर पहुँचेगी।

(१६) २ एस एस शाहजहांपुर-सीतापुर पैसेन्जर शाहजहांपुर से ५ बजकर ४५ मिनट के बदले ५ बजकर २० मिनट पर छूटेगी और सीतापुर कैन्ट ९ बजकर ५५ मिनट के बदले ९ बजकर ३० मिनट पर पहुँचेगी।

(१७) १ एस एस सीतापुर-शाहजहांपुर पैसेन्जर सीतापुर कैन्ट से १० बजकर १५ मिनट के बदले ९ बजकर ५० मिनट पर छूटेगी और शाहजहांपुर १४ बजकर ४६ मिनट के बदले १४ बजकर १० मिनट पर पहुँचेगी।

(१८) ४ एस एस शाहजहांपुर-सीतापुर पैसेन्जर शाहजहांपुर से १५ बजकर २३ मिनट के बदले १४ बजकर ३५ मिनट पर छूटेगी और सीतापुर कैन्ट १९ बजकर ३० मिनट के बदले १९·०० बजे पहुँचेगी।

(१९) ३ एस एस सीतापुर-जाहजहांपुर पैसेन्जर सीतापुर कैन्ट से १९ बजकर ५० मिनट के बदले १९ बजकर २० मिनट पर छूटेगी और शाहजहांपुर नित्य के समय २१ बजकर ५० मिनट पर पहुँचेगी।

(२०) २ एस एल लखनऊ-सुलतानपुर पैसेन्जर लखनऊ से ६ बजकर १० मिनट के बदले ५ बजकर ३० मिनट पर छूटेगी और सुलतानपुर ११ बजकर २० मिनट के बदले ९ बजकर ५० पर पहुँचेगी।

(२१) एफ बी एल फैजाबाद-लखनऊ पैसेन्जर फैजाबाद से ४ बजकर ४० मिनट के बदले ४ बजकर १० मिनट पर छूटेगी और लखनऊ ९ बजकर ५५ मिनट के बदले ८ बजकर ३५ मिनट पर पहुँचेगी।

(२२) १ जे जे बी जोधपुर-बाड़मेर पैसेन्जर जोधपुर से ७ बजकर २५ मिनट के बदले १३ बजकर १५ मिनट पर छूटेगी और बाड़मेर १४ बजकर ४२ मिनट के बदले १९ बजकर ४५ मिनट पर पहुँचेगी।

(२३) २ जे जे बी बाड़मेर-जोधपुर पैसेन्जर बाड़मेर से ५ बजकर ३० मिनट के बदले ११·०० बजे छूटेगी और जोधपुर १२ बजकर ३० मिनट के बदले १७ बजकर ५० मिनट पर पहुँचेगी।

(२४) २ जे एस बी भीलड़ी-समदारी पैसेन्जर भीलड़ी से १ बजकर २० मिनट के बदले ३ बजकर ४० मिनट पर छूटेगी और समदारी ९·०० बजे के बदले ११ बजकर ५ मिनट पर पहुँचेगी।

(२५) १ जे एस बी समदारी-भीलड़ी पैसेन्जर समदारी से १२ बजकर २० मिनट के बदले १६ बजकर ४० मिनट पर छूटेगी और भीलड़ी २०·०० बजे के बदले २४·०० बजे पहुँचेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२६) २०८ डाउन मेडता रोड-आगरा फोर्ट एक्सप्रेस मेडता रोड से २ बजकर १५ मिनट के बदले १ बजकर ५५ मिनट पर छूटेगी और फुलेरा ७·०० बजे के बदले ६ बजकर ३० मिनट पर पहुँचेगी।

(२७) ९६ डाउन मारवाड-बीकानेर मेल मारवाड से १८ बजकर ५५ मिनट के बदले १८ बजकर ३५ मिनट पर छूटेगा और बीकानेर ७ बजकर २५ मिनट के बदले ७ बजकर ५ मिनट पर पहुँचेगा।

(२८) १४ डाउन अपर इण्डिया एक्सप्रेस दिल्ली से २० बजकर १५ मिनट के बदले २० बजकर ५ मिनट पर छूटेगी।

(२९) २१३ अप दिल्ली-अजमेर पैसेन्जर दिल्ली से १९ बजकर २० मिनट के बदले १९ बजकर ५० मिनट पर छूटेगी।

(३०) ९३ अप जोधपुर मेल दिल्ली से २० बजकर १० मिनट के बदले २० बजकर १५ मिनट पर छूटेगा।

(३१) ९५ अप बीकानेर-मारवाड मेल बीकानेर से २० बजकर ५ मिनट के बदले २०·०० बजे छूटेगा।

(३२) २०१ अप/१ अप दिल्ली-अहमदाबाद मेल दिल्ली से २२ बजकर ५ मिनट के बदले २२·०० बजे छूटेगा।

(३३) ३ बी डी आर सदर बाजार-रेवाड़ी पैसेन्जर सदर बाजार से १४ बजकर ५ मिनट के बदले १३ बजकर ५५ मिनट पर छूटेगी।

(३४) ४ बी डी आर रेवाड़ी-सदर बाजार पैसेन्जर रेवाड़ी से १८ बजकर ३० मिनट के बदले ७ बजकर ५० मिनट पर छूटेगी और सदर बाजार २१ बजकर ५ मिनट के बदले १० बजकर ४० मिनट पर पहुँचेगी।

(३५) १ बी एच एस हिसार-सादुलपुर पैसेन्जर हिसार से २२ बजकर २० मिनट के बदले २१ बजकर ४० मिनट पर छूटेगी।

(३६) ३ बी एस एच हनुमानगढ़-सादुलपुर पैसेन्जर हनुमानगढ़ से १८ बजकर ४० मिनट के बदले १९ बजकर १० मिनट पर छूटेगी।

(३७) १ बी के एफ फाजिल्का-कोटकपूरा पैसेन्जर फाजिल्का से ३ बजकर ३० मिनट के बदले २ बजकर ५० मिनट पर छूटेगी।

(३८) १० बी एच बी हनुमानगढ़-भटिण्डा पैसेन्जर हनुमानगढ़ से ११ बजकर ३५ मिनट के बदले ११ बजकर ४५ मिनट पर छूटेगी।

(३९) २०४ डाउन अहमदाबाद-दिल्ली एक्सप्रेस रेवाड़ी से १६ बजकर ४३ मिनट के बदले १६ बजकर ५८ मिनट पर छूटेगी और दिल्ली १९·०० बजे के बदले १९ बजकर १५ मिनट पर पहुँचेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४०) २ बी बीकी बीकानेर-पिलानी पैसेन्जर बीकानेर से १० बजकर १० मिनट के बदले १० बजकर २५ मिनट पर छूटेगी।

(४१) २ बी आर एफ रेवाड़ी-फाजिल्का पैसेन्जर रेवाड़ी से १ बजकर ३० मिनट के बदले १ बजकर ४० मिनट पर छूटेगी।

(४२) ३९० अप इलाहाबाद से १७ बजकर १५ मिनट के बदले १६ बजकर ४५ मिनट पर छूटेगी।

(४३) ३५५ अप आगरा कैन्ट से १९ बजकर १५ मिनट के बदले १९·०० बजे छूटेगी।

(४४) १ एस एल सुलतानपुर से ४ बजकर ४० मिनट के बदले ४ बजकर ५५ मिनट पर छूटेगी और लखनऊ ९ बजकर २५ मिनट के बदले १०·०० बजे पहुँचेगी।

(४५) २ एम पी परतापगढ़-मुगलसराय पैसेन्जर परतापगढ़ से ५ बजकर २० मिनट के बदले ५·०० बजे छूटेगी और मुगलसराय ९ बजकर ४० मिनट के बदले ९ बजकर ४५ मिनट पर पहुँचेगी।

(४६) ५ के एम खुर्जा से १७ बजकर ५ मिनट के बदले १६ बजकर ४० मिनट पर छूटेगी।

९. ट्रेनों में वातानुकूलन की सुविधाएँ :

(१) १ अप/२ डाउन मेल (दिल्ली-कालका) में एक आंशिक वातानुकूलित कोच त्रि-साप्ताहिक के बदले दैनिक चला करेगी।

(२) ४१ अप/४२ डाउन मसूरी एक्सप्रेस में दिल्ली और देहरादून के मध्य एक पूर्ण वातानुकूलित कोच दि. १५-७-६४ तक नित्यप्रति चला करेगी।

(३) २७ अप/२८ डाउन अमृतसर मेल में दिल्ली और अमृतसर के मध्य एक आंशिक वातानुकूलित कोच नित्यप्रति चला करेगी।

(४) ९१ अप/९२ डाउन बीकानेर मेल में दिल्ली और बीकानेर के मध्य दि. ३१-७-६४ तक एक आंशिक वातानुकूलित कोच निम्न भाँति द्वि-साप्ताहिक चला करेगी :

दिल्ली से —प्रति सोमवार और बृहस्पतिवार

बीकानेर से—प्रति मंगलवार और शुक्रवार

(५) ९३ अप/९४ डाउन जोधपुर मेल में दिल्ली और जोधपुर के मध्य दि. ३१-८-६४ तक आंशिक वातानुकूलित कोच निम्न भाँति त्रि-साप्ताहिक चला करेगी :

दिल्ली से —प्रति सोमवार, बुधवार और शनिवार

जोधपुर से —प्रति मंगलवार, बृहस्पतिवार और रविवार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) ४३ डाउन / ४४ अप मेल में झाँसी और लखनऊ के मध्य एक आंशिक वातानुकूलित कोच निम्न भाँति द्वि-साप्ताहिक चला करेगी :

झाँसी से —प्रति रविवार और बृहस्पतिवार

लखनऊ से —प्रति सोमवार और शुक्रवार

१०. **श्रृ / विभागीय डब्बे जोड़े गये :**

	स्टेशनों के मध्य	ट्रेन नम्बर	आवर्तिता	श्रेणियाँ	डब्बों की संख्या
(१)	बाम्बे सेन्ट्रल-पठानकोट	३/३३ और ३४/४	दैनिक	(वातानुकूलित	एक
				(प्रथम	एक
				(द्वितीय	एक
				(तृतीय स्लीपर ३ टायर)	एक
(२)	दिल्ली-राँची	१२/२३ और २४/११	(दिल्ली और राँची से बुध और शनिवार को एक साथ)	(प्रथम-तृतीय संयुक्त)	एक
(३)	वाराणसी-हावड़ा	५०/१६ ई आर और १५ ई आर/४९	दैनिक	तृतीय	एक
(४)	कालका-पठानकोट	३५/५१ और ५२/३६	त्रि-साप्ताहिक के बदले दैनिक	(प्रथम-तृतीय-संयुक्त)	एक
(५)	नई दिल्ली बैंगलोर सिटी	२२/२३ और ८/१५	नई दिल्ली से— बृहस्पतिवार और रविवार बैंगलोर सिटी से— बुधवार और शनिवार	(प्रथम-तृतीय-संयुक्त)	एक

११. **निम्न ट्रेनों से प्रथम श्रेणी की सुविधा उपलब्ध रहेगी :**

ट्रेन नम्बर		सेक्शन
३३९ अप/३४० डाउन पैसेन्जर		अम्बाला कैन्ट—अबोहर के मध्य
१ यू के एन/२ यू के एन	,,	अम्बाला कैन्ट—नरवाना के मध्य वाया कुरुक्षेत्र
१ यू आर एन/२ यू आर एन	,,	अम्बाला कैन्ट—नांगल बाँध के मध्य
१ डी जे/२ डी जे	,,	दिल्ली —जालख के मध्य
३ जे एम पी/८ जे एम पी	,,	जलन्धर सिटी—पठानकोट के मध्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

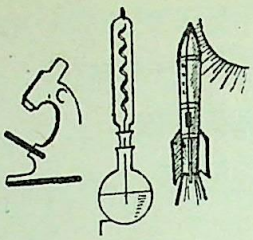

प्राकृतिक विकृति को सर्जरी से जीतिए

प्लास्टिक सर्जरी द्वारा छोटे-छोटे अंगों का नव-स्थापन अब काफी प्रचलित हो चुका है। अब इतिहास-कथित राजा की तरह सोने की नाक अथवा रानी की तरह मोम के नाक-कान लग जाने की आवश्यकता नहीं। और, नाक-कान ही क्यों, अन्दर जड़ जमाए बैठे हुए अंग, जीभ, आँख की पुतली आदि भी यदि विकृत हों या आपको कम पसन्द हों तो नये लगवा सकते हैं। इनसे भी बढ़कर यदि कर्कश स्वर भैंसासुर के स्वर से होड़ करता हो तो आप कोकिल-कंठी स्वर-रज्जु लगवा सकते हैं।

हैम्बर्ग के एक विशेषज्ञ ने प्रयोगों द्वारा ज्ञात किया है कि मानव के लिए कैंसर बड़ा विनाशकारी रोग है और इसका सबसे पहला निशाना जीभ पर बैठता है। उसने यह भी पता लगाया है कि ऊपरी जीभ को सर्जरी द्वारा निकाल लेने के बाद भी नीचे की माँसपेशियाँ तथा तन्तु-समूह ज्यों के त्यों सक्रिय रहते हैं। अतः प्लास्टिक सर्जरी द्वारा रोगिणी जीभ को निकालकर दूसरी स्वस्थ जीभ की मानो कलम लगायी जा सकती है।

यातायात का नया चमत्कारिक नियन्त्रण

बड़े नगरों के अति व्यस्त वाहन-मार्गों पर यातायात की दुर्घटनाओं की नयी-नयी विधियाँ अपनाने पर भी रोकथाम में आशातीत सफलता नहीं मिल पाती। पश्चिम जर्मनी के नये प्रयोग के अनुसार बड़े-बड़े चौराहों पर विविध नियंत्रण-व्यवस्थाओं के अतिरिक्त एक-एक हेलीकाप्टर भी ऊपर मँडराता रहेगा जो ऊपर ही ऊपर से सड़कों का नियन्त्रण करेगा। उसी हेलीकाप्टर में तात्कालिक चिकित्सा की सहायता का भी पूर्ण प्रबन्ध रहेगा और कुशल चिकित्सक सेवा में तैनात रहेगा।

पौधों की भाषा समझिए

समझ लेने पर आप पौधों की इच्छानुसार उन्हें अनुकूल वातावरण दे सकेंगे। प्रकृति पौधों को इतना क्षमतापूर्ण तो बनाया है वे पोषण-संचार और अन्य क्रियाओं स्वनियंत्रण द्वारा संतुलित कर सकें किन्तु कार्य के अनुकूल वातावरण देकर विकास को प्रेरित किया जा सकता है। दिशा में लेनिनग्राद के कृषि-अनुसन्धा प्रयत्नशील हैं और प्रयोगस्वरूप उन्होंने स्वचालित यंत्र बनाया भी है जो पौधों भाषा हमें कानोंकान पहुँचा सकेग केवल एक मिलीमीटर आकार का २०-२५ मिलीग्राम वजन का वह नन्हा पौधे की टहनी पर लगा दिया जायगा। स्वचालित यंत्र २००-३०० किलोमीटर दूरी तक आर्द्रता तथा ताप आदि की जानक देने में समर्थ है।

टायर का पंक्चर यात्रा-भंग नहीं करेगा

मोटर का टायर पंक्चर हो जाने अवस्था में भी कम से कम १०० मील तो मोटर को चलाकर या तो घर लौट अथवा कोई न कोई सर्विस-स्टेशन जायगा। ड्यूएल चम्बर अर्थात् दोहरे टाय सिद्धान्त पर अमरीका की गुडईयर क द्वारा निर्मित इस टायर में एक अतिरिक्त अन्दर भी रहता है। बाहर का टायर यदि ही में फट जाए तो नया बदलने की अथवा टायर के अभाव में हाथ पर हाथ धरे बैठे की अब झंझट न रहेगी। भीतरी टाय १०० मील तक की यात्रा और भी की सकेगी। बाहर के टायर को क्षति पहुँचने संकेत भी ड्राइवर को मिलने की यंत्र-व्य इसके साथ जुड़ी रहेगी। इस नये, दोहरे का नाम—लाइफगार्ड-सेफ्टी स्पेयर है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगाणुओं के लिए रामबाण रश्मियाँ

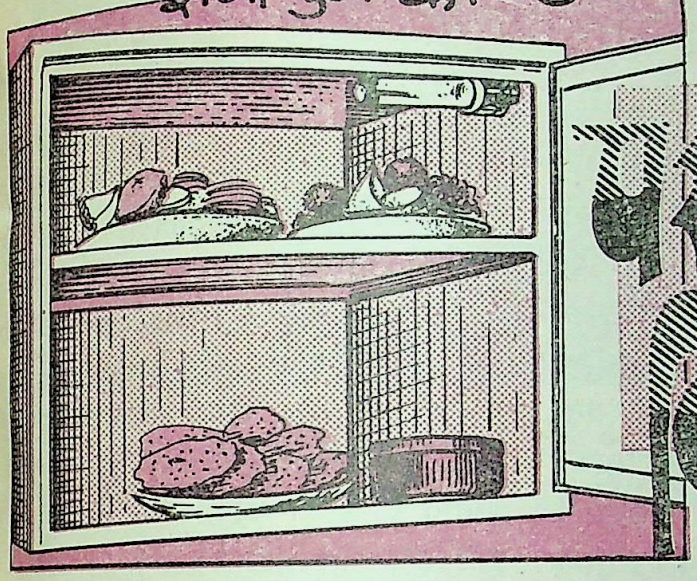

पराबैंगनी किरणें

कुमारी अनुराधा

सन् १८०० में प्रथम बार सर विलियम हरशेल (Sir William Herschell) ने ज्ञात किया था कि अन्तरिक्ष से अनेक विद्युत्-चुम्बकीय किरणें पृथ्वी तक आती हैं। इन किरणों के तरंग-दैर्ध्य अत्यन्त अल्प होने के कारण ये हमें दिखायी तो नहीं देतीं किन्तु हैं ये तीव्र प्रभावकारी। उन प्रभावों के बल पर ही इनकी स्पष्ट प्रतीति की जा सकती है। प्रकृति की हम पर यह महती कृपा समझनी चाहिए कि इन किरणों का बहुत ही सूक्ष्मांश हम तक पहुँच पाता है, अन्यथा इन्हें सहन करना कदापि संभव न होता। इनका वृहदांश तो वायुमण्डल में ही शोषित हो जाता है, जहाँ ये किरणें (विशेषत: पराबैंगनी किरणें) वायुमण्डलीय आक्सीजन को ओजोन गैस में परिणत करती रहती हैं। इनकी तीव्रता यों तो किसी भी दिन, तेज धूप में देखी जा सकती है।

तरंग-दैर्ध्य की विविधता

किरणें प्रकाश की हों अथवा ताप की, इनके तरंग-दैर्ध्य में बहुत अन्तर रहता है। यह तरंग-दैर्ध्य इतना सूक्ष्ममापी होता है कि इसे सामान्य अंकों में प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। अत: इसे μ (mew म्यू = १ सें. मी. का १० हजारवाँ भाग) तथा Å (angstrom अंगस्ट्रम = १ सें. मी. का १० करोड़वाँ भाग) की संज्ञाओं में प्रदर्शित किया जाता है। उदाहरणार्थ, हमें दिखने वाले प्रकाश का तरंग-दैर्ध्य ०·४ से ०·७ μ तक होता है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि सफेद दिखने वाला प्रकाश तो एक ही है, फिर इसके तरंग-दैर्ध्य में यह विभिन्नता क्यों? इसका उत्तर यह है कि सफेद दिखने वाला प्रकाश आखिर है तो सात विभिन्न इन्द्रधनुषी रंगों का सम्मिश्रण ही! बस, रंगों की वह विभिन्नता ही तरंग-दैर्ध्य में भी विभिन्नता प्रस्तुत कर देती है। वर्णक्रम के एक सिरे पर बैंगनी किरणों का तरंग-दैर्ध्य ०·४ μ है और दूसरे सिरे पर लाल किरणों का तरंग-दैर्ध्य ०·७ μ है। इन दोनों सिरों से सटी हुयी और अदृश्य, क्रमश: पराबैंगनी तथा अवरक्त किरणें हैं। पराबैंगनी किरणें कम तरंग-दैर्ध्य की तथा तीव्र रासायनिक प्रभाव-युक्त हैं और अवरक्त किरणें बड़े तरंग-दैर्ध्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा तप्त किरणें हैं। आधुनिक विज्ञान दोनों के इन गुणों का हमें पूरा-पूरा लाभ दे रहा है।

आरम्भिक खोज और प्रयोगों की परम्परा

पराबैंगनी किरणों की उपस्थिति सर्व-प्रथम ज्ञात करने का श्रेय जर्मन भौतिकविद् ज्हान विल्हेल्म रिटर (Johann Wilhelm Ritter) को है। १८०१ में उन्होंने अपने प्रयोगों के अन्तर्गत यह आभास किया कि वर्णक्रम की बैंगनी पट्टी के सिरे से बाहर, सट कर ही कुछ न कुछ है अवश्य जो दिखायी नहीं पड़ता और रासायनिक प्रभाव भी रखता है। उन्हें यह तो ज्ञात था ही कि सिल्वर क्लोराइड नामक सफेद पदार्थ प्रकाश से प्रभावित होकर काला पड़ जाता है। इसलिए उन्होंने अपने नये प्रयोग में सिल्वर क्लोराइड में डुबो कर सुखाया हुआ एक कागज वर्णपट के बैंगनी सिरे से सटा कर रख दिया। प्रयोग के पश्चात् उन्हें यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उन न दिखने वाली किरणों ने केवल उस कागज को स्याह कर दिया, बल्कि प्रकाश की दिखने वाली अन्य किरणों की अपेक्षा अत्यन्त शीघ्रता से अपना काम कर दिया ! रिटर ने ही इन किरणों का नाम 'बैंगनी के पार' (ultra = उस पार) अर्थात् 'पराबैंगनी' (ultra violet) किरणें रख दिया।

एक ही समय तैयार किए गए पनीर के दो टुकड़ों में से जो अरक्षित पड़ा रहा, उस पर तो बैक्टीरिया ने फफूँद जमा दी और जो पराबैंगनी किरणों से प्रभावित रहा, वह मूल अवस्था में सुरक्षित बना रहा

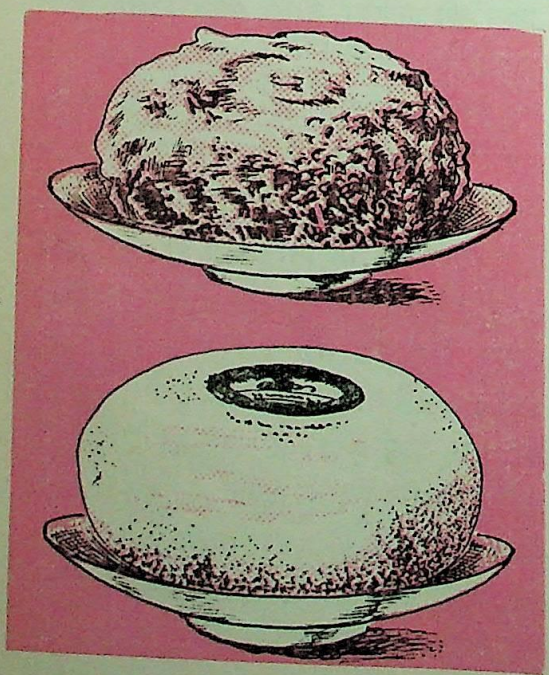

रिटर के पश्चात् इंग्लैण्ड के भौतिकविद् सर ज्यार्ज स्टोक्स (Sir George Stokes) ने १८५२ में और जर्मनी के विक्टर शूमेन (Victor Schumann) ने १८९३ में इन प्रयोगों को काफी आगे बढ़ाया। शूमेन ने फ्लोराइट (flourite) के बने लेन्सों तथा प्रिज्मों की सहायता से इन किरणों का अध्ययन किया और सिद्ध किया कि इनका विकिरण १२०० से १८०० अंगस्ट्रम के मध्य केन्द्रित रहता है। आगे चल कर फ्लोराइट निर्मित उपकरण भी निष्क्रिय प्रतीत होने लगे तथा वर्णमापी यन्त्रों को निर्वात कक्षों में रखकर काम करना आवश्यक हो गया। इस दिशा में थ्योडोर लीमैन (Theodore Lyman) के भी प्रयोगों ने नया बल दिया। इनके अतिरिक्त नोबुल पुरस्कार विजेता राबर्ट मिलिकन (Robert Millikan) ने भी १९२३ से १९२८ तक अपने सहकारियों के साथ इस विषय में महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किये।

ये हानिकारक लाभकारी किरणें

जैसा कि सृष्टि की अनेक वस्तुओं के साथ बर्ताव किया है, हमारे वैज्ञानिकों ने इन किरणों के भी विष को अमृत बना देने में कोई कसर नहीं उठा रखी है। हानि-लाभ की यह बात एक सरल उदाहरण से समझी जा सकती है। दूध, रोटी तथा सब्जी जैसी कोई भी खाद्य वस्तु कुछ देर के लिए धूप में रख छोड़ दीजिए। आप देखेंगे कि धूप चुपचाप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

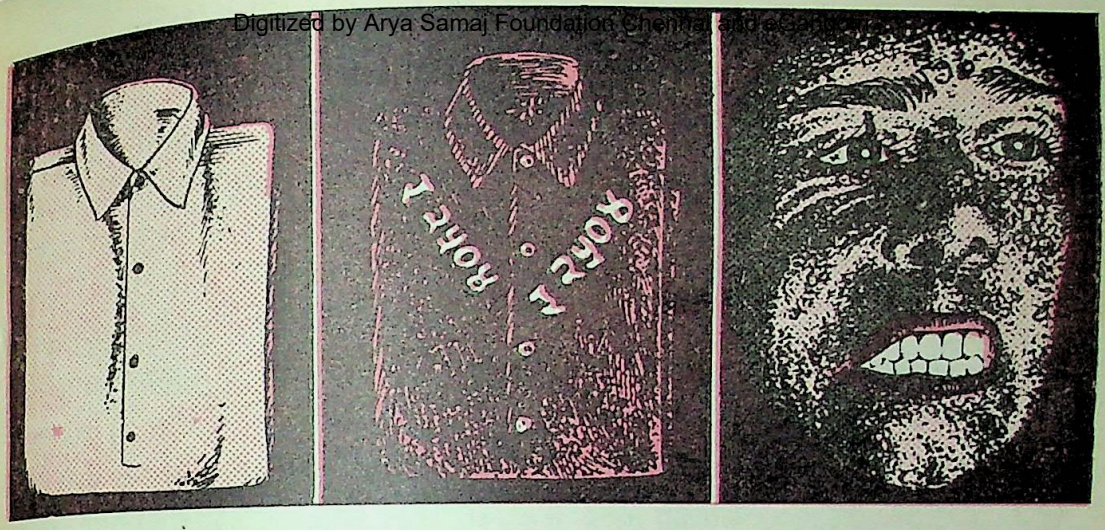

कमीज पर अदृश्य स्याही से लिखे हुए अंक और नाखून, दाँतों तथा चेहरे पर छाये हुए जो दाग सामान्य प्रकाश में नहीं दिखते, पराबैंगनी प्रकाश में स्पष्ट दिख उठते हैं

बहुत कुछ कर गुजरती है और अन्ततः वे खाने की वस्तुएँ फेंक देने योग्य हो जाती हैं। दूसरी ओर हम यह भी देखते हैं कि कीड़ा लगे हुए कपड़े तथा घुन लगे हुए अनाज, मसाले आदि हम धूप में ही रख-रखकर ठीक कर लेते हैं। ऐसा क्यों ? इसी धूप में कीटाणु-नाशन की भी शक्ति विद्यमान है जो हमारी इस शंका का समाधान करती है।

इसका रहस्य वैज्ञानिकों के मतानुसार यह है कि ये पराबैंगनी किरणें यदि ताप से मुक्त, ठण्डे स्थल पर अपना कार्य करें तो तीव्र गति से कीटाणुओं का नाश कर सकती हैं और ताप की उपस्थिति में ये उलटा ही प्रभाव दर्शाती हैं। दूसरे उदाहरणस्वरूप थोड़ी ही देर धूप में नंगे बदन बैठने पर आप देखेंगे कि त्वचा की रंगत गहराने लगती है। यही कारण है कि अत्यन्त उष्ण देशों के लोग श्यामवर्ण (अफ्रीका में नीग्रो भी तो काले होते हैं!) होते हैं। सर्दियों में धूप सेंकना बहुत भला लगता है किन्तु धूप के इस प्रभाव के जानकार व्यक्ति बदन पर तेल मलकर धूप में बैठते हैं। तेल की वह सतह पराबैंगनी किरणों के प्रभाव को काफी घटाती है। हाँ, धूप में बैठने का बड़ा लाभ यह है कि हमारे शरीर में विटामिन-डी निर्माण करने के लिए आन्तरिक प्रक्रियाओं को बड़ा वेग मिलता है। विटामिन-डी के अभाव में हमारे दाँत तथा हड्डियाँ अविकसित रह जाती हैं। इसमें यह सावधानी बरतना आवश्यक है कि सूर्य की ओर टकटकी लगाकर कदापि न देखना चाहिए। पराबैंगनी किरणों का आँखों पर सीधा प्रभाव बहुत हानिकारक पड़ता है।

ठण्डी धूप प्रयोगशालाओं से हमारे घरों में

आखिर वैज्ञानिकों ने सोचा कि सूर्य से आती हुई इन पराबैंगनी किरणों पर तो अपना वश नहीं चल सकता और लाभ तो इनसे उठाना ही है। तो, क्यों न इन्हें ताप से पृथक्, अपनी प्रयोगशाला में ही प्राप्त किया जाए ? अथक परिश्रम और अनेक प्रयोगों की सफलता-असफलताओं के चढ़ाव-उतार के पश्चात् वे अपने उद्देश्य में सफल हो ही गए। उन्होंने ऐसे पदार्थ भी खोज निकाले जो इन किरणों के प्रक्षेपित करने से दीप्त हो उठते थे। उन पदार्थों को प्रतिदीप्त (fluorescent) पदार्थ कहा जाता है। उनकी प्रतिदीप्ति का लाभ उठाकर वे दूसरे शब्दों में ठण्डी धूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं निर्मित कर सके हैं। इसके लिए एक वायुरुद्ध (airtight) नलिका में पारद गैस (mercury vapour) भर कर उसमें विद्युत्-धारा प्रवाहित करते हैं। फलतः तीव्र शुभ्र और ठण्डा प्रकाश उत्पन्न होता है। आज की बहुप्रचलित ट्यूब लाइटें इसी खोज की देन हैं।

अनगिनत उपयोगों का प्रशस्त मार्ग

इन किरणों की छः इंच तक की छोटी तथा अन्य बड़ी ट्यूबें तैयार मिलती हैं। इन्हें टी.यू.वी. ट्यूबें (tubes, ultra violet) कहते हैं ऐसी अदृश्य स्याहियाँ प्राप्य हैं जो सामान्य प्रकाश में नहीं दिखतीं और पराबैंगनी प्रकाश में दिख उठती हैं। वे स्याहियाँ लाण्ड्री वालों के विशेष उपयोग में आती हैं। अन्य ऐसे-ऐसे प्रतिदीप्त पदार्थ धुलाई के मसालों (टिनोपाल आदि) तथा साबुन बनाने के अन्तर्गत मिलाये जाते हैं जिनसे कपड़ों में आकर्षक चमक आ जाती है।

छः इंच की एक नन्हीं टी. यू. वी. ट्यूब १२ वर्ग फुट के घेरे में प्रबल कीटाणुरोधन सम्पन्न कर देती है। इन ट्यूबों की लोकप्रियता तेजी से बढ़ रही है। घरों तथा होटलों में खाना रखने की आलमारियाँ इनसे सज्जित होने पर बहुत बड़ा आर्थिक लाभ यह देती हैं कि बचा हुआ ढेरों खाना जो अन्यथा फेंक देना पड़ता, इनके प्रभाव से शुद्ध तथा अपरिवर्तित रहता है। बड़ी-बड़ी बेकरियों (bakeries) में नित्यप्रति गूँधा हुआ मल आटा बिस्कुट, केक आदि बनाने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर कन्वेयर बेल्टों (conveyor belts) पर रख कर पहुँचाया जाता है। पहले वह आटा थैलों में रखकर बेल्टों पर भेजा जाता था किन्तु खाली किये जाने पर भी उसमें जो थोड़ा-सा बचा रहता था, वही सड़कर अन्य माल भी खराब कर देता था। अतः एकबार तो ऐसे थैलों का बहिष्कार करना आवश्यक हो गया। अब तो कन्वेयर बेल्टों के ही ऊपर नीचे टी. यू. वी. ट्यूबें लगी रहती हैं जो पूर्णतया कीटाणुरोधन करती रही हैं।

इसी प्रकार केनिंग फ्रूट उद्योगों में इन्जेक्शन तथा अन्य दवायें बनाने में, मदिरा तथा विविध कोल्ड ड्रिन्क के उत्पादन में, और अस्पतालों तथा चिकित्सकों के कक्षों में पराबैंगनी किरणों द्वारा ही कीटाणुरोधन संभव है।

जब से सर विलियम हरशेल ने (१८०० में) विविध विद्युत् चुम्बकीय विकिरणों के सूत्र उपलब्ध करके वैज्ञानिक अध्ययनों के लिए हमारे समक्ष एक नया ही प्रकरण खोला, तब से इन अदृश्य किरणों के नित नये रहस्योद्घाटन हमें चमत्कृत किये जा रहे हैं।

इस टंकी में संचित पेय, अल्ट्रा वायलेट ट्यूब द्वारा उत्पन्न पराबैंगनी किरणों के आवरण में पूर्णतः सुरक्षित और कीटाणुरोधित रहेगा

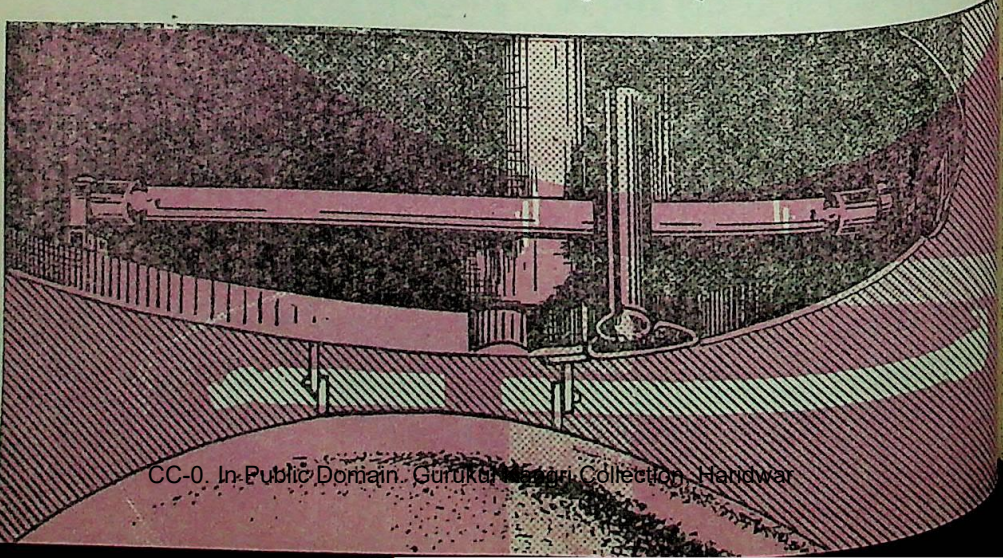

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिकाल की पीढ़ियों के ये वंशधर

बनवारीलाल

करोड़ों वर्ष पहला वह युग था। उस काल में हमारा यह भू-मण्डल किस अवस्था में रहा होगा, कैसा-कैसा विचित्र इसका वनस्पति-जगत तथा प्राणी-जगत रहा होगा, ये सब बातें सामान्य व्यक्ति के लिए केवल अस्पष्ट कल्पना का विषय है; जबकि भू-तल तथा सागर-तल में जब कभी पाये जाते रहे मृत तथा जीवित जीवाश्म (फासिल्स) पुरातत्व-वेत्ता के लिए अध्ययन के अत्यन्त मनोरंजक विषय रहे हैं। किस प्रकार अति विशालकाय दैत्याकार डिनासर पृथ्वी पर एकछत्र शासन करते-करते समाप्त हुए होंगे तथा किस प्रकार उन्हीं के राज्य में, उनके मुकाबले भुनगे सरीखे निरीह स्तनपायी प्राणी जीवित बचते-बचते आज भी वर्तमान हैं, इनके समुचित उत्तर एक पुरातत्ववेत्ता ही दे सकता है। उसके मत से पृथ्वी के बदलते हुए जलवायु की तीव्रता इन परिवर्तनों का मुख्य कारण है।

आज भी कहीं-कहीं अति विचित्र और विशाल पद-चिह्न अथवा कंकाल के अवशेष देखकर सामान्य व्यक्ति अचम्भे में रह जाता है और कुछ भी समझ नहीं पाता। दूसरी ओर एक पुरातत्ववेत्ता छोटे से छोटे अवशेष से बड़े से बड़ा रहस्य खोज निकालने के लिए उसमें जी-जान से जुट जाता है। अनेक उदाहरणों के अन्तर्गत कहीं तो हिमखण्ड में दबे, कहीं अमरीका की सूखी डामर-झीलों (Tar lakes) में दबे लाखों-करोड़ों वर्ष पूर्व के ऐसे जन्तु प्राप्त होते रहे हैं जो किसी भी रोचक पुस्तक से कम सिद्ध नहीं हुए। ऐसे मृतावशेषों के अतिरिक्त आस्ट्रेलिया, अमरीका तथा एशिया में कहीं-कहीं अब भी ऐसे जीवित जन्तु पाये जाते हैं जो करोड़ों वर्ष पूर्व के अपने-अपने वंश के प्रतीक हैं और इतने दीर्घ काल के उपरान्त भी बदलते हुए समय के साथ बदले नहीं हैं। उन्हीं में से निम्न सात जन्तुओं की चर्चा इस लेख में प्रस्तुत है : १. सॉलेनोडॉन *(Solenodon)*, २. स्फीनोडॉन *(Sphenodon)*, ३. ओपोसम *(Opossum)*, ४. ओकापी *(Okapi)*, ५. नाटिलस *(Nautilus)*, ६. प्लेटिपस *(Platypus)* तथा ७. लंग फिश *(Lung Fish)*।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

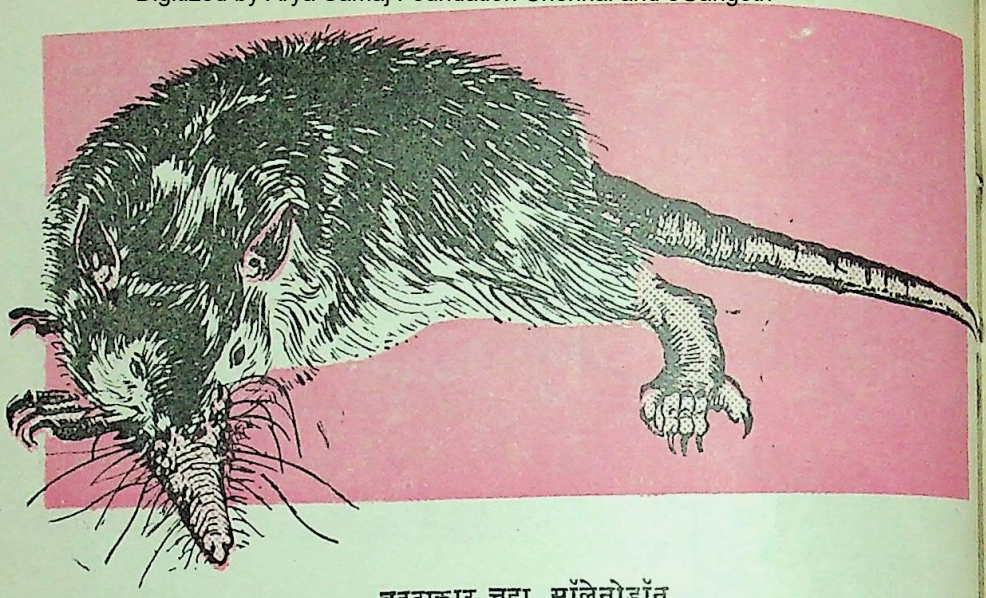

वृहदाकार चूहा, सॉलेनोडॉन

सॉलेनोडॉन

वेस्ट इण्डीज के हेती (Haiti) और डॉमिन्गो (Domingo) द्वीपों में पाया जाने वाला यह कीटभक्षी जन्तु एक बहुत बड़े चूहे जैसा दिखता है। इसका मुँह एक लम्बी, सुदृढ़ थूथन के रूप में आगे निकला रहता है जिस पर नुकीली मूँछें फहराती हैं। अगले पंजों के नाखून काफी बड़े और पिछले पंजों के काफी छोटे होते हैं। यह अधिकतर अँगुलियों के सहारे चलता है और बैठने के समय पिछले दो पाँवों की कुरसी ऐसे बना लेता है जैसे कंगारू। वैसे यह सर्वभक्षी है किन्तु छिपकलियाँ और कीड़े-मकोड़े बड़े चाव से खाता है। इसका गुस्सा बहुत तेज है और उससे भी तेज इसके दाँत हैं जो किसी को भी काटने से नहीं चूकते। इसकी मादा एक बार में एक बच्चा देती है।

स्फीनोडॉन

स्फीनोडॉन

केवल न्यूजीलैण्ड के कुछेक दूरस्थ द्वीपों के किनारे पाया जाने वाला यह जन्तु एक बड़ी छिपकली जैसा है। प्राचीन काल के विशाल रेप्टाइलों में छिपकली सरीखे ट्वाटारा (Tuatara) वर्ग का यह सच्चा प्रतीक है। यह अधिकतर भूमि में बिल बनाकर रहता है। इसके सिर पर शृंगावशेषों के रूप में खूँटियाँ सी उगी रहती हैं। विचित्र बात इसके शरीर की पसलियों में है। सामान्य पसलियों के अतिरिक्त पसलियों का एक ऐसा सैट भी रहता है जो पेट को ढँके रहता है किन्तु रीढ़ से जुड़ा नहीं होता। ट्वाटारा वर्ग के इस जन्तु को सर्वप्रथम इंग्लैण्ड के जीव-वैज्ञानिक ज्हान एडवर्ड ग्रे ने १८३१ में देखा था और उन्हीं ने इसे स्फीनोडॉन पन्क्टेटस *(Sphenodon Punctatus)* नाम दिया था। ज्हान ग्रे के पश्चात् डा. आल्बर्ट गुन्थर (Dr. Albert Gunther) ने और भी सूक्ष्म निरीक्षण के पश्चात् घोषित किया था कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणी देखने में भले ही छिपकली जैसा हो, शरीर-रचना से तो भिन्न वर्ग में ही रखा जा सकेगा। सामान्यगत दो आँखों के अतिरिक्त एक तीसरी आँख जो इसके सिर में है, वह वैज्ञानिकों के लिए काफी जिज्ञासा का विषय रही है। इसके शरीर का रंग मटीला हरा तथा कहीं-कहीं पीली चित्तियोंयुक्त होता है। इनमें २-२॥ फुट तक के विशालकाय स्फीनोडॉन भी पाये जाते हैं। यह प्राणी अधिकतर चींटियों, कीड़ों-मकोड़ों और पतंगों का आहार करता है। पालतू अवस्था में इन्हें रखने पर ये ४०-५० वर्ष तक सहज ही जीवित रह लेते हैं।

ओकापी

१८वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में मध्य पूर्वीय यूरोप के जंगलों में एक ऐसा कंकाला-वशेष पाकर लोग चकित रह गए जिसका काल-निर्धारण कम से कम छः करोड़ वर्ष पूर्व का आंका जाता था। सन् १९०० में सर हेरी ज्हान्सटन (Sir Harry Johnston) की भेंट कांगो के जंगलों में एक जीवित ओकापी से हो गई। जिराफ और हिरन के विचित्र मिश्रण सरीखे इस जन्तु के पिछले पुट्ठों और अगले पाँवों पर तो जेबरा जैसी पट्टियाँ हैं और सिर पर हिरन के सींग जैसे अवशेष के रूप में दो खूँटियाँ हैं। सींग की

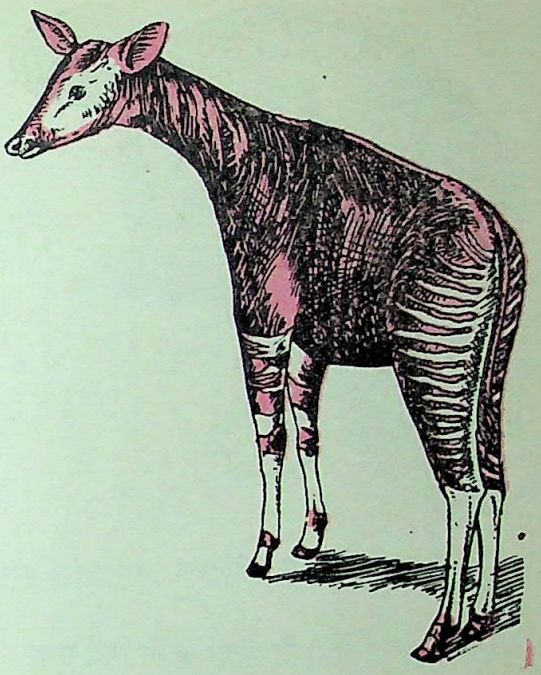

जिराफ और चीते के लक्षणोंयुक्त, ओकापी

वे खूँटियाँ नर प्राणी में अधिक स्पष्ट दिखती हैं। इसके कान बड़े और लम्बे होते हैं।

ओपोसम

इसका विस्तृत परिचय फरवरी १९६४ के प्रथम लेख के अन्तर्गत दिया जा चुका है।

नाटिलस

शंख-सीपी परिवार का यह जीव भी अत्यन्त प्राचीन माना जाता है। प्रशान्त और हिन्द महासागर में लगभग १५० फुट की गहराई इसका प्रमुख विचरण-क्षेत्र रहता है। यह जन्तु आक्टोपस और स्क्वीड का निकट सम्बन्धी है। अत्यन्त प्राचीन होने से इसकी संख्या अब घटती जा रही है। इसकी सीपी का खोल अनेक चक्रों तथा पर्दोंयुक्त कुण्डला-कार होता है। उसका प्रत्येक चक्र इसके जीवन का कुछ काल व्यतीत होने का स्थल और समय प्रदर्शित करता है। इसके मुख के अग्र भाग में लगभग ९० संस्पर्शक तन्तु रहते हैं। उनमें संभी जल अथवा वायु शोषण का कार्य नहीं करते। अधिकतर वे इसलिए होते हैं कि उनके द्वारा यह जन्तु किसी भी ठोस वस्तु को

शंख-परिवार की नाटिलस

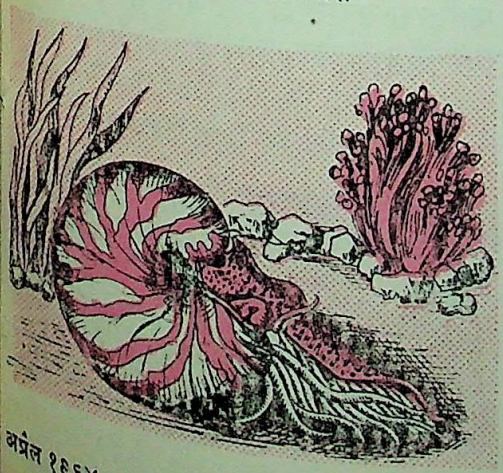

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

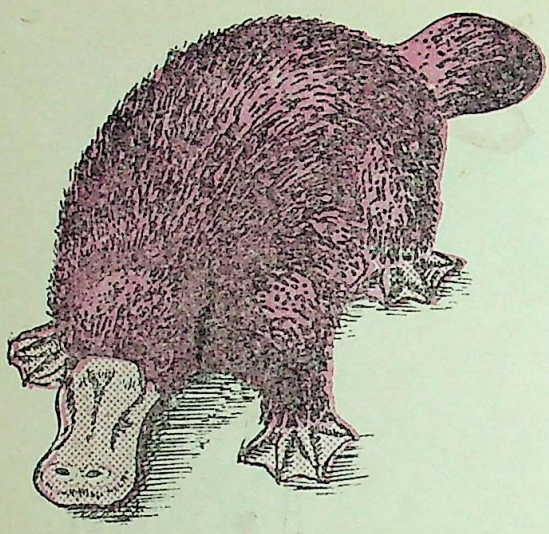

बत्तखचोंची, प्लैटिपस

कसकर पकड़ ले। इसकी मादा अपने गिर्द एक कागज जैसा अतिरिक्त खोल और बना लेती है जिसमें वह अपने अण्डे सुरक्षित रखती है। इसके विभिन्न कक्षयुक्त खोल तथा इसके परिचालन-कौशल ने ही पनडुब्बी, विशेषत: परमाणुविक पनडुब्बी के आविष्कार की प्रेरणा दी है।

प्लैटिपस

मोनोट्रेम (*monotreme*) वर्ग का यह जन्तु इस दृष्टि से विचित्र है कि स्तनपायी होने पर भी इसकी मादा अण्डे देती है। अण्डों से बच्चे निकल आने के बाद अवश्य वह मादा अन्य स्तनपायी प्राणियों की भाँति उन्हें स्तन-पोषण ही देती है। यह जन्तु आस्ट्रेलियावासी है और सर्वप्रथम इंग्लिश यात्रियों ने इसे जब देखा तब वे यही समझे कि किसी ने मजाक के रूप में एक रोयेंदार बिलकारी जन्तु के मुँह पर बत्तख की चोंच फिट कर दी है। इसलिए इसे बत्तखचोंची (duckbill) भी कहते हैं। यह जन्तु जलाशयों के निकट २५-३० फुट लम्बे बिल बनाकर रहता है। बिल के अन्तिम सिरे पर मादा अपना घोंसला रखती है। एक बार में १, २ या ३ तक भी अण्डे देती है। नर प्लेटिपस के पिछले पाँवों में पोले काँटे होते हैं जो उसकी विष-ग्रन्थियों से सम्बद्ध रहते हैं। इस वर्ग में केवल यही प्राणी ऐसा है जो जहरीला डंक भी मारता है।

लंगफिश

अनुमान है कि सृष्टि का आरम्भ मत्स्य-जगत से हुआ था। अत: मत्स्य-जगत सबसे प्राचीन प्राणी-जगत माना जाता है। उसी वर्ग में इस लंगफिश का काल-निर्धारण तीस करोड़ वर्ष से कम का नहीं किया जाता। जैसा कि इसका नाम है, यह विशेषता इसमें है कि इसके फेफड़े भी होते हैं जिनकी सहायता से पानी के बाहर भी सरलतापूर्वक रह लेती है। लगातार चार वर्ष तक भी इसे पानी के बाहर रखकर देखा गया है। वर्तमान में इसकी केवल तीन जातियाँ दक्षिण अमरीका, अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया में पायी जाती हैं। वर्षा के अभाव अर्थात् विकट सूखे दिनों में यह भूमि के अन्दर दबी जीवित पड़ी रहती है और तब इसके फेफड़े बहुत काम देते हैं। इनमें कूछ शरीरधारी भी होती हैं। एक आस्ट्रेलियन लंगफिश छ: फुट लम्बी और १०० पौण्ड वजन की तथा अफ्रीकी लंगफिश सात फुट लम्बी और १३० पौण्ड तक की पायी गयी है। ये स्वभावत: अत्यधिक गंदला पानी ही सुहाता और साफ पानी में इसका मानो दम घुटता है।

यों, करोड़ों वर्ष पूर्व के अपने वंशजों के आज भी मानो मशाल जलाये हुए ये जीवित फासिल्स सरीखे अनोखे जन्तु सृष्टि की अन्य विचित्रताओं में अनोखे ही तो रंग भरते हैं।

फेफड़े और पावोंयुक्त, लंगफिश मछली

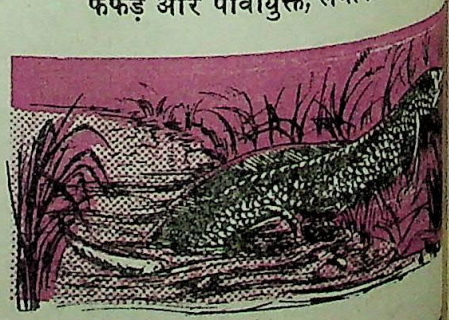

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीस मील गहरे गोताखोर

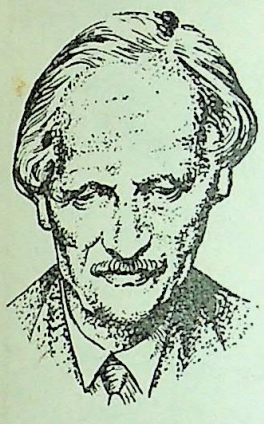

प्रो० आगस्टे पिकार्ड

भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव

कुछ व्यक्तियों की नस-नस में अनुसन्धान और खोज की प्रवृत्ति भरी रहती है। प्रोफेसर पिकार्ड इसी श्रेणी के अनुसन्धानक थे। जीवन-पर्यन्त आप तरह-तरह के खतरनाक अभियानों में ही जुटे रहे।

पिकार्ड का जन्म सन् १८८४ में स्विट्जरलैण्ड के बेसेल नगर में हुआ था। शिक्षा के उपरान्त बेल्जियम की ब्रुसेल्स यूनिवर्सिटी में आप प्रोफेसर नियुक्त हुए।

ऊर्ध्वाकाश के रहस्योद्घाटन में आपने महत्वपूर्ण योग दिया। वास्तव में इस क्षेत्र में पिकार्ड का नाम अमर हो चुका है। ऊर्ध्वाकाश अभियान के लिये प्रो. पिकार्ड ने ही सबसे पहले विज्ञान के नूतनतम साधनों का सहारा लिया। बात सन् १९३१ की है। अपने इस अभियान के लिये आपने एक वृहत्काय गुब्बारा बनाया जिसकी खोल पूरी तरह फूलने पर १०० फुट व्यास के गोले की शक्ल धारण कर सकती थी। उस गुब्बारे में थोड़ी ही हाइड्रोजन भरी गयी ताकि जब गुब्बारा ऊँचे आकाश में पहुँचे तो गैस के फैलने के लिये गुब्बारे के अन्दर उसे जगह मिल सके, वरना गुब्बारा फट जाता।

पिकार्ड ने इस बात का भी प्रबन्ध किया था कि गुब्बारे से ही रेशम की डोरियों के सहारे एक गोल पीपा लटकाया जा सके। वह पीपा एयरटाइट किया जा सकता था। उसमें मजबूत काँच की खिड़की भी लगी थी ताकि भीतर बैठे हुए व्यक्ति बाहर का दृश्य देख सकें।

प्रोफेसर पिकार्ड तथा उनके साथी डाक्टर किफर इस पीपे के अन्दर प्रविष्ट हुए और फिर प्रवेशद्वार बाहर से बन्द कर दिया गया। देखते-देखते गुब्बारा ऊपर उठा और कुछ ही देर में बादलों के ऊपर पहुँच गया—लगभग १० मील की ऊँचाई पर! पूरे १७ घण्टे उपरान्त गुब्बारा पुनः धरती पर उतरा। पिकार्ड ने इस प्रकार एक अभूतपूर्व रेकार्ड कायम कर दिया। उससे पूर्व कोई भी व्यक्ति १० मील की ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाया था! पीपे के अन्दर लगे वैज्ञानिक यंत्रों की मदद से पिकार्ड ने ऊर्ध्वाकाश के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी भी प्राप्त की।

दूसरे वर्ष पुनः पिकार्ड ने ऊर्ध्वाकाश अभियान का आयोजन किया। इस बार आप के साथ पीपे के अन्दर डा. मैक्स कोसिन्स बैठे। इस अभियान में गुब्बारा १०½ मील की ऊँचाई तक पहुँचा और १६ घण्टे बाद धरती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

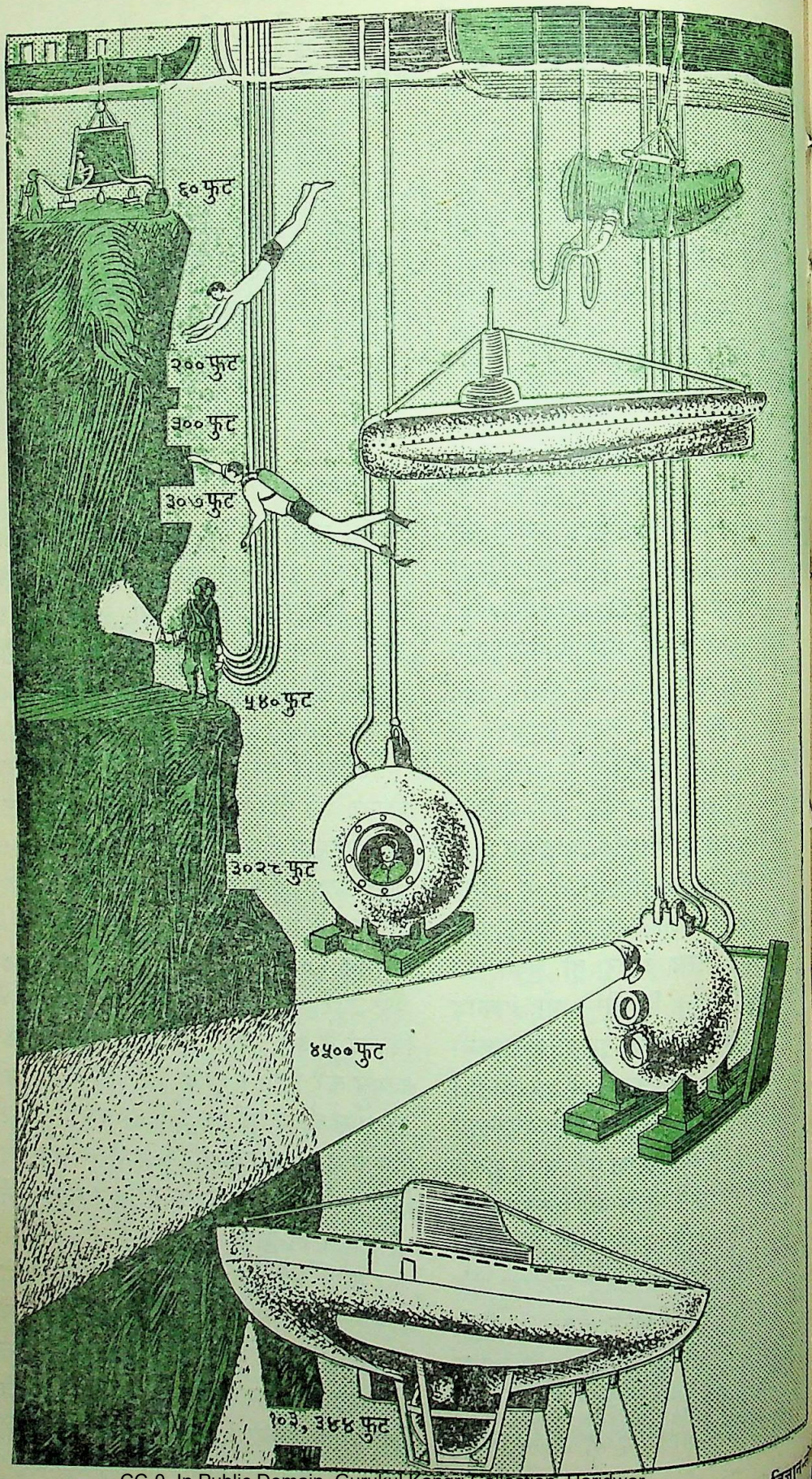

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

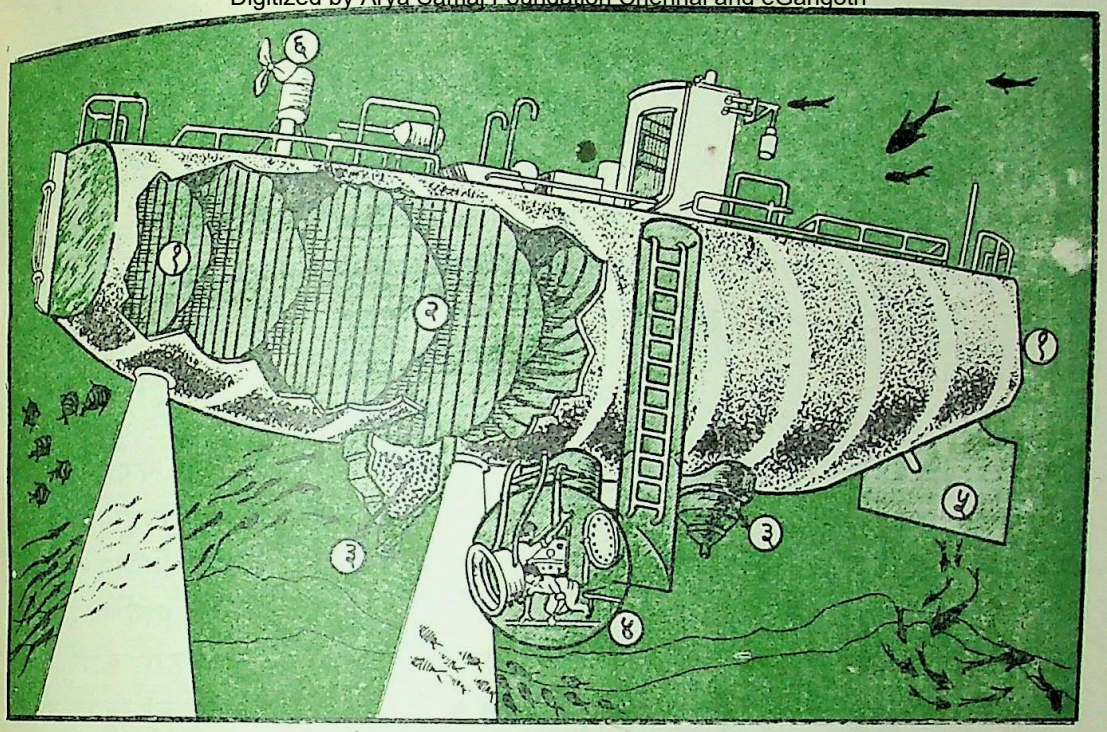

बैथिस्केप का भीतरी दृश्य—१. एयर चेम्बर, २. पैट्रौल भरे चेम्बर, ३. १० टन स्टीलभरे पात्र, ४. गोताखोर का केबिन, ५. स्टेबिलाइजर और ६. प्रॉपेलर

पर उतरा। इस अभियान में अन्तरिक्ष किरणों के अध्ययन के निमित्त विशेष यंत्र आदि पीपे के अन्दर रखे गये थे।

आकाश की ऊँचाइयों में प्रवेश करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त करने के उपरान्त पिकार्ड हाथ पर हाथ धरे बैठे नहीं रहे। आपने अतल जलराशि में डुबकी लगाकर वरुणलोक की झाँकी प्राप्त करने की योजना बनायी। इसके लिये उन्होंने एक खास किस्म की पनडुब्बी का निर्माण किया जिसे बेथीस्केफ का नाम दिया गया। वह पनडुब्बी इच्छानुसार पानी के अन्दर दाहिने-बायें, ऊपर-नीचे जा सकती थी। बेथीस्केफ में भाँति-भाँति के वैज्ञानिक यंत्र रखे गये थे तथा उसके एक सिरे पर तेज सर्चलाइट लगी थी ताकि उसकी रोशनी में जलराशि के गहन अन्धकार में जल-जीवों का निरीक्षण आसानी से किया जा सके। प्रारम्भिक असफलताओं के उपरान्त सन् १९५३ में भूमध्यसागर के तल में करीब पौने दो मील की गहराई तक पहुँचने में समर्थ हुए। उस अभियान में वे समुद्र के पेंदे तक पहुँच गये थे।

पिकार्ड का बेथीस्केफ मानो एक छोटी प्रयोगशाला थी। भीतर के कक्ष में ताप मापने के लिये थर्मामीटर, दबाव मापने के लिये बैरोमीटर, गहराई मापने के यंत्र, माइक्रोफोन तथा फिल्म केमरा आदि रखे गये थे। बेथीस्केफ के बन्द कक्ष के अन्दर ताप नियंत्रक भी रखा गया था ताकि भीतर बैठे हुए यात्री अतिशय ठण्ड से सिकुड़ न जायँ। पीपों में भरी आक्सीजन गैस भी साथ रखी गयी थी ताकि श्वास के लिए ताजी हवा बराबर मिलती रहे। दो मील की गहराई पर पानी का दाब भी असाधारण रूप से अधिक हो जाता है। अतः बेथीस्केफ की बाहरी दीवार ४ इंच मोटे इस्पात की बनायी गयी थी।

← **उत्तरोत्तर गहराइयों में उतरते हुए, सागर-तल अभियान की क्रमिक कहानी**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निस्सन्देह पिकार्ड ने समुद्र की गहराइयों में प्रवेश करने का एक अपूर्व साधन विज्ञान जगत के समक्ष प्रस्तुत किया है। उनकी इस महान सफलता से प्रेरित होकर अगले ही वर्ष फ्रान्स की जलसेना के अधिकारियों ने एक और बेथीस्केफ का निर्माण किया और उसकी सहायता से समुद्र में लगभग ढाई मील तक प्रवेश किया।

१९५० में पिकार्ड द्वारा आविष्कृत, दस टन भारी वह बेथीस्केफ देखने में एक पनडुब्बी जैसा ही था। अन्तर केवल यही था कि पनडुब्बी के आकार के अतिरिक्त प्रयोगशाला युक्त उसका निचला हिस्सा एक गोले के रूप में था। दोनों ओर विद्युत्चालित पंखे उसे नीचे उतरने में सहायता करते थे। सागरतल के निकट पहुँचने पर दो भारी केबुल दोनों ओर लटका दिए जाते थे ताकि वह यान तल की सतह से कुछ ऊपर ही टिका रहे और निरीक्षणकर्ता अपना कार्य सुचारु रूप से करता रहे। उस प्रारम्भिक बेथीस्केफ में उत्तरोत्तर सुधार किये जाते रहे। अन्ततः जनवरी १९६० में जेक्स पिकार्ड ने विश्व की अधिकतम सागरीय गहराई पश्चिमी प्रशान्त महासागर की मेरियाना खन्दक (Mariana Trench) में सात मील से भी अधिक ३५८०० फुट उतर कर अपना रिकार्ड स्थापित किया।

प्रोफेसर पिकार्ड उन साहसी व्यक्तियों में से थे जो सदैव ही ज्ञान-विज्ञान की प्राप्ति के लिये नयी दिशाएँ, नये मार्ग का दिग्दर्शन कराते हैं। पिकार्ड ने आकाश की ऊँचाइयों में प्रवेश किया तो सागर की गहराइयों को भी थाह ली।

हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए
हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. **जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३.००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

२. **वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३.००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

३. **प्रारम्भिक भौतिकी**—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३.५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

४. **प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २.००

५. **प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २.००

६. **सामान्य विज्ञान**—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६.२५

७. **सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५.००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ९ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणियों में आत्मनिर्भरता

कुमारी रेखा टण्डन

एक ओर तो हम मांसभक्षी (बिल्ली, कुत्ता समूह के) प्राणियों को तृण तथा पात-भक्षी (गाय, घोड़े, बकरी आदि) प्राणियों से अधिक शक्तिशाली मानते हैं और दूसरी ओर यह देखते हैं कि शिशु-अवस्था में स्थिति उलटी रहती है। उदाहरणार्थ बिल्ली का बच्चा आँख, कान, हाथ-पाँव से शिथिल, असहाय और कुछ दिनों तक माँ पर पूर्णतः निर्भर रहता है और बछड़ा तथा घोड़े, गधे का नन्हा शिशु पहले ही दिन स्वाश्रयी हो जाता है। वह कठिनता से घंटा, दो घंटा पराश्रित रहता है। तत्पश्चात् तो उसकी आत्मनिर्भरता ही उसकी सहायता को आती है। एक दिन पूरा होने से पहले ही वह अपनी माँ की टाँगों से लिपटता, उलझता, फुदकता चलता है और जहाँ मिली, वहीं घास चरता रहता है।

ऐसा क्यों ?

इसका उत्तर पाने के लिए हमें सृष्टि के आरम्भकाल में झाँकना पड़ेगा। लाखों वर्ष पूर्व उस काल में पृथ्वी पर स्थलीय भाग बहुत कम था। अधिकांश घने जंगल, गर्म दलदल और पानी का ही साम्राज्य था। इन घने जंगलों में दैत्याकार जलचर तथा थलचर प्राणी विचरते थे। उन्हीं में मांसाहारी तथा शाकाहारी भी थे। मांसाहारियों को अपना पेट भरने के लिए अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता था क्योंकि उन्हें चरे-चराये शाकाहारी प्राणी चाहे जब मिल जाते थे। कठिनाई शाकाहारी प्राणियों के लिए थी जिन्हें भोजन जुटाने के लिए जहाँ-तहाँ भटकना पड़ता था।

समय के साथ बीच-बीच में बड़े-बड़े भौगोलिक परिवर्तन होते रहे। अनेक बार ज्वालामुखियों ने मुँह खोले, धरती ने करवट बदली और फलतः जहां गड्ढे थे वहाँ पर्वत उभर आये और जहाँ समतल मैदान थे वहाँ सागर लहराने लगे। मैदानों में रहने वाले दूसरी चट्टानों पर पहुँच गये किन्तु वहाँ की सर्दी उन्हें अनुकूल न पड़ी और उन्हें पुनः घास के मैदानों की खोज में दूर-दूर तक बिखर जाना पड़ा। भटकते रहना ही उनके जीवन का क्रम बन गया क्योंकि एक क्षेत्र की घास समाप्त हो जाने पर दूसरे क्षेत्र में उन्हें जाना ही पड़ता था और मांसाहारी हिंसक पशुओं से भी जान बचाये फिरना पड़ता था। परिणाम स्पष्ट था कि उनके नन्हें शिशुओं को भी जन्म लेने के साथ ही माता-पिता के साथ चलना-फिरना पड़ता था। जान बचाने की फिक्र में और पेट भरने की फिराक में विचरने वाले उन माता पिताओं को इतनी फुर्सत कहाँ कि बच्चों को लादे-लादे फिरें ? अतः असहाय पड़े रहकर किसी का ग्रास बन जाने की अपेक्षा वे नन्हें प्राणी अपनी क्षमताभर माता-पिता का साथ निभा ही लेते थे।

इसका दूसरा पहलू भी है

उपरोक्त कथन से हम कदाचित् यह अनुमान लगाने को प्रेरित हों कि घोड़े का शिशु बिल्ली के बच्चे के बच्चे से अधिक समर्थ और सूझ-बूझ युक्त होना चाहिए। अवश्य,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

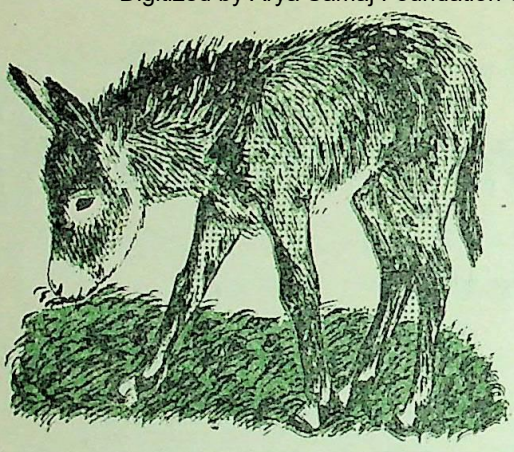

यह नवजात गर्दभ-शिशु है। पहले ही दिन से यह अपने पाँवों खड़ा होना सीख कर आता है

इस अनुमान का दूसरा पहलू भी विचाराधीन है। यह माना कि घोड़े का बच्चा जिन्दगी जीने की शुरुआत बिल्ली के बच्चे की अपेक्षा बहुत पहले कर लेता है किन्तु उसके प्रारम्भिक जीवन का अधिकांश भाग्य और परिस्थिति पर बीतता है ! इसके विपरीत, बिल्ली के बच्चे को सयाना हो जाने तक जो मातृ-शिक्षा मिलती है वह उसकी मूल सम्पत्ति होती है। जब तक माँ कहती है कि 'जाओ, कमा कर खाओ' तब तक वह स्वयं को काफी तैयार कर चुका होता है और अपनी व्यवसायिक सूझ-बूझ से शिकार प्रवृत्ति में लग जाता है। यों उसको जीवन प्रारम्भ करने के लिए पाथेय भली प्रकार मिल जाता है जबकि घोड़े के बच्चे को बिना पाथेय ही शुरुआत कर देनी पड़ती है।

अपवाद इसमें भी है

खरगोश का उदाहरण अपवादस्वरूप किया जा सकता है। एक खरगोश वे होते हैं (rabbit) जो नदी-नालों के सहारे, पेड़ की खोहों में छिपे जीवन व्यतीत करते हैं और दूसरे वे होते हैं (hare) जो जंगलों में विचरते हैं। अतः स्वभावानुसार जबकि rabbit का शिशु, जन्म के समय बन्द आँखों का और असहाय होता है। नन्हा hare खुली आँखें और खुले दिलोदिमाग से पैदा होते फुदकने लगता है। उसे यह डर भी रहता है कि किसी झाड़ी में से कोई लोमड़ या नीले अम्बर से चील ही उस पर झपट न मार बैठे !

रेप्टाइल्स भी अधिकतर आत्मनिर्भर

आत्मनिर्भरता के अनेक मनोरंजक उदाहरण रेप्टाइल्स में भी मिलते हैं। विकासक्रम की दृष्टि से रेप्टाइल्स को उन मूल स्थान पर माना गया है जहाँ पक्षियों तथा थलजीवी जन्तुओं का विभाजन हुआ है। यह भी पाया जाता है कि थलजीवियों की अपेक्षा पक्षियों में रेप्टाइल के लक्षण अधिक उतरे हैं। सृष्टि के आदि काल में कैसे-कैसे रेप्टाइल्स रहे होंगे इसका कुछ अनुमान जीवाश्मों (fossils) से तो होता ही है, आस्ट्रेलिया तथा न्यूगिनी में आज तक पाये जाने वाले प्लेटिपस, चींटी खोर तथा विशाल बड़ी छिपकलियाँ या कछुए जैसे विचित्र जन्तुओं से भी होता है। रेप्टाइल्स की सामान्य जीवनप्रणाली पर हम ध्यान देते हैं तब यह समझ में आ जाता है कि अनेक प्रकार के पक्षी भी क्यों अपने अण्डे बच्चों को अरक्षित छोड़ जाते हैं। हम जानते हैं कि मादा अजगर अपने शरीर की कुण्डली बनाकर और मगर-मच्छ सूखे पत्तों का ढेर बनाकर उनकी गर्मी से अपने अण्डों को सेते रहते हैं किन्तु तैयार हो जाने पर नवजात शिशुओं से नाता तोड़ लेते हैं। मादा कछुए तो अपने अण्डों पर गर्म रेत ढँककर कहीं लौटने के लिये मुँह फेर लेती है और बच्चों पर ही छोड़ जाती है कि वे समर्थ हो तो ठीक अन्यथा मिट जाएँ। अतः प्रकृति ने उन्हें यह सुविधा अवश्य दे रखी है कि जिन उष्ण वायु के क्षेत्रों में ये रहते बसते हैं वहाँ कीट, कीड़े मकोड़े आदि प्रचुरता से पनपते फूलते हैं ताकि उन नन्हें रेप्टाइल्स शिशुओं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

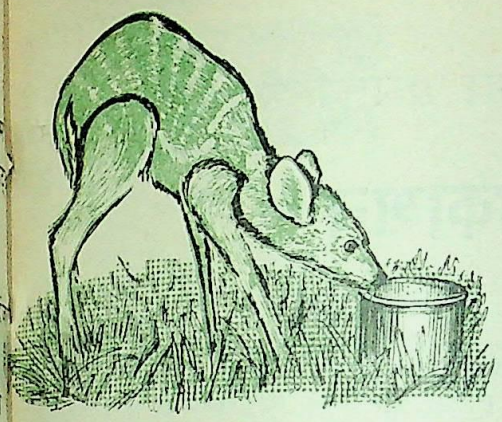

यह मृगशावक अपना पेट भरने के लिए आत्मनिर्भर है और किसी की भी सहायता का मोहताज नहीं

पैदा होते ही पेट भरने में कठिनाई का सामना न करना पड़े।

पक्षीगण स्वाश्रयी भी, पराश्रयी भी

यों तो पक्षियों में आत्मनिर्भरता अधिक पायी जाती है किन्तु उच्च श्रेणी के पक्षियों में उलटी स्थिति है। हमिंगबर्ड जैसे सुरीले, पालतू कूकने वाले पक्षी, बोलने वाले पिजड़े में बन्द तोता मैना, और शिकारप्रिय उल्लू, कौए जैसे पक्षियों के नन्हें ठीक वैसे ही आँख कान मूँदे, हाथ पाँवों से लाचार होते हैं, जैसे उच्चतम प्राणी मानव, वानर तथा सिंह के। इन्हें अपना शैशवकाल का बड़ा हिस्सा माँ के संरक्षण में बिताना पड़ता है।

मुक्त गगन के स्वच्छन्द प्राणी जिन्हें बस्तियों के बन्धन से दूर, जंगल में ही विचरना पसन्द है, उनका जीवन कठोर तथा परिश्रमी बन जाता है और उनके शिशु अपने पाँवों पर खड़े होना शुरू कर देते हैं। यह इसलिए और भी आवश्यक है कि खुले जंगल में उनके घोंसले खुले और अरक्षित होते हैं। प्रतिपल यह सम्भावना रहती है कि चाहे कोई उठा ले जाए। अतः बगुले, हंसावर, शुर्तुमुर्ग, सारस आदि के नन्हें बच्चे पैदा होते ही चल निकलते हैं और किंचित भी संकट प्रतीत होने पर छिप जाते हैं।

यह जल्दबाजी, जान की गाहक भी

जल्दी आत्मनिर्भर हो जाने की मानो होड़ लगी हुई है, किन्तु यह जल्दबाजी किस प्रकार जानलेवा बन जाती है इसका एक रोचक उदाहरण दिया जा सकता है। आस्ट्रेलिया का ब्रशटर्की (Brush Turkey) वह बड़ा मुर्ग है जो अपना वृहद् घोंसला बनाने के लिए प्रसिद्ध है। १०-२० गज के घेरे का, ५-६ फुट ऊँचा और ४-५ टन वजन का इसका, घोंसला एक विश्व-वैचित्र्य है। ऋतुकाल के आरम्भ में यह सूखे पत्तों, तिनकों तथा कूड़े को अपनी पिछली टाँगों से उछाल-उछालकर ऊँचे ढेरनुमा घोंसला बना देता है। उसमें इसकी ८-१० मादाएँ अपने अण्डे दे देती हैं। वे अण्डे उस ढेर की गर्मी में अन्दर ही अन्दर तैयार होते रहते हैं। मादाएँ तथा नरपक्षी होने वाली सन्तानों को उनकी आत्मनिर्भरता के भरोसे भाग्य पर छोड़ जाते हैं। समय पर नन्हे शिशु फुदकते इधर-उधर मुँह फाड़ना शुरू भी कर देते है। किन्तु इसका एक उदास पहलू यह है कि उस क्षेत्र में रहने वाली बड़ी छिपकलियाँ इस रहस्य को अच्छी तरह जानती हैं और वे अपने भी अण्डे इन्हीं के ढेर में छोड़ जाती हैं। इस प्रकार वे घोंसला बनाने की झंझट से भी छुटकारा पा जाती हैं। साथ ही उनके शिशुओं के बने-बनाये शिकार मिल जाते हैं। अण्डों से बाहर निकलने की दौड़ में वे मुर्ग-बच्चे पिछड़ जाते हैं। बाहर आने पर अपने माता-पिता से अरक्षित तथा आत्मनिर्भरता के नशे में भूले हुए ज्योंही वे बाहर फुदक निकलते हैं त्योंही छिपकली के बच्चे इन्हें चट करते जाते हैं। यों, ऐसी बेहिसाब आत्मनिर्भरता काफी महंगी पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामबिहारीसिंह तोमर द्वारा लिखित

नवीन प्रकाशन

एम.ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान
(Social Psychology)

२. ग्रामीण समाजशास्त्र
(Rural Sociology)

३. नागरिक समाजशास्त्र
(Urban Sociology)

४. व्यक्तित्व
(Personality)

५. हिन्दू विवाह एवं परिवार की समस्याएँ
(Problems of Hindu Marriage and Family)

६. सामान्य समाजशास्त्र : समाज संस्कृति, तथा व्यक्तित्व
(General Sociology : Society, Culture and Personality)

७. सामाजिक सिद्धान्त : व्यक्तित्व का समाजशास्त्रीय अध्ययन
(Social Theory : Sociological Study of Personality)

८. सामाजिक सूक्ष्मदर्शी : सामाजिक व्यक्तित्व अध्ययन प्रणाली
(Social Microscope : Social Case Study Technique)

बी. ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान परिचय

इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए

१. माध्यमिक समाजशास्त्र

२. भारतीय सामाजिक संगठन

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब

प्यारे बच्चो !

यह अप्रैल अंक नयी सजधज से भरपूर, तुम्हारे हाथ में रख रही हूँ। इस महीने में तुम में से बहुत से भाई-बहिन तो अपनी फाइनल परीक्षाओं के भार से मुक्त हो चुके होंगे। उन अवकाश के दिनों में यह नया अंक उन्हें नयी ताजगी देगा। नवोत्साह से इस अंक को पढ़ कर तुम जो नये सुझाव-सम्मतियां दोगे, उन्हें पाकर मुझे प्रसन्नता होगी।

विगत मार्च अंक का मुखपृष्ठ और तत्सम्बन्धित उसी अंक का प्रथम लेख **अंगूर** इस बार तुम्हारे प्रायः प्रत्येक ही पत्र में सराहा गया है। फलों के विषय में ऐसा ही रोचक लेख देते रहने का विशेष आग्रह करने वालों में हैं—१. केवलकृष्ण (४७२६) पिलाणी, २. कु० मंजु गुप्ता (७२९०) लखनऊ और ३. शांतिलाल सरणोत (६४७४) उदयपुर। जबलपुर की कुमारी शीला गोयल ने **पाइथागोरस** और **लेसर-किरणें** लेख अधिक पसन्द किए हैं। नरेश मजीठिया (७५५६) ने अमृतसर से लिखा है कि **आग, पानी में लगाते हैं** और **प्राणियों का स्वर-संगीत** लेखों ने नयी जानकारी दी है। अन्तिम उल्लेखनीय पत्र नेतरहाट से अनिरुद्धराय (८१०२) का है जिसमें लिखा है कि **चन्दा के देश में** और **धूल ही धूल** जैसे विषय बहुचर्चित होने पर भी इनमें लेखकों ने बिलकुल ही नये दृष्टिकोण दिए हैं। अतः ये दोनों विशेषतः रोचक हैं।

पिछली बार सूचनाओं को दोहराते रहने के बावजूद इस बार भी प्रतियोगिता-पूर्तियों में बगैर कूपन की कई पूर्तियां ऐसी थीं जो पुरस्कार-सूची में आ सकती थीं। जितना मनोयोग और परिश्रम प्रश्नों को हल करने में लगाते हो, उसका शतांश ही तो कूपन संलग्न करने की याद रखने में जरूरी है !

तुम्हारे पत्रों की उत्सुक प्रतीक्षा में,

तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ४९ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

रणजीतसिंह (४७२४) नई दिल्ली, अशोककुमार श्रीवास्तव (१०५६२) दिल्ली, हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१) लखनऊ, संतकुमार जायसवाल (१०७८९) इलाहाबाद, आलोकअदावाल (१०७९०) इलाहाबाद, अर्जुन मेहरा (११२१६) लखनऊ।

द्वितीय पुरस्कार

सुधीरकुमार राठौर (१६१९) आगरा, निरंजन प्रकाश माथुर (३६१६) पुष्कर, रवीन्द्रकुमार मेहरा (३८४७) अजमेर, शैलेन्द्रनाथ पाराशर (४७१८) आगरा, जोगेश्वरप्रसाद शर्मा (५३३९) ललितपुर, सुरेशचन्द्र धानुका (१०२१३) बांदा, मुकुन्द जोशी (१०२६८) वाराणसी, महेन्द्रपाल वार्ष्णेय (१०७७४) इलाहाबाद, सत्यपाल (१०८३०) अहमदाबाद, सुभाषचन्द्र अग्रवाल (१०८९०) बम्बई, राजेन्द्रप्रसाद वर्मा (११९७०) कुल्टी।

तृतीय पुरस्कार

भुवनेश्वर गुप्ता (९१४) आगरा, कृष्णनन्दन शर्मा (६३८१) नेतरहाट, पुरुषोत्तमकुमार (७३४१) जगदलपुर, ललितकुमार (७७३३) जगदलपुर, प्रवीणचन्द्र शाह (९७६०) गोंदिया, अशोककुमार (९९९१) मथुरा, कुमारी शीला गोयल (१००३६) जबलपुर, सतीशप्रसाद अग्रवाल (१०५६३) समस्तीपुर, अजमतअली (१०७३४) जगदलपुर, सुभाष जोशी (१०९६९) इन्दौर।

कूपन : प्रतियोगिता संख्या ५१

नाम.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

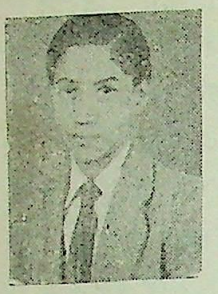

सोभागमल
(स. सं. ८८२५)

शिवेशदत्त
(स. सं. ८९९९)

राविनकुमार
(स. सं. ९२६२)

सुनीलकुमार
(स. सं. ९२६५)

८१२० कु. मंजुलरानी (१०) मुरादाबाद, २१ अरविन्दकुमार (१३) मुरादाबाद, २२ अनिलकुमार (९) मुरादाबाद, २३ सिमरनसिंह (१३) जमशेदपुर, २४ मोहनसिंह (१७) जमशेदपुर, २५ अरुणकुमार (१५) टीकमगढ़, २६ नारायणप्रसाद (१६) वैरगनियाँ, २७ उदयशंकर (११) बाली, २८ यदुवंशकुमार (१४) हीनू, २९ ओमप्रकाश (१४) जयपुर, ३० ईस्माइल मुसेजी (१६) मोसाली, ३१ सत्यनारायण (१३) भागलपुर, ३२ रामकिशोर (२३) गोंदिया, ३३ जगजीतसिंह (१८) बम्बई, ३४ अभिमन्यु (१४) झराडापुर, ३५ प्रमोदकुमार (१३) अल्मोड़ा, ३६ कु. सुषमा (१४) दिल्ली, ३७ ओमप्रकाश (१५) सारण, ३८ कृष्ण गोपाल (१५) कटनी, ३९ अंजनीकुमार (१३) लहेरिया सराय, ४० रामानन्द (१६) रायपुर, ४१ अम्बीकाप्रसाद (१६) रायगढ़, ४२ विपिनबिहारी (१५) गया, ४३ जेठीलाल (१२) भाभर, ४४ अशोककुमार (१२) जमशेदपुर, ४५ पुखराज (१५) गंजलाइन, ४६ कैलाशमल (१४) नागौर, ४७ लटोरीप्रसाद (१३) कानपुर, ४८ घनश्यामदास (१५) इलाहाबाद, ४९ सुशीलासागर (१२) लुधियाना, ५० अर्जुनपाल (१६) निंगनी, ५१ श्यामसुन्दर (१३) कोतमा, ५२ उरवीन्द्रसिंह (१५) भीलवाड़ा, ५३ शेखयाकूब (१२) बैतूल, ५४ आर. सी. सोनी (१५) सोजातसिटी, ५५ कु. विजय (१४) बीकानेर, ५६ ब्रजनिश (२५) जुनागाम, ४७ चन्द्रमोहन (१७) चाईबासा, ५८ सुरेशचन्द्र (१६) पटना, ५९ गिरीशकुमार (१२) कलकत्ता, ६० शिवनन्द (१३) फारबिसगंज, ६१ रजनीकांत (१६) अलिराजपुर, ६२ राजेश (१३) हजारीबाग, ६३ वीरेन्द्र कुमार (१४) बिलासपुर, ६४ राजेशकुमार (१६) सतना, ६५ कृष्णचरण (१६) हजारीबाग, ६६ चन्दन (१८) बैतूल, ६७ जितेन्द्र (९) अलीगढ़, ६८ अख्तरअली (१३) मटलू, ६९ राजवंशमणि (१३) पंचरूखी, ७० कैलाशचन्द्र (१२) रतलाम, ७१ राकेशकुमार (१०) इलाहाबाद, ७२ चतुर्भुज (१७) चूरू, ७३ दिगम्बरराम (१५) रांची, ७४ नरोत्तम (१५) सिरसा, ७५ आनन्दकुमार (१८) पिथौरागढ़, ७६ सुरेन्द्रप्रसाद (१५) महथी, ७७ राजकुमार (१३) बदवासी, ७८ भगवतीप्रसाद (१५) चाईबासा, ७९ कु. मंजू (११) इलाहाबाद, ८० निरमलकुमार (१८) चूरू, ८१ सुमनदेव (१३) चूरू, ८२ रविवतरा (१४) रोहतक, ८३ अरुणविष्णु (१६) लश्कर, ८४ कमलनयन (१७) चूरू, ८५ राजकिशोर (१८) कलकत्ता, ८६ राजनीतिप्रसाद (१७) जमशेदपुर, ८७ रमेशकुमार (१५) इन्दौर, ८८ अरुणकुमार (१२) चित्तौड़गढ़, ८९ महेन्द्रकुमार (१३) चित्तौड़गढ़, ९० इन्द्रमोहनप्रसाद (१४) सियाडीह, ९१ रामलक्ष्मण (१६) मोहिउद्दीनपुर, ९२ देवदास (१५) नागपुर, ९३ वेदप्रकाश (१५) लुधियाना, ९४ पंखरासियुस (२०) कोरबा, ९५ सुभाषचन्द्र (१४) बुलन्दशहर, ९६ लेखराम (१८) जाजंग, ९७ नन्दलाल (१५) करनाल, ९८ ओमप्रकाश (१७) करनाल, ९९ प्रभातकुमार (१६) मुरादाबाद, ८२०० धर्मवीर (१६) आगरा, १ कु. हिरनमोय (१६) कदमा, २ वीरेन्द्रकुमार (१६) नई दिल्ली, ३ विष्णुकांत (१३) लखनऊ, ४ सूर्यकान्त (१७) लखनऊ, ५ मिश्रीलाल (१७) लखनौर, ६ चन्द्रबिहारीलाल (१४) मन्दसौर, ७ आशुतोष (१५) दिल्ली, ८ रोबीन (१३) होशंगाबाद, ९ कैलाशचन्द्र (१६) खरगोन, १० राजकुमार (१५) नागपुर, ११ देवेन्द्रकुमार (१३) मदनपुर, १२ दामुराम (१७) जगन्नाथपुर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३ कामताप्रसाद (१५) सीकर, १४ कालीचरण (१९) अलीगढ़, १५ विनोदकुमार (१३) ललितपुर, १६ प्रेमवन्त (१६) खनलामपुरा, १७ पी. पार्थ सरची (१२) जमशेदपुर, १८ सुनीताप्रसाद (१०) जमशेदपुर, १९ हरिश्चन्द्र (१८) पेण्डरा, २० ज्वालाप्रसाद (१८) थानेसर, २१ अनिलकुमार (१०) रामपुरा, २२ भूपेन्द्रकुमार (१५) शारदाग्राम, २२ प्रतापमल (१४) नागौर, २४ बल्देवराज (१३) रोहानाकलां, २५ सुशीलकुमार (१५) मेरठ, २६ रमेशकुमार (१४) टीकमगढ़, २७ बीरचन्द्र (१५) पेण्डरा, २८ पुरषोत्तमदास (१८) फर्रुखाबाद, २९ विष्णुभगवान (१३) अछनेरा, ३० नरेन्द्र कुमार (२३) नई दिल्ली, ३१ सुभाषचन्द्र (१८) आगरा, ३२ कु. मंजू (१३) आगरा, ३३ जयनारायण (१५) दूधवाखारा, ३४ जयन्ति लाल (१७) रतलाम, ३५ कु. शशिकान्ता (१४) आगरा, ३६ हेमेन्द्रसिंह (११) दिल्ली, ३७ रवीन्द्रनाथ (१५) भीलवाड़ा, ३८ विनोदकुमार (१५) झरिया, ३९ उपेन्द्रकुमार (१३) काशीपुर, ४० ओंकारनाथ (१७) मसकनवां बाजार, ४१ रतनकुमार (१०) गोरखपुर, ४२ चतरसिंह (१७) औरंगाबाद, ४३ महाराजकुमार (१६) लखनऊ, ४४ जगदीशचन्द्र (१३) झांसी, ४५ दिनेशचन्द्र (११) पिथौरागढ़, ४६ सुशीलचन्द्र (१२) मैनपुरी, ४७ कु. मधुर (१४) मैनपुरी, ४८ कु. उमारानी (१६) एटा, ४९ एस. के. दास (१६) काटजूरोड, ५० प्रदीपकुमार (१६) मेहसाना, ५१ रवीन्द्र कुमार (१७) आगरा, ५२ देशमुख (२०) सहारनपुर, ५३ कु. लक्ष्मी (१३) नई दिल्ली, ५४ ललितकुमार (१८) डिबरूगढ़, ५५ कु. शीलारानी (१३) रायपुर, ५६ कु. आजाद (१४) इन्दौर, ५७ एस. एन. सिंह (१७) कोडाण्डा, ५८ गोविन्दराम (१८) बीकानेर, ५९ विनोदकुमार (७) ऋषीकेश, ६० अर्जुनकुमार (१२) पीरबठौना, ६१ कु. शशिबाला (९) देहरादून, ६२ जगदीशप्रसाद (१८) मलियाना, ६३ कु. मधुबाला (११) देहरादून, ६४ खुशीकान्त (१४) भाटापारा, ६५ प्रमोदकुमार (१६) अल्मोड़ा, ६६ मीराकुमारी (१४) ऋषिकेश, ६७ मुकेशकुमार (८) सागर, ६८ कु. बिमलाबाई (१६) सागर, ६९ सुभाषचन्द्र (१३) सागर, ७० विनोद (१६) अल्मोड़ा, ७१ अशरफहयात (११) दुर्ग, ७२ सज्जनकुमार (१४) वाराणसी, ७३ विजयसिंह (१३) फारबिसगंज, ७४ प्रदीपकुमार (१७) इन्दौर, ७५ हरदयाल (१८) रोहतक, ७६ कु. चन्द्रकला (१२) माधवगंज, ७७ रमेशचन्द्र (१६) भाटापारा, ७८ राजेशचन्द्र (९) इलाहाबाद, ७९ दयाशंकर (१५) सरदारशहर, ८० हिम्मतलाल (१९) रायगढ़, ८१ कु. रेखा (१०) कलकत्ता, ८२ सोमेन्द्रकुमार (११) उज्जैन, ८३ सुधीरकुमार (१७) लश्कर, ८४ सोहनलाल (२०) लुधियाना, ८५ मोनाणी रमेशचन्द्र (१५) कृष्णपरा, ८६ कु. सरोज (१५) जटवारा, ८७ नटवरलाल (१८) जयपुर, ८८ विश्वनाथ (१५) बरौनी जंकशन, ८९ जयप्रकाश (१४) कतराबाजार, ९० गुलाबराव (१४) हिवरखेड़, ९१ अशोककुमार (१२) गोण्डा, ९२ कु. वीणा (१४) पूर्णियाँ, ९३ गोवर्धन (१६) उदयपुर, ९४ वासुदेव (१५) हिवरखेड़, ९५ निर्मलकुमार (१४) बरौनी जंकशन ९६ दिलीपकुमार (११) सबौर, ९७ शिशिरकुमार (१३) सबौर, ९८ महाबीरप्रसाद (१७) रायगढ़, ९९ सुभाषचन्द्र (१५) दिल्ली, ८३०० विष्णुकुमार (१५) मनासा, १ राजकुमार (१५) भाटापारा, २ अशोककुमार (९) पूर्णियां, ३ सागरभाई (१७) कड़ा, ४ सुरेशकुमार (१७) वर्धा, ५ महेन्द्रकुमार (१५) पुनपुन, ६ कल्लूप्रसाद (१४) आमला, ७ विद्याभूषण (१३) नई दिल्ली, ८ मोहनलाल (१३) रतनगढ़, ९ रवीन्द्रनाथ (१५) गया।

नन्दकुमार
(स. सं. ९६३४)

अश्विनीकुमार
(स. सं. ९७६२)

कामेश्वरप्रसाद
(स. सं. १००११)

ओमप्रकाश
(स. सं. १०१९७)

नारायण
(स. सं. १०३८८)

अरुणप्रकाश
(स. सं. १०४८२)

बलवीर
(स. सं. १०७९३)

मुरारीलाल
(स. सं. १०९७७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५१

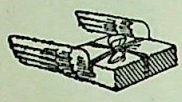

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्त
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्त
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्त

अन्तिम तिथि : ३० अप्रै

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग ले का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिख पृष्ठ ५९ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५१ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३० अप्रै तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५१ के प्रश्न

१. ऊँचे भवनों, वृक्षों आदि की छाया पर से केवल एक छड़ी द्वारा उनकी ऊँचाई मापने की शुद्ध विधि सर्वप्रथम किसने कब प्रस्तुत की ?

२. क्यूरी-माप क्या मापने के लिए है ? व्याख्या सहित उत्तर दीजिए।

३. एक ही पंक्ति में कुछ मकान खड़े हैं। प्रत्येक दूसरे मकान में वायरलैस, तीसरे में टेलीविजन और पाँचवें में रेफ्रीजरेटर है। पहले मकान में कुछ भी नहीं और अन्तिम में तीनों हैं। कुल मकान कितने हैं ?

४. रक्तदान के लिए किस समूह के रक्तयुक्त व्यक्ति को सर्वमान्य दाता कहेंगे ?

५. भूमिगत कन्दराओं में केल्शियम-निर्मित ऊपर से नीचे लटकने वाले शंकुओं को अंग्रेजी में क्या कहते हैं ?

६. मछली पकड़ने में मनुष्य के सहायक एक पक्षी, एक स्तनपायी तथा एक मछली का नाम बताओ ?

७. सामान्य धातु निर्मित विद्युतचालक का प्रतिरोधन ताप के समानुपाती बढ़ता है। इसके विपरीत, ताप बढ़ने के साथ-साथ प्रतिरोधन घटने वाले चालक को क्या कहेंगे ? ऐसे चालक किन धातुओं के बनाये जाते हैं ?

८. उत्तर ध्रुव की सर्वप्रथम हिमगत-यात्रा किस नवनिर्मित पनडुब्बी में, किस यात्री ने कब सम्पन्न की थी ?

९. पूर्ण सूर्यग्रहण पृथ्वी पर कितने विस्तार में दिखायी दे सकता है ? पिछला पूर्ण सूर्यग्रहण कब और कहाँ पड़ा था ?

१०. प्रयोगशाला में बैठे ही बैठे किस वैज्ञानिक ने, किस वर्ष पृथ्वी का भार ज्ञात किया था ?

प्रतियोगिता संख्या ४९ के प्रश्नों के उत्तर

१. सूर्य से ८ मिनट और चन्द्र से १·२ सेकण्ड।

२. हेनरी डी विक ने १९६२ में।

३. $\frac{C}{5} = \frac{F-32}{9}$

४. कहीं से नहीं; पुष्पों से तो वे केवल मधु और पराग एकत्र करती हैं और मोम स्वयं ही बनाती हैं।

५. ताँबा ७५%, टिन १०%, जस्ता १०% और सीसा ५%।

६. देवदार के वृक्ष पर।

७. दक्षिण अमरीका स्थित, कोस्टा रीका (Costa Rica) में माउण्ट इराजू (Mt. Ira के शिखर से।

८. सबसे लम्बे दो पाँवों के सिरों पर।

९. किप्स उपकरण (Kipp's Appara द्वारा। इसमें गैस निर्धारित दाब पर संचित है और ज्यों-ज्यों आवश्यकता पड़ती है, इसमें उत्पादित होती रहती है।

१०. ५५००° F तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी कलम से—

ये पवनगामी ट्रेनें

शिम्भूशरण (स. सं. १५०४)

आज का मानव हवा से बातें कर रहा है। कछुए की चाल चलना उसे गवारा नहीं। २५-३० मील की गति से चलने वाली फटीचर ट्रेनों की ओर वह आँख भी उठाकर नहीं देखता। यदि जेब के भार ने साथ दिया तो हवाई जहाज को पहले चुनता है। वह न मिला तो तेजदम मोटरकार को पकड़ता है और उसकी भी सुविधा न हुई तो तीव्रगामी मेल ट्रेन का सहारा ढूँढ़ता है। भारत में तो ३५-४० मी. प्र. घ. की मेल ट्रेन को काफी तेज समझा जाता है और विद्युत्-ट्रेन 'डेक्कन क्वीन' जो कुछ फासले तक ६० का वेग भी दिखा देती है, 'उड़ती ट्रेन' कही जाती है। तीव्र से तीव्रतर और तीव्रतम की ओर तीव्रता से बढ़ती जाती हमारी यह रुचि निश्चय ही समय-मूल्यांकन के प्रति हमारी जागरूकता दर्शाती है। वायुयात्रा तो अधिक खर्चीली होने से जनसाधारण की लोकप्रियता नहीं प्राप्त कर पा रही किन्तु कारयात्रा सड़कों की दुर्दशा, संकीर्णता और घोर व्यस्तता के कारण तीव्र-गामी होने में प्रायः ही बाधाएँ अनुभव करती रहती है। विवशतः पुन रेलयात्रा को बड़ी अनचाहत से अपनाना पड़ता है।

ट्रेनयात्रा में क्रान्ति

पश्चिम जर्मनी ने इस दिशा में एक नया ही मोड़ लेकर नयी क्रान्ति प्रस्तुत की है। वहाँ की तीव्रगामी ट्रेनों को विमान कम्पनियाँ प्रबल प्रतिद्वन्द्वी समझती हैं और प्रतियोगिता की

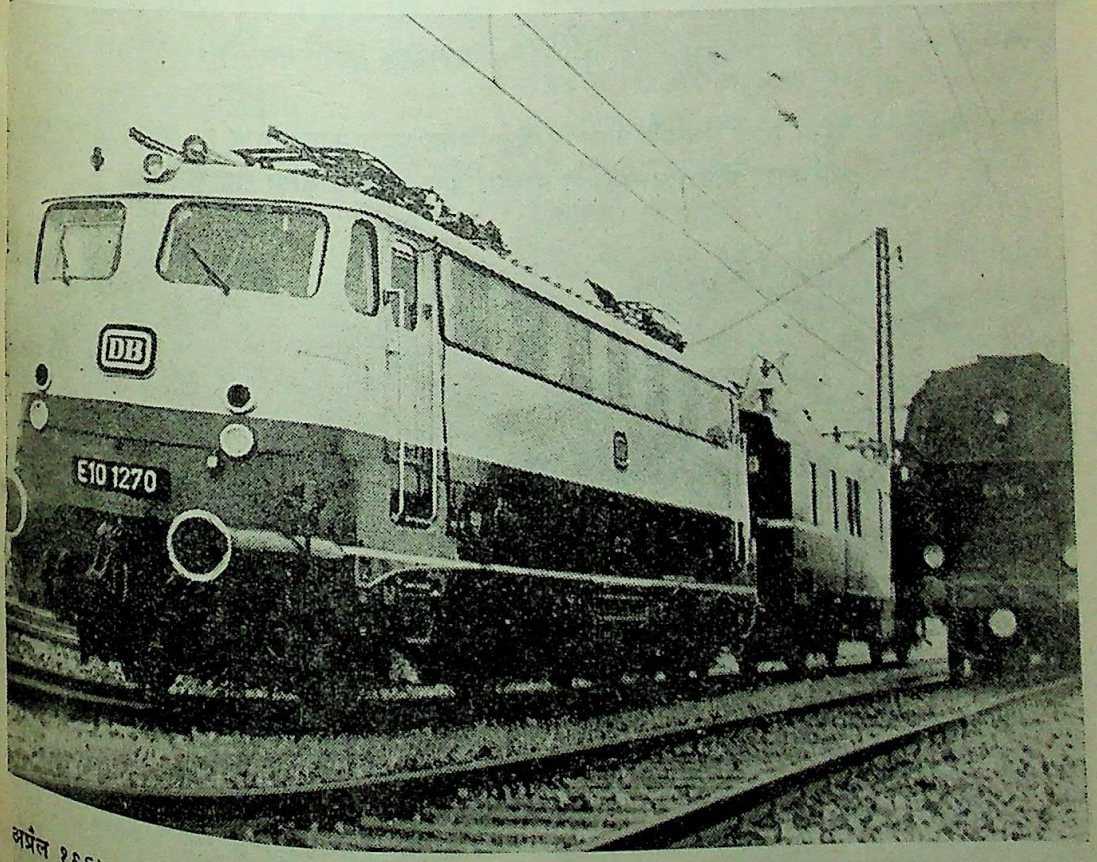

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीयत से अपनी यात्रा-दर यथासम्भव निम्नतर स्तरों पर लाये जा रही है ताकि वे जनसाधारण में अधिकाधिक लोकप्रिय हो सकें। यद्यपि कारें वहाँ भी कम संख्या में नहीं किन्तु जितनी बड़ी संख्या में हैं, उतनी ही बड़ी समस्याएँ भी साथ ही लिये हैं। हर सड़क, हर रास्ते पर कारों का न टूटने वाला तांता उनकी सारी वायु-वेगिता व्यर्थ कर देता है और जितनी जल्दी कोई पहुँचना चाहता है, उतनी ही देर लग जाती है। अतः वहाँ रेल की पटरियों को नये सिरे से ठीक कर इस योग्य बनाया जा रहा है कि आँधी-तूफान की तरह धुआँधार दौड़ती ट्रेनें हवाईयात्रा का भरपूर मुकाबला कर सकें। यहाँ जैसी ४५-५० की गति तो वहाँ बड़ी हास्यास्पद समझी जाती है और औसतन भी ७०-८० से कम की बात नहीं की जाती।

१२५ के वेग से ट्रेन दौड़ेगी !

पश्चिम जर्मनी के इंजीनियरों ने इ. ३ नामक एक नया ही विस्मयकारी इंजन तैयार किया है जो अभी परीक्षणावस्था में ही है। अभी इसे एक अत्याधुनिक रहस्य की भाँति गुप्त रखा जा रहा है। जहाँ इसे प्रदर्शन के लिए खड़ा किया गया है, वहाँ केवल दूर से देखने तथा फोटो आदि लेने की अनुमति, निकट जाने की नहीं। अपने प्रारम्भिक परीक्षणों में ११० मी. प्र. घ. की दौड़ें लगा इसने संसार के रेल-विशेषज्ञों—खास जापानी इंजीनियरों—को चकित और कर दिया है। इस पवनगामी इंजनयुक्त को क्रासिंग से निरापद गुजरने के स्वचालित सिग्नलों की सहायता से आदि पाँच मिनट पहले ही बन्द हो जाते और तब बिजली की चाबुक-सी लपकती ट्रेन आँखों को चकाचौंध करती हुई नि जाती है।

इसके निर्माताओं को आशा है कि आगा वर्ष आते-आते ई. ३ इंजनयुक्त ट्रेनें म्यू से बेसल तक की दूरी और भी बढ़-चढ़ १२५ मील की रफ्तार से तय करने बनायी जा सकेंगी।

रेलयात्रा में यह निस्संदेह एक अद्वि उपलब्धि कही जाएगी।

रेलरोड क्रासिंग के जरिये इ. ३ इंजन के जाने के पाँच मिनट पहले फाटक बन्द हो जाते हैं। एक बोर्ड समझदार मोटर चालकों से प्रार्थना करता है कि थोड़ा सब्र करें

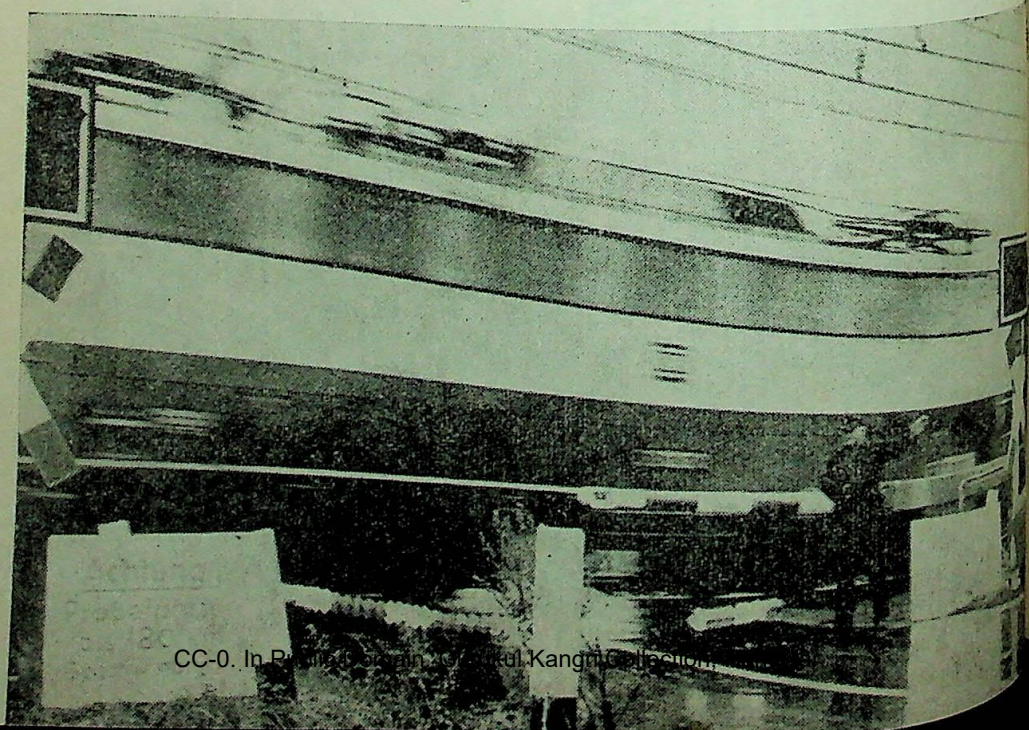

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

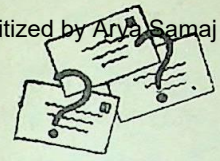

अनिलकुमार पाराशर (१०८६६) मिर्जापुर

प्रश्न—दूध और पानी को अलग-अलग गरम करें तो पानी से पहले ही दूध क्यों उबलने लगता है ?

उत्तर—दूध में जो उबलता हुआ दिखता है वह उसका पानी का ही भाग है जो उसमें सामान्यतः ८७% रहता है। वैसे शुद्ध पानी २१२°F पर उबलता है और दूध तो कीटाणुमुक्त होने की क्रिया (sterilisation) में २२५°F तक भी उबलता है। इस ताप पर पानी तो वाष्प ही बन कर उड़ जाएगा!

सत्यनारायण अग्रवाल (६३१६) डोंगरगढ़

प्रश्न—फाउन्टेन पेन में स्याही कम हो जाने पर उसके निब में से स्याही अधिक क्यों गिरने लगती है ?

उत्तर—बगैर ट्यूब की अथवा घटिया रबर के ट्यूब की पेनों में यह शिकायत रहती है क्योंकि खर्च की हुई स्याही की खाली जगह वायु से भर जाती है। वही वायु स्याही को नीचे धकेलती है।

सतीशचन्द्र (१०४८६) जयपुर

प्रश्न—वैज्ञानिकों ने पृथ्वी को भी तौल रखा है! यह तौल किस विधि से ज्ञात की होगी ? अनुमानतः तौल क्या है ?

उत्तर—इसका श्रेय न्यूटन को है। पेड़ से गिरते सेव ने संसार को न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण विषयक अटल नियमों की भेंट प्रदान कराई तो उसी प्रसंग ने पृथ्वी का भार भी ज्ञात करने के लिए प्रेरित किया। न्यूटन ने गणना की कि गुरुत्वाकर्षण-बल वस्तुओं की संहति के साथ ही घटता-बढ़ता है, किन्तु उन वस्तुओं की परस्पर दूरी के उलटे अनुपात में रहता है। पृथ्वी के केन्द्र से सतह तक की दूरी (अर्थात् त्रिज्या) ज्ञात थी ही, और गुरुत्वाकर्षण बल न्यूटन ने निकाल ही लिया। उसी से पृथ्वी का भार भी उसने ज्ञात कर लिया। आज तो प्रयोगशाला में जटिल-यन्त्र-सज्जा द्वारा ये गणनाएँ करना सम्भव है। पृथ्वी का अनुमानित भार ६×१०^{६} टन है।

कुमारी प्रमोदिनी सोने (१०६१२) इन्दौर

प्रश्न—आपकी प्रतियोगिताओं में केवल २–३ ही प्रश्नों के उत्तर सही आते हों तो पूर्तियाँ भेज सकते हैं क्या ?

उत्तर—निस्संकोच भेजनी चाहिए।

बृजेश्वरप्रसाद शर्मा (३६७२) ललितपुर

प्रश्न—कालेस्टेरोल (colesterol) क्या है और कहाँ पाया जाता है ?

उत्तर—इस गूढ पदार्थ के विषय में बहुत कम ज्ञात हो सका है। मस्तिष्क, ज्ञानतंतुओं तथा मेरु-तंत्रिका में प्रवाहित होने वाले स्राव में अन्य जटिल पदार्थों के साथ यह भी पाया जाता है। स्वभाव से यह हारमोन्स जैसा ही है और अधिकांश विटामिन-डी के निर्माण में योग देता होने का अनुमान है। इसकी अधिकता रक्त परिवहन को अवरुद्ध कर देती है। अतः हमारा पित्ताशय स्वतः इसकी अधिकता पर नियन्त्रण रखे रहता है।

कन्हैयालाल नामदेव (१०४३२) टीकमगढ़

प्रश्न—बोनमील (Bonemeal) जो कि एक महत्वपूर्ण खाद का काम करता है, किस प्रकार तैयार किया जाता है ?

उत्तर—१८४० में लीबिग (Leibig) द्वारा सर्वप्रथम यह तथ्य ज्ञात कराया गया कि फास्फोरस-प्रचुर हड्डियों को खाद के वृहद उपयोग में लाया जा सकता है। अतः जिन उर्वरकों में हड्डियों का चूर्ण अथवा इनसे निर्मित अन्य पदार्थ मिश्रित हों, वे सब बोनमील कहलाते हैं। हड्डियों को गंधक के तेजाब में गलाकर केल्सियम फास्फेट में परिणत कर लिया जाता है। तत्पश्चात् उससे आवश्यकतानुसार खाद तैयार की जाती हैं।

बल्लाराम विद्यार्थी (६६७४) डोंगरगाँव

प्रश्न—परतदार शीशे (laminated glass) की बनावट तथा उपयोग में क्या विशेषता है ?

उत्तर—कार का शीशा इसका उत्तम उदाहरण है। यह अत्यधिक मजबूत न होकर एक ही करारी चोट में टूट जाता है। टूटने पर इसके टुकड़े नहीं उड़ते क्योंकि इस शीशे की दो पतली तहें बीच में प्लास्टिक की एक तह रखकर ताप और दाब द्वारा जमा दी जाती हैं। शीशा टूटने पर भी प्लास्टिक से अटका रह जाता है जो काफी मात्रा में उस धक्के को सह लेता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुबोधकुमार (२४४९) नरवरिया

प्रश्न—सुना है, कोई चिड़िया और रेप्टाइल एक ही घोंसले में सहजीवन व्यतीत करते हैं ?

उत्तर—ठीक सुना है। पेटरोल (Peterol) वह समुद्री चिड़िया है जो ट्वाटारा (Tuatara) वर्ग की बड़ी छिपकली के साथ घोंसला बनाकर मजे में रहती है। वह छिपकली अन्य जीवभक्षी होते हुए भी इसके बच्चों की पूरी देखभाल करती है; साथ ही, इसके बच्चों को अपने बच्चों से हिलने-मिलने नहीं देती। भूमि में गहरा बिल बनाकर उसमें ये अपना घोंसला रखती है।

ललितकुमार राव (७७३३) जगदलपुर

प्रश्न—Spin Thariscope **क्या है ? इसके उपयोग और आविष्कर्ता का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर—यह एक विशेष प्रकार का दर्शकयंत्र है जिसका आविष्कार इंगलैण्ड के सर विलियम क्रूक्स (Sir William Crookes) ने किया था। इसकी सहायता से जिंकसल्फाइड-स्क्रीन पर स्फुरदीप्त (phosphorescent) प्रकाश प्रक्षेपित करके रेडियम के सूक्ष्मांशों की उपस्थिति ज्ञात की जाती है।

देवेन्द्रनारायणसिंह (३७३५) पूर्णिया

प्रश्न—symbiosis **की व्याख्या उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।**

उत्तर—इसका अर्थ है, 'जीवन में साझेदारी'। सेमफली वर्ग (Beans) के पौधों और नाइट्रोजन-स्थिरक बैक्टीरिया में परस्पर समझौता रहता कि बैक्टीरिया तो पौधे को अतिरिक्त नाइट्रोजन देते रहेंगे और पौधे अपनी जड़ों पर स्थित ग्रन्थियों में भरे शर्करा-कोष से उन्हें शर्करा देते रहेंगे।

भगवानदास (१०६५८) टीकमगढ़

प्रश्न—सबसे पहला महत्त्वपूर्ण आविष्कार किसने और कब किया ?

उत्तर—आदि-मानव ने अग्नि का।

रघुनाथसिंह (१०६१९) जमशेदपुर

प्रश्न—मैं एक क्रिस्टल सेट बनाना चाहता हूँ। उसके लिए आवश्यक वस्तुओं की सूची सहित बनाने की विधि कृपया लिखिए।

उत्तर—विज्ञानलोक, जून १९६०, देखिए।

ओमप्रकाश (७९०५) डाल्टनगंज

प्रश्न—नीबू का रस बहुत महत्त्वपूर्ण [illegible] **जाता है, ऐसा क्यों ?**

उत्तर—रस निकालकर छिलका फेंकने [illegible] को ज्ञात होना चाहिए कि छिलके का महत्त्व [illegible] कम नहीं। फलों के रस में एक साथ [illegible] A, B, C और G से बहुसम्पन्न अम्ल और [illegible] देने वाला नीबू अवश्य अकेला फल है, किन्तु [illegible] व्यापारोपयोगी ऐसेन्स देने योग्य टरपीन (terpe[illegible] नामक तेल पदार्थ तो छिलके में ही ९०-९५% [illegible] विद्यमान रहता है !

विष्णुभगवान अग्रवाल (५२९१) खानि[illegible]

प्रश्न—बड़ी-बड़ी बसें दौड़ते हुए, एक [illegible] किंचित झुक जाती हैं तो भी गिरती क्यों नहीं

उत्तर—दुमंजिली बसों को तभी लाइसेन्स [illegible] जाता है जब कि परीक्षण में उनकी चैसिस (chas[illegible] अर्थात् मुख्य फ्रेम धरातल से २९ अंश तक का [illegible] बिना पलटे, लुढ़के, बना ले।

भगवानदास (१०६५८) टीकमगढ़

प्रश्न—सबसे पहला महत्त्वपूर्ण आविष्कार [illegible] और किसने किया।

उत्तर—आदि-मानव ने अग्नि का।

नरेन्द्रकुमार (४०५२) कलकत्ता

प्रश्न—ट्यूब राड (Fluorescent Tub[illegible] **प्रकाश अधिक तीव्र होते हुए भी उसमें विद्युत्** **व्यय कम क्यों होता है ?**

उत्तर—गैसभरी ट्यूब में प्रतिदीप्त (fl[illegible] cent) पदार्थ की तह पुती रहती है। विद्युत्-[illegible] प्रभावित गैस-कण तप्त हो उठते हैं तब [illegible] हुआ पदार्थ तीव्र रूप से दीप्त हो उठता है। [illegible] क्रिया में सामान्य बल्ब की अपेक्षा कम ताप [illegible] होता है। अतः कम विद्युतधारा से ही तीव्रतर [illegible] ठण्डा प्रकाश प्राप्त हो जाता है।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड [illegible] लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। [illegible] कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता [illegible] सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा के लिए [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH
WORK BOOK

- A modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded.*
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly.*
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress.*
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The Work Books are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.
Book II.....Price : Re. 1·00
Book III.....Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
Educational Publishers, AGRA.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kang

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िये

गसंघर्ष के ३४०० वर्ष —कुमारी रेखा सरीन	३
नन्त —गुणाकर मुले	९
रहमासी सेब —कीर्तिमोहन	१३
हानी आकाशदीप की —विनोदप्रसाद श्रीवास्तव	१७
ब्रूतर —डा. त्रिलोक मजुपूरिया	२२
ोल-उत्पादन में कार्बन —जगदीशप्रसाद	३०
ई पाश्चर —आदित्यगोपाल भिगरन	३६
नस्टार —प्रतिभा शर्मा	४१
ायनों से जीवोत्पादन —प्रेमानन्द चन्दोला	४८
थायी स्तम्भ	
ज्ञानिक उपलब्धियां	२९
रचित्र संसार	३४
ज्ञान क्लब	५७
नाम लो	६०
ापके प्रश्न	६१
ुम्हारी कलम से	६३

वर्ष ५

अपनी बात

पिछले महीने भारत ने पश्चिम जर्मनी से खाद तथा कृषि विषयक परामर्श की सहायता प्राप्त का अनुबन्ध करके एक और नया एवं वृहद उठाया है।

इससे पूर्व ऐसा ही वृहद कदम भारत ने एशिया सबसे बड़ा खाद-उत्पादक कारखाना सिंदरी में करके उठाया था। इस नयी योजना के अनुसार को विपुल मात्रा में खाद तो प्राप्त होगी ही, साधनों द्वारा भूमि की उर्वरता बढ़ाने के लिए परामर्श भी मिलता रहेगा। इसका प्रथम परीक्षण भारत में मण्डी नामक स्थान पर सफलतापूर्वक जा चुका है और वहाँ अन्नोत्पादन उल्लेखनीय बढ़ाया जा सकता है। वैसे और भी अनेक परीक्षण जगह-जगह स्थापित किये जायेंगे। इस सहायता में विदेशी मुद्रा की कठिनाई उपस्थित न हो भारतीय मुद्रा में ही विनिमय किया जाएगा।

अन्तरराष्ट्रीय खाद्य और कृषि संगठन ने परीक्षणों द्वारा यह घोषित किया था कि एशियाई भूमि-उर्वरता चिन्ताजनक रूप से घटती जा उसी के लिए पूर्व तैयारी स्वरूप अन्नोत्पादन की वृद्धि अन्न-संकट के निवारण की दिशा में भारत ने कदम उठाया है। आशा है, हमारी चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के काल में अन्न-संकट काफी अंश तक किया जा सकेगा।

इस नयी योजना का हार्दिक स्वागत है।

अंक ४

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा

CC-0 In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैदिक काल से लुई पाश्चर तक

रोगसंघर्ष के 3400 वर्ष

कुमारी रेखा सरीन

रोगों से लड़ाई मानव के जीवन से जुड़ी ही चली आयी है। जब तक चिकित्सा का ज्ञानोदय नहीं हुआ था, तब तक अधिकांश और आज अत्याधुनिक विज्ञान के होते हुए भी अल्पांश में रोगमुक्ति के लिए केवल श्रद्धा, उपासना, तन्त्र, मन्त्र और जादू का ही आश्रय लिया जाता रहा। रोगाक्रमण को ईश्वरीय कोप तथा मानव-अपराध का दण्ड समझा जाता रहा। एतदर्थ भिन्न-भिन्न रोगों के शमन के लिए विभिन्न देवी-देवताओं को प्रसन्न करने की दृष्टि से चित्र-विचित्र साधन अपनाये जाते रहे। संयोगवश जहाँ किसी की जड़ी-बूटी, राख की चुटकी अथवा हस्त-स्पर्श ने किसी को रोग से मुक्ति दिलायी, वहीं अवतारी और सिद्ध समझा जाने लगा। धर्मगुरुओं और सम्राटों को इस दृष्टि से विशेष सम्मान प्राप्त था। उल्लेख है कि भाग्य का साथ न देने पर जब नेपोलियन महान् को रूस से मुँह की खाकर लौटना पड़ा था तब काल के गाल में जाती हुई उसकी विशाल सेना के ९० प्रतिशत सैनिकों में से अनेक को उसने केवल अपने 'स्पर्श' (दूसरे शब्दों में 'प्रोत्साहन') के द्वारा ही बचा लिया था।

चिकित्सा—एक कला, अथवा विज्ञान ?

मत-मतान्तरों के अनुसार चिकित्सा-शास्त्र को कला भी कहा है और विज्ञान भी। दोनों का समन्वय करने पर यह कहा जा सकेगा कि चिकित्सा वह अनुपम कला है जिसमें अनेक विज्ञान समाविष्ट हो जाते हैं। चिकित्सा का उद्देश्य व्यक्ति और समाज को स्वस्थ रखना; रोगों को उनके कारणों सहित दूर करना तथा जीवन को दीर्घायु प्रदान करना है। प्राचीन ग्रीक दन्तकथाओं में उनके देवता एपोलो (Apollo) के पुत्र एस्कयुलेपियस (Aesculapius) का उल्लेख आता है जिसने अपने चिकित्सा-कौशल से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोगों को इस सीमा तक मृत्युंजयी कर दिया था कि देवलोक चिन्तित हो उठा था। अन्ततः उस अवतारी देवपुरुष को जीयस (Zeus) ने वज्रप्रहार द्वारा समाप्त करके उपासनीय देवताओं में स्थान दे दिया।

चिकित्सा के आदिकालीन प्रयोग

प्राच्यावशेषों से ज्ञात होता है कि औषधि तथा शल्य-चिकित्सा के छुटपुट प्रयोग प्रस्तर युग में होते रहे होंगे। उस युग की प्राप्त अस्थियों तथा कंकालों से इस अनुमान की पुष्टि होती है। सिर के कंकाल से प्रतीत होता है कि उसे छेदने के लिए औजारों का उपयोग किया गया होगा। यह भी सम्भव है कि वह छेदन चिकित्सा की अपेक्षा किसी दुष्टात्मा को बाहर निकालने के लिए किया गया हो। ६००० वर्ष पुराने अवशेषों के निरीक्षण से यह मानने को प्रेरित होना पड़ता है कि उन दिनों के चिकित्सक कुशल भी रहे होंगे; किन्तु ऐसे प्रमाण अति अल्प मात्रा में प्राप्य होने के कारण उस प्राचीन युग के चिकित्सा-विज्ञान पर अधिक प्रकाश नहीं पड़ता। इसलिए सच ही हमें आज से लगभग ३५०० वर्ष पूर्व के काल पर दृष्टिपात करना पड़ता है तभी चिकित्सा-विज्ञान के प्रादुर्भाव और अधिक विकास का यथार्थ सूत्र प्राप्त हो सके।

आदि-मानव रोगों को शैतान की शरारत ही मानता था और औषधि-ज्ञान से सर्वथा शून्य होने के कारण विचित्र प्रेतलीलाओं जैसी उठा-पटक द्वारा मन को समझा लेता था। आश्चर्य है कि वे अवैज्ञानिक नुस्खे जब कभी प्रभाव दिखा भी देते थे

सामाजिक प्राणी—यह मनुष्य

सृष्टि का प्रत्येक जीव सहजीवन चाहता है। नन्हा कीट हो, सागर की मछलियां हों, नभ के पक्षीगण हों अथवा हाथी, ऊँट हों, मनुष्य ही क्यों न हो, एकाकी रह नहीं सकता। इन्हीं के नन्हे-नन्हे परिवार छोटे-बड़े समाज और समुदाय बन जाते हैं और साथ रहने का अर्थ है किसी भी रोग का संसर्ग द्वारा प्रभावित होना। जो समाज विस्तार में जितना छोटा और शिक्षा-संस्कृति में जितना बढ़ा-चढ़ा होगा, उसके रोगी होने और रोगों के फैलने की संभावना उतनी ही कम होगी। पर ऐसे समाजों की भी कमी नहीं जो आज भी सामान्य शिक्षा में काफी पिछड़े हैं और रोग-निवारण के लिए विचित्र उपायों पर आश्रित रहते हैं।

तन्त्र, मन्त्र और जादू का बोलबाला

संसार के प्रत्येक महाद्वीप में ऐसे आदि वासियों के समुदाय मिल जाएँगे जो चिकित्सा नाम से ही परिचित नहीं और जादू-टोने पर ही निर्भर रहते हैं। उसका भी साधन न बने तो रोग को ईश्वरीय कोप मानकर रोगी को भाग्य के भरोसे छोड़ देते हैं। परिणाम यह होता है कि चिकित्सा की सहायता से बचाये जा सकने वाले जीवन नष्ट होते रहते हैं। मुख पृष्ठ का चित्र हिमनिवासी एस्किमो समुदाय का है। सभ्यता से बिलकुल ही परे, इन लोगों ने स्वयं को अपने वातावरण के अनुकूल बना कर जी लेना सीख लिया है। खान-पीन, रहन सहन और शिकारी जीवन इन्हें सामान्यतः स्वस्थ ही रखता है। जब कभी किसी विशेष रोग का सामना पड़ जाता है तब उनका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुखिया एक विकराल चेहरा मुखौटा पहिन लेता है और मन ही मन मानो अज्ञात शक्ति का आवाहन करके जोर-जोर से ढोल पीटता है। साथ ही साथ लगभग अर्द्ध-चेतनावस्था में पहुँचकर विचित्र ध्वनियाँ निकालता है मानो रोगवाहक दुष्ट आत्मा को ललकार रहा हो और उसे भाग जाने के लिए विवश कर रहा हो। यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश उसकी यह विचित्र उठा-पटक इच्छित फल देती भी है।

यह नहीं कि ये विचित्र हरकतें अनपढ़ आदिवासियों तक ही सीमित हों; ज्ञान-विज्ञान में नवजागृत देश भी ऐसी मान्यताओं से अभिन्न जकड़े हुए हैं। पीर के तकिये की झाड़-फूँक, समाधि की भस्मी, काला टोना और नजर बाँधने जैसी पुरातन मान्यताएँ आज भी सुसंस्कृत व्यक्तिओं में गहरी जड़ें जमाये हुए हैं।

३५ शताब्दियाँ बीतीं

चिकित्सा के वर्तमान रूप का सूत्र पाने के लिए हमें ३५०० वर्ष पूर्व जाना होगा। इस दीर्घ-काल में चिकित्सा-शास्त्र ने बड़े-बड़े उतार-चढ़ाव देखे हैं। कुछेक उल्लेखनीय उपलब्धियाँ ऐसी भी रही हैं जो काल-प्रवाह से अप्रभावित और अपरिवर्तित रही हैं और आज भी मान्य हैं।

आज से लगभग ४००० वर्ष पूर्व चिकित्सा-विज्ञान मिस्र, मेसोपोटेमिया, चीन, ईरान, अरब और भारत में अपने चरम पर था। हमारे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में उल्लेख है कि देश में ३०० से भी अधिक सुसम्पन्न अस्पताल थे, हमारे यहाँ के चिकित्सक नेत्रोपचार, प्लास्टिक सर्जरी और अस्थि-स्थापन (जर्राही) में अद्वितीय थे। ईस्वी सन् की पाँचवीं शताब्दी आते-आते तो मेलेरिया-वाहक मच्छरों और प्लेगवाहक चूहों से हमारे चिकित्सक परिचित हो चुके थे।

अर्द्धकुशल चिकित्सकों का

यूरोपीय और एशियाई देशों में जिस एक संस्था ने पूरे ८०० वर्ष तक (चौथी से बारहवीं शताब्दी तक) चिकित्सा-ज्ञान की विजय पताका फहरायी, उसके संस्थापक चार चिकित्सा महारथी थे—ग्रीस का पोन्टस (Pontus), अरब का अदाला (Adala), यहूदी एलिनस (Elinus) और इतालवी सालेरनस (Salernus)। उक्त संस्था में देश-विदेश के छात्र और छात्राएँ शिक्षा प्राप्त करने आते थे। उसी संस्था को भारतीय चिकित्सा-ज्ञान से भी पर्याप्त बल मिलता रहा था।

ये चिकित्सक विभूतियाँ

इधर के २५०० वर्षों का चिकित्सा-इतिहास ऐसी महान् विभूतियों के स्वर्णलिख से सम्पन्न है कि जिनका आज हमारा अत्याधुनिक विज्ञान भी लोहा मानता है। उनमें से कुछेक के संक्षिप्त परिचय निम्न भाँति हैं।

हीपोक्रेटेस

हीपोक्रेटेस (Hippocrates) को

'एक सलाई आजमाइए, चश्मे को धता बताइए'— की आवाज के साथ सड़कों पर फेरी लगाने वाले अर्द्धकुशल चिकित्सकों को आज भी राह चलते, भोले-भाले गाहक मिल ही जाते हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सा का पितामह कही जाती है। आज भी हीपोक्रेटेस की शपथ प्रत्येक चिकित्सक को दिलाने की परिपाटी सिद्ध करती है कि वह सचमुच ही चिकित्सा का पितामह था। उसने गहरी पैठी हुई इस लोकमान्यता को उड़ा दिया कि रोग और रोग-जनित कष्ट ईश्वर द्वारा भेजे जाते हैं। एक बार तो लोगों के मन में उसने यह अच्छी तरह बिठा दिया कि रोग केवल एक प्राकृतिक क्रिया-प्रक्रिया है और प्रत्येक चिकित्सक का यह कर्तव्य है कि वह कोरे अनुमानों से काम न ले; अपितु परिशुद्ध परीक्षणों और सूक्ष्म निरीक्षणों पर ही विश्वास करे। हीपोक्रेटेस ने ही आज प्रायः नजर आनेवाला यह तथ्य भी घोषित किया था कि पतले व्यक्तियों की अपेक्षा मोटे व्यक्ति अधिकतर आकस्मिक मृत्यु प्राप्त करते हैं।

क्लाडियस गेलेन

ई. स. १३० से २०१ तक क्लाडियस गेलेन (Claudius Galen) की इतनी धूम रही कि इस कुशल चिकित्साशास्त्री को लोगों ने चिकित्सावतार ही मान लिया। औषधि-विज्ञान में इसके प्रयोग और विज्ञप्तियाँ इतनी अचूक सिद्ध होती थीं कि इसकी मृत्यु के १३०० वर्ष पश्चात् तक भी लोग इसके सूत्रों को आँख मींचकर मानते रहे। यदि संयोग-वश आप आज से ४५० वर्ष पूर्व भी आज ही की भाँति ज्ञान-पिपासु होते और कहीं बीमार होते तो यह देखकर कम आश्चर्य न होता कि उस समय के भी चिकित्सक गेलेन की ही चिकित्सा-पद्धति का प्रयोग कर रहे होते! गेलेन की विद्वत्ता से उस समय के लोग इसलिए प्रभावित थे कि शरीर में रक्त-संचार के प्रति तब तक किसी को कुछ भी ज्ञान न था। गेलेन ने ही प्रतिपादित किया था कि शरीर की धमनियों में रक्त सागर ज्वार की भाँति दौड़ता है। उसने यह भी घोषित किया कि मानव शरीर का प्रत्येक अंग अपने विशिष्ट कार्य के लिए ही बनाया गया है।

आन्द्रे विजेलियस

आन्द्रे विजेलियस (Andre Vijelius) शरीर-विज्ञान का धुरंधर विद्वान था। केवल २९ वर्ष की आयु में शरीर-विज्ञान पर लिखा हुआ उसका ग्रन्थ एक अनमोल निधि सिद्ध हुआ। उसकी प्रयोगशाला फाँसी के तख्ते और कब्रिस्तान के गिर्द ही घूमती थी क्योंकि चीर-फाड़ के लिए उसे वहीं पर सामग्री मिल सकती थी। कुछ विषयों में गेलेन के सिद्धान्तों का खण्डन करती हुई उसकी क्रान्तिकारी घोषणाएँ प्रचलित लोकमान्यताओं को रुचिकर न होने के कारण उसे सदैव ही जीवनसंकट का भय रहता था। अतः वह अपने प्रयोग रातों को छिपकर ही करता था।

पेरासेलसस

पेरासेलसस (Paracelsus) का जीवन-काल और कोलम्बस की अमरीका-खोज का काल एक ही रहा है। १६वीं शताब्दी का यह चिकित्सान्वेषी यथार्थ ही क्रान्तिकारी था। लोगों का तो मत है कि वैज्ञानिकों के काक-समूह के मध्य वह एक मयूर ही था। परम्पराओं और अन्ध मान्यताओं का वह कट्टर विरोधी था। सबसे पहला काम उसने यही किया कि पुरोगामी ग्रीक वैज्ञानिकों के अटल समझे जाने वाले सिद्धान्तों से भरे ग्रन्थ जला दिये। उसने ऐसे प्रयासों को हतोत्साहित ही किया जिनके द्वारा वे किसी भी कीमियागरी से प्रयोगशाला में सोना उत्पन्न करना चाहते थे। वह कहता था कि सोना तो औषधि के उपयोगार्थ अनमोल वस्तु है, उसे उसी काम में आना चाहिए। उसकी दृढ़ मान्यता थी कि चिकित्सा कोरा विज्ञान ही नहीं, एक ललित कला और उत्तम चरित्र की वस्तु है। किसी भी रोग पर केवल औषधि नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सक के चरित्र और कला-कौशल का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ता है।

एम्ब्रोइसे पारे

एम्ब्रोइसे पारे (Ambroise Pare) फ्रेन्च सैन्य-सर्जन था। इसकी प्रयोगशाला केवल युद्ध-स्थल ही रहती थी। मोर्चे से आते क्षत-विक्षत सैनिकों की सुश्रूषा यह बड़ी तत्परता से करता था। इससे पूर्व तक चुटीले अंगों से बहते खून को रोकने के लिए गर्म सलाख दागने का प्रचलन था और कहीं-कहीं खौलते हुए तेल का भी प्रयोग किया जाता था। एक अवसर पर तेल चुक जाने के कारण जब खाली बैठे रहना पड़ा तब इसने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि बगैर तेल भी जख्म जल्दी अच्छे होते हैं। रक्तस्राव बन्द करने के लिए रक्तवाहिनी को बाँध देने की सफल विधि का आविष्कार इसी ने किया था। अपनी सफलता का इसे कभी भी अभिमान नहीं हुआ। वह यही कहता था––मैंने केवल मरहम-पट्टी की है और ईश्वर ने उसे नयी जिन्दगी दी है।

विलियम हार्वे

गेलेन द्वारा प्रतिपादित रक्त-संचार के सिद्धान्त का बोलबाला १३०० वर्ष तक रहा। उसमें आमूल संशोधन कर देने का क्रान्तिकारी कदम विलियम हार्वे (William Harvey) ने ही उठाया। तब तक की समस्त मान्यताएँ ढह गयीं और हार्वे को ही यह सिद्ध करने का श्रेय मिला कि शरीर का रक्त-संचार हृदय की एक अत्यन्त जटिल क्रिया है जो अपनी विलक्षण शक्ति द्वारा जीवन के प्रथम श्वास से अन्तिम श्वास तक रग-रग में और रोयें-रोयें में शुद्ध रक्त पहुँचाता और अशुद्ध रक्त का परिशोधन करता है। हार्वे की यह अपनी मौलिक खोज थी।

यह जेटयुग है। जैटयान में छिपकर बैठा हुआ कोई भी संक्रामक रोगी व्यक्ति अथवा जन्तु, ध्वन्यातीत वेग से सुबह बम्बई तो दोपहर को लन्दन पहुँच सकता है। उस स्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए ध्वन्यातीत वेग से भी तीव्रतर-प्रकाशगति से, विद्युत-गति से, रेडियो द्वारा सम्बन्धित स्थलों को सावधानी की सूचना प्रसारित कर दी जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह कार्य संयुक्त राष्ट्रसंघ की वर्ल्ड हेल्थ आरगेनाइजेशन (WHO) संस्था द्वारा किया जा रहा है

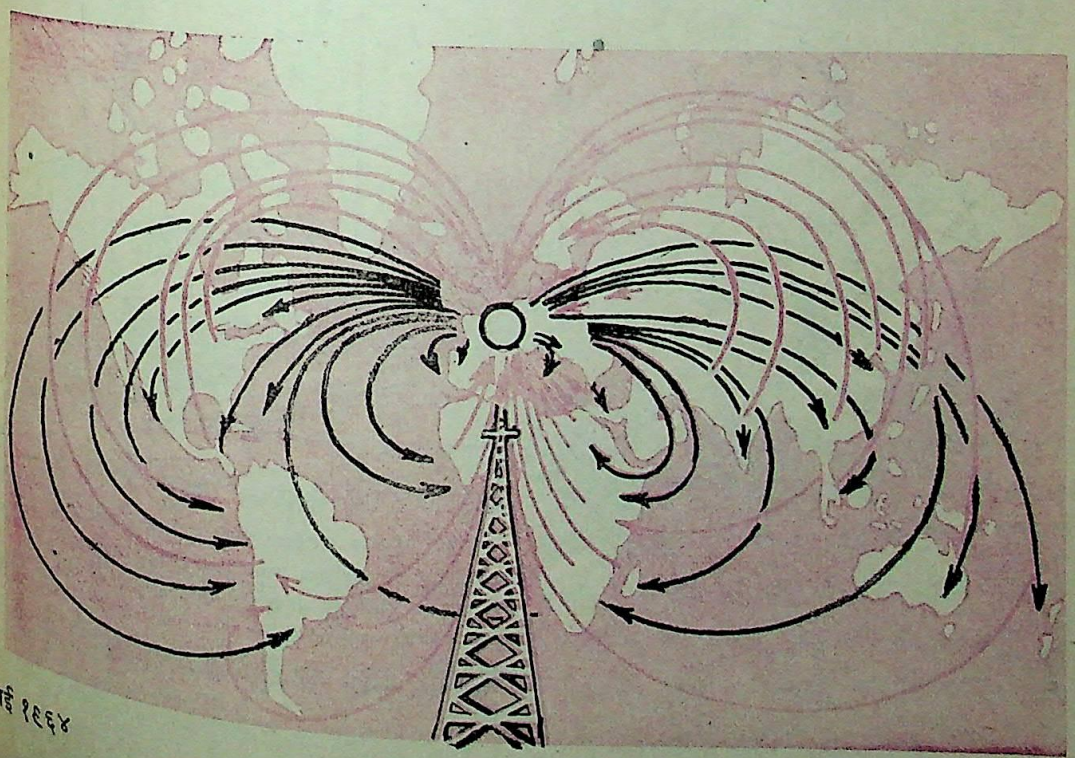

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्त के विषय को ही लेकर इन तीन वैज्ञानिकों की चिकित्सा-शास्त्र को अनुपम देन रही है। ल्यूवेनहुक (Leeuwenhoek) से पूर्व तक लोग कुछ अंशों में यह मान कर आतंकित रहते थे कि अनेक रोगों का प्रथम आक्रमण रक्त पर होता है। अतः उन दिनों के चिकित्सक जब रोगियों का नाड़ी-परीक्षण करते थे तब स्वयं को एक लबादे से भली प्रकार ढँक लेते थे और मुँह पर बगुले के चोंच जैसी एक नकाब पहन लेते थे। उस चोंच में सूखी औषधियाँ भरे रहते थे ताकि रोगों के अदृश्य कीटाणु दूर रखे जा सकें। ऐसे समय में केवल एक बूँद द्वारा किसी भी दृश्य को विशालित करने, अर्थात् सूक्ष्म-दर्शी बनाने का आविष्कार ल्यूवेनहुक ने प्रस्तुत किया। उस काल में उन मोटे से यन्त्रों से किसी भी वस्तु का २००-२५० गुना विशालित दिखना बहुत बड़ा आश्चर्य माना जाता था। अतः उस आविष्कार ने सूक्ष्म जीवाणुओं रोगाणुओं के सूक्ष्मदर्शी परीक्षण सम्भव कर दिखाए।

इसी अनुसन्धान में एडवर्ड जेनर (Edward Jenner) का टीके लगाने का आविष्कार एक नये वरदान स्वरूप सामने आया और लुई पाश्चर (Louis Pasteur) तो आप जानते ही हैं, बैक्टीरिया-शोध के फलस्वरूप चिकित्सा-शास्त्र में कैसे उज्ज्वल नक्षत्र समान अपना स्थान बना गये हैं! वैद्यक के ३५०० वर्ष की यह चिकित्सा-गाथा अनेक महान् विभूतियों का उल्लेख एवं आभार प्रदर्शन किये बगैर कभी सम्पूर्ण न कही जा सकेगी।

मानव-कल्याण की मूल भावना लिए हुए इस कलामय विज्ञान या कहिए, वैज्ञानिक कला को शत-सहस्र वन्दन हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनन्त

गुणाकर मुले

किसी कवि के लिए आकाश के तारे भले ही 'अनन्त' हों; परन्तु यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि शून्य-वस्तु की तरह इस भौतिक-जगत में अनन्त-वस्तु का भी कोई अस्तित्व नहीं है। संसार के सभी आदमियों की गिनती सम्भव है। संसार के सभी पेड़-पौधों की, सभी पत्तियों की गणना की जा सकती है। संसार के सभी समुद्र-किनारों के बालु-कणों की गिनती करने का दावा तो आज से २२०० वर्ष पहले आर्किमिडीज कर ही चुका था। आकाश में चमकने वाले ज्योतिर्पिण्डों की संख्या भी अनन्त नहीं। यहाँ तक कि विश्व के समस्त अणु-परमाणुओं की संख्या भी अनन्त नहीं है। प्रसिद्ध भौतिकवेत्ता एडिंग्टन का अनुमान है कि विश्व में १५७४७७२४ १३६२७५००२५७७६०५६५३९६११८१५ ५५४६८०४४७१७९१४५२७११६७०९३६ ६२३१४२५०७६१८५६३१०३१२९६ इलेक्ट्रान और इतने ही प्रोटान हैं !

प्रश्न पूछा जा सकता है——भौतिक-जगत में कोई अनन्त-वस्तु है ही नहीं, तो फिर 'अनन्त' की इतनी चर्चा क्यों ? आइये, इस प्रश्न का उत्तर हम इतिहास के पन्ने उलटकर ही प्राप्त करें। ग्रीक गणितज्ञ पाइथागोरस (५६९-५०० ई. पू.) का विश्वास था कि संसार की सभी वस्तुओं की गणना १,२,३, जैसी पूर्णांक संख्याओं द्वारा की जा सकती है। इसलिए आरम्भ में उसने इन्हीं संख्याओं में 'ईश्वर' के दर्शन किये। बाद में उसके सामने ऐसे अपरिमेय-मान (जैसे $\sqrt{२}$) प्रकट हुए, जिन्हें पूर्णांक या अपूर्णांक संख्याओं के परिमित अंकों में रखना संभव नहीं हुआ। वृत्त की परिधि और व्यास का अनुपात (π) भी इसी प्रकार का एक अपरिमेय-मान है। चाहे जितने दशमलव स्थानों तक बढ़ते चले जाइये, π के मान के लिए दशमलव स्थानों के अंकों का अन्त नहीं होगा; अर्थात इसमें अंक-स्थानों की परम्परा 'अनन्त' तक चलती रहेगी। इसी प्रकार किसी भी रेखा पर दो बिन्दु लेकर उनके बीच के बिन्दुओं को खोजने की कोशिश कीजिए। प्रारम्भिक गणित का यह एक तथ्य है कि किन्हीं भी दो भिन्नों के बीच, जैसे $\frac{१}{३}$ और $\frac{१}{२}$ के बीच, एक तीसरा भिन्न रखना सम्भव है। तात्पर्य यह कि किन्हीं भी दो भिन्नों के बीच या किसी भी छोटी-से-छोटी लकीर में इतने अधिक भिन्न या बिन्दु हैं कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी गिनती सम्भव नहीं है अर्थात् वे 'अनन्त' हैं।

इस खोज से गणितज्ञों और दार्शनिकों को कितना आश्चर्य हुआ होगा, इसकी कल्पना कीजिए! इलिया-निवासी जेनो (४६५-४३५ ई. पू.) ने तो इस 'अनन्त' पर चार पहेलियाँ ही बना डालीं! एक पहेली में वह कहता है : मान लो कि एक आदमी और कछुए की दौड़ हो रही है। स्पष्ट है कि इस दौड़ में आदमी की जीत होगी। मान लीजिए कि कछुए को पहले से ही आदमी से १००० मीटर आगे रख दिया जाता है, तब दौड़ शुरू होती है। जेनो का तर्क है कि १००० मीटर की दूरी दौड़कर आदमी जब कछुए के स्थान पर पहुँचेगा तो कछुआ १०० मीटर आगे बढ़ जायेगा। आदमी जब यह १०० मीटर की दूरी तय करेगा तो कछुआ १० मीटर आगे होगा। आदमी जब १० मीटर दूरी तय करेगा तो कछुआ १ मीटर आगे होगा। आदमी जब १ मीटर दूरी तय करेगा तो कछुआ $\frac{१}{१०}$ मीटर आगे होगा। आदमी जब $\frac{१}{१०}$ दूरी तय करेगा तो कछुआ $\frac{१}{१००}$ मीटर आगे होगा·····और इस प्रकार यह क्रम चलता ही रहेगा। जेनो का निर्णय था कि यदि दूरी अनन्त स्थान-बिन्दुओं का समूह है तो आदमी चाहे जितना तेज दौड़े, वह कछुए को कभी भी लाँघ नहीं पायेगा! इसलिए गति असम्भव है!

जेनो की इन पहेलियों से ग्रीक गणितज्ञ इतने आतंकित हुए कि उन्होंने 'अनन्त' और 'निरन्तरता' का उल्लेख ही करना छोड़ दिया। लगभग दो हजार वर्षों तक यही स्थिति बनी रही। १८वीं शताब्दी के अन्त में जर्मनी के तीन महान् गणितज्ञों ने 'अनन्त' के सवाल को पुनः हाथ में लिया और अनन्त सम्बन्धी एक नये गणितशास्त्र को जन्म दिया, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

भारतीय गणितज्ञ भी बड़ी संख्याओं और अनन्त के भेद को अच्छी तरह समझते थे। भास्कराचार्य (ई. ११५०) ने 'अनन्त' की परिभाषा दी है——किसी संख्या को शून्य से भाग देने पर जो लब्धि मिलती है उसे 'ख-हर' (अनन्त) कहते हैं। ख-हर के मान के बारे में भास्कराचार्य लिखते हैं—जिस प्रकार अनन्त और अच्युत ईश्वर में प्रलय के समय बहुत से भूतगणों का प्रवेश होने पर अथवा सृष्टि के समय उनके निकल जाने पर कोई परिवर्तन नहीं होता, उसी प्रकार शून्य हर वाली (ख-हर) राशि में बहुत बड़ी संख्या को भी जोड़ने अथवा घटाने पर कोई परिवर्तन नहीं होता।

अब हम आधुनिक गणितशास्त्र के प्रकाश में 'अनन्त' पर विचार करेंगे। सबसे पहले १, २, ३, ४,.....,१५२,.....संख्याओं के क्रम को ही लीजिए। स्पष्ट है कि इस क्रम का कोई अन्त नहीं; क्योंकि, चाहे कितनी भी बड़ी संख्या ली जाये, उसमें १ जोड़ देने से अगली की संख्या प्राप्त होगी। हमारी प्राकृतिक संख्याओं का वर्ग या समूह ही ऐसा है जिसकी गिनती सम्भव नहीं; अर्थात्, यह एक 'अपरिमेय-वर्ग' है! अब निम्नलिखित रीति से संख्याओं के दो समूहों का सम्बन्ध स्थापित कीजिए :

१ २ ३ ४ ५,...न ...(अ)

↕ ↕ ↕ ↕ ↕ ↕ अनन्त तक

$१^२$ $२^२$ $३^२$ $४^२$ $५^२$...$न^२$...(ब)

इस प्रकार के सम्बन्ध को गणितशास्त्र की भाषा में 'एक-एक का सम्बन्ध (१-१) कहते हैं। (अ) प्राकृतिक संख्याओं का क्रम है जो अनन्त है। (ब) १, ४, ९, १६, २५, संख्याओं का क्रम है। इन दोनों क्रमों में 'एक-एक का सम्बन्ध' सम्भव है, अर्थात् दोनों क्रमों में अनन्त संख्याएँ हैं; परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखते हैं (ब) क्रम में आने वाली संख्याएँ क्रम (अ) में भी विद्यमान हैं। दूसरे शब्दों में क्रम (ब) की संख्याएँ क्रम (अ) की संख्याओं का एक भाग है, हिस्सा है, अंश है! एक दूसरा उदाहरण लीजिए--

१ २ ३ ४ ५... न...(अ)

↕ ↕ ↕ ↕ ↕ ↕ अनन्त तक।

२ ४ ६ ८ १०...२ न...(ब)

यहाँ भी हम देखते हैं कि २, ४, ६, ८, १०...का क्रम प्राकृतिक संख्याओं में से एक विशेष नियम से चुनी हुई संख्याओं का समूह है। यहाँ भी सम्पूर्ण के एक अंश को उस सम्पूर्ण के बराबर होना सिद्ध किया गया है। इसलिए जर्मन गणितज्ञ कैंटर (१८४५–१९१८ ई.) ने अनन्त की परिभाषा दी है--अनन्त एक ऐसा समूह या वर्ग है जिसका एक अंश या भाग उस सम्पूर्ण के बराबर होता है!

ज्यामिति के क्षेत्र से एक उदाहरण लीजिए--

अ ब क त्रिकोण है। इसकी दो भुजाओं को काटने वाली य र एक रेखा है। स्पष्ट है कि य र रेखा अ ब रेखा से छोटी है। अब शीर्ष-बिन्दु क से य र रेखा को काटती हुई अ ब रेखा तक सीधी रेखाएँ खींचते चले जाइए। इस प्रकार की चाहे जितनी, अर्थात अनन्त, रेखाएँ खींची जा सकती हैं। ये रेखाएँ अ ब रेखा को जितने स्थानों पर छेदेंगी, उतने ही बिन्दु-स्थानों पर य र रेखा को काटेंगी। इससे यह निर्णय निकलता है कि अ ब रेखा में जितने बिन्दु हैं, उतने ही बिन्दु य र रेखा में हैं! अन्य शब्दों में, अ ब रेखा जितनी बड़ी है, उतनी ही बड़ी य र रेखा है!

आपकी बुद्धि ने यदि कभी धोखा न खाया हो तो उसके लिए यह उपरोक्त उदाहरण है। छोटी रेखा बड़ी रेखा के समान! इतना ही क्यों, किसी भी छोटी से छोटी, एक सेंटीमीटर के हजारवें भागवाली, रेखा में ठीक उतने ही बिन्दु हैं, जितने कि किसी भी बड़ी-से-बड़ी रेखा में हो सकते हैं!

यह तो हुई केवल दो आयामों वाली आकृतियों की बात! अब कोई घन ले लीजिए। किसी भी एक छोटी रेखा के बिन्दुओं में और इस सम्पूर्ण घन के बिन्दुओं में 'एक-एक का सम्बन्ध' सम्भव है; अर्थात् एक छोटी रेखा में और एक बड़े-से-बड़े घन में बिन्दुओं की संख्या समान है। गणितज्ञों ने तो यहाँ तक सिद्ध किया है कि, न केवल एक घन में, न केवल चार आयामों वाले आकाश में, बल्कि मनचाहे आयामों वाले आकाश में, ठीक उतने ही बिन्दु हैं, जितने कि एक छोटी-से-छोटी रेखा में हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि, इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में ठीक उतने ही विन्दु-स्थान हैं, जितने कि एक सेंटीमीटर या इससे भी छोटी रेखा में हो सकते हैं!

जिन समूहों या वर्गों का प्राकृतिक-संख्याओं के वर्ग से 'एक-एक का सम्बन्ध' स्थापित करना सम्भव है, ऐसे वर्गों को कैंटर ने 'गणनीय वर्ग' का नाम दिया है। ऐसे वर्गों को उसने हिब्रू वर्णमाला के प्रथम अक्षर द्वारा प्रकट किया है। उपरोक्त सभी वस्तु-समूह इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। अब प्रश्न उठता है कि क्या ऐसा भी कोई वर्ग

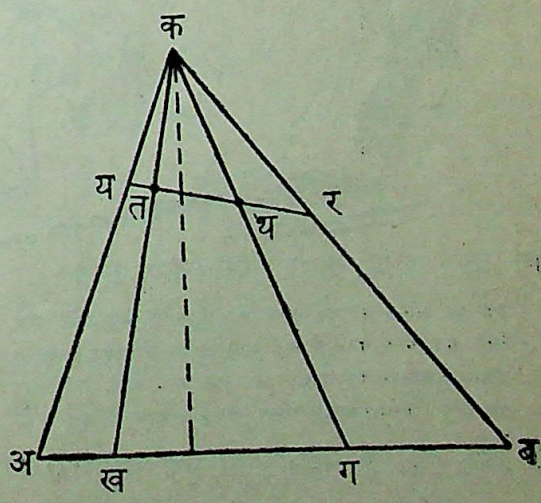

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, जिसका प्राकृतिक-संख्याओं के वर्ग के साथ 'एक-एक का सम्बन्ध' सम्भव नहीं है ?

आइये, हम ० और १ के बीच की संख्याओं पर ही विचार करें। ० और १ के बीच अ/ब के स्वरूप की संख्याएँ जिन्हें 'परिमेय संख्याएँ' कहते हैं, अनन्त हैं; परन्तु ये सब 'गणनीय' वर्ग की है। इनके अतिरिक्त भी और संख्याएँ हैं। गणितज्ञों ने यह सिद्ध किया है कि ० और १ के बीच की सभी प्रकार की संख्याएँ 'गणनीय वर्ग' के अन्तर्गत नहीं आतीं। 'एक-एक का सम्बन्ध' स्थापित करने पर भी कुछ संख्याएँ छूट ही जाती हैं, अर्थात् इन संख्याओं का 'अनन्त' एक 'उच्च-स्तरीय अनन्त' है !

कैन्टर ने तो 'अनन्त' के बारे में एक नये गणित को ही जन्म दिया है। हमने उसकी केवल एक ही झलक देखी है। वास्तव में इस शास्त्र की चर्चा उच्च-गणित में ही सम्भव है। दो जर्मन गणितज्ञ वायरस्ट्रास (१८१५–९७ ई.) और डेडेकिन्ड (१८३१–१९१६ ई.) ने अत्यणु (infinitesimal) और निरंतरता (continuity) की नूतन व्याख्या करके कलनशास्त्र को सुस्थिर आधार प्रदान किया है। जेनो की पहेलियाँ भी काफी सीमा तक सुलझ गयी हैं परन्तु कैन्टर ने 'अनन्त' के नये गणित को जन्म देकर 'अनन्त' की पहेली को मिटाने के बजाय और ताजा कर दिया है। कैन्टर के गणित को लेकर आज भी गणितज्ञ दो गुटों में विभाजित हैं। आज भी हम दावे के साथ तो नहीं कह सकते कि हमने 'अनन्त' की पहेली को पूर्ण रूप से सुलझा लिया है। स्वयं अनन्त की तरह अनन्त का यह रहस्य भी अपने उद्घाटन के लिए शायद अनन्त समय ले ! 'ईश्वर' को ठीक ही 'अनन्त' कहा है।

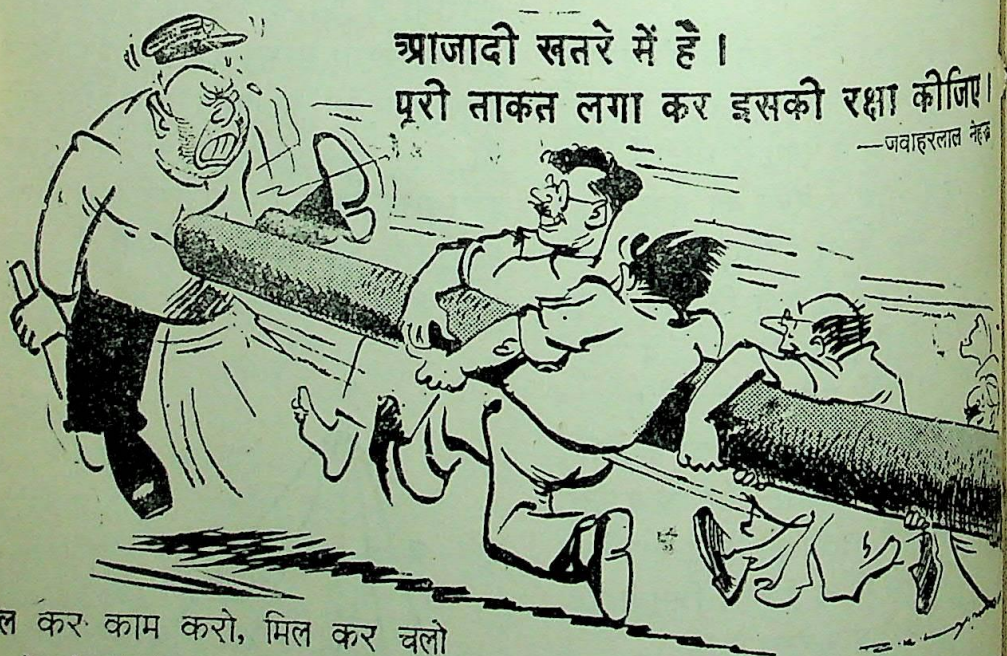

मिल कर काम करो, मिल कर चलो

देश की शक्ति देश की जनता के अनुशासन, मेल-जोल और मिल कर काम करने में है। आजादी पर जो संकट आया है उसका मुकाबला एकता और लग कर काम करने से ही हो सकता है। एकता बनाए रखिए, लगन से काम कीजिए।

देश की रक्षा व्यवस्था को दृढ़ कीजिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारहमासी सेब

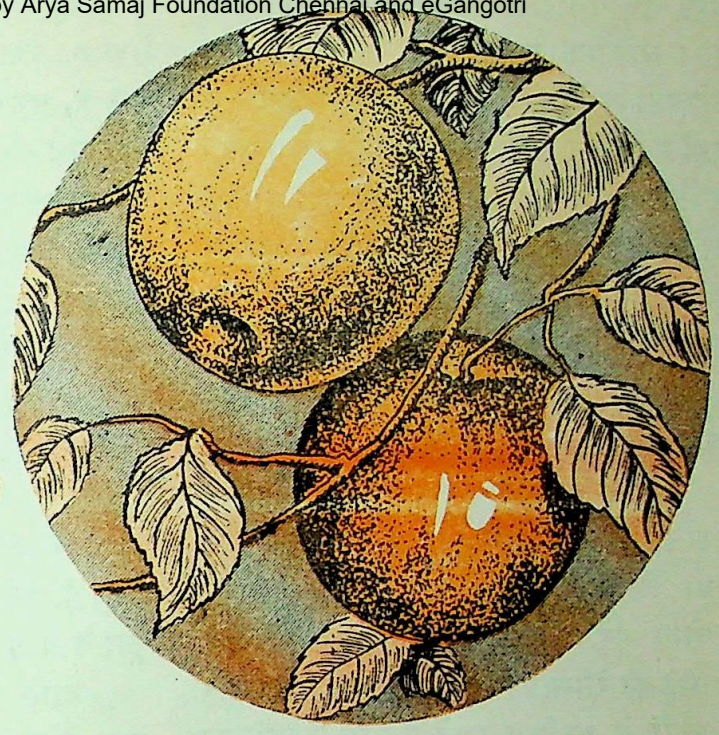

कीर्तिमोहन

प्रकृति ने जब सेब को स्वास्थ्य के लाभकारी तथा नित्यप्रति लेने योग्य गुणों से भरपूर बनाया, तब यह व्यवस्था भी कर दी कि यह बारहों मास मिलता भी रहे। कुछेक ऐसे ही फलों में सेब भी है जो वर्ष भर हर रोज ताजा मिल जाता है। अन्यथा अनेक सुस्वादु, बढ़िया फलों के लिए ऋतु-ऋतु की प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

कुंज-कुंज के सेब

सेब हमारे लिए नया नहीं है। युग-युगों से यह हमारा परिचित और प्रिय फल रहा है। यह अवश्य है कि कुछ काल पूर्व के लोगों को यह कल्पना भी नहीं होगी कि सेब जैसे सुलभ फल की अनगिनत जातियाँ उत्पन्न की जा सकती हैं। दिनोदिन बढ़ते हुए वनस्पति-विज्ञान के बल पर आज सेब की दस हजार जातियाँ उपजायी जा रही हैं। सेब प्रायः सभी देशों में प्रचुरता से उगाये जाते हैं किन्तु प्रसिद्धि और लोकप्रियता तो भारत के कश्मीरी सेब और अमरीका तथा इंग्लैण्ड के सेबों ने ही अर्जित की है।

उपयोगिता की दृष्टि से सेब मुख्यतः तीन प्रयोजनों के लिए उगाये जाते हैं—फल की तरह खाने के लिए (dessert), मुरब्बे बनाने के लिए (cooking) और पेय-रसायन के लिए (cider making)। सेब की प्रचलित जातियों में ये जातियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं—१. गोल्डन डिलीशस (Golden Delicious); २. ऑरेन्ज पिपिन (Orange Pippin); ३. प्रिंस आल्बर्ट (Prince Albert); ४. ब्रेमले सीडलिंग (Bramley Seedling); ५. न्यूटन वण्डर (Newton Wonder); ६. रेड सोल्जर (Red Soldier); ७. ब्लेन्हायम ऑरेन्ज (Blenheim Orange); ८. लेक्सटन सुपर्ब (Laxton Superb); ९. अमरीकन मदर (American Mother) और १०. चार्ल्स रॉस (Charles Ross)।

सेब का एक वृक्ष १५,००० रु० में !

इनमें अमरीका के गोल्डन डिलीशस के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ एक मनोरंजक इतिहास भी जुड़ा हुआ है। आकर्षक सुनहरे सेबों का प्रथम वृक्ष पश्चिमी वर्जीनिया में एक सामान्य कृषक के यहाँ एक दिन अचानक ही प्रकट हो गया। सेबों में सुनहरा रंग लोगों के लिए एक अचरज ही था। उस वृक्ष को देखने के लिए लोगों का तांता लग गया। उन्हीं में एक कुशल वनस्पतिज्ञ भी था। उसने दूरदर्शिता से काम लिया और उस वृक्ष का १५,००० रुपये में सौदा कर लिया।

सौदा हो जाने पर भी पेड़ को उठाकर ले जाना सम्भव नहीं था क्योंकि उसे डर था कि उखाड़ने से वृक्ष से ही हाथ न धोना पड़े। अतः उसने उसके चारों ओर लोहे की रेलिंग का जाल खड़ा कर दिया और चोरों से सुरक्षित रखने के लिए बिजली का अलार्म लगा दिया ताकि कोई भी अनजान व्यक्ति निकट जा ही न सके। तत्पश्चात् उसने उसकी टहनियाँ सेबों के विविध पौधों पर कलम द्वारा रोपकर उस एक वृक्ष से अनेक खड़े कर लिए और उनकी उपज से मालामाल हो गया। आकर्षक सुनहरे वर्ण का, अण्डाकार, मोहक सुगंध और अत्यन्त स्वादु गूदे तथा रस से भरपूर वह गोल्डन डिलीशस निस्सन्देह सेबों का राजा ही है।

सेब का भीतरी दृश्य—१. बीज, २. डंठल, ३. छिलका, ४. गूदा

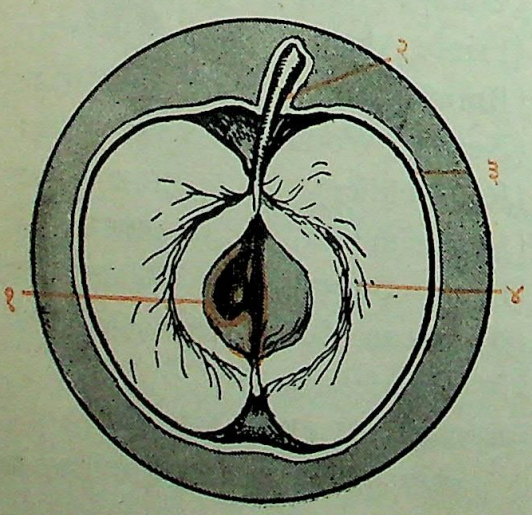

फल है, पर फल नहीं

सेब को हम अन्य फलों की भाँति ही एक फल मानकर चलते हैं किन्तु वानस्पतिक दृष्टि से यह नकली फल है क्योंकि पुष्प का जो अण्डभाग (carpel) क्रमशः फल के गूदे और फल में परिणत हो जाता है, वह स्थिति इसमें नहीं बनती। इसमें तो जो भाग फूल की पंखुरियों, पुंकेसर और स्त्रीकेसर को थामे रहता है, वही इसके गूदे में परिवर्तित हो जाता है। इसीलिए सेब के सिरे पर जो गड्ढा होता है, उसमें टहनी से कभी-कभी चिपके हुए फूल के वे सूखे अंश दिखायी दे जाते हैं।

जाति से प्यूमिला (Pumila), यानी सेब मेलस (*Malus*) वंश और रोजेसी (*Rosaceae*) परिवार का है जिसमें आड़ू, चेरी और रसभरी जैसे फलों का भी समावेश होता है। माना जाता है कि आज की प्रचलित जातियाँ इसकी मूल जंगली जाति क्रैब एपिल (Crab Apple) से ही तैयार की जाती हैं। क्रैब एपिल केवल यूरोप तथा पश्चिमी एशिया में पाया जाता है और तीखा, खट्टा होने के कारण मुरब्बे, जेली आदि बनाने में काम आता है। इस वृक्ष को समशीतोष्ण जलवायु ही माफिक आती है, साथ ही कुछ दिन शीतनिद्रा के भी आवश्यक रहते हैं। अतः अधिक गर्म देशों में यह नहीं पाया जाता। इसे भूमि भी काफी नमीयुक्त चाहिए और पहाड़ी ढलानों पर तो ये और भी सरलता से पनपते हैं। इसके लिए भूमि का इतना महत्त्व नहीं, जितना कि वातावरण और जलवायु का। भूमि की त्रुटि तो उर्वरक आदि से भी पूरी की जा सकती है।

इसके वृक्ष को अधिक ऊँचा नहीं उठने दिया जाता। वृक्ष यदि छह फुट के अन्दर ही रहता है तो उत्तम फल देता है। वृक्ष की देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाल काफी परिश्रमसाध्य होने के कारण प्राय:
लोग इसे नीची झाड़ियों के रूप में उगाते
हैं। उनमें एक कठिनाई यह होती है कि कोई
भी जानवर उन्हें खाना नहीं चूकते। अत:
उनकी विशेष सम्हाल रखनी पड़ती है। वृक्षों की
अपेक्षा झाड़ियों में जगह ज्यादा घिरती है और
उपज कम आती है।

सेब की पत्तियाँ अण्डाकार तथा किनारों पर आरी जैसे दांतेदार होती हैं। उनके डण्ठल छोटे होते हैं और पत्तियों के नीचे की ओर नर्म रोयें होते हैं। वसंत आते ही सेब का पौधा पल्लवित और पुष्पित हो जाता है। इसके फूल छह-छह के पुष्पदल के रूप में होते हैं। पुष्पों की पंखुरियाँ सिरे पर श्वेत तथा नीचे की ओर गुलाबी होती हैं। पुष्प में केवल पाँच स्त्रीकेसर को अनेक पुंकेसर लिपटाये रहते हैं।

गुणकारी सेब

यह श्रुति अर्थपूर्ण ही है कि एक सेब रोज खाइये और वैद्य घर कभी न जाइये। इसी के साथ यह भी जोड़ा जा सकता है कि दाँत के डाक्टर से भी मुक्ति पाइये क्योंकि दाँतों के लिए भी सेब एक वरदान ही है। इसमें छल-छलाता केल्सियम दाँतों की जान है और इसके खाने में दाँत जिस प्रकार गूदे पर फिसलते हैं उस प्रकार दाँतों की घिसाई-सफाई भी खूब हो जाती है। शरीर के लिए इसमें ग्लूकोज, सेक्रोज, फास्फोरस, लौह, पोटेशियम और विटामिन बी, सी, जैसे अत्यन्त लाभकारी पदार्थ रहते हैं। इसे प्रतिदिन सुबह नाश्ते के साथ अथवा दोपहर के भोजन के साथ नियम से लिया जाये तो जितनी सरलता से इसके विटामिन शरीर में जज्ब हो जाते हैं, अन्य फलों के नहीं हो पाते। भोजन के साथ लेने में यह भोजन के अनेक अपाच्य तत्त्वों को पचा देता है। इसकी कैलारी-सम्पन्नता अधिक न होकर केवल ४५ है। इसकी अत्यधिक

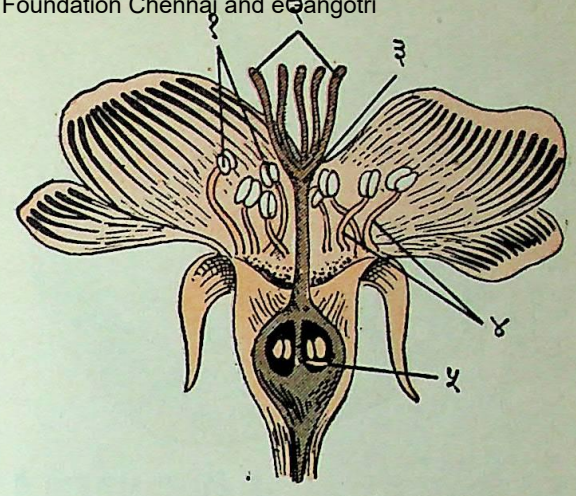

यह सेब का फूल है, अन्दर से खोला हुआ—१. परागकोष, २. वर्तिकाग्र, ३. वर्तिका, ४. पुंकेसर तथा ५. बीजकोष

मात्रा कदापि न खा लेनी चाहिए अन्यथा बदहज्मी का शिकार होना पड़ेगा।

इस पौधे के शत्रु

सेब के पौधे को अनेक कीट-कीटाणुओं और पतंगों से नष्ट होने का भय रहता है। उनमें मुख्य हैं—कोडलिंग मॉथ (Codling Moth) नामक कीड़ा और सान जौसे (San Jose) तथा उससे मिलते-जुलते अन्य अनेक कीट। ये एकबार सेब में प्रवेश कर लेने पर उसे खोखला करके रख देते हैं। लेड आर्सेनेट (lead arsenate) का घोल शीत-काल में दो बार और ग्रीष्मकाल में ७-८ बार पौधे पर छिड़ककर इन्हें नष्ट किया जा सकता है।

इन कीटों जैसी ही विनाशकारी *Ventu-ria inacgulis* नामक फन्जाई है जो एपिल स्कैब (apple scab) नामक रोग उत्पन्न कर देती है। उसके नियन्त्रण के लिए गन्धक के विविध यौगिक घोल रूप में पत्तों तथा जड़ों पर छिड़कने आवश्यक होते हैं।

सेब-उत्पादन

सेब-उत्पादन में यूरोप सबसे आगे है। विश्व-उत्पादन का लगभग अर्द्धभाग यूरोप ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

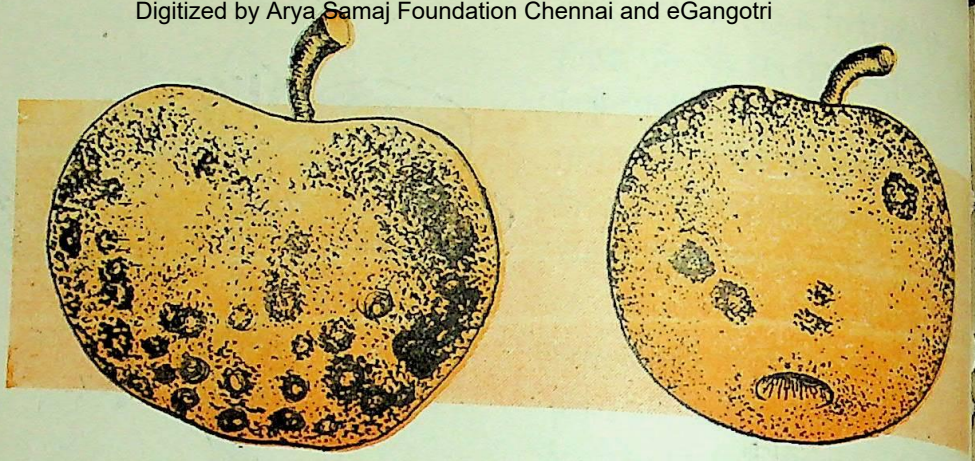

दो विभिन्न रोगाणुओं से आक्रान्त दो पृथक् सेब

देता है। फ्रान्स, जर्मनी, स्विटजरलैण्ड, उत्तरी इटली और बाल्कन देश इसके मुख्य उत्पादक हैं। तत्पश्चात् अमरीका, एशिया, आस्ट्रेलिया और अर्जेण्टाइना का नम्बर आता है। मुख्यतः तो सेबों की उत्पत्ति उत्पादन स्थलों पर ही खपती रहती है और बहुत कम देश ऐसे हैं जो इन्हें बाहर भेजते हैं। इन्हें सुरक्षित रखना तथा भेजना व्ययसाध्य होने के कारण अधिकतर तो इनसे विविध पेय बनाकर तथा जेली आदि बनाकर उसी रूप में बाहर भेजा जाता है।

डेढ़ सौ वर्ष से अधिक नहीं हुए जब सेब की इतनी जातियाँ नहीं थीं। इधर १०० १२५ वर्षों में ही वनस्पति-विज्ञान के नये-नये प्रयोगों ने प्रकृति के इस अल्प उपयोगी फल की उपयोगिता, लोकप्रियता और विविधता आश्चर्यजनक रूप से बढ़ा दी है।

बालू, सोने से भी अधिक मूल्यवान !

वैज्ञानिकों का यही तो काम है ! सिकता (बालू) से चाहे तेल न निकाला जा सके किन्तु सिलिकन का वह साक्षात् स्वरूप बालू ऐसे परिशोधित सिलिकन को देने में समर्थ है जो जटिल विद्युतयंत्रों के बनाने में काम आता है और उन यंत्रों का मूल्य सोने की तोल में तोला जा सकता है। म्यूनिच की प्रसिद्ध सीमेंस कम्पनी ने सिलिकन की ही ऐसी विलक्षण वस्तुएँ बनायी हैं जो विद्युत की ए. सी. धारा को बगैर उसे नष्ट किये, डी. सी. में बदल देती हैं।

इस कमी को कौन पूरा करे ?

मेरे बेटे ने नाजियों के छक्के छुड़ाते हुए, विमान-चालक की हैसियत से अपने जीवन की आहुति दी। मैं उन समस्त लोगों के शोक को अपना शोक समझता हूँ जिनके कोई न कोई प्रियजन युद्ध में हत रहे। शहरों को मिस्मार करना, खण्डहरों पर नये शहर खड़े करना और युद्ध द्वारा विनष्ट खेतों को पुनः जुताई द्वारा लहलहाना संभव है किन्तु संसार की कौनसी शक्ति हमारे बिछुड़े हुए प्रियजनों को, देश के शहीदों को हमें वापस दिला सकती है ?

हिन्द महासागर में अनुसन्धान पोत आएगा

आगामी अक्टूबर मास में पश्चिम जर्मनी अपनी एक तैरती हुई प्रयोगशाला, एक अनुसन्धान पोत हिन्द महासागर में भेज रहा है। आधुनिक यंत्रसज्जित उस पोत में वैज्ञानिकों और कार्यकरों का, लगभग ८० व्यक्तियों का एक दल रहेगा जो महासागर का तलस्पर्शी अनुसन्धान करेगा। उसी पोत में हेलीकॉप्टर भी प्रस्तुत रहेंगे। यह आयोजन युनेस्को के तत्त्वावधान में निर्धारित किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहानी आकाशदीप की

आज के विज्ञान ने यह सम्भव कर दिया है कि छिपी चट्टानों से १५-२० मील दूर ही प्रकाशस्तम्भ, जलदीप, पोतदीप, आकाशदीप आदि द्वारा जहाजों को सावधान रहने का संकेत मिल जाता है और पुराने ढंग की दुर्घटनाएँ बहुत अंश तक शेष की जा सकी हैं। वर्षों पहले यह सब इतना सरल और सम्पन्न नहीं था।

प्राचीनकाल में दीप-संकेत

ऐसे प्रकाशस्तम्भ जहाँ, जैसे भी सम्भव हो, दो प्रकार से बनाये जाते हैं—खुले में, लहरें टकराती हुई चट्टान पर अथवा दलदल में और बन्दरगाह अर्थात् घाट के किनारे पर। इनके प्रयोग का प्राचीनतम लेखा ईसा से लगभग ७०० वर्ष पूर्व का मिलता है। ई. पू. ६६० में लेशेस (Lesches) नामक एक ग्रीक कवि ने इतिहास प्रसिद्ध राजधानी ट्राय के किनारे उतरने वाले जहाजों के लिए ऐसे प्रकाशस्तम्भ का उल्लेख किया है। तत्पश्चात् ४०० वर्ष और बीत गये तब संसार-प्रसिद्ध और संसार के सप्ताश्चर्यों में से एक, फेरोस का प्रकाशस्तम्भ एलेक्जेड्रिण्या पर खड़ा किया गया। सदियों तक वह इतना प्रसिद्ध रहा कि लगभग १००० वर्ष बीत गये, काल की कराल चपेटें उस ६०० फुट ऊँचे आकाशदीप का कुछ भी न बिगाड़ सकीं। आखिर, १४वीं शताब्दी के एक प्रबल भूकम्प की वह भेंट चढ़ गया। सन् १३५० तक भी उसके अवशेष मिलते रहे हैं। उस अद्वितीय प्रकाशस्तम्भ का नाम भी इस प्रकार अमर हो गया कि आज की वैज्ञानिक शब्दावली में ऐसे प्रत्येक प्रकाशस्तम्भ को फेरोस (Pharos) और इसके निर्माण करने के विषय को फेरोलाजी (Pharology) कहते हैं।

मध्य युग में भी

मध्य युग में अनेक ऐतिहासिक आकाश-दीप खड़े किए गये। सन् ११३९ में जेनेवा

विनोदप्रसाद श्रीवास्तव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर बनाया गया २३६ फुट ऊंचा टॉर डेल केपो (Torre del Capo), ११५४ में फेरोस ऑफ मेलोरिया (Pharos of Meloria), १३०४ में टावर ऑफ लेगहार्न (Tower of Leghorn), १६११ में फ्रान्स के सम्राट हेनरी तृतीय के संरक्षण में पूरा किया गया लाइट ऑफ कोरड्वान (Light of Cordouan) तथा कोरुना के प्राचीन स्तम्भ (Towers of Corunna) जिन्हें 'हरक्युलिस के स्तम्भ' भी कहते थे, इतिहास प्रसिद्ध प्रकाशस्तम्भों में गिने जाते हैं।

इन्हें यदि इतिहास के पृष्ठों में ही छोड़ दिया जाये तो इधर के १५०-२०० वर्षों में यूरोप, अमरीका आदि प्रगतिशील देशों में सैकड़ों की संख्या में आकाशदीप खड़े किये जा चुके हैं और किये जा रहे हैं।

संसार के प्राचीन सप्ताश्चर्यों में प्रमुख, फेरोस द्वीप का प्रसिद्ध आकाशदीप

प्रकाश फेंकने के भिन्न-भिन्न तरीके

पूर्वकालीन आकाशदीपों में प्रकाश के लिए लकड़ी के ईंधन की आग जलाकर रखी जाती थी। लकड़ी के पश्चात् कोयले का उपयोग किया जाने लगा। दोनों विधियों में धुआँ कठिनाई उत्पन्न कर देता था और अधिक का प्रकाश उससे अवरुद्ध हो जाता था। इसके मशालों और मोमबत्तियों का प्रयोग करके देखा गया किन्तु धुएँ की समस्या फिर भी पूरी तरह दूर नहीं हुई। इंग्लैण्ड के बन्दरगाह प्लीमथ के निकट चट्टानों पर जो अब तक कुल चार प्रकाशस्तम्भ बनाये गये हैं, उनमें तीन तो मोमबत्तियों ही से काम देते थे। चौथा विद्युत् प्रकाश से सम्पन्न है। उन मोमबत्तियों का प्रकाश ४-५ मील से अधिक दूर नहीं पहुँच पाता, जबकि विद्युत्-प्रकाश १७ मील दूर तक काम करता है। ये चारों प्रकाशस्तम्भ एडीस्टोन फेरोस (Eddystone Pharos) कहलाते हैं। मोमबत्तियों के बाद तेल-दीपों का युग भी कुछ समय तक चला। आज भी इन पुरातन तरीकों को यथासम्भव परिष्कार तथा परिवर्तन द्वारा काम में लिया जा रहा है।

प्रकाश फेंकने में भी विशिष्ट संकेत

बन्दरगाह के घाट पर खड़ा प्रकाशस्तम्भ हो, तूफानी चट्टानों से टक्कर लेता हुआ आकाशदीप हो अथवा प्रकाशस्तम्भयुक्त जहाज अर्थात् पोतदीप हो, ऐसा नहीं है कि बेहिसाब प्रकाश फेंके जाएँ। प्रकाश फेंकने के विभिन्न प्रकारों को आवश्यक संकेतों के अनुसार निर्धारित किया जाता है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि १०-२० मील के दायरे में यदि ३-४ प्रकाशस्तम्भ खड़े हों तो उन्हें प्रकाश की भिन्नता से पहचाना जा सके। एक ही प्रकार का स्थिर प्रकाश अधिकतर बन्दरगाहों के निकट तो रहता है, अन्यथा मुख्यतः दो प्रकार से प्रकाश फेंका जाता है। पहला प्रकार फ्लेश (flash) कहलाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

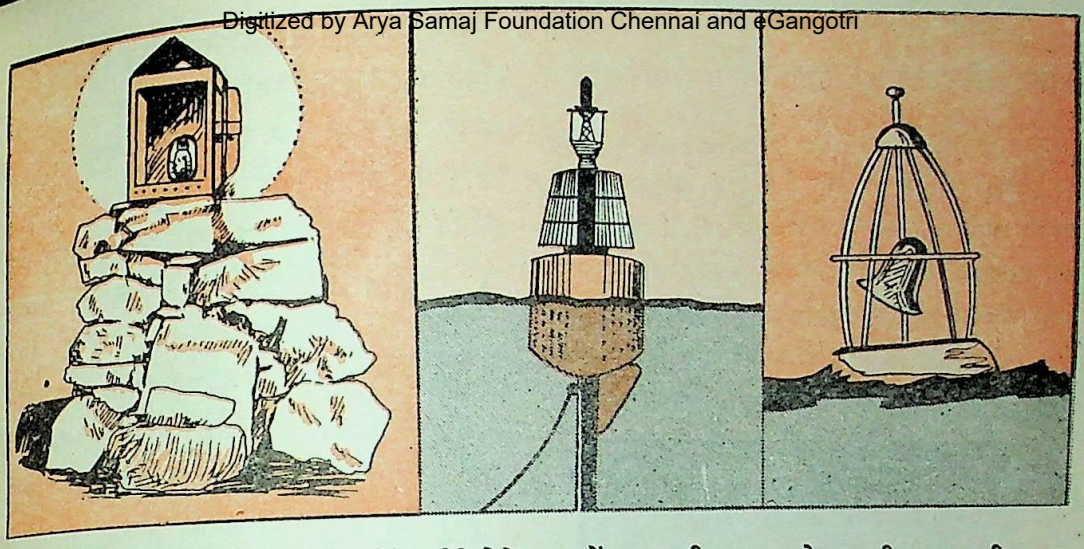

जो कल था और आज है—(बायें से दायें)—टेढ़े-मेढ़े पत्थरों पर रखी यह लालटेन कभी आकाशदीप का खूब काम देती थीं; आधुनिक सुरक्षा-संकेत के दो रूप—तैरता हुआ सीटी-संकेत (Whistling Buoy) और तैरता हुआ घण्ट-संकेत (Bell Buoy)। जब घने कुहरे में कुछ भी न दिखायी दे और आकाशदीप तक भी न पहुँचा जा सके, तब इनकी तीव्र सीटी और घण्ट-ध्वनि संकट-स्थलों से सावधान करती हैं

जिसमें प्रकाश की चमक उसके पश्चात् आने वाले अंधेरे से कम अवधि की रखी जाती है। दूसरा प्रकार ओकल्टिंग (occulting) है जिसमें प्रकाश की अवधि अंधेरे की अवधि से कुछ अधिक अथवा समान होती है। इन संकेतों में धवल प्रकाश के साथ-साथ रंगीन प्रकाश की भी सहायता ली जाती है। निम्न उदाहरण से यह संकेत-क्रिया और भी स्पष्ट हो जाएगी।

समझ लीजिए, एक जहाज अतलांतिक पार करता हुआ इंग्लिश चैनल की ओर बढ़ रहा है और किन्हीं कारणोंवश उसे आइरिश और फ्रेन्च दीप-संकेत नहीं मिल पाये; तो वह बिशप रॉक (Bishop Rock) के आकाशदीप की ओर दृष्टि उठाएगा जो १८ मील दूर से १५-१५ सेकण्ड के दो-दो धवल प्रकाश फेंकता है। यदि संयोगवश वह भी नजर न आये तो वह लांगशिप दीप को खोजेगा। यह दीप १६ मील दूर से १५ सेकण्ड के अन्तर पर एक ओर सफेद और दूसरी ओर लाल प्रकाश ३-३ सेकण्ड तक फेंकता है। अन्तिम आधार लिजार्ड दीप (Lizard Lighthouse) का भी है जो २१ मील दूर से प्रति तीन सेकण्ड पर सफेद प्रकाश फेंकता है इतने साधनों की उपस्थिति में यह असम्भव है कि जहाज को एक का भी लाभ न मिले।

पोतदीप, एक नयी देन

बन्दरगाहों और चट्टानों पर जमे हुए दीपस्तम्भों के अतिरिक्त जहाँ गरजती, उछलती लहरों में नींव डालना या स्तम्भ खड़ा करना सम्भव न हो, वहाँ के लिए ऐसे दीपयुक्त जहाज की सूझ काफी उपयोगी सिद्ध हुई है। इसका आरम्भिक संकेत यद्यपि ब्रिटेन के सम्राट चार्ल्स द्वितीय के समय में दिया जा चुका था, किन्तु १७३१ तक कोई स्थूल रूप सामने न आया। १७३१ के पश्चात् प्रयोग-स्वरूप जो आये भी वे अत्यन्त साधारण और हलके व्यापारिक जहाज थे जिनके मस्तूल पर मोमबत्तियोंयुक्त दीप रखा जाता था। वे इतने उपयोगी सिद्ध न हो सके क्योंकि जिस खतरे से वे दूसरों को बचाने के लिए बनाये जाते थे, उनमें स्वयं फँस जाने पर भी वे प्रकाश देते रहते थे और प्रायः ही दूसरे जहाज भुलावे में पड़ जाते थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक प्रयोगों के पश्चात् १८२५ में काफी सुदृढ़ और सम्पन्न दीपपोत बनाया गया।

आकाशदीप के अन्दर—१. कुहरा-विस्फोटक सूचक, २. फ्लैश लाइट (मुख्य दीप), ३. कार्य-कक्ष, ४. शयन-कक्ष, ५. मन्द प्रकाश-कक्ष, ६. निवास-कक्ष, ७. कोयला तथा अन्य स्टोर का भण्डार-गृह, ८. भारोत्तोलक-कक्ष, ९. तैल-भण्डार, १०. बैटरी-कक्ष, ११. प्रवेश-कक्ष, १२. जल-भण्डार, १३. सागर-ज्वार रेखा, १४. ऊँची जल-रेखा तथा १५. निम्न जल-रेखा

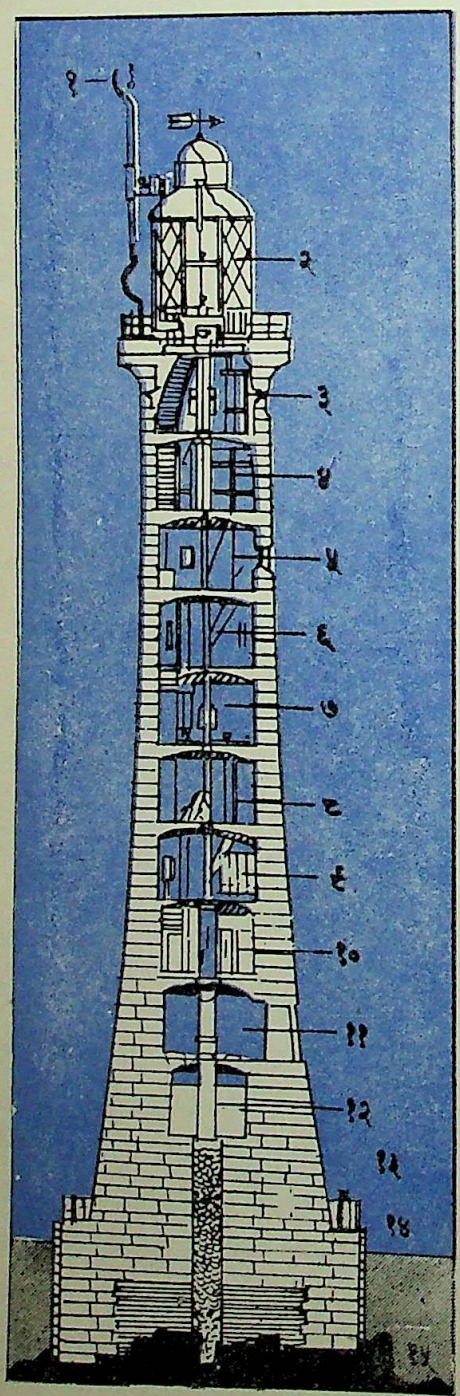

उसमें प्रख्यात लेखक रावर्ट लुई स्टीवन्सन के पितामह रावर्ट स्टीवन्सन द्वारा आविष्कृत नयी प्रकाश-विधि रखी गयी। उस विधि में दीप के चारों ओर बहुपरावर्तक लेंसों और शीशे की एक चिमनी रखी गयी थी और तेल के लिए मोमबत्तियों के स्थान पर क्रमशः व्हेल-आइल, कोलजा (colza) नामक वन-स्पतिक तेल, पेट्रोल वाष्प (पेट्रोमैक्स गैस), एसेटिलीन गैस तथा अन्त में डीजल-डाइनमो द्वारा स्वनिर्मित विद्युत् के प्रयोग किये जाते रहे। इन दीपपोतों के भी प्रकाश निर्धारित संकेतों के अनुसार फेंके जाते हैं। इन पर प्रकाशस्तम्भ के अतिरिक्त अन्य यंत्रादि भी बहुत रखने पड़ते हैं। रेडियो-दूरदर्शी, ब्रॉडकास्ट रिसीविंग सैट, डायोफोन तथा रेडियो-दिक्सूची इनमें मुख्य हैं।

आधुनिक आकाशदीप

सामान्य रूप से एक आधुनिक आकाश-दीप की रचना इस प्रकार समझी जा सकती है। स्तम्भ के सिरे पर लोहे अथवा स्टील का पेडिस्टल बनाकर उस पर वृहद लम्बगोलाकार लेन्टर्न का ढाँचा खड़ा किया जाता है। इसमें वायु के आवागमन का समुचित प्रबन्ध रखा जाता है क्योंकि दीप की ज्योति के लिए आक्सीजन नितान्त आवश्यक है। परावर्तक दर्पणों को चारों ओर विविध कोणों पर इस प्रकार लगाया जाता है कि प्रकाश के मार्ग में कहीं भी अवरोध न हो। शीशों तथा लेंसों के चारों ओर मजबूत जाली लगा दी जाती है ताकि प्रकाश से आकर्षित हुए छोटे-बड़े पक्षी उन पर चोट करके उन्हें क्षति न पहुँचायें। घड़ियों जैसी लीवर-स्प्रिंग व्यवस्था रखकर भीतर की ज्योति को चारों ओर लगे दर्पणों के मध्य घूमती हुई रखी जाती है। घड़ी की भाँति घुमाने वाला वह यंत्र यह भी संकेत करता देता है कि उसे कब दुबारा चाभी देना आवश्यक है। जहाँ आटोमैटिक व्यवस्था सम्भव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वहाँ चाभी इलेक्ट्रानिक्स द्वारा स्वतः समय पर भर जाती है।

आकाशदीप के ये प्रहरी

आकाशदीप का प्रयोजन, दिन हो या रात, निरन्तर सक्रिय, सचेष्ट रह कर बादल, कोहरा, हिमखण्ड, चट्टान आदि से सावधान करने के लिए संकेत देना है। अतः इसके लिए आवश्यक है कि स्वयं इसकी भी निगरानी रखने के लिए एक विशिष्ट सेवादल रखा जाए। सामान्यतः एक स्तम्भ पर एक साथ चार रक्षकों को रखा जाता है। दिन रात का उनका थका देने वाला कार्य देखते हुए उनसे लगातार दो मास काम लिए बाद एक मास का अवकाश दे दिया जाता है। जो चार व्यक्ति काम पर तैनात रहते हैं वे भी काम में चुस्ती-फुर्ती कायम रखने के लिए चार-चार घण्टे की ड्यूटी बाँध लेते हैं।

ऊपर से नीचे तक की सम्हाल रखने का इनका कार्य काफी थका देने वाला होता है। रात को दीप के अति तीव्र प्रकाश में, पाँच लाख से भी अधिक वाट के प्रकाश में लैम्प के निकट की देखभाल इन्हें काले चश्मे पहनकर करनी पड़ती है। बिजली अथवा अन्य ईंधन पर सर्वथा निर्भर नहीं रहा जा सकता। अतः बैटरियाँ, तेल की टंकियाँ, एसिटिलीन गैस के सिलिण्डर तथा पेट्रोमेक्स के लिए पेट्रोल गैस के भरपूर साधन भी तैयार रखने ही पड़ते हैं। न जाने, कब बिजली फेल हो जाये! तेल तो २००० गैलन तक, ६-७ महीने चलने लायक स्टाक में रखना पड़ता है। प्रकाश की तीव्रता पूर्णतः दर्पणों की चमक पर ही निर्भर रहती है। इसलिए दर्पणों को हर समय चमचमाता रखा जाता है। दीप को घुमाने वाले घड़ी जैसे यंत्रजाल को, मीमर आदि को तेल-ग्रीज द्वारा सुचारु बनाये रखना पड़ता है। जब कभी दिनों-हफ्तों तक तूफानी लहरें इनके चारों ओर गरजती रह कर इन्हें रास्ता नहीं देतीं, तब इन्हें उतने दिन वहीं टंगे रहना पड़ता है और घरबार से बिछुड़े रह कर ऐसी स्थिति में आ जाते हैं कि रहे आना बड़ा कठिन और उतरना बिलकुल असम्भव। तब तो उन्हें नावों आदि से भी खाना-पीना तथा अन्य वस्तुएँ पहुँचाना असम्भव हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में हैलीकाप्टर की सहायता ली जाती है। उसके द्वारा उन्हें आवश्यक वस्तुएँ पहुँचायी जाती हैं तथा उचित हुआ तो उनकी जगह अन्य व्यक्तियों को उतारकर उन्हें चढ़ा लिया जाता है।

सागर-सफर के साथी और भी हैं

बहुधा घने कुहरे में अति तीव्र प्रकाशयुक्त ये दीप भी विवश हो जाते हैं। तब विविध संकेतोंयुक्त तैराकी उपकरण (Buoys) काम आते हैं। ये उपकरण रस्सों द्वारा स्तम्भ के इर्द-गिर्द झूलते, बहते रहते हैं और सीटी द्वारा (Whistling Buoys), घण्टध्वनि द्वारा (Bell Bouys) तथा विस्फोट द्वारा (Explosive Buoys) उस ओर आने वाले जहाजों को पूर्व संकेत देते हैं। ये उपकरण भिन्न-भिन्न आकार के, सीमेण्ट, कंक्रीट तथा स्टील के बने होते हैं ताकि तूफानी लहरों के थपेड़े भलीभाँति सह सकें।

समुद्र का तो स्वभाव ही है अपने गर्भ में संकट-स्थलों को छिपाये रखना, किन्तु आधुनिक विज्ञान ने समुद्रयात्रा के अनेक बड़े संकटों पर नियंत्रण पा लेने में सहायता की है, इसमें सन्देह नहीं। ●

गाड़ियाँ सीढ़ियों पर चढ़ें-उतरेंगी

पश्चिम जर्मनी के मुन्स्टर यूनिवर्सिटी अस्पताल ने ऐसी बच्चागाड़ियाँ बनवायी हैं जिन्हें विकलांग बच्चे बैटरी की सहायता से स्वयं चलायेंगे और सीढ़ियों पर भी चढ़ा-उतरा कर चाहे जहाँ ले जा सकेंगे।

मई १९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कबूतर

डा. त्रिलोक मजुपूरिया

कबूतर संसार के सभी देशों में पाये जाते हैं। शरीर की प्रायोगिक रचना जानने के लिए सबसे अधिक प्रयोगशाला में प्रयोगित किया जाता है। इसके अनेक कारण हैं—इनका आकार अधिक बेडौल नहीं होता, ये अधिक सुविधापूर्वक मिल जाते हैं और ये चिड़ियों के जीवन की अनेक उपयोगिताओं को भलीभाँति दर्शाते हैं। इनकी हवा में उड़ने की शक्ति, इनके पंख, खोखली हड्डियाँ और कठोर धड़ का कंकाल विशेष रूप से उपयोजित है। इनका शरीर तुर्क के समान होता है और इसी कारण ये हवा में बड़ी तेजी से उड़ान करते फिरते हैं। इनके शरीर में तीन भाग स्पष्ट दिखायी देते हैं—सिर, गर्दन और धड़। सिर के अग्र भाग में एक लम्बी कठोर चोंच होती है जिसके आधार पर एक फूली हुई त्वचा का टुकड़ा होता है। चोंच और इसी त्वचा के बीच में दो टेढ़े नासिका-रन्ध्र होते हैं। चोंच के दोनों ओर आँखें होती हैं जिन पर ऊपरी और निचले पलक पाये जाते हैं। प्रत्येक आँख के अन्दर निमिलक झिल्ली भी होती है जो आँख के अगले कोने में स्थित रहती है जिससे कि पूरी आँख ढँक जाती है। प्रत्येक आँख के पीछे और नीचे एक-एक बाहरी कर्ण छिद्र होता है जिसका सम्बन्ध कर्णगुहा से होता है। कबूतर की गर्दन लम्बी और लचीली होती है। धड़ अधिक बड़ा और धड़ के पीछे के भाग में पूँछ होती है। कबूतर में दो अधिक मजबूत पंख होते हैं जो बैठते समय मुड़ जाते हैं परन्तु उड़ते समय फैले हुए रहते हैं। कबूतर के दो पैर होते हैं। प्रत्येक में चार अंगुल होते हैं और प्रत्येक अंगुल में एक कठोर नख। पैरों के ऊपर कठोर छिलके भी पाये जाते हैं। कबूतर की चोंच और जिह्वा स्पर्शीय अंग हैं। इसके अतिरिक्त पंखों और पूँछ के नीचे नाड़ी-तन्तु होते हैं। कबूतर के कान अन्य सरीसृपों (reptiles) से रचना में अधिक जटिल होते हैं। कान के अन्दर पाये जाने वाली कर्ण-नलिकाएँ एक छिद्र के द्वारा फैरिंक्स की सतह पर खुलती हैं। चिड़ियों में सुनने की शक्ति अधिक तीव्र होती है। इसीलिए वे अधिक निपुणता से बोल भी सकते हैं। कबूतर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आँख बहुत बड़ी-बड़ी और देखने की शक्ति मनुष्य से कई गुनी अधिक होती है। इनका देखने का क्षेत्र भी सभी दिशाओं में होता है। कुछ चिड़ियों में देखने की शक्ति मनुष्य से आठ गुनी तक होती है। कुछ चिड़ियाँ बहुत ही कम रोशनी में भी देख सकती हैं। मंद रोशनी में देखने की शक्ति मनुष्य से लगभग दस गुनी है। कबूतर में आँख बहुत ही उपयोजित होती है। इसलिए वह पेड़ों की शाखाओं के बीच में से बड़ी तेजी के साथ उड़ सकता है। आकाश में अधिक ऊँचाई पर उड़ते-उड़ते वह एकदम झूमकर नीचे उतर आता है। ये सब उपयोजिताएँ इस कारण है कि कबूतर दूर दृष्टि को क्षण भर में निकट दृष्टि में बदल देता है। कबूतर में रंग भेद भी पाया जाता है।

कबूतर की अनेक जातियाँ होती हैं। उत्तरी अमरीका में पाये जाने वाला कबूतर एक्टोपिस्टिस (ectopistis) है। इस कबूतर को 'यात्री कबूतर' भी कहते हैं। यह कबूतर पहले अधिक पाया जाता था परन्तु अब लुप्त हो गया है। इस जाति का आखिरी सदस्य सिनसिनाटी के चिड़ियाघर में १९१४ में मर गया। इसकी पूँछ एक ओर मोटी तथा दूसरी ओर पतली थी। कबूतर की दूसरी जाति टेरोन (Teron) कहलाती है। यह जाति अफ्रीका, हिन्दुस्तान और मलाया आर्की-पिलागो में पायी जाती है। यह खाने में बहुत ही स्वादिष्ट होती है। कबूतरों का सबसे बड़ा प्रकार गौरा (Gaura) है जो कि न्यूगाइना में पाया जाता है। इसके सिर के ऊपर पतली सुन्दर पंख के आकार की कलगी होती है। निकोबार में पाया जाने वाला कबूतर 'कोलोनास' कहलाता है। इसकी गर्दन लम्बी और चमकदार होती है। फ्रान्स में पाये जाने वाले कबूतर की तीन जातियाँ होती हैं। जंगलों में पाये जाने वाला कबूतर कोलम्बा पेलम्बस (*columba palumbus*) कहलाता है। इसके अतिरिक्त दूसरी जाति कौटुम्बिक होती है जिसे कोलम्बा ऐनेस (*columba aenes*) कहते हैं। तीसरी जाति चट्टानों में पायी जाती है जिसे कोलम्बा लिविया (*columba livia*) कहते हैं। कबूतर के लगभग २०० प्रकार हैं। ये सब नीले कबूतर (*columba livia*) से पैदा हुए हैं। कबूतरों की रंग-बिरंगी किस्मों को देखने के लिए संसार के प्रत्येक स्थानों पर प्रदर्शनियाँ लगायी जाती हैं। भारत में भी कबूतरों को खरीदने और बेचने की अनेक छोटी मंडियाँ हैं। वहाँ पर कबूतर पालने के शौकीन सायंकाल कामों से निबटकर अपने-अपने कबूतरों को लेकर वहाँ पहुँच जाते हैं। कबूतरों को पालने बाले इनको अनेक संख्या में पालते हैं जिनमें कि तरह-तरह के कबूतर होते हैं। इन्हीं कबूतरों के आपसी जनन के कारण अनेक प्रकार के सुन्दर आकर्षित रंग-बिरंगे कबूतर पैदा हो जाते हैं। कबूतरों के वंश में अनेक प्रकार के सदस्य निश्चित रंग के होते हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं।

कैरियर (Carrier)—ये कौटुम्बिक माने जाते हैं। पहले ये एक स्थान से दूसरे स्थान पर खबर ले जाने के काम में लाये जाते थे। इनके पंख नीले चट्टानी कबूतरों से कहीं अधिक बड़े होते हैं। इनकी आँख की पुतली और चोंच भी बड़ी होती है।

ड्रेगन (Dragon)—ये भी संदेश ले जाने वाले कबूतरों जैसे होते हैं परन्तु इनका शरीर हलका होता है और पंख भी।

बार्ब (Barb)—इस कबूतर की आँख की पुतली बहुत बड़ी होती है। इसका सिर धागे की रील की तरह होता है। ये तीनों प्रकार की जातियाँ बहुत ही कीमती हैं।

पाउटर (Pouter)—इस कबूतर का संचाश्य (crop) बहुत बड़ा होकर गोल हो जाता है और गर्दन से बाहर निकला रहता है। इनमें सबसे अधिक परिचित अंग्रेजी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाउटर होता है। इसके अतिरिक्त 'नोरविच क्रॉपर' (Norwich cropper) भी है। अंग्रेजी पाउटर आकार में बड़ा तथा नोरविच क्रॉपर छोटा होता है।

जेकोविन (Jacovin)—इस प्रकार के कबूतरों में सिर और गर्दन के पंख अधिक विकसित होते हैं। सिर साँप के फन के समान हो जाता है। सिर और गर्दन के बीच एक गोल स्थान होता है।

फैनटेल (Fantail)—इस प्रकार के कबूतरों की विशेषता यह होती है कि इनके पर, पंखे के आकार के होते हैं। सिर पीछे की तरफ अधिक होता है। शरीर में छोटे-छोटे पैर होते हैं और इस प्रकार से मालूम होता है कि वे बैठे-बैठे गिरे जा रहे हों।

टम्बलर (Tumbler)—इस प्रकार के कबूतर हवा में तेजी से उड़ते हुए एकदम पीछे मुड़ सकते हैं। अच्छी तरह से शिक्षित कबूतर घंटों तक उड़ सकते हैं। इन कबूतरों के भी अनेक प्रकार होते हैं। कुछ टम्बलर विशेष रूप से हवा में उड़ान भरने के योग्य पैदा किये जाते हैं। कुछ टम्बलर बड़े सुहावने और आकर्षित होते हैं। इसी के कुछ बहुमूल्य वंशज छोटे और लम्बे मुँह के होते हैं और इसी जाति से नन मैगपी (Nun Magpie) कबूतर भी पैदा हुए।

फ्रिल्ड (Frilled)—इस प्रकार के कबूतर भी संख्या में बहुत हो जाते हैं। इनमें गले और छाती पर पंखों की एक प्रकार की झालर-सी हो जाती है, कुछ के सिरों के ऊपर एक सुन्दर कलगी होती है।

एन्टवर्प (Antwerp)—इस प्रकार के कबूतर बहुत मजबूत होते हैं। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के रंग-विरंगे और आकार के कबूतर पाये जाते हैं। कुछ कबूतर इतने सुन्दर और आकर्षक हो जाते हैं कि उनकी कीमत ५० पौंड से लेकर १०० पौंड तक हो जाती है।

भारत में पाये जाने वाले बोलचाल भाषा में कबूतरों के नाम निम्न प्रकार हैं।

लोटन—इस कबूतर की यह विशेषता कि इसके पंजे मोड़ने पर यह जमीन पर लोट रहता है। यदि इसका पंजा पुनः ठीक अवस्था में न लाया जाए तो यह जान तक दे देता है। यह देखने में बहुत आकर्षक और रंग-विरंगा होता है।

गिरहबाज—इस कबूतर की आँख की पुतली में गोल, सफेद और काली धारी होती है। यह आकाश में उड़ने पर २-३ घंटे तक आकाश में कलाबाजियाँ दिखाया करता है। यह तब तक नीचे नहीं उतरता जब तक कि इसे भूख नहीं लगती।

लक्खा—यह कबूतर देखने में ही सुन्दर होता है क्योंकि इसके पंख अधिक मजबूत नहीं होते हैं। इसके सिर पर कलगी और पूंछ पंखे के समान होती है। यह कबूतर नाचता रहता है और देखने वालों के मन को लुभाता है।

गोला—इस कबूतर की आँख नारंगी की होती है और यह उड़ने के स्थान के चारों ओर चक्कर काटता रहता है।

लालबन्द—इस कबूतर का रंग नीला और उसके ऊपर सुनहरे रंग की धारी होती है। इसकी चोंच काली और नासिका-पर सफेदी लिये होते हैं। यह उड़ने में २-३ मील तक सीधा चला जाता है।

गफूर—इस कबूतर को घर की पहचान होती है। यह यदि ५ या ६ मील छोड़ा जाए तो भी अपने घर लौट आता है।

सिराजी—ये तीन प्रकार के होते हैं सब्ज सिराजी, काला सिराजी, लाल सिराजी। यह देखने में चतुर होता है और उड़ने में चतुर। इसी जाति में से कुछेक अनुभवी कबूतर बाज डैनों के ऊपर से छोटे-छोटे पंख एक के में दोनों डैनों के ऊपर से तोड़ देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान पर दूसरे जो पंख निकलते हैं, वे सफेद धारी लिए होते हैं। इसको गंडेदार सिराजी कहते हैं।

खाल कबूतर—यह आकार में छोटा होता है। इसकी चोंच भी छोटी होती है। सिर छोटा किन्तु गोलाकार होता है। पूँछ के पंख भी छोटे होते हैं। यह सब कबूतरों में सुन्दर तथा बहुमूल्य होता है।

कबूतर पालने का शौक मनुष्य को पुराने समय से है। सन् ११५० से बगदाद के मुसलमानों ने कबूतर पालने के लिए एक बहुत बड़ा बांस का घर बनवा रखा था। जब मंगोल जाति ने १२५८ में बगदाद को जीत लिया तो कबूतर पालने की रीति लुप्त हो गयी। सन् १८४८ में जबकि फ्रांस का विद्रोह चल रहा था तब कबूतरों का प्रयोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर संदेश भेजने के लिए किया जाता था। वे ही समाचार फ्रांस और बेल्जियम के अखबारों में छपा करते थे। १८४९ में बर्लिन और ब्रुसेल्स के बीच में जहाँ कि तार की लाइन नहीं थी, कबूतरों का प्रयोग टेलीग्राम भेजने में किया जाता था। बेल्जियम में कबूतरों के उड़ान की प्रतियोगिता की जाती थी। इसके अतिरिक्त ब्रिटेन, अमरीका और फ्रांस, सभी स्थानों पर कबूतरों की उड़ान की प्रतियोगिता अधिक प्रचलित है। भारत में भी है।

कबूतर के पंख बहुत ही सुन्दर और लुभावने होते हैं और इसे आकाश में उड़ने का बहुत अधिक ज्ञान है और इसी कारण यह बहुत लम्बी-लम्बी यात्रा करता रहता है।

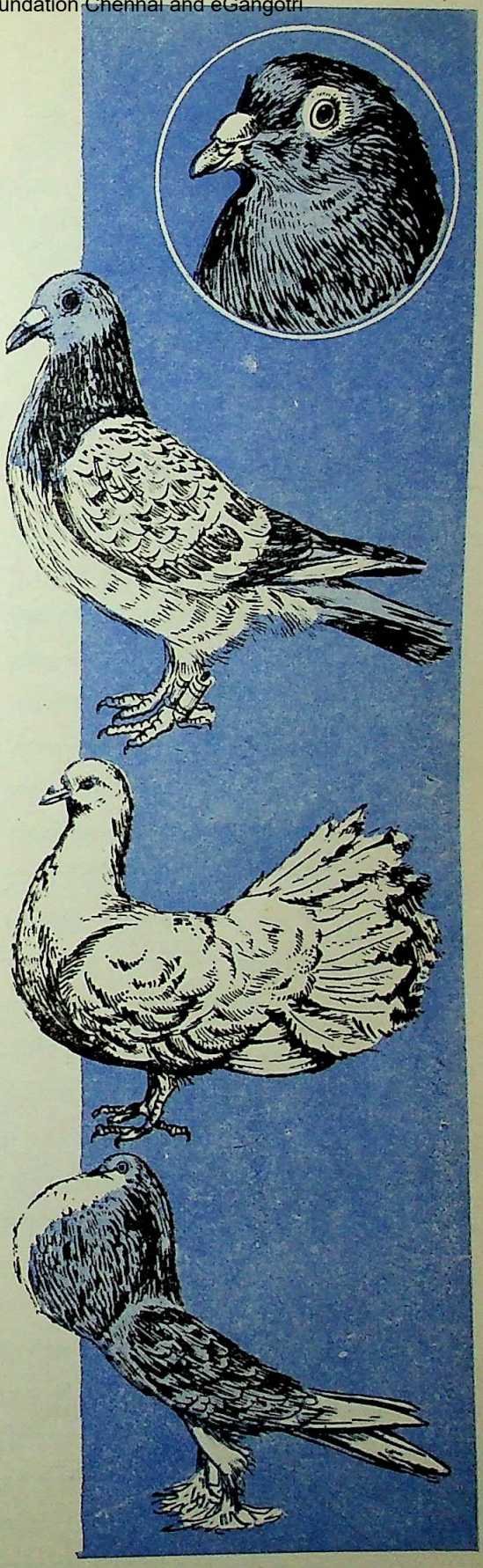

तरह तरह के कबूतर (ऊपर से नीचे)—**कबूतर→ की गर्दन और चोंच का निकट-दृश्य, दौड़ाक कबूतर** (Racing Pigeon) **इसके पांव में संदेश-पत्र बँधा हुआ देखा जा सकता है, पंख जैसी पूँछदार कबूतर** (Fantail Pigeon) **तथा गर्दन फुलाने वाला कबूतर** (Pouter Pigeon)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

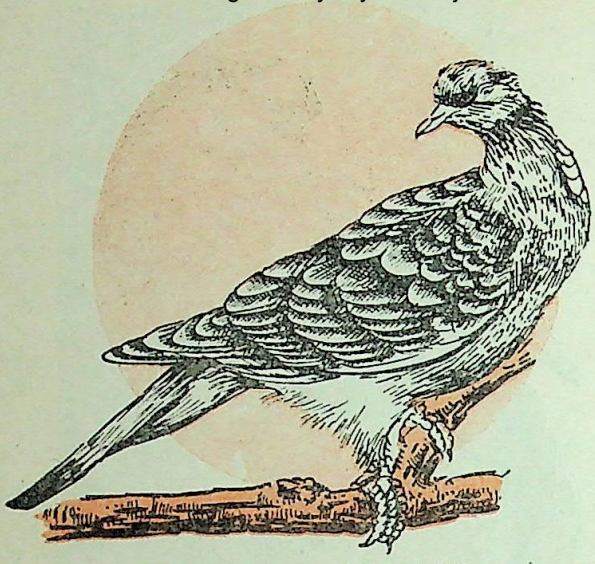

तीव्रगामी वन्य कबूतर (Wood Pigeon)

जितनी भी चिड़ियाँ संसार में पायी जाती हैं उन सबमें यह सबसे अधिक आलसी और घर में रहने वाली चिड़िया है। इसमें प्रजनन शक्ति बहुत अधिक है। मादा एक बार में केवल दो ही अण्डे देती है फिर भी उसके पालन-पोषण के बाद फिर नये अण्डे देना शुरू करती है। इस प्रकार से इसके अण्डे रखने की क्रिया कभी भी रुकती नहीं। एक जोड़ी कबूतर से एक साल के अन्दर ३२ कबूतर पैदा हो जाते हैं। फिर आगामी वर्ष तक ५१२ कबूतर पैदा हो जाते हैं और फिर तीसरे साल यह संख्या लगभग ८,००० हो जाती है। जब छोटे-छोटे मादा बच्चे ७ या ८ महीने के हो जाते हैं तभी अण्डे रखना शुरू कर देते हैं। इस प्रकार कबूतरों में प्रजनन का उन्माद-सा रहता है। यदि ये एक बार में २ से अधिक रखते होते तब तो इनकी संख्या का अनुमान करना भी कठिन हो जाता।

जब ये संख्या में इतने अधिक हो जाते हैं तब अनाज के खेतों और भण्डारों में कितना नुकसान करते होंगे इसका अनुमान करना भी कठिन है। यह अनुमान लगाया गया है कि एक कबूतर एक समय में लगभग १½ औंस अनाज खा सकता है। यह दिन में दो तीन बार भोजन करता है। इसी कारण से इसकी तृप्ति बहुत जल्दी हो जाती है। खेतों में जहाँ कि अनाज फैला पड़ा रहता है ये बड़े आराम से दूसरी चिड़ियों के साथ चरते रहता है। भोजन से तृप्ति होने के बाद ये आराम से खुली हवा में गुटरगूँ की आवाज करता फिरता टहलता रहता है। इस प्रकार सारी ऋतुएँ निकल जाती हैं। कबूतर के बच्चे अपने पिता के चारों तरफ चक्कर काटते रहते हैं और कभी-कभी वे अपने पंख बड़ी शक्ति के साथ अपने माता-पिता को मारते हैं। ये छोटे छोटे बच्चे कभी-कभी अपने माता-पिता से चोंच लड़ाते हैं। ये ऐसा इसलिए करते हैं कि माता-पिता इन्हें भोजन कराएँ। इस प्रकार अपनी चोंच फैलाकर भोजन नहीं माँगते जैसे कि अन्य चिड़ियाँ माँगती हैं। उस समय संचाश्य में एकत्रित रसा या शोरवा बच्चों के मुँह में नर या मादा उंड़ेल देती हैं जो इस काल में एक अच्छा भोजन होता है। कबूतरों में भी चोंच लड़ाने की जो क्रिया होती है वह वास्तव में प्यार नहीं अपितु उस अवस्था की क्रिया की केवल पुनरावृत्ति होती है।

कबूतरों का जीवन बहुत सुन्दर और हर्षित होता है। सुबह और दोपहर में ये झुण्ड होकर गोल चक्कर खा-खाकर उड़ाने भरते हैं। नील गगन में उड़ते समय सबसे आगे नेता होता है जो आकाश में घूमता रहता है और उसके पीछे-पीछे अन्य सब उड़ते हैं। उड़ान भरते समय कभी ऊपर चढ़ते हैं, कभी नीचे उतरते हैं और कभी मैदान और गाहों में जाकर आनाज चुगने लगते हैं। कभी छोटे-छोटे घास के टुकड़े कुतरते हैं। कभी-कभी ये तालाब, कुओं, खाई आदि में पानी पीते हुए नजर आते हैं। कभी-कभी चट्टानों पर और समुद्र के किनारे समुद्री पानी पीते हैं। कितना सुहावना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्मत्त इनका जीवन है! किसी भी प्रकार का जीवन में बन्धन नहीं है। तृप्ति और संतोष में ही सदा ये पलते रहते हैं। इस प्रकार जीवन व्यतीत हो जाता है। परन्तु इन्हें कभी किसी दुख का अनुभव नहीं होता। ये भूखे रह सकते हैं परन्तु फिर इनके बेढंगे और मस्त जीवन में किसी भी प्रकार से कमी नहीं आती। कबूतर किसी भी प्रकार की परेशानी पसन्द नहीं करते, यहाँ तक कि ये घोंसला बनाने के कार्य में भी किसी प्रकार की दिल-चस्पी नहीं रखते। नर कबूतर कुछ इधर-उधर के सीकों के टुकड़े इकट्ठे कर लेता है उनको एक के ऊपर एक जमाकर रख देता है। मादा कबूतर इन्हीं सीकों को मोड़कर बड़ी तरकीब से रख देती है। इसके अति-रिक्त और कोई घोंसला बनाने में परेशानी नहीं करते हैं। घोंसला ज्यादातर किसी भी मकान में, चट्टान पर और कुएँ आदि की दीवारों में बनाया जाता है। बाद में इसी घोंसले में अण्डे रख दिये जाते हैं। मादा कबूतर अण्डों के ऊपर दोपहरी के तीन या चार बजे से लेकर सुबह के १० या ११ बजे तक बैठी रहती है और इस समय नर कबूतर घोंसले के पास ही उड़कर चलता फिरता है और सहचरी का मन विचलित करता है और कभी उसकी स्वच्छाकारी प्रवृत्ति पर अविश्वास करता है। नर कबूतर लगभग ११ बजे अण्डों पर बैठ जाता है और फिर ३ या ४ बजे तक बैठा रहता है। इस बीच में मादा कबूतर अपने पंखों में खून का दौरा रखने के लिए इधर-उधर उड़ती है और कुछ अनाज चुग लेती है। यदि निश्चित समय पर मादा नहीं लौटती है तब नर कबूतर उसे अपने साथियों के बीच में से उड़ा लाता है। मादा चिड़िया २४ घन्टों के अन्दर लगभग १७ और १८ घन्टे अण्डों पर बैठती है।

बफन (Buffon) नामक वैज्ञानिक ने कबूतरों के जीवन का बहुत सुन्दर वर्णन किया है। उसने उनके बहुत से ऐसे गुण बतलाये हैं जो किसी अन्य प्राणी में नहीं मिलते। कबूतरों में सबसे ज्यादा अपने समाज के लिए प्रेम होता है। यह अपनी ही जाति के अन्य सदस्यों से पारस्परिक प्रेम रखते हैं। इनका प्रेम शुद्ध होता है तथा मादा व नर में अमिट प्रेम रहता है। ये बहुत ही साफ चिड़िया होती है और बड़ी शान के साथ झूम-झूमकर आकाश में उड़ती है। इनके अन्दर सरल आवाज होती है और सहवास का ढंग भी अनोखा तथा अद्‌भुत होता है। इनमें गुस्सा नहीं होता। ये आपस में नहीं लड़ते और सारे जीवन में प्रेम से रहते हैं। नर, मादा को बहुत प्रेम करता है यहाँ तक कि उसके कर्तव्यों का भी पालन करता है और अण्डे तक सेता है। इस प्रकार नर और मादा में समानता की भावना होती है और वह सुख अनुभव होता है जिसका कि अन्त नहीं।

इसमें कुछ अवगुण भी होते हैं। कबूतर झुण्ड में रहने वाला प्राणी है और इतना सीधा और बुद्धू है कि इसे अपने भविष्य की कोई चिन्ता नहीं रहती है। एक अलग रहने वाला कबूतरों का जोड़ा भी उतना ही सुखी रह

पहाड़ी कबूतर (Rock Pigeon) अपनी आकर्षक मुद्रा में

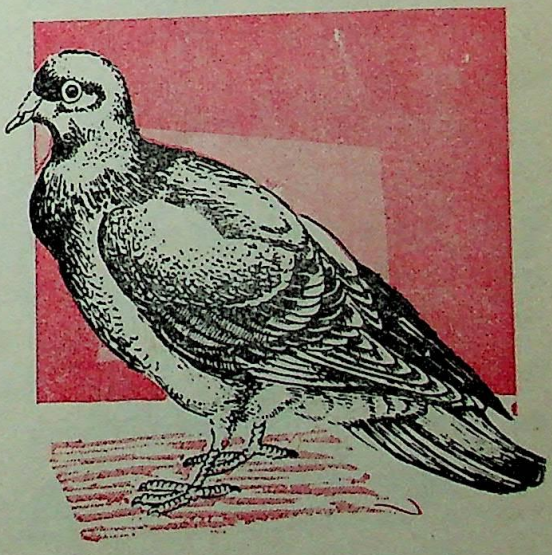

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है जितना कि वह झुण्ड में रहता है। एक दूसरे की सहायता करने की भावना इसमें जागृत ही नहीं होती है और जब कभी शत्रु आ जाता है तो ये इकट्ठे होकर उसे भगा भी नहीं सकते। यदि छोटे बच्चों को किसी कारण वश माता-पिता छोड़ देते हैं तो वे मर जाते हैं और आसपास का रहने वाला कोई भी कबूतर उनकी चिन्ता नहीं करता।

यह सत्य है कि कबूतरों में सहजीवन अन्त तक नहीं टूटता। वर्षों उपरान्त कबूतर के एक ही जोड़े को साथ-साथ रहते देख सकते हैं। कभी-कभी यह देखा गया है कि कुछ साहसी नर मादा कबूतरों के सामने पैर उछाल-उछालकर नाचते हैं और तब कोई भी नर मादाओं को अपने वशीभूत कर फुसला लेता है। उस समय नर कबूतर की सहचरी अण्डे सेने में संलग्न रहती है। इस कारण वह अपने साथी नर कबूतर के कार्य पर रोष प्रकट नहीं कर सकती। ठीक उसी प्रकार उस समय मादा कबूतर का भी साथी कहीं इधर-उधर उड़ता फिरता है।

कबूतरों में अपने अण्डों और बच्चों के प्रति बहुत ही लगाव होता है। जैसे ही बच्चे बड़े हो जाते हैं, मादा कबूतर बच्चों की चिन्ता करना छोड़ देती है। कुछ उदाहरण ऐसे भी पाये जाते हैं जबकि मादा कबूतर को चोट आदि लग जाए फिर भी वह अण्डों को सेना नहीं छोड़ती है। जब बच्चे बड़े हो जाते हैं और अपने आप चुगने लगते हैं; तो मादा कबूतर उनके प्रति निर्दयी हो जाती है और बच्चों को घोंसले से धकेल देती है। यदि एक मादा कबूतर का बच्चा दूसरे मादा कबूतर के घोंसले में बैठा दिया जाय तो वह उसको हानि ही नहीं पहुँचाती अपितु उसकी किसी प्रकार से चिन्ता भी नहीं करती।

कबूतर अन्य चिड़ियों की भाँति एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं फिर भी ज्ञात है कि इन्हें दिशा का ज्ञान कैसे होता है यदि कुछ कबूतर एक बन्द पिंजड़े में एक स्थान दूसरे पर पहुँचा दिये जाएँ और फिर वहाँ छोड़ दिया जाए तो फिर वे उड़कर अपने मूलस्थान पर आ जाते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि कबूतरों को दिशा का ज्ञान सूर्य की रोशनी से प्राप्त होता है। आधुनिक अनुसंधानों द्वारा दिशा का ज्ञान कान के अन्दर स्थित अर्द्ध चन्द्राकार नलियों द्वारा होता है। इसका प्रमाण इस बात से होता है कि कबूतरों का दिशा ज्ञान आकाशवाणी केन्द्रों के सम्पर्क विचलित हो जाता है।

कबूतरों की बीमारी

१. पंखों पर रिसोली निकल आने से पंख बेकार हो जाते हैं। इस बीमारी का इलाज कबूतर की बीट को आमाहल्दी में मिलाकर घी में भूनकर लेप बनाकर उस पर लगाने से किया जाता है।

२. नाक फूलने लगती है तथा उसे छा जाती है उसे कबूतरों का बुखार कहते हैं हरड, बहेड़ा, आमाहल्दी, काला नमक, इन घिसकर पानी में मिलाकर पिलाने से ज्वर हो जाता है और उदासी समाप्त हो जाती है उसको ताकत दिलाने के लिए बाजरे को में भूनकर उसमें मलाई मिलाकर तीन दि तक खिलाया जाता है। इसके बाद उड़ाने लिए मोतीचूर के लड्डू के दाने खिला उड़ाया जाता है।

इस प्रकार से कबूतर एक अनोखी अद्भुत चिड़ियों में से एक है। इसकी जीव लीला भी बहुत ही आश्चर्यपूर्ण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

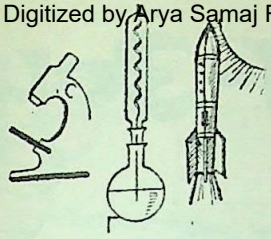

स्पर्श किये बगैर छपाई

प्रायः ही ऐसी वस्तुओं पर छपाई करने की आवश्यकता पड़ जाती है जिनकी सतह या तो अत्यन्त कोमल होती है या जहाँ हाथ की अथवा अन्य किसी की भी दाब नहीं पहुँच पाती। वैसी सतहों को स्पर्श किये बगैर ही उन पर चाहे जो कुछ छापने की नयी विधि का आविष्कार केलिफोर्निया स्थित स्टेनफोर्ड अनुसन्धान संस्थान की इंजिनियरिंग शाखा के श्री क्लाइड चिल्ड्रेस और लुई जे. काबेल ने किया है। विशिष्ट सतहों वाली वस्तुओं में ताजे फल, सब्जियाँ, रोल की गई रुई, कोमल वस्तुएँ तथा टेढ़ी-मेढ़ी वस्तुएँ गिनायी जा सकती हैं।

इलेक्ट्रोस्टेटिक प्रिंटिंग नामक इस नयी विधि के अन्तर्गत रंगीन स्याही से सूखे कणों को विद्युत-शक्ति से प्रभावित करके एक इलेक्ट्रोड प्लेट द्वारा एक महीन पर्दे से गुजारा जाएगा। उस पर्दे पर ही मुद्रित की जानेवाली आकृति, अंक तथा अक्षर आदि छिद्रों द्वारा बनी रहती है। पर्दे की दूसरी ओर एक अन्य प्लेट विपरीत विद्युत से प्रभावित रखी जाती है। वह प्लेट इस ओर के रंग-कणों को अपनी ओर खींच लेती है। फलस्वरूप छिद्रों द्वारा बनायी हुई आकृति अपेक्षित वस्तु पर अंकित हो जाती है।

यह रेल तैरती है

सीएटल और अलास्का (अमरीका) के मध्य खाड़ी को पार करते समय लदी हुई मालगाड़ी को इधर खाली होने और उधर पुनः लदने की अब आवश्यकता नहीं। खचाखच भरे हुए ३० वेगनों सहित मालगाड़ी एक ऐसे तैरते हुए प्लेटफार्म पर चढ़ा ली जाती है जो ३०० फुट लम्बा और ६८ फुट चौड़ा है तथा जिस पर रेल की पटरी बिठायी हुई है। और भी बड़े प्लेटफार्म निर्माणाधीन हैं।

विद्युत-टाइपराइटर, सफर का साथी

टाइपराइटर की प्रसिद्ध स्मिथ-कोरोना कम्पनी ने एक नया टाइपराइटर बनाया है। यह आवश्यकता पड़ने पर बिजली की फुर्ती प्रदर्शित करता है। सचमुच यह विद्युत-चालित है भी; तिस पर भी विशेषता यह है कि यह हलका, पौर्टेबुल माडल चाहे जहाँ सरलता से ले जाया जा सकता है।

वस्तुतः यह बैटरी-चालित है जिस पर १० घण्टे लगातार काम किया जा सकता है। चित्र में नीचे की ओर इसका पावर-पैकेट है और पास ही नन्ही इलेक्ट्रिक मोटर भी। यदि आप शहर में हैं तो बैटरी का पुनः चार्जिंग करा सकते हैं अथवा निर्जन स्थान पर हैं तो २-१ पैकेट अतिरिक्त भी रख सकते हैं। ५·२ वोल्ट की बैटरी, नन्ही डी. सी. मोटर सहित इस पावराइटर (Poweriter) नामक नये टाइपराइटर का वजन २५ पौण्ड से कुछ कम ही है। इसकी बैटरी कम से कम ४०० बार निरापद रूप से पुनः चार्ज करायी जा सकती है। अभी यह माडल नया ही नया होने के कारण ८००-९०० रुपये की लागत का है।

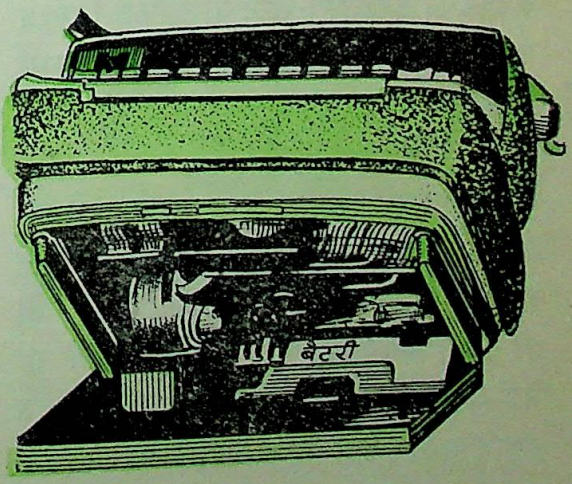

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्टील-उत्पादन में कार्बन

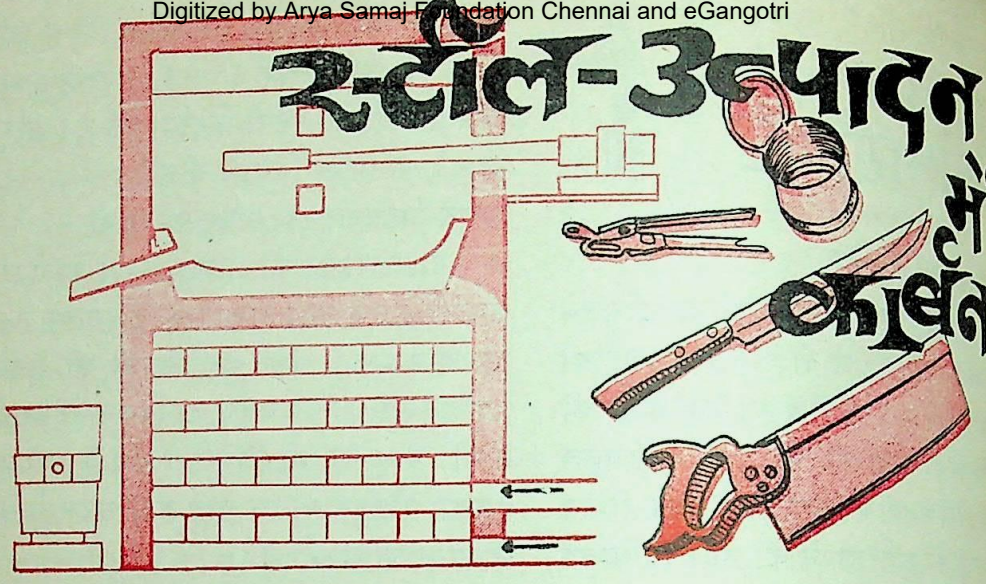

जगदीशप्रसाद

नुस्खा स्टील बनाने का यदि पाकविद्या की पुस्तक में लिखा जाए तो बहुत कुछ इस प्रकार रहेगा—लोहे को पिघलाइए। पिघल जाने पर उसमें एक चुटकी कार्बन डालिए। दोनों को एकजिगर मिला लीजिए ताकि लोहे और कार्बन के अणु-परमाणु परस्पर मिल जाएँ। उस मिश्रण को ठण्डा पड़ने को छोड़ दीजिए। लीजिए, आपका स्टील तैयार है।

स्टील-स्टील में अन्तर है

ऊपर लिखित पाकविधि से स्टील बन तो गया किन्तु स्टील-स्टील में अन्तर है। वह इस प्रकार समझा जा सकेगा—हम देखते हैं कि सड़कों पर नया लैम्प-पोस्ट या ट्राफिक-सिग्नल का पालिशदार, रंग-बिरंगा लोहे का खम्भा इधर लगा, उधर किसी कार ने मानो उसके चुम्बकत्व से आकर्षित होकर उसमें टक्कर दे मारी। परिणाम यह हुआ कि खम्भा तो टूट गिरा और कार का बफर (ठोकर) दचका खाकर, मुड़कर ही रह गया। क्यों ? दोनों ही तो स्टील के बने हैं ! फिर यह भेद क्यों ? यह भेद ही इस लेख का मुख्य विषय है। किस प्रकार कार्बन कम या अधिक मात्रा में लोहे से मिश्रित होकर विभिन्न स्तरीय स्टील हो देता है, यही देखना है।

थोड़ा ही कार्बन, अत्यधिक मजबूती

लोहे को फौलादी मजबूती देने के लि कार्बन की बड़ी मात्रा आवश्यक नहीं होती साधारणतया तो ०·१% से १·०% तक सीमा रहती है। १·०% तक की मात्रा मि पर तो स्टील काफी सख्त और मजबूत रह है किन्तु मात्रा बढ़ाने पर कठोरता अ बढ़ती है, मजबूती घट जाती है। कार्बन मात्रा २·५% कर देने पर लोहा स्टील रह जाता, कास्ट आइरन बन जाता है। कास्ट आइरन सरलता से पिघलाकर मन आकारों में ढाला जा सकता है किन्तु चटखता शीघ्र है।

सही मिश्रण से सही वस्तु

इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि प्रकार का स्टील पाने के लिए कार्बन की मात्रा ही मिश्रित की जानी चाहिए। सीलबन्द टिन ही लीजिए (फ्रूट कैनिंग टिन) और उसे खोलने के चाकू को भी दोनों स्टील के हैं किन्तु एक को काटना है दूसरे को कटना है। अतः उसी हिसाब से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में कार्बन की विभिन्न मात्राएँ मिश्रित की जाती हैं। कार्बन-मात्रा की इस विभिन्नता के अतिरिक्त दोनों की निर्माण-विधि में भी अन्तर रखा गया है।

निर्माण-विधि से तात्पर्य है उच्च ताप तक गर्म करना और गर्म मिश्रण को विभिन्नता से ठण्डा करना। स्टील का गुण इस बात पर बहुत निर्भर करेगा कि उसे धीरे-धीरे ठण्डा होने दिया गया है अथवा एकदम ठण्डा कर दिया गया है। बहुत धीरे-धीरे ठण्डा होने दिया जाने की विधि को अनीलिंग (annealing) कहते हैं। इसके फलस्वरूप जो स्टील तैयार होता है वह अपेक्षाकृत नर्म तथा चाहे जिस आकार में सहज बदले जाने योग्य होता है। इसके विपरीत, एकदम ठण्डा करने अर्थात् उस तीव्र आग को तुरन्त बुझाने के फलस्वरूप काफी कठोर स्टील प्राप्त होता है—इतना कठोर कि अन्य स्टील-निर्मित वस्तुओं को काटने के लिए औजार उसी के बनाये जाते हैं।

लोहा स्वयं तो काफी नर्म रहता है। कार्बन मिलाए जाने पर लोहे के तीन परमाणु, कार्बन के एक परमाणु से संयुक्त होकर आइरन कार्बाइड बनाते हैं। तत्पश्चात् गर्म किए जाने पर उक्त आइरन कार्बाइड के परमाणु इस योग्य हो जाते हैं कि उन्हें भिन्न-भिन्न विधि से ठण्डा करके आवश्यक प्रकार का स्टील प्राप्त किया जाये। इन्हीं में कार्बन के साथ-साथ विविध प्रयोजनों के लिए विभिन्न धातुओं के यौगिक भी मिलाये जाते हैं। मैंगेनीजयुक्त स्टील विशेष रूप से सख्त होता है और क्रोमियम-निकिलयुक्त स्टील उससे भी मजबूत होता है। उस पर जंग भी नहीं लगता। टंग्स्टन-स्टील अत्यधिक सख्त और मजबूत होता है।

तरह-तरह के स्टील

उद्योगों में, निर्माणों में तथा इंजीनियरिंग में असंख्य प्रकार के स्टील तैयार करने पड़ते हैं। शहतीर अर्थात् गडर (girders) और जहाज की प्लेटें बनाने में यह आवश्यक होता है कि वे सरलता से बनाये जा सकें और औद्योगिक दृष्टि से खर्चीले भी न हों। अतः ऐसे स्टील में ०·२% कार्बन मिलाया जाता है। रेजर, चाकू, छुरी आदि की तेज धार काफी समय तक बनी रहे, यह आवश्यक है। इनके लिए १% के लगभग कार्बन-मिश्रित स्टील बनाया जाता है। गटर और मोरियों के पाइपों को विशेष मजबूती की आवश्यकता नहीं होती और उन्हें अधिक खर्चीले बनाना भी उचित नहीं होता। इसलिए वे बढ़िया स्टील के बनाने की अपेक्षा कास्ट आइरन के बनाये जाते हैं। सामान्य रूप से जो चार प्रकार के स्टील प्रचलित हैं, उनमें कार्बन-मिश्रण निम्न भाँति रहता है:

माइल्ड स्टील	०·२५% तक
मीडियम कार्बन स्टील	०·२५% से ०·४५% तक
हाईकार्बन स्टील	०·४५% से १·५% तक
कास्ट आइरन	२·५% से ४·५% तक

लोहे का परमाणु-रचना भेद

धातुशास्त्रियों ने धातुओं के परमाणुओं की रचना को निश्चित आकृतियोंयुक्त जालियों के रूप में माना है। ये जालियाँ चतुष्कोण, षट्कोण तथा अष्टकोण आकार की करोड़ों कोशिकाओं के रूप में रहती हैं। इनमें लोहे की

स्टील का जहाँ, जैसा उपयोग, वैसा ही कार्बन-मिश्रण का अनुपात

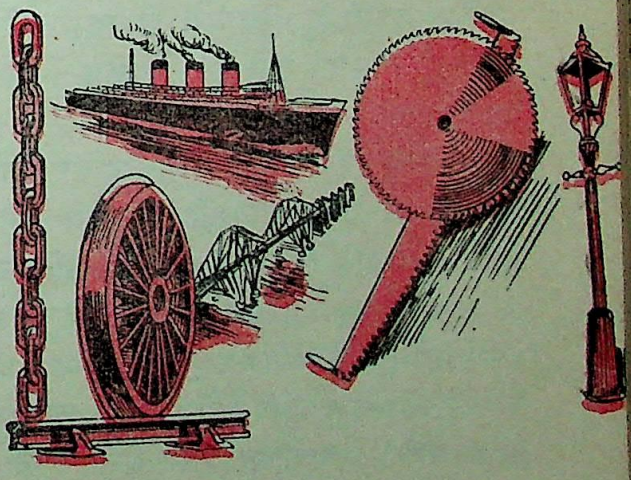

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

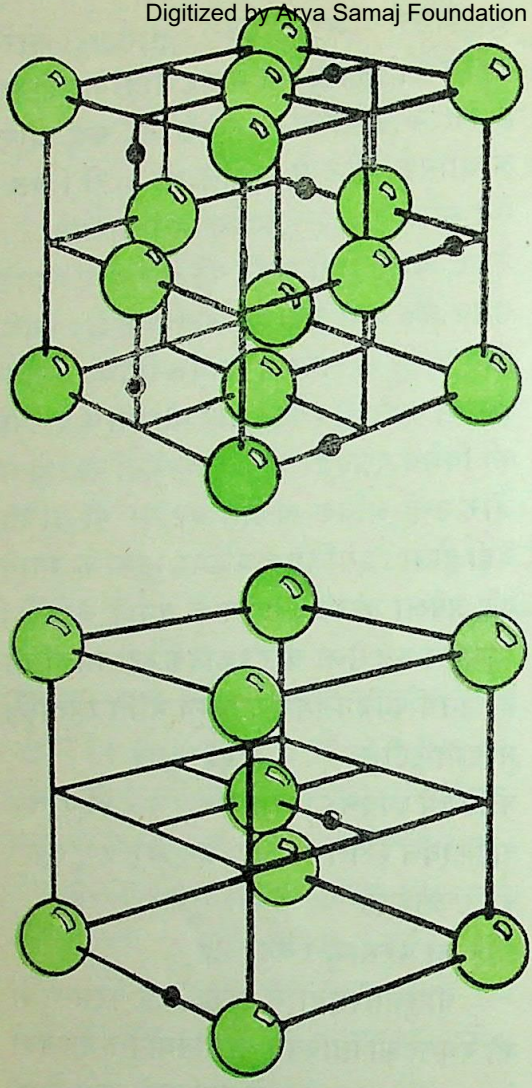

लोहे की परमाण्विक रचना के दो प्रकार (ऊपर) ९०६°C ताप पर, तथा (नीचे) सामान्य ताप पर। इनमें छोटे बिन्दु कार्बन के परमाणु दर्शाते हैं

परमाणु-रचना काफी मनोरंजक रूप-स्वरूप प्रदर्शित करती है। चित्र में दो प्रकार की जालियाँ दिखायी गयी हैं—१. फेस-सेण्टर तथा २. बॉडी-सेण्टर।

लोहे के परमाणु की ऐसी जालीयुक्त रचना इस बात पर आधारित रहती है कि उसे किस विधि से ठण्डा किया गया है तथा उसी पर स्टील की मजबूती का भी आधार रहता है। इसमें निम्न बातें विशेष महत्त्व की हैं—

१. सामान्य ताप पर लोहे के परमाणु चित्र (नीचे) में प्रदर्शित जाली जैसी रचना में रहते हैं और ९०६°C तक गर्म करने पर स्वयं ही चित्र (ऊपर) की जाली के रूप में आ जाते हैं।

२. सामान्य ताप पर और चित्र (नीचे) की रचनायुक्त लोहे में कार्बन का १ का १०० वां भाग कठिनता से मिश्रित हो पाता है जबकि लगभग ११४५°C ताप पर और चित्र (ऊपर) की जालीयुक्त रचना होने पर २% तक की मात्रा में कार्बन मिश्रित हो सकता है।

३. पिघले हुए लोहे में कार्बन मिश्रित करके जब उसे धीरे-धीरे ठण्डा होने के लिए छोड़ दिया जाता है तब कार्बन उसमें घुल नहीं हो जाता, बल्कि एक परमाणु कार्बन लोहे के तीन परमाणुओं से संयुक्त हो जाता है। तब वह आइरन कार्बाइड बन जाता है।

तत्त्वों में अग्रणी, यह कार्बन

यह बिना अतिशयोक्ति कहा जा सकता है कि रसायन-जगत में अब तक के ज्ञात समस्त तत्त्वों में कार्बन का उपयोगिता की दृष्टि से सर्वोच्च स्थान है। इसके यौगिकों की संख्या में नहीं बाँधा जा सकता। यदि कार्बन न होता तो अकेला लोहा हमारे कुछ भी काम न आता। बड़े-बड़े जहाज, टेन्क, ट्रैक्टर, मोटर-कारें, रेल्वे, ऊँची-ऊँची इमारतें कुछ भी न होता! तब हमारा आज का युग स्टील-युग कैसे कहा जाता? कहाँ से बड़े-बड़े पुल और विशाल बाँध बन पाते? स्टील के अभाव में कदाचित् हमारी संस्कृति, हम रा सारा जीवन पंगु ही बनकर रह जाता और यदि कार्बन न होता तो स्टील का अस्तित्व ही न होता।

कार्बन यह भी, कार्बन वह भी

संसार की कठोरतम वस्तु है हीरा। दूसरी ओर, ठोस होते हुए भी जो द्रव के में काम आ सके, वह है ग्रेफाइट (graphite)। ग्रेफाइट के द्रव रूप में काम आने का अर्थ स्नेहक (lubricant) के रूप में प्रयुक्त होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रेफाइट का सरलतम उदाहरण पेन्सिल है जिसकी नोक कागज पर फिसलते हुए भी घिसती हुई अपना चिन्ह छोड़ जाती है। रासायनिक दृष्टि से दोनों शुद्धतम कार्बन के रूप हैं। दोनों में जमीन-आसमान का यहअन्तर केवल परमाणुओं के रचना-भेद के कारण है। हीरे में कार्बन के परमाणु एक से चार के हिसाब से इस दृढ़ता से जुड़े रहते हैं कि हीरे को संसार की कठोरतम वस्तु बनाये हुए हैं और ग्रेफाइट में कार्बन के परमाणु मानो केवल एक के ऊपर एक टिके रखे हों जो कागज की सतह पर भी बिखर जाते हैं।

चिर-संचित कोयला भी कार्बन ही है

सर्दियों में जब-जब हम धूप का आनन्द लेते हैं, तब-तब यह भी मन करता है कि क्या ही अच्छा होता, यदि झुलसाती गर्मियों में सूर्य के ताप को फ्रूटकनिंग की भाँति किसी डब्बे में बन्द रख सकते और सर्दियों में, विशेषत: बादलों के कारण धूप के अभाव में उस डब्बे में संचित गर्मी का आनन्द ले सकते?

प्रकृति इस बारे में भी बहुत पहले सोच चुकी थी। लाखों वर्ष पूर्व, पृथ्वी के आरम्भ-काल के विशालकाय वृक्ष, वनस्पतियाँ, दैत्याकार जीव-जन्तु ज्यों-ज्यों समाप्त होते गए, पृथ्वी उन्हें परत-दर-परत अपने गर्भ में संचित करती गयी। उस अनन्त काल से संचित चले आ रहे ताप के विभिन्न रूप आज हम खानों में कोयले के रूप में प्राप्त कर लेते हैं। वह कोयला भी तो शुद्ध कार्बन ही है!

सृष्टि में पग-पग पर उपयोगी इस कार्बन के बिना हमारा जीवन क्या से क्या होता, उसकी कल्पना भी कठिन है। ●

पढ़े कहाँ तक, गुने कहाँ तक ?

पहले प्रश्न का उत्तर जितना सरल, दूसरे का उतना ही कठिन और कहीं-कहीं तो जवाब ही नदारद! कोई भी डिगरी कैसी भी बड़ी हो, छोटे से प्रशिक्षण अर्थात् कार्यानुभव की पालिश बगैर किसी भी नौकरी का दर्वाजा नहीं खोल पाती। पश्चिम जर्मनी में नये प्रयोगोंस्वरूप, शिक्षण अब विद्यालयों में नहीं, कारखानों और प्रशिक्षण-संस्थानों में दिया जाता है। वहाँ लाखों प्रशिक्षार्थियों को प्रवेश इतना सहज रहता है कि हजारों सीटें फिर भी खाली रहती हैं। हमारे यहाँ जैसा नहीं कि सीटें सीमित, साधन सीमित और सब कुछ सीमित ही सीमित जिसके फलस्वरूप सच्चे जिज्ञासु शिक्षार्थी अर्थाभाव तथा उचितानुचित साधनों के अभाव के कारण लाभ उठाने और अपनी सेवाओं का लाभ देश को देने से वंचित रह जाते हैं। पश्चिम जर्मनी में छात्राएँ अधिकतर कार्यालय-संचालन तथा टैक्स्टाइल उद्योग में और युवक छात्र विद्युत संयंत्रों के प्रशिक्षण में दिलचस्पी ले रहे हैं। प्रशिक्षण के पश्चात् उन्हें उपरोक्त दूसरे प्रश्न का उत्तर देना कि गुने कहाँ तक और आजीविका प्राप्त करना, दोनों ही सरल हो जाते हैं।

खोदा पहाड़...

...और निकला चूहा! एक चौराहे पर तब सनसनी फैल गयी जब टाइम-बम जैसा दिखने वाला कुछ गोल-गोल एक कोने में पड़ा नजर आया। तुरन्त उड़न दस्ता बुलाया गया जिसने आते ही सबों को दूर भगाकर मैदान साफ कर दिया और उसे छेड़ने में हो सकने वाले किसी भी विस्फोट के प्रति सुरक्षा की पूरी तैयारी कर ली गयी। सब कुछ ठीक हो जाने पर आस्तीन चढ़ाकर दो व्यक्ति अत्यन्त सावधानी से उसे उलटने-पुलटने और खोलने लगे तो निकले मुर्गी के चार बच्चे जो न जाने कब के ठण्डे हो चुके थे!

मई १९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

पढ़ते भी हैं जीभ से

सन् १८८३ और अमरीका की कोलोरेडो-खानों की यह बात है। मेकफर्सन तब १७ वर्ष का किशोरवय श्रमिक था। संयोग की बात कि निश्चित घड़ी से दो सेकण्ड पहले ही चट्टान उड़ाने के विस्फोट ने धड़ाका किया और हवा में ३० फुट उछल कर मेकफर्सन जो धरती पर आ गिरा तो आँखें और दोनों हाथ खो चुका था। सामान्य व्यक्ति के लिए तो ऐसे जीवन से मर जाने के अतिरिक्त और कोई चारा ही न था, किन्तु मेकफर्सन दूसरी ही मिट्टी का बना था। उसने जीवन की समस्त निराशाओं और हीनताओं से डटकर लोहा लिया और अपनी जीभ की नोक को ही धातु के टाइप अक्षरों पर फिरा-फिरा कर पढ़ने का अभ्यास किया। उस अभ्यास, उस लगन ने आखिर जो सिद्धि उसे प्रदान की, वह अनोखी ही थी। सामान्यतः दृष्टि हीन व्यक्ति ब्रेल-पुस्तकों के उभरे हुए अक्षरों को अंगुलियों से टटोल कर पढ़ते हैं किन्तु मैकफर्सन है कि अपनी जीभ की नोक से यह कार्य और भी अधिक दक्षतापूर्वक कर लेते हैं।

८-९ वर्षीय माता-पिता

फोटो सहित यह प्रमाणसिद्ध सत्य है कि १९१० की ८ जनवरी को ९ वर्षीय पिता की ८ वर्षीय पत्नी से एक सर्वांग सम्पूर्ण शिशु को अपनी कोख से जन्म दिया। उक्त दम्पति 'सी' (Hsi) परिवार के नाम से प्रसिद्ध हैं और पूर्वीय एशिया के एक छोटे से नगर में खेती-बाड़ी करते हैं। आज के उस वयोवृद्ध दम्पति का वह शिशुकालीन फोटो वहाँ की प्रान्तीय सरकार के संग्रहालय में सुरक्षित है।

बिल्लियों हज को चलीं

'सत्तर चूहे खा कर बिल्ली हज को चली' जैसी बिल्ली उनमें एक भी नहीं थी। बिल्लियाँ एक रानी की थीं और उन्हें हज कराने का शौक भी रानी को ही था। १८वीं में मिस्र के हरम में वह भी एक रानी थी। मरते समय अपनी प्यारी बिल्लियों के परिवार के लिए वह वसीयत कर गयी कि उन्हें प्रतिवर्ष एक यात्रा हज की अवश्य कराई जाये और उसका खर्चा उसके छोड़े हुए कोष में से किया जाता रहे। कुछ वर्षों तक एक ही वयोवृद्ध अभिभावक वह क्रम जारी रखा और ऊँट के काफिले में बिल्लियों को लाद कर हज की यात्रा कराता रहा। उसी से उसका नाम भी 'बिल्ली का बाबा' पड़ गया और बिल्लियों को हज का खिताब दिया जाता रहा।

यह त्रिराशि का संयोग

प्रिन्स बिस्मार्क ३ विद्यालयों में पढ़े, ३ देशों के राजदूत रहे, ३ युद्धों में लड़े, पूरे में ३ ही घोड़े खोये, ३ सन्धियाँ कीं, ३ रखे (बिस्मार्क, शोनासेन, लाएनबर्ग) ३ उपाधियाँ रखीं, (काउण्ट, ड्यूक, प्रिन्स) ३ घातक हमलों के सामने किए, ३ बार पत्र दिए और ३ ही पुत्रों के पिता बने!

पुरस्कारों का पुरस्कार, मौत

१८०२ से १८२० के मध्य इण्डोचाइना में सम्राट गिया लान्ग का शासन रहा। उनकी मृत्यु के पश्चात् लुटेरों ने उन्हें कब्र में भी चैन न लेने दिया और लूट कर ले गये। संयोगवश एक मछेरे के हाथ उनका सिर-कंकाल लग गया। बड़े पुरस्कार की आशा में वह खोपड़ी को राजदर्बार में ले गया तो उसे निराश भी नहीं किया गया। सात पीढ़ियों तक उसकी गरीबी मिटा दी गयी, उसके परिवार को राज्याश्रय में ले लिया गया और उसे उच्च पद भी दे दिया गया। इतने सम्मान पश्चात् उसे इस अपराध पर मृत्युदण्ड दि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया कि ईश्वरावतार जैसे सम्राट का मृत मस्तक उसने अपने अपवित्र हाथों से क्यों छुआ ?

इन सा नहीं देखा

इटली के सम्राट उम्बर्टो (प्रथम) को २८ जुलाई १९०० के दिन जो व्यक्ति देखने को मिला, वैसा उन्होंने जीवन भर नहीं देखा था और उस दिन भी वह देखना प्रथम तथा अन्तिम था। उस दिन बड़े होटल में सम्राट अपने सेनापति के साथ जबकि भोजन कर रहे थे, होटल के मालिक से दिखने वाले उस व्यक्ति और सम्राट का निम्न वार्तालाप देखिये :

"आपका परिचय ? पहले कहीं देखा मालूम होता है।"

"जी, दर्पण में देखते ही होंगे। मुझे उम्बर्टो कहते हैं और मैं १४ मार्च १८४४ को पैदा हुआ था।"

"कमाल है ! यही तो मेरा नाम और मेरी जन्मतिथि है !! आपकी पत्नी, बच्चे···?"

"जी, मेरी पत्नी का नाम मार्गरीता है और हमारे एकमात्र पुत्र का नाम है विक्तोरियो।"

"अद्भुत ! सब कुछ मेरा ही मेरा !! यह होटल तुमने कब से सम्हाला ?"

"९ जनवरी १८७८ से।"

"उसी दिन तो मैंने राजगद्दी सम्हाली थी! आश्चर्य है, हम अब तक परस्पर न मिल सके। कल ही मुझसे फिर मिलोगे ?"

"अवश्य, कल आप ओलम्पिक खेलों में पुरस्कार देने आयेंगे ही, तभी आपके दर्शन हो जायेंगे।"

किन्तु दोनों पुनः मिल न सके। होटल-मालिक उम्बर्टो सुबह ही अकस्मात् भरी बन्दूक का निशाना बन गया और सम्राट उम्बर्टो को समारोह के मध्य किसी आततायी की दो गोलियों ने ठण्डा कर दिया। दोनों की शव-यात्रा साथ ही निकली थी !

मई १९६४

गुब्बारों पर समुद्र की सैर

वैसे इस बालिका का इरादा सैर करने का कम ही था। तीन साल की यह बालिका अपने माता-पिता के साथ समुद्र-किनारे, मेले में घूम-फिर रही थी। वहीं पर २५-३० गैस-भरे गुब्बारे लेकर खेल में मस्त हो गयी। खेल ही खेल में गुब्बारों के गुच्छे को अपनी फ्राक में बांध लिया। तभी तेज हवा का एक झोंका आया और जैसे माली किसी डाल के फूल को चुन ले, इस बालिका को मां-बाप के देखते-देखते, उनके हाथ से छुड़ा भागा। नन्हीं बालिका स्तब्ध बनी समुद्र के ऊपर उड़ी जा रही थी और बेबस लोग देखे जा रहे थे। एक कप्तान अपनी मोटरबोट लेकर, लहरों पर दौड़ा और अधबीच पहुँचने पर बन्दूक से गुब्बारों को फोड़ना शुरू किया। गुब्बारों का आधार टूटते ही बालिका नीचे आ गिरी कप्तान की फैली बांहों में, एक भी खरोंच लगे बगैर, सही सलामत !

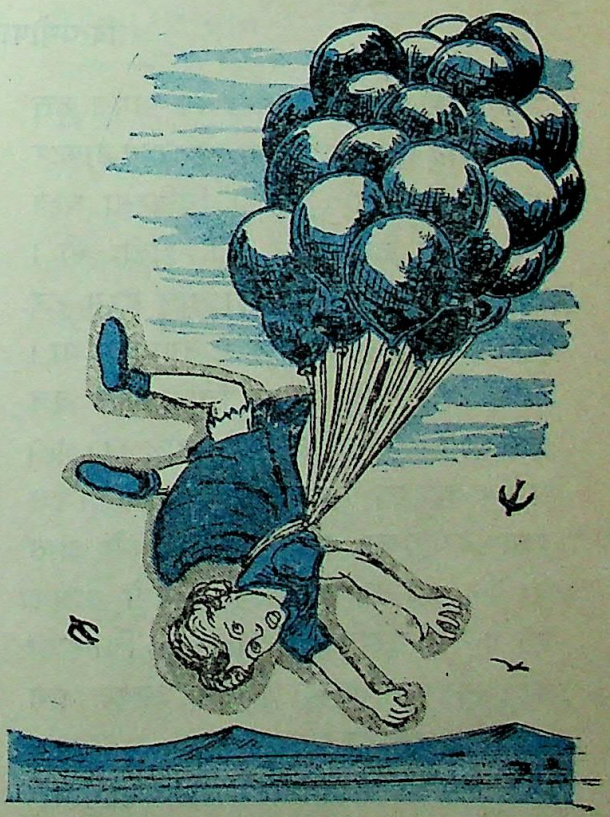

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

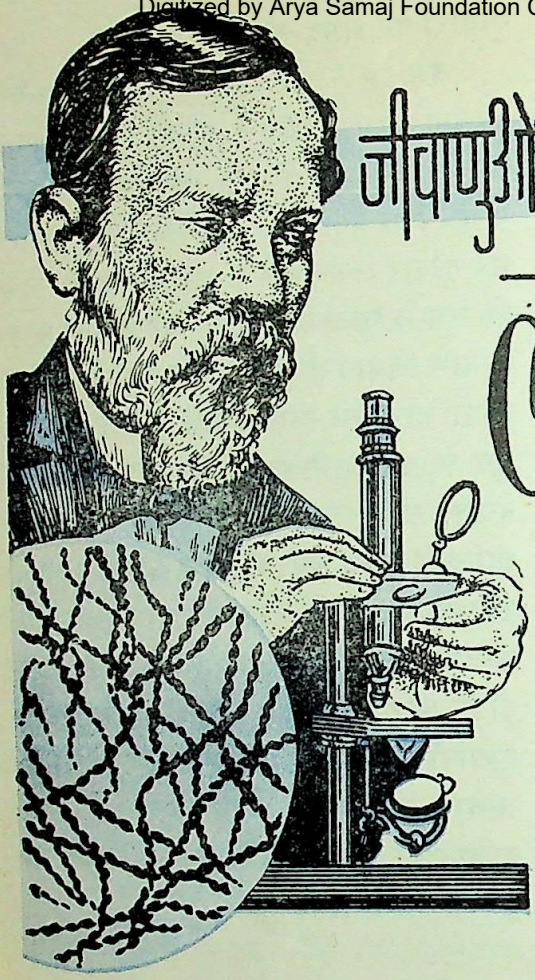

जीवाणुओं से मानव का महान रक्षक

लुई पाश्चर

आदित्यगोपाल झिंगरन

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक पागल कुत्ते के काटे के इलाज के लिए लोहार ही डाक्टर समझा जाता था। उसकी चिकित्सा घाव का दहन कर्म करने की होती थी। लोहार लोहे की सलाख को लाल गरम कर लेता था और उसको घाव में लगा देता था। भाग्यशाली मनुष्य ही इस चिकित्सा से बच पाता था। पूर्वीय फ्रान्स के डोल (Dole) नामक गाँव का एक बालक बचपन से ही इस दृश्य को देखा करता था। किसे ज्ञात था कि ५० वर्ष की आयु में वही बालक एक ऐसे ऐन्टिरेबिक (antirabic) चिकित्सा का अनुसंधान करेगा जिससे उसका नाम अमर हो जायेगा?

फ्रांस के मीसेनगौट (Meissengott) गांव में जोसेफ मीस्टर (Joseph Meis... नामक एक ९ वर्षीय बालक अपने घर... स्कूल जा रहा था कि रास्ते में एक पागल... ने उसे १४ जगह काटा। उस बालक... माँ अपने घरेलू चिकित्सक डाक्टर ... (Dr. Weber) के पास ले गयी। डाक्... घावों का दहनकर्म करने के बाद यह ... दी कि वह उसको पेरिस के एक ... चिकित्सक के पास ले जाये जो जल-... (hydrophobia) अथवा रेबीज (rabi... के बारे में अधिक जानता है और जोसेफ... जान बचा सकता है। वहाँ पहुँचने पर ... तो उसने चिकित्सा करने से इनकार कर... क्योंकि तब तक उसने केवल उन कुत्तों ... सफलतापूर्वक इलाज किया था जो पागल...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से काटे गये थे। यह बाल रोगी उसके जीवन का प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण केस था। बच्चे की हालत देखकर उसे अपने जीवन का सबसे कठिन प्रयोग करने को बाध्य होना पड़ा। अन्ततः उसके लगाए गए टीकों (serums) से जोसेफ स्वस्थ हो गया। वह संसार का प्रथम व्यक्ति था जो पागल कुत्ते के काटने पर ठीक हुआ था। उससे उस चिकित्सक की इतनी प्रसिद्धि हुई कि दूर-दूर से लोग उसके चिकित्सालय में कुत्ते के काटे के इलाज के लिए आने लगे।

वह चिकित्सक महान् वैज्ञानिक लुई पाश्चर था। उसका जन्म सन् १८२२ में हुआ था। विद्यार्थी जीवन में वह एक साधारण छात्र था और उसके व्यवहार से कभी-कभी उसके अध्यापक नाराज हो जाया करते थे। १५ वर्ष की आयु में जब वह बाहर पढ़ने गया तो घर की याद आने के कारण वापस लौट आया। इस वैज्ञानिक के जीवन के आरम्भ में ऐसी कोई विशेष बात न थी जिससे यह आभास होता कि पाश्चर एक महान् वैज्ञानिक होगा। शुरू में वह बहुत सुन्दर चित्र बनाया करता था परन्तु ज्यों-ज्यों वह बड़ा होने लगा विज्ञान की छाप उस पर पड़ने लगी और वह पुनः पेरिस अध्ययन को वापस चला गया। इस बार अध्ययन उसके जीवन का अंग बन गया। उन्नीस वर्ष की आयु तक उसने भौतिक विज्ञान तथा गणित की अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली। इसके बाद पाश्चर का ध्यान रसायन की ओर अधिक आकर्षित होने लगा, विशेष रूप से कार्बनिक रसायन की ओर। फ्रान्स में रसायन के प्रति जो अज्ञानता तथा अंधविश्वास था वह लेवाशिए (Lavoisier) के कार्य के फलस्वरूप दूर होता जा रहा था और इस प्रकार रसायन का क्षेत्र ही परिवर्तित हो रहा था।

१८४०तक यह अंधविश्वास प्रचलित था कि जीव-रसायन एक ईश्वरी देन है परन्तु लुई पाश्चर को यह धारणा असत्य मालूम होती थी। इन्हीं विचारों के अन्तर्गत अपने जीवन के उन्नति के दिनों में एक दिवस वह प्रयोग-शाला से चिल्लाता हुआ निकला 'मुझे मिल गया, मुझे मिल गया'। पाश्चर को जो प्राप्त हुआ था वह जन-साधारण की समझ के बाहर था और उसे केवल रसायनज्ञ ही समझ सकता था। वह अनुसंधान मणिभ-रचना की दिशा में था जो रसायन तथा प्रकाशिकी (optics) का सम्मिश्रण था। वह इस प्रकार था—कुछ रासायनिक लवण अथवा यौगिकों के मणिभ ध्रुवित प्रकाश (polarised light) को दाहिनी अथवा बायीं ओर झुका देने का गुण रखतें हैं। उस समय तक विश्लेषण की ज्ञात विधियों के अन्तर्गत दोनों प्रकार के पदार्थों की रचना एक सी थी परन्तु उनमें अन्तर होना आवश्यक था।

एक जर्मन रसायनज्ञ मिशरलिख (Mitscherlich) ने इस सम्बन्ध में कुछ प्रयोग किये थे जिनमें टारटरिक अम्ल ध्रुवित प्रकाश को दाहिनी ओर मोड़ने की शक्ति रखता था। उसको यह उलझन हुई कि उसी प्रकार के पदार्थ रैसीमिक अम्ल (racemic acid) पर ध्रुवित प्रकाश का कोई प्रभाव नहीं था और वह इस समस्या को हल न कर सका। पाश्चर का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और निरन्तर परिश्रम के पश्चात् वह इस प्रश्न को हल कर सका कि रैसीमिक अम्ल के मणिभ दो विभिन्न रचना के हैं जो एक दूसरे की ध्रुवित प्रकाश को मोड़ने की शक्ति को शून्य कर देते हैं; अतः प्रकाश पर कोई प्रभाव नहीं होता।

साधारण लोगों को यह आश्चर्यजनक न लगे पर रसायनज्ञों के लिए यह एक वृहत् अनुसंधान था जो जर्मन वैज्ञानिकों द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हल न हो सका और पाश्चर ने २० वर्ष की आयु में हल कर लिया। इस खोज से अनेक वैज्ञानिक पाश्चर के मित्र हो गये जो कि उसे प्रत्येक समय में सहायता करते रहे। उसके जीवन का यह महत्त्वपूर्ण समय था। रसायन तथा जीव के सम्बन्ध की ओर इसके उपरान्त पाश्चर निरन्तर लगा रहा।

पाश्चर की यह धारणा थी कि जीवाणु (living organisms) किसी स्थान पर किसी समय अवश्य ऐसे अम्लों के निर्माण में रहे होंगे जो उपदार्थ के रूप में शराब बनाने की विधियों से प्राप्त होते हैं। पाश्चर ने अपना कार्य रैसीमिक अम्ल पर ही सीमित रखा। निरन्तर प्रयास के बाद भी पाश्चर को यह अम्ल आवश्यक मात्रा में न प्राप्त हो सका तो उसने संश्लेषण द्वारा प्राप्त किया। इससे पाश्चर का नाम कार्बनिक रसायन के मूल अनुसंधानकर्त्ताओं में हो गया।

इस मशीन द्वारा दूध का पाश्चुराइजेशन किया जा रहा है—**१. दूध गर्म किया जा रहा है, २. गर्म पानी का निष्कासन, ३. गर्म दूध आगे बढ़ रहा है, ४. गर्म पानी प्रवेश कर रहा है, ५. दूध के ताप का नियन्त्रण, ६. गर्म दूध-प्रवेश, ७. ठण्डे पानी का प्रवेश, ८. ठण्डे पानी का निष्कासन, ९. यहाँ दूध ठण्डा किया जाता है, १०. संग्रहीत ठण्डे दूध का प्रवेश, ११. ठण्डा दूध, पाश्चुराइज किया हुआ तैयार है**

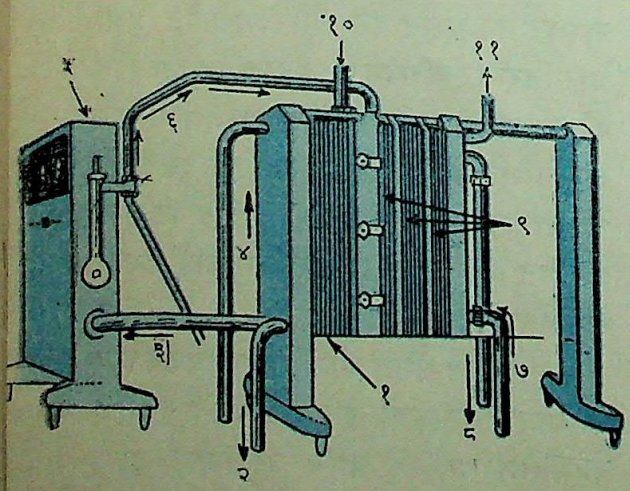

इसके उपरान्त लुई पाश्चर ने अप[illegible] ध्यान सूक्ष्म जीवों (microrganisms) [illegible] ओर लगाया। यह विषय पाश्चर के [illegible] बहुत ही सुन्दर तथा रोमांचकारी था। ये [illegible] सूक्ष्मजीव जन्तु तथा वानस्पतिक जगत [illegible] बहुत ही अनर्थ करते थे। उन दिनों फ्रान्स [illegible] शराब बनाने की विधि में बहुत सा [illegible] बेकार जाता था। फ्रान्स में यह एक [illegible] उद्योग था जिसके प्रति लोगों को चिन्ता [illegible] लगी थी। पाश्चर के निरन्तर अनुसंधान [illegible] यह उद्योग फिर पनप उठा। पाश्चर ने [illegible] ज्ञात किया कि उद्योग में किण्व[illegible] (fermentation) की विधि के बाद [illegible] (putrifaction) की विधि शुरू हो जाती [illegible] और यह दोनों ही विधियाँ सूक्ष्म जीवों [illegible] होती है। बहुत परिश्रम के बाद वह [illegible] विधियों के जीवाणुओं के अन्तर को ज्ञात [illegible] सका। अपने सूक्ष्मदर्शी की सहायता से [illegible] यह सिद्ध किया कि किण्वन में रहने वाले [illegible] जीवाणु खमीर (yeast) में रहते हैं [illegible] द्वारा द्राक्षाशर्करा (grapesugar) अल्को[illegible] में परिवर्तित होती है और वे वायु के [illegible] जीवित रहते हैं। दूसरे प्रकार के [illegible] जीवाणुओं के लिए आक्सीजन आवश्यक [illegible] है और शराब में वे बाहरी वायु से आते [illegible] अतः यह आवश्यक था कि जैसे ही [illegible] पूर्ण हो, सड़ाने वाले जीवाणुओं को नष्ट [illegible] दिया जाय। यह द्रव को एक विशेष [illegible] (१२०°F के ऊपर) तक गर्म करके किया [illegible] सकता है। इस प्रकार इस प्रमुख विधि [illegible] जिसे पाश्चुरीकरण कहा जाता है, शुरू [illegible] हुई और अमरीका में दूध के लिए तथा [illegible] में शराब बनाने के लिए पाश्चुरीक[illegible] नियम बना दिया गया। पाश्चर के इस [illegible] ने गिरते हुए शराब उद्योग को [illegible] से चमका दिया।

उद्योग में ख्याति पाने के बाद [illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रसायन से जीवाणु विज्ञान (bacteriology) की ओर आकर्षित हुआ। उस समय फ्रान्स में प्रमुख उद्योग रेशम का भी था जिसमें रेशम-कोष (cocoons) से धागे को बटते थे। पालनगृहों (nurseries) में बीमारी के कारण लाखों रेशमकोष बेकार हो जाते थे। देशभक्त पाश्चर इस अवस्था में विचलित हो गया और इसके अनुसंधान में लग गया। बहुत ही लगन से उसने सूक्ष्मदर्शी से कीड़ों की वृद्धि, कोकून तथा मॉथ (moth) के बनने की जाँच की। इस कार्य में काफी समय लग गया और इसी बीच उसे प्रमस्तिष्क प्रान्तस्था (cerebral cortex) के वायीं ओर लकवा मार गया। इस बीमारी में भी उसका ध्यान सदैव उसी प्रश्न को हल करने में लगा रहा। अंत में वह निष्कर्ष पर पहुँचा कि रेशम उद्योग में यह बीमारी जिसे 'पैबरीन' (pebrine) कहते हैं, वंशानुगत (hereditary) है और यह आवश्यक है कि इसका निवारण मॉथ के परीक्षण से होना चाहिए। उन्हीं रेशमकीट के अंडों का उपयोग होना चाहिए जो बीमारी रहित मॉथ के हों और बाकी सबको नष्ट कर देना चाहिए। उस समय के औद्योगिक प्रविधिज्ञ इस बात से सहमत हो गये और शराब के उद्योग की भाँति रेशम उद्योग भी पनप उठा।

उस समय तक पाश्चर के प्रशंसक किसान भी हो गये थे। जब हैजा (cholera) और गिल्टी रोग (anthrax) महामारी के रूप में उन जानवरों में फैले जिन पर किसानों का जीवन निर्भर था, उस समय यह आवश्यक हो गया कि उसके निवारण का कार्य लुई पाश्चर को सौंपा जाये। फ्रान्स के कई भागों में भेड़ों में एक विचित्र प्रकार की बीमारी फैली जिससे हजारों की संख्या में उनकी मौत होने लगी। सांस की कमी तथा कमजोरी के कारण कुछ ही घंटों में मृत्यु हो

यह नन्हा बन्दर-बच्चा कीटाणुरक्षित पिंजड़े में पाला जा रहा है और रक्षक द्वारा बोतल का दूध पिलाते समय भी यह सावधानी रखी जा रही है कि रक्षक का हाथ पूर्णतः कीटाणुयुक्त दस्ताना पहिने हुए हो

जाती थी। भेड़ चराने वालों के शरीर में भी जख्म आदि के कारण यह बीमारी पहुँच जाती थी। इस प्रकार पाश्चर के प्रिय देश पर एक महान् संकट आ गया। अनेक प्रयोगों द्वारा पाश्चर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि यह एक छूत की बीमारी है जो कि जीवाणुओं (microbes) के द्वारा फैलती है। अतः भेड़ चराने वालों को प्रत्येक प्रकार की सावधानी बरतनी चाहिए। उदाहरणार्थ मरी हुए भेड़ों को दूर स्थान पर गाड़ देना चाहिए। और भी ऐसी बातों की सलाह दी जो यह प्रदर्शित करती हैं कि पाश्चर अपूतिदोष (asepsis) की दिशा में बहुत ही उन्नति पर था। चूजे का हैजा (chicken cholera) आदि बीमारियों के ऊपर अनुसंधान करते रहने पर ही उसके जीवन की सबसे महवत्पूर्ण घटना हुई जिससे कि पाश्चर का नाम अमर हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१७वीं शताब्दी से चेचक के टीकों का सफलतापूर्वक उपयोग किया जा रहा था पर विख्यात बेन्जमिन फ्रेंकलिन जैसे वैज्ञानिक उसका कारण नहीं समझ पा रहे थे। पाश्चर ने यह ज्ञात किया कि जीवाणु द्वारा वह सीरम प्राप्त किया जा सकता है जो अनेक वाइरस बीमारियों से सुरक्षा करता है। सीरम को उचित मात्रा में प्रवेश कराने से बीमारी विशेष को पूर्णतया नष्ट किया जा सकता है। जानवरों के क्षेत्र से उसको विश्वास होने लगा कि इसी प्रकार का प्रयोग मनुष्यों पर भी किया जा सकता है। इस प्रकार से वह धीरे-धीरे उस महान् लक्ष्य पर पहुँचा जिसके लिए वह विख्यात है—पागल कुत्तों के काटने का इलाज। जोसेफ को सफलता-पूर्वक इस बीमारी से ठीक करने पर पागल कुत्तों के काटने के इलाज से संसार का कितना कल्याण हुआ है हम सरलता से अनुमान लगा सकते हैं।

शल्यक्रिया में विसंक्रमण (sterilisation) की प्रथा प्रायः अज्ञात थी। एक यंत्र को केवल धोकर उपयोग में ले आते थे; यहाँ तक कि सर्जन हाथ तक नहीं धोते थे। पाश्चर का मत था कि अनेक बीमारियों के कीटाणु वायु में रहते हैं। अतः यंत्रों में एन्टीसेप्टिक पदार्थों द्वारा तथा गर्म करके विसंक्रमण क्रिया आवश्यक है।

लुई पाश्चर के जीवन में अनेक गुणों का सम्मिश्रण था। वह एक महान् वैज्ञानिक था साथ ही देशभक्त भी। उसका हृदय कोमल था तथा मनुष्यों के प्रति श्रद्धा की सद्भावना थी। वह सदैव इस बात का ध्यान रखता था कि कहीं उसके कार्य किसी को तकलीफ न हो। वह कभी संवेदनहारी ओषधियों के कुत्ते अथवा अन्य जानवरों पर कोई भी प्रयोग नहीं करता था। एक वैज्ञानिक में इन सबका समावेश मुश्किल से होता है। अनेक क्षेत्रों में अपनी सेवाएँ अर्पित करते हुए २८ सितम्बर, १८९५ को इस महान् वैज्ञानिक का देहान्त हो गया।

दूध-रोटी या रसायनों की मरमार !

बोतल का दूध हो या पैकेटबन्द ब्रेड की रोटी, जिस बेधड़क तरीके से हम इनमें भरे-पूरे रसायनों को अपने पेट में उतारते चले जाते हैं, वह कम शोचनीय नहीं। जब यही हमारा शौक है तब प्रायः पेट की गड़बड़ियों की शिकायत क्यों? अमरीका की कान्सास मेडिकल स्कूल के डा. ओरवात... विदर्स की गिनायी हुई इस सूची पर दृष्टि तो डालिए जिसमें उल्लेख है कि गेहूँ के बीजारोपण से ले... दाने बटोरने तक उसके पौधे पर कितने ही रसायनों के छिड़काव किये जाते हैं, खाद में अनेक रस... मिलाये जाते हैं, गेहूँ को मशीन-चक्की में पीसते हैं तब उसके कितने ही पौष्टिक तत्त्व नष्ट हो जाते... पिसे आटे को सफेद दिखाने के लिए उसमें क्लोरीन, नाइट्रोसिल क्लोराइड तथा बेन्जाइल पराक्साइड... मिलाये जाते हैं, उसकी विटामिन-सम्पन्नता बढ़ाने के लिए उसमें लोहा, कैल्सियम, निएसिन, थाय... तथा रिबोफ्लेविन मिलाये जाते हैं। इन सबके उपरान्त गूंधे हुए आटे में सोडियम डाइएसीटेट, कैल्शि... प्रापियोनेट, लेक्टिक अम्ल तथा मोनोकैल्सियम फास्फेट मिलाकर उसे बुसाँद आदि से बचाया जाता... अनुमान है कि रोटी आपके आगे आने तक कम से कम सोलह रसायनों और दवाओं से प्रभावित हो चु... होती है। यही हालत पाश्चुराइज्ड दूध की है जो बोतलों में पेश किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिभा शर्मा

कुछ सितारों से झोली भरी जाती है, कुछ सितारों के सपने देखे जाते हैं। क्या आपने ११ जुलाई, १९६२ को आकाश की ओर देखा था ? देखा होता; उस दिन अन्तरिक्ष-कक्षा में एक स्वप्न 'टेलस्टार' के नाम से परिक्रमा लगा रहा था।

टेलस्टार—यानी आवाज का सितारा—वह सितारा जो मनुष्य को बोलने, जानने, सीखने और अपने बन्धुओं से चाहे वे दुनियां के किसी भी कोने में हों, सम्पर्क स्थापित करने में मदद देगा।

टेलस्टार ! जरा इस नाम को बार-बार लीजिए ताकि यह आपके दिमाग में बस जाये क्योंकि यही तो उस ११ जुलाई का साक्षी है, जो इतिहास में याद किया जायेगा ! उस दिन एक तारे ने आवाज पायी थी।

टेलस्टार ! क्या है यह ? व्यास सिर्फ ३४ इंच, वजन १७० पौण्ड, आकार उस पतंग जितना जिसे एक बालक आसानी से उड़ा लेता है और उसे उड़ते, डोलते और नाचते देखकर खुशी से झूम उठता है। बस ? नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। यह तो बस एक स्वप्न है—अन्तरिक्ष का स्वप्न।

टेलस्टार अमरीका का प्रथम मानव-निर्मित संचार उपग्रह है। इसका निर्माण बेल टेलीफोन लेबोरेटरीज ने किया है। इस उपग्रह को छोड़ने के लिए एण्डोवर नामक स्थान पर एक बड़ा केन्द्र और उसका विशाल ऐण्टेना बनाया गया था। इस पर एक करोड़ डालर खर्च हुए हैं। इस नये उपग्रह द्वारा एण्डोवर-मेन से फिलहाल पश्चिमी यूरोप में टेलीफोन पर बातचीत करना और टेलीविजन के संकेत भेजना सम्भव हुआ है। यह उपग्रह राष्ट्रीय उड्डयन और अन्तरिक्ष प्रशासन द्वारा ११ जुलाई, १९६२ को आकाश में छोड़ा गया था।

अन्तरिक्ष-कक्षा का स्वप्न···यह जादूई उपग्रह आकाश में इसलिए छोड़ा गया था कि मनुष्य क्षितिज के उस पार तक अपनी आवाज पहुँचा सके। वह कैसी आवाज होगी ? इसे कौन और कैसे इस्तेमाल करेगा ? इस स्वप्न का जन्म कैसे हुआ ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेल टेलीफोन के वैज्ञानिक जॉन आर. पीयर्स ने सबसे पहले सन् १९५५ में यह आशा प्रकट की थी कि अगर अन्तरिक्ष-कक्षा में मानव-निर्मित उपग्रह छोड़े जा सकें तो उनसे विश्व-व्यापी संचार-व्यवस्था कायम हो सकती है। डा. पीयर्स ने यह भी कहा था कि टेलस्टार छोड़ने से विभिन्न देशों के लोगों में परस्पर जानकारी बढ़ेगी और शान्ति स्थापित करने में मदद मिलेगी। संसार को संगठित करने का एक उपाय संयुक्त राष्ट्र था और दूसरा उपाय संचार-व्यवस्था है। इस उपाय द्वारा शान्ति का काम सीधे व्यक्तिगत आधार पर हो सकता है।

उपरोक्त गैर-सरकारी उद्योग एक ऐसी संचार-व्यवस्था का स्वप्न देखता है जिसके माध्यम से रेडियो और टेलीविजन सही अर्थों में विश्वव्यापी हो सकते हैं। यह शब्द और ज्ञान का ऐसा साधन है जिसके द्वारा संसार के देश और भी निकट लाये जा सकते हैं।

क्या ऐसा सपना देखने में कोई खतरा भी था? हाँ, कई खतरे थे। एक समय तो यह विश्वास ही नहीं था कि इस तरह के स्टेशन दूसरे भू-स्थित रेडियो स्टेशनों से जो उसी फ्रीक्वेंसी पर या उसके पास चल रहे होंगे, बिना किसी बाधा के चल सकेंगे। दूसरा बहुत बड़ा सवाल यह था कि क्या इतना विशाल ऐण्टेना बनाया जा सकेगा जिससे टेलस्टार उपग्रह को अन्तरिक्ष में संकेत भेजे जा सकें और फिर उससे प्राप्त किए जा सकें? यह वे खतरे थे जो जानबूझ कर मोल लिए गये थे।

३० लाख डालर का खतरा आजमाने लायक था। यह वह खर्च है जो हर बार उपग्रह छोड़ने पर उठाना पड़ेगा, चाहे सफलता हाथ लगे या असफलता; लेकिन खतरे डालरों से तोले नहीं जाते। वे तो सपनों से तोले जाते हैं। इसीलिए इंग्लैण्ड के डाकघर ने लैंड्ज एण्ड के पास गूनहिली डाउन्ज नामक स्थान पर एक भू-स्थित केन्द्र तैयार किया गया। फ्रान्सीसी डाक और दूरसंचार मन्त्रालय ने भी ब्रितानी में एण्डोवर के एक केन्द्र बना लिया।

यह टेलस्टार भूमि से प्राप्त रेडियो-संकेतों को १० अरब गुना बढ़ा देता है और फिर उन्हें दूसरी फ्रीक्वेंसी पर वापस भेजता है। टेलस्टार को धरती से ६३९० मैगासाइकिल्स की फ्रीक्वेंसी पर संकेत भेजे जाते हैं जिन्हें यह उपग्रह ४१७० मैगासाइकिल्स पर पृथ्वी पर लौटा देता है। उपग्रहीय संकेत भेजने की शक्ति ढाई वाट है, पर पृथ्वी पर पहुँचते-पहुँचते यह शक्ति वाट के अरबवें हिस्से के बराबर रह जाती है। इन मन्द संकेतों को पकड़ने के लिए एण्डोवर में १७७ फुट ऊँचा ऐण्टेना बनाया गया है। वह इन संकेतों की आवाज बढ़ाकर सामान्य संचार-व्यवस्थाओं द्वारा प्रसारित करता है ताकि महाद्वीपों के बीच देखने-सुनने का सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सके।

११ जुलाई, १९६२ टेलस्टार अपनी लम्बी यात्रा पर जाने की तैयारी कर रहा है। स्वप्न साकार होने वाला है। सरकारी और गैर-सरकारी लोगों का दल मिलकर इसीलिए काम कर रहा है कि सितारों के बीच एक नया बोलता सितारा स्थान ले सके।

यह टेलस्टार है। यह एको-१ नामक गुब्बारे जैसा नहीं है जिसके द्वारा एक साल पहले अमरीका से यूरोप संदेश भेजे गये थे। यह तो संचार-उपग्रह है। इसके बाहर ३,६०० सौर-सैल हैं। ये नन्हे सैल सूर्य की किरणों को बिजली में परिवर्तित कर देते हैं। इसी बिजली से इसके उपकरण चलते रहते हैं।

आइये, अब हम फ्लोरिडा स्थित केप कैनेवरेल चलें जहाँ राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन उपग्रह छोड़ने वाला है। टेलस्टार की यात्रा शुरू हो रही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साकार होने वाला है। राकेट ऊपर की ओर जा रहा है—स्वप्न आकाश की ओर अग्रसर है। क्या स्वप्न अन्तरिक्ष-कक्षा में पहुँच जायेगा? क्या जीत मनुष्य की होगी? सुनिये, शुभ समाचार है। आकाश में कहीं एक टेलस्टार ऊपर चढ़ता चला जा रहा है, चढ़ता चला जा रहा है।

'नमस्कार, सज्जनो,' एक आवाज आती है, 'हमने आज सुबह ४ बजकर ३५ मिनट पर सफलतापूर्वक उपग्रह छोड़ा था। उपग्रह अब अन्तरिक्ष-कक्षा में है और योजना अनुसार काम कर रहा है।'

आइये, अब हम पुनः एण्डोवर चलें जहाँ के ऐण्टना से टेलस्टार उपग्रह को अन्तरिक्ष में संकेत भेजा जायेगा और फिर उससे प्राप्त किया जायेगा।

यह एण्डोवर मेन स्थित उपग्रह संचार केन्द्र नं. १ है। इस छोटे-से कस्बे के बाहर दायीं ओर दक्षिण में ७५ मील दूर पोर्टलैण्ड है। २५ मील दूर पश्चिम में न्यू हैम्पशायर की सीमा है और ७५ मील दूर उत्तर में कनाडा है। कुछ ही मिनटों में एक असाधारण प्रयोग होने वाला है।

यह ऐण्टेना का नियन्त्रण-केन्द्र है। यहीं से अन्तरिक्ष में उपग्रह को संकेत भेजे जायेंगे और फिर उससे प्राप्त किए जायेंगे। यह ऐण्टेना का ढाँचा है। यह ऐण्टेना का विशाल गुम्बद है। यह लगभग १६० फुट ऊँचा है और इसका आकार २१० फुट है। यह नकली रबर मिश्रित डैक्रोन के तन्तुओं से बना है और इसका वजन २५ टन है। यह हवा, बर्फ और बारिश आदि से ऐण्टेना की रक्षा करता है।

वह घड़ी नजदीक आ रही है। मंगलवार १० जुलाई पूर्वी समय के अनुसार इस समय शाम के ७ बजकर कुछ मिनट हुए हैं। आध घण्टे में न्यूयार्क नगर स्थित बेल टेलीफोन के मुख्य भवन से एक फोन किया जायेगा और एक चित्र भेजा जायेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय संचार-व्यवस्था के क्षेत्र में एक नये युग का सूत्रपात होने वाला है। अमरीका की राजधानी वाशिंगटन में उस समय के उपराष्ट्रपति लिण्डन बी. जॉनसन टेलीफोन पर इन्तजार कर रहे हैं। एण्डोवर केन्द्र में अमरीकन टेलीफोन एण्ड टेलीग्राफ कम्पनी के प्रधान फ्रैडरिक आर. कैपल हाथ में चोंगा लिए बैठे हैं। अभी उनकी आवाज आकाश में उड़ेगी और अगर सपना सच्चा हो गया तो टेलस्टार उस आवाज को ग्रहण कर लेगा और फिर उसे भू-स्थित केन्द्र पर वापस कर देगा जहाँ से वह आवाज वाशिंग्टन को प्रसारित की जायेगी।

बिजली के सर्किट चल पड़े हैं और अब···यहाँ धरती पर···एण्डोवर मेन में··· एक महान् प्रयोग शुरू होने वाला है।

'नमस्कार, मिस्टर वाइस-प्रसीडेंट! मैं फ्रैडरिक कैपल एण्डोवर मेन के भू-स्थित केन्द्र से बोल रहा हूँ। आप जानते ही होंगे कि मेरी यह आवाज टेलस्टार उपग्रह द्वारा प्रसारित की जा रही है। आपको मेरी आवाज कैसी सुनाई दे रही है?'

'आपकी आवाज बिलकुल साफ सुनायी दे रही है, मिस्टर कैपल!'

टेलस्टार ने काम किया। स्वप्न केवल स्वप्न नहीं रहा। अभी एक बड़ा परीक्षण और बाकी है। क्या यहाँ से दूसरी जगह चित्र भी दिखाया जा सकता है?

नियन्त्रण-केन्द्र के टेलीविजन सेट पर एण्डोवर केन्द्र के ऊपर फहराते हुए अमरीकी झण्डे का चित्र दिखायी देता है। ये तरंगें जो आमतौर से पचास मील में खत्म हो जाती हैं, अब तीन हजार मील तक पहुँच रही हैं। क्या टेलस्टार इन तरंगों को ग्रहण कर लेगा और फिर धरती पर वापस भेज देगा?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

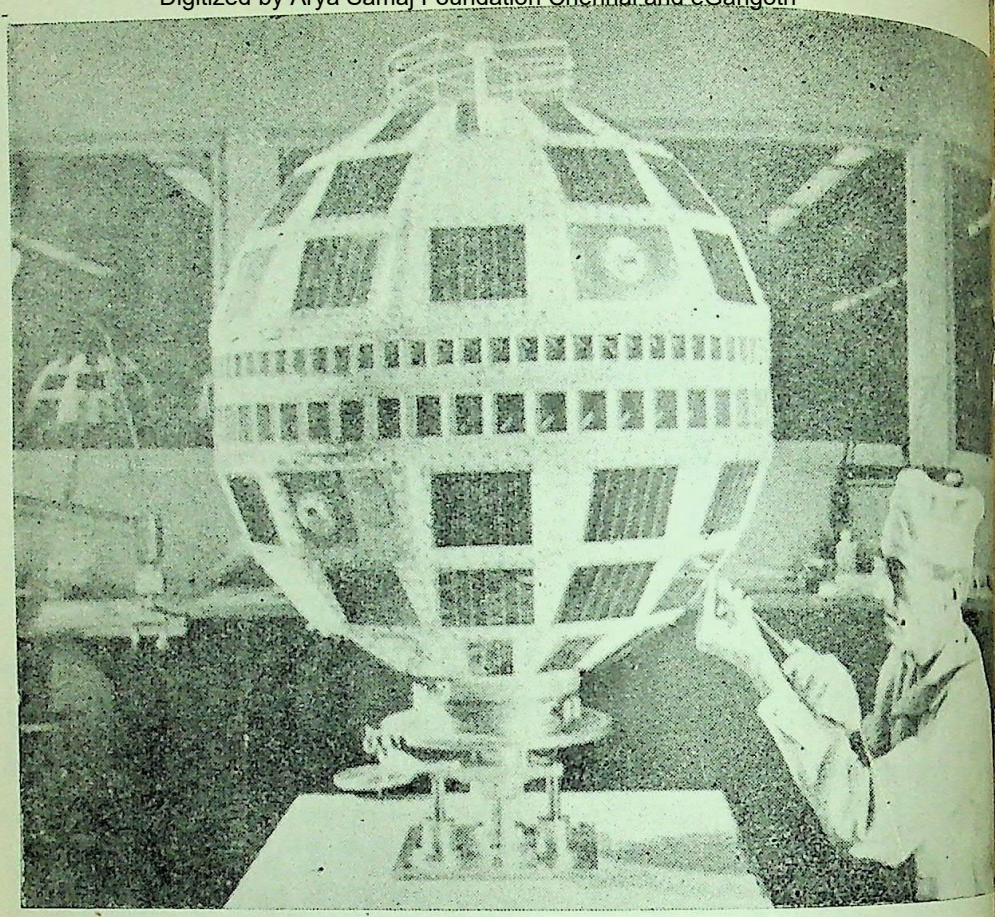

अमरीकी भू-उपग्रह टेलस्टार जिसके माध्यम से अंतरमहाद्वीपीय संवाद-वहन तथा टेलीविजन प्रक्रिया संभव हो गयी

अभी दूसरे टेलीविजन सेट पर अँधेरा है···सन्देश प्राप्त करने की प्रतीक्षा है और नियन्त्रण-केन्द्र और अमरीका भर में टेलीविजन सेट पर प्रकाश हो जाता है।

जैसा कि आप जानते ही होंगे, फ्रैड कैपल की आवाज आयी, 'जो कुछ आप देख-सुन रहे हैं, वह आप तक टेलस्टार उपग्रह द्वारा पहुँचाया जा रहा है। यह उपग्रह इस क्षण लगभग ३,००० मील ऊपर है। यह अन्तरिक्ष संचार-व्यवस्था में एक बहुत बड़ा कदम है। अब तो उस दिन का इन्तजार है जब सारी दुनिया संचार-उपग्रहों द्वारा एक हो जायेगी और लोग दुनिया के किसी भी कोने से फोन पर बातचीत कर सकेंगे और कहीं का भी कार्यक्रम अपने टेलीविजन सेट पर देख सकेंगे।'

इस परीक्षण से अन्तरिक्ष-वैज्ञानिकों इंजीनियरों की भविष्यवाणी सत्य हो है। अब यह सम्भावना भी हो गयी है सन्देशों को दुहराने वाले उपग्रहों का प्र करके संसार भर में संचार-व्यवस्था क की जा सकती है। ऐसा होने पर वहाँ विश्व-व्यापी संचार प्रणाली का रूप ही जायेगा। इससे न केवल ज्यादा संचार-प्रणाली कायम होगी, बल्कि भी होगी। लेकिन कहीं गलत न लीजिएगा। टेलस्टार जब आप चाहेंगे आप तक सन्देश पहुँचायेगा क्योंकि टेल जो संकेत भेजेगा, वह भू-स्थित केन्द्रों पर नियन्त्रित किया जायेगा। वही केन्द्र सं संचार-व्यवस्थाओं द्वारा आप तक भेजेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टेलस्टार का क्या मतलब है ? इसकी क्या सम्भावनाएँ हैं ?

आज की हर कोशिश से हर जगह के लोगों को अन्तरिक्ष प्रौद्योगिक विज्ञान और संचार विज्ञान का लाभ मिलता है। अब हर राष्ट्र में सूचना का प्रवाह सुधारने का, अज्ञान और पूर्वाग्रह की दीवारों को लांघने का और संचार द्वारा जन-निर्माण करने का अच्छा अवसर है। आज जो कुछ सीखा जा रहा है, कल उससे विश्व-व्यापी उपग्रह संचार-प्रणाली का और विकास होगा।

विलक्षण उपग्रह टेलस्टार की आश्चर्य-जनक यात्रा जारी है। ११ जुलाई की रात को इस नन्हे उपग्रह द्वारा पहले पेरिस से और फिर थोड़ी देर बाद इंग्लैण्ड से टेलीविजन का कार्यक्रम अमरीका में दिखाया गया। सबसे पहले अमरीका के लाखों लोगों ने अपने टेलीविजन सेट पर पेरिस की रात की झलक देखी, पेरिस के लोग देखे···पेरिस का संगीत सुना।

यूरोप से अमरीका में दिखायी देने वाला यह पहला टेलीविजन कार्यक्रम था। १० जुलाई की रात को अमरीका से यूरोप में टेलीविजन कार्यक्रम दिखाया गया था। चित्र और स्वर दोनों साफ थे।

जैसे ही फ्रान्सीसी कार्यक्रम आरम्भ हुआ, फ्रान्स के संचार मन्त्री श्री जाके मारेत ने टेलस्टार के जरिए महासागर के पार बसने वाले अमरीका के लोगों को बताया—'अमरीका और फ्रान्स के वैज्ञानिकों और यान्त्रिकों के प्रयत्नों को धन्यवाद जो उपग्रह द्वारा संचार-व्यवस्था कायम करने के लिए मिल-जुलकर काम कर रहे हैं। आज पहली बार आप अपने टेलीविजन सेट पर पेरिस से प्रसारित कार्यक्रम देख सकेंगे। आज यह केवल एक प्रयोग के रूप में है, लेकिन कुछ सालों में यह रोज की बात हो जायेगी।'

श्री मारेत के बाद पेरिस से एक लोकप्रिय अभिनेता एवं मोनतान को अमरीकावासियों के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। उसके बाद एक गिटार वादक और आखिर में एक गायिका का मधुर स्वर।

टेलस्टार अपने काम में कुशल है, लेकिन उसे अभी चलने का ढंग सीखना है। फ्रान्सीसी युवती के गीत के बीच वह अपनी सीमा से बाहर चला गया और इसका परिणाम यह हुआ कि उस गायिका की छाया और आवाज दोनों डूब गयीं। लेकिन पिछली ११ जुलाई की रात सिर्फ पेरिस की ही नहीं थी। तीन घण्टे बाद अमरीका के समय के अनुसार १० बजकर २० मिनट पर इंगलैण्ड से यह सन्देश प्राप्त हुआ—'यह ब्रिटिश डाकघर का गूनहिली डाउन्ज रेडियो स्टेशन है। यहाँ आप यह नियन्त्रण कक्ष देख रहे हैं। यह लिजर्ड प्रायद्वीप पर स्थित है। यहाँ से कुछ ही मील दूर वह स्थान है जहाँ ६० वर्ष पहले मार्कोनी ने अतलांतिक से पहला रेडियो संकेत प्राप्त किया था। आज के इस प्रयोग में हम टेलीविजन द्वारा ब्रिटेन का अमरीका के साथ सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश कर रहे हैं।'

और ये कार्यक्रम इतने साफ-साफ सुनायी और दिखायी दे रहे थे जैसे अमरीका के अपने कार्यक्रम हों। उस समय इंगलैण्ड में सुबह के ३ बजकर २० मिनट हुए थे···और एक नया दिन शुरू हो गया था। यह ११-१२ जुलाई, १९६२ को हुआ था। यह वह तारीख है जो विश्व-व्यापी संचार-व्यवस्था के इतिहास में मील के पत्थर की तरह याद की जायेगी।

लेकिन यह बात ११-१२ जुलाई की थी। आठ-नौ रोज बाद अमरीका में टेलीविजन द्वारा यूरोप को फिर से एक सूत्र में बाँधने की तैयारियाँ हो रही थीं। इस कार्यक्रम में यूरोप को अमरीका की जीती-जागती तसवीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखायी जानी थी। १२ जुलाई को यूरोप और अमरीका के २० करोड़ लोग एक नये युग के साक्षी हुए। पुराने और नये संसार के बीच की आखिरी दीवार भी ढह गयी।

३ बजे न्यूयार्क को सन्देश मिला—यूरोप देखने के लिए तैयार है। यह सन्देश भी टेलस्टार के जरिए आया था।

'हलो वाल्टर कौंकाइट, हलो संयुक्त राज्य! मैं ब्रुसेल्ज से बोल रहा हूँ। मेरे टेलीविजन सेट में बायीं ओर स्वाधीनता देवी की प्रतिमा है और दायीं ओर एफील टावर है। ये दोनों साथ-साथ हैं और साफ दिखायी दे रहे हैं।'

यह संकेत था और फिर कार्यक्रम शुरू हुआ—उस विशाल महाद्वीप की एक सिरे से दूसरे सिरे तक की जीती-जागती तसवीर। न्यूयार्क बन्दरगाह के बाद भीड़भाड़ [illegible] शिकागो के एक सार्वजनिक मार्ग का [illegible] दिखाया गया और फिर सेन फ्रान्सिस्को [illegible] का गोल्डन गेट ब्रिज। उसके बाद यूरोप [illegible] लोगों ने वाशिंग्टन स्थित ह्वाइट हाउस [illegible] प्रेसीडेंट कैनेडी को अपनी पत्रकार-[illegible] शुरू करते हुए देखा। वाशिंगटन में [illegible] रही पत्रकार-सभा से कैमरे एक रंगमंच [illegible] ओर घूमे—आनटेरियो, कैनेडा में शेक्सपि[illegible] समारोह की एक झलक दिखाई गयी। [illegible] बाद यूरोप के दर्शकों को दक्षिण डेकोटा रा[illegible] स्थित माउण्ट रशमोर नामक ऐतिहासि[illegible] स्थान दिखाया गया। फिर यूरोप ने [illegible] स्थित साल्ट लेक नगर की मारमान टेबरने[illegible] मण्डली की तीन सौ बारह आवाजें सुनीं [illegible] यह अमरीका की एक बहुत पुरानी मण्ड[illegible]

होमडेल, न्यू जरसी में बेल टेलीफोन प्रयोगशाला में लगाया गया हार्न ऐण्टिना जो टेलस्टार की टोह लेता है और उससे संकेत ग्रहण करता है

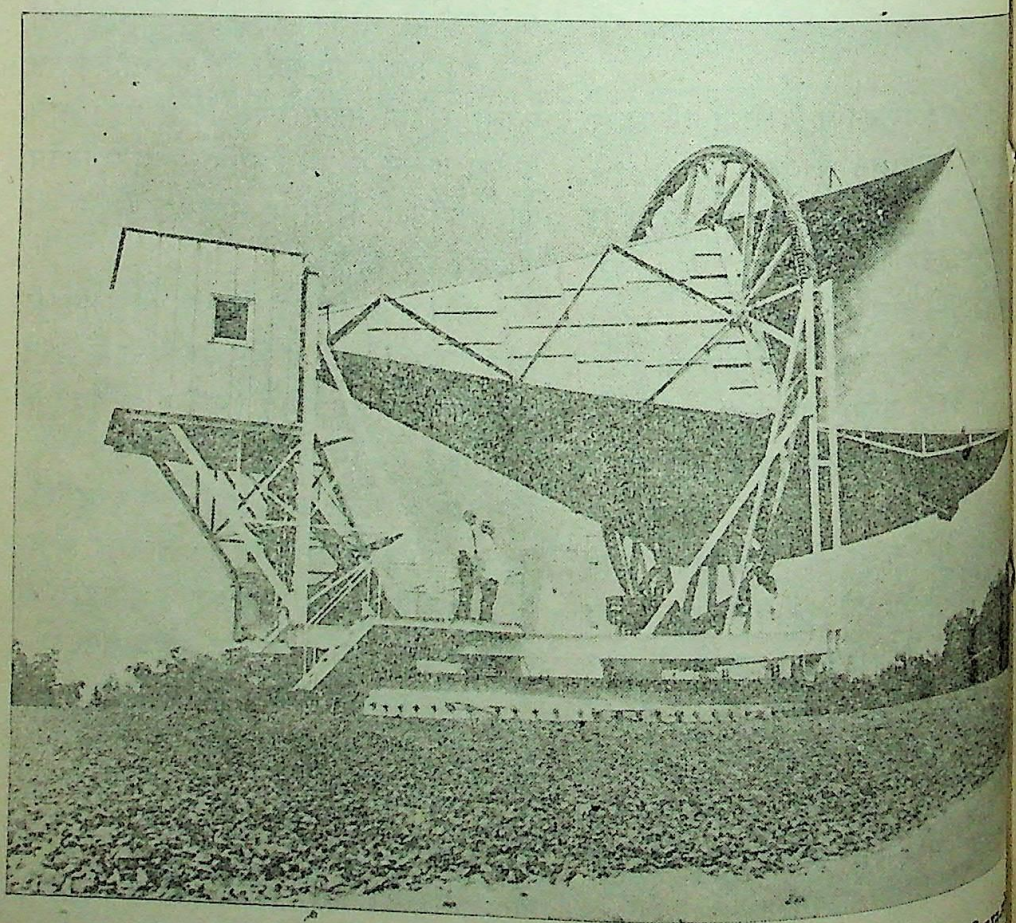

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। इसकी स्थापना १९४७ में हुई थी। मण्डली को इस विशेष अवसर पर रशमोर इसीलिए बुलाया गया था ताकि यह अमरीका के चार महापुरुष वाशिंग्टन, जैफरसन, लिंकन और थियोडोर रूजवेल्ट के ६० फुट चेहरों के साये में गाये। ये चेहरे पर्वत-पार्श्व पर अंकित हैं। उस समय संयुक्त राज्य के समय के अनुसार दिन के ३ बजकर १८ मिनट हुए थे। क्षितिज के उस पार अन्तरिक्ष में यात्रा जारी थी।

दो घण्टे चालीस मिनट के बाद टेलस्टार फिर अतलांतक के ऊपर था। अब यूरोप को अमरीका के लिए कार्यक्रम प्रसारित करना था।

'हलो उत्तरी अमरीका ! आज २३ जुलाई है। इस समय लन्दन के मध्य में लगे बिग बेन घण्टे के चेहरे पर ११ बजने में लगभग २ मिनट हैं। हमारे महाद्वीप की यह पहली झलक आप देख रहे हैं। सदन में अधिवेशन हो रहा है।'

इस तरह यूरोप का कार्यक्रम शुरू हुआ। लन्दन, पेरिस, रोम···सब एक-एक करके टेलीविजन सेट पर दिखाई दिये। उत्तरी स्वीडन स्थित उत्तर-वृत्त, मैडीटेरेनीयन स्थित सिसली और इंगलैंड स्थित लैंड्ज एण्ड की झलक। पेरिस, रोम और बैलग्रेड के कला-संग्रहालयों की झाँकी—जेनेवा का अणु-अनुसन्धान केन्द्र, जर्मनी स्थित डीसबर्ग की एक धमन भट्ठी—ये सब एक-एक करके दिखायी गयीं। कैमरे घूम रहे थे। रोम स्थित वैटिकन नगर के सिस्टीन चैपल में लगा माइकेलऐन्जेलो का महान् चित्र 'अन्तिम निर्णय' दिखाया गया। इसके बाद वैटिकन नगर की सिस्टीन भजन-मण्डली का गायन हुआ। इससे थोड़ी दूर पर सितारों की छाया में प्रसिद्ध संगीतज्ञ पूचीनी का संगीत गूँज रहा था।

और यह था अगले दिन के समाचारों का एक ही शीर्षक :

टेलस्टार के माध्यम द्वारा टेलीविजन का कार्यक्रम अपने चरमोत्कर्ष पर।

टेलस्टार ने अन्तरिक्ष से कई प्रकार की महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक सूचनाएँ भेजीं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह लगभग २०० वर्ष तक अन्तरिक्ष में परिक्रमा लगाता रहेगा।

अभी तो शुरूआत है। इस उपग्रह द्वारा दुनिया का नक्शा ही बदल जाएगा। दुनिया के लोग आपस में बिना किसी बाधा के बातचीत कर सकेंगे···विचारों का आदान-प्रदान कर सकेंगे···छोटी-बड़ी घटनाओं की एक-दूसरे को सूचना दे सकेंगे और इस तरह सुख-शान्ति और सुरक्षा पा सकेंगे। ●

प्रकृति की ओर लौटिए

खुशहाल गाँव, हर कोई खुश। धरती से उपजाना, हाथ से पकाना, खाना। सभी काम में मस्त। केवल एक ही ऐसा जो हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे। वह था दाँतों का डाक्टर। दोस्त आया, पूछा···सुस्त क्यों ? बोला, ···यहाँ के पानी की खासियत, मेरी बदकिस्मती। सभी के दाँत बरकरार। पानी का नमूना दोस्त एक केमिस्ट पर ले गया। मालूम हुआ, उसमें फ्लोराइड का कमाल था। दूर-दूर शोर हुआ, ···दाँतों का बीमा, पानी में फ्लोराइड।

दस वर्ष बीते। पानी में ऊपर से फ्लोराइड की भरमार। गाँव में फैशन की मार। चक्की छूटी, मशीन आयी; ताजा फल-दूध छूटे, टिनभरी बानगियाँ आयीं। अब डाक्टर को फुर्सत कहाँ ? दाँतों के मरीजों की हाय-हाय। डाक्टर के हाथों ने सोना बटोरा, किन्तु अन्तरात्मा ने धिक्कारा। आखिर उसने फ्लोराइड की निन्दा, और प्राकृतिक जीवन की खूबियों का प्रचार शुरू किया।

अफसोस, लोग इस प्रचारक को पागल समझने लगे !

मई १९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

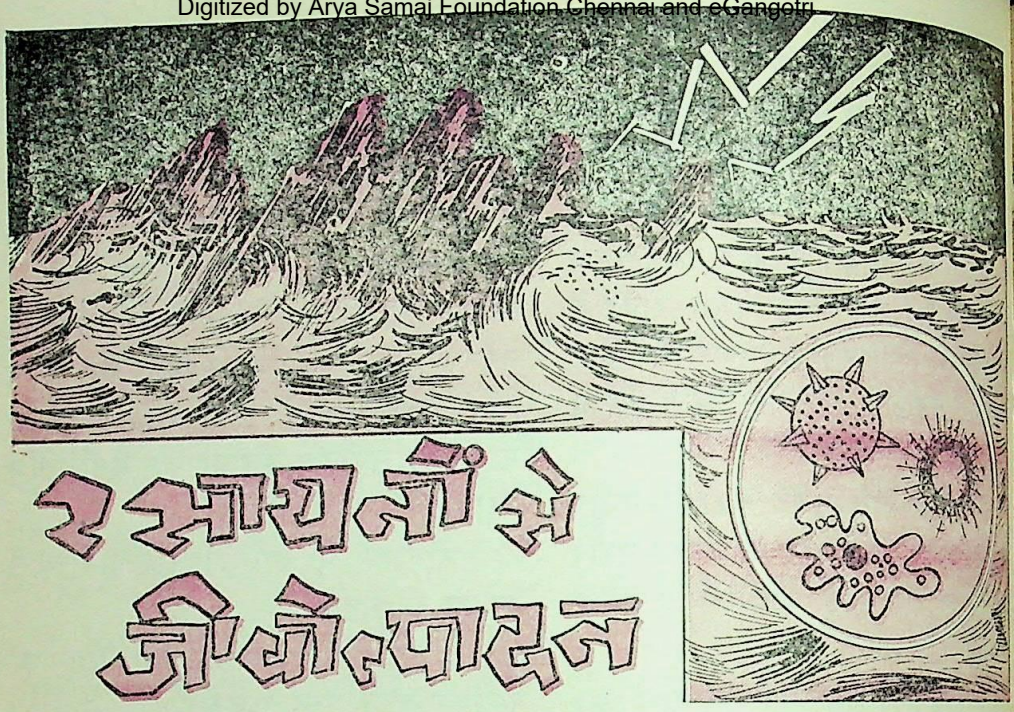

२ अरबों से जीवोत्पादन

प्रेमानन्द चन्दोला

पत्थर का ढेला या प्लास्टिक की गुड़िया और गुलाब का फूल या एक सुन्दर बच्ची— यद्यपि ये वस्तुएँ छोटे-छोटे कणों की बनी होती हैं, लेकिन क्या बात है कि इनकी विशेषताएँ अलग-अलग हैं। फूल मुरझा जाता है, बच्ची रोने लगती है, दूध-बिस्कुट खाती है, साँस लेती है, जाड़े में गरम स्वेटर पहनती है, अँगीठी सेंकती है और देखते ही देखते कुछ समय बाद एक सुन्दर युवती बन जाती है और यही नहीं बल्कि विवाह के बाद अपने ही अनुरूप छोटे बच्चे भी पैदा करने लगती है। परन्तु इसके विपरीत पत्थर में या प्लास्टिक की गुड़िया में ये बातें नहीं। प्लास्टिक की गुड़िया में चाहे सुई चुभो दो या चाँटा मार दो या भूखों रखो, कोई असर नहीं होगा। वह कतई रोएगी नहीं, न वह वृद्धि करते हुए बड़ी जवान गुड़िया बनेगी और न कभी अपने अनुरूप अन्य नन्हीं गुड़िया उत्पन्न कर सकेगी। इसका संक्षेप में उत्तर यही है कि छोटी बच्ची में जो लक्षण और विशेषताएँ हैं वे उसके जीवित होने के कारण हैं और प्लास्टिक की गुड़िया में जो इन लक्षणों का अभाव है वह उसके अजीवित होने के कारण है। अजीवित वस्तुओं में कोशिकाएँ (cells) नहीं होतीं परन्तु जीवित वस्तुओं में शरीर की इकाई या कोशिका होती है जिसमें कई अजीवित रासायनिक पदार्थों के कण या परमाणु (atoms) होते हैं। और विस्मय की बात तो यह है कि स्वयं तो ये रासायनिक पदार्थ अजीवित होते हैं किन्तु कुछ विशेष पदार्थों की सक्रियता के कारण जीवों के शरीर को जीवित बना देते हैं। उन्हें जीवों की संज्ञा प्रदान करते हैं।

शरीर की इकाई या कोशिका में विभिन्न रासायनिक पदार्थों का जो जलीय रस होता है वह जीवद्रव्य या प्रोटोप्लाज्म (protoplasm) कहलाता है। इसी पदार्थ की उपस्थिति के कारण वस्तुएँ जीवित कहलाती हैं और उनकी विविध जैव क्रियाएँ भी इसी के द्वारा सम्पादित होती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन सम्बन्धी बातों का कर्ता-धर्ता यही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः सारांश में हम यह कह सकते हैं कि कोई तंत्र तभी जीवित कहा जा सकता है जब कि उसमें वृद्धि, विभाजन अथवा उत्पादन तथा उपापचय सक्रियता को एक व्यवस्थित और क्रमबद्ध ढंग से प्रदर्शित करने के गुण विद्यमान हों, जैसे एक जीवित कोशिका में।

पृथ्वी का आदि वातावरण और रासायनिक अभिक्रियाएँ

पृथ्वी के प्राक्-जैविक (pre-biological) वातावरण में विविध रासायनिक अभिक्रियाओं के फलस्वरूप जीवोत्पत्ति के सम्बन्ध में जो न्यायसंगत मत है उसके तीन मुख्य प्रकरण हैं। पहला तो यह कि पृथ्वी की उस आदि-अवस्था में साधारण तत्त्वों या अणुओं ने जीवों की आधारवस्तु का निर्माण किया होगा; दूसरे, इसके पश्चात् कई रासायनिक अभिक्रियाओं के अनन्तर ही जीवों का निर्माण हुआ होगा और तीसरे, जीवों के जीवित रहने के लिए अवश्य कोई पोषण-स्रोत रहा होगा।

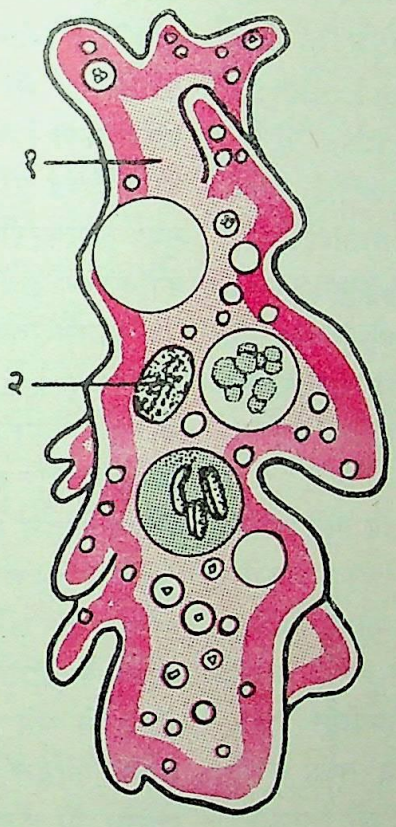

सृष्टि का सर्वप्रथम एक-कोशीय जीव, अमीबा (Amoeba)
१. जीव द्रव्य, २. केन्द्रक

अनुमान तो यही है कि पृथ्वी के प्राक्-जैविक वातावरण और समुद्रों में आक्सीजन नहीं था और यदि था भी तो बहुत ही थोड़ी मात्रा में। वातावरण में ये मुख्य पदार्थ थे—जलवाष्प, कार्बन डाइआक्साइड, नाइट्रोजन और थोड़ी बहुत मात्रा में हाइड्रोजन सल्फाइड, मेथेन और अमोनिया। इसी तरह समुद्रों में भी कार्बन डाइआक्साइड, अमोनिया, मेथेन तथा हाइड्रोजन सल्फाइड और धात्विक तत्त्वों के रूप में, क्लोराइड तथा घुलित अवस्था में फासफोरस के यौगिक विद्यमान थे। कतिपय रासायनिक अभिक्रियाओं के फलस्वरूप प्राक्-जैविक काल में अन्य यौगिकों के साथ अमीनों अम्ल (amino-acids) नामक रासायनिक पदार्थों का निर्माण हुआ। जीव-रसायन वैज्ञानिकों के मतानुसार उस समय रासायनिक अभिक्रियाओं में ऊर्जा (energy) जमा करने और देने के लिए समुद्रों में एडीनोसाइन ट्राइफासफेट नामक पदार्थ विद्यमान रहा होगा। पौधों में प्रकाश-संश्लेषण (photo-synthesis) से उत्पन्न हुआ पदार्थ पौधों तथा प्राणियों में पेशियों की सक्रियता का ऊर्जा स्रोत होता है। यह पदार्थ जीवों के उद्भव से पहले ही समुद्रों में विद्यमान था और आधुनिक प्रयोगों के आधार पर भी यह न्यायसंगत ठहरता है। वैज्ञानिकों का कहना है कि इन अभिक्रियाओं में बना ऐडीनाइन (adenine) और चट्टानों से घुलकर समुद्रों में जमा हुए अकार्बनिक फासफेटों से ही ऐडीनोसाइन ट्राइफासफेट का निर्माण हुआ होगा। इन अभिक्रियाओं के संचालन के लिए विद्युत् के अतिरिक्त सूर्य के पराबैंगनी विकिरण (ultra-violet radiation) से भी उष्मा (heat) प्राप्त हुई होगी।

वैज्ञानिकों का मत है कि अमीनो अम्लों से जीवों के आधारभूत पदार्थ प्रोटीन के बनने तक बड़ी लम्बी अवधि बीती होगी। शनैः-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शनैः अधिकाधिक ऊर्जा मिलते रहने और पानी कम होते जाने के कारण अमीनो अम्ल, विटामिन, पाइरिमिडीन और कार्बन सरीखे आधारभूत जैविक-पदार्थों का उद्भव होता गया। गरमी के कारण पानी के अणु कम होते जाने से पौलीपेप्टाइड (polypeptide) बनते चले गये और इसी तरह अधिकाधिक ऊर्जा प्राप्त होने और पानी कम होते जाने से इन आधार-वस्तुओं से जीव-पदार्थों की कोशिकाओं के मुख्य अवयव वसा, लाइपिड (lipids), न्यूक्लिओटाइड (nucleotides), केन्द्रकीय अम्ल (nucleic acids), पौली-सैक्कैराइड (polysaccharides) आदि कार्बनिक गुरु अणु (macromolecules) अस्तित्व में आये। इन विशेष व प्रमुख पदार्थों के मिश्रण एवं अभिक्रियाओं के फलस्वरूप ही आरम्भिक कोशिकाओं (early cells) का निर्माण हुआ, जिनसे फिर जीवों का उद्भव हुआ।

वैज्ञानिकों का विश्वास है कि ऐसी अभिक्रियाएँ अवश्य ही पृथ्वी की आदि-अवस्था में घटित हुई होंगी जो स्पष्ट भी हैं, क्योंकि आदि-जीव पानी में ही उत्पन्न हुए हैं। इसी आधार पर वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा प्रयोगशाला में कोशिका सदृश सूक्ष्म तरल गोलिकाओं की रचना की है, जो सामान्य ताप पर काफी समय तक वैसी की वैसी ही बनी रहती हैं। कोशिका की ही तरह इनके बाहर भी एक रक्षात्मक झिल्ली होती है जिसके द्वारा वातावरण की सान्द्रता और आवश्यकता के अनुसार पानी सोखा व छोड़ा जाता है।

जीव-अजीव के बीच की कड़ी

जब एक वस्तु किसी दूसरी वस्तु में परिणत होती है तो बीच की अवस्था संक्रान्ति अवस्था (transitional stage) कहलाती है। इसमें दोनों वस्तुओं के गुण व लक्षण विद्यमान रहते हैं। अजीवित पदार्थों से जीवित पदार्थों के निर्माण की बीच की अवस्था में ऐसे ही पदार्थ बनते गये जो अजीवित भी थे और जीवित भी; अर्थात् उनमें जीवित और अजीवित दोनों के लक्षण विद्यमान थे। वे ही पदार्थ जीव और अजीव के बीच की कड़ी बने और सरल से जटिलतर बनते जाने के कारण जीवित पदार्थों को जन्म देने वाले मातृ-पदार्थ बने। ऐसे पदार्थों ने जीवित पदार्थों की तरह वृद्धि व स्व-जनन (auto-reproduction) की क्षमता भी अर्जित कर ली अर्थात् वृद्धि करके बड़ा पिण्ड बनाकर अपने ही अनुरूप दूसरे पिण्ड उत्पन्न करने लगे। उनका यही गुण चमत्कारी सिद्ध हुआ और जीव-सृष्टि का कारण हुआ।

उनमें विद्यमान कुछ विशेष प्रोटीनों ने उत्प्रेरक (catalyst) या एंजाइम (enzyme) का कार्य किया अर्थात् अभिक्रिया को तीव्र गति से बढ़ाने और अजीवित पदार्थों को संजीवनी शक्ति प्रदान करने का महान् कार्य किया। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ऐसी ही कतिपय रासायनिक अभिक्रियाओं के होते जाने से पदार्थ कार्बोहाइड्रेट-संश्लेषण आदि क्रियाएँ भी करने लगे और अन्ततः आक्सीजन ग्रहण करके कार्बन डाइआक्साइड छोड़कर वह श्वसन भी करने लगे। प्रकृति में अजीवित पदार्थों से जीवित पदार्थ निर्माण का यह परिवर्तन सचमुच कितना क्रान्तिकारी और अनूठा रहा होगा इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

केन्द्रकयुक्त कोशिकाएँ तथा जीवोत्पत्ति

आरम्भिक कोशिकाओं से फिर केन्द्रक-युक्त (nucleated) कोशिकाएँ बनीं और फिर उन कोशिकाओं से एककोशिकीय (uni-cellular) जीव बने, जिनमें जन्तु तथा पौधे दोनों के गुण विद्यमान थे। वे पादप-अर्थात् पौधों व जन्तुओं के मिश्रण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कशाभि-जीव या फ्लैजेलेट (flagellate) कहे लाए और अपना पर्णहरिम (chlorophyll) खोकर जन्तुओं की तरह भरण-पोषण करने लगे।

जीव क्या थे और कैसे उत्पन्न हुए, यही सबसे बड़ा प्रश्न हमारे सामने आता है। यद्यपि इस बारे में हमारे पास केवल कल्पनाएँ ही हैं, तो भी इस बात के प्रमाण मिल जाते हैं कि पौधे तथा जन्तु आदि कशाभि जीवों (flagellates) से ही उत्पन्न हुए। अपने चल-कशाभों (*locomotor flagella*) को खोकर तथा गोल आकृति अपनाकर इनमें से कुछ तो काई या शैवाल (algae) आदि पौधों की तरह बिलकुल सरल बन गये और कुछ अपना पर्णहरिम त्यागकर बिलकुल जन्तुओं की तरह (जैसे अमीबा) बन गये और भोजन पकड़कर ग्रहण करने लगे। इसके बाद कुछ कालोनी वाले जीव जैसे वोल्वोक्स (volvox) भी बने और इस तरह एक-कोशिकीय सरलतर जीवों से विभिन्न प्रकार के बहु-कोशिकीय (multicellular) जटिलतर जीव बनते चले गये। इसी परिवर्तनशील क्रम को हमने विकास के नाम से पुकारा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदि-जीव अपनी आरम्भिक अवस्था में जीवद्रव्य (protoplasm) की एक नन्ही बूँद मात्र थे। तभी टॉमस हक्सले ने कहा था—जीवद्रव्य एक सजीव रासायनिक यौगिक है। अब आधुनिक मत के अनुसार यह एक रासायनिक यौगिक नहीं बल्कि जटिल कोलॉयडीय तन्त्र (colloidal system) के रूप में परस्पर मिले हुए कई रासायनिक पदार्थों का समूह है। जन्तुओं के जीवद्रव्य में अन्य जैवघटकों की अपेक्षा प्रोटीन ही अधिक मात्रा में होते हैं और अधिक महत्त्वपूर्ण भी हैं।

भारतीय वैज्ञानिकों के प्रयोग

अजीवित रासायनिक पदार्थों से जीव निर्माण के प्रयोग आजकल भारत, अमरीका, रूस, इंग्लैण्ड आदि देशों में बड़े जोरों पर चल रहे हैं। भारतीय वैज्ञानिक डाक्टर कृष्ण बहादुर और प्रोफेसर ओंकारनाथ पर्ती ने अपनी-अपनी विधि के अनुसार अपनी खोज आरम्भ की और सफलता प्राप्त की। यह भारत के लिए अत्यन्त गौरव की बात है। डाक्टर कृष्णबहादुर के साथ इस महान् कार्य में हाथ बँटाने और श्रेय पाने वाली उनकी विदुषी पत्नी भी हैं—डाक्टर श्रीमती एस. रंगनायकी। ये दोनों कृत्रिम रसायनों से जीवों के सृजन की खोज

कशाभिका आदिजीव, फ्लेजिला (flagella) **यह जीव जन्तु-जगत और वनस्पति-जगत, दोनों के लक्षण प्रकट करता है १. कशाभिका, २. जीव द्रव्य, ३. केन्द्रक**

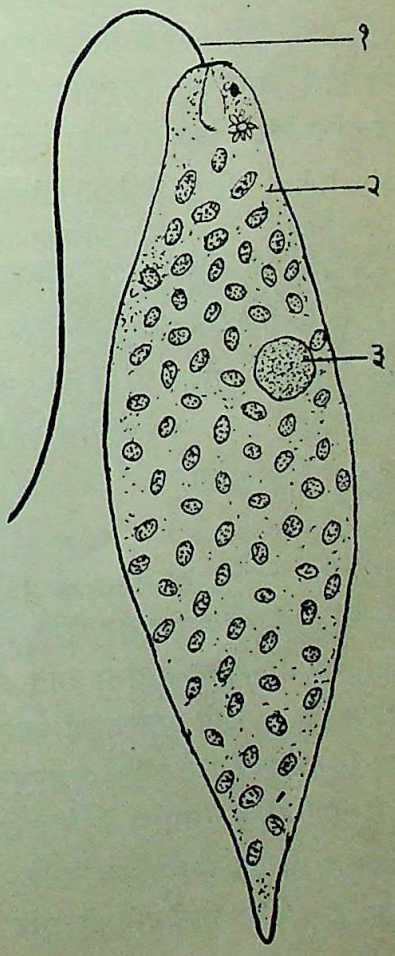

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

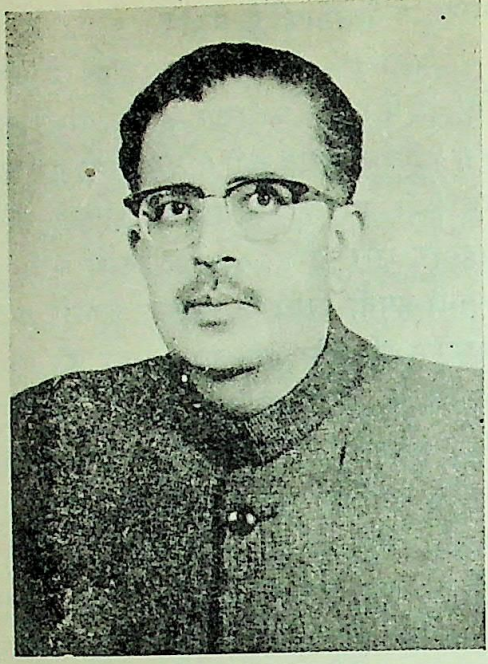

डाक्टर कृष्णबहादुर

में लगे हैं और आंशिक सफलता भी प्राप्त कर चुके हैं। डाक्टर कृष्णबहादुर के वृद्धि, उत्पादन व उपापचय-सक्रियता (metabolic activity) की इकाइयों अर्थात् जीवाणुओं के संश्लेषण सम्बन्धी शोधपत्र जर्मनी के जेन्ट्रालब्लाट फर बैक्टीरियोलॉजी (Zentralblatt fur Bakteriologie), सोवियत विज्ञान अकादमी पत्रिका द्वारा प्रकाशित प्रोफेसर ओपेरिन के अभिनन्दन ग्रंथ में तथा आगरा विश्वविद्यालय की अनुसंधान पत्रिका में प्रकाशित हो रहे हैं। प्रोफेसर पर्ती का लेख भी इस सन्दर्भ में आगरा विश्वविद्यालय की अनुसंधान पत्रिका में छप चुका है।

अमीनो अम्लों (amino-acids) के बारे में—जिनसे हमारे वैज्ञानिकों ने अपनी खोज आरम्भ की—यह बताना अति आवश्यक होगा कि ये इतने महत्त्वपूर्ण पदार्थ हैं कि इनके बिना पृथ्वी पर जीवन असम्भव है; क्योंकि ये प्रोटीनों के निर्माण के लिए आवश्यक हैं और प्रोटीन हमारे शरीर के लिए आवश्यक है। अतः प्रोटीनों को यदि हम जीवन का ही पर्याय मानें तो कोई अत्युक्ति होगी। इन्हीं अमीनो अम्लों ने डाक्टर कृ वहादुर को प्रेरित किया और उन्होंने कि करके दिखा दिया कि ये कृत्रिम रूप से भी षित भी किये जा सकते हैं।

डाक्टर कृष्णवहादुर ने जीव-अजीव गुत्थी सुलझाने वाले इन चमत्कारी प्रयो का श्रीगणेश १९५७ के आरम्भ में कि उन्होंने प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से आ काल या प्राक्-जैविक (pre-biologic काल के उसी वातावरण को उत्पन्न कर वैसी ही रासायनिक अभिक्रियाओं के लि उपयुक्त माध्यम बनाया और अपनी आरम्भ की। उन्होंने पैराफार्मेल्डीहाइ पोटेशियम नाइट्रेट, फेरिक क्लोराइड पानी के मिश्रण को अनुर्वरिक (sterilize अवस्था में ५०० वाट के बिजली बल्ब की ओर उन्मुख करके कृत्रिम से अमीनो अम्लों का निर्माण किया। में उन्होंने विलयनों (solutions) में परिवर्तन (पी-एच. परिवर्तन) करके वि प्रकार के अमीनो अम्ल भी प्राप्त कि इसके पश्चात् उन्होंने यह ज्ञात किया पोटैशियम नाइट्रेट और फेरिक क्लोराइड बदले पैराफार्मेल्डीहाइड और जल के मि से कोलॉयडीय मौलिबडेनम आक्साइड मिलाने और उसी तरह ५०० वाट के बल्ब ओर रखने पर भी वही परिणाम निकलता अर्थात् अमीनो अम्ल उत्पन्न होते हैं। पैरा फार्मेल्डीहाइड इसलिए चुना गया कि पृ के आदि वातावरण में अभिक्रियाओं के स्वरूप कार्बनिक यौगिकों के साथ बने फार्मि अम्ल (formic acid) ने पहले फार्मेल्ड हाइड (formaldehyde) और फिर पैरा फार्मेल्डीहाइड बनाया होगा।

अमीनो अम्ल बन जाने के बाद इन अणु जब परस्पर मिलते हैं तो उनसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाली छोटी इकाइयों को पेप्टाइड (peptide) तथा उनसे कुछ और बड़ी इकाइयों को पूर्व प्रोटीन या प्रोटीनाइड (fore-protein proteinoid) और सबसे बड़ी इकाइयों को—जिन पर कि सारा प्राणिजगत आधारित है—प्रोटीन कहते हैं। अमीनो अम्लों के संश्लेषण के पश्चात् अगला कदम था पेप्टाइड और प्रोटीनाइड का निर्माण। विलयन बनाते और उनका निरीक्षण करते हुए १९५७-५८ के दौरान में डाक्टर कृष्णबहादुर को अपने अमीनो अम्लों में पेप्टाइडों की उपस्थिति के भी कुछ प्रमाण मिल गये और उनके निर्माण की विधि भी ज्ञात हो गयी।

अमीनो अम्लों से पेप्टाइड निर्माण के बाद डी. एस. वी. राजकीय कालेज, नैनीताल के रसायन विज्ञान के प्रोफेसर ओंकारनाथ पर्ती और उनके सहायक डाक्टर हरिदत्त पाठक भी इन तथ्यों को लेकर खोज को आगे बढ़ाने में कर्मरत हो गये। इस प्रकार इन प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध हो गया कि इस अजीव-जनन (abiogenesis) की रीति से अमीनो अम्लों को उत्पन्न करने के लिए जिन मूलभूत पदार्थों की आवश्यकता होती है, वे हैं—पानी, कार्बन स्रोत, कुछ खनिज और वायुमण्डल के नाइट्रोजन को अमीनो अम्ल के रूप में परिवर्तित करने वाला सूर्य का प्रकाश। इस आधार पर यह अनुमान भी खरा उतरता है कि करोड़ों वर्ष पहले अवश्य इन्हीं अवस्थाओं में पृथ्वी पर जीवों का उद्भव अर्थात् जीवन का प्रादुर्भाव हुआ होगा। इस दशा में पृथ्वी के पूर्व-जीवजनन (pre-biogenic) वातावरण में मुख्यतया हाइड्रोजन, हीलियम और थोड़ी बहुत मात्रा में निऑन रही होगी; जिस पर परावैंगनी (ultra-violet) वाला सूर्य का प्रकाश, तड़ित, रेडियो-सक्रियता (radioactivity) और ज्वालामुखीय ताप आदि ऊर्जा-स्रोत जटिल अभिक्रियाएँ उत्पन्न करते रहे होंगे। इसमें सन्देह की गुंजाइश नहीं कि इस प्रकार की अभिक्रियाएँ पृथ्वी की आद्यावस्था में ज्वालामुखी के विवरों तथा अन्य ऊष्मीय प्रदेशों के इर्द-गिर्द घटित हुई होंगी और ऐसी ही इनसे सम्बद्ध अन्य अभिक्रियाओं के फलस्वरूप ही कार्बनिक यौगियों के साथ कुछ अमीनो अम्लों का भी निर्माण हुआ होगा जो जीव सृष्टि का आरम्भ था।

प्रोफेसर पर्ती की खोज

प्रोफेसर पर्ती और उनके सहायक डाक्टर पाठक ने ऊर्जा पदार्थ के रूप में कुछ में शर्करा और कुछ में मौलिबडेनम, लोहे और वेनेडियम के कोलॉयडीय आक्साइड आदि को जल में डालकर विविध प्रकार से अमीनो अम्लों के कई विलयन बनाये। इन विलयनों में से कुछ को सूर्य के प्रकाश तथा १,००० वाट के विद्युत बल्ब के कृत्रिम प्रकाश और कुछ को पराबैंगनी प्रकाश की ओर उन्मुख करने के पहले अच्छी तरह से अनुवरिक कर लिया गया। ऐसा करने पर उन्होंने

प्रोफेसर ओंकारनाथ पर्ती

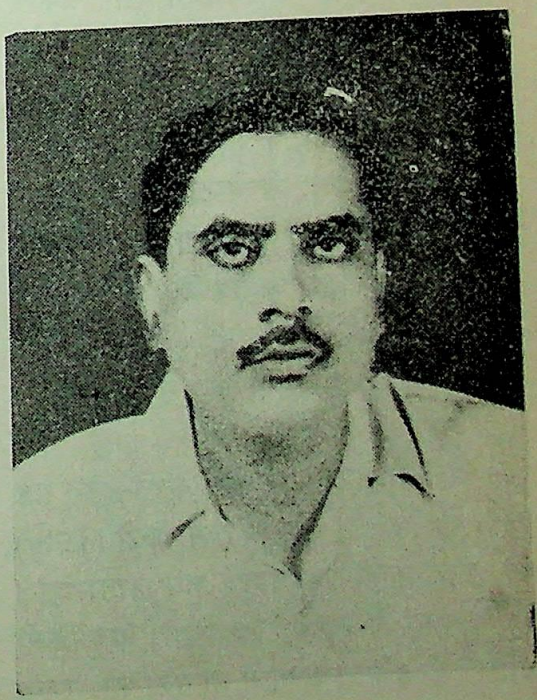

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाश-रासायनिक विधि से उत्पन्न की गई सक्रिय इकाइयों का सूक्ष्म-फोटो, जिसमें मातृ इकाई से मुकुल (bud) लगा हुआ है। (१००० आवर्धन)

निरीक्षण किया कि केवल उन्हीं विलयनों में रासायनिक परिवर्तन हुए जो प्रकाश की ओर उन्मुख किये गये थे और उन विलयनों में जिनको मोटे काले कपड़े में लपेटकर अँधेरे में रख दिया गया था, तनिक भी परिवर्तन नहीं हुआ। तब परिवर्तन वाले विलयनों को विभिन्न प्रकार के प्रकाश में ६०० घण्टे तक अनुर्वरिक अवस्था में रखा गया और समय-समय पर निरीक्षण भी किया जाता रहा। जब उन्होंने देखा कि एक प्रकार के अमीनो अम्लों के विलयन दूसरे प्रकार के अमीनो अम्ल उत्पन्न कर सकते हैं तो उनके आश्चर्य की सीमा न रही; अचरज की बात तो यह थी कि अमीनो अम्ल परस्पर संयोग करके स्वतः ही पेप्टाइड बनाते चले गये। जैसे-जैसे उनके प्रकाश में रखने का समय बढ़ाया जाता रहा तैसे-तैसे और भी कई अन्य प्रकार के यौगिक बनते चले गये, जिनमें से कुछ की तो निश्चित रूप से पहचान भी न हो सकी।

अमीनो अम्लों पर कार्य करते-करते यह होता था कि कुछ फ्लास्कों में जेली (jelly) की तरह कुछ गाढ़ा पदार्थ जम जाता था। इसे देखकर वे समझे कि शायद यह किसी बाहरी चीज के संक्रमण से हो गया हो; परन्तु [illegible] अच्छी तरह से धोकर [illegible] अनुर्वरीकरण के बाद भी ऐसा ही [illegible] रहा तो उन्होंने यह बात डाक्टर कृ[illegible] बहादुर को बतायी। डाक्टर कृष्णबहादुर [illegible] भी इसकी पुष्टि की कि ठीक ऐसा ही [illegible] उनके विलयनों में भी जम जाया करता [illegible] डाक्टर कृष्णबहादुर ने इस जमे हुए [illegible] की एन्जाइम-सक्रियता परखने की सलाह [illegible] कई प्रोटीन उत्प्रेरक (catalyst) का [illegible] करते हैं और ऐसे उत्प्रेरक प्रोटीनों को [illegible] एन्जाइम (enzyme) कहते हैं। इन्हें [illegible] उत्प्रेरक प्रोटीनों अथवा एन्जाइमों के द्वा[illegible] प्राक्-जैविक काल में समुद्रों में रासायनि[illegible] अभिक्रियाएँ तीव्रता से हुई होंगी जिन[illegible] फलस्वरूप अजीवितों से जीवों की सृष्टि [illegible] आरम्भ हुआ होगा। सन् १९६२ में डाक्[illegible] कृष्णबहादुर को विलयन में इस गाढ़े [illegible] हुए पदार्थ को सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखने पर सू[illegible] रंगीन पिण्ड दिखायी दिये, जिनमें जीवों [illegible] सब लक्षण मौजूद थे। कुछ अन्य परीक्षणों [illegible] उपरान्त यह भी सिद्ध हो गया कि वे संदू[illegible] के कारण नहीं उत्पन्न हुए क्योंकि [illegible] सामान्य पोषण-विलयनों में नहीं उगाये [illegible] सकते थे।

नेशनल एयरोनाटिक्स एण्ड [illegible] एडमिनिस्ट्रेशन (NASA) के सौजन्य [illegible]

सक्रिय इकाइयों की आन्तरिक रचना प्रदर्शित [illegible] हुआ १००० आवर्धन पर लिया गया सूक्ष्म-[illegible]

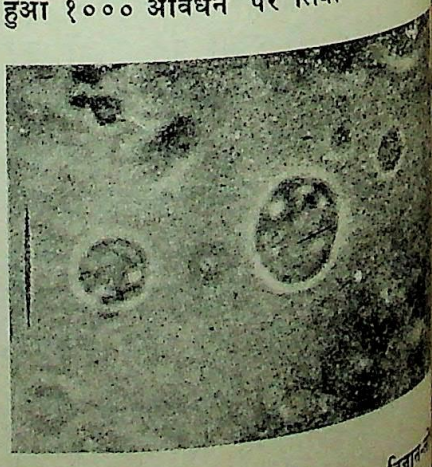

विलयन-[illegible]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

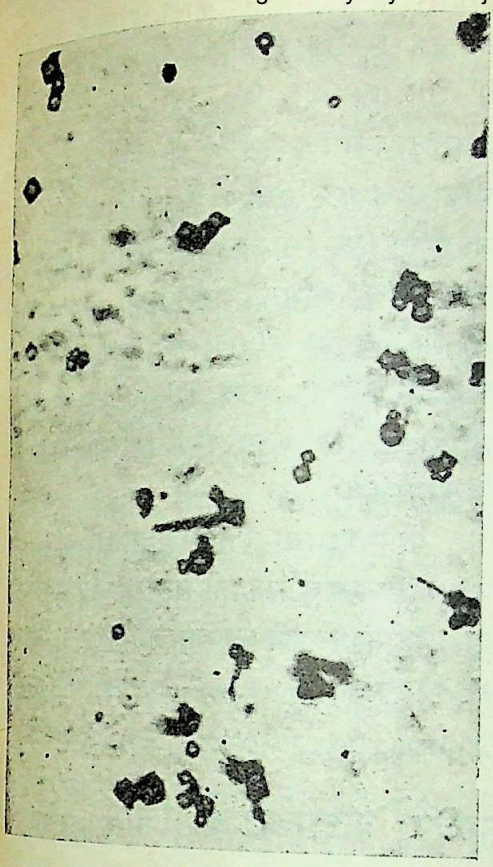

प्रमुख रूप से ५०% ताँबे वाले क्यूप्रस आक्साइड से निर्मित "जीवाणुओं" का १००० आवर्धन (मैग्निफिकेशन) पर लिया गया माइक्रोफोटोग्राफ। चित्र में एक से दो होते हुये अर्थात मुकुलन (budding) करते हुये कई "जीवाणु" तथा कुछ धागे-सी संरचनायें स्पष्ट है

फलोरिडा (अमरीका) के जीव-विज्ञान संस्थान की प्रयोगशाला में पाँच महीने जी-तोड़ परिश्रम करने के पश्चात् १९६३ में मार्च के अन्त में डाक्टर कृष्णबहादुर ने प्रोफेसर पर्ती को एक पत्र भेजा। उससे प्रेरित होकर प्रोफेसर पर्ती ने तुरन्त ही अपने विलयनों का पुर्ननिरीक्षण किया जिनसे डाक्टर कृष्ण-बहादुर के निरीक्षणों का बहुत कुछ अंश सत्यापित हो गया। विलयनों में जेली सरीखे गाढ़े पदार्थ के जमने का रहस्य प्रकट हो गया। वे वही अजीव पदार्थ थे जो विलयन अवस्था में एन्जाइम सक्रियता के फलस्वरूप जीव पदार्थ बन गये थे। एन्जाइम सक्रियता अर्थात् विलयन के ही कुछ उत्प्रेरक प्रोटीनों की सक्रियता ने अभिक्रिया के माध्यम से संजीवनी का कार्य किया और रासायनिक अजीवित विलयनों (solutions) के संपिण्डित अणुओं को जीव-अणुओं (living molecules) में परिणत कर दिया। भारतीय वैज्ञानिकों ने इन जीव-पदार्थों का नाम रखा जीवाणु अर्थात् जीवित अणु। ये जीवाणु इसीलिए कहलाये कि ये जीव-कोशिकाओं के लक्षणों वाले थे और सूक्ष्म जीवित कण थे। इनमें जीवित कोशिकाओं की तरह वातावरण के अनुसार अपने को ढालने, वृद्धि करके बड़ा होकर सामान्य आकार ग्रहण करने के बाद विभाजित होने (उत्पादन) और उपापचय सक्रियता (metaboilc activity) के गुण विद्यमान थे। इन जीवाणु या सूक्ष्म गोलिकाओं की तुलना आरम्भिक केन्द्रकहीन कोशिकाओं से की जा सकती है जिनसे कि केन्द्रकयुक्त कोशिकाएँ और फिर आदि-जीव उत्पन्न हुए थे।

प्रोफेसर पर्ती के अनुसार जीवों के उद्भव व विकास के सम्बन्ध में कई अवस्थाएँ सम्भव

चमकदार नीले रंग की कणिकाओं वाली दीर्घ तरल गोलिकायें

CC-0, In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

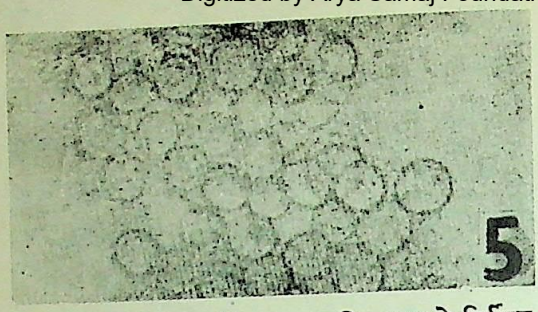

जीव कोशिका समूह के सदृश कृत्रिम रूप से निर्मित सजीव इकाइयों का एक विशिष्ट पुंज

हो सकती हैं। उदाहरण के लिए सबसे पहली अवस्था रही होगी साधारण अणुओं के उत्पादन और सांद्रण की; फिर दूसरी अवस्था रही होगी अमीनो अम्ल और ट्रायोज (trioses) आदि के निर्माण की और तीसरी अवस्था रही होगी बड़े अणुओं के समूहन तथा निर्माण के श्रीगणेश की; अर्थात् बहुलीकरण (polymerisation) की। डाक्टर कृष्ण बहादुर के बाद के प्रयोगों और परीक्षणों से तो यह भी सिद्ध हो जाता है कि अनाइट्रोजनीय पदार्थों से भी जीव-पदार्थों के जीवाणुओं का निर्माण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए इन्होंने पचास प्रतिशत ताँबे वाले क्यूप्रस आक्साइड (cuprous oxide) से भी जीवाणु उत्पन्न करके दिखा दिये जिनकी आकृति, रचना व मुकुलन (budding) सूक्ष्म-फोटो में विविध प्रकार से दिखाया गया है।

यही कामना है कि हमारे ये परिश्रमी वैज्ञानिक इस चमत्कारी महान् कार्य में सफल हों और संसार को आश्चर्यचकित कर भारत का गौरव बढ़ायें।

हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए
हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. **जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

२. **वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

३. **प्रारम्भिक भौतिकी**—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३·५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

४. **प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

५. **प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

६. **सामान्य विज्ञान**—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६·२५

७. **सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५·००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ९ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-क्लब

प्यारे बच्चो !

तुम्हारी छुट्टियों के ये दिन और यह नया अंक···दोनों में खूब पटेगी न !

यही अवकाश का समय है जो तुम्हें वर्ष में एक बार मिलता है। यही वह समय है जब अपनी पाठ्य पुस्तकों की पकड़ से छूटकर तुम ज्ञान-विज्ञान की अपनी झोली नये सिरे से भर सकते हो। और, तुम्हारे अनेक सदस्य भाई-बहिन नया ज्ञान अर्जित करते भी हैं।

इसके लिए जिसे जिसमें सुविधा रहती है, वह वही साधन अपनाता है। कोई तो ठण्डी जगहों पर छुट्टियाँ बिताने जाते हैं और वहाँ प्रकृति के आँचल में नये-नये स्थानों की नयी-नयी जानकारी संकलित करते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो अपने ही नगर और मुहल्लों में ज्ञान-गोष्ठियों द्वारा अनेक जिज्ञासुओं की तृप्ति करते हैं और छुट्टियों का लाभ लेते-देते हैं। इन सबसे तनिक भिन्न वे भी हैं जो विज्ञान-लोक के पिछले अंकों का पुनरावलोकन करते हैं, **करो और देखो** के संकेतानुसार नयी वस्तुएँ बनाते हैं, नये प्रयोग करते हैं और प्रकाशन के लिए अपनी नव-संकलित सामग्री को लेख के रूप में उतारकर भेजते हैं। अन्त में, अधिक उत्साही कुछ ऐसे भी हैं जो अपनी पूर्वस्थापित विज्ञान-क्लब की नगर-शाखा की सुस्ती उड़ाकर अथवा नयी ही शाखा खोलकर विज्ञान-वार्ताओं तथा चर्चा-विनिमय का आनन्द लेते हैं।

यह तो तुम्हें समझाने की आवश्यकता न होनी चाहिए कि सृजनात्मक कार्यों में, ज्ञान-वर्द्धन तथा ज्ञान-प्रसारण में अवकाश का समय लगाना, देश की शक्ति बढ़ाना है। अतः तुम जो भी करोगे, देश और समाज के हित में ही करोगे, यह मेरा विश्वास है।

मई १९६४

छुट्टियों का आनन्द तुम अधिक उठा सको, यह मेरी शुभकामना है। छुट्टियाँ कैसी बितायीं उसके मनोरंजक विवरणयुक्त तुम्हारे पत्रों की मुझे प्रतीक्षा है।

सस्नेह तुम्हारी

कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ५० के विजेता

प्रथम पुरस्कार

भुवनेश्वर गुप्ता (९१४) आगरा, गिरीशचन्द्र अग्रवाल (११५७) आगरा, आनन्दनारायण श्रीवास्तव (२५२७) लखनऊ, संजय गुप्ता (३४६७) लखनऊ, मंजू गुप्ता (७२९०) लखनऊ, नरेशकुमार मजीठिया (७५५६) अमृतसर।

द्वितीय पुरस्कार

अरुणकुमार जाजू (१७) कानपुर, रणजीतसिंह (४७२४) नई दिल्ली, सुरेशकुमार गुप्ता (७१९०) अमृतसर, पुरुषोत्तमकुमार सूरी (७३४१) जगदलपुर, ललितकुमार राव (७७३३) जगदलपुर, नरेन्द्र बन्सल (७८२८) आगरा, मंजू अग्रवाल (८१७९) इलाहाबाद, शशीकान्त गुप्ता (१०६९४) आगरा, आलोक अदावाल (१०७९०) इलाहाबाद, जगदीशप्रसाद बन्सल (११९८३) आगरा।

तृतीय पुरस्कार

सुधीरकुमार राठौर (१६१९) आगरा, गोपाल माधव (२३७९) मेरठ, रणवीर मजूमदार (३१४१) लखनऊ, निरंजनप्रकाश माथुर (३६१६) पुष्कर, प्रतापभानु शर्मा (५१६३) विदिशा, वेंकटलाल माहेश्वरी (९८९९) कटनी, अरविन्द अग्रवाल (१००३८) जबलपुर, हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१) लखनऊ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब के नये सदस्य

वीरेन्द्रकुमार
(स. सं. ७३८३)

वीरेन्द्रकुमार
(स. सं. ७९५५)

आदित्यकुमार
(स. सं. ८६२०)

नरेन्द्रदेव यादव
(स. सं. ८६३४)

८३१० कृष्णकुमार (१२) कटिहार, ११ वेदप्रकाश (१४) चुरू, १२ प्रदीपकुमार (१३) इलाहाबाद, १३ अशोककुमार (१३) एटा, १४ ब्रजरतन (१४) बीकानेर, १५ शशिशेखर (१२) हिनू, १६ शिवकुमार (१५) दिल्ली, १७ भारतभूषण (१३) भोपाल, १८ अमरेशसहाय (१६) हिनू, १९ सज्जनकुमार (१४) कलकत्ता, २० निपुण (११) सहारनपुर, २१ अरुणकुमार (८) भागलपुर, २२ दीनदयाल (१४) मोतिहारी, २३ अजयकुमार (१३) लखनऊ, २४ गुलाबसिंह (१६) लश्कर, २५ अनिलकुमार (१५) उदयपुर, २६ जसवन्तकुमार (१२) वाराणसी, २७ अरुणकुमार (१३) फारबिसगंज, २८ रमेशचन्द्र (१७) घुबड़ी, २९ अनिल (१३) ग्वालियर, ३० सत्येन्द्रकुमार (१५) बेगमपुर, ३१ अनिल (१४) हिवरखेड, ३२ सुशीलकुमार (१६) रायगढ़, ३३ गोविन्ददेव (१३) टीकमगढ़, ३४ गणेशदास (१६) बीकानेर, ३५ विनय (१५) अमहरा, ३६ श्यामसुन्दर (१२) दादपुर, ३७ अमरेन्द्रनारायण (१३) गया, ३८ रवीन्द्रनाथ (१३) बुलन्दशहर, ३९ दयाशंकर (१२) सक्ती, ४० प्रदीप (१५) भीलवाड़ा, ४१ बरदीचन्द्र (१६) चित्तौड़गढ़, ४२ अरुणकुमार (१२) लखनऊ, ४३ कु. भारती (९) डूंगरपुर, ४४ श्यामसुन्दर (१८) डूंगरपुर, ४५ अशोककुमार (१३) जैतवारा, ४६ सत्यपाल (२०) मथुरा, ४७ प्रकाशचन्द्र (१४) झाड़ोल, ४८ परमेशचन्द्र (१४) कानपुर, ४९ अमरनाथ (१७) लुधियाना, ५० युगलकिशोर (१८) बलिया, ५१ सतीशचन्द्र (१४) कानपुर, ५२ सतीशचन्द्र (१५) होशंगाबाद, ५३ कुन्दन (१९) किशनगढ़, ५४ यशपाल (१५) कानपुर, ५५ अनिलकुमार (१५) राजगढ़, ५६ घनश्यामदास (१७) झुंझुनू, ५७ रणजय (१४) गुरुकुलकांगड़ी, ५८ सत्यपाल (१५) पिपली, ५९ रणवीर (१५) ब्यावर, ६० राजेन्द्रकुमार (१४) बरेली, ६१ राजेन्द्रप्रकाश (१५) अजमेर, ६२ उमेशकुमार (१५) जबलपुर, ६३ शाहिदकुमार (१६) रायपुर, ६४ लल्लूप्रसाद (१७) पोखरौनी, ६५ हररविन्दरसिंह (१३) गोरखपुर, ६६ ओमप्रकाश (१०) गनपतगंज, ६७ धीरेन्द्रकुमार (१५) छतरपुर, ६८ स्नेहदीप (१६) जोधपुर, ६९ प्रदीपकुमार (१२) ७० त्रिलोकनाथ (१४) रतनपुर, ७१ नरेन्द्रकुमार (१५) विदिशा, ७२ केदारनाथ (१८) सुपौल, ७३ गोपालप्रसाद (१४) सुपौल, ७४ देवकीनन्दन (१७) रतनगढ़, ७५ कु. ललिताकुमारी (१५) शिकोहाबाद, ७६ दीपचन्द्र (१८) आजमगढ़, ७७ कृष्णदेव (१७) चाँदपीपर, ७८ राजेन्द्रकुमार (२०) इन्दौर, ७९ देवानन्द (१२) हथुआथ, ८० बालकृष्ण (१४) गाडरवाड़ा, ८१ हरीओम् (१६) कठुमार, ८२ कु. चन्द्रकान्ता (११) मांगलिया, ८३ पवनकुमार (१६) मुकुन्दगढ़, ८४ विजयप्रकाश (१७) अकोला, ८५ कु. संघमित्रा (१४) वाराणसी, ८६ कु. बसंता (१४) अकोला, ८७ सतीशचन्द्र (१७) बस्ती, ८८ चन्द्रकुमार (१४) बारासिवनी, ८९ मधुसूदन (१२) गाडरवाड़ा, ९० चम्मन (१७) आदमपुर, ९१ बृजेशकुमार (१२) आदमपुर, ९२ रत्नदीप (११) रांची, ९३ अनिलकुमार (११) लखनऊ, ९४ केसरीमल (१५) उदयपुर, ९५ सुनन्दाकुमारी (१३) ग्वालियर, ९६ चन्द्रशेखर (१८) छपरा, ९७ मायाशंकर (१४) बैनी, ९८ सिंहेश्वर (१५) फारबिसगंज ९९ शीशुपाल (१०) सीकर, ८४०० संतोषकुमार (१२) जामताड़ा, १ लालचन्द्र (१४) भीनमाल, २ सुरेशकुमार (१७) कल्याण, ३ गगनकुमार (१५) जौनपुर, ४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोककुमार (१८) बम्बई, ५ मधुसूदन (१७) झालावाड़, ६ सुरेशचन्द्र (१६) कानपुर, ७ गजानन्द (१९) पेन्ड्रारोड, ८ मनमोहनचन्द्र (१८) विलासपुर, ९ महावीरप्रसाद (१७) भोपाल, १० गिरधरलाल (१८) रायगढ़, ११ तेहसीनजुबैर (१४) डाबरीपीठा, १२ रमेशकुमार (२३) रोहतक, १३ प्रवीनकुमार (९) रायपुर, १४ सुदर्शनपालदेव (१०) नई दिल्ली, १५ सुभाषचन्द्र (१६) बड़ौत, १६ राजेशकुमार (१६) सहारनपुर, १७ सुरेन्द्रकुमार (१२) फारबिसगंज, १८ प्रेमनारायण (१७) टीकमगढ़, १९ रवीकुमार (१७) बस्ती, २० निर्मलकुमार (१६) बोरहाट, २१ जगजीत (१५) नई दिल्ली, २२ रामनगीना (१५) छोटामुरी, २३ रामरघुवंशमणि (१७) गोंडा, २४ कु. फरीदा (१५) रामपुर, २५ सम्पतमल (१३) डूंगरगढ़, २६ राजकुमार (१३) कुरुक्षेत्र, २७ रामदेव (३०) कोलिया, २८ मुरारीलाल (१५) कुरुक्षेत्र, २९ ओमप्रकाश (१३) सतना, ३० जगदीशप्रसाद (११) इटारसी, ३१ सुनीलकुमार (१०) कालका, ३२ आर. ए. स्वामीनाथन (१६) जमशेदपुर, ३३ भंवरलाल (२५) जयपुर, ३४ शशीकुमार (१५) पटना, ३५ लक्ष्मणसिंह (१६) आसीन्द, ३६ बालचन्द्र (१५) आसीन्द, ३७ विजयकुमार (१०) पटना, ३८ मदनलाल (१६) मथुरा, ३९ देवदास (१८) कोंडागाँव, ४० अशोककुमार (१६) जोधपुर, ४१ राजकुमल (१२) कानपुर, ४२ अशोककुमार (१५) मुजफ्फरनगर, ४३ प्रकाशकुमार (१४) कोरी, ४४ कु. रीला (१४) इन्दौर, ४५ उमाशंकर (१६) सूजागंज, ४६ कु. मीरारानी (१२) पीलीभीत, ४७ ज्योतिप्रसाद (२३) गोरखपुर, ४८ ललितकुमार (१७) दुर्ग, ४९ राघवेन्द्रकुमार (१४) कानपुर, ५० उपासकलाल (२०) शहपुरा, ५१ अरुणकुमार (१६) हजारीबाग, ५२ कुलदीपचन्द्र (१५) मुरादाबाद, ५३ दयानिधि (१५) मुरादाबाद, ५४ मंजूकुमारी (१०) बोकारी, ५५ अरविन्द कुमार (१८) काशीपुर, ५६ कैलाशचन्द्र (८) पिथौरागढ़, ५७ अशोककुमार (१६) जसीडीह, ५८ दलिलहेम्ब्ररम (११) दुर्गागंज, ५९ चतरसिंह (१७) औरंगाबाद, ६० मनीरुद्दीनअहमद (१८) दुमका, ६१ विसमिल्लाह (१६) सेवरही, ६२ नीलकंठ (१५) खुरई, ६३ जगन्नाथ (९) जमशेदपुर, ६४ कु. ललिता (१२) जमशेदपुर, ६५ सांवरमल (१७) कलकत्ता, ६६ नानकचन्द्र (१३) हरद्वार, ६७ वीरकुमार (१८) रामगंजमंडी, ६८ नत्थूलाल (१७) बिसोली, ६९ कन्हैयालाल (१७) चित्तौड़गढ़, ७० मनोजकुमार (१३) मुक्तेश्वर, ७१ अजीतकुमार (१५) वाराणसी, ७२ राधामोहन (१४) सिमलिया, ७३ अजयकुमार (१२) लखनऊ, ७४ सूर्यप्रताप (१२) अमृतसर, ७५ कमलकिशोर (१४) इन्दौर, ७६ तेजकरण (१७) इन्दौर, ७७ श्रीनारायण (१९) पसराहा, ७८ कु. चित्ररेखा (१४) दुर्ग, ७९ हृषीकेशशरण (१२) अराह, ८० गोविन्दप्रसाद (१८) डूंगरगढ़, ८१ श्रवणकुमार (१६) बेतिया, ८२ कु. सुचिता (१४) बहराइच, ८३ कृष्णगोपाल (१४) उज्जैन, ८४ सुरेन्द्रकुमार (१४) गोरखपुर, ८५ रामराज (१४) थानेसर, ८६ लखपत (१४) बीकानेर, ८७ इन्द्रराज (१९) राउरकेला, ८८ जकीसिद्धकी (१५) कैराना, ८९ कु. गोपीशाहनी (१६) रांची, ९० लक्ष्मीप्रसाद (१६) अजमेर, ९१ कु. सत्यवती (१५) बेगमपुर, ९२ सुरेशचन्द्र (१३) इन्दौर, ९३ सतीश (१५) इटारसी, ९४ भुवनेश्वर (१४) पटना, ९५ शैलेन्द्रकुमार (१४) कानपुर, ९६ अजीतकुमार (१५) गोरखपुर, ९७ रामचन्द्र (२०) बिरौल।

अविनाशकुमार
(स. सं. ८९५१)

शान्तिप्रकाश
(स. सं. ९१२१)

कुलदीपसिंह
(स. सं. ९३४७)

भिखमचन्द ओझा
(स. सं. ९६१२)

मई १९६४

जितेन्द्र भारद्वाज
(स. सं. ९७६५)

भृगुनाथ शुक्ल
(स. सं. ९७६७)

रमाकान्त
(स. सं. १०२०५)

भंवरलाल
(स. सं. १०९७१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

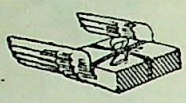

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५२

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्त
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्त
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्त

अन्तिम तिथि : ३१ मई

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५७ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५२ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर ३१ मई तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५२ के प्रश्न

१. टेलीविजन कैमरे में जो ट्यूब दृष्ट प्रतिबिम्ब (visible image) को विद्युतधारा में परिवर्तित कर देती है, उसे क्या कहते हैं ?

२. रक्तदान के लिए उपयोगी, रक्त का वर्गीकरण A.B.AB तथा O समूहों में सर्वप्रथम किसने किया?

३. पारे (mercury) की भांति सामान्य ताप (room temperature) पर द्रवावस्था में रहनेवाली कम से कम तीन धातुओं के नाम बताओ।

४. न्यूफाउण्डलैण्ड के निकट जो दो समुद्री धाराएँ—एक शीत, एक उष्ण—परस्पर मिलकर स्थायी कुहरा बनाये रहती हैं, उनके नाम क्या हैं ?

५. रिचार्डसन को नोबुल पुरस्कार कब और किस उपलक्ष्य में दिया गया था ?

६. एण्टीप्रोटान (antiproton) क्या है ? प्रोटान से इनकी टक्कर होने का क्या परिणाम होता है ?

७. हमारे शरीर को अत्यधिक लम्बा अथवा बिलकुल ही ठिगना बना देने के लिए कौनसी अवाहिनि ग्रन्थि उत्तरदायी है ?

८. डाक्टर यूरे (Dr. Urey) का नाम किस लिए प्रसिद्ध है ?

९. होवरक्राफ्ट की विशेषता क्या है ? इसके आविष्कारक का नाम बताओ ?

१०. बिजली के तार को हम छुएँ तो झटका लगे और चिड़ियाँ उन्हीं पर मजे में बैठी रहें ऐसा क्यों ?

प्रतियोगिता संख्या ५० के प्रश्नों के उत्तर

१. द. आस्ट्रेलिया तथा तस्मानिया में।

२. सूर्य।

३. साम कायर (Sam Kier) ने।

४. Benzene का व्यावसायिक नाम Benzol है।

५. बहुरूपदर्शी (Kaleidoscope) द्वारा। एक बन्द नली में ६०° के कोण पर रखे दो दर्पण, इसकी रचना के मुख्य आधार हैं।

६. ३०,०००°F तक का।

७. हमारी त्वचा में रहने वाले अर्गोस्टेरोल (eagossterol) तथा डीहाइड्रोटेकिस्टेरोल (dehydro tachysterol) द्वारा।

८. २१ दिन में।

९. २५ नवम्बर १८९२ को। [illegible] के बैरन पियरे - डी - कोबरटिन को इसका श्रेय है।

१०. कहीं से नहीं। केवल उत्ताल तरंगों में प्रबल वेग ही दृष्टिगत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

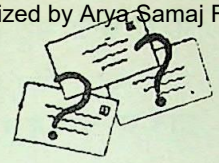

राकेश निगम (३५६०) बांदा

प्रश्न—पैरावेन (Paravane) क्या है और इसके क्या उपयोग हैं ?

उत्तर—समुद्र में शत्रुओं द्वारा बिछायी गयी सुरंगों की टोह लेकर उनके रस्से काटकर ऊपर उभारने के लिए काम में लिया जाने वाला नवा-विष्कृत यन्त्र है। प्रथम विश्व युद्ध में इससे बहुत काम लिया गया था। सिगरेट के आकार के एक नन्हे बम जैसा यह यन्त्र जहाज के दायें तथा बायें ५०-६० फुट दूर, रस्से से बँधा तैरता चलता है। बीच में कहीं सुरंग आते ही उसके रस्से काट देता है और तब उस सुरंग के ऊपर तिर आने पर उसे नष्ट कर दिया जाता है। कमाण्डर उस्बर्न तथा लेफ्टेनेन्ट बरने द्वारा आविष्कृत यह यन्त्र कुछ काल तक पनडुब्बी-विध्वंसक के रूप में भी काम में लिया जाता रहा किन्तु अब केवल सुरंगों की टोह के लिए ही काम आता है।

अवतारसिंह (१०६६६) देहरादून

प्रश्न—स्फीग्मोग्राफ (Sphygmograph) क्या है ? किस काम आता है ?

उत्तर—नाड़ी की धड़कन ज्ञात करने के लिए पहले काम आता था, अब नहीं।

रमेशचन्द्र रघुवंशी (१०१९२) रायसेन

प्रश्न—पेड़ गिराने वाला एक बड़े से बड़ा और एक छोटे से छोटा प्राणी बताइए।

उत्तर—क्रमशः हाथी और बीवर।

प्रदीपकुमार (९३१५) मिर्जापुर

प्रश्न—पौधों में फूलों के रंग अपनी इच्छानुसार किस रसायन के प्रयोग से उत्पन्न करेंगे ?

उत्तर—बागबानी की यह क्रिया काफी जटिल है और केवल रसायन ही नहीं, ताप आदि अन्य अनेक वस्तुएँ नियन्त्रित करनी पड़ती हैं। इसकी विधि किसी भी कृषि अनुसन्धान अथवा बागबानी प्रशिक्षण केन्द्र (horticultural institute) से ज्ञात की जा सकती है।

विश्वानन्देव अग्निहोत्री (१०५८५) सीहोर

प्रश्न—पानी को १४००° सें. तक गर्म करने से हाइड्रोजन और आक्सीजन में विच्छेदित किया जा सकता है क्या ?

उत्तर—१४००° सें. पर पानी रहेगा ही कहाँ ? तब तक तो वाष्प भी न बचेगी ! इससे काफी सरल तरीका तो विद्युतविच्छेदन (electrolysis) का रहेगा।

खलील अहमद (८६०९) इन्दौर

प्रश्न—'आवर्त विभाजन' किसे कहते हैं और इसका श्रेय किसको है ?

उत्तर—परमाणु भार तथा संख्या के अनुसार रासायनिक तत्त्वों के वर्गीकरण को आवर्त-तालिका कहते हैं। इसका प्रारम्भिक श्रेय न्यूलेण्ड्ज (१८६४) को है, यद्यपि तत्पश्चात् लोथर मेयर और मेण्डेलीफ के आते-आते इसमें अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने पड़े थे।

कु. कान्तामणि (३६१३) रायपुर

प्रश्न—अन्तर्राष्ट्रीय दिनांक रेखा (International Date Line) से क्या प्रयोजन है ?

उत्तर—यह काल्पनिक रेखा नित्य की तारीख निर्धारित करने के लिए बनायी गयी है। पृथ्वी एक गेंद के समान होने के कारण यह तो सम्भव ही नहीं कि सभी स्थलों पर दिन या रात एक ही साथ हो। अतः सुविधार्थ ०° (ग्रीनिच) से लेकर १८०° तक के रेखांशों को १५-१५ के १२ समान भागों में बाँटा गया है। यह रेखा अपने मार्ग में किसी भी भू-भाग पर नहीं चलती ताकि एक ही स्थल के दो भागों में दो तारीखें न होने पाएँ। इसी रेखा के एक ओर दिन और दूसरी ओर रात रहती है। इसके पश्चिम ओर के देश पूर्वीय देशों की अपेक्षा एक तारीख आगे रहते हैं।

राजेशकुमार तिवारी (१०७२४) पेण्ड्रा रोड

प्रश्न—बिजली की कुरसी द्वारा मृत्युदण्ड देने की विधि को क्या कहते हैं ? यह नयी अमानुषी प्रथा कब प्रारम्भ की गयी ?

उत्तर—इसे इलेक्ट्रोक्यूशन (electrocution) कहते हैं। यह प्रथा १८८८ से अमरीका से आरम्भ हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार जैन (६३४२) डोंगरगाँव

प्रश्न—लाल बत्ती या लाल रंग का हमारी आँखों पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

उत्तर—आँखों को ठण्डक पहुँचाने वाले तीन रंग—नीला, हरा और भूरा तथा गर्मी पहुँचाने वाले तीन रंग—लाल, पीला और नारंगी हैं। कमरों की सजावट में मौसम के अनुकूल ही इन रंगों में से रंग पसन्द किये जाते हैं।

कृष्णचन्द्र अग्रवाल (५२९२) आगरा

प्रश्न—जिस प्रकार २+२ और २×२ का फल ४ होता है, ऐसी कम से कम तीन संख्याएँ और बताइए जिनमें चाहे दूसरी संख्या पहली से भिन्न हो किन्तु परस्पर जोड़ और गुणन का फल समान हो।

उत्तर—$३+१\frac{१}{२}, ३\times१\frac{१}{२}; ४+१\frac{१}{३}, ४\times१\frac{१}{३}$; और $५+१\frac{१}{४}, ५\times१\frac{१}{४}$।

इन्द्रराज हाण्डा (८४८७) राउरकेला

प्रश्न—थर्मोकपुल (thermocouple) क्या है और किस काम आता है ?

उत्तर—विकिरण (radiation) द्वारा ताप मापने का यन्त्र है। सामान्य रूप में तो केवल दो भिन्न धातुओं के तारों का एक छल्ला जैसा होता है जिसे गर्म करने पर दोनों के प्रसारण की असमानता विद्युतधारा उत्पन्न कर देती है। अमुक सीमा तक यह तथ्य काम करता है कि जितना अधिक ताप, उतनी तीव्र विद्युतधारा। धमन भट्ठी (blast furnace) जैसे अन्य अति उच्च ताप के स्थलों पर न तो कोई व्यक्ति ही खड़ा रह सकता है, न कोई भी पारे का तापमापी उड़े बिना रह सकता है। अतः वहाँ यह काम आता है।

इन्दु मुलण चौधरी (१०२७४) मझौलिया

प्रश्न—पेट्रोल के इंजन को चलाने के लिए पहले सहायता देनी पड़ती है किन्तु बिजली के इंजन में इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसा क्यों ?

उत्तर—पेट्रोल के इंजन में तो पेट्रोलियम गैस को विस्फोटक द्वारा प्रज्ज्वलित कराना पड़ता है, जबकि बिजली के इंजन में बिजली हर समय प्रस्तुत रहती है, स्विच दबाने की देर है।

मोहनचन्द्र भट्ट (७८१७) गोरखपुर

प्रश्न—सिर के बाल अल्पायु में ही सफेद [illegible] जाने का क्या कारण है ?

उत्तर—अधिकांशतः तो स्थायी रूप से [illegible] नजला बना रहने के कारण और कहीं-कहीं अत्यधिक मानसिक बोझ के कारण बालों की स्नेहोत्पादक ग्रन्थियाँ निष्क्रिय होती रहती हैं और बाल [illegible] होते सफेद होना प्रारम्भ कर देते हैं।

रामसुन्दर बाजपेयी (९१३४) जबलपुर

प्रश्न—कुकुरमुत्ता किस पदार्थ से [illegible] होता है ?

उत्तर—विज्ञान-लोक, दिसम्बर १९६२ [illegible] अंक का शीर्ष-लेख सविस्तार वर्णन के [illegible] देखिए।

अशोक श्रीवास्तव (६५३०) भोपाल

प्रश्न—निम्न में से किनके द्वारा खाना पकाना [illegible] हानिकारक है और क्यों ? अंगीठी, हीटर, [illegible] तथा गैस का चूल्हा।

उत्तर—तथ्य यह है कि किसी में भी [illegible] हानिकारक नहीं; शर्त यह होनी चाहिए कि किसी [illegible] भी गैस या धुआँ खाने की वस्तु को स्पर्श न करे। [illegible] अग्नि का कोई भी रूप हो, उससे केवल खाना [illegible] गलाने का ही तो काम लिया जाएगा ! जैसे [illegible] का या सॉफ्ट कोक का धुआँ लगने से रोटी [illegible] हो जाती है, उसी प्रकार गैस हीटर की गैस भी [illegible] पहुँचा सकती है। सावधानी बरतने पर किसी [illegible] कोई हानि की सम्भावना नहीं।

सन्तोषकुमार जैन (७६१८) लश्कर

प्रश्न—टाइम बम में क्या विशेषता होती है [illegible] निर्धारित समय पर ही विस्फोट करता है ?

उत्तर—विस्फोटक फ्यूज को निर्धारित [illegible] पर काम कराने के लिए एक ऐसा स्वचालित घड़ीनुमा चक्र बिठाया जाता है जो निर्धारित [illegible] घूमकर आने पर फ्यूज को सक्रिय कर [illegible] देता है।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी कलम से—

फन्देबाज मकड़ी

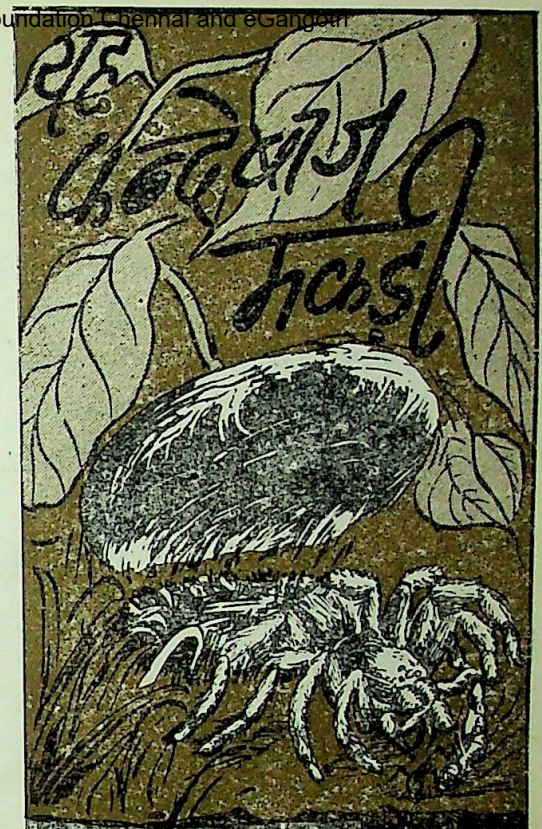

मकड़ियों की जातियाँ जितनी अनगिनत हैं, उतनी ही अनगिनत इनकी विचित्रताएँ भी हैं। कम से कम ५०,००० जाति की मकड़ियों में एक मकड़ी ऐसी भी है जो सबसे अलग तिर आती है। वह है फन्देबाज मकड़ी, जिसे ट्रैपडोर स्पाइडर (Trapdoor Spider) कहते हैं।

जातिगत विशेषताएं

मकड़ी की पहली विशेषता है, पैराशूट की भाँति हवा में उतराना। इस उड़ान के भी दो प्रयोजन हैं—प्रथम तो बच्चों का माँ-बाप से जान बचा कर निकल भागना और दूसरे, अपना घर बसाने के लिए ताना-बाना बुनना। कदाचित शंका हो सकती है कि जन्मदाता माँ-बाप से जान बचाकर भागने की नौबत क्यों आती होगी? उत्तर यह है कि अन्य अनेक

शिम्भूशरण (स. सं. १५०४)

रैप्टाइल-वर्गीय जन्तुओं की भाँति मकड़ी भी ऐसा जन्तु है जो भूख आगे के विवेकशून्य हो जाता है, सब कुछ भूल जाता है और बगैर अपना-पराया देखे, जो सामने आया, उसी को चट कर जाता है। मादा में यह प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल पायी जाती है और इसीलिए उसके सद्य-जात शिशुओं में ऐसे अभागे भी रहते हैं जो पैदा होते ही माँ का ग्रास बन जाते हैं। अतः इधर अण्डों से निकले और उधर पांवों में दम आते ही, कतार बाँधकर घर से बाहर! कहीं कोई पेड़ पर, कोई पौधे पर, कोई दीवार पर पहुँच जाता है। वहाँ पाँव जमा कर अपनी लार ज्यों ही उछालते हैं, वह लार रेशमी रेशों में परिणत हो जाती है। बस उन रेशों के सहारे, पैराशूट की तरह हवा के कंधे पर सवार, दूर-सुदूर छिटक जाते हैं—कहीं कोई दो-चार सौ गज तो कहीं २-४ मील भी!

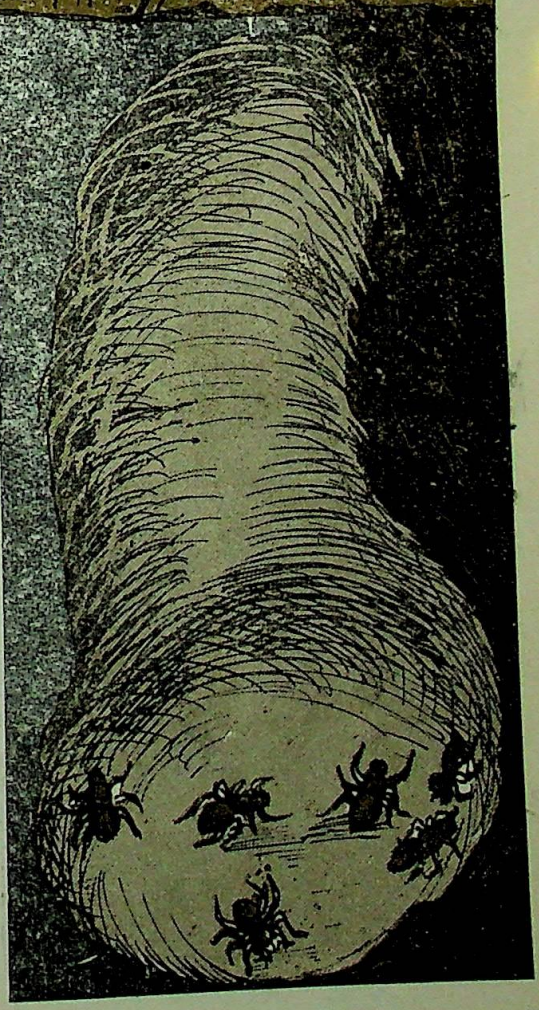

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरंग, एक चूहेदानी

खतरे से दूर होते ही, जहाँ ये पाँव टिकाते हैं, वहीं अपना घर बसाने लग जाते हैं। अन्यान्य मकड़ियाँ तो चाहे जहाँ रह लेती हैं, किन्तु यह केवल भूमि में सुरंग बनाकर रहती है। इसकी सुरंग क्या होती है, शिकार फांसने का एक फन्दा होता है। इसीलिए इसे फन्देबाज मकड़ी कहते हैं। वह फन्दा भी ऐसा होता है, मानो चूहेदानी की उलट। साधारणतया तो स्वयं चूहेदानी के बाहर रह कर चूहेदानी में चूहा फाँसा जाता है, किन्तु इसकी दुनिया उलटी है। यह मकड़ी स्वयं अपने पिंजड़े में बन्द रहती है और शिकार की आहट मिलते ही, लपककर खट् से ढक्कननुमा दर्वाजा खोलकर, शिकार को अन्दर घसीट ले आती है। पीछे से वह दर्वाजा आटोमैटिक तरीके से न केवल स्वयं बन्द हो जाता है, बल्कि बड़ा खतरा सामने होने पर, यह उस ढक्कन को पांवों से ऐसे जकड़ लेती है कि बाहर वाला उसे खोल नहीं सकता।

यह चिड़िया इधर आ भी न पायी कि मकड़ी अपने शिकार सहित सुरंग में गायब !

इसके जबड़ों के निकट पैने कंघे के दांतों सरीखे, तीखे तन्तुओं की जो पंक्तियां रहती हैं, उन्हीं से यह भूमि खोदने का काम लेता है। सुरंग बनाने के आरम्भ में खुदी हुई मिट्टी की कितनी ही गोलियां बनाकर यह दूर छोड़ आता है ताकि शत्रु कीटों को सुरंग बनने का आभास न हो और यह सरलता से अपना काम करता रहे। लगभग एक इंच गहरी खुदाई हो जाने पर यह ऊपर की मिट्टी को अपनी लार से सान कर उसका एक ढक्कन ऐसा बनाता है जो सुरंग के मुँह पर फिट बैठता है। साथ ही, उसके किनारे खासकर ढलवां बनाता है ताकि वह ढक्कन और दृढ़ता से जमा रहे। ऊपर के किनारे पर अपने रेशमी रेशों का मजबूत जाल बुनकर उसके दोनों सिरे अन्दर की ओर लटका देता है मानो उसे खींच लेने की रस्सियां हो गयीं।

ढक्कन के निचले पेंदे में, बीचोबीच वह सूराख भी कर लेता है। वे सूराख इसके लिए हैण्डिल का काम देते हैं। ढक्कन बन जाने पर सुरंग में बैठा-बैठा आराम से और भी गहराई तक खोदता जाता है। ज्यों-ज्यों नीचे उतरता है, सुरंग की दीवारों पर अपनी लार का मांड पलस्तर करता जाता है। इससे वे दीवारें जलरोधक हो जाती हैं। पलस्तर के साथ-साथ दीवारों पर अपना जाला भी बुनता जाता है।

एक ही सीधी सुरंग से इसका काम नहीं चलता। अतः बीच-बीच में कम से कम एक या दो गुप्त सुरंगें और निकाल लेता है ताकि यदि शत्रु अन्दर घुस ही आए तो उसे भुलावा दिया जा सके। ऐसी सुरंगों के प्रत्येक संधि स्थल पर एक-एक ढक्कननुमा दर्वाजा अवश्य बना रखता है। उन्हीं में एक सुरंग का मुंह बाहर की ओर भी रख लेता है ताकि अन्दर घिर ही जाए तो बाहर निकलकर भागा जा सके।

बहुधा तो यह अपनी सुरंग के दर्वाजे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकट, छिपकर बैठा रहता है और ज्यों ही शिकार इसकी हद में आया, उसे झपटकर दबोच लेता है और पलक मारते ही ढक्कन खोलकर अन्दर कूद पड़ता है। पीछे से दर्वाजा स्वयं बन्द हो जाता है। सूक्ष्म यंत्रों तथा तीव्रचालित कैमरों द्वारा ऐसी मकड़ी का निरीक्षण करने पर पाया गया है कि यह अपने ढक्कन को अन्दर की ओर पांवों से जकड़े रहने के लिए अपने नन्हे शरीर और सामर्थ्य की अपेक्षा १५० गुना अधिक बल लगा देता है, जो सामान्य मानव के लिए कल्पना से परे की वस्तु है। आप ही सोचिए, औसतन १५० पौण्ड का एक व्यक्ति २१००० पौण्ड अर्थात् १० टन वजन उठा या थाम सकता है?

मानव किस भूल में है ?

कुछ लोग मिथ्या धारणावश इन मकड़ियों को ऐसा शत्रु मान लेते हैं जिसे नजर आते ही कुचल दिया जाए। यह न केवल उनकी अज्ञानता का प्रमाण है, बल्कि मकड़ी-जगत् के प्रति अन्याय भी है। प्रकृति ने यदि किसी जीव को डरावना और जहरीला बनाया है तो वह किसी गूढ़ प्रयोजन के अनुसार ही। मानव को स्वयं न छेड़ने वाले और अधिकतर बच कर ही रहने वाले इन निरीह कीटों के निर्माण-कौशल को यदि न्यायबुद्धि से देखने बैठें तो मानव अपने अति क्षुद्र कौशल के कारण लज्जानत होकर रह जाएगा। ये कीट एक ओर तो हानिकारक जन्तुओं का सफाया करते रहते हैं और दूसरी ओर ऐसा विलक्षण मकड़जाला बुनकर देते हैं जिसका जवाब आज भी विज्ञान के पास नहीं। केवल सूक्ष्मदर्शी में ही दिख सकने योग्य विशेष जाल-तंतु देकर दूरदर्शियों के लेन्स बनाने में विज्ञान की ये उल्लेखनीय सेवा करते हैं।

प्रकृति के इतने सूक्ष्म जीव के आगे हार मानता हुआ भी मानव आज किस ख्याल में अपने आपको भूला हुआ है? ●

यहाँ से काटिये

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृष्णा दीदी,

मुझे विज्ञान क्लब का सदस्य बना लीजिए।

जन्म-दिन _____ आयु _____

नाम _____

घर का पता _____

_____

_____

स्कूल का नाम _____

शिक्षा _____ रुचि _____

यहाँ से काटिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH

WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.
Book II.....Price : Re. 1·00
Book III.....Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to:

Sri Ram Mehra & Co.
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा ऑफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा के लिए प्रकाशित

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ट्रिपिल क्राउन
नं० १
प्योर ग्रेप
ब्राण्डी

शुद्ध अंगूरों से
तैयार की गई
मादक सुगन्धमय
एवं स्वास्थ्यवर्धक
एक सर्वश्रेष्ठ ब्राण्डी

डायर मीकिन ब्रुअरीज़ लिमिटेड स्थापित १८५५

मोहन ब्रुअरी — लखनऊ डिस्टलरी — कसौली डिस्टलरी

मोहन नगर ब्रुअरी एण्ड एलाइड इंडस्ट्रीज (उत्तर प्रदेश)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price : 75 nP. May 1964 Regd. No. L 14

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नववर्ष विशेषांक

नीहारिका

कहानी मासिक

७५ नये पैसे

मई अंक

अब सब जगह उपलब्ध है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

7625

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िये

पक्षी हैं पर उड़ते नहीं ३
—कुमारी प्रमिला

केल्सियम १०
—रमेशचन्द्र कपूर

आपेक्षिकता का विशिष्ट सिद्धान्त १५
—अशोककुमार चौबे

कोयले के उप-पदार्थ १९
—अनिलकुमार जैन

खाद्य-संरक्षण २३
—बनवारीलाल शर्मा

नक्षत्रलोक का आगन्तुक २८
—बिशुदास

बीज की बात ३२
—राजेन्द्रकुमार

ट्राम्बे ३७
—एस. पी. मिश्र

सितारों से आगे ४३
—रामदास शर्मा

भास्कराचार्य ४६
—गुणाकर मुले

रसायनशास्त्र का इतिहास ५१
—सत्यकुमार

भारत में राकेट उड़ानें ५६
—हरीश अग्रवाल

स्थायी स्तम्भ

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ४२
विचित्र संसार ४९
विज्ञान क्लब ५९
इनाम लो ६२
तुम्हारी कलम से ६३
आपके प्रश्न ६५

अपनी बात

जिसने भी सुना स्तब्ध रह गया। सहसा विश्वास नहीं हो सका कि करोड़ों का प्यारा जवाहर नहीं रहा—रह गयी हैं केवल उनकी स्मृतियाँ ! उनका निधन ही इतना आकस्मिक था।

जवाहरलाल नेहरू विश्वशांति के अग्रदूत और मानवता की स्वतन्त्रता के रक्षक थे। उनमें राजनीतिज्ञ और साहित्यिक दोनों का अद्भुत समन्वय था। 'आराम हराम है' उनके जीवन का मूलमन्त्र था।

राष्ट्र की आर्थिक प्रगति में उनका अटूट विश्वास था। वह समाजवाद द्वारा देश में आर्थिक क्रान्ति लाना चाहते थे परन्तु वह हिंसात्मक रास्ते के पक्ष में कभी नहीं रहे।

'आधुनिक मन्दिरों' में उनकी श्रद्धा थी। उनका कहना था कि 'आधुनिक मन्दिरों के निर्माण के वगैर देश का विकास नहीं हो सकता—देश से गरीबी, भुखमरी नहीं मिटायी जा सकती।

विज्ञान से तो आपकी प्रारम्भ से ही रुचि थी। राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं की गतिविधियों में आप विशेष रुचि लेते थे। विज्ञान के शांतिप्रिय और रचनात्मक उपयोग के आप हमेशा समर्थक रहे—परमाणु बमों के परीक्षण का आपने हमेशा विरोध किया।

देश से अंधविश्वास, गरीबी, भुखमरी, निरक्षरता को दूर करने के लिए हम 'आधुनिक मन्दिरों' के निर्माण में जुट जायें और विज्ञान का मानवता के लाभार्थ उपयोग करें, यही जवाहरलाल नेहरू के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

वर्ष ५ अंक ५

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

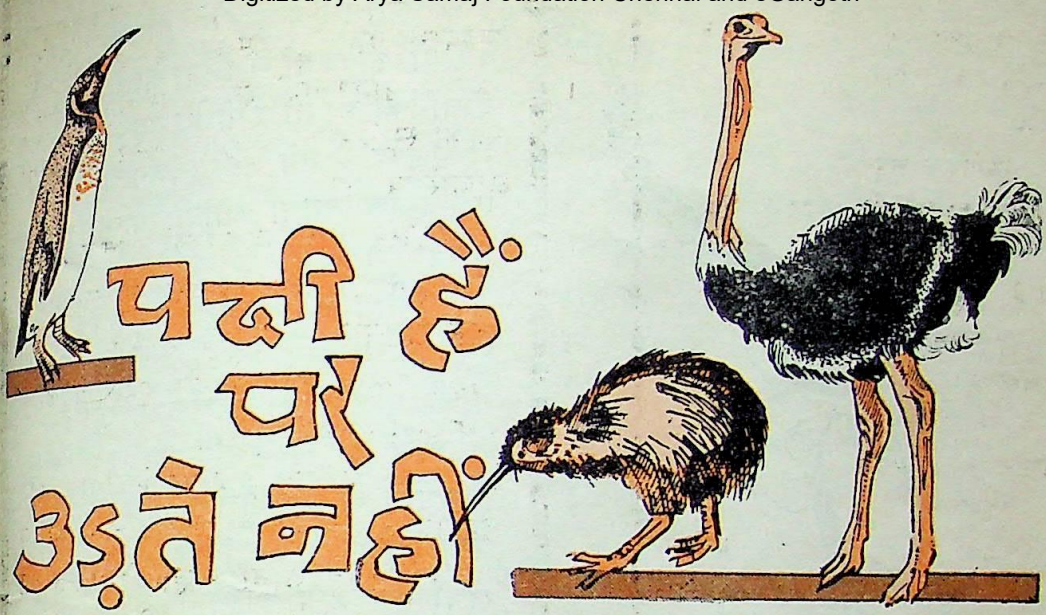

पक्षी हैं पर उड़ते नहीं

कुमारी प्रमिला

प्रबल विरोधी लक्षणोंयुक्त कुछ जीव ऐसे भी हैं जो प्रकृति की चरम विचित्रता के प्रतीक हैं। कुल सात जीवों का वह छोटा-सा समूह उन पक्षियों का है जो पंखयुक्त हैं फिर भी उड़ नहीं पाते। वे पंखयुक्त भूमिचारी पक्षी हैं—१. मोआ (Moa), २. रही (Rhea), ३. कीवी (Kiwi). ४. कैसोवरी (Cassowary) ५. एमू (Emu), ६. शुतुर्मुर्ग (Ostrich) और ७. पेन्गुइन (Penguin)।

इन भूमिचारी पक्षियों का प्रामाणिक विवरण सर्वप्रथम देने का श्रेय चार्ल्स डारविन को है। उन्होंने कहा था कि कुछ पक्षियों ने भूमि पर ही रहने-बसने तथा खाने-पीने के जीवन को अपना लिया है। अतः उन्हें भोजन की तलाश में उड़ते फिरने का काम ही नहीं पड़ता। फलस्वरूप उनके पंख केवल शत्रु से बचकर भाग-निकलने के उपयोग के लिए रह गये हैं। अनुमान है कि मोआ, एमू और कैसोवरी जैसे वृहद शरीरधारी पक्षियों ने एक लम्बे काल तक शत्रुओं का सामना न पड़ने के फलस्वरूप निर्भय होकर पूर्णतः ही भूमिचारी जीवन अपना लिया। परिणाम यह हुआ कि उनके पंख धीरे-धीरे निर्बल होते गये और बदले में उनकी टाँगें बल पकड़ती गयीं। शुतुर्मुग और रही में भी ये ही परिवर्तन काम करते रहे। इन पक्षियों की दृष्टि और दौड़ने की गति विलक्षण रूप से विकसित हुई है।

सामान्यतः देखने में आता है कि शुतुर्मुर्ग को छोड़कर इस समूह के अन्य पक्षियों का पारिवारिक और गृहस्थ जीवन बड़ा चुस्त और सन्तुलित रहता है। इनकी गृहस्थी में परिवार का समस्त बोझ पिता पर रहता है और मादा बोझ से मुक्त रहती है। शरीर से भी मादा के मुकाबले नर छोटा ही बैठता है फिर भी घोंसला बनाना, अण्डे सेहना और बच्चे पाल-पोस कर बड़े करना इसी के जिम्मे रहता है। मादा तो बस अण्डे देकर छुट्टी पा जाती है और नये साथी-नरों में पुराने सहचर को भूल जाती है। इतने पर भी बेचारा नर असीम स्नेह तथा लगन से बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा करता है। कभी किसी शत्रु से सामना पड़ गया और वश चलता न दीखा तो सफलतापूर्वक नाटकीय ढंग से घायल होने और तड़फड़ाने का अभिनय कर दिखाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

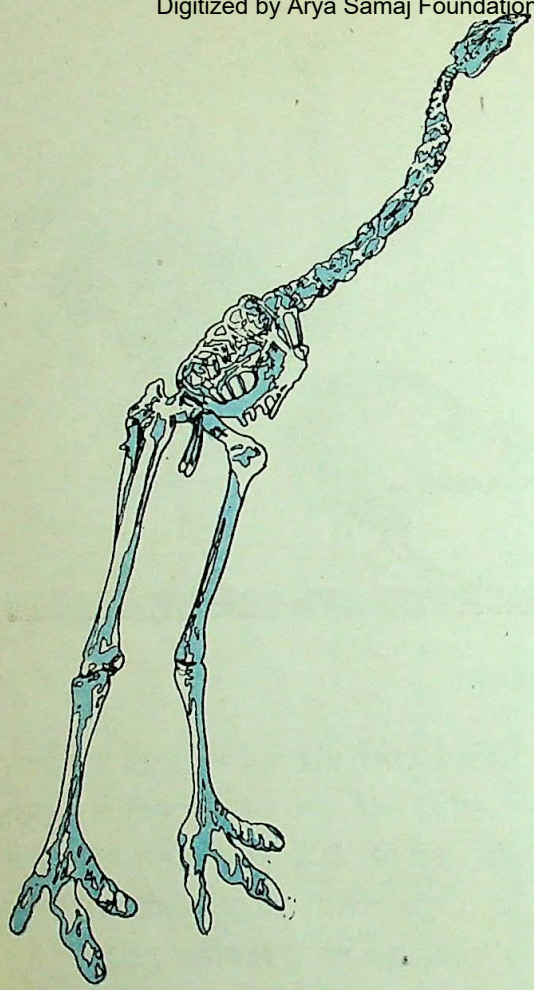

पंखयुक्त उड़नहीन पक्षियों में सबसे विशाल, इस मोआ पक्षी के केवल ७०० वर्ष पूर्व ही न्यूजीलैण्ड में विचरते होने का अनुमान है। इसकी छह फुट लम्बी मजबूत टाँगों पर टिके शरीर पर गर्दन भी जिराफ जैसी ही पुष्ट तथा गठीली और लम्बी थी। फलस्वरूप इसकी कुल ऊँचाई १२ फुट रही होगी। यह दुर्लभ नमूना न्यूयार्क के म्यूजियम आफ नेचुरल हिस्ट्री में सुरक्षित है जो बड़े मनोयोग से प्राप्य अस्थियों, अवशेषों तथा प्राचीन आलेखों के आधार पर बनाया गया है

तब शत्रु भी इस शिकार को व्यर्थ समझकर चला जाता है।

मोआ

यह अति विशालकाय पक्षी आज तो इतिहास के पृष्ठों में दब कर रह गया है, किन्तु केवल २०० वर्ष ही बीते होने तथा १९५२ तक में अन्तिम बार देखे गये होने के कारण इन्हें फॉसिल-जन्तु न मानकर वर्तमान पक्षियों की चर्चा में लिया जा सकेगा। कुछ वैज्ञानिकों का तो अभी भी यह अनुमान है कि न्यूजीलैण्ड के घने अगम्य जंगलों में इनका एक-न-एक नमूना जीवित प्राप्त किया जा सकता है।

विगत ७०० वर्ष से लेकर २६०० वर्ष पूर्व तक लगभग २००० वर्ष का काल इन मोआ पक्षियों का स्वर्णकाल रहा है। इस काल में इनकी कम-से-कम १२ जातियाँ विद्यमान थीं। न्यूजीलैण्ड ही इनका एकमात्र क्रीड़ादेश था। उन दिनों इनके निकटवर्ती क्षेत्रों तक अन्य कोई भी प्राणी नहीं पहुँच पाता था। अतः ये निर्भीक होकर पेड़ों का बसेरा छोड़कर भूमि पर बसते रहे, अपने १२-१३ फुट ऊँचे विशाल शरीर को लिये हुए जिराफ की तरह मस्त विचरते रहे, भेड़ों की तरह चरते रहे और जी में आया तो भूमि में सुरंग खोदकर बिलकारी जन्तु की भाँति रहने लगे।

उस काल के पंखयुक्त भूमिचारी पक्षियों में मोआ ही सबसे लम्बे-चौड़े और भारी भरकम थे। प्राप्त अवशेषों से ऐसे एक विशाल पक्षी का जो माडल बनाया गया है उससे अनुमान लगाया जाता है कि वह पक्षी क़म-से-कम १३ फुट ऊँचा और ५०० पौण्ड वजन का रहा होगा। इन्हीं का एक संक्षिप्त संस्करण—नन्हा मोआ, एक मुर्गी के बराबर भी रहा होने का प्रमाण मिलता है।

रही

इसे अमरीकन शुतुर्मुर्ग भी कहा जाता है। असली शुतुर्मुर्ग तो अफ्रीका की सम्पदा है किन्तु अमरीका की नयी दुनिया में यह सबसे बड़ा पक्षी माना जाता है। इसकी ऊँचाई से चोंच तक का मध्य भाग, पलकें तथा गर्दन का नंगे रहते हैं। शेष सिर और गर्दन का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नर्म रोयों तथा परों से छोटा रहता है। शरीर के पर मुलायम होते हैं।

शुतुर्मुर्ग की भाँति यह पक्षी भी बहुपत्नीक है। यह अपने साथ ७-८ मादाएँ रखता है। एक-एक मादा दस-दस अण्डे देती है और उन सब अण्डों को यह अकेला नर बखूबी सम्हालता है। अण्डों से निकले नन्हें बच्चों को भी यही अकेला ५-६ सप्ताह तक पाल कर बड़ा करता है। इस बीच में विक्षेप डालने वाले शत्रुओं का यह डटकर मुकाबला करता है। लड़ते समय इसकी लहराती गर्दन, नुकीली चोंच और कर्णकटु कर्कश आवाज इसकी बहुत सहायता करते हैं।

रही अधिकांश शाकाहारी है किन्तु समय-समय पर घोंघे, छिपकलियाँ और कीड़े भी गटक जाता है। दक्षिण अमरीका स्थित ब्राजील और अर्जेण्टाइना के पर्वतीय प्रदेश इन पक्षियों से आबाद हैं। इनकी तेज दौड़, तीव्र दृष्टि तथा उठा-पटक के पेंतरे शिकारियों से बच निकलने में बहुत सहायता करते हैं। इनमें नर की अपेक्षा मादा शरीर में कुछ छोटी और हलकी होती है।

कीवी

यह कहने भर को ही पक्षी है, वैसे इसके लक्षण पक्षी से बहुत कम मिलते हैं। यह स्वभाव में बेहद शर्मीला है। एक प्रकार से यह न्यूजीलैण्ड निवासी मोआ का अन्तिम वंशधारी है और स्वयं भी तेजी से लुप्त होने को है। अन्य पक्षियों की अपेक्षा इसमें एक अन्तर तो यही है कि इसके नासिका-रन्ध्र चोंच के बिलकुल सिरे से सटकर होते हैं। इसकी चोंच भी नाजुक और लम्बी होने के कारण दूर ही से पहचानी जा सकती है। दूसरी विशेषता यह है कि यह पक्षी होते हुए भी बिना पंख का है। शरीर केवल परों ही परों से भरा रहता है।

इसे मोआ का वंशज माना जाये, इसकी पुष्टि इसके अण्डा द्वारा भी होती है। शरीर के अनुपात से देखा जाये तो वृहद शरीरधारी शुतुर्मुर्ग के मुकाबले काफी छोटे आकार के इस कीवी का अण्डा उससे कुछ ही छोटा किन्तु शेष पक्षी जगत में सबसे बड़ा बैठता है। इसकी मादा एक बार में एक ही अण्डा देती है जो पाँच इंच लम्बा, तीन इंच चौड़ा और लगभग सवा पौण्ड वजन का होता है। इसकी कोई-कोई जाति की मादा एक साथ में तीन अण्डे भी देती है जो सामान्य की अपेक्षा कुछ छोटे आकार के होते हैं। इनमें नर के साथ मादा भी अण्डे सुरक्षित रखने के लिए गड्ढे खोदने में मदद करती है। नर जब तक लगभग ८० दिन लगा कर अण्डे को सेहकर बच्चे को तैयार करता है, मादा दूसरा अण्डा दे डालती है और बेचारे नर को फिर से गिनती गिननी पड़ती है। नर और मादा साथ ही साथ विचरते हैं और इनका जोड़ा प्रायः जीवन भर अटूट रहता है।

कीवी दिन को तो सुरंग में सोया पड़ा रहता है और केवल रातों को बाहर निकलता है। यह भी तेज दौड़ाक है। यह अन्य पक्षियों की तरह पीछे को लात न फेंककर आगे को फटकारता है और उसकी इतनी कड़ी मार पड़ती है कि आदमी के हाथ तथा कुत्तों की

यह कीवी है—शुतुर्मुर्ग से काफी छोटा किन्तु अण्डा देने में उसकी बराबरी करता है! इसका अण्डा लगभग एक पौण्ड भारी होता है

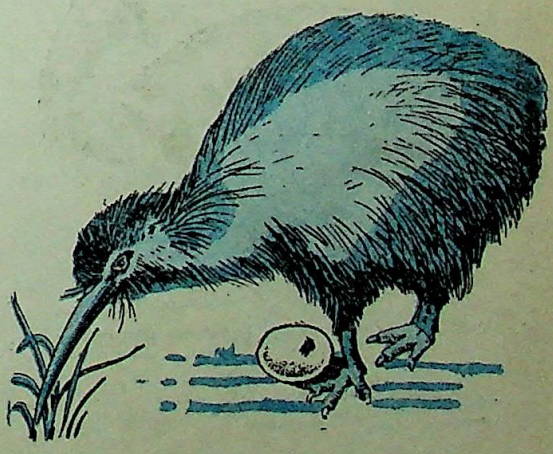

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टाँगें टूट जाती हैं। न्यूजीलैण्ड के निवासियों ने कीवी को राष्ट्रीय सम्मान दे रखा है और वहाँ का गणचिह्न, वहाँ के सिक्के, टिकट और नोट आदि पर कीवी का चित्र अंकित रहता है। उस देश ने इसके बाहर ले जाने पर भी रोक लगा रखी है।

कैसोवरी

यह पक्षी न्यूगाइना का निवासी है और आस्ट्रेलिया के उत्तरी सिरे पर तथा निकटस्थ टापुओं पर भी कहीं-कहीं पाया जाता है। यह उन २-४ ही शक्तिशाली पक्षियों में से है जिनसे आदमी हार जाता है और कभी-कभी जान से भी हाथ धो बैठता है। इसके सिर पर मुकुट की भाँति उभरे हुए भाग को कास्के कहते हैं और उसी से इसका नाम कैसोवरी पड़ा है। यह उभरा हुआ भाग अस्थि का बना होता है और चोट करने में तथा रक्षा करने में बहुत काम देता है। पीछा किये जाने पर यह भी ३० मील तक की रफ्तार पकड़ लेता है और मार्ग की तमाम रुकावटों

यह कैसोवरी, अपने वर्ग के पक्षियों में खूँख्वार लड़ाका है। इसके पंजों के तीन-तीन नाखून चीते के नाखूनों से कम नहीं और दाँव पड़ जाने पर किसी भी प्राणी को चीरकर रख देते हैं। क्रोधावेश में इसके पर खड़े हो जाते हैं और शरीर का रंग गहरा हो जाता है

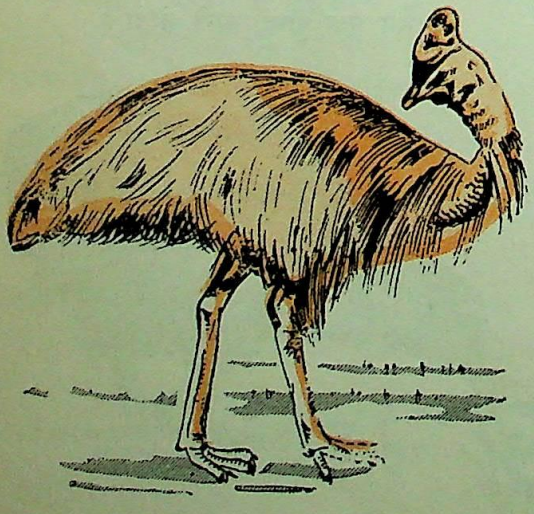

को पार करके भागता है। बीच में पानी आ जाने पर बड़ी कुशलता से तैर भी जाता है। इसकी मादा भी नर के मुकाबले मादा वृहत्काय होती है। इसके अगले पंजे की दूसरी अँगुली एक नुकीले और लम्बे नाखूनयुक्त होती है जो कभी-कभी प्राणी का पेट फाड़ देने को काफी होती है। इसके मारे हुए कितने ही मनुष्य ऐसे ही फटी हालत में पाये जाते रहे हैं।

इसके बच्चे जब तक शिशु-अवस्था में रहते हैं, लोगों द्वारा पाले जाते हैं। पूरी तरह बड़े हो जाने पर इनसे चोट खा जाने का डर भी रहता है। अतः तब इन्हें बाँधकर रखा जाता है। इसकी मादा एक साथ में तीन से छह तक अण्डे देती है। अण्डों की सतह दानेदार तथा रंग हरितवर्ण होता है। इसके भी अण्डे काफी बड़े होते हैं। मादा द्वारा अण्डे दिये जाने के पश्चात् नर उनकी देखरेख का कार्य भार सम्हाल लेता है। शरीर में यह प्रायः चार फुट ऊँचा होता है। इसकी गर्दन मोर के गले जैसी नीलकण्ठी होती है। आस्ट्रेलिया में रहने वाला कैसोवरी और भी बड़े आकार का होता है और लगभग पाँच फुट तक की ऊँचाई प्राप्त करता है।

एमू

यह आस्ट्रेलिया का पक्षी है। तस्मानिया में भी इसकी एक जाति पायी जाती है। शरीर में यह भी पाँच फुट से कम नहीं। चलते में इसकी पृष्ठरेखा उदररेखा के समान्तर हो जाती है। यह भी गाय-भैंसों की तरह हरे-भरे खेतों में चरना पसन्द करता है। इसीलिए कृषक लोग इससे बहुत बचते रहते हैं ताकि उनके खेत नष्ट न हों। पीछा किये जाने पर यह ४० मील की रफ्तार से भागने लगता है।

इसकी चोंच कुछ छोटी, चौड़ी किन्तु काफी मजबूत होती है। कैसोवरी जैसा इसके पंजे में तीक्ष्ण नाखून नहीं होता। इसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गहरे हरे-रंग के १०-१५ अंडे देती है और आरम्भ में उन्हें सेहना भी चाहती है। नर शीघ्र ही इस नये बोझ से उसे छुट्टी दे देता है और स्वयं ही सब कुछ कर लेता है। पाले जाने पर यह गृहस्थ जीवन बड़ी तत्परता से शुरू कर देता है। अजायबघर के लिए यह आकर्षक का केन्द्र रहता है।

शुतुर्मुर्ग

यह अफ्रीका का गौरवशाली, पक्षी-जगत में सबसे शानदार और विशाल शरीरधारी पक्षी है। इसकी छवि देखते ही बनती है। कुछ समय पहले तक तो यह एशिया, अरबस्तान और सीरिया में भी पाया जाता था किन्तु अब केवल अफ्रीका में रह गया है। इस वर्ग के अन्य समस्त पक्षियों से भिन्न इसकी पहली विशेषता यह है कि इसके पंजे में तीन की जगह केवल दो अँगुलियाँ रहती हैं। इसे अपनी तीव्र दृष्टि, ऊँट जैसी ऊँची गर्दन और पवनगामी टाँगों पर पूरा भरोसा है। इसलिए यह अधिकतर घने जंगलों को छोड़ कर खुले रेतीले मैदानों में विचरना पसंद करता है।

मैदानों के अन्य बड़े चौपायों, विशेषतः जेबराओं के साथ इसका मैत्रीपूर्ण जीवन एक अनोखी बात है। एक ओर जेबरा इसके लिए खाना जुटाता चलता है तो दूसरी ओर इसकी ऊँची गर्दन और गिद्ध जैसी दृष्टि उसे किसी भी खतरे से दूर ही से सावधान कर देती है। शरीर में यह भी पाँच फुट से कम नहीं होता और वजन में ३०० पौण्ड से भी भारी बैठता है। ४० मील की रफ्तार की इसकी दौड़ और बीच-बीच में १५-१५ फुट छलांगों के आगे तेज-से-तेज घुड़सवार भी मात खा जाता है। इस प्रचलित मान्यता में किंचित भी सत्य नहीं कि संकट के समय यह रेत में गर्दन छिपाकर लेट जाता है। यह तो डटकर मुकाबला करता है।

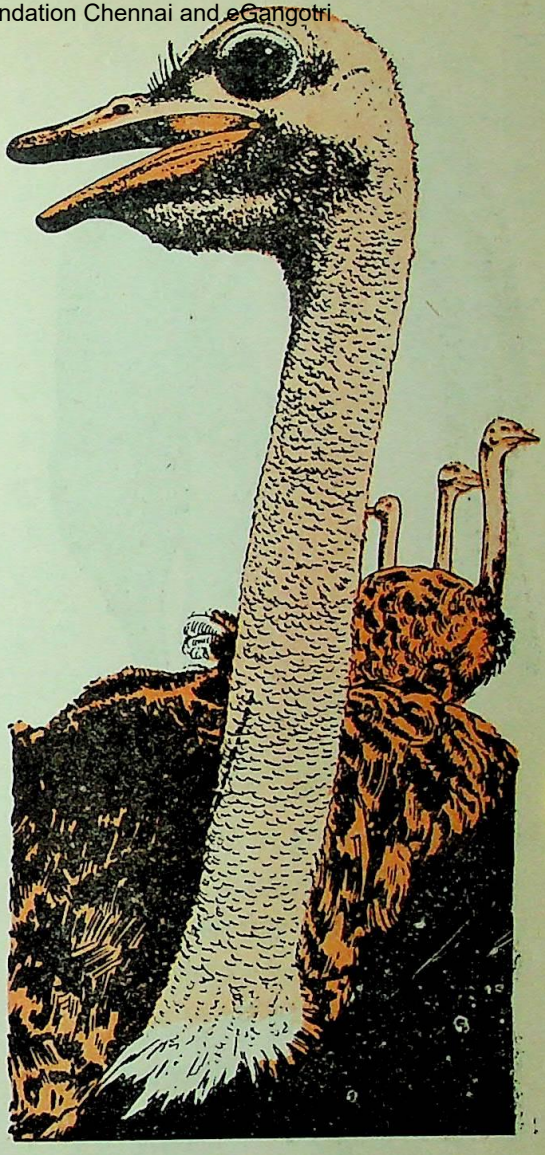

यह शुतुर्मुर्ग का क्लोज-अप है। पीछे चले आ रहे अपने झुण्ड का नेतृत्व करते हुए किस शान से गर्दन उठाये चल रहा है!

इसकी ताड़ जैसी लम्बी गर्दन लगभग नंगी ही होती है। उस पर टिका हुआ छोटा-सा सिर ऐसा मालूम होता है मानो किसी बल्ले पर गेंद टिका दी हो। इसकी चोंच छोटी किन्तु चौड़ी और चपटी होती है। यह सर्वाहारी है अर्थात् सब कुछ खा लेता है। यहाँ तक देखा गया है कि खाने के पश्चात् यह छोटे-बड़े गोल पत्थर भी गटक जाता है। माना जाता है कि वे पत्थर इसे पाचनक्रिया में मदद करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

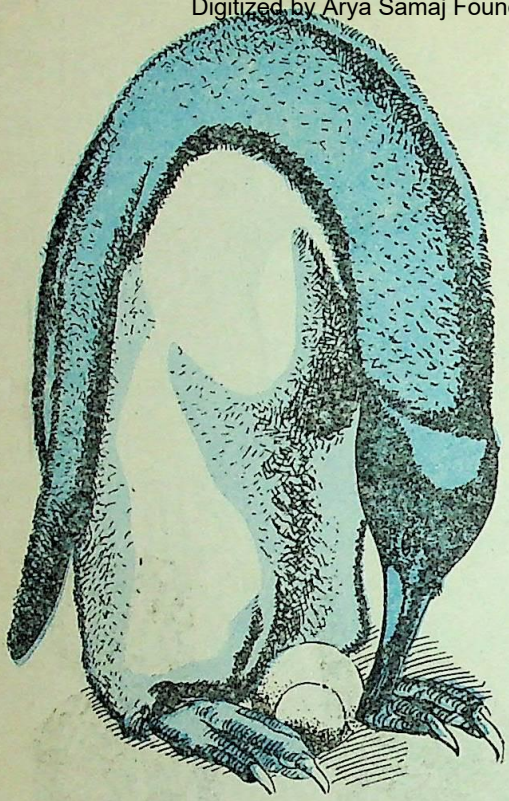

यह पेन्गुइन अचम्भे में है कि बगैर सिपुर्द किये, यह अण्डा यहाँ कौन रख गया ? लेकिन इसे धोखा देना कठिन है और पाँवों के पास पड़ा हुआ टैनिस बाल अण्डा सेने की इसकी सेवा प्राप्त न कर सकेगा

नर-पक्षी का शरीर काले परों से ढँका रहता है और केवल बगल के पंख और पूँछ के सिरे पर सफेद पर रहते हैं। मादा के पर भूरे रंग के होते हैं। जिन दिनों प्रजननकाल नहीं होता, ये २०-२२ के झुण्डों में विचरते फिरते हैं। ऊँट की भाँति यह भी लम्बे समय तक बगैर पानी रह सकता है। प्रजननकाल आरम्भ होते ही यह झुण्ड छोड़कर अपने लिए ४-६ मादा पसन्द कर लेने में जुट जाता है। तब इनमें परस्पर लड़ाइयाँ भी होती हैं। क्रुद्धावस्था में इसे छेड़ना अपने ही प्राण संकट में डालना होता है। इसकी एक ही करारी लात घोड़े तक की टाँग तोड़ देने में समर्थ है।

अपनी गृहस्थी के लिए यह अपनी अलग ही लम्बी-चौड़ी जगह निकाल लेता है और उसमें एक बड़ा छिछला गड्ढा बना लेता है। मादाएँ उसमें एक साथ २० अण्डे तक दे देती हैं। अण्डा कम-से-कम तीन पौण्ड का भारी, खुलता पीला या खाकी रंग का तथा काफी सख्त और चमकीला होता है। लगभग छह हफ्ते तक नर द्वारा सेहने पर उसमें से बच्चे निकलते हैं।

पालतू अवस्था में यह पक्षी मजे से रह लेता है और इसकी आयु सामान्यतः मानव-आयु के लगभग भी पहुँच जाती है। इसके पंख बेशकीमती होने के कारण इन्हें बड़े चाव से अजायबघरों में रखा जाता है तथा पाला जाता है।

पेन्गुइन

यह भी पंखधारी, उड़ानविहीन और वृहद पक्षी है। उपरोक्त समस्त पक्षियों से इसमें भिन्नता यही है कि यह भूमिचारी कम और जलचारी अधिक है। इसके बत्तख जैसे पाँव इस तथ्य की विशेष पुष्टि करते हैं। वास्तव में इसे पेन्गुइन नाम एक गलत परिपाटीवश दिया गया है। इससे पूर्व ग्रेट ऑक (Great Auk) नामक अति विशाल पक्षी ध्रुवीय महासागर के तटों को आबाद किये हुए थे और उन दिनों के नाविक उस पक्षी से बेहद आतंकित रहते थे। उसी को पेन्गुइन भी कहते थे। उसी पक्षी की शृंखला समाप्त होते-होते इन्हें उनसे मिलते-जुलते देखकर इसका भी नाम पेन्गुइन रख दिया। इनमें बड़े से बड़ा पक्षी ६ फुट के आकार तथा २०० पौण्ड वजन तक का पाया गया है। इसकी गर्दन ठिगनी, चोंच कठोर और गहरी नालीदार तथा पाँवों के पंजे बत्तखों की तरह झिल्ली से जुड़े हुए होते हैं। वे पाँव भी छोटे होने के साथ-साथ शरीर के इतने पीछे की ओर होते हैं कि भूमि पर खड़ा हुआ पेन्गुइन बिलकुल मानव की तरह सीधा खड़ा रह लेता है। इसका गहरा रंगीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीठ का भाग तथा उजला सफेद पेट का भाग, इसके खड़े रहने पर ऐसा दिखता है मानो शाम की दावत के लिए कोई सम्मान्य अतिथि सजधज कर आया हो।

जैसा कि आरम्भ में कहा है, पेन्गुइन मूलतः तेज उड़ाके ग्रेट ऑक पक्षी का वंशधर माना जाता है, फिर भी उनकी तरह तो जाने दीजिए, सामान्य चिड़ियों की तरह भी यह उड़ नहीं सकता। तैरने वाले पक्षियों में पेन्गुइन अपना विशिष्ट स्थान रखता है। प्रकृति ने इसे आँख भी इसी विशेष प्रयोजन के लिए दी है ताकि पानी के अन्दर यह बखूबी देख सके। पानी में तैरते समय पाँवों से बिलकुल काम न लेना इसकी अलग विशेषता है। पानी में यह पंखों की सहायता से फड़फड़ा कर तीव्रगति से तैरते हुए मानो जलगत उड़ान भरता है।

पेन्गुइन हिमनिवासी पक्षी है और उत्तर-दक्षिण ध्रुवीय प्रदेश इसके मुख्य निवास-स्थल हैं। कभी-कभी यह अण्डे देने और सेहने के लिए भूमिप्रदेश की ओर भी सैकड़ों मील चला आता है। मछलियाँ तथा घोंघे जैसे जलजीव इसका मुख्य आहार हैं। निराहार रहने की इसमें अद्भुत क्षमता है और कुछेक उदाहरणों में ये ३-४ महीने तक भी बगैर खाये रहते हुए पाये गये हैं। इस विशेषता के बल पर ये अपने शत्रुओं से बचाव के लिए ३-४ महीने तक ऐसे विकट हिमप्रदेशों में रह लेते हैं, जहाँ किसी का भी पहुँच सकना असम्भव है।

बर्फ पर घिसटना और फिसलना पेन्गुइन का एक मनोरंजक खेल है। इसके लिए यह पेट के बल बर्फ पर लेट जाता है और पंख फटफटाता हुआ तेजी से सरकता जाता है। वह सरकना किसी भी तेज दौड़ से कम नहीं होता। पंखों के साथ-साथ पाँवों को भी पिस्टन की भाँति चलाता है।

पेन्गुइन का गृहस्थ जीवन काफी जटिल रहता है। एक विचित्रता तो यही है कि अन्य पक्षियों की भाँति इसमें नर-मादा जीवन-पर्यन्त एकनिष्ठ रहें ऐसा कोई बन्धन नहीं। बीच-बीच में दोनों ही तलाक का खुलकर आश्रय लेते हैं। यह अवश्य है कि ऐसा करने वालों का प्रतिशत १५-१७ से अधिक नहीं होता। मादा तो अण्डे देकर कम से कम दो महीने के लिए छुट्टी ले लेती है और उसकी अनुपस्थिति में नर लगभग चार महीने मानो उपवास करता हुआ उनकी सम्हाल रखता है। बच्चे निकलने के समय मादा लौटती अवश्य है किन्तु तब तक कभी-कभी वह अपने नरसाथी को भूल भी जाती है और दूसरे साथियों में मग्न हो जाती है। इनमें एक विचित्रता और है कि नर और मादा रात्रि के अंधेरे में ही एक-दूसरे से मिलते हैं, परस्पर की ध्वनि-भिन्नता से पहचानते हैं और सुबह का उजाला होने से पहले ही मादा एक साथ केवल दो अण्डे दे देती है। पेन्गुइन की बीसियों जातियाँ तरह-तरह की विचित्रताभरी पायी जाती हैं जिनमें किंग (King) और एम्परर (Emperor) नामक पेन्गुइन वास्तव में अपने वर्ग के राजा और महाराजा ही हैं और अपने नाम सार्थक करते हैं।

ऐसे हैं ये विचित्र पक्षी जो पंख होते हुए भी उड़ते नहीं।

डाकुओं की अक्ल पर डाका

कल्पना कीजिए, डाकू की अक्ल उस समय कैसी गुम हो जाएगी जब वह यह देखेगा कि बैंक के खजांची की नाक पर पिस्तौल तानते ही, न जाने किस अदृश्य स्विच से नकदी भरी उसकी ड्राअर बिजली की गति से एक तिजोरी में घुस जाएगी। वह तिजोरी दो दर्जन से कम चाभियों द्वारा खुलेगी ही नहीं !

जून १९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

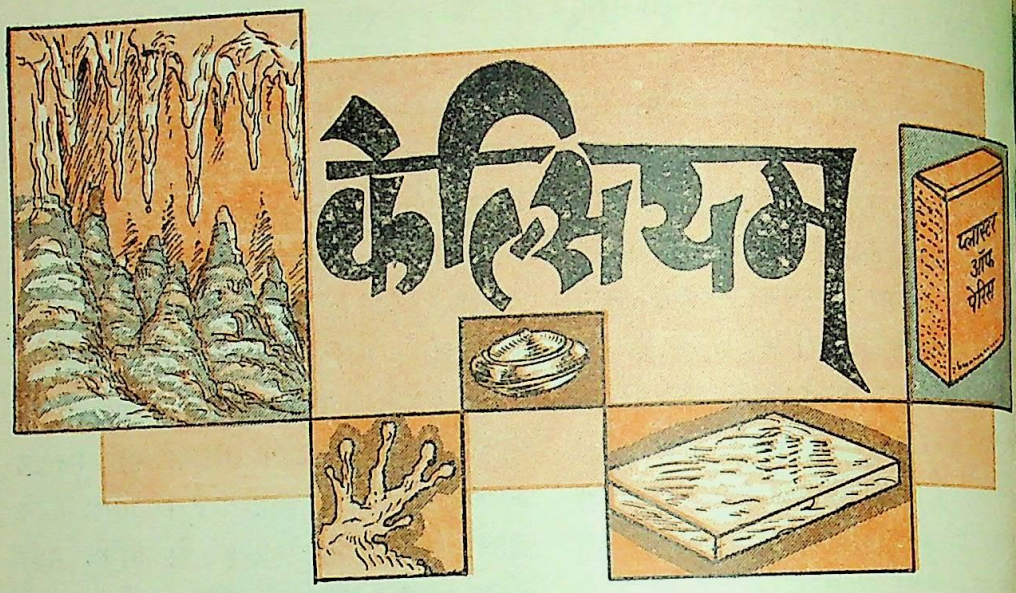

रमेशचन्द्र कपूर

इतिहास-प्रसिद्ध साम्राज्ञी क्लियोपेट्रा ने सम्राट् मार्क एण्टनी को अपने धन-वैभव से प्रभावित करने के लिए चैलेंज दी कि वह एक वार के खाने पर २० लाख रुपया तक खर्च कर सकती है। चैलेंज मान ली गयी और क्लियोपेट्रा को कर दिखाने का अवसर मिला। खाना प्रारम्भ होने से ठीक पहले एण्टनी की अनुमति से क्लियोपेट्रा ने अपनी १०-१० लाख के मूल्य की दो अंगूठियों में से एक अंगूठी मदिरा के प्याले में डाल दी। देखते-देखते ही अंगूठी उसमें घुल गयी और मदिरा की उस प्याली को क्लियोपेट्रा गटगटा गयी। आधी शर्त्त पूरी हो चुकी थी, अतः शेष के लिए एण्टनी ने अपनी हार स्वीकार करके उसे रोक दिया। रहस्य यह था कि वह अंगूठी सच्चे मोतियों की बनी हुई थी और मोती हो या सीपी, वह मुख्यतः केल्सियम ही है।

वह तो सीप और मोती की बात थी किन्तु आप से खड़े होने को कहा जाये तो आप खड़े हो सकेंगे, क्योंकि आपके शरीर को खड़ा रखने में एकमात्र सहायक हड्डियों में केल्सियम है; किसी मिस्त्री से ईंटों की चिनाई करने को कहेंगे तो वह रेती-पानी के साथ चूने का ही गारा बनायेगा; किसी मूर्त्तिकार से मूर्त्ति बनाने को कहेंगे तो वह जो सुन्दर प्रस्तर प्रतिमा संगमरमर की बनायेगा, वह भी केल्सियम होगा; यहाँ तक कि अपनी मुर्गी के अण्डे को उलट-पुलटकर देखिएगा तो उसके ऊपरी खोल में भी केल्सियम ही मिलेगा।

केल्सियम कहाँ नहीं ?

आवर्त्ततालिका, वर्ग–२ के उपवर्ग (II A) में क्षारीय पार्थिव तत्त्वों (alkaline earths) में अर्थात् बेरीलियम, मैग्नीशियम आदि की शृंखला में तृतीय स्थान पर केल्सियम है। शुद्ध और स्वतन्त्र रूप में यह चमकीली, सफेद, टिन की भाँति कठोर किन्तु घनवर्द्धनीय धातु है। इसका परमाणु-क्रमांक २० है अर्थात् इसके एक परमाणु के नाभिक के चारों ओर २० इलेक्ट्रान चक्कर लगाते हैं। इसका आपेक्षिक घनत्व १·५४, आपेक्षिक भार ४०·०८ तथा द्रवणांक १४६०°F है। इसमें आक्सीजन से संयोग करने की क्षमता है और यह तनिक भी आर्द्र वायु में तुरन्त प्रभावित हो जाता है और पानी के संयोग से हाइड्राक्साइड बना लेता है। गर्म करने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

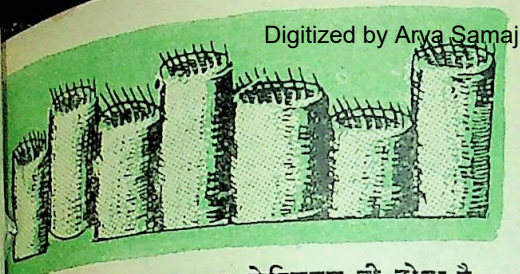

मानव-अस्थियों में मुख्य भाग केल्सियम ही होता है जो केल्सियम फास्फेट के रूप में रहता है। इनकी रेशिकीय रचना इतनी विलक्षण रहती है कि इन्हें स्टील-सीमेंण्ट के बने ढाँचे की तुलना में रखा जा सकता है। इनकी शक्ति का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि मनुष्य की जांघों और टांगों की हड्डियाँ डेढ़ टन तक का वजन सह सकती हैं

यह तेजी से जलकर आक्साइड बनाता है। इसके नामकरण का श्रेय सर हम्फ्रे डेवी को है जिसने चूने में इसकी उपस्थिति ज्ञात करके लैटिन शब्द *clax* अर्थात् चूना से केल्सियम नाम दिया था। अपनी तीव्र सक्रियता के कारण जितना यह प्रकृति में मुक्त अवस्था में अप्राप्य है, उतना ही अपने यौगिकों के दल-बल सहित इस प्रकार छाया हुआ है कि सहज ही प्रश्न हो उठता है—केल्सियम कहाँ नहीं है ?

जल में केल्सियम, थल में केल्सियम, हमारे शरीर में केल्सियम, घोंघे-सीपियों में केल्सियम, नदी-पहाड़ों में केल्सियम और धरती के अर्न्तस्तरों में केल्सियम है। भूमिगत जलस्रोतों द्वारा निर्मित अवशैल (stalagmites) तथा उच्छशैल (stalctites) तो शुद्ध केल्सियम के ही बने होते हैं। यदि हड्डी की भस्म का रासायनिक विश्लेषण किया जाय तो ज्ञात होगा कि उसमें ८५% के. फास्फेट; १०% के. कार्बोनेट; ·०३% के. फ्लोराइड; ·०२% के. क्लोराइड तथा शेष भाग में अन्य पदार्थ होते हैं। कुल मिलाकर हमारे दाँतों तथा हड्डियों में निहित केल्सियम का भार लगभग ३½ पौण्ड होता है।

केल्सियम के विभिन्न यौगिक निम्न प्रकार भिन्न-भिन्न उपयोगों में आते हैं :—

के. कार्बोनेट $CaCO_3$ (खरिया, चूना, संगमरमर) सीमेंट तथा शीशा बनाने में,

के. आक्साइड CaO (कली चूना) जल-अवशोषण के लिए,

के. क्लोराइड CaC_2 केल्सियम धातु प्राप्त करने के लिए,

के. कार्बाइड $CaCl_2$ ज्वलनशील एसिटेलीन गैस बनाने के लिए,

के. सल्फेट $CaSO_4$ $2H_2O$ (जिप्सम, प्लास्टर आफ पैरिस) सल्फर की प्राप्ति तथा टूटी हड्डियाँ जोड़ने के लिए,

के. सल्फेट (अजल) $CaSO_4$ गंधक की प्राप्ति के लिए, तथा

धात्विक केल्सियम प्रायः द्रवीय केल्सियम क्लोराइड का विद्युत्विच्छेदन करके प्राप्त किया जाता है। पानी द्वारा ठण्डा रखे हुए ऋणाग्र पर केल्सियम एकत्र हो रहा है। १, २. ठण्डे पानी का आवागमन, ३. लोहे के सिरे युक्त ताँबे का ऋणाग्र, ४. केल्सियम, ५. द्रवीय केल्सियम क्लोराइड, ६. ग्रेफाइट निर्मित धनाग्र

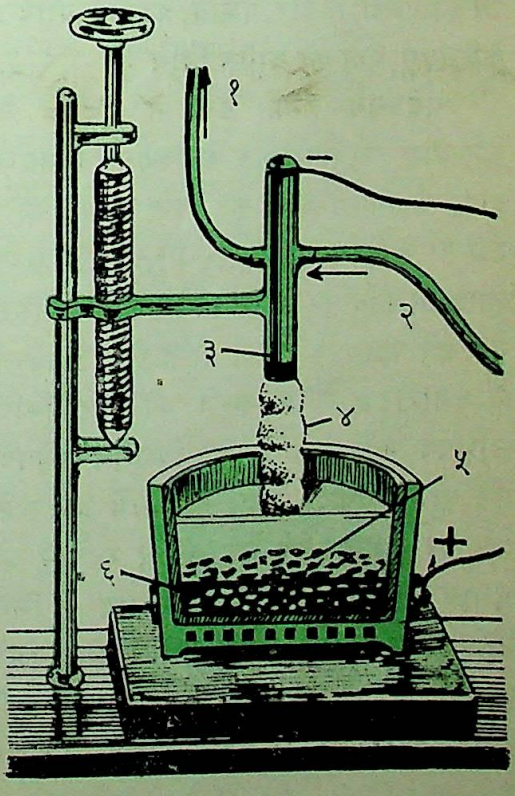

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के. फ्लोराइड CaF_2 (फ्लोरस्पार) इनेमल तथा ग्लेज करने में और फ्लोरीन गैस बनाने में।

पृथ्वी की तहों में केल्सियम ३½% तक है अर्थात् प्रति १०० चट्टान के भार में ३½ टन केल्सियम अवश्य मिलेगा। खरिया के पहाड़ के पहाड़ तथा बड़ी-बड़ी चट्टानें इंगलैण्ड के दक्षिण पूर्वीय विस्तारों में फैली हुई हैं जहाँ से हजारों टन खरिया बाहर भेजी जाती है। शुद्ध अवस्था में खरिया को केल्साइट तथा आयरलैण्ड स्पार कहते हैं। यदि इंगलैण्ड और अमरीका में खानों से प्रतिवर्ष करोड़ों टन केल्सियम कार्बोनेट निकाला जाता है तो भारत में भी मुख्यतः निम्न स्थलों से यह विविध स्वरूपों में प्राप्त किया जाता है: संगमरमर के लिए मकराना, जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, कोटा, बूँदी तथा अलवर आदि; चूना पत्थर के लिए कटनी, रीवाँ, रोहतासगढ़ तथा सिलहट आदि और जिप्सम के लिए बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, सौराष्ट्र, त्रिचनापल्ली, बिहार, पंजाब, कश्मीर आदि।

केल्सियम धातु की प्राप्ति विधि

सर्वप्रथम हम्फ्रे डेवी ने १८०८ में केल्सियम हाइड्राक्साइड के विद्युत-विश्लेषण द्वारा केल्सियम धातु को प्राप्त किया था। वैसे साल्वे विधि (Solway Process) द्वारा सोडियम कार्बोनेट के उत्पादन में के. क्लोराइड एक उप-पदार्थ के रूप में प्राप्त होता है, किन्तु के. क्लोराइड प्राप्त करने की वह विधि लाभप्रद नहीं है। इसका विद्युत-विश्लेषण ऐसे पात्र में किया जाता है जिसमें अन्दर के तले पर ग्रेफाइट की छड़ लगाये रहते हैं जो धनाग्र का काम देती हैं। ऋणाग्र के लिए ताँबे की एक ऐसी नली लेते हैं जिसके सिरे पर लोहे की नोक हो और जो बहते हुए पानी द्वारा ठण्डी रखी जा सके। इसकी नोक पर

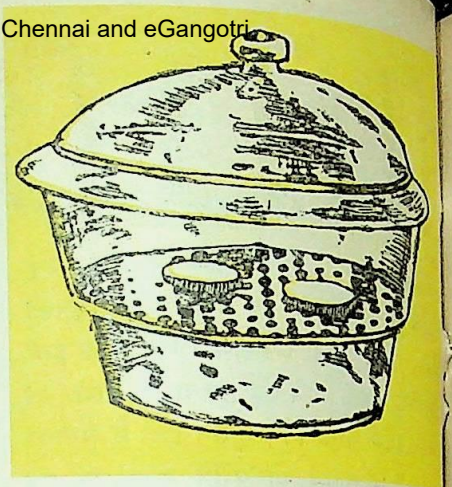

निर्जलीय केल्सियम क्लोराइड एक शोषक के रूप में प्रयुक्त होता है। ऐसे शोषपात्र में केल्सियम क्लोराइड नीचे रखा हुआ, पहले से ही पात्र की वायु शोषित कर लेता है, तत्पश्चात् कोई भी तप्त पात्र बाहर वायु की आर्द्रता लिये, क्रमशः शीतल हो जाता है।

ज्यों-ज्यों केल्सियम जमा होता जाता है, नली को उठाते जाते हैं। उठाने की यह क्रिया बहुत धीरे-धीरे की जाती है ताकि एकत्र हुए केल्सियम का निचला सिरा घोल में डूबा अवश्य रहे।

धातु केल्सियम के गुणावगुण

केल्सियम को ठण्डे पानी में रखने पर के. हाइड्राक्साइड बनता है और हाइड्रोजन गैस मुक्त हो जाती है। केल्सियम हाइड्राक्साइड पानी में अधिक घुलनशील न होने के कारण श्वेत अवक्षेप के रूप में नीचे बैठ जाता है। केल्सियम तीव्रतः सक्रिय है और शुष्क गैसों तक से संयुक्त हो जाता है। उदाहरणार्थ यह क्लोरीन के साथ क्लोराइड बनाता है, हाइड्रोजन के साथ हाइड्राक्साइड, नाइट्रोजन के साथ नाइट्राइट तथा गंधक के साथ सल्फाइड बनाता है। यह जल-अवशोषक होने के कारण अल्कोहल से जल-भाग अवशोषित करने में काम आता है।

गर्म अवस्था में यह धातुओं को अवकृत कर देता है और अमोनिया गैस से साधारण ताप पर ही संयोग करके के. एमाइड बनाता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

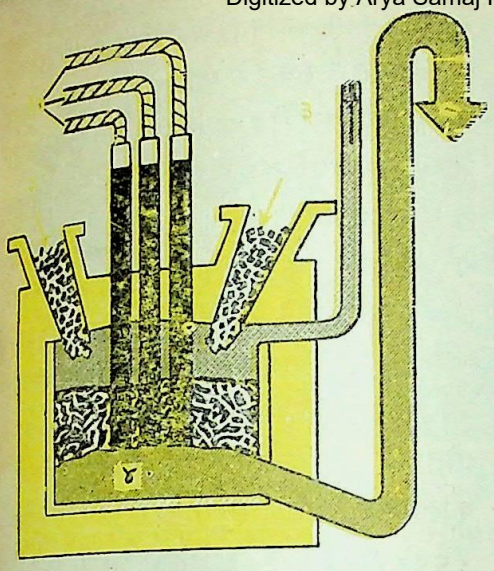

इस भट्ठी में कोक और केल्सियम आक्साइड से केल्सियम कार्बाइड बनाया जा रहा है। १. तीन-फेस इलेक्ट्रिक सप्लाई, २. कोक और केल्सियम आक्साइड डाला जा रहा है, ३. कार्बन मोनोक्साइड गैस बाहर निकल रही है, ४. द्रवीय केल्सियम कार्बाइड

है और ताप को मुक्त करता है। गर्म अवस्था में ही यह शून्य वर्ग की गैसों को छोड़कर अन्य समस्त गैसों को शोषित कर लेता है। अतः यह शून्य-ताप प्राप्त करने तथा आर्गन गैस बनाने के भी काम आता है। इसका उपयोग इस्पात के विआक्सीकरण (deoxidising) तथा शोधन (refining) में भी होता है।

कुछेक महत्त्वपूर्ण केल्सियम यौगिक

के. आक्साइड—इसे कली चूना कहते हैं। जब चूना-पत्थर अर्थात् के. कार्बोनेट को गर्म किया जाता है तब उसमें से कार्बन डाइ-आक्साइड गैस निकलकर उस पत्थर का कली चूना बन जाता है। यह क्रिया विशेष निर्मित भट्ठी में लगभग १०००°C ताप पर की जाती है। यह क्रिया उत्क्रमणीय होने के कारण इसमें मुक्त होती हुई कार्बन डाइ-आक्साइड गैस को बराबर निकालते रहना पड़ता है। इस क्रिया का पुराना ढंग चूने की भट्ठी (limekiln) का आज भी प्रचलित है किन्तु उसमें भट्ठी को बारम्बार ठण्डा करने की असुविधा रहती है तथा निकलती हुई कार्बन डाइआक्साइड गैस समूची बेकार जाती है। इसके विपरीत, आधुनिक भट्ठी न केवल अत्यन्त सुविधाजनक रहती है बल्कि समस्त कार्बन डाइआक्साइड गैस का भी उपयोग कर लिया जाता है। इस भट्ठी को बारम्बार ठण्डा भी नहीं करना पड़ता क्योंकि नीचे एक ओर से तैयार हुआ कली चूना निकालते रहते हैं और दूसरी ओर से नया कच्चा चूना-पत्थर डालते रहते हैं। अतः एक बार तैयार की गयी यह भट्ठी कई दिन तक काम आ जाती है।

कली चूना—यह पानी में पड़ते ही सन-सनाहट के साथ उत्पन्न तीव्र ताप द्वारा पानी के कुछ भाग को वाष्प में बदल देता है और स्वयं बुझा हुआ चूना बनकर टूट, बिखर जाता है। यह चूना अनेक कामों में लिया जाता है। इसके १ भाग में ३-४ भाग रेती मिलाकर उस मिश्रण को मकान बनाने में काम लेते हैं। रासायनिक उद्योगों में कास्टिक सोडा, सोडियम कार्बोनेट, कोल-गैस, चर्म-शोधन, भारी (hard) पानी को हलका (soft) बनाने में, कृषि-योग्य खाद तथा कीटाणुनाशक पदार्थ बनाने में भी यह काम आता है। इसे सोडियम हाइड्राक्साइड घोल में बुझाने पर सोडा लाइम बनता है जो मार्श-गैस (marsh gas) बनाने में प्रयुक्त होता है।

के. कार्बाइड—यह ऐसा मनोरंजक यौगिक है जो स्वयं अकार्बनिक होते हुए भी कार्बनिक यौगिक बनाता है। विद्युत्-भट्ठी में कली चूने को कार्बन के साथ २५००°C ताप पर गर्म करने से यह बनता है। यथा—

$$CaO + 3C = CaC_2 + CO$$

इस के. कार्बाइड का पानी से संयोग कराने पर एसिटेलीन गैस उत्पन्न होती है जो तीव्र प्रकाश तथा अति तीव्र ताप देती है। इसकी लौ अतिरिक्त आक्सीजन से संयुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर आक्सी-एसिटेलीन ज्वाला बनाती है, जो धातुओं के काटने तथा जोड़ लगाने में काम आती है। एसिटेल्डीहाइड, इथाइल अल्कोहल तथा ऐसेटिक अम्ल बनाने में इसका उपयोग होता है।

के. सल्फेट—प्रकृति में यह जिप्सम के रूप में मिलता है। इसे जब १२०°C पर गर्म किया जाता है तब इसका रहा-सहा जल-भाग भी निकल जाता है। शेष जो रह जाता है उसे हेमीहाइड्रेट (hemihydrate) अर्थात् प्लास्टर आफ पैरिस कहते हैं। इसमें पुनः जल मिलाने पर यह पत्थर की तरह सख्त हो जाता है। साथ ही यह किंचित् फैलता भी है। अतः मूर्तियाँ तथा अन्य कोई भी आकृति बनाने में यह सुविधा रहती है कि चाहे जिस मोड़ अथवा कोण पर यह ठीक बैठ जाता है। लिखने के खरिया चाक, सजावट की वस्तुएँ, भवन-निर्माण तथा टूटी हड्डियाँ जोड़ने में इसका व्यापक उपयोग होता है।

के. कार्बोनेट—यह प्रकृति में केलसाइट तथा एरेगोनाइट के रूप में मिलता है। केलसाइट तो चूना-पत्थर, केल्कस्पार (आइसलैण्ड-स्पार), संगमरमर, खरिया, अण्डों के खोल तथा हड्डियों में रहता है किन्तु एरेगोनाइट बहुत कम मात्रा में—केवल शंख, मूँगा आदि में ही—मिलता है। प्रयोगशाला में शुद्ध के. कार्बोनेट बनाने के लिए खीरा, संगमरमर या निस्तप्त घोघों (calcined oyster shells) को हाइड्रोक्लोरिक अम्ल में घोला जाता है। आक्सीकारक पदार्थों द्वारा आइरन को आक्सीकृत करके फैरिक आक्साइड, एल्यूमीना तथा क्षारीय फास्फेट को अमोनिया या चूने द्वारा अवक्षिप्त कर लेते हैं। छने हुए द्रव में घुले हुए केल्सियम को अमोनियम कार्बोनेट से अवक्षिप्त कर लेते हैं। उस अवक्षेप को धोकर सुखा लेते हैं। दूसरी विधि में जिप्सम-विधि से अमोनियम सल्फेट बनाने के अन्तर्गत भी के. कार्बोनेट उप-फल के रूप में प्राप्त होता है। त्रावनकोर तथा सिंदरी के उर्वरक-कोत्पादक विशाल संस्थानों से प्रतिवर्ष क्रमशः १८००० तथा ३००,००० टन के. कार्बोनेट प्राप्त किया जाता है। यह पानी में बहुत कम घुलनशील है, किन्तु कार्बन-डाइआक्साइड की उपस्थिति में के. बाइकार्बोनेट बन कर घुल जाता है। यथा—

$$CaCo_3 + H_2O + CO_2 \rightleftharpoons Ca(HCO_3)_2$$

अवक्षिप्त के. कार्बोनेट विविध रंग तथा डिस्टेम्पर बनाने में काम आता है। किण्वन-उद्योगों में तथा छापने की स्याहियाँ बनाने में भी इसका उपयोग होता है। ओषधि के क्षेत्र में दस्त बन्द करने के लिए $CaCO_3$ तथा $NaHCO_3$ का मिश्रण बनाकर Sippy Powder के नाम से बिकता है। क्रोमेटोग्राफी के लिए अधिशोषण-स्तम्भ बनाने में भी इसका उपयोग होता है।

केल्सियम के इस सर्वव्यापी महत्त्व को देखते हुए केल्सियम-विहीन सृष्टि की कल्पना भी करना कठिन है।

आँख, कान के बाद अब नाक···विज्ञापन का अगला निशाना

नेत्राकर्षक पोस्टरों और कर्णप्रिय संगीत के रिकार्डों की घिसी-पिटी लीक से हटकर अब नाक के द्वारा भी विज्ञापन का लक्ष्य बनाया जाएगा। तब आप ऊँची दूकान और फीके पकवान की झंझट से बच जाएँगे। बजाय आप यह सोचें कि किस हलवाई या होटल के डींग भरे साइनबोर्ड से खिंचकर अन्दर जाएँ, खाद्य-बानगियों की मनोहारी सुगन्ध जिसकी बढ़कर होगी, वही आपको खींच लेगी। यह महकता हुआ विज्ञापन कपड़े की दूकानों, ज्वेलरी स्टोर्स और जनरल मर्चेन्ट्स तक ज्यों-ज्यों क्रमशः पहुँचेगा, त्यों-त्यों बड़े-बड़े पोस्टरों के रंग फीके पड़ते जाएँगे।

विज्ञापन-की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

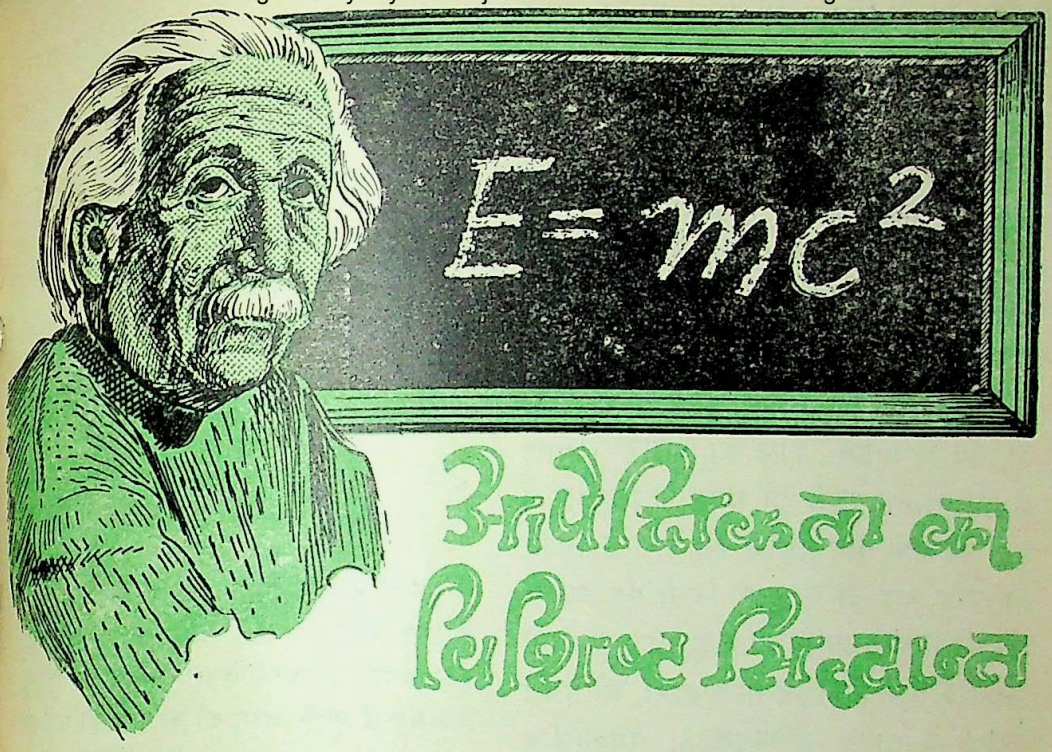

आपेक्षिकता का विशिष्ट सिद्धान्त

अशोककुमार चौबे

जिस समय से मानव ने प्रकृति का अध्ययन शुरू किया है उस समय से वर्तमान काल तक अनेक आविष्कार हो चुके हैं। इन आविष्कारों में विभिन्न सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया है, किन्तु निस्सन्देह विज्ञान की प्रगति में आपेक्षिकता के सिद्धान्त का विशिष्ट स्थान है।

आपेक्षिकता के सिद्धान्त का प्रतिपादन सन १९०५ में आइन्सटाइन ने किया था। जिस समय यह सिद्धान्त प्रस्तुत हुआ था उस समय की स्थिति का अध्ययन कर लिया जाये तो इस सिद्धान्त को अति सुगमता से समझा जा सकता है। यह अनुमान किया गया था कि प्रकाश-किरणों के गमन के लिए एक माध्यम की आवश्यकता होनी चाहिए। उस माध्यम का नाम ईथर (ether) रखा गया था। अन्य वस्तुओं की परम (absolute) गति को मापने के लिए भी ईथर को ही पूर्णत: गतिहीन तथा आकाश में सर्वत्र व्याप्त माना गया था। इस प्रकार ईथर को स्थिर मानकर अन्य वस्तुओं की निरपेक्ष गति ज्ञात की जा सकी थी। माइकेलसन तथा मोर्ले ने अपने एक प्रयोग के द्वारा पृथ्वी का ईथर-सापेक्ष वेग निकाला तब वह वेग शून्य आया अर्थात् ईथर और पृथ्वी में कोई भी सापेक्ष वेग नहीं है। इसका निष्कर्ष यह निकला कि या तो ईथर की कल्पना ही मिथ्या है अथवा ईथर द्वारा किसी का सापेक्ष वेग निकालना सम्भव नहीं है। ऐसे प्रयोगों का फल यह निकला कि न्यूटन द्वारा जिस निरपेक्ष दिक्, काल तथा प्रेक्षक (observer) की कल्पना की गयी थी वह असत्य सिद्ध हुई। इस प्रकार न्यूटन के सिद्धान्तों की त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए तथा कुछ अन्य सिद्धान्तों के आधार पर आइन्सटाइन ने विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त को जन्म दिया जो इस प्रकार है—

'भौतिकी के नियमों का रूप ऐसा होना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चाहिए कि वे किसी भी अत्वरित वेग वाले प्रेक्षक के लिए यथार्थ रहें।'

आपेक्षिकता के सिद्धान्त ने हमारे भौतिक विज्ञान में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। अनेक सिद्धान्तों के बारे में जो कुछ समझा हुआ था वह सब परिवर्तित हो गया। अब तक समय को निरपेक्ष मानते थे सो उसकी भी निरपेक्षता समाप्त हो गयी। विभिन्न गति से गतिमान दो व्यक्तियों द्वारा मापा गया समय समान नहीं हो सकता। इसे 'काल का प्रसार' (time dilatation) कहते हैं। समय के निरपेक्ष न होने का एक और प्रमाण इस बात से मिला कि यदि कोई दो घटनाएँ किसी एक व्यक्ति को समकालीन प्रतीत होती हैं, तो वे ही दोनों घटनाएँ, एक दूसरे व्यक्ति के द्वारा, जो प्रथम व्यक्ति के सापेक्ष गतिमान है, समकालीन प्रतीत नहीं होंगी। इन प्रयोगों से समय की निरपेक्षता ही नहीं समाप्त हो गयी बल्कि लम्बाई के माप के बारे में एक और नयी बात मालूम हुई। वह यह कि अब किसी वस्तु की लम्बाई निश्चित नहीं समझी जा सकती। ज्यों-ज्यों वस्तु का वेग बढ़ता जाता है उसकी लम्बाई घटती जाती है। इसे फिट्जेराल्ड का संकुचन (Fitzerald Contraction) कहते हैं।

आपेक्षिकता के विशिष्ट सिद्धान्त के द्वारा समय तथा लम्बाई की माप के विषय में यह एक आश्चर्यजनक परिवतन हो गया। इस परिवर्तन के द्वारा माइकेलसन तथा मोर्ले के प्रयोग की पुष्टि की जा सकी। लम्बाई तथा समय में यह परिवर्तन वस्तु की गति पर निर्भर करता है। वस्तु की गति जितनी ही कम थी, ये प्रभाव भी उतने ही कम थे तथा प्रयोग द्वारा इन्हें मापना बहुत ही कठिन था। जैसे-जैसे वस्तु की गति बढ़ती जाती है, ये प्रभाव और अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। आधुनिक विधियों द्वारा प्रकाश की गति के ही

साबुन के बुलबुले का एक प्रतीक उदाहरण। इस में कल्पित तीन आकृतियाँ बगैर मोटाई की, सपाट और इनकी दुनियाँ में केवल लम्बाई और चौड़ाई है। मोटाई जैसी वस्तु की कल्पना भी इन्हें हमारा पागलपन प्रतीत होगी

समान गति उत्पन्न करना सम्भव हो गया है। अतः प्रकाश के लगभग गति से चलने वाली वस्तुओं का अध्ययन करने पर 'काल प्रसार' तथा 'फिट्जेराल्ड संकुचन' की पुष्टि की जा सकी है।

आपेक्षिकता के सिद्धान्त के पूर्व हम जानते थे कि किसी भी वस्तु की मात्रा हमेशा स्थिर रहती है लेकिन आपेक्षिकता के सिद्धान्त के द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि वस्तु का द्रव्यमान निश्चित नहीं रहता, गति के अनुसार बदलता रहता है। जैसे-जैसे गति बढ़ती जाती है, वस्तु की मात्रा बढ़ती जाती है। ये समझिए कि यदि वस्तु प्रकाश की गति से चल रही हो तो उसकी मात्रा अनन्त (infinite) हो जाती है। मात्रा तथा गति का यह समीकरण स्थापित किया जा सकता है

$$m = \frac{mo}{\sqrt{1 - \frac{v^2}{c^2}}}$$

यहाँ m वस्तु की मात्रा, mo वस्तु की विराम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था में मात्रा, v वस्तु का वेग तथा c प्रकाश का वेग है। इस प्रकार आपेक्षिकता के सिद्धान्त के द्वारा यह एक आश्चर्यजनक सिद्धान्त सिद्ध किया गया। यही नहीं, एक और भी ऐसा महान क्रान्तिकारी सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे। सामान्य अनुभव के द्वारा हम जानते हैं कि वस्तु की ऊर्जा तथा मात्रा में कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए, या यों कहिए कि वस्तु के द्रव्यमान को ऊर्जा में किसी तरह से भी परिवर्तित नहीं किया जा सकता लेकिन आपेक्षिकता के सिद्धान्त के द्वारा ऊर्जा तथा द्रव्यमान में यह सम्बन्ध पहले ही स्थापित किया जा चुका है कि—$E=mc^2$

यहाँ E ऊर्जा, m द्रव्यमान तथा c प्रकाश का वेग है। इसका अर्थ यह है कि ऊर्जा तथा द्रव्यमान एक दूसरे में परिवर्तित किये जा सकते हैं। यदि किसी वस्तु के वेग में कुछ वृद्धि होती है तो उसका अर्थ यह होता है कि उसमें कुछ ऊर्जा बाहर से प्रविष्ट हो गयी है। साथ ही अब यह भी सत्य है कि ऊर्जा की वृद्धि के कारण ही उसमें द्रव्य की मात्रा भी बढ़ जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि ऊर्जा ही द्रव्य रूप में परिणत हो जाती है।

विशिष्ट आपेक्षिकता का द्रव्य ऊर्जा सम्बन्धी यह समीकरण अनेक प्रकार के प्रयोगों से प्रमाणित हो गया है तथा आधुनिक भौतिक विज्ञान में इसको विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इसी सम्बन्ध के द्वारा एटम बम तथा हाइड्रोजन बम द्वारा विसर्जित अपार शक्ति को समझा जा सकता है। इन बमों के विस्फोट से जो असीमित ऊर्जा प्राप्त होती है, वह आइन्सटाइन के इस मात्रा तथा ऊर्जा के सम्बन्ध से समझी जा सकती है। इस समीकरण के अनुसार यदि किसी वस्तु का m ग्राम ऊर्जा में परिवर्तित हो जाये तब उससे

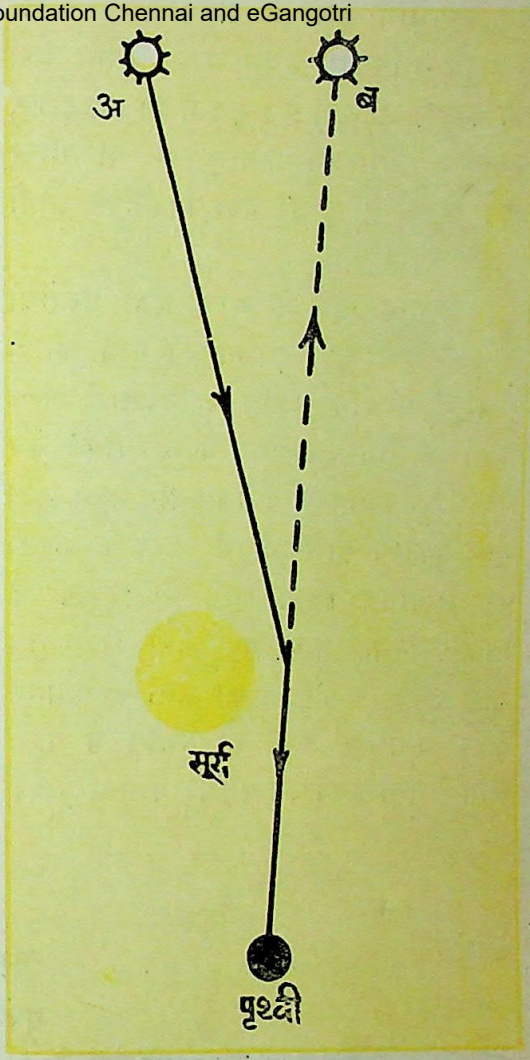

पृथ्वी पर से हमें 'ब' बिन्दु पर दिखने वाला तारा वास्तव में 'अ' बिन्दु पर स्थित है किन्तु सूर्य-रश्मियों द्वारा प्रभावित होकर उक्त तारे की प्रकाश-किरण मोड़ ले लेती है

c^2 गुना शक्ति प्राप्त होगी जो बहुत ही अधिक होगी। यूरेनियम का परमाणु भार २३५ होता है। जब उसका विखंडन होता है तब उसके टूटे हुए भागों की कुल मात्रा २३५ नहीं होकर कुछ कम ही होती है। यद्यपि वह कमी बहुत अल्प होती है लेकिन इस मात्रा से प्राप्त ऊर्जा c^2 गुना होने के कारण बहुत होती है। हाइड्रोजन बम में हाइड्रोजन परमाणुओं के समेकन (fusion) से हीलियम-परमाणु उत्पन्न होते हैं। उस क्रिया में भी द्रव्यमान घट जाता है तथा उसी नियम द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह द्रव्यमान ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। सूर्य से विकीरित होने वाली असीम ऊर्जा का कारण भी यही है। सूर्य में भी हाइड्रोजन परमाणु हीलियम-परमाणु में परिवर्तित होते रहते हैं तथा ऊर्जा विकीरित होती रहती है।

आइन्सटाइन के मात्रा-ऊर्जा सम्बन्धी समीकरण का यही अर्थ नहीं कि मात्रा को ही ऊर्जा में परिवर्तित किया जा सकता है बल्कि ऊर्जा को भी द्रव्यमान में परिवर्तित कर सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि उच्च ऊर्जा वाले फोटान को किसी भी तत्त्व के अणुओं पर आपतित किया जाये तो डिराक के सिद्धान्तानुसार ऋणात्मक ऊर्जा की स्थिति वाले इलेक्ट्रान फोटान की ऊर्जा को शोषित करके धनात्मक ऊर्जा की स्थिति में पहुँच जाते हैं तथा इलेक्ट्रान-पाजिट्रान युग्म उत्पन्न हो जाते हैं। ये इलेक्ट्रान-पाजिट्रान पदार्थ के मूलकण होने के कारण पदार्थ का निर्माण करते हैं अर्थात् आपतित फोटान की ऊर्जा इस तरह पदार्थ के द्रव्यमान में परिवर्तित हो जाती है।

इन सभी बातों से ज्ञात होता है कि विशिष्ट आपेक्षिकता के सिद्धान्त द्वारा समय, लम्बाई, द्रव्यमान आदि के विषय में जो दो नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये जा चुके हैं, वे सरलता से सिद्ध भी किये जा सकते हैं; लेकिन हमें इन सिद्धान्तों को सामान्य व्यवहार में उपयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। जिन वेग वाली वस्तुओं का हम दैनिक जीवन में उपयोग करते हैं उनका वेग प्रकाश के वेग से बहुत कम होता है। अतः नित्य के व्यवहार के लिए न्यूटन के सिद्धान्त अब भी पर्याप्त समझे जा सकते हैं।

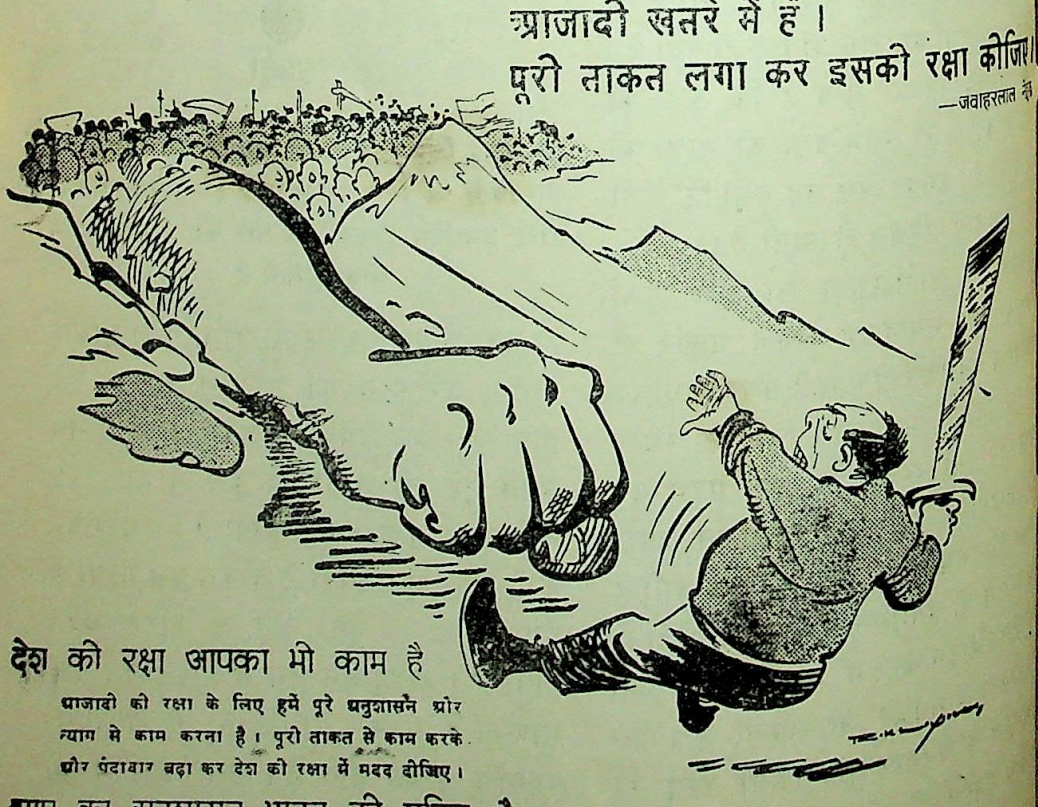

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोयले के उप-पदार्थ

अनिलकुमार जैन

हमारी पृथ्वी के गर्भ में कोयले का अटूट भण्डार है और कोयले के उप-पदार्थों की संख्या अनगिनत है। नित्य ही अंगीठी में चटखते-दहकते कोयलों को देखकर एकाएक ही यह कल्पना न आ सकेगी कि उन बदसूरत टुकड़ों में से इतने खूबसूरत पदार्थ, उन गंधहीन टुकड़ों से इतनी सुगंधित वस्तुएँ और जलाने जैसे अति सामान्य काम में आने वाले इस कोयले से विशाल उद्योगों के लिए बिजली, गैस आदि शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती हैं।

जब अनन्त समाधि टूटती है

लाखों-करोड़ों वर्षों से भूमण्डल पर तरह-तरह की वनस्पतियों के जंगल के जंगल उठते रहे, फलते-फूलते रहे, और बदलते हुए जलवायु एवं भू-पटल की उथल-पुथल में पुराने दबते गये, नये उभरते गये। यों समाधिस्थ होते हुए वृक्षों, वनस्पतियों की तह पर तहें जमती गयीं और सूर्य की अपरिमित ऊर्जा और ताप को संजोये हुए वे तहें कोयलों की परतों में परिणत होती गयीं। अतः इस भूमिगत खजाने से ऊर्जा और ताप के रूप में जो कुछ हमें आज मिल रहा है, वह युगों की संचित सम्पत्ति ही है।

कोयले से हमें क्या-क्या मिलता है ?

ज्यों-ज्यों रसायन विज्ञान विकसित होता गया, कोयले से तरह-तरह के पदार्थ प्राप्त करने के भी प्रयोग चलते ही रहे। प्रयोगों के अन्तर्गत कोयले के दो प्रमुख उपयोग सदैव लक्ष्य के सामने रखे गये—१. ईंधन के रूप में, और २. अनगिनत रासायनिक पदार्थों के भण्डार के रूप में। १९वीं शताब्दी में ब्रिटिश रसायनज्ञ विलियम पार्किन (१८३८-१९०७) ने प्रयोगों द्वारा ज्ञात किया कि कोयले से उत्पादित बेन्जीन के संश्लेषण द्वारा ठीक वैसे ही एनिलीन रंग (aniline dyes) बनाये जा सकते हैं जैसे प्राकृतिक कार्बनिक पदार्थों से। यों पार्किन ने वह नींव डाली जिस पर आज का रंग उद्योग आधारित है।

मेकिन्टाश नामक एक व्यक्ति ने अनोखा ही प्रयोग किया और उसी से वह नाम भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमा गया। आज जहाँ भी वाटरप्रूफ कोट, जूते, शीटें, बरसाती आदि का उल्लेख आता है, मेकिन्टाश का नाम स्वतः आ जाता है। उसी ने यह पता लगाया था कि कोलतार में विद्यमान थोड़ी-सी मात्रा स्प्रिट की रबर को घुला देने का गुण रखती है। अतः उसने पहला प्रयोग अपने ही कपड़ों पर किया और द्रवित रबर की परत अपने ओवरकोट पर चढ़ाकर सूख जाने के बाद, भरी बरसात में सड़क पर निकल पड़ा। राह चलते लोग छत्रियों की सहायता से ज्यों-त्यों वर्षा से बचते हुए चल रहे थे और मेकिन्टाश को बगैर ही छत्री, मजे में चलते देखकर कुछ व्यंग्य, कुछ अचरज कर रहे थे। मैक जब घर लौटा तो उस बरसाती कोट के नीचे उसे बिलकुल सूखा देख कर घरवाले भी चकित रह गये। एक भिन्न प्रयोगकर्ता जासेफ लिस्टर (१८२७-१९१२) भी था जिसने अपने प्रयोगों से ज्ञात किया कि कोलतार में कार्बोलिक नामक अति तीव्र कीटाणुनाशक पदार्थ रहता है। अतः उसने भी शल्य-चिकित्सा को ऐसा बहुमूल्य कीटाणु-नाशक पदार्थ देकर मानवोपकारी आविष्कारों में अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

विकास या विनाश अपने हाथ है

प्रकृति की सम्पन्नता असीम है। वह हमें ऐसे-ऐसे पदार्थ देती है जिनके सुबुद्धिपूर्ण उपयोग से हम सुख-सुविधा के साधन तैयार कर सकते हैं और दुर्बुद्धिपूर्ण उपयोग से उन्हीं को हम विनाशकारी साधनों में बदल सकते हैं। टाल्यूओल (toluole) इसका एक उत्तम उदाहरण है। इससे हम अत्यन्त मिष्टकारी पदार्थ सेक्रीन बना सकते हैं तो दूसरी ओर अनिष्टकारी तीव्रतम विस्फोटक ट्राइनाइ-ट्रोटॉल्यूइन (T.N.T.) भी तैयार कर सकते हैं। दूसरा उदाहरण फिनोल का दिया जा सकता है जो कार्बोलिक अम्ल से तैयार किया जाता है। इससे हम चाहें तो डी. डी. टी. जैसा प्रबल विसंक्रामक (disinfectant) तैयार कर लें, विन्टरग्रीन (wintergreen), फीनेसेटीन (phenacetin) और सैलिसिलिक अम्ल (salycylic acid) बनाकर उनसे एस्पीरीन जैसी प्राणदायक औषधियाँ तैयार कर लें, अथवा पिक्रिक अम्ल (picricacid) जैसा दूसरा तीव्र विस्फोटक बना लें।

कोलगैस, वाष्प, विद्युत तक में कोयला

वाष्प इंजन अपनी शक्ति के लिए कोयले पर निर्भर रहता है। इसी प्रकार विद्युतोत्पादक इंजन भी कोयले के ही बल पर विद्युत उत्पन्न करके हमें देता है। किसी भी बड़े औद्योगिक नगर में कोयले की कुल खपत का कम-से-कम पाँचवाँ भाग विद्युतोत्पादन में लग जाता है। वही विद्युत उस नगर के समस्त छोटे-बड़े कारखानों को चलाती है।

कोयले की गैस (coal gas) का भी जब हम उपयोग करते हैं तब मानो कोयला ही गैस-उत्पादन के स्थल से पाइपलाइन द्वारा आवश्यक स्थलों तक ले जाते हैं। अन्तर केवल यही है कि हम कोयले को वहीं छोड़कर उसकी ज्वलन शक्ति को गैस के रूप में पाइप लाइनों द्वारा खींच लेते हैं। बड़े पैमाने के कोलगैसोत्पादक संस्थान खनिज कोयले से बड़ी मात्रा में कोलगैस निकालकर उसे बड़ी-बड़ी टंकियों में संचित कर लेते हैं। वहाँ से पाइप-लाइनों द्वारा कोलगैस घर-घर पहुँचायी जाती है। कोयले से गैस निकालने के बाद रह जाता है कोक और वह कोक भी ईंधन के रूप में खूब बिकता है। वह साधारण कोयले की अपेक्षा बड़ी देर में जलता है, क्योंकि उसकी गैस तो पहले ही निकाली जा चुकी होती है।

तीन मुख्य उप-पदार्थ

कोयले से जब कोलगैस तथा कोक बनाया जाता है तब तीन मुख्य उप-पदार्थ प्राप्त होते हैं—कोलतार, बेन्जोल और अमोनिया। कोलतार का परिशोधन जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसवन क्रिया द्वारा किया जाता है तब उस क्रिया में कार्बोलिक तेल प्राप्त होता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, कार्बोलिक तेल तीव्र कीटाणुनाशक है। इसी पर अन्य रासायनिक क्रियाएँ कराकर इससे फिनोल प्राप्त कर लिया जाता है। यह फिनोल विस्फोटक बनाने के अतिरिक्त प्लास्टिक बनाने में भी काम आता है। प्लास्टिक का सर्वप्रथम रूप—बैकेलाइट (bakelite)—भी इसी से तैयार किया गया था। आज तो प्लास्टिक इस प्रकार हमारे जीवन से जुड़ गया है मानो यह प्लास्टिक-युग ही हो। यह धातु जैसा है फिर भी धातु की भाँति खानों से नहीं निकाला जाता; यह काष्ठ से भी अच्छा काम देता है फिर भी काष्ठ की भाँति पेड़ों से नहीं आता। यह तो रसायन की जटिलतम क्रियाओं की चमत्कारपूर्ण उपलब्धि है।

इसी की एक शाखा में नेप्थलीन (naphthelene) तेल भी आता है। इस तेल से विभिन्न रंग, भाँति-भाँति के विस्फोटक तथा डेटोल जैसी विसंक्रामक दवाएँ बनायी जाती हैं। इसका एक साथी क्रियोसोट (creosote) तेल भी है। वह लकड़ी के फ़र्नीचर की सुरक्षा हेतु विभिन्न वारनिशें बनाने में प्रयुक्त होता है। एक तीसरा एन्थ्रसीन (anthracene) है। यह सर्दियों में पौधों को शीत से बचाने के लिए छिड़कने वाली दवाओं में प्रयुक्त होता है। इसी से सेल्यूलोज एसीटेट (संश्लेषित रेशम बनाने का मुख्य पदार्थ) भी प्राप्त किया जाता है। इसके अतिरिक्त खाद्य-संरक्षण के लिए उपयोगी पदार्थ, विविध ओषधियाँ तथा इत्र-ऐसेन्सों के बनाने में भी इसका उपयोग होता है।

कोयले से प्राप्त किये जा सकने वाले अनेकानेक पदार्थों में कुछेक ये भी हैं—(ऊपर, बायें से दायें) **१. ओषधि-टेब्लेट्स, २. साबुन, ३. वार्निश-पेन्ट;** (नीचे, बायें से दायें) **१. मार्गरीन अर्थात् कृत्रिम मक्खन २. मोमबत्ती, ३. चीनी की टिकियाँ**

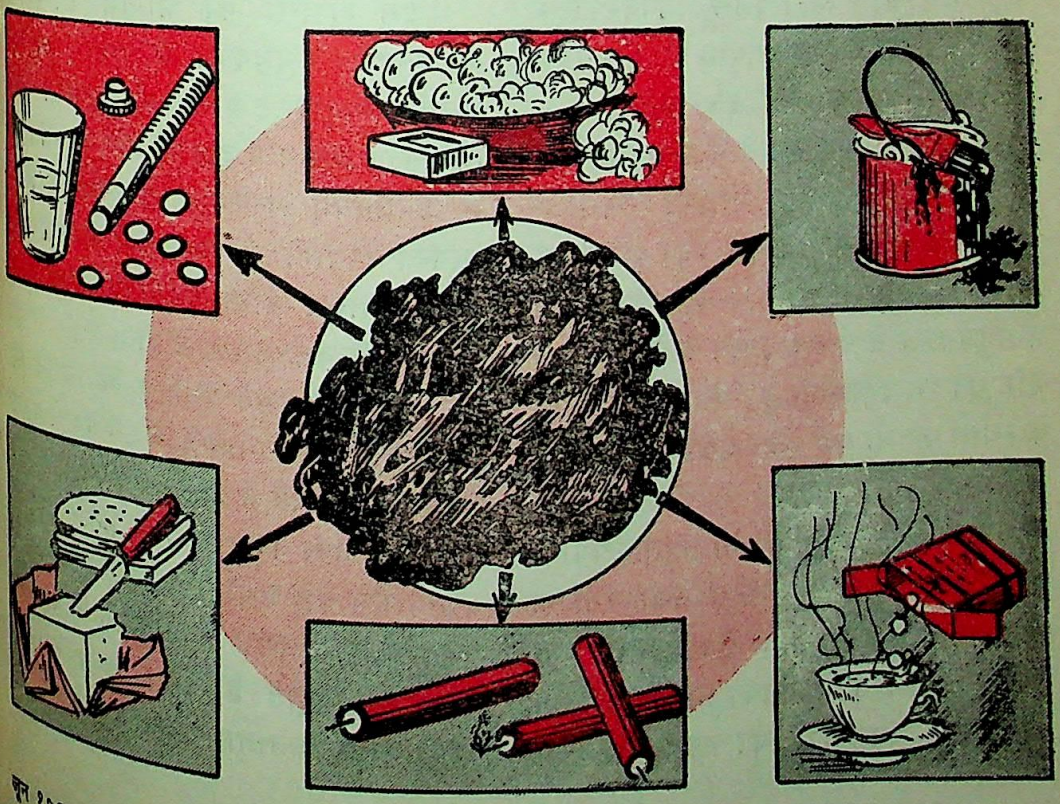

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन तेलों के आसवन के अन्तर्गत जो शेष पदार्थ बचता है उसे राल (pitch) कहते हैं। उसका उपयोग सामान्यतः तो विभिन्न ईंधनों के बनाने में और विशेषतः अधिक शोधित कर लेने पर विद्युदाग्र बनाने में होता है। क्रियोसोट से मिश्रित यह राल अति उत्तम ईंधन बनाती है जो धुयेंरहित, ताप और प्रकाश में उत्तम तथा गंधक के अंशों से मुक्त होने के कारण स्टील-उत्पादन में बहुत लोकप्रिय स्थान पाता है। यही मिश्रण कार्बन-ब्लैक (carbon-black) नामक पदार्थ भी देता है जो मोटर-टायर की भीतरी दीवारें मजबूत बनाने में प्रयुक्त होता है।

कोयले से उत्पादित बेन्जोल भी अत्यन्त उपयोगी ईंधन है। पेट्रोल से मिश्रित होकर तो यह मोटरचालकों का प्रियपात्र बन जाता है। इसका शोधित रूप शुद्ध बेन्जोल वायुयान के लिए उपयुक्त ईंधनों में सर्वोत्तम माना जाता है। टाल्यूओल (toluole) का उल्लेख ऊपर आ ही चुका है जो एक ओर ट्राइ-नाट्रोटाल्यूइन (T.N.T.) जैसे तीव्र विस्फोटक और दूसरी ओर घरेलू उपयोग की वस्तुएँ—सैक्रीन, पालिश के रंग, इत्र, ऐसेन्स तथा खाद्य-संरक्षक पदार्थ बनाने में काम आता है।

नेप्था (naphtha) भी इसी शृंखला में प्राप्त होता है। इस पदार्थ में रबर घुल जाता है, अतः यह रबर-उद्योग में बहुत महत्त्वपूर्ण है। युद्धकाल में बैलून बनाने के लिए इसकी माँग एकदम बढ़ जाती है। चमड़ा और कपड़े के स्थान पर भी यह अनेक प्रकार से उपयोग में आता है।

जायलोल (xylole) भी बहुत उपयोगी पदार्थ है। यह पेन्ट, वार्निश तथा रंगों के घोल बनाने में प्रयुक्त होता है। फर्नीचर तथा फर्श की पालिशों में इसका महत्त्वपूर्ण भाग रहता है। तरह-तरह की स्याहियाँ, प्रेस-प्रिंटिंग की तथा फोटोकलर प्रिंटिंग की स्याहियाँ बनाने में मुख्यतः यही काम आता है। पाइरिडीन (pyridine) बेन्जोल-समूह का पदार्थ है। इसकी गंध बड़ी अप्रिय होती है। व्यावसायिक अल्कोहल को पीने के सर्वथा अयोग्य और जहरीला बनाने में इसका उपयोग होता है। प्रसिद्ध दवा M. & B. बनाने में तथा वस्त्रोद्योग और फोटोग्राफी के मसाले बनाने में भी यह प्रयुक्त होता है।

कोयले का सीधा ही हाइड्रोजनीकरण (hydrogenation) करके उससे पेट्रोल प्राप्त करने के अनेक प्रयोगों के पश्चात प्रसिद्ध रसायन-निर्मायक कम्पनी I.C.I. को सफलता मिली थी। इस विधि में आवश्यक दाब के नीचे कोयला तप्त करके जब उसका हाइड्रोजनीकरण किया जाता है तब उससे प्राप्त क्रियोसोट तेल भी बड़ी सरलता से हाइड्रोजनीकृत हो जाता है। उक्त कम्पनी वर्षों से इस विधि द्वारा क्रियोसोट का हाइड्रोजनीकरण कर रही है।

इस शृंखला का अन्तिम उप-पदार्थ अमोनिया है। युद्धकाल में इसका उपयोग अमोनियम नाइट्रेट तथा अमोनल जैसा तीव्र विस्फोटक बनाने में होता है और शान्तिकाल में अमोनियम सल्फेट जैसा कृषि के लिए अत्यन्त उपयोगी उर्वरक बनाने में कास्टिक सोडा, वाशिंग सोडा बनाने में तथा जल-शोधन और बर्फ जमाने में होता है।

यह याद रखने योग्य है कि जितने भी पदार्थ यहाँ तक गिनाये हैं, वे उप-पदार्थ पहले हैं, अन्य कुछ बाद में हैं। अतः सीधे इन्हीं को उत्पादित नहीं किया जाता, किन्तु स्टील-उद्योग जैसे बड़े उद्योगों के लिए कोक बनाते समय तथा कोलगैस के उत्पादन में जो उप-पदार्थ प्राप्त होते हैं, उन्हीं से ये विभिन्न पदार्थ आवश्यकतानुसार बनाये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मौसम जिसकी मुट्ठी में है

खाद्य-संरक्षण

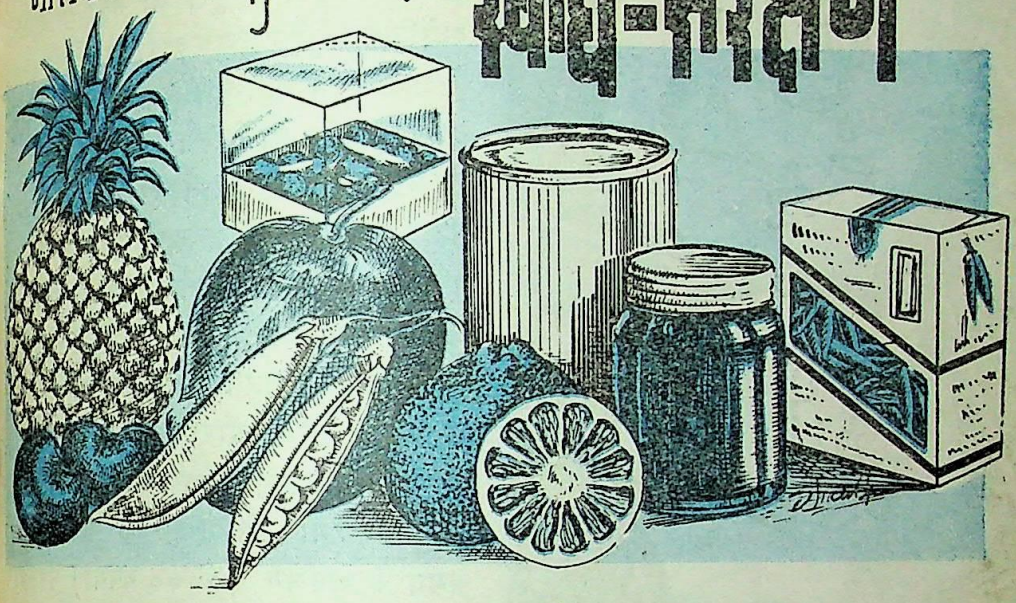

बनवारीलाल शर्मा

खाद्य वस्तु कैसी भी हो, अपने मर्यादित समय से आगे खाने योग्य स्थिति में नहीं रह जाती। प्रत्येक वस्तु का अपना अलग-अलग काल निर्धारित है। रोटी, दूध तथा सब्जी जैसी वस्तु सुबह से शाम तक नहीं टिक पाती; कुछ फल दिनों, हफ्तों तक भी ठीक बने रहते हैं। जब तक लीवनहुक ने पानी की बूंद से सूक्ष्मदर्शी बना देने का सूत्रपात नहीं किया था, हमें यह पता भी न था कि इतने सूक्ष्म जीवाणु भी हो सकते हैं जो आँखों से दिखायी न दें। इसी प्रकार लुई पाश्चर के अनुसन्धानों तक कोई नहीं जानता था कि बैक्टीरिया क्या है। इन्हीं के (विशेषत: पाश्चर के) खोजकार्यों की बदौलत आज हम जान सके हैं कि रोटी सड़ती क्यों है, दूध फटता क्यों है, सब्जियाँ खट्टी क्यों हो जाती हैं आदि-आदि। स्टेफाइलोकोक्साइ (staphylococci), स्ट्रेप्टोकोक्साइ (streptococci), बैक्टीरिया (bacteria), फफूंद (mold) तथा खमीर (yeast) उन जीवाणुओं में मुख्य हैं जो खाद्य-वस्तुओं को खराब कर डालते हैं। तनिक-सी असावधानी के फल-स्वरूप मनों दूध नालियों में बहाना तथा ढेरों आटा घूरे पर फेंकना पड़ता है। ये सूक्ष्माणु खाद्यों में ऐसे जीव-विष उत्पन्न कर देते हैं जो पेट में पहुँचकर कठिन रोग और कहीं-कहीं तो जीवन-संकट तक उपस्थित कर देते हैं। इन जीवाणुओं के अतिरिक्त कुछेक फलों और खाद्य जन्तुओं में जो प्राकृतिक प्रक्विव अर्थात् एन्जाइम (enzymes) होते हैं, वे भी विशिष्ट परिस्थितियों में विषोत्पादक बन जाते हैं।

नेपोलियन की सूझ

इतिहासप्रसिद्ध महान नेपोलियन ने सत्य ही कहा था कि सेना का मुख्य आधार सैनिकों का पेट है। सैनिक चाहे जितने युद्ध-कुशल और शूरवीर हों, आधे पेट रहकर वे कुछ भी नहीं कर सकते और उनका सारा बल धरा ही रह जाता है। अतः युद्ध जीतने के लिए यह आवश्यक है कि सैनिकों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भर पेट, अच्छा और पौष्टिक खाना मिलता रहे। युद्धकाल में इतनी बड़ी आवश्यकता इतनी सरलता से पूरी भी नहीं हो सकती क्योंकि जगह-जगह शत्रु द्वारा नाकेबन्दी रहती है और रसद गिने-चुने अवसरों तथा साधनों द्वारा ही पहुँच पाती है। ऐसी हालत में बहुत सा खाद्य पदार्थ खराब हो जाने का तथा फलस्वरूप सैनिकों का अपोषित रह जाने का पूरा खतरा रहता है। नेपोलियन अपनी तीव्र बुद्धि तथा दूरदृष्टि के बल पर ऐसी संभावित कठिनाइयों से बहुत पहले ही अभिज्ञ था। अतः उसने राज्य द्वारा घोषणा करा दी कि जो व्यक्ति खाद्य-संरक्षण की सफल विधि प्रस्तुत करेगा उसे १२००० फ्रांक (उस समय के लगभग १०००० रुपया) पुरस्कार दिया जायेगा।

उक्त घोषणा पर बीड़ा उठाने वाला एक ही व्यक्ति सामने आया और वह था फ्रेन्च रसायन-रसिक फ्रेन्काइ एपर्ट (Francois Appert)। उसने सोचा कि एक यह प्रयोग करने योग्य है जिसमें खाद्यपदार्थ को अच्छे प्रकार उबालकर वायुरुद्ध बोतलों में पैक कर दिया जाये। एक प्रकार से लुई पाश्चर का पाश्चुराइजेशन-सिद्धान्त यही था किन्तु पाश्चर से वर्षों पूर्व एपर्ट इस विधि को ज्ञात कर चुका था। सिद्धान्त से वह फिर भी उस समय अनभिज्ञ था। उसकी वह दक्षता केवल अभ्यासवश थी क्योंकि नेपोलियन के आह्वान से भी पूर्व एक ग्वाले को उसने यह रहस्य बताया था। ग्वाले ने अपने दूध के संरक्षण के लिये एपर्ट से जब युक्ति पूछी, तब उसने उसे भी यही कहा था कि दूध को अच्छी तरह उबाल लो और वायुरुद्ध बोतल में बन्द कर

← ये हैं खाद्य पदार्थों के पांच मुख्य शत्रु जिनसे बचने के लिए इतना सब कुछ करना पड़ता है: (ऊपर से नीचे) फफूँद, खमीर, बैक्टीरिया, स्टेफाइलोकोकस एसाइड, स्ट्रेप्टोकोक्साइ

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Digitized by eGangotri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो। ग्वाले ने ऐसा ही किया और दो दिन की लम्बी यात्रा के पश्चात् जब उसने दूध खोला तो ताजा हालत में ही पाया।

आह्वान के अनुसार एपर्ट अपने काम में जुट गया और नेपोलियन के सैनिकों के लिए आमिषाहार, फल, दूध, शाक-सब्जी आदि खाद्य-संरक्षित रूप में देता रहा। उस समय लोग यह देखकर चकित रह जाते थे कि वस्तुएँ बाद भी वे वस्तुएँ रूप, रंग, स्वाद आदि में परिवर्तित अथवा विकृत नहीं होती थीं। स्वयं नेपोलियन भी उन संरक्षित खाद्यों और ताजा खाद्यों में विभेद नहीं कर पाता था। घोषणानुसार वह पुरस्कार एपर्ट को दिया गया। उसकी लोकप्रियता तथा प्रसिद्धि इससे और भी बढ़ी कि अन्य देशों ने भी तत्परता से उसकी विधियों का अनुकरण किया। वस्तुतः जैसा ऊपर कहा है, एपर्ट इस विधि के सिद्धान्त से अनभिज्ञ ही था क्योंकि यह तो बहुत वर्षों पश्चात् पाश्चर ने ही बताया कि खाद्यों को उबालने से बैक्टीरिया तथा अन्यान्य वे जीवाणु नष्ट हो जाते हैं जिनके होते हुए खाद्य पदार्थ खराब हो जाते हैं। पाश्चुराइजेशन विधि का रहस्य ही यह है कि जब तक उन हानिकारक जीवाणुओं को अनुकूल वातावरण मिलता रहेगा, वे पनपते रहेंगे, सक्रिय रहेंगे और उच्च ताप तथा वायुरुद्ध की अवस्था उनके लिए विनाशक है। अतः केवल उच्च ताप ही नहीं, निम्नतम ताप (हिमांक), रासायनिक धूम्र लवण तथा तेजाब आदि साधनों से भी उन्हें नष्ट किया जा सकता है।

प्राचीनतम खाद्य-संरक्षण विधियाँ

सूर्य और हिम प्रकृति का उपयोग खाद्य-संरक्षण के लिए वैज्ञानिकता से अनभिज्ञ होते

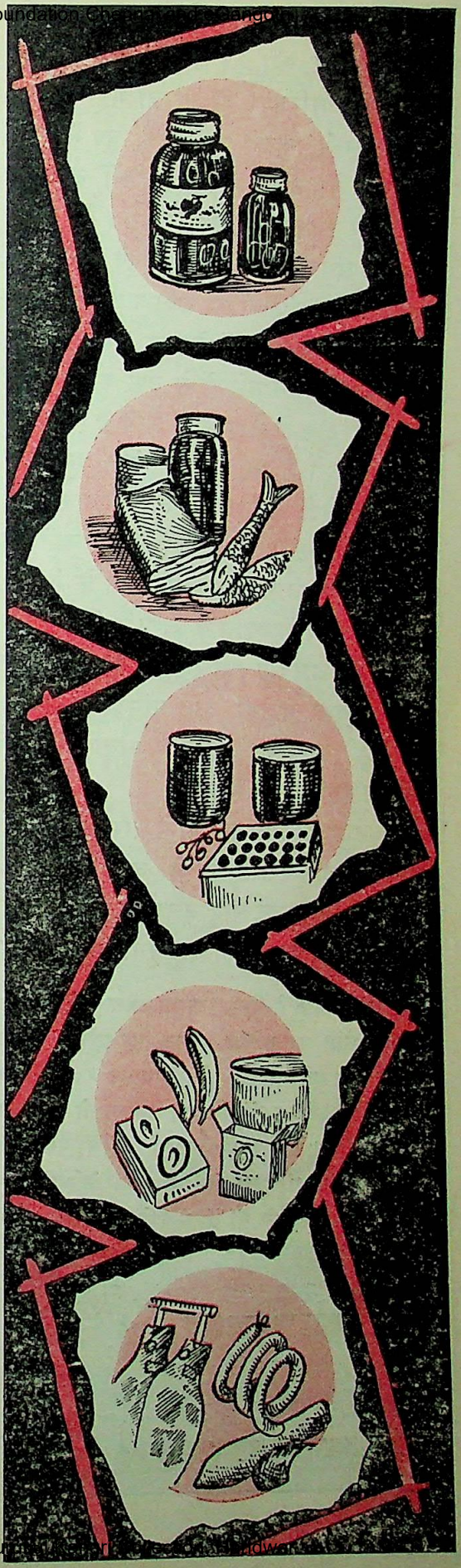

ये हैं पाँच संरक्षण विधियाँ—(ऊपर से नीचे) **अचार द्वारा, नमक द्वारा, मुरब्बे द्वारा, वर्फ में दबाकर, रासायनिक धूम द्वारा।**

CC-0. In Public Domain. Gu

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए भी, मानव वर्षों से करता आया है और आज भी कर रहा है। घरों में आप देखते ही हैं कि ऐसी सब्जियाँ जो बारहों महीने ताजा नहीं मिलतीं, फसल पर लेकर, धूप में सुखा कर रख ली जाती हैं और महीनों बाद भी पका कर उनका स्वाद लिया जाता है। तरह-तरह के अंगूरों को सुखाकर उनकी किशमिशें, मुनक्के और अंजीरों को रखा जाता है।

इसी प्रकार विशेषकर हिमनिवासी (एस्किमो) लोग सदियों से बर्फ का उपयोग खाद्य-संरक्षण के लिए करते आये हैं। एशिया के कुछ देशों में भी ईसा से सदियों पूर्व बर्फ संग्रह करने के उल्लेख मिलते हैं। उनका बर्फ संग्रह खाद्य-संरक्षण के लिए इतना नहीं था जितना कि खाद्य को ठण्डा करने के लिए। इसके लिए वे हिमपात के दिनों में हिम एकत्र करके भूसे आदि में दबा रखते थे जो बहुत कम गलता हुआ महीनों बाद गर्मियों में शर्बत, पानी को ठण्डा करने के काम आता था।

मौसम इनकी मुट्ठी में है

आज तो आप सर्दियों में आम, गर्मियों में अमरूद, नवम्बर में लीची, जून में लुकाट, दिसम्बर में जामुन और जुलाई में गोभी प्राप्त करके मानो प्रकृति को यह चुनौती देते हैं कि मौसम हमारी मुट्ठी में है। सच तो यह है कि कैनिंग (canning) जैसे साधन के औद्योगिक पैमाने पर तेजी से बढ़ते हुए प्रचार ने अभाव-काल में सब्जियों के मनमाने दाम उठाने वालों को कठिन नियंत्रण में रखा है और साधारण तथा मूल्य के थोड़े ही अन्तर से मनचाही वस्तुएँ कैनिंग की हुई प्राप्त हो जाती हैं।

खाद्य-संरक्षण की वर्तमान विधियाँ

इस स्तम्भ में प्रमुख विधि—पाश्चुराइजेशन से प्रारम्भ करके कुछेक मुख्य विधियों के संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

पाश्चुराइजेशन—यह विधि इतनी जटिल है कि दो शब्दों में इसकी व्याख्या अपूर्ण ही रहेगी। सामान्यतः इस विधि का आशय यही समझा जाता है कि वस्तु को उच्च ताप तक गर्म करके कुछ समय उस ताप पर रहने भी दिया जाये ताकि हानिकारक जीवाणु समूल नष्ट हो जाएँ। औसतन यह ताप २१२ तक का अधिकांश वस्तुओं के लिए मान्य रखा जाता है। कुछेक वस्तुओं को सीलबन्द पात्र में रखकर भी गर्म किया जाता है। गर्म की हुई वस्तु उसी ताप पर सीलबन्द देने से जीवाणुओं द्वारा पुनराक्रान्त होने का भय नहीं रहता। यह विधि दूध के लिए अधिकतर काम में लायी जाती है। दूध को १४५°F से १६१°F तक गर्म करके उस ताप पर कम से कम १५ सेकण्ड तक रखा दिया जाता है। तत्पश्चात् उसे त्वरित प्रशीतन के लिए रेफ्रीजरेटर में रखकर ठण्डा कर दिया जाता है। पाश्चुराइजेशन द्वारा यह सम्भव हो सका है कि बड़े नगरों में लोग मन दूध ताजा हालत में ही बोतल बन्द घर-घर पहुँचाया जाये।

कैनिंग—इस विधि का प्रारम्भ लियन-चुनौती के विजेता एपर्ट ने किया। ऊपर कहा जा चुका है। उन दिनों तो इस के लिए शीशे की बोतलों का उपयोग

क्या पसन्द करेंगे? (ऊपर) **ताजा टमाटर यों ही ट्रेन में लादे जाने पर गन्तव्य स्थान तक पहुँचते-पहुँचते तादाद तथा गुणों में १०० के स्थान पर ४० प्रतिशत रह जाते हैं और उनमें भी आधे लगभग तो कूड़ादान की भेंट हो जाते हैं। दूसरी ओर (नीचे) रसायनों द्वारा संरक्षित, सीलबन्द टीनों में १०० के स्थान पर ८० प्रतिशत तो प्राप्त होते ही हैं।**

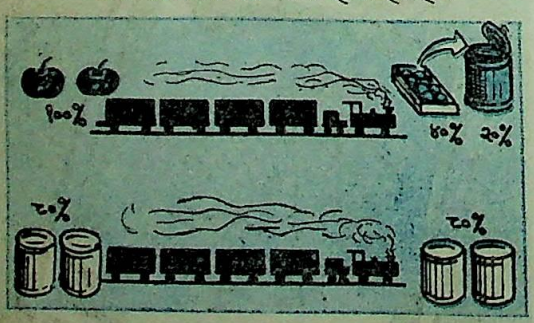

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता था किन्तु अधिक टूट-फूट होने के कारण क्रमशः अनेक प्रयोगों के पश्चात् टिन के डिब्बों को पसन्द किया जाने लगा। इन डिब्बों का केवल नाम ही टिन है, वरना ९९% तो ये स्टील के बनाये जाते हैं और १% में विद्युत्विच्छेदन द्वारा टिन की १/१०,००० इंच पतली सतह चढ़ायी जाती है ताकि वस्तु की रासायनिक क्रिया से स्टील अप्रभावित रहे। अमरीका में स्टील के स्थान पर अल्यूमीनियम के टिन बनाकर देखे गये किन्तु प्रयोगों में सफलता नहीं मिली क्योंकि वे स्टील जैसे मजबूत नहीं बन पाते थे। टिन धातु भी चाहे जितनी मात्रा में प्राप्य न होने के कारण अनेक वस्तुएँ ऐसी भी हैं जिन्हें रखने के डिब्बों में टिन के स्थान पर अन्य वस्तु की पुताई से काम चल जाता है। पुताई योग्य वह वस्तु अहानिकारक तथा स्वाद-गन्ध-हीन होना आवश्यक है। डिब्बों को उच्च ताप से एकदम प्रशीतन ताप पर लाया जाता है ताकि किसी भी प्रकार के जीवाणुओं को जीवित रहने का अवसर ही न मिले। ऐसे डिब्बे अधिकतर फल तथा सब्जियाँ सुरक्षित रखने में काम आते हैं।

रेफ्रीजरेशन—प्रशीतन द्वारा खाद्य-संरक्षण पर विस्तृत लेख विज्ञान-लोक, जुलाई ६२ के अंक में दिया जा चुका है। इस विधि में उच्च ताप पर खाद्य वस्तुओं को तप्त करने की अपेक्षा एक लाभ यह है कि वस्तुओं की पौष्टिकता और कुछेक विशेष तत्त्व नष्ट होने की सम्भावना नहीं रहती। व्यावसायिक पैमाने पर इस विधि का प्रयोग १८९० से आरम्भ हुआ है। आरम्भ में प्रशीतन के लिए अमोनिया गैस प्रयुक्त की जाती थी। अब उसके स्थान पर फ्रीयन (freon) गैस का तथा ठोस कार्बन डाइआक्साइड अर्थात् सूखी बर्फ का उपयोग किया जाता है।

अन्य विधियों में शक्कर, नमक और धुआँ देने का भी समावेश होता है। मुरब्बों के लिए शक्कर तथा मछली, माँस और आचारों के लिए नमक का उपयोग किया जाता है। माँस, मछली को तो नमक देने के अतिरिक्त धुआँ भी दिया जाता है। किसी भी लकड़ी का धुआँ दिया जा सकता है। धुआँ देने से सतह पर जो झिल्ली जम जाती है, वह प्रबल कीटाणुनाशक पायी जाती है।

विविध रसायन भी—अनेक रासायनिक घोल भी खाद्य-संरक्षण में प्रयुक्त किये जाते हैं। सर्वाधिक उपयोग एसेटिक अम्ल का किया जाता है और शेष में रह जाते हैं साइट्रिक अम्ल, लैक्ट्रिक अम्ल, टार्टरिक अम्ल, सल्फर डाइआक्साइड, सोडियम बेन्जोएट, कार्बन डाइआक्साइड तथा किण्वीकरण के लिए खमीर आदि।

आधुनिक विधियों में अवरक्त किरणों तथा गामा-किरणों का उपयोग किया जाता है। इन रेडियो सक्रिय किरणों के द्वारा खाद्य-संरक्षण काफी क्षमतायुक्त हो जाता है, तथापि इसके फलस्वरूप वस्तु के रूप-रंग, गंध और स्वाद में किंचित अन्तर भी आ जाता है। अतः इस विधि को लोकप्रिय होने में अभी और समय लगेगा। यह विधि अधिक खर्चीली इसलिए नहीं पड़ेगी कि आणुविक रीएक्टरों तथा बिजलीघरों द्वारा निष्कासित गैसें तथा अन्य पदार्थ इसमें ज्यों के त्यों काम आ सकेंगे। रसायनों के अतिरिक्त कुछेक एण्टीबायोटिक दवाएँ, माँस, मछली और फल-सब्जियों में इन्जेक्शन द्वारा प्रवेश कराकर भी उनका संरक्षण सम्पन्न कर लिया जाता है।

खाद्य-संरक्षण की ये विधियाँ यदि आविष्कृत न की जातीं तो वर्ष के केवल गिने-चुने दिनों में ही फसल विशेष की वस्तुएँ ही प्राप्त हो पातीं और शेष वर्ष भर उन वस्तुओं के दर्शन दुर्लभ ही रहते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नक्षत्रलोक का आगन्तुक

बिशुदास

मोकावा
यू. एस. एस. आर
७. ३. १९६३

प्रिय दास,

सात करोड़ वर्ष पूर्व नक्षत्रलोक के मानव पृथ्वी पर आये थे, इस सम्बन्ध में तुमने अपने पत्र में सन्देह प्रकट किया है। मैं यह जानता था कि तुम यही लिखोगे। सिर्फ तुम्हीं क्यों, प्रति दस हजार व्यक्ति में एक भी व्यक्ति इस बात पर विश्वास नहीं करेगा। तुम पढ़ चुके हो कि नक्षत्रलोक के मानवों की खोपड़ी प्राप्त हुई है; लेकिन मुझे सम्पूर्ण शरीर मिला है और वह भी अविकृत दशा में। यह ठीक है कि इसके लिए मुझे अनेक स्थानों में अकेले चक्कर काटने पड़े हैं। चुपचाप मैं उस शरीर को उठा लाया। काफी दिनों तक उसे लेकर प्रयोग करता रहा। मुझे विश्वास था कि कुछ ऐसा आविष्कार करूँगा जो मानव-कल्पना के बाहर की बात होगी। खेद है कि मैं कुछ भी नहीं कर सका। मेरी बहुत दिनों की साधना व्यर्थ गयी और मैंने उस मृत शरीर को सुरक्षित दशा में उठाकर रख दिया।

कुछ दिनों बाद इजवेस्तिया पत्रिका में एक समाचार पढ़कर मैं आनन्द से नाच उठा। उससे मुझे नया प्रकाश मिला, नयी जिन्दगी मिली। उक्तसमाचार से यह ज्ञात हुआ कि रूस के एक जैव-वैज्ञानिक तथा एक डाक्टर मिलकर पाँच करोड़ वर्ष पूर्व के एक मृत शरीर में प्राण संचार करने में सफल हुए हैं। तुम्हारे यहाँ के समाचार पत्रों में यह समाचार शायद नहीं छपा। अब मेरे मन में सवाल उठा कि अगर पाँच करोड़ वर्ष पूर्व के मृत देह में प्राण संचार हो सकता है तो सात करोड़ वर्ष पूर्व के मानव-शरीर को पुनः जीवित क्यों नहीं किया जा सकता! तुम्हें यह मालूम है कि मैं ज्योतिर्विद् हूँ, डाक्टरी का क भी नहीं जानता। महाकाश के यात्रियों की देह के सम्भाव्य परिवर्तनों के बारे में मुझे मामूली ज्ञान है अधिक कुछ नहीं जानता। मृत शरीर को जीवि करना मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात है। अपनी खोजों के बारे में मैंने अभी तक किसी को कुछ नहीं बताया। अब छिपाये रखना मेरे लिए सम्भव नहीं। सम्भव है, ऐसा अवसर फिर कभी मुझे प्राप्त ही न हो! अतः मैंने उस जैव-वैज्ञानिक को और डाक्टर को सारा रहस्य बता दिया। मुझे मालूम हो गया था कि गैर उनकी सहायता के मैं कुछ भी न कर सकूंगा। इस पत्र में मैं उन दोनों व्यक्तियों का नाम जान बूझकर नहीं लिख रहा। हाँ, सुविधा के लिए उनके काल्पनिक नाम क्रमशः प्रोफेसर मेजेनस्व और डाक्टर रयूमर रखे लेते हैं। मैंने उनसे वायदा करवा लिया है कि हमारी गतिविधि के बारे में हम तीनों के अलावा और कोई जानने न पाये। वे लोग इस शर्त पर राजी हो गये हैं।

काम शुरू हुआ। मेरे घर के बगल वाले मकान में चिकित्सा-सम्बन्धी अनेक उपकरण लाये गये। जिस पद्धति से उन लोगों ने पहले मृत शरीर में प्राण संचार किया था, उसी विधि से वे कार्य करने लगे।

मैं यह पहले ही बता चुका हूँ कि मुझे जो मृत शरीर प्राप्त हुआ था, वह पूर्ण रूप से अविकृत अवस्था में था। भूमि में दबे रहने पर भी उसे कोई नुकसान नहीं पहुँचा था, क्योंकि वह 'स्पेस सूट' किस्म की एक पोशाक पहने हुए था। पता नहीं, वह पोशाक किस सामग्री से बनी थी, जो सात करोड़ वर्षों के पश्चात् भी नष्ट नहीं हुई थी। मैंने उस पोशाक को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एसिड द्वारा और आग में भी जलाने का प्रयत्न किया पर उसका बाल भी बाँका नहीं हुआ। हम अपने आज के विज्ञान की प्रशंसा में फूले नहीं समाते परन्तु सात करोड़ वर्ष पूर्व के मानव जो वस्तु बना गये हैं, हम उसके रहस्य को भी अच्छी तरह समझ नहीं पाये कि आखिर वह किस चीज से बनायी गयी थी!

दिन पर दिन बीतते गये। हम तीनों का ज्ञान-भण्डार समाप्त होने को आया। सामने टेबुल पर मृत शरीर रखा हुआ था और हम तीनों निराश दृष्टि से उसकी ओर देख रहे थे। हम यही सोचते थे कि अब वह हिल उठेगा। उसी कल्पना से हमारे शरीर के रोयें खड़े हो जाते थे। परीक्षा में कितने दिन और रात बीत गये, इसका होश हमें नहीं था। सिर्फ आशा की क्षीण रेखा हमारे मन में थी, शेष सारा उत्साह समाप्त हो गया था। उन दोनों की हालत तो और भी खराब थी। जो कुछ भी संभव था, सभी तरह के वैज्ञानिक प्रयोग किये जा चुके थे, लेकिन सब निष्फल। आखिर हम उस प्रागैतिहासिक मानव में प्राणसंचार नहीं कर सके।

इतने दिनों तक खुला रहने के कारण उसके बदन का चपड़ा सूखकर पापड़ बन गया था; लिहाजा हमने उसके सम्पूर्ण अंग में प्लास्टर आफ पेरिस पोत दिया। कई अंगों में यंत्र द्वारा पोलिथीन ट्यूबें प्रवेश करायी गयीं।

मैंने अभी तक उसकी शकल के बारे में तुम्हें कुछ नहीं बताया। उसका कद साधारण मनुष्य से २/३ के लगभग था। सारा शरीर बहुत जीर्ण था। कद के हिसाब से सिर बड़ा था, और उस पर बाल नहीं थे; लगता था जैसे वह एक विराट बैल है। हाथ की अंगुलियाँ बहुत बड़ी और पाँव की बहुत छोटी थीं। ऐसा लगता था कि जैसे वह अपने पैरों के बल ठीक से खड़ा भी नहीं हो पाता होगा। आँखें बड़ी-बड़ी और नाक चपटी थी। मुँह भी काफी छोटा था। इन सबकी एक व्याख्या मैंने तैयार की है जो फिर बताऊँगा।

हाँ, तो मैं कह रहा था, नक्षत्रलोक के उस यात्री की कहानी। काफी दिनों से कुछ न कर पाने के कारण हम सब एक प्रकार से हताश से हो गये थे। मुझे तो कभी-कभी ऐसा अनुभव होता था कि व्यर्थ ही मैं परेशान हो रहा हूँ और इन दोनों को भी परेशान कर रहा हूँ। इतने दिन यों ही खराब किये। अन्त में एक दिन मैंने कहा—'आप लोगों का काफी वक्त मेरे कारण बर्बाद हो गया। उसकी कीमत मैं नहीं चुका सकता, परन्तु आजीवन आपका ऋणी बना रहूँगा।'

मेरी बात सुनकर वे दोनों अवाक् रह गये। उन्होंने कहा—'उलटे आपने तो हमें ऐसी सामग्री देकर खोज करने का इतना सुन्दर अवसर दिया है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। आपकी अपेक्षा हमें आपका कृतज्ञ होना चाहिए। यह ठीक है कि आर्थिक दृष्टि से हम कुछ नुकसान में रहेंगे, परन्तु ज्ञान की दृष्टि से हम जितने लाभान्वित होंगे, उसकी कीमत हम नहीं दे सकते।'

इस जवाब से मेरा मुँह बन्द हो गया। काम पुनः मन्थर गति से चलने लगा।

एक दिन मैं और प्रो. मेजेनस्व बाहर के कमरे

आदिमानव का सिर अवश्य गोरिल्ला के सिर तथा आज के मानव के सिर से छोटा था। आज के मानव की भाँति वह सिर सीधा उठाकर भी नहीं चलता था और सामने से उसका माथा चौड़ा, चपटा रहता था।

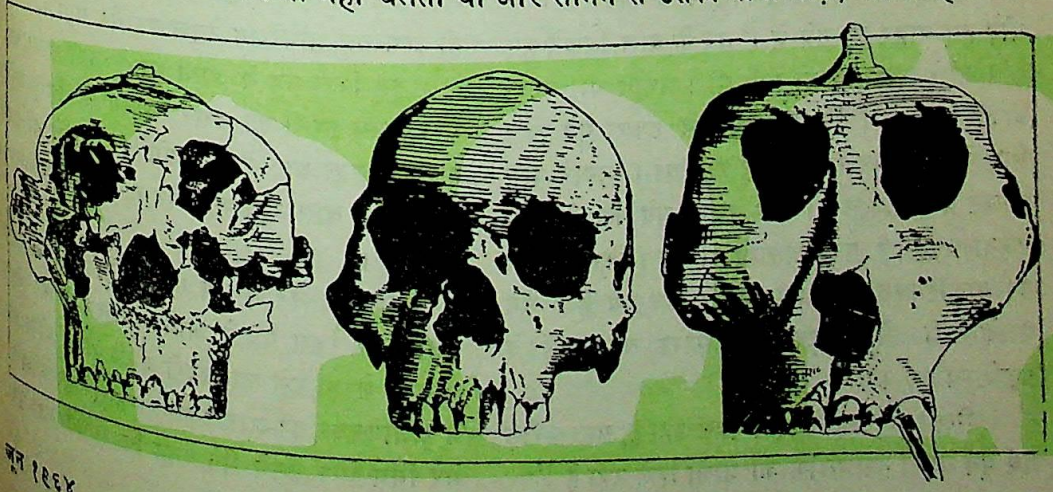

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

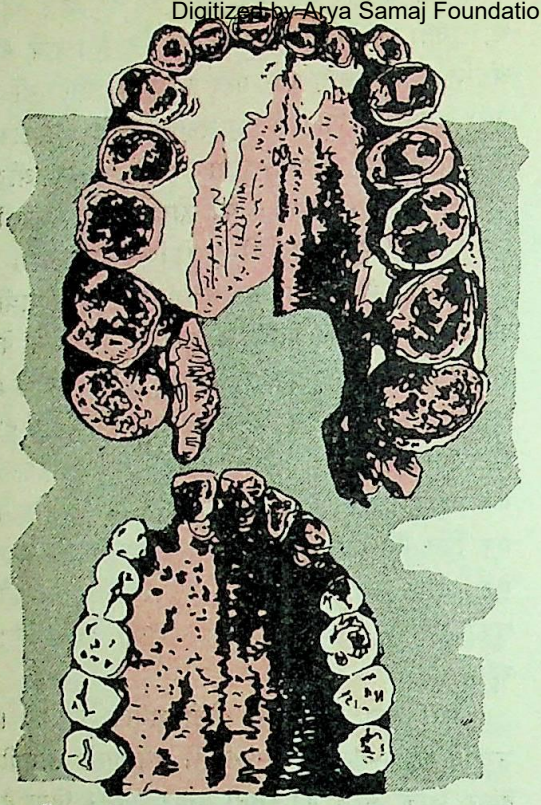

आदिमयुगी मानव के चबाने के दांतों का यह विशाल चौकठा आज के मनुष्य के चौकठे को कितना नन्हा दिखाता है ! चबाने वाले ये दाँत प्रतीति कराते हैं कि वह मानव शाकाहारी रहा होगा। इसके कर्तक और नुकीले दाँत तो आज के मनुष्य जैसे ही हैं। जन्तुओं जैसे चीरने-फाड़ने के दाँतों के अभाव की पूर्ति उक्त आदिमानव ने पत्थर के हथियार बनाकर की थी

में बैठे चाय पी रहे थे। गम्भीर चिन्तन में हम ऐसे डूबे हुए थे कि हमें अपने अस्तित्व का ज्ञान ही नहीं था। चाय ठण्डी हो चुकी थी। अचानक डा. रयूमर की घबराहट ने हमें चौंका दिया। वे लेबोरेटरी से दौड़े हुए बाहर आ गये थे। सर के बाल बिखरे हुए थे। आँखें उद्‌भ्रान्त हो गयी थीं। लगता था, जल्द-बाजी के कारण किसी चौखट से टकरा गये हों। सिर के एक ओर से खून बह रहा था। हमारे पास आकर वे हाँफने लगे। हम समझ गये कि वे कुछ कहना चाहते हैं, पर कह नहीं पा रहे। किसी घटना की आकस्मिकता के कारण वे गूँगे बन गये हैं। मैंने उनके कंधे को पकड़कर झकझोरा तब कहीं वे प्रकृतिस्थ हुए।

चीखते हुए उन्होंने कहा, 'हिल रहा है, सात करोड़ वर्ष पूर्व वाला नक्षत्रलोक का प्राणी हिल रहा है !'

वे शायद और भी कुछ कहने जा रहे थे, [illegible] यहाँ कौन सुनता है ? दौड़कर हम लेबोरेटरी [illegible] पहुँचे। वहाँ जो दृश्य देखा—वह चौंका देने वाला ही था। अगर हमारा हृदय कमजोर होता तो [illegible] दिन हमारी मौत निश्चित थी।

उस शरीर के लटकते हुए दोनों हाथ सिर [illegible] पास आ गये थे। मैं दौड़कर मूवी कैमरा ले आया। आरम्भ से ही फोटो ले लेनी चाहिए। उसके होंठ काँप रहे थे। अरे यह क्या ? यह तो आखें भी खोल रहा है ! नहीं, नहीं मुझे भ्रम हो गया है। लेकिन अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। सात करोड़ [illegible] का प्राचीन मानव धीरे-धीरे आँखें खोल रहा था। उसकी आँखें एक बार कमरे के चारों ओर घूम गयीं। लगता था, वह सब कुछ गौर से देख रहा है। डा. रयूमर उसके पास जाकर हाथ के इशारे से [illegible] कुछ समझाने लगे पर कुछ नहीं समझ सका। [illegible] अपने आपे में नहीं रहा। मेरा अन्तर्मन सात करोड़ वर्ष पीछे चला गया जब यह मानव अपने ग्रह से पृथ्वी पर आया होगा। सच पूछो तो मैं प्रत्यक्ष देखते हुए भी इस दृश्य पर विश्वास नहीं कर पा रहा था। क्या यह संभव है ? जिसके अस्तित्व के सम्बन्ध में हम कल्पना तक नहीं कर सकते, वह व्यक्ति आज हमारी आँखों के सामने जीवित दशा में मौजूद है। न जाने इस प्रकार के कितने विचार मन में आये और गये !

अचानक झन-झन का शब्द सुनकर हम सब चौंक उठे। वह व्यक्ति धीरे-धीरे खड़ा होने का प्रयत्न कर रहा था। उसके धक्के से टेबुल के बगल में रखे शीशे का एक बर्तन गिर कर टूट गया था, उसी की वह आवाज थी। डाक्टर ने तुरन्त आगे बढ़कर सहारा देते हुए उसे खड़े होने में मदद दी। दूसरे ही क्षण वह आपरेशन टेबुल पर बैठ गया।

वह किस ग्रह से आया था ? क्यों आया था ? मैं इन सब प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए अधीर हुआ जा रहा था; लेकिन कोई चारा नहीं था। वह न तो कुछ बोल रहा था और न हमारी बात समझ रहा था।

अचानक मेरे मन में एक नवीन विचार उत्पन्न हुआ। यह जिस ग्रह से आया था कम से कम उस सम्बन्ध में तो इसे जानकारी होगी ही ! दौड़ा हुआ मैं अजायबघर की ओर रवाना हुआ। वहाँ के क्यूरेटर मेरे मित्र थे। उनसे मैंने कहा कि आपके यहाँ पुरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल के कुछ उल्कापिण्ड होंगे। कृपया उन्हें मुझे दे दीजिए। खासकर उन उल्कापिण्डों को दीजिये जो काफी पुराने हों। मुझे इस कदर परेशान देखकर ग्यूरेटर भी अवाक् रह गया। मैं हमेशा हर काम बहुत ही शान्तचित्त से करता हूँ, यह वह जानता था। अचानक मुझमें इस प्रकार का परिवर्तन देखकर उसने कहा—'ये सामान सरकारी है बाहर ले जाने के लिए हम नहीं देते। लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि तुम कुछ खोज कर रहे हो जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।'

मैंने जल्दी से सिर हिला दिया, क्योंकि मेरा मन लेबोरेटरी की ओर था।

'खैर, मैं तुम्हें सब दे रहा हूँ। आज अब अजायबघर बन्द करने का समय हो गया है। कल सुबह खुलते ही पहुँचा जाना। यह मैं अपनी जिम्मेदारी पर तुम्हें दे रहा हूँ।'

दूसरे दिन वापस करने की शर्त पर मैं उल्कापिण्डों को ले आया। प्रत्येक उल्कापिण्ड पर उसका नाम, कहाँ, कब प्राप्त हुआ था, यह सब बातें अंकित थीं। उन सबों को क्रम से सजा दिया। इसके बाद उन्हें उक्त मानव के पास ले आया। हाथ के इशारे से मैं यह समझाने लगा कि हम यह जानना चाहते हैं कि तुम किस ग्रह से यहाँ आये हो!

पहले पहल तो वह पत्थर की भाँति निश्चल बैठा रहा। कुछ भी नहीं बोला। कई बार इशारा करने के बाद उसने मेरा मतलब समझा। इसके बाद उसकी आँखें उल्कापिण्डों पर जम गयीं। इधर उसके रंग-ढंग देखकर प्रसन्नता से मेरे पाँव काँपने लगे थे। खड़ा रहना कठिन हो गया। अगर प्रो. मेजेनस्व मुझे थाम न लेते तो मैं जरूर गिर पड़ता।

अरे यह क्या? उसका दाहिना हाथ धीरे-धीरे उल्कापिण्डों की ओर बढ़ रहा है! क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ? साँस रोककर हम उसकी ओर देखते रहे। एक उल्कापिण्ड की ओर अँगली रखने के बाद वह चुपचाप पुनः अपनी जगह लौट गया।

पता नहीं, अचानक उसे क्या हो गया? वह तड़फड़ाने लगा। समझते देर नहीं लगी कि उसे कहीं कुछ कष्ट हो रहा है। हम लोगों ने मिलकर उसे कोने में मदद दी। धीरे-धीरे उसकी आँखें बन्द हो गयीं। जिस यंत्र की सहायता से डाक्टर ने उसमें प्राण संचार किया था, उसे वे उसके पास ले आये। उल्कापिण्डों को ढकेलकर फेंक दिया गया। वे सब कहीं गिर गये, उस वक्त इसका होश हमें नहीं था।

हम तीनों उस मानव के ऊपर झुके खड़े थे और हर क्षण यही अनुभव कर रहे थे कि अब वह जाग उठेगा, अब आँखें खोलेगा; लेकिन हमारी सारी आशाएँ व्यर्थ गयीं। हम हार गये। पाँच घण्टे तक हम खड़े-खड़े उसकी ओर एकटक देखते रहे। धीरे-धीरे मेरी हालत ऐसी हो गयी कि खड़ा रहना मुश्किल हो गया। इधर सभी पिण्ड गिर जाने के कारण आपस में मिल गये थे। यह पता लगाना मुश्किल हो गया कि आखिर इनमें कौन से उल्कापिण्ड की ओर उसने इशारा किया था। निराशा की एक गहरी साँस मेरे मुँह से निकल गयी। वह मानव फिर नहीं जागा।

इसके बाद हम बराबर प्रयत्न करते रहे, लेकिन उसे पुनर्जीवित नहीं कर सके। वह हमेशा के लिए सो गया था। सात करोड़ वर्ष बाद एक बार उसने जागकर केवल यही देखा कि पृथ्वी कितनी बदल गयी है!

डाक्टर फिर भी निराश नहीं हुआ था। उसे विश्वास था कि प्रयत्न करने पर वह उसे पुनः जगा सकता है। लेकिन मुझे बराबर यही लगता था कि अब वह नहीं जागेगा। डाक्टर को मैंने रोका नहीं। वे अपना काम करते रहे। आज तक मैंने यह रहस्य किसी को नहीं बताया। तीन प्रत्यक्षदर्शी और चौथे तुम हो जिसे यह पत्र लिख रहा हूँ। मेरा तुमसे अनुरोध है कि जब तक तुम्हें मैं न बताऊँ, मेरी मृत्यु तक यह रहस्य किसी को मत बताना।

कुछ दिनों बाद मैं कलकत्ता आऊँगा। वहाँ के साइन्स कालेज में दो लेक्चर देने हैं तब तुम्हें फिल्म दिखाऊँगा। मैं नहीं जानता कि अब संसार में ऐसा सुयोग और किसी को प्राप्त होगा या नहीं। कम से कम तब तक के लिए धैर्य धारण किये रहो।

आशा है, प्रसन्न होगे।

भवदीय

प्रो. फेडिनस्की

उपसंहार

आज से दो माह पहले अध्यापक फेडिनस्की का स्वर्गवास हो गया है। मुझे यह नहीं मालूम हो सका कि नक्षत्रलोक के यात्री से पुनः उनकी मुलाकात हुई या नहीं। चूँकि कोई बाधा नहीं है, इस पत्र को प्रकाशित करवा रहा हूँ। मुझे यह भी नहीं मालूम कि प्रो. मेजेनस्व और डाक्टर ग्यूमर उसे जीवित करने के लिए अब भी कोई प्रयत्न कर रहे हैं या नहीं! ●

अनुवादक—सुभाष मुखर्जी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीज

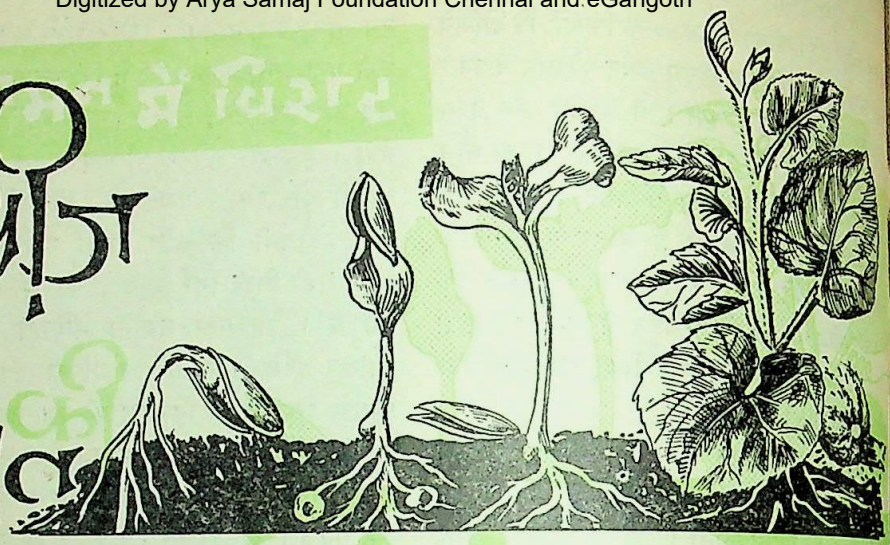

राजेन्द्रकुमार

आधे से भी अधिक वनस्पति-जगत बीजों के द्वारा ही फलता-फूलता है। बीज-बीज की संरचना और वितरण, प्रसारण के विविध ढंग सिद्ध करते हैं कि प्रकृति का प्रत्येक विधान कितना उत्तम है। यह देखना उसका काम है कि कौन-सा बीज, किस प्रकार उचित स्थान, वातावरण और समय पर अंकुरित, पल्लवित होता है और फलता है। प्रत्येक बीज अपने में समूचा वृक्ष सहेजे हुए रहता है।

बीज के लिए आवश्यक है

बीज चाहे छोटे से छोटा हो अथवा बड़े से बड़ा, उसके लिए तीन वस्तुएँ होना अनिवार्य है—१. सूक्ष्माकार पौधा जिसे 'अण्ड' अथवा 'भ्रूण' कहेंगे, २. उस भ्रूण के लिए संचित भोजन तथा ३. दोनों के लिए रक्षा-वरण। यदि भ्रूण जीवितावस्था में नहीं है तो बीज निष्प्राण, निष्क्रिय पड़ा रहेगा। बाग-बगीचों के पौधों के बीज प्रायः एक वर्ष से अधिक नहीं टिकते और बोने योग्य नहीं रहते। अपवादस्वरूप कुछ बीज ऐसे भी प्राप्त हुए हैं जो १०० वर्ष के पश्चात् भी बोने पर अंकुरित हो उठे!

रचना-रचना में भिन्नता

यद्यपि बीजों की रचना में सभी के लि उपरोक्त सिद्धान्त काम करता है, तथापि रचनाक्रम में बहुत अन्तर रहता है। यह सभी को ज्ञात है कि प्रारम्भिक वर्गीकरण में पेड़-पौधे स्पष्ट दो वर्गों में विभाजित हैं— एकबीज-पत्री (monocotyledon) तथा द्विबीज-पत्री (dicotyledon)। निम्न उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा।

किसी भी अनाज का (उदाहरणार्थ मक्का) दाना एकबीज-पत्री बीज का नमूना होता है। उसमें भ्रूण-भाग कम-से-कम स्थान घेरता है और शेष भाग में संचित भोजन पर वह अपनी शिशु अवस्था में आधारित रहता है। अंकुरित होने पर प्रारम्भ केवल एक ही पत्ती होती है जिस पर से इसे एकबीज-पत्री नाम दिया गया है। वह पत्ती अन्त तक इसका साथ नहीं छोड़ती। इसी पत्ती से नवपल्लवित अंकुर अपना पोषण प्राप्त करता है।

दूसरा उदाहरण सेम वर्ग के बीज का है। इसमें बीजपोषक भोजन दो गदरायी पत्तियों में संचित रहता है। इसीलिए इस वर्ग को द्विबीज-पत्री कहा गया है। इसमें भ्रूण सम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीज को घेरे रहता है। बीज अंकुरित होने पर जुड़े हुए दोनों पत्रों को भेदकर निकल आता है और संचित भोजन समाप्त हुए बाद नवांकुरित पौधा उन पत्रों को बाहर खींच ला कर उनका त्याग कर देता है।

बड़े का छोटा, छोटे का बड़ा

यह आवश्यक नहीं कि बड़े बीज का पौधा बड़ा और छोटे का सदैव छोटा ही हो। इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। स्वीट पी (sweet pea) के बीज पिट्यूनिआ (petunia) के बीजों से काफी बड़े होते हैं फिर भी पौधा तो पिट्यूनिआ का ही बड़ा होता है। इसके विपरीत, अखरोट का फूल मटर के फूल से बहुत छोटा है किन्तु उसका बीज मटर के बीज से बड़ा होता है। एक ओर आलू को देखिए, जिसे भूमि में सावुत गाड़कर उससे आलू उपजाया जाता है और दूसरी ओर कुम्हड़ा या तरबूज देखिए जो नन्हें बीजों से ही १०-२० सेर वजन का एक-एक उतरता है। इसी प्रकार किसी पुष्पोद्यान में देखेंगे तो ज्ञात होगा कि प्रायः बड़े-बड़े फूलों के बीज सूक्ष्म बीजाणु ही होते हैं। संसार का सबसे बड़ा फूल रेफ्लीशिया (*Rafflesia*)—१०-२० फुट व्यास का वह अति विशाल फूल—केवल भुनगे सरीखे बीजों से उत्पन्न होता है।

बीजों का छितरना पूर्णतः वैज्ञानिक

प्रकृति ने बीजों की रचना में जितनी विलक्षणता दर्शायी है उतनी ही विलक्षणता उनके छितराने की वैज्ञानिकता में प्रदर्शित की है। सामान्य रूप से तो यही जचेगा कि जहाँ बीज पककर तैयार हुआ, वहीं पेड़-पौधे के निकट उसे बिखर जाना चाहिए किन्तु सामान्यतः ऐसा होता नहीं। यदि इसी प्रकार बीजों का ढेर उनके पौधों के निकट ही होता रहे तो उनमें दस प्रतिशत भी फल-फूल न सकेंगे। एक फसल पक चुकने पर कृषक आगामी फसल के लिए नये बीज एकत्र कर लेता है और उन्हीं में से कुछेक दूर-देशावर बेच दिये जाने पर वे ही बीज दूसरी फसल पर एक-दूसरे से सैकड़ों, हजारों मील दूर फलते-फूलते हैं। केवल इतने पर ही सृष्टि भर के फूल-पौधे अपने प्रसार के लिए निर्भर नहीं रह सकते। अतः प्रकृति ने उन्हें ऐसे-ऐसे साधनों से सम्पन्न बनाया है और वे ऐसी-ऐसी विधियाँ अपनाते हैं कि दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। पवन की पाँखों पर उतराने वाले बीज लाखों वर्षों से वायुयान और पैराशूट, सागर की लहरों पर यात्रा करने वाले बीज (नारियल जैसे) जलपोत और पटाख से आवाज करने वाले फूल गोला फेंकने के यंत्र-संयंत्रों का प्रयोग करते आये हैं,-जिनके आविष्कार पर आज का मानव गर्व कर रहा है। ऐसी कुछेक विलक्षणताओं की संक्षिप्त झाँकियाँ निम्न भाँति हैं।

बन्दरों के लिए खाने की घण्टी—सुपारी जैसे फलों के ये वृक्ष अधिकतर अमरीकी

जमइका की सम्पत्ति, नारियल जैसे फल (Seychelles) **के बीज का यह भीतरी दृश्य है जो स्पष्ट दो भागों में विभाजित है। यह फल प्रायः ही २० सेर वजन का बैठता है और इसका गूदा सूखने पर वानस्पतिक हाथी दाँत जैसा कठोर बन जाता है**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उष्ण प्रदेशों में पाये जाते हैं। जब ये पककर तैयार होते हैं तब पटाख की आवाज के साथ फूटते हैं जिसके फलस्वरूप इनके पके बीज दूर-दूर जा उड़ते हैं। इनकी आवाज बन्दरों की इतनी पहचानी होती है कि वे लपककर आ जाते हैं और बड़े स्वाद से गिरी खाते हैं और बीजों को बखेरते हैं।

गोला फेंकते हैं—गोला फेंकने का युद्धास्त्र केटापुल्ट प्राचीन रोमन सैनिकों द्वारा आविष्कृत यंत्र ऐसा था जिसका छोटा स्वरूप प्रायः सर्कस में वहाँ दिखता है जहाँ एक ढलवाँ तख्ते पर नीचे खड़े हुए खिलाड़ी दूसरी ओर के ऊँचे सिरे पर दूसरे खिलाड़ी के कूदकर गिरने से हवा में उछलते हैं। वनस्पति-जगत में ऐसे फूल भी हैं जो अपनी टहनियों के सूखे बीज इसी प्रकार मानो स्प्रिंग के जोर से उछालते हैं। उनकी टहनी पर जब भी कोई पक्षी बैठता है, टहनी झुक जाती है। कुछ बीज खा लेने के पश्चात् ज्यों ही वह पक्षी उड़ता है उसकी झोक के फलस्वरूप स्प्रिंग जैसे झटके से वह टहनी बाकी के बीज हवा में उछाल देती है।

भूमि-प्रवेश करते हैं—कुछ बीज ऐसे होते हैं जो दूसरों की पीठ पर सवार होकर भूमि में प्रवेश पा जाते हैं। उन्हें लादकर ले जाने वाली चींटियाँ होती हैं जो बीजों पर उठे हुए उभार से अपना भोजन प्राप्त करती हैं और अधिकांश बीज अपने बिलों में बिखेर देती हैं। इन बीजों को वे चींटियाँ बड़े चाव से अपने बिल में एकत्र भी करती रहती हैं और उन्हीं में से अनुकूल जलवायु पाकर अंकुरित हो उठते हैं।

←पवन की पांखों पर उतराते, छितराते अन्य बीज (ऊपर से नीचे) अंजीर-परिवार के बीज, तुरही आकार के पेट्यूनिया (Petunia) पौधे के बीज, पीत-पुष्पी डेन्डेलियन (Dandelion) के बीज, अमरीकी पौधे काटनवुड (Cottonwood) के बीज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यान की पाँख और पैराशूट—अंजीर वर्ग का सिकेमोर (*Sycamore*) नामक वृक्ष अपने बीजों को दो-दो पत्तियों की पाँखों के सहारे इस प्रकार उछालता है कि वे वायुयान के प्रापेलर की भाँति गति करते हुए बीज को काफी दूर-दूर की यात्रा करा देते हैं। साथ-साथ एक विशेषता यह भी प्रदर्शित करते हैं कि भूमि पर उतरते समय वे चक्राकार गति से उतरते हैं ताकि भूमि यदि संयोगवश कुछ नर्म है तो वे उस बीज को भूमि में तनिक गाड़ भी दें।

पैराशूट जैसी कलाबाजी देखने के लिए डेण्डेलियन (*Dandelion*), मिल्कवीड (*Milkweed*), क्लिमेटिस (*Clematis*) तथा कपास के डोडे को देखना होगा। पैराशूट की रेशमी डोरियों जैसे बारीक धागों तथा कहीं-कहीं छतरी जैसे अपने अंगों की सहायता से इनके बीज हवा ही हवा में सैकड़ों मील की यात्राएँ तय कर लेते हैं। किसी-किसी पौधे के ऐसे बीज तो एक साथ हजार मील दूर भी पहुँचते देखे गये हैं।

नमक बुरकते हैं, खिड़की खोलते हैं—कई पौधे बीज पक जाने पर बीजकोष का ढक्कन खोल देते हैं। पोस्त जैसे पौधे के डोडे बीज छितराने के समय डोडे को तनिक ऊँचा उठा कर बीजों को ऐसे टपका देते हैं जैसे नमकदानी से नमक बुरक दिया हो। इसी श्रेणी में रोज आफ जैरिको (*Rose of Jericho*) नामक पौधा है जो अरब, मिस्र और सीरिया के रेगिस्तानों में पाया जाता है। मौसम में गर्मी, बढ़ते ही यह पौधा एक गेंद की शक्ल में बन जाता है और हवा में उड़ता जाता है और

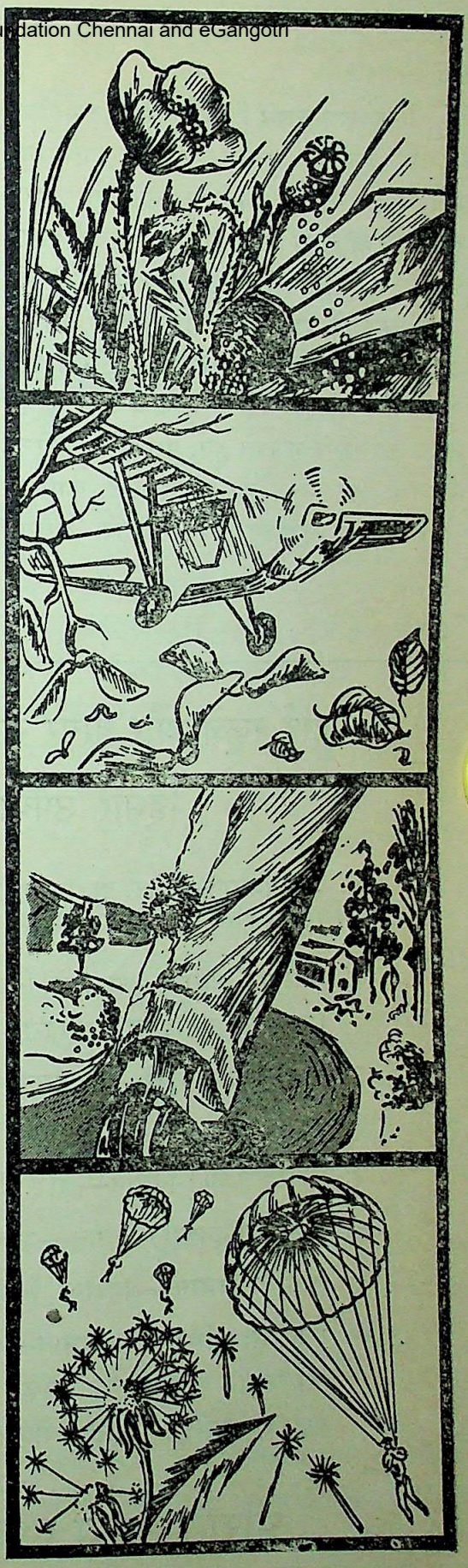

प्रकृति बीज यों छितराती है—(ऊपर से नीचे)→ नमकदानी से मानो नमक की चुटकी बुरका दी, वायुयान जैसी उड़ान भरते हुए, आपके पेण्ट, पाजामे का ही लिफ्ट लेते हुए, पैराशूट से उतरते हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ भी जलवायु अनुकूल मिली वहीं जम जाता है।

लिपटकर चलते हैं—जिस प्रकार मनुष्य ने परिवहन के लिए वायुयान, जलयान जैसे वाहन तैयार किये हैं, वैसे ही ऊपर वर्णित हवा तथा जल की यात्रा करने वाले बीजों के अतिरिक्त कुछ बीज ऐसे भी हैं जो जन्तुओं के रोयेंदार शरीर से तथा हमारे-आपके कपड़ों, जूतों से लिपटकर भूमि-यात्रा करते हैं। गोखरू की तरह के वे बीज खेतों और जंगलों से गुजरते हुए, पशुओं के शरीर से तथा सैर करते हुए हमारे पेण्ट, कमीज आदि से उलझकर चिपके-चिपके चलते हैं और दूर-दूर बिखर जाते हैं।

ऐसे तथा अन्य अनेक प्रकारों द्वारा छितराये हुए बीज यह भी जानते हैं कि जड़ पकड़ने के लिए उन्हें किस प्रकार से भूमि पर टिकना है। यह नहीं कि आड़े-तिरछे, जैसे भी गिरे, जम गये। कुछ समय के लिए ऐसा बीज भले ही उलटा-तिरछा अटका रहे, उसके श्वेतसार-कोष पौधे की विलक्षण आन्तरिक-क्रिया से अपने को सही स्थिति में ले आयेंगे और पौधा यथासमय सीधी अवस्था में स्वतः आ जायेगा।

प्रकृति के छोटे-से-छोटे विधान में भी बड़ी से बड़ी विलक्षणता है, इसमें सन्देह नहीं।

हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए
हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. **जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

२. **वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

३. **प्रारम्भिक भौतिकी**—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३·५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

४. **प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

५. **प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

६. **सामान्य विज्ञान**—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६·२५

७. **सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५·००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ९ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत का प्रथम परमाणु उद्योग

एटमिक एनर्जी एस्टाब्लिशमेन्ट ट्रोम्बे

एस. पी. मिश्र

दादर रेलवे स्टेशन से बाहर आने पर स्लेटी रंग की बसों की कतार देखकर, मेरी बम्बई से अपरिचय की समस्या जाती रही; वरना बम्बई जैसी जगह में किसी से यह पूछ कर ज्ञात करना कि एटमिक एनर्जी की बसें कहाँ से मिलती हैं, आसान न था—वह भी आफिस के समय में ! उन सभी स्लेटी रंग की बसों पर Atomic Energy अंकित था। मुझको समझते देर न लगी कि वे ही बसें एटमिक एनर्जी की बसें हैं। अत: एक बस में मैं भी सवार हुआ और ट्रोम्बे की ओर चल दिया।

पूर्व यात्रा की थकान के कारण न जाने मुझे कब नींद आ गयी। आँख खुली तो अपने को उस जगह पाया जहाँ सड़क के दोनों ओर तेल की हजारों बड़ी-बड़ी टंकियाँ थीं। क्षण भर को ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं टंकियों के देश में आ गया हूँ। बगल में बैठे सज्जन से पूछा तो मालूम हुआ कि ये बर्माशैल और एस्सो कम्पनियों के बाम्बे-स्थित तेलशोधक कारखाने हैं। आगे चलकर लगभग दस मिनट बाद हमारी बस रुक गयी। एटमिक एनर्जी एस्टाब्लिशमेन्ट का प्रवेश द्वार आ गया था। चेकिंग के लिए बस रुकी थी।

पहाड़ी की ओर ध्यान से देखा। बगल में ही एक काला बोर्ड था। उस पर सूचना अंकित थी कि यदि आप १६ वर्ष से कम उम्र के हैं तो आपका अन्दर जाना वर्जित है; यदि आपके साथ कोई कैमरा है तो उसे प्रवेशद्वार पर ही छोड़ जाएँ। गर्भवती स्त्रियों को भी अन्दर जाने की अनुमति नहीं है। एक फर्लांग चलकर कुछ और इमारतें दिखायी देती हैं। वे इमारतें सड़क की बायीं तरफ छोटी-छोटी पहाड़ियों के मध्य स्थित हैं और दायीं ओर अरब सागर लहरा रहा है। इस स्थान का नाम साउथ साइट है। यदि आप दो फर्लांग और आगे बढ़ें तो उन इमारतों को पायेंगे, जिनके विषय में जानने के लिए आप उत्सुक हैं। उस स्थान का नाम नार्थ-साइट रखा गया है। यहीं पर कनाडा इण्डिया रिएक्टर, जरलीना, प्रोजेक्ट फॉनिक्स, मॉडयूलेटर लेबोरेटरी आदि के भवन हैं। इस ओर चलने से पूर्व आप साउथ-साइट की ओर चलें तो ठीक रहेगा। इस स्थान पर रेडियो केमिस्ट्री एण्ड आइसोटोप डिवीजन, इलेक्टानिक्स ग्रुप, अप्सरा रिएक्टर, यूरेनियम मेटल और फ्युएल एलिमेन्ट फ्रेब्रिकेशन प्लांटस आदि के भवन अपनी-अपनी विशेष शैलियों में बने हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेडियोकेमिस्ट्री एण्ड आइसोटोप डिवीजन

साउथ-साइट में घुसते ही आपको रेडियोकेमिस्ट्री एण्ड आइसोटोप डिवीजन का भवन मिलेगा। आफिस में पहुँचकर अपना परिचय देते हुए गेटपास दिखाइए और कहिए कि आप डिवीजन देखना चाहते हैं। वहाँ नियुक्त कोई भी सज्जन आपको साथ लेकर डिवीजन दिखाने निकल पड़ेंगे।

साथ वाले सज्जन जैसा कहें वैसा करते चलिए। कोई शंका हो तो उनसे समाधान कर सकते हैं। कुछ आगे चलकर अल्फा-सक्रिय लेबोरेटरी है। उसमें प्रवेश करने के पूर्व एक अवरोधक संकेत मिलेगा। उसके अनुसार वहाँ से आपको अपने जूतों के ऊपर कवर लगाना होगा और हाथ धोकर ही अन्दर जाना पड़ेगा। यह विधि प्रत्येक रेडियो सक्रिय लेबोरेटरी में जाने के पूर्व आवश्यक है। इसी अल्फा-सक्रिय लेबोरेटरी में प्रोजेक्ट-फॉनिक्स के हेतु शोध-कार्य हो रहे हैं। इस शोधकार्य के अन्तर्गत यूरेनियम के विखण्डन द्वारा प्राप्त अनेक तत्त्वों में से प्लूटोनियम, जो रिएक्टर ईंधन है, अलग करके भविष्य की परमाणु-भट्ठियों में उसका उपयोग करने के बारे में सोचा जा रहा है। साथ ही मोनाजाइट के बाहुल्य को ध्यान में रखकर थोरियम को यूरेनियम-२३३ में परिणत करने की दिशा में भी सोचा जा रहा है। अल्फा-सक्रिय लेबोरेटरी देखने के पश्चात् आपको उसी स्थान पर लौटना होगा जहाँ आपने जूतों पर कवर चढ़ाये थे। वहाँ पर बगल में एक एलेक्ट्रानिक मशीन खड़ी होगी जिसमें हरे-लाल बल्ब जल रहे होंगे। जूतों से कवर उतारकर बाहर जाने के पूर्व उस मशीन द्वारा यह चैक किया जायेगा कि कहीं आपके

नार्थ-साइट का आंशिक दृश्य जिसमें इंजीनियरिंग हाल्स की कतार एवं माँडयूलेटर लेबोरेटरी के अपूर्ण भवन दिखायी दे रहे हैं

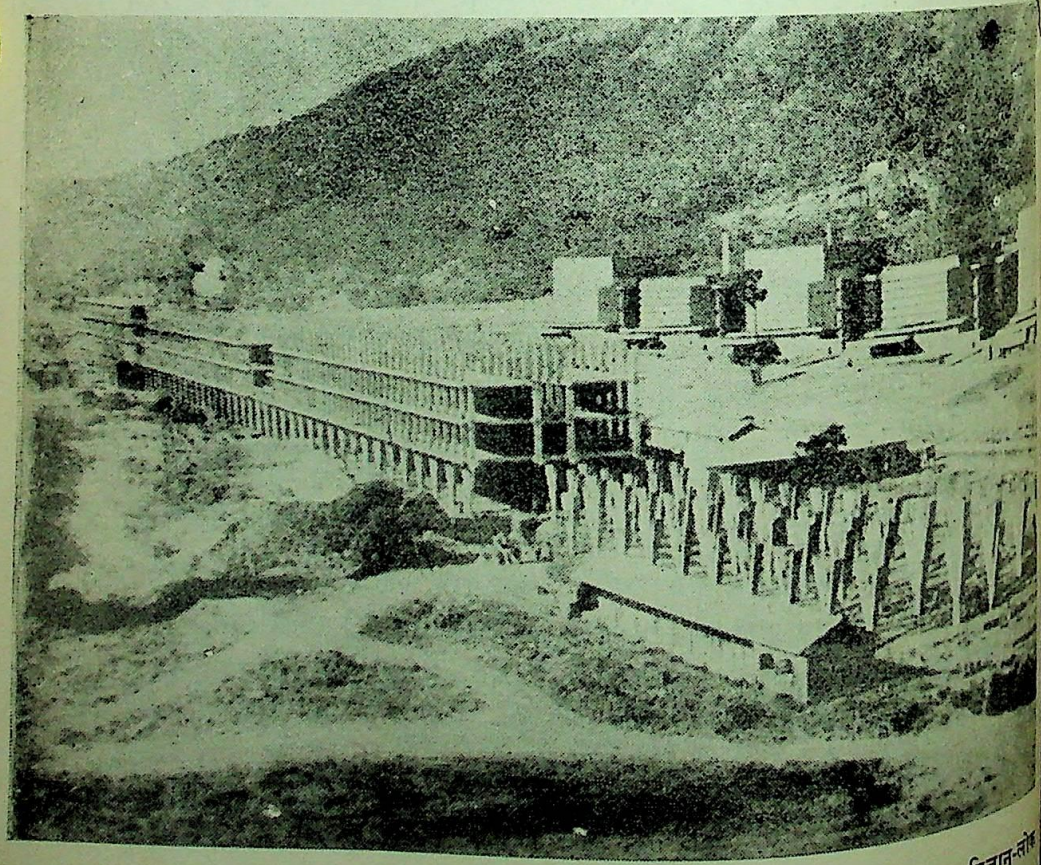

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हाथ पाँवों में कोई रेडियोसक्रिय वस्तु तो नहीं लग गयी।

आगे चलने पर रेडियो आइसोटोप्स तैयार करने का विभाग आयेगा। यहाँ किसी भी कक्ष में जाने के पूर्व जूतों पर कवर चढ़ाना तथा अन्य बातें भी ध्यान में रखना आवश्यक है। अप्सरा, कनाडा इंडिया रिएक्टर, आदि में आवश्यकतानुसार विकिरण के उपरान्त इन्हीं कक्षों में रेडियो आइसोटोप्स तैयार किये जाते हैं। इन कक्षों की दूसरी ओर वड़े कक्ष में कार्बन-१४ के अनेक कार्बनिक यौगिक बनाने की प्रयोगशाला है।

एलेक्ट्रानिक्स ग्रुप

रेडियोकेमिस्ट्री एण्ड आइसोटोप डिवीजन के बगल का भवन एलेक्ट्रानिक्स ग्रुप का है। इस ग्रुप में दो डिवीजन हैं—एलेक्ट्रानिक्स डिवीजन और हेल्थ फिजिक्स डिवीजन। एलेक्ट्रानिक्स डिवीजन हर तरह के एलेक्ट्रानिक उपकरणों का उत्पादन करके विभिन्न संस्थाओं एवं औद्योगिक प्रतिष्ठानों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। इसकी कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए एलेक्ट्रानिक्स डिवीजन को तीन सेक्शनों में विभाजित किया गया है—प्रोडक्शन सेक्शन, रिसर्च एण्ड डेवेलपमेन्ट सेक्शन और रिएक्टर कन्ट्रोल सेक्शन। प्रोडक्शन सेक्शन विशिष्ट प्रकार के उपकरणों का उत्पादन करता है। १९६३ में ३३ प्रकार के विभिन्न उपकरणों का उत्पादन हुआ था जिनकी संख्या १०८० थी और जिनमें लगभग १२ लाख रुपये लगे थे। यदि उन उपकरणों को विदेशों से मंगाया गया होता तो उन पर लगभग ३२ लाख रुपयों की विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती। रेडियोसक्रियता के माप आदि में आवश्यक उपकरणों के विकास एवं उत्पादन हेतु रिसर्च एण्ड डेवेलपमेन्ट सेक्शन कार्य करता है। इस सेक्शन ने एक हन्ड्रेड-पैनल एनलाइजर का

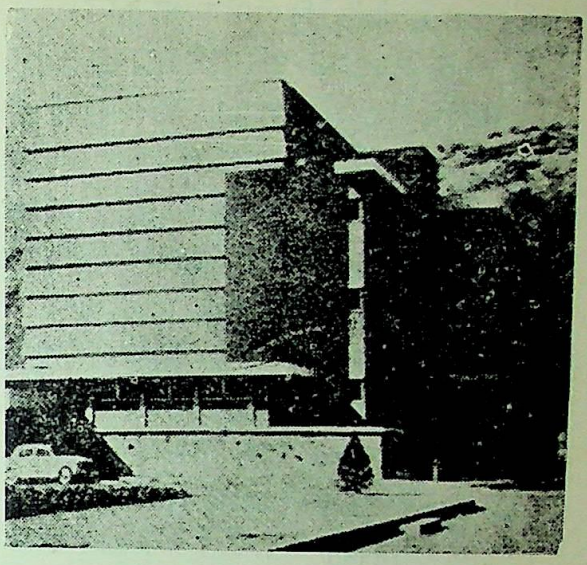

जरलीना का एक कक्ष

निर्माण किया है और साथ ही चैनल एनलाइजर का भी निर्माण कर रहा है। रिएक्टरों के नियन्त्रक उपकरणों को और भी छोटा करने एवं उनमें ट्रान्जिस्टरों का उपयोग करने की दिशा में रिएक्टर कन्ट्रोल सेक्सन कार्य कर रहा है।

विकीरण जन्य संकटों से बचाव के लिए हेल्थ फिजिक्स डिवीजन बनाया गया है। इस डिवीजन के भी तीन सेक्शन हैं—रेडिएशन हैजाड्स कन्ट्रोल सेक्शन (R.H.C.S.), रेडियोलोजिकल मेजरमेन्ट सेक्शन (R.M.S.) और एयर मानिटरिंग सेक्शन (A.M.S.)। R.H.C.S. विकीरण प्रभावों से सुरक्षा आदि के लिए जिम्मेदार है। रिएक्टरों के अन्दर विकीरण के प्रति सुरक्षा की विशेष जिम्मेदारी इसी सेक्शन पर है। इस सेक्शन ने अन्तर्जलीय गामा-रे स्पेक्ट्रोमीटर मानीटर और अल्फा एवं बीटा प्रपोर्शनल काउन्टर आदि विशेष उपकरणों का निर्माण किया है। देश के विकीरण संकटों की जिम्मेदारी R.M.S. पर है। यह सेक्शन देश की ४०० संस्थाओं में कार्यरत करीब ४००० कार्यकर्ताओं के लिए फिल्म बैज सर्विस की सुविधा प्रदान करता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। हवा में फैली रेडियोसक्रियता की देखरेख A.M.S. करता है। दुनिया में परमाणु शस्त्रों के प्रयोगों से उत्पन्न भारत में हवा की रेडियो-सक्रियता की जाँच पड़ताल का उत्तर-दायित्व भी A.M.S. पर है।

यूरेनियम मेटल प्लान्ट, फ्यूएल एलिमेन्ट फेब्रिकेशन प्लान्ट

यूरेनियम मेटल प्लान्ट यूरेनियम को शुद्ध धातु के रूप में फ्यूएल एलिमेन्ट फेब्रि-केशन प्लान्ट को देता है। यह यूरेनियम न्यूक्लियर ग्रेड का होता है जिसे फेब्रिकेशन प्लान्ट आवश्यक रूप देता है। फेब्रिकेशन प्लान्ट कनाडा इंडिया रिएक्टर और जरलीना के लिए यूरेनियम की फ्यूएल-छड़ों का निर्माण करता है। लेथिंग मशीन पर पड़ी हुई लोहे जैसी छड़ें ही यूरेनियम की छड़ें हैं जो रिएक्टर ईंधन हेतु उपयुक्त होती हैं।

एल्यूमिनियम की बेलनाकार पोली छड़ों में इन यूरेनियम छड़ों को रखकर सील कर दिया जाता है तत्पश्चात् उन्हें ईंधन-छड़ों के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। पहले कनाडा इंडिया रिएक्टर के लिए विदेश से छड़ें मंगवानी पड़ती थीं। फेब्रिकेशन प्लान्ट के वैज्ञानिक थोरियम को यूरेनियम-२३३ में परिवर्तित करने में प्रयत्नशील है।

अप्सरा

इसकी स्थापना ४ अगस्त, १९५६ को साउथ-साइट के उत्तर-पश्चिमी सिरे पर हुई थी। अमरीका के प्रसिद्ध नगर ओकरिज में स्थित रिएक्टर से मिलती-जुलती इस अप्सरा के अधिकांश भागों का निर्माण भारतीय वैज्ञानिकों एवं इंजिनियरों ने किया है। ८½ फुट मोटी कंकरीट की दीवारों से घिरी, ४५ फुट लम्बी, २७ फुट चौड़ी और २८ फुट ऊँची, अप्सरा का आकार एक झील जैसा है। रिएक्टर के निकट एक कक्ष में स्वचालित कन्ट्रोल मशीनें हैं।

यूरेनियम की फ्यूएल-छड़ों में विखण्डन क्रिया के फलस्वरूप ऊर्जा मिलती है और साथ ही न्यूट्रान भी। ३१ दिसम्बर, १९६२ को ऊर्जा का मान ५७·२ लाख KWH था। साथ निकलने वाले न्यूट्रानों द्वारा रेडियो-आइसोटोप्स का उत्पादन किया जाता है। यदि आप रात्रि में अप्सरा का भ्रमण करें तो उससे निकली हुई ऊर्जा के फलस्वरूप पानी के अन्दर काफी दूरी तक आपको आकर्षक तीव्र हरी-नीली रोशनी दिखायी पड़ेगी।

अप्सरा द्वारा तीन मुख्य उद्देश्यों की पूर्ति हो रही है—न्यूक्लियर फिजिक्स में शोध कार्य, रिएक्टर परिचालन एवं देखभाल के लिए ट्रेनिंग एवं रेडियोआइसोटोप्स का उत्पादन। १९६२ में आइसोटोप्स के लगभग २००० नमूनों का उत्पादन एवं शोधन सम्पन्न हुआ।

जरलीना

नार्थ साइट पर मुख्य सड़क के दोनों ओर विशेष ढंग के भवन हैं। पहाड़ी के ओर इंजिनियरिंग हाल्स की कतार एवं उ की ओर कनाडा इंडिया रिएक्टर और मास्टर लेटर लेबोरेटरी के भवन हैं। सबसे अ में प्राजेक्ट फोनिक्स के भवन हैं।

जरलीना (ZERLINA—Zero E ergy Reactor for Lattice Inve gations and Nuclear Assemb इंजीनियरिंग हाल नं. १ में स्थित परमाणु शक्ति के विकासार्थ यह एक प्रयो रिएक्टर है। प्राजेक्ट NUHMOC प्रातिक यूरेनियम (natural uraniu ईंधन के रूप में, भारी पानी (heavy wa माडरेटर के रूप में, तथा कार्बनिक क कलैन्ट के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इसके अ इस रिएक्टर द्वारा कई सफल प्रयोग जा चुके हैं। अप्सरा की भाँति इसमें स्वचालित कन्ट्रोल मशीनें हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

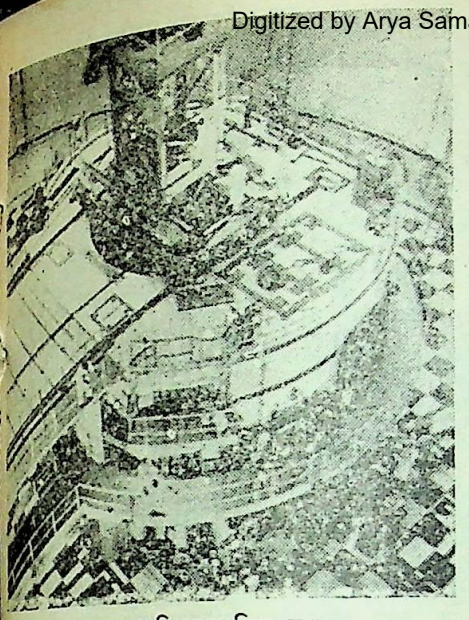

कनाडा इण्डियन रिएक्टर

कनाडा इंडिया रिएक्टर

कनाडा इंडिया रिएक्टर की अर्द्धगोलाकार इमारत एवं उसकी गगनचुम्बी सुरक्षा-चिमनी सबसे आकर्षक है। अपनी पूरी उत्पादन-क्षमता पर पहुँचकर यह संसार के सबसे बड़े रेडियोआइसोटोप्स उत्पादक रिएक्टरों में से एक हो जायेगा। इस रिएक्टर में १९२ यूरेनियम की ईंधन-छड़ों की व्यवस्था है। इन समस्त छड़ों के पूर्णरूपेण कार्यरत होने पर ४० मेगावाट्स की शक्ति प्राप्त होगी। यह रिएक्टर ७–१० मेगावाट्स पर चल रहा है और तदनुसार आवश्यकताओं की पूर्ति कर रहा है।

१९६२ के आरम्भ में आइसोटोप्स के उत्पादन हेतु १४७ नमूने इसमें विकीरित हुए। पुनः ३१ दिसम्बर, ६२ को ८८ नमूने विकिरण हेतु रखे गये थे। रिएक्टर की प्रारम्भिक अवस्था में लगभग आधी ईंधन छड़ें कनाडा से मँगायी गयी थीं और आधी छड़ें फेब्रिकेशन प्लान्ट में निर्मित हुई थीं। धीरे-धीरे कनाडा की ईंधन-छड़ें भारतीय छड़ों से बदल दी गयीं और अगस्त ६३ से यह रिएक्टर सिर्फ भारतीय छड़ों से ही कार्य कर रहा है।

ट्रोम्बे की उस यात्रा को महीनों बीत चुके हैं। आज भी परमाणु शक्ति के बारे में सोचता हूँ तो ट्रोम्बे की याद सबसे आगे आ जाती है। अप्सरा से निकलती हरी-नीली रोशनी, कनाडा इंडिया रिएक्टर के भव्य भवन और रिएक्टरों के कन्ट्रोल बोर्ड, यह सब कुछ हमारे देश की परमाणु शक्ति के विकास की गवाही देते हैं। हमें उन दिनों की भी प्रतीक्षा है जब कि हम ट्रोम्बे की यात्रा की तरह तारापुर (महाराष्ट्र प्रदेश), राणाप्रतापसागर (राजस्थान) और दक्षिय भारत के परमाणु रिएक्टरों की यात्रा करेंगे। ●

अन्धों के लिए बोलते टोफिक-सिग्नल

लाल-हरी बत्तियों के ट्राफिक-सिग्नल आँखों वालों के लिए बनाये जाते हैं फिर भी टक्करें हो ही जाती हैं। प्रशिक्षित कुत्ते भी अपने सहारे नेत्रहीनों को सड़क पार कराते समय प्रायः चूक जाते हैं। अतः नेत्रहीनों की सुविधार्थ ऐसे सिग्नल पश्चिम-जर्मनी में बनाये जा रहे हैं जो रुको और जाओ का संकेत विशेष ध्वनियों द्वारा भी देते हैं।

जहाँ बसों की धाँधली नहीं चलती

प्रायः देखा जाता है कि टाइम पर आने-जाने वाली बसों का सचमुच कोई टाइम ही नहीं होता। लन्दन की महानगरी में पाँच राजमार्गों पर ४० ऐसे यान्त्रिक ट्राफिक-कन्ट्रोल खड़े किये गये हैं जो गुजरने वाली बसों के टाइम और नम्बर नोट करके तुरन्त केन्द्र को सूचित कर देते हैं। विलम्ब से आने वाली बस के स्थान पर फौरन दूसरी बस उस मार्ग पर दौड़ा दी जाती है ताकि यात्रियों को असुविधा न हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

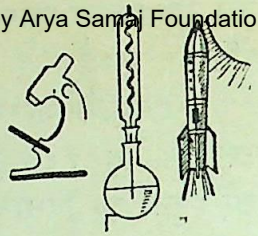

चालकरहित यान

नवीन प्रायोगिक उड़ानगत इस हेलीकाप्टर में चालक ही नहीं है फिर भी यह अपना काम बखूबी कर रहा है। यह ११ वर्ष पुराना हो चुका था। अतः प्रयोगार्थ इसी में आवश्यक परिवर्तन करके इसे रेडियोचालित बनाया गया है। केलिफोर्निया की चाइना झील के ऊपर २००० फुट की ऊँचाई पर यह यान बगैर संचालक, रेडियो संचालन द्वारा अपनी उड़ान प्रदर्शित कर रहा है। अनेक ऐसे स्थलों पर जहाँ मानवयुक्त हेलीकाप्टर भेजना खतरे से खाली न हो, वहाँ आवश्यक वस्तुएँ पहुँचाने तथा लक्ष्य पर गिराने का काम भलीभाँति दे सकता है।

टेलीफोन नंबर भी रिजर्व कराइए

व्यस्त फोन नम्बरों के साथ यह कठिनाई रहती है कि जब भी डायल कीजिए, एन्गेज मिलता है। अनेक बार डायल करने पर कहीं एक बार सफलता मिलती है। पश्चिम जर्मनी के इंजीनियरों द्वारा आविष्कृत विद्युदाणु-चालित टेलीफोन इस दिशा में सर्वथा नयी वस्तु है। इसमें डायल घुमाने की आवश्यकता ही नहीं रहने दी गयी है। अन्य गणक यंत्रों की भाँति इसमें १ से० तक के अंकों युक्त चाबियाँ हैं जिन्हें दबाने भर की देर है। जब तक किसी नम्बर के समस्त अंकों की चाबियाँ दबायी नहीं जातीं, तब तक अधूरे अंकों में विद्युतशक्ति संचित रहती है। नम्बर पूरा होते ही अपना काम शुरू करता है और एन्गेज होने की दशा में आगे के लिए आप ही को मिल सके इस प्रकार वह नम्बर रिजर्व पड़ा रहता है। कु सामने वाला नम्बर खुलते ही आपको द्वारा सूचना मिल जायेगी।

अग्निरक्षित जेटयान

जिस दानवीय गति से आज के जेटया यात्रियों की तीव्रगति के प्रति लालसा पूरी कर हैं, अल्पांश में उसी तीव्रता से वे आग, दुर्घटना आदि के शिकार भी हो जाते हैं। दुर्घटनाग्र न भी हों तो भी यात्रियों को यह कम पसन्द आता है कि उड़ते तो जायें वायुवेग से कि इतनी ऊँचाई पर हों कि नीचे के मनोरम दृ नजर ही न आयें। पश्चिम जर्मनी के वैज्ञानि ने इन समस्त कठिनाइयों पर तलस्पर्श अध्ययन करके इनके हलस्वरूप ऐसा जेटया तैयार किया है जिसका एल्यूमिनियम के स्था पर प्लास्टिक का ढाँचा बनाया गया है। प्लास्टिक ही प्लास्टिक का बना यह या अपेक्षाकृत नीचाई पर ध्वन्यातीत से उड़ेगा जिससे न केवल तीव्रगति प्रयोजन सिद्ध होगा बल्कि यात्रीगण की दृश्यावलियाँ देखने का भी ले सकेंगे।

खजांचियों का यह नया मित्र

प्रायः ही बैंक का खजांची पिस्तौल नोक अपनी नाक पर देखकर होशोहवास बैठता है और साथ ही काफी खजाना डकैत हाथ हिलाने तक का भी समय नहीं और खजांची को विवश होकर हाथ उठाये हो जाना पड़ता है। ऐसे संकट समय के अमरीका ने जर्मनी से ऐसी डेस्क बनवाई जो नाक के आगे पिस्तौल हो, दोनों हाथ हों, तो भी केवल पाँव से बटन दबा देने खजाने का ड्राअर, उसकी चाबियाँ रजिस्टर एक तहखाने में अलोप हो और बगैर १०-१२ चाबियों के, उस तह तक पहुँचा भी न जा सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामदास शर्मा

हमारी दृष्टि का अन्तिम छोर आकाश पर टिकता है। आकाश में तारे टिमटिमाते हैं—छोटे-बड़े तारे, रंग-बिरंगे तारे, मन्द और चमकीले तारे—मानो तारों के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं! दूरदर्शी की सहायता से देखते हैं तो दूर के तारे नजदीक दिखते हैं और भी वह बहुत कुछ दिखता है जो निरी आँखों से दिखायी नहीं पड़ता। आकाशगंगा, नीहारिकाएँ, तारासमूह दिखते जाते हैं मानो उनका अन्त ही नहीं है!

आज का दर्शक सन्तुष्ट नहीं

नये-नये और अधिकाधिक शक्तिसम्पन्न दूरदर्शियों ने—विशेषत: रेडियो-दूरदर्शी ने—दर्शक की दृष्टि-सीमा को मानो असीम कर दिया है। अब वह इन दिखायी पड़ने वाले तारों, नक्षत्रों, ग्रहों तक के ही अवलोकन से सन्तुष्ट होकर बैठ रहना नहीं चाहता। उसके लिए तो मानो—'सितारों से आगे जहाँ और भी है।' अब वह तारों के बीच-बीच में छूटे हुए खाली स्थानों को नयी ही दिलचस्पी से देखने लगा है। इस नयी रुचि में उसे रेडियो-दूरदर्शी से बराबर प्रेरणा तथा भरपूर सहायता मिली है।

कभी रुकावट थी, आज विषय है

आज से केवल ५० वर्ष पूर्व दूरदर्शी द्वारा व्योमदर्शन करने वाले नक्षत्रविद प्राय: ही तब परेशान हो उठते थे जब उनके अध्ययनपात्र तारों के आगे अनबूझे, अनचीन्हे धुंधले बादल से भी आ जाते थे। आज वह दृष्टिकोण बदल चुका है। उन गैसीय बादलों को आज तारों से भी अधिक महत्त्व प्राप्त है क्योंकि उन्हीं से तारों की विभिन्न संरचनाओं का अध्ययन सम्भव है। जब से इन नीहारिकाओं तथा छोटे-बड़े तारकपुंजों—विशेषत: मृग (Orion) तारासमूह की नीहारिका के अध्ययन किये गये, तभी से इन गैसीय बादलों की संरचना के प्रति भी जिज्ञासा जागृत हुई है।

यह विराट विस्तार

अनुमान है कि जिस आकाशगंगा में हमारी पृथ्वी, हमारा सूर्य और हमारे ही ग्रहोपग्रह अवस्थित हैं, वह $१०^{१०}$ तारों से युक्त है। उनका प्रकाश आकाशगंगा को पार करके ७००० वर्षोंपरान्त हम तक पहुँचता है और प्रकाश की गति तो आप जानते ही हैं कि प्रति सेकण्ड १८६००० मील है। इसी से हमारे अपने व्योम-विस्तार की विराटता का अनुमान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाया जा सकता है। यही नहीं, हमारी जैसी आकाशगंगाओं की भी कमी नहीं, कोई संख्या ही नहीं। इन तमाम तारकपुंजों के मध्य तथा बाहर-भीतर भी गैसीय पदार्थ व्याप्त हैं जो बादलों सरीखा दिखता है और अब जिसे हम अन्तरतारक (interstellar) पदार्थ कहेंगे।

वर्णक्रमदर्शी द्वारा रहस्योद्घाटन

जब तक चाहे जैसे भी शक्तिशाली, केवल दूरदर्शी द्वारा इन बादलों को देखा जाता रहा, संतोषजनक विश्लेषण न हो सका। वर्णक्रम-दर्शी द्वारा ही तब तक के अबूझ रहस्य ज्ञात किये जा सके। जिस मृग-नीहारिका को तारकपुंज समझा जा रहा था, वह तारों से विहीन प्रमाणित हुई। अतः वर्णक्रममापी तथा उससे सम्बन्धित यन्त्रों का एक नक्षत्रविद के लिए उतना ही महत्त्व है, जितना एक दूरदर्शी का। इनके द्वारा तारों से आते हुए विविध प्रकाशों के गूढ़ संदेश समझना सम्भव है। वर्णक्रममापी से गुजरती हुई तारक-प्रकाश की रेखा इन्द्रधनुष की भाँति अपने निर्मायक रंगों में विभक्त हो जाती है। उस वर्णपट पर इस प्रकार अंकित विविध रंगों की अवस्थिति तथा रचनाक्रम से निरीक्षक यह गणना कर सकता है कि उस तारे में कौन से धात्विक तत्त्व तप्त गैस रूप में हैं जो अपना विशिष्ट रंग प्रदान करते हैं। प्रत्येक धात्विक तत्त्व का अपना अलग ही रंग होता है।

वर्णपट पर आते हुए प्रकाश कभी-कभी भ्रमोत्पादक भी होते हैं। वे प्रकाश सीधे ही तारों से न आकर, मार्ग में फैले हुए कणों द्वारा परावर्तित भी होते हैं।

प्रकाश-परावर्तक इन ठोस कणों के अतिरिक्त तारों के मध्य परमाणुओं की भी उपस्थिति का पता लगाया गया है। उनकी उपस्थिति का पता देने वाला विलक्षण यंत्र रेडियो-दूरदर्शी है जो अन्तरिक्ष में व्याप्त विद्युच्चुम्बकीय विकिरण का पूरा-पूरा पता देता है। इस यंत्र के आविष्कार के पहले हालैण्ड के एक वैज्ञानिक ने अपना अनुमान व्यक्त किया था कि अन्तरिक्ष में हाइड्रोजन

यह हंसावर (Cygnus) तारा समूह है। यह अनोखा दृश्य अति शक्तिशाली दूरदर्शी द्वारा ही लिया जा सका है। मध्य के गहरे काले गैस के बादलों के दोनों ओर जो चमकीले बादल दिखते हैं वे ही तप्त, प्रज्वलित गैसे हैं जो संलग्न तारों के प्रकाश से और भी चमकती हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

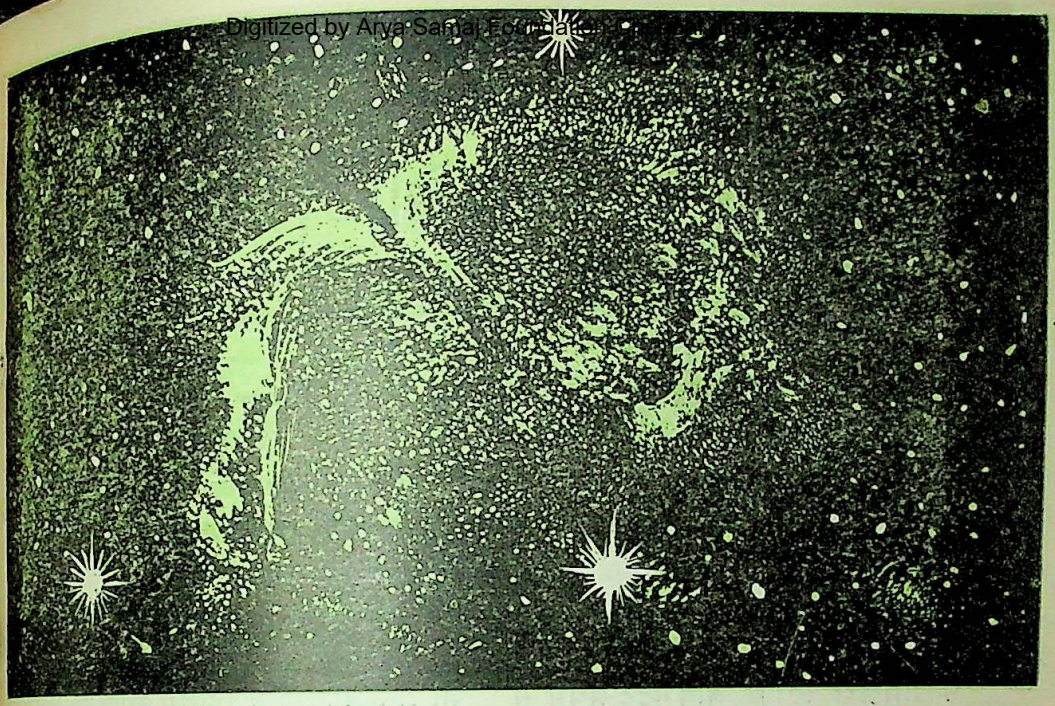

मृग (Orion) तारासमूह की यह वृहत् नीहारिका है। निरी आँखों से यह केवल एक धुंधला बादल सरीखा दिखता है किन्तु शक्तिशाली दूरदर्शी से ज्ञात किया जा सकेगा कि यह उमड़ते-उफनते अणु-परमाणुओं का समूह है जो साथ में लिपटे हुए तारों के प्रकाश से प्रकाशमान दिखायी पड़ता है

विकिरण भी अवश्य होना चाहिए। इस पर अमरीकी वैज्ञानिकों ने अपने यंत्रों द्वारा परीक्षण करके इस मत की पुष्टि की थी। इस रहस्योद्घाटन ने मानो अन्तरिक्ष-अध्ययन का नया मार्ग प्रशस्त कर दिया।

अनुमान है कि परमाणुओं के ये प्रज्ज्वलित गैसीय बादल अधिकतर ऐसे तारों के निकट रहते हैं जिनकी सतह का ताप २५०००°C से अधिक हो। कहीं-कहीं तो ये कण प्रति घन इंच में ५००० तक भरे होते हैं। उन तप्त गैसों में हाइड्रोजन के अतिरिक्त हीलियम, कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सीजन और गंधक भी सम्मिलित हो जाते हैं और वे अपने-अपने रंग प्रदान करते हैं। प्रश्न होगा कि ये गैस दीप्त किस प्रकार हो उठते हैं? तथ्य यह है कि २५०००°C के उच्च तापयुक्त तारे के निकट होने के कारण वे उसकी पराबैंगनी रश्मियों को सोख लेते हैं और पुनः अपने विशिष्ट विकिरण के अनुसार उन्हें प्रसारित करते हैं। उस उच्च ताप के कारण हाइड्रोजन के विश्रृंखलित एलेक्ट्रान आक्सीजन, नाइट्रोजन और गंधक के परमाणुओं से टकराते हैं जिसके फलस्वरूप ये गैसें भी दीप्त हो उठती हैं।

तारों के मध्य इस प्रकार पाये जाने वाले हाइड्रोजन और ठोस कणों पर से तारासमूहों के विषय में और भी विवरण प्राप्त किये जा सकते हैं। ऐसे तारासमूह कितने ही आकार-प्रकार के होते हैं। उनमें एक आकार कुण्डलाकार भी है जिसमें मध्यवर्ती नाभिक एक गोले अथवा छड़ के आकार का होता है और उसके चारों ओर हाथ जैसे कुण्डलाकार घूमते रहते हैं। हमारी आकाशगंगा कुण्डलाकार समूह का एक उत्तम उदाहरण है। इसमें चारों ओर हाथ जैसे घूमते हुए भागों में गैसीय हाइड्रोजन अधिकतम होता है।

ऐसे बादलीय गैसों में कैल्सियम, प्रायः

[शेष पृष्ठ ५५ पर]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान भारतीय गणितज्ञ

भास्कराचार्य

गुणाकर मुले

भास्कराचार्य भारतीय गणितरत्न-परम्परा के आखिरी रत्न थे, आर्यभट्ट-प्रथम से ५वीं शताब्दी में भारत में गणितशास्त्र के जिस स्वर्णकाल का प्रारम्भ हुआ, भास्कर-द्वितीय के साथ १२वीं शताब्दी में उसका अन्त हुआ। इसी काल में भारतीय ज्योतिष-शास्त्र और गणितशास्त्र का पूर्ण विकास हुआ, बगदाद के खलीफा भारत से गणित एवं ज्योतिष के ग्रंथ ले गये तथा हिन्दू-ग्रन्थों के अरबी और लैटिन भाषाओं में अनुवाद हुए।

भास्कराचार्य के अपने ग्रन्थ 'सिद्धान्त-शिरोमणि' के गोलाध्याय के एक श्लोक से ज्ञात होता है कि भास्कराचार्य का जन्म शके १०३६ (ई. १११४) में हुआ और ३६ वर्ष की आयु में इन्होंने 'सिद्धान्तशिरोमणि' की रचना की। एक अन्य श्लोक से ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम महेश्वर था और वे ही इनके गुरु थे। एक अन्य उल्लेख से मालूम होता है कि इनका गोत्र शाण्डिल्य और निवास सह्याद्रि पर्वत के पास विज्जडविड नामक गाँव था, परन्तु यह विज्जडविड गाँव किस जगह पर था, इस बात पर विद्वानों में काफी मतभेद है।

'सिद्धान्तशिरोमणि' में मुख्य चार खण्ड हैं। इन्हें अध्याय भी कहते हैं। इन अध्यायों के भी अनु-अध्याय हैं। प्रथम खण्ड को भास्कराचार्य ने 'लीलावती' या 'पाटीगणित' का नाम दिया है। लीलावती ग्रंथ का नामकरण कतिपय कल्पनाओं को जन्म देता है। भास्कराचार्य ने 'लीलावती' ही नाम क्यों रखा? ग्रंथ में उदाहरण के पहले यदाकदा सम्बोधन मिलते हैं—'अये बाले लीलावति', 'बाले बालकुरंगलोलनयने लीलावति'। कुछ लोगों का मत है कि लीलावती भास्कराचार्य की अपनी पुत्री थी। अकबर के आदेशानुसार १५८७ में फैजी ने लीलावती का फारसी में अनुवाद किया था। फैजी लिखता है कि लीलावती भास्कराचार्य की पुत्री थी और ज्योतिषियों ने भविष्यवाणी की थी कि लीलावती को कभी भी विवाह नहीं करना चाहिए परन्तु भास्कराचार्य ने गणनाओं के आधार पर लीलावती के विवाह के लिए एक शुभ मुहूर्त खोज निकाला। समय सूचना के लिये नाडिका-यंत्र स्थिर कर दिया यह तांबे का एक बर्तन होता है और इसके पेंदे में छोटा छिद्र होता है। धीरे-धीरे इस छिद्र से बर्तन में पानी जमा होता है, जिससे समय की सूचना मिलती है। यह एक प्रकार की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल-घड़ी थी, जिसका प्रधान उपयोग काल गणना के लिए इस्तेमाल करते थे। लीलावती ने कौतुहलवश जब इस नाडिका-यंत्र में पानी चढ़ते हुए देखा तो उसके वस्त्र का एक मोती उस पात्र में गिर गया। मोती छिद्र के मुँह पर बैठ जाने से भीतर पानी आना रुक गया और इस प्रकार विवाह का शुभ मुहूर्त निकल गया। पिता और पुत्री दोनों को बड़ा दुःख हुआ। लीलावती को सान्त्वना देने के लिये भास्कराचार्य ने उससे कहा—"मैं तुम्हारे नाम का एक ऐसा ग्रंथ लिखूंगा जो अमर कृति बन जायेगा, क्योंकि सुनाम एक प्रकार का दूसरा जीवन ही तो है।"

कुछ लोगों का मत है कि लीलावती भास्कराचार्य की पत्नी थी, क्योंकि 'सखे' सम्बोधन भी मिलते हैं, परन्तु ग्रंथ में अन्य सम्बोधन भी मिलते हैं, जैसे—मित्र, कुशल गणक आदि। इसके आधार पर कुछ लोगों ने उपरोक्त धारणा का खंडन किया है। इस नामकरण के पीछे जो कुछ भी रहस्य रहा हो, 'लीलावती' वास्तव में एक रोचक और सुलभ ग्रंथ है। कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं जो बुद्धि को झकझोर देने के लिये पर्याप्त हैं। इसी कारण किसी ने कहा है कि : 'भास्कर के लेखन को या तो स्वयं भास्कर ही समझ सकता है, या सरस्वती, या फिर ब्रह्मा। हमारे जैसे पुरुषों के बस की यह बात नहीं है।'

'लीलावती' में २७८ पद्य हैं। अन्तिम पद्य की रचना सम्भवतः भास्कराचार्य के किसी शिष्य ने की है। इसका अर्थ इस प्रकार है कि : 'वह आठ प्रकार के व्याकरण और छह प्रकार की भिषज—संहिताओं का विवेचन कर सकता है; वह तर्क विद्या के छह अंगों का, गणितशास्त्र के पाँचों अंगों का और चार वेदों का पूर्ण ज्ञाता है। विभिन्न प्रकार की मीमांसाओं के अन्तर को वह समझता है, ऐसा है कवि भास्कर।'

लीलावती के आरम्भ में विविध परिमाणों की कुछ तालिकाएँ, और परार्ध पर्यन्त संख्याओं के नाम दिये हैं। इसके बाद पूर्णांकों का योग, अन्तर, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन, घनमूल है। इन आठ कृत्यों को इसमें परिकर्माष्टक कहा है। इसके बाद अपूर्णांक परिकर्माष्टक, शून्यपरिकर्माष्टक, इष्टकर्म, त्रैराशिक, पंचराशिक, श्रेणी, भिन्न-भिन्न प्रकार के क्षेत्रों और घनों के क्षेत्रफल, घनफल आदि विषय हैं। इसके बाद कुट्टक गणित सम्बन्धी कुछ बातें हैं।

ज्योतिषी होने के साथ-साथ भास्कराचार्य ऊँचे दर्जे के कवि भी थे। इनकी कविता-शैली अनुप्रासयुक्त है। ऋतु वर्णन में यमक और श्लेष की सुन्दर बहार दिखलायी देती है। 'लीलावती' में दिये गये उदाहरण शुष्क होकर भी काव्यमय हैं। कुछ उदाहरण देखिये :

(१) रण में क्रुद्ध होकर अर्जुन ने कर्ण को मारने के लिये बाण चलाये। आधे बाणों से कर्ण के बाणों का निवारण करके, चलाये हुये समस्त बाणों के वर्गमूल के चौगुने से उसके घोड़ों को मार डाला; तीन बाणों से क्रमशः छत्र, ध्वजा और धनुष का खंडन किया। बताओ अर्जुन ने कितने बाण चलाये ?

(२) भ्रमर-समूह के आधे के वर्गमूल तुल्य भ्रमर मालती-वृक्ष की ओर गये हैं; उसी ओर समस्त भ्रमरों के ८/९ भी गये हैं। एक भ्रमरी उस भ्रमर के गुंजन को प्रतिध्वनित कर रही है, जो रात्रि में परिमल के लोभ से वशीभूत होकर कमल के भीतर बंद हो गया था और अब अन्दर ही अन्दर गुंजन कर रहा है। हे सुन्दरी, भ्रमरों की संख्या बताओ।

'लीलावती' की कई टीकाएँ और अनुवाद उपलब्ध हैं। सन् १५८७ में फैजी ने लीलावती का फारसी में अनुवाद किया। अंग्रेजी में प्रथम अनुवाद टेलर महाशय ने १८१६ में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया और दूसरा अनुवाद कोलब्रुक ने १८१७ में।

भास्कर का दूसरा ग्रंथ 'करणकुतूहल' एक ज्योतिष-ग्रंथ है। ६९ वर्ष की आयु में भास्कराचार्य ने इस ग्रंथ की रचना की। ६९ वर्ष की परिपक्व आयु में करण-ग्रंथ की रचना को देखकर लगता है कि इतने अधिक वय में भी इनके उत्साह और बुद्धि में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आयी थी। 'करणकुतूहल' की रचना सन् ११८३ में हुई।

भास्कराचार्य कई बातों में अपने समय से आगे थे। पृथ्वी के गोल होने का प्रमाण देते हुए 'गोलाध्याय' में वे लिखते हैं—'गोले की परिधि का सौ वाँ भाग एक सीधी रेखा प्रतीत होता है। हमारी पृथ्वी भी एक विशाल गोला है। मनुष्य को उसकी परिधि का एक बहुत ही छोटा भाग दीखता है, इसलिए वह चपटी दिखती है।'

इसी प्रकार न्यूटन के बहुत पहले भास्कराचार्य को गुरुत्वाकर्षण शक्ति का ज्ञान हो चुका था। इसे उन्होंने 'धारणिकात्मक शक्ति' कहा है। वे लिखते हैं—'पृथ्वी अपनी आकर्षण-शक्ति के जोर से सब चीजों को अपनी ओर खींचती है। इसलिए सभी पदार्थ इस पर गिरते हुए नजर आते हैं।'

यही कारण है कि पाश्चात्य विद्वानों को भी भास्कराचार्य की श्रेष्ठता को स्वीकार करना पड़ा। डा. स्पोटवूड ने रायल सोसायटी के जर्नल में लिखा है—'भास्कराचार्य की विवेचन-सूक्ष्मता उच्चकोटि की है यह हमें स्वीकार करना होगा। भास्कराचार्य ने जिन गणित-ज्योतिष सिद्धान्तों की स्थापना की है, और जिस ढंग से की है उसकी तुलना हम आधुनिक गणित-ज्योतिषशास्त्र से कर सकते हैं।'

आजादी खतरे में है।
पूरी ताकत लगा कर इसकी रक्षा कीजिए।
—जवाहरलाल नेहरू

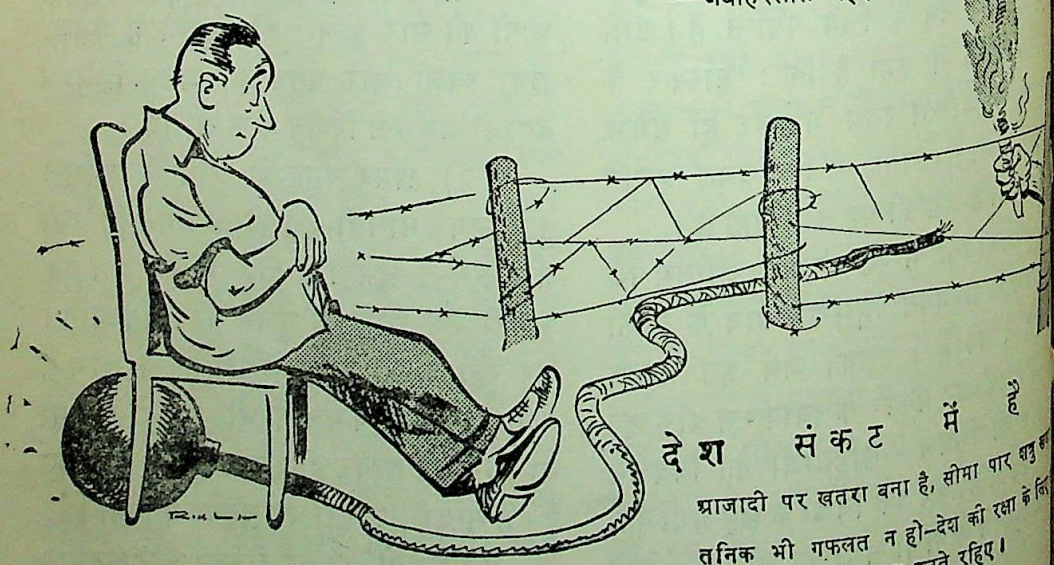

देश संकट में है

आजादी पर खतरा बना है, सीमा पार शत्रु
तनिक भी गफ़लत न हो—देश की रक्षा के लि
और अनुशासन से काम करते रहिए।

मन लगा कर काम कीजिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

ये चलते-फिरते और उड़ते सर्प

साँपों का पाँवों के बल चलना जितना अचरज भरा है उतना ही अजीब उनका उड़ते फिरना भी है। *Chrysopelea ornata* जाति के सर्प अत्यन्त विरले हैं और केवल जावा तथा मलयेशिया में ही पाये जाते हैं। इनमें जो सर्प बड़े और स्थूलकाय हैं (अजगर जैसे) उनके अन्य भूमिचर जन्तुओं जैसे कूल्हे, श्रोणि-मेखला तथा नन्हे पाँव भी होते हैं जिनका कभी-कभी वे उपयोग कर लेते हैं। जीव-विज्ञान की दृष्टि से रीढ़धारी जन्तुओं में पक्षियों से ही सर्प अधिक मिलते-जुलते हैं। उड़ने वाले सर्प बड़ी खूबी से अपना शरीर इस प्रकार फीते जैसा चपटा कर लेते हैं जिस प्रकार कोबरा नाग चोट करते समय अपने फन को चपटा कर लेता है। उड़ते-उड़ते नीचे उतरते समय ये सर्प कुण्डलाकार लहराते हुए उतरते हैं।

कछुआ दौड़ में कैसे जीता ?

यह कहानी भले ही पुरानी हो, आज का तर्क नया है। खरगोश से बाजी मार ले जाने में वास्तविक कारण एक और भी था और वह पूरा वैज्ञानिक कारण था। प्रकृति ने कछुए को सम्पूर्णतः परवलायाकार बनाया है ताकि वायु-प्रतिरोधन यह अधिक से अधिक कर सके। मेजर सीग्रेव ने अपनी 'गोल्डन ऐरो' रेसिंग कार से २३१ मील प्र. घ. का रिकार्ड स्थापित किया था, वह कार परवलायाकार ही तो थी! और, विश्व प्रसिद्ध कैप्टन माल्कम कैम्पबेल की 'ब्लू वर्ड' नामक रेसिंग कार न केवल परवलायाकार, बल्कि कछुए जैसी ही बनायी गयी है जिसने संसार का अविजित रिकार्ड २४५ मील प्र. घ. का स्थापित किया है। फिर क्या आश्चर्य है कि कछुआ दौड़ जीत गया!

वृक्ष ३६८ फुट ऊँचा तो २४ इंच बोना भी !

कहाँ तो एक ओर केलिफोर्निया (अमरीका) का गगनचुम्बी, ३६८ फुट ऊँचा न्यू ट्री (New Tree) नामक रेडवुड श्रेणी का वृक्ष और कहाँ दूसरी ओर चित्र में प्रदर्शित कुछ ही इंच के ये बोने जापान के बोनसाई (Bonsai) वृक्ष ! इनमें बायीं ओर का वृक्ष तो आजकल का नहीं, २०० वर्ष की आयु का है। यह जापानियों की निराली कला है जिसके द्वारा वे बड़ी लगनपूर्वक और कलापूर्ण कटाई-छंटाई करते-करते इन बोनों को बोने ही रहने देते हैं। गमलों में पौधे तो देखने में आते ही हैं किन्तु २०० वर्ष पुराने वृक्षों को गमले में लिए फिरें, यह तो जापान की ही कला है। जापान में यह शौक धनिक तथा मध्यमवर्गीय लोगों में समान रूप से प्रिय है। वे इनके लिए गमले भी अत्यन्त आकर्षक चित्रों, डिजाइनों से बनाते हैं—ऐसे कि उन पर अंकित नदी-पहाड़ की दृश्यावलियाँ इन बौने वृक्षों के लिए सजीव वातावरण प्रस्तुत करती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ती चिड़िया किसके घर ?

जहाँ दुलहन की तलाश उड़ती चिड़ियाँ करती है, वह समाज है पूर्व अफ्रीका के नन्दी लोगों का है। वहाँ पर विवाह योग्य वर को पहले चिड़िया फाँसना, पालना और उड़ाना सीखना पड़ता है। ऐसी कम से कम पचास चिड़ियाँ तैयार हो जाने पर वह एक बड़ा टोकरा सिर से बाँधकर उसमें उन्हें भर लेता है। उनके मध्य एक छतरीनुमा बड़ा हैट भी रख देता है। घूमते-घूमते वे चिड़ियाँ उड़कर उस हैट को सबसे पहले जिस मकान पर रख दें, उसमें यदि कोई विवाह योग्य कन्या है, तो वह इनकार नहीं कर सकती। इस विचित्र प्रथा के अनुसार विवाह सम्पन्न किये जाते हैं।

छिपकली बाबा की दाढ़ी

यह है आस्ट्रेलिया की छिपकली का नर बाबा जो अपनी दाढ़ी फहरा रहा है। जब यह आराम से पड़ा होता है तब इसका रंग गहरा कत्थई होता है। जरा किसी ने छेड़ा नहीं कि यह फुफकार कर उठता है और अपना डरावना मुँह खोलकर जब घुड़की दिखाता है, तब इसका रंग चटकीला पीला और नारंगी हो जाता है। शत्रु इसकी यह रंगत देखते ही नौ-दो ग्यारह हो जाता है।

सूर्यग्रहणों का यह भविष्यवाणी

आगामी ८५ वर्षों में अमरीका का संयुक्त राज्य क्षेत्र कम से कम नौ सूर्यग्रहण और देखेगा। पूर्वगणनानुसार उनकी तिथियाँ इस प्रकार होंगी—१. मार्च ७ (१९७०), २. फरवरी २६ (१९७९), ३. अगस्त २१ (२०१७), ४. अप्रैल ८ (२०२४), और ५. अगस्त २३ (२०४४)। यह भी सम्भव है कि कुछ विस्तारों में दो-दो बार चन्द्रमा सूर्य को पूर्णतः ढँक ले।

जानवरों से मनुष्य कितना पिछड़ा हुआ ?

तेज दौड़ने में, लम्बा कूदने में और ऊँचा उछलने में ओलम्पिक रिकार्ड कायम करके मानव न जाने किस खयाल में भूला हुआ है? निरीह जन्तुओं से यदि इन तीन खेलों की तुलना की जाए तो मनुष्य केवल चींटी की भाँति रेंगता हुआ ही प्रतीत होगा और सोने-चाँदी के तमगे तथा अन्तरराष्ट्रीय रिकार्ड की प्रसिद्धियाँ तृणवत् नजर आयेंगी। कुछ उदाहरण देखिए—

तेज दौड़—मानव का रिकार्ड, १९६५ में आस्ट्रेलिया के पीटर स्नेल द्वारा स्थापित, ३ मिनट, ५४·४ सेकिण्ड अर्थात् लगभग १३ मील प्र. घ. इसके मुकाबले—जन्तुओं की रफ्तार—गेंडा २५, जिराफ ६४, हिरन ४८, चीता ७२ मील प्र. घ.।

लम्बी कूद—मानव २४ फुट, घोड़ा ३२, कंगारू ४२, पूमा (एक प्रकार का चीता) ४५।

ऊँची उछाल—मानव ६ फुट, हिरन ८, पौपस (जलचर) १६, पूमा १८

तैरना—मानव ३ मील प्र. घ., ब्लू व्हेल १५, किलर व्हेल २८, पोपस ३६, स्वार्डफिश ५२, सेलफिश ६५

उड़ान—मानव यान बगैर नहीं उड़ सकता और पक्षियों में स्विफ्ट चिड़िया का अपना रिकार्ड २०० मील प्र. घ. का है।

विज्ञान-सोत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

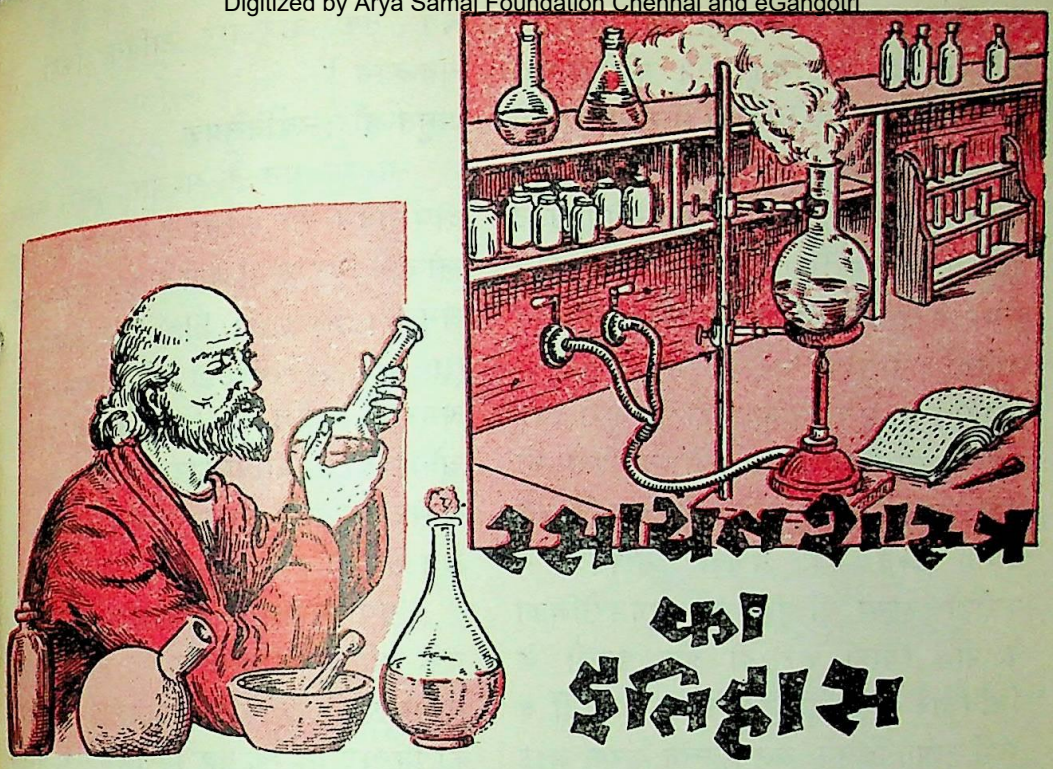

रसायनशास्त्र का इतिहास

सत्यकुमार

वैसे तो रसायनशास्त्र का आरम्भ आदि-काल से ही है क्योंकि आवश्यकता आविष्कार की जननी है और ज्यों-ज्यों आदि पुरुष ने अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का निर्माण किया होगा, रसायनशास्त्र का स्वत: विकास होता गया होगा। जैसा कि इसका अंग्रेजी नाम 'कैमिस्ट्री' साक्षी है, प्राचीन मिस्र के अनेक रसायन उद्योग—काँच, साबुन, रंग, विज इत्यादि का उल्लेख ईसा से ३५०० वर्ष पूर्व का मिलता है। 'कॅम' (chem) या 'खेम' का अर्थ होता है 'काली मिट्टी' और मिस्र को प्राचीन काल में 'काली मिट्टी का देश' कहते थे। अत: इस विद्या का नाम 'कीमियाई' या 'कैमिस्ट्री' पड़ गया। कुछ लोग इसे 'काला जादू' भी कहते थे।

प्राचीन भारत, चीन और यूनान में भी रसायन का पर्याप्त ज्ञान था, परन्तु मिस्र से अरब और वहाँ से स्पेन होता हुआ यह ज्ञान यूरोप में फैला। भारत की तत्कालीन रसायन विद्या का वर्णन अथर्ववेद में मिलता है। रामायण में संजीवनी बूटी का उल्लेख है। आयुर्वेद में मकरध्वज (मरकरी सलफाइड) का उपयोग चला आ रहा है। महाभारत में कितने ही रसायन सम्बन्धी अस्त्रों का वर्णन है। छठी शताब्दी में चरक और सुश्रुत तथा नवीं शताब्दी में नागार्जुन जैसे प्रसिद्ध रसायनज्ञों के उल्लेख मिलते हैं। इनके अतिरिक्त महर्षि कणाद, पतजंलि, नरहरि, यशोधर, गोपालकृष्ण और वाग्भट्ट के नाम भी प्राचीन ग्रन्थों में मिलते हैं। छठी शताब्दी के चिकित्सा शास्त्र में कास्टिक सोड़ा, कास्टिक पोटाश, तूतिया, हरा कसीस और छह धातुओं के आक्साइडों के उपयोगों का वर्णन है। कुतुब-मीनार के समीप खड़ा लौह-स्तम्भ प्राचीन भारत की धातुकर्म में निपुणता का ज्वलन्त प्रमाण है।

पारस पत्थर

पारस पत्थर (philosopher's stone)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अनेक कथाएँ हमारे यहाँ तथा पाश्चात्य देशों में भी प्रचलित हैं। कीमियागरों का विश्वास था कि विधाता ने सभी धातुओं को स्वर्ण बनाया। अशुद्धि या किसी रोग के कारण कुछ स्वर्ण ताँबा या लोहे जैसी निकृष्ट धातुओं में परिवर्तित हो गया। उसे पारस पत्थर से छू देने पर वह पुनः स्वर्ण में बदल जायेगा। सोलहवीं शताब्दी तक इस अंध-विश्वास का भूत कीमियागरों पर बुरी तरह सवार रहा। स्वर्ण का प्रलोभन किस को नहीं होता? नाना प्रकार के चित्र-विचित्र प्रयोग किये गये, सैकड़ों व्यक्तियों ने करोड़ों रुपयों की पूँजी इस मृगमरीचिका के पीछे स्वाहा कर दी और इटली के त्रिविंशान ने दो हजार अण्डों की सफेदी व जर्दी तथा छिलके अलग-अलग करके आठ वर्ष तक बार-बार स्रवित किया, पर सब व्यर्थ!

अमृत और सर्वविलेयक

मनुष्य धन के पश्चात दूसरी कामना दीर्घजीवन की करता है। पारस पत्थर की खोज में निराश हो जाने के बाद भी कीमियागर अमृत (elixir of life) और सर्वविलेयक (universal solvent) की खोज में लगे रहे। अमरत्व प्राप्ति के लिए अनेक रामबाण ओषधियों के आविष्कार हुए, अनेक धुआँधार प्रयोग हुए पर काल के मुख से कोई नहीं बच सका।

सर्वविलेयक की जिज्ञासा भी बहुत काल तक रही। एक समस्या यह भी थी कि ऐसे विलेयक को कहाँ रखा जा सकेगा? कुछ लोगों का विचार था कि वह विलेयक एक धातु का

(ऊपर) प्राचीन और मध्यकालीन कीमियागरों का अनुमान था कि पृथ्वी, वायु, अग्नि और जल की जादुई कीमियागरी से सोना बनाया जा सकेगा किन्तु (नीचे) आज का वैज्ञानिक तथ्य यह है कि सोना एक प्राकृत तत्त्व—तत्त्व सं० ७९ हैं और इसे कृत्रिम रूप से प्राप्त नहीं किया जा सकता।

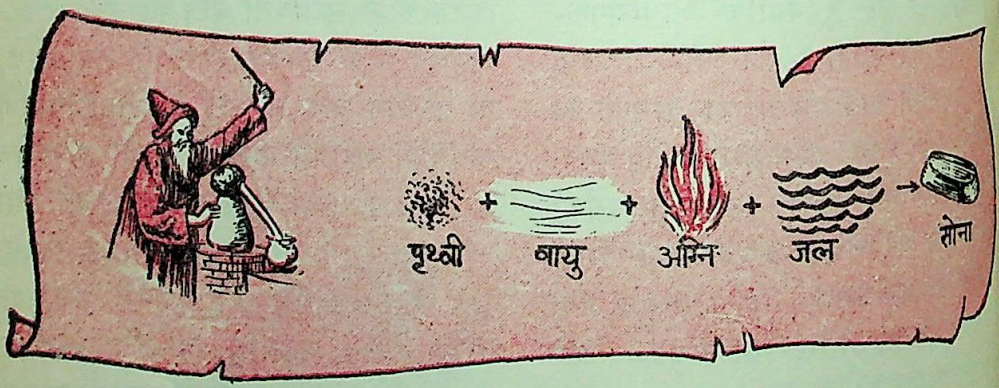

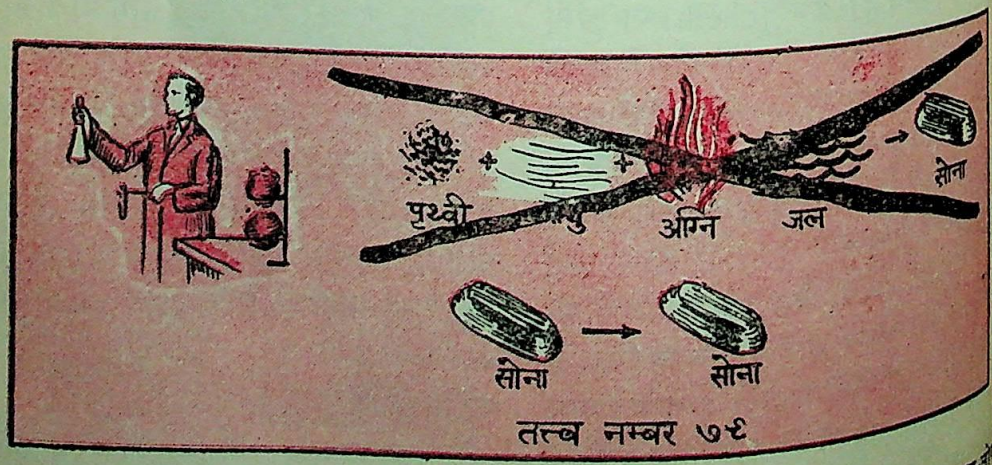

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी में बदलने में—तत्त्वान्तरण (transmutation) में सहायक होगा। पारस पत्थर न सही, शायद उसी के द्वारा लोहे से सोना बनाया जा सके! किन्तु कीमियागरों को न पारस पत्थर मिला, न अमृत और न सर्वविलेयक।

आपको वह कहानी याद ही होगी कि एक दरिद्र किसान मरते समय अपने बेटों से यह कह गया कि खेत में धन गड़ा है जिसकी खोज में बेटों ने सारा खेत खोद डाला पर फूटी कौड़ी भी नहीं मिली। दूसरी ओर खेत की अच्छी तरह खुदाई हो जाने के कारण अगली फसल ने अवश्य सोना बरसा दिया। तभी पिता के कथन की सत्यता बेटों ने समझी।

आज हम कीमियागरों को रसायनशास्त्र का आधार मानते हैं। यद्यपि वे अपने ध्येय में सफल नहीं हुए, किन्तु अपने प्रयोगों द्वारा उन्होंने कितने ही नये तत्त्व—आर्सेनिक, एण्टीमनी, बिस्मथ, फास्फोरस आदि ज्ञात कर लिये। कितने ही नये अम्ल, अम्लराज तथा अन्य यौगिक उसी युग की देन हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त कितने ही उपकरण आज भी प्रयोगशाला के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। रसायनशास्त्र के विकास में उनका प्रमुख योग रहा। कितने ही पदार्थों को बनाने की विधि, परिशोधन की युक्तियाँ वे ही प्रस्तुत कर गये थे। वे भले ही अन्धकार में भटकते रहे, किन्तु रसायनशास्त्र पनपता रहा।

विज्ञान की प्रगति ने पारस पत्थर न सही, कृत्रिम तत्त्वान्तरण ने सम्भव कर ही दिखाया है। इसी प्रकार मनुष्य को अमर न सही दीर्घ-जीवी तो बना ही दिया है।

आधुनिक रसायनशास्त्र

रावर्ट बॉयल को आधुनिक रसायन का जन्मदाता कहा जाता है। उसने रसायन को पारस पत्थर और अमृत के प्रपंच से छुड़ाकर

ताम्रयुगी मानव आदिकालीन रसायनज्ञ भी था

नयी दिशा दी, विशुद्ध वैज्ञानिक मोड़ दिया। उसने कठोर परिश्रम करके अनेक प्रयोगों द्वारा निष्कर्ष निकाले और तत्त्वों, यौगिकों, अम्ल, क्षार, परमाणु आदि की नयी व्याख्याएँ, नयी परिभाषाएँ दीं। १६६१ में उसकी पुस्तक 'दि स्केप्टिकल केमिस्ट' प्रकाशित हुई जो रसायनशास्त्र की प्रथम प्रमाणिक कृति मानी जाती है।

फ्लॉजिस्टनवाद

बॉयल के कुछ ही समय पश्चात् बेखर द्वारा प्रचलित और स्टाल द्वारा प्रतिपादित फ्लॉजिस्टनसिद्धांत (Phlogiston Theory) रसायन-जगत पर बुरी तरह छा गया। वह एक भ्रमपूर्ण धारणा थी जो एक शताब्दी तक रसायन की प्रगति में बाधक रही। उस सिद्धान्त के अनुसार जब कोई पदार्थ जलता है तो उसमें से फ्लॉजिस्टन बाहर निकल जाता है। सभी जलने वाले पदार्थों में फ्लॉजिस्टन नाम का अदृश्य पदार्थ रहता है। तेल, वसा, कोयला, गंधक आदि ज्वलनशील पदार्थों में फ्लॉजिस्टन की मात्रा अधिक होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी अनेक मान्यताएँ प्रचलित थीं उपज थीं।

अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रसायन-विज्ञान की विशेष उन्नति हुई। प्रीस्टले, शीले, केवेण्डिश, लेवाशिये, गेलुसेक, एवोगेड्रो आदि रसायनज्ञों ने अथक परिश्रम से नयी-नयी खोजों, आविष्कारों, यौगिकों, उपकरणों, परिकल्पनाओं, सिद्धान्तों और नियमों के ढ़ेर लगा दिये। इसी काल में अधिकांश गैसें भी प्रकाश में आयीं। लेवाशिये ने अनेक यौगिकों का नामकरण किया। इसी ने फ्लॉजिस्टनवाद का कड़ा विरोध किया और अनेक प्रमाणिक प्रयोगों द्वारा उसकी जड़ उखाड़कर फेंक दी।

उन्नीसवीं शताब्दी

अठारहवीं शताब्दी की परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी में भी तेजी से चलती रही। १८०८ में डाल्टन ने अपना प्रसिद्ध परमाणुवाद प्रस्तुत किया। वर्जीलियस ने

डिमोक्रिटस का निश्चित मत था कि पदार्थमात्र परमाणुओं का बना है

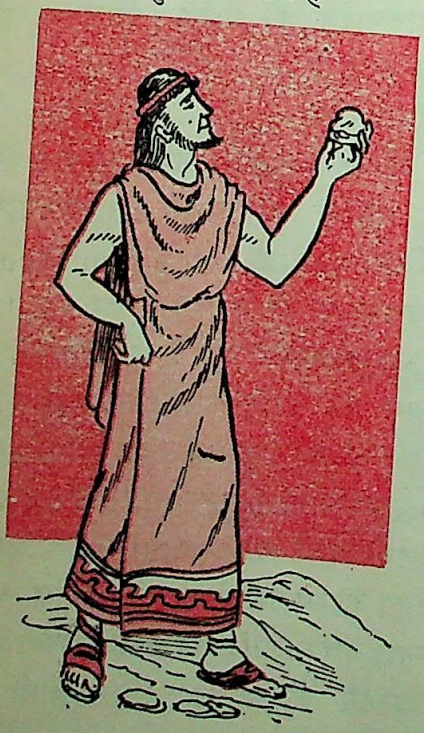

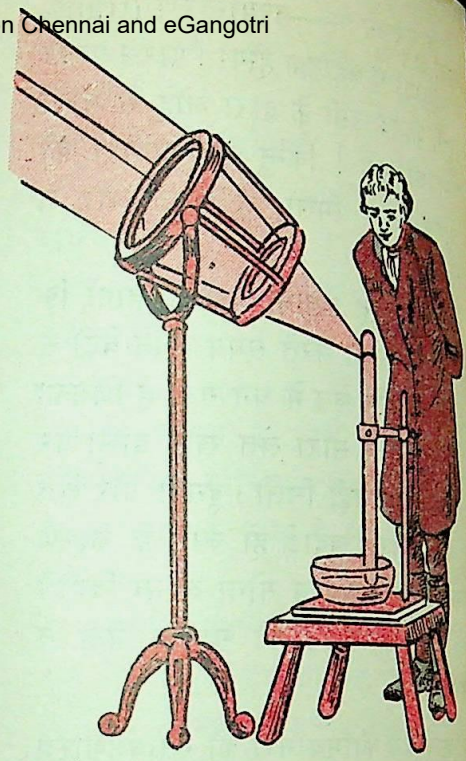

सूर्य ताप को केन्द्रित करके प्रीस्टले ने ही सर्वप्रथम प्रयोगशाला में आक्सीजन उपलब्ध किया

रसायनशास्त्र को चिन्ह और सूत्रों के रूप में सर्वमान्य भाषा दी। व्होलर ने १८२८ में प्रथम संश्लेषित यौगिक यूरिया बनाकर जीव शक्ति के सिद्धान्त (vital force theory) पर कुठाराघात किया। फलस्वरूप इतने अधिक कार्बनिक यौगिक बने कि उनके अध्ययन के लिये पृथक् रसायनशास्त्र की आवश्यकता पड़ी। डेवी, फैराड़े, केकुले, मेण्डलीफ, वेर्नर, बुन्सन, वान्टहॉफ, कैनिजरो, गिब्ज, राउल्ट, आरहीनियस कोल्रोश, वाण्डर-वाल्स, ओस्टवाल्ड, हेबर, रैले, रेम्जे इत्यादि प्रमुख वैज्ञानिकों के आविष्कारों ने रसायन-शास्त्र में अपार समृद्धि की है। इसी शताब्दी के अन्त में भौतिक रसायन का विकास एक शाखा के रूप में हो गया।

इस शताब्दी के अन्तिम चरण में १८९५ में रॉन्जन ने एक्स-रे और १८९६ में बेकेरेल ने रेडियोधर्मी किरणें ज्ञात करके विज्ञान को एक नया ही मोड़ दे दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९०२ में मैडम क्यूरी ने रेडियम की खोज की। रदरफोर्ड और नील्स बोर ने परमाणु-रचना सम्बन्धी सिद्धान्त प्रस्तुत किये। सोड़ी ने समस्थानिकों की घोषणा की। परमाणु को सफलतापूर्वक तोड़ा जा सका। एलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान, पोजिट्रान और मेसान कणों की खोज हुई। पुरानी मान्यताएँ एक-एक करके टूटती गयीं। फर्मी के प्रयोगों के और आइन्सटाइन के सिद्धान्तों के फलस्वरूप परमाणु शक्ति का जन्म हुआ। जूलियट और क्यूरी के प्रयोगों द्वारा तत्वान्तरण अर्थात् एक तत्व का दूसरे में बदलना भी सम्भव हो सका। परमाणु शक्ति से परमाणु बम बना, जिसने पलक मारते ही द्वितीय महायुद्ध का अन्त कर दिया। उसके पश्चात् हाइड्रोजन बम, नाइट्रोजन बम और कोबाल्ट बम बनाये गये।

संसार के बड़े-बड़े राष्ट्रों में नये आणविक अस्त्रों के निर्माण की होड़ लगी है। नाना प्रकार के प्रक्षेप्यास्त्रों तथा अन्तरिक्ष यानों के लिये ईंधन व अन्य समस्याओं को हल करने के लिये नये-नये यौगिक बनाये जा रहे हैं और इस प्रकार रसायनशास्त्र तीव्र गति से प्रगति कर रहा है।

सितारों से आगे

[शेष पृष्ठ ४५ का]

पोटासियम, सोडियम, आइरन तथा टाइटेनियम के भी धात्विक तत्त्व पाये जाते हैं। इन गैसों से अति क्षीण प्रकाश आता है जिससे यह भी सिद्ध होता है कि इनका ताप परम शून्य अर्थात् अत्यधिक शीत पर है। अतः वहाँ की उष्ण और शीत परिस्थिति का भी इससे ज्ञान होता है। ऐसे कणों को प्रकाश जज्ब करने के लिए आवश्यक है कि वे अकल्पनीय रूप से हलके हों, कम से कम घनत्व के हों। अनुमान है कि वह घनत्व इतना विरल होगा जो एक घन इंच में २० लाख कण समा जायें। इसी दृष्टि से प्रत्येक कण का व्यास भी एक इंच का छः लाखवाँ भाग होना चाहिए।

इन गैसीय बादलों की परावर्तन शक्ति भी विलक्षण होनी चाहिए। सम्भव है, वे कण लम्बाकार तथा हिम जैसे चमकीले होंगे। उन कणों में अमोनिया, मीथेन, कार्बन तथा जलकण भी हो सकते हैं। साथ ही वे समस्त कण प्रबल चुम्बकीय आकर्षण से प्रभावित अवश्य होंगे। जो कुछ भी है, तारों से बाहर की इस दुनिया के अभी अनेक रहस्य अनबूझे पड़े हैं। एक समय तो वह भी था जब इस विषय में सर खपाना व्यर्थ और असाध्य समझा जाता था। अब रेडियो-दूरदर्शी ने उस विवशता के बन्धन तो काट ही दिये हैं और जितना भी अब तक ज्ञात किया जा सका है, वह कोई न्यून उपलब्धि तो नहीं कही जा सकती ! ●

जमाने की अजब चाल

प्रयोग किये जा रहे हैं कि सड़कें बनें तो मिट्टी की नहीं, स्टील की और कारें बनें तो स्टील की नहीं, प्लास्टिक की। एक जमाना था जब प्लास्टिक की खिलौना-कारों से बच्चों को बहलाया जाता था। पश्चिम जर्मनी के लिवर्कुसन स्थान से गुजरती हुई एक सड़क का डेढ़ मील से भी अधिक लम्बा टुकड़ा एक ही दिन में स्टील का बना देने का सफल प्रयोग किया गया है। पहले से तैयार किये हुए स्टील के चौकों को भूमि पर बिछा दिया जाता है और इन्हें अन्तर्भूमि (सब-साइल) की भी आवश्यकता नहीं रहती। मोटरों के पहिये स्टील की सड़क पर फिसलें नहीं, इसके लिए सतह को रेगमाल जैसी खुरदरी रखा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत में राकेट उड़ानें

हरीश अग्रवाल

गत २१ नवम्बर को दक्षिण भारत में त्रिवेन्द्रम के पास तुम्बा से प्रथम राकेट उड़ान ने भारत को सही अर्थों में अन्तरिक्ष युग में लाकर खड़ा कर दिया। अब तक हम अमरीका, रूस आदि देशों की राकेट उड़ानों के समाचार सुनते आये थे, लेकिन उस दिन से हम यह भी सुनने लगे कि भारतीय वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष अनुसंधान के लिए राकेट उड़ानों की कई शृंखलाओं का आरम्भ किया है। २१ नवम्बर के बाद से तुम्बा से अनेक राकेट उड़ानें हो चुकी हैं।

तुम्बा से हो रही राकेट उड़ानें शीतकालीन प्रयोगों के लिए हैं और इनमें संसार के वैज्ञानिकों की दिलचस्पी है। इन प्रयोगों में अमरीका, रूस, फ्रांस, इंगलैंड, जापान, अर्जेन्टाइना आदि देश सहयोग कर रहे हैं। अमरीका के नेशनल एयरोनॉटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन (NASA नासा) के साथ भारतीय परमाणु शक्ति विभाग का दिसम्बर, १९६२ में एक समझौता हुआ था, जिसके अनुसार नासा ने चार नाइक-एपेक (Nike Apache) राकेट और फोटो लेने की सामग्री भारत को दी। नासा ने उन भारतीय वैज्ञानिकों को भी प्रशिक्षित किया जो तुम्बा में राकेट उड़ान कर रहे हैं।

तुम्बा का महत्व

मौसम तथा अन्तरिक्ष की जानकारी के लिए तुम्बा को ही राकेट-अड्डा क्यों चुना गया, यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है। भारत ने इस केन्द्र से अन्य देशों को वैज्ञानिक महत्त्व के अन्तरिक्ष प्रयोग करने की अनुमति दी है। संयुक्त राष्ट्र संघ का एक दल तुम्बा में राकेट उड़ानें देख रहा है और यह प्रस्ताव है कि तुम्बा केन्द्र को राष्ट्र संघ के संरक्षण में लाया जाय।

तुम्बा को राकेट-अड्डा चुनने का एक कारण यह भी था कि यह भूमध्य रेखा के पास तो है ही, यह चुम्बकीय भूमध्य रेखा पर भी पड़ता है। वैसे तो भारत में पृथ्वी की भूमध्य रेखा कन्याकुमारी से गुजरती है लेकिन कन्याकुमारी को अड्डा नहीं चुना गया क्योंकि इस चयन में अनेक वैज्ञानिकी समस्यायें सामने थीं, जिन्हें सुलझाना जरूरी था। उदाहरणतः मौसम विज्ञान की समस्याओं का अध्ययन तो भूमध्य रेखा पर हो सकता था लेकिन कुछ समस्याएँ ऐसी हैं जिसका सम्बन्ध पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र से है। इन समस्याओं का अध्ययन करने के लिए 'चुम्बकीय भूमध्यरेखा' (magnetic equator) पर होना जरूरी है। यद्यपि कन्याकुमारी भौगोलिक भूमध्यरेखा के पास है लेकिन वह चुम्बकीय भूमध्यरेखा से दूर है।

पृथ्वी की भूमध्यरेखा और चुम्बकीय भूमध्यरेखा में अन्तर इसलिए है कि पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की धुरी इसके घूमने की धुरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से नहीं मिलती। उदाहरणार्थ, उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव पर नहीं है। वास्तव में उत्तरी चुम्बकीय ध्रुव उत्तरी ध्रुव से ९१० किलोमीटर दूर है और कनाडा के उत्तरी तट के पास है।

परमाणुशक्ति विभाग द्वारा अन्तरिक्ष अनुसंधान के लिए भारतीय राष्ट्रीय समिति की स्थापना की गयी जिसके अध्यक्ष डा. विक्रम साराभाई हैं। इस समिति ने केरल सरकार के सहयोग से त्रिवेन्द्रम से लेकर अलेप्पी तक उपयुक्त स्थान की खोज की। यह स्थान चुम्बकीय भूमध्यरेखा के निकट होने के अलावा ऐसा भी होना चाहिए था जहाँ राकेट छोड़ने की सभी सुविधाएँ उपलब्ध हो जातीं। इस चयन में सबसे महत्त्वपूर्ण बात राकेट की उड़ान के समय तट के निवासियों और समुद्र में मछेरों की सुरक्षा की थी। इनसब बातों को देखते हुए तुम्बा को सबसे उपयुक्त स्थान समझा था। यहाँ मछेरों और तटीय निवासियों की संख्या भी कम थी। फ़िर भी तुम्बा में राकेट अड्डा स्थापित करने के लिए अनेक परिवारों, शिक्षा संस्थाओं और धार्मिक संस्थानों को असुविधा हुई। भारत में एक नये वैज्ञानिक प्रयोग को जन्म देने और केरल में वैज्ञानिक गतिविधियों का केन्द्र बनाने के उद्देश्य से इन असुविधाओं को सहन करना अनिवार्य भी है।

असाधारण सुविधाएँ

डा. साराभाई का कहना है कि मौसम विज्ञान और वायुमण्डलीय विज्ञान की दृष्टि से तुम्बा वैज्ञानिकों को असाधारण सुविधाएँ प्रदान कर रहा है। इस समय दो बड़े अन्तर-राष्ट्रीय वैज्ञानिक अभियान चल रहे हैं—अन्तरराष्ट्रीय हिंद महासागर अभियान और अन्तरराष्ट्रीय शांत सूर्य वर्ष। इन दोनों अभियानों के लिए भारतीय वैज्ञानिक दल और अन्तरराष्ट्रीय दल तुम्बा में उपलब्ध सुविधाओं का उपयोग कर रहे हैं। इस प्रकार अब तुम्बा अन्तरराष्ट्रीय वैज्ञानिक मानचित्र पर आ गया है।

अमरीका और रूस द्वारा की गयी अन्तरिक्ष उड़ानों को देखते हुए भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम अभी छोटा ही कहा जायेगा क्योंकि अब चन्द्रमा, मंगल और शुक्र तक राकेट भेजे जा रहे हैं। भारतीय मौसम सूचक राकेट कार्यक्रम का पूरक उद्देश्य अन्तरिक्ष में ४० से २०० किलोमीटर के क्षेत्र का अध्ययन करना है। गुब्बारों से ४० किलोमीटर की ऊँचाई तक अध्ययन किया जा सकता है और कृत्रिम भू-उपग्रह २०० किलोमीटर से अधिक की ऊँचाई पर संतोषजनक रूप से घूम सकते हैं, जहाँ पृथ्वी के वायुमंडल का प्रतिरोध बहुत कम होता है। ४० से २०० किलोमीटर का यह क्षेत्र उन कुछ प्रक्रियाओं को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है, जिनका हमारे मौसम पर प्रभाव पड़ता है। अयनमंडल (Ionosphere) भी इसी क्षेत्र में आता है, जिससे हमारे रेडियो पर शार्टवेव कार्यक्रमों का प्रसारण सम्भव होता है। इसके अलावा चुम्बकीय भूमध्यरेखा पर अयनमंडल में बहुत ऊँची शक्ति की विद्युतधारा होती है, जो पश्चिम से पूर्व को बहती है और उसे एलैक्ट्रोजेट (Electrojet) कहते हैं।

प्रथम कड़ी समाप्त

इस लेख को लिखने के समय तक तुम्बा में राकेट उड़ानों की प्रथम कड़ी समाप्त हो चुकी है, जिसके अन्तर्गत तीन राकेट उड़ानें की गयीं। पहली २१ नवम्बर को, दूसरी ८ जनवरी को और तीसरी १२ जनवरी को। पहली राकेट उड़ान के समय सभी की उस प्रयोग में बड़ी दिलचस्पी रही क्योंकि भारतीय भूमि से एक महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक अध्ययन आरम्भ होने वाला था। तुम्बा में सैकड़ों दर्शकों की निगाहें उस समय ऊँची उठ गयीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब २७ फुट लम्बा प्रक्षेपास्त्र रात के आकाश में रिक्ष में १८० किलोमीटर की ऊँचाई तक उठा और उसने चांदनी में चमकते नारंगी रंग के सोडियम वाष्प छोड़े। राकेट उड़ान से पहले मौसम खराब था लेकिन बाद में ठीक हो गया। कन्याकुमारी, कोडाइकनाल, कोत्तयम और पलयम कोट्टई में चार कैमरा स्टेशन स्थापित किये गये थे। इस उड़ान का मुख्य उद्देश्य कैमरा स्टेशनों से सोडियम वाष्प के चित्र लेकर वायुमंडलीय हवाओं को मापना था। राकेट छोड़ने से पूर्व भारतीय नौसेना की दो गश्ती नावों ने तुम्बा के आस-पास समुद्र में चेतावनी देकर क्षेत्र को साफ किया। विमानवाहक पोत आई. एन. एस. विक्रांत से एक विमान ने क्षेत्र के साफ होने की पल-पल की सूचना दी। उड़ान के बाद परमाणु शक्ति आयोग के अध्यक्ष डा. भामा ने पत्रकारों के समक्ष बोलते हुए फ्रांस और अमरीका के वैज्ञानिकों को उनकी सहायता के लिए धन्यवाद दिया। उन्होंने बताया कि तुम्बा-अड्डा अन्तरराष्ट्रीय प्रयोगों के लिए राष्ट्रसंघ को अर्पित कर दिया गया है। डा. भामा ने आशा प्रकट की कि अन्य देश इस सुविधा का उपयोग उठायेंगे।

दूसरी उड़ान

तुम्बा से दूसरी राकेट उड़ान ८ जनवरी को हुई और यह पहली उड़ान से अधिक सफल रही। इस बार चार कैमरा स्टेशनों ने जो चित्र लिए, वे भी बड़े साफ आये। इस प्रयोग का उद्देश्य ऊपरी वायुमंडल का भी ताप मापना था। इस बार विदेशी वैज्ञानिकों ने तुम्बा के राकेट-अड्डा चुने जाने की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि भविष्य में यहाँ से होने वाली उड़ानें और भी अधिक सफल होंगी।

तीसरी उड़ान

तीसरी उड़ान १२ जनवरी को हुई और प्रथम कड़ी की यह अन्तिम उड़ान थी। उड़ान योजना के डायरेक्टर श्री मूर्ति ने बताया कि तुम्बा से उड़ान के साथ-साथ करांची से भी पाकिस्तान राकेट छोड़ने वाला था, लेकिन पाकिस्तान ने सूचित किया कि वह उड़ान के लिए तैयार नहीं था।

तुम्बा में इन राकेट प्रयोगों के आरम्भ होने के साथ-साथ यह भविष्यवाणी की जा सकती है कि अनेक नयी और महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजें भारतीय वैज्ञानिक कर सकेंगे। कहावत है कि यदि कोई काम अच्छी तरह शुरू हो जाय तो समझो आधा समाप्त हो गया। तुम्बा के प्रयोगों की शुरूआत भी अच्छी तरह हो गयी है तो आशा करनी चाहिए कि इनका अन्त भी पूर्ण सफल होगा।

हाँसी गले की फाँसी

सचमुच ऐसी हाँसी तब जानलेवा बन जाती है जब वह बन्द न होने वाली हिचकियों में बदल जाती है। अनेक में से कुछ उदाहरण गिनाये जा सकते हैं। एक फौजी अफसर को हँसी के गोलगप्पों से हिचकियों की ऐसी किक लगायी कि छह महीने, दिन-रात हिचकियाँ चलती ही रहीं और अन्त में जान लेकर ही छोड़ा। एक महिला ४७ दिन तक और दूसरी महिला तीन साल तक हिचकियों के हिचकोलों में झूलती रहीं। इन्हें शत प्रतिशत मिटाने का इलाज अभी विज्ञान के पास नहीं है; अतः कुछ प्रचलित नुस्खे इस प्रकार नोट किये जा सकते हैं :—कानों को अंगुलियों से भींचे रहिये, दो गिलासों से एक साथ पानी पीजिए, उलटी गिनती गिनिये, साँस रोक कर १०० तक सीधे गिनिये कर्णाग्र (कानों की लटकती लौ) चुटकी में दबाते हुए गोल घूम जाइये अथवा पैसे को बर्फ पर ठण्डा करके गर्दन पर दबाये रहिए। किसी न किसी में सफलता मिलेगी ही!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-क्लब

प्यारे बच्चो,

यह अंक प्रेस में ही था कि एक अनहोनी घटना घटित हो गयी।

भारत ही क्यों, संसार भर उससे स्तब्ध रह गया। भारत का लाडला और बच्चों का प्यारा चाचा नेहरू अचानक यों चल दिया मानो किसी रसभरी कहानी का सूत्र ही टूट कर रह गया हो—खो गया हो!

२७ मई ही वह अभागा दिन था न? उससे अगली रात को सोने वालों ने यह कल्पना भी न की होगी। वह रात नेहरूयुग की अन्तिम रात थी। चाचा नेहरू बस, यों ही चल दिये मानो भरी सभा से उठकर दो मिनट के लिये निजी कक्ष में गये हों!

उधर वो गये, इधर बच्चों की यह फुलवारी उनकी राह तकती ही रह गयी। तभी से यह बराबर सूनी-सूनी, उजड़ी-उजड़ी है। उदास नजरें हैं कि नेहरू को खोजे जा रही हैं और निराश भटक रही हैं। मन बार-बार कहता है कि वे गये सो अब न आयेंगे लेकिन हृदय आज मन से रूठा हुआ है और मन की बात मान ही नहीं रहा! यह तो रस्सा तुड़ा कर भाग जाना चाहता है, उसके पीछे जिसकी आज याद भर रह गयी है।

किन्तु·····प्यारे बच्चो, तनिक रुको, सोचो और समझो। विधि का विधान कैसा भी क्रूर हो, सहना तो पड़ेगा ही! तो, जब सहना ही है, तब हिम्मत हारना कैसा? विधि और उसका विधान भी एक बार तो देख लें कि उन्हें भारत के जिन नौनिहालों से वास्ता पड़ा है, उनमें बच्चा-बच्चा आज जवाहर है। नेहरू का शब्द-शब्द और उनका लिखा अक्षर-अक्षर अनन्त काल तक यह प्रेरणा देता रहेगा कि जियो तो देश की मिट्टी में और मरो तो भी वतन की खाक में।

तो आओ, जुट जाएँ नेहरू के अधूरे कार्यों को पूरा करके उनका सच्चा स्मारक बनाने में। आने वाला १४ नवम्बर वह पहला बाल दिवस होगा जब नेहरू सशरीर नहीं, सच्ची स्मृति के रूप में हमारे बीच होंगे।

नेहरू की पुण्य-स्मृति में तुम्हारे साथ ही,

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ५१ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

निरंजनप्रकाश माथुर (३६१६) पुष्कर, नरेश कुमार मजीठिया (७५५६) अमृतसर, कु० शीला गोयल (१००३६) जबलपुर।

द्वितीय पुरस्कार

बृजेश्वरप्रसाद शर्मा (३६७२) ललितपुर, शैलेन्द्रनाथ पाराशर (४७१८) आगरा, रणजीतसिंह (४७२४) नई दिल्ली, जागेश्वरप्रसाद शर्मा (५३३६) ललितपुर, अमूल्यचरण (६०४६) गोरखपुर, राजेन्द्र-कुमार कठरया (१२६१४) ललितपुर।

तृतीय पुरस्कार

रमेशचन्द्र शर्मा (२७६८) कोटा, दिनेशकुमार बर्नवाल (७०६१) गोरखपुर, सुरेशकुमार गुप्ता (७१६०) अमृतसर, पुरुषोत्तमकुमार सूरी (७३४१) जगदलपुर, विजयकुमार (७६६८) अमृतसर, अशोक भटनागर (६६६१) मथुरा, कु. कुन्तल राठौर (१०१६१) आगरा, हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१) लखनऊ।

कूपन प्रतियोगिता संख्या ५३

नाम·····

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब के नये सदस्य

रश्मीन्द्रनाथ
(स. सं. ८६१)

लक्ष्मण पोद्दार
(स. सं. २७२८)

कुलदीपसिंह भाटिया
(स. सं. ४५३९)

सुन्दरश्याम छिब्बर
(स. सं. ४६१३)

८४९८ वीरेन्द्र (१५) बिलासपुर, ९९ कु. नीजिमा (४) झाबुआ, ८५०० सतीश (१५) बेटला, १ कु. शशिबाला (१२) अलीगढ़, २ रामकृष्ण (१५) छोटेगाँव, ३ हरिदास (१३) नाथ-डारा, ४ विजयकुमार (१५) चण्डीगढ़, ५ महेशचन्द्र (१५) भोगाँव, ६ प्रमोदकुमार (१२) उत्तरकाशी, ७ राधेश्याम (१६) राँची, ८ कु. शोभारानी (१६) लश्कर, ९ वीरेन्द्रकुमार (१४) अलीगढ़, १० दिनेशप्रसाद (१४) सहरसा, ११ त्रिभुवनप्रसाद (११) रतनगढ़, १२ विद्याभूषण (१७) मेरठ, १३ गिरधारीलाल (१५) शक्करबस्ती, १४ हरिश्चन्द्र (१४) इलाहाबाद, १५ चन्द्र-भाल (१३) जरवनियाँ, १६ राजेन्द्र (१६) अटरू, १७ शिवकुमार (१४) जबलपुर, १८ प्रकाशचन्द्र (१५) विदिशा, १९ अरुण (१२) नरसिंहपुर, २० रवीन्द्रकुमार (१३) धनबाद, २१ सतीश (१५) बर्नपूर, २२ अजीत (१५) जबलपुर, २३ शरदचन्द्र (१६) वडाली, २४ अमितकौशिश (१०) अम्बाला, २५ बद्रीप्रसाद (१५) घुधली, २६ महेशकुमार (१५) मेरठ, २७ शत्रुघ्नप्रसाद (१५) नौबतपुर, २८ जेठमल (१७) बीकानेर, २९ सुधीरकुमार (१३) लाड़नूं, ३० कशमीरीलाल (१६) रोहतक, ३१ प्रदीपकुमार (१२) लश्कर, ३२ वेदप्रकाश (१४) कोटा, ३३ अफजलमासूद (१५) इलाहाबाद, ३४ श्रीकान्त (१७) हरदोई, ३५ राजेन्द्रविजय (१४) भोपाल, ३६ नन्दकिशोर (१४) सहजनवां, ३७ वीरबहादुर (१४) गया, ३८ रामबली (१४) गंगौली, ३९ विन्ध्याचलप्रसाद (१८) डालमियाँनगर, ४० ब्रजेन्द्रप्रसाद (१८) फैजाबाद, ४१ शचिन्द्रप्रसाद (१५) लोहारदगा, ४२ सुरेशचन्द्र (१४) पुणें, ४३ मोहन (११) सलनी, ४४ चैतन्य (१३) कानपुर, ४५ सुनीलकुमार (२०) मुजफ्फरपुर, ४६ सरबजीत (१२) साकची, ४७ हरिसेवक (१७) शिवपुरी, ४८ ओमप्रकाश (१४) शिवपुरी, ४९ एस. पी. गुत्तीकर (१६) वाराणसी, ५० दिनेश (१५) सेवरही, ५१ मल्लिकार्जुन (१३) बम्बई, ५२ हरकचन्द्र (१६) गुलाबपुरा, ५३ विनयकुमार (१५) लहेरियासराय, ५४ उमेशचन्द्र (११) आरा, ५५ एस. पी. खेतान (११) झंझरपुर बाजार, ५६ उमेश्वरप्रसाद (१६) सिमलिया, ५७ अनिलकुमार (९) दिल्ली, ५८ कु. पुष्पलता (१७) मेरठ, ५९ समरेश (१५) ससराम, ६० जगदीशलाल (१५) चित्तौड़गढ़, ६१ राजेन्द्र (१६) कूड़ाघाट, ६२ राजनारायण (१६) बड़हरा, ६३ अशोककुमार (१४) सेवढ़ा, ६४ ललितकुमार (१२) आगरा, ६५ भुवनेश्वरनाथ (१७) गोरखपुर, ६६ सुशीलकुमार (१५) बिलासपुर, ६७ मंगलप्रसाद (१६) मन्दसौर, ६८ सुरेश-कुमार (१५) कलकत्ता, ६९ सुभाषचन्द्र (१४) उमरी, ७० अरविन्दकुमार (१३) रतनपुर, ७१ रमेशचन्द्र (१६) मेरठ, ७२ जगजीत (१२) पलामू, ७३ कु. नीमता (१४) ग्वालियर, ७४ शिवचरण (७) खोचवां, ७५ नवकुमार (११) ग्वालियर, ७६ नन्दकिशोर (१४) बिहटा, ७७ तपनकुमार (११) डाल्टनगंज, ७८ देवव्रत (१४) राँची, ७९ नन्दनन्दन (१७) लखनऊ, ८० कु. सुनीता (१०) जमशेदपुर, ८१ कुलदीपकुमार (१५) आगरा, ८२ कु. ओमलता (१८) जमशेदपुर, ८३ रामबिहारी (१९) अरेराज, ८४ श्रीकान्त (१६) अरेराज, ८५ रिपुदमनकुमार (१६) कानपुर, ८६ वीरेन्द्रकुमार (१६) कानपुर, ८७ अशोककुमार (१७) भटिण्डा, ८८ ओमप्रकाश (१४) वाराणसी, ८९ दर्शनलाल

अरविन्दकुमार राज्ञ
(स. सं. ४८५३)

श्यामसुन्दर
(स. सं. ४९२८)

सत्यपाल अग्रवाल
(स. सं. ५३२३)

प्रदीप मेहता
(स. सं. ६९४९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१६) सहारनपुर, ९० राजकुमार (१०) धनबाद, ९१ देवीप्रसाद (१२) डिगबोई, ९२ रामनारायण (१४) बम्बई, ९३ धर्मानन्द (१४) भांतड़, ९४ रामगोपाल (१५) मुकुन्दगढ़, ९५ युद्धवीर (१४) नईदिल्ली, ९६ मुकुट (१६) भाटापारा, ९७ दयाजीत (१५) अनिशाबाद, ९८ राजकुमार (१४) दानापुर, ९९ पुरुषोत्तमलाल (१६) विसाऊ, ८६०० जवाहर (१५) बम्बई, १ नरेशकुमार (१३) भोपाल, २ शिवजी (१५) सिन्दरी, ३ कु. किरनबाला (१३) इलाहाबाद, ४ कु. मायादेवी (१२) कानपुर, ५ शान्तनु (७) झाँसी, ६ मुकेशकुमार (८) थानेसर, ७ निरमल-प्रकाश (४) कुरुक्षेत्र, ८ नानाजी (१६) आद्रा, ९ नेमीचन्द (१५) डोंगरगाँव, १० सुमनकुमार (११) कलकत्ता, ११ राकेशचन्द्र (१३) गोरखपुर, १२ प्रफुल्ल (१५) ब्रजराजनगर, १३ दिनकर (१७) भावनगर, १४ वेदप्रकाश (१४) डाल्टनगंज, १५ कु. सरोज (११) बाजपुर, १६ अमरनाथ (१७) सीतापुर, १७ विरेन्द्रकुमार (१४) कलकत्ता, १८ अकबालअहमद (१४) जंगीपुर, १९ जिनेन्द्रकुमार (१५) डोंगरगाँव, २० आदित्यकुमार (१९) जबलपुर, २१ मोतीलाल (१६) कानपुर, २२ दामोदर (१४) गहमर, २३ रामाधार (१९) परईया, २४ राधारमण (१५) पडरौना, २५ विनोदकुमार (१७) कानपुर, २६ विनोदकुमार (१५) नादरगंज, २७ रामकिरटो (१५) ककरिया, २८ रामराज (१७) धौलाना, २९ उमाकुमारी (११) बाराबाजार, ३० असीसकुमार (९) जैटवारा, ३१ जगदीश (१२) ब्यावर, ३२ सुभाषचन्द्र (१५) कुरुक्षेत्र, ३३ भगवानदास (१७) कैथल, ३४ नरेन्द्रदेव (१०) फैजाबाद, ३५ दुर्गालाल (१७) ब्यावर, ३६ शक्तिनाथ (१५) आश्रमवृन्दावन, ३७ गोवर्धनलाल (१५) उज्जैन, ३८ अशोककुमार (१३) वाराणसी, ३९ अशोककुमार (१४) पिपरिया, ४० प्रेमचन्द (१५) सुन्दरगढ़, ४१ दिनेशचन्द्र (१७) शिवपुरी, ४२ विनोदकुमार (१५) नईदिल्ली, ४३ प्रशान्तनन्द (१२) गया, ४४ पुरुषोत्तमदास (१४) भाटापारा, ४५ कु. पुष्पा (६) आगरा, ४६ शीतकुमार (१६) डिगबोई, ४७ बाधूमल (१६) कटनी, ४८ रामआसरे (१५) जबलपुर, ४९ नीलमनीनाथ (१८) सिमलिया, ५० ब्रजरतन (१६) जयपुर, ५१ कैलाशचन्द्र (१५) उज्जैन, ५२ भानुप्रकाश (१६) बजरंगढ़, ५३ रामविनोद (२०) बलुआ, ५४ विनीतकुमार (१४) कलकत्ता, ५५ अशोककुमार (१६) मुजफ्फरपुर, ५६ रघुनाथ (१३) चंडीगढ़, ५७ महेशकुमार (१३) रतनगढ़, ५८ सन्तकुमार (१७) थानेसर, ५९ राधेश्याम (१९) एका, ६० शरणनारायण (१६) जयपुर, ६१ रमेशचन्द (२१) अनियां, ६२ त्रिपुरारी (१६) वाराणसी, ६३ राकेशचन्द्र (१३) जबलपुर, ६४ नगीनलाल (१७) डूंगरपुर, ६५ कैलाशप्रसाद (१०) धनबाद, ६६ हरीश्चन्द्र (१३) मथुरा, ६७ विश्वनाथ (१६) सागर, ६८ आनन्द (१२) नरसिंहपुर, ६९ भरतसिंह (११) सागर, ७० प्रेमनारायण (१५) जबलपुर, ७१ रामनाथ (१६) कानपुर, ७२ ज्योतिप्रकाश (२०) सिउड़ी, ७३ रमेशचन्द्र (१५) आगरा, ७४ अनिलकुमार (१४) जयपुर, ७५ गोपेन्द्रप्रसाद (१७) मुजफ्फरपुर, ७६ के. आरिफ (१५) अमरपुर, ७७ रामदयाल (१५) राजगढ़, ७८ श्रीरामसिंह (१५) उतरौत, ७९ अजयकुमार (१४) कानपुर, ८० विजयगोपाल (९) तिलौथु, ८१ जगदीशप्रसाद (१३) सिमराही, ८२ सजनकुमार (१४) सुपौल, ८३ लाजपत (११) बम्बई, ८४ प्रदुम्नप्रसाद (१५) असरगंज।

राममूर्ति अग्रवाल
(स. सं. ६६९५)

अजयस्वरूप
(स. सं. ७०५४)

ओमप्रकाश
(स. सं. ७११६)

राजेन्द्रकृष्ण
(स. सं. ८१०३)

काल्विन एन.के. दास
(स. सं. ८२४९)

जगदीशप्रसाद गुप्ता
(स. सं. ८२६२)

कौशलेन्द्र
(स. सं. ९७५४)

अवतारसिंह
(स. सं. १०६६६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५३

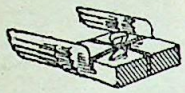

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : १५ जुलाई

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५९ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५३ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर १५ जुलाई तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५३ के प्रश्न

१. भूमिगत जल की अधिक से अधिक गहराई लगभग कितनी है और उससे अधिक गहराई पर क्या स्थिति रहती है ?

२. थर्मिस्टर (Thermister) क्या है, इसकी क्या विशेषता है ?

३. फाउन्टेन पेन का आविष्कार कब, किसने किया ?

४. सूर्य के प्रकाश में भी आकाश कहाँ से काला दीखेगा और क्यों ?

५. प्रो. लिबी का नाम किसलिए प्रसिद्ध है ?

६. केवल दो समान्तर रेखाओंयुक्त चतुष्कोण को रोम्बस (rhombus) कहेंगे, ट्रपेजाइड (trapezoid) अथवा ट्रपेजीयम (Trapezium) कहेंगे ?

७. चींटी के काटने पर किस द्रव के कारण जलन प्रतीत होती है ?

८. रासायनिक मिश्रण (mixture) तथा यौगिक (compound) के मुख्य दो अन्तर बताइए।

९. प्रायः ही हम मानो काँच से हाथ-पाँव साफ करते हैं, वह किस वस्तु से और किस प्रकार ?

१०. बीस मील की दूरी से दो मित्र आमने सामने एक दूसरे की ओर साइकिल पर १० मी. प्र. घ. की गति से मिलने के लिए दौड़ते हैं। उसी समय एक मक्खी १५ मी. प्र. घ. के वेग से एक साइकिल से दूसरी साइकिल के हेण्डल को आ-जाकर बार-बार तब तक छूती रहती है जब तक दोनों मित्र परस्पर मिल न जाएँ। बताइए, मक्खी को कुल कितनी यात्रा करनी पड़ती है ?

प्रतियोगिता संख्या ५१ के प्रश्नों के उत्तर

१. ग्रीक दार्शनिक थैलेस (Thales) ने, ई. पू. लगभग ६०० में।

२. रेडियोसक्रियता का माप है। एक क्यूरी उतने रेडियो-समस्थानिकों को कहते हैं, जिनमें प्रति सेकण्ड $३·७ \times १०^{१०}$ परमाणु विघटित होते हों।

३. ३० मकान हैं।

४. ० (शून्य) समूह वाले को।

५. स्टेलेक्टाइट (stalactite)

६. क्रमशः कारमोरेन्ट, ऊदबिलाव और रेमोरा।

७. अर्द्धचालक कहेंगे : ये जर्मेनियम, सिलिकन और इरीडियम के यौगिकों से बनाये जाते हैं।

८. नाटिलस नामक पनडुब्बी में, विवियन कुक ने, १९५८ में।

९. लगभग १८५ मील लम्बे-चौड़े क्षेत्र में। पिछला पूर्ण सूर्यग्रहण १५-२-१९६१ को स्टालिन ग्राड में पड़ा था।

१०. हेनरी केवेण्डिश ने १७९८ में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम्हारी कलम से—

बोल धरती, कितना पानी !

शिम्भूशरण (स. सं. १५०४)

'औ'र···धरती बोलती भी है !

किन्तु सुनने वाले ही सुनते हैं। जादू कम और विज्ञान अधिक, ऐसे इस ज्ञान के धनी कुछ ही लोग हैं। विभिन्न देशों के ऐसे गिने-चुने लोगों में हमारे देश का राजस्थान-निवासी भी एक व्यक्ति—पानीवाला महाराज—के नाम से प्रसिद्धि पा गया है। दूसरा उल्लेखनीय नाम है आयरलैण्ड के प्रोफेसर वैरेट का।

आज तो धरती के बाहर खड़े होकर धरती के भीतर छिपे हुए जल का पता लगाने के लिए वैज्ञानिक यंत्र और उपकरण बनाये जा चुके हैं; किन्तु कुछ ही वर्षों पूर्व तक तीन टाँगों की गुलेलनुमा Y आकृति की किसी भी पेड़ से तोड़ी हुई एक टहनी द्वारा जल की भविष्यवाणी करने वाला एक जादूगर ही समझा जाता था।

किस्सा एक आस्ट्रेलियाई कृषक का

यह किस्सा है आस्ट्रेलिया के एक छोटे से प्रदेश का और झुलसाती हुई गर्मियों के दिनों का। बादलों की ओर चातक-दृष्टि उठा-उठाकर हारे हुए कृषक अपने खेतों की दुर्दशा की कल्पना मात्र से काँप-काँप उठते थे। ऐसे में एक कृषक के यहाँ ठहरे हुए एक अतिथि ने कहा—'मुझे अपने खेत पर ले चलो; शायद प्रयत्न सफल हो जाए।'

दोनों व्यक्ति खेत पर पहुँचे। कन-कन से प्यासा खेत बूंद-बूंद को तरस रहा था। कृषक ने सोचा कि मेरा अतिथि कुछ न कुछ यन्त्र आदि से अपना काम शुरू करेगा, किन्तु उसे यह देखकर और भी निराशा हुई कि वह केवल एक टहनी लिए हुए ही आगे बढ़ा। जैसा कि ऊपर कहा है, उस टहनी का Y आकार में होना आवश्यक था। उसने उसकी दोनों भुजाएँ हाथों में थाम ली और निचली भुजा लटकाए हुए खेत की मेंड पर बढ़ता चला गया। कुछ आगे बढ़ा, कुछ पीछे हटा और २० मिनट भी न बीते होंगे कि ज्योंही हाथ में थमी टहनी नीचे को झुकी, उसने कहा—'यहीं खोद कर देखो, पानी मिलेगा।'

संशयपूर्ण मन से उसने मजदूर तो लगा दिए, किन्तु उसे महान आश्चर्य भी यह देख कर हुआ कि आठ फुट की गहराई पर पहुँचते ही पानी का सोता फूट पड़ा !

जादू नहीं, विद्या—तब की और अब की

इस विद्या का पारिभाषिक नाम रेब्डोमेन्सी (rhabdomancy) है। यह दो ग्रीक शब्दों के संयोग से बना है—रेब्डोस (*rhabdos*) अर्थात् छड़ी और मेण्टेरिया (*mantaria*) अर्थात् खोज। कुल मिलाकर अर्थ हुआ—छड़ी से खोजना। इसके लिए सरल शब्द वाटर-डाउजिंग (water dowsing) भी है और ऐसे जल-अन्वेषक को डाउजर (dowser) कहते हैं। यह अति प्राचीन कलाओं में से एक है और इसमें पारंगत होने वाले व्यक्ति अपने करिश्मों से लोगों को चमत्कृत करते ही रहे हैं। जिनमें तनिक भी सूझ-बूझ और ईश्वरदत्त अन्वेषक बुद्धि है, वे इस कला की साधना भली प्रकार कर लेते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान की कुशंका, प्रो. बैरेट का निराकरण

कुछ समय पूर्व तक विज्ञान इस विद्या को एक विज्ञान मानने में संकोच करता था। उसका कहना था कि हाथ की टहनी को चाहे जब झुकाया जा सकता है और उसी जगह पानी का निकल पड़ना केवल एक संयोग हो सकता है, नियम नहीं। प्रो. बैरेट ने इसका समाधान अनेक प्रयोगों द्वारा किया जिनमें निम्न प्रयोग उदाहरणस्वरूप हैं :—

उन्होंने अपने प्रयोग के लिए आयरलैण्ड के विकलो (Wicklow) नामक पर्वतीय क्षेत्र को चुना। उन्होंने यह भी निश्चयपूर्वक ज्ञात कर लिया कि मीलों दूर कहीं; कोई झरना आदि नहीं था; साथ ही, वहाँ की भूमि क्वार्ट्ज युक्त अति कठोर तथा पथरीली चट्टानों का ही मानो फर्श जैसी थी और प्रत्यक्षतः जल-प्राप्ति की सम्भावना से बहुत परे थी। प्रथम परीक्षण के लिए उन्होंने इंगलैण्ड से एक जल-अन्वेषक को बुलाया और अपनी कार-गुजारी दिखाने को कहा। लगभग एक घण्टे के परिश्रम के पश्चात् उसने एक स्थल की ओर इंगित किया। उस स्थल को प्रोफेसर ने अपने गुप्त लक्ष्य ही में रखा और दूसरी बार एक अन्य जल-अन्वेषक को अपनी कला दिखाने का अवसर दिया। उसने भी वही स्थल बताया। दोनों ने ही वही त्रिभुजाकार छड़ी का उपयोग किया था और दोनों की छड़ियाँ उस एक ही स्थल पर झुक पड़ी थीं। कहा खुदाई की गयी तो १४ फुट की गहराई पर ही उस पथरीली धरती ने पानी उगल दिया!

आखिर, रहस्य क्या है ?

विविध अनुमानों के बीच यह अनुमान अधिक विश्वास पा सका है कि भूमिगत जल की अदृश्य तरंगें विशेष प्रकार के विद्युत-स्फुरण तरंगित करती हैं जिन्हें अभ्यस्त लोग ही पहचान पाते हैं। वे विद्युत-स्फुरण दो विभिन्न धाराओं के रूप में छड़ी की एक-एक भुजा और शरीर के एक-एक पक्ष में प्रवाहित होती हैं और तीसरी भुजा पर संयुक्त होते ही मानो फ्यूज होकर छड़ी को झटके से झुका देती हैं।

जो कुछ भी है, धरती का पानी नापने-वालों की कला का लोहा मानने से इनकार नहीं किया जा सकता। यह इसलिए और भी सिद्ध होता है कि अनेक बड़े उद्योग-संस्थान ऐसे जल-अन्वेषी कलाकारों को सवेतन अपनी सेवा में नियुक्त रखते हैं और वे अपनी जादू की छड़ी से न केवल पानी ही, बल्कि धातु की परतें भी खोज निकालते हैं! आज तो विज्ञान ने भी मानो स्टेथोस्कोप द्वारा रोगी का हृत्स्पन्दन मापा जा रहा हो, उस प्रकार के विद्युतयंत्र बनाये हैं जो भूमिगत जल की तरंगों की धड़कन उनके कान तक तो पहुँचा दें!

आधुनिक पोशाक की पोशाक में मौत का जामा

टेरिलीन, नाइलॉन और नाइलेक्स की आधुनिक चमचमाती पोशाकें चकाचौंध किये हुए हैं। बड़े बड़े विज्ञापन इनकी आधुनिकता का बखान करते नहीं थकते। विज्ञान कुछ और ही कहानी कहता है। रसायनों तथा संश्लेषित पदार्थों से निर्मित ये कपड़े पलक मारते आग तो पकड़ ही लेते हैं और जान लेवा ही छूटते हैं, इन्हें पहने हुए स्कूटर, फिटफिट या कार में हवा से बातें करते हुए, जाते समय हजारों वोल्ट की बिजली हम उत्पन्न कर लेते हैं और किसी भी अभागे क्षण, शार्ट सर्किट द्वारा वह बिजली विस्फोट करके हमारी धज्जियाँ उड़ा सकती है। इसके अनेक उदाहरण जर्मनी के जाँबाज नौजवानों ने जान खोकर प्रस्तुत किये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

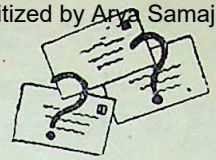

राजीवकुमार भटनागर (११३९५) दिल्ली

प्रश्न—प्रकाश की किरणें चलते-चलते मुड़ क्यों नहीं जातीं ?

उत्तर—अवश्य यह प्रकृति का नियम है कि प्रकाश सीधी ही रेखा में गमन करता है किन्तु वैज्ञानिकों ने इस नियम में से भी नया रास्ता निकाल लिया है और प्रकाश रेखाओं को तोड़ने-मरोड़ने में सफल हो गये हैं। कृत्रिम उपग्रहों में रखी जाने वाली यंत्रसज्जा के साथ-साथ चन्द्रमा के फोटो लेने और उन्हें पृथ्वी पर भेजने के लिए जो टेलीविजन कैमरे लगे रहते हैं उनके लिए इस नये रास्ते की आवश्यकता पड़ी है। उक्त यंत्रसज्जा के नीचे दबे हुए टेलीविजन कैमरों तक सीधा प्रकाश नहीं पहुँच सकता। अतः लाइट-पाइप (Light Pipe) नामक व्यवस्था द्वारा काँच-निर्मित कितने ही मोड़-तोड़ युक्त नलिकाओं की सहायता से प्रकाश किरणें परावर्तित होती हुई एक सिरे से प्रवेश करके दूसरे सिरे पर निकल आती हैं। यद्यपि यह वस्तु नवीनतम है, इसकी मूल एक शताब्दी पूर्व ब्रिटिश वैज्ञानिक ज्हान टिण्डल द्वारा दी जा चुकी थी।

दिलीप कोलाटकर (१६२१) किशनगंज

प्रश्न—विल-ओ-द-विस्प (Will-o-the wisp) **क्या है, कहाँ पाया जाता है ?**

उत्तर—लैटिन भाषा में इसे *ignis fatuus* अर्थात् मायावी प्रकाश कहते हैं। यह केवल मिथ्या प्रकाश है जो सड़ते-गलते कूड़ों के ढेर से, जलाशयों के निकट सीलन में, पोखरों में, कोयले की खानों तथा डामर-झील में स्वतः ही उठती मीथेन गैस द्वारा अग्नि का संयोग पाकर उत्पन्न होता है। प्रायः यह हाइड्रोजन फास्फाइड के संयोग से भी प्रज्ज्वलित हो उठती है। अज्ञानतावश इस गैस की उपस्थिति में बीड़ी-सिगरेट आदि जलाने पर यह भड़क उठती है। कोयला-खानों में तो विस्फोट का यही मुख्य कारण है। इस मायावी प्रकाश द्वारा अनेक लोगों की मृत्यु की ओर खिंचे जाने की दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। श्मशानों में भी फास्फाइड-मिश्रित अन्य गैसों के साथ यह पायी जाती है।

विष्णुभगवान अग्रवाल (५९९१) ग्वालियर

प्रश्न—वह कौनसी धातु है जो आरम्भ में अनोखी दिखती थी, भार में सबसे हलकी है और अब बिजली द्वारा उत्पन्न की जाती है ?

उत्तर—एल्यूमिनियम केवल १५० वर्ष पूर्व अपने आरम्भकाल में कौतूहलपूर्ण दृष्टि से देखी जाती थी। अधिक खोज करने पर ज्ञात किया जा सका था कि संसार में सबसे अधिक मात्रा में प्राप्य भू-स्थित तीन तत्त्वों में से एक यह भी है। बोक्साइट (Bauxite) खनिज के विद्युत्विश्लेषण द्वारा यह तैयार की जाती है। जहाँ कम से कम भार और अधिक मजबूती की आवश्यकता हो, वहाँ एल्यूमिनियम ही प्रयुक्त होती है।

प्रतापसिंह (६३०२) कटनी

प्रश्न—सृष्टि का वह वैचित्र्य कैसा है और कहाँ है, जहाँ अखण्ड हिमराशि के नीचे भी गर्म झरने पाये जाते हैं ?

उत्तर—अमरीका की टेक्सास और ए. एम. यूनिवर्सिटी से भेजे गये अभियान-दल ने दक्षिण ध्रुव के हिमसागरों की खोज और अध्ययन के पश्चात् जो अत्यन्त रोचक वर्णन दिये हैं, उनमें एक यह भी है कि बर्फ में १४ फुट गहरी खुदाई करने पर ऐसे विलक्षण झरने मिले हैं जो धुआँधार गर्म तो हैं ही, खारे से खारे समुद्रजल से भी दस गुने खारी हैं और उनसे गन्धक की तीव्र गन्ध भी उठती है। उनके स्रोत सक्रिय ज्वालामुखी माने जाते हैं।

रामचन्द्रसिंह (१०१३१) जमशेदपुर

प्रश्न—सबसे पहले पृथ्वी पर किस जीव की उत्पत्ति हुई ?

उत्तर—एक-कोशीय जीव प्रोटोजोआ (Protozoa) तथा अन्य एक-कोशीय शैवाल आदि। विगत मास के अंक में 'रसायन से जीवोत्पादन' लेख विस्तृत वर्णनयुक्त है।

कमल नारंग (५६३२) इलाहाबाद

प्रश्न—पृथ्वी पर किन्हीं भी दो बिन्दुओं के मध्य प्रकाश-गति का भाप सबसे पहले किसने, किस प्रकार किया ?

उत्तर—फ्रेन्च भौतिकविद् फीजो (Fizeau) ने १८४९ में ५½ मील की दूरी पर एक प्रकाशपुंज तथा इस ओर एक दर्पण रखकर उसने दाँतेदार पहिये को घुमाते हुए वह सफल प्रयोग किया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालूराम शर्मा (९९४४) चित्तौड़गढ़

प्रश्न—दृष्टि-स्थिरता क्या है, इसका उपयोग किस यंत्र द्वारा, किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर—हमारे नेत्रपटल पर १।१६ सेकण्ड से भी शीघ्रतर दिखायी जाने वाले विभिन्न दृश्य एक ही जैसे दिखते हैं, उस प्रभाव को दृष्टि-स्थिरता कहते हैं। अति तीव्र वेग से घूमने वाले यंत्रों, पुर्जों की गति मापने में इस सिद्धान्त का मुख्य उपयोग स्ट्रोबोस्कोप यंत्र द्वारा किया जाता है। विस्तृत वर्णन वि. लो. मार्च-६३ के अंक में प्रकाशित है।

लक्ष्मण (७६००) दिल्ली

प्रश्न—Zymase तथा Invertase क्या हैं ? टिप्पणी दीजिए।

उत्तर—ये एन्जाइम (enzymes) अर्थात् पाचक तत्त्व हैं। Zymase तो डेक्स्ट्रोज (Dextrose) को अल्कोहल तथा कार्बन डाइआक्साइड में परिणत करता है और (Invertase) शक्कर को ग्लूकोज तथा फ्रुक्टोज में परिवर्तित करता है।

विरधीचन्द्र अग्रवाल (७४०३) बिलासपुर

प्रश्न— $\begin{matrix} CH_2Br \\ | \\ CH_2Br \end{matrix}$ तथा $\begin{matrix} CH_3 \\ | \\ CHBr_2 \end{matrix}$ (इथिलीन डाइ-ब्रोमाइड तथा इथाइल ब्रोमाइड) में कार्बन, हाइड्रोजन तथा ब्रोमीन की संख्याएँ बराबर होने पर भी दोनों के नामों में अन्तर क्यों है ?

उत्तर—कार्बन की चेन तथा हाइड्रोजन और ब्रोमीन की संयोजन-विधि में परस्पर अन्तर होने के कारण।

धीरेन्द (१०५८४) विराटनगर

प्रश्न—पृथ्वी की धुरी किस चीज पर स्थिर है ?

उत्तर—धुरी है ही कहाँ ? काल्पनिक धुरी का आधार भी काल्पनिक ही होना चाहिए।

भरतकुमार (११११५) मिर्जापुर

प्रश्न—मैकेनिकल और हाइड्रालिक ब्रेकों में कौनसी उचित और क्यों होती है ?

उत्तर—हाइड्रालिक उत्तम है क्योंकि मैकेनिकल ब्रेकें जो केवल पुर्जों पर ही आधारित हैं, जल्दी टूटती, घिसती हैं। हाइड्रालिक ब्रेकों में वह सम्भावना न्यूनतम है।

गोपालराव पारेख (५१७२) खेडली (म. प्र.)

प्रश्न—गलगण्ड (goitre) रोग से विमुक्त होने के लिए क्या उपाय किया जाये ?

उत्तर—रोग की अवस्था, सामान्य, तीव्र तथा तीव्रतम के हिसाब से क्रमशः साधारण आयोडीन का अधिक उपयोग, विशिष्ट रेडियो सक्रिय आयोडीन का उपचार तथा अन्त में शल्य चिकित्सा का आश्रय कुशल चिकित्सक की देखरेख में लेना चाहिए।

पवनकुमार जैन (९१००) सरसावा

प्रश्न—रॉन्जन (Rontgen) कौन थे, कौनसे महत्त्वपूर्ण कार्य किए थे ?

उत्तर—विल्हेल्म कॉनरेड वान रॉन्जन (Wilhelm Konrad van Rontgen) १८४५-१९२३, जर्मन भौतिकविद् का नाम एक्स-किरणों की खोज करने के उपलक्ष्य में संसार प्रसिद्ध है। अन्य महत्त्व पूर्ण कार्यों में हैं:—१. ध्रुवित प्रकाश की विद्युत्-चुम्बकीय घूर्णन गति, २. गैसों की विशिष्ट उष्मा के विभिन्न अनुपात-निर्धारण, ३. मणिभों में ताप-संवहन। एक्स-किरणों की खोज के उपलक्ष्य में इन्हें १९०१ में भौतिकी का नोबुल पुरस्कार दिया गया था।

अयोध्याप्रसाद (७४९६) किशनगंज

प्रश्न—सिद्ध कीजिए कि पत्ती एक प्रयोगशाला है।

उत्तर—अवश्य है; सृष्टि की यह निजी प्रयोगशाला इतनी सम्पन्न और त्रुटिहीन है कि इसका जवाब खड़ा करना मानव के लिए सम्भव नहीं। सोचिए, जो पत्ती केवल जल, वायु और सूर्य के प्रकाश द्वारा समूचे वृक्ष के लिए प्रत्येक पोषण-तत्त्व उत्पादित करती रहे, अपने हरितवर्ण द्वारा मानव की दृष्टि को शीतलता तथा ताप से रक्षार्थ शीतल छाया प्रदान करे और वृक्ष के लिए अपना कार्य सम्पूर्ण करके बिना मोह, डाल से झर पड़े, उसकी तुलना में कौनसी कृत्रिम प्रयोगशाला ठहर सकती है !

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा के लिए प्रकाशित
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : 80 nP.
Book II.....Price : Re. 1·00
Book III.....Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to :

Sri Ram Mehra & Co.
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामबिहारीसिंह तोमर द्वारा लिखित

नवीन प्रकाशन

एम. ए. कक्षाओं के लिए

१.	सामाजिक मनोविज्ञान	१८·००
२.	ग्रामीण समाजशास्त्र	१५·००
३.	नागरिक समाजशास्त्र	७·५०
४.	हिन्दू विवाह एवं परिवार की समस्याएं	६·००
५.	सामाजिक सूक्ष्मदर्शी : व्यैक्तिक अध्ययन प्रणाली	१०·००
६.	सामान्य समाजशास्त्र : समाज, संस्कृति तथा व्यक्तित्व	१०·००
७.	सामाजिक सिद्धान्त : व्यक्तित्व का समाजशास्त्रीय अध्ययन	५·००
८.	व्यक्तित्व	१०·००
९.	भारतीय समाज, संस्कृति तथा संस्थाएं	प्रेस में*
१०.	भारतीय संस्कृति के मूलाधार	प्रेस में*

बी. ए. कक्षाओं के लिए

१.	सामाजिक मनोविज्ञान परिचय	१०·००
२.	समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग १ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)	प्रेस में*
३.	समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग २ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)	प्रेस में*
४.	समाजशास्त्र के मूल तत्त्व, भाग ३ (भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए)	प्रेस में*
५.	समाजशास्त्र के सिद्धान्त (राजस्थान, जोधपुर, पंजाब, मुजफ्फरपुर)	प्रेस में*
६.	सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब)	प्रेस में*
७.	सामाजिक नियन्त्रण एवं सामाजिक परिवर्तन (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब, राँची)	प्रेस में*
८.	समाजशास्त्र की प्रकृति एवं आधार (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)	प्रेस में*
९.	सामाजिक संरचना एवं सामाजिक गतिशास्त्र (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)	प्रेस में*
१०.	भारतीय जनता एवं संस्थाएं (आगरा, जबलपुर, भागलपुर)	प्रेस में*
११.	भारतीय समाज एवं संस्कृति (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)	प्रेस में*
१२.	भारतीय सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, काशी, पंजाब)	प्रेस में*
१३.	भारत की सामाजिक संस्थाएं (राजस्थान, जोधपुर)	प्रेस में*
१४.	तुलनात्मक सामाजिक संस्थाएं (गोरखपुर)	प्रेस में*
१५.	प्रारम्भिक ग्रामीण समाजशास्त्र	

*१५ जुलाई तक उपलब्ध

इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए

१.	माध्यमिक समाजशास्त्र	२·५०
२.	भारतीय सामाजिक संगठन	२·५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

29.7.89

विज्ञान-लोक

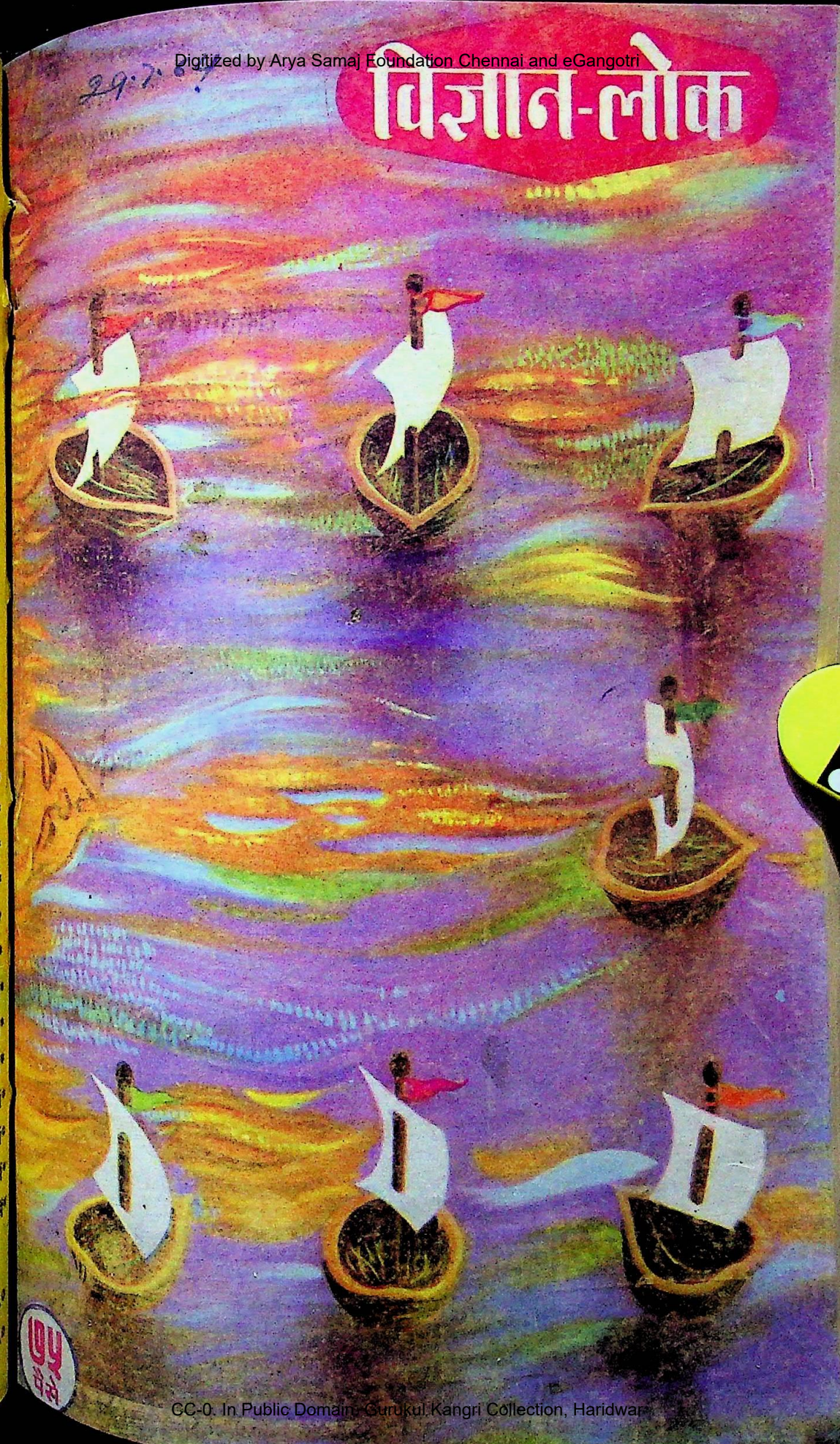

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िये

सागर-प्रवास के प्रारम्भिक प्रयास —डा. नरेन्द्रमोहन बंसल	३
खाल से चर्म तक —रमेशप्रसाद शर्मा	८
ये अजीब मछलियाँ —त्रिलोक मजूपुरिया	१२
मधुमेह —बी. मोहन	१५
घर्षण-प्रतिरोध —अवधबिहारीलाल	१९
π = ३.१४१५९२६५३५ .... —गुणाकर मुले	२३
एलेक्जेण्डर फ्लेमिंग —राजेन्द्रकुमार	२८
प्राणियों में अन्तर्प्रेरणा —कुमारी रेखा टण्डन	२१
पौधों के विकास में हारमोन्स —प्रेमचन्द श्रीवास्तव	३५
धातु-सन्धान —लक्ष्मणसिंह	३९
रेडियोकार्बन —जनार्दन वाजपेयी	४६
काँटों की दुनिया में —दिनेश चौहान	४९
लाभा —विनोदविहारी सक्सेना	५१

स्थायी स्तम्भ

ैज्ञानिक उपलब्धियाँ	३८
ैविचित्र संसार	४४
ैज्ञान क्लब	५५
नाम लो	५९
ुम्हारी कलम से	६०
ापके प्रश्न	६३

वर्ष ५

अंक ६

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा

अपनी बात

कैम्ब्रिज में अध्ययनरत, २५ वर्षीय मेधावी भारतीय छात्र, डा. जयन्त विष्णु नारलिकर ने गत मास ही अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की सीमा में प्रवेश प्राप्त किया है। केम्ब्रिज के नक्षत्रविद्या और प्रायोगिक दर्शनशास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान, प्रो. फ्रेड हॉयल के सहउद्योग से डा. जयन्त ने गुरुत्वाकर्षण के जिस नये सिद्धान्त पर अपना सारगर्भित लेख रॉयल सोसायटी के सम्मुख प्रस्तुत किया है, उसने आज के भौतिकविदों तथा गणितज्ञों को न केवल नया ही प्रकाश दिया है, बल्कि उन्हें चमत्कृत भी किया है।

समालोचकों के मत से डा. जयन्त के गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी इस नवीन सिद्धान्त को विज्ञान जगत में समाहित होते-होते समय लगेगा। न्यूटन और आइन्स्टीन के सिद्धान्तों को झकझोरने वाले इस सिद्धान्त पर अभी तो शंका-कुशंकाएँ भी उठेंगी और नये-नये परीक्षणों की श्रृंखला खुल पड़ेगी। डा. जयन्त का नवीन निष्कर्ष, प्रो. हॉयल के पूर्व-प्रतिपादित इस सिद्धान्त पर आधारित है कि आइन्स्टीन के मत से विपरीत, अनन्त विश्व में पदार्थ का नवसृजन अबाध चलता ही रहता है, अन्यथा पदार्थ शेष हो जाए तो गुरुत्वाकर्षण ही समाप्त हो जाए और फलतः सूर्य के प्रकाश तथा ताप की प्रखरता असह्य हो जाए।

गणितविद्या के इस वरद पुत्र से भारत का भाल और भी ऊँचा उठेगा, इसमें सन्देह नहीं और एतदर्थ इस गणितज्ञ को हमारा सस्नेह अभिनन्दन है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

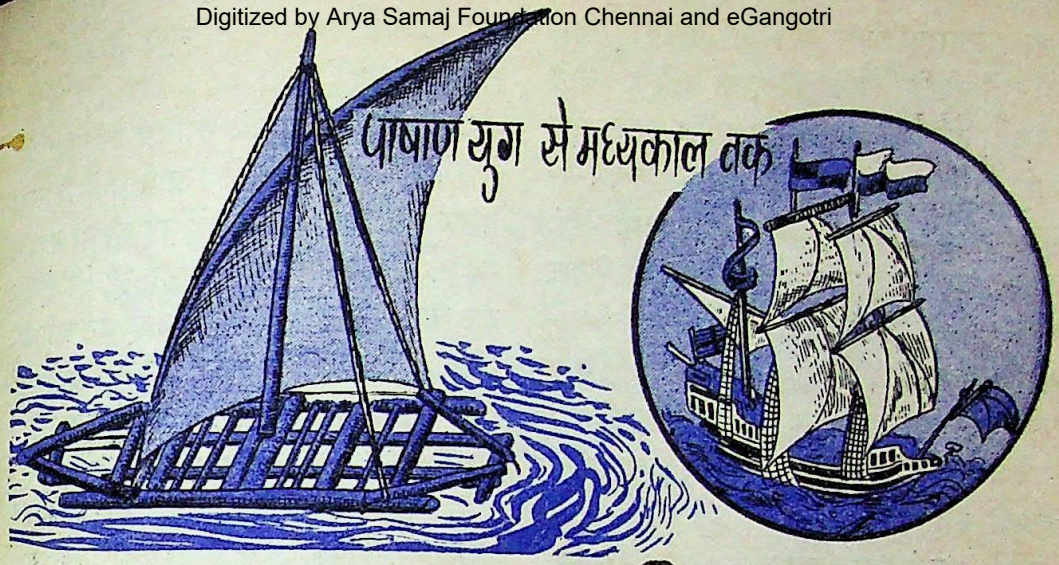

सागर प्रवास के प्रारम्भिक प्रयास

डा. नरेन्द्रमोहन बंसल

वह शुभ घड़ी ऐतिहासिक महत्त्व की थी जब प्रथम बार पाषाणयुगीन मानव ने सोचा होगा कि भूमि तो भूमि, वह पानी की सतह पर भी शायद चल सकता है, तैर सकता है, ठहर सकता है। उसने अवलोकन शक्ति से देखा कि कुछेक पशु-पक्षी नदी-नालों में बहते हुए दलदल और पेड़ के लट्ठों पर बैठे-बैठे दूर-दूर की यात्राएं कर लेते हैं तथा अवसर पड़ने पर इसी भाँति वर्षा-पानी की बाढ़ से भी अपनी रक्षा कर लेते हैं। तभी मानव की अन्वेषण-बुद्धि इस ओर लग गयी। मानव ने शुरुआत की एक लट्ठे को खोखला करने से। इसके लिए उसने लट्ठे को मध्य भाग में आग जला-जलाकर खोखला किया और पत्थर के अपने छोटे-मोटे औजारों से उसे इस योग्य बना लिया कि एक छोर पर वह स्वयं बैठा-बैठा पानी उलीचता रहे और बीच के खोखले भाग में अपने शिकार किये हुए प्राणियों तथा मछलियों को भर कर ले जा सके। पहले तो हाथों से और बाद में पांवों से भी पानी उलीचते-उलीचते उसने जब एक लम्बे बाँस का सहारा लिया तो कम परिश्रम में अधिक सुविधा प्राप्त करके वह रोमांचित हो उठा। आगे चलकर उसने उस बाँस का पानी में रहने वाला सिरा जब चपटा कर लिया तब मानो उसने नाव खेने के लिए डांड का भी आविष्कार कर लिया। धीरे-धीरे उस खोखले तने के दोनों ओर उसने कुछेक ऊँचाई तक तख्ते भी जड़ दिये। यों वास्तव में उसका रूप आज भी नजर आने वाली नावों जैसा हो गया और वह खोखला भाग नाव का पेंदा (keel) बनकर रह गया। क्रमशः उसने तख्तों को सीधे-सपाट जड़ने की अपेक्षा कुछ घुमाव देकर जड़ना शुरू किया, तब उसने जाना कि दोनों ओर फूले हुए पेट जैसी वह नाव और भी अधिक सुरक्षा तथा सुविधापूर्वक चल सकती थी।

श्रम और साधना के सहस्रों वर्ष

पानी पर तैरने-तिराने का वह सिद्धान्त मालूम हो जाने पर भी सब कुछ एकदम इतना सरल और चटपट नहीं हो गया कि बस, नाव बना ली और निकल पड़े सागर की लहरों पर! युग-दर-युग बीतते गये और धीर-गम्भीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा कठिन परिश्रम ज्यों-ज्यों फलता गया, त्यों-त्यों नौका-निर्माण की कला बाने पर बाने बदलती हुई विकसित होती गयी। यद्यपि उन आदिकालीन नौका-निर्मायकों की कदम-ब-कदम प्रगति का आज कोई लेखा प्राप्य नहीं, तथापि उस प्रारम्भिक खोखले लट्ठे से लेकर आज के संसारप्रसिद्ध ८०,००० टन के जल-यान क्वीन मेरी और अत्याधुनिक आण्विक पनडुब्बी नाटिलस तक का इतिहास हजारों वर्ष के अथक, अनवरत श्रम और साधना की लम्बी कहानी है।

समुद्री लहरों का निमन्त्रण—एक रोमांच, एक साहस

एक प्रकार से तो भूमण्डल पर जल-ही-जल का साम्राज्य है। अनेक छोटे-बड़े द्वीपों के बीच एशिया, अमरीका जैसे विशाल भूमिखण्ड भी एक दृष्टि से द्वीप ही हैं (इन्हें महाद्वीप ही तो कहते हैं!)। पृथ्वी के दो-तिहाई भाग को इस प्रकार अपनी लपेट में लिए हुए सागरों, महासागरों ने अनन्त काल से मानव को ललचाया है और मानव बड़ी तृष्णा से यह सोच-सोचकर रोमांचित होता रहा कि इन मचलती, उछलती लहरों के उस पार न जाने क्या होगा!

गुहानिवासी मानव को तो इतनी काट-छांट की भी आवश्यकता नहीं थी। बस, तने को काट गिराया और तिरा दिया पानी पर!

उस आरम्भिक के बावजूद भी प्रारम्भिक नाविकों का हौसला बहुत धीरे-धीरे खुलता रहा। आरम्भ में वे नये नाविक इतनी ही हद में नौकारोहण करते थे जितने उन्हें किनारा नजर आता रहे। तब उन्हें यह भी तो पता न था कि पृथ्वी एक गेंद के समान है! उन्हें यह डर था कि पानी की लहरें उन्हें दूर कहीं इस सपाट धरती के छोर पर न घसीट ले जायें जहां से वे मानो किसी अतल लोक में लुढ़क पड़ें! अतः धीरे-धीरे किन्तु सुनिश्चित प्रगति करता हुआ मानव सागर से ज्यों-ज्यों मछलियां, वनस्पतियाँ और शंख-सीपी तथा मणि-मुक्ता जैसी सम्पत्ति बटोरता गया, त्यों-त्यों उसकी यह जिज्ञासा तृप्त होने के बजाय बढ़ती ही गयी कि अभी सागरों के गर्भ में न जाने क्या-क्या खजाने भरे पड़े हैं! वस्तुतः यह ठीक भी है, क्योंकि कोई आश्चर्य नहीं, यदि आने वाले समय में मनुष्य अपनी खाद्यपूर्ति भूमि की उपज के बदले कहीं बढ़-चढ़कर महासागरों से करने लगे!

नौका-निर्माण, ६००० वर्षों से

छह हजार वर्ष का काल कुछ कम नहीं होता। इस बीच बनाये गये तरह-तरह की नावों के चित्र-विचित्र नमूनों में से यद्यपि आज अधिकांश लुप्त हो चुके हैं, तथापि एक नाव ऐसी है जो ६००० वर्ष पहले बनी थी और आज भी देखी जा सकती है। मिस्र के संसारप्रसिद्ध पिरामिड के निर्माता सम्राट् केओप्स महान् के लिए वह नौका स्वर्गयान के प्रयोजन से बनायी गयी थी और आज भी उनके शव के निकट रखी है ताकि तत्कालीन मान्यता के अनुसार यदि सम्राट् को अपने साथ ही दफनाये हुए हजारों सेवकों और सगे-सम्बन्धियों सहित स्वर्गलोक में नौकाविहार की आवश्यकता पड़े तो इस नाव का उपयोग किया जा सके। ११३ फुट लम्बी और २६ फुट चौड़ी वह नाव इतनी बड़ी है कि हिलडुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल काँगड़ी

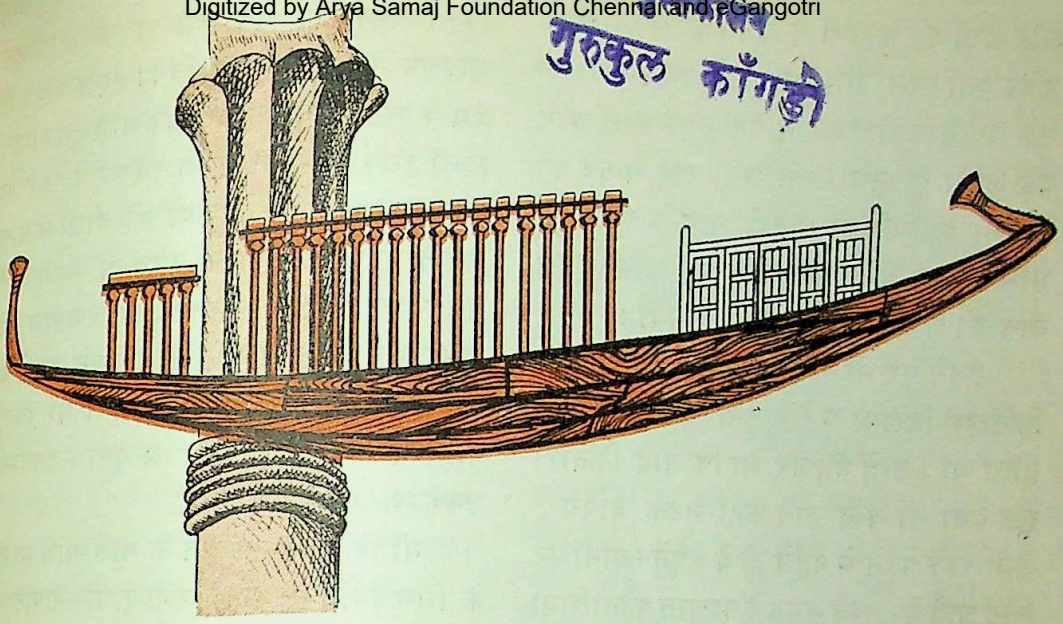

यह है पोत-निर्माण की उत्कृष्ट कला का एक दुर्लभ नमूना और सबसे प्राचीन भी। इतिहास-प्रसिद्ध मिस्री सम्राट् केओप्स के मरणोपरान्त, उसकी आत्मा के उपयोगार्थ स्वर्ग की सैर के लिए आज से ६००० वर्ष पूर्व बनाया गया यह पोत, आज भी देखा जा सकता है

नहीं सकती। अतः सम्राट् की कब्र के पास ही इस नाव को सुरंग खोदकर रखा गया है। तब से साठ शताब्दियाँ बीतीं और कम-से-कम २५० पीढ़ियाँ आयीं और गयीं, किन्तु ६००० वर्ष पूर्व के उन कारीगरों का यह अद्वितीय नौका-नमूना आज भी काल से अप्रभावित, उसी शान से सुरक्षित है।

मध्यकाल तक भी नावें बनाने में प्राचीन तरीके ही काम आते रहे। यूरोपीय सागरतटों पर अनेक ऐसी नावें और जहाज सागरतल में समायी हुई हैं जिनसे बीते हुए युगों के साथ बदलता हुआ नौका-निर्माण-ज्ञान देखने को मिलता है। अनेक पिछड़े हुए देशों में नावें बनाने के वे ही पुराने तरीके आज भी अपनाये जा रहे हैं। उदाहरणार्थ, अमेजन-निवासी लट्ठों, बाँसों और बेंत के बनाये हुए ढाँचों से ही सब काम निकालते रहते हैं। प्रशान्त महासागरीय द्वीपों के निवासी भी ऐसे ही लट्ठों के ढाँचों पर सैकड़ों मील की यात्राएँ कर लेते हैं।

सागर-प्रवाह के वे प्रारम्भिक दिन

नावें और छोटे-छोटे जहाज यद्यपि बहुत पहले से बनाये जाने लगे थे, तथापि नाव बना लेना एक बात थी और उसे पानी पर तिराना, चलाना और घुमाना बिलकुल दूसरी बात। आज तो नौकारोहण में पतवार हमें अत्यन्त साधारण वस्तु दिखती है, किन्तु इसी साधारण बात को लोगों की समझ में आते-आते लगभग ३००० वर्ष लग गये! तब तक नावों को केवल डांड (oar) की सहायता से चलाया जाता था।

डांड चलाते-चलाते नाव खेने में परिश्रम तो काफी पड़ता था, किन्तु मनुष्य को यह सन्तोष था कि आखिर उसने धरती पर चलते-चलते पानी पर भी चलने की सिद्धि प्राप्त कर ली है। समय पाकर उसने डांड चलाने के परिश्रम से भी अधिकांश मुक्ति पा ली। उसने समुद्री पवन को बन्दी बनाना तब सीख लिया जब उसने पाल (sail) की उपयोगिता समझ ली। उससे पहले तक तो वह केवल तेज धूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वर्षा की फुहारों से बचने के लिए नाव के ऊपर पर्दा तान लेता था। जब उसने देखा कि उस पर्दे से हवा टकराने पर नाव स्वयं आगे बढ़ जाती है, तब उसने उसी रुख से पर्दे को बाँधना शुरू किया। वही नाव के पाल की भूमिका बन गयी और डांड का काम केवल नाव को घुमाने-फिराने का रह गया।

इतने पर भी नौकारोहण दिन-ही-दिन में किनारा दिखता रहे इतनी दूरी के घेरे में होता था। उन्हें यह डर था कि यदि किनारा छूट गया तो वे न जाने कहाँ भटक जायेंगे ? अतः रात पड़ने से पहले ही वे अपने स्थानों पर लौट आते थे। लम्बे समय के पश्चात् फोनीशिया (Phoenicia) के नाविकों ने यह ज्ञान दिया कि रात के समय केवल ध्रुवतारा ऐसा जगमगाता, सदैव स्थिर रहने वाला संकेत है जिसे लक्ष्य मानकर सागर पर दूर-दूर किन्हीं भी दिशाओं में जाकर मूल स्थान पर लौट आया जा सकता है।

दिक्सूची (compass) के प्रयोग से दिशा ज्ञान और भी सरल हो गया, यद्यपि १२वीं शताब्दी तक यूरोपनिवासियों को ऐसी किसी वस्तु का पता भी न था। एशिया माइनर से आने वाले नाविकों द्वारा पश्चिमी देश के लोगों को इस यंत्र का ज्ञान हुआ। उन दिनों इसका अत्यन्त सरल स्वरूप यह था कि एक चुम्बकीय सुई सरकण्डे की तीली से बाँध कर पानी भरे कटोरे में छोड़ दी जाती थी। उसमें वह स्वतंत्र घूमती हुई स्वभावतः ही उत्तर को इंगित करती थी। देखने वालों के लिए वह एक नगण्य-सा खिलौना था, किन्तु नाविकों के लिए वही अत्यन्त उपयोगी उपकरण था।

यों दिशा ज्ञान बढ़ने के साथ-साथ यात्रा के लिए विधिवत् उदाहरणार्थ, सैर-सपाटे के जहाज अधिक आरामदेह, माल ढोने वाले जहाज अधिक खुलासा स्थान वाले तथा युद्धपोत तोपें रखने योग्य तथा अभेद्य दीवार के बनाये जाते रहे। समय के साथ-साथ अर्थात् केवल १५०-२०० वर्ष पूर्व जहाज-निर्माण में वाष्पशक्ति ने भी प्रवेश किया। तब धुआँ उगलते और कर्कश बिगुल का शोर मचाते हुए जहाज को देखकर लोग जंगलों में जा छिपते थे कि न जाने क्या बवाल आ गया!

प्राचीन काल में इस प्रकार आग द्वारा पेड़ के तने को खोखला करके, काट-छांट करके उससे नाव का काम चला लेते थे

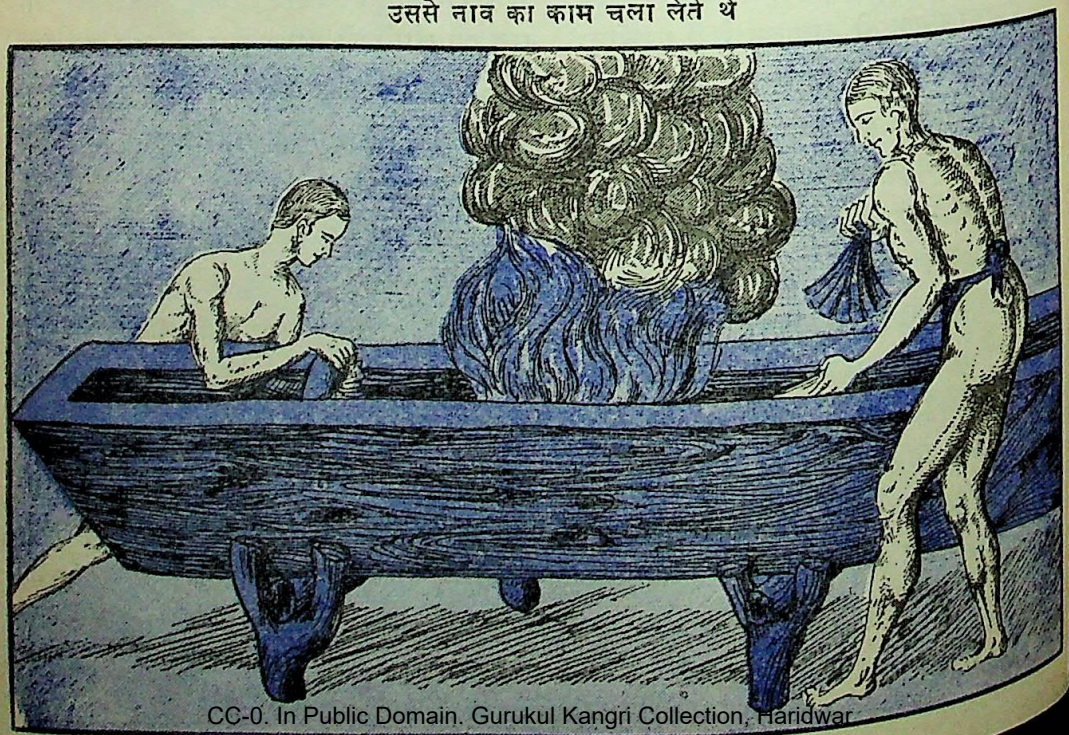

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज तो क्वीनमेरी जैसा ८०,००० टन का संसारप्रसिद्ध विशालतम जहाज हो या केवल वायुयान-वाहक ऐसा जहाज हो जिसकी छत मानो मील भर लम्बा-चौड़ा कोई मैदान हो जहाँ हवाई जहाज दौड़-दौड़कर उठते, उतरते हों, अथवा एक देश की बहुमूल्य सामग्री दूसरे देश को लाद ले जाने वाला माल-वाहक जहाज हो, या अन्ततः परमाणुचालित पनडुब्बी हो जो ध्रुवीय हिमसतह के पेट ही पेट में चलती हुई लन्दन से टोकियो तक की दूरी एकदम ही ५००० मील घटा दे, हम उनमें लगी अत्याधुनिक यंत्र-सज्जाओं को सरलता से अपने अधिकार की वस्तु मान लेते हैं।

निश्चय ही, उस खोखले तने से लेकर ऊपर वर्णित आधुनिक जलयानों तक की उपलब्धि के पीछे ६००० वर्षों के अथक श्रम और साधना का पुण्यबल है, सागर पर मानव विजय की गौरवगाथा का स्वर्णिम इतिहास है। ●

गुरुकुल काँगड़ी

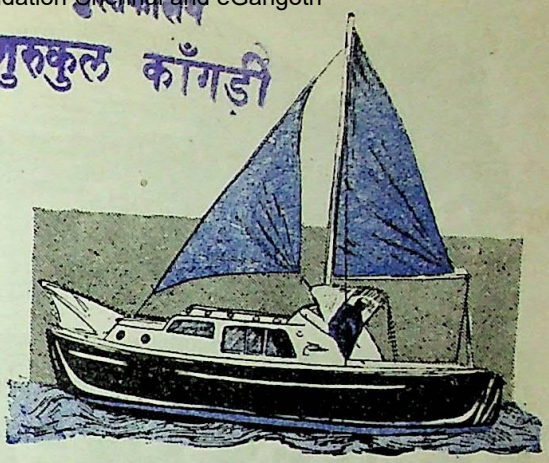

सागर-तरंगों पर तरंगित यह आधुनिक नौका द्वि-प्रयोजनीय है। यह मोटर इंजन से युक्त है और इंजन बिगड़ जाये तो तने हुए पाल उसका अभाव न खटकने देंगे और नाव को बढ़ा ले जायेंगे। यह नाव मत्स्य-शिकार के लिए विशेष सुविधाजनक है

हाईस्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए
हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. **जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

२. **वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

३. **प्रारम्भिक भौतिकी**—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३·५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

४. **प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

५. **प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

६. **सामान्य विज्ञान**—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६·२५

७. **सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५·००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाईस्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ९ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाल से चर्म तक

रमेशप्रसाद शर्मा

चर्म अथवा चमड़ा क्या है ? प्रायः इसका अर्थ हम खाल से लगा लेते हैं। वास्तव में पशुओं की खाल का वह रूप चमड़ा कहलाता है, जिसका उपयोग हम विविध वस्तुएं बनाने में करते हैं और जो सड़ता-गलता नहीं, दुर्गंध भी नहीं देता। यों तो किसी भी पशु की खाल का चमड़ा बनाया जा सकता है, किन्तु अधिकतर गाय, बैल, बछड़ा, भेड़, बकरी और मगर आदि की खालों का उपयोग होता है।

प्रागैतिहासिक मानव अपने शरीर को ढँकने के लिए बगैर सिझाए हुए, कच्ची खालों का उपयोग करता था। कच्ची खालों के वे परिधान जल्द ही सूख जाते थे, सड़ जाते थे और दुर्गंध के कारण फेंक देने पड़ते थे। रोज नये-नये शिकार करने वाले उस आदि मानव को रोज ही नयी खाल पहन लेने में कोई कठिनाई भी नहीं होती थी। समय बीतता गया और मानव यह समझता गया कि यदि कच्ची खाल को गरम किया जाये और उस पर चर्बी मली जाये तो वह पहनने के अधिक उपयुक्त बन सकती है। अतः खाल सिझाने की वह कला हजारों वर्ष की प्राचीन होने पर भी काफी विकसित थी, यह अजायबघरों में सुरक्षित तत्कालीन खाल के वस्त्रों से प्रमाणित होता है।

गाय, बैल, भैंस, घोड़े, जेब्रा आदि की खालें हाइड (hide) और बछड़ा, बकरी, भेड़ आदि की खालें स्किन (skin) कहलाती हैं। इनमें अन्तर केवल यही है कि बड़े पशुओं की खालें भारी होती हैं और छोटे प्राणियों की हलकी। क्रोमियम के संयोग से रासायनिक विधि द्वारा तैयार किया हुआ चर्म क्रोमलेदर (chrome leather) कहलाता है।

आरम्भिक विधि

पशुओं के मरने (अधिकतर तो मारने ही) के उपरान्त जब उनकी खाल उतारी जाती है, तब उस खाल पर रोयें, बाल आदि होते ही हैं और अन्दर की ओर रक्त तथा मांस भी सना रहता है। यदि उसे ऐसे ही छोड़ दिया जाये तो जल्द ही वह सड़ जायेगी। अतः खाल साफ करने के कारखाने अर्थात् टेनरी (tannary) में चार प्रकार की अवस्था में खालें पहुँचायी जाती हैं—१. बूचड़खाने से आयी हुई ताजा, कच्ची खाल, २. नमक पुती हुई, गीली खाल, ३. नमक लगी, सूखी खाल और ४. धूप में सुखायी हुई खाल।

टेनरी में खाल को सबसे पहले पानी में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिगोया जाता है ताकि यह वैसा ही नर्म हो जाए जैसी पशु के शरीर से उतारते समय थी। भीगने के दौरान में ही उस पर पुता हुआ नमक भी उतर जाता है। इस कार्य में कम से कम १२ घण्टे लग जाते हैं। कुछ विशेष प्रकार की बढ़िया खाल बनाने के लिए २-३ घण्टे और भी अधिक भिगोये रखते हैं। तत्पश्चात् निम्न विधियों से उसे गुजरना पड़ता है।

चूने से प्रक्रिया

उस भीगी हुई नर्म खाल को ३-४ चूने के घोल भरे हौजों में डाला जाता है। उन हौजों में घोल की सान्द्रता खाल की किस्म और ऋतु के अनुसार रखी जाती है। चूने के उन हौजों में वह खाल कम से कम १०-१५ दिन तक पड़ी रहती है। जब उसके बाल हाथ से छुटने योग्य हो जाते हैं, तब उसे कुन्दे पर डालकर रगड़-रगड़कर उसके बालों को साफ कर देते हैं। इस विधि को बाल-कढ़ाई (dehairing) कहते हैं।

बाल-कढ़ाई के पश्चात् खाल को पुनः चूने में डाला जाता है। जब खाल फूल जाती है, तब उसमें चिपके मांस को भी छुरी से अलग कर दिया जाता है। शेष केवल चमड़ा बन सकने वाला भाग रह जाता है।

चोकर से प्रक्रिया

अब उस खाल को चूने के प्रभाव से मुक्त करना होता है। इसके लिए चोकर देने

चर्म विधि (ऊपर से नीचे) : नमक लगाकर रखी हुई खाल को पानी में भली प्रकार धोया जाता है ताकि लगा हुआ नमक छूट जाये।

पहली धुलाई के पश्चात् चूने में भिगोयी हुई इस खाल पर से बाल, रोयें आदि सरलतापूर्वक घिसाई द्वारा हटाये जा सकते हैं

उपरोक्त विधियों के पश्चात् लगभग ९-१० महीनों तक विभिन्न रासायनिक घोलों में क्रिया कराकर टैनिंग की हुई खाल, जो चर्म बन चुकी होती है, तेल की बारम्बार घिसाई द्वारा पालिशदार बनायी जाती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(bating) की क्रिया की जाती है। यह क्रिया कई प्रकार से की जाती है। खाल को चौकर में डालकर उसमें कबूतर की बीट, कुत्ते की विष्ठा, नमक का हलका तेजाब, बोरिक एसिड और खमीर आदि से क्रिया करायी जाती है जिसके फलस्वरूप चूना निकल जाता है। यदि चूना न निकाला जाये तो तत्पश्चात् करायी जाने वाली अन्य रासायनिक क्रियाओं के प्रभाव से चर्म की रंगत काली पड़ जाती है।

सिझाने की विधि

सिझाने का उद्देश्य खाल को सड़ने से बचाना और इस योग्य बनाना है कि उसमें पानी प्रवेश न करने पाये। इसके अतिरिक्त वह खाल इतनी मजबूत भी हो जाये कि वह अधिक दिनों तक टिक सके। सिझाने के लिए निम्न तीन विधियां अपनायी जाती हैं— १. वृक्षों की छाल के रस से, २. क्रोमियम सल्फेट से और ३. जल-जन्तुओं की चर्बी से।

वृक्षों की छाल से—बबूल जैसे वृक्षों की छाल से एक प्रकार का कसैला रस निकलता है जिसे टेनिन (tannin) कहते हैं। एक टेनरी में ऐसे रस के ४-५ हौज होते हैं जिनकी सान्द्रता क्रमशः एक-दूसरे से बढ़ी हुई होती है। उन हौजों में बारी-बारी से खाल को डाला जाता है। इस विधि में एक वर्ष तक का समय लगाया जाता है। मशीनयुग से पूर्व इस विधि द्वारा चर्म तैयार करने में इंग्लैण्ड में चार वर्ष लगते थे। उन हौजों से चमड़े को निकालकर, धोकर उस पर तेल मला जाता है। फिर उसे रोलर में दबाते हैं। तत्पश्चात् उसे दोहरा लटका देते हैं।

चर्म से जूते तक (ऊपर से नीचे) : पालिशदार चर्म को संवारकर मशीन की सहायता से बेलनाकार लपेट लेते हैं। तत्पश्चात् जूता बनाने वाले के यहां कुशलता और कारीगरी पूर्वक हरेक नाप और डिजाइन में कटाई होती है और अन्त में मशीन द्वारा सिलाई होकर जूते का बाह्यावरण अर्थात् शोभा-कवर तैयार हो जाता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस विधि के बाद रंगने के लिए चमड़े को रंग के हौजों में डालते हैं। चमड़े को मुलायम, चिकना और लचीला बनाने के लिए उसे तेल-साबुन के घोल में भी हिलाया जाता है। बढ़िया चमड़ा बनाने के लिए इस विधि के अन्तर्गत उसे हाथ से भी मलते हैं। अन्तिम रंगाई करके उसे ठण्डे पानी में धोकर सुखा लेते हैं। अन्दर की सतह तनिक कम सुखायी जाती है। इतना हो जाने पर उसे कटाई-बनाई के लिए फैक्ट्री में भेज दिया जाता है।

क्रोमियम विधि—इस विधि में वृक्ष की छाल के स्थान पर क्रोमियम सल्फेट तथा क्रोमियम के अन्य यौगिकों का उपयोग किया जाता है। कई हौजों में क्रोमियम सल्फेट भरा रहता है। इनकी भी सान्द्रता क्रमशः चढ़ती हुई रखते हैं और खाल को एक के बाद दूसरे में डुबोते हैं। इस विधि में क्रोमियम का कुछ अम्लीय अंश भी चमड़े में पहुँच जाता है जिसे निकालना आवश्यक होता है। इसके लिए चमड़े को क्षारीय घोलों के संसर्ग में लाया जाता है। तत्पश्चात् उसे धो लिया जाता है। ऐसे बनाये हुए चमड़े को क्रोम लेदर (chrome leather) कहते हैं जिसका रंग क्रोमियम के कारण कुछ-कुछ हरा होता है।

इसके बाद एक पीपे में जिसमें मोम और गर्म चर्बी पड़ी होती है, उस क्रोम लेदर को डालकर घुमाया जाता है। मोम और चर्बी सोखकर चर्म मोटा और मुलायम बन जाता है। इस क्रोम लेदर पर उबलते हुए पानी का भी कोई प्रभाव नहीं होता। वृक्ष की छाल से सिझाए हुए चर्म में यह विशेष गुण नहीं होता। इस विधि में समय भी कम लगता है।

फिटकरी द्वारा—भेड़-बकरी की खालें फिटकरी के घोल से भी सिझायी जाती हैं। इसकी विधि क्रोमियम विधि जैसी ही होती है। इसके द्वारा सिझाया हुआ चर्म सफेद

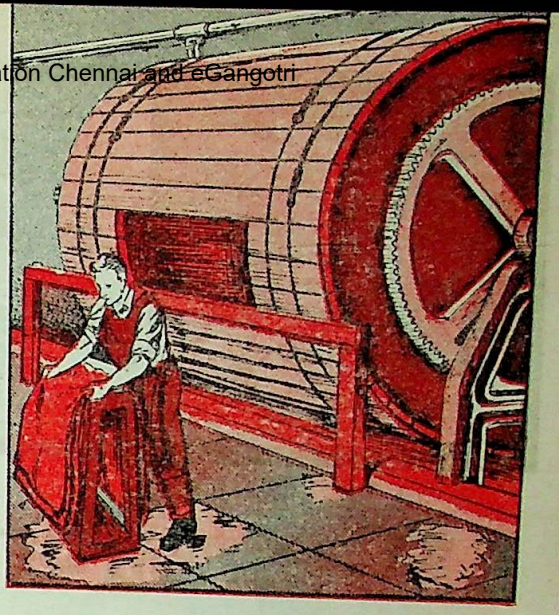

मोम और चर्बीयुक्त इस पीपे में क्रोमलेदर डालकर पीपा गोल घुमाया जाता है। इस क्रिया से चर्म मोटा और मुलायम बन जाता है

रंग का होता है जिसका उपयोग दस्ताने बनाने में विशेषतः होता है। यह चर्म आसानी से पानी सोख लेता है।

जल-जन्तुओं की चर्बी का उपयोग—इस विधि में खाल को मछली के तेल या चर्बी की प्रक्रिया से सिझाते हैं। बाल अलग करने के उपरान्त खाल को चूने के पानी में भिगोते हैं और फिर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के हलके घोल में धो लेते हैं। तत्पश्चात् उसे सुखाकर मछली के तेल या चर्बी भरे पीपे में डाल देते हैं। कुछ समय बाद उसे निकालकर मोंगरी से पीटते हैं ताकि वह चिकनाई उसके रोम-रोम में प्रवेश कर जाए। अन्ततः उसे धूप में सुखाकर गर्म कमरे में टाँग देते हैं। कृत्रिम विधि द्वारा गर्म किये हुए उस कमरे में कुछ समय तक टाँगे रखकर उस चमड़े का रासायनिक तौर पर तेल से संयोग करा दिया जाता है। उस तेल को भी बाद में पीट कर अलग कर देते हैं। इस विधि द्वारा तैयार किये गये चमड़े को शेमाय लेदर (chamois leather) कहते हैं। यह रेशम की भाँति मुलायम होता है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

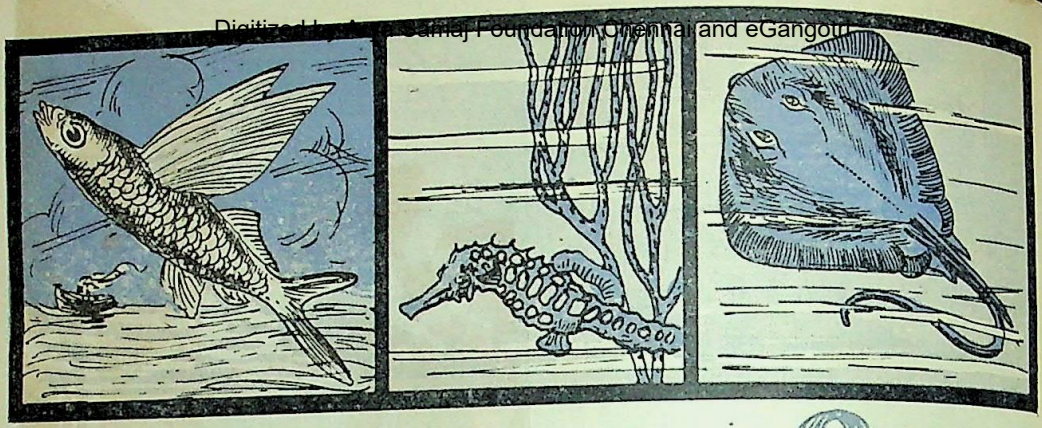

ये अजीब मछलियाँ

त्रिलोक मजूपुरिया

तुमने मछलियाँ तो बहुत देखी होंगी। नदी, तालाब पर आटे की गोलियाँ डालकर मछलियाँ चुगायी भी खूब होंगी। उन सबसे अलग, समुद्रों में रहने वाली मछलियाँ ऐसी-ऐसी अजीब हैं कि न पूछो बात। कुछेक अति विचित्र मछलियों के विवरण निम्न भाँति हैं।

घोड़ा-मछली

तुम सोचते होगे कि घोड़े जमीन पर ही दौड़ते हैं! जरा इस समुद्री घोड़े (sea-horse) को भी देखिए। इस घोड़ा-मछली के पाँव नहीं होते फिर भी यह सीधी खड़ी होकर इस तेजी से पानी को काटते हुए आगे बढ़ती है कि देखते ही बनता है। जैसा कि इसका नाम है, यह समुद्री घोड़ा समुद्र में ही पाया जाता है। इसके नर-घोड़े के पेट में एक थैली होती है जिसमें वह अपने अण्डे सेता है और बच्चे पालता है! जब तक बच्चे समर्थ न हो जायें, पिता के ही संरक्षण में पलते-बढ़ते हैं। तीसरी विशेषता इसकी पूंछ में है। किसी भी समुद्री पौधे से अपनी पूंछ को लिपटाकर यह मजे में लटक जाता है और आराम से शिकार की टोह में लगा रहता है। इसका मुँह छोटा और थूथन लम्बा होता है। इसके शरीर का बाह्य दृश्य और आकार भी बड़ा विचित्र है।

चील-मछली

कोई भी अन्य मछली ऐसी शान से नहीं तैरती होगी जैसी यह चील-मछली (eagle ray)। इसकी गति आकाश में उड़ने वाली चील के समान होती है। चील की ही भाँति यह अपने डैनों को फड़फड़ाती हुई पानी की गहराई में उतर जाती है और बिना अधिक प्रयास के ही, ऊपर भी उठ आती है। इसका सिर चौकोर और डैने बड़े होते हैं। इसकी पूंछ कोड़े जैसी लम्बी होती है और उसके सिर पर एक काँटा भी होता है। इसके दाँत अति विचित्र होते हैं। सिर के आगे छोटा-सा थूथन रहता है जिस पर दोनों आँखें जड़ी रहती हैं।

एरियस मछली

स्वच्छ जल में पायी जाने वाली इस एरियस मछली (arius fish) के शरीर पर शल्क नहीं होते। इसके मुँह के आगे मूछों जैसे लम्बे बाल होते हैं। श्वसन के लिए सहायक श्वसनांग भी होते हैं। वे श्वसनांग गलफड़ों के अतिरिक्त ही होते हैं। यह मछली अपने अण्डों को मुँह में रखे ही रखे सेती है। उसी मुँह से भोजन करना और उसी से अण्डे भी सेहना, इसकी विशेषता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

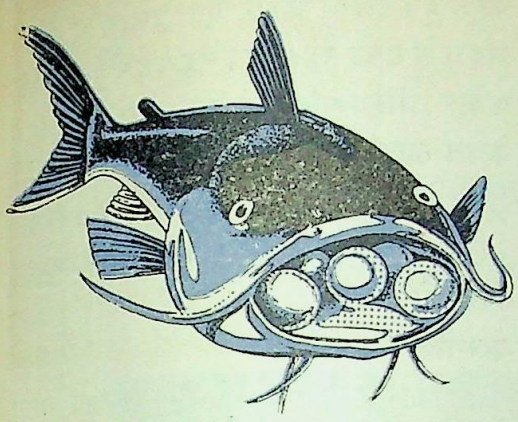

यह कैटफिश का नर है जो अपने होने वाले बच्चों की माँ भी है। मादा तो अण्डे देकर अलग हो जाती है और इस बेचारे को लगभग डेढ़ मास तक ५०-५० अण्डों को मुँह ही मुँह में रखे सेहना पड़ता है जिसके कारण यह खा-पी भी नहीं सकता और यों मानो डेढ़ मास का उपवास ही करता है। जब सब बच्चे फुदक कर बाहर आ जाते हैं तब इसे उस लम्बी सजा से छुटकारा मिलता है

चपटी मछली

यह चपटी मछली (flat fish) बिलकुल ही सपाट होती है। इसके सिर के एक ही ओर दोनों आँखें होती हैं। यों सिर का एक भाग नेत्रयुक्त और दूसरा भाग नेत्रविहीन होता है। इसका पृष्ठ भाग तो वातावरण के अनुकूल बन जाता है, किन्तु ऊपर का भाग अपरिवर्तित रहता है। यह हिल-डुलकर बड़े अजीब ढंग से तैर लेती है। जब यह पैदा होती है तब तो इसकी आँखें सिर के दोनों ओर स्थित रहती हैं किन्तु बढ़ते जाने पर एक ओर को सरक आती हैं।

गुब्बारा-मछली

तुम समझते होगे कि हमीं गुब्बारा फुला लेते हैं! यह गुब्बारा मछली (globe fish) ऐसी है जो खतरे को सामने देखते ही शरीर को गुब्बारे जैसा फुला लेती है। साथ ही, उस समय इसके शरीर पर नन्हें कांटे भी उभर आते हैं। इसका वह विकराल रूप देखकर शत्रु भाग जाता है और यों खतरा टल जाने पर यह पुनः अपने सामान्य रूप में आ जाती है। इसके भी दाँत चपटे होते हैं। यह मछली हिन्द महासागर और अफ्रीका के पश्चिमी समुद्र तट पर पायी जाती है।

शेर-मछली

शेर-मछली (lion fish) के शरीर को सिर से पूंछ तक ढके हुए एक झिल्ली होती है। इसका सिर अनिश्चित आकार का होता है। इसके शरीर पर कांटे होते हैं। यह भी देखने

घोड़े जैसी दिखती ये मछलियाँ अतलांतिक महासागर के अमरीकी तटों पर अधिकतर पायी जाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

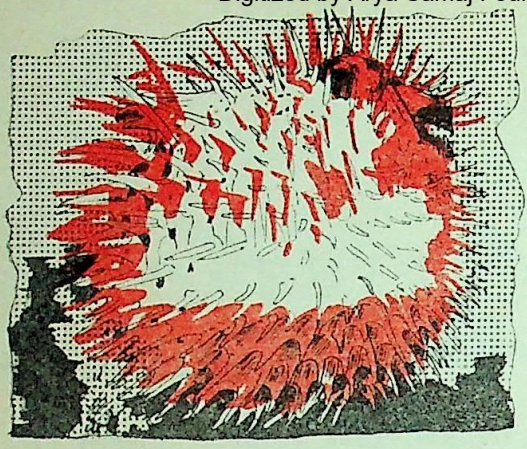

यह बैलून फिश मछली जब गुब्बारे की भाँति शरीर को फुला लेती है, तब इसके शरीर के कांटे तनकर खड़े हो जाते हैं

में डरावनी लगती है। इसके पिछले मीनपक्ष सुई जैसे नुकीले होते हैं। उनका सम्बन्ध अन्दर की विष-उत्पादक कोशाओं से होता है। वह विष अत्यन्त तीव्र होता है। भारत तथा जापान में यह मछली उन कांटों को साफ किये बाद बड़े चाव से खायी जाती है।

कीचड़ में रहनेवाली मछली

इसे लंग फिश (lung fish) भी कहते हैं। इसके श्वास लेने के लिए गलफड़ों के स्थान पर फेफड़े होते हैं। इसीलिए इसे लंग फिश नाम दिया गया है। अनुकूल समय तक तो यह पानी में मजे से विचरती रहती है किन्तु सर्दी-गर्मी बढ़ने पर यह कीचड़ में छिप जाती है। वहीं अपना घर भी बना लेती है। बिलनुमा इसका घर करीब १८ इंच गहरा होता है। यह मछली अधिकतर अफ्रीकी किनारों पर ही पायी जाती है। इसकी एक अतिरिक्त विशेषता यह भी है कि इसके मीनपक्षों के स्थान पर छोटे-छोटे पाँव होते हैं। अनुमान है कि मेढक का विकास इस मछली का भी आभारी होगा, क्योंकि मेढक की भाँति ही इसके फेफड़े तथा हाथ-पाँव होते हैं।

कवचधारी मछली

इसे ट्रंक फिश (trunk fish) भी कहते हैं। इसका शरीर एक प्रकार के कठोर कवच से ढँका रहता है। वह कवच षट्कोणीय कठोर अस्थि-पट्टियों का बना होता है। केवल छोटा-सा मुँह, मीनपक्ष और हिलने-डुलने के लिए पूँछ दिखाती रहती है। किसी-किसी में कवच के ऊपर कांटे भी उभरे हुए दिखायी देते हैं।

खरगोश-मछली

शिमेरा (chimaera) इसका दूसरा नाम है। यह अधिकतर अतलांतिक तथा भूमध्य सागर में पायी जाती है। यह हेरिंग (herring) नामक मछली का ही पीछा किये रहती है और उन्हीं के झुण्ड के इर्द-गिर्द बेधड़क विचरती रहती है। इसलिए इसे हेरिंग की रानी भी कहते हैं। आकार में यह शार्क के जैसी ही होती है। इसके चार गलफड़े होते हैं और प्रत्येक को ढंके हुए एक-एक स्वचालित ढक्कन होता है। इसके जबड़े कठोर हड्डियों की प्लेटों जैसे बने होते हैं। यह मछली सर्वभक्षी है अर्थात् समुद्री वनस्पति से लेकर नन्हें जलजीवों तक का आहार करती है।

कितनी अजीब हैं ये मछलियाँ और इन मछलियों की यह निराली दुनिया! यदि हम और भी गहरे उतर कर सूक्ष्म अवलोकन करें तो हमारे अचरज का पार न रहेगा।

यह शिमेरा मछली है। अतलांतिक के गहरे जल में दूर-दूर तक पायी जाती है। ३ फुट लम्बी इस मछली की शरीर रचना शार्क से मिलती-जुलती है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

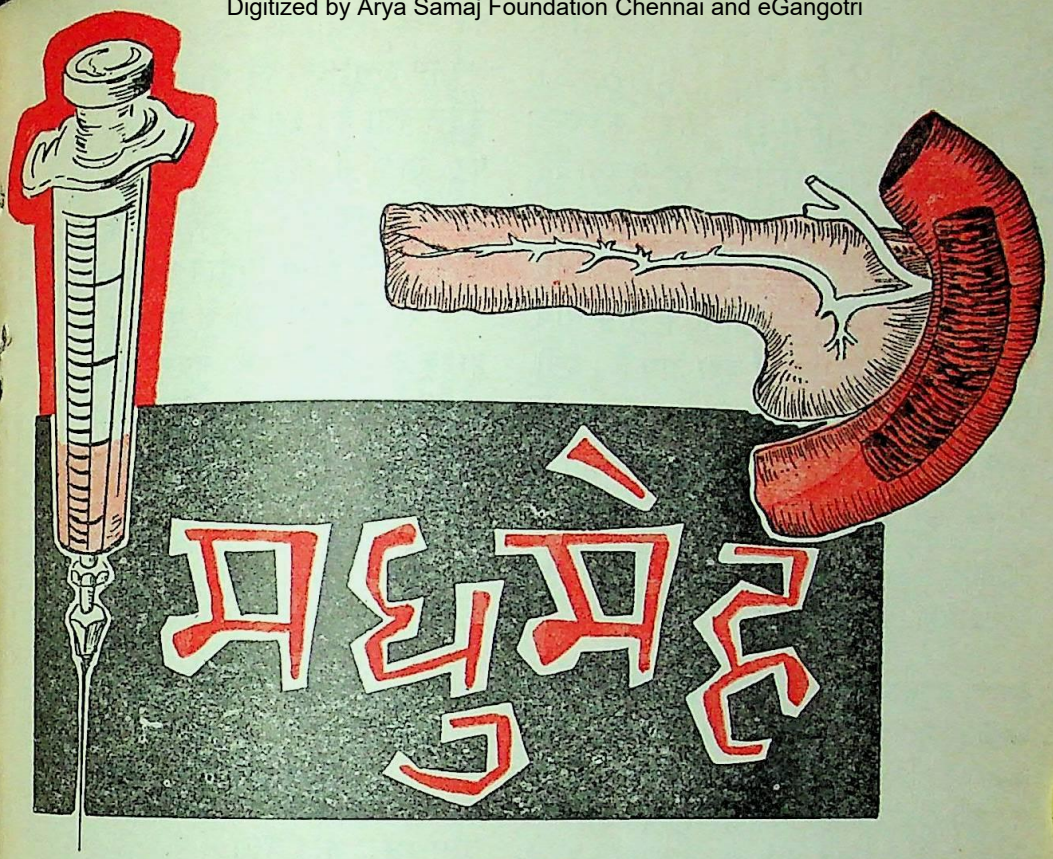

बी. मोहन

शरीर में रक्त का संचालन संतुलित रखने के लिए उत्सर्जित पदार्थों का शरीर से निष्कासन अत्यन्त आवश्यक है। मूत्र-विसर्जन उसका एक साधन है। अनुपात की दृष्टि से जब तक १०० घ. सें. मी. रक्त में शकर की मात्रा ८० से १२० मिलीग्राम तक रहती है, मनुष्य स्वस्थ समझा जाता है। मधुमेह शरीर की वह दशा है जब रक्त में शकर की मात्रा एकदम बढ़ जाती है और फलस्वरूप वह शकर मूत्र द्वारा विसर्जित भी हो जाती है।

डायबिटीज मेलाइटिस (*diabetes mellitis*) कहलाने वाला यह रोग—मधुमेह इस युग में तेजी से फैल रहा है। जिसे देखिए, यही कहता सुनायी पड़ता है—'मैंने शकर छोड़ रखी है, मुझे डायबिटीज है।' कैंसर और हृद्रोग की भाँति मधुमेह के भी रोगियों की संख्या चिन्ताजनक रूप से बढ़ रही है। इसके प्रति दूसरी चिन्ता यह है कि यह रोग वंशानुगत भी है। परिवार में एक व्यक्ति के ग्रसित होने पर उसके वंशजों में भी इस रोग के होने की पूरी संभावना रहती है। अधिकतर खाने ही खाने से काम रखने वालों को अर्थात् अधिक पेटू लोगों को यह रोग बहुत जल्दी घेरता है। इसलिए इस रोग को जितना प्रोत्साहन अमीर घरानों में मिलता है, उतना रूखी-सूखी खाने वालों में नहीं।

इस रोग का मूल कारण शरीर में इन्सुलिन (insulin) नामक हारमोन की कमी है। इन्सुलिन के अभाव में पाचन-क्रिया के पश्चात् अतिरिक्त शकर का पूर्णतः उपयोग नहीं हो पाता। परिणाम यह होता है कि रक्त में शकर की मात्रा बढ़ती ही जाती है। वह अतिरिक्त शकर ज्यों की त्यों मूत्र द्वारा विसर्जित होती रहती है। क्रमशः शकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की यह असन्तुलित अवस्था आरटेरियो स्कलेरॉसिस (*Arterio sclerosis*) न्यूराइटिस (*Neuritis*) और कैटेरेक्ट (*Cataract*) आदि रोगों की पूर्व सूचना देने लगती है।

हमारे शरीर का आन्तरिक सन्तुलन बनाये रखने में अन्य हारमोन्स के साथ-साथ इन्सुलिन-हारमोन का भी बड़ा हाथ है। इसी हारमोन की कमी के कारण सबसे पहले मधुमेह का रोग घेर लेता है। इस हारमोन के बनाने का उत्तरदायित्व हमारे अग्नाशय (pancreas) से संयुक्त लेंगरहेन्स ग्रन्थियों (islands of langerhans) का है। शरीर

हमारा अग्नाशय क्या है, इन्सुलिन-उत्पादक एक फैक्ट्री ही है। इसका भीतरी दृश्य देखिए :—इसमें अवस्थित लेंगर हेन्स-कोशिकाएँ (३) समूहों के रूप में रहती हैं और पोषण पाती रहती हैं (१,२)। ये अपना स्राव—इन्सुलिन, सीधे ही रक्तधारा (४,५) में प्रवाहित कर देती हैं। वही इन्सुलिन रक्त (६) द्वारा प्रसरित होकर विभिन्न अंगों क पुष्ट करता है।

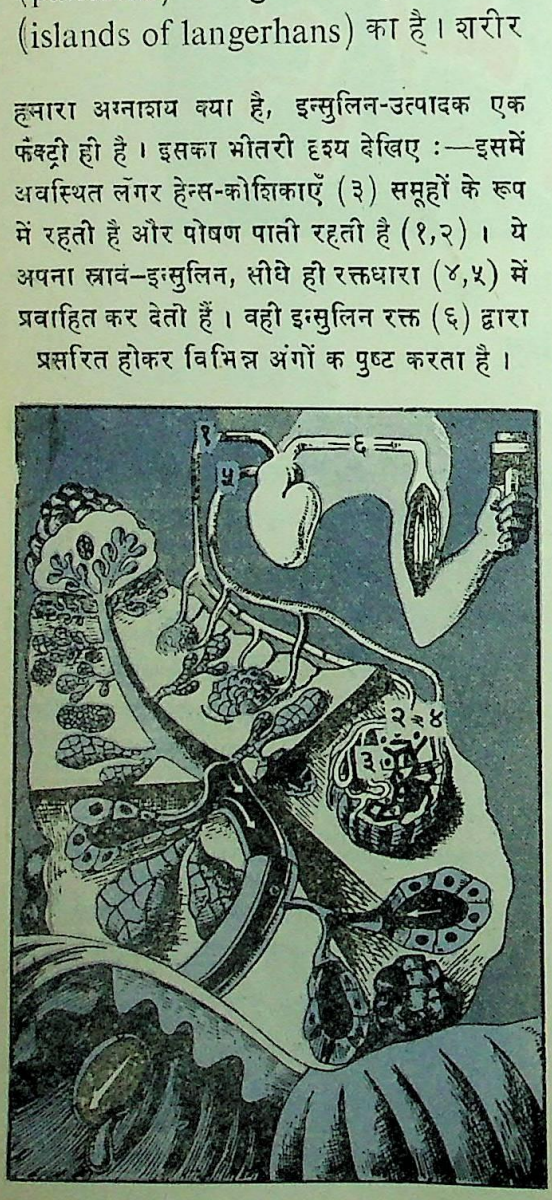

की अन्य अवाहिनी ग्रन्थियों की भाँति ये भी अपना इन्सुलिन का स्राव सीधे ही रक्त में उंडेल देती है। इसके सुचारू कार्य करते रहने पर रक्त में शकर की मात्रा भली प्रकार नियंत्रित रहती है। इन्सुलिन के अन्य मुख्य कार्य निम्न भाँति गिनाये जा सकते हैं—

१. पाचनक्रिया के पश्चात् जो कार्बोहाइड्रेट ग्लूकोज में बदल जाता है, उसे इन्सुलिन ग्लाइकोजन में परिवर्तित करके यकृत और मांसपेशियों के लिए उपयोगी बनाता है।

२. शरीर-विकास के लिए कोशा-वृद्धि आवश्यक है और एतदर्थ जिस ऊर्जा की जरूरत रहती है, वह ग्लूकोज के आक्सीकरण से प्राप्त होती है। वह आक्सीकरण इन्सुलिन ही करता है।

३. इन्सुलिन द्वारा ग्लूकोज को पुनः वसा-अम्ल और वसा में परिणत होने के लिए वेग मिलता है।

४. शरीर की वसा और ग्लूकोजन को ग्लूकोज में पलट जाने से इन्सुलिन ही रोकता है।

उपरोक्त वर्णन से अनुमान लगाया जा सकता है कि जब इन्सुलिन को ग्लूकोज से इतना संघर्ष करना पड़ता है, तब अवश्य ही कुछेक ग्रन्थियाँ ऐसी भी होंगी जो ग्लूकोज उत्पादित करती होंगी। अवश्य, थाइराइड, पिट्युइटरी और एड्रीनल ग्रन्थियाँ ऐसी ही हैं जो ग्लूकोज निर्मित करती हैं। अतः इन ग्रन्थियों को डायबिटिक समूह में रखा गया है। दूसरे शब्दों में इनके स्रवित हारमोन्स इन्सुलिन के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी हैं।

यदि किसी ट्यूमर (tumor) अर्थात् गाँठ या फोड़े के कारण लेंगरहेन्स कोशिकाएँ आवश्यकता से अधिक इन्सुलिन स्रवित करने लगें तो फलतः शकर का कम हो जाना संकटप्रद हो जाता है। उस हालत में रोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में शकर का अभाव उत्पन्न हो जाता है। उस दशा को हाइपोग्लाइसेमिया (*hypoglycemia*) कहते हैं। ऐसे रोगी को सदैव भूख ही भूख लगती दिखती है, हर समय थकान प्रतीत होती है, वह चल-फिर नहीं पाता और चिंतित, बेचैन तथा चिड़चिड़ा बना रहता है। निम्न उदाहरण से वह अवस्था और भी स्पष्ट हो जायगी।

इस रोग से ग्रसित एक व्यक्ति को हर समय बेचैनी और सुस्ती रहती थी। दिन ढलते ही उसे बेहद सुस्ती और थकान प्रतीत होने लगती थी और वह निढाल बिस्तर पर पड़ जाता था। वह कहता रहता कि केवल खाने के पश्चात् कुछ समय तक वह स्वयं को स्वस्थ अनुभव करता था। ज्यों-ज्यों रोग बढ़ता गया, उसके रक्त में शकर का अभाव भी बढ़ता गया। जब १०० घ. सें. मी. रक्त में शकर का अनुपात केवल ५५ मिलीग्राम रह गया, तब उसे थकान के लक्षण और भी शीघ्रता से, खाने के दो घण्टे पश्चात् से ही छाये रहने लगे। समय का वह अन्तर बढ़ने के साथ-साथ जब शकर का अनुपात और भी गिरकर ३६ मिलीग्राम पहुँचा, तब उसके सारे बदन से पसीना छूटने लगा और मांसपेशियाँ झटके देने लगीं। वह साफ बोल भी न पा रहा था किन्तु जब उसे इन्जेक्शन द्वारा ग्लूकोज दिया गया तब आश्चर्यजनक रूप से वह सम्हल गया। तत्पश्चात् आपरेशन करने पर मालूम हुआ कि उसके अग्नाशय में ट्यूमर था!

इससे समझा जा सकता है कि हमारे शरीर में इन्सुलिन का क्या महत्त्व है। इन्सुलिन की कमी से तो मधुमेह घेर लेता है और अधिकता होने से शकर का अभाव हमें संकट में डाल देता है। इन्सुलिन की कमी के कारण मधुमेह का आक्रमण किस प्रकार हो जाता है, वह निम्न विधि से ज्ञात होगा :

इन्सुलिन के अभाव में यकृत और मांसपेशियों में ग्लाइकोजन की मात्रा कम हो जाती है। ऊर्जा उत्पन्न करने के लिए शकर का आक्सीकरण काफी घट जाता है। रक्त में उपस्थित ग्लूकोज, वसा और वसा-अम्ल से परिवर्तित नहीं हो पाता इसलिए रक्त में शकर अत्यधिक मात्रा में एकत्र होने लगती है। दूसरी ओर इन्सुलिन के प्रतिद्वन्द्वी, डायबिटिक समूह के हारमोन्स भी वसा और प्रोटीन को ग्लूकोज में बदलते रहते हैं। यों रक्त में शकर की मात्रा इतनी बढ़ जाती है कि ज्यों की त्यों मूत्र द्वारा बाहर निकलती रहती है। इसके फलस्वरूप मनुष्य की जीवन शक्ति का भी तेजी से ह्रास होने लगता है।

इन्सुलिन के पूर्व और पश्चात्

इसमें सन्देह नहीं कि इन्सुलिन के इन्जेक्शन द्वारा मधुमेह पर नियन्त्रण रखा जा सकता है, किन्तु जब कभी इसका गलत प्रयोग हो जाता है तब यही सोचना पड़ता है कि इन्सुलिन से पूर्व भी कुछ उपचार होता ही होगा; क्यों न उसी को पुनः आज्माया जाए? इन्सुलिन तो १९२१ से ही फ्रेडरिक ग्राण्ट बेण्टिग और चार्ल्स हर्बर्ट बेस्ट के प्रयासों से हमारे परिचय में आया है, किन्तु उससे पहले जो साधन अपनाये जाते थे, वे आज भी इतने प्रभावशाली हैं कि इन्सुलिन से उकताये हुए व्यक्ति उन्हीं का आश्रय लेते हैं। वे साधन हैं पथ्य और संतुलित भोजन का चुस्ती से पालन।

मधुमेह के रोगी का भोजन बड़ी सतर्कता-पूर्वक चुना जाता है। उसमें यह प्रथमावश्यक है कि उस भोजन से प्रोटीन और ऊर्जा की प्राप्ति आवश्यक मात्रा में हो, अन्यथा शरीर की संचित प्रोटीन और ऊर्जा का काफी व्यय होता रहेगा। दूसरा यह कि सामान्य भोजन जैसा ही पथ्य सुपाच्य होना चाहिए। पथ्य में यह देखना भी उपयोगी रहेगा कि रोज ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उकता देने वाली एक जैसी विविधता अवश्य हो, अन्यथा रोगी की रुचि समाप्त हो जायगी। ऐसे पथ्य का एक सामान्य स्वरूप निम्न प्रकार का हो सकता है :

सुबह का नाश्ता—हाथ के पिसे आटे की दो चपातियाँ जिन पर हलका मक्खन लगाया हो। बीच-बीच में इसके स्थान पर हलके उबाले दो अण्डे (यदि रोगी मांसाहारी है) लिये जा सकते हैं। साथ में एक तिहाई भाग दूध मिला कर लेना चाहिए।

दोपहर का खाना—सुबह जैसी ही चपातियाँ (मांसाहारी के लिए अण्डे, मछली आदि) और हरी सब्जी, तरकारियाँ। साथ में एक सन्तरा या सेब।

शाम की चाय—एक चपाती, थोड़ा पनीर, टमाटर और सुबह जैसी चाय।

रात के समय—केवल एक सन्तरा और कुछ अंगूर (अंगूर न हो तो मुनक्के)

आवश्यक परहेज—स्टार्च-प्रचुर पदार्थ (आलू, मैदा आदि), तली हुई वानगियाँ और काफी आदि पेय।

विशेष परहेज—ऐसे रोगी को चोट, खरोंच से बचना तथा फोड़े फुन्सी तुरन्त ठीक करना बहुत आवश्यक है क्योंकि शकर की अधिकता के कारण कोई भी चोट या घाव जल्दी ठीक नहीं होता; उलटे विषाक्त हो जाने का डर रहता है।

इस पथ्य के अतिरिक्त मधुमेह की तीव्रावस्था में यद्यपि इन्सुलिन दिया जाता है तथापि उस समय रोगी के लिए नाश्ता भी तैयार रखना पड़ता है ताकि इन्सुलिन की आकस्मिक अधिकता हाइपोग्लासेमा जैसी स्थिति उत्पन्न न कर दे। उपरोक्त उपचार विधि से यह निश्चित है कि एक समय का असाध्य माना हुआ रोग—मधुमेह, आजपूर्णतः मानव की मुट्ठी में है।

आजादी खतरे में है। पूरी ताकत लगा कर इसकी रक्षा कीजिए।

—जवाहरलाल नेहरू

उपजाओ अधिक, खर्च कम

विकास कार्यों से जो भी फल उस पर सबसे पहले देश की रक्षा का हक है। हमें उपज कर और खर्च घटा कर देश रक्षा के लिए अधिक सामग्री साधन जुटाने हैं। इससे मु को रोकने में भी मदद मि हर प्रकार की फजूलखर्ची बर्बादी को रोकिए।

आपकी किफायत में देश की ताकत है

DA 64/F 3

विज्ञापन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितना उपेक्षित, फिर भी कितना अनिवार्य।

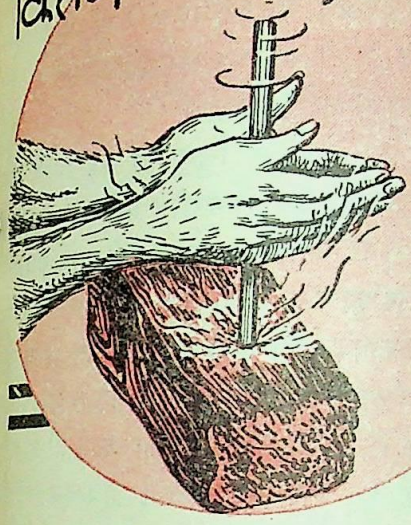

घर्षण-प्रतिरोध

अवधबिहारीलाल

घर्षण और उससे उत्पन्न प्रतिरोध को कोई भी पसन्द नहीं करता। बड़े से बड़े समाज में, छोटे से छोटे परिवार में, राष्ट्रीय क्षेत्र में तथा मशीनरी और कल-पुर्जों में, जिसे देखो वही घर्षण (friction) तथा प्रतिरोध (resistance) को न्यूनतम करने में लगा हुआ है। फरनीचर को हम अधिक-से-अधिक फिसलना बनवाते हैं कि कहीं खुरदरा न रह जाये, फर्श की घिसाई इतनी कराते हैं जो शीशे सा दमकता रहे। विविध वाहनों के लिए लोहे के टायरों की पिछड़ी हुई दुनिया से निकल कर पहले तो हम ठोस रबर के टायरों पर आये, फिर हवाभरे ट्यूब-टायरों पर आ पहुँचे ताकि सड़क पर अधिकतम तेजी से दौड़ा जा सके। बाईसिकल जब नयी-नयी सामने आयी थी तब बॉल-बेयरिंग जैसी चीज को कोई नहीं जानता था। बाद में बॉल-बेयरिंग के प्रयोग ने चाल में आश्चर्यजनक वृद्धि कर दी। माना जाता है कि शीशे की सतह सबसे अधिक फिसलनी होती है किन्तु घर्षण और प्रतिरोध तो वहाँ भी है। शीशे की सतह पर शीशे की ही गोली या चकरी फिरायी जाये तो कुछ देर में वह ठहर अवश्य जायेगी। यद्यपि इससे यह सिद्ध होता है कि शीशे जैसी सतह भी फिसलनी होने के बावजूद गत्यावरोधक है, तथापि सतह का वह खुरदरापन निरी आँखों से, बगैर सूक्ष्मदर्शी के नहीं देखा जा सकेगा।

जल में, थल में, वायु तक में गत्यावरोध

पानी में नावें चलती हैं, समुद्र में जहाज चलते हैं और थल अर्थात् सड़क पर तीव्र गतिमान वाहन के लिए यह कहा भी जाता है कि मानो पानी पर फिसला चला जा रहा हो किन्तु पानी उन नावों तथा जहाजों की गति किस प्रमाण में अवरुद्ध करता है, यह सभी जानते हैं। अतः पानी के उस प्रतिरोध को जीतने के लिए नावों से मोटरबोट और जहाजों से अधिक शक्तिशाली जलपोत (liners) तक प्रगति की गयी। फलस्वरूप जलयात्रा तीव्रतर और अधिक रक्षित हो सकी है।

थलीय प्रतिरोध तो सबसे बढ़कर है। सड़क कैसी भी साफ और चमकीली क्यों न हो, एक भारी पेटी आगे से खींचने और पीछे से धकेलने पर भी सरलता से सरक नहीं रही। कारण स्पष्ट है कि पेटी की निचली सतह और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सड़क की सतह एक-दूसरे से विलग होना नहीं चाहती। अन्ततः नीचे गोल लट्ठे रख-रखकर पेटी को आगे लुढ़काना पड़ता है। सड़क का यही घर्षण टायरों की घिस-पीटकर किस बुरी तरह खबर लेता है, यह टायरों का बारम्बार का खर्च सिद्ध करता है।

यही हाल वायु और प्रत्येक गैस का भी है। तीव्र वेग से चलने वाली वस्तु कहने भर को मानो हवा हो जाती है किन्तु हवा का प्रतिरोध भी बड़ा विकट है। पीठ के पीछे से धकेलती हवा में बाईसिकल जितनी अतिरिक्त तेजी से चलती है, सामने की हवा में उतनी ही ठप्प हो जाती है और सवार की सांस फूल जाती है। हवाई जहाजों को वायु-प्रतिरोध का कम-से-कम सामना करना पड़े इस हेतु उनके

दोनों सतहें (पेटी का तला और सड़क की सतह) खुरदरी मिल जाने पर प्रतिरोधन कितना प्रबल हो उठता है ! पेटी के नीचे पहिये लग जाने पर वही भार तथा उससे अधिक भी, यह मजदूर खिलौने की तरह लुढ़काता ले जाएगा

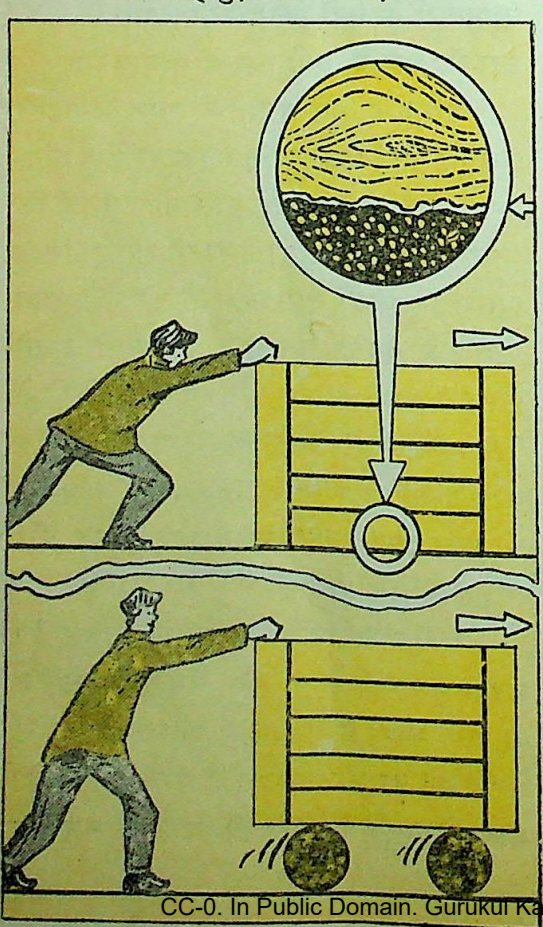

अग्र-प्रत्यग, आगे-पीछे तथा ऊपर-नीचे से अधिकतम सुप्रवाही (streamlined) बनाने पड़ते हैं। अतः यह निर्विवाद है कि इस भू-मंडल पर कोई भी स्थल प्रतिरोधशून्य नहीं है।

कल-पुर्जों की दुनिया में

कल-पुर्जों के लिए तो यह घर्षण एक मुसीबत ही है। जो मशीन घर्षण के अभाव में कई गुना अधिक काम करती, वह घर्षण के कारण कुण्ठित हो जाती है। न केवल यही कि मशीन की गति मन्द हो जाती है, बल्कि यह भी कि घर्षण उसके पुर्जों को तपा-तपाकर तथा घिस-घिसाकर उनकी जान ही निकाल लेता है। फलस्वरूप उन्हें जब-तब बदलते रहना काफी व्यय-साध्य रहता है। सोचने की बात है कि यदि घर्षण का अस्तित्व ही न होता तो मशीनरी बनाने वाले का यह स्वप्न सार्थक हो रहता कि मशीन अनन्त चलती, बस चलती ही रहे ! किन्तु सृष्टि का विधान इतना अदूरदर्शी तो नहीं है।

आखिरकार हारकर इंजीनियरों को मशीनों की चाल बढ़ाने और प्रतिरोध घटाने के नित नये प्रयोग करने पड़ते हैं। सबसे प्रमुख तो स्नेहक (lubricant) के रूप में तेल और ग्रीज का उपयोग किया जाता है। तेल और ग्रीज, घर्षणरत दोनों सतहों के मध्य एक विभेदक पतली झिल्ली के रूप में फैल जाते हैं। परिणाम यह होता है कि सतहों की फिसलन, मशीन की चाल और पुर्जों की आयु बढ़ जाती है। दूसरी विधि बेयरिंग (bearings) के उपयोग की है। बेयरिंग दो प्रकार के होते हैं—बॉल बेयरिंग (ball bearing) और रोलर बेयरिंग (roller bearing)। इनके साथ भी तेल और ग्रीज का उपयोग तो करना ही पड़ता है।

जल, थल और वायु द्वारा घर्षण प्रतिरोध

घर्षण के विषय में पात्र और माध्यम के लिए यह उक्ति पूर्णतः चरितार्थ होती है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

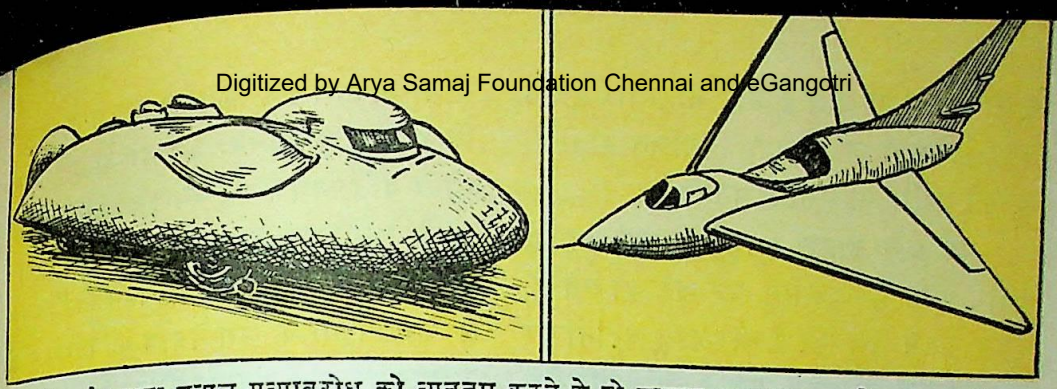

वायु के घर्षण द्वारा उत्पन्न गत्यावरोध को न्यूनतम करने के दो उत्कृष्ट उदाहरण—स्ट्रीमलाइन की हुई कार तथा यान की आकृति देखिए

पर खरबूजा गिरे या खरबूजे पर छुरी, घाटे में खरबूजा ही रहेगा। इसी प्रकार कोई पात्र जल, थल अथवा वायु के माध्यम में तेजी से चले या उस पात्र में ये माध्यम तेजी से गुजारे जायें, घिसाई-पिटाई बेचारे पात्र की ही होगी। पाइप-लाइन पानी की हो, तेल की या गैस की हो, समय के साथ घिसाई पाइप-लाइन की ही होती है। अतः उसे अधिक टिकाऊ बनाने के लिए उसके अन्दर की सतह काफी फिसलनी बनायी जाती है। एयर-कण्डीशनिंग प्लान्ट में भी इसी दृष्टि से नलिकाएं कम संकरे मोड़-तोड़ की रखी जाती हैं। रेसिंग कारें अधिकतम सुप्रवाही तथा चारों ओर से ढँकी हुई बनाते हैं ताकि उनकी बाडी और खुले हुए भाग व्यर्थ ही प्रतिरोध न बढ़ायें। आरम्भ में जो कारें ३९ मील की रफ्तार से दौड़कर लोगों को अचरज में डाल देती थीं, उन सीमाओं को पार करके आज ३९ पर एक शून्य अर्थात् ३९० मील प्र. घ. के वेग से बिजली की भांति कौंध जानेवाली रेसिंग कारें प्रतिरोध पर क्रमिक विजय की चलती-फिरती प्रतीक हैं।

प्रतिरोधशून्य दुनिया

यदि यह यथार्थ में हो जाय तो सबसे बड़ी मुसीबत (घर्षणजन्य मुसीबत से कहीं अधिक) रहेगी। प्रकृति की कृपा यही है कि ऐसा हो नहीं सकता। हमारे लिए यह विषय कल्पना तक ही रंगीन रहेगा, यथार्थ बन जाने पर तो बेहद संगीन हो जायगा। यहाँ सोचना यह पड़ जाता है कि ऊपर गिनायी हुई कठिनाइयों की दृष्टि से जब घर्षण प्रतिरोध हमारे लिए इतनी अनचाहत की वस्तु है, तो दूसरी ओर वह इतनी अनिवार्य भी क्यों है? इस समाधान के लिए घर्षण की अनेकानेक उपयोगिताओं में से कुछेक गिनी-चुनी निम्न प्रकार गिनायी जा सकती हैं।

अग्नि—आदिमानव का सर्वप्रथम आविष्कार अग्नि है। दो काष्ठ खण्ड हों अथवा चकमक पत्थर के टुकड़े हों अथवा दियासलाई की तीली और पट्टी हो, यदि टकराने पर दोनों फिसलते ही जायें, टक्कर होने ही न पाये, घर्षण बने ही नहीं तो चिनगारी कैसे उत्पन्न होगी? अग्नि तो जीव-निर्मायक पंचतत्त्वों में प्रमुख है न! अग्नि के बिना जीवन कैसा?

स्थैतिक विद्युत्—दो वस्तुओं के घर्षण से ताप तो उत्पन्न होता ही है, एलेक्ट्रानों के आदान-प्रदान द्वारा स्थैतिक विद्युत् (static electricity) भी उत्पन्न होती है। यदि सुचालक पदार्थ (तांबा आदि) पर घर्षण कराया जाये तो उससे एलेक्ट्रान तुरन्त ही विसर्जित हो जाने के कारण वह कोई प्रभाव दिखायेगा नहीं। इसके विपरीत, यदि कुचालक पदार्थ (प्लास्टिक आदि) में वह विद्युत् कुछ देर तक सचित रहती है। उदाहरणार्थ, यदि प्लास्टिक के कंघे को या छड़ी को फ्लेनल के रूमाल से घिसा जाये तो वह कागज की कतरन तथा सिर के बाल आदि को उठा लेगा, आकर्षित कर लेगा। इसीलिए सूखे बालों में कंघा फेरने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बाल खड़े हो जाते हैं और बार-बार हटाने तथा फेरने से जो विद्युत विसर्जित होती है, उसकी ध्वनि भी सुनायी पड़ती है।

पकड़ से बाहर—यह प्रतिरोध का ही प्रताप है कि हम जमीन पर खड़े हो लेते हैं, कदम-कदम चल लेते हैं और ढालू चट्टानों पर पांव टिकाते हुए बढ़ते जाते हैं। यदि प्रतिरोध न होता तो हम कमरे में खड़े न रह सकते थे और यदि एक बार चल पड़ते तो बनजारे तारों, नक्षत्रों की तरह रुकने का नाम ही न लेते! कैसे हम पहाड़ों की सैर करते, कैसे पेड़ों पर चढ़कर आम तोड़ते? कुछ भी तो पकड़ में न आता!

आकाशीय आफतें—आज तो पृथ्वी को लपेटे हुए मीलों मोटा वायुमण्डलीय वातावरण हमारी रक्षा कर रहा है अन्यथा यदि इसका प्रतिरोध न होता तो आकाशीय उल्काएं और हजारों की संख्या में नित्य ही आकाश से गिरने वाले छोटे-बड़े पिण्ड एक ही चोट में हमारी धरती को फोड़कर पार कर जाते। वर्षा की जिन बूँदों का आनन्द हम फुहारों के रूप में लेते हैं, वे ही प्रतिरोध के अभाव में बम गोले की भाँति हमारे सिर से आ-टकरातीं!

संगीत कहाँ?—वायलिन, बेला, सारंगी, सितार, इसराज हो या तबला-ढोलक हो, बगैर घर्षण, बगैर चोट खाये क्या वे बज सकेंगे? सितार पर से मिजराब यदि फिसलती ही जाये, तबले पर थाप यदि पड़ने के बजाय फिसलती जाये तो तारों में कम्पन और तबले में ध्वनि कहाँ से उत्पन्न होगी? अँगुलियाँ और हथेलियाँ यदि वाद्यों पर रुकें ही नहीं तो सारे साज बेआवाज न हो जायेंगे? घर्षणविहीन और संगीत से शून्य दुनिया मानव के रहने योग्य तो न रह सकेगी!

लेखन—कागज पर पेंसिल चलती है तो दोनों में घर्षण होता है। फलतः पेंसिल का सीसा कागज पर रेखाएं, बिन्दु और आकृतियाँ बनाता जाता है। वही सीसा यदि कागज पर घर्षण का सामना न करे तो लेखन-क्रिया का अस्तित्व ही कहाँ रहेगा? आज जो कुछ छपा हुआ भी पढ़ने को मिल रहा है, वह टाइपों के उस दबाव के कारण है जो कागज पर मशीन द्वारा पड़ता है।

चलना कैसा?—रेत में धँसे पहिये वाली किसी कार को तथा अत्यधिक भार के फल-स्वरूप खाली घूमते हुए इंजन के पहियों को कभी-कभी देखा ही होगा। पहिये बेचारे कैसे खाली घूम-घूमकर रह जाते हैं और कार या इंजन एक इंच भी आगे नहीं बढ़ता। आखिर हारकर कार के पहिये के नीचे तख्ता और इंजन के पहिये और पटरी के मध्य रेत बिछाने पर ही पहिये आगे बढ़ पाते हैं। अतः यदि हमारे पांव तथा वाहनों के पहिये और सड़क के मध्य घर्षण प्रतिरोध न हो तो चलना कैसा?

रुकना कैसा?—यदि चल भी दिये तो प्रतिरोध न होने पर क्या दृश्य उपस्थित होगा इसकी कल्पना भी बड़ी भयावह है। हवा से बातें करती कारें, ट्रेनें, बाईसिकलें और ओलम्पिक दौड़ के खिलाड़ी बस दौड़ते ही रहते, रोकने का कोई प्रतिरोध होता ही नहीं और तब न जाने कैसे-कैसे विकट टकराहटों के वीभत्स दृश्य देखने को मिलते! बाईसिकल के ब्रेक-शू, मोटरों की ब्रेक-रिंग और ट्रेनों की वैकुअम ब्रेक घर्षण प्रतिरोध के रूप में हमारे लिए अनमोल वरदान ही हैं।

घर्षण का प्रारम्भिक पंक्तियों में वर्णित वह तिरस्कार और इन पंक्तियों में वर्णित यह अनिवार्यता परस्पर कितने प्रबल विरोधी हैं, फिर भी हमारे जीवन से कितने सटे हुए हैं, यह प्रकृति की अत्यन्त रोचक विचित्रता ही है न!

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

π = ३.१४१५९२६५३५८९७९३२३८४...

गुणाकर मुले

प्रसिद्ध दार्शनिक-गणितज्ञ बर्ट्रेन्ड रसेल के शब्दों में कहा जाय तो 'गणित केवल एक तार्किक खेल है' और इस खेल के साधन हैं, इसमें प्रयुक्त होने वाले अनगिनत धारणा-संकेत। जैसे, किसी व्यक्ति की रक्त-परीक्षा के लिए उसके शरीर की एक रक्त-बूँद भी पर्याप्त हो सकती है; उसी प्रकार गणितशास्त्र के चिह्नों में से हम केवल एक ही चिह्न π की यहाँ चर्चा करेंगे।

π का इतिहास उतना ही प्राचीन है जितना कि स्वयं गणितशास्त्र का। प्राचीन मिस्र की पेपाइरस-पुस्तकों के लेखनकाल से लेकर आज तक π की धारणा के इतिहास के लगभग ४००० वर्ष बीत चुके हैं। इस बीच बड़े-बड़े गणितज्ञों ने π के रहस्योद्घाटन के प्रयास किये हैं। फिर भी आज कोई गणितज्ञ दावे के साथ यह नहीं कह सकता कि π की पुस्तक का अंतिम पृष्ठ लिखा जा चुका है।

प्रारम्भिक गणित के सभी विद्यार्थी इस चिह्न से परिचित हैं। π का रूढ़ अर्थ है, किसी भी वृत्त की परिधि एवं व्यास का अनुपात, अर्थात्, $\pi = \frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$। π (पाई) ग्रीक-वर्णमाला का एक अक्षर है, जो बहुत बाद में जाकर वृत्त के इस अनुपात के लिए गणित-शास्त्र में प्रयुक्त हुआ है। मुख्य बात है, इस संकेत के पीछे निहित वृत्त की परिधि एवं व्यास के अनुपात की धारणा और उस धारणा का इतिहास इतना ही प्राचीन है जितना कि स्वयं मानव-संस्कृति का। उस धारणा के क्रमिक अध्ययन में, न केवल हमें गणित-शास्त्र के विकास-क्रम के दर्शन होते हैं, बल्कि विभिन्न संस्कृतियों की तथा विभिन्न युगों की वैज्ञानिक प्रगति की भी एक झलक मिल जाती है। अन्य शब्दों में π की धारणा का विकास मानव के बौद्धिक विकास के लिए एक बहुत ही बढ़िया मापदण्ड है।

चहुँओर नजर उठाकर जरा उन वस्तुओं को तो खोजिए जो वृत्ताकार हैं, गोलाकार हैं। नाम गिनाने की जरूरत नहीं; सहस्रों की संख्या में ऐसी वस्तुएं आपको नजर आयेंगी, प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों। चक्राकार एवं गोलाकार वस्तुओं के अभाव में आज के मानव-जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आज के यांत्रिक-युग की सफलता का श्रेय है, इसके पीछे निहित गणित की सूक्ष्म गणनाओं को। परन्तु किसी भी यंत्र के चक्राकार कल पुर्जे को उठाकर जरा उसका परीक्षण तो कीजिए। मान लीजिए कि आपके सामने ट्रेन या मोटर या बाईसिकल का पहिया है। इस पहिये का व्यास आप ज्ञात कर लेते हैं। अब बताइये कि, उसकी परिधि कितनी होगी ? आपका उत्तर होगा : परिधि = $\pi \times$

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यास या $\frac{२२}{७}$ × व्यास या ३·१४१६ × व्यास। परन्तु $\frac{२२}{७}$ या ३·१४१६ तो π के कामचलाऊ मान हुए, गणित की भाषा में कहें तो, सन्निकट (approximate) मान हुए। इस प्रकार π=३·१४१५९२६ ५३५८·····को भी हम सन्निकट मान ही कहेंगे। वस्तुतः, π एक ऐसी संख्या है जिसका पूर्ण (exact) मान संभव ही नहीं है। अर्थात्, चक्राकार एवं गोलाकार वस्तुओं से व्याप्त हमारे यांत्रिक-युग के सभी व्यापार सन्निकट परिमाणों से ही गतिमान हैं। 'पूर्णता' मानो केवल एक खयाल हो!

आज से लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व की प्राचीन सभ्यताओं में कृत्रिम चक्राकार वस्तुओं की आज जैसी बहुलता तो नहीं थी; परन्तु तब तक कुम्हार के चाक और बैलगाड़ियों के पहियों का आविष्कार हो चुका था। भूमि में सिलिंडरों के आकार के गड्ढे खोदकर उनमें अनाज संग्रह किया जाता था। अतः बहुत प्राचीन काल में ही वृत्त की परिधि एवं व्यास के बीच एक सुनिश्चित सम्बन्ध होने का ज्ञान हो जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बेबिलोनियन और हिब्रू लोगों ने π के मान को ज्ञात करने की बहुत कोशिश की; परन्तु π=३ से वे आगे नहीं बढ़ पाये। पुराने बाइबल में एक ऐसे 'तरल सागर' (molten sea)—एक किस्म का धातु पात्र का वर्णन है जिसकी 'एक किनारे से दूसरे किनारे तक लम्बाई दस क्यूबिट है·····और घेरा लगभग तीस क्यूबिट है।' विशाल पिरामिडों के निर्माता गणितशास्त्र में, विशेषतः ज्यामिति में, काफी उन्नति कर चुके थे। प्राचीन मिस्र के गणित से सम्बन्धित ई. पू. २२०० के आसपास की दो पेपाइरस-पुस्तकें (*papyrus rolls*) प्राप्त हुई हैं। इनमें से एक लन्दन के ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित है और दूसरी मास्को के संग्रहालय में। मास्को के पेपाइरस में बास्केट के आयतन से सम्बन्धित एक ऐसा सवाल हल किया हुआ है जिसमें π का सन्निकट मान दिया हुआ है, $(\frac{१६}{९})^२$ या ३·१६०५।

दर्शन, साहित्य एवं कला के क्षेत्रों में ही नहीं, शुद्ध गणित के क्षेत्र में भी ग्रीक लोग काफी उन्नति कर चुके थे। पाइथागोरस, यूक्लिद, आर्कमिडीज, एपोलोनियस जैसे महान् गणितज्ञ ग्रीक देश की ही देन हैं। आर्कमिडीज ने दर्जनों युद्ध-यंत्रों का आविष्कार किया, परन्तु उसकी मौलिक रुचि विशुद्ध गणित में ही थी। एक विशिष्ट विधि से, वृत्त के भीतर और बाहर, क्रमशः विविध सम बहुभुजा कृतियों (regular polygons) की स्थापनाएं करके आर्कमिडीज ने यह सिद्ध किया कि π का मान $\frac{२२३}{७१}$ और $\frac{२२०}{७०}$ अर्थात् ३·१४०८५ और ३·१४२८६ के बीच होना चाहिए। वृत्त के भीतर और बाहर ९६ भुजाओं वाली सम बहुभुजा कृतियों की स्थापनाएं करके आर्कमिडीज ने उपरोक्त सन्निकट मान ज्ञात किया था। यद्यपि आर्कमिडीज का मान केवल दो दशमलव-स्थानों तक ही सही था, फिर भी उस समय तक और तत्पश्चात् अनेक शताब्दियों तक π के लिए आर्कमिडीज का मान ही पाश्चात्य जगत का सर्वोत्तम मान था। आर्कमिडीज की विधि का गणितशास्त्र के इतिहास में विशेष महत्त्व है।

गणितशास्त्र के क्षेत्र में प्राचीन चीन ने भी काफी उन्नति की थी। त्सू चूँग चिह (४२९-५०० ई.) अपने समय में चीन देश का एक महान् गणितज्ञ था। कहा जाता है कि उसने π के लिए ३·१४१५९२६५ मान निर्धारित किया था। आर्यभट्ट प्रथम (४९९ ई.) से लेकर भास्कराचार्य (११५० ई.) तक का समय भारतीय गणित का स्वर्णकाल माना जाता है। इसके लिए यही एक प्रमाण पर्याप्त है कि आर्यभट्ट ने अपने 'आर्यभटीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रंथ में π के लिए जो मान दिया है वह अपने समय का संसार का एक सर्वोत्तम मान था। 'आर्यभटीय' का एक श्लोक है—

चतुर्धिकं शतमष्टगुणं
द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम्।
अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो
वृत्तपरिणाह ॥

अर्थात् दो अयुत (२०,०००) व्यास की परिधि का परिणाम ६२,८३२ है। अतः वृत्त की $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}} = \frac{६२,८३२}{२०,०००} = ३·१४१६$। आज की अधिकांश गणित-गणनाओं के लिए आर्यभट्ट द्वारा खोजा हुआ π का यह सन्निकट मान पर्याप्त है।

π के मान के सम्बन्ध में मध्ययुग के एक यूरोपीय गणितज्ञ का भी उल्लेख करना जरूरी है। वह था, इटली के पिसा नगर का लियोनार्डो 'फिबोनकी' (१२५० ई.)। फिबोनकी ने भारतीय गणित एवं अंक-पद्धति को यूरोप के देशों में फैलाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। π के लिए उसने ३·१४१० और ३·१४२७ के बीच का मान निर्धारित किया था, जो आर्कमिडीज के मान से अधिक सूक्ष्म था।

π के मान वाला यह पुरातन प्रश्न आज कोई अर्थ नहीं रखता। नयी विधियों से π के मान को चाहे जितने दशमलव-स्थानों तक लिखा जा सकता है। पिछली शताब्दी के एक उत्साही गणितज्ञ शांक ने ई. १८७४ में ७०७ दशमलव स्थानों तक π के मान की गणना की थी। शांक के π=३·१४१५९२-६५३५८९७९३२३८४६ ····· विस्तार को यदि ७०७ दशमलव स्थानों तक लिखा जाय तो एक पूरा पृष्ठ भर जायेगा। शांक के दिनों में π के मान को १००० दशमलव स्थानों तक ज्ञात करने के लिए अनेक वर्ष लग जाते; परन्तु अभी कुछ वर्ष पूर्व अमरीका के एक विद्युत-गणक (ENIAC) की सहायता से, लगभग ७० घण्टों में π के मान को २०३५ दशमलव स्थानों तक ज्ञात किया गया है। इस प्रकार की गणना को कागज और कलम की सहायता से करने के लिए किसी एक गणितज्ञ को अपना संपूर्ण जीवन लगाना पड़ेगा।

अब हम π के दूसरे पहलू पर विचार करेंगे। निस्संदेह, यह एक पूर्णांक (integer) संख्या नहीं है। यह एक परिमेय (rational) संख्या भी नहीं है; क्योंकि इसे $\frac{\text{अ}}{\text{ब}}$ (जहाँ अ और ब पूर्णांक संख्याएँ हैं) के रूप में भी व्यक्त करना संभव नहीं है। हम जानते हैं कि π=३·१४१५९२६··· विस्तार असीम (infinite) एवं अनावृत्त (non-recurring) है। ऐसी संख्याओं को गणितज्ञों ने अपरिमेय (irrational) संख्याओं का नाम दिया है। सन् १७६१ में **लैम्बर्ट** (Lambert) ने सिद्ध किया था कि π एक अपरिमेय संख्या है। π की तरह $\sqrt{२}$ (=१·४१४२···) भी एक अपरिमेय संख्या है; परन्तु π और $\sqrt{२}$ में एक मौलिक भेद है। परिमेय गुणांकों (rational coefficients) वाले बीजीय-समीकरण का कोई भी मूल (root) बीजीय-संख्या (algebric-number) कहलाती है। इस प्रकार, $\sqrt{२}$, $\sqrt{-१}$ और २·७८ बीजीय संख्याएँ हैं; क्योंकि वे क्रमशः $क्ष^२ - २=०$, $क्ष^२ + १=०$ और ५० क्ष − १३९=० की मूल हैं। वह संख्या जो बीजीय नहीं है, बीजातीत-संख्या (trancendental number) कहलाती है। अन्य शब्दों में, बीजातीत-संख्या एक ऐसी संख्या है जो परिमेय गुणांकों वाले किसी भी बीजीय-समीकरण का हल नहीं हो सकती।

सन् १८८२ में जर्मन गणितज्ञ लिंडेमेन (Lindemann) ने सिद्ध किया कि π एक बीजीय संख्या नहीं है; अर्थात् यह ऐसे किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

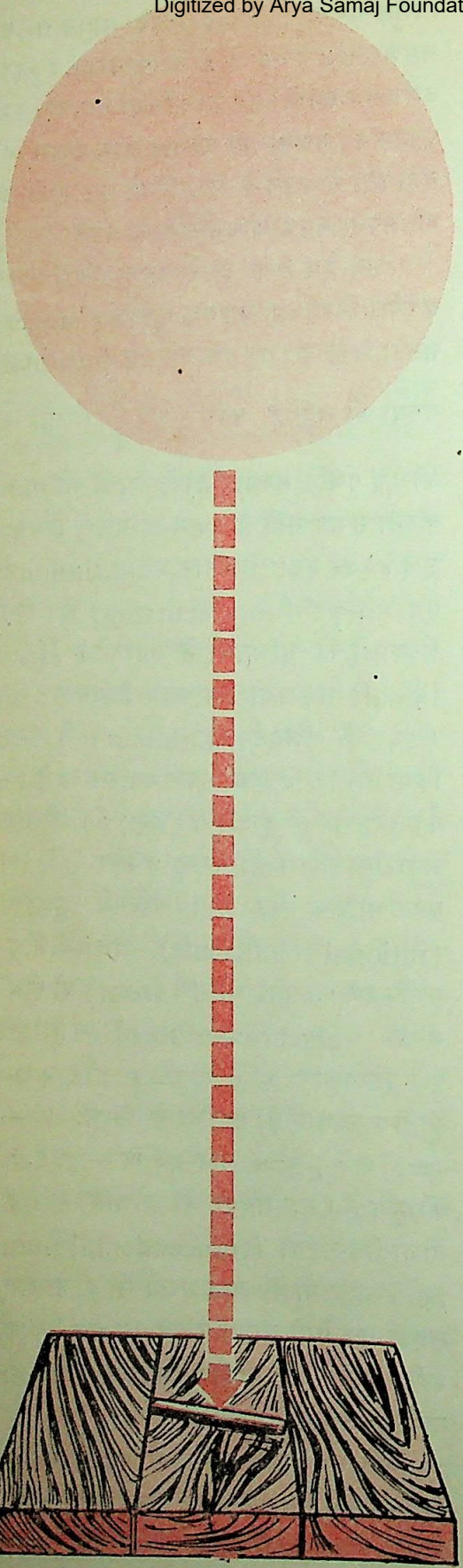

गुणांक परिमेय हों। π एक बीजातीत-संख्या है। इस से प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध सवाल भी हल हो गया। प्राचीन काल से गणितज्ञ केवल परकार और स्केल की सहायता से एक ऐसे वर्ग क्षेत्र के निर्माण में उलझे रहे जो दिए हुए वृत्त क्षेत्र के तुल्य हो। यह सिद्ध हो जाने के बाद कि π एक बीजातीत संख्या है, इस की असंभावना स्वयं सिद्ध हो गई। यहाँ यह बात जान लेनी जरूरी होगी कि π ही एकमात्र बीजातीत संख्या नहीं है। दूसरी प्रसिद्ध बीजातीत संख्या e है। वस्तुतः बीजातीत संख्याओं की संख्या अनंत है। इतना ही नहीं, बीजातीत संख्याओं की अनन्तता (infinity) प्राकृतिक संख्याओं की अनन्तता से भी अधिक घनी (dense) है। (देखिए : 'विज्ञान-लोक' वर्ष ५, अंक ४; लेख 'अनन्त')

केवल वृत्त के व्यास और परिधि से ही π का सम्बन्ध हो, ऐसी बात नहीं है। पिछले चार सौ वर्षों में कई ऐसी अनन्त श्रेणियां (infinite series) खोजी गयी हैं जो π के विभिन्न सन्निकट मानों को व्यक्त करती हैं। इस प्रकार की कुछ प्रसिद्ध श्रेणियाँ नीचे दी जाती हैं :

फ्रेंच गणितज्ञ वियेटा (Vieta १५४०–१६०३) की श्रेणी :

$$\frac{2}{\pi} = \sqrt{\tfrac{1}{2}} \times \sqrt{\tfrac{1}{2}+\tfrac{1}{2}\sqrt{\tfrac{1}{2}}} \times \sqrt{\tfrac{1}{2}+\tfrac{1}{2}\sqrt{\tfrac{1}{2}+\tfrac{1}{2}\sqrt{\tfrac{1}{2}}}} \times \cdots$$

इस प्रयोग द्वारा पाई (π) का औसत मूल्यांकन किया जा सकता है। दो जोड़ युक्त एक चौकोर पटरे पर निश्चित ऊँचाई से एक तीली फेंकी जाती है। कितनी बार तीली फेंकी और कितनी बार तीली का कोई भी भाग एक निर्धारित जोड़ को छूता रहा, इसका लेखा रख लिया जाता है। पहले की संख्या को दुगुना करके पीछे की संख्या से भाग देने पर प्रायः ही औसत अंक ३·१४ आता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इंगलिश गणितज्ञ जॉहॉन वॉलिस (१६१६-१७०३ ई०) की श्रेणी :

$$\frac{\pi}{२}=\frac{२\cdot२\cdot४\cdot४\cdot६\cdot६\cdot८\cdot८\cdots}{१\cdot३\cdot३\cdot५\cdot५\cdot७\cdot७\cdot९\cdots}$$

वालिस के समकालीन एक दूसरे इंगलिश गणितज्ञ लॉर्ड ब्राउनेकर की श्रेणी :

$$\pi=\cfrac{४}{१+\cfrac{१}{२+\cfrac{९}{२+\cfrac{२५}{२+\cfrac{४९}{२+\cfrac{८१}{२+\text{इत्यादि}}}}}}}$$

π के मान को अनन्त श्रेणियों में व्यक्त करना आज अधिक आश्चर्य की बात नहीं मानी जाती; परन्तु शुद्ध संयोग (pure chance) से सम्बन्धित सिद्धान्त (theory of probability) में भी π के दर्शन होने लग जाएं तो किसी को भी आश्चर्य हुए बगैर नहीं रहेगा। बुफन (Buffon) एक प्रकृतिवेत्ता थे, परन्तु ज्यामितीय संभाविता (geometrical probability) प्रमेय की खोज करके गणित में भी उन्होंने अपना नाम अमर बना लिया। बुफन के प्रमेय को समझने के लिए एक ऐसे क्षैतिज-समतल (horizontal plane) की कल्पना कीजिए जिस पर समान अन्तर से कुछ समान्तर रेखाएँ खींची गयी हैं। मान लीजिए कि इन रेखाओं के बीच की समान दूरी 'अ' है। अब 'ल' लम्बाई की एक सुई लेकर यदृच्छा (at random) इस रेखांकित समतल पर फेंकी जाए। जब-जब सुई किसी समान्तर रेखा को काटती है, उसे नोट कर लिया जाता है। बुफन का प्रमेय सिद्ध करता है कि यदि सुई की लम्बाई समान्तर रेखाओं के बीच की लम्बाई से कम है (अर्थात्, ल<अ) तो सुई द्वारा किसी समान्तर रेखा को काटने की सम्भावना $\frac{२\,ल}{\pi\,अ}$ है। यदि ल=अ लिया जाय तो यह सम्भावना होगी, $\frac{२}{\pi}$। सन् १९०१ में इतालवी गणितज्ञ लाझेरीनी (Lazzerini) ने सुई को ३४०७ बार समतल पर फेंककर π के लिए ३·१४१५९२९ मान प्राप्त किया। सात दशमलव स्थानों तक π के सही मान ३·१४१५९२६ से इस मान की तुलना करने से ज्ञात होगा कि लाझेरीनी के मान में ०·०००००० ३ से भी कम की गलती है। जो भी हो, बुफन के इस प्रमेय से यह तो सिद्ध होता ही है कि π का सम्बन्ध केवल वृत्त की $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ से ही नहीं है; संभाविता-सिद्धान्त के संयोग-जगत में भी यह विद्यमान है।

आज संसार के गणितज्ञ विभिन्न सैद्धान्तिक-समूहों में बंटे हुए हैं। प्रत्येक गणित-स्कूल अपनी अलग-अलग तार्किक मान्यताओं के आधार पर गणितीय-धारणाओं को सुस्थिर आधार प्रदान करने में प्रयत्नशील है। पिछली शताब्दी के जर्मन गणितज्ञ क्रोनेकेर (Kronecker : १८२३-९१ ई०) ने तो बीजातीत संख्याओं के अस्तित्व से ही इनकार किया था। जब उसे ज्ञात हुआ कि लिंडेमान ने π को एक बीजातीत-संख्या सिद्ध किया है तो उसने लिंडेमान से पूछा—'π से सम्बन्धित तुम्हारी यह खोज किस उपयोग की है? ऐसे विषयों के अध्ययन से लाभ ही क्या, जबकि हम यह भली-भाँति जानते हैं कि अपरिमेय (अतः बीजातीत) संख्याओं का भौतिक विश्व में कोई अस्तित्व ही नहीं है?' क्रोनेकेर जैसे संदेहवादी दृष्टिकोण रखने वाले गणितज्ञों की आज भी संख्या कम नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

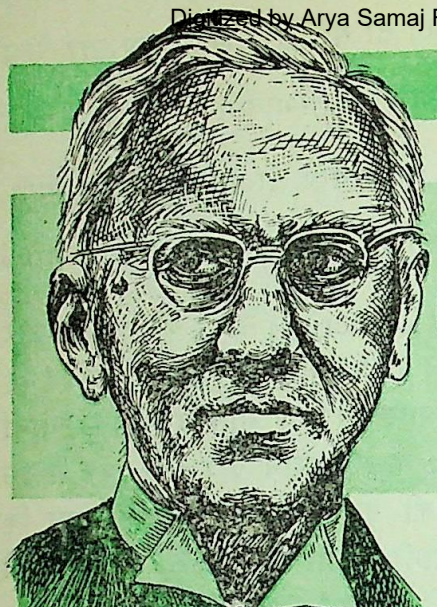

पेनिसिलिन का आविष्कर्ता
एलेक्जेण्डर फ्लेमिंग

राजेन्द्रकुमार

एक आविष्कार ऐसा भी था जिसने सत्रह वर्ष पश्चात् नोवेल पुरस्कार दिलाया। कूड़े के एक कण से और उसके प्रति उत्पन्न झुंझलाहट से आरम्भ हुआ वह आविष्कार महान् लोकहितकारी ओषधि के रूप में अपने युग का एक बरदान ही सिद्ध हुआ।

पेनिसिलिन का था वह आविष्कार और आविष्कारक था स्काटलैण्ड निवासी सर ऐलेक्जेण्डर फ्लेमिंग (१८८१-१९५५)।

जीवन का आरम्भ काल

आठ भाई-बहिनों के भरेपूरे परिवार में फ्लेमिंग सबसे छोटा था। स्काटलैण्ड के लाक-फील्डस्थित आयरशायर नामक एक फार्म पर १८८१ में फ्लेमिंग का जन्म हुआ था। धनाभाव के कारण १६ वर्ष की कच्ची आयु में ही फ्लेमिंग को अपना प्रिय शिक्षा क्रम छोड़कर नौकरी में जुट जाना पड़ा। लन्दन की एक जहाजरानी कम्पनी में क्लर्की करते-करते कुछ पैसा बचाते रहे और आगे चलकर पितृधन जो विरासत में मिला, उसकी सहायता से अध्ययन में पुनः तन-मन से लग गये। लन्दन की किलमार्नोक एकेडेमी (Kilmarnock Academy) तथा सेन्ट-मेरी हास्पिटल के मेडीकल स्कूल से बहुमान सहित डाक्टरी की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। पुनः उसी हास्पिटल में सर आमराँथ राइट (Sir Almroth Wright) के निर्देशन में टीका-चिकित्सा (Vaccine therapy) में अनुसन्धान कार्य करते-करते निपुणता प्राप्त की। उसी दौरान में भिन्न-भिन्न बैक्टीरिया के विभिन्न प्रभावों तथा विसंक्रामक ओषधियों के विषय में नयी रुचि भी उत्पन्न हो गयी।

शीघ्र ही प्रथम विश्वयुद्ध का बिगुल बज उठा और अपने राष्ट्र की सेवार्थ फ्लेमिंग ने चिकित्सादल का नेतृत्व सम्हाल लिया। युद्ध के मध्य वे यह देखकर विचलित और अत्यधिक चिन्तित हो उठे कि आहत सैनिकों में चोटों के कारण मरने वालों से कहीं अधिक संख्या उन घावों के संक्रमित हो जाने के फल-स्वरूप मरने वालों की रहती थी। टीका-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिकित्सा में निपुण डा. फ्लेमिंग ने दृढ़ निश्चय किया कि संक्रमण को रोकने के लिए ओषधियाँ नहीं, शरीर की रोग-संघर्षक शक्ति बढ़ाने का उपाय ढूंढ़ना चाहिए।

संक्रमण द्वारा घावों को घातक रूप से विकृत कर देने में अन्यान्य बैक्टीरिया की अपेक्षा स्टेफाइलोकोकस (staphylococcus) अर्थात् संक्षेप में स्टेफ-बैक्टीरिया का प्रमुख हाथ रहता है, यह फ्लेमिंग को भली-भांति ज्ञात था। अतः प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् लन्दन यूनीवर्सिटी में बैक्टीरियोलोजी के प्रोफेसर के पद पर नियुक्त होकर फ्लेमिंग विशेषतः स्टेफ-बैक्टीरिया के ही सूक्ष्म अध्ययन में लगे रहे। सूक्ष्मदर्शी के नीचे स्लाइड पर स्लाइड आती-जाती रहीं और स्लाइड-स्लाइड पर भिन्न-भिन्न स्टेफ-बैक्टीरिया पलते भी रहे ताकि परीक्षणार्थ उनकी प्राप्ति में कठिनाई उपस्थित न हो।

कूड़ा, झुँझलाहट और आविष्कार

प्रायः ही कमरे की खुली खिड़की से कूड़ा, कचरा या धूलिकण जिस स्लाइड पर बैठ जाते, वह स्लाइड फेंक देनी पड़ती और यों मानो संग्रहीत बैक्टीरिया-नमूनों की स्लाइड के खजाने में घाटा पड़ जाता। १९२८ का वह दिन निश्चय ही ऐतिहासिक सिद्ध हुआ जब स्वभावानुसार उस स्लाइड को फेंकने के लिए फ्लेमिंग के हाथ उठे तो सही, किन्तु एक क्षण के लिए रुक भी गये। क्षणभर के उस रुकने ही ने मानो युग पलट दिया और चिकित्सा-विज्ञान में एक नयी क्रान्ति के लिए नया द्वार खोल दिया।

होनी ऐसी ही बलवान थी उस दिन कि पेनिसिलियम नोटेटम (Penicillium notatum) नामक फफूंद (fungus) का एक कण उस स्टेफ-बैक्टीरिया की ही स्लाइड पर न जाने कहाँ से उड़ता-उड़ता आ गिरा। फफूंद चीज ही ऐसी है जो जहाँ भी सीलन या सड़ांध पायी, जम जाती है, फैल जाती है। उस क्षण रुककर फ्लेमिंग ने जब उस स्लाइड को सूक्ष्मदर्शी के नीचे रखा तो वे यह देखकर हैरान रह गए कि उस कण के इर्दगिर्द फैले हुए बैक्टीरिया कुछ भागे जा रहे थे, कुछ मारे जा चुके थे और शेष मानो शक्ति ही खो बैठे थे।

फ्लेमिंग ने देखा कि फफूंद का वह कण लगभग उसी वर्ग की फफूंद का था जो प्रायः ही बासी रोटियों और सड़े-बुसे अचार-मुरब्बों पर छा जाती हैं। फ्लेमिंग ने यह निश्चय-पूर्वक ज्ञात कर लिया कि वह फफूंद पेनिसिलियम नोटेटम वर्ग की थी। बस, उसी फफूंद के कण को तत्पश्चात् प्रति वर्ष लाखों व्यक्तियों को मृत्यु के मुख से लौटाते रहने का श्रेय प्राप्त करना था। फ्लेमिंग ने सोचा कि जब यह फफूंद स्लाइड पर स्टेफ-बैक्टीरिया को मृत्युनाद सुना सकती है, तो क्यों न शरीर के अन्दर भी यह करामात दिखा सके? अवश्य, इस फफूंद का कोई न कोई टीका (vaccine) तैयार किया जा सकने की सम्भावना होनी ही चाहिए।

यह वानस्पतिक नमूना है उस फफूंद का जिससे पेनिसिलिनबनाने का आविष्कार फ्लेमिंग ने किया था

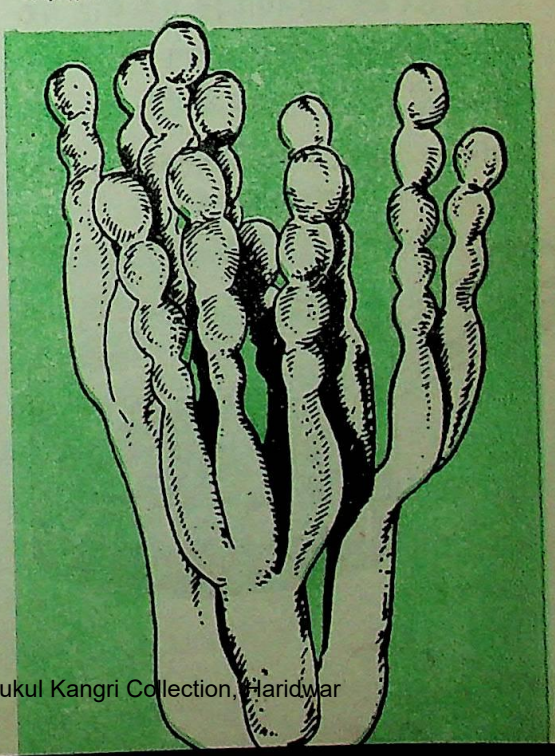

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कार के पश्चात् भी सत्रह वर्ष !

यों, पेनिसिलिन के आविष्कार का सूत्र तो हाथ लग गया, किन्तु उसे व्यवहारिक रूप देना इतना सरल नहीं था। फ्लेमिंग ने अपने अन्य प्रयोगों में देखा कि वह फफूंद स्टेफ के अतिरिक्त अन्य बैक्टीरिया की रोकथाम में भी समर्थ थी। उन दिनों चिकित्सकगण घावों के रक्षणार्थ आयोडीन तथा अन्य जैसे-तैसे विसंक्रामक पदार्थ प्रयुक्त कर रहे थे, किन्तु उन्हें आशातीत सफलता किसी से भी नहीं मिल रही थी। फ्लेमिंग ने उन्हें सुझाया कि उनकी प्रयुक्त तीव्र दाहक ओषधियाँ रोगाणुओं को उतना नष्ट नहीं कर पाती थी जितनी क्षति वे रक्त की श्वेत कणिकाओं को पहुँचाती थीं। रक्त की श्वेत कणिकाओं में ही यह सामर्थ्य है कि वे विजातीय द्रव्यों, विशेषकर हानिकारक जीवाणुओं का डटकर मुकाबला करें और उन्हें खदेड़ भी दें।

यह सब देखते हुए आवश्यकता ऐसी ओषधि तैयार करने की थी जो रक्त की श्वेत कणिकाओं की क्षमता बढ़ाए, न कि उलटे घटाये। उपरोक्त पेनिसिलिन-फफूंद का प्रभाव विभिन्न बैक्टीरिया पर ज्ञात करने के लिए फ्लेमिंग ने उस फफूंद का एक द्रव तैयार किया और छह नालियोंयुक्त एक प्लेट पर उसे धीरे-धीरे इस प्रकार डालते गये कि उन छहों सिरों पर रखे विभिन्न बैक्टीरिया-नमूनों से वह द्रव एक ही साथ संयोग करे। परिणाम यह हुआ कि उनमें से कुछ नमूने अप्रभावित रहे, कुछ शक्ति शून्य हो गये और शेष सब नष्ट हो गये। प्रयोग का उल्लेखनीय चमत्कार यह था कि नष्ट होने वाले स्टेफ-बैक्टीरिया ही थे जिनसे शरीर के घावों को सर्वाधिक खतरा रहता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध में फ्लेमिंग के कार्य को वेग प्रदान करना आवश्यक हो गया। इसके लिए इगलैण्ड के ही सर हावर्ड वाल्टर फ्लोरे आक्सफोर्ड के अपने सहायक वैज्ञानिकों के दल सहित और जर्मनी के प्रसिद्ध रसायज्ञ अर्नस्ट बोरिस शाएन मैदान में आये। डा. शाएन ने प्रयोगार्थ पेनिसिलिन की थोड़ी-सी मात्रा तैयार की जिसे डा. फ्लोरे ने पहले पशुओं पर परीक्षण करके देखा। वह प्रयोग सफल रहा। डा. फ्लोरे ने अमरीका पहुँचकर वहाँ के वैज्ञानिकों और ओषधि-निर्माताओं में पेनिसिलिन के प्रति तीव्र रुचि और उत्कण्ठा जागृत कर दी। तुरन्त ही युद्धरत मित्रराष्ट्रों को पेनिसिलिन की पूर्ति अमरीका द्वारा भरपूर की जाने लगी।

सन् १९२८ में फ्लेमिंग ने विश्व को पेनिसिलिन की कल्पना प्रदान की और उनके सहयोगियों ने १९४५ तक उस आविष्कार को लोकोपयोगी स्वरूप दिया। यों, सत्रह वर्ष पूर्व का वह नन्हा कल्पना-बीज १९४५ में नोबेल पुरस्कार के रूप में फलित हुआ और उसके साझेदार बने १. सर ऐलेक्जेण्डर फ्लेमिंग, २. हावर्ड फ्लोरे और ३. अर्नस्ट शाएन। इससे पूर्व फ्लेमिंग को १९४३ में रायल सोसाइटी की फेलोशिप तथा १९४४ में नाइट की पदवी और ज्हॉन स्कॉट पदक प्रदान किया जा चुका था। लाखों करोड़ों को जीवन दान देने की अनन्त शृंखला प्रदान करने वाले फ्लेमिंग का ११ मार्च, १९५५ को जीवनदीप बुझ गया!

पेनिसिलिन-उत्पादन के लिए तैयार किया जा रहा पेनिसिलिन-कल्चर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणियों में अन्तर्प्रेरणा

कुमारी रेखा टण्डन

प्रेरित बुद्धि मोटे तौर पर दो प्रकार की मानी गयी है—स्वप्रेरित और अनुभव द्वारा सम्पादित। नींद में धुत्त कुत्ता जरा ही खटके से भूँक उठता है, यह उसकी अन्त-प्रेरणा है और दूध का जला हुआ छाछ फूँक-फूँक कर पीता है, यह अनुभव द्वारा सम्पादित बुद्धि है। सर पर ही चढ़ी आ रही मोटर-कार से बचने के लिए आप एक ओर कूद पड़ते हैं, वह आपकी स्वप्रेरित बुद्धि है जिसके लिए सीखना नहीं पड़ता। जबकि बगैर प्रशिक्षित हुए आप इन पंक्तियों का एक शब्द भी न पढ़ पाते। वह आपकी सम्पादित बुद्धि है। काल के कराल गाल में जाकर भी निकल छूटने वाला वह मृत्युंजयी चूहा कैसी विलक्षण बुद्धि का रहा होगा जो सर्प के पेट में पहुँच कर, उसका पेट ही फाड़कर बाहर निकल आया था!

नन्हें कीटों से पशु-पक्षियों तक

इस स्वप्रेरित बुद्धि पर किसी एक ही वर्ग के प्राणियों की बपौती हो, ऐसा अन्याय प्रकृति ने नहीं होने दिया है। सृष्टि के छोटे से छोटे जीव से लेकर बड़े पशुओं तक इस बुद्धि का मुक्त वितरण हुआ है। जैसा जिसका पात्र रहा, उतनी बुद्धि उसके पल्ले पड़ी। जन्तु-जगत में यत्र-तत्र किस प्रकार इस बुद्धि के मनोरंजक प्रदर्शन होते रहते हैं, यह निम्न कुछेक उदाहरणों से ज्ञात होगा।

कांटों में मगन रोडरनर पक्षी

रोडरनर (roadrunner) दक्षिण-पश्चिम संयुक्त राज्य (अमरीका) में पाया जाने वाला, हमारे यहाँ की कोयल से कुछ बड़ा किन्तु दुबला, लम्बा, पतला पक्षी है। इस पक्षी को वहाँ राष्ट्रीय सम्मान भी प्राप्त है और प्रायः ही प्रतीक रूप में जगह-जगह देखा जा सकता है। सामान्यतः आरामपसन्द यह पक्षी-मादा रोडरनर अपना घोंसला कैक्टस के कांटों बीच रखती है। किस खूबी से वह रखती है, यह उसकी स्वप्रेरित बुद्धि है और कहां छिपाकर रखती है, यह उसकी सम्पादित बुद्धि है। सम्पादित बुद्धि उसने अवश्य पहले कहीं खुले में घोंसला रखकर और उससे हानि उठाकर अर्जित की होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शहद का लोभी हनीगाइड पक्षी

अफ्रीका में पाया जाने वाला यह पक्षी अधिकतर नाम से ही हनीगाइड (honey-guide) अर्थात् शहद का लोभी है, वर्ना स्वभावतः तो यह मधुमक्खियों के अण्डों की तलाश में रहता है। मधुमक्खियों के डंक से यह घबराता बहुत है फिर भी वहां तक जाने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। इसके लिए यह बड़ी सूझ-बूझ से काम लेता है। शहद के छत्ते के निकट जब किसी आदमी को गुजरते देखता है तो चीखता-चिचियाता है, पंख फड़फड़ाता है और कभी-कभी तो जबर्दस्ती उसके मुंह की ओर उड़ता आकर उसका ध्यान अपनी ओर खींचता है। जब यह जान लेता है कि वह आदमी पीछे-पीछे आ रहा है तब वह उसे शहद के छत्ते तक ले जाता है। उसके पश्चात् इसका काम बहुत सरल हो जाता है। वह आदमी ही छत्ता हथिया लेता है और उसके द्वारा शहद निकाल लेने पर यह उसमें छिपे रखे अण्डों पर अपनी दावत उड़ाता है।

द. पश्चिमी संयुक्त-राज्य (अमरीका) का, हमारे यहाँ की कोयल जैसा सम्मान प्राप्त यह पक्षी—रोडरनर, वहाँ का राष्ट्र सम्मानित पक्षी है। नर्म स्थलों को छोड़कर केक्टस के नुकीले काँटों में ही यह अपना घोंसला क्यों बनाता है, इसका उत्तर होगा, इसकी अन्तर्प्रेरणा

नन्ही बिटरलिंग मछली

जल-जीव भी इस स्पर्धा में पीछे नहीं हैं। बिटरलिंग मछली शरीर में जितनी छोटी है, बुद्धि में उतनी ही प्रखर है। वसंत इन मछलियों के लिए प्रजनन-काल का नव सन्देश लेकर आता है। उन दिनों नर अपने चमकीले हरित वर्ण पर पेट की ओर लाल रंग का निखार ले आता है। मादा रंगत तो नहीं बदलती, किन्तु उसकी अण्डवाहिनी का एक लम्बा सिरा लाल नली के रूप में बाहर निकल आता है। दोनों अपनी प्रणय-यात्रा करते-करते शम्बुक मछली के एक खाली शंख (mussel) को खोज लेते हैं। वह शंख चारों ओर से बन्द होता है; बस, केवल एक ओर छिद्र रहता है। मादा बिटरलिंग उस छिद्र पर अपनी नलिका टिकाकर उसमें अण्डे उतार देती है और ऊपर से नर अपने शुक्र द्वारा उन्हें संसेचित कर देता है।

सागर के अन्य बड़े जीवों से अपने नन्हे-मुन्नों को यों सुरक्षित कक्ष में छिपाकर नर-मादा अपनी-अपनी राह पकड़ते हैं। समय पाकर अण्डों से बच्चे निकलते हैं और अन्तः प्रेरणा के ही बल पर गुजरती हुई अन्य बिटरलिंग के पेट से चिपककर भोजन की खोज में तथा मुक्त बिचरने निकल पड़ते हैं।

बहुपत्नीक नर शतुर्मुर्ग

शतुर्मुर्ग कोई छोटा पक्षी नहीं। अपने भारीभरकम शरीर और काफी लम्बी टांगों के कारण पेड़ो पर बसेरा करना उसके बूते से बाहर है। अतः यह भी गिनेचुने उन विचित्र पक्षियों में से है जो पंख होते हुए भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ नहीं पाते। इनका जीवन रेतीले तट पर ही बीतता है। इसी शारीरिक अक्षमता के कारण इन्हें अपने अण्डे भूमि पर ही देने पड़ते हैं और खड़े-खड़े उनकी निगरानी करनी पड़ती है। प्रजननकाल आरम्भ होते ही इनके झुण्ड ६-७ के थोक में बँट जाते हैं। साधारण-तया एक नर ५-६ मादाओं को हथिया लेता है। नर अपनी ही जिम्मेदारी से रेत में एक चौड़ा गड्ढा बनाता है। उसी में मादाएं, प्रत्येक करीब ५-६ के हिसाब से ३०-३५ अण्डे देती हैं। उतने ही से मादाएं अपनी जिम्मेदारी पूरी कर दी समझ लेती हैं और मुँह फेर लेती हैं। नर अकेला ६-७ हफ्तों तक उनकी निगरानी किये रहता है। जरा भी देर को वहाँ से हटना होता है तो उन पर रेत ढंककर हटता है और जल्द ही लौट आता है।

पत्तीखोर मक्खी

अण्डे देने का समय आने पर मादा पेड़ के घुन लगे तने के कोने में अथवा काठ के किसी पुराने लट्ठे में छेद करना आरम्भ करती है। जब वह छेद एक छोटी सुरंग जितना बन जाता है, तब हरी-भरी पत्तियों को कुतर-कुतरकर उस सुरंग में ऊपर, नीचे, अगल, बगल, चारों ओर बिछा देती है। बिछी हुई सतह पर ३-४ परतें पुष्प-पराग और नर्म कोंपलों को जमा देती है ताकि नवजात बच्चों को खाने-पीने की कमी न रहे। तब उसमें सावधानी से अण्डे रखकर उन्हें पुनः ढंककर चली जाती है और लौट कर नहीं आती। अण्डों से निकले बच्चे शीघ्र ही अपने पैरों खड़े हो जाते हैं और बगैर माँ-बाप के सिखाए, उन्हीं के जैसी जीवन क्रिया स्वयं भी आरम्भ कर देते हैं।

बोअर बर्ड का क्रीडा-कुंज

आस्ट्रेलिया और न्यूगाइना में पाया जाने वाला सामान्य बोअर बर्ड (bower bird)

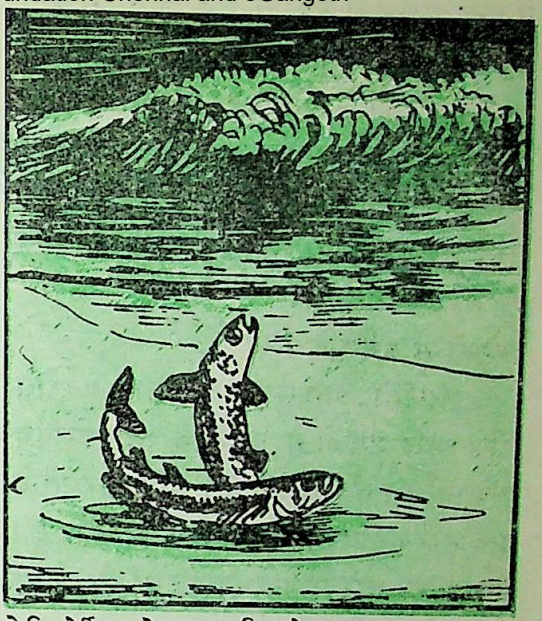

केलिफोर्निया के सागर किनारे का यह मत्स्य-युगल अपना प्रजनन कार्य सम्पन्न करने के लिए किस विलक्षणता से चढ़ते-उतरते सागर-ज्वार का अचूक लेखा रखता है, यह वैज्ञानिकों के लिए अभी तक एक गुत्थी है

तथा गार्डनर बोअर बर्ड (gardner bower bird) अपने लिए रहने का निकुंज तथा खेलने का कुंज बनाने में बहुत कुशल है। खेलने का क्रीडा-कुंज अर्थात् बोअर (bower) बनाने के इसके स्वभाव के कारण ही इसे बोअर बर्ड कहा गया है। जहाँ-तहाँ से बीन-चुनकर तिनकों और टहनियों को कुछ दूर तक गाड़कर एक नन्हीं-सी सुरंग बनाता है फिर उसे रंग-बिरंगे कागज के टुकड़ों, पंक्तियों और फूलों से सजाता है। अपना क्रीडांगण तैयार कर लेने के पश्चात् मादा को ले आता है। २-३ दिन उसमें दोनों खेलकूद और किल्लोल करके अपना घोंसला बनाने के लिए अन्यत्र चले जाते हैं।

ग्रुनियन मछली का समय-ज्ञान

यह मछली केलिफोर्निया के समुद्रतट पर पायी जाती है। समुद्री ज्वार-भाटे का इनका समय-ज्ञान वास्तव में ऐसा आश्चर्य ही है। मार्च से अगस्त तक के इनके ऋतुकाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में इन्हें घड़ी-पल तक का शुद्ध ज्ञान इस बात का रहता है कि किस समय ज्वार आयेगा और कब उतर जायेगा। उससे पहले ही इनके नर और मादा बारी-बारी से ज्वार के साथ किनारे आ लगते हैं और मादा अण्डे देकर तथा नर उन्हें निषेचित करके ज्वार के साथ ही लौट जाते हैं।

शत्रुओं से बचने के लिए

चींटियाँ, मक्खियाँ, बर्रे, तथा गुबरीले कीड़े आदि शत्रुओं से बचने के लिए विविध युक्तियों का सहारा लेते हैं। अधिकतर तो ये डंक मारकर अपना काम निकाल लेती हैं। इनका डंक मारना आक्रमक प्रवृत्ति का इतना नहीं होता, जितना रक्षात्मक प्रवृत्ति का। तितलियाँ, पतिंगे, टिड्डे आदि कीट शत्रुओं से बचने के लिए अपने वातावरण के अनुकूल, बिलकुल ही मिलते-जुलते रंग-रूप धारण कर लेते हैं और सहज ही पहचाने नहीं जाते। इसी प्रकार उत्तर ध्रुवीय रीछ जिसे सदैव हिम से घिरे रहना पड़ता है, अपने शरीर के रोयें दूधिया सफेद रखता है और शत्रु का आभास पाते ही अपनी दूर से पहचानी जाने वाली काली नाक को पंजों में छिपा लेता है।

नवजात कंगारू का चूजा मुश्किल से इंच भर का होता है और अपनी माँ की थैली में पड़ा रहता है; किन्तु जब उसे भी भूख सताती है तो बगैर किसी के सिखाए, रेंग-रेंग कर माँ के स्तन तक पहुँच जाता है। यदि उसे स्तन तक पहुँचने में कठिनाई हो तो माँ स्वयं अपनी जीभ से पेट पर लकीर कर देती है। उसी के सहारे वह निर्दिष्ट स्थल पर पहुँच जाता है।

मकड़ी का जाल बुनना और विशेष अवसरों पर चिड़ियों का चहचहाते हुए उड़ना, साफ मौसम या तूफान या वर्षा की पूर्व सूचना अचूक रूप से देते हैं। लोकमान्यता तो यह भी है कुत्ते और बिल्ली का रोना आपत्ति का तथा कौए का छप्पर पर बैठकर काँव-काँव करना किसी सुखद मिलन के अचूक भविष्यवाणियाँ हैं। इसी प्रकार चींटियों का दल बाँधकर अण्डों सहित बिल से बाहर निकलना और पतिंगों का झुण्ड बांधकर उड़ना वर्षा की आगाही स्वरूप माने जाते हैं।

सृष्टि के ये गूढ़ संकेत और जीव-जगत की ये अन्तर्प्रेरणाएं किसी भी नियम या सिद्धान्त से नहीं बांधी जा सकतीं। ये रहस्य रहती आयी हैं और सदैव ही हमारी कल्पना को चकित करती आयी हैं।

कीटों और पक्षियों का भी अपना विशिष्ट ही ऋतु-ज्ञान होता है। जाला बुनती हुई मकड़ी तथा असामान्य रूप से उड़ती एक चिड़िया निश्चय ही ऋतु-परिवर्तन की सूचना देती है

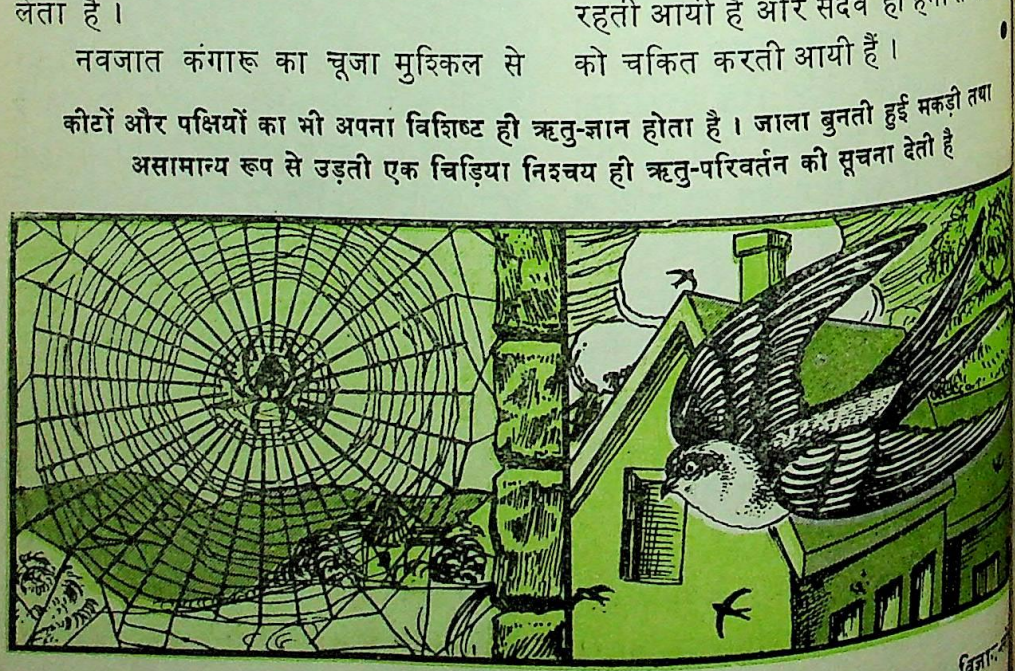

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौधों के विकास में हारमोन्स

प्रेमचन्द श्रीवास्तव

वृद्धि और विकास प्रत्येक जीवित वस्तु की स्पष्ट प्रक्रिया है। चने का एक दाना बीज बनकर भूमि में छिपता है और समय पाकर पौधे के रूप में उभर आता है। इसी प्रकार वट वृक्ष जैसे विशाल पेड़ एक नन्हे बीज से ही उगते, बढ़ते हैं। निस्सन्देह, वृद्धि प्राप्त करने के ये सजीव उदाहरण हैं, किन्तु केवल आकार की ही वृद्धि को पूर्णतः वृद्धि नहीं कहा जा सकेगा। किशमिश या मुनक्के के दाने को पानी में भिगोये रखने से कुछ समय पश्चात् वह भी फूल जाता है, परन्तु उसे सच्चे अर्थ में वृद्धि न कह सकेंगे क्योंकि पानी सूख जाने पर पुनः वह पिचकी अवस्था में आ जायेगा। अतः कह सकते हैं कि वृद्धि एक स्थायी परिवर्तित अवस्था है जिसमें वस्तु का शुष्क भार भी बढ़ा हुआ रहता है।

जिस प्रकार हमारे शरीर की अवाहिनी ग्रन्थियों के विभिन्न स्राव (हारमोन्स) शरीर की वृद्धि का मूल कारण होते हैं उसी प्रकार वनस्पतियों में भी उनके विशिष्ट हारमोन्स होते हैं। उन हारमोन्स को आग्जिन्स (auxins), फाइटोहारमोन्स (phytohar-mones) आदि नामों से पुकारते हैं। जैव-रसायनशास्त्र (biochemistry) में उन हारमोन्स को इण्डोल एसेटिक एसिड (I. A. A.) कहते हैं। उनके नाइट्राल को इण्डोल एसिटो नाइट्राल (I. A. N.) कहते हैं। I. A. A. का सूत्र $C_8H_6NCH_2COOH$ और अणुभार १७५ है तथा I. A. N. का सूत्र $C_8H_6NCH_2CN$ और अणुभार १५६ है।

I. A. A. को कोलियोप्टाइल में देने से वृद्धि उत्प्रेरित होती है, किन्तु I. N. A को इस प्रकार सीधे देने की अपेक्षा I. A. A. में बदल लेना पड़ता है। बदलने की यह क्रिया पौधे स्वयं भी कर लेने में समर्थ होते हैं। अतः I. N. A. उन्हीं पौधों को दिया जाता है जो इसे I. A. A. में परिणत कर सकें—उदाहरणार्थ, सेम का बीज और टमाटर का गर्भाशय आदि। मक्का और मटर इस परिवर्तन को नहीं कर पाते।

इधर के अनुसन्धानों से ज्ञात हुआ है कि जिबरेलिन्स नामक पदार्थ वनस्पतियों की वृद्धि में आश्चर्यजनक रूप से सहायक होता है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् से वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ है। इसके हलके घोल की कुछ बूँदें ही पौधों पर छिड़कने से उनकी वृद्धि असाधारण रूप से हो जाती है और उनमें फल-फूल भी अपेक्षाकृत काफी जल्दी आते हैं।

यों तो इस पदार्थ की कहानी १८२८ से आरम्भ हुई मानी जाती है, किन्तु एस. होरी, पौधों का चिकित्सक, वह प्रथम वैज्ञानिक था जिसने १८९८ में पौधों के बकानी रोग पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना अनुसन्धान लिखा। जापान के एक कृषक ने धान की एक ही क्यारी में दो किस्म के पौधे देखे—एक सामान्य कद का, दूसरा असाधारण लम्बा। लम्बे पौधे की पत्तियाँ भी लम्बी किन्तु पतली, पीली और फल-फूल विहीन थीं। वहाँ की भाषा में धान के ऐसे रोग को बकानी (bakanae) कहा गया। बकानी का अर्थ होता है–'मूर्ख'। प्रयोगों के बाद ज्ञात किया गया कि वह रोग जिबरेला फंजीकुरोइ (gibberella fungikuroi) अर्थात् फ्यूसेरियम मॉनिलिफार्मी (fusarium moniliformae) की उपस्थिति के कारण होता है। अब तो वैज्ञानिकों ने स्वस्थ पौधों में भी इसकी उपस्थिति सिद्ध कर दी है।

१९५० के आरम्भ से वैज्ञानिकों ने इस ओर विशेष ध्यान देना शुरू किया है तभी से इस दिशा में प्रयोग बराबर जारी हैं। अब तक पाँच शुद्ध रासायनिक जिबरेलिन्स तैयार किये जा चुके हैं, जिनके नाम हैं—

बकव्हीट (Buckwheat) का यह पौधा सूर्य के प्रकाश की सामान्य सुविधाओं से दूर रखा जाकर, हारमोन्स की सहायता से अँधेरे में ही उपजाया गया है

G-A-1; G-A-2; G-A-3; G-A-4; G-A-5

इनमें प्रथम चार को फ्यूसेरियम मानिलीफार्मी से तथा G-A-5 को उच्च पौधों (higher plants) से प्राप्त किया गया है। इनके अणुभार आदि का तुलनात्मक विवरण निम्न प्रकार है :

जिबरेलिन का प्रकार	अणुसूत्र	अणुभार	द्रवणांक
जी–ए–१	$C_{19}H_{24}O_6$	३४८	२५५
जी–ए–२	$C_{19}H_{26}O_6$	३५०	...
जी–ए–३	$C_{19}H_{22}O_6$	३४६	२३२
जी–ए–४	$C_{19}H_{24}O_5$	३३२	२२२

इनके अतिरिक्त १९६१ में जी–ए–६, जी–ए–७, जी–ए–८ और जी–ए–९ जिबरेलिन्स भी पाये गये हैं अभी इन पर शोधकार्य चल ही रहा है। यहाँ तक के गिनाए जिबरेलिन्स में जी–ए–३ सबसे अधिक तीव्र उत्तेजक है। यह सोवियत, जापान, अमरीका तथा ग्रेट ब्रिटेन आदि प्रमुख देशों में तैयार किया जाता है।

जिबरेलिन एक सफेद, रवेदार चूर्ण जैसा होता है। इसे ठण्डे और अधेरे स्थल में रखना पड़ता है। साधारणतया इसके हलके घोल का छिड़काव पौधों के उन भागों पर करते हैं जो भूमि से बाहर होते हैं। यह पदार्थ तीव्र होने के कारण ही इसका घोल अति मन्द तैयार किया जाता है। पानी में घोलने के लिए पहले इसे इथाइल अल्कोहल में घुलाना पड़ता है। १९६० में फिनी और वेस्ट ने बताया कि जिबरेलिन नाम उन्हीं पदार्थों को दिया जाना चाहिए जो जी–ए–३ के जैसी तथा उससे निकट सम्बन्धित पदार्थ की कार्बन-संरचना जैसी रचना के हों और जो वानस्पतिक कोशाओं के विभाजन और अन्ततः पौधे की वृद्धि में उत्तेजक हों। जिबरेलिन्स चार कार्बन-चक्र वाले (tetra carbocyclic) यौगिक होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिबरेलिन का प्रयोग पौधों की पत्तियों के आकार और संख्या पर भी पड़ता है। उदाहरणार्थ, खरबूजा, जौ, टमाटर और आलू के पौधों में पत्तियों की संख्या स्पष्टतः बढ़ जाती है और तम्बाकू के पौधे में पत्तियाँ लम्बी, पतली हो जाती हैं। इसी प्रकार जौ और टमाटर की पत्तियाँ कटावदार की अपेक्षा सादा हो जाती हैं। सोवियत में तो इसके प्रयोग द्वारा भाँग और तम्बाकू के पौधे ५-६ मीटर तक लम्बे कर लिये गये थे! भूमि में पौष्टिक तत्त्वों का यदि अभाव हो तो जिबरेलिन का भी प्रभाव घट जाता है। इसके प्रभाव से पौधे की भूख एकदम बढ़ जाती है; अतः इसका उपयोग नवांकुरित पौधों पर नहीं, किन्तु कुछ बढ़े हुए पौधों पर किया जाता है। रुडबेकिया (rudbeckia) और रोजेट फार्म्स (rosette forms) जैसे देर में उगने वाले पौधे (long day species) जो सामान्यतः पुष्पित होने के लिए काफी दिनों तक सूर्य के प्रकाश की अपेक्षा रखते हैं, जिबरेलिन के प्रभाव से अत्यन्त शीघ्र पुष्पित हो उठते हैं। इसी प्रकार अंगूर की बेल पर ०·००१ से लेकर ०·०१ तक की प्रतिशत तीव्रता का जिबरेलिन-घोल छिड़कने से अंगूर के दानों का आकार बड़ा हो जाता है, वे शीघ्र पकने लगते हैं और उनके गुच्छे भी भरावदार बनते हैं। विशेषता यह भी है कि वे दाने बीज रहित होते हैं।

कम तीव्रता वाले लाल प्रकाश (५४० से ६६५ m.μ) मिली. म्यू. के विकिरण से पौधों में शाखा-वृद्धि अवरुद्ध होती है, जिसे अधिक तीव्रता (६६५ से ८०० m.μ) वाले प्रकाश के विकिरण द्वारा दूर किया जा सकता है। इसका प्रयोग १९५६ में लाकहार्ट (Lockheart) ने मटर के नवांकुरित पौधे पर किया था। उन्होंने प्रथम तो लाल प्रकाश द्वारा उसकी वृद्धि में रुकावट उपस्थित की, तत्पश्चात् जिबरेलिन के प्रयोग से उस रुकावट को दूर भी कर दिखाया।

अब तो जिबरेलिन पर भारत में भी अनुसन्धान कार्य बड़ी लगन से हो रहा है। अनुसन्धानकर्ताओं में कलकत्ता विश्वविद्यालय के डा. सरकार का नाम उल्लेखनीय है। कुछ पौधों से भी जिबरेलिन जैसा पदार्थ प्राप्त किया जा सका है। इनमें जंगी खरबूजा, मटर, मक्का, सरसों, तम्बाकू, बादाम, बेर, आड़ू और खूबानी मुख्यतः गिनाए जा सकते हैं।

निश्चय ही इस नये अनुसन्धान कार्य से भविष्य में बड़ी आशाएं हैं। ●

मकड़ी की टेलीग्राफी

मकड़ी की टेलीग्राफी किसी भी कुशल टेलीग्राफ मास्टर को मात कर देने के लिए काफी है। जाला उसका अपना तार-संजाल है और उस पर चलने वाले जीवों का स्पन्दन, उसकी भाषा है। आँखों से मकड़ी इतनी कमजोर होती है कि वह देखकर किसी को नहीं पहचान सकती। केवल स्पन्दन द्वारा वह जान लेती है कि उसके जाले पर मित्र ने पाँव रखा है या शत्रु ने। मक्खी जैसे उसके शिकार उससे बच नहीं पाते और स्वयं उसके बच्चे जाले पर बेधड़क दौड़ते रहते हैं। तारों की ही संकेत भाषा में वह बच्चों को सावधान भी कर देती है कि— भागो, शत्रु जाले पर है। इसी प्रकार अपनी मित्र या सखी-मकड़ी का वह स्वागत तथा विदाई भी बाकायदा करती है और उस पर चोट नहीं करती!

यह मोटर-मैकेनिक आलू

तब मोटर का चलन शुरू ही हुआ था। उन दिनों आलू मोटरिस्टों का दायाँ हाथ बना हुआ था। सामने का शीशा साफ करने वाला ब्रुश तब तक बन नहीं पाया था। अतः जहाँ भी खड़े-खड़े, शीशे की गर्द, कुहासा तथा बर्फकण साफ करने हुए, मोटरिस्ट ने जेब से आलू निकाला, दो अद्धे किये और कटे हुए भाग से शीशे को साफ कर लिया। कभी-कभी पेट्रोल-टैंक लीक कर देने पर भी मोटरिस्ट उसमें आलू का मानो प्लग लगाकर अपना काम चला लेता था!

जुलाई १९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

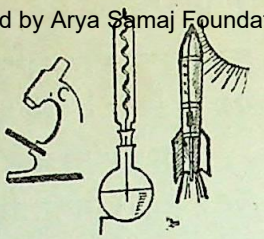

यह टाइपराइटर बोलता है

न्यू जर्सी (अमरीका) की रुटगर्स यूनिवर्सिटी के डा. उमर. के. मूर ने शिशु-शिक्षक एक ऐसा टाइपराइटर बनाया है जो नन्हें बच्चों को बोल-बोलकर अक्षरज्ञान कराता है। इस व्यवस्था में शिशु को अकेला ही अपने कक्ष में रखा जाता है और शिक्षक केवल पर्दे के पीछे से निगरानी रखता है ताकि बच्चे को कदम-कदम पर सहायता लेने की गलत आदत न पड़े और शीघ्र ही अपने पाँवों पर खड़ा हो सके। उसके कक्ष में टाइपराइटर के साथ-साथ एक प्रोजेक्टर तथा स्क्रीन आदि अन्य उपकरण भी रहते हैं। ज्योंही वह टाइप की एक चाभी दबाता है, टाइपराइटर उस अक्षर को कह सुनाता है और स्क्रीन पर उसकी बड़ी आकृति प्रोजेक्टर द्वारा प्रक्षेपित हो जाती है। जब एक वाक्य बनाना सिखाया जाता है तब स्क्रीन पर उसे प्रदर्शित करके टाइपराइटर पर उन्हीं अक्षरों को खुला रखा जाता है और शेष चाभियों पर रोक लग जाती है। निरीक्षक यह भी देखता रहता है कि बच्चा आधे घण्टे से भी पहले ज्योंही ऊबता दिखे, उसे खेलने की छुट्टी दे दी जाए। डा. उमर के कथनानुसार यह प्रयोग बड़ा लोकप्रिय और त्वरित सफलता देने योग्य सिद्ध हो रहा है।

चन्दा की नगरी में स्कूटर पर सैर

चन्दा की धरती पर पाँव रखने में मानव को तो अभी देर लगेगी, किन्तु उसके लिए साधन प्रस्तुत करने में वैज्ञानिक बहुत पहले से प्रयत्नशील हैं। चित्र में प्रदर्शित नमूना एक स्कूटर का है जो हमें चन्दा की नगरी की सैर

कराएगा। यह तो अन्दाजा है ही कि वहाँ की धरती बेहद ऊबड़-खाबड़ है, खाइयों, खन्दकों का जाल पग-पग पर बिछा है और उस स्थिति में अन्य कोई भी सवारी काम न कर सकेगी; पैदल की सैर तो एक कसरत ही होगी।

अमरीका की नार्थ अमरीकन एविएशन द्वारा निर्मित यह प्रायोगिक स्कूटर जेट-यान के सिद्धान्त पर वायु-दाब के सहारे सतह से उठा रहता है; कम और अधिक, २० फुट तक ऊँचा उठा चलता है, मानो हेलीकाप्टर हो। २७० पौण्ड की वायु-दाब इसे अधर ही अधर रखती है और एक कार के स्टीयरिंग की भाँति इसे आगे-पीछे, ऊपर-नीचे चलाने के साथ-साथ इसकी चाल भी घटायी-बढ़ायी जा सकती है। इसके आगामी नमूने और भी परिशोधित होंगे और वे जेट-इंजनयुक्त बनेंगे। इस स्कूटर का उपयोग सैनिकों द्वारा किया जा रहा है जो नदियाँ लांघने और पहाड़ियों के दुर्गम ढलानों पर टिके रहने में इससे काम लेते हैं।

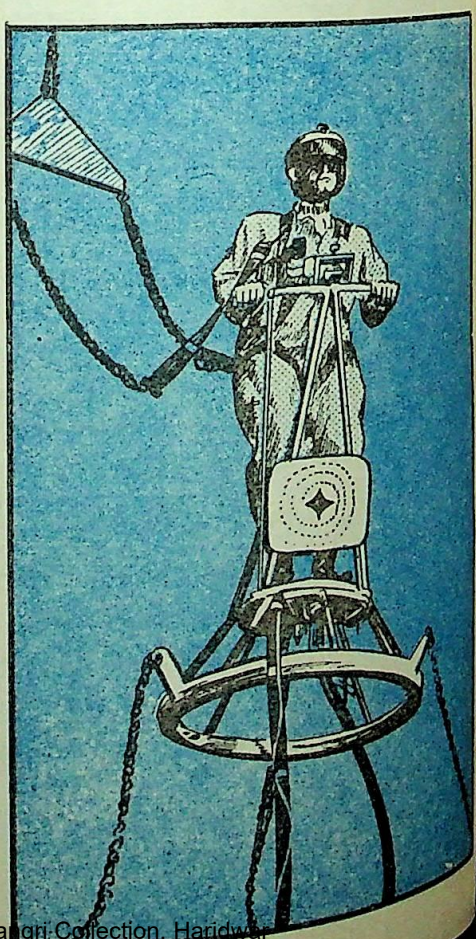

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्ष्मणसिंह

मशीनी पुर्जे बनाने के उद्योगों में धातुओं की गलाई, ढलाई तथा जुड़ाई का विशेष महत्त्व है। इन विधियों में सुविधा यह रहती है कि बनाये जाने वाले पुर्जों को एक ही क्रिया में बना लिया जाता है। इनके विकल्प स्वरूप दूसरी विधि धातु-संधान की है जिसमें रिविट बिठाने, नट-स्क्रू कसने, सोल्डर करने, ब्रेजिंग करने तथा वेल्डिंग करने जैसी क्रियाओं से धातु-निर्मित विभिन्न अंगों को जोड़कर पूरा पुर्जा बना लिया जाता है तथा आवश्यक हुआ तो धातुओं को जोड़-जोड़कर कोई बड़ा ढांचा भी खड़ा कर लिया जाता है। इन दूसरे प्रकार की विधियों में लाभ यह है कि कम परिश्रम और कम समय में आवश्यक वस्तुएँ बना ली जाती हैं। चाहे छोटी से छोटी वस्तु में बिस्कुट का टिन हो अथवा बड़ी से बड़ी वस्तु में विशाल जलयान या वायुयान हो, इन विधियों की अपनी-अपनी पृथक् उपयोगिताएँ हैं।

रिविट बिठाना

रिविट-क्रिया के दो उल्लेखनीय उदाहरणों में से स्काटलैण्ड के प्रसिद्ध पुल, फोर्थ ब्रिज में ७० लाख और ब्रिटिश जलयान, क्वीन मेरी में १ करोड़ रिविट लगाये गये हैं। रिविट ठोस हों या फुकनी जैसे पोले, वे ठण्डे तथा तप्त, दोनों अवस्थाओं में बिठाये जा सकते हैं। वायुयानों के निर्माण में रिविट बिठाने के लिए प्रायः ही ऐसे सन्धिस्थल आ जाते हैं जहाँ हाथों का घुमाना-फिराना संभव नहीं होता। उस कठिनाई को हल करने के लिए पोले रिविट खास विधि द्वारा बगैर ठोके-पीटे बिठाये जाते हैं। ऐसे रिवटों के सिरे पर एक विस्फोटक लगा रहता है जिन्हें एक गन की सहायता से जोड़ने की जगह रख दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। तत्पश्चात् उस सिरे को हथौड़ी से पीटा जाता है। गर्मी पाकर ज्योंही विस्फोट होता है, रिविट का गर्म सिरा अन्दर बैठ जाता है।

नट-स्क्रू कसना

नट-स्क्रू कसने की क्रियाओं में भी काफी सुधार किये गये हैं। पुरानी विधि में नट को केवल कसने ही कसने से काम रहता था। उसमें यह पता नहीं लग पाता था कि आवश्यकता से अधिक कितना कसा जा चुका है और कहीं टूटने की नौबत तो नहीं आ गयी। आधुनिक विधि में कसने के लिए ऐसे कसाव-नियंत्रक स्पेनर बनाये गये हैं जिनसे प्रत्येक बार कसने पर यह ज्ञात होता रहता है कि कहाँ तक कसा जा चुका है और शेष कितना कसना आवश्यक है।

सोल्डर करना

सोल्डरिंग तथा ब्रेजिंग की विधियाँ ऐसे सिद्धान्त पर आधारित हैं कि जुड़ने वाले भागों की धातु से निम्नतर गलनांक वाली धातु को जब पिघलाकर दोनों के मध्य छोड़ा जाता है तब वह एक पर्त के रूप में ठण्डी पड़ने पर जमकर उन्हीं का एक अंग बन जाती है

जहाज के बनाने में स्टील-प्लेटें जोड़ने के लिए रिवेटिंग से ही मुख्य काम लिया जाता है

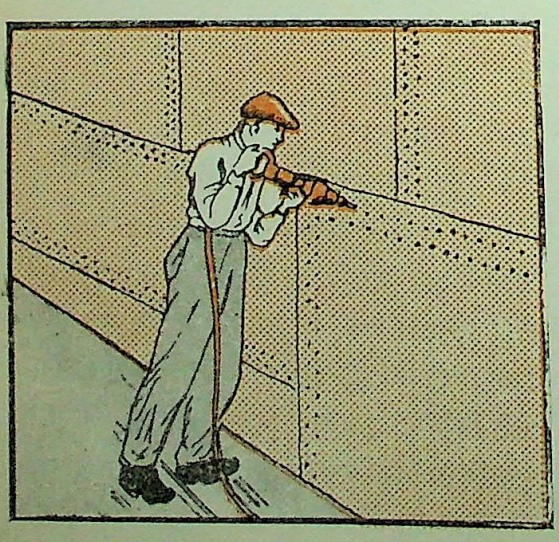

भाग एक ही धातु के दो खण्ड परस्पर जुड़कर एक हो जाते हैं।

उत्तम प्रकार के सोल्डरिंग के लिए यह आवश्यक है कि (१) जुड़ने वाले खण्डों को उचित आकार में काट-छांट की जाए ताकि वे परस्पर जुड़ने के पश्चात् एक जैसे प्रतीत हों और (२) जुड़ने वाली सतहें रासायनिक दृष्टि से शोधित तथा साफ सुथरी हों। इनमें भी सतहों के शोधन तथा सफाई का महत्व अधिक है। इस कार्य में यह सावधानी रखना आवश्यक है कि बन्द कोठरियों, कमरों आदि में ये क्रियाएं न की जाएं।

जोड़े जाने वाले भागों को रेती (फाइल), रेगमाल, तार के ब्रुश आदि से छीलना तथा घिसना-घिसाना चाहिए। अधिक शुद्धता लाने के लिए उन भागों को साधारण तेजाब से भी साफ किया जा सकता है। जिस भाग पर आक्सीकरण के कारण जंग इतना गहरा लगा हो कि उपरोक्त विधियों में से एक भी विधि काम न देती हो तो उस जंग अर्थात् उस धातु विशेष के आक्साइड को दूर करने के लिए पृथक् ही रासायनिक मिश्रण काम में लेना होगा। ऐसे जंग को घुलाने वाले विशिष्ट रसायनों को सामान्यतः फ्लक्स कहते हैं। फ्लक्स का उपयोग करने के पश्चात् उस भाग को विपरीत गुणयुक्त रसायन अथवा क्षार आदि से तथा अन्त में साफ गर्म पानी से धोना पड़ता है ताकि फ्लक्स का अम्लीय अंश क्षार की प्रक्रिया से लवण न बन जाए, साथ ही वह पानी से धुलकर साफ भी हो जाए। इस विधि में कठिनाई यह है कि विद्युत्-वेल्डिंग में इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। सोल्डर के लिए साधारणतया सीसा और टिन के विभिन्न अनुपात में बने मिश्रण काम में लाये जाते हैं। उनकी दृढ़ता बढ़ाने के लिए उनमें किंचित् मात्रा एण्टीमनी की भी मिला दी जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रेजिंग विधि

सोल्डर की ही अधिक परिष्कृत विधि को ब्रेजिंग कहते हैं। इस क्रिया में संयोजक मिश्रण पीतल रखा जाता है, इसीलिए इस विधि को ब्रास (brass) (पीतल) से ब्रेसिंग अर्थात् ब्रेजिंग (brazing) कहते हैं। ऐसे पीतल में सामान्यतः ४०% तांबा और ६०% जस्ता मिश्रित रहता है उस मिश्रण का द्रवांक ऊँचा (८५०°C तक) होने से तथा उससे भी द्रवांक वाले मिश्रणों को हार्ड सोल्डर (hard solder) कहते हैं। इनके विपरीत, केवल २००°C २५०°C द्रवांक वाले टिन-सीसा मिश्रणों को साफ्ट सोल्डर (soft solder) कहते हैं।

इस विधि का अधिकतर उपयोग बाइ-सिकल फ्रेम बनाने के अन्तर्गत फ्रेम की इस्पात-निर्मित ट्यूबों को जोड़ने में किया जाता है। इस विधि को और भी बढ़ा-चढ़ा कर मोटरकार, रेफ्रीजरेटर तथा वायरलेस सेट के पुर्जे आदि जोड़ने में प्रयुक्त करते हैं। इन क्रियाओं में पुर्जों को जिस विद्युत्-भट्ठी में तपाया जाता है, उसे हाइड्रोजन से युक्त किन्तु आक्सीजन से मुक्त रखा जाता है ताकि द्रवावस्था में आने पर वह सोल्डर आक्सीजन से संयुक्त होकर आक्साइड न बना ले और बाद में हानिकारक न सिद्ध हो।

पीतल से भी उत्तम सोल्डर बनाने के लिए उस मिश्रण में चांदी मिलायी जाती है। इसका अनुपात होता है: १०% जस्ता, ३०% तांबा और ६०% चांदी। ऐसे उत्तम सोल्डर का उपयोग कुछ समय पहले तक सोना-चांदी के आभूषणों में होता था, किन्तु अब अधिक महत्व के इंजीनियरिंग कार्यों में होता है।

वेल्डिंग

वेल्डिंग का अत्यन्त साधारण रूप किसी भी लोहार के यहां देखने को मिल जाता है। वह केवल यही करता है कि दो तप्त धातु-

बड़े-बड़े गीयरों के छोटे-छोटे दाँतों को कभी-कभी हाथ-सोल्डरिंग द्वारा संधान की आवश्यकता पड़ जाती है

खण्डों को उदाहरणार्थ, लाल सुर्ख, लोहे की दो सलाखों को तब तक पीटे जाता है, जब तक वे ठण्डे न हो जाएं। उसका वह प्रयोग कुछेक धातुओं के लिए सफल हो सकता है। कुछ धातुएँ तो बगैर गर्म किये ही, ठोक-पीटकर जोड़ दी जाती हैं, जैसे सीसा, सोना, चांदी और प्लेटिनम आदि की पट्टियाँ।

विद्युत्-वेल्डिंग के तीन प्रकार प्रचलित हैं: १. बट वेल्डिंग, २. स्पाट वेल्डिंग और ३. सीम वेल्डिंग। तीनों की आधारभूत क्रिया वट-वेल्डिंग है जिसमें सिद्धान्त यह है कि जिस स्थान पर जोड़ लगाना हो, वहाँ दोनों विद्युदाग्रों को रखकर विद्युत् द्वारा उस स्थल को तप्त किया जाए। निर्धारित ताप आ जाने पर ज्योंही वह स्थान नर्म पड़ता है, त्योंही उस पर दाब बढ़ा दी जाती है। बस, वह वहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

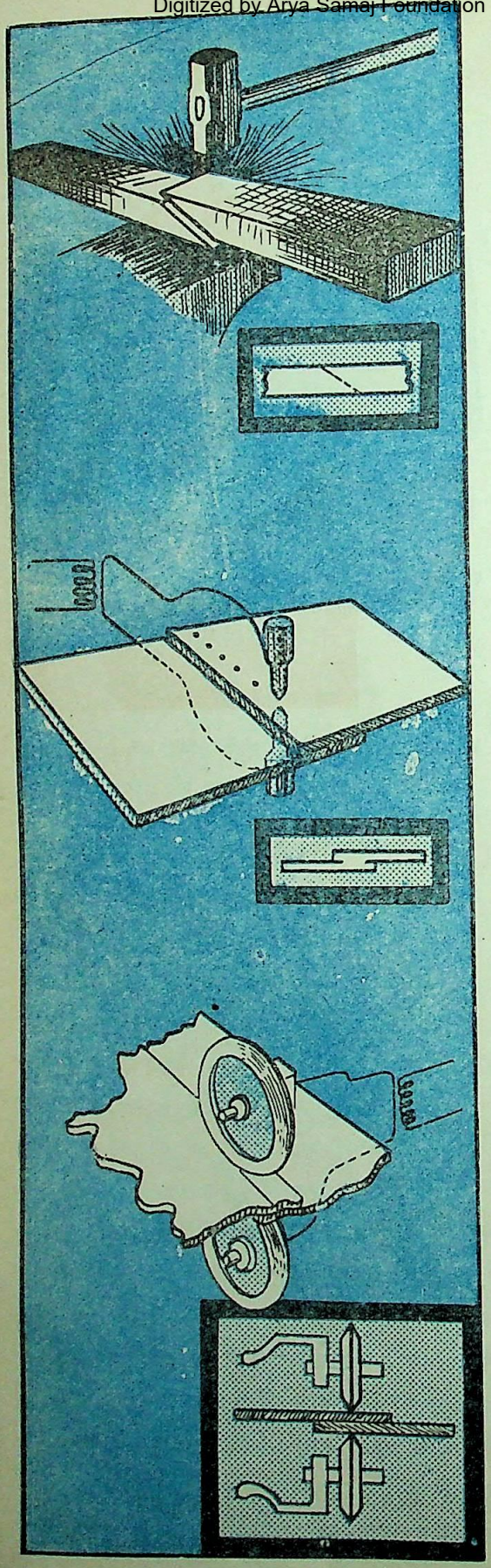

← वेल्डिंग के तीन प्रकार—हैमर (हथौड़ा) वेल्डिंग, स्पॉट वेल्डिंग और सीम वेल्डिंग

का यही जुड़ जाता है। यही बट-वेल्डिंग जब बिन्दियों के रूप में पंक्तिबद्ध किया जाता है, तब स्पाट वेल्डिंग कहलाता है और जब सिलाई की तरह रेखाओं के रूप में किया जाता है, तब सीम वेल्डिंग बन जाता है।

विद्युत् के अतिरिक्त गैस तथा आर्क वेल्डिंग का भी उपयोग बहुतायत से किया जाता है। गैस वेल्डिंग में ताप उत्पन्न करने के लिए आक्सीजन तथा एसेटलीन युक्त आक्सीएसेटलीन ज्वाला तथा अन्य ज्वलनशील गैसों युक्त ज्वाला काम में लायी जाती है। आर्क वेल्डिंग में जोड़ने वाली सतहों तथा संयोजक धातु के मध्य विद्युत् आर्क उत्पन्न किया जाता है। इसमें संयोजक धातु एक सलाख के रूप में होती है जो सामान्यतः कार्बन की अल्प मात्रा युक्त स्टील की बनी होती है।

जलयान बनाने में रिविट को अपेक्षा आर्क वेल्डिंग इसलिए उत्तम माना जाता है कि इस विधि में रिविटों के अत्यधिक भार से बचा जा सकता है। जलयान के लिए ऐसे भार से मुक्त होना बहुत बड़ी और उपयोगी बात है। ऐसे बगैर रिविट के बने हुए हल्के जहाज तोपें, टैंकें तथा अन्य युद्धोपयोगी सामग्री लाद ले जाने में काम आते हैं। आर्क वेल्डिंग के सफरी-सेट रेगिस्तानों में बिछी मीलों लम्बी तेल की पाइप लाइनों की मरम्मत करने में बहुत उपयोगी रहते हैं।

पानी की आग से वेल्डिंग

सभी जानते हैं कि पानी का काम आग को बुझाना है, किन्तु यह क्या कम आश्चर्य है कि पानी ऐसी आग भी उत्पन्न कर सकता है जिसकी ज्वाला सबसे अधिक तप्त है। दूसरे शब्दों में, पानी को उसके संयोजक आक्सीजन तथा हाइड्रोजन गैसों में विच्छेदित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके वेल्डिंग के लिए उन्हीं गैसों के मिश्रण से आक्सी-हाइड्रोजन ज्वाला उत्पन्न की जाती है जिसका ताप ६०००°C तक पहुँचता है। ऐसी ज्वाला उत्पन्न करने वाली टार्च को आक्सी-हाइड्रोजन टार्च कहते हैं। जल-विच्छेदन एक पृथक् बक्से में विद्युत् द्वारा किया जाता है और उससे उत्पन्न आक्सीजन तथा हाइड्रोजन गैसों को अलग-अलग दो नलियों द्वारा लाया जाता है।

अब तक वेल्डिंग के लिए एक सिलिण्डर आक्सीजन गैस का तथा एक हाइड्रोजन गैस का साथ में लिये-लिये फिरना पड़ता था जिस में खर्चा तथा परेशानी अधिक पड़ती थी। इस नयी विधि में सिर्फ पानी ही पानी चाहिए···और, पानी का मोल ही क्या ?

धातु-संधान वास्तव में एक जटिल विज्ञान और कठिन कला है। एक अनाड़ी कारीगर का कच्चा-पक्का और ऊबड़-खाबड़ धातु-संधान कभी भी धोखा दे सकता है, जबकि एक कुशल इंजीनियर की कारीगरी पराश्रव्य ध्वनि द्वारा तथा एक्सकिरणों द्वारा किये गये अत्यन्त सूक्ष्म परीक्षणों में भी सफल सिद्ध हो सकती है। ●

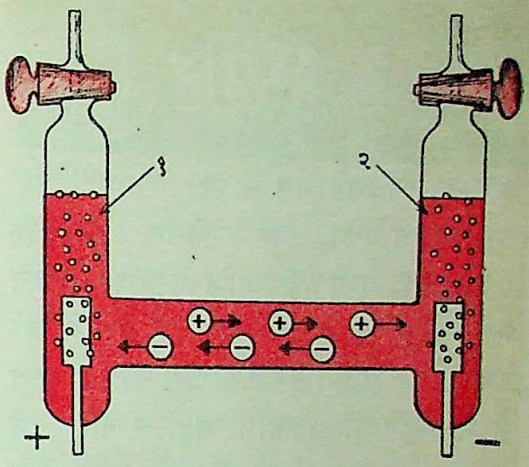

जो हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर जल बनाते हैं, उन्हीं को विद्युत्विच्छेदन द्वारा पृथक् करके उनसे आक्सी-हाइड्रोजन ज्वाला उत्पन्न की जाती है जिसका अति उच्च ताप धातु-सन्धान में काम आता है

१०० रुपये के १७५ रुपये

१२ वर्षीय राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमाणपत्र पर

ये प्रमाणपत्र

५, १०, ५०, १००, ५००, १००० और ५००० रुपये के हैं

और बचत बैंक का काम करने वाले किसी डाकखाने से खरीदे जा सकते हैं।

खरीदने की तारीख से १२ वर्ष बाद इन पर ७५ प्रतिशत ब्याज मिलता है

जो इन्कमटैक्स से एकदम मुक्त है।

याद रखिये

राष्ट्रीय सुरक्षा प्रमाणपत्र में लगाया जाने वाला धन

देश की सुरक्षा और विकास के काम आता है।

पूर्ण विवरण के लिए कृपया राष्ट्रीय संगठनकर्ता, अल्प बचत से

कलक्टरी में सम्पर्क स्थापित कीजिए।

सूचना निर्देशालय, उत्तरप्रदेश द्वारा प्रसारित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

बाल-बाल जिसके बस में था

फ्रान्स का पियरे मेसाइ (Pierre Messie) ऐसा ही अभिनयकुशल व्यक्ति था जिसने अपने बाल-बाल को बस में कर रखा था। शायद हरेक के बस की यह बात है भी नहीं क्योंकि आप चाहें, न चाहें, हर्ष अथवा भय के आवेग में आपके शरीर-रोम और सिर के बाल स्वतः खड़े हो जायेंगे। मेसाइ की तो बात ही निराली थी। उसने प्रत्येक बाल के संचालक स्नायु (erectos-pilae) को इस प्रकार अपने बस में कर रखा था कि वह अपनी इच्छानुसार सिर के चाहे जिस बाल को आधा खड़ा, पूरा खड़ा या छल्लेदार करके पुनः लिटा सकता था और आधे सिर के बाल खड़े करके शेष आधे बाल लिटाए भी रख सकता था !

जितना छोटा, उतना ही खोटा

मुट्ठी में बन्द इस नन्हे चूजे को देख रहे हैं ? यह धानीयुक्त वर्ग का ओपोसम है और चूहे जैसा है। इसलिए इसे मूषक-ओपोसम कहते हैं। बड़ा होकर भी यह एक चूहे से बड़ा नहीं हो पाता फिर भी अपने नन्हे शरीर को

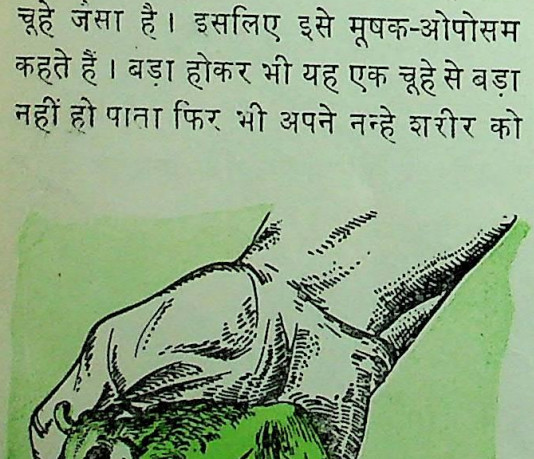

देखते हुए इसकी भें बड़ों के भी कान काटता है। हरेक चीज का सामना पड़ते ही यह मुंह फाड़ देता है। विशेषता यह है कि यह पूरी सीध में अर्थात् १८०° कोण तक अपना मुंह खोल दिखाता है। उसी धुन में कभी-कभी तो घण्टों खोले हुए मुंह को बन्द करना भी भूल जाता है ! इसकी आंखें तो मानो सिर में समाती ही नहीं हैं और ऐसे निकली पड़ती हैं जैसे कोई इसका गला दबोच रहा हो। दांत चलाने में भी यह बहुत तेज है और इसका छोटा शरीर होने पर भी दांत की पकड़ काफी गहरी बैठती है। यह कम आश्चर्यजनक नहीं कि इसका नवजात शिशु चावल के दाने से बड़ा नहीं होता !

हत्यारे की वैज्ञानिक आत्महत्या

पोलैण्ड देश का निवासी, श्रमिक विलियम कोगट हत्यारा था। फांसी की सजा सुन ली और काल-कोठरी में जीवन की समस्त आशाएं छोड़कर जीवन के शेष दिन गिनने लगा। सोते, उठते, बैठते उसे फांसी का फन्दा लटकता दिखता, तो जब कभी फांसी के तख्ते तक चढ़ने की तेरह सीढ़ियों पर अपनी पदचाप कल्पना में सुनता रहता।

आखिर एक अजब घड़ी ऐसी आयी जिसने उसकी जीवनधारा को अनपेक्षित ही मोड़ दिया। आंखों में नयी चमक भी आ गयी। उसने सोचा, क्यों न फांसी को ही फांसी दे दी जाए और जल्लाद को उल्लू बनाया जाए !

उसने अपनी टूटी लोहे की बेंच से एक पोला टुकड़ा, एक नली के रूप में खींच निकाला। अपने गूदड़, पोटली में उमे एक ताश की गड्डी भी मिल गयी। ताश के पत्तों में बने ईंट, पान, हुकुम की चिंदियां-बिंदियां फाड़-फाड़कर जुटा लीं। अब थोड़ा ही काम बाकी रह गया।

उसके जैसी ही सजा प्राप्त आठ अन्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथियों को हवा भी न मिली कि कोगट क्या प्रपंच रच रहा है। ताश की उन चिंदियों को उसने पानी से धोया, लुगदी बनायी और उस लोहे की फुकनी में ठूंस-ठूंस कर भर दिया। दोनों ओर से नली को काठ की खूंटी द्वारा एयरटाइट ठोककर बन्द कर दिया।

कोगट ने सुन रखा था कि ताश के पत्ते बनाने में सेल्यूलोज प्रयुक्त किया जाता है और यह सेल्यूलोज अति तीव्र विस्फोटक भी है। वह अपनी तैयारी पूरी कर चुका। आधी रात गए, उसने अपना लैम्प जलाया और उस नली को घुमा-घुमाकर उसकी लौ पर गर्म करना शुरू किया। कब तक वह गर्म करता रहा और किस क्षण उसने सिर झुका कर उस नली को कलेजे से लगाया, यह कोई न जान सका क्योंकि उस ढलती रात, उस जेल की कोठरी ने ही नहीं, समूचे शहर ने ऐसा भयंकर विस्फोट सुना मानो ज्वालामुखी फट पड़ा हो। कितने ही कमजोर मकान ढह गये।

जेल में हाहाकार मच गया। किसी की कुछ भी समझ में न आया। सबों ने केवल यह देखा कि कोठरी नं० १६५१ और कैदी नं० २१३ की धज्जियाँ उड़ चुकी थीं, कुछ भी न बचा था—मुट्ठी भर खाक भी नहीं!

कैसा वैज्ञानिक वैचित्र्य और फाँसी को कितना खूबसूरत धोखा !!

पढ़ो बेटा, सी-ता-रा-म !

सीताराम न सही, और कुछ सही; किन्तु यह तो मानना पड़ेगा कि तोता (मैना की तरह) पक्षी क्या है, टेपरिकार्डर है। इसी को देख लीजिए, रिकार्ड की तरह भरे हुए अपने मालिक के बोलों को ज्यों का त्यों दोहराने का विलक्षण प्रदर्शन करके क्या बड़ा पुरस्कार जीत कर लाया है!

अवश्य, ये तोते बड़ी जल्दी हरेक बोल को दोहराना सीख लेते हैं, किन्तु इन्हें भी बाकायदा सिखाने के बाद जो आनन्द आता है, उसकी तुलना नहीं। उस सिद्धि के लिए सिखाने वाले को बड़ी सावधानी बरतनी पड़ती है। सर्वप्रथम तो यही कि जितनी देर इसे सिखाया जाए, इसके निकट और इर्दगिर्द दूसरी आवाजें न होनी चाहिए। पास में कोई दूसरा तोता भी न होना चाहिए; अन्यथा या तो यह अपना सबक छोड़कर उस तोते से टांय-टांय करने लग जायगा या दूसरी आवाजों के मध्य चौकड़ी भूल जायगा। दूसरी बात यह कि जब तक एक बोल ठीक से दोहरा न ले, दूसरा सिखाने की जल्दबाजी न करें।

कुछेक चुने हुए सिल-सिलेवार वाक्य सिखाकर आप अवकाश के क्षणों में इस पक्षी द्वारा अलौकिक आनन्द ले सकेंगे। हाँ, इसके सिखाने की शुरुआत के लिए सर्वोत्तम समय तब है जब यह छह महीने का हो चुके। अधिक बड़ा हो जाने पर सरलता नहीं रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेडियो कार्बन

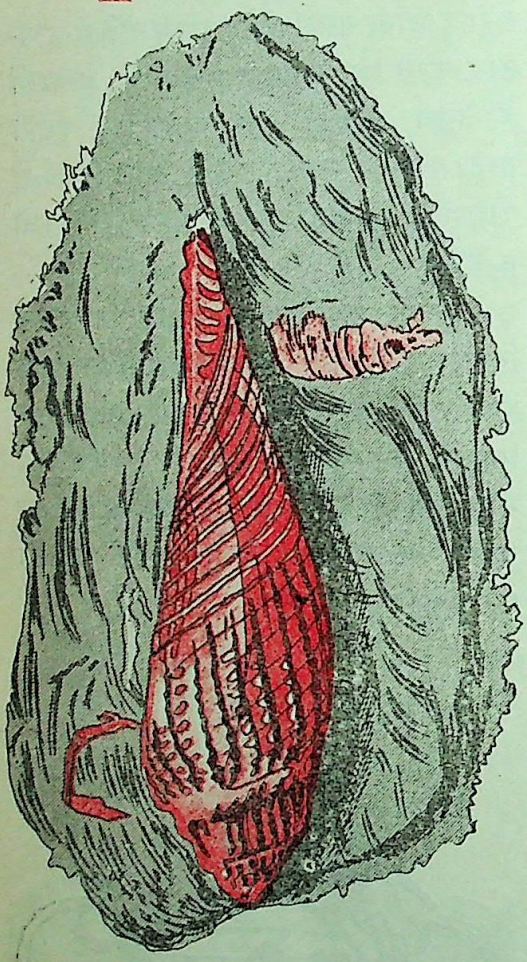

जनार्दन बाजपेयी

इस शताब्दी के हमारे वैज्ञानिकों ने प्रकृति का एक बड़ा रहस्य खोज निकाला है। वह यह कि भूगर्भ प्रकृति की वह रहस्यमयी प्रयोगशाला है जिसमें अति विलक्षण प्रयोग पर प्रयोग निरंतर चलते ही रहते हैं। तत्त्वों का तत्त्वान्तरण उनमें से एक महत्त्वपूर्ण क्रिया है। इसके अन्तर्गत नये तत्त्व पुराने में और पुराने नयों में बदलते रहते हैं।

इस क्रिया में वे रहस्यमयी किरणें विकोरित होती हैं जिन्हें विशेष प्लेट पर मुद्रित किया जा सकता है और जिनके कारण वे पदार्थ अंधेरे में भी द्युतिमान होते हैं। उन किरणों को रेडियोधर्मी (radioactive) कहते हैं। रेडियोधर्मिता का यह गुण रेडियम, थोरियम और युरेनियम आदि धातुओं में पाया जाता है।

वैज्ञानिकों के प्रयास से तत्त्वान्तरण की यह क्रिया अब प्रयोगशाला में भी सम्पन्न करना सम्भव हो गया है। प्रयोगस्वरूप कृत्रिम रेडियोधर्मी कोबाल्ट-६० तैयार करके केन्सर की चिकित्सा काफी सहज तथा कम खर्चीली बनायी जा सकी है। इन रेडियोधर्मी तत्त्वों का उपयोग इंजीनियरिंग के उद्योगों में भी वस्तुओं की मोटाई, संरचना, समतल अवस्था तथा विभिन्न त्रुटियों की परख के लिए भी होने लगा है। भूमिगत पाइपलाइनों में सूराखों की खोज इन्हीं की सहायता से कर ली जाती है। इसके अतिरिक्त जैविक क्रियाओं के अध्ययन में इसकी सांकेतिक विधि का उपयोग किया जाता है।

रेडियो-कार्बन-१४ की खोज १९३८-४० के मध्य यह मानकर की गयी थी कि यह क्षणिक रेडियोधर्मी समस्थानिक होगा, किन्तु अन्ततः जुलाई १९४० में यह दीर्घजीवी सिद्ध हुआ। पुरातत्त्व के क्षेत्र में भी इसका उपयोग बहुतायत से किया जा रहा है। संसार भर में रेडियो-कार्बन की ४० से भी अधिक प्रयोगशालाओं में खुदाई से प्राप्त प्राच्यावशेषों के नमूनों की आयु निर्धारित की जाती है।

ए. वी. ग्रॉस (A. V. Gross) का मत था कि सम्भवतः वायुमण्डल की अन्तरिक्ष-किरणों द्वारा भी रेडियो-कार्बन-१४ के निर्माण को वेग मिलता होगा। उन किरणों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्ययन द्वारा ज्ञात किये गये हैं। ऊर्जाशील मेसानकण, तीव्रवेगी प्रोटान और अन्य भारी परमाणुओं के नाभिक होते हैं। साथ ही कुछ मात्रा में न्यूट्रान, फोटान और इलेक्ट्रान भी होते हैं। ऊर्जाशील कण वायु-मण्डलीय आक्सीजन तथा नाइट्रोजन के नाभिकों पर आघात करके विभिन्न कण उत्पन्न करते हैं। प्रोटान से टकराकर न्यूट्रान अपनी ऊर्जा प्रोटान को दे देते हैं और स्वयं मन्द पड़ जाते हैं। मन्द न्यूट्रान नाम से भले ही मन्द हों, स्वभाव से तीव्रवेगी होते हैं और नाइट्रोजन के नाभिकों पर आघात करके कार्बन-१४ और प्रोटान बनाते हैं। यही कारण है कि पृथ्वी तक बहुत कम ही न्यूट्रान आ पाते हैं।

इन क्रियाओं की खोज प्रो. लिबी (Prof. Libby) ने की थी। उन्हीं ने सिद्ध किया था कि ऊपर ही ऊपर वायुमण्डल में भी कार्बन-१४ बनता रहता है, किन्तु स्वयं रेडियोधर्मी होने के कारण बीटा किरणों और तत्पश्चात् नाइट्रोजन में बदल जाता है। दोनों क्रियाओं में साम्य स्थापित हो जाने पर ही बना हुआ कार्बन-१४ नाइट्रोजन में परिणत होता है; स्वतंत्र अवस्था में नहीं बना रह सकता।

इसके अतिरिक्त यही कार्बन-१४ वायु-मण्डलीय आक्सीजन से मिलकर रेडियोधर्मी

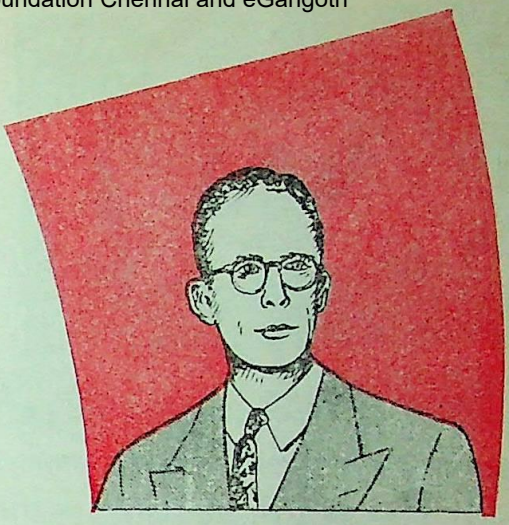

रेडियोकार्बन के विशेष अध्येता प्रो विलार्ड. एफ़. लिबी

कार्बन डाइआक्साइड बनाता है जो वायु-मण्डल के कार्बन डाइआक्साइड से घुल-मिल जाता है। यह कार्बन डाइआक्साइड वन-स्पतियों के लिए प्राणदायक है। सूर्य के प्रकाश में प्रकाश-संश्लेषण द्वारा पेड़-पौधों की कोशाएं, फार्मेल्डीहाइड तथा आक्सीजन बनाती हैं। फार्मेल्डीहाइड की प्रचुर मात्रा कोशाओं के लिए सेल्यूलोज बनाने में सहायक होती है। इन क्रियाओं से उन वनस्पतियों में भी रेडियोधर्मिता का पुट आ जाता है। वही रेडियोधर्मिता उन वनस्पतियों को खाने वाले प्राणियों के शरीर में प्रविष्ट हो जाती है।

मिस्री सम्राट् सिसोत्रिस-तृतीय की वैतरिणी नौका जिससे रेडियोकार्बन द्वारा कालगणना में पुरातत्त्ववेत्ताओं को विशेष सहायता मिली है

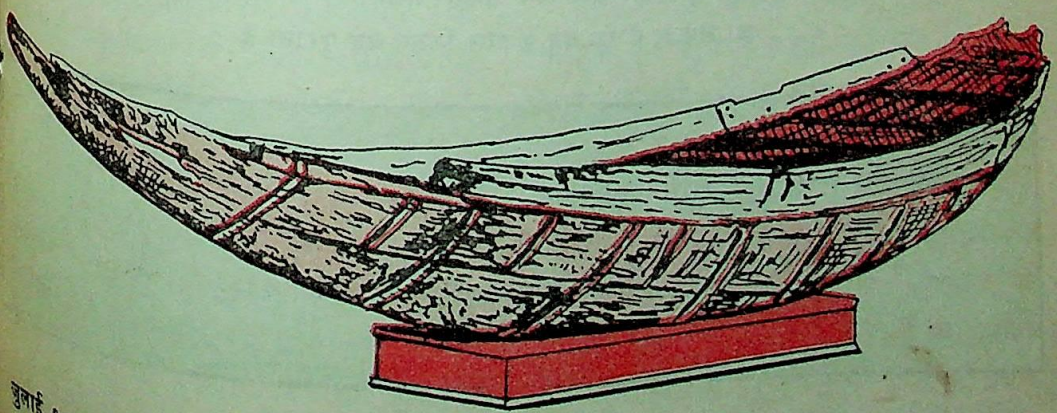

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

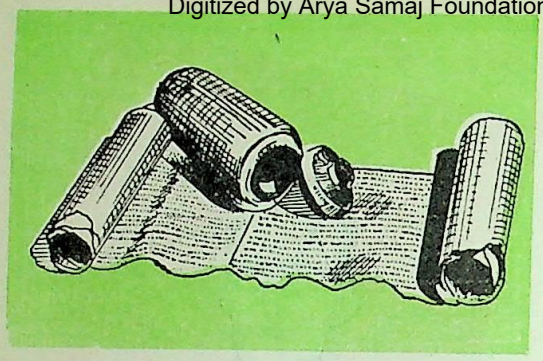

मृत सागर के तल से प्राप्त, इस बेलन में सुरक्षित, यह दस्तावेज कार्बन-१४ की गणनानुसार लगभग २१०० वर्ष पुराना सिद्ध होता है

प्रो. लिबी ने १९४८ में अपना निष्कर्ष व्यक्त किया था कि समस्त जीवित पदार्थों में परस्पर निश्चित अनुपात में ही कार्बन-१४ विद्यमान रहता है। जीव की मृत्यु होते ही कार्बन-१४ ग्रहण करने की उसकी क्षमता भी समाप्त हो जाती है। इसका कारण यह है कि उसका वायु से सम्बन्ध केवल जीवितावस्था में ही रहता है। उस जीव में निहित कार्बन-१४ का क्षय तो रेडियोधर्मिता के कालक्रमानुसार ही होता जाएगा। उदाहरणार्थ उस पदार्थ की रेडियोधर्मिता ८० वर्ष में १% और लगभग ५७६० वर्ष बाद ५०% और ११५२० वर्ष बाद ७५% घटेगी। इस विधि द्वारा [illegible] अथवा जीव के मृतावशेष पर से उसके मृत्युकाल का अनुमान लगाया जा सकता है।

इस प्रकार के क्षय की क्रिया भौतिक परिस्थितियों से अप्रभावित रहती है। अतः पुरानी से पुरानी (४००० से ५००० वर्ष पूर्व) अवधि तक के मृत पदार्थों की रेडियोधर्मिता ज्ञात करके उनका निर्धारण किया जा सकता है। इसी के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि प्राचीन मिस्र के फैरोह (Pharoh), जोसर (Joaser) और स्नेफिक्स (Snephix) जैसे राजाओं की मृत्यु पर अवश्य हरी लकड़ी काटी गयी होगी। अन्य गणनाओं में कुछेक ये भी हैं कि—१. पाषाण-युग को ईसा से २००० वर्ष पूर्व तक का माना जाता है; २. फ्रान्स की एक गुफा से प्राप्त पाषाण-आयुध और कोयले का आयुकाल ईसा से ३००० वर्ष पूर्व का माना जाता है।

रेडियो-कार्बन-१४ का उपयोग तेल के कुओं की खोज के लिए भी किया जाता है। इस खोज का आधार मीथेन गैस है जो तेल के कुओं से और भूमिगत वनस्पति से प्रसारित होती है और जो विशेष रूप से रेडियोधर्मी होती है।

रेडियोकार्बन द्वारा कालगणना का दूसरा प्रकार—**जीवितावस्था में प्राणी कार्बन-१४ की मात्राएँ जमा करता रहता है। वह मात्रा उसके मरणोपरान्त क्रमशः क्षय होती रहती है। लगभग ५५७० वर्ष बीतने तक उसकी आधी ही मात्रा क्षय हो पाती है। शेष उसके कंकाल में जो रह जाती है, उससे ज्ञात किया जा सकता है कि वह कंकाल कितने वर्ष पुराना है**

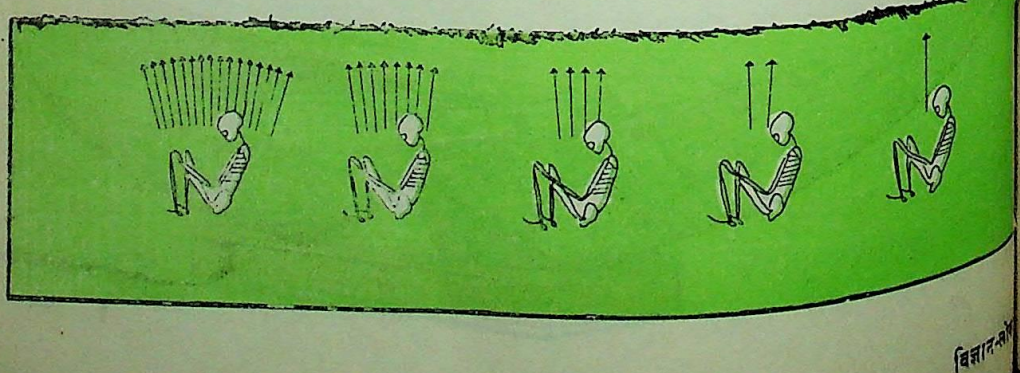

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काँटों की दुनियाँ में

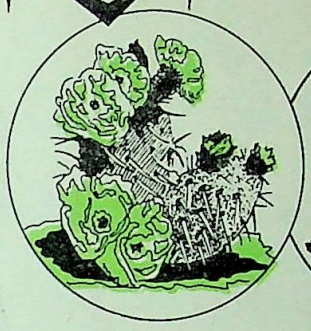

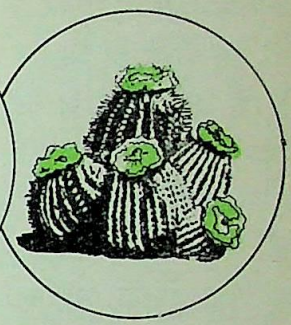

दिनेश चौहान

जहाँ रातें ठण्डी, दिन गर्म और पानी का अभाव हो, वहीं कांटे अधिकता से पाये जाएंगे। वहीं पर कांटों भरे वृक्ष, कांटों से लदी झाड़ियाँ और प्रायः पत्रहीन पौधे दिखायी देंगे।

कांटों का रंग सामान्यतः हरा, पीला तथा सफेद होता है। ये एक-एक अकेले, जोड़े में तथा असंख्य के समूह में भी पाये जाते हैं। इनमें जो नवपल्लवित होते हैं वे कोमल होते हैं और जो प्रौढ़ता प्राप्त कर चुके होते हैं वे कठोर होते हैं।

तरह-तरह के कांटे

तरह-तरह के कांटों के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पौधों के तने, शाखाएँ, पत्र और अनुपत्र जैसे भाग ही विशेष परिस्थितियों में कांटों में परिणत हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, बेल (aegle marmelos), नीबू (citrus medica), नीलकांटा (duranta plumari), बनविलास (bougain villae) और अनार (pomegranate) आदि में तने और शाखाएं नुकीले, लम्बे कांटों का रूप धारण कर लेती हैं। नागफनी (opuntia) की पत्तियाँ जन्म से ही कांटों में बदल जाती हैं और तना हरा-भरा, मांसल रूप धारण करके प्राणियों को धोखा दिया करता है। इसी प्रकार बबूल (acacia arabica) बेर (zizyphus jujuba) और छुईमुई (mimosa) आदि में कांटे उन पत्तियों के मूल से निकलते हैं जो वास्तव में उनके अनुपत्रों के ही परिवर्तित रूप होते हैं।

अनेक पौधों के कांटे पतले, कोमल रोयें जैसे होते हैं, उन्हें प्रिकल्स (prickles) कहते हैं। ऐसे कांटे सत्यानाशी (argemone mexicana), सतावरी (asparagus) तथा घृतकुमारी (aloe) आदि में मिलते हैं। अन्य कांटों के विपरीत, तने और पत्तियों से इनका आन्तरिक सम्बन्ध कुछ भी नहीं होता। इनमें भोजन पहुँचाने वाला वाहिनीसमूह भी नहीं होता। ये नितान्त बाहरी सतह पर ही होते हैं, अतः इन्हें सतह का उभार भी कहा जा सकता है।

गुलाब तथा बनविलास में कांटे मुड़कर एक हुक का आकार ग्रहण कर लेते हैं। ऐसे ही हुकदार कांटे कटेली, चम्पा (artabotrys) तथा बेत आदि में भी मिलते हैं। केवड़े की पत्ती तो ऐसे मुड़े हुए कांटों के लिए प्रसिद्ध है! इस प्रकार के कांटे पुष्पवृन्त (flower stalk) के रूपान्तरण के कारण उत्पन्न होते हैं। रेगिस्तानों में उत्पन्न होने वाले केक्टसकी अनगिनत जातियों में कांटों का विकास अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चरम तक पहुँच जाता है। इस समूह में विचित्र विचित्र कांटे देखने को मिलते हैं।

कांटों की उत्पत्ति

कभी-कभी सुन्दर पुष्पों को निर्दयता से घेरे हुए ही कांटों को देखकर यह प्रश्न उठता है कि आखिर कांटों ने पुष्पों के बीच जन्म लिया ही क्यों ? विविध प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात किया गया कि प्रकाश की तीव्रता कांटों की उत्पत्ति में सहायक होती है। यदि वातावरण में शुष्कता भी मिल जाए तो कांटों की आ बनती है और ये तेजी से पनपने लगते हैं। कुछ प्रयोगों में यह भी देखा गया कि बिना कांटे वाले पौधों को जब शुष्क वातावरण में रखा गया, तब वे भी अपनी पत्तियों को कांटों में बदलते रहे।

कांटों की उत्पत्ति में ग्लूकोज भी बहुत सहायक पाया गया है। ग्लूकोज पृथक् से पौधों को देने पर कांटे तेजी से बढ़ते हैं। जहाँ आर्द्रता अधिक होती है, वहाँ कांटों को बढ़ने में प्रोत्साहन नहीं मिलता। सामान्य शाखाओं पर निकलते हैं, वे लम्बी होती हैं तथा उनमें ऊतकों का विकास भी अधिक होता है। कांटों का भाग तो पूर्णतः ऊतकों का ही बना होता है।

कांटे लाभदायक भी हैं

पेड़-पौधों को कांटों से प्रथम लाभ तो यही है कि आक्रमणकर्ता प्राणियों से उनकी रक्षा हो जाती है। यदि ये कांटे न हों तो पशु-पक्षी और मानव भी पेड़ों का अस्तित्व ही मिटा दें और जिस प्रयोजन से प्रकृति ने अपनी रचना की है, वही नष्ट हो जाए। दूसरा लाभ यह है कि कांटों की उपस्थिति में तने और पत्तियों की सतह से वाष्पोत्सर्जन नियंत्रित और घटा हुआ ही रहता है। यह सुरक्षा पौधे के जीवन के लिए अत्यावश्यक है। इसके फलस्वरूप पौधे का जल-भाग शीघ्र समाप्त नहीं हो पाता और पौधा दीर्घायु प्राप्त करता है। बेलों की भाँति कोमल तंतुओं द्वारा आश्रयदाता पेड़ अथवा अन्य सहारे पर चढ़ने में भी हुकदार कांटों से सहायता मिलती है।

इन पौधों के लिए ये काँटे मानो खुली तलवारें हैं जो किसी भी आक्रमणकारी से इनकी पूर्ण रक्षा करते हैं

सृष्टि में जीवन-संघर्ष सभी को करना पड़ता है। उन्हीं में पेड़-पौधे कोई अपवाद नहीं है। अतः यह निर्विवाद है कि जिन पेड़-पौधों ने कांटों के बीच अनेक कष्ट सहे, वे आक्रमणकर्ताओं से बचे भी बहुत रहे। प्रत्यक्ष कष्टमय दिखने वाला सृष्टि का विधान किस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप में वरदान सिद्ध होता है, यह उन पेड़-पौधों से पूछिए जो कांटों ही कांटों में जीवन व्यतीत कर देते हैं।

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिना कूबड़ का ऊँट

लामा

विनोदबिहारी सक्सेना

यंत्र-संयंत्रों से आज का मानव चाहे जितना काम निकाल ले, कुछेक बातों में तो उसे पशुओं और पशु-पालन पर निर्भर रहना ही पड़ेगा। अल्प विकसित क्षेत्रों में अब भी मानव और पालित पशु की घनिष्ठता अटूट क्रम से चली आ रही है। यदि प्रयोगस्वरूप कुछ समय के लिए दोनों का सम्बन्ध-विच्छेद करा दिया जाए तो पशुओं की अपेक्षा मानव को ही अधिक घाटे में रहेगा। पशुओं पर ही आधारित उसका खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना, जाना-आना और माल लादकर लाना ले जाना, सब कुछ छिन्न-भिन्न हो जायेगा।

जैसे पशु, वैसे उपयोग

जैसे-जैसे आवश्यकता पड़ती गयी, मानव पशुओं को पालता तथा सिखाता गया। कुत्ते, चीते और बाज पक्षी को शिकार करना सिखाया, घोड़ों और बैलों से सवारी और सामान लादने का काम लेता रहा, नन्हे तीतर बटेर, मुर्गे-मुर्गियाँ, खरगोश आदि अपनी भूख मिटाने के लिए पालने लगा तथा बकरी, गाय, भैंस आदि दूध के लिए और भेड़ें, ऊँट, अल्पका (ऊंट की ही जाति का) नर्म बालों युक्त वस्त्र-परिधान के लिए पालने लगा। कीटों तक को भी तो उसने छोड़ा नहीं और मक्खी को शहद के लिए तथा रेशम-कीट को रेशमी वस्त्र के लिए पालने लगा।

उन्हीं में तरह-तरह के ऊँट भी

अन्यान्य पशुओं की अपेक्षा कहीं अधिक और घोड़ा, बैल, कुत्ते की भांति ही ऊँट, मानव का निकटतम साथी युग-युगों से चला आ रहा है। इसके उत्तम उदाहरण और रोचक इतिहास, विशेषतः एशियाई (राजस्थान और अरबस्तान) ऊँट-मानव मित्रता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में देखने की मिलती है। ऊँट से हमारा ध्यान एशिया में पाये जाने वाले उस ऊँट का ध्यान आ जाता है जिसकी पीठ पर एक बड़ा-सा कूबड़ रहता है; किन्तु ऊँट भी तरह-तरह के होते हैं। अरबस्तान के ऊँट एक कूबड़ के होते हैं, प्राचीन ईरान के बैक्ट्रीया (bactria) नामक प्रदेश में दो कूबड़ के होते हैं तथा दक्षिणी अमरीका के लामा नामक ऊँट की पीठ पर कूबड़ होता ही नहीं !

लामा ऊँटों में भी भेद-विभेद

दक्षिणी अमरीका के एण्डीज (Andes) वन-प्रान्तरों का निवासी, यह ठिगना (केवल

भौगोलिक दृष्टि से लामा भले ही अपने ऊँट-भाइयों से दूर हो, वंशावली में तो उनसे निकटतः सम्बन्धित है ही

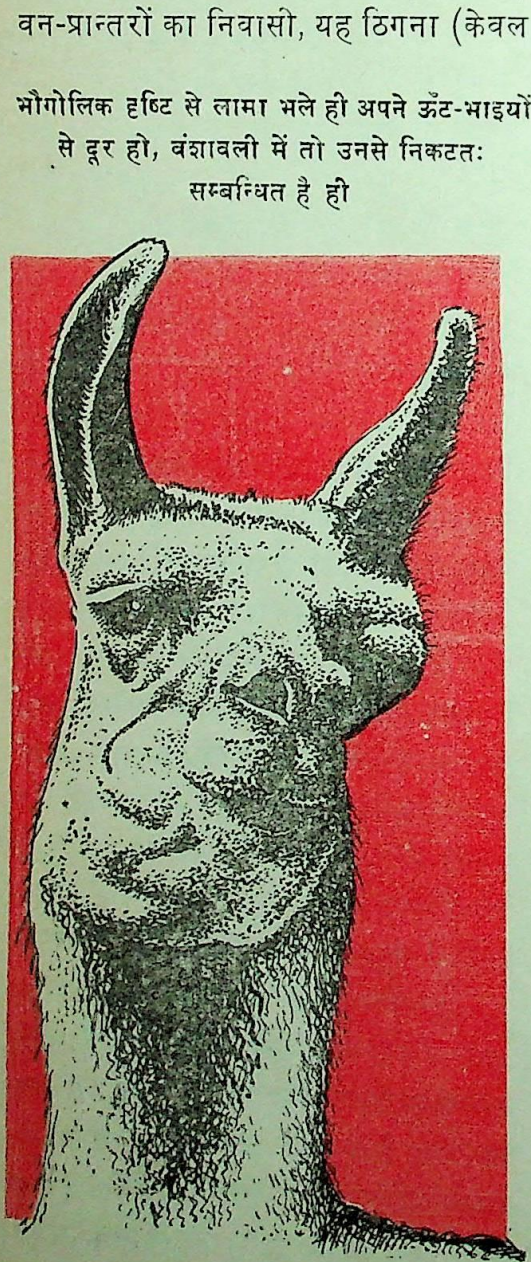

ऊँट से हमारा ध्यान ... (पृष्ठ ४७) लामा ऊँट, ग्वानेको (guanaco), विक्यूना (vicuna) और अल्पका (alpaca) नामक तीन श्रेणियों में विभाजित है। लगभग ४५० वर्ष पूर्व ही इन्हें दूसरी दुनिया वालों ने तब देखा था जब १५३३ में स्पेन के साहसिक सैनिकों ने फ्रान्सिस्को पिजारो के सेनापतित्व में दक्षिणी अमरीका के पेरू प्रदेश पर कब्जा किया था। तब उन्हें दो-दो हाथ ऊंचे, इन ठिगने ऊँटों को देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ था। वहीं के निवासियों से इसका नाम 'लामा' सुनकर उन्होंने अन्य देशों में प्रसारित किया था।

जातिगत विशेषताएं

कद में ठिगने और बिना कुब्बक वाले इस लामा की पूँछ भी अपेक्षाकृत बहुत छोटी होती है। एक भरा-पूरा लामा कंधे तक औसतन केवल तीन फुट ऊंचा होता है। रंग में यह सफेद भी पाया जाता है और काला भी। स्वच्छन्द अवस्था में यह अपने झुण्ड के साथ पहाड़ों, जंगलों में विचरता है। चरते-खेलते झुण्ड में से कुछेक ऐसे भी होते हैं जो रखवालों का काम करते हैं और संकट का आभास पाते ही अपनी परिचित चीख द्वारा साथियों को सचेत कर देते हैं। पालतू लामाओं में नर तो अधिकतर भारवहन के काम आता है और मादा, दूध और मांसाहार देने के काम आती है। मांसाहारी लोग इसका मांस बड़े चाव से खाते हैं।

लामा अपने लम्ब-तड़ंग अरबी साथियों के मुकाबले हास्यास्पद रूप से नन्हे, ठिगने भले ही दिखते हों, किन्तु उनके अनुपात में बगैर खाये-पिये, दिनोरात, कोसों की मंजिल तय कर जाने में ये उनसे मात नहीं खा सकते। छोटा शरीर होते हुए भी इनकी सामर्थ्य अपेक्षाकृत काफी बढ़ी-चढ़ी है। खाने के लिए ये दूसरों पर निर्भर नहीं रहते। ऊँचे मेढ़े रास्ते, ढालू चट्टानों और पहाड़ी सं...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्गों पर इतने धैर्य, विश्वास और सरलता से बढ़े चले जाते हैं कि सामान्य पशुओं की तो वहाँ गति ही नहीं।

अति विचित्र स्वभाव

लामा के स्वभाव में दो विचित्रताएं ऐसी पायी जाती हैं जो अन्य प्राणियों में देखने को नहीं मिलतीं। प्रथम तो यह कि यदि इन पर आवश्यकता से अधिक भार लाद दिया जाय और जल्दी बढ़ाने के लिए ठोंका-पीटा जाय तो ये 'काम रोको' जैसी हड़ताल कर देते हैं। दूसरी यह कि झुँझलाहट और गुस्से के आवेश में ये प्रतिपक्षी (आदमी हो या पशु) के मुँह पर थूक की ऐसी मोटी पिचकारी दे मारते हैं कि वह बेचारा घण्टों नहलाता रहता है और उसकी बदबू से पीछा नहीं छूटता।

इनका एक अनोखा उपयोग

प्राचीन काल के पेरूनिवासी लामाओं को एक अनोखे ही उपयोग में लाते थे और वह उपयोग था, संदेश-वहन। उनके संदेश-वहन की क्रिया को क्विपस (quipus) कहा जाता था। यह नाम सिद्धान्त रूप से उस क्रिया का है जिसके द्वारा रंग-बिरंगे धागों में भिन्न-भिन्न गाठें, बट और बल डालकर उन संकेतों के विभिन्न अर्थ लगाए जाते थे। इसी प्रकार लामा के अधोशरीर में पेट की ओर बड़े, लटकते बालों को संकेतानुसार बट, बल तथा गाठें देकर उन्हें निर्दिष्ट स्थलों पर भेज देते थे, जहाँ उन संकेतों का अभीष्ट अर्थ लगा लिया जाता था। वह संदेश-वहन सैकड़ों मील दूर भी सफलतापूर्वक लिया-दिया जाता था।

जीवित तो जीवित, मर कर भी उपयोगी

जीवित रहते हुए तो लामा मानव की सेवा में किंचित भी आनाकानी नहीं करता किन्तु मर कर भी अपना अंग-अंग मानव के उपयोगार्थ उत्सर्जित कर जाता है। मांसाहार

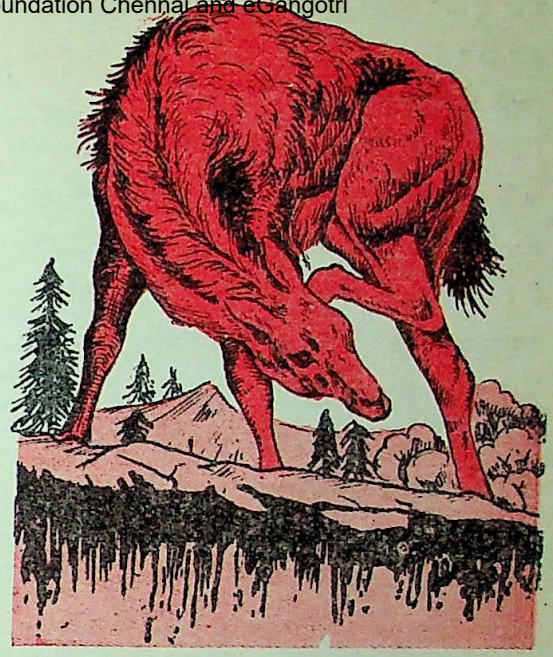

खुले पहाड़ों में मुक्त विचरता यह लामा, विश्राम के लिए तनिक रुक गया है

के लिए तो इसका शिकार प्रचलित है ही, इसके लम्बे बाल मजबूत रस्से बनाने में काम आते हैं। इसकी खाल के जूते और अन्य चर्म-सामग्री बनती है। इसकी चर्बी से मोमबत्ती बनायी जाती है। इसकी लीद भी बहुमूल्य ईंधन के काम में ली जाती है। इसकी अस्थियों से बनावटी हाथीदाँत जैसे बटन तथा अन्य वस्तुएं बनती हैं।

मानव की सेवा में २००० वर्षों से

दक्षिणी अमरीका से बाहर के देशों को तो लामा का परिचय प्राप्त किये ४००-५०० वर्ष से अधिक नहीं हुए किन्तु वहाँ के, विशेषतः पेरू के निवासियों को अनेक पीढ़ियों से लामा की अनमोल सेवाएं प्राप्त होती रही हैं। एक प्रकार से पेरू के विकास में लामा का ही विशेष हाथ है। वहाँ की सोने-चाँदी की खानों से खनिज धातुएं तथा अन्य वस्तुएं इन्हीं पर लाद कर दूर-दूर भेजी जाती थीं। वहाँ इनके लिए विशेष तौर पर परिवहन मार्ग बनाये जाते थे। छोटे लामा अपनी पीठ पर ६०-६२ पौण्ड और बड़े लामा २०० पौण्ड तक भार लाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर २०-२५ मिनट का सफर सहज ही तय कर लेते हैं।

इनके वन्य जाति-भाई

अधिकतर जंगलों में रहने वाले, पाले न जाने वाले और यथार्थ में लामा के पूर्वज के ही रूप में ग्वानेको (guanaco) प्राणी पाये जाते हैं। वर्तमान लामाओं को इन्हीं से अवतरित माना जाता है। ये बड़े-बड़े झुण्ड बाँधकर रहते हैं। फीके कत्थई रंग के शरीरयुक्त, ये प्राणी स्वभाव में कुछ शर्मीले और डरपोक भी दिखते हैं। इनकी एक विचित्रता यह है कि मृत्यु निकट आने पर ये एक विशिष्ट स्थल पर ही जा बसते हैं और वहीं प्राण त्याग करते हैं। आज भी वह स्थल इनकी अस्थियों के पहाड़ जैसे ढेरों से सफेद ही सफेद नजर आता है। सामान्य लामा की अपेक्षा यह जब गुस्से से थूक फटकारता है तब मुँह में कंकड़, रोड़े आदि और भर लेता है जिनसे उस मार की चोट बन्दूक की गोली जैसी लगती है।

अल्पका

जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह भी लामा की एक जाति ही है। यह अपने रीछ जैसे बालों के कारण भारी-भरकम और रौब-दार भी दिखता है। दूर से तो यह ऐसा दिखता है मानो एक बड़ी कार खड़ी हो जो लम्बे बालों से ढँकी हो और जिसमें से ऊँट की गर्दन जैसा कुछ बाहर निकल रहा हो। इसके नाम के साथ ही जो रेशम जैसे अल्पका कपड़े का ध्यान हो जाता है, वह उचित ही है क्योंकि इसके रोयें बहुत मुलायम और रेशम जैसे होते हैं और उन्हीं से अल्पका रेशम तैयार किया जाता है। इसके बाल चमकीले, लाल, काले और सफेद रंग के होते हैं। अतः उनसे बना रेशम भी वैसे ही चमकीले रगों का होता है।

पालतू लामाओं का एक शानदार जोड़ा

विक्यूना

एण्डीज की पर्वत श्रेणियों में १८०००, २०००० फुट की अत्यधिक ऊँचाई पर विचरने वाला यह लामा अनेक बातों में ग्वानेको से बहुत भिन्न है। अतः इसे उसी श्रेणी में निश्चित रूप से नहीं रखा जा सकता।

इतनी अगम्य ऊँचाई पर रहने के कारण यह वहाँ के निवासियों के लिए सदैव ही एक अलभ्य वस्तु रहा है और वे इसे राजसी लामा मानते आये हैं। यह छोटे-छोटे पारिवारिक जत्थों में ही विचरता है। इनमें नर-प्राणी वर्ष में केवल एक बार गर्दन के नीचे से इतने अनमोल रोयों का गुच्छा गिराता है, मानो मोर ने अपने पंख गिराये हों। उन्हीं बेशकीमती रोयों के लिए लोग इसके शिकार की टोह में रहते हैं। इसकी रेशम जैसी खाल और मखमली रोयों के कारण ही इन वस्तुओं का उपयोग राजघरानों तक सीमित था। इसीलिए इसे राजसी लामा कहते हैं। कुछ काल पहले अँग्रेजों ने इसके सामूहिक शिकार के अभियान किये थे, किन्तु अब पेरू-सरकार ने इसका शिकार पूर्णतः निषिद्ध घोषित कर रखा है।

यों, बिना कुब्बड़ का ऊँट, यह लामा प्रकृति के गिने-चुने अति विचित्र प्राणियों की शृंखला में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-क्लब

प्यारे बच्चो,

इस मास से आरम्भ, नये शिक्षा-सत्र में इस नये अंक से तुम सबका स्वागत करती हूँ।

अपनी-अपनी परीक्षाओं से उत्तीर्ण होकर जो ऊँची कक्षाओं में आये हैं, उन्हें मेरा अभिनन्दन है। जिन्हें इस वर्ष अपनी पुरानी कक्षाओं में रुक जाना पड़ा है, उन्हें मेरा स्नेहसिक्त साहसवर्द्धन है कि वे अपनी निर्बलताओं को पहचान कर उन्हें मिटाने में अभी से जुट जायें ताकि आगामी वर्ष सम्मान सहित उत्तीर्ण हो सकें।

तुम्हारे अनेक पत्रों का ढेर मेरे सामने है। किन्हीं में तो पहाड़ों पर तथा अन्याय यात्राओं में गर्मियों के दिन बिताने की रंगीनियां वर्णित हैं, तो किन्हीं में विशेष अध्ययनों तथा अवलोकनों द्वारा ज्ञान-विज्ञान का अर्जन करते हुए अवकाश के दिनों का लाभ उठाने के वर्णन हैं। अनगिनत पत्र ऐसे तो प्रति मास के क्रमानुसार हैं ही, जिनमें विज्ञान-लोक के विगत २-१ अंकों के नये आकर्षणों के प्रति प्रशस्तियां लिखित हैं।

पिछले अप्रैल अंक की ही बात करें तो कु. शीला निगम (३९७८) कानपुर और श्री धीरेन्द्रकुमार (४०३२) हलद्वानी को मुखपृष्ठ पर बिलकारी जन्तु का चित्र बड़ा मोहक लगा और तत्सम्बन्धित **बिलकारी जन्तुओं** पर प्रथम लेख भी रोचक लगा। (४११९) राजेशकुमार लुधियाना और (७१९०) सुरेशकुमार गुप्ता, अमृतसर ने **बिनौले से धागे तक** का लेख ज्ञानवर्द्धक तथा **शून्य** की रचना अनुपम बतायी जो अन्यत्र प्रायः इन्हें नहीं मिलती। इसी प्रकार **अन्तरिक्ष यात्री की पुकार पर** तथा **प्रो. आगस्टे पिकार्ड** की जीवनी को गोरखपुर से अमूल्यचरण (६०४६) तथा जमशेदपुर से रामचन्द्रसिंह (१०१३१) ने सर्वथा नयी जानकारीयुक्त कहा है।

पिछले ३-४ अंकों को पुनः देखोगे तो विज्ञान-क्लब की कुछेक स्थायी सूचनाएं दोहरायी हुई तुम्हें मिलेंगी। मुझे प्रसन्नता होगी यदि उन सूचनाओं को लक्ष्य में रखते हुए तुम अपने प्रश्न, लेख तथा करो और देखो आदि रचनाएं यथासम्भव नये-नये विषयों पर ही भेजो। उत्तम कृतियां अपने क्रम से देर-सवेर, प्रकाशित अवश्य होंगी।

सस्नेह तुम्हारी

कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ५२ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

गजेन्द्रपालसिंह (१६०५) मेरठ, शैलेन्द्र पाराशर (४७१८) आगरा, घनश्यामदास मूँदड़ा (९९९७) बीकानेर, मंजुला सिरोही (११९८४) मेरठ, देवेशकुमार त्रिवेदी (१२८५०) आगरा।

द्वितीय पुरस्कार

कृष्णसिंह पुण्डीर (१२८९) नगला पिथौर, सुधीरकुमार (१६१९) आगरा, आनन्दनारायण श्रीवास्तव (२५२७) लखनऊ, हरीशचन्द्र कश्यप (५११०) देहरादून, अनिलकुमार (७५६७) लखनऊ, विजयकुमार (७९७८) अमृतसर, सुरेन्द्रकुमार गुप्ता (१०६७६) सागर, आलोक अदावाल (१०७९०) इलाहाबाद, राजेन्द्रकुमार कठरया (११५९८) ललितपुर।

तृतीय पुरस्कार

महेशचन्द्र (२१४८) गुरुकुल कांगड़ी, अमूल्यचरण (६०४६) गोरखपुर, बलवीरसिंह (९०८२) रायपुर, कु. शीला गोयल (१००३६) जबलपुर, नरेन्द्र पुनिहान (११०१८) पानीपत, अनिलकुमार साकलकर (११४६१) रायपुर, जावेद असगर (११६८३) जगदलपुर, राजेन्द्रप्रसाद अग्रवाल (१२६०१) कटनी।

कूपन प्रतियोगिता संख्या ५४

नाम.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशोक गुप्ता
(स. सं. २७०१)

सत्यनारायण
(स. सं. ३३३६)

दिनेशप्रसाद
(स. सं. ३३६५)

नरेन्द्रकुमार
(स. सं. ४०५२)

८६८५ रमेशचन्द्र (१८) जयपुर, ८६ कु. ललिता (१७) हिवरखेड़, ८७ मदनसिंह (१७) आसीन्द, ८८ मोहनसिंह (१६) आसीन्द, ८९ योगेन्द्रकुमार (९) फालना, ९० कृष्णकुमार (१४) जोधपुर, ९१ विनोदानन्द (१४) कानपुर, ७२ भीमसेन (१५) नई दिल्ली, ९३ राजेश्वरप्रसाद (१३) रतनपुर, ९४ कु. शकुन्तला बाई (१०) मांगल्या, ९५ हरिकिशोरप्रसाद (१३) रतनपुर, ९६ नरेन्द्रभूषण (११) मधुबनी, ९७ शिवकुमार (१७) हजारीबाग, ९८ प्रणवकुमार (१५) हरनाथपुर, ९९ मुहम्मदसालिम (१६) हथुआ, ८७०० आलोक (१३) कानपुर, १ अनिलकुमार (१४) मेरठ, २ अजयकुमार (१५) डिहरी ओन-सोन, ३ जयनारायण (१४) पण्डितगंज, ४ हेमचन्द्र (१८) हतोद, ५ बसन्तकुमार (१४) जबलपुर, ६ विक्रमसिंह (१२) बड़नगर, ७ प्रेमप्रकाश (१०) गोरखपुर, ८ विमलकुमार (१८) कानपुर, ९ नवनीतदास (१५) उदयपुर, १० मुक्तेश्वरलाल (१६) उत्तरा, ११ राजेश्वरलाल (१०) उत्तरा, १२ गोपालकृष्ण (१५) उत्तरा, १३ गुरुचरणलाल (१५) बिलासपुर, १४ बृजमोहनलाल (१५) कुरुक्षेत्र, १५ शमसुलहक (१३) आजमगढ़, १६ महाराणाप्रताप (१३) बिहार-शरीफ, १७ भूदेवसिंह (१५) आगरा, १८ नरेन्द्रकुमार (१५) सहारनपुर, १९ कु. रीतारानी (११) खमरिया, २० कु. रीता (१०) जमशेदपुर, २१ सुनीलकृष्ण (१७) लखनऊ, २२ विनोद कुमार (१४) नई दिल्ली, २३ श्यामप्रसाद (१२) सलेमपुर, २४ उमानाथ (१२) तेलियाकलां, २५ रमणीकलाल (१७) बाँहवा, २६ आद्याप्रसाद (१७) भटहर, २७ राकेशकुमार (११) रामपुर, २८ रवीन्द्रकुमार (१७) काशीपुर, २९ पुष्पेन्द्रकुमार (१५) चन्दौसी, ३० बालकृष्ण (१३) इलाहाबाद, ३१ विनोदचन्द्र (१७) साबरकंठा, ३२ जसपाल (१५) बुलन्दशहर, ३३ कृष्णकुमार (१५) जबलपुर, ३४ अमीरअली (२६) कुचमन सीटी, ३५ गोपालकृष्ण (१५) बड़वाह, ३६ विजयकुमार (१५) जालना, ३७ सुधीरकुमार (११) भटिण्डा, ३८ हरीसिंह (१६) जोधपुर, ३९ सुरेन्द्रकुमार (१५) सहारनपुर, ४० बद्रीप्रसाद (१४) इलाहाबाद, ४१ राजेन्द्रकुमार (१७) बाँहवा, ४२ चन्द्रप्रकाश (१५) उदयपुर, ४३ ब्रजेशकुमार (१२) जबलपुर, ४४ विजय कुमार (१८) मथुरा, ४५ अजयकुमार (१३) गोरखपुर, ४६ सुयशप्रकाश (१४) मेरठ, ४७ प्रेमचन्द्र (१५) अल्मोड़ा, ४८ रमेश (१५) उज्जैन, ४९ शंकर (१४) वरुड़, ५० ईश्वरलाल (१५) भिलाई, ५१ यशपाल (१२) रतनगढ़, ५२ रामनवल (१९) कानपुर, ५३ जयप्रकाश (१३) इन्दौर, ५४ अजयकुमार (१५) आगरा, ५५ शीराजएहमद (१५) रायपुर, ५६ ज्योतिमय (१४) मकबूलगंज, ५७ प्रह्लाददास (१५) श्योपुरकलां, ५८ रामस्वरूप (२०) श्योपुरकलां, ५९ वीरेन्द्रकुमार (१०) इलाहाबाद, ६० मनोहरलाल (१५) माधोपुर, ६१ बाबूराम (१४) दिल्ली, ६२ अशोककुमार (१४) पुने, ६३ कु. निशारानी (१२) शिवपुरी, ६४ समरेशनारायण (१४) उज्जैन, ६५ सर्वेशनारायण (१२) उज्जैन, ६६ फणीभूषण (१२) पटना, ६७ कु. शशि (१४) इलाहाबाद, ६८ कल्पनाकान्त (११) जबलपुर, ६९ ब्रजेन्द्र (१९) लुधियाना, ७० विनोदकुमार (१२) झांसी, ७१ सुबोधकुमार (१५) दमोह, ७२ कल्याणमल (१८) मऊ, ७३ देवेन्द्रकुमार (१६) नवापारा-

विनयकुमार तिवारी
(स. सं. ४२४६)

सानन्दनारायण
(स. सं. ५७०६)

रमेशचन्द्र गुप्त
(स. सं. ६८६३)

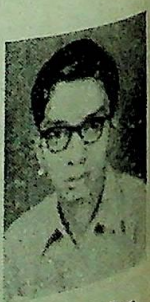

वीरेन्द्र सक्सेना
(स. सं. ७०३८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरेन्द्रकुमार अग्रवाल
(स. सं. ७८९१)

लक्ष्मीप्रसाद
(स. सं. ८४९०)

चन्द्रप्रकाश हाण्डा
(स. सं. ८८५०)

जयेन्द्रकुमार
(स. सं. ९६३८)

जुलाई १९६४

राजिंगर (१०) मथुरा, ७५ मोतीलाल (१७) इलाहाबाद, ७६ सुरेशप्रसाद (१९) आशानन्द तितरा, ७७ ओमप्रकाश (१४) कोर्री, ७८ सीताराम (११) तुमसर, ७९ गोविन्दस्वरूप (१२) फिरोजाबाद, ८० ओमप्रकाश (१९) लखनऊ, ८१ निर्मल कुमार (१२) दुर्ग, ८२ सरोजकुमार (२०) मुंगेर, ८३ विशम्भरनाथ (१७) वाराणसी, ८४ प्रेमचन्द (१०) जीलगोरा, ८५ जोगेशनाथ (१६) लखनऊ, ८६ हुवराज (१६) मीरगंज, ८७ रवीन्द्रकुमार (१७) गोरखपुर, ८८ अहमदइकबाल (१६) समदन, ८९ चन्द्रिका (१७) बबुरी, ९० प्रकाशनारायण (१९) कुर्थीजाफरपुर, ९१ विद्यासागर (१६) बीकानेर, ९२ सुभाषचन्द्र (१६) सहारनपुर, ९३ कु. आशालता (१४) सागर, ९४ जयप्रकाश (१३) आजमगढ़, ९५ मोतीलाल (१५) दीघा, ९६ रमेशचन्द्र (१५) रायबरेली, ९७ अनिलकुमार (९) गनपतगंज, ९८ राममूर्ति (१०) बढ़या बुजुर्ग, ९९ प्रवीणमोहन (१५) इटावा, ८८०० सोहनलाल (१९) पंधाना, १ अशोककुमार (१२) कालका, २ विनोदकुमार (१३) कालका, ३ सत्यवीर (११) कानपुर, ४ वेदप्रकाश (१६) गंगानगर, ५ शम्भूशरण (१२) शेखपुरा, ६ अशोककुमार (१२) भागलपुर, ७ गौतम (१२) गोरखपुर, ८ रणजीतकुमार (१५) दिल्ली, ९ कृष्णकान्त (१८) चन्दौसी, १० भुवनेश्वर (१४) महेन्द्र, ११ बाबूलाल (१९) सिरसौद, १२ मुलायमचन्द्र (१५) सागर, १३ रामवीर (१३) गोंडा, १४ सोमदत्त (१५) पीलीभीत, १५ विचलेन्द्रियकुमार (२०) पडरौना, १६ पवनकुमार (१६) अलीगढ़, १७ सतीशचन्द्र (२०) लखनऊ, १८ कृष्णकान्त (१६) लखनऊ, १९ शिवकिशोर (१४) धनबाद, २० ब्रिजकिशोर (११) धनबाद, २१ देवीशरण (१८) गोरखपुर, २२ रमेशचन्द्र (१६) विदिशा, २३ तनसुखराज (१३) सोजत सिटी, २४ कु. राधादेवी (१३) देवली, २५ सोभगमल (१५) पुष्कर, २६ विजयकुमार (१७) वाराणसी, २७ एम. आर. उरकड़े (२२) लाँजी, २८ परमानन्द (१६) डूंगरपुर, २९ विप्रपद (१०) बरहरवा, ३० राजकुमार (१४) सहारनपुर, ३१ गोपालकृष्ण (१५) देवघर, ३२ लक्ष्मणभाई (२०) अंबाबाड़ा, ३३ राधेश्याम (१६) इन्दौर, ३४ शिवगोपाल (१०) राघोपुर, ३५ दिनेशप्रसाद (१२) राघोपुर, ३६ विनयकुमार (१३) भागलपुर, ३७ विजय कुमार (१४) नई दिल्ली, ३८ शिवकुमार (१६) झांसी, ३९ नरेन्द्रनारायण (१५) पटना, ४० रविन्दप्रकाश (१३) एटा, ४१ अरुणकुमार (१४) लालगंज, ४२ सीताराम (१६) लौकहा, ४३ विनोदकुमार (१५) कलकत्ता, ४४ ज्ञानेन्द्र (२५) अजमेर, ४५ हरिबल्लभ (३३) खम्भालीआ, ४६ मेहरचन्द्र (१६) आगरा, ४७ यशपाल (१५) लुधियाना, ४८ कु. जीतसिंह (१७) बस्तर, ४९ केवलचन्द (१८) दमोह, ५० चन्द्रप्रकाश (१५) जालन्धर, ५१ सुरेन्द्रकुमार (१८) बैतूल, ५२ शशीकुमार (१६) भिलाई, ५३ मदनलाल (१८) हिंगनघाट, ५४ महेशचन्द्र (१४) इटावा, ५५ कैलाशचन्द्र (१४) खुरई, ५६ कु. चारु (१३) खुर्जा, ५७ ओमप्रकाश (१५) बीकानेर, ५८ मुरारीलाल (१२) मुकुन्दगढ़, ५९ वृजनन्दन (१४) झांसी, ६० कौशल्याकुमारी (१२) कटहरा, ६१ अनिलकुलार (१४) रांची, ६२ बलिराम (११) रांची, ६३ बलजीतसिंह (१३) चंडीगढ़, ६४ सुरेशचन्द्र (१६) सीतापुर, ६५ कौस्तभकुमार (१३) गोरखपुर, ६६ असीरउद्दीन (१६) चकिया, ६७ दिनेशकुमार (१५) उदयपुर।

प्रेमप्रकाश माथुर
(स. सं. १०७०३)

एस. बी. सिंह
(स. सं. १०८०५)

भुवनेश्वर
(स. सं. ११४१३)

दिनेशप्रसाद
(स. सं. ११७७९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH
WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : Re. 0·80
Book II.....Price : Re. 1·00
Book III.....Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to :

Sri Ram Mehra & Co.
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५४

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : १५ अगस्त

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५५ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५४ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर १५ अगस्त तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५४ के प्रश्न

१. कई गीयर्स (gears) के दाँते कुछ तिरछे काटे जाते हैं; क्यों ?

२. भारोत्तोलन (weightlifting) में फेदरवेट (featherweight) का भार कितने पौण्ड से कितने तक रखा जाता है ?

३. जीभ की नोक पर आपको तीव्र अनुभूति खट्टे स्वाद की होगी अथवा कड़वे, खारे या मीठे की ?

४. वायु-वेगसूचक यन्त्र को अंग्रेजी में क्या कहते हैं ?

५. कोलगैस में कौनसी दो मुख्य गैसें मिश्रित रहती हैं ?

६. पप्पू, टप्पू और बब्बू तीनों भाई हैं। पप्पू की आज की आयु उतनी है जितनी कि टप्पू की तब थी जब पप्पू स्वयं बब्बू की आज की आयु के बराबर था। टप्पू की आयु उस समय पप्पू की आज की आयु से आधी और तीन वर्ष और बीतने पर बब्बू की जितनी आयु हो जाएगी, उसकी एक-तिहाई है। तीनों की आज की आयु पृथक्-पृथक् बताइए।

७. प्लाज्मा टार्च का उच्चतम तापांक कहाँ तक पहुँचता है ?

८. लीथियम की सर्वप्रथम खोज का श्रेय किसने कब प्राप्त किया ?

९. चाँद, तारों तथा नक्षत्रों सहित नभ-मण्डल को अपने हाथ से छू लेने भर नीचाई तक किस विधि द्वारा उतार सकेंगे ?

१०. हारमोनियम का आविष्कार किसने कब किया ?

प्रतियोगिता संख्या ५२ के प्रश्नों के उत्तर

१. इकोनोस्कोप (Iconoscope)।

२. कार्ल लेंडस्टेनियर (Karl Landstenier) ने।

३. गेलियम (Gallium), सीजियम (Cesium) और रूबीडियम (Rubidium)।

४. गल्फस्ट्रीम (Gulfstream) और लेब्राडोर धारा (Labrador current)।

५. १९३८ में, थर्मियानिक प्रभाव (Thermeonic effect) की खोज के लिए।

६. ये ऋणावेशित प्रोटान हैं। प्रोटान से टक्कर के अन्तर्गत ये परस्पर नष्ट हो जाते हैं और फोटान तथा मेसानकणों में अवशेषित हो जाते हैं।

७. पिट्युइटरी ग्रन्थि (Pituitary Gland)।

८. हाइड्रोजन के समस्थानिक—डियूटेरियम (Deuterium) की खोज के लिए १९३३ में इन्हें नोबुल पुरस्कार दिया गया था।

९. यह यान भूमि तथा पानी की सतह से जरा ही उठा हुआ चलता है। क्रिस्टाफर काकरेल ने इसका आविष्कार किया था।

१०. विद्युतधारा का पथ (circuit) तो हमीं पूरा करते हैं क्योंकि धरती को छूकर हम उसे अर्थिंग (earthing) किये रहते हैं; जबकि चिड़ियाँ अर्थिंग न कर पाने के कारण मजे में बैठी रहती हैं। हाँ, यदि हम उस चिड़िया को छू लें तो दोनों झटका खाकर गिर पड़ेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

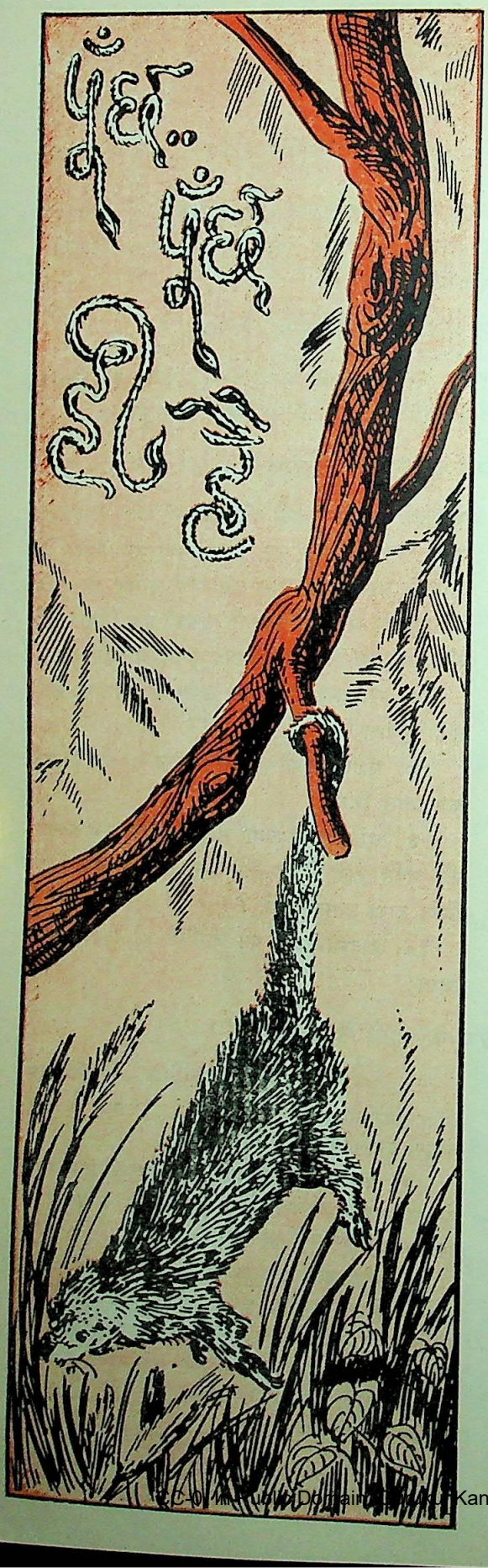

पूँछ की क्या बात ! पूँछ, पूँछ ही है। कहा भी तो है—'साहित्य, संगीत, कला विहीनः साक्षात् पशु पुच्छ, विषाण हीनः।' इसे हटा उलटकर यह कहेंगे कि बेपूँछ का पशु, फूहड़ मनुष्य जैसा ही है। मानवों, वानरों और कुत्तों कीटों को छोड़कर प्रकृति ने शरीर-शोभा को यह अंग छोटे-बड़े रूप में प्रायः प्रत्येक प्राणी को दिल खोलकर दिया है। यों चिह्न रूप में तो मनुष्य की भी रीढ़रज्जु का अन्तिम सिरा पूँछ बनते-बनते रह गया है, मानो वहाँ तक आकर विधाता कुछ सोच में पड़ गया हो। कदाचित् शारीरिक पूँछ की पूर्ति करने के लिए ही आज का मनुष्य छोटी-बड़ी डिग्री की पूँछ लगाने को लालायित रहता है, क्योंकि वैसी ही पूँछ की आज पूँछ रह गयी है।

शिम्भूशरण (स. सं. १५०४)

जो कुछ भी है, पूँछ के होते हुए शरीर की तो शोभा निराली बनती ही है, इसकी अनेकविध उपयोगिताएँ भी कम नहीं हैं। रामायण-प्रेमी जानते हैं कि जब रावण ने अपने दरबार में अंगद को सम्मान सहित आसन नहीं दिया, तब अंगद ने पूँछ ही को रस्से की तरह लपेटते हुए खम्भे जैसा अपना आसन रावण से भी ऊँचा बना लिया था। आज भी प्राणी अपनी आवश्यकतानुसार पूँछ को चाहे तो प्यार-दुलार में पटपटा लेता है, गुस्से में फटकार लेता है, कगारों पर चलते समय नट के बाँस की तरह सन्तुलन बनाने में काम लेता है, लड़ते समय चाबुक-सी जड़ देता है, गाय-भैंस की तरह मक्खियाँ उड़ा लेता है, बिच्छू के डंक जैसा विषबुझा इंजेक्शन चुभो देता है; यहाँ तक कि पूँछ ही में अपना भोजन भी जमा रखता है।

यह सब इस प्रकार

मछलियों को ही लीजिए। पाइपफिश

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

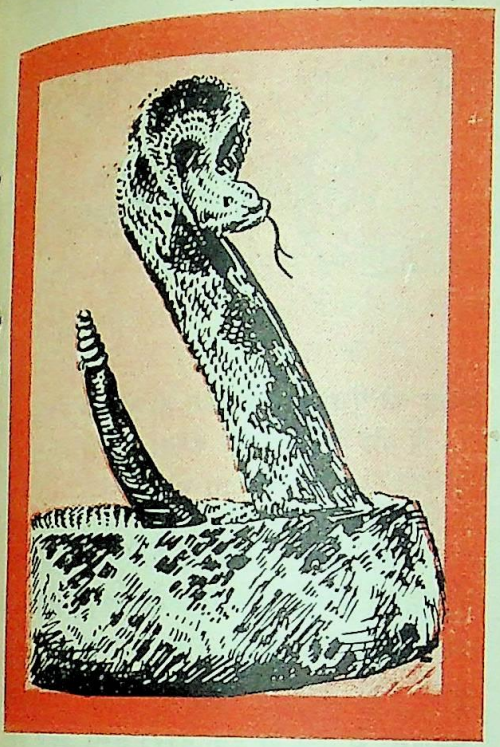

यह खड़खड़िया सर्प (रैटिलस्नेक) अपनी पूँछ से खड़खड़ ध्वनि करता हुआ हमले के लिए तैयार है

(pipefish) बेचारी फुर्ती से तैर नहीं पाती फिर भी शिकार तो उसे चहिए ही। अतः वह दलदल में अपनी पूँछ टिकाकर, मुँह फैलाए खड़ी रहती है तब कोई न कोई शिकार आ ही फंसता है। यही हाल सी-हार्स (sea-horse) मछली का भी है। यह भी आवश्यकता पड़ने पर पानी की शैवाल में अपनी पूँछ गड़ाकर शिकार प्राप्त करती रहती है। और, वह जलजीव व्हेल ? वह मछली नहीं, फिर भी मछली जैसी दिखती है। उसकी पूँछ न केवल उसे परिचालन में डांड़-पतवार का काम देती है; बल्कि ऐसी फटकारती भी है कि नावों की धज्जियाँ उड़ा देती है और छोटे-छोटे जहाजों को चकनाचूर कर देती है।

साँपों की बात करें तो यह केवल रेप्टाइल वर्ग की अपनी खूबी है कि कटी-टूटी पूँछ के स्थान पर ये नयी पूँछ उत्पन्न कर लेते हैं। खड़खड़िया सर्प अर्थात् रैटिलस्नेक का तो नाम ही उसकी निराली पूँछ के कारण हुआ है। इसकी पूँछ के सिरे का थोड़ा-सा भाग ढीली-ढाली हड्डियों के छल्लों जैसा रहता है जिन्हें हिलाकर ये अपनी विशिष्ट खड़खड़ की ध्वनि उत्पन्न कर लेता है। अजगर अपनी पूँछ से पेड़ की डाल को जकड़े हुए आगे रेंगता-रेंगता अपने शिकार तक पहुँच जाता है। मॉनीटर लिजार्ड (monitor lizard) नामक छिपकली अपनी तीन फुट लम्बी पूँछ से प्रायः चाबुक का ही काम लेती है।

कभी-कभी मोरपंख को जो मोरपुच्छ कह लिया जाता है, वह गलत है। इसमें सन्देह नहीं कि अपने अनुपम पंखों के कारण पक्षियों में मोर शीर्षस्थान पर है। उन्हीं पंखों को जब यह चन्द्राकार फैला लेता है तब शत-शत इन्द्रधनुष लजाकर रह जाते हैं। लोग उसी

यह समुद्री घोड़े का नर-मत्स्य समुद्री वनस्पति में अपनी पूँछ उलझा, टिका कर लम्बे समय तक शिकार की प्रतीक्षा में खड़ा रह सकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लखनजी (२१४६) गया

प्रश्न—लवण-परीक्षण के लिए तत्त्वों के निर्धारित वर्गीकरण में और आवर्त्ततालिका के वर्गीकरण में क्या अन्तर है ?

उत्तर—प्रथम वर्गीकरण तत्त्वों तथा पदार्थों के गुण-साम्य पर आधारित है तथा द्वितीय प्रकार का वर्गीकरण तत्त्वों के अणुभार के क्रम पर आधारित है।

श्यामसुन्दर तुलस्यान (९१९२) रांची

प्रश्न—क्या यह सम्भव है कि विद्युतप्रवाह को बिजलीघर से तारों के बजाय रेडियो की भाँति बेतार के तार (wireless) द्वारा प्रसारित तथा प्राप्त कर ली जाए ?

उत्तर—ताप की भाँति विद्युत को भी अनिवार्य रूप से माध्यम चाहिये ही; अतः आपकी आशापूर्ण होना अभी तो सम्भव नहीं, भविष्य की कह नहीं सकते।

सुरेशकुमार श्रीवास्तव (९०८१) जौरा (मुरैना)

प्रश्न—जगदीशचन्द्र वसु का संक्षिप्त परिचय दीजिए ?

उत्तर—वि. लो. फरवरी १९६० में संक्षिप्त क्यों, विस्तृत परिचय लीजिए।

बिहारीलाल अग्रवाल (३३७२) सूरजपुर

प्रश्न—क्या मनुष्य नींद का सही समय बता सकता है ?

उत्तर—यह अनुभवसिद्ध है कि निरन्तर अभ्यास द्वारा ठीक घड़ी के समय पर नींद आ जाएगी और खुल भी जाएगी। अभ्यास द्वारा तो लोग चैलेन्ज देकर १२-१५-२० मिनट तक की झपकी लेकर सुई के साथ उठ बैठते हैं और सुबह उनके उठने की नियमितता उलटे घड़ियों को ठीक करने में सहायता करती है।

भगवानदास (१०६५८) टीकमगढ़

प्रश्न—सुना है, सूर्य में दरार पड़ गई है ?

उत्तर—आपसे कौन कह गया ? सूर्य कोई थाली तो है नहीं, जो दरार पड़कर चटख जाएगा ! जो तप्त गैसों ही गैसों का पुंज है, उसमें कैसी दरार और क्या बात ? हाँ, उसकी लपलपाती अग्निशिखाएं शक्तिशाली दूरदर्शी में नजर आकर यह वहम दिलाती होंगी।

कन्हैयालाल गुप्तदेव (१०४३२) टीकमगढ़

प्रश्न—यदि काफी गहरे कुयें के अन्दर से आकाश की ओर देखा जाए तो तारे दिखना सम्भव है क्या ? यदि हाँ, तो किस प्रकार ?

उत्तर—गहरे कुयें के अँधेरे में आप उतरें तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि दुनिया में भी अँधेरा हो गया। इसके लिए आकाश पर घने काले बादलों का ऐसा आवरण आवश्यक है जो दिन में भी रात जैसा अँधेरा नजर आए। तभी दिन में तारे दिख सकते हैं। अन्यथा आप तो गहरे काले चश्मे ही चढ़ाकर दिन में तारे देखना चाहेंगे जो कि सम्भव नहीं है।

छगनलाल बिस्सा (२४७९) बीकानेर

प्रश्न—वैज्ञानिक तो हमेशा सत्य बात को मानते हैं, फिर डाल्टन-सिद्धान्त जैसे गलत तथ्य अभी भी क्यों पढ़ाए जाते हैं ?

उत्तर—समय के साथ सही और गलत का मापदण्ड बदलता है। जो सिद्धान्त आज मान्य है, वह वर्षों बाद उसका संशोधन होने तक सत्य माना जाएगा और नये प्रयोगों द्वारा उसका खण्डन होने पर ही उसे गलत कह सकेंगे। अतः गलत सिद्ध होने वाले किन्तु आरम्भ में सत्य माने जाते सिद्धान्त जब तक पढ़ाए न जाएं तब तक वास्तविक सत्य सिद्धान्त की भूमिका कैसे बनेगी ?

रणजीतकुमारसिंह (३७९८) गया

प्रश्न—ऐसी कौनसी विधियाँ हैं जिनके द्वारा हम भूमि में गड्ढा किये बगैर ही भूमिगत जल तथा उसकी दूरी ज्ञात कर सकें ?

उत्तर—गत मास के अंक में 'तुम्हारी कलम से' स्तम्भ की रचना में इसका रोचक वर्णन देखिये।

कु. मंजुला सिरोही (११९८४) मेरठ

प्रश्न—इस पृथ्वी पर सर्वप्रथम जीव कौन और किस प्रकार उत्पन्न हुआ ?

उत्तर—पिछले मास के विज्ञान-लोक में 'रसायनों से जीवोत्पादन' लेख देखिए।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों से निवेदन

यदि आपको विज्ञान-लोक पसन्द है, तो आप अपने अन्य साथियों को इसे पढ़ाइये और उन्हें इसका नियमित रूप से ग्राहक बनने के लिए कहिए। 'विज्ञान-लोक' भारत में अपने ढंग का पहला सचित्र वैज्ञानिक मासिक है और इसका उद्देश्य विज्ञान को सरल भाषा में रोचक ढंग से उपस्थित करना है।

विज्ञान-लोक सम्बन्धी पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

अपना पता पूरा और साफ अक्षरों में लिखें, ताकि पत्रोत्तर और विज्ञान-लोक आपको ठीक समय पर मिल सके।

पता बदलने की सूचना हमें एक माह पूर्व प्राप्त होनी चाहिए। यदि छः माह से कम समय के लिए पता बदलवाना हो, तो आपको अपने संबंधित डाकखाने से इसकी व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

यदि आप विज्ञान-लोक के ग्राहक अभी तक नहीं बने हों तो आज ही अपना वार्षिक शुल्क ६ रु० मनीआर्डर द्वारा शीघ्र ही भेज दें ताकि अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र व्यवहार का पता:

व्यवस्थापक, विक्रय विभाग

विज्ञान-लोक

हास्पिटल रोड, आगरा

यहाँ से काटिये

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृष्णा दीदी,

मुझे विज्ञान क्लब का सदस्य बना लीजिए।

जन्म-दिन _____ आयु _____

नाम _____

घर का पता _____

_____

_____

स्कूल का नाम _____

शिक्षा _____ रुचि _____

यहाँ से काटिये

यहाँ से काटिये

जुलाई १९६४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप चाहे दफ्तर में काम करते हों
अथवा खेत या कारखाने में,
समय की पुकार है कि
आप इतनी मेहनत से काम करें
जितनी कि पहले कभी न की हो।
काम या उत्पादन पहले से
दुगुना कर दें, और इससे भी
कुछ अधिक! याद रखें कि आपका
अधिक परिश्रम राष्ट्र को
अधिक बलवान बनाता है।

जी तोड़ मेहनत करें

अधिक उत्पादन, सुदृढ़ रक्षा के लिए

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा ब्रदर्स, आगरा के लिए प्रकाशित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छी तथा श्रमहारी !

गोल्डन ईगल

लागर बीयर

गोल्डन इगल बीयर अच्छी है क्योंकि यह ठण्डी, ताजी तथा साफ है—यह सर्वत्र लोकप्रिय बीयर गर्मियों में वास्तविक प्यास बुझाने वाली है।

डायर मीकिन ब्रूअरीज लि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price : 75 paise July 1964 Regd. No. L 1410
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामबिहारीसिंह तोमर द्वारा लिखित

नवीन प्रकाशन

एम. ए. कक्षाओं के लिए

१.	सामाजिक मनोविज्ञान	१८·००
२.	ग्रामीण समाजशास्त्र	१५·००
३.	नागरिक समाजशास्त्र	७·५०
४.	हिन्दू विवाह एवं परिवार की समस्याएं	६·००
५.	सामाजिक सूक्ष्मदर्शी : व्यैक्तिक अध्ययन प्रणाली	१०·००
६.	सामान्य समाजशास्त्र : समाज, संस्कृति तथा व्यक्तित्त्व	१०·००
७.	सामाजिक सिद्धान्त : व्यक्तित्त्व का समाजशास्त्रीय अध्ययन	५·००
८.	व्यक्तित्त्व	१०·००
९.	भारतीय समाज, संस्कृति तथा संस्थाएं	प्रेस में*
१०.	भारतीय संस्कृति के मूलाधार	प्रेस में*

बी. ए. कक्षाओं के लिए

१.	सामाजिक मनोविज्ञान परिचय	१०·००
२.	समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग १ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)	प्रेस में*
३.	समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग २ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)	प्रेस में*
४.	समाजशास्त्र के मूल तत्त्व, भाग ३ (भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए)	प्रेस में*
५.	समाजशास्त्र के सिद्धान्त (राजस्थान, जोधपुर, पंजाब, मुजफ्फरपुर)	प्रेस में*
६.	सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब)	प्रेस में*
७.	सामाजिक नियन्त्रण एवं सामाजिक परिवर्तन (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब, राँची)	प्रेस में*
८.	समाजशास्त्र की प्रकृति एवं आधार (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)	प्रेस में*
९.	सामाजिक संरचना एवं सामाजिक गतिशास्त्र (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)	प्रेस में*
१०.	भारतीय जनता एवं संस्थाएं (आगरा, जबलपुर, भागलपुर)	प्रेस में*
११.	भारतीय समाज एवं संस्कृति (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)	प्रेस में*
१२.	भारतीय सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, काशी, पंजाब)	प्रेस में*
१३.	भारत की सामाजिक संस्थाएं (राजस्थान, जोधपुर)	प्रेस में*
१४.	तुलनात्मक सामाजिक संस्थाएं (गोरखपुर)	प्रेस में*
१५.	प्रारम्भिक ग्रामीण समाजशास्त्र	

*१५, जुलाई तक उपलब्ध

इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए

१.	माध्यमिक समाजशास्त्र	२·५०
२.	भारतीय सामाजिक संगठन	२·५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िये

तरह-तरह के केकड़े ३
—डा. मनमोहनसिंह

स्टेनलैस स्टील ७
—रमेशचन्द्र कपूर

पदार्थ की तरंगें ११
—अशोककुमार चौबे

हमारा आहार १५
—डा. रवीन्द्रप्रताप राव

आपका रेडियो १९
—रमेशप्रसाद शर्मा

क्लाडियस गेलेन २३
—मनोहरलाल

ये बच्चे किसके हैं २६
—डा. प्रकाशचन्द्र

हीलियम द्वितीय ३०
—ना. ग. बोडस

चन्द्रगगन में पृथ्वी ३३
—प्रेमलाल टण्डन

लगीं आग बुझाते हैं ३५
—मदनलाल शर्मा

आओ, लता लगाएं ४१
—दुर्गाशंकर त्रिवेदी

प्रकिण्व ४६
—सत्यकुमार

दक्षिण ध्रुवीय स्क्युआ ४९
—देवीदयाल अग्रवाल

पाषाण-युग आज भी है ५२
—महेश श्रीवास्तव

स्थायी स्तम्भ

वैज्ञानिक उपलब्धियां २५

विचित्र संसार ४४

विज्ञान क्लब ५७

तुम्हारी कलम से ६०

इनाम लो ६२

आपके प्रश्न ६३

अपनी बात

विगत ३० जुलाई को दिल्ली में आयोजित 'विज्ञान और अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध' विषय पर आयोजित प्रथम गोष्ठी की विश्व वैज्ञानिक कर्मचारी संघ के अध्यक्ष डा. एडवर्ड ने विशेष सराहना की।

प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक, डा. होमी भाभा ने उक्त गोष्ठी के अध्यक्ष पद से जोर देकर यह कहा कि अविकसित, अल्पविकसित तथा पूर्ण विकसित देशों के मध्य पारस्परिक अन्तर को अधिक महत्त्व न देकर हमें अपने ही देश के साधनों को दृढ़तर बनाते हुए, उन्हीं पर आधारित रहते हुए, विकसित राष्ट्रों की सहायता का अत्यल्प आसरा तकना चाहिए।

उक्त गोष्ठी में अनेक अफ्रेशियाई देशों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। अध्यक्ष डा. भाभा के सुझावों से वे अत्यन्त प्रभावित हुए—विशेषत: यह कि अल्पविकसित देशों को परस्पर वैज्ञानिक सहयोग के लिए और भी निकट आना चाहिए, स्वनिर्मित वस्तुओं के ही उपयोग पर बल देना चाहिए, तभी आपस का यह अन्तर यथाशीघ्र मिटाया जा सकेगा।

आरम्भ की इस सफल गोष्ठी के अनुकरण में यह आशा रखी जा रही है कि समय-समय पर ऐसी स्वस्थ गोष्ठियों के आयोजन विकास-कार्य को समुचित बल प्रदान करेंगे।

विज्ञान-लोक इस नये आयोजन का हृदय से स्वागत करता है।

वर्ष ५

अंक ७

मूल्य
एक प्रति : ७५ नये पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह-तरह के केकड़े

डा. मनमोहनसिंह

संधिपाद अर्थात् जोड़-तोड़ वाले हाथ-पांव के इन जन्तुओं का वर्ग समस्त प्राणी-जगत में अधिकतम विशाल है। इनमें लोब्स्टर, क्रेफिश, बार्नेकल, मकड़ी, बिच्छू, कनखजूरे, मक्खी, मच्छर, तिलचट्टे, बर्र, चींटी आदि हजारों जातियां हैं जिनके प्राणियों की गिनती ही नहीं ! प्रस्तुत लेख में केवल तरह-तरह के केकड़ों की चर्चा है।

खोलयुक्त ये क्रस्टेश्यन

इन जन्तुओं के प्रधान वर्ग का नाम है क्रस्टेश्यन (*Crustaceans*)। लैटिन भाषी इस शब्द का अर्थ है 'खोल' अर्थात् आवरण। खोलयुक्त शरीर में भी इनके हाथ-पाँव, मुँह और धड़ ऐसे होते हैं जैसे जोड़कर रखे हों। इसीलिए इन्हें आरथ्रोपॉड्ज (*arthropods*) अर्थात् संधिपाद कहा जाता है। इनका ऊपरी आवरण काइटिन (*chitin*) नामक एक लचीले पदार्थ का बना होता है। जब किन्हीं-किन्हीं संधिपादों में केल्सियम कार्बोनेट से संयुक्त होकर यह खोल कठोर बन जाता है, तब सीपी का रूप धारण कर लेता है। जन्तु का शरीर बढ़ने के साथ-साथ जब सीमा पार कर जाता है, तब यह खोल चटखने लगता है। चटखने की दरार पीठ के मध्य में पड़ जाती है और तब यह जन्तु बाकी का काम स्वयं कर लेता है और अपने उस पुराने वस्त्र को त्याग देता है। उस खोल से बाहर निकलने के समय से पुनः नया खोल चढ़ जाने तक यह जन्तु बड़ी नाजुक अवस्था में रहता है। उस अवस्था में अपने शत्रुओं से बचने के लिए यह एक एकाकी कोने में सुरक्षित, दुबका पड़ा रहता है।

संधिपादों की बाह्य शरीर-रचना

इनके प्रायः दो जोड़े स्पर्शतन्तुओं के होते हैं जो इनके महत्त्वपूर्ण अंगों में सम्मिलित हैं। डेफ्निया (*Daphnia*) जैसे छोटे वर्ग के जन्तुओं में ये तन्तु तैरने में सहायक होते हैं। मुँह में एक जोड़ा कठोर दन्त चबाने के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

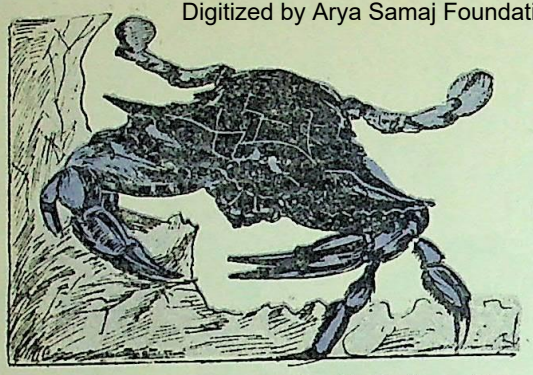

इस नील-कर्कट के पांव चमकीले नीले हैं और अन्तिम दो पांव नाव के चप्पू के समान हैं जो तैरने में सहायता करते हैं

तथा दो जोड़े दांत भोजन का परीक्षण करके उसे मुँह में उतार लेने के लिए होते हैं। कई जातियों में आँखें परिचालक अंगों पर रहती हैं। ये आँखें अनेक उपनेत्रोंयुक्त (compound) होती हैं और क्रेपिश में तो ऐसी एक-एक आँख २५०० उपनेत्रों की बनी होती है।

इनके हाथ और पाँव, जो सदैव जोड़ों में ही होते हैं, विभिन्न जातियों में विभिन्न संख्या में होते हैं। ऊपरी धड़ से जुड़े हुए अंग चलने के लिए पाँवों का काम देते हैं। उनमें भी पहला जोड़ा तो मानो इनके लिए संड़ासी जैसा पकड़ने का यंत्र होता है, जिसकी पकड़ में आये बाद छूटना असम्भव होता है। पेट से जुड़े अंग सामान्यत: तो तैरने के काम आते हैं किन्तु मादाओं में ये ही अंग अण्ड-संग्राहक बन जाते हैं। इनके कई अंग, यहाँ तक कि आँखें भी टूट गिरने पर नवोत्पादन की क्षमता रखते हैं। क्रेफिश के पाँवों में नीचे की ओर एक सन्धि-स्थल ऐसा होता है जहाँ से यदि उसके एक पाँव को तोड़ दिया जाये तो वहाँ दूसरा नया उत्पन्न हो जायेगा।

कुछ बड़े और विकसित संधिपादों में स्पष्ट शरीर-प्रणालियाँ—पाचन, श्वसन, रक्तसंचरण, निष्कासन, प्रजनन तथा ज्ञानतंतु आदि भी होती हैं। जिन छोटी जातियों में पृथक् श्वसन प्रणाली नहीं होती, वे त्वचा द्वारा श्वसनक्रिया सम्पन्न करते हैं। इन जन्तुओं का बहुत बड़ा वर्ग जल-जीवन ही व्यतीत करता है। इनमें जो सागरों-महासागरों में रहते हैं वे एक-एक मील की गहराई तक रह लेते हैं। कुछ जातियाँ ऐसी भी हैं जो भूमिचारी जीवन अपनाती हैं और अपवादस्वरूप कुछेक केकड़े तो तरुनिवासी भी होते हैं।

सबों से भिन्न, ये केकड़े

केकड़े को सबसे अलग पहिचाना जा सकता है। वह पहिचान है इसका मुड़ा हुआ नन्हा पेट। इसके प्राय: पाँच जोड़े पाँव होते हैं। उनमें पहला सबसे आगे का जोड़ा एक सुदृढ़ संड़ासी के रूप में शिकार पकड़ने का भी काम देता है। पाँवों का अन्तिम जोड़ा अधिकतर पानी में तैरते समय काम आता है। केकड़े की चाल बड़ी बेतुकी और बेढब होती है। यह अधिकतर मृत जीवों और वनस्पति पर निर्भर रहता है।

ब्लू क्रैब

ब्लू क्रैब (blue crab) अर्थात् नील-कर्कट और ग्रीन क्रैब (green crab) अर्थात् हरित कर्कट—ये दोनों जातियां खाद्य-केकड़ों में सम्मिलित हैं। इनका मुख्य प्राप्ति-क्षेत्र न्यूजीलैण्ड से ब्राजील तक का अतलांतिक-तट है। औद्योगिक पैमाने पर इनका शिकार किया जाता है। इनमें जो नर्म खोल के होते हैं, वे नया खोल प्राप्त होने तक की नर्म अवस्था में होते हैं। यह केकड़ा तैरने में बहुत कुशल है।

यह केकड़ा आमिष-आहारियों का प्रिय खाद्य है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनमें हरित कर्कट सीपी और घोंघे केकड़ों बालों की बहुत हानि करता है। खाने योग्य केकड़ों में जो अन्य जातियाँ सम्मिलित हैं, उनमें उल्लेखनीय हैं—केन्सर पेगुरस (cancer pagurus), केन्सर मेजिस्टर, (cancer magister), स्काइला (scylla) तथा नेप्चूनस (neptunus) आदि ये समस्त जातियाँ प्रशांतसागर के तटीय क्षेत्रों में अधिकता से पायी जाती हैं।

हरमिट क्रैब

हरमिट क्रैब (hermit crab) केवल नाम ही से हरमिट अर्थात् सन्त नहीं, प्रकृति से भी सन्त स्वभावी है। इसे यह सम्मान दिलानेवाला स्वभाव इसका अपना ही है जो अन्य जन्तुओं में नहीं पाया जाता। वह यह है कि जिस खाली शंख या बड़ी सीपी को यह अपना घर बनाता है, उसमें एक सहनिवासी और बसा लेता है। दोनों खाने पीने रहने-सहने में सहजीवन व्यतीत करते हैं। सी-एनेमोन नामक वनस्पति जैसा दिखनेवाला समुद्री जन्तु इसका अभिन्न मित्र होता है। उसे स्वयं घूमने-फिरने में बड़ी असुविधा प्रतीत होती है। अतः वह तो यह सुविधा देखता है कि केकड़े के घर के छप्पर पर बस कर वह चाहे जहाँ घूम सकता है और उस घूमने में ही अपने डंकों द्वारा विविध जन्तुओं का शिकार कर-करके अपने मित्र केकड़े को देता रहता है। अन्दर ही अन्दर बन्द केकड़े को भोजन प्राप्ति की सुविधा मानो पारिश्रमिक के रूप में मिल जाती है। इसी मित्रता के नाते केकड़ा जब दूसरे शंख में अपना निवास बदलता है, तब अपने मित्र को भी वहां ले जाना नहीं भूलता। यह मित्र सी-एनेमोन वैसे तो किसी के भी द्वारा छेड़े जाने पर अपने डंक से बुरी तरह खबर लेता है किन्तु मित्र केकड़े द्वारा उठाये जाने और दूसरे घर पर चिपकाये जाने का काम शान्ति से सह लेता है। ऐसी मित्रता विभिन्न वर्ग के जन्तुओं में निश्चय ही अपवादस्वरूप है।

वृहद मकड़-केकड़ा

जैसाकि इसके नाम से स्पष्ट है, यह मकड़ी (spider) जैसा है और अपने वर्ग-भर में सबसे विशाल शरीरधारी है। यह जापान में ही प्राप्य है। अपने लम्बे तन्तुओं के एक सिरे से दूसरे सिरे तक यह १० फुट तक की लम्बाई प्राप्त करता है। आकार की विशालता केवल इसके हाथ-पाँवों तक ही है। शरीर तो अपेक्षाकृत छोटा ही नजर आता है। यह समुद्री शैवाल और स्पंजों से अपने को घेरे रहता है और उसमें छिपे ही छिपे अपने लम्बे हाथों द्वारा शिकार फाँसता रहता है।

बटमार केकड़ा

बटमार केकड़ा (robber crab) सचमुच ही चोरी-छिपे लूट-मार करके भाग जाता है। चोरी यह अधिकतर नारियल की ही करता है। यह हिन्द महासागरीय तथा प्रशांत महासागरीय द्वीपों पर पाया जाता है। एक फुट से भी अधिक लम्बे-चौड़े डील-डौल का यह केकड़ा नारियल के वृक्ष के नीचे अपना बसेरा रखता है। अपने बिल को यह नारियल की जटाओं से आच्छादित करके सुरक्षित रखता है। इसके भेदक पंजे (pincers) बड़े कठोर, नुकीले और तीक्ष्ण होते हैं। उनसे यह

दक्षिण अमरीकी, यह प्रेत-कर्कट, अधिकतर रातों को विचरता है और दिनभर अपने बिल में दुबका पड़ा रहता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नारियल की जटा को सरलता से छील उतारता है और अन्दर के सख्त खोल को भी तोड़कर उसकी गरी खा लेता है।

घोड़ानाल कर्कटराज

इस केकड़े के दोनों नाम यथार्थ हैं; अर्थात् यह केकड़ों में सम्राट (king crab) है और घोड़े की नाल (horse shoe) जैसा भी है। यह केकड़ा अब लुप्त हो चुका है। इसका भी शरीर एक फुट से अधिक ही चौड़ा होता था। ऊपर से देखने पर इसका आकार घोड़े की नाल जैसा दिखने के कारण ही इसे यह नाम दिया गया था। यह छिछले पानी तथा दलदल में रहना अधिक पसन्द करता था। दलदल में छिपे हुए कीट तथा घोंघे इसके प्रिय भोजन हैं।

प्रेत कर्कट

यह केकड़ा रात्रि में विचरण करता है इसलिए इसका नाम प्रेत कर्कट (ghost crab) रखा गया है। यह पानी से दूर, नर्म भूमि में Y तथा U आकार का अपना बिल बनाकर रहता है। तीव्रपाद (sharp footed) होने के कारण इसे केकड़ों में खरगोश (rabbit of crustaceans) की भी उपाधि दी गयी है। शत्रु द्वारा पीछा किये जाने पर यह दलदलीय भूमि पर खरगोश की भाँति दौड़ लगाकर निकलता है। इसे सम-शीतोष्ण जलवायु अनुकूल रहता है। ताप की अधिकता तथा न्यूनता की स्थिति में यह अपने बिल में लम्बी निद्रा में लीन हो जाता है।

सारंग कर्कट

यह सारंग कर्कट (fiddler crab) का शरीर काफी छोटा है, किन्तु इसकी चाल-ढाल मनोरंजक है। इसके अगले पंजों में किसी भी एक ओर का पंजा बड़ा, चौड़ा और सारंगी जैसा दिखता है तथा दूसरी ओर का पंजा मानो उस सारंगी को बजाने वाले गज जैसा दिखता है। यही इसके नाम का रहस्य है। यह जोड़ेनुमा वाद्य केवल नर के ही होता है और मादा के केवल गज होते हैं, सारंगी नहीं। नर अपने सारंगी और गज का उपयोग मादा के साथ की प्रणयलीला के अवसर पर खुल कर करता है और अन्य प्रसंगों पर इनका उपयोग अस्त्र के रूप में करता है। जब कभी इसकी सारंगी और गज शत्रु द्वारा दबोच लिए जाते हैं, तब ये अपने सारे हाथ-पाँव भी उसी को मानो पहना आता है और स्वयं बगैर हाथ-पांव के शीघ्र ही नये अंग पुनः उपजा लेता है।

ऐसी निराली दुनिया है यह केकड़ों की, जिसकी विविधता अनन्त है, तो विचित्रताएं भी अनन्त हैं।

स्पर्श में मखमली- यह सारंग-कर्कट किसकी तलाश में सरपट भागा जा रहा है?

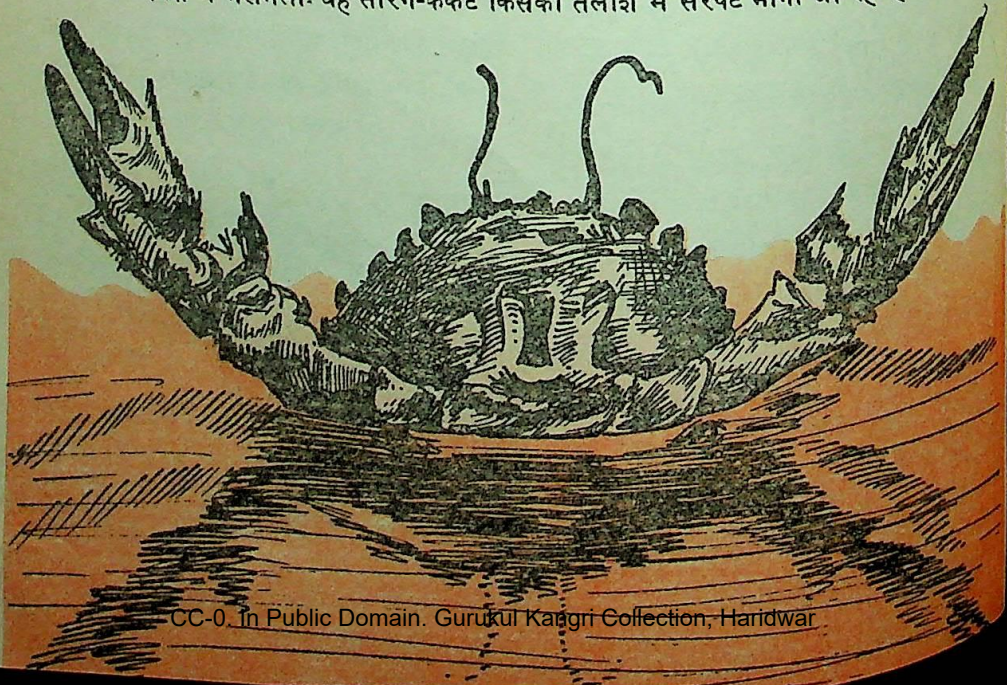

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

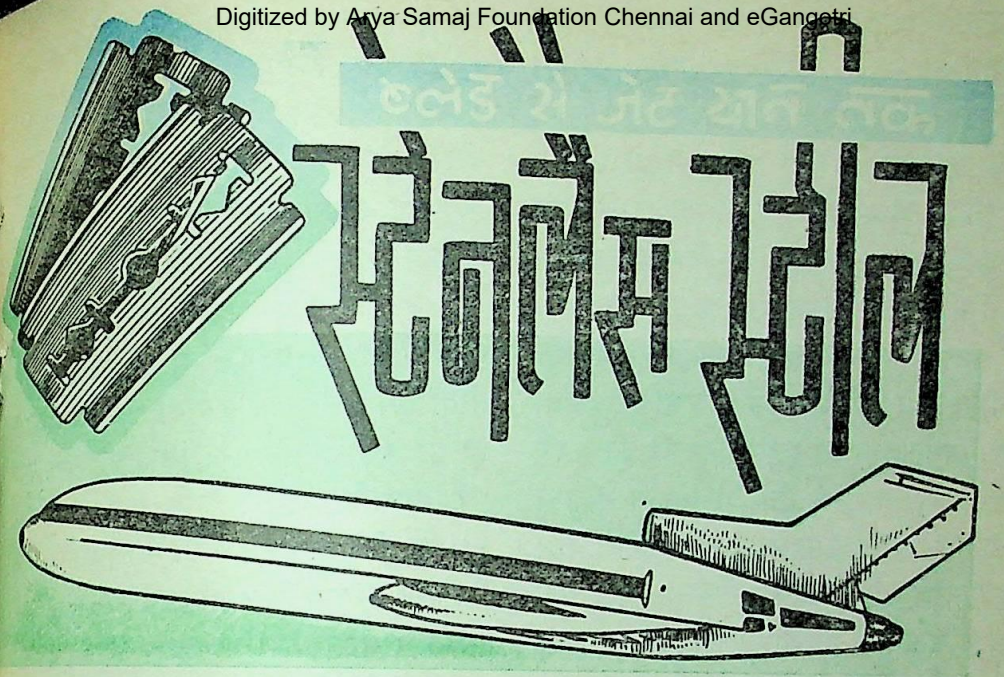

रमेशचन्द्र कपूर

यह धातु कूड़े से उठकर आयी है। पहले दिन जब यह अकस्मात्, स्वतः ही बन गयी थी तब इसे कूड़े पर फेंक दिया गया था। दिन तो कूड़े के भी फिरते हैं, अतः १५ दिन बाद ही इसके भी भाग्य ने पलटा खाया। तब से तो यह जिस तीव्र गति से हमारे इर्द-गिर्द और ऊपर-नीचे छायी है, उसकी गाथा बड़ी रोचक है। आज हजामत के ब्लेड से लेकर जेटयान तक पहुँचने वाली इस धातु के आगे चांदी भी चक्कर में है।

मिले-जुले प्रयोग : श्रेय का बँटवारा

अनेक आविष्कार ऐसे भी होते रहे हैं जिनका श्रेय किसी एक व्यक्ति को नहीं दिया जा सका। वही बात इसके बारे में भी सत्य सिद्ध हुई है। इसके साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ कि साधारण स्टील के जंग खा जाने से उकताये हुए लोगों ने किसी जंगरहित स्टील की मांग की हो और रातोंरात किसी कीमीयागर ने स्टेनलैस स्टील प्रस्तुत करके लोगों को चकित कर दिया हो। एक सौ से भी अधिक वर्ष हो चुके थे और अनेक धातु विशेषज्ञ क्रोमियम धातु और उससे मिश्रित विभिन्न धातुओं पर प्रयोग करते आये थे, किन्तु स्टेनलैस स्टील को तो प्रथम महायुद्ध के दिनों में ही आना था सो तभी आया—आज से लगभग ५० वर्ष पूर्व। उन दिनों इसे प्रयोग-शाला में प्रथम बार प्राप्त करने के श्रेय के तीन साझेदार थे—अमरीका के क्रिश्चियन डेन्सीजेन (Christian Dantsizen) तथा फ्रैडरिक एम. बेकेट (Fredrick M. Becket) और इंगलैण्ड के हैरी ब्रेयरले। (Harry Brearley) इनमें हैरी ब्रेयरले द्वारा किये गये प्रयोग का जो वर्णन प्राप्य है वह इस प्रकार है :

प्रथम महायुद्ध का बिगुल जब तक बजा नहीं था; युद्ध के बादल अवश्य छाये हुए थे। सन् १९१२ के दिन थे। ब्रिटिश धातु-विशेषज्ञ हैरी ब्रेयरले अपने राष्ट्र के लिए ऐसी धातु बनाने के प्रयोग में संलग्न था जिसकी बनी राइफलों के बैरल में अर्थात् नली में जंग न लगे और यों वे अधिक उप-योगी हो सकें। प्रयोगों के बीच उसने स्टील

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के एक छोटे ढेर को क्रोमियम की कुछ अधिक मात्रा से मिश्रित करके देखा। परिणामतः वह स्टील सख्त तो हो गया किन्तु अन्य परीक्षणों में वह सफल न हो सका। ब्रेयरले ने झुंझला कर उसे कूड़े के ढेर पर फिकवा दिया। उस ढेर पर दिनोंदिन मिट्टी-पानी भी गिरता गया था।

१५ दिन पश्चात् उसे यह देखकर अचरज हुआ कि क्रोमियम के प्रभाव से चांदी जैसा चमकता हुआ वह स्टील का ढेर बगैर जंग खाये, बिलकुल वैसी ही स्थिति में बना हुआ था जैसा कि पहले दिन फेंका गया था। पुनः परीक्षण के लिए ब्रेयरले ने उसमें से एक टुकड़ा उठाकर उसकी एक छुरी बना दी और उसे बगीचे की मिट्टी में गड़वा दिया। महीने भर बाद उसे निकाला तो उसे भी वैसी ही चमकीली पाकर ब्रेयरले की प्रसन्नता का पारावार न रहा। उसे एक गुर तो हाथ लग ही गया ऐसे स्टील बनाने का जो कभी जंग न खाये। तत्पश्चात् अन्य मिश्रणों को घटा बढ़ाकर उसने उस स्टेनलैस स्टील को इस कोटि तक पहुंचा दिया कि वह मजबूती में भी सामान्य स्टील से कई गुना अधिक रहे—समस्त धातुओं में अप्रतिम रहे।

स्टेनलैस स्टील, क्या और क्यों ?

इसका उत्तर पहले इस प्रश्न को हल करने से मिल जायगा कि आखिर, लोहे से स्टील बनाना आवश्यक ही क्यों है ? हम जानते हैं कि स्टील को छोड़ कर लोहे के दो अन्य सामान्य रूप विविध उपयोगों में प्रचलित हैं। वे हैं—कास्ट आइरन (cast iron) अर्थात् ढलाई किया हुआ लोहा और रॉट आइरन (wrought iron) अर्थात् गढाई किया हुआ लोहा। लोहे की जिन वस्तुओं को अधिक मजबूत बनाये बगैर भी काम चल सकता है, वे ढलाई किये हुए लोहे की बनायी जाती हैं। उदाहरणार्थ, बाग-बगीचों और स्कूलों में ऐसी चीजें प्रायः दिखाई दे जायेंगी जिनके एक न एक पाये टूटते ही रहते हैं। वे पाये ढलाई किये हुए लोहे के बनते हैं। दूसरी ओर लोहे की कीलें पीटे हुए मुलायम लोहे की बनायी जाती हैं ताकि अधिक जोर पड़ने पर वे टूटे नहीं, केवल मुड़ कर रह जायें।

उपरोक्त दोनों श्रेणी के लोहे जहाँ उपयुक्त नहीं होते, वहां स्टील बनाना आवश्यक होता है। स्टील का बनाना छोटे पैमाने पर हो या बड़े पैमाने पर, सिद्धान्तः इस बात पर आधारित रहता है कि उसमें स्टील की विविध श्रेणियां प्राप्त करने के लिए कार्बन की विभिन्न मात्राएँ मिलायी जायें। इसकी सरलतम और प्राचीन विधि यह है—ढले हुए अति शुद्ध लोहे की सिल्लियों (ingots) को कम से कम एक सप्ताह तक कोयले भरी भट्ठी में इस प्रकार तपने दिया जाता है कि उसका ताप लोहे के गलनांक से कुछ नीचा ही रहे। इस क्रिया द्वारा उत्पन्न लोहे में कोयले से निकली हुई कार्बन की प्रचुर मात्रा मिश्रित हो जाती है। वह कार्बन मिश्रित लोहा ही स्टील है। कार्बन की उस मात्रा को घटा बढ़ाकर घटिया-बढ़िया किस्म का स्टील तैयार कर लिया जाता है।

इस प्रकार प्राप्त सामान्य स्टील से कुछ कदम आगे बढ़ कर स्टेनलैस स्टील है जो अन्य भी विविध धातुओं के मिश्रण से बनी मिश्रित धातु है। इसमें कार्बन अधिक से अधिक ०·७% तथा क्रोमियम ११% रहना अत्यावश्यक है। यह मात्रा वायुमण्डल के आक्सीजन से संयुक्त होकर एक ऐसा आवरण बना लेती है जो सतह के रक्षावरण का काम देता है। क्रोमियम के अतिरिक्त स्टेनलैस स्टील में अन्य तत्त्व तथा धातुएं भी मिलायी जाती हैं। उनमें निकिल का भाग सर्वाधिक रहता है। जंग को रोके रखने में निकिल का ही भाग मुख्य होता है। वेनेडियम, मैंगेनीज,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

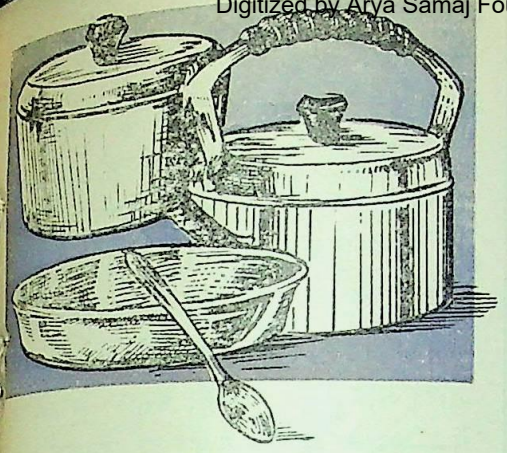

रसोईघरों पर अब स्टेनलैस स्टील का साम्राज्य छाता जा रहा है, यह बात विभिन्न बर्तनों की इस साज-सज्जा से स्पष्ट है

मोलिब्डेनम, टाइटेनियम और कोलम्बियम अन्य अनेक धातुओं में से हैं जो स्टेनलैस स्टील के मिश्रण में प्रयुक्त होती हैं।

रसायनिक मिश्रणों की भिन्नता तथा ताप के प्रति विभिन्न प्रतिक्रियाओं के आधार पर स्टेनलैस स्टील को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं।

वायुयान की बॉडी तथा कुछेक पुर्जे बनाने के लिए विशेष प्रकार का स्टेनलैस स्टील—१८% क्रोमियम और २% निकिल के मिश्रण को काम में लिया जाता है। दूसरे प्रकार के स्टेनलैस स्टील में क्रोमियम की मात्रा तो वही १८% रहती है किन्तु निकिल ८% तक बढ़ा दिया जाता है। ऐसा स्टील तन्यता में काफी बढ़ा हुआ तथा तीव्र से तीव्र अम्ल द्वारा भी अप्रभावित रहता है। ऐसे स्टील की बनी टंकियों में सान्द्र शोरे का तेजाब भर कर रखा तथा ले जाया जा सकता है। रंग भरने के बड़े-बड़े टैंक तथा दूध की बड़ी-बड़ी टंकियां ऐसे ही स्टील की बनायी जाती हैं। आधुनिक रेस्तरां का फर्नीचर, विभिन्न फिटिंग्ज तथा वायुयानों के ढांचे भी इसी के बनाये जाते हैं। इससे भी बढ़कर २५% क्रोमियम और ६% से २५% निकिल तक के मिश्रित स्टेनलैस स्टील से बड़ी भट्ठियों की दीवारें बनायी जाती हैं जो कि अत्यधिक मजबूत और अति उच्च ताप सहने योग्य होती हैं। सिलिकन तथा क्रोमियमयुक्त स्टेनलैस स्टील भी विशिष्ट स्तर के बनाये जाते हैं। इस प्रकार के स्टील की तन्यता प्रति वर्ग इंच १००,००० तक की होती है, जबकि सामान्य स्टील की इससे आधी भी नहीं होती।

हजामत के ब्लेड से जेटयान तक

स्टेनलैस की उपयोगिता दिनोंदिन और पग-पग पर बढ़ती जा रही है। आजकल के सामान्य ब्लेड दो हजामत के बाद फेंक देने पड़ते हैं। शीघ्र ही स्टेनलैस स्टील उपलब्ध हो जाने पर प्रति ब्लेड २०-२२ शेव आराम से किए जा सकेंगे। स्टेनलैस स्टील में मजबूती, अल्पभार और उच्च ताप की सहनशक्ति जैसे गुणों का दुर्लभ संयोग होने के कारण आज इसके बनाये जेटयान ध्वन्यातीत गति से २००० मील प्रति घण्टे के वेग से इसीलिए बिना कठिनाई उड़ लेते हैं कि उनकी तीव्र गति के फलस्वरूप उत्पन्न उच्च ताप को सहन करने की शक्ति अन्य किसी धातु में है ही नहीं। लगभग ७००°C तक पहुँच जाने वाले उस घर्षण-जन्य ताप पर एल्यूमीनियम तो पिघल कर बह उठेगा। उदाहरणस्वरूप प्रसिद्ध अमरीकी एटलस राकेट में उच्च श्रेणी का स्टेनलैस स्टील प्रयुक्त किया गया था। मोटर कारों की बॉडी, पिस्टन रिंग, एग्जास्टर वाल्व आदि स्टेनलैस स्टील के ही बनाए जाते हैं ताकि अधिक घर्षण सहनेवाले ये पुर्जे टिकाऊ रह सकें।

जहाँ-जहाँ धातुओं के लिए रासायनिक घोलों द्वारा नष्ट हो जाने की आशंका रहती है, वहाँ स्टेनलैस स्टील तेजी से उनका स्थान ले रहा है। शल्य चिकित्सा के औजारों, खाद्योत्पादक फैक्ट्रियों, रसायनोत्पादक कारखानों और तेल परिशोधक संस्थानों आदि में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

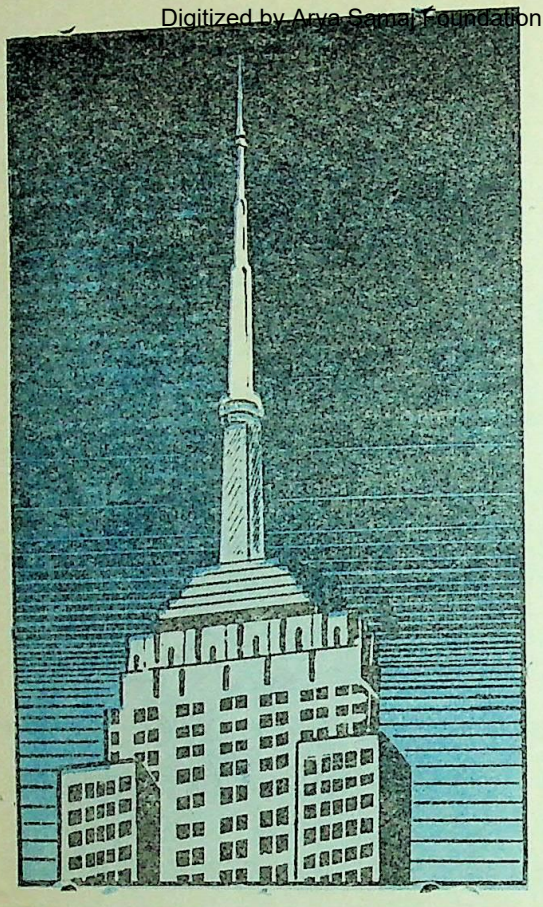

संसारप्रसिद्ध सर्वोच्च इमारत, एम्पायर स्टेट बिल्डिंग के शिखर पर नया बिठाया हुआ २२२ फुट ऊँचा यह एरियल स्टेनलैस स्टील का बनाया गया है

स्टेनलैस स्टील तब समस्त धातुओं का स्थान ले रहा है जो तेजाब तथा विविध रसायनों द्वारा छीज-छीजकर समाप्त हो जातीं हैं।

न्यूयार्क की संसारप्रसिद्ध, गगनचुम्बी इमारत—एम्पायर स्टेट बिल्डिंग के शिखर पर २२२ फुट ऊंचा टेलीविजन एरियल स्टेनलैस स्टील का बना हुआ है। आज के किसी भी आधुनिक रसोईघर को देखिये, छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी वस्तु—दूसरे शब्दों में—समूचे रसोईघर पर ही स्टेनलैस स्टील का साम्राज्य फैला हुआ मिलेगा। ब्रिटेन तथा अन्य पश्चिमी देशों में स्टेनलैस स्टील की शीटें फुट और गजों में नहीं, एकड़ और मीलों की तादाद में प्रयुक्त हो रही हैं। नये-नये भवन बाहर की ओर से स्टेनलैस स्टील से आवरित किये जा रहे हैं। उनकी दीवारों पर स्टेनलैस स्टील की शीटें मढ़ी जा रही हैं।

सन् १९१२ के उस प्रथम दिन तो हैरी ब्रेयरले को यह अनुमान भी न होगा कि कूड़े से उठकर यह स्टेनलैस स्टील आज इस प्रकार छा जायगा कि जन-जीवन का एक अभिन्न अंग ही बन जायगा !

सिरहाना बदलकर आप सो सकेंगे ?

…शायद नहीं। कुछेक लोगों को अपवादस्वरूप छोड़ दिया जाए तो अधिकतर लोग इसी वहम का शिकार रहते हैं कि उत्तर की ओर सिरहाना न करना चाहिए। कुछ लोग जो उस वहम के साथ अपना अधूरा ज्ञान जोड़ते हैं, वे कहते हैं कि उत्तर से पृथ्वी का चुम्बकत्व मस्तिष्क को प्रभावित करता है। इस वहम में जो और भी बुरी तरह से फँसे हैं उन्हें तो होटलों के अनजाने कमरों में दिक्सूचक यन्त्र द्वारा उत्तर दिशा ज्ञात करने की झंझट उठाते देखा गया है। इस विषय में अनेक मनोरंजक तथ्य पश्चिम जर्मनी के डा. बेकर ने संकलित किये हैं। मानव तो मानव, जन्तुओं पर भी प्रयोग करने के लिए उन्होंने जब कुछ दीमकों को एक कृत्रिम चुम्बकीय कक्ष में उलटा कर रखा तो वे सोने के लिए सबके सब उलटकर स्वाभाविक दशा में ही लेट कर सो सकी थीं ! वस्तुतः इस भावना से पीड़ित लोग प्रभावित होते भी हैं।

पेट नहीं भरता ? हरा दूध पीजिए

ठूँस-ठूँसकर पेट भरने से शक्ति नहीं बढ़ती। आवश्यकता है संतुलित और पौष्टिक आहार। अन्न का ही अभाव हो ऐसा नहीं, प्रोटीन-उत्पादक दूध-मांस का भी वैसा ही अभाव समझना चाहिए। प्रोटीन के अभाव में दुर्बलता और रोग आ घेरते हैं। इस अभावपूर्ति के लिए पश्चिम जर्मनी के चिकित्सक डा. विल्हेल्म हेप्के ने नया नुस्खा प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि पौधों से हरा दूध तैयार किया जा सकता है जो स्वाद और पौष्टिकता में उत्तम सिद्ध होगा। मटर, फली तथा सोयाबीन आदि को पेलकर उस रस में हरे पत्तों का भी सत्व मिलाना चाहिए। पत्तों का पर्णहरिम उस रस को हरा रंग दे देगा और अपना गुण भी। उस सफेद दूध को हरी झण्डी दिखाने वाला यह हरा दूध प्रयोग कर देखने योग्य तो है ही !

विज्ञान-जगत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

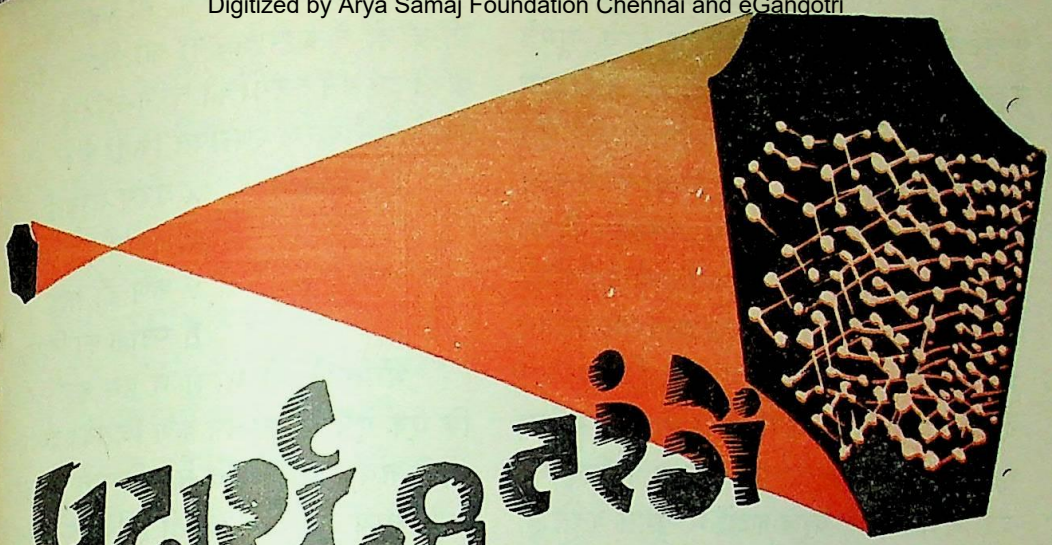

पदार्थ की तरंगें

अशोककुमार चौबे

प्रकाश की किरणें क्या हैं ? क्या ये जल-तरंगों की भाँति ही हैं अथवा कणों के रूप में भी चलती हैं आदि, आदि जानने का प्रयास विज्ञान के आरम्भ से ही मानव करता आया है। प्रकाश-गमन के विषय में समय-समय पर विभिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत किये जाते रहे हैं तथा उन्हें प्रयोगों द्वारा सिद्ध भी किया जाता रहा है। बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि प्रकाश का गमन कणों के रूप में भी होता है तथा तरंगों के रूप में भी। विकीरित ऊर्जा की दोहरी प्रकृति है—कण तथा तरंगें। फ्रेन्च वैज्ञानिक लुई-डी-ब्रोली ने १९२४ में यह कहा था कि ऊर्जा की दोहरी अवस्था की भाँति पदार्थ की भी दो अवस्थाएँ हैं। सामान्यतः पदार्थ में अणु, परमाणु, प्रोटान, फोटान, न्यूट्रान तथा एलेक्ट्रान आदि कण होते हैं और विशेष परिस्थितियों में वे कण तरंगों जैसी प्रकृति भी दिखाते हैं।

इस नयी विचारधारा ने उन वैज्ञानिकों को नया कार्य करने की दिशा में प्रेरित किया जो पदार्थ तथा ऊर्जा में सामंजस्य स्थापित करने के प्रयास कर रहे थे। विविध प्रयोगों के अनन्तर वैज्ञानिकों ने यह पाया कि जिस प्रकार प्रकाश किरणें विवर्त्तन (diffraction) का गुण दिखाती हैं, उसी प्रकार ये कण भी यही गुण प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार यह सिद्ध किया गया कि पदार्थ की भी दो अवस्थाएँ हैं।

इस सिद्धान्त ने न केवल परमाणु-विज्ञान के कठिनतम सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला, बल्कि एक नया सिद्धान्त—अनिश्चितता का सिद्धान्त (Principle of Uncertainty) भी स्थापित किया। इस नये सिद्धान्त ने भौतिकी के अनेक पुरोगामी सिद्धान्तों को हिला कर रख दिया।

ऊपर कथित फ्रेन्च वैज्ञानिक डी-ब्रोली के इस नये सिद्धान्त के प्रकाश में उन प्रयोगों की चर्चा निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत है, जिनसे कणों के विवर्त्तन-गुण की पुष्टि होती है।

नोबेल पुरस्कार विजेता, प्रसिद्ध वैज्ञानिक नील्स ब्होर ने १९१३ में क्वान्टम सिद्धान्तों का प्रयोग करते हुए परमाणुओं की संरचना तथा आण्विक वर्णक्रम की उत्पत्ति की उत्तम विवेचना प्रस्तुत की थी। उनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्धान्त के अनुसार एलेक्ट्रान किन्हीं विशेष कक्षों में बगैर ऊर्जा विकीरित किये, घूमते रहते हैं। उन एलेक्ट्रान-कक्षों के अर्द्धव्यास पूर्ण संस्था के वर्गों के समानुपाती होते हैं। इनकी व्याख्या करते हुए डी-ब्रोली ने कहा कि चूँकि प्रकाश-किरणों का परस्पर विघ्न (interference) तथा एक खिंची हुई डोरी में उत्पन्न किये गये विभिन्न प्रकार के कम्पन भी पूर्ण संख्या पर निर्भर रहते हैं, तथा इन दोनों की प्रकृति तरंगों जैसी ही है, इसलिए एलेक्ट्रान भी, जो कि पूर्ण संस्था के सिद्धान्त पर निर्भर रहने वाले कक्षों में घूमते रहते हैं, केवल पदार्थ के कणमात्र न होने चाहिए, बल्कि उनमें भी तरंगों जैसी प्रकृति होनी चाहिए। डी-ब्रोली को उनके इस नवीन मत पर १९२९ में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

उन्होंने अपने शोधपत्र में लिखा कि केवल विकीरित ऊर्जा के लिए ही तरंगों तथा कणों में अधिक सम्बन्ध नहीं है, बल्कि पदार्थ के लिए भी ऐसा ही है। प्रत्येक गतिमान कण के साथ-साथ एक तरंग होती है तथा जिस प्रकार फोटान-कण की लम्बाई एक तरंग द्वारा दी जाती है, उसी प्रकार पदार्थ-कणों की भी लम्बाई एक समीकरण द्वारा दी जा सकती है। जिस प्रकार एकवर्णीय प्रकाश-किरणों के पथ का अध्ययन करने के लिए हम तरंग-सिद्धान्तों का प्रयोग करते हैं, तथा उन्हीं किरणों की ऊर्जा ज्ञात करने के लिए ऊर्जा के क्वान्टम अर्थात् फोटान-कण का आश्रय लेते हैं, उसी प्रकार एलेक्ट्रान का आवेश द्रव्यमान तथा उसकी ऊर्जा आदि मालूम करने के लिए हम उसे कण मानते हैं; लेकिन यदि किसी वस्तु से परावर्तित हो जाने के बाद एलेक्ट्रान के समूह का पथ ज्ञात करना हो तो हमें उन्हें भी तरंग मानना होगा।

उक्त प्रकार की तरंगों को डी-ब्रोली के नाम पर 'डी-ब्रोली तरंगें' भी कहा जाता है। डी-ब्रोली ने आपेक्षिकता का सिद्धान्त प्रयुक्त करते हुए इन तरंगों की तरंग-लम्बाई के लिए निम्न समीकरण स्थापित किया है:

$$\lambda = h/mv$$

λ तरंग लम्बाई
m पदार्थ का द्रव्यमान
v कण की गति
h प्लांक का स्थिरांक

भौतिकी की भाषा में हम कह सकते हैं कि एक ऐसे पदार्थ का कण जिसका द्रव्यमान m है तथा जो v गति से गतिमान हो, उसके साथ-साथ एक तरंग होती है जिसकी लम्बाई प्लांक स्थिरांक (h) तथा पदार्थकण के संवेग (mv) के अनुपात से दी जाती है। तरंग लम्बाई λ तथा संवेग mv समीकरण में दिखाये गये हैं; किन्तु तरंग लम्बाई तरंगों के साथ होती है तथा संवेग पदार्थकणों के साथ होता है। अतः दोनों की अवस्थाओं में सामंजस्य होना चाहिए।

गणना द्वारा कैथोड-किरणों के एलेक्ट्रानों की तरंग लम्बाई का मान निकाला गया तो पाया गया कि इनकी लम्बाई एक्स किरणों की लम्बाई के समान ही है। इससे यह भी निष्कर्ष निकला कि एक्स किरणों की लम्बाई नापने वाली विधि से एलेक्ट्रानों की भी तरंग लम्बाई मापी जा सकती है। साथ ही, अणु, परमाणु की तथा उनसे भी भारी कणों की तरंग लम्बाई इसी विधि से मापी जा सकती है। जैसे-जैसे अधिक मात्रा के कण लेते जायेंगे, तरंग लम्बाई कम होती जायगी। अतः अधिक द्रव्यमान वाले कणों की तरंग लम्बाई मापना सरल कार्य नहीं।

डी-ब्रोली द्वारा प्रस्तुत इस सिद्धान्त के अनुसार दो अमरीकी वैज्ञानिकों—डेवीजन और जरमर (Davision and Germer) ने भी माप करके देखा। उन्होंने मन्द गति वाले एलेक्ट्रानों का उपयोग किया। एलेक्ट्रानों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रव्यमान सभी किरणों से कम होने के कारण उनकी तरंग लम्बाई अधिक थी। उनका वास्तविक उद्देश्य एलेक्ट्रानों की तरंग लम्बाई मापना नहीं था। वे तो निकिल धातु से परावर्तित एलेक्ट्रान-किरणों का अध्ययन कर रहे थे। निकिल के लक्ष्य को कुछ इस प्रकार से ताप दिया गया कि अचानक ही वह बहुत से क्रिस्टलों में परिवर्तित हो गया। फलस्वरूप एलेक्ट्रानों का परावर्तन कुछ अव्यवस्थित हो गया। परावर्तित एलेक्ट्रानों के कार्यक्रम में कहीं अत्यधिक तो कहीं अत्यल्प तीव्रता पायी गयी।

ऐसा ही परिणाम तब भी पाया गया जब क्रिस्टलों द्वारा एक्स-किरणों के विवर्तन का अध्ययन किया गया। उस अध्ययन से यह अनुमान लगाया गया कि एलेक्ट्रान-किरणें भी निकिल के क्रिस्टल से विवर्तित हुई हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि एलेक्ट्रान-किरणें भी तरंगों की भाँति व्यवहार करती हैं।

डेविजन तथा जरमर द्वारा प्रयुक्त उपकरण नीचे दिखाया गया है। इसमें एलेक्ट्रान-किरणें एक एलेक्ट्रान-गन (G) से प्रक्षेपित की जाती हैं। इस गन में एक टंग्स्टन का तन्तु लगा होता है। तन्तु में विद्युतधारा प्रवाहित करने पर तन्तु लाल हो जाता है तथा उसमें से एलेक्ट्रान निकलने लगते हैं। तत्पश्चात् विद्युत्स्थैतिक क्षेत्र में एलेक्ट्रान प्रवाहित करके वेगवर्धित किये जाते हैं और एक अत्यन्त सूक्ष्म छिद्र से एलेक्ट्रान-रश्मियाँ प्राप्त होती हैं। ये रश्मियाँ निकिल के एक बड़े क्रिस्टल (T) से जिसे लक्ष्य भी कहते हैं, टकराती हैं तथा विभिन्न दिशाओं में परावर्तित हो जाती हैं। इन परावर्तित किरणों की तीव्रता एक 'फेराडे बेलन' (C) द्वारा जिसे संग्रहकर्ता भी कहते हैं, मापी जाती हैं। इस बेलन में एक-दूसरे से अलग, दोहरी दीवारें C तथा D होती हैं। इन दोनों के बीच एक ऋणात्मक विद्युतशक्य लगा देते हैं जिससे उच्च गति वाले प्राथमिक एलेक्ट्रान ही इसमें प्रवेश पा सकें और निकिल क्रिस्टल से निकलने वाले कम गति के द्वैतिक एलेक्ट्रान इसमें प्रवेश न पा सकें।

प्रयोग के समय इस पूरे उपकरण को एक शून्यकक्ष में रख दिया गया था। रिफ्लेक्शन ग्रेटिंग के सिद्धान्तानुसार विभिन्न कोणों पर परावर्तित किरणों की तीव्रता का अध्ययन

डेविजन तथा जरमर द्वारा प्रयुक्त उपकरण

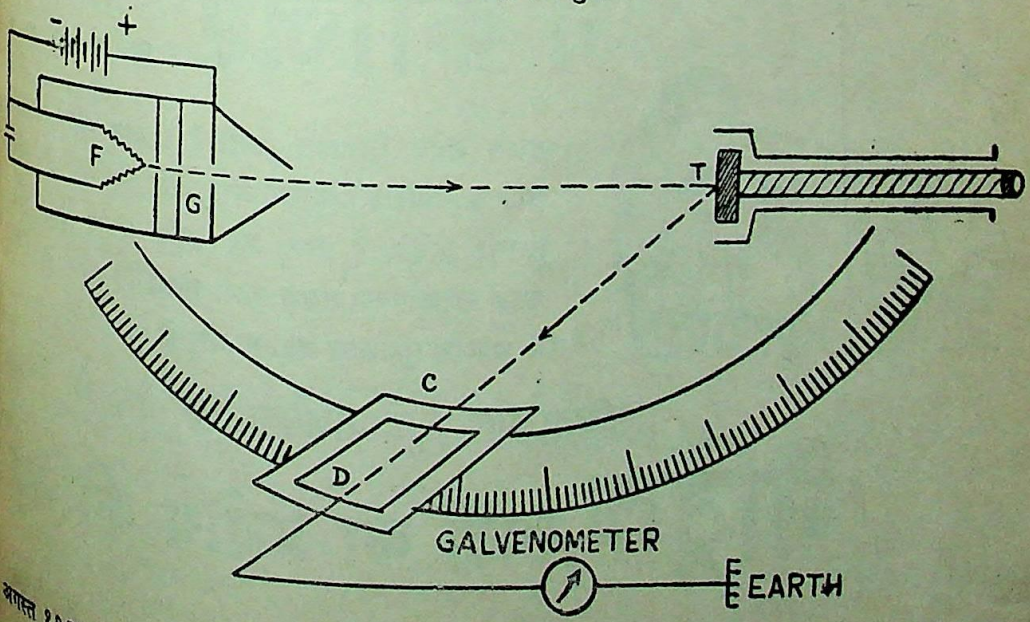

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया और तरंग-लम्बाई की भी गणना की गयी। वह तरंग-लम्बाई डी-ब्रोली के सिद्धान्तानुसार निकाली गयी तरंग-लम्बाई से कुछ कम ही निकली। इस प्रकार सिद्ध हो सका कि पदार्थ की तरंग-अवस्था भी होती है। इसकी पुनः पुष्टि जी. पी. टामसन, रप्प तथा जे. बी. ह्यूज ने विभिन्न उपकरणों पर प्रयोग करके की।

एलेक्ट्रान की भी तरंग-प्रकृति सिद्ध हो जाने के पश्चात् उसकी एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकृति पर भी प्रकाश डाला गया। जिस प्रकार एक्स-किरणों को विभिन्न क्रिस्टलों पर आपतित करके उनकी संरचना ज्ञात की गयी, उसी प्रकार उस प्रयोग को उलटकर क्रिस्टलों की भी संरचना ज्ञात की जा सकी। एलेक्ट्रान-किरणों का इस प्रकार का उपयोग एक्स-किरणों की अपेक्षा उत्तम रहा। एलेक्ट्रान-किरणें क्रिस्टलों में अधिक दूरी तक प्रवेश नहीं करतीं तथा परावर्तित एलेक्ट्रान-किरणों की तीव्रता एक्स-किरणों की तीव्रता से कहीं अधिक थी। इसके अतिरिक्त एलेक्ट्रान तथा पदार्थ-अणुओं की आपसी क्रिया की सभी विधियाँ ज्ञात थीं। अतः जी. पी. टामसन आदि ने एलेक्ट्रान डिफ्रेक्शन के द्वारा क्रिस्टलों तथा अन्य सतहों की आन्तरिक संरचना को ज्ञात किया।

इस प्रकार पदार्थ की तरंग-प्रकृति सिद्ध की गयी। इसके आधार पर श्रोडिन्जर (Schrodinger) और हाइजनबर्ग (Heisenberg) ने भिन्न-भिन्न तरंग-यान्त्रिकी के नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये। उनके द्वारा उन सभी प्रयोगों और सिद्धान्तों को स्पष्टतः और सरलता से समझा जा सका जिन्हें समझने में ब्होर का परमाणु-सिद्धान्त सफल न हो सका था। निर्विवाद रूप से पदार्थ का यह तरंगीय सिद्धान्त परमाणु-विज्ञान में एक क्रान्तिकारी खोज सिद्ध हुआ है।

तुलना न कीजिए....

इससे सदैव निराशा होती है। जब आप मेट्रिक बाट व नापों की पुराने बाट जैसे कि सेर आदि से तुलना करते हैं तब भी यही होता है। ऐसा करने से आपका समय नष्ट होता है और लेन-देन में अक्सर नुकसान रह सकता है।

उचित और सुविधाजनक लेन-देन के लिए

मेट्रिक बाटों का प्रयोग कीजिए

DA 63/262

विज्ञान-ज्योति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

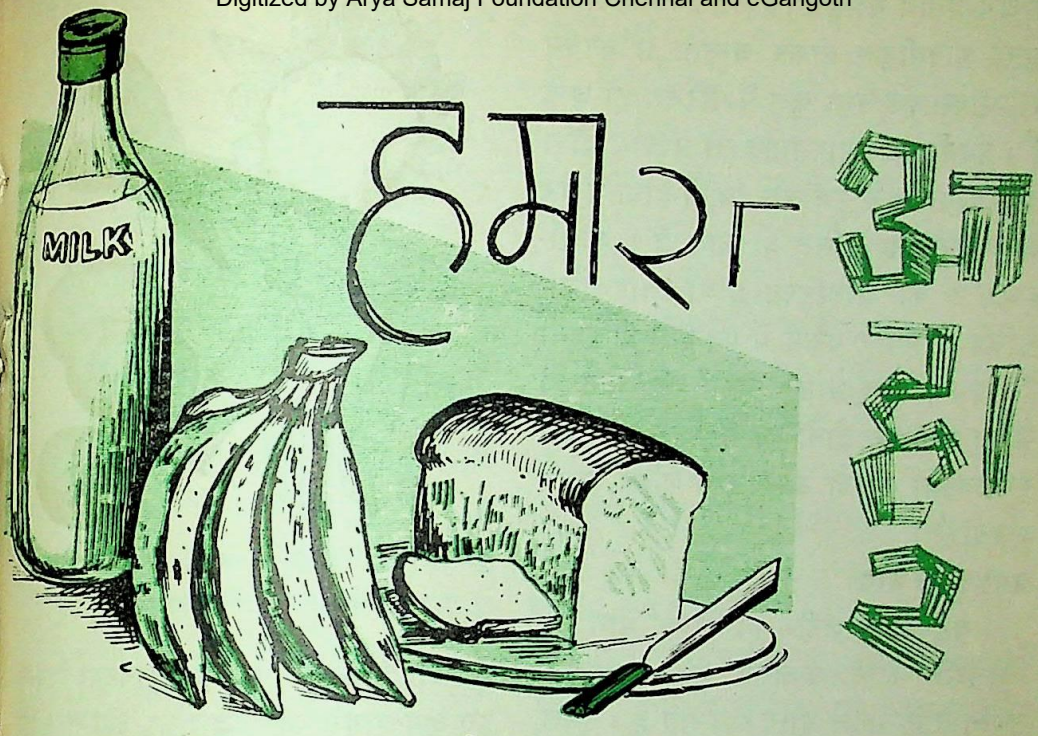

हमारा भोजन

डा. रवीन्द्रप्रताप राव

जीवमात्र के जीवन-धारण और वृद्धि-अभिवृद्धि के लिए भोजन अनिवार्य है। निराधार रह कोई भी जीवित नहीं रह सकता। पेड़-पौधे अपना पोषणतत्त्व स्वयं प्राप्त कर लेते हैं, तो अन्य पशुओं में भी अपना भोजन प्राप्त कर लेने की ईश्वरदत्त क्षमता होती है। मानव तो सृष्टि की सर्वोत्तम कृति है। यह अपने भोजन के बारे में कहाँ तक निपुण है, इस पर विचार करना आवश्यक है।

आज संसार के अन्यान्य उन्नतिशील देशों के लोग अपने आहार पर समुचित ध्यान देते हुए दीर्घायु की प्राप्ति में काफी सफल हैं। हमारा देश इस विषय में जहां पहले नेतृत्व करता था, आज काफी पिछड़ा हुआ है और आहार की सरलतम बातों से भी अधिकांश लोग अनभिज्ञ हैं। आहार विषयक यह अल्पज्ञता तथा अज्ञान ही अधिकांश रोगों का कारण है।

आहार के मुख्य तत्त्व और उनके कार्य

हमारे सामान्य आहार में मुख्यत: कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, विटामिन, खनिज, लवण तथा जल समाविष्ट होते हैं।

कार्बोहाइड्रेट

ये कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन से बने जटिल यौगिक होते हैं। इनमें हाइड्रोजन आक्सीजन उसी अनुपात में होते हैं जिस अनुपात में पानी मिश्रित होते हैं। स्टार्च और विभिन्न शर्कराएँ (ग्लूकोज, फ्रुक्टोज, शक्कर, दुग्धशर्करा तथा माल्टोज आदि) कार्बोहाइड्रेट के उदाहरण हैं। गेहूँ, चावल, जौ तथा मक्का आदि के पौधों से हमें स्टार्च तथा दूध, मधु, फलों आदि से विभिन्न शर्कराएँ मिलती हैं। ये कोर्बोहाइड्रेट हमारे शरीर में ईंधन की भाँति काम करते हैं। इनसे हमारे शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है जिससे हमें शक्ति मिलती है तथा शरीर की आन्तरिक क्रियाएं सुचारु चलती रहती हैं। शरीर के अन्दर कार्बोहाइड्रेट ग्लूकोज तथा फ्रुक्टोज आदि पदार्थों के रूप में जलश्लेषित हो जाते हैं। आँतों द्वारा शोषित किये जाने के उपरान्त ये रक्त में मिलकर शरीर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अंग-प्रत्यंग में पहुंचते हैं। रक्त में आक्सीजन द्वारा आक्सीकृत होकर अन्ततः ये कार्बन डाइआक्साइड तथा जल में परिणत हो जाते हैं। कार्बन डाइआक्साइड तो प्रश्वास द्वारा तथा दूषित जल मूत्र और पसीने द्वारा शरीर के बाहर निष्कासित हो जाते हैं। कार्बोहाइड्रेट की अतिरिक्त मात्रा ग्लाइकोजेन के रूप में हमारे यकृत में एकत्र होती रहती है। इसका कुछ भाग वसा में परिवर्तित हो जाता है। इन दोनों का सुरक्षित कोष हमें रुग्णावस्था अथवा उपवास में शक्ति बनाये रखता है।

वसा (तेल भाग)

यह हमारे शरीर का स्नेहक भाग है। ग्लीसरीन और उच्चतर वसा-अम्लों के संयोग से ये जटिल यौगिक बनाते हैं। इनके दहन से हमारे शरीर में उष्मा तथा शक्ति, स्फूर्ति आदि बनी रहती है। सरसों, तिल नारियल आदि के तेल, मक्खन तथा घी आदि से हमें वसा प्राप्त होती है। जमाये हुए वनस्पति तेलों में यद्यपि विटामिन-ए और डी ऊपर से मिलाये जाते हैं किन्तु वह मात्रा भी कम पड़ती है। वसा-प्राप्ति के लिए शुद्ध घी की तुलना कोई भी पदार्थ नहीं कर सकता। ये शरीर में गर्मी पहुँचाने के अतिरिक्त अन्य निम्न कार्य भी करते हैं :—

१. कोमल अंगों की चोट से रक्षा करते हैं। २. शरीर में विटामिनों को प्रसारित करते हैं। ३. अंग-संधियों में स्नेहक का कार्य करते हैं ताकि उनका हलन-चलन सुगमता से हो सके। ४. शरीर का ताप नियंत्रित रखते हैं।

प्रोटीन

इनमें कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के अतिरिक्त नाइट्रोजन तथा गंधक भी न्यूनाधिक मात्रा में रहते हैं। शरीर का निर्माण करने वाले तत्त्वों को इनसे सहायता मिलती

हरी सब्जियों से हमें लवण, खनिज प्रोटीन और विटामिन-सी प्राप्त होते हैं

है। बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में बढ़ते हुए अंग-प्रत्यंग को वृद्धि तथा जहां-तहां क्षय होते हुए तंतुओं को नवजीवन इन्हीं से मिलता है। ये हमें दूध, मांस, मछली, अण्डे, दालें तथा फलों से प्राप्त होते हैं। सोयाबीन, मूँगफली, मटर, सेम, पनीर, मसूर, गेहूँ के अंकुर आदि भी प्रोटीन प्राप्ति के मुख्य आहार हैं। शरीर में तथा आहार में प्रोटीन का अभाव होने पर जीवन शक्ति का तेजी से ह्रास होने लगता है।

विटामिन

ये संकीर्ण कार्बनिक यौगिक होते हैं। इनमें कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन तथा नाइट्रोजन कम या अधिक मात्रा में रहते हैं। विभिन्न प्रकार के विटामिनों की कमी हमारे शरीर में भिन्न-भिन्न त्रुटियाँ उत्पन्न करती है। कुछ महत्त्वपूर्ण विटामिन निम्न भाँति हैं।

विटामिन-ए—इसकी कमी से आँखें कमजोर हो जाती हैं। त्वचा शुष्क तथा खुरदरी हो जाती है। केश भी झड़ने लगते हैं। शरीरवृद्धि के लिए यह बहुत आवश्यक है। इसके अभाव में बालकों का विकास रुक जाता है। यह दूध, मक्खन, मछली के तेल, अण्डे की जर्दी, पनीर, गाजर, शलजम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खजूर तथा किशमिश आदि से प्राप्त होता है। इसकी सहायता से शरीर को रोग-संघर्ष में बल मिलता है।

विटामिन-बी — थकान, अनिद्रा, मन्दाग्नि, बेरी-बेरी (त्वचा का एक रोग), घबराहट तथा उन्माद आदि रोग इस विटामिन के अभाव में घेर लेते हैं। हाथ के कुटे चावल, गेहूँ के अंकुर, खमीर आदि आहार इस विटामिन के मुख्य स्रोत हैं।

विटामिन-सी—इसकी कमी से स्कर्वी नामक रोग हो जाता है जिसमें मसूड़ों से खून गिरने लगता है तथा दाँत भी गिरना शुरू कर देते हैं। आँतों की सफाई के लिए यही विटामिन आवश्यक है। इसकी प्राप्ति के मुख्य आहार हैं—आँवला, संतरा, नीबू, गोभी, अंगूर, टमाटर तथा हरी पत्तीवाली सब्जियाँ। उपरोक्त वस्तुओं को पकाने पर यह विटामिन नष्ट हो जाता है।

विटामिन-डी—अस्थियां दृढ़ बनाने में यह विटामिन मुख्य काम करता है। इसके अभाव में अस्थियाँ अविकसित रह जाती हैं और रोग बढ़ने पर टेढ़ी भी होने लगती हैं। हमारी त्वचा में विद्यमान एर्गोस्टेरोल सूर्यरश्मियों की परा-बेंगनी किरणों द्वारा विटामिन-डी का निर्माण कर लेता है।

यह भोजन स्टार्च से भरपूर है, इससे हमारे शरीर को कार्बोहाइड्रेट मिलता रहता है

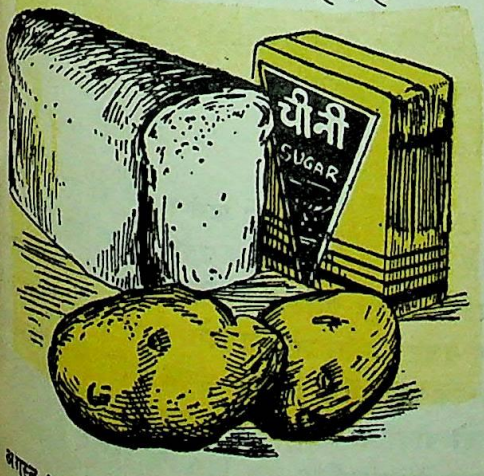

अण्डे, मछली का तेल तथा दूध में यह विशेष रूप से पाया जाता है।

विटामिन-ई—इसकी कमी होने पर प्रजननशक्ति नष्ट होने लगती है। स्त्रियों को वन्ध्यत्व का रोग हो जाता है। गेहूँ के अकुरों का तेल, अन्य तेलों तथा तरकारियों में यह पाया जाता है।

विटामिन-के—इस विटामिन के अभाव से शरीर में प्रोथाम्बिन नामक पदार्थ की कमी हो जाती है जिससे बहता हुआ रक्त शीघ्र रुकता नहीं, बहे चला जाता है। हरे पौधे और हरी तरकारियों में यह पाया जाता है।

खनिज, लवण आदि

फलों तथा तरकारियों में खनिज लवण पाये जाते हैं। इनसे केल्सियम तथा फास्फोरस के निर्माण में सहायता मिलती है जो कि अस्थि-निर्माण के आधारभूत पदार्थ हैं। फास्फोरस तो ज्ञानतंतुओं को भी पुष्ट करके मस्तिष्क को बल देता है। हमारे रक्त में विद्यमान रक्ताणु लौह से बनते हैं। ये रक्ताणु आक्सीजन की सहायता से रक्त को शुद्ध किये रहते हैं। आमाशय में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल नमक से बनता है। यह अम्ल प्रोटीन को एमिनोअम्ल में परिणत करके हमारी पाचनक्रिया में सहायता पहुँचाता है। क्लोरीन हमारे दांतों का एकमात्र संरक्षक है जो उन्हें सड़ने से बचाता है और चमकदार बनाये रखता है। गंधक हमारे शरीर को चर्मरोगों से बचाता है। सिलिकन केशवृद्धि में सहायक होता है। इनके अतिरिक्त मेग्नीशियम, मैंगेनीज तथा पोटासियम आदि भी हमारे लिए अत्यावश्यक हैं।

पानी

'बिना पानी, जिन्दगानी, कौन काम की'—किसी ने सत्य ही कहा है। हमारे शरीर का २/३ भाग पानी है, यही तथ्य इसका महत्त्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

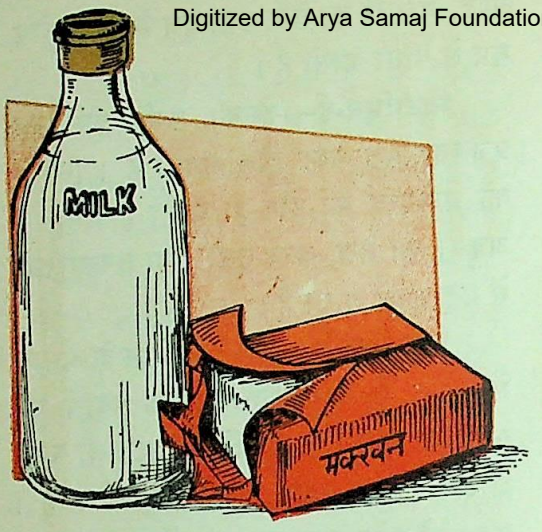

दूध और मक्खन हमारे अंग-अंग, विशेषतः हड्डियाँ और दाँत मजबूत बनाने के लिए अत्यावश्यक हैं

सूचित करता है। प्रत्येक भोजन को शरीर में सुग्राह्य बनाने के लिए पानी अत्यन्त आवश्यक है। शरीर के संचित मल और दूषित द्रव्यों को बाहर निकालना इसका मुख्य काम है।

फल और तरकारियाँ

जीवमात्र के लिए प्रकृति का परमोत्कृष्ट उपहार फल है। विटामिनों तथा लवणों का तो इनमें खजाना भरा रहता है। ये मुख्यतः क्षारप्रधान होते हैं। अतः शरीर में उत्पन्न अम्लीय विष (यूरिक अम्ल) इनके उपयोग से बाहर निकलते रहते हैं। यदि वे विष संचित होते रहें तो अनेक विकार उत्पन्न कर दें। कोष्ठबद्धता दूर करने के लिए फलों का उपयोग उत्तम साधन है। अनेक फल महंगे होते हैं तो कुछेक सहज सुलभ और सस्ते भी होते हैं।

फलों की भांति तरकारियां भी अत्यन्त गुणकारी हैं। जो सब्जियां कच्ची खायी जा सकती हैं उन्हें कई को एक साथ मिलाकर अर्थात् सलाद बनाकर खाना चाहिए। उनमें मुख्य हैं—टमाटर, ककड़ी, खीरा, सिंघाड़ा, गाजर, मूली आदि। जो सब्जियाँ पकाकर खायी जायें, उन्हें अधिक उबालने या तेज आग पर पकाने से उनके गुण नष्ट हो जाते हैं।

संतुलित भोजन

संतुलित भोजन आहार की वह मात्रा कही जायेगी तो शरीर के स्वाभाविक विकास के लिए पर्याप्तभर हो। एक औसत स्वस्थ मनुष्य के दैनिक आहार की मात्रा निम्न भांति कही जा सकती है :—

चावल, गेहूँ तथा खाद्यान्न-३६० ग्राम; दालें-९० ग्राम; वसा, तेल, घी आदि-६० ग्राम; गुड़, चीनी आदि-३० ग्राम; दूध-३०० ग्राम; हरे शाक-१२० ग्राम; अन्य तरकारियां-२०० ग्राम तथा फल-१०० ग्राम।

भोजन की यह सूचित मात्रा पूरे दिन-रात में थोड़ी-थोड़ी करके संतुलित रूप से लेनी चाहिए। दो खानों के मध्य कम से कम चार घण्टे तक का अन्तर अवश्य रखना चाहिए, अन्यथा आमाशय पर अनावश्यक बोझ पड़ेगा तो वह शिथिल हो जायेगा।

खाने के लिए जीना नहीं, सच्ची मानवता और स्वास्थ्य का गुरुमंत्र तो जीनेभर के लिए खाना है, इसे कभी न भूलें।

मुट्ठीभर चींटियाँ गाइगर-गणक है

रेडियोसक्रियतामापी गाइगर-गणक (Geiger Counters) **यन्त्रों का खर्च बचाने की तरकीब** [illegible] **वैज्ञानिकों ने ढूँढ़ निकाली है और सृष्टि में चलते-फिरते गणक यन्त्रों का लाभ उठाना शुरू कर दिया है। उनके कीट-विशेषज्ञों ने वर्षों के अध्ययन के पश्चात् ज्ञात किया कि चींटियों के बिल किसी भी गाइगर गणक से कम नहीं। एक प्रयोगस्वरूप उन्होंने एक किलोग्राम वजन अर्थात् लगभग दस लाख चींटियों का छत्ता परीक्षण के लिए रखा। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि चींटियों में यह गुण उनके आहार के कारण आ है। चींटियों का प्रिय आहार वह मीठा स्राव है जो पौधों के रसचूषक कीट अपने उच्छिष्ट के रूप विसर्जित करते हैं। उच्छिष्ट की बूंद-बूंद में रजकण तथा रेडियोसक्रिय अणु विद्यमान रहते हैं।**

विज्ञान-की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

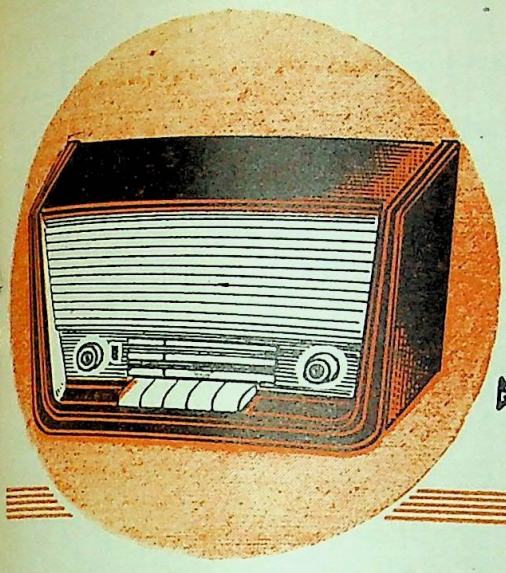

आपका रेडियो

रमेशप्रसाद शर्मा

आपका अपना रेडियो आपके घर की शोभा तथा समृद्धि का द्योतक ही नहीं वरन् आधुनिक युग की एक आवश्यकता है। उसे सम्हालकर रखने की प्रवृत्ति आपके रेडियो की क्षमता तथा उसकी आयु में वृद्धि कर सकती है। अतएव यह वाँछनीय है कि अपने रेडियो की रचना और आवश्यक देखभाल के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी रखें।

सम्पूर्ण रेडियो के आविष्कार का श्रेय केवल एक ही व्यक्ति को नहीं दिया जा सकता। समय-समय पर अनुसंधान के फल-स्वरूप रेडियो यह वर्तमान रूप धारण कर सका है। इसके विकास के सिलसिले में इन वैज्ञानिकों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—मारकोनी, फ्लेमिंग तथा डी. फोरेस्ट।

रेडियो स्टेशन द्वारा प्रसारित बेतार की लहरों को प्राप्त करने के यन्त्र को रेडियो रिसीवर कहते हैं। विद्युत-चुम्बकीय लहरें बहुत कुछ प्रकाश-लहरों की जाति की ही होती हैं। ये अपने साथ विभिन्न आकाशवाणी केन्द्रों से प्रसारित प्रोग्राम लाती हैं, अतएव इन्हें कैरियर वेव या लाने वाली लहरें कहते हैं।

यदि हम किसी धातु के तार (विशेष रूप से ताँबे) को जमीन से बहुत ऊपर, क्षितिज के समानान्तर तान दें और उस तार का सम्बन्ध भूमिगत (अर्थ) के तार से कर दें तो विद्युत-चुम्बकीय लहरें उस तार में से उच्च आवृत्ति (frequency) की दुर्बल विद्युतधारा के रूप में भूमि के अन्दर प्रविष्ट हो जायेंगी। ऊपर तने हुए तार को एरियल तथा जमीन के तार को अर्थ-तार कहते हैं। हेडफोन के एक जोड़े को एरियल और अर्थ के तारों के मध्य जोड़ दें तो हेडफोनों के डायफ्राम पर रेडियो सिग्नल के कम्पन सुनाई देने चाहिए, किन्तु व्यावहारिक रूप में यह सम्भव नहीं होता, क्योंकि इस प्रकार की आवृत्ति बहुत ऊँची होती है। अतः हेडफोन का पर्दा इतनी तेजी से कम्पन कर नहीं सकता। यदि इतनी तीव्र आवृत्ति का कम्पन उत्पन्न करें भी तो मनुष्य के कान को ध्वनि सुनाई नहीं पड़ेगी क्योंकि मनुष्य केवल २० से २०,००० कम्पन प्रति सेकण्ड तक की ही ध्वनियों को सुन सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

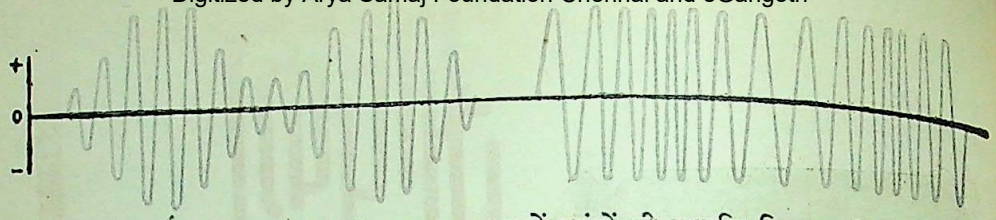

(बायें) आयाम अधिमिश्रण (AM) ; इस अवस्था में तरंगों की आवृत्ति स्थिर रहती है और आयाम परिवर्तनशील, जबकि (दायें) दूसरी अवस्था, आवृत्ति अधिमिश्रण (FM) में आयाम स्थिर और आवृत्ति परिवर्तनशील रहती है

रेडियो-लहरों का फैलाव

रेडियो स्टेशन पर सर्वप्रथम कैरियर लहरें ऑसीलेशन से उत्पन्न की जाती है और बाद में इन्हें ऑडियो फ्रीक्वेन्सी (audio frequency) से सुपरइम्पोज कर देते हैं। इस सुपरइम्पोजीशन की क्रिया को मोडूलेशन भी कहते हैं। यह दो प्रकार से किया जाता है—फ्रीक्वेन्सी मोडूलेशन तथा एम्प्लीट्यूड मोडूलेशन के द्वारा। भारत में केवल एम्प्लीट्यूड मोडूलेशन ही किया जाता है। इसमें कैरियर लहरों की फ्रीक्वेन्सी तो वही रहती है पर एम्प्लीट्यूड बदल जाता है, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। अतः ये ऑडियो लहरें (audio waves) समान गति से कैरियर लहरों के साथ चलती हैं।

कैरियर लहरों के तरंगदैर्घ्य (wave length) तथा फ्रीक्वेन्सी में एक निश्चित सम्बन्ध होता है, जिसे निम्न प्रकार प्रदर्शित करते हैं :

लहर की गति v = लहर की फ्रीक्वेन्सी $n \times$ लहर की लम्बाई $\lambda \times$। कैरियर लहरों की गति सदैव स्थिर रहती है जो कि $३ \times (१०)^{८}$ मीटर प्रति सैकण्ड के बराबर होती है। फ्रीक्वेन्सी n तथा लहर लम्बाई λ में से एक के कम होंने पर दूसरा बढ़ जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी लहर की लम्बाई २०० मीटर है तो उसकी फ्रीक्वेन्सी $n = १५०० \times १०००$ साइकिल्स (१५०० किलो साइकिल्स) प्रति सैकण्ड होगी।

यह एम्प्लिफायर है। इसमें से प्रसारित होती हुई विद्युत्-तरंगें, ठीक अपने ही समान ध्वनि-तरंगें वायु में प्रसारित करती हैं

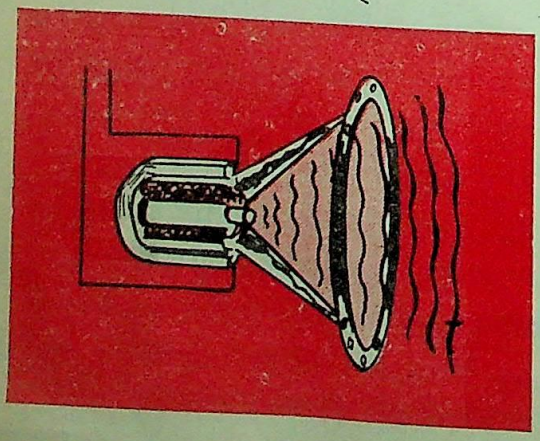

इसी आधार पर भारत में ट्रान्समिशन के लिए दो फ्रीक्वेन्सियों का प्रयोग किया जाता है—मीडियम वेव और शार्ट वेव। मीडियम वेव की लम्बाई २०० मीटर तथा फ्रीक्वेन्सी १५०० किलो साइकिल्स से ५४५.५ किलो साइकिल्स के मध्य होती है। शार्ट वेव की लम्बाई १० मीटर तथा फ्रीक्वेन्सी ३०००० किलो साइकिल्स से ३००० किलो साइकिल्स के मध्य होती है। यह शार्ट वेव दो भागों में विभाजित की गयी है—शार्ट वन ४० से १२० मीटर तथा शार्ट टू १३ से ४० मीटर तक। १२० मीटर से २०० मीटर तक मिलिटरी के लिए सुरक्षित है।

टोन-कन्ट्रोल—आवाज को साफ करने के लिए टोन कन्ट्रोल अथवा टोन करेक्शन की आवश्यकता होती है। यह इन्डक्टैन्स, रेजिस्टैन्स तथा कैपेसिटी का सामूहिक प्रबन्ध है। हवाई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाजों की गूंज और गरज से बचने के लिए टोन-कन्ट्रोल का प्रयोग होता है।

लाउड स्पीकर—ऑडियो फ्रीक्वेन्सी ऑसीलेशन्स को डायफ्राम के कम्पनों द्वारा स्पीकर ध्वनि में परिवर्तित करता है। हलके से ट्रान्सफार्मर पर तार का कॉयल इस प्रकार लपेटा जाता है कि वह तनिक से अन्तर से आगे पीछे को छोड़ कर किसी दूसरी ओर कम्पित न हो सके। कॉयल को वाइस कॉयल या स्पीच कॉयल कहते हैं और इसे स्थायी अथवा विद्युतचुम्बक के मध्य रखा जाता है जिस समय कॉयल से एम्प्लीफायर रेडियो फ्रीक्वेन्सी सिग्नल ओशीलेशन्स प्रवाहित होते हैं तो चुम्बकीय शक्ति के कारण स्पीच कॉयल कम्पन करता है। कॉयल का फार्मर डायफ्राम से मिला रहता है। अतः डायफ्राम भी कम्पित होता है और ध्वनि उत्पन्न होती है। डायफ्राम, जिसे स्पीकर का फोन कहते हैं, विशेष प्रकार के कागज का बनाया जाता है जिस पर नमी का कोई प्रभाव नहीं होता वह हलका तथा कठोर होता है और कम्पन करते हुए स्वयं कोई ध्वनि उत्पन्न नहीं करता।

एरियल—ट्रान्स्मीटर से विद्युत चुम्बकीय लहरें दो प्रकार से फैलती हैं। एक तो पृथ्वी के साथ-साथ और दूसरी एरियल से भिन्न-भिन्न कोणों पर आकाश की ओर फैलती हैं और कुछ ऊँचाई से पुनः पृथ्वी की ओर लौट आती हैं। दूरी बढ़ने पर पृथ्वी वाली किरणों का प्रभाव कम हो जाता है। ट्रान्समिशन स्टेशन पर एरियल लहरों के फैलाव का काम करता है तथा रिसीविंग सेट में लहरों को एकत्रित करता है। ट्रान्समिशन एरियल की बनावट का प्रभाव लहरों के फैलने पर बहुत पड़ता है। कुछ एरियलों के तारों की लम्बाई उनसे प्रसारित लहरों की लम्बाई की आधी होती है। उन्हें डाइपोल एरियल कहते हैं। अन्य प्रकार के एरियल जो प्रसारित करने के काम में आते हैं, वे हैं कॉइल रेडियेटर और कन्डेन्सर रेडियेटर, जो कि प्रसारित फ्रीक्वेन्सी से ट्यून्ड रहते हैं।

ट्रान्समिशन एरियलों का उपयोग हम रिसीविंग एरियलों के स्थान पर नहीं कर सकते क्योंकि सब प्रकार की फ्रीक्वेन्सियों को पकड़ना पड़ता है, केवल एक ही फ्रीक्वेन्सी को नहीं। एरियल का तार किसी सुचालक धातु का होना चाहिए जिसकी अधिकांश सतह खुली होनी चाहिए। एरियल की लम्बाई न बहुत कम हो और न अधिक, क्योंकि यदि लम्बाई कम होगी तो आवाज कम और लम्बाई अधिक होगी तो उसकी (selectivity) कम हो जायेगी जिससे एक ही स्थान पर दो स्टेशन बोलेंगे। एरियल का तार बिजली के मेन तारों के लम्बवत् तथा क्षितिज के समान्तर होना चाहिए। आउटडोर एरियल की ऊँचाई जमीन से ३० फुट होनी चाहिए जिससे स्थानीय बाधाएं न आ पायें। एरियल के तार में जोड़ नहीं होना चाहिए। यदि तार जोड़ना अनिवार्य हो तो टाँका बहुत पक्का होना चाहिए। तार कहीं भी किसी वस्तु से छूना नहीं चाहिए। यदि लीड-इन-वायर ही सील्डेड वायर हो तो बाह्य बाधाएँ पूर्ण रूपेण समाप्त हो जायेंगी। इसके लिए आवश्यक है कि उसकी शील्ड अर्थ की हुई हो। इन्डोर (indoor) एरियल बेतुका होता है, भद्दा दिखता है और बाधाएं अधिक पकड़ता है। अतएव आउट डोर एरियल उत्तम होता है।

अर्थ का सम्बन्ध—घर में यदि वाटर वर्क्स का पाइप हो या हैण्ड पम्प हो तो उसकी सतह से जंग छुटा कर अर्थ के तार को उससे क्लैम्प कर दीजिए। एक शक्तिशाली अर्थ बन जायेगा। यदि नल न हो तो एक आठ वर्ग इंच की तांबे की प्लेट लें और उसे एक गज नीचे नमक की तह बिछा कर गाड़ दें। फिर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्लेट से जमीन के ऊपर तक तांबे के एक मोटे तार से और बाद में अर्थ के पाइण्ट तक लीड-इन-वायर से जोड़ दें।

लाइटनिंग एरैस्टर—यह एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा यदि आकाशीय विद्युत एरियल से टकराये तो उससे सेट की रक्षा हो सकती है। इससे वह विद्युत रेडियो में न आकर तुरन्त ही अर्थ हो जाती है।

रेडियो के उपयोग में सावधानियाँ—अपने रेडियो को आप ऐसे सुरक्षित स्थान पर रखें जहाँ घर और बाहर के बच्चों का हाथ सरलतापूर्वक न पहुँच सके; नहीं तो बच्चे कौतूहलवश उसे अवश्य ही छेड़ेंगे। इससे रेडियो के खराब होने की तो सम्भावना है ही, बच्चों को बिजली का धक्का लग सकता है।

अपने रेडियो के सम्बन्ध में यह जानकारी अवश्य रखें कि रेडियो का मेकर क्या है, उसका क्या नम्बर है और उसमें कौन-कौन से कितने-कितने वाल्व लगे हैं। यह सामान्य जानकारी आपको रेडियो की मरम्मत के समय अवश्य ही लाभप्रद होगी।

प्रोग्राम सुनना हो तब प्लग को लगा कर रेडियो के स्विच को धीमे से ऑन कीजिए और थोड़ी देर गरम होने दीजिए। इस दौरान में सुई को उस स्टेशन के स्थान के आसपास जिसे आप सुनना चाहते हैं, धीरे-से ले जाइए झटके के साथ नहीं। रेडियो की आवाज को शनैः-शनैः बढ़ाइए, एक साथ नहीं। बन्द करते समय भी पहले रेडियो के स्विच को धीरे से बन्द कीजिए और तब प्लग को प्लग पॉइण्ट से निकालिए।

वेव बदलते समय बैण्ड स्विच को धीमे-धीमे घुमाना चाहिए। झटके के साथ घुमाने से बैण्ड स्विच खराब हो जाता है। यदि बैण्ड स्विच की नोक पर किसी प्रकार के निशान न हों, तो एक निशान नोक पर तथा अन्य निशान कैबिनिट पर नेल पालिश से लगा लेने चाहिए। इससे यह पता रहेगा कि हम कौनसी वेव बदल रहे हैं। बैण्ड स्विच के सब टाँके तोड़ लें जिससे सैट के सब वाल्व शार्ट सर्किट हो जायें। वेव बदलते समय आवाज कम करना भी अच्छा है।

इतने पर भी यदि आपके रेडियो में कोई खराबी हो जाये तो बिना विलम्ब किसी अनुभवी एवं विश्वासपात्र मैकेनिक को दिखाइए। देर होने में वह खराबी और बढ़ जायेगी और अधिक पैसा खर्च होने की सम्भावना रहेगी। मरम्मत के दौरान में यदि आपको कोई पुर्जा बदलवाना हो, तो पुराने पुर्जे को मैकेनिक से वापिस माँग लीजिए।

यदि आप रेडियो मेकेनिज्म के सम्बन्ध में थोड़ा बहुत जानते हैं अथवा बिलकुल ही नहीं जानते तो स्वयं अनुभव बढ़ाने के लिए या ठीक करने के प्रयोजन से स्वयं ही सैट ठीक करने मत बैठ जाइए, वर्ना आप उसे और अधिक खराब कर लेंगे।

आज की ताजा खबर

७५०० वर्ष से चलती-चलती आज हम तक पहुँच पायी है। पहले दिन स्वीडन के नक्षत्रविद् एलिस डेलग्रेन (Elis Dahlgren) ने यह समाचार प्राप्त किया और दूसरे दिन आहायो (अमरीका) के एल. सी पेलटायर (L. C. Peltier) ने इसकी पुष्टि की। समाचार यह है कि उनकी वेधशालाओं के दूरदर्शियों की पकड़ में एक पुरातन तारा विस्फोट करता हुआ आया है। यह तारा वीणाकृति के लाइरा (Lyra) नामक तारासमूह में स्थित तीव्रप्रकाशमान अभिजित (Vege) तारे के ऊपर दिखायी दे रहा है। अमरीका की हीडन प्लेनेटेरियम के मतानुसार इस तारे की दूरी ७५०० प्रकाश वर्ष है अर्थात् इसके विस्फोट का प्रकाश हम तक पहुँचने में ७५०० वर्ष लगे हैं!

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्लाडियस गेलेन

मनोहरलाल

यूरोप के नक्शे को यदि आप ध्यान से देखें तो भूमध्यसागर के मध्य में स्थित एक प्रायद्वीप पर आपकी दृष्टि बरबस ही रुक जायेगी। इस प्रायद्वीप पर आज का आधुनिक इटालियन गणतंत्र स्थापित है। आज से कई शताब्दियों पूर्व यहीं पर शक्तिशाली रोमन साम्राज्य की स्थापना हुई थी। इसी रोमन साम्राज्य ने आज की आधुनिक यूरोपीय सभ्यता और संस्कृति को जन्म दिया है। आधुनिक विज्ञान के जन्मदाताओं के रूप में, रोम के दार्शनिकों और वैज्ञानिकों को ही स्थापित किया जाता है। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली के जन्मदाता के रूप में महान् रोमन चिकित्सक गेलेन की उपासना की जाती है।

क्लाडियस गेलेन का जन्म टर्की के भूमध्यसागरीय किनारे पर पेरगामम नामक स्थान पर सन् १२९ में हुआ था। उन दिनों पेरगामम पर ग्रीक और रोमन, दोनों ही सभ्यताओं का विकास हो रहा था। पेरगामम और स्मीरेना के नगरों में क्लाडयस गेलेन ने विधिवत् दर्शनशास्त्र और शरीरशास्त्र का अध्ययन किया। गेलेन जब दर्शनशास्त्र और शरीरशास्त्र को पूर्ण रूप से समझने लगे, तब उन्होंने ओषधि विज्ञान का अध्ययन आरम्भ किया। ओषधि विज्ञान का अध्ययन गेलेन ने अलेक्जेन्ड्रिया के विख्यात नगर में किया, जहाँ पर उस समय शरीरशास्त्र और शल्यचिकित्सा का इतिहासप्रसिद्ध विद्यालय था।

अट्ठाइस वर्ष की आयु तक चिकित्साशास्त्र का अध्ययन समाप्त करके गेलेन अलेक्जेन्ड्रिया के महान् नगर से अपने शहर पेरगामम लौट आये। उस अल्प आयु में ही गेलेन को काफी ख्याति प्राप्त हो चुकी थी और उनके चिकित्साशास्त्र के ज्ञान का लाभ सभी उठाना चाहते थे। पेरगामम में गेलन उन लड़ाकू गुलामों के चिकित्सक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाये गये स्कूल के रईस लोगों के मनोरंजन के लिए, जीवन की अन्तिम साँसों तक भयंकर प्राणान्तक युद्ध किया करते थे। उन गुलामों को ग्लेडियेटर्स (gladiators) कहते थे। ग्लेडियेटरों के उन युद्धों में बहुधा ही गुलाम भयंकर रूप से घायल हो जाया करते थे और गेलेन उनकी चिकित्सा किया करते थे। गेलेन को पेरगामम का वह महत्वपूर्ण पद सन्तुष्ट न कर पाया और एक दिन वह युवा चिकित्सक रोम की ओर निकल पड़ा।

सन् १६९ में गेलेन ने रोमन साम्राज्य की राजधानी रोम में स्वयं को स्थापित किया। जिन दिनों रोम में चिकित्सक का धन्धा गेलन ने प्रारम्भ किया उन दिनों रोम में चिकित्सकों के नाम पर कितने ही धूर्त लोग धन और यश का उपार्जन कर रहे थे। उन का गेलेन ने कसकर विरोध किया और गुमराह जनता को चिकित्सा का सही अर्थ बतलाया। इस कार्य से उसकी ख्याति शीघ्र ही रोम में फैल गयी।

जिन दिनों गेलेन की ख्याति-रोम में फैल रही थी, उन्हीं दिनों रोमन साम्राज्य का शक्तिशाली सम्राट मारकस आरेलियस रोग-ग्रस्त था। कितने ही चिकित्सक उसकी चिकित्सा कर चुके थे, लेकिन सम्राट को उनकी चिकित्सा से कोई भी लाभ नहीं हुआ था। ऐसे कठिन समय में गेलेन को सम्राट की चिकित्सा का मौका मिला। गेलेन ने अपनी महान प्रतिभा से सम्राट को निरोग कर दिया। फलस्वरूप सम्राट मरकस के राज्य चिकित्सक के पद पर गेलेन नियुक्त हो गये।

गेलेन के समय के रोमन कानून में मृ मनुष्य का चीर-फाड़ वर्जित थी और ऐसा करनेवाला व्यक्ति अपराधी समझा जाता था। कानून के अनुसार चिकित्सा सम्बन्धी कार्यों के लिए भी चिकित्सक केवल पशुओं पर ही प्रयोग कर सकते थे लेकिन रोम का यह अन्धविश्वासी कानून भी गेलेन की शोध प्रवृत्ति में बाधक न बन सका। घायल ग्लेडियेटरों की चिकित्सा के दौरान में मानव शरीरशास्त्र और शल्यक्रिया का गेलेन ने अत्यधिक ज्ञान प्राप्त कर लिया था। गेलेन ही प्रथम व्यक्ति था जिसने हमको यह बतलाया कि शरीर में रक्त एक संयोजित रूप से रक्तवाहिनियों में प्रवाहित होता है। गेलेन ने ही प्रथम यह बतलाया था कि धमनियों में सदैव रक्त उपस्थित रहता है। गेलेन ने कुछ गलतियां भी की थीं जिन्हें बाद के शरीरशास्त्रियों ने सुधार लिया था।

ग्रीक दार्शनिक हिपोक्रेटेस की शरीर शास्त्र सम्बन्धी शिक्षाओं को गेलेन ने पू मान्यता प्रदान की थी। हिपोक्रेटेस की तर गेलेन भी यह मानता था कि मानव शरीर में चार प्रमुख रस-तत्त्व हैं—रक्त, कफ, पि पित्त, और श्याम पित्त। हिपोक्रेटेस की तर गेलेन ने इनको रोग के कारण नहीं माने गेलेन ने चारों रस-तत्त्वों की रचना सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण खोजें कीं। गेलेन ने एक चिकित्सा सम्बन्धी महान ग्रन्थ 'चिकित्सा कला' की रचना की थी, जो सोलहवीं शताब्दी तक चिकित्साशास्त्र के विद्यार्थियों की गीता रही है। सन् २०१ में रोम में गेलेन की मृत्यु हो गयी।

रक्तहीन सर्जरी

न छुरी उठी, न बूँद खून गिरा और मस्तिष्क की शल्यक्रिया हो भी गयी! ५४ वर्ष की वृद्धा के मस्तिष्क का एक सूक्ष्म भाग रोग-ग्रस्त हो गया और सर्जन ने अणुभंजक यन्त्र द्वारा प्रहार विकीरित करके उसके प्रहार से रोग-ग्रस्त भाग को निःशेष कर दिया। वृद्धा स्वस्थ हो गयी।

विज्ञान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

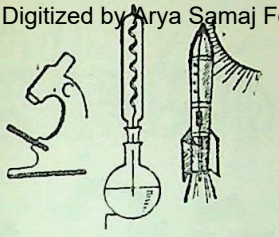

जेट नीचे खड़ा है, चलिए

अर्थात् जेटयान न हुआ, टूरिस्ट कार हो गया जिसे गैरेज से निकाल लाए और सैर को निकल चले ! यह कल्पना भी अब कल्पना न रही, यथार्थ तो बन चुकी है; सहज प्राप्य तब हो जाएगी, जब इसका उत्पादन औद्योगिक पैमाने पर होने लगेगा।

उस समय एक कार की भाँति ही आप अपना निजी जेट रख सकेंगे। दौड़ कर उठने के लिए कोई लम्बा-चौड़ा मैदान या विशेष सीमेण्ट-पथ नहीं चाहिए; बस, आपकी कोठी के आगे के लान से ही उठ लेगा। एच. एफ. बी ३२० नामक नन्हे और मोहक १२ जेटयान पश्चिम जर्मनी ने बनाए हैं। इनके इंजन आधे बन्द करके भी उड़ान जारी रखी जा सकती है। यह सुविधा प्रचलित जेटयानों में संभव नहीं है। २६६० किलोमीटर प्र. घ. की रफ्तार से इसे उड़ाते हुए आप तेज से तेज सवारी का आनन्द भी ले सकेंगे।

बुढ़ापे में बुद्धि का नवसंचार

हीडलबर्ग (जर्मनी) की प्रसिद्ध मैक्स प्लांक इन्स्टीट्यूट और सारबूकन में स्थित स्नायुचिकित्सा की संस्थाओं में पेरीटियानिक्स नामक एक आश्चर्यजनक नयी ओषधि के सफल परीक्षण किये गये हैं जो साठ पार कर जाने वाले हिलते-काँपते बूढ़ों के मस्तिष्कों को नयी शक्ति, नयी बुद्धि देगी। परीक्षण के पात्रों में एक ७२ वर्षीय बूढ़ा भी था जिसका मस्तिष्क तेजी से स्मरण-शक्ति खोता जा रहा था। इस दवा ने वह चमत्कार दिखाया जिसके प्रभाव से अब वह बाकायदा अध्यापक बन गया है और जटिल विषयों का अध्यापन कर रहा है !

यह दवा मस्तिष्क की कोशाओं को ग्लूकोज तथा सोडियम प्राप्त करने में सहायता करती है। इससे रक्त-संचार भी अधिक फुर्तीला, नियमित और संतुलित रहता है जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क को रक्त द्वारा लाये गये आक्सीजन तथा अन्य तत्त्व ताजे रूप में मिलते रहते हैं। इस दवा का निर्माण विटामिन बी-६ पर किया गया है। यह विटामिन शरीर के पोषक-तत्त्वों को सचेष्ट और क्रियाशील बनाने में प्रमुख हाथ बंटाता है।

नया अमरीकी संचार उपग्रह—सेटेलून

ईको-१ के पश्चात् ईको-२ ने २५ जनवरी १९६४ को पेसिफिक मिसिली रेन्ज, केली-फोर्निया की धरती से विदा ली थी। यों अमरीका-निर्मित वह उपग्रह तत्कालीन अन्य समस्त उपग्रहों से बड़ा था। ऊर्ध्वाकाश में पहुँच कर वह गुब्बारे जैसा फूल गया, इसीलिए उसका नाम सैटेलाइट और बैलून को जोड़ कर सैटेलून रख दिया गया।

तेरह मंजिल का यह उपग्रह एक बड़ी टिकिया की शक्ल में भेजा गया था। राकेट के मुहाने पर उसी आकार के एक कनिस्तर में इसे जब पैक किया गया था तब इसका व्यास ३९·६ इंच तथा मोटाई २९·३ इंच थी। दक्षिण अफ्रीका के ऊपर ८०० मील की ऊँचाई पर यह लगभग एक घण्टे पश्चात् पहुँच गया था। वहीं इसने खुलना और हवा भरकर गुब्बारे की तरह फूलना आरम्भ किया। खुलने पर इसका व्यास १३५ फुट का हो गया था जो अभी तक विशालतम माना जाता है।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि यह अनन्त काल तक अपने कक्षापथ पर चलता रहेगा और इससे उन्हें आशाएँ हैं कि यह संग्रहीत रेडियो-संकेतों को अपने भूमिगत सम्पर्क-केन्द्रों पर भेजता रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माँ-बाप से नहीं मिलते-जुलते ये बच्चे किसके हैं?

डा. प्रकाशचन्द्र

प्रतीत तो यह होता है कि अपने मां-बाप से अंग-प्रत्यंग में तथा शक्लोसूरत में मिलते-जुलते होना प्रकृति का एक नियम है। सचाई यह है कि प्रकृति के इस नियम में भी मनोरंजक अपवाद हैं और जब हम ऐसे शिशुओं को देखते हैं जिनके माँ-बाप का अनुमान नहीं लगा पाते, तब हम सहज ही पूछ उठते हैं— ये बच्चे किसके हैं?

बच्चे ये भी, बच्चे वे भी

हम अपने चारों ओर देखते ही हैं कि चूहे का नन्हा चूजा आकार-प्रकार में चूहा ही दिखता है, बिल्ली का बच्चा, बिल्ली दिखता है, कुत्ते का पिल्ला, कुत्ता दिखता है; उसी प्रकार मानव शिशु भी चाहे जितना छोटा क्यों न हो, मानव ही दिखता है। दूसरी ओर मेंढ़क का बच्चा मेंढ़क नहीं होता, केकड़े का बच्चा, केकड़ा नहीं दिखता तथा मच्छर, मक्खी, तितली आदि के गिराड देखकर हम नहीं कह सकते कि वे बड़े होकर क्या बनेंगे। कुल काल पूर्व तक यह भूल-भुलैयां जैव-वैज्ञानिकों को चक्कर में डालती रही थी। इस दृष्टि से सामान्य मनुष्य को तो यह समझने युगों लग गये होंगे कि कीड़े जैसी रेंगती गिराड़ एक मनोहारी तितली बन जाती है और मछली की तरह तैरने वाला टैडपोल, फुदकने वाला मेंढ़क बन जाता है।

अकारण तो यह भी नहीं

जैसा कि सृष्टि के अन्य विधानों के साथ है, इस विचित्रता में भी कारण निहित है। है। कुछेक जल-तन्तु ऐसे होते हैं जो वयस्क हो जाने पर एक ही स्थल पर जम जाते हैं और वहीं स्थिर जीवन व्यतीत कर देते हैं। अतः उनके शिशु यदि सभी अंगों से पूर्णतः मां-बाप के समान उत्पन्न हों तो वे भी शीघ्र ही बड़े होकर उसी एक स्थल पर जमघट बनाये रहेंगे और सृष्टि का संतुलन ही बिगड़ जायगा। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न ही न हो इस हेतु उनके बच्चे मुक्त अवस्था में इधर-उधर तैरने योग्य होते हैं जो पानी के बहाव के साथ दूर-दूर तक फैल जाते हैं। साथ ही उनमें पेट-पालन की क्षमता भी होती है। अतः बड़े होने पर ये भिन्न-भिन्न क्षेत्रों को आबाद किये रहते हैं और व्यर्थ की भीड़-भाड़ नहीं होने पाती।

यही हाल उन उभयजीवियों (amphibians) का रहता है जो जल और थल, दोनों पर समान रूप से रह लेते हैं। इन जीवों का एक उत्तम उदाहरण मेंढ़क है। मेंढ़क की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

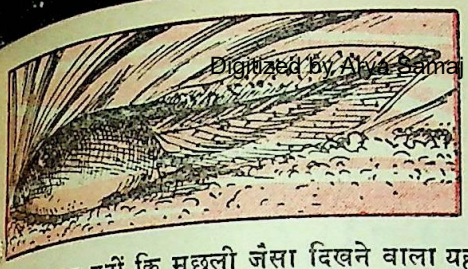

कहना सहज नहीं कि मछली जैसा दिखने वाला यह शिशु बड़ा होकर अमरीकन बुलफ्रॉग नामक मेंढक बनेगा

भूमि पर रहते हुए अपने अण्डे भी भूमि पर ही दें तो वे कदापि नहीं फलेंगे और सूखकर नष्ट हो जाएँगे। इस हेतु मेंढ़क को अपने अण्डे पानी में देने पड़ते हैं जहाँ वे क्रमशः रूप-परिवर्तन करते हुए बड़े हो जाते हैं।

रूप-परिवर्तन की क्रमिक अवस्थाएँ

अण्डावस्था पाप्त करने तक प्रत्येक कीट को कुछेक महत्त्वपूर्ण कायापलट की अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है। वह कायापलट प्रायः चार स्पष्ट अवस्थाओं में विभाजित रहता है और प्रत्येक अवस्था की अवधि भिन्न-भिन्न होती है। पहली अवस्था अण्डवस्था होती है जो तभी सपाप्त हो जाती है, जब नन्हा गिराड उसमें से बाहर रेंग आता है। दूसरी अवस्था गिराडावस्था होती है। इस अवस्था को लार्वा की अवस्था भी कहते हैं और यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। इस अवस्था में वह लार्वा तेजी से अपना पेट भरता चलता है और बारम्बार अपना बाहरी खोल उतारता-बदलता जाता है। तीसरी अवस्था प्यूपावस्था होती है। इस अवस्था में उस की आन्तरिक शरीर-रचना उल्लेखनीय परिवर्तनों के अन्तर्गत रहती है और उसके फलस्वरूप वह कीट अधिक हिलने-डुलने में असमर्थ रहता है तथा नया खोल भी तब तक चढ़ा न होने से जीवन-संकट की स्थिति में रहता है। इसके रक्षणार्थ वह अपने चारों ओर एक ऐसा आवरण लपेटकर पड़ रहता है, जो शत्रुओं से उसकी रक्षा किये रहता है। इसका उत्तम उदाहरण रेशम का कीड़ा कहा जा सकता है जो प्यूपावस्था में रेशम के खोल में छिपा रहता है। यह अवस्था पार कर लेने पर अन्तिम अवस्था पूर्ण विकास की होती है। जो जन्तु इन चारों अवस्थाओं से गुजरता है, उसका कायापलट पूर्ण हुआ कहा जाता है और कुछेक ऐसे भी होते हैं जिन्हें प्यूपावस्था से गुजरना नहीं पड़ता।

भिन्न-भिन्न कीटों के गिराडों के नाम भी विभिन्न हैं। उदाहरणार्थ, टिड्डे, तिलचट्टे, क्रिकेट और मेण्टिड आदि के गिराडों को निम्फ (nymph) अर्थात् परियां कहते हैं, ड्रेगनफ्लाई, स्टोनफ्लाई और मेफ्लाई आदि के गिराडों को नाइड (naiad) कहते हैं तथा पतिंगे और तितलियों के गिराड केटरपिलर (caterpillar) कहलाते हैं। इसी प्रकार मेगट, (maggot) ग्रब (grub) आदि नाम भी अन्य गिराडों को दिए गए हैं।

जैसा कि ऊपर कहा है, यह गिराडावस्था अर्थात् लार्वा की अवस्था लम्बी अवधि तक चलती है और विशेष महत्त्वपूर्ण होती है। सिकाडा नाम का कीट १३-१४ वर्ष तक गिराडावस्था में रहता है। मेफ्लाई का युवा

पहचानना इसे भी मुश्किल है। अजीब अंगों का यह नन्हा विचित्र जीव, केकड़ा बनने की प्रगति पर है

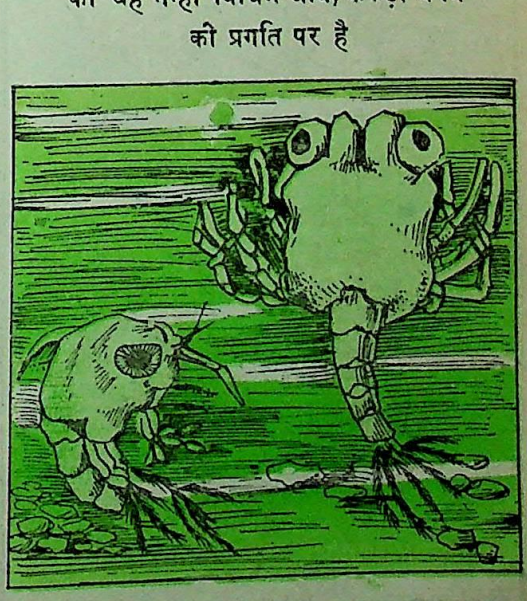

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

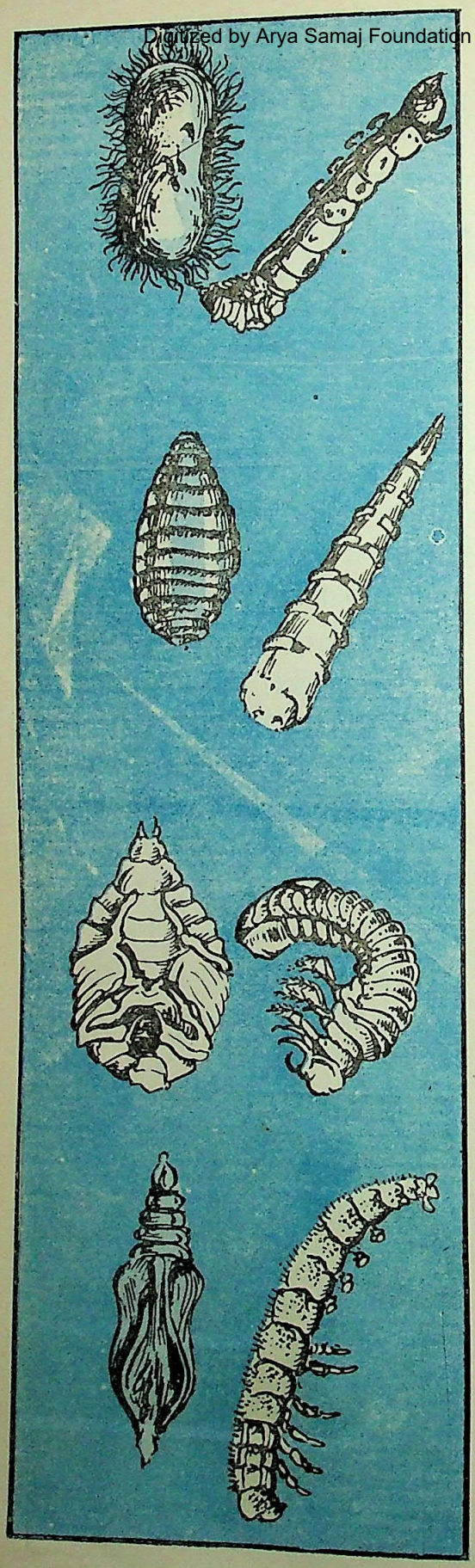

जीवन यद्यपि दिन-दो-दिन का ही होता है, गिराडावस्था में ४-५ वर्ष तक रहता है। पेड़ों पर बसने वाले कुछेक कठफोड़ कीट २५-३० वर्ष तक भी गिराडावस्था में रहे पाये गए हैं !

ये मां-बाप से समानता रखते हैं

ऊपर कही गई अवस्थाओं में से जिन्हें तृतीय अवस्था, अर्थात् प्यूपावस्था से गुजरना नहीं पड़ता, वे शिशु-अवस्था में कुछ हद तक अपने मां-बाप से मिलते-जुलते दिखते हैं। ड्रेगनफ्लाई, सिकाड़ा तथा टिड्डे इनमें गिनाये जा सकते हैं। शिशु-अवस्था में ये केवल इतना अन्तर दिखाते हैं कि उस समय इनके पांखें नहीं होतीं। अनेकबार कायापलट करने के उपरान्त नन्ही पांखें उगना आरम्भ होता है। वयस्क होने पर ड्रेगनफ्लाई अपने जलीय निवास-स्थल से बाहर निकल कर किसी पौधे की डाल पर बैठ जाती है, सिकाड़ा धरती फोड़ कर बाहर निकल आता है और निकट के वृक्ष पर चढ़ने लगता है तथा टिड्डा वहीं जमा रहता है। प्रत्येक उदाहरण में पुराना खोल चीर कर ये कीट बाहर आ जाते हैं और नवोत्पन्न पांखें शीघ्र ही सूख जाने पर उड़ने लगते हैं। इनमें अनेक कीटों का तो काम ही यह होता है कि पैदा हुए, बच्चे पैदा किए और मर रहे। इसीलिए हम देखते हैं कि किसी-किसी मौसम में, विशेषत: वर्षाऋतु में न जाने कहाँ से कीटों, मच्छरों की बाढ़ आजाती है और वर्षा के जाते ही गायब भी हो जाती है !

ये मां-बाप से भिन्नता रखते हैं

पतिंगा, तितली, मक्खी और गुबरीला आदि के गिराड लार्वा-अवस्था में पंखहीन

चार विभिन्न कीटों की ये गिराडावस्था और प्यू वस्था के चित्र हैं। क्या आप कह सकेंगे, ये क होकर क्या-क्या बनेंगे ? यदि नहीं, तो उत्तर

चित्र में देखिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं। अतः इनके लिए एक ही जीवन-प्रणाली अपनाने को विवश होना पड़ता है। उस अवस्था में इन्हें न केवल अपना पेट भरते रहना होता है, बल्कि शत्रुओं से रक्षा भी स्वयं ही करनी पड़ती है। उसके पश्चात् जब ये प्यूपावस्था में पहुँचते हैं, तब आन्तरिक अंग-परिवर्तनों के कारण शिथिल हो रहते हैं और खाने-पीने से भी लाचार हो जाते हैं। तब उन्हें अपना संचित भोजन काम देता है और एक खोल जैसा अपने चारों ओर लपेट कर, मुँह ढँके पड़े रहते हैं। इसी प्रकार मक्खी गिराडावस्था में पांवहीन होती है। केकड़े के शिशु को भी एक नजर देख कर तो कहना कठिन हो जाता है कि यह केकड़े का ही सपूत होगा!

गिराडावस्था, जन-जीवन के लिए हानिकारक

यह ऊपर कहा जा चुका है कि गिराडावस्था में कीट का काम अधिक से अधिक खाना ही खाना रहता है ताकि प्यूपावस्था में निष्क्रिय पड़े रहने पर भूखों न मरना पड़े। अतः अनेक बहुमूल्य और कोमल पेड़-पौधों के अंकुर इन गिराडों द्वारा खाये जाते रहते हैं और बगीचों के बगीचे साफ होते रहते हैं। उदाहरणार्थ, जिप्सी मॉथ (gypsy moth) नामक पतिंगों के गिराड सेब, ग्रेवर्च, ओक, पुलडर तथा विलो जैसे उपयोगी वृक्षों के नव पल्लवों का सफाया कर डालते हैं। इसी प्रकार अनेक उपयोगी काष्ठ के बहुमूल्य वृक्ष विभिन्न कीटों के गिराडों के शिकार होते रहते हैं।

शायद इन्हीं को देख कर किसी ने कहा है—जब छोटों का यह आलम है, तो बड़ों का जाने क्या होगा!

●

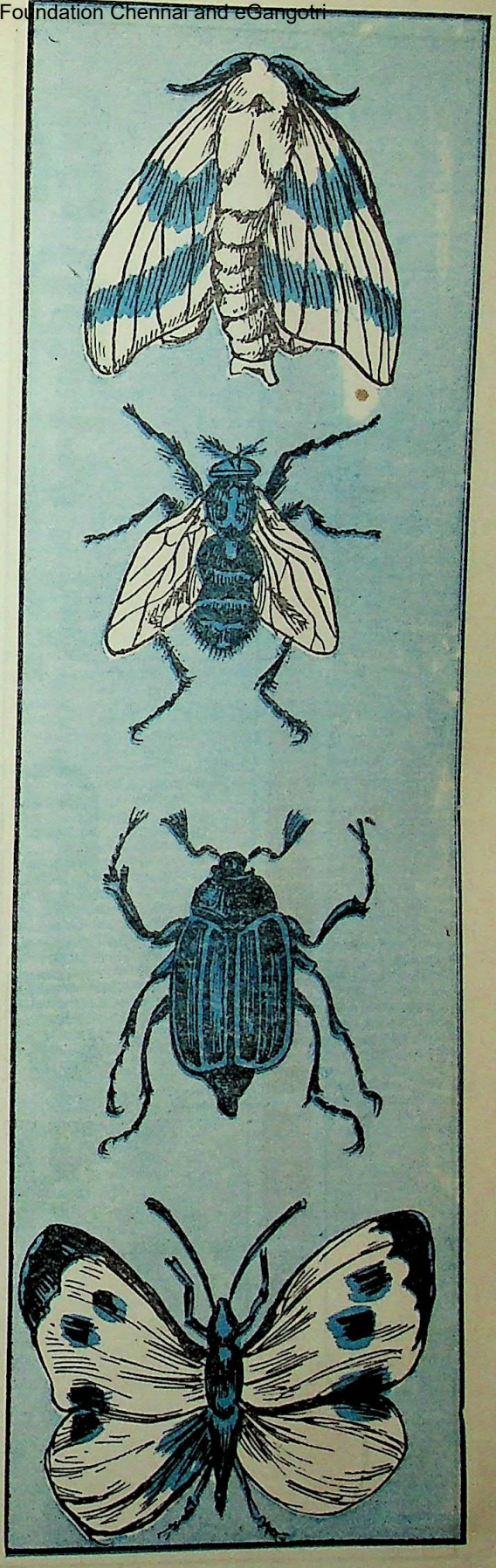

पिछले चित्र में आपने चार कीटों की शिशु-अवस्थाएं देखी थीं। वे हैं (ऊपर से नीचे) पतिंगा, मक्खी, गुबरीला और तितली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हीलियम द्वितीय

पानी के जमने का ताप शून्य डिग्री सेन्टिग्रेड होता है। सर जे. जे. थामसन ने सैद्धान्तिक आधार पर बताया कि कम से कम ताप जिसकी कल्पना की जा सकती है ०° डिग्री सेन्टीग्रेड से भी २७३ डिग्री नीचे होता है। इस ताप को शून्य मानकर बनायी प्रणाली को एब्सोल्यूट प्रणाली या केलविन प्रणाली कहते हैं। इसके अनुसार पानी के जमने का तापांश २७३° के. (केलविन) हुआ।

नाइट्रोजन आदि गैसें बहुत ही नीचे ताप पर द्रवीभूत होती हैं। हीलियम नामक गैस, जो पृथ्वी के वायुमण्डल में बहुत कम मात्रा में पायी जाती है, सबसे नीचे ताप यानी साधारण दबाव पर ४·२° के. पर द्रवीभूत होती है।

१९०८ में के. ओंस नामक वैज्ञानिक ने हीलियम द्रवीभूत करने का यंत्र बनाया और उससे वह ४·२° के. तक ताप प्राप्त कर

ना. ग. बोडस

सका। इतने कम ताप से कहीं पहले अन्य सभी गैसें ठोस रूप में परिणत हो जाती हैं।

इस ताप पर कुछ तत्त्वों के गुण आश्चर्यजनक रीति से बदल जाते हैं—जैसे, धातुओं का विद्युत गतिरोध बहुत कम हो जाता है।

द्रव-हीलियम के ताप को और भी गिरा कर उसके भौतिक गुणों को देखा गया। २·२° के.पर एक आश्चर्यजनक परिवर्तन मालूम पड़ा। साधारणतः ताप नीचा करने पर किसी तत्त्व का आपेक्षिक ताप बढ़ता है। द्रव हीलियम में २·२° के. तक तो ऐसा होता है, परन्तु इससे नीचे ताप पर बजाय बढ़ने के वह एकाएक घटने लगता है जो अंत तक घटता चला जाता है।

ताप और आपेक्षिक ताप का ग्राफ निकालने पर वह एक ग्रीक अक्षर γ (लेम्बर) से मिलता-जुलता आता है। इस कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के. ताप को γ बिन्दु कहते हैं। इस ताप के नीचे द्रव हीलियम के गुणों में आश्चर्यजनक परिवर्तन होते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओं के अनुसार ऐसा परिवर्तन एक दूसरा द्रव बन जाने के कारण होता है जिसे हीलियम द्वितीय कहते हैं। इस द्रव का आश्चर्यजनक व्यवहार वैज्ञानिकों के लिए एक चुनौती बन गया है। पुराने वैज्ञानिक सिद्धान्तों के आधार पर हीलियम द्वितीय के आश्चर्यजनक गुणों का कारण नहीं बताया जा सकता। क्वान्टम मेकेनिक्स (Quantam mechanics) के आधुनिक सिद्धान्त के आधार पर इन गुणों का कारण महान् रूसी वैज्ञानिक लेण्डो ने दिया। इनके समझाने में गणित की सहायता लेनी पड़ती है, जो इस लेख की परिधि के बाहर है। इसलिए यहाँ पर हीलियम द्वितीय के कुछ आश्चर्यजनक प्रयोगों का ही वर्णन किया जाएगा।

हीलियम द्वितीय पर पहला प्रयोग सन् १९३५ में किया गया जिसे रेंगती फिल्म का प्रयोग कहते हैं। चित्र में यह दिखाया गया है। हीलियम द्वितीय से भरी नांद में एक दूसरा छोटा बर्तन डाला गया है। यदि छोटे बर्तन के अन्दर हीलियम द्वितीय का धरातल बाहर के धरातल से नीचा हो तो, बाहर के बर्तन से द्रव छोटे बर्तन की दीवारों से रेंगता हुआ अन्दर आता है। इसके विपरीत, यदि बर्तन के अन्दर द्रव का धरातल बाहर के धरातल से ऊंचा हो तो, द्रव अन्दर से रेंगता हुआ बाहर जाता है। ऐसा तब तक होता है जब तक दोनों धरातल समान नहीं हो जाते। रेंगने वाली सतह की मोटाई बहुत ही कम अर्थात् ३ या ४ सेन्टीमीटर का दस लाखवां हिस्सा होती है।

सन् १९४१ में कैपिटजा नामक रूसी वैज्ञानिक ने हीलियम द्वितीय के एक और गुण को खोज निकाला। उसने बताया कि हीलियम द्वितीय अधिक ताप वाले स्थान से कम ताप वाले स्थान को जाता है। ताप के अन्तर के कारण ऐसा बहाव अन्य किसी द्रव में नहीं होता। ऊष्मा के इस प्रभाव के आधार पर एक अन्य प्रयोग किया गया जिसे फव्वारे का प्रयोग कहते हैं।

कांच की एक सँकरी नली में एक सिरे पर रुई भरकर 'एमरी' का चूरा कुछ ऊँचाई तक भरा गया जिससे कि वह सिरा एक छिद्रमय मार्ग का काम दे सके। नली के दूसरे सिरे को नुकीलारखा गया। इस नली को हीलियम द्वितीय की नांद में इस प्रकार से डुबाया गया कि रुई वाला सिरा द्रव में डूबा रहे तथा नली का कुछ हिस्सा द्रव

हीलियम द्वितीय की दो विचित्र प्रकृतियाँ : (बायें) एक खाली ट्यूब को द्रव हीलियम में जरा ही उतारने पर द्रव हीलियम स्वतः उसमें चढ़ आता है और (दायें) सतह से ऊपर छुआते रहने पर अन्दर भरा हुआ द्रव-हीलियम बाहर उतर आता है

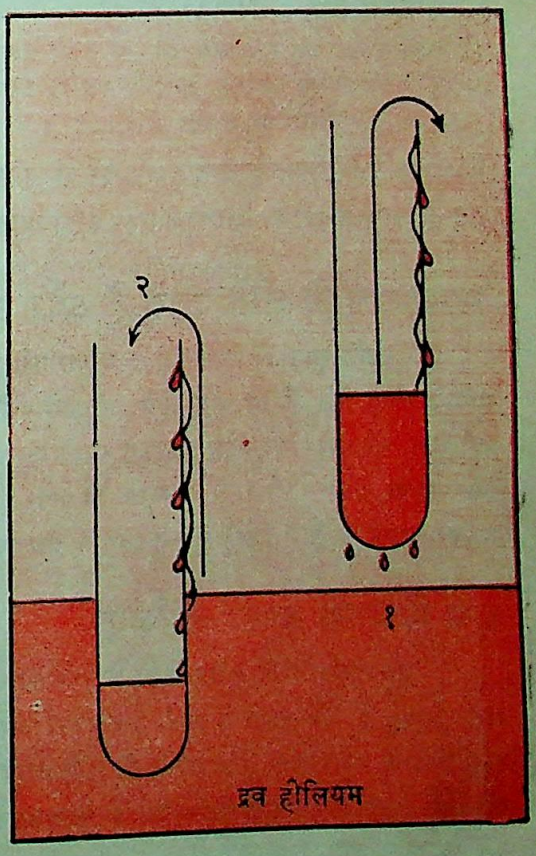

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

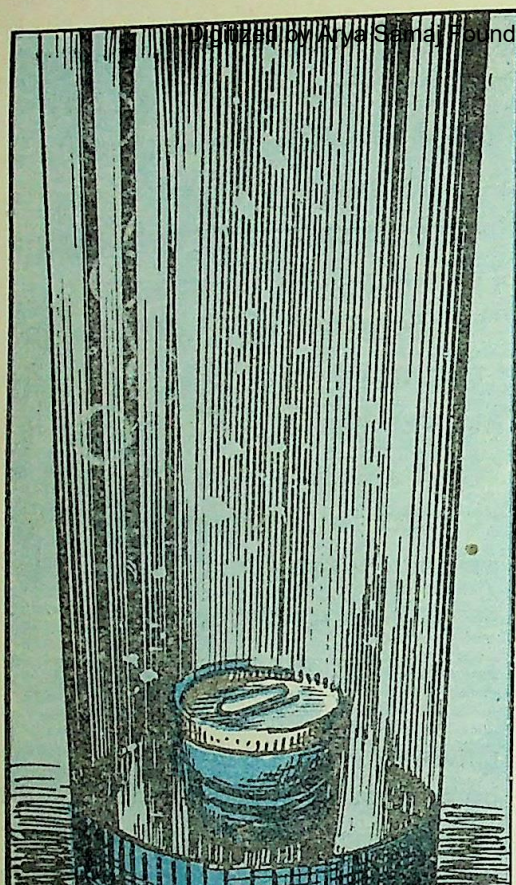

हीलियम द्वितीय, वह रहस्यमय अति-द्रव है जो केवल २·१९°K ताप पर ही एक जेली के रूप में प्राप्त किया जा सकता है

के बाहर रहे। नली के अन्दर भरे चूरे से ऊपर द्रव को गर्म करने के लिए एक तार का विद्युत हीटर लगाया। नली के अन्दर वाले द्रव को गर्म करने पर फव्वारे की तरह द्रव बाहर आने लगा।

पानी को नीचे स्थान से ऊँचे स्थान को फेंकने के लिए पम्प की सहायता ली जाती है। पम्प में धातु के एक पिस्टन को ऊपर-नीचे करना पड़ता है। फव्वारे वाले उपर्युक्त प्रयोग में बिना किसी यांत्रिक सहायता से द्रव ऊपर जाता है। अतः दुनियाँ का सबसे सरल और बहुत ही कम शक्ति से काम करने वाला पम्प, हम ऊपर के प्रयोग को कह सकते हैं।

लोहे की किसी छड़ के एक सिरे को हाथ में पकड़कर दूसरे को आग में डालने पर कुछ समय बाद हाथ जलने लगता है। ऊष्मा छड़ में से होती हुई हाथ तक पहुँचती है। अन्य धातुओं में भी ऊष्मा एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाती है। ताप की सबसे अच्छी चालक चांदी होती है। यह बहुत जल्दी गरम होती है। हीलियम द्वितीय चांदी से सैकड़ों गुना अच्छा ताप-चालक है।

हीलियम द्वितीय के आश्चर्यजनक गुण किसी भी साधारण द्रव से मेल नहीं रखते तथा दैनिक व्यवहार में आने वाली हमारी मान्यताओं के विरुद्ध हैं।

ग्रामोफोन से तोते पढ़ते हैं और छात्र भी

विदेशी भाषाओं के रसिक छात्र ग्रामोफोन की सहायता से तैयार पाठ के रिकार्ड सुन-सुनकर नयी भाषायें सीख लेते हैं तो अब तोते भी क्यों पीछे रहें ? वह जमाना लद गया जब तोते रटा करते थे—पढ़ो बेटा, सीताराम या बहुत हुआ तो मानो ट्यूशन के लिए किसी बूढ़े तोते के पास बिठा दिया जो रात-दिन उसके बोल रटते-रटते अभ्यास हो जाए। अब इन तोतों को भी जरूरी पाठ गीत आदि रिकार्ड में भरकर सुनाये जाते हैं जिन्हें सुन-सुनकर वे कण्ठस्थ कर लेते हैं।

धूप में पानी ठण्डा कीजिए

भूमध्यसागरवर्ती कुछेक देशों के निवासी यही प्रयोग करते हैं। वे चट्टी नामक जो मिट्टी के घड़े आदि बनाते हैं, उन पात्रों से पानी इस प्रकार रिसता रहता है कि घड़ा खाली तो हो नहीं और धूप में रखा होने से वह रिसता हुआ पानी सीधे ही वाष्प बनकर उड़ता जाए और अपने साथ अन्दर के पानी की गर्मी लेता जाए। इसी विधि-चक्र के फलस्वरूप घड़े के अन्दर का पानी काफी ठण्डा हो जाता है!

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्र-गगन में पृथ्वी

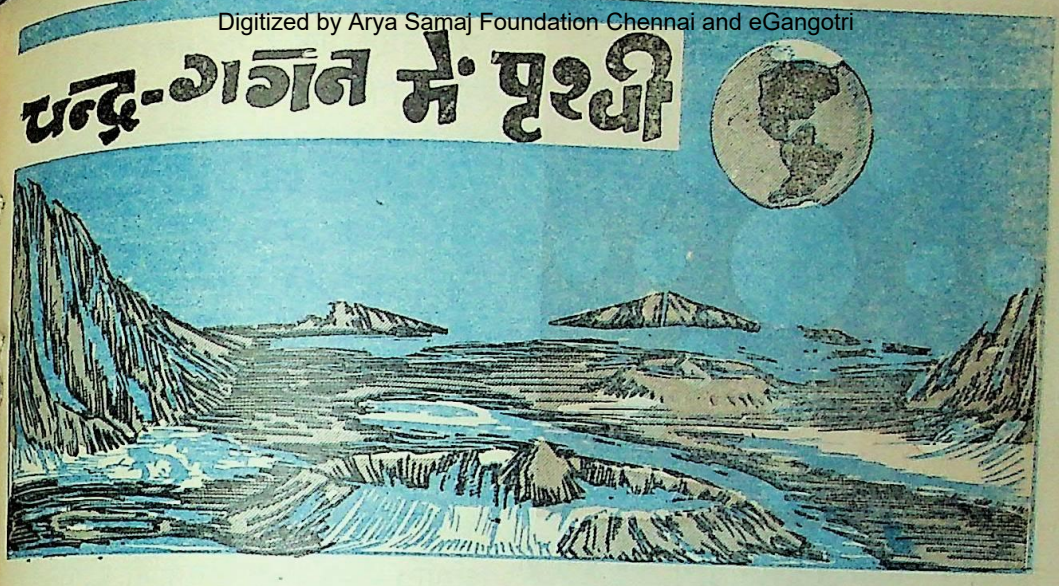

प्रेमलाल टण्डन

आशा है कि इसी दशक में मानव चन्द्रमा पर पदार्पण कर लेगा। तब हमें वहाँ देखने-जानने योग्य बहुत कुछ मिलेगा। पहाड़, घाटियां, दर्रे; मीलों चौड़े असमतल मैदान (जो भ्रमवश समुद्र ही समझे जाते रहे हैं) और ज्वालामुखी जैसी भौगोलिक विचित्रताएँ चन्द्रलोक की अपनी विशेषताएँ हैं जो हमें देखने को मिलेंगी।

उन सबसे बढ़ कर असाधारण और अपूर्व दृश्य तो चन्द्रमा के आकाश पर हमारी पृथ्वी के उदित होने पर उपस्थित होगा। जिस पृथ्वी को हम नीचे (क्या, सचमुच ही नीचे ?) छोड़ जाएँगे, वही जब चन्द्र-गगन की स्याह काली चादर पर उदित होगी तब निश्चय ही अनुपम दृश्य देखने को मिलेगा। यह बात कुछ अटपटी भले ही दिखे किन्तु सत्य यही है कि विशाल व्योम में नीचे-ऊपर जैसा कुछ भी नहीं है; केवल पृथ्वी, चन्द्रमा और ग्रहों की बदलती हुई अवस्थिति पर नीचे-ऊपर का आभास होता है।

पृथ्वी का व्यास चन्द्रमा से लगभग चार गुना बड़ा है। इसका अर्थ हुआ कि यहाँ हमें आकाश में चन्द्रमा जितना बड़ा दिखाई पड़ता है, चन्द्र-गगन पर हमारी पृथ्वी का गोला चारगुना बड़ा दिखेगा—व्यास में चारगुना अर्थात् कुल क्षेत्रफल में १३-१४ गुना बड़ा ! तब चन्द्रमा के आकाश पर चौदह गुना बड़ा पृथ्वीरूपी चन्दा कैसा अद्भुत दृश्य उपस्थित करेगा !

वैज्ञानिकों का कहना है कि चन्द्रमा के जलवायुहीन तल की अपेक्षा पृथ्वी की सतह अपने वायुमण्डल तथा समुद्र आदि के कारण सूर्य के प्रकाश को छः गुनी तीव्रता से परावर्तित करती है। इस हिसाब से चन्द्र-गगन पर पृथ्वी अपनी पूर्ण कलाओं में ६ × १४=८४ गुना अधिक प्रकाश देगी ! दूसरे शब्दों में हमारी पृथ्वी के आकाश पर ८४ चन्द्रमा एक साथ उदित हो जाएँ तब जितना प्रकाश हो, उतना प्रकाश अकेली पृथ्वी हमें चन्द्रमा पर दे देगी।

यह दूसरी भ्रमपूर्ण धारणा है कि चन्द्र-गगन पर पृथ्वी ऐसी दिखेगी जैसे स्कूलों में रखा हुआ भौगोलिक गोला जिस पर महाद्वीपों और महाखण्डों की रेखाएँ दिखाई देती रहें। लगभग ढाई लाख मील की दूरी पर खड़े हुए हम चन्द्रमा से पृथ्वी को इतना स्पष्ट देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

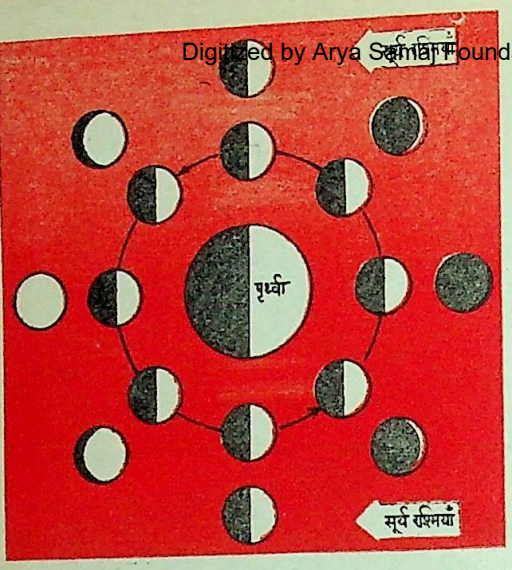

चन्दा के आकाश में हमारी पृथ्वी ठीक वैसी ही कलाएँ प्रदर्शित करेगी, जैसी धरती के गगन में हम चन्द्रमा की कलाएँ देखते हैं

पायेंगे, यह निरी कल्पना है। वहाँ तो सूर्य और चन्द्रमा की भाँति पृथ्वी भी एक प्रकाशमान गोला जैसी ही दिखाई देगी।

जन्द्रमा और पृथ्वी में और भी कई अन्तर हैं। हमारे आकाश में चन्द्रमा नित्यप्रति उदित और अस्त होता है, परन्तु चन्द्र-गगन में पृथ्वी एक ही स्थान पर स्थिर दिखेगी। इसका रहस्य यह है कि चन्द्रमा की कक्षीय और अक्षीय गतियों के समय समान हैं; अर्थात् वह जितने समय में (२९½ दिनों में) हमारी पृथ्वी की परिक्रमा पूरी करता है, अपनी धुरी पर भी उतने ही दिनों में एक चक्कर लगा पाता है। अतः जहाँ एक ओर चन्द्रमा के दिन और रात दो-दो सप्ताह के बराबर होते हैं, वहाँ दूसरी ओर उसका एक ही पक्ष सदैव पृथ्वी के सन्मुख रहेगा। इस हिसाब से हम महीनेभर चन्द्र-धरातल से पृथ्वी को देखते रहें तो भी पृथ्वी की अवस्थिति में कोई अन्तर नहीं आयेगा।

दूसरी बात यह है कि जिस प्रकार हमें अपने आकाश में चन्द्रमा की विभिन्न कलाएँ दिखती हैं, चन्द्राकाश में पृथ्वी भी अपनी कलाएँ प्रस्तुत करेगी। इस विषय में चन्द्रमा और पृथ्वी एक दूसरे के उलटे चलेंगे; अर्थात् जब पृथ्वी के आकाश में चन्द्रमा की अमावस्या होगी, चन्द्राकाश में पृथ्वी पूर्ण कलाओंयुक्त होगी। थोड़ा अन्तर इसमें भी रहेगा। पृथ्वी पर तो हमें अमावस के दिन चन्द्रमा पूर्णतः लुप्त मिलता है, किन्तु चन्द्र-गगन में पृथ्वी पूर्णतः लुप्त कभी न होगी। पृथ्वी का अमावस्या वाला दृश्य चन्द्रमा पर अनोखा ही होगा; अर्थात् पृथ्वी का पिण्ड तो अंधकार में डूबा रहेगा, किन्तु उसके चारों ओर का घेरा एक प्रकाशमान कंगन के रूप में दिखाई देगा। वह पृथ्वी का वलय कहलायेगा। उस प्रकाशमान वलय का कारण पृथ्वी का अपना वायुमण्डल होगा। सूर्य की किरणें जो अमावस्या की स्थिति में पृथ्वी के दूसरी ओर पड़ रही होंगी, वायुमण्डल द्वारा परावर्तित होकर गोल कंगन के रूप में पृथ्वी के काले बिम्ब को किनारे-किनारे प्रकाशमान करेंगी। वलय का वह दृश्य सचमुच अनुपम ही होगा।

चन्द्र के धरातल पर पृथ्वी के अमावस्या-काल में उसके गिर्द प्रदीप्त कंगन एक अनुपम दृश्य उपस्थित करेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग और पानी का जन्मजात बैर है। आग कमज़ोर पड़ी, तो उसे पानी धर दबायेगा और पानी कम पड़ा तो उसे आग हवा में उड़ा देगी और स्वयं अधिक भड़क उठेगी। मानव सम्पत्ति के लिए तो दोनों विनाशकारी हैं। कहीं-कहीं तो यह भी होता है कि आग बुझाने में ली गयी पानी की सहायता और भी मंहगी पड़ती है और स्थिति ऐसी बन जाती है कि 'आकाश से गिरे तो खजूर में अटके।' पानी की अधिकता, माल सम्पत्ति का इतना अधिक विनाश करती है जो अन्यथा अग्नि से कदाचित् न होता।

फिर भी पानी, पानी है। इसके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसकी सर्वप्रमुख विशिष्टता तो यही है कि इसकी आपेक्षिक ऊष्मा सृष्टि के किसी भी पदार्थ से अधिक है और इसका यही गुण अग्निशमन में

मदनलाल शर्मा

काम आता है। दूसरी विशेषता यह है कि यह चाहे जिस मात्रा में प्राप्य है। आग बुझाने में यह वैज्ञानिक दृष्टि रखना आवश्यक है कि आग प्रसारक पात्रों तथा माध्यमों को पानी की मार तभी तक दी जाये जब तक कि उनका ताप प्रज्ज्वलनांक से नीचा बना रहे। आवश्यकता से अधिक पानी बहाने पर अन्य सम्पत्ति भी हानिग्रस्त हो जाती है।

अग्नि-शमन के आरम्भिक साधन

बात का सूत्र २००० वर्ष से भी पूर्व के काल में मिलेगा जबकि इतिहास-प्रसिद्ध एलेक्जेण्ड्रिया के महान् वैज्ञानिक हीरो का नाम बहुप्रचलित था। उक्त हीरो के ही शिष्यों में टेसीबियस (Ctesibius) नामक एक कुशल इंजीनियर भी था जो अपने अनेक आविष्कारों के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध था। उसके द्वारा आविष्कृत अग्निशामक यंत्र आरम्भ में एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिचकारी अर्थात् सिरिंज (syringe) जैसा था जिसे ग्रीक लोग साइफो (sypho) कहते थे। उस सामान्य यन्त्र की क्षमता अत्यन्त सीमित थी; अतः यह आवश्यकता तो बनी ही रही कि जानमाल की रक्षा के लिए आग बुझाने तथा उसे उद्गम पर ही रोक देने के लिए समुचित यन्त्र तैयार किये जायें। एतदर्थ तरह-तरह के यंत्र और इंजन बनाये जाते रहे किन्तु प्रत्येक में कुछ न कुछ कठिनाई बनी ही रही। उन्हीं के अन्तर्गत दो जर्मन-बन्धु, जान और निकोलस ने प्रथम बार एक बड़ा पम्प तैयार किया जिसमें उन्होंने चमड़े का लम्बा हौज पाइप भी लगाया ताकि पम्प की टोंटी को आग के स्थल तक निकट से निकट ले जाया जा सके।

वे आरम्भिक पम्प भारी तख्तों पर जड़े रहते थे, इसलिए उन्हें आवश्यक स्थल तक गाड़ियों पर लादकर ले जाना पड़ता था। उनमें भी सुधार करके पहिये लगाये गये और आदमियों द्वारा धकेल कर पहुँचाये जाते रहे। वे पम्प भी बड़े होते-होते इतने भारी हो चले कि एक-एक को ढकेलने के लिए ३०-३२ आदमियों की आवश्यकता पड़ने लगी। तब १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उन्हें घोड़ों द्वारा खींचना आरम्भ हुआ। तब भी आदमियों का यह उपयोग अवश्य था कि तमाशा देखने वालों में से ही कुछेक को चुन लेते थे और आग बुझाने में उनसे भरपूर सहायता लेकर पारिश्रमिक के रूप में उन्हें भरपेट बीयर पिला देते थे।

फायर इंजन का सूत्रपात

१९०५ से लेकर १९१३ तक अग्निशामक के रूप में स्टीमइंजन ने प्रवेश किया और क्रमशः घोड़ों द्वारा खींचे जाने की झंझट भी शेष हो गयी। वे इंजन काफी क्षमतावान सिद्ध हुए और उनके होते हुए, दर्शकों में से लोगों की सहायता लेना भी आवश्यक न रहा। यह इसलिए भी करना पड़ा कि दर्शकगण और उनमें से बुलाये हुए सहायक व्यक्ति माल-सम्पत्ति की लूट और चोरी का लोभ संवरण नहीं कर पाते थे। उन स्टीम-इंजनों की स्मृति दिलाते हुए कुछ इंजन आज भी भूले-भटके प्रयोग में ले लिये जाते हैं, तब वे आधुनिक ब्रिगेड से किसी प्रकार पिछड़ते नहीं।

पेट्रोल तथा डीजल से चालित अन्तर्दाही इंजनों और सेन्ट्रीफ्यूगल पम्प के प्रवेश ने इस दिशा में नयी क्रान्ति उपस्थित कर दी। वे ही इंजन आज अधिक प्रचलन में हैं, क्योंकि वे लगभग ५०० से ९०० गैलन पानी, १०० पौंड प्रति वर्ग इंच के दाब पर प्रति मिनट फेंक लेते हैं। आज यद्यपि अधिकांश इसी सिद्धान्त पर बने फायर इंजन प्रयोग में आते हैं, किन्तु इनकी कार्यविधि में काफी सुधार होते रहे हैं। अब तो पानी की मोटी धार फेंकने की अपेक्षा गहरी और फैली हुई बौछारों का ऐसा बादल जैसा खड़ा कर दिया जाता है जो अधिक प्रभावयुक्त रहता है और पानी की अधिकता के कारण होने वाली हानि से भी रक्षा हो जाती है।

जब फायर-स्टेशन पर घण्टी घनघनाती है

तभी फायर ब्रिगेड का—अग्निशामक दल के एक-एक व्यक्ति का रोमांचकारी अध्याय आरम्भ हो जाता है। इन व्यक्तियों को सैनिक प्रशिक्षण से भी अधिक कष्टसाध्य ट्रेनिंग से गुजरना पड़ता है। इन्हें एक-एक क्षण की इतनी अधिक कीमत का भान होता है कि कर्तव्य के आगे ये सब कुछ भूले रहते हैं—यहाँ तक कि व्यस्त मार्गों पर तूफान की भाँति सरपट फायर इंजन दौड़ाते हुए ये किसी के दब जाने की चिन्ता नहीं करते। इन्हें ज्ञात रहता है कि इधर एक व्यक्ति की फिक्र करते में उधर आग में फंसे अनेक व्यक्तियों के प्रति अन्याय हो जायगा। लोग भी इस तथ्य को जानते हैं, अतः फायर इंजन का घण्टनाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

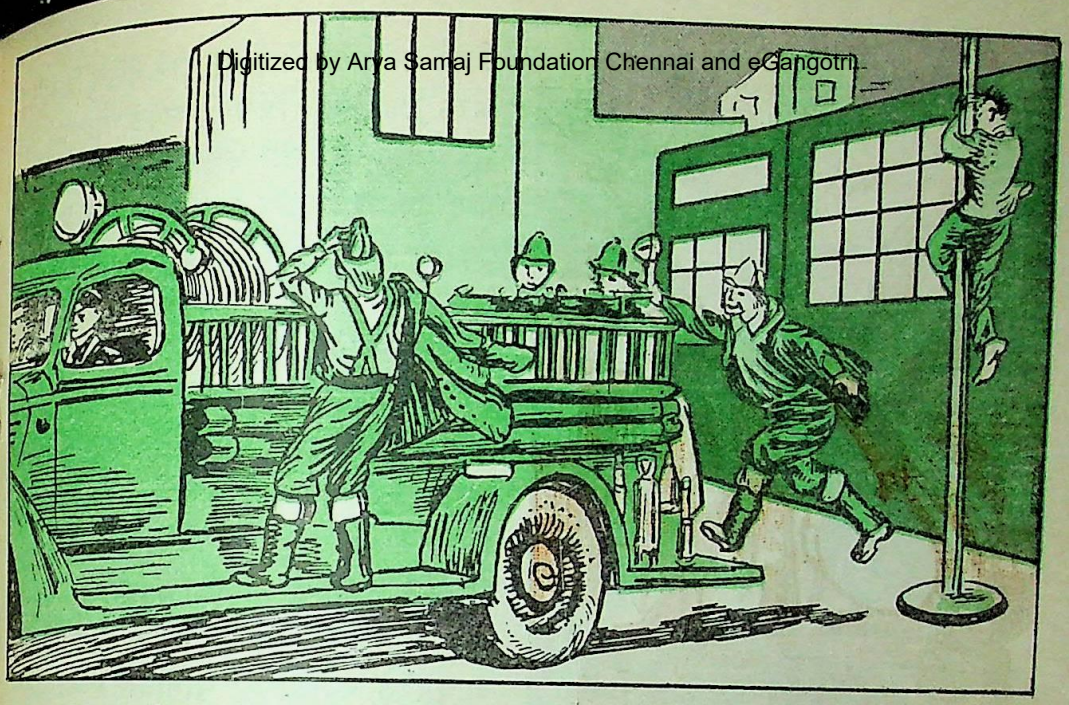

दम की दम में दमकल पर सवार हो जाना कितनी कठिन कवायद का काम है!

सुनते ही सड़क पर मानो काई सी फट जाती है।

आधी रात को अग्निसूचक घण्टी बजते ही पलक मारते इन व्यक्तियों को तैयार हो जाना पड़ता है। सोने से पहले ये अपनी पोशाक इंजन पर ही टिका रखते हैं। सोते से उठकर सीढ़ियां उतरने तक का भी अवकाश नहीं रहता, अतः मंजिलों के बीचोबीच पाइप के लट्ठे के सहारे नीचे आ फिसलते हैं और इंजन के रेंगते-रेंगते तथा चाल पकड़ते के दौरान में ही कपड़े पहन लेते हैं।

इनका फायर इंजन यथासम्भव सर्व साधन सम्पन्न होता है। स्वचालित लम्बी, ऊँची सीढ़ियां, केनवस का गोल घेरा, मोटर पम्प, अतिरिक्त हौज पाइप, सर्चलाइटें, विद्युतचालित आरियाँ, आक्सी-एसीटेलीनगन (फौलादी चद्दरें काटने के लिए) तथा फोम और गैस सिलेण्डर आदि (तेल, पेट्रोल की आग बुझाने के लिए, जो अन्यथा पानी से न बुझायी जा सकें) वायरलैस आदि अनेकानेक साधनों से वह इंजन सज्जित रखा जाता है। वायरलैस द्वारा सैकड़ों फुट की ऊँचाई पर चढ़ा हुआ कार्यरत व्यक्ति, नीचे खड़े अपने अधिकारी से अटूट सम्पर्क में बना रहता है और अधिकारी द्वारा ही कार्यसंचालन होता है।

रक्षकदल की योग्यता

दल के प्रत्येक व्यक्ति को कठिन कसौटी से गुजरना पड़ता है, यह ऊपर लिखा जा चुका है। व्यक्ति की लम्बाई कम से कम ५′ ७″ होना आवश्यक है। इस कार्य के लिए उसे तीन मास की विशेष ट्रेनिंग प्राप्त करनी पड़ती है और उसमें भी प्रवेश पाने से पूर्व शारीरिक और शैक्षणिक योग्यता की परीक्षा देनी पड़ती है। शारीरिक योग्यता में एक यह भी है कि वह १२ स्टोन अर्थात् १६८ पौण्ड के व्यक्ति को उठाकर कम से कम १०० गज तक दौड़ता हुआ ले जा सके। केवल पानी से ही बुझने वाली नहीं, अन्य विविध प्रकार की अग्नि का मुकाबला करना भी उसे सीखना पड़ता है। इन सबके अतिरिक्त यह तो प्रथमतः आवश्यक है कि वह अपनी साज-सज्जा, इंजन, उपकरण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आग में फंसे व्यक्ति को ढलानयुक्त इस पोली सीढ़ी में अन्दर ही अन्दर फिसलाकर सुरक्षित निकाल लेना, निश्चय ही नवीनतम सूझ है

फायर स्टेशन का कोना-कोना और कमरा चमाचम चमकता हुआ रखे।

जब आग, पानी से भी नहीं बुझती

तब कार्य और भी जटिल, एवं कठिन हो जाता है। तेल की आग ऐसी ही है जो पानी से बुझाये बुझना तो दूर, उलटे और फैल जाती है। छोटे रूप में वह आग, तेल की एक कड़ाही में लग सकती है और बड़े रूप में हजारों गैलन भरे तेल के टैंक, कुएँ और पाइपलाइन में भी लग सकती है। उस अवस्था में सबसे पहला प्रयत्न यह करना पड़ता है कि उस पर बजाय पानी फेंकने के, कोई वस्तु ऐसी फैलायी जाये जो कम्बल का काम करे और वायु के आक्सीजन से उसका संयोग विच्छिन्न कर दे। इसके लिए रासायनिक झाग, तरल कार्बन डाइआक्साइड तथा कुछ रासायनिक मिश्रणों का सूखा पाउडर आदि साधनों का उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाता है। प्रयोग-स्वरूप एक टूटे हुए अग्निग्रस्त वायुयान को लिया गया जिसमें १० हजार गैलन किरासन भरा हुआ था, जिसकी लपटें आकाश को लपक रही थीं। उस अवसर पर तरल कार्बन डाइआक्साइड द्वारा यद्यपि आरम्भ में आग दब तो गयी, किन्तु अदृश्य उठती हुई अति ज्वलनशील गैस के पुनः प्रज्ज्वलित हो उठने की पूरी आशंका थी।

इसकी अपेक्षा सूखे पाउडर का प्रयोग अधिक प्रभावशाली सिद्ध होता रहा है। इसे बनाने के लिए बाइकार्बोनेट आफ सोडा में जिन्क अथवा एल्यूमीनियम स्टीएरेट मिलाया जाता है। इतना ही प्रभावपूर्ण रासायनिक झाग भी रहता है। इसे बनाने के लिए प्रोटीन-आधारित पदार्थों को सोडावाटर की भाँति गैस-प्रभावित किया जाता है। वह पदार्थ कतलखानों से बाहर सरलता से मिल जाता है। ऐसे झागों के बुदबुदे जल्दी बैठ नहीं जाते और घण्टों साबुत बने रहते हैं। इनसे आग बुझाने वालों को यह सुविधा रहती है कि इनका आवरण, बाहरी हवा से आग का सम्पर्क बिलकुल दूर रखता है और जब तक वे आग को पूर्णतः बुझा नहीं लेते, ज्वलनशील धुँधवाती गैसों के पुनः प्रज्ज्वलित होने का भय नहीं रहता। अन्यान्य रासायनिक मिश्रणों और यौगिकों में कुछेक हैलोजन-यौगिक भी प्रयोगाधीन हैं। कार्बन टेट्राक्लोराइड और मिथाइल ब्रोमाइड में यह कठिनाई पायी गयी कि श्वास द्वारा उनका प्रविष्ट होना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। इनके स्थान पर क्लोरोब्रोमोमीथेन अत्यन्त कम हानिकारक पाया गया है, किन्तु यह खर्चीला अधिक है। अतः इस दिशा में नये प्रयोग किये जा रहे हैं।

फँसे हुए व्यक्तियों का छुटकारा

आग की लपटों में घिरे हुए व्यक्तियों को निकालना और ऊँची मंजिल से उन्हें नीचे पहुँचाना अत्यन्त ही दक्षता और सूझबूझ का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम है। रक्षकदल का व्यक्ति धुआँ और अग्नि जहरीली गैस में स्वयं ही घुटकर संकट में पड़ सकता है। इसके लिए उसे आक्सीजन-यंत्र से सज्जित होकर आना पड़ता है। इसके अतिरिक्त साधारण कपड़ों की पोशाक बड़ी आग के निकट न जाने देगी। अतः उस अवस्था में एस्बेस्टस की पोशाक पहने हुए अग्निशामक व्यक्ति लपटों के बीच भी अपना काम निश्शंक रूप से कर सकता है।

ऊँची मंजिल में फँसे हुए व्यक्तियों को नीचे लाने के लिए अभी तक प्रचलित साधन एक मजबूत केनवस के गोल घेरे का है। उस घेरे को दस आदमी गोल बांधे, खोले खड़े रहते हैं और ऊपर से फेंका हुआ व्यक्ति उसमें यों आ गिरता है मानो सरकस के झूले पर से जाल पर कोई कूद पड़ा हो। आधुनिक प्रयोगों में इसे भी आमूल बदला जा रहा है। इसके स्थान पर ठेठ ऊपर तक पहुँची हुई सीढ़ी में ही एक ओर ऐसा पोला, बन्द और पाइप जैसा मार्ग रहता है जिसमें से व्यक्ति को नीचे फिसला दिया जाता है। तब मालूम होता है मानो बच्चों की क्रीड़ा-वाटिका में फिसलने के ढाल पर कोई खेल-खेल में फिसल रहा हो।

इस केनवस की चादर पर ऊपर से फेंका हुआ, आग में फंसा व्यक्ति यों आ गिरेगा माना कोई सर्कस के झूले से नीचे जाल पर कूदा हो

जैसी आग, वैसा बुझाना

ऊपर कहा जा चुका है कि तेल की लगी आग, पानी से बुझती नहीं, उलटे फैलती-बढ़ती है। इसके लिए ऊपर वर्णित विभिन्न साधनों के अतिरिक्त नाइट्रोग्लीसरीन का भी उपयोग सुविधापूर्ण होने से काफी प्रचलित है। नाइट्रोग्लीसरीन का एक बड़ा ढोल (drum) आग के मूल स्थान तक ले जाया जाता है और वहाँ दूर से विद्युत द्वारा उसका विस्फोट करा दिया जाता है। विस्फोट होते ही नाइट्रोग्लीसरीन आग की लपटों को गिन-चुनकर दबोच लेता है और आग को उसकी जड़ पर ही काबू में ले लेता है।

कभी-कभी बन्दरगाहों के गोदी-गोदामों पर लगी आग को बुझाने के लिए फायर ब्रिगेड का वहाँ तक पहुँचना सुविधाजनक नहीं हो पाता। उस अवस्था में अग्निशामक जहाज सहायता को आता है। ऐसे जहाज गोदी के निकट सेवार्थ प्रस्तुत रहते ही हैं। तब समुद्री पानी की मार के आगे आग के पांव उखड़ जाते हैं। जंगल की आग अर्थात् बड़वानल भी कम भीषण नहीं होता। वहाँ तो अग्निशामकों का पहुँचना भी प्रायः अत्यन्त कठिन रहता है। तब अग्निशामकों का हवाई-दल सहायता को जाता है। इस दल को पैराट्रूप कहते हैं। छतरियों द्वारा ये हवाबाज आग के मोर्चे पर हवाई जहाज से कूद पड़ते हैं और आग की पकड़ से बाहर ही, ५०० फुट की ऊँचाई से अपना काम कर जाते हैं।

आटोमैटिक अग्निशमन

घरों, दूकानों के छोटे-बड़े गोदामों में ऐसे उपकरण लगाये जा रहे हैं जो लगी आग, स्वयं ही बुझा देने में समर्थ हैं। इस प्रयोजन के लिए गोदामों की छतों में पानी के पाइप का फिटिंग एक जाल के रूप में किया जाता है और उसमें जगह-जगह पर बिजली के फ्यूज सरीखे कोमल ढक्कन फव्वारे की भाँति पानी फेंकने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोदाम की छत में फिट किया हुआ अग्निशामक फ्यूज अग्नि की तीव्रता बढ़ते ही पानी का फव्वारा खोल देता है और घंटी बजाकर पहरेदार को सावधान कर देता है

वाल्वों पर लगा दिये जाते हैं। आग के लगते ही और उसकी लपटों के छत को छूते ही वे ढक्कने पिघलकर गिर जाते हैं और वाल्व खुलकर पानी फेंकने लगते हैं। थर्मोस्टेट के सिद्धान्त पर बनाया हुआ यह उपकरण साथ ही साथ बिजली की घण्टी भी घनघना देता है और यों गोदाम के चौकीदार और निकट के व्यक्ति तुरन्त उस ओर दौड़कर आग को बढ़ने से पहले ही दबा लेते हैं।

परमाणु द्वारा अग्नि-संकेत

सब क्षेत्रों में पहुँचने वाला और आज के वैज्ञानिक का सबसे समर्थवान सेवक—परमाणु भी आग बुझाने में अपना बहुत बड़ा योग देने लगा है। इसका बना उपकरण एक सिलिण्डर के रूप में होता है जिसके अन्दर की वायु एक रेडियो समस्थानिक द्वारा विकीरित कणों से भरपूर रहती है। साधारणतया अकेली वायु विद्युत-वहन नहीं करती, किन्तु रेडियो सक्रिय कणों की उपस्थिति में विद्युत-वाहक बन जाती है। आग के आरम्भ होते ही रेडियो-सक्रिय कणों में हलचल मच जाती है और सिलिण्डर के दोनों विद्युदाग्र अपना कार्य कर देते हैं, अर्थात् उनके द्वारा प्रसारित विद्युत तीन काम एक साथ करती है, पानी के फव्वारे खोल देती है, खतरे की घण्टी बजा देती है और जिस नम्बर के गोदाम में आग लगी हो, उसका नम्बर लाल रोशनी द्वारा बाहर लगी तख्ती पर चमका देती है। अनुमान है कि ऐसा एक उपकरण बगैर मरम्मत के, २०० वर्ष तक बखूबी काम दे सकता है। दूसरी उल्लेखनीय विशेषता इसमें यह है कि यह सैकड़ों कमरों की रखवाली अकेला एक ही कर सकता है और आग के उद्गम स्थल का पता बिलकुल सही रूप से अग्निशामकदल को बता सकता है, जिसे अन्यथा उस भगदड़ के बीच, खोजने में असुविधा ही होती।

स्पष्ट है कि २००० वर्ष पूर्व के हस्त-चालित पम्पों और दर्शकों की सहायता से बाल्टियाँ भर-भरकर आग बुझाने के तरीकों से आरम्भ होकर आज के परमाणविक साधनों तक सिद्धान्तः तो आग बुझाने की विधि में कोई बड़ा अन्तर नहीं पड़ा; केवल साधन और सुविधाएँ अवश्य चमत्कारिक रूप से परशोधित हुई हैं। इन साधनों में अभी भी जितनी और दक्षता एवं सम्पन्नता प्राप्त की जाये, उतना ही आग से होने वाले विनाशों से बचा जा सकेगा।

अत्याधुनिक अग्निशामकों के दो नमूने : (दायें) सूखे पाउडर से आग बुझाने वाला यंत्र; (बायें) एक विद्युतचालित यंत्र है जो आग लगने की सूचना दे देता है और छोटी, सामान्य आग को स्वयं ही बुझा देता है, अन्यथा आग बढ़ने पर भी उसे तब तक नियन्त्रण में रखे रहता है, जब तक अग्निशामक दल आ न जाय (१. ठण्डी कैथोड ट्यूब, २. अन्दर का आयन-कक्ष ३. बाहर का आयन-कक्ष)

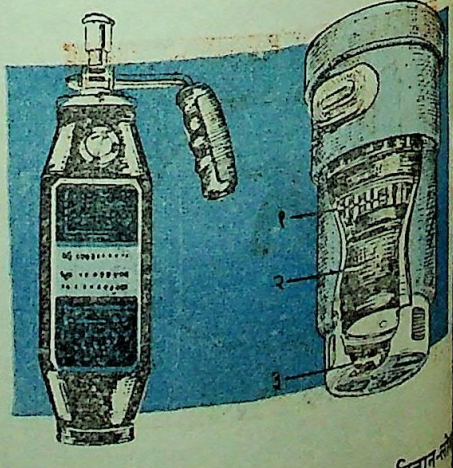

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आओ लताएँ लगायें

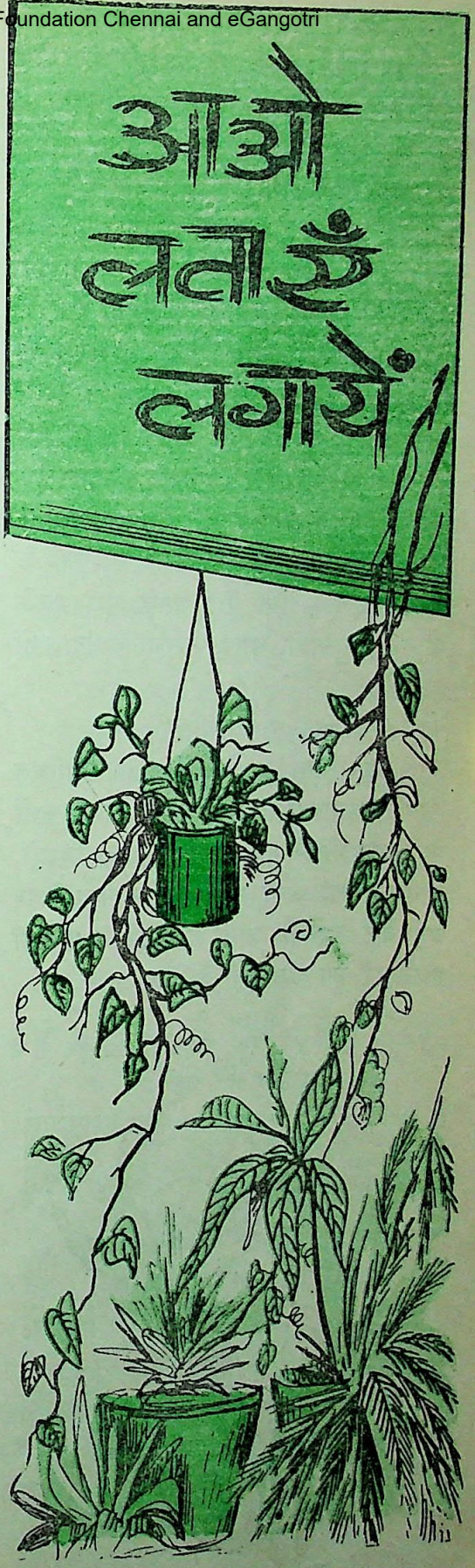

लताओं से उद्यानों और घरेलू बाग-बगीचों का सौन्दर्य बढ़ता ही है। हम घर के दरवाजों, बगीचों तथा दीवारों पर रंग-बिरंगे फूलों की लताएँ लगाकर शोभा बढ़ा सकते हैं। किसी भी स्थान की सौन्दर्यवृद्धि करने में लताओं का बहुत बड़ा हाथ होता है। सजावट की दृष्टि से इनका विशेष महत्त्व होता है। इनके लगाने, फैलाने और लालन-पालन में विशेष ज्ञान और कौशल आवश्यक है।

किसी भी लता को लगाने से दो महीने पहले लगभग दो फुट व्यास का और छह फुट गहरा गड्ढा तैयार कर लेना चाहिए। गड्ढा बन जाने पर उसका एक तिहाई भाग मिट्टी से और एक तिहाई भाग खाद से भरकर शेष तिहाई भाग खाली छोड़ देना चाहिए। तेज सर्दी-गर्मी के दिनों को छोड़कर वर्षभर किन्हीं भी दिनों, कोई भी बेल लगायी जा

दुर्गाशंकर त्रिवेदी

सकती है। वैसे इस कार्य के लिए वर्षा के दिन अधिक उत्तम रहते हैं।

लताओं को अपनी रुचि के अनुसार फैलाने और चढ़ाने के लिए जगह-जगह पर सहारों की आवश्यकता पड़ती है। यदि बेल ऊपर ही ऊपर बढ़ती जा रही हो और नीचे की जगह खाली छूट रही हो, तो कुछ ऊपर से बेल को काट देना चाहिए। इससे फैलाव अच्छा होगा और नीचे की खाली जगह भी भर जायेगी। अनावश्यक शाखाओं को भी बीच-बीच में काटते रहना चाहिए।

वर्षा के अतिरिक्त ऋतुओं में आवश्यकतानुसार बेल की सिंचाई करते रहना चाहिए तथा सूखे-गले खर-पतवार हटाकर गुड़ाई, सफाई भी कर देनी चाहिए। इससे बेल स्वस्थ रूप में फूले-फलेगी। निम्न पंक्तियों में कुछेक आकर्षक लताओं के विवरण प्रस्तुत हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुगेन वाइली (*Bougain Villea*)

यह काँटेदार लता है, किन्तु गहरे रंगीन पुष्पों के कारण इसे सभी लोग पसन्द करते हैं। इसीलिए यह बड़े चाव से लगायी जाती है। इसे दरवाजों के दोनों ओर प्रवेश द्वार के रूप में लगाया जाता है। साधारणतया यह बेल १५-२० फुट तक ऊँची जाती है। अतः इसे सहारे की विशेष आवश्यकता रहती है।

इसका रोपण बीज द्वारा तथा कलम की सहायता से भी किया जाता है। इसकी कलम वर्षा के दिनों में लगानी चाहिए। इसमें वर्ष भर फूल आते रहते हैं। नवम्बर से अप्रैल तक तो फूलों की भरमार रहती है। यद्यपि इसके फूलों में सुगन्ध नहीं होती फिर भी फूलों के रंग मनमोहक होते हैं। इसके फूल हलके जामुनी, गुलाबी, लाल, नारंगी आदि रंगों के होते हैं।

जूही (*Jasminum Auriculetum*)

यह अत्यन्त प्रिय बेल है। इसके सुगन्धित फूलों की मालाएं बनायी जाती हैं। इसके फूलों का अर्क भी निकाला जाता है। दरवाजों, दीवारों तथा अन्य स्थलों पर सहारा देकर यह बेल चढ़ायी जाती है। इसकी पत्तियाँ गहरे हरे रंग की होती हैं।

मनमोहक जूही की बेल राहगीरों को दूर ही से आकृष्ट कर लेती है

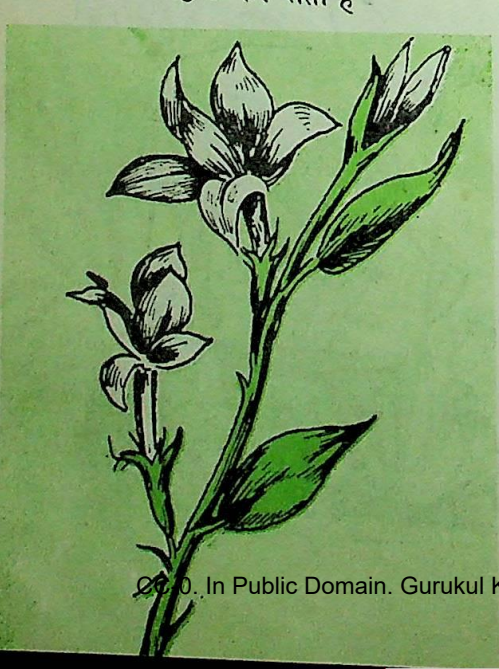

यह बेल अधिकतर कलम द्वारा लगायी जाती है। इसकी भी कलम वर्षा के दिनों में लगानी चाहिए। पौधों के मध्य ५-६ फुट का अन्तर रखना चाहिए। इस बेल में अप्रैल से अगस्त तक छोटे-छोटे सफेद तथा सुगन्धित फूल लगते हैं।

रेल्वे क्रीपर (*Railway Creeper*)

यह बेल भी वर्षभर फलती है। बगीचों में, घरों की दीवारों और बरामदों पर सहारा देकर यह बेल चढ़ायी जाती है। १५-२० फुट तक यह बेल आसानी से चढ़ जाती है।

इसे भी कलम द्वारा सरलता से बोया जा सकता है। यह बेल बड़ी शीघ्रता से बढ़ती है। इसे लगाते समय भी बीच-बीच में ५-६ फुट का अन्तर छोड़ना चाहिए। इसमें सितम्बर से मार्च तक फूल लगते हैं। उन दिनों यह फूलों से लदी-लदी रहती है। इसके भी फूल गंधहीन होते हैं, किन्तु आकर्षक रंगों के कारण यह पसन्द की जाती है।

चमेली (*Jasminum Grandiflorum*)

चमेली की प्रसिद्धि सर्वमान्य है। इसके फूलों की मालाएं तथा गजरे आदि बनाये जाते हैं। फूलों से सुगन्धित तेल भी तैयार किया जाता है। दरवाजों, दीवारों तथा बरामदों पर इसे सहारा देकर लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ छोटी, हरी और आकर्षक होती हैं। औद्योगिक पैमाने पर इस बेल की खेती भी की जाती है।

इसे वर्षा के दिनों में कलम द्वारा लगाया जाता है। पौधों के मध्य ५-६ फुट का अन्तर छोड़ना आवश्यक है। इस बेल में वर्षा तथा गर्मियों में फूल आते हैं। नन्हे फूल देखने में जितने छोटे होते हैं, सुगन्ध में उतने ही तेज होते हैं। फूल आरम्भ में लाल किन्तु, बाद में सफेद हो जाते हैं।

रंगून क्रीपर (*Rangoon Creeper*)

यह भी एक लोकप्रिय लता है। इसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरवाजों, बरामदों पर सहारा लगा कर चढ़ाया जाता है। यह बेल भी शीघ्रता से फैलती है। इसे कलम द्वारा रोपा जाता है। इसकी जड़ें लगभग ६ सप्ताह में जड़ पकड़ लेती हैं और दूसरे स्थान पर ले जाने योग्य दृढ़ हो जाती हैं।

यह बेल भी पूरे वर्ष फूल देती है। ग्रीष्म तथा वर्षा के दिनों में अधिक फूल आते हैं। इसके फूल गुच्छाकार बनते हैं और विशेषत: रातों को तीव्र सुगन्ध फैलाते हैं। फूल आरम्भ में सफेद, पीले या हलके गुलाबी होते हैं, बाद में गहरे लाल रंग के हो जाते हैं।

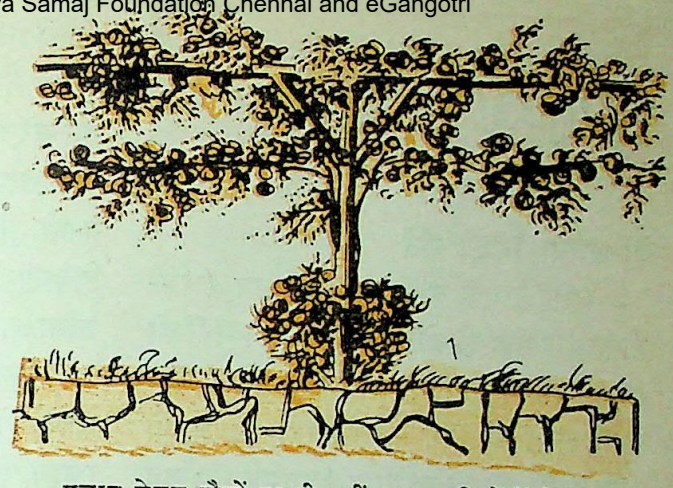

गुलाब केवल पौधों पर ही नहीं, कुछ जातियों में बेल की भाँति भी फैलता-बढ़ता है

गुलाब-लता (*Climbing Roses*)

यह लता तो दूर ही से, दर्शन मात्र से दर्शक को मोह लेती है। इसके फूल भीनी-भीनी सुगन्ध से वातावरण को सुरभित किये रहते हैं। इसे भी वर्षा के दिनों में कलम द्वारा लगाया जाता है। पौधों के मध्य ६-७ फुट का अन्तर छोड़ना आवश्यक है। समय-समय पर गुड़ाई, सिंचाई तथा सफाई इसके लिए विशेष आवश्यक है।

यह बेल वर्ष में दो बार फूल देती है। जनवरी से अप्रैल तक विशेष मात्रा में फूल आते हैं। जब भी यह लता फूल दे चुके तब सूखे, मुरझाए पत्तों, फूलों आदि को और सूखी शाखाओं को काटकर साफ कर देना चाहिए।

इसके फूल सफेद, गुलाबी, पीले, नारंगी तथा लाल रंगों में खिलते हैं। फूलों का उपयोग मालाओं में तो होता ही है, अर्क, शर्बत, गुलकन्द तथा ओषधियों में भी होता है। इसका भी औद्योगिक पैमाने पर उत्पादन करने के लिए इसकी खेती की जाती है।

लता कोई भी हो, कुशलता से और सुचारु रूप से लगायी जाने पर न केवल अपने स्थान की, बल्कि चहुँ ओर की भी शोभावृद्धि करती है। ●

'कागद हो तो बांच ल्यू'

मीराबाई के कथनानुसार कागज पर लिखा तो सभी बांच (पढ़) सकते हैं, किन्तु आधुनिक एलेक्ट्रानिक यन्त्रों की सहायता से मन की बात भी मापी जा सकती है। उदाहरणार्थ, प्रयोगकर्ता ने पूछा—'सिकन्दर के घोड़े का नाम ?' तो उत्तरदाता को दिमाग पर जोर देना पड़ा और प्रश्न दोहराये जाने पर ही उसने उत्तर दिया—'बुसीफेलस।' तीसरा प्रश्न—'चार को चार से दस बार गुणा करें तो क्या फल होगा ?' उत्तर मिला—'प्रश्न लम्बा है, लिखकर बताया जा सकता है।'

अन्ततः प्रयोगकर्ता ने मशीन पर बने ग्राफ को दिखाते हुए स्पष्ट कहा—'यह टेढ़ी रेखा पहले प्रश्न पर जोर देने की, दूसरी सम रेखा तुरन्त उत्तर देने की और तीसरी टेढ़ीमेढ़ी रेखा उत्तर न दे सकने की आपकी मनःस्थिति बताती है।' कहिए पढ़ ली न मन की बात !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

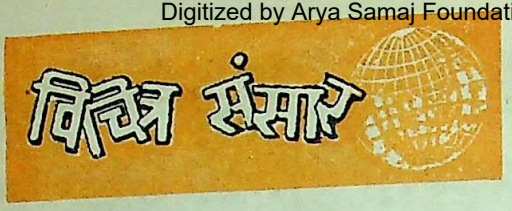

बेसिर, बा-पैर की बातें

बात है एक मुर्गी की, मिशिगन (अमरीका) के एक बड़े होटल-मालिक की मुर्गी की जिसने सिर कटा दिया लेकिन जान न दी और देखनेवालों को हैरत में डाले रही—दिन, दो दिन नहीं, पूरे सत्रह दिन ! सामान्यतः यह असम्भव ही है कि कोई भी प्राणी सिर खोकर जीवित रह जाये ; किन्तु वह मुर्गी ऐसी ही थी।

हुआ यह कि उस होटल में नित्य नियम के अनुसार इतवार की खास दावत के लिए छंटकर मोटी-ताजी कुछ मुर्गियाँ हलाल होने के लिए लायी गयीं। बाबर्चीखाने में ले जाने से पहले यह नियम था कि उनकी टाँग पकड़ कर, फर्से से गर्दन उड़ाकर बाकी जिस्म धोने और साफ करने के लिए नौकरानी को दे दिया जाता था। उसी कार्य में व्यस्त नौकरानी जब एकाएक चीखकर बाहर भागी तो मालिक और बावर्ची मामला देखने के लिए बाहर आये। नौकरानी के कहने पर उन्होंने अन्दर जो कुछ देखा उससे दांतों तले अंगुली दबाते रह गये। उन्होंने देखा कि सिर-कटी मुर्गियों के ढेर में से एक मुर्गी, मानो कुछ हुआ ही नहीं, इस तरह बड़े मजे से कमरे के चक्कर लगा रही थी !

होटल-मालिक ने बड़े जतन से उसे पाला-पोसा। उसकी ग्रासनली में भोजन प्रवेश कराता रहा और यह देखता रहा कि किसी प्रकार नली का छिद्र न रुंध जाये। समाचार पत्रों में मुर्गी की वह सनसनीखेज खबर पढ़ कर हजारों दर्शक दूर-पास से उसे देखने आते रहे। मुर्गी भी इसी बीच अपनी मस्ती में खेलती-खाती रही, परों को संवारती रही, कुछ कुकड़-कूँ भी करती रही। सत्रहवें दिन किसी नौकर की असावधानतावश उसकी श्वास नली का छिद्र बन्द हो जाने के कारण वह मर गयी—सचमुच ही मर गयी इस बार!

तत्पश्चात् कैलीफोर्निया और इलिनाय से भी ऐसे एक-एक अति विचित्र उदाहरण के विवरण प्राप्त हुए।

कागा सब तन खाइयो

चुन-चुन खाइयो मांस—वाला वाक्यांश कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कौओं के स्थान पर वे गिद्ध ऐसे ही अभ्यस्त होते हैं कि अपनी गिद्धदृष्टि से ही दावत की घड़ी को पहचानकर झुण्ड बांधे हुए आ पहुँचते हैं। बम्बई में पारसी कौम के लोगों को ढूंढ़ने नहीं जाना पड़ता, सहज ही मिल जाते हैं। उनका समाज, उनके रीति-रिवाज सब कुछ निराला और अलग ही दिख जाता है। बम्बई स्थित मलाबार हिल की नन्ही पहाड़ियों पर पाँच टावरों के रूप में इनका समाधि-स्थल छिपा हुआ है, जहाँ किसी भी असम्बन्धित व्यक्ति के लिए प्रवेश निषिद्ध है। उसी समाधि-स्थल पर ये शव-संस्कार करते हैं, किन्तु सर्वथा निराले रूप में। अग्निपूजक होने के नाते ये लोग अग्नि को और जल को भी इतना पवित्र मानते हैं कि उसमें शव जैसी अपवित्र वस्तु का प्रवेश नहीं कराते। भूमि में भी शवों को नहीं गाड़ते। ये मानते हैं कि जिस शरीर ने हमें जीवित रहते सुख प्रदान किया, वही शरीर मृत्योपरान्त भी यदि किसी को सुख पहुँचाये तो उससे बढ़कर सद्गति क्या हो सकती है ? अतः वे शव को उस स्थल पर छोड़ आते हैं जहाँ एक घण्टे से कम ही समय में गिद्धों की टोली उसका संस्कार कर देती है और अपनी दावत भी। शेष रहे कंकाल को तत्पश्चात् एक निर्धारित कुएँ में फेंक दिया जाता है, जहाँ वह समय पाकर भूमिसात् हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमशीत पर चरम ताप

दक्षिणी ध्रुव को भूमण्डल का सर्वाधिक शीत-क्षेत्र माना जाता है जहाँ हिमांक से भी काफी नीचे पारा स्थायी रूप से गिरा रहता है। वहाँ ऊष्मा की उपस्थिति एक हास्यास्पद कल्पना कही जा सकती है, किन्तु यह एक प्राकृतिक वैचित्र्य ही माना जायगा कि वहाँ भी कुछ दिन तो ऐसे आते ही हैं जब इतना अधिक ताप पड़ता है जो भूमध्यरेखा पर भी अपने चरम पर नहीं पड़ता होगा !

वियेना यूनिवर्सिटी के डा. ज्यूलियस हेन (Dr. Julius Hann) ने अपने संस्मरण में लिखा है कि २२ दिसम्बर का दिन दक्षिणी ध्रुव के लिए भूमध्यरेखीय किसी भी स्थल के सर्वाधिक तप्त दिवस से भी अधिक तप्त रहता है, क्योंकि नारंगी के आकार की यह पृथ्वी ध्रुवों पर चपटी होने के कारण जब घूमते-घूमते सूर्योन्मुख हो जाती है, तब सूर्य के इतने निकट होती है कि अन्य कोई भी बिन्दु, वर्ष के किसी भी दिन उतना निकट नहीं होता। परिणामतः उस दिन वहाँ का ताप कल्पनातीत रूप से अधिक रहता है।

दुधारू गाय, जो दो-धारू भी थी

दूध देती रहने के कारण प्रत्येक गाय को दुधारू पशु कहलाने का अधिकार है। प्रकृति के वैचित्र्यस्वरूप एक ऐसी भी गाय जीवित रहने का उल्लेख प्राप्य है जो सच्चे अर्थ में दो-धारू भी थी, अर्थात् दो ओर से दूध देती थी। उसमें विचित्रता यह थी कि उसके चार थन साधारणगत नीचे की ओर, पिछली टांगों के मध्य तो थे ही, चार का एक चौगुट्ट, मानो डुप्लीकेट सैट, पीठ पर भी था ! ऐसा भी नहीं कि वे हाथी के दिखाने वाले दांतों की तरह शोभामात्र के लिए हों ; बल्कि उनसे धारा-प्रवाह दूध भी प्राप्त किया जाता था !

सातों अंगुलियाँ एक-सी नहीं होतीं

स्पेन का सरवेरा - डी - बीटरेगो (Cervera de Buitrago) नामक गाँव इसलिए प्रसिद्ध है कि वहाँ के सभी लोग पाँच नहीं, सात अँगुलियों वाले हैं। हाथ-पाँवों के प्रत्येक पंजे पर एक अँगूठा और छः अँगुलियाँ होने से वे हमारी भाँति गिनती दस-दस की नहीं, बारह-बारह की करते हैं। हमारे लिए उनकी यह बात जितनी विचित्र है, उनके लिए हमारी पाँच-पाँच अँगुलियाँ होना भी उतनी ही विचित्र बात है। अतः जब भी हम जैसा कोई उनके बीच पहुँचता है, सबसे पहले वे उसकी अँगुलियाँ गिनते हैं और समझते हैं इन परदेशियों की भी क्या अजब दुनिया है। इसी कारण वे लोग विवाह भी परस्पर में ही करते हैं।

गोलमेज कान्फ्रेन्स, चिम्पान्जियों की

जरा गौर से देखिए, क्या ठाट से आठों के आठों मानो गोलमेज परिषद में बैठे हैं और न जाने किस-किस क्षेत्र के प्रतिनिधि हैं ! पहचान ही गये होंगे कि ये चिम्पान्जियों की मजलिस है—वे ही चिम्पान्जी जिन्हें बुद्धि-कौशल में मानव के पश्चात् ही द्वितीय स्थान प्राप्त है।

गोलमेज पर, चाय की चुस्कियों के बीच, सब कुछ काम स्वयं ही करते हुए, ये कदाचित् इस चर्चा में व्यस्त हैं कि अजायबघर की चारदीवारी में कैद रहे लम्बा अर्सा हो गया और अब मुक्ति का क्या उपाय हो सकता है ?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

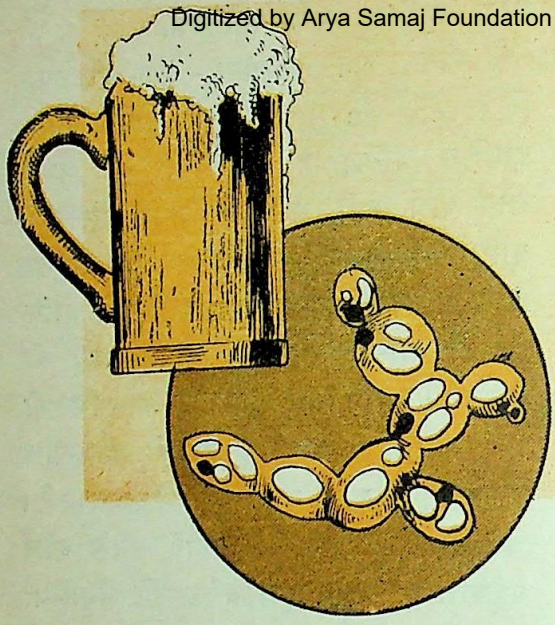

प्रकिण्व

सत्यकुमार

हमारे शरीर में प्रतिक्षण अनेक क्रियाएं-प्रतिक्रियाएं होती रहती हैं। देखा जाये तो हमारा शरीर एक रासायनिक उपकरण है जिसमें आक्सीकरण, अवकरण तथा संश्लेषण आदि क्रियाएं निरन्तर चलती रहती हैं। कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, शर्करा तथा वसा आदि का उपापचयन हमारे शरीर में होता ही रहता है। यदि एक गिलास पानी में चीनी डालकर रख दिया जाये तो काफी समय तक उसमें कोई परिवर्तन न हो पायेगा, किन्तु वही चीनी हमारे शरीर में पहुँचते ही दहन-क्रिया में घिर जाती है और फलतः हमारे लिए शरीर-शक्ति तथा अन्य उपयोगी पदार्थों में परिणत हो जाती है।

इसी प्रकार पौधों में भी सामान्य ताप और अवस्था पर क्रिया-प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं। प्रश्न होगा कि ऐसा क्यों होता है, तो इसका उत्तर यह है कि हमारे शरीर और पौधों की जैव-कोषाएं इस निरन्तर चलने वाली प्रक्रियाओं के लिए उत्तरदायी हैं। इन क्रियाओं को बाहर से नियंत्रित अथवा परिवर्तित नहीं किया जा सकता। ये तो अपनी संरचना के अनुसार स्वतः ही चलती रहती हैं। उन जीवित कोषाओं द्वारा जटिल कार्बनिक यौगिक बनते हैं और क्रमशः अन्यान्य उपयोगी पदार्थ भी बनते जाते हैं। वे पदार्थ प्रकिण्व अर्थात् एन्जाइम (enzymes) कहलाते हैं। एन्जाइम का अर्थ है खमीर के अन्दर, क्योंकि अधिकांश प्रकिण्व खमीर से ही प्राप्त होते हैं।

सर्वप्रथम इटालियन वैज्ञानिक स्पैलन्जनी ने १७८३ में देखा कि कुछ पक्षियों के अग्नाशय-रस के द्वारा उनका खाया हुआ मांस गल कर रह जाता है। फिर १८९७ में बुकनर ने सिद्ध किया कि शर्करा का किण्वन खमीर द्वारा हो जाता है, अर्थात् उस क्रिया में जीवाणुओं की उपस्थिति अनिवार्य नहीं थी।

एक प्रकार से प्रकिण्वों को हम जीवित कोषाओं द्वारा उत्पादित कार्बनिक उत्प्रेरक कह सकते हैं। प्रकिण्वों को जैविक उत्प्रेरक तो कहते ही हैं। हल्दाने के अनुसार प्रकिण्व विलेय तथा श्लेषक आदि कार्बनिक उत्प्रेरक हैं जो रासायनिक प्रक्रियाओं को वेग प्रदान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

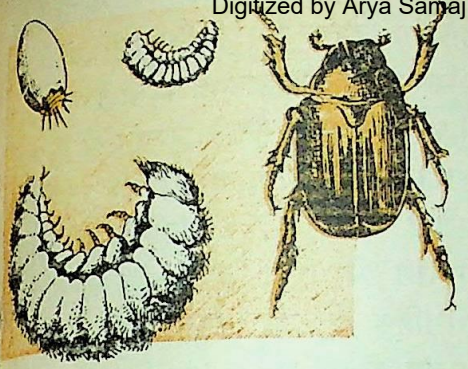

खमीर भी एक प्रकिण्व ही है। इसका पोषण गुबरीला के जिस अण्डे को मिला है, वह पोषणविहीन दूसरे अण्डे से कहीं अधिक स्वस्थ और पुष्ट है

करते हैं, किन्तु स्वयं अपरिवर्तित रहते हैं।

प्रकिण्वों की प्रकृति प्रोटीनमयी होती है। एक प्रकार के प्रकिण्व एक ही प्रकार की क्रिया को उत्प्रेरित करते हैं जैसे—यूरिएज केवल यूरिया को अमोनियम और कार्बन डाइ-आक्साइड में विच्छेदित करते हैं। असमान ताप, अम्ल तथा क्षार द्वारा इनकी क्रियाशीलता नष्ट हो जाती है। ८०°C का ताप इन्हें निष्क्रिय करने के लिए पर्याप्त है। इनका अणुभार अत्यधिक होता है—यथा, इन्वरटेज का २००० तथा यूरिएज का ४८३००० आदि, आदि।

ये जीवित कोषाओं में पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ, आमाशय-श्लेषण में पेप्सिन प्रकिण्व पाया जाता है। तेलयुक्त बीजों में लाइवेज प्रकिण्व होता है। खमीर तथा यकृत में अनेक प्रकिण्व होते हैं। केटेलेज और साइटोक्रोम आक्सीडेज नामक प्रकिण्व प्रायः सभी पौधों में पाये जाते हैं।

प्रकिण्वों के नाम कई प्रकार से रखे जाते हैं। कुछेक के नाम उनके उत्पादक अंगों के नामों पर हैं जैसे—लार-ग्रन्थि (सेलाइवा) में उत्पन्न प्रकिण्व सेलाइवरी एमाइलेज और यकृत (लिवर) में पाया जाने वाला लिवर केटेलेज कहलाता है। कुछ प्रकिण्वों के नाम ओज और एज शब्द जोड़कर रखे गये हैं जैसे सुक्रोज माल्टोज, प्रोटीन तथा यूरिया आदि पर क्रिया करने वाले क्रमशः सुक्रेज, माल्टेज, प्रोटीनेज तथा यूरिएज कहलाते हैं। कुछ प्रकिण्वों के नाम उनकी उत्प्रेरित क्रिया पर रखे गये हैं जैसे आक्सीकरण करने वाले आक्सीडेज, हाइड्रोजन पृथक् करने वाले डीहाइड्रोजेनेज कहलाते हैं। शेष कुछेक नाम अनियमित भी रखे गये हैं जैसे पेप्सिन, रेनिन, ट्रिप्सन, पेपेन आदि।

प्रकिण्वों की क्रिया अत्यन्त जटिल है। समय-समय पर अनेक व्याख्याएँ प्रस्तुत की गयीं, परन्तु सरल कोई भी नहीं रही। प्रचलित मान्यता के अनुसार इनकी क्रिया दो पदों में होती है। पहले पद में प्रकिण्व तथा किण्व-भोज मिलकर एक जटिल यौगिक बनाते हैं। दूसरे पद में प्रकिण्व पृथक् हो जाते हैं तथा उनसे बने पदार्थ शेष रह जाते हैं—यथा,

प्रकिण्व + किण्वभोज → प्रकिण्व + किण्वभोज जटिल ⇌ प्रकिण्व द्वारा बने पदार्थ + प्रकिण्व

प्रकिण्वों की क्रियाशीलता पर प्रकिण्व, किण्वभोज तथा प्रतिक्रिया से बनने वाले पदार्थों की मान्यता का प्रभाव पड़ता है। इनके अतिरिक्त विलयन का पी-एच (pH) विकीरित ऊर्जा, प्रकिण्व उत्प्रेरक आदि भी प्रकिण्वों की क्रियाशीलता को प्रभावित करते हैं।

प्रकिण्व-रसायन के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान भले ही सीमित हो, हजारों वर्ष पूर्व से इनका उपयोग चला आ रहा। दूध से दही, सीरे से रसायन, डबलरोटी तथा पनीर आदि वस्तुएँ युगों से बनती चली आ रही हैं। सोमरस के नाम से मदिरा का उल्लेख तो हमारे वैदिक काल में भी आ चुका है। ओषधियों के क्षेत्र में भी प्रकिण्वों का उपयोग होता है। पाचक ओषधियाँ, चर्म रोगों की दवाएं तथा विटामिन युक्त ओषधियां बनाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

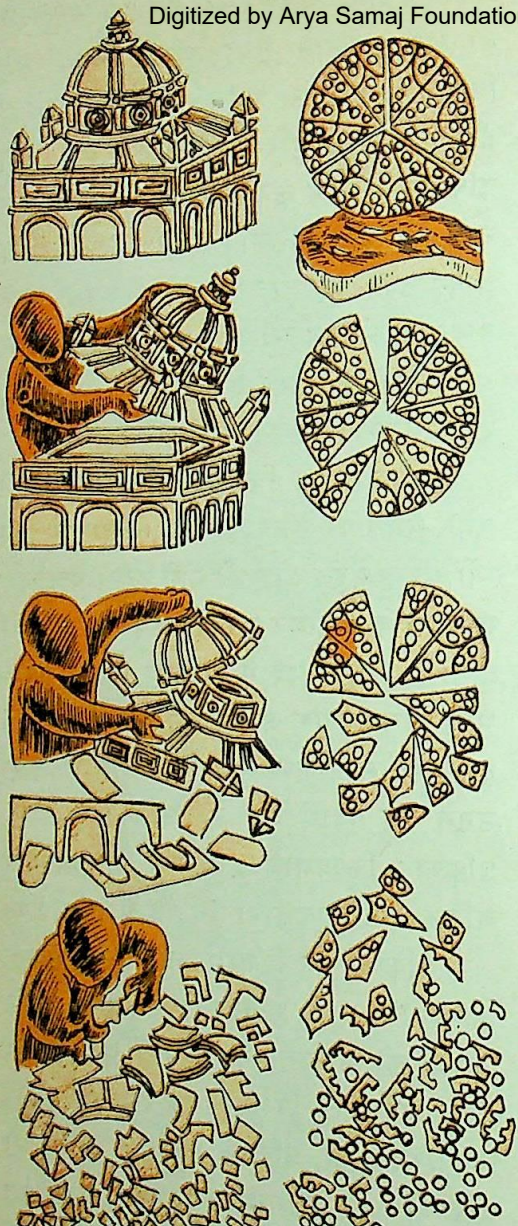

प्रोटीन के उदाहरण द्वारा चित्र में दर्शाया गया है कि किस प्रकार प्रोटीनरूपी इमारत की प्रकिण्व ईंट-से-ईंट बजा देता है और उसे विच्छेदित करता-करता पाचक द्रव में मिला देता है

में प्रकिण्व प्रयुक्त होते हैं। रासायनिक विश्लेषणों के अन्तर्गत शर्करा की मात्रा ज्ञात करने और दूध के परीक्षण में प्रकिण्वों का उपयोग होता है। विविध उद्योगों में भी प्रकिण्वों की आवश्यकता पड़ती है। चर्मोद्योग में खाल से बाल हटाने, वस्त्रोद्योग में धागों को मजबूत बनाने, वस्त्रों की रंगाई तथा धुलाई आदि में, फोटोग्राफी में, कागज-निर्माण में तथा कूड़ा और गन्दगी का सामूहिक विनाश करने तक में प्रकिण्व प्रयुक्त होते हैं।

हमारे शरीर की आन्तरिक क्रियाओं के लिए ऐसे महत्त्वपूर्ण प्रकिण्वों की उपस्थिति का ज्ञान होने से बहुत पूर्व ही इनकी प्रक्रियाएँ ध्यान आकर्षित करने लगी थीं। १७६५ में लेजारो स्पेलन्जनी (Lazzaro Spallanzani) ने सर्वप्रथम इस बात पर ध्यान दिया कि शरीर के जठर-रस में हमारे खाये हुए मांस को गलाने की कोई न कोई अज्ञात सामर्थ्य है। इसी प्रकार १७८५ में विलियम इरविन (William Irvine) ने ज्ञात किया कि अंकुरित जौ का अन्ततः न जाने क्यों स्टार्च को घुलनशील बना देता है। आसव : १८३३ में एन्सेम पेयेन (Anselme Payen) और जीन फ्रेन्कॉइस परसोज (Jean Francois Persoz) ने संयुक्तरूप से और भी गहन अध्ययन द्वारा खोज निकाला कि—स्टार्च को घुलनशील बनाने का काम डायस्टेज (diastase) नामक प्रकिण्व का है। खमीर भी प्रकिण्व का ही एक रूप होने के कारण कूहने (W.Kuhne) ने १८७८ में इस श्रेणी के पदार्थों का 'प्रकिण्व' के शीर्षक से नामकरण किया।

वह वामन, यह विराट

एक बीज ऐसा भी था जो नन्हीं अंकुरावस्था में मुश्किल से सवा इंच रहा होगा, किन्तु पूरा वृक्ष बन जाने पर चार हजार गुना बढ़ गया ! केलिफोर्निया के रेडवुड-जंगलों के मध्य, संसार प्रसिद्ध सबसे ऊँचे वृक्षों के बीच, हाल ही में एक ऐसे वृक्ष को खोजा गया है जो सही रूप में सबसे ऊँचा कहा जायगा। उसकी ऊँचाई है ३६७·८ फुट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिम निवासी पक्षी-जगत का लुटेरा

ध्रुवीय स्क्युआ

देवीदयाल अग्रवाल

'स्क्युआ' (skua) शब्द प्राचीन नार्वेजियन शब्द स्क्युफा (*skufa*) का अपभ्रंश है। 'स्क्युफा' का अर्थ है—'धकेलकर आगे बढ़ना'। इससे समझा जा सकता है कि इस पक्षी का स्वभाव कैसा होगा। समुद्री पक्षियों में इसका वही स्थान है जो थलीय पक्षियों में बाज, गिद्ध और गरुड़ का। समग्र पक्षी-जगत में केवल स्क्युआ ही इतना साहसी है जो दक्षिण ध्रुव के अनन्त हिम प्रदेशों में बेधड़क विचरता है। ठेठ ध्रुव के सबसे निकट तक पहुँचने वाला भी यही है। अपना आवास-निवास ऐसे कठिनतम स्थल पर चुनने के कारण ही प्रकृति ने इसे कुछ विशेष सहनशक्ति और चुस्ती-फुर्ती भी दी है। जहाँ तक अपने घोंसले की रक्षा का प्रश्न है, सृष्टिभर के पक्षियों में इसका सर्वोच्च स्थान है, क्योंकि घोंसले की रक्षा के लिए यह किसी की भी परवाह नहीं करता। उसी साहस और शक्ति के साथ लुटेरापन भी मिश्रित हो जाने से इसे जो 'ध्रुवीय लुटेरा पक्षी' नाम दिया गया है, वह अर्थसम्मत ही है।

यह वृहद पक्षी

स्क्युआ यों तो सी-गल (sea-gull) नामक उन समुद्री चिड़ियों से बहुत मिलता-जुलता है जो केवल मछलियों के शिकार पर निर्भर हैं, किन्तु वास्तव में यह उनसे काफी भिन्न भी है। मछलियाँ यह भी खाता है, किन्तु मछली का शिकार करके नहीं बल्कि मछली का शिकार करने वाली चिड़ियों का पीछा करके उनसे छीन-झपटकर खाता है। स्क्युआ और जेजर पक्षी (jaeger) एक ही वर्ग के हैं। अनेक पक्षी-विशारदों ने स्क्युआ को दो प्रमुख वर्गों और तीन जातियों में बाँट रखा है—पहला वर्ग दक्षिण ध्रुवीय स्क्युआ (polar skua) का है और दूसरे वर्ग में वे स्क्युआ आते हैं जिन्हें ग्रेट स्क्युआ (great skua) कहते हैं। ग्रेट स्क्युआ पुनः तीन जातियों में विभाजित है—१. उत्तरी गोलार्द्ध का स्क्युआ, उत्तर ध्रुवीय स्क्युआ, २. दक्षिणी अमरीका के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समशीतोष्ण क्षेत्रों का निवासी स्क्युआ तथा ३. दक्षिण ध्रुव के सिरे पर रहने वाला कत्थई रंग का स्क्युआ।

ग्रेट स्क्युआ का शरीर लगभग दो फुट लम्बा होता है। इसके पंखों का फैलाव चार फुट तक पहुँचता है। शरीर से यह काफी मजबूत होता है और इसके पाँव भी छोटे, किन्तु सुदृढ़ और लम्बे नुकीले नाखूनों वाले पंजोंयुक्त होते हैं। इसकी चोंच गिद्ध की चोंच जैसी हूबहू होती है। इस प्रकार इसकी शरीर-रचना बाज और गिद्धों जैसी शिकार-प्रवृत्ति के लिए सर्वथा उपयुक्त है। मच्छीमार सी-गल चिड़िया की भाँति बाल्यावस्था में यह चिड़िया मछली का शिकार करती है। इसके पंख हलके कत्थई और शरीर गहरे कत्थई रंग का होता है। पंख के सिरे पर सफेद नोक दूर से इसकी पहचान करा देती है। इसके नन्हे बच्चे आरम्भ में हलके स्लेटी रंग के होते हैं जिससे उन्हें चट्टानों के बीच रंग की समानता के कारण छिपे रहने में सहायता मिलती है। स्क्युआ अपने भारी-भरकम शरीर के बावजूद भी गरुड़ की तरह तेज उड़ाका है और आकाश के मध्य ही सी-गल का पीछा करके, उसे पकड़ कर उसका शिकार छीन लेता है।

चोर, लुटेरा और···

डाकू भी स्क्युआ कम नहीं। भोले-भाले, संत-स्वभावी पेन्गुइन (penguine) का तो यह सबसे विकट दुश्मन है ही, उसके जाति-भाइयों के बच्चों को भी इसके आक्रमणों से कम खतरा नहीं रहता। देखने में तो नर-मादा का जोड़ा ऐसा मालूम होता है मानो साफ-सुथरे और शान्त स्वभावी पेलिकन का जोड़ा खड़ा हो, किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत ही है। वर्ष का अधिक भाग तो ये क्रिल (krill) नामक उन लाल, नन्हे जन्तुओं का आहार करते हैं जो समुद्र की सतह पर तैरते रहते हैं और जो ह्वेल का भी प्रमुख भोजन बनते हैं।

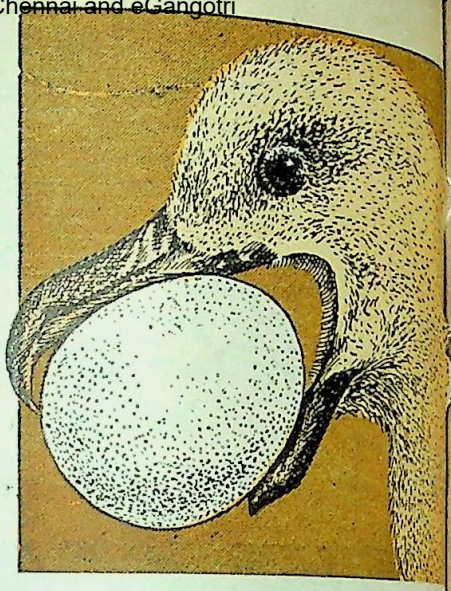

पेन्गुइन का वृहदाकार अण्डा भी यह पक्षी इतनी कुशलता से चुरा ले जाता है कि चोंच में लगा-लगा टूट नहीं पाता और साबुत हा। पहुँचता है

अक्टूबर में देशान्तर करते हुए पेन्गुइनों के पीछे ये लग जाते हैं और उनके साथ ही रुकते रहते पहले तो ये उन दिनों के नवजात, नन्हे सील-बच्चों पर छापा मारते हैं। दूसरे माह, नवम्बर में पेन्गुइन के अण्डों की टोह लेते हैं और उनसे निकलते बच्चों की प्रतीक्षा करते रहते हैं। ये अपने घोंसले पेन्गुइनों के घोंसलों के निकट ही बनाते हैं। इसकी पुष्टि स्वरूप ९५ से भी अधिक इनके घोंसले पेन्गुइनों के घोंसलों के इर्द-गिर्द पाये गये हैं।

पेन्गुइनों के अण्डे चुराने का इनका ढंग सुव्यवस्थित रहता है। इस कार्य के लिए नर और मादा साथ-साथ निकलते हैं। दोनों में से एक तो पेन्गुइन को अपना घोंसला छोड़ने के लिए प्रेरित करता है और कुछ दूर तक अपना पीछा कराते हुए उसे ले जाता है। पीछे से दूसरा साझीदार घोंसले में से अण्डा उठाकर नौ-दो-ग्यारह हो जाता है। निर्धारित स्थान पर दोनों पुनः मिलते हैं और उसे कुछ खाते हैं, कुछ अपने बच्चों के लिए ले जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्टि गिद्ध सी···सूँघने में असमर्थ

इनकी दृष्टि-शक्ति गिद्ध जैसी है किन्तु सूंघने में ये काफी असमर्थ रहते हैं। इसकी पुष्टि कुछेक मनोरंजक प्रयोगों द्वारा की गयी है। १९११–१२ के दक्षिण ध्रुवीय स्काटिश अभियान के अन्तर्गत एडवर्ड विल्सन ने देखा था कि उनकी स्लेज गाड़ियों को खींचने वाले कुत्तों के दल में से जो एक कुत्ता पहले दिन मर कर गिरा था, दूसरे दिन उस पर अनेक स्क्युए मंडरा रहे थे, यद्यपि जल के निकट उनका पिछला पड़ाव लगभग १७० मील दूर था! जब विल्सन के साथियों ने यह अनुमान लगाया कि वह स्क्युआ-दल मृत माँस की गंध से खिंच आया होगा, तब उसने इस मत के खण्डन के लिए दूसरा प्रयोग कर दिखाया। उसने थोड़ा-सा माँस प्लास्टिक की एक थैली में इस प्रकार रखा कि सीलबन्द होने से उसकी गंध लेशमात्र भी बाहर न आ सकती थी और पारदर्शक थैली में से वह दिखता तो था ही। कुछ ही देर में आकाश से एक स्क्युआ झपट कर उतरा, उस थैली को अपनी चोंच से फाड़ा और माँस लेकर उड़ गया। तीसरे प्रयोगस्वरूप उन्होंने खुले मांस का एक बड़ा टुकड़ा केवल थोड़ी-सी बर्फ के नीचे दाब रखा ताकि देखने में पहिचाना न जा सके। उन्होंने देखा कि स्क्यूए उसके पास से गुजरते गये किन्तु एक बार भी ऐसा न हुआ कि गंध से प्रभावित हुए हों और उस ओर आकर्षित हुए हों।

सहजीवन, नीड-निर्माण और सुरक्षा

'दक्षिण ध्रुवीय गरुड़' भी इसे एक नाम दिया गया है। यह इसलिए कि केवल ध्रुवीय ही नहीं, समूचे पक्षी-जगत में अपना परिवार और अपने घोंसले की रक्षा में जी-जान लड़ा देने वाला ऐसा दूसरा पक्षी नहीं। नर और मादा एक ही जोड़ा बाँधते हैं और जीवन भर परस्पर एकनिष्ठ रहते हैं। घोंसला बनाने के लिए अधिकतम ठण्डा स्थान चुनते हैं, ऐसा कि जहाँ गर्मियों में भी ताप ३३°C तक हो।

नर और मादा अपने घोंसले की रक्षा करते समय यह नहीं देखते कि उसमें बच्चे उन्हीं के हैं अथवा अन्य स्क्युआ के भी। अतः सिद्ध होता है कि ये अपने घोंसले ही नहीं, अपने क्षेत्र के अधिकार के लिए भी लड़ते हैं। अण्डा नाम की कोई वस्तु बस, इसके घोंसले में होनी चाहिए, यह बिना भेद-भाव, उसका लालन-पालन कर लेगा। एक प्रयोग में इसके शत्रु पेन्गुइन का अण्डा आकार में किंचित बड़ा होते हुए भी इसके घोंसले में रख देने पर यह उसे तत्परता से सेहता पाया गया। दूसरे प्रयोग में इसके एक अण्डे को इंजेक्शन द्वारा लाल रंग का कर देने के पश्चात् जो बच्चा लाल रंग का निकला, उसे भी अपने दूसरे बच्चे के साथ इसने बड़ा किया।

अपने नीड़, जन्म स्थान और साथी का मोह स्क्युआ उसी प्रबलता से प्रदर्शित करता है जैसे कि मानव। पैदा होने के प्रथम ३-४ वर्ष तक तो स्क्युआ जगह-जगह, काफी दूर-दूर तक विचरता रहता है किन्तु पाँच वर्ष का होने पर वह घर बसाने योग्य हो जाता है। तब वह किसी विलक्षण प्रेरणावश ठीक अपने जन्मस्थान पर आ जाता है। नर या मादा अपना साथी तब तक नहीं बदलते जब तक मृत्यु ही उन्हें विलग न कर दे। प्रजनन के पश्चात् यद्यपि नर और मादा महीनों तक एक दूसरे से सैकड़ों, हजारों मील दूर रहते हैं, तथापि आगामी वर्ष, पुनः ऋतुकाल आने पर नर अपनी मादा को खोज लेता है और दोनों अपने पुराने घोंसले को ही आबाद करते हैं।

नर-मादा की ऐसी परस्पर निष्ठा और अपने बच्चों, अपने घोंसले और अपने क्षेत्र की रक्षार्थ जान तक लड़ा देने वाले पक्षी के ऐसे उदाहरण सृष्टि में अपवाद स्वरूप ही गिने-चुने मिलेंगे। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाषाण-युग आज भी है

महेश श्रीवास्तव

विज्ञान के साथ ही जमाना भी तेजी से बदलता रहा है। युग-युगीन परम्पराएं भी बदलती रही हैं। मशीन-युग के आरम्भ से लेकर अब तक, पहले तो वाष्प का बोलबाला रहा, तत्पश्चात् विद्युत् समस्त संसार को चौंधियाती रही। आज राकेट का युग है। कल पृथ्वी की बातें पुरानी पड़कर, चाँद-तारों की बातें नया रस देने लगेंगी। फिर भी यदि आज आप जानना चाहें कि हजारों वर्ष पूर्व का पाषाण-युग कैसा रहा होगा तो उसके लिए आपको केवल कल्पना का सहारा न लेना पड़ेगा। सब कुछ आज भी देखने को मिल जायेगा।

राकेटयुग में पाषाणयुग की बातें !

यह कम अचरज की बात नहीं कि संसार में जहाँ प्रगतिशील देश अणु-परमाणुओं के गोरख-धन्धे सुलझा रहे हैं, वहाँ अब भी अनेक देश ऐसे हैं जिनकी पाषाणयुगीन नींद अभी टूटी नहीं है। जबकि आज हमारा इष्ट सर्वांगी स्वसंचालन अर्थात् आटोमेशन का है, उन देशों के निवासी आज भी पत्थर और काष्ठ घिसकर आग उत्पन्न करते हैं, पत्थर और सींगों के हथियार, औजार बनाकर काम करते हैं, कच्चे शिकार खाते हैं और नंग-धड़ंग फिरते हैं। प्राप्य प्राच्यावशेषों में प्रस्तर-आयुध के नमूने देखने से ज्ञात होगा कि उन हथियारों में और जो आज काम में लिए जा रहे हैं, उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं।

इतिहासकारों ने पाषाणयुग को दो भागों में बांटा हुआ है। १२००° वर्ष पूर्व का काल प्राचीन पाषाणयुग का अन्तकाल था और तब से इधर ५००० वर्ष पूर्व तक का काल नवीन पाषाणयुग कहलाता है। इस बीच, पत्थर के केवल टेढ़े-मेढ़े टुकड़ों से लेकर काँसे और लोहे के विविध औजारों, हथियारों की लम्बी शृंखला चली है। मानव के क्रमिक विकास के साथ-साथ हथियारों के रंग-रूप भी विकसित होते रहे हैं। चाकू, छुरी, फरसा, कुल्हाड़ी, तीर, भाला तथा मछलियाँ फाँसने के लिए कांटेदार तार आदि तरह-तरह के औजार, हथियार बनते रहे हैं।

हथियार ही नहीं, अन्य बातें भी

केवल हथियारों में ही क्यों, रहने-सहने के ढंग में भी पाषाणयुगीन झाँकियां स्पष्ट देखने को मिलती हैं। जहाँ विज्ञान का प्रकाश अभी नहीं पहुँच पाया है, उन अंधेरे, भूले बिसरे कोनों में बसने वाले लोग प्राचीन युग की चलती-फिरती तसवीरें हैं। उनकी समाज-व्यवस्था, उनका खान-पान, रहन-सहन और समस्त जीवन-प्रणाली सभ्य और सुसंस्कृत कहलाने वाले लोगों से बिलकुल भिन्न ही हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका तथा कुछ भाग एशिया, अमरीका के ऐसे आदिवासियों से आबाद हैं जो पाषाणयुग के सच्चे प्रतिनिधि हैं। शिकार ही शिकार इनकी मुख्य प्रवृत्ति है और उसी की कुशलता पर इनका जीवन आधारित है। किसी भी वस्तु का खरीदना-बेचना क्या होता है, ये नहीं जानते। ये शब्द और वर्ण ही इनके लिए अनसुने, अनजाने हैं। प्रकृति इन्हें शिकार खुले हाथों देती है और कुशल, परिश्रम शिकारी को शिकार की कमी भी नहीं रहती।

मलाया के जंगलों में रहने वाले सिमांग (Semang) नामक बटुक (अत्यन्त ठिगने) लोगों को चारों ओर वनस्पति प्रचुर मात्रा में मिल जाती है। अतः उन्हें बड़े शिकार की खोज में नहीं जाना पड़ता। केवल पक्षियों, गिलहरियों जैसे छोटे प्राणियों से ही काम चल जाता है। इनके विपरीत, दक्षिण अफ्रीका के बुशमेन (Bushmen) नामक बटुक केवल शिकार पर ही निर्भर रहते हैं। वहाँ कुछ भी हरियाली नहीं उपजती। शिकार ही उनका मुख्य आधार होने के कारण उन्हें खानाबदोश जीवन बिताने को विवश होना पड़ता है, अन्यथा एक ही जगह जमे रहें तो वहाँ का सब कुछ जल्द ही समाप्त हो जाये और जीवन-संकट उपस्थित हो जाये। खानाबदोश जीवन उनके लिए यह भी आवश्यक कर देता है कि वे छोटे-छोटे समूहों में रहें।

आस्ट्रेलिया के आदिवासी तीर-कमान से परिचित नहीं; अतः वे भाले से ही सब कुछ कर लेते हैं। यद्यपि बूमरेंग भी उनका अपना ही आविष्कृत है, हथियार किन्तु उनका भाले का प्रयोग ही उन्हें समस्त आदिवासियों में प्राचीनता का श्रेय देता है। कहीं-कहीं वे भाले को भी पीछे से एक लम्बे बाँस का सहारा देकर फेंकते हैं तब वह भाला और भी अधिक अधिक दूरी की मार करता है। इनके भाले की नोक काफी नुकीली होती है, किन्तु मलाया के सिमांग और अफ्रीका के बुशमेनों के भालों की नोक पर तीव्र विष भी लिपटा रहता है जो बड़ी कातिल मार करता है।

शिकार केवल नर ही करते हैं। इनमें स्त्रियों के जिम्मे शिकार और फल-सब्जी बटोर कर लाना होता है। पेड़ों की छालों, रेशों, पत्तों तथा स्वयं अपने बालों से बनायी हुई टोकरियों में वे आवश्यक सामग्री बटोर लाती हैं। इनके हथियारों में तीन फुट लम्बी एक लकड़ी का विशेष स्थान होता है और उसे वे हर समय अपने साथ रखते हैं। उस लकड़ी द्वारा वे जलसंग्राहक पौधों को उखाड़कर अपनी जलपूर्ति करते हैं और वही उनका एकमात्र साधन रहता है। उस लकड़ी को डिगिंग स्टिट कहते हैं।

ये अपने फरसे, छुरी आदि पत्थर के बनाते हैं और उन पर काठ के हेण्डिल जड़ देते हैं। शरीर पर इन्हें कम से कम कपड़े सुहाते हैं। इनकी झोंपड़ियाँ भी कुछ नहीं,

पाषाणयुग की याद दिलाते ये विभिन्न हथियार और औजार, आज भी आदिवासियों के जीवन से जुड़े चल रहे हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल खुली जमीन पर पत्तों, टहनियों के ढाँचे मात्र रहते हैं। पानी इनके लिए अनमोल वस्तु है क्योंकि उसका प्रायः ही अभाव रहता है। जिन रेतीले प्रदेशों में ये रहते हैं, वहाँ दूर-दूर तक पानी सहज ही नहीं मिलता। अतः पानी को संचित रखने के लिए ये शतुर्मुर्ग के खोखले किये हुए अण्डे तथा पेड़ के तनों को खोखला करके नाव जैसा बनाकर उसे काम में लाते हैं। अग्नि को भी ये बड़े जतन से रखते हैं क्योंकि बारम्बार अग्नि प्रज्ज्वलित करने में बड़ी कठिनाई रहती है। अतः काष्ठ के ही जिन पात्रों में ये अग्नि रखे फिरते हैं, उन पात्रों को बीच-बीच में बदलते रहते हैं।

हिमनिवासी एस्किमो

मध्य-प्रस्तरयुग का प्रतिनिधित्व करते हुए ये लोग उत्तरी हिमप्रदेशों तथा अमरीका के उत्तर पश्चिमी भागों में रहते हैं। इन्हें वर्फ ही बर्फ में रहना होता है, अतः खाल के बनाये वस्त्रों को ये सदैव पहने रहते हैं। उन वस्त्रों को शरीर से कस कर लिपटाये रहने के लिए ये उन्हें सुई-डोरे से अपनी त्वचा तक से सी कर रखते हैं। वहाँ के बर्फीले वातावरण ने ही इन्हें सुई के आविष्कार के लिए प्रेरित किया होगा। हड्डी से बनायी हुई इनकी उस सुई को बर्निस (burnis) कहते हैं।

शीतकाल में इन्हें केवल हिम-सतह में छिपती, चलती सीलों (seals) के ही शिकार पर निर्भर रहना पड़ता है। गर्मियों में ये हिम-हिरनों के जिन्हें रेनडीयर (reindeer) कहते हैं, शिकार की खोज में निकलते हैं। साथ ही, जो भी थोड़ी-बहुत हरियाली मिल जाये, बटोर लाते हैं। काष्ठ तो इन्हें कहीं भी नहीं मिलता, अतः समस्त औजार और अन्यान्य साधन शिकार किए हुये जानवरों की हड्डियों से ही बनाने पड़ते हैं। कहीं-कहीं इन्हें ताँबा धातु भी प्राप्त हो जाती है। तब उसका उपयोग वे खाल उतारने और काटने के हथियार बनाने में करते हैं।

खानाबदोशों की अपेक्षा ये एस्किमो कुछ बड़े समूहों में रहते हैं। फलतः सामाजिक जीवन के लक्षण भी इनमें देखने को मिल जाते हैं।

अमरीका के पश्चिमोत्तरीय तटों के निवासी शिकार के लिए मछलियाँ प्रचुरता से पा जाते हैं। अतः उन्हें भटकता जीवन गुजारने की आवश्यकता नहीं रहती। काठ के छोटे-छोटे झोंपड़े बनाकर वे अपने नन्हे समूहों में सामाजिक जीवन व्यतीत करते हैं। घोड़ों और हिरनों को घेरकर चलने वाले साइबेरिया निवासियों को तो खानाबदोश जीवन बिताना ही पड़ता है क्योंकि उनके पालतू पशुओं को हर समय नये चारागाहों की आवश्यकता पड़ती है। अफ्रीका के जो आदिवासी कृषि कर लेते हैं वे किंचित धातुविद्या से परिचित हैं और लोहे के विविध औजार भी बना लेते हैं।

एस्किमो-युग अपने विशिष्ट नृत्य की विचित्र मुद्रा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मलाया के सकाई (sakai) लोग चावलों के कृषिकार भी हैं। वे जहाँ रहते हैं, २-३ वर्ष तक जमे रहते हैं। लम्बे खम्भों पर वे अपनी ऊँची झोंपड़ियाँ टिकाये रखते हैं और छोटी-छोटी क्यारियों में चावल तथा आवश्यक हरियाली उपजा लेते हैं। इनके शिकार का मुख्य अस्त्र बड़ा विचित्र है। एक लम्बी फुकनी के रूप में, ये उसे अपने साथ रखते हैं और पीठ पर बँधे तरकश में जहरबुझे तीर भरे रखते हैं। शिकार नजर आते ही, बगैर कमान, उनका वह तीर फुकनी से फूँक द्वारा इस तेजी और अचूकता से जाता है कि शिकार ढेर हो जाता है। इन आदिवासियों में जो कृषि-कार्य सुचारू करने लगे, उन्हें अन्य प्रवृत्तियों के लिए कुछ अवकाश भी मिलने लगा। उन्हीं अवकाश के क्षणों का उपयोग ये कुछेक कलाएं सीखने में भी करने लगे। बर्तन बनाना, काठ पर नक्काशी करना तथा वस्त्र बुनना ऐसे कार्यों में गिनाये जा सकते हैं जो क्रमशः विकसित होते रहे हैं। बातों और विचारों के आदान-प्रदान के लिए इनके पास कोई भाषा या लिपि नहीं, किन्तु संकेतों, और टेढ़े-मेढ़े चित्रों द्वारा ये अपना काम निकाल लेते हैं।

इस प्रकार इनके जीवन का अध्ययन करने से यह तुलना की जा सकती है कि आदिकाल, विशेषतः प्रस्तरयुग का प्रतिनिधित्व ये किस अंश तक कर रहे हैं और आज की जो भी कलाएं इन्हें ज्ञात हैं, वे किस क्रम से इनमें विकसित होती आयी हैं। केवल ऐसे विस्तार जो दूर जंगलों में, बर्फीले वातावरण में तथा रेगिस्तानों आदि में शहरी सभ्यता से अछूते हैं, इन आदिवासियों से आबाद हैं और इनकी विशेषताएं इनकी अपनी ही हैं। संभव है, जन-विस्तार तथा विज्ञान के प्रसार के साथ-साथ, प्रस्तरयुग की याद दिलाने वाली ये विशेषताएं लुप्त होती चलें! ●

आजादी खतरे में है।
पूरी ताकत लगा कर इसकी रक्षा कीजिए।
—जवाहरलाल नेहरू

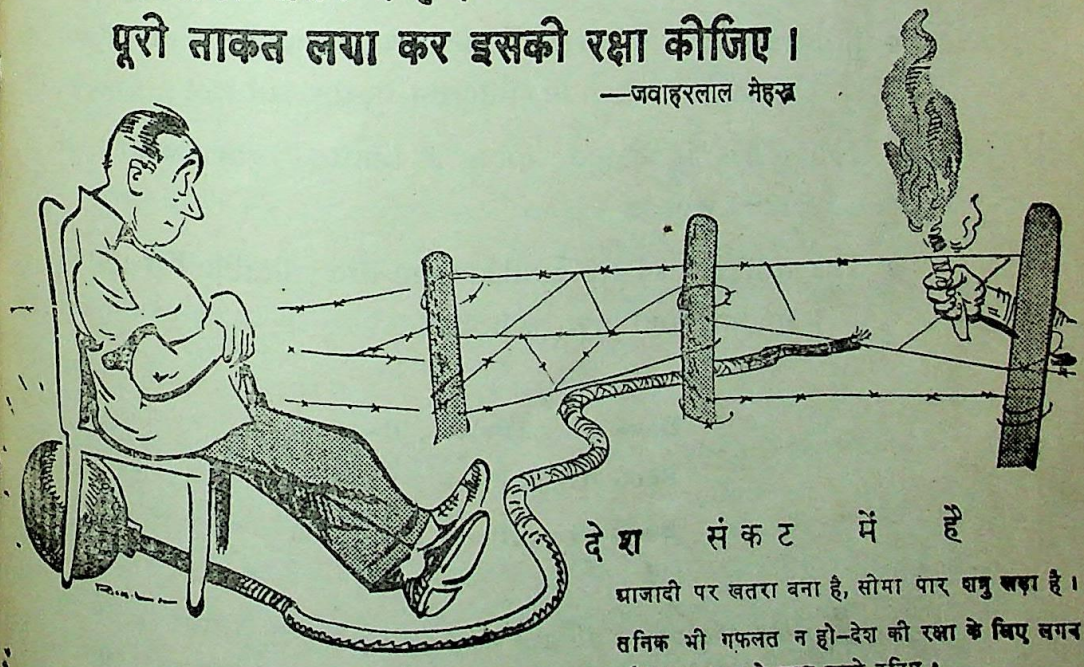

देश संकट में है

आजादी पर खतरा बना है, सीमा पार शत्रु खड़ा है।
तनिक भी गफलत न हो—देश की रक्षा के लिए सगर और अनुशासन से काम करते रहिए।

मन लगा कर काम कीजिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH
WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : Re. 0·80
Book II.....Price : Re. 1·00
Book III.....Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to :

Sri Ram Mehra & Co.
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-क्लब

प्यारे बच्चो,

सावन के त्यौहारों भरे इस महीने का यह लो अपना अगस्त-अंक।

याद आया ? यह अगस्त वही अगस्त है, जिसके साथ हमारे भारत के स्वातंत्र्य का इतिहास जुड़ा हुआ है, उन नरवीरों के बलिदानों का इतिहास जुड़ा है जिन्होंने अपने प्राणों के मोल पर हमें स्वतन्त्रता का अमरफल दिया है। शहीदों के श्राद्ध का भी यही महीना है।

सब कुछ वही है जो आज से १६ वर्ष पूर्व, स्वतन्त्रता के स्वर्णोदय पर था। नहीं है, तो केवल हमारा प्यारा राष्ट्रनायक, जन-जन का जवाहर। इस मास की १५ तारीख भारत के स्वातन्त्र्योत्तर काल में पहली तिथि होगी जिस दिन लाल किले का वह मंच जवाहर के बिना सूना-सूना होगा, फिजा उदास-उदास होगी, फिर भी यंत्रवत् काम तो आगे बढ़ाना ही होगा।

और यही ठीक भी है। न सही जवाहर का पार्थिव शरीर, बच्चों का प्यारा चाचा नेहरू आज देशभर के बच्चे-बच्चे के मन-मन्दिर में सिंहासनासीन है और वहीं से हमें, तुम्हें और सबों को प्रेरणा ले-लेकर उनके अधूरे कामों को आगे बढ़ाना है, पूर्णता की ओर।

इस १५ अगस्त से पूर्व जिनकी याद दिला दी, उन्हें शत-सहस वन्दन।

सस्नेह तुम्हारी

कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ५३ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

गजेन्द्रपालसिंह (१६०५) मेरठ; शैलेन्द्र पाराशर (४७१८) आगरा; शशीकान्त गुप्ता (१०६६४) आगरा; अच्युत भिगरन (११७६४) कलकत्ता; मंजुला सिरोही (११६८४) मेरठ; देवेशकुमार त्रिवेदी (१२८५०) आगरा।

द्वितीय पुरस्कार

भुवनेश्वर गुप्ता (६१४) आगरा; अमूल चरण (६०४६) गोरखपुर; मायादेवी (८६०४) कानपुर; हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१) कानपुर; पुरुषोत्तमनरायन (१२७८३) झांसी; इन्द्रजीत मिगलानी (१२७८८) जुनारदेव।

तृतीय पुरस्कार

प्रमोदकुमार शर्मा (११८५) इलाहाबाद; रणजीतसिंह (४७२४) नई दिल्ली; कु. मंजू अग्रवाल (८१७६) इलाहाबाद; शिवप्रकाश जोशी (६७२६) देहरादून; आलोक अदावाल (१०७६०) इलाहाबाद; ओमप्रकाश शर्मा (१२५३८) झांसी; जाय मुकर्जी (१३१०१) बिलासपुर; बजरंगलाल झुनझुनवाला (१३१०२) आदरा (पुरुलिया)

कूपन प्रतियोगिता संख्या ५५

नाम.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब के नये सदस्य

रवीन्द्र श्रीवास्तव
(स. सं. १६२३)

अनिलचन्द्र मेहरा
(स. सं. ३४१०)

रसिक मधु
(स. सं. ३६४६)

वेदराम
(स. सं. ४३२०)

८८६८ घनश्यामदास (१३) उदयपुर, ६६ मोहनलाल (१५) खुजवेर, ७० श्यामसुन्दर (१२) किशनगंज, ७१ लखनलाल (१४) बरियारपुर, ७२ आनन्द (१८) आश्रम वृन्दावन, ७३ हैदरहुसेन (१४) भिण्ड, ७४ गिरजेश (१६) होशंगाबाद, ७५ शिवनारायण (१६) उज्जैन, ८८७६ कृष्णकुमार (२०) बम्बई, ७७ एस. आर्य (२०) हिसार, ७८ रवीन्द्रसिंह (१३) नई दिल्ली, ७६ भागचन्द्र (१७) किशनगढ़, ८० लक्ष्मण (१५) झाड़ोल, ८१ कु. गायत्रीदेवी (१५) इटारसी, ८२ जगदीशप्रसाद (१५) भागलपुर, ८३ पूर्णदत्त (१२) डिगवोई, ८४ सत्येन्द्रकुमार (१८) सबौर, ८५ सत्यस्वरूप (१५) चित्तौड़गढ़, ८६ ओमप्रकाश (१६) धार, ८७ बसीर (१३) आसीन्द, ८८ हफीज (१८) आसीन्द, ८६ सुरेन्द्रप्रसाद (१५) मड़ारविन्दबलिया, ६० राजेन्द्रप्रसाद (१५) बम्बई, ६१ बालकृष्ण (१६) मंडलेश्वर, ६२ प्रेमराज (१५) पालीमारवाड़, ६३ सुरेन्द्रनाथ (१८) बम्बई, ६४ मणीलाल (१३) सावरकंठा, ६५ कु. आशा (१४) इलाहाबाद, ६६ नरेन्द्रप्रताप (१२) इलाहाबाद, ६७ विजयकुमार (१६) रतनगढ़, ६८ जीवनकुमार (१३) होशंगाबाद, ६६ भगवतीप्रसाद (१३) होशंगाबाद, ८६०० वीरेन्द्रकुमार (१३) होशंगाबाद, १ प्रेमचन्द (१४) होशंगाबाद, २ नारायणसिंह (१४) होशंगाबाद, ३ रविन्द्रकुमार (१२) बम्बई, ४ कौशलप्रसाद (१४) शहडोल, ५ नरेन्द्रकुमार (१२) शाहाबाद, ६ प्रेमसुख (१५) लाडनूं, ७ खुर्शिद अहमद (१५) कन्सी सिमरी, ८ चीमनलाल (१४) नान्देड़, ६ तमसील अमजद (१५) रायपुर, १० विनोदकुमार (१६) बिसौली, ११ वेदप्रकाश (१३) गंज बासौदा, १२ सुरेन्द्रप्रताप (१४) गंज बसौदा १३ उमेशप्रसाद (१३) विराटपुर, १४ राजीवकुमार (१५) कानपुर, १५ विजयकुमार (१६) मुजफ्फरपुर, १६ कुमारी प्रभा (१४) जबलपुर, १७ विजयकुमार (११) जूरन छपरा, १८ विनेशकुमार (१४) कानपुर, १६ नरेशचन्द (१२) रीवां, २० लक्ष्मीनारायण (१५) भाटापारा, २१ धनपतराज (२१) वाराणसी, २२ उमेशमूर्ति (१७) अलीगढ़, २३ कुमरेन्द्रनारायण (१५) गया, २४ कुमारी मन्जु (१०) गोरखपुर, २५ भीष्मप्रताप (१३) पिपरिया, २६ अशोक (१५) नई दिल्ली, २७ मदनगोपाल (१५) विश्रामपुर, २८ नोरतमल (१३) अजमेर, २६ अरुण (१३) कानपुर, ३० कु. धन्नादेवी (१२) अजमेर, ३१ विनोदचन्द्र (१८) टीकमगढ़, ३२ लालचन्द (१४) भीनमाल, ३३ बालकृष्ण (१४) अलीगढ़, ३४ कोलचन्द (१५) भीनमाल, ३५ कु. सुलोचनादेवी (१४) पीसांगन, ३६ कु. शकुन्तला देवी (१२) पीसांगन, ३७ शिवसिंह (२३) बेदला, ३८ पूनमचन्द (१४) सिरसा, ३६ कान्तिकाल (१४) राजकोट, ४० अशोककुमार (१५) गोरखपुर, ४१ चैनरूप (१५) डूंगरगढ़, ४२ मोहन (१७) नागपुर, ४३ महेन्द्रप्रताप (१५) दिल्ली, ४४ अनुरागकुमार (१५) भिलाई, ४५ (१७) सिरोही, ४६ निहालचन्द (१५) अजमेर, ४७ कृष्णकुमार (१३) हटा, ४८ कुलदीपकुमार (१३) सहारनपुर, ४६ कुमकुम कुमारी (११) ग्वालियर, ५० रमेशचन्द्र (१६) विदिशा, ५१ अविनाशकुमार (१४) कांकेर, ५२ सुधीरकुमार (१२) देवरी, ५३ श्यामबिहारी (१५) चित्तौड़गढ़, ५४ अशोककुमार (१२) चित्तौड़गढ़, ५५ आलोक (१२) वाराणसी, ५६ जयदेवनारायण (१६) मोरातालाब, ५७ मोहनलाल (१६) सहरसा, ५८

बनवारीलाल शर्मा
(स. सं. ४५६६)

राजेन्द्रकुमार
(स. सं. ५२१५)

कृष्णकुमार
(स. सं. ६२५६)

जयप्रकाश नारायण
(स. सं. ६७०१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिलकुमार (१७) वाराणसी, ५९ हँसमुखकुमार (१५) [illegible]
६० विप्लवकुमार (१५) जगदलपुर, ६१ शिवेन्द्रप्रसाद (१६) हवेली, ६२ नरेन्द्रकुमार (१६) नागौर, ६३ चन्द्रमोहनप्रसाद (१२) सीवान, ६४ सर्वजीत (१७) फतेहगढ़, ६५ अशोककुमार (१८) धानेसर, ६६ भरतकुमार (१४) वडाली, ६७ कैलाशचन्द्र (१८) पिथौरागढ़, ६८ हीरालाल (१३) गुलाबपुरा, ६९ केशवकुमार (१५) भाटापारा, ७० जिनेन्द्रकुमार (१०) ललितपुर, ७१ धनपतसिंह (१४) कलकत्ता, ७२ सुरेन्द्रनाथ (१४) भिलाई, ७३ प्रमोदकुमार (१५) रांची, ७४ बदरुद्दीन (१६) निम्बाहेड़ा, ७५ सिद्दीक (१८) निम्बाहेड़ा, ७६ जगदीशनारायण (१५) शिवपुरी, ७७ ओमप्रकाश (१६) तानपुर, ७८ मोहनसिंह (१६) सनेती, ७९ राजेन्द्रप्रसाद (१५) मथुरा, ८० शुकदेव (१९) गनपतगंज, ८१ रनजीतसिंह (१६) बांदीकुई, ८२ बसन्तकुमार (१५) फर्रुखाबाद, ८३ राधेश्याम (१४) कपासन, ८४ मगनलाल (१८) रायपुर, ८५ श्यामसुन्दर (१५) वाराणसी, ८६ चतुर्भुजनाथ (११) मधुबनी, ८७ नियाजअहमद (१७) बिर्दपुर, ८८ अनिलकुमार (१३) रायपुर, ८९ विजयकुमार (१५) जबलपुर, ९० दिनेशकुमार (१४) करसहियाँ, ९१ सतीशकुमार (१३) बनौली, ९२ रमेश (१३) इन्दौर, ९३ महेशचन्द्र (१६) कानपुर, ९४ लोगमल (१५) उज्जैन, ९५ उपेन्द्र (१०) टीकादेवरी, ९६ व्यासनारायण (१५) भिलाई, ९७ श्रवणकुमार (१७) आगरा, ९८ भगवान (१४) सहारनपुर, ९९ शिवेशदत्त (१४) बस्ती, ९००० कु. रामादेवी (१६) लखनऊ, १ विनोदकुमार (१८) उज्जैन, २ अशोककुमार (१५) लखनऊ, ३ चन्द्रमोहन (१४) मुरैना, ४ देवनिरंजन (१६) आमी, ५ कमलेशकुमार (१०) रांची, ६ त्रिलोकीनयन (१७) कटरासगढ़, ७ हजारीमल (१७) सुपौल, ८ गजनन्द (१६) छिन्दवाड़ा, ९ सुरेन्द्रकुमार (१५) आगरा, १० अतुलकुमार (१४) रायगढ़, ११ नरेन्द्रकुमार (१०) शिमला, १२ राजकुमार (१५) अमृतसर, १३ भेखनाथ (१३) दरभंगा, १४ अरुणकुमार (१३) शिवपुर, १५ सच्चिदानन्दप्रसाद (१८) शिवपुर, १६ श्रीकृष्ण (१३) ललितपुर, १७ शैलेन्द्रप्रसाद (१४) जमशेदपुर, १८ अम्बालाल (१५) वाकरोल, १९ जितेन्द्रकुमार (१७) महुवा, २० रमेशचन्द्र (१७) भोपाल, २१ रामावतार (१६) डुंडलोद, २२ प्रभातकुमार (१४) आगरा, २३ राजेन्द्रप्रसाद (१३) झरिया, २४ रामेश्वर (१८) नेवरा, २५ रामेश्वर (१८) उज्जैन, २६ सुभाषचन्द्र (१६) मेरठ, २७ सुशीलकुमार (१५) बारां, २८ जीतमल (१५) खोडन, २९ कु. गीता (१६) भिलाई, ३० करतारसिंह (१६) इन्दोर, ३१ श्रीकृष्ण (१५) लुधियाना, ३२ सुखदेवराज (१६) लुधियाना, ३३ सुभाषचन्द्र (१५) दिल्ली, ३४ गंगाबिशन (१५) व्यावर, ३५ गुरुनारायण (१४) काशीपुर, ३६ आत्माराम (१६) गौहाटी, ३७ कु. रीता देवी (१०) जमशेदपुर, ३८ अनिलकुमार (१३) अजमेर, ३९ सुरेश (१४) भिण्ड, ४० हरिकिशन (१७) अलवर, ४१ अवधेशकुमार (१५) बक्सर, ४२ हेमराज (१७) धर्मगढ़, ४३ वृन्दावन (१५) जलालपुरधई, ४४ शैलेन्द्रकुमार (१५) दिल्ली, ४५ मोहनप्रसाद (११) रांची, ४६ अवधेश (१५) फर्रुखाबाद, ४७ फखरे आलम (१४) सगड़ी, ४८ नारायणबाबन (१५) हिवरखेड, ४९ देवेन्द्रसिंह (१३) चित्तौड़गढ़, ५० ज्ञानेश्वर राव (२०) टवानगर, ५१ कु. विमलेश (१३) लखनऊ, ५२ ललितप्रसाद (१८) जयपुर, ५३ ज्ञानप्रकाश (१०) पटना।

सुजीतकुमार बोस
(स. सं. ७७१४)

गोविन्दराम मोदी
(स. सं. ८२५८)

युद्धवीरसिंह
(स. सं. ८५९५)

सुबोधकुमार
(स. सं. ८७७१)

जगदीश
(स. सं. ९९८९)

जफर रजा
(स. सं. ११५४२)

सुन्दरलाल अग्रवाल
(स. सं. ११७७६)

विनोदकुमार मित्रा
(स. सं. १२६९८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार की सबसे लम्बी हवाई ट्रामकार

शिम्भूशरण (स. सं. १५०४)

यहाँ पर 'हवाई' का अर्थ हवा में उड़ने वाली नहीं, हवा में चलने वाली, रस्सों पर झूलती हुई सरकने वाली, लगाया जायेगा। हिमश्रृंगों और ढलानों की शोभा निरखने वाले शौकीनों के लिए हवाई ट्राम का साधन यूरोप की आल्प्स पर्वतीय ट्राम सर्विस के रूप में तो है ही, अब अमरीका ने भी अपनी केलीफोर्निया सर्विस आरम्भ की है।

बढ़ते हुए इस नये शौक ने अमरीका के इंजीनियरों को इस ओर प्रेरित किया है। अब वे ऐसे शौकीनों को शाइनो केन्यन (Chino canyon) के झुलसाते हुए रेगिस्तान से उठा कर लगभग ४९०० फुट की ऊँचाई पर माउन्ट सेन जेकिन्टो (Mt. San Jacinto) के बर्फिस्तान पर संसार की सबसे बड़ी, २½ मील लम्बी केबुल-लाइन पर हवाई ट्रामकारों द्वारा ले आते हैं। सुरम्य पर्वतमाला के मध्य वह स्टेशन है जहाँ से यात्रियोंभरी एक ट्राम जाती है, दूसरी आकर खाली हो जाती है।

ट्राम की वह एक कार २८ फुट लम्बी होती है और चालक तथा कण्डक्टर सहित ८० यात्रियों को एक बार में भर ले जा सकती है। कार की छत इस योग्य होती है कि दर्शकगण खड़े-खड़े चारों ओर के दृश्य देख सकते हैं। १० मील प्र. घ. की मन्थर गति से चलती वह कार दृश्यावलियों का आनन्द ले सकने का पूरा अवकाश देती है।

जिस केबुल पर यह कार झूलती चलती है, वह दो इंच मोटा और बटा हुआ तार का बना होता है। समान्तर ऐसे दो केबुलों पर वह कार लटकी रहती है। वैसे ये केबुल इतने मजबूत बनाये जाते हैं कि दो की अपेक्षा एक ही केबुल भरी हुई ट्राम का परिवहन कर सकता है। दो केबुलों की यह लाइन २½ मील की लम्बाई में बीच-बीच में पाँच टावरों से गुजरती है जहाँ इसे अतिरिक्त आधार भी मिल जाता है। अतः बीच ही में टूट गिरने की सम्भावना शून्यप्राय रहती है।

कभी गरारियों पर कोई वस्तु खिंचती देखी होगी ! बस, उसी प्रकार दो केबुलों में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से एक इस ओर ट्राम को खींचता है, दूसरा दूसरी ओर। स्वयं ट्राम में कोई इंजन आदि नहीं होता जिससे वह स्वतः चल सके; किन्तु इसके स्टेशन पर ही इसका शक्ति-केन्द्र रहता है। वहाँ रखी हुई ७५० हार्स पावर की विशाल इलैक्ट्रिक मोटर अपनी शक्ति द्वारा केबुलों को कार समेत खींचता है।

दूसरे सिरे पर पहुँचते ही एक एलेवेटर (लिफ्ट) की भाँति यह कार आराम से ठहर जाती है। ८५१६ फुट की ऊँचाई पर बने दर्शक-केन्द्र पर पहुँचकर अधिक साहसी व्यक्ति तो बर्फ पर स्केटिंग और स्कीइंग का आनन्द लेने लग जाते हैं और जो ऐसा जोखिम लेना नहीं चाहते, वे नजर भर कर नजारे देखने और वहाँ पर बने रेस्तराँ तथा डान्सिग हाल में नाचने और खाने-पीने का आनन्द लेते हैं और चारों ओर के फोटो उतारते हैं।

कहने को तो यूरोप के आल्प्स पर्वत की ऐसी हवाई ट्राम-यात्राएँ और भी लम्बी हैं, किन्तु वे टुकड़े-टुकड़े और बीच में अदला-बदलीयुक्त होने से इसकी स्पर्धा में नहीं आतीं। केवल इटली की ट्रन्टो पेगानेला लाइन ११,१०९ फुट लम्बी होने के नाते इस १३,२०० फुट लम्बी निरावरोध लाइन के पश्चात् द्वितीय स्थान पर आती है।

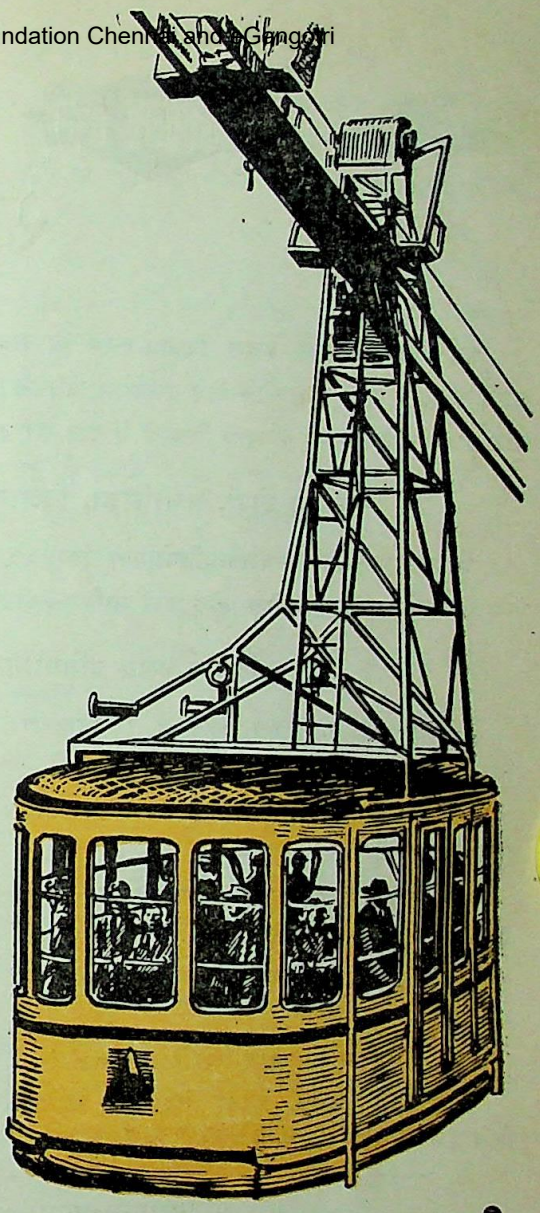

जलविहार कीजिए···पानी के अन्दर

नैनीताल हो या कोई भी ताल, रौनक के दिनों में सैलानियों की अनियन्त्रित भीड़ नौकाविहार का मजा मिट्टी कर देता है। फिलहाल यदि ७०-८० हजार रुपया खर्च कर सकते हैं, तो एक कार की भाँति ही, निजी पनडुब्बी रख सकते हैं—ऐसी, जिसमें सैर की, सुख-सुविधा के सभी साधन हों और सतह के ऊपरी शोरगुल से बचे हुए, पानी के अन्दर ही अन्दर आप सैर का आनन्द ले सकें।

चन्दा की यह आँखमिचौनी

फ्लेगस्टाफ (एरिजोना) स्थित लावेल वेधशाला में चन्द्रमा के दो नये कौतुक हाल ही में पकड़े गये हैं। वहाँ के एरिस्टारकस गिरि-गुहा के निकट जब कभी लाल अग्निशिखाएँ तथा उनसे भी पहले श्वेत प्रकाश अलग ही झिलमिलाता देखा गया है। हेराल्ड यूरे नामक प्रसिद्ध चन्द्रविद का अनुमान है कि वहाँ की सतह में दबे हुए केल्सियम कार्बाइड के शिलाखण्डों पर जब कभी पानी रिस-रिसकर पड़ता होगा, तब उससे ऐसेटिलीन गैस उठती होगी। वही गैस सूर्य के प्रखर ताप में कभी विच्छेदित, तो कभी प्रज्जवलित होकर यह दृश्य उपस्थित करती होगी। इन अवलोकनों से इस आशा को बल मिलता रहा है कि चन्द्रमा पर जीवन सम्भव है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

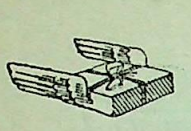

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५५

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : १५ सितम्बर

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५७ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५५ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर १५ सितम्बर तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५५ के प्रश्न

१. Symbiosis किसे कहते हैं ? उदाहरण सहित समझाइए।

२. उड़नशील पक्षियों में सर्वाधिक विशालकाय पक्षी कौनसा है ?

३. किस सिद्धान्त पर और किस विधि द्वारा बर्फ की एक सिल्ली के दो टुकड़े किये बगैर, एक पतला तार उसके आर-पार गुजारा जा सकता है ?

४. लीथियम की खोज किसने और कब की ?

५. सीसा (lead) इतना भारी होने पर भी किस द्रव पर तैर सकता है ?

६. श्वासगति मापने के लिए किस यंत्र का उपयोग किया जाता है ?

७. लोहे की कीलें पानी में जंग से सुरक्षित किस प्रकार रखी जा सकती हैं ?

८. ईल (Eel) मछली किस शक्ति तक का विद्युत् करेण्ट मार सकती है ?

९. भारी पानी (heavy water) का क्वथनांक और घननांक बताओ।

१०. सूर्य और पृथ्वी के मध्य, वायुमण्डल-शून्य अन्तरिक्ष में सूर्य के निकट होने पर उसके प्रकाश की तीव्रता बढ़ जाएगी या पृथ्वी पर है उतनी ही रहेगी?

प्रतियोगिता संख्या ५३ के प्रश्नों के उत्तर

१. लगभग २ किलोमीटर, (७०००) फुट की गहराई तक। उससे नीचे का जल-भाग वाष्पावस्था और गर्म झरनों, फव्वारों अर्थात् गैशर्स (geysers) के रूप में धरती फोड़कर बाहर निकलता रहता है।

२. नये प्रकार का शरीर-तापमापी है जो स्पर्श करते ही, २-३ सेकिण्ड में शरीर का ताप प्रदर्शित कर देता है। हाथ-पाँव फेंकने वाले पशुओं की चिकित्सा में यह विशेष उपयोगी है।

३. अमरीका के एल. ई. वाटरमैन ने १८८४ में।

४. शून्याकाश में; क्योंकि वायुमंडल तथा धूलि-कण रहित, शून्य अन्तरिक्ष में प्रकाश को परावर्तित करने के लिए कुछ भी नहीं रहता। अतः वहाँ सूर्य की उदितावस्था में भी अन्धकार ही अन्धकार रहता है।

५. रेडियो कार्बन–१४ के विकिरण द्वारा फासिल-अध्ययन के उपलक्ष्य में १९६० का नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया था।

६. ट्रपेजाइड (trapezoid)।

७. फार्मिक एसिड के कारण।

८. यौगिक के लिए संयोजनकर्ता पदार्थों की निश्चित ही मात्रा आवश्यक है और यौगिक के वे पदार्थ अपने निजी गुण सम्पूर्णतः त्याग देते हैं; जबकि मिश्रण में पदार्थों की मात्राएँ कुछ भी हो सकती हैं और वे पदार्थ अपने गुण उस अवस्था में भी बनाये रखते हैं।

९. झामा पत्थर (pumice stone)।

१०. पन्द्रह मील।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

सच्चिदानन्द (११८००) छतौना

प्रश्न—Magnetic Meridian अर्थात् चुम्बकीय ध्रुववृत्त (याम्योत्तर) किसे कहते हैं? यह किस तरह ज्ञात की जा सकती है?

उत्तर—एक चुम्बकीय छड़ को क्षैतिज अवस्था में (अपनी धुरी पर) मुक्त रूप से हिलने-डुलने दीजिए। उस प्रकार वह पृथ्वी के चुम्बकीय ध्रुव को इंगित करती हुई, विशेष ही अवस्था में स्थिर हो जाएगी। स्थिर होने पर उसके केन्द्र के मध्य से जो काल्पनिक रेखा लम्ब के रूप में गुजारी जा सके, वही भूचुम्बकीय ध्रुववृत्त की रेखा का एक भाग कही जाएगी।

पुष्पेन्द्रकृष्ण (१११७६) बरेली

प्रश्न—पानी में मिला हुआ आक्सीजन आग बुझाने में क्यों सहायता करता है, जबकि उसकी प्रवृत्ति अग्नि को सहायता करने की है?

उत्तर—दो भाग हाइड्रोजन से संयुक्त होकर एक भाग आक्सीजन जब जल में परिणत हो जाता है, तब उस जल का ऊष्मांक अन्य किसी भी द्रव से अधिक हो जाता है। यह गुण जल को एक सर्वमान्य शीतलक बना देता है। एक प्रकार से यह तभी संभव है जब आक्सीजन के संयोग के कारण हाइड्रोजन का आक्सीकरण हो जाए, अन्यथा ये दोनों पृथक् रूप में तो आक्सी-हाइड्रोजन ज्वाला बनाते हैं जो अति उच्च ताप के कारण कठोरतम धातुएँ गलाने में काम आती है।

सुरेशचन्द्र बजाज (१२१०६) कानपुर

प्रश्न—पौधे मानवभक्षी भी होते हैं क्या?

उत्तर—प्रकृति ने अभी ऐसी गलती नहीं की है। यदि तुम्हारा आशय मांसभक्षी पौधे ज्ञात करने का है तो इस विषय पर विज्ञान-लोक के विगत कुछेक अंकों में विवरण दिया जा चुका है। फिर भी निम्न पौधों को याद रखिये जिनका काम ही है कीटों और नन्हे जन्तुओं को फांस कर हजम कर जाना: सनड्यू (Sundew), ब्लैडरवर्ट (Bladderwort), बटरवर्ट (Butterwort), डारलिंग्टोनिया (Darlingtonia) तथा वीनस फ्लाइट्रेप (Venus Flytrap)।

सुरेशकुमार (९१९०) अमृतसर

प्रश्न—तेज धूप में यदि गीले जूते पहिन कर चलते हैं तो बीमार पड़ जाते हैं किन्तु सिर पर गीला तौलिया रख कर चलने में बड़ी ठण्डक मालूम देती है। ऐसा क्यों?

उत्तर—प्रश्न अधूरा है। सिर पर रखी गीली तौलिया तो गीले जूतों से भी बढ़कर हानि पहुँचायेगी। घर में, छाया में बैठ कर चाहे कुछ कर लीजिए किन्तु राह चलते में, विशेषकर तेज धूप में केवल सूखा कपड़ा सिर पर रख कर या छतरी लगा कर धूप के सीधे आक्रमण से बचाव करना चाहिए, अन्यथा लू लग जाने अर्थात् सन-स्ट्रोक (sunstroke) के फलस्वरूप जीवन तक खतरे में पड़ सकता है।

विष्णुभगवान अग्रवाल (५२९१) ग्वालियर

प्रश्न—गणित में ग्राफ-प्रणाली का आविष्कार किसने किया?

उत्तर—इसका श्रेय १७वीं शताब्दी के फ्रेन्च गणितज्ञ रीने डिस्कार्टेस (Rene Descartes) को है।

राजेन्द्रप्रसाद वर्मा (११९७०) कुल्टी

प्रश्न—सुना है, नन्हे कीटों की भी अपनी रेडियो-संचार व्यवस्था है। कृपया स्पष्ट समझाइए।

उत्तर—आपने सच ही सुना है। कीटों, पतिंगों के सूक्ष्माकार देखते हुए कुछ ही फुट और गज की दूरी उनके लिए काफी कही जा सकती है किन्तु और भी अधिक दूरी से ये अपने स्पर्श-तन्तुओं—एण्टिनी (antinnae) से वही काम ले लेते हैं जो रेडियो का एरियल काम देता है। नर और मादा अपने विशिष्ट ध्वनि-संकेतों के सहारे परस्पर निकट आते हैं। कोई चींटी भी यदि अपने दल से बिछुड़ कर संकट में पड़ जाए तो अपनी विशेष पुकार फेंकती है, जिसे सुन कर अन्य चीटियाँ सहायता को आ जाती हैं। इसी प्रकार खाने की भी कोई वस्तु एक चींटी को मिल जाती है तो वह अपने दल को बुला लेती है।

विनोदकुमार (१३४८) जबलपुर

प्रश्न—वर्तमान संसार में इन प्राणियों के नाम लिखिए:—सबसे बड़ा, सबसे छोटा, सबसे तेज दौड़ने वाला, सबसे तेज तैरने वाला और सबसे तेज उड़ाका।

उत्तर—नोट कीजिए, क्रम से:—व्हेल, अमीबा, चीता, सेलफिश मछली और स्विफ्ट चिड़िया। तुलनात्मक विवरण पिछले अंक (जून-६४) में देखिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लल्लनजी उपाध्याय (११२८८) मोरवाणी

प्रश्न—फोटो-कैमरे के साथ काम आने वाले फ्लैश बल्ब में क्या भरा रहता है जो स्विच के दबते ही बिजली से भी अधिक तीव्र प्रकाश जगमगा कर पलक मारते वह बल्ब फ्यूज भी हो जाता है ?

उत्तर—आतिशबाजी में मेग्नीशियम का तार तो बहुत बार जलाते रहे होंगे; कैसा तीव्र प्रकाश फेंकता है ! उसी तार का बारीक बुरादा और आक्सीजन गैस उसमें भरकर बैटरी के तार के सिरे सहित, बिजली के बल्ब की भांति सीलबन्द कर दिया जाता है। स्विच दाबने पर बैटरी की विद्युत धारा इसके लिए पर्याप्त होती है कि चिनगारी उत्पन्न कर दे। वही चिनगारी आक्सीजन की उपस्थिति में मेग्नीशियम के बुरादे को प्रज्ज्वलित कर देती है। एक बार का भरा मसाला चुक जाने पर बल्ब को भी फ्यूज ही होना पड़ता है।

नवीकान्त गोयल (१२३७४) सहारनपुर

प्रश्न—यदि बच्चे को जन्म से ही माँ का दूध न देकर, बाहरी दूध दिया जाये तो बच्चे या उसकी माँ को कोई हानि होगी ?

उत्तर—अनेक उदाहरणों में ऐसा करना ही पड़ता है। बाहरी दूध यदि रासायनिक दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त और पौष्टिक तत्त्वों से सम्पन्न है, तो न केवल बच्चा किन्तु उसकी माँ पर भी कोई हानि-कारक प्रभाव नहीं पड़ेगा। हाँ, बाहरी दूध यदि अन्य किसी महिला (दायी आदि) का दिया जाता रहेगा तो बच्चे के जन्मजात संस्कारों में स्पष्ट अन्तर आ जायेगा और मां का अपनत्व पाने से बच्चा किन्हीं अंशों तक वंचित रह जाएगा। मां यदि रोगिणी है, तो दोनों की भलाई के लिए ऐसा करना ही श्रेयस्कर है।

महेन्द्रपाल वार्ष्णेय (१०७७४) इलाहाबाद

प्रश्न—विज्ञान लोक के किसी अंक में जगदीशचन्द्र वसु पर भी कोई लेख छपा है क्या ?

उत्तर—प्रथम वर्ष के प्रथम अंक में (फरवरी १९६०) देखिए।

बृजेशकुमार गुप्ता (१२१७४) सीतापुर

प्रश्न—क्या कारण है कि किसी लटकती हुई गर्म वस्तु के ऊपर हम अधर में हाथ रखें तो ताप मालूम देता है और नीचे रखने पर नहीं ?

उत्तर—ताप की तरंगे ऊपर ही को उठती हैं न ? यही कारण है।

सुबोधशंकर (४१७१४) इलाहाबाद

प्रश्न—टेरीलीन का कपड़ा किस वस्तु से तैयार किया जाता है ?

उत्तर—यह प्रयोगशाला में निर्मित, संश्लेषित रेशों की उपज है। 'कपड़े जो बुने नहीं जाते' शीर्षक लेख विज्ञान-लोक अगस्त १९६२ के अंक में पृष्ठ २१ पर विस्तार से दिया हुआ है।

कु. चन्द्रमोहिनी राठौर (१२४४१) कटनी

प्रश्न—पृथ्वी पर इतना अधिक बोझ है, फिर भी यह नीचे क्यों नहीं चली जाती ?

उत्तर—कहाँ जाएगी, रसातल में ? आखिर, पृथ्वी किसी खम्भे या धरातल पर तो टिकी नहीं, जो बोझ बढ़ते ही धसक जाएगी ! शून्य ही शून्य में धुआँधार चक्कर लगाती हुई यह पृथ्वी अपने कक्षापथ की मर्यादा से बाहर नहीं जाती। जो वस्तु शून्य ही शून्य में घूम रही है, उसका कैसा उभरना और कैसा धसकना ?

प्रभुनरायन जायसवाल (३९९८) दौलतपुर

प्रश्न—ध्वनि को विद्युत् में किस प्रकार बदला जा सकता है ?

उत्तर—ध्वनि-लहरों को विद्युत-लहरों में रूपान्तरित करने का सहज उदाहरण माइक्रोफोन तथा रेडियो है। इनकी आन्तरिक रचना के अध्ययन से आपकी शंका का समाधान हो जाएगा।

इन्द्रराज हाड़ा (८४८७) राउरकेला

प्रश्न—यूरेनियम कहाँ-कहाँ पाया जाता है ? भारत में भी पाया जाता है क्या ?

उत्तर—यूरेनियम मुख्यतः बेल्जियम, कांगो, चेकोस्लोवेकिया, जर्मनी, कनाडा तथा द. आस्ट्रेलिया में पाया जाता है। भारत में अभी नहीं पाया जा सका है।

रंजन माथुर (१२४२०) जयपुर

प्रश्न—धूप में हर चीज सूख जाती है, पसीना क्यों नहीं सूखता ?

उत्तर—धूप हो या कठिन परिश्रम की गर्मी, दोनों का काम ही है स्वेदोत्पादक ग्रन्थियों को सक्रिय कर देना। तब सूखने का प्रश्न ही नहीं उठता, उलटे और तेजी से बहने लगता है।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पत पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाठकों से निवेदन

यदि आपको विज्ञान-लोक पसन्द है, तो आप अपने अन्य साथियों को इसे पढ़ाइये और उन्हें इसका नियमित रूप से ग्राहक बनने के लिए कहिए। 'विज्ञान-लोक' भारत में अपने ढंग का पहला सचित्र वैज्ञानिक मासिक है और इसका उद्देश्य विज्ञान को सरल भाषा में रोचक ढंग से उपस्थित करना है।

विज्ञान-लोक सम्बन्धी पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

अपना पता पूरा और साफ अक्षरों में लिखें, ताकि पत्रोत्तर और विज्ञान-लोक आपको ठीक समय पर मिल सके।

पता बदलने की सूचना हमें एक माह पूर्व प्राप्त होनी चाहिए। यदि छह माह से कम समय के लिए पता बदलवाना हो, तो आपको अपने संबंधित डाकखाने से इसकी व्यवस्था कर लेनी चाहिए।

यदि आप विज्ञान-लोक के ग्राहक अभी तक नहीं बने हों, तो आज ही अपना वार्षिक शुल्क ६ रु० मनीआर्डर द्वारा शीघ्र ही भेज दें ताकि अगला अंक आपको समय से मिल सके। पत्र व्यवहार का पता :

व्यवस्थापक, विक्रय-विभाग

विज्ञान-लोक

हास्पिटल रोड, आगरा

यहाँ से काटिये

विज्ञान क्लब सदस्यता, विज्ञान-लोक

कृष्णा दीदी,

मुझे विज्ञान क्लब का सदस्य बना लीजिए।

जन्म-दिन _____ आयु _____

नाम _____

घर का पता _____

_____

_____

स्कूल का नाम _____

शिक्षा _____ रुचि _____

यहाँ से काटिये

यहाँ से काटिये

यहाँ से काटिये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीने का मज़ा

हाईलैंड चीफ़

मार्ल्टेड व्हिस्की

श्रेष्ठता तथा सावधानी से मिश्रित यह अतुलनीय व्हिस्की ही आनन्ददायक श्रेष्ठ चुनाव है।

शताब्दी पुराना अनुभव विश्वास की गारन्टी है

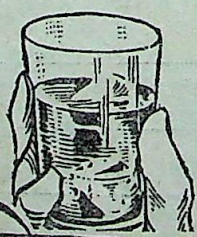

डायर मीकिन ब्रुअरीज़ लि०

स्थापित १८५५

सोलन ब्रुअरी — लखनऊ डिस्टिलरी — कसौली डिस्टिलरी

मोहन नगर ब्रुअरीज एण्ड एलाईड इन्डस्ट्रीज (यू०पी०)

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा ब्रदर्स, आगरा के लिए प्रका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप कीमतों की वृद्धि किस तरह रोक सकते हैं?

उत्पादन बढ़ाओ

अधिक काम कीजिए और उत्पादन बढ़ाइये। काम की रफ्तार मंद करने के तरीके छोड़ दीजिए। नियमित रूप से और ठीक समय पर काम सम्हालिये। ज्यादा मेहनत से उत्पादन बढ़ेगा और उससे हमारी रक्षा शक्ति सुदृढ़ करने में मदद मिलेगी।

पैदावार बढ़ाओ

अपने खेतों से अधिक उपज प्राप्त कीजिए और अपनी पैदावार उचित कीमतों पर बेचिये। सभी के लिए अनाज मिल सके और वह बिल्कुल व्यर्थ न जाए।

खर्च घटाओ

जब बहुत जरूरी हो तभी खरीदारी कीजिये। फजूल के सभी खर्च रोक दीजिये। दावत-समारोह वगैरह बंद कीजिए।

अधिक बचाओ

अधिक से अधिक बचत कीजिए और उसे नई रक्षा बचत योजनाओं में लगाइये। आप जितना अधिक बचाएंगे, देश की रक्षा शक्ति उतनी ही अधिक सुदृढ़ होगी और विजय शीघ्र प्राप्त होगी।

कीमतों को बढने से रोकिये

जय हिन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामबिहारीसिंह तोमर द्वारा लिखित

नवीन प्रकाशन

एम. ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान
२. ग्रामीण समाजशास्त्र
३. नागरिक समाजशास्त्र
४. हिन्दू विवाह एवं परिवार की समस्याएं
५. सामाजिक सूक्ष्मदर्शी : व्यैक्तिक अध्ययन प्रणाली
६. सामान्य समाजशास्त्र : समाज, संस्कृति तथा व्यक्तित्त्व
७. सामाजिक सिद्धान्त : व्यक्तित्त्व का समाजशास्त्रीय अध्ययन
८. व्यक्तित्त्व
९. भारतीय समाज, संस्कृति तथा संस्थाएं
१०. भारतीय संस्कृति के मूलाधार

बी. ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान परिचय
२. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग १ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)
३. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग २ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)
४. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व, भाग ३ (भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए)
५. समाजशास्त्र के सिद्धान्त (राजस्थान, जोधपुर, पंजाब, मुजफ्फरपुर)
६. सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब)
७. सामाजिक नियन्त्रण एवं सामाजिक परिवर्तन (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब, राँची)
८. समाजशास्त्र की प्रकृति एवं आधार (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
९. सामाजिक संरचना एवं सामाजिक गतिशास्त्र (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
१०. भारतीय जनता एवं संस्थाएं (आगरा, जबलपुर, भागलपुर)
११. भारतीय समाज एवं संस्कृति (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
१२. भारतीय सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, काशी, पंजाब)
१३. भारत की सामाजिक संस्थाएं (राजस्थान, जोधपुर)
१४. तुलनात्मक सामाजिक संस्थाएं (गोरखपुर)
१५. प्रारम्भिक ग्रामीण समाजशास्त्र

इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए

१. माध्यमिक समाजशास्त्र
२. भारतीय सामाजिक संगठन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्री राम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

L 1410

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िये

पैराशूट ३
—सुरेन्द्र शर्मा

हृदयरोग ६
—ए. एस. रावत

द्वीपों का विचित्र प्राणी-जगत १४
—डा. प्रकाशचन्द्र

उत्प्रेरण १८
—सत्यकुमार

बाँस २१
—राजेन्द्रकुमार

ईंट २५
—देवेन्द्रकुमार सक्सेना

रेशम का उत्पादन ३८
—नरेन्द्र छाबड़ा

भारवाहक वायुयान ४३
—राजऋषि

डा. सेम्युअल हैनिमेन ४६
—डा. हर्ष प्रियदर्शी

स्थायी स्तम्भ

विचित्र संसार ३६

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ४२

विज्ञान क्लब ५३

इनाम लो ५६

आपके प्रश्न ५७

अपनी बात

भारतीय शिक्षाशास्त्री, श्री जानू क्रिश्टप्पा ने अमरीकी यात्रा से लौटकर भारत को विकलांग व्यक्तियों के प्रशिक्षण सम्बन्धी अनेक नये दृष्टिकोण दिये हैं।

विकलांग व्यक्ति, बालक हो अथवा वृद्ध, हीन भावना से ग्रस्त, स्वयं को एक भार समझता हुआ जीवन दूभर कर लेता है। आज के शिक्षा-विज्ञान ने इस क्षेत्र में अनेक नवीनताएँ प्रस्तुत करके इस अस्वास्थ्यकर दृष्टिकोण को निश्शेष कर दिया है। आज का जात विकलांग व्यक्ति किसी की दया नहीं चाहता। वह केवल यही चाहता है कि उसके विकलांग स्वस्थ और कार्यशील कर दिए जायें ताकि वह भी उपार्जनशील व्यक्ति बनकर सृजनात्मक कार्यों में अपना हस्सा बँटा सके।

इस ओर विज्ञान के बढ़ते हुए कदमों के साथ कदम मिलाकर हमारे देश में अंध-बधिर शालाएँ, विविध दस्तकारियाँ, हस्तोद्योग आदि सिखाने योग्य शिक्षण-संस्थान तथा प्रशिक्षण केन्द्र बने हुए हैं। श्री क्रिश्टप्पा ने हैदराबाद-स्थित अपने संस्थान में अमरीकी ढंग पर लकड़ी का काम, वस्त्रों की कटाई-सिलाई, आफसेट प्रिंटिंग, व्यापार व्यवस्था, मोटर मैकेनिक आदि कार्यों में विकलांगों को प्रशिक्षित करने की सुन्दर व्यवस्था कर रखी है।

विकलांगों को भी उपयोगी व्यक्ति बना देने वाली इस योजना का देश भर में अधिकाधिक प्रसार हो, यह आज की सर्वोपरि आवश्यकताओं में से एक है। इस दिशा में श्री क्रिश्टप्पा की सेवाएँ अभिनन्दनीय हैं।

वर्ष ५ अंक ८

मूल्य
एक प्रति : ७५ पैसे
वार्षिक : ९ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धागे से लटके जीवन की रक्षा

पैराशूट

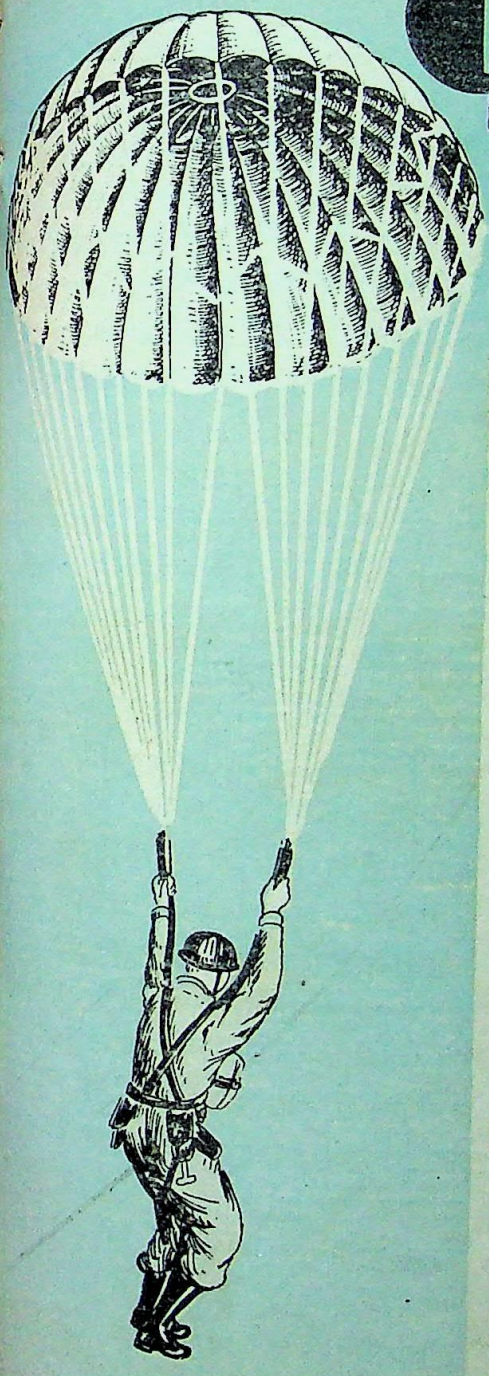

सुरेन्द्र शर्मा

कहीं किसी डूबते हुए को बचाने के लिए कूदना पड़ता है, तो कहीं जलते-टूटते वायुयान से स्वयं बचने के लिए भी कूदना पड़ता है। पहली अवस्था में कहीं सागर की अनन्त गहराइयों में कूदना पड़ता है, तो दूसरी अवस्था में कहीं अनन्त आकाश की अमाप ऊँचाइयों से कूदना पड़ता है। एक उड़ाके के लिए पैराशूट का वही महत्त्व है जो गोताखोर के लिए लाइफ-बेल्ट का। 'कूदो ! कूदो !!' की पुकार प्रायः ही वायुयान चालक के केबिन से सुनायी पड़ती है और 'एक···दो···तीन' कहने के साथ पैराशूट सज्जित उड़ाका इस गणना से कूद पड़ता है जो उसे यान से साफ निकाल देती है। हवा में इस प्रकार छलांग लगाने वाला वह व्यक्ति यद्यपि जानता है कि उसकी जिन्दगी केवल कुछेक धागों के ही सहारे लटक रही है, तथापि वह इस ओर से आश्वस्त है कि वे धागे सामान्य धागे नहीं, दृढ़तम जीवनरज्जु हैं। वर्षों उसने ट्रेनिंग भी इस बात की पायी है कि किसी भी अवस्था में वह मानसिक सन्तुलन न डिगने देगा। उन्हीं करामाती धागों और उनसे बनाये जाने वाले पैराशूट की यह छोटी-सी कहानी है।

लगभग ५०० वर्ष पूर्व

यह कम आश्चर्यजनक नहीं कि वायुयान के आविष्कार से काफी पहले वायुयान से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूदने के लिए पैराशूट का आविष्कार हो गया था ! बहुप्रतिभावान तथा संसारप्रसिद्ध लियोनार्दो-द-विंशे (जीवनी के लिए देखिए विज्ञान लोक, नवम्बर-६३ अंक) को पैराशूट की सूझ प्रस्तुत करने का श्रेय है। १४५२ से १५१९ तक के अपने जीवनकाल में अनगिनत वैज्ञानिक खोजों तथा आविष्कारों के साथ-साथ उसने पैराशूट के भी माडल तैयार किये थे। उनसे प्रेरित होकर प्रथम प्रयोग फ्रेन्च उड़ाके आन्द्रे गारनेरिन (Andre Garnerin) ने २२ अक्टूबर १७९७ को किया। उसने बाँसों का एक ढांचा बनाया और उस पर केनवस की चादर तान दी। उसे लेकर पेरिस नगरी पर २००० फुट की ऊँचाई से एक बैलून से कूदकर उसने प्रदर्शन किया।

एक अन्य फ्रेन्च उड़ाके जे. पी. ब्लेन्कर्ड (J. P. Blanchard) का भी उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार उसने अपने प्रथम प्रयोग में पैराशूटयुक्त, एक झाबे में कुत्ते को बिठाकर बैलून से नीचे उतारा था और दूसरे प्रयोग में स्वयं कूदने पर केवल टाँग की ही चोट से छुटकारा पा गया था।

तत्पश्चात् जॉन हेम्पडन (John-Hampden) नामक ब्रिटिश उड़ाके ने १८३८ में ह्वेल-अस्थियों की तानें बनाकर, उस पर केनवस चढ़ाकर उसे एक बड़े छाते का रूप दे दिया और ९००० फुट तक की ऊँचाई से कूदकर धरती पर सही सलामत उतर आया।

क्रमशः सुधार होते गये

उन प्रारम्भिक पैराशूटों में एक कठिनाई रहती थी कि वे काफी डांवाडोल होते-होते उतरते थे जिसके कारण उड़ाके को अपना सन्तुलन बनाये रखने में अत्यधिक असुविधा रहती थी। इसके सुधारस्वरूप १८८५ में एक अमरीकन वैज्ञानिक थामस वाल्दविन ने अपने नये माडल में छतरी के बीचोबीच एक छिद्र रख दिया। फलतः अतिरिक्त वायु उस छिद्र से निकलती रहने पर पैराशूट के डगमगाने की शिकायत बहुत अंश तक दूर हो गयी। खुलने पर छतरी का व्यास २२-२३ फुट से कम न रहे इस बात की विशेष सावधानी रखी जाती थी, क्योंकि एक पोलैण्ड निवासी उड़ाके जोरडाकी कुपारेण्टो (Jordaki Kuparento) ने केवल १७ फुट व्यास की छोटी छतरी से जो प्रयोग किया वह बुरी तरह असफल रहा था।

वर्तमान युग में बढ़ी हुई उपयोगिताएँ

इस युग की पैराशूट-कुदानों का आरम्भ १९१२ से माना जाता है जबकि सेंट लुई (अमरीका) के कैप्टन बेरी (Capt. Berry) ने उड़ते हुए वायुयान से प्रथम बार कुदान लगायी थी। तत्पश्चात् के दो वर्षों में ही इस चर्चा ने विश्वव्यापी महत्त्व प्राप्त कर लिया कि दुर्घटनाग्रस्त वायुयान से पैराशूट द्वारा कूदकर बच निकलने की संभावनाओं पर और भी गहन अध्ययन किया जाये। प्रस्तावित प्रगति को बीच ही में रुक जाना पड़ा, क्योंकि तुरन्त ही प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ जाने से सब कुछ जहाँ का तहाँ रह गया। जर्मनी ने अवश्य इसमें पहल की और शत्रुओं का रहस्य जानने के लिए अपने बैलूनों द्वारा एक-एक दिन में ८-१० कुदानें पैराशूट की सहायता से लगवाता रहा। मित्र-राष्ट्रों का इस ओर ध्यान युद्ध की समाप्ति पर ही जा सका था। १९१९ के एक ही वर्ष में अमरीका ने जब १५०० से भी अधिक कुदानें सफल कर दिखायीं, तब इंगलैण्ड ने भी उसका अनुकरण किया।

अत्यन्त सरल सिद्धान्त

अपनी खिड़की से एक सिक्का डालकर देखिए, वह तुरन्त ही धरती पर जा गिरेगा। चील का एक पंख भी वहीं से छोड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखिए, वह बड़े आराम से लहराता उतरेगा। तीसरी बार में उस पंख से बड़े आकार का एक कागज डालिए। आप देखेंगे कि वह सबसे धीमी गति से उतरेगा। चाहे आप तीनों को एक ही वजन में लेकर पुनः आजमाएं तो भी उनके गिरने की गति में स्पष्ट अन्तर रहेगा ही। इसका कारण खोजना अधिक कठिन नहीं।

हम जानते हैं कि वस्तुओं का गिरना वास्तव में पृथ्वी की ओर आकर्षित होना है और उस आकर्षण-बल को हम गुरुत्वाकर्षण कहते हैं। यह बल वस्तुओं के भार को इतना महत्व नहीं देता, जितना उनकी लम्बाई-चौड़ाई को। किसी भी वस्तु की सतह के कण-कण और अणु-अणु पर यह बल अपना प्रभाव दिखाता है। इस कार्य में इस बल को मुख्य सहायता वस्तु और धरती के मध्य वायु से मिलती है। दूसरे शब्दों में, यदि बीच में वायु को हटाया जा सके तो वस्तुएँ कैसी भी भिन्न-भिन्न हों, सभी एक ही साथ नीचे आ गिरेंगी। यह तथ्य दूसरे उदाहरण से समझ में आ जायगा। एक ऐसा पात्र लिया जाये जिसे निर्वात किया जा सके तथा जिसके सिरे से वस्तुएं अन्दर पेंदे में गिराने की यांत्रिक व्यवस्था हो। उस पात्र से वे ही तीनों वस्तुएँ—सिक्का, पंख और कागज गिराने पर एक ही साथ तीनों पेंदे में गिरेंगी। क्यों? केवल इसलिए कि मध्य की वायु सब निकाल ली गयी है।

उपरोक्त उदाहरणों में पैराशूट को समझने के योग्य एक यही मुख्य बात मिलती है कि वस्तु की सतह जितनी विशाल, उतरने में विलम्ब उतना ही अधिक। अतः छतरी का व्यास जो कम से कम २४ फुट रखा जाता है, उसके द्वारा वायु को अपना कार्य करने के लिए लगभग ६२ वर्ग गज का विस्तार मिल जाता है। पैराशूट से नीचे उतरने की गति साधारणतया २० फुट प्रति सेकण्ड रहती है और धरती छू लेने पर केवल इतना झटका लगता है मानो १० फुट ऊँची दीवार से कूदे हों। यद्यपि प्रयोगस्वरूप कम से कम २०० फुट की छोटी ऊँचाई से भी पैराशूट द्वारा कुदान लगायी जा सकी है, किन्तु ५५० फुट से कम ऊँचाई से कूदने पर हाथ-पांव टूटने की सम्भावना रहती है। अधिकतम ऊँचाई से कूदने का अब तक का रिकार्ड ६०,००० फुट का है।

पूरी सावधानी और दक्षता से उतरते हुए इस हवा-बाज ने पैराशूट खोलने के साथ ही माल की गठरी भी नीचे लटका दी है, ताकि भूमि पर पहले वही उतरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

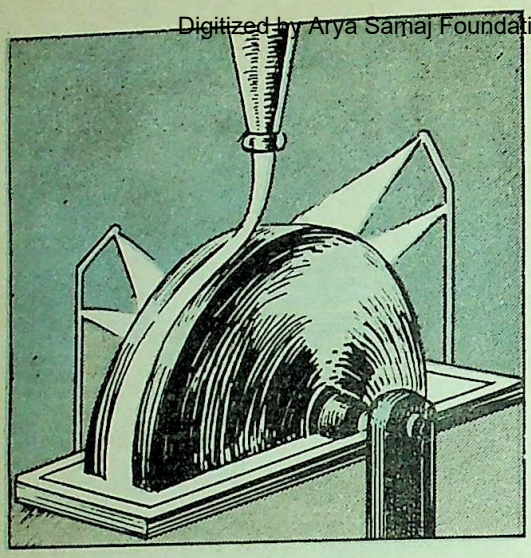

यहाँ नाइलान के तंतु बन रहे हैं। इन्हीं से बने अपरिमित दृढ़ता वाले धागों के सहारे पैराशूट से उतरते हवाबाज का जीवन विश्वस्त रूप से लटका रहता है

जब पैराशूट बनाया जाता है

तब उन करामाती धागों की बारी आती है जिनके सहारे एक अनमोल जीवन लटकता हुआ धरती पर उतरता है और अपने आश्रित व्यक्तियों को सहायता पहुँचाता है। वे धागे जिस वस्तु से बनते हैं, वह वस्तु आधुनिक रसायन-विज्ञान की देन है और उसके नाइलान नाम से अब तो सभी परिचित हो चुके हैं। नाइलान की कहानी कोयले की अंधेरी खदान से शुरू होती है।

किसी भी बड़ी कोलगैस फैक्ट्री में निकलते हुए कोलतार पर रासायनिक क्रियाएँ कराकर जो अशोधित बेन्जीन प्राप्त होती है, उसी से नाइलान तैयार किया जाता है। जो क्रियाएँ आज से केवल २० वर्ष पूर्व कल्पना में भी नहीं थीं, उनकी सहायता से बेन्जीन हमें नाइलान देने में समर्थ है। बेन्जीन पर अम्लों और कोलगैस की प्रक्रिया कराने पर सफेद द्रव के रूप में जो पदार्थ तैयार होता है, वही मूल रूप में नाइलान होता है। उस द्रव को निकलने की अवस्था में ही एक पानी की टंकी में घुमाया जाता है और ठण्डे से भी ठण्डे पानी की बौछार की जाती है। परिणाम यह होता है कि वह सफेद द्रव एक लम्बी पट्टी के रूप में जम जाता है। उस पट्टी को नन्हें टुकड़ों में काटकर, विशेषनिर्मित पात्रों में भरकर स्पिनिंग के कारखानों में भेज दिया जाता है। वहाँ विशेष प्रकार के यंत्रों पर इन्हें सूत के धागों जैसे रेशों में परिवर्तित कर लिया जाता है। रेशे बनाने वाले उन यंत्रों को एक बार चलाकर जब तक कार्य समाप्त न हो जाय, निरन्तर चलाते रहना पड़ता है, क्योंकि एक बार भी रुक जाने पर बड़ी कठिनाई उपस्थित हो जाती है।

नाइलान के रेशों की अप्रतिम मजबूती

इसका रहस्य एक ही है। इन रेशों को अधिक से अधिक खींचा जाता है। कम से कम चौगुनी लम्बाई तक खिचने पर इनके अणु सम्पूर्णतः सीधे और सही अवस्था में स्थित हो जाते हैं। उनकी वह सही अवस्था ही इन रेशों को अत्यधिक बल और स्थितिस्थापकता प्रदान करती है। खिचे जाने के पश्चात् अन्तिम क्रिया फिनिशिंग की आती है। नन्हें मोजों से लेकर पैराशूट तक नाइलान की उपयोगिता ऐतिहासिक रूप से विस्तृत होने के कारण जैसा इसका उपयोग, वैसा ही इसे फिनिशिंग दिया जाता है। कहीं तो इन रेशों को सूत के धागों की भाँति बँटा जाता है, कहीं सीधा ब्वाइलर में तपाया जाता है और कहीं तेल तथा गोंद की सहायता से ऊन के गाले जैसा बनाया जाता है।

मुख्यतः पैराशूट में पाँच भाग होते हैं—१. छतरी, २. रस्सों का जाल, ३. मुख्य नली, ४. पैक-पात्र और ५. शरीर से बांधने की जोत। छतरी बनाने के लिए कम से कम २० तथा अधिक से अधिक २८ त्रिकोणाकार पट्टियाँ तैयार की जाती हैं। वे पट्टियाँ भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्धारित संख्या के अनेक टुकड़ों से बनायी जाती हैं। वे टुकड़े बढ़िया सिल्क अथवा नाइलान के होते हैं। एक-एक पट्टी को अनेक टुकड़े जोड़कर इस दृष्टि से बनाया जाता है कि यदि वायु की चोट से कहीं छिद्र हो भी जाये, तो वह अधिक बड़ा न होने पाये और उस उड़े हुए टुकड़े तक ही सीमित रहे। वे टुकड़े भी ताने-बाने की भाँति एक-दूसरे से बास करते हुए जोड़े जाते हैं ताकि अधिक से अधिक मजबूती संभव हो। तिकोनी पट्टियाँ तैयार हो जाने पर उन्हें जब जोड़ा जाता है तब वे एक छतरी के रूप में गोलाकार बन जाते हैं। छतरी के मध्य में एक गोल छिद्र अवश्य छोड़ा जाता है। छतरी की तानों के रूप में नाइलान के मजबूत रस्से समूची सिलाई में से गुजरते हुए इस प्रकार रखे जाते हैं कि उनके पांच-पांच सिरे चार जगह लटकते रहें और वे चारों उस जोत में फिट रहें जो उड़ाके के शरीर के गिर्द बांधी जायेगी। केन्द्रीय नली जो छतरी की डण्डी का काम देती है, नाइलान के मजबूत रस्से की बनायी जाती है। शरीर के गिर्द बांधी जाने वाली जोत मजबूत निवार की पट्टियों तथा स्टेनलेस स्टील के बक्सुओं से बनायी जाती है। सम्पूर्ण सज्जायुक्त पैराशूट का पैकिंग तथा उड़ाके के शरीर से फिटिंग इस प्रकार किया जाता है कि उतरते समय तुरन्त ही पैराशूट खोल देने में उसे जरा भी दिक्कत और विलम्ब न हो। इसमें किंचितमात्र भी त्रुटि रह जाने के कारण अनेक दुर्घटनाएं हो जाने के उदाहरण हैं।

और भी विलक्षण पैराशूट

यहाँ तक तो सामान्य पैराशूट की बात हुई जिसे बाँधकर कोई भी उड़ाका साधारण वायुयान से एक, दो, तीन गिनकर कूद पड़ेगा। अति तीव्रगामी जेट-यानों के लिए ये सामान्य पैराशूट काम न दे सकेंगे, क्योंकि इन यानों की तीव्र गति एक ऐसा वायु-आकर्षण उत्पन्न कर देती है जो उड़ाके को पुनः अपनी ओर खींच सकता है। वह आकर्षण ठीक वैसा होता है जैसे डूबते हुए जहाज को बचाने के लिए जाने वाली नाव यदि उसके अत्यन्त निकट पहुँच जाय तो जहाज उसे भी ले डूबे। अतः जेट-यानों के लिए ऐसे इजेक्टर पैराशूट बनाये जाते हैं जो अपनी कार्य विधि में बड़े विलक्षण होते हैं। यह ऊपर कहा जा चुका है कि पैराशूट में उतरते हुए उड़ाके की गति औसतन २० फुट प्रति सेकण्ड की होती है; परन्तु इजेक्टर पैराशूट उड़ाके को यान से बाहर, ८० फुट प्रति सेकण्ड के वेग से ऊपर उछालता है। उछालने की वह क्रिया एक विस्फोटक द्वारा सम्पन्न होती है जो यान में बैठे हुए उड़ाके की सीट के नीचे लगाया जाता है।

इन्हीं में और भी विलक्षणता इस प्रकार बढ़ायी गयी है कि ये इजेक्टर पैराशूट भी स्वचालित बनाये गये हैं। विस्फोटक द्वारा उछाले जाने पर यदि उड़ाका संज्ञाहीन हो तो

आग-ग्रस्त वायुयान से उतरना अत्यन्त कौशल का काम है। हवाबाज की सीट के नीचे विस्फोटक रहता है, जिसे दागते ही हवाबाज सीट सहित ऊपर उछल आता है। तत्काल ही पुनः नीचे आते समय वायुयान से न टकरा जाए, इसकी विशेष सावधानी रखनी होती है

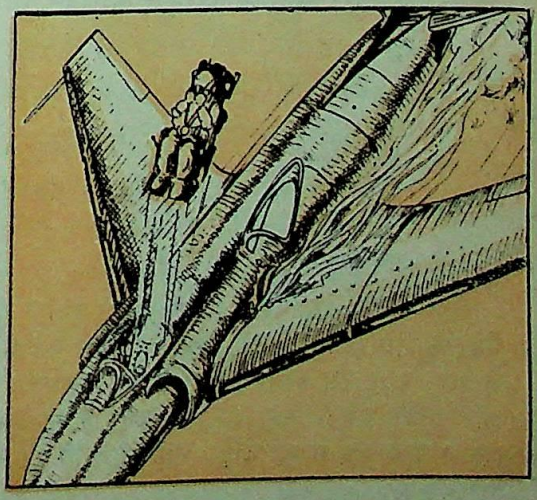

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

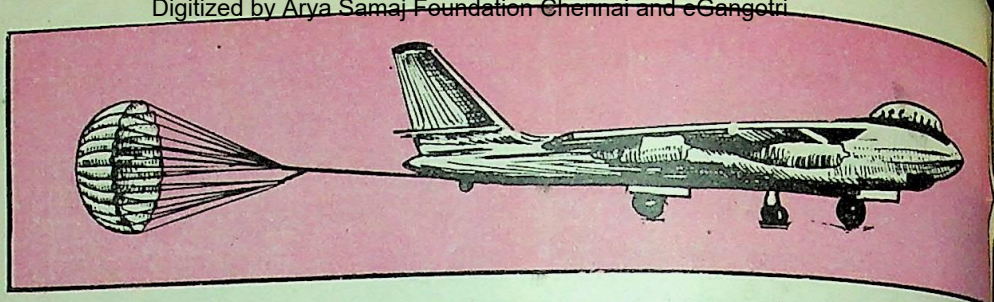

उतरते वायुयान की गति मन्द करने के लिए पैराशूट का उपयोग किया जाता है

पैराशूट में लगा हुआ वायुदाबमापी निर्धारित निचाई आते ही इंगित करेगा और तभी स्वचालित स्विच द्वारा पैराशूट खुल जायेगा।

बहुउपयोगी पैराशूट

पैराशूट की उपयोगिताएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। यद्यपि इनका कार्यभार बहुत अंश तक हैलीकाप्टर ने भी सम्हाल रखा है, तथापि कुछेक स्थल तो ऐसे हैं ही जहाँ हैलीकाप्टर की पहुँच नहीं। उदाहरणतः अत्यधिक ऊँचाई (२०-३० मील ऊँचे) पर वायु-निरीक्षण के लिए बेलून में भेजे गये वेधशाला के विभिन्न यंत्रों का कार्य पूरा होने के पश्चात् उन्हें पुनः पृथ्वी पर लौटा लाना आवश्यक होता है। वह कार्य पैराशूट द्वारा ही सम्भव है। अति तीव्र गति से उतरते हुए विमान की चाल मन्द करने के लिए ब्रेकों पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता। उस समय विमान की पूँछ के पीछे पैराशूट खोलकर ही उसकी गति पर नियन्त्रण पाया जा सकता है। संकटग्रस्त क्षेत्रों में अन्न, वस्त्र, दवाएं तथा चिकित्सक और नर्सें तक पहुंचाने में पैराशूट काम में लिए जाते हैं। इसी प्रकार बड़ी झीलों तथा सागरों में डूबते हुए व्यक्तियों को बचाने, बाढ़पीड़ितों को सहायता पहुँचाने और जंगलों की अग्नि बुझाने जैसे जीवन-रक्षक कार्यों में पैराशूट का अपना विशिष्ट स्थान है।

युद्धकार्यों में तो पैराशूट का महत्व प्रथम श्रेणी में आता है। भारी शस्त्रास्त्र, टेन्क, जीप, ट्रक, रसद, सैनिक तथा अनेकानेक वस्तुएँ पैराशूट द्वारा निर्दिष्ट स्थलों पर पहुँचायी जाती हैं। प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध तक और वर्तमान में भी पैराशूट ने उल्लेखनीय महत्व के कार्य सम्पन्न किये हैं।

नाइलान के धागों के सहारे हजारों बहुमूल्य जीवन पैराशूट में लटकते चलते हैं। इसीलिए इनके निर्माताओं को सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों पर पूरा-पूरा ध्यान देना पड़ता है कि कहीं जरा-सी भी त्रुटि अनजाने चली न जाये। एक पैराशूट को अनिवार्यतः ६० दिन में कमसे कम एक बार धोना, चेक करना, सुखाना तथा पुनः पैक करना आवश्यक होता है ताकि प्रयोग की नाजुक घड़ी पर धोखा न दे जाये।

४४० वोल्ट : खतरा, और

....पौने आठ लाख वोल्ट, खतरा नहीं ! दूसरे शब्दों में यह कि ७७५००० वोल्ट के खुले तार मैकेनिक नगे हाथों छूते हुए उसकी मरम्मत कर सकेंगे। तीसरे शब्दों में यह कि आदमी अब बिजली जायगा ! यह इस प्रकार होगा कि उस खतरनाक मरम्मत के दौरान में आदमी धरती को छुयेगा ही और ऊँची नसेनी पर खड़ा, अपना काम बेधड़क करता रहेगा। सबसे बड़ा रहस्य यह होगा एक क्रेन के रूप में वह सीढ़ी, कहीं भी धातु की न होकर, फाइबरग्लास की होगी, जो पूर्णतः निरोधक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

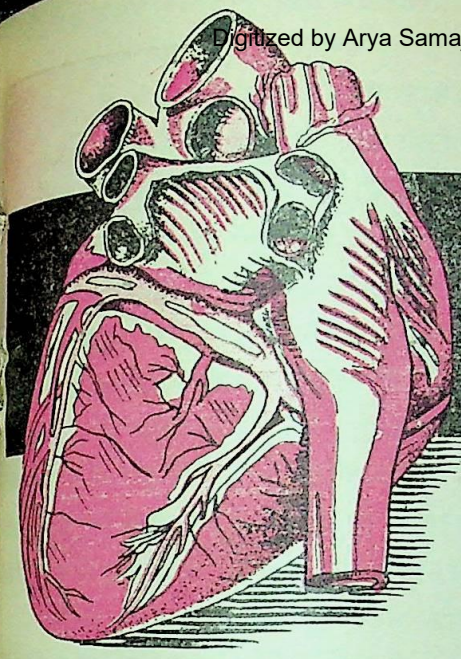

हृदय रोग

ए. एस. रावत

हृदय-रोग आधुनिक सभ्यता का रोग है, जिसका मनुष्यों की मृत्यु के वर्तमान कारणों में प्रमुख स्थान है। मनुष्य इस रोग से बड़ी संख्या में मृत्यु के घाट उतर रहे हैं तथा उससे भी भारी संख्या में लोग जीवन-यापन में अशक्त होते जा रहे हैं।

हृदय-रोग तथा रक्त-संचार करने वाली नाड़ी सम्बन्धी विकार जो करीब २० से अधिक प्रकार के होते हैं, हृदय-रोग के नाम से ही पुकारे जाते हैं। ये विकार गर्भ में भी पैदा हो जाते हैं, जिसका नीले बच्चे एक रोचक उदाहरण हैं। मनुष्य के जीवन काल में ऐसे विकारों का कारण साधारणतया संक्रामक रोग होता है, जिसमें गठिया, गर्मी तथा सुजाक मुख्य हैं। गठिया का बुखार प्रायः गले की गिल्टी (tonsillitis) के कारण शुरू होकर हृदय-रोग का रूप धारण कर लेता है। बुखार के बार-बार आक्रमण से हृदय की नलियां खराब हो जाती हैं तथा कभी-कभी हृदय के वाल्व या कपाट में भी खराबी पैदा हो जाती है।

सुजाक के कीड़े (*treponema pallidium*) रक्त में प्रवेश पाते ही महाधमनियों पर आक्रमण करते हैं तथा धीरे-धीरे हृदय को क्षति पहुँचाते हैं। स्ट्रेप बैक्टीरिया (strep bacteria) मुख्यतया आपरेशन के समय बच्चा होने के बाद, दाँत निकलते समय और निमोनिया, गर्दनतोड़ तथा कण्ठ-रोग जैसे गम्भीर रोगों के पश्चात् रक्त में प्रवेश करते हैं और हृदय के आन्तरिक आवरण में विकार पैदा करते हैं।

रक्त-संचार की नाड़ियों सम्बन्धी रोग में धमनियों और उनकी शाखाओं का कड़ापन प्रमुख है, जिसका कारण है दिवालों के तन्तुमय उतकों का बढ़ना एवं भीतरी सतह पर चूना लवणों तथा चर्बी, जिसमें क्लोरोस्ट्राल (chlorosterol) मुख्य है, धीरे-धीरे जमना। इस क्रिया से धमनियों तथा धमनिकाओं का भीतरी व्यास घट जाता है। इन दोनों के कारण रक्त चाप बढ़ जाता है। हृदय-रोग में ९०% मृत्यु का कारण यही रोग होता है।

शरीर का सुचारु कार्य उसके रक्त-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संचार पर निर्भर है, क्योंकि रक्त ही शरीर के अंगों एवं तन्तुओं को ऑक्सीजन तथा अन्य पोषक पदार्थ निर्बाध रूप से प्रदान करता है और कार्बन डाई आक्साइड एवं अन्य निरर्थक तत्त्वों को शरीर से, गन्दे तत्त्वों को बाहर निकालने वाले अंगों, अर्थात् फेफड़ों, पेडू, त्वचा और अंतड़ियों तक पहुँचाता है। धमनियों तथा धमनिकाओं के कड़ा होने एवं उनके व्यास के छोटा होने पर रक्त-संचार में रुकावट हो जाती है और शरीर के अंगों को आक्सीजन एवं पोषक तत्त्व पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते। फलस्वरूप इन अंगों की मांस-पेशियाँ दर्द करने लगती हैं।

हृदय को भी पोषक पदार्थ तथा आक्सीजन की काफी मात्रा में जरूरत होती है जो महाधमनी (aorta) से निकलने वाली कोरोनरी धमनी से लाये हुए रक्त द्वारा मिलते हैं। इस कोरोनरी धमनी के कारण हृदय के काफी रोग हो रहे हैं जिनमें धमनियों का कड़ापन तथा व्यास का घटना मुख्य हैं।

यह रोग पुरुषों में अधिक पाया जाता है। इस खराबी के कारण हृदय में रुधिर की मात्रा कम पहुँचती है। यह मात्रा जब अधिक घट जाती है तो सीने की हड्डी के नीचे दर्द होने लगता है। कभी-कभी यह दर्द हाथ के ऊपरी हिस्से से निचले हिस्से तक पहुँच जाता है। यह दर्द एन्जाइनिया पेक्टोरिस (*anginia pectoris*) के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें ऐसा प्रतीत होने लगता है जैसे छाती पर एक भारी बोझ रख दिया हो! दर्द बहुधा अधिक थकान से हो जाता है तथा थोड़ी देर के आराम से ठीक हो जाता है। ऐसे ही दर्द का दूसरा उदाहरण पैर की पिंडलियों का दर्द है जो वहाँ की धमनियों के विकार से होता है।

एन्जाइनिया का दर्द कोरोनरी धमनी के विकार का चिह्न है जिसका सबसे भयानक रूप होता है कोरोनरी थ्रोम्बोसिस (thrombosis)। कोरोनरी धमनी में एकाएक रक्त का थक्का (clot) बन जाने से रुधिर-संचार एकदम बन्द हो जाता है तथा हृदय का वह भाग जहाँ पर धमनी रक्त पहुँचाती है, निर्जीव हो जाता है और उसमें सिकुड़ने की शक्ति नष्ट हो जाती है। दिल में असह्य पीड़ा होती है और एकाएक चेहरे पर पीलापन आ जाता है और ठण्डा पसीना निकलने लगता है। रोगी को विशेष कमजोरी आ जाती है। यह दिल के दौरे के नाम से प्रसिद्ध है।

हर मनुष्य ने दिल के दौरे के बारे में सुन रखा है, पर बहुत कम लोग इस रोग का कारण जानते हैं। दिल के दौरे से १०% लोग तत्काल मर जाते हैं तथा बाकी लोग उसका प्रथम झटका सह लेते हैं। यह सब इस बात पर निर्भर है कि हृदय के कौनसे भाग में रक्त का परिवहन बन्द हो गया है। इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम द्वारा हृदय की विद्युत-तरंगों पर पारडी तरंग (pardee wave) का आना दिल की खराबी का द्योतक है।

दिल की ऐसी खराबी धीरे-धीरे बढ़ती है तथा थ्रोम्बोसिस या रक्त का थक्का तभी बनता है जब कोरोनरी धमनी में कड़ापन आ जाये तथा उसका व्यास कम हो जाये। दिल के दौरे की संख्या बढ़ने से लोगों में यह मान्यता जोर पकड़ रही है कि कोरोनरी धमनियों का छोटा होना मनुष्य जाति के लिए खतरे का विषय है।

वैज्ञानिकों ने अपने परिश्रम से इस प्रकार के डर को भी हटा दिया है और आराम तथा थक्का-निरोधक (anti-coagulant) दवाओं द्वारा इस रोग का उपचार संभव कर दिया है। यही नहीं, आजकल शल्य-चिकित्सा द्वारा इस रोग के उपचार में भी काफी प्रगति हो रही है।

शरीर में रुधिर निरन्तर चक्कर लगाता रहता है और यह परिवहन क्रिया हृदय की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धड़कन का कारण होती है। हृदय एक पम्प का कार्य करते हुए रुधिर की धारा को हमारे शरीर में परिचालित करता है। रुधिर का यह वेग धमनियों की दीवारों पर दबाव डालता है जिसे रक्त का दबाव (blood pressure) कहते हैं। धमनी कट जाने पर फव्वारे के रूप में निकलते हुए रक्त से यह जाना जा सकता है। पेशियों की सहायता से हृदय रात-दिन कार्य करता हुआ रक्त को कार्बन डाइ आक्साइड से मुक्ति दिलाने तथा वहाँ से आक्सीजन ग्रहण करने के लिए फेफड़ों में भेजता है। हृदय की दीवारें विशेषत: बायें निलय पर जो बढ़ा हुआ दिखायी पड़ता है, दबाव डालती हैं और संकुचन के द्वारा रक्त को दिल के बाहर धमनियों में जो शनैः-शनैः छोटी होती जाती हैं और अन्त में प्रत्येक कोष में जाकर खुलती हैं, भेजती हैं। धमनियों तथा धमनिकाओं की दीवारें लचीली होती हैं जिनमें रक्त अच्छी प्रकार आ जाने से रक्त का दबाव भी भली-भाँति बना रहता है और इस प्रकार रक्त प्रवाह में इनका प्रमुख कार्य है। जब धमनियों की लचक कम हो जाती है, तो रक्त का दबाव बढ़ जाता है। निलय यन्त्र, कपाट के खुलने के बाद ०·२५ से ०·३० सेकण्ड तक रुक-रुककर संकुचन करता है। अत: धमनियों का दबाव, संकुचन तथा फैलाव के साथ-साथ कम और ज्यादा होने लगता है। साधारण रूप से एक स्वस्थ मनुष्य में रक्त का दबाव हृदय के संकुचन के

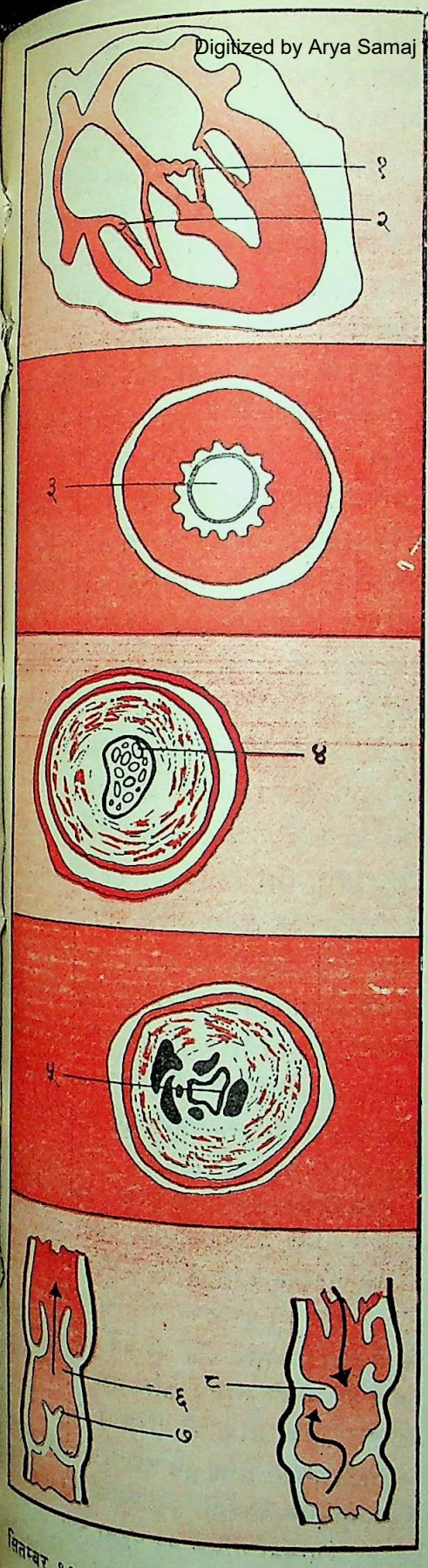

←हृदय-यंत्र के कुछेक पुर्जे, स्वस्थ और अस्वस्थ का भेद-प्रदर्शन। (ऊपर से नीचे) १. अस्वस्थ वाल्व, २. स्वस्थ वाल्व, ३. शिरा-द्वार स्वस्थ अवस्था में, ४. कॉरोनरी थ्रोम्बोसिस (Coronary Thrombosis) रोग के कारण विकृतावस्था मे वही शिरा-द्वार, ५. आरटेरियो स्क्लेरोसिस (Arterios clerosis) के कारण शिरा-द्वारा संकुचित अवस्था में, ६. ७. धमनी का स्वस्थ वाल्व ८. वही वाल्व अस्वस्थ अवस्था में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

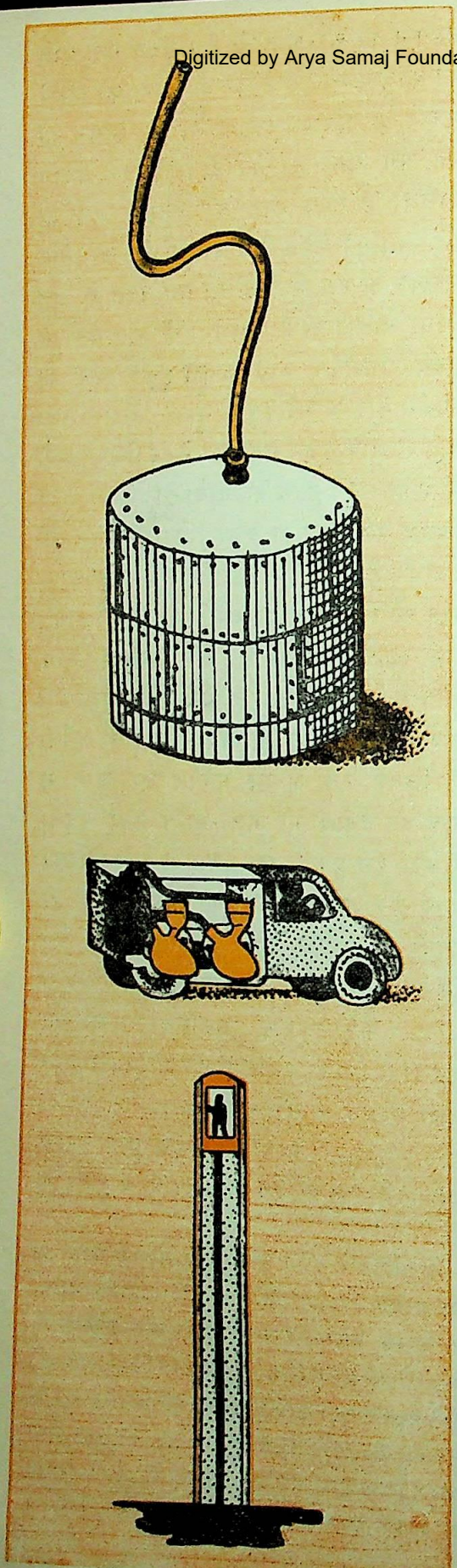

समय १००-१२५ मि. मी. और हृदय को फैलने की अवस्था में ४५-८० मि.मी. हो जाता है।

आयु के साथ-साथ रक्त का दबाव बढ़ता है। आमतौर पर बढ़े हुए रक्त दबाव का अर्थ दिल का अधिक संकुचन लिया जाता है, किन्तु उसका फैलाव जो धमनियों की दीवारों पर वास्तविक दबाव डालता है, संकुचन के द्वारा हुए दबाव से बिलकुल अलग है। मॉस्कोविज के अनुसार अधिक रक्त चाप के ही कारण धमनियों की दीवारें कठोर हो जाती हैं। यह कठोरता अधिकतर दीवारों पर वसा इकट्ठी हो जाने के कारण आती है। इस प्रकार की कठोरता का सबसे अधिक प्रभाव मस्तिष्क, दिल, नेत्र तथा वृक्कों की धमनियों पर होता है। इससे मस्तिष्क की धमनियां कट जाती हैं और रक्त स्राव तथा थ्रोम्बोसिस आदि रोग हो जाते हैं जिससे मस्तिष्क खराब हो जाता है और कुछ ही घण्टों में मनुष्य की मृत्यु हो जाती है या रक्त जम जाने के कारण हाथ तथा पाँव में लकवा हो जाता है।

शरीर के किसी अन्य अंग पर इतना जोर नहीं पड़ता जितना कि दिल पर। अधिक मेहनत तथा कार्य से ही दिल की धड़कनें, जो साधारणतः ७२ प्रति मिनट हैं, ज्यादा हो जाती हैं और धड़कन के साथ धमनियों में भी रक्त प्रवाह बढ़ जाता है। इस

←हृदय की विलक्षण पम्पिग-शक्ति : (ऊपर से नीचे) केवल २४ घण्टे में हमारा हृदय इतनी बड़ी मात्रा में रक्त-परिवहन करता है कि उतने रक्त से ३००० गैलन की एक टंकी भरी जा सकेगी

←दो हृदय एक-साथ यदि दो वर्ष तक अपना जोर लगायें तो उनकी संचित शक्ति एक मोटरकार को एक बार समूची पृथ्वी की परिक्रमा करा सकती है

←इसकी पम्पिग शक्ति एक घण्टे में इतनी खप जाती है कि वह शक्ति अन्यथा एक व्यक्ति को लिफ्ट से पाँचवीं मंजिल पर पहुँचा देगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार की अवस्था स्वस्थ दिल तो आसानी से सहन कर लेता है, किन्तु दिल कमजोर होने पर सहन नहीं कर पाता है। अधिक रक्तचाप, रक्तहीनता, तथा गर्भावस्था में अधिक जोर पड़ने पर अस्वस्थ दिल की पेशियों के तन्तु फैलने तथा मोटे होने लगते हैं। परिणाम स्वरूप दिल बढ़ जाता है, धड़कनें तेज तथा कमजोर हो जाती हैं, क्योंकि तन्तुओं के लचक की भी एक सीमा होती है, जिससे अधिक वे नहीं फैल सकते हैं। दिल का आकार धीरे-धीरे आवश्यक रक्त प्रवाह बनाये रखने के लिए बढ़ता रहता है, किन्तु एक स्थिति ऐसी आती है कि जब उससे अधिक आकार का बढ़ना सम्भव नहीं होता। अतः दिल अपना कार्य बन्द कर देता है। रक्त का दबाव धमनियों में कम हो जाता है, किन्तु इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण रक्त का धमनियों द्वारा दिल को वापस आना है। इस विरुद्ध दबाव के कारण गुर्दों को रक्त से पूरा भोजन न मिलने से, वे अपना कार्य जो रक्त में से पानी तथा लवण का ग्रहण करना है, पूर्ण रूप से नहीं कर पाते हैं। मूल्यवान पदार्थ जैसे अलबुमन (albumen) मूत्र में मिल जाता है और अनावश्यक पदार्थ जैसे यूरिक एसिड आदि अलग नहीं किये जाते हैं और ये तन्तुओं में जमने लगते हैं। फलतः पैरों तथा टखनों में सूजन आ जाती है। इस प्रकार तन्तुओं में अत्यधिक द्रव का होना ड्रोप्सी (dropsy) कहलाता है।

फेफड़ों का रक्त-संचार भी इस प्रकार के द्रव के जमने से हृदय गति के रोकने का कारण हो जाता है। जब वायु फेफड़ों में नहीं पहुँच पाती और श्वास पूर्ण रूप से नहीं ली जाती, तो खाँसी होने लगती है। लेटते समय इस प्रकार से दम घुटना बहुत ही कष्टदायक होता है। इसी प्रकार यकृत में भी रक्त की क्रिया होती है। जिसके फलस्वरूप यकृत बढ़ जाता है।

जीवन के अन्त तक हृदय रक्त की जितनी मात्रा संचरित करता है, वह पौने आठ करोड़ गैलन के लगभग बैठेगी, अर्थात् एक १०-मंजिली इमारत रक्त की उस मात्रा से भरी जा सकेगी

कुछ वर्षों तक तो सभी अंग इस प्रकार के हृदय-रोगों का सामना करते रहते हैं, किन्तु रोग के बढ़ जाने पर मनुष्य बेकार हो जाता है और अन्त में मर जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. प्रकाशचन्द्र

द्वीपों ने मानव को सदैव से ही लुभाया है। भूमि पर रहते-रहते यदा-कदा समुद्र के बीचोबीच पुनः भूमि जैसी वस्तु को पाकर वह रोमांचित होता आया है।

जिन्होंने भूगोल का अध्ययन किया है, वे जानते हैं कि जल और पृथ्वी में निरन्तर संघर्ष आदिकाल से ही चलता आ रहा है। पृथ्वी अपने गर्भस्थ ज्वालामुखी की शक्ति से सदैव ही सागर के तल से भी सिर उठाने में प्रयत्नशील रही है और सागर अपने अनन्त जल-बल से उसका सामना करता रहा है। जहाँ उसका बस न चला, वहीं बीच सागर में ज्वालामुखी ने सिर उठा लिया, विस्फोट किया और मीलों के विस्तार में एक भूमिखण्ड बना दिया जिसे हम टापू, द्वीप, महाद्वीप आदि नामों से पुकारते हैं।

द्वीपनिवासी जीव-जन्तु और वनस्पतियाँ

जब तक कि सामान्य मनुष्य द्वीप के प्रति अपने आश्चर्यगर्त से उबर नहीं पाता, तब तक वह वहाँ ऐसे जीव-जन्तु और ऐसी वनस्पतियाँ देखकर और भी चकित रह जाता है जो उसने अन्यत्र देखे ही नहीं। कदाचित् कोई अर्द्धज्ञाता यह अनुमान लगाये कि जब समुद्र का जल काफी उतार पर रहा हो, उस समय किन्हीं तैरती वस्तुओं पर कुछेक प्राणी और वनस्पतियाँ वहाँ जा पहुँची हों और फलती-फूलती रही हों। यथार्थ में ऐसा भी नहीं है क्योंकि वहाँ पाये जाने वाले जन्तुओं और वनस्पतियों में पृथ्वी निवासियों से कोई मेल नहीं बैठता। इस विषय में दूसरे अनुमान से काम लिया जा सकता है कि नव बनने के पश्चात् किस प्रकार और कब कब वह द्वीप जीव-जगत से सम्पन्न होता आया होगा। नया-नया द्वीप तो ज्वालामुखी विस्फोट से बना था और उस अवस्था में किसी भी जीवधारी का वहाँ टिकना सम्भव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं था। ज्यों-ज्यों लावा ठण्डा होता हुआ जमता हुआ भूमिखण्ड अर्थात् द्वीप रूप में परिणत होता गया, त्यों-त्यों अधिकतः पवन-झकोरों के सहारे और सामान्यतः लहरों के सहारे वनस्पतियों के बीज और नन्हें जन्तु, जीवाणु आदि तैरते, उतराते उस द्वीप पर टिकते रहे और कालान्तर में जमते भी रहे।

जब डारविन ने देखा

सेन्ट पाल नामक ज्वालामुखी हिन्द महासागर में है। १८३३ में चार्ल्स डारविन वहाँ गये। वहाँ उन्होंने चित्र-विचित्र जन्तुओं के बीच अनेक प्रकार की मकड़ियाँ भी देखीं। उसके ४० वर्ष पश्चात् चेलेन्जर नामक पोत में जीव-वैज्ञानिकों का दूसरा दल गया तो उसने भी वही विचित्रता देखी। तब तक तो वहाँ कुछेक परजीवी कीट, समुद्री पक्षी, केकड़े और उड़न मछलियाँ आदि की आबादी बढ़ भी चुकी थी। इनके अतिरिक्त वहाँ रेप्टाइल, छिपकली तथा मेंढक जैसे उभयजीवी जन्तु देखने में नहीं आते। यह भी निश्चित है कि द्वीप पृथ्वी से जितना दूर होगा, उतने ही कम ये पृथ्वी निवासी जीव वहाँ पाये जायेंगे।

इसी प्रकार डारविन ने गैलेपगॉस (Galapagos) द्वीपों पर अतिविचित्र प्राणी देखे थे जिनसे उसे जीव-अनुसन्धान में विशेष सहायता मिली थी। वहीं उसने ऐसे विशालकाय कछुए देखे थे जो पृथ्वी पर अन्यत्र कहीं थे ही नहीं और जिनसे १०-२० लाख वर्ष पूर्व के सूत्र जोड़ने में सहायता मिली थी। वहाँ की मगरमच्छ जैसी छिपकलियाँ और अनोखे पक्षियों ने भी उसे कम चकित नहीं किया था।

हिन्द महासागर में ही मारीटशस नामक एक और द्वीपसमूह है। वहाँ कबूतर सरीखे ऐसे पक्षी देखे जा सकते हैं जो पंख होते हुए भी उड़ नहीं पाते। अनुमान है कि मनुष्य वहाँ तब तक नहीं आ पाया था, उससे भी पहले इन पक्षियों के आदि-वंशज वहाँ जा बसे होंगे और समय के साथ-साथ उड़ने की शक्ति खोते रहे होंगे। वहाँ के पक्षियों में निडरता पहला गुण है जिसके फलस्वरूप वे किसी भी परदेशी से डरते नहीं और उसके निकट बेखटके विचरते रहते हैं। स्वभावतः कोई पक्षी अपने अण्डों-बच्चों के निकट किसी मनुष्य को नहीं आने देता। किन्तु उन पक्षियों से उनके घोंसलों के निकट देखा-छेड़ा जा सकता है। ऐसे निडर पक्षियों से यों खुलकर खेलने का आनन्द और भी बढ़ सकता है, शर्त यह है कि मनुष्य को अपनी हिंसक वृत्ति छोड़नी होगी। ऊपर वर्णित कबूतर सरीखा पक्षी यद्यपि उड़ने से लाचार होता गया तथापि शरीर में अवश्य बढ़ता गया। बढ़ते-बढ़ते वह बत्तख के आकार का हो गया। उसे डोडो (dodo) के नाम से पुकारा गया। इसी प्रकार शुतुरमुर्ग से मिलता-जुलता मोआ (moa) नामक पक्षी भी था जिसका एक वृहत् नमूना १२ फुट

मारीशस के द्वीप का निवासी डोडो नामक यह पक्षी केवल वहीं रहता था, अन्यत्र प्राप्य नहीं। इसे भी लुप्त हुए ३०० वर्ष हो चुके और अब यह पक्षी वहाँ के टिकटों पर अंकित हुआ दिखने लगा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक ऊँचा पाया गया था। खेद है कि मानव की शिकारी प्रवृत्ति ने ऐसे दुर्लभ पक्षियों का नामोनिशान ही मिटा दिया।

द्वीपनिवासी प्राणियों में ऐसी विचित्रताएँ अधिकतर पक्षियों के ही हिस्से में आयी हैं। अतलांतिक महासागर में दक्षिणी ट्रिनिडाड के द्वीप पर जब कुछेक यात्री उतरे तब वहाँ के टर्न (tern) नामक बत्तख जैसे पक्षी बेधड़क यात्रियों के कन्धों पर उतर आये और उनके चेहरों को गौर से देखने लगे। ऐसे ही विचित्र वहाँ के अल्बेट्रॉस (albatross) नामक बड़ी बत्तख जैसे पक्षी थे। वे तो यात्रियों को अपने घोंसलों तक ले गये और वहाँ मानवीय ढंग से गर्दनें झुकाकर उनका अभिवादन किया और यात्रियों का प्रत्याभिवादन लिया भी। फ्लाइकैचर (flycatcher) नाम की वहाँ पायी जाने वाली छोटी चिड़िया इस नाम से इसलिए पुकारी जाती है कि मगरमच्छ तथा बड़े जन्तुओं की पीठ पर चिपकी जुयें आदि बीन कर खाना ही इसका काम रहता है। ये चिड़ियाँ इतनी विचित्र थीं कि यात्रियों के नंगे सिर से बालों को चुन-चुनकर अपने घोंसलों के लिए ले जाती थीं।

गोखरू के बीज और मकड़ी के नन्हीं-मुन्नों में प्रत्यक्ष कोई अन्तर नहीं। द्वीपगत तीव्र पवन में इनकी उड़ान ऐसी दिखती मानो पैराशूट से कोई सैनिकदल उतर रहा हो

आना जलमार्ग से और वायुमार्ग से

इन विचित्र जीवों तथा वनस्पतियों के आवागमन के विविध ढंग प्रायः ही देखने में आते रहे हैं। ये जलमार्ग से आते हैं, तो वायुमार्ग से भी। इनकी ऐसी यात्राएँ सैकड़ों नहीं, हजारों मील की होती हैं। कहीं तो नदी अपने उद्गम स्थान-से उखड़े हुए, पेड़ों के तने, शाखें, जड़ें, लता-जंजाल सागर तक खींच लाती हैं और वही सब कुछ लाया हुआ दूर-पास के द्वीपों पर टकराता रहता है। मौका पाकर उनमें से कुछेक वनस्पतियाँ जड़ भी जमा लेती हैं। नारियल ऐसे वृक्षों में मुख्य है जो समुद्री लहरों को ही अपने यातायात का साधन बनाता है।

इसी प्रकार पवन की पांखों पर पैराशूट की भाँति उतराते हुए आने वालों में मकड़ी और गोखरू के बीज मुख्य हैं। अब तो मानव मीलों ऊँचे ऊर्ध्वाकाश की बातें कर रहा है। अतः उसे ज्ञात ही है कि मीलों ऊपर के वायुमण्डल में किस प्रकार तो सपाटे के पवन बहते हैं और किस प्रकार भाँति-भाँति के जन्तु उनमें खिचे—बहे चले जाते हैं। विविध प्रकार के बैलूनाकार जाल बनाकर प्रायः ही उन दुर्लभ जन्तुओं के नमूने धरती पर लाये जा सके हैं। साधारणतया एक मील की ऊँचाई पर बीज आदि तथा तीन मील की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊंचाई तक मकड़ी हवा में तैरती हुई पकड़ी जा सकी है।

द्वीपों पर प्रकृति खेलती है

पृथ्वी पर तो मानव अपना अधिकार जमाये हुए है और विज्ञान के बल पर प्रकृति को चुनौती तक देने से नहीं चूक रहा; किन्तु द्वीपों का वातावरण प्रकृति का अपना प्रांगण है, क्रीडा-स्थल है। जब तक मानव की लालसा और जिज्ञासा इतनी प्रबल नहीं हुई थी, तब तक द्वीपों पर प्रकृति खुलकर खेलती थी और तभी तक हमें अनदेखी, अनोखी वस्तुएँ वहाँ मिल जाती थीं। अब तो मानव प्रकृति का सन्तुलन ही पलट देने को मानो आतुर बैठा है। जिस द्वीप पर भी वह उतरा, उसने अपनी ही मनमानी की। वहाँ तक भी कम दुख नहीं था, परन्तु उसकी नावों, जहाजों से निकल-निकलकर जो चूहे, बिल्लियाँ, कुत्ते आदि शिकारी जन्तु द्वीपों पर उतरते रहे और जमते-बसते रहे, वे विनाश ढहाते रहे। मानव अपनी नयी दुनियाँ बसाने की धुन में जंगलों का सफाया करता रहा। हवाई द्वीप (Hawai Islands) मानव के ऐसे ही अर्जनविहीन अर्जन की करुण कहानी है। केवल वहीं पर पाये जाने वाले जन्तु और वनस्पतियाँ अब वहाँ देखने को भी नहीं छोड़ी गयीं।

ऐसा ही दुर्भाग्य सेन्ट हेलेना (St. Helena) टापू के साथ भी रहा। १५१३ तक वहाँ आबनूस, गोंद तथा ब्राजीलियन काष्ठ के अनमोल वृक्षों से जंगल के जंगल भरे पड़े थे। १५१३ में पुर्तगाली प्रवासी जब वहाँ पहुँचे तो अपने साथ बकरे-बकरियाँ भी ले गये। १५-२० वर्षों में ही उन बकरियों की आबादी ने बेतहाशा बढ़ कर समूचे वृक्ष साफकर डाले और किसी समय का आकर्षक हेलेन द्वीप उजाड़ बनकर रह गया।

द्वीपों के कुछेक प्राणियों का विकासक्रम सर्वथा भिन्न ही रहता है। एक उदाहरण मोआ नाम इस विशाल-काय पक्षी का है, जो पंखधारी होते हुए उड़ नहीं पाता था

प्रत्येक द्वीप के निर्माण में प्रकृति का छिपा सदाशय होता है और वह छोटी से छोटी वस्तु में भी बड़े से बड़ा प्रयोजन भर देती है। खुली प्रकृति में मानव स्वयं प्रकृति का एक भाग बन जाये और मानव सुलभ विनाशकारी प्रवृत्तियों को कुछ देर के लिए ताक पर रख दे, इसकी आज बहुत आवश्यकता है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

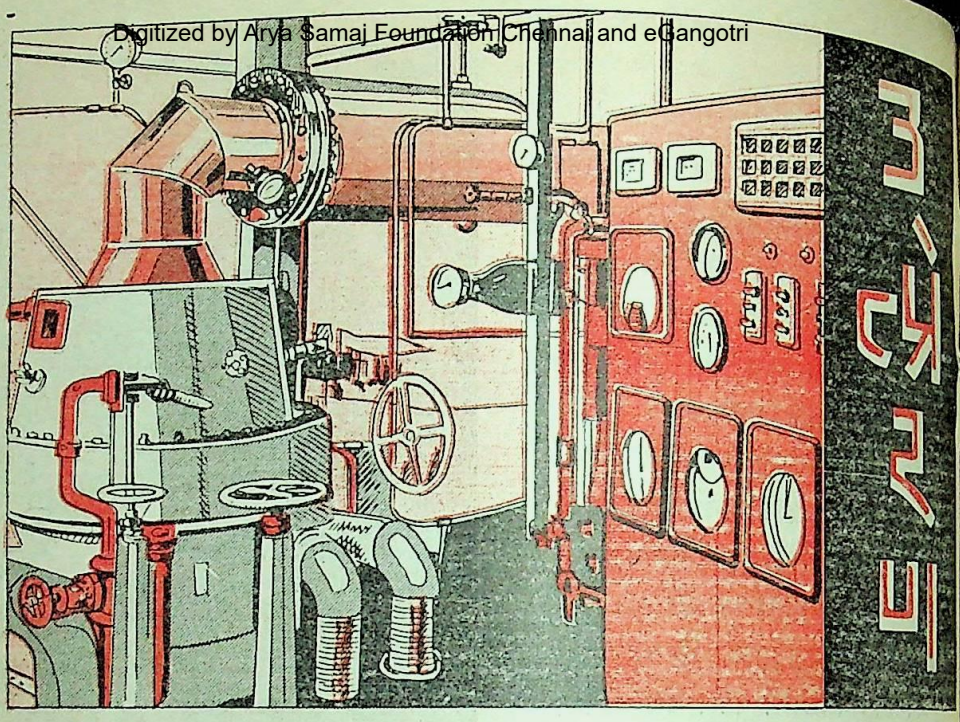

उत्प्रेरण

सत्यकुमार

मशीन खट-खट करने लगती है, ठीक नहीं चलती तो तेल डालते हैं। घोड़ा तेज रफ्तार से नहीं चलता तो तांगेवाला चाबुक फटकारता है। कुछ रासायनिक प्रक्रियाएं भी अन्य पदार्थों को अल्पमात्रा में मिला देने पर तीव्र हो जाती हैं, किन्तु कभी-कभी चाबुक मारने का प्रभाव उलटा हो जाता है। घोड़ा अड़ जाता है और लाख कोशिश करो, चलता नहीं। कुछ रासायनिक प्रक्रियाएं भी अन्य पदार्थ की अल्पमात्रा मिला देने पर मन्द हो जाती हैं। इस प्रकार के पदार्थ जो रासायनिक प्रक्रिया की गति तीव्र या मन्द कर दें उत्प्रेरक (catalysts) कहलाते हैं तथा यह क्रिया उत्प्रेरण (catalysis) कहलाती है।

उत्प्रेरण चार प्रकार का होता है— १. धनात्मक, २. ऋणात्मक, ३. आत्म और ४. प्रेरित।

जब कोई पदार्थ रासायनिक प्रतिक्रिया को तीव्र कर देता है, तो वह धनात्मक उत्प्रेरक और क्रिया धनात्मक उत्प्रेरण कहलाती है। जैसे पोटासियम क्लोरेट को मैंगेनीज डाई आक्साइड की उपस्थिति में गरम करने से आक्सीजन तीव्र गति से निकलने लगती है अतः मैंगेनीज डाई आक्साइड धनात्मक उत्प्रेरक हुआ। समीकरण में उत्प्रेरक को तीर के चिह्न के ऊपर लिख देते हैं।

उदाहरणतः

$$2KClO_3 \xrightarrow{MnO_2} 2Kcl + 3O_2$$

$$N_2 + 3H_2 \xrightarrow[\text{लोहे का चूर्ण}]{} 2NH_3$$

$$2SO_2 + O_2 \xrightarrow[\text{Pt या } V_2O_5]{} 2SO_3$$

ऐसे पदार्थ जिनकी उपस्थिति में रासायनिक प्रतिक्रिया मन्द हो जाये, ऋणात्मक उत्प्रेरक तथा प्रक्रिया ऋणात्मक उत्प्रेरण कहलाती है। जैसे साधारणतः वायु से क्लोरोफॉर्म की बोतल में थोड़ा एल्कोहल मिला देते हैं। इससे विच्छेदन की क्रिया मन्द होकर नगण्य हो जाती है। उदाहरणतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

$$CHCl_3 + O \xrightarrow{C_2H_5OH} COCl_2 + HCl$$

$$2H_2O_2 \xrightarrow{H_3PO_4} 2H_2O + O_2$$

कुछ प्रक्रियाओं में क्रियाफलों से ही कोई पदार्थ उत्प्रेरक का कार्य करना आरम्भ कर देता है। उस पदार्थ को आत्मउत्प्रेरक तथा क्रिया को आत्मउत्प्रेरण कहते हैं। जैसे अम्लीय पोटासियम परमेंगनेट और आग्जेलिक अम्ल की क्रिया आरंभ में बहुत धीरे-धीरे होती है, परन्तु जैसे ही कुछ मेंगेनीज सल्फेट बना, प्रतिक्रिया तीव्र हो जाती है। अत: मेंगेनीज सल्फेट आत्मउत्प्रेरक हुआ। उदाहरणत:

$$2KMnO_4 + 3H_2SO_4 + 5(COOH)_2 \xrightarrow{MnSO_4} K_2SO_4 + 2MnSO_4 + 10CO_2 + 8H_2O$$

$$CH_3COOC_2H_5 + H_2O \xrightarrow{CH_3COOH} CH_3COOH + C_2H_5OH$$

आपने कहावत सुनी होगी कि खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है। यदि एक प्रक्रिया किसी दूसरी प्रतिक्रिया की गति बढ़ा देती है, तो इस प्रकार के उत्प्रेरण को प्रेरित उत्प्रेरण कहते हैं। जैसे सोडियम आर्सेनाइट वायु में आक्सीकृत नहीं हो पाता, जब कि सोडियम सल्फाइट हो जाता है। यदि दोनों को मिलाकर वायु प्रवाहित की जाये तो दोनों ही आक्सीकृत हो जाते हैं। सोडियम सल्फाइट के आक्सीकरण से सोडियम आर्सेनाइट भी आक्सीकरण की प्रेरणा लेता है।

$$Na_3AsO_3 + O\ (\text{वायु}) \longrightarrow Na_3AsO_4$$
नहीं बन पाता

$$Na_2SO_3 + O\ (\text{वायु}) \longrightarrow Na_2SO_4$$

$$Na_3AsO_3 + Na_2SO_3 + O_2\ (\text{वायु}) \longrightarrow Na_3AsO_4 + Na_2SO_4$$

उत्प्रेरण के इन चार प्रकारों के अतिरिक्त प्रकिण्व (enzymes) भी उत्प्रेरक में गिने जाते है। ये जटिल कार्बनिक यौगिक हैं जो अनेक कार्बनिक प्रतिक्रियाओं, जैसे भोजन का पचना, दूध का दही में जमना, शक्कर से शराब बनना इत्यादि में उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। ये जीवों तथा वनस्पतियों में विद्यमान रहते हैं तथा मुख्यत: जीव सम्बन्धी प्रक्रियाओं में भाग लेते हैं। उत्प्रेरकों और इनके गुणों में इतना अन्तर है कि ये ४०°C से अधिक ताप पर नष्ट हो जाते हैं तथा इनका व्यवहार भी विशिष्ट होता है। उदाहरणत: चीनी का पहले ग्लूकोज एवं फ्रुक्टोज में और फिर एल्कोहल में बदलना—

सम्पर्क विधि (Contact Process) **द्वारा गंधकाम्ल प्राप्त करने के लिए सल्फर डाइआक्साइड और आक्सीजन का मिश्रण प्लेटिनम-चूरे पर से गुजारा जाता है। वह चूरा यहाँ उत्प्रेरक का काम करता है**

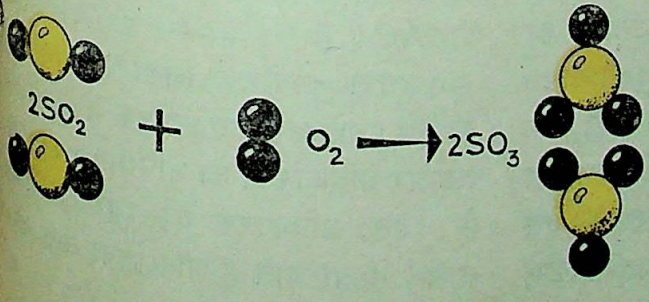

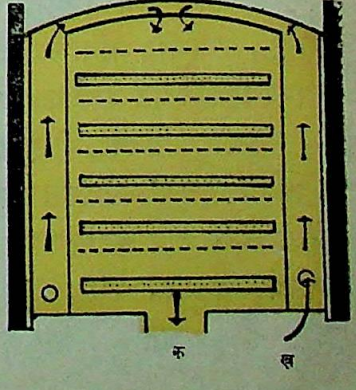

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

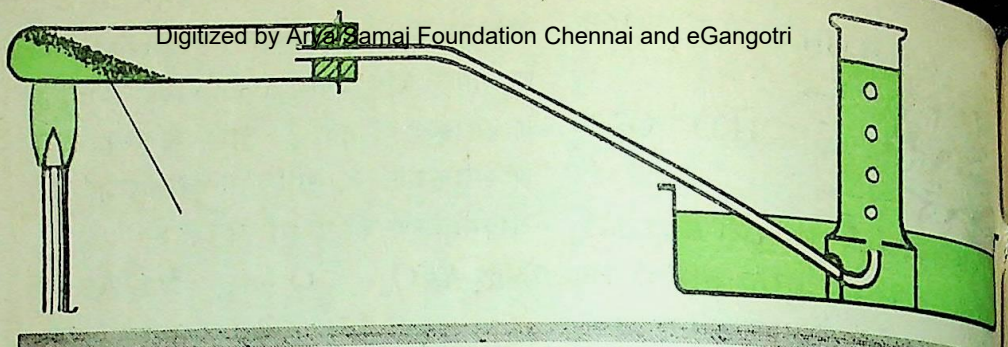

प्रयोगशाला में आक्सीजन-उत्पादन के लिए श्वेत पोटेसियम क्लोरेट को गर्म करते समय मेंगेनीज डाइ आक्साइड चूर्ण की सहायता ली जाती है, जो उत्प्रेरण का कार्य पूरा करके पुनः पृथक् प्राप्त कर लिया जाता है

$$C_{12}H_{22}O_{11} + H_2O \xrightarrow{\text{इनवर्टेज}} C_6H_{12}O_6 + C_6H_{12}O_6$$

$$C_6H_{12}O_6 \xrightarrow{\text{जाइमेज}} C_2H_5OH + 2CO_2$$

उत्प्रेरकों का मुख्य गुण यह है कि उनकी अल्पमात्रा ही परिवर्तन के लिए पर्याप्त होती है। उत्प्रेरक मुख्यतः प्रतिक्रिया की गति ही बदल सकते हैं, क्रिया प्रारंभ नहीं कर सकते। वैसे कुछ क्रियाएँ इस गुण का अपवाद हैं। जैसे शुद्ध क्लोरीन तथा हाइड्रोजन के संयोग से क्लोरीन का नम होना जल की उपस्थिति का सूचक है। बिना उसके क्रिया आरंभ ही नहीं होती। प्रतिक्रिया के बाद किसी उत्प्रेरक की रचना एवं मात्रा में परिवर्तन नहीं होता। भौतिक अवस्था में परिवर्तन हो सकता है। भिन्न-भिन्न क्रियाओं के लिए विभिन्न उत्प्रेरकों की आवश्यकता होती है। यह नहीं कि एक ही उत्प्रेरक सभी प्रतिक्रियाओं को प्रेरित करे। इसके अतिरिक्त किसी उपयुक्त ताप पर उत्प्रेरक की क्रियाशीलता अधिकतम होगी। उत्क्रमीय प्रतिक्रियाओं में उत्प्रेरण का साम्य स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

कभी उत्प्रेरक भी हार जाता है, थक जाता है। ऐसे में यदि उसे भी कोई प्रेरणा का स्रोत मिल जाये तो फिर बढ़ चलता है। ऐसे पदार्थ जो उत्प्रेरक की कार्यक्षमता बढ़ाएँ उत्तेजक कहलाते हैं। जैसे हेबर विधि द्वारा अमोनिया बनाने में लोहे का चूर्ण तो उत्प्रेरक है, किन्तु मोलिब्डिनम उत्तेजक है।

उत्तेजकों के विपरीत कुछ पदार्थ ऐसे भी होते हैं जो उत्प्रेरक की कार्यक्षमता कम करते हैं। ऐसे पदार्थों को उत्प्रेरक-विष कहते हैं। उदाहरणार्थ आर्सेनस आक्साइड कार्बन मोनोक्साइड, हाइड्रोसायेनिक अम्ल इत्यादि।

रासायनिक प्रक्रियाओं और उद्योगों में उत्प्रेरकों के इतने उपयोग होने के उपरान्त भी उत्प्रेरक कार्यप्रणाली के सम्बन्ध में वैज्ञानिक एकमत नहीं हैं। एक सिद्धान्त के अनुसार उत्प्रेरक क्रिया करके माध्यमिक यौगिक बनाता है और फिर यह माध्यमिक यौगिक दूसरे पदार्थ से क्रिया करता है, जिसमें उत्प्रेरक अलग हो जाता है तथा दोनों पदार्थ संयोग कर वांछित यौगिक बनाते हैं।

$$A + B \xrightarrow{C} AB$$

$$AB + C \longrightarrow AC + B$$

$$AC + B \longrightarrow AB + C$$

दूसरा आधुनिक सिद्धान्त अधिशोषण का है। इसके अनुसार उत्प्रेरक अपने बाहरी तल पर प्रतिकारकों का अधिशोषण कर लेता है। अतः प्रतिकारक एक-दूसरे के निकट सम्पर्क में आ जाते हैं और क्रिया तीव्र गति से चलने लगती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनस्पति-जगत का आश्चर्य

बाँस

राजेन्द्रकुमार

एक घास वह है जो पांवों तले रौंदी जाती है, जिसे चौपाये चरते हैं और जिसका नर्म, हरा, मखमली गलीचा सुबह की ओस में पांवों और आँखों को ठण्डक देता है। एक घास वह भी है जो पांवों के नीचे बिछी रहना नहीं चाहती, सिर से ऊपर १००-१२५ फुट तक ऊँची उठी हुई घनी छाया देती है, तेज हवा में बाँसुरी के सुर सुनाती है, घास के तिनके की भाँति स्वयं नहीं टूटती, उलटे किसी पेड़ के मोटे तने जैसे अपने शरीर से—लगभग एक फुट मोटे इस्पाती तने से टकराने वाली वस्तु को तिनके की भांति तोड़ देती है, जो खायी जाती है और अचार, मुरब्बे बनाकर भी ली जाती है वंशलोचन नामक प्राणदायक महोषधि के रूप में भी। वह घास है बाँस, उसी बाँस की, प्रकृति की उसी अनमोल देन की, अपने भार के तुल्य मोहरों जैसे अनमोल वनस्पति-जगत के आश्चर्य, बाँस की यह रोचक कहानी प्रस्तुत है।

बाँसों के झुरमुट

हिमालय की हिमकिरीटिनी पर्वत-श्रेणियाँ हों, बर्मा, लंका, मलाया, इण्डोनेशिया जापान और मध्य एशिया के वर्षाप्रचुर गर्म प्रदेश हों अथवा दक्षिण अमरीका के पर्वतराज एण्डीज के हिमशिखर हों, प्रकृति के कृपा-प्रसाद स्वरूप इन विशाल बाँसों के झुरमुट बहुतायत से मिलेंगे।

बाम्बुसी (*bambuceae*) वर्ग की और ग्रेमिनी (*gramineae*) परिवार की यह घास बाँस के विशाल वृक्षों के रूप में प्रायः ही देखने को मिलती है। इसकी पर्वतीय जाति ठिगनी, ८–१० फुट की और नाजुक भी होती है। वह अधिकतर बाँसुरी बनाने में काम आती है। दूसरी विशालकाय जाति अलग ही पहचानी जा सकती है। वह मोटाई में एक फुट तक के व्यास की और १२० फुट तक की ऊँचाई प्राप्त करती है। घने जंगलों में उसके नुकीले सिरे दूर ही से सिर उठाये दीखते हैं।

वानस्पतिक विशेषताएं

बाँस घास ही तो है। अतः घास ही की भाँति यह भूमिगत जड़ों से फूटकर निकलती है। सामान्यतः एक जड़ से ८-१० और २० तक की संख्या में तने निकलते हैं और विशेष जाति के बाँसों में तनों की यह संख्या १००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

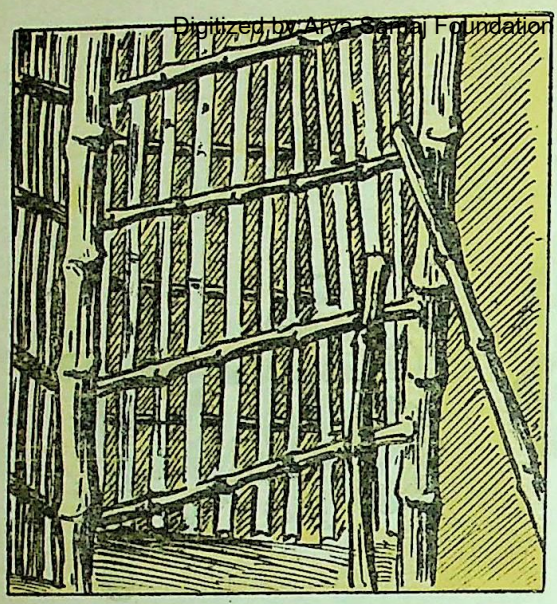

बाँस से बनी ऐसी दीवारोंयुक्त झोंपड़ियाँ, मजबूती में किसी भी सामान्य मकान से कम नहीं होतीं। वजन में हलकी हैं, यह इनसे विशेष लाभ है

तक भी हो जाती है। ये तने प्राय: ही सटते हुए ऊपर को बढ़ते हैं और पर्याप्त ऊँचाई प्राप्त कर लेने से पूर्व प्रशाखाओं में नहीं बँटते। अमुक ऊँचाई के पश्चात् ये आड़ी-तिरछी शाखाएँ प्रस्फुटित करते हैं जिससे इनकी छाया और भी घनी हो जाती है। वह घनी छाया नीचे जिस बड़े विस्तार में फैलती है उसमें सूर्य का प्रकाश न पहुँच पाने के कारण अन्य कोई पेड़-पौधे नहीं उपज सकते। इसलिए वह साफ-सुथरी छायादार जगह रंग-बिरंगे लुभावने पक्षियों और नन्हें प्राणियों के किल्लोल करने का क्रीडास्थल बनी रहती है।

घास ही की भाँति इसका तना अपनी लम्बाई भर निश्चित अन्तरों पर संधियों द्वारा जुड़ा रहता है। वह तना पोला होता है और प्रत्येक जोड़ पर एक सुदृढ़ पर्दे से सीलबन्द रहता है। यों समूचा लम्बा बाँस मानो अनेक वायुरुद्ध नलिकाओं से जुड़ी पाइपलाइन जैसा होता है। अत्यधिक विशेषता तो इसके बाह्यावरण अर्थात् ऊपरी सतह में रहती है। वह इस्पात की तरह मजबूत और लचकदार होती है। इसका यही गुण इसकी अत्यधिक उपयो- गिता का रहस्य है। वह बाह्यावरण छुरी से कटने के बजाय छुरी का मुँह मोड़कर रख देता है और कुल्हाड़ी की चोट पर चिनगारी उड़ाता है, मानो पेड़ का तना न हुआ, साक्षात् पत्थर हो गया। इसकी इस विशेषता का उपयोग चाकू, छुरियों पर धार धरने में किया जाता रहा है।

कुछ भिन्न जाति के बाँस काँटेदार तनों- युक्त भी होते हैं। वे कांटे आरम्भ में बहुरंगे फूल ही होते हैं। ऐसे बाँस अधिकांश प्रति वर्ष फलते-फूलते हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो निश्चित वर्षों के अन्तर ही से फलते हैं। किन्हीं- किन्हीं में वर्षों का यह अन्तर ३०-३२ वर्ष तक का भी पाया गया है। ऊँचे उठने वाले वृक्षों में बाँस की उठान-गति सबसे अधिक है। साधा- रणतया यह गति सवा-डेढ़ फुट प्रतिदिन की पायी जाती है। विशेष परिस्थितियों में यह दो फुट प्रतिदिन भी उठ आता है—यहाँ तक कि अपनी पूरी ऊँचाई एक ही फसल में प्राप्त कर लेता है। प्रथम ही वर्ष में पूरी ऊँचाई प्राप्त कर लेने पर भी बाँस को कम से कम तीन वर्ष तो चाहिए ही जिस दर्म्यान उसका तना विविध उपयोगों के उपयुक्त बन सके।

झोंपड़ी से महलों तक

जल और वायु की भाँति बाँस भी विभिन्न रूपों में सर्वगामी है। महलों, महफिलों की दावतों में बाँस के अचार, मुरब्बे प्रिय पात्र बने रहते हैं, तो नेत्ररोगों की महोषधि-बंस- लोचन के रूप में वैद्यराज के खरल में भी बाँस को देखा जा सकता है। इसका नर्म गूदा और कोंपलें हरी भाजी के रूप में बड़े चाव से खाई जाती हैं। मकान, फर्नीचर, गाड़ियाँ, कृषि- औजार, चटाइयाँ, रस्से आदि वस्तुएँ तो उन असंख्य में कुछेक ही हैं जो बाँस से बनायी जाती हैं। इसका रेशा बटकर मोमबत्ती बनाने में बत्ती के स्थान पर प्रयुक्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लम्बा बाँस अन्दर से खोखला, नली अर्थात् पाइप के रूप में होता है, यह ऊपर कहा जा चुका है। इसकी समूची लम्बाई में से बीच के जोड़ों के पर्दों को हटा लेने पर यह उत्तम पाइपलाइन का काम दे सकता है। पूरब के देशों में ऐसी पाइपलाइनों से दूर-दूर तक पानी पहुँचाया जाता रहा है। ऐसी पाइपलाइन खेतों-बगीचों में भी सिंचाई के लिए सुविधाजनक रहती है। बोर्नियो में ऐसी ५-५, ६-६ फुटी फुकनियाँ कुओं से पानी भरकर इधर-उधर ले जाने में अब भी काम आती हैं। दूसरे शब्दों में वे बाँस की फुकनियाँ कुओं पर डोल-बाल्टी का काम देती हैं। पूर्वीय एशिया से जब शासकीय अत्याचारों से पीड़ित रेशम के कारीगर देश छोड़कर भागे थे तब ऐसी बाँस की फुकनियों में ही वे रेशम के कीड़े छिपा ले गये थे और पूर्वीय यूरोप में रेशम का प्रचार प्रारम्भ किया था। ये ही फुकनियाँ तब भोजनपात्रों का भी काम देती हैं जब इनमें चावल और पानी भर कर चावल को आग पर पकाया जाता है।

भारवाहक मजदूर एक लम्बे बाँस को चीरकर उसके दोनों सिरों पर भार लटकाये अपने कंधों पर सरलता से उठाये फिरते हैं। शिकारियों के तीर-कमान, बच्चों के खिलौने, युद्धक्षेत्रों पर रक्षात्मक पर्दों के रूप में जाफरियाँ (टट्टियाँ), बड़े-बड़े भवन-निर्माणों में चारों ओर खड़ी की गयी पाड़ें, हलका, फैन्सी फर्नीचर आदि वस्तुओं में बाँस ही काम आता है। कहीं-कहीं खेतों में फसल तैयार होने पर किसान बाँस को चीरकर उनके चिमटे बनाकर रस्सी के सहारे लटका देता है और दूसरे सिरे में भी रस्सी बाँधकर नीचे लटका देता है। उस रस्सी को खींच-खींचकर कृषक-महिलाएं खटपटाती हैं ताकि दाने चुगने को आये हुए पक्षियों के झुण्ड उड़ते रहें। युद्ध के अन्तर्गत भी भागते हुए सैनिक बाँस के छुरी जैसे पैने कांटे पीछे बिखेरते जाते हैं ताकि पीछा करने वालों के पांवों की वे अच्छी तरह खबर ले सकें।

भिन्न-भिन्न उपयोगों में आती हुई ये चित्र-विचित्र टोकरियाँ बाँस के ही अति व्यापक उपयोग की प्रतीक हैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाँस से बनाया जा रहा यह ढाँचा, इस मछुए के तैरने में काम आयेगा और मछली पकड़ने में विशेष सहायक भी होगा

बाँस से कागज भी बनाया जाता रहा है। आवश्यकताएँ बढ़ने के साथ-साथ बाँस का कागज इतना मजबूत और सफाईदार न पाया जाने से अन्य वृक्षों के काष्ठ इस काम में लाये जाते रहे। मच्छीमार अपने सुदृढ़ जाल बाँसों के ही बनाते हैं, बाँध में जलावरोधक खिड़कियों के बनाने में भी बाँस ही काम आता है। बाढ़ के दिनों में बाँस की टट्टियाँ जान-माल और सामान को तैराकर सुरक्षित स्थानों तक पहुँचाने में काम आती हैं। ऐसी ही टट्टियों का उपयोग जंगल के काष्ठ को नदियों में तैराकर कागज मिलों तथा चिराई के कारखानों तक पहुँचाने में भी होता है।

बाँस का फलना अनिष्ट की आगाही

कुछेक एशियाई प्रदेशों में यह विश्वास जड़ जमाये बैठा है कि बाँस का फलना अच्छा नहीं, बल्कि महामारी या भुखमरी का न्यौता ही माना जाता है। यह इसलिए कि जब कभी वर्षों पश्चात् बाँस फलता है तब अपने बीज दूर-दूर तक बिखेरता है जिन्हें स्वाद से खाने के लिए जंगली चूहों की अनन्त फौजें निकल पड़ती हैं। तब वे लगे हाथों, खड़ी फसलें भी चट कर जाती हैं और फसलें चौपट हो जाने पर महाकाल का दृश्य उपस्थित हो जाता है। फलस्वरूप लोगों को दूसरी फसल तक भूखे पेट प्रतीक्षा करनी पड़ती है।

सृष्टिभर में बाँस उन गिने-चुने वृक्षों में है, जिसका अंग-प्रत्यंग अनेकानेक उपयोगों में आता है और जिसे प्रकृति का उत्तम प्रसाद ही माना जाता है।

जूती के जोर पर दिग्विजय

मुगल सम्राट् औरङ्गजेब का शासन इतना क्रूर था कि दूर-दूर के साधारण देश तो उसके नाम ही से कांपते थे। ऐसे देशों को जीतने के लिए औरङ्गजेब ने फौजें भेजने और खून बहाने की कभी आवश्यकता नहीं समझी। इसके बदले वह केवल अपनी सुनहरी जूतियाँ एक सजे-धजे हाथी के हौदे पर सवार कराकर उस देश की सीमा में प्रवेश करा देता था। वहाँ का शासक मारे डर के, अत्यन्त आदर सहित उन जूतियों को अपने सिंहासन पर आसीन कराकर औरङ्गजेब की हकूमत मान लेता था। कम से कम १७ राज्यों को इस प्रकार विजित करने के उल्लेख प्राप्य हैं।

आग में डालिये, भूमि में गाड़िये; फिर भी धन सुरक्षित

पेन्सिल्वेनिया (अमरीका) की प्रेक्टिकल प्रोडक्ट्स कम्पनी ने ऐसा थैला बनाया है जिसमें छिपाये योग्य धन रख कर चाहे मिट्टी में गाड़ दीजिये, चाहे वह आग में घिर जाये, थैला बरकरार रहेगा और धन को कोई आँच न आयेगी। १२″×९″ का यह थैला अग्निरोधक, एक मात्र पदार्थ, एस्बेस्टस का बनाया गया है और ऊपर का आवरण एल्यूमीनियम की पतली पर्त का है। प्रथम तो एल्यूमीनियम की चमचमाती सतह ही २००० °C तक के उच्च ताप को परिवर्तित कर देती है और बाद की चोट एस्बेस्टस सम्हाल लेता है। ऊपर से पेण्ट किया गया रक्षामय भूमिगत कीटों से भी रक्षा करता है और गलने से बचाता है।

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईंट

देवेन्द्रकुमार सक्सेना

आदिकालीन मानव को जीवन की अति कठोर विषमताओं से होकर पदार्पण करना पड़ा है। एक समय वह भी था जब वह वृक्षों एवं कंदराओं में निवास करता था। वह सबसे बुद्धिमान प्राणी था। अतः बया आदि पक्षियों के घोंसलों और भेड़ आदि जन्तुओं की भाटों को देखकर उसे भी अपने लिए सुरक्षित निवास बनाने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई होगी। तब ही उसने सोचा होगा—मैं भी क्यों न इनके समान सुरक्षित स्थान का निर्माण कर लूँ। सम्भवतः उसने सर्वप्रथम वृक्षों पर अपना निवास एक झोंपड़े के रूप में बनाया होगा जिसका प्रमाण आज भी वृक्षों पर निवास करने वाली असभ्य जातियों से मिलता है। सृष्टि के आरम्भ से ही जीवन के विभिन्न तूफानों एवं झंझावतों से लोहा लेने को मानव तत्पर रहा है। वह वृक्षों से उतरकर पृथ्वी पर आया होगा तथा अपना निवास पत्थर के टुकड़ों को एक के ऊपर एक रखकर बनाया होगा। जहाँ पत्थर उपलब्ध न थे वहाँ अवश्य ही पत्थर के टुकड़ों का स्थान मिट्टी के डेलों ने लिया होगा। वे मिट्टी के डेले ही वर्तमान ईंट के पूर्वज थे। ऐसी ईंटों का प्रमाण टिग्रिस-यूफ्रेट्स–बेसिन (Tigris-Euphrates-Basin) नामक क्षेत्र में मिला है जिससे यह अनुमान किया जाता है कि वहाँ की बसने वाली प्राचीन जातियों ने ईंट का उपयोग सर्वप्रथम आज से लगभग ५००० वर्ष पूर्व किया होगा।

समय के साथ-साथ मानव ने अग्नि को भी खोज निकाला और तब उसने अनिश्चित आकार वाली कच्ची ईंटों को पकाया जिससे जल प्रभाव के कारण ईंट के घुलने की सम्भावना जाती रही। इन ईंटों के अनिश्चित आकार के कारण इनसे बनी दीवारें शीघ्र गिरने लगती थीं। अतः उसने ईंट को एक निश्चित आकार दिया और इस प्रकार वर्तमान ईंट का आविष्कार हो गया।

ईंट-निर्माण में प्रयुक्त मिट्टी की रचना

ईंट-निर्माण में प्रयुक्त की जाने वाली मिट्टी की प्रामाणिक रचना इस प्रकार है—

एल्यूमीना (Al_2O_3)	२५ से ३०%
सिलिका (SiO_2)	५० से ७५%
आइरन आक्साइड (Fe_2O_3)	१ से २%

उपर्युक्त रचना की मिट्टी प्राप्त करने के लिए आवश्यक परीक्षण किये जाते हैं और वह मिट्टी जिसकी रचना उपर्युक्त रचना से अधिक मेल खाती है, ईंट-निर्माण के लिए चुन ली जाती है। अगर यह सम्भव नहीं हो पाता तो विभिन्न स्थानों की मिट्टियों को विभिन्न अनुपात में मिलाकर प्रामाणिक रचना को प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार प्रामाणिक रचना प्राप्त करने की विधि को एकीकरण (blendnig) कहते हैं।

ईंट-निर्माण में प्रयुक्त मिट्टी की तैयारी

ईंट-निर्माण की मिट्टी प्राप्त करने के लिए उपयुक्त क्षेत्र के किसी अच्छे भाग को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगभग ३/४ फुट तक खोदा जाता है। इस प्रकार प्राप्त मिट्टी में वनस्पतियों की जड़ें एवं अस्थायी और बेकार कार्बनिक यौगिक उपस्थित रहते हैं। अतः इस मिट्टी को अलग कर दिया जाता है। क्षेत्र को पुनः गहरा खोदा जाता है तथा डेलों को तोड़कर, कंकड़-पत्थरों को अलग करके मिट्टी को २ से ४ फुट ऊँचे ढेरों में एकत्र कर लिया जाता है।

मिट्टी के इन ढेरों में से कुछ मिट्टी लेकर चूने की उपस्थिति का परीक्षण किया जाता है। यदि मिट्टी में चूना उपस्थित नहीं है, तो उसमें चूने की अल्प मात्रा मिलायी जाती है। मिट्टी में चूने की उपस्थिति ईंटों को पकाते समय ताप बढ़ाने में सहायक होती है। चूने को मिलाते समय चूने को महीन चूर्ण में प्राप्त कर लिया जाता है। मिट्टी में चूना यदि डेलों के रूप में उपस्थित होगा तो ईंट पकने के समय अनबुझे चूने (quick lime) के बनने की सम्भावना हो जाती है।

$$CaCO_3 \rightarrow CaO + CO_2 \uparrow$$

(चूने का यौगिक) (अनबुझा चूना) (कार्बन डाइ आक्साइड)

इस प्रकार बना अनबुझा चूना जल से क्रिया करके बुझा चूना (hydrated lime) बनाता है।

$$CaO + H_2O \rightarrow Ca(OH)_2$$

(अनबुझा चूना) (जल) (बुझा चूना)

ईंट को उपयोग में लाने से पूर्व जल में भिगोया जाता है। अतः यदि ईंट-निर्माण में चूने को डेलों के रूप में प्रयुक्त किया गया तो बुझा चूना ईंट से रिसकर उसकी बाह्य सतहों पर पूरी तरह फैल जायगा। इसका परिणाम यह होगा कि ईंट खोखली हो जायगी और वह शक्ति में क्षीण हो जायगी।

चूने की अल्प मात्रा से मिश्रित इन मिट्टी के ढेरों को ४ अथवा ५ माह के लिए वातावरण में खुला छोड़ दिया जाता है। इस काल में मिट्टी के अस्थायी कार्बनिक यौगिक अपनी स्थायी अवस्था में परिणत हो जाते हैं। तत्पश्चात् मिट्टी के इन ढेरों में पानी की पर्याप्त मात्रा मिलायी जाती है और फिर मनुष्यों अथवा पशुओं के पैरों के नीचे इस मिट्टी को खूँदा जाता है। अगर मिट्टी को अधिक मात्रा में प्राप्त करना है, तो खूँदने की यह क्रिया पग-मिल (pug-mill) की सहायता से की जाती है। यह मिल इस्पात का एक शंक्वाकार बेलन होता है। भूमि को लगभग २½ फुट गहरा खोदकर उस पर लकड़ी का एक तख्ता रख दिया जाता है। उस तख्ते पर बेलन के पतले सिरे को रखा जाता है तथा खुदी हुई मिट्टी की सहायता से बेलन को स्थिर रखा जाता है। बेलन के ठीक बीच में लोहे की एक ठोस ऊर्ध्वाधर छड़ होती है जो बेलन की ऊर्ध्वाक्ष के गिर्द घूमने में समर्थ होती है। इस ठोस छड़ में फलक लगे होते हैं और इन फलकों में छोटे आकार के लोहे के तिकोने लगे होते हैं। ईंट निर्माण की मिट्टी और जल को बेलन के ऊपरी सिरे से मिल में भेजा जाता है। ठोस ऊर्ध्वाधर छड़ को गति बैलों की जोड़ी अथवा

ईंटें काटने की स्वचालित मशीन

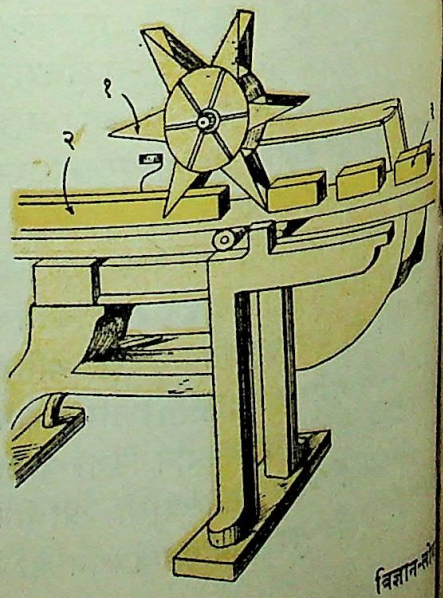

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

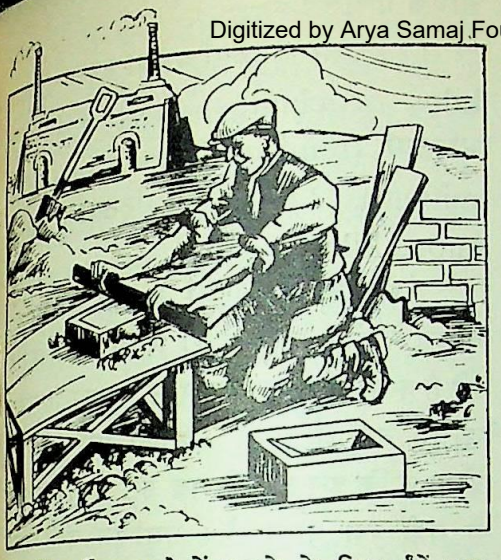

चित्र में प्रदर्शित भट्टे में पकाने के लिए ईंटें हाथ से काटी जा रही हैं

यान्त्रिक शक्ति की सहायता से दी जाती है।

सांचे

ईंट-निर्माण के लिए मिट्टी तैयार हो जाने के पश्चात् मिट्टी को सांचों में ढाला जाता है। सांचे लकड़ी अथवा लोहे के भी हो सकते हैं। लकड़ी के सांचे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं तथापि उनको लोहे के कोणों से संयोजित करके लम्बे समय तक प्रयुक्त किया जा सकता है। ऊँचे पैमाने पर ईंट के निर्माण के लिए लोहे के सांचे अति लाभप्रद सिद्ध होते हैं क्योंकि ईंट के सूखने और पकने से ईंट आकार में संकुचित हो जाती है। अतः सांचों का आकार ईंट के वास्तविक आकार से लगभग ८ से १०% बड़ा रखा जाता है। लेकिन सांचे और ईंट के आकार का शुद्ध अनुपात तो ईंट निर्माण में प्रयुक्त विशेष मिट्टी पर प्रयोग करके ही ज्ञात किया जा सकता है।

ढालना

सांचों में मिट्टी को ढालने के लिए निम्नलिखित विधियाँ प्रचलित हैं।

(१) **जमीन पर रखकर ढालना** (Ground Moulding)—इस विधि में जमीन के एक भाग को अच्छी तरह समतल बना लिया जाता है। ढालने की क्रिया इस तैयार किये गये जमीन के भाग पर की जाती है। सांचों को धरती पर रखा जाता है तथा तैयार की गयी मिट्टी को इनमें भरकर हाथ से दबाया जाता है ताकि मिट्टी सब तरफ के कोनों में भर जाय। मिट्टी की अधिक मात्रा को लोहे की पत्तियों (iron strips) द्वारा हटाया जाता है। तत्पश्चात् सांचों को ऊपर उठा लिया जाता है जिससे हमें ढली हुई ईंट प्राप्त होती है। इस प्रकार कई ईंटें बनाकर पंक्तियों में लगा दी जाती हैं। वातावरण एवं सूर्य की उपस्थिति में ये ईंटें सूखने दी जाती हैं और जब ये ईंटें उठाने लायक हो जाती हैं तब उनको शुष्क-कक्ष (drying shed) में सुखाने के लिए भेज दिया जाता है।

ढालते समय प्रत्येक बार सांचों को भीतर से साफ किया जाना आवश्यक है जिससे सांचों की आन्तरिक सतहों पर किसी भी प्रकार की मिट्टी लगी न रह जाय। अगर सांचों में मिट्टी लगी रह गयी तो प्राप्त ईंट की सतहें पूर्णतया समतल और चिकनी नहीं बन पायेंगीं। सांचों की सफाई के लिए सांचों को पानी से धोया जाना चाहिए। परन्तु सांचों को पानी से बार-बार धोया जाना अत्यन्त असुविधाजनक होगा। अतः सांचों में मिट्टी भरने से पूर्व सांचों की आन्तरिक सतहों पर अत्यन्त बारीक सूखी मिट्टी जैसे सीमेण्ट को छिड़क देना चाहिए। इस प्रकार ढालने की क्रिया को मिट्टी द्वारा ढालना (sand moulding) कहते हैं।

इस विधि से ढली हुई ईंट की वह सतह जो जमीन के सम्पर्क में आती है, खुरदुरी हो जाती है। इससे बचने के लिए मिट्टी को लोहे की एक चिकनी एवं समतल मेज पर ढाला जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) **मशीन द्वारा ढालना** (Machine Moulding)—ईंट को मशीन द्वारा भी ढाला जाता है। मशीन द्वारा ढालने के लिए तैयार की गयी मिट्टी को ढालने से पूर्व एक बार फिर साफ किया जाता है। ऐसा करने के लिए विशेष प्रकार की पग मिलें उपयोग में लायी जाती हैं जिसमें मिट्टी का अच्छी तरह से एकीकरण किया जाता है। इस प्रकार की मिलों में एक छिद्र होता है जिसका आकार ईंट की चौड़ाई अर्थात् ४½″ × ३″ रखा जाता है। तैयार की गयी मिट्टी को दबाव डालकर पग मिल में भेजा जाता है। तत्पश्चात् यह मिट्टी छिद्र में से लगातार पट्टी (continuous band) के रूप में मिल के बाहर आती है। इस मशीन में लोहे के फलक अथवा पतले तार होते हैं। इन फलक अथवा तार की सहायता से प्राप्त मिट्टी की अविराम पट्टी स्वयं ही ईंट की लम्बाई (अर्थात ९″) में एक निश्चित समय के अन्तर से कट जाती है। ईंटों के कटते ही उनको सुखाने के लिए शुष्क-कक्ष में भेज दिया जाता है।

ईंटों का दहन

ईंटों को पूर्ण शुष्क अवस्था में प्राप्त करने के उपरान्त उनका दहन किया जाता है। ईंटों के दहन का मुख्य उद्देश्य ईंट में उपस्थित नमी को दूर करना है। इसके अतिरिक्त दहन से ईंट के अन्दर रासायनिक क्रियाएं होती हैं जो निश्चय ही ईंट को शक्ति देने में सहायक होती हैं। इन सब बातों के अतिरिक्त पकाने से ईंट का रंग बदल जाता है जिससे वह देखने में सुन्दर प्रतीत होती है। ईंटों की सुन्दरता के साथ-साथ पकी ईंटें जल-प्रतिरोधी भी होती हैं अतः पानी की उपस्थिति में ईंटें घुल नहीं पाती हैं।

ईंटों का दहन भट्ठियों में किया जाता है। निम्नलिखित तीन प्रकार की भट्ठियाँ अधिक प्रचलित हैं—

(१) खुली भट्ठियाँ अथवा क्लेम्प (open kilns or clamps), (२) अर्धाविराम भट्ठियाँ (semicontinuous or intermittent), (३) अविराम भट्ठियाँ (continuous kilns)।

(१) **खुली भट्ठियां अथवा क्लेम्प**—क्लेम्प में ईंटों के दहन की विधि निम्न कोटि की है क्योंकि इसमें उत्पन्न उष्मा का वितरण उचित नहीं होता है जिसका परिणाम यह होता है कि इसमें रखी सब ईंटें समुचित रूप से नहीं पक पाती हैं। समुचित पकी ईंटों की संख्या कम रहती है, अधिक संख्या कच्ची अथवा अत्यधिक पकी ईंटों की होती है।

क्लेम्प को स्थापित करने के लिए लगभग ३०′ × ४०′ आकार का क्षेत्र चुना जाता है। इस क्षेत्र पर एक ढालू फर्श बनाया जाता है जिसका झुकाव क्षैतिज से लगभग $\frac{1}{10}$ अथवा $\frac{1}{30}$ रखा जाता है। इस फर्श के ऊपर ईंधन की तह बिछायी जाती है। ईंधन में शुष्क पत्तियाँ, जंगल की लकड़ी आदि होती हैं। सामान्यतः ईंधन की इस तह की ऊँचाई २ अथवा २½ फुट रखी जाती है। ईंधन की तह के ऊपर ईंटों की पाँच अथवा छह पंक्तियां इस प्रकार बिछायी जाती हैं कि ईंटों के बीच उष्मा के संचरण के लिए स्थान बना रहे। ईंटों की तहों के ऊपर फिर ईंधन की तह बिछायी जाती है और इस प्रकार बारी-बारी से ईंट और ईंधन की तहें बिछायी जाती हैं। जैसे-जैसे क्लेम्प में ईंटों और ईंधन की ऊँचाई बढ़ती जाती है, ईंधन की तहों की ऊँचाई को कम करते जाते हैं। ईंटों को तहों में बिछाने का यह क्रम लगभग १२′ तक जारी रखा जाता है। जब क्लेम्प अपनी आधी ऊँचाई तक भर जाती है तब ईंधन की सबसे निचली तह को आग लगा दी जाती है। आग के फलस्वरूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न तप्त गैसें जैसे-जैसे ऊपर उठती हैं वैसे-वैसे क्लेम्प को पूरी ऊँचाई तक ईंटों से बिछा दिया जाता है। तप्त गैसों को क्लेम्प से बाहर जाने से रोकने के लिए क्लेम्प के सबसे ऊपरी सिरे पर गीली मिट्टी का प्लास्टर चढ़ा दिया जाता है।

क्लेम्प में ईंटों के पकने की क्रिया लगभग ३ सप्ताह में पूर्ण होती है तत्पश्चात् ईंटों को ठण्डा होने में एक सप्ताह लगता है।

प्रत्येक क्लेम्प में एक बार में पकी हुई ईंटों की संख्या २०,००० से १००,००० रहती है। इन ईंटों में समुचित पकी ईंटों की संख्या किसी भी स्थिति में ५०% से अधिक नहीं हो पाती है।

(२) **अर्धाविराम भट्ठियाँ**—इन भट्ठियों में उत्पन्न उष्मा का वितरण उचित रूप से हो जाता है जिसके फलस्वरूप प्राप्त ईंटों में समुचित पकी ईंटों की अधिकता रहती है। लेकिन इस प्रकार का दहन अविराम (continuous) नहीं है। अतः कम समय में पकी हुई ईंटों की अधिक संख्या इस विधि से प्राप्त नहीं की जा सकती है।

अर्धाविराम भट्ठियों की कई किस्में हैं जिनमें से इलाहाबाद किस्म की भट्ठी १८′ × ४०′ के क्षेत्र में स्थापित दीवारों से घिरी एक स्थायी कक्ष की बनी होती है। इस कक्ष की अधिकतम ऊँचाई १२′ रखी जाती है।

भट्ठी के स्थायी कक्ष को दो समान कक्षों में विभाजित किया जाता है। दोनों कक्षों में समान रचना की जाती है। पूरी चौड़ाई में ४ फुट ६ इंच के अन्तर पर १ फुट ३ इंच चौड़े और १ फुट गहरे गड्ढे खोदे जाते हैं। इन गड्ढों को गैस-द्वार (flue) कहते हैं। इन द्वारों को बाह्य वातावरण से सम्बन्धित कर दिया जाता है ताकि दहन के समय उत्पन्न धुंआ आदि वातावरण में मिल जाय। इसके अतिरिक्त ये द्वार उष्मा के उचित वितरण में सहायक सिद्ध होते हैं। ४′ ६″ के स्थान में से ३′ ३″ में ईंटों को उनके कोरों (edges) पर रखकर ईंटों की सात तहें इस प्रकार बिछायी जाती हैं कि ईंटों के बीच तप्त गैसों के भ्रमण के लिए स्थान बना रहे।

भट्ठी में अग्नि प्रज्वलित करने के लिए ईंधन को भट्ठी की दीवारों में बनाये गये ईंधन द्वारों से अन्दर भेजा जाता है। साधारणतया ईंधन, जंगल की लकड़ी और चारकोल का मिश्रण होता है। प्रथम बार आग लगाने के पश्चात् ईंधन द्वारों को बन्द कर दिया जाता है और दहन की क्रिया को लगभग दो सप्ताह तक जारी रखा जाता है। भट्ठी की सबसे ऊपरी सतह पर कीचड़ मिट्टी का प्लास्टर कर दिया जाता है। इस प्लास्टर में कई छोटे-छोटे छिद्र बना दिये जाते हैं जिनमें से आवश्यकता के अनुसार दहन के लिए कोयले का चूर्ण भट्ठी में भेजा जा सके।

दहनोपरान्त भट्ठी को ठण्डा होने के लिए कम से कम एक सप्ताह की आवश्यकता होती है। इन भट्ठियों की क्षमता लगभग ४०,००० ईंटें हैं। अधिक से अधिक इन भट्ठियों से ८०,००० ईंटें पकायी जा सकती हैं। प्राप्त ईंटों के समुचित पकी ईंटों की संख्या ५०% तक ही रहती है और शेष या तो अधिक पकी (over burnt) अथवा कच्ची ईंटें ही होती हैं।

(३) **अविराम भट्ठियाँ**—अविराम भट्ठियाँ सर्वोच्च कोटि की भट्ठियाँ हैं। इनको स्थापित करने की कई विधियां हैं। कुछ भट्ठियाँ पूर्णतः पृथ्वी के भीतर बनायी जाती हैं। कई स्थानों पर इन भट्ठियों को केवल आंशिक रूप से पृथ्वी के भीतर बनाया जाता है। ये भट्ठियाँ वृत्तीय अथवा आयताकार क्षेत्र में स्थापित की जाती हैं। हॉफमैन भट्ठी (Hoffman's kiln) अविराम भट्ठियों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हॉफमन भट्ठा वृत्ताकार भट्ठी है जिसमें कई कक्ष होते हैं। ईंटों के रखने एवं प्रवाहित वायु के नियंत्रण के लिए प्रत्येक कक्ष में द्वार लगे होते हैं। भट्ठी के भीतर भी एक द्वार होता है जिसका सम्बन्ध चिमनी से होता है। इन सभी द्वारों को खोलने अथवा बन्द करने के लिए डैम्पर (dampers) का प्रबन्ध रहता है।

इन भट्ठियों में साधारणतया यदि एक कक्ष को ईंटों से बिछाया जाता है तो दूसरे को पकी ईंटों से खाली किया जाता है। प्रत्येक दिन कम से कम एक कक्ष को अग्नि से प्रज्वलित किया जाता है। इन कक्षों का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाता है कि उत्पन्न हुई तप्त गैसें दहन अथवा शीत कक्ष (burning or cooling chamber) में से होकर दूसरे कक्ष से गुजरती हैं और इस प्रकार इन गैसों को चिमनी में जाने से पूर्व ईंटों को सुखाने, गर्म करने अथवा आंशिक रूप से पकाने के उपयोग में लाया जाता है। प्रत्येक कक्ष एक विशेष कार्य करता है जिससे कि कच्ची ईंटों के बिछाने से पकी ईंटों को निकालने तक के बीच दहन का कार्य जारी रहता है।

ईंट का आकार

भारत में ईंटें किसी विशेष प्रमाणिक आकार में नहीं बनायी जाती हैं। अधिक प्रचलित ईंटों का आकार ९" × ४½" × ३" है। लेकिन वर्तमान समय में कुछ अधिक मोटी ईंटें बनाने की प्रवृति होती जा रही है। वैसे ईंट की लम्बाई चौड़ाई की दूनी और गारे के जोड़ के योग के बराबर रखी जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रचलित आकार इस प्रकार हैं–१०" × ४⅝" × ३"एवं ९½" × ४½" × २¾"।

अच्छी ईंटों की विशेषताएँ

अच्छी ईंट आकार में ठीक आयताकार, समुचित पकी, सम्पूर्ण सामान आकार, तीक्ष्ण कोरें (sharpe edges) और संगठन में कठोर होनी चाहिए। छोटे-छोटे छिद्रों पत्थर के टुकड़ों व अमिश्रित चूने के कणों से पूर्ण स्वतंत्र होना चाहिए। अगर ईंट इन दोषों से मुक्त नहीं है तो वह अधिक पानी शोषित करती है जिससे आयतन में बढ़कर अन्त में शक्ति में क्षीण होकर टुकड़ों में विभाजित हो जाती है। अच्छी ईंट की मुख्य विशेषता यह होनी चाहिए कि वह अन्य ईंट से टकराने पर टूटने न पाये तथा ३ फुट की ऊँचाई से छोड़े जाने पर उसकी शक्ति में अन्तर न पड़े। अच्छी ईंटों में शोषित जल की मात्रा स्वयं के भार से २०% से अधिक नहीं होनी चाहिए।

ईंट की किस्में

चूना-मिट्टी मिश्रित ईंटें—ये ईंटें अधिक शक्तिशाली एवं दीर्घजीवी होती हैं। ये संगठन में दृढ़ होती हैं और इनकी कोरें अत्यन्त तीक्ष्ण होती हैं।

इस प्रकार की ईंटों के निर्माण के लिए मिट्टी में ४ से १०% बुझा चूना मिलाया जाता है। मिट्टी को पीसने वाली मिलों (rolling mills) में भेजा जाता है। तत्पश्चात मिट्टी को सांचों में ५००० से ८००० प्रतिवर्ग इंच के दवाब पर भरा जाता है। इस प्रकार ढली ईंटों को बन्द बेलन 'आटोक्लेव' (auto clave) में रखकर कठोर किया जाता है। आटोक्लेव में अत्यधिक तप्त जलवाष्प (super-heated steam) १२० से १५० प्रति वर्ग इंच दवाब पर लगभग १० घण्टे तक प्रवाहित की जाती है। ईंटों में कठोरता निम्न दो रासायनिक क्रियाओं के सम्मिलित प्रभाव के फलस्वरूप उत्पन्न होती है।

(क) चूने का कुछ भाग कार्बन डाइ आक्साइड गैस को शोषितकर कैल्सियम कार्बोनेट बनाता है।

$$CaO + CO_2 \rightarrow CaCO_3$$

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) चूने का जलीय सिलीकेट बनाता है। यह उपस्थित सिलीका से क्रिया करके चूने का जलीय सिलीकेट अत्यन्त शक्तिशाली बांधने वाला (cementing) पदार्थ है जिसके फलस्वरूप ईंट संगठन में कठोर हो जाती है।

अग्नि प्रतिरोधी ईंटें—इन ईंटों का उपयोग उन उद्योगों में अधिक किया जाता है जिनमें अत्यधिक ऊँचे ताप का उपयोग होता है। सिलिका, एल्यूमीना, मैग्नेसाइट, बाक्साइट और क्रोमाइट ऐसे पदार्थ हैं जिनमें अधिक ऊँचे ताप को सहने की सामर्थ्य होती है। ईंटों में इन पदार्थों का अनुपात ईंटों के विभिन्न उपयोगों के अनुसार रखा जाता है। अग्नि प्रतिरोधी ईंटों को उनके विभिन्न उपयोगों के अनुसार निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है।

(१) **फायर क्ले ईंट** (Fire-clay Bricks) फायर-क्ले, अम्लीय किस्म की अग्नि प्रतिरोधी ईंटों (Acidic type of fire- bricks) के लिए प्रयुक्त, बहुत ही उपयोगी पदार्थ है। अग्नि प्रतिरोधी ईंटों के लिए उपयुक्त अच्छी किस्म की फायर-क्ले की रचना इस प्रकार है—(क) सिलिका (स्वतंत्र व अम्ल में विलेय)—५० से ७०%, (ख) एल्यूमीना—१० से ३०%, (ग) चूना, मेग्नीसिया एवं लौह आक्साइड—२ से २½%, (घ) क्षार (सोडा, पोटास अथवा दोनों)—१½%।

इनके निर्माण की विधि सामान्य ईंट के निर्माण की विधि के समान है। ईंट में अग्नि-प्रतिरोधी शक्ति, दहन के समय जलीय एल्यूमीनियम सिलीकेट बनने के कारण उत्पन्न होती है।

(५) **सिलिका ईंटें**—इन ईंटों की अग्नि-प्रतिरोधी शक्ति, फायर-क्ले ईंटों की तुलना में कहीं अधिक होती हैं। ये मिट्टी-पत्थर से बनायी जाती हैं जिसमें ९५ से ९७% सिलिका और १ से २% चूना होता है। ●

एक दिल बेच दिया···

·····और ६० हजार रुपया ले लिया! नेपल्स (इटली) निवासी जियूसेप-डी-माए का शरीर एक,और दिल दो थे। दो शरीर, एक दिल की उपमा तो अभिनन्तता की बहुत देखी-सुनीं, किन्तु एक शरीर, दो दिल वाला व्यक्ति वह अकेला ही था। दोनों हृदय अपने-अपने स्थान पर सुचारु काम दे रहे थे। ऐसे अनोखे नमूने की ओर लन्दन की अकादमी आफ मेडिसिन को आकर्षित होना ही था। अतः सबसे पहले उसने सौदा कर ही लिया कि मरने के पश्चात् उस व्यक्ति का शरीर मरणोत्तर शल्यपरीक्षण के लिए उन्हीं को मिलेगा। इसका मूल्य उन्हें ६० हजार रुपये चुकाना पड़ा था!

यह जलप्रपात नीचे नहीं, ऊपर गिरता (उठता ?) है

होनोलूलू में ऐसे कई जलप्रपात देखने को मिलेंगे जो नीचे नहीं, ऊपर को उठ-गिरते हैं। इनका जल ज्योंही नीचे गिरना आरम्भ करता है, वहाँ का स्थायी और अत्यन्त तीव्र पवन उस धारा का मुँह मोड़कर दूसरी ओर की पहाड़ी पर फेंक देता है। वहाँ से वह जल नदी के रूप में बह निकलता है।

बाबा आदम अब तक न गिन पाते

बाइबिल के अनुसार बाबा आदम का जीवनकाल आज के दिन ५७०८ वर्ष का माना जाता है। यदि वे हमारे कहने से २०० की गिनती प्रति मिनट की तेजी से भी अंगुलियों पर गिनना आरम्भ करते तो दस लरब $(१\times१०)^{१२}$ की संख्या गिनने के प्रयास में सन् १९३१ तक वे आधी ही मंजिल तय कर पाते। हमीं यदि ईस्वी सन् १ से गिनना शुरू करते तो ५७५३ वर्ष तक गिनते ही रहते; अर्थात् कब्र में भी गिनने से छुटकारा न मिलता!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे

सूचना

१ अक्टूबर १९६४ से समय सारिणी में आवश्यक संशोधन किये जा रहे हैं। महत्त्वपूर्ण परिवर्तन निम्न भाँति रहेंगे :

१. नयी ट्रेनें जारी की गयीं

(१) एक ट्रेन आने-जाने की, दिल्ली और बरौनी के मध्य।
(आसाम मेल ८५ अप / ८६ डाउन)

(२) एक ट्रेन आने-जाने की, कालका और फीरोजपुर के मध्य।
(चण्डीगढ़ एक्सप्रेस, ८७ अप / ८८ डाउन)

(३) एक ट्रेन आने-जाने की, मुरादाबाद और सहारनपुर के मध्य।
(पैसेन्जर १ एस एम / २ एस एम)

(४) एक ट्रेन आने-जाने की, दिल्ली और हिसार के मध्य।
(हरियाना एक्सप्रेस ९९ अप / १०० डाउन) यह ट्रेन दिल्ली-रेवाड़ी सेक्शन पर ३ बी डी आर / ४ बी डी आर के स्थान पर होगी।

(५) एक ट्रेन अबोहर और हिन्दमालकोट के मध्य। (पैसेन्जर १ ए एच एम)

(६) एक ट्रेन आने-जाने की, नयी दिल्ली और आगरा के मध्य।
(ताज एक्सप्रेस ८९ डाउन / ९० अप)

(७) एक ट्रेन आने-जाने की, हाथरस जंक्शन और हाथरस किला के मध्य।
(पैसेन्जर १३ एच एच / १४ एच एच)

(८) २१ डाउन / २२ अप सदर्न एक्सप्रेस सप्ताह में दो बार के बजाय ५ दिन चला करेगी।

२. आगे तक बढ़ायी गयी ट्रेनें

(१) ३४४ डाउन अबोहर-दिल्ली पैसेन्जर हिन्दमालकोट से चलेगी।

(२) ५२९ डाउन / ५३० अप झाँसी और कानपुर के मध्य चलने वाली अब लखनऊ तक आये-जायेगी और उसका नया नम्बर होगा—१०५ डाउन / १०६ अप।

(३) १ एन एल / २ एन एल नकोदर और लोहियाँखास के मध्य चलने वाली अब फीरोजपुर तक आये-जायेगी और उसका नया नम्बर होगा—१ एन एल एफ / २ एन एल एफ।

(४) दिल्ली और शकूरबस्ती के मध्य चलने वाली शटल अब बहादुरगढ़ तक आये-जायेगी।

(५) १ ए जे जी / २ ए जे जी जगरांव और अमृतसर के मध्य चलने वाली फीरोजपुर तक आये-जायेगी। उसका समय फास्ट पैसेन्जर के अनुसार परिवर्तित किया जायगा और उसका नया नम्बर होगा—१ ए एल एफ / २ ए एल एफ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) १ सी सी / २ सी सी चुनार और चोपन के मध्य चलने वाली अब गढ़वारोड तक आये-जायेगी और उसका नया नम्बर होगा—१ सी जी / २ सी जी।

३. **ट्रेनों की चाल बढ़ायी गयी**

(१) ९ अप दून एक्सप्रेस १० मिनट से बढ़ायी गयी है।
(२) १० डाउन दून एक्सप्रेस २० मिनट से बढ़ायी गयी है।
(३) २० डाउन देहरादून एक्सप्रेस १५ मिनट से बढ़ायी गयी है।
(४) ४१ अप मसूरी एक्सप्रेस १० मिनट से बढ़ायी गयी है।
(५) ४२ डाउन मसूरी एक्सप्रेस २५ मिनट से बढ़ायी गयी है।
(६) ४७ अप। २८ अप वाराणसी एक्सप्रेस १० मिनट से बढ़ायी गयी है।
(७) ५१ अप पठानकोट-स्यालदह एक्सप्रेस १२५ मिनट से बढ़ायी गयी है।
(८) ५२ डाउन पठानकोट-स्यालदह एक्सप्रेस ८५ मिनट से बढ़ायी गयी है।
(९) ६२ डाउन देहरादून-हावड़ा साप्ताहिक जनता एक्सप्रेस १० मिनट से बढ़ायी गयी है।
(१०) ६६ डाउन देहरादून-वाराणसी साप्ताहिक जनता एक्सप्रेस १० मिनट से बढ़ायी गयी है।

४. **रुकने के नये स्थल निर्धारित किये गये**

(१) १ ए टी एफ / २ ए टी एफ ताखा पर।
(२) २० डाउन रायवाला पर।
(३) १ यू एन पटियाला केण्ट पर।
(४) १४ डाउन दिल्ली शहादरा पर।
(५) ५१ अप टाण्डा उरमार पर।
(६) २३१ अप पालम पर।
(७) ३५९ डाउन तिलकब्रिज पर।
(८) २ डी जे पी समर गोपालपुर तथा खारावार पर।
(९) ३५४ डाउन खेराकलां पर।
(१०) १ डी जे / २ डी जे और मुण्डका हाल्ट पर।
(११) १ एल जे गुरने पर।
(१२) ९१ अप पटौदी रोड पर।

५. **रुकने के स्थल बन्द किये गये**

(१) ७ जे एम पी / ८ जे एम पी का मुसाहिबपुर पर।
(२) ३ आर सी / २ आर सी कोरारी पर।
(३) ५१ अप / ५२ डाउन अघवानपुर, मतलबपुर, कंथ, मेवनवादा, रायसी, बुँदकी, पुरायनी, चकराजमल, फजलपुर, चन्दोक तथा बालावाली पर।

६. **नये कनेक्शन जारी किये गये**

(१) १ जे एफ का ३१ अप से और ८ जे एफ का ३२ डाउन से जलंधर सिटी पर।
(२) १३१ अप का ८७ (मीटर गेज एम जी) से वाराणसी पर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

(३) २ बी एस एच का ९१ अप से सादूलपुर पर।
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
(४) ३ जे पी का ३४१ अप से जीन्द पर।

७. **गाड़ियों के समय में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन**

(१) नयी जारी की गयी ८७ अप चण्डीगढ़ एक्सप्रेस कालका से १८ बज कर २० मिनट पर छूटेगी और ५ बज कर २५ मिनट पर फीरोजपुर पहुँचेगी।
८८ डाउन चण्डीगढ़ एक्सप्रेस फीरोजपुर से २१ बज कर ३० मिनट पर छूटेगी और ७ बज कर ४५ मिनट पर कालका पहुँचेगी।

(२) ५१ अप पठानकोट पर ८ बज कर ३५ मिनट के बजाय ६ बज कर ३० मिनट पर पहुँचेगी।

(३) ५२ डाउन पठानकोट से १९ बज कर ४० मिनट के बजाय २० बज कर ४५ मिनट पर छूटेगी मुगलसराय पर २ बज कर ३० मिनट के बजाय २ बज कर १० मिनट पर पहुँचेगी।

(४) ४२ डाउन देहरादून से १९ बज कर २५ मिनट के बजाय १९ बज कर ५० मिनट पर छूटेगी और ६ बज कर २० मिनट पर दिल्ली पहुँचेगी।

(५) ४१ अप दिल्ली से २१ बज कर ५० मिनट के बजाय २२ बजे छूटेगी।

(६) २ डाउन दिल्ली से ८ बज कर ३० मिनट के बजाय ८ बज कर २० मिनट पर छूटेगी।

(७) ९ अप देहरादून पर ९ बज कर ४५ मिनट के बजाय ९ बज कर ३५ मिनट पर पहुँचेगी।

(८) १० डाउन मुगलसराय पर १७ बजे के बजाय १६ बज कर ४० मिनट पर पहुँचेगी।

(९) १५ डाउन नयी दिल्ली पर ८ बज कर ३५ मिनट के बजाय १० बजे पहुँचेगी।

(१०) १६ अप नयी दिल्ली से १६ बज कर ५० मिनट के बजाय १७ बज कर ३५ मिनट पर छूटेगी।

(११) २६ अप ए सी एक्सप्रेस नयी दिल्ली से १६ बज कर १० मिनट के बजाय १६ बज कर ४५ मिनट पर छूटेगी।

(१२) ८२ डाउन ए सी एक्सप्रेस नयी दिल्ली से १६ बज कर २० मिनट के बजाय १६ बजे छूटेगी।

(१३) २० अप दिल्ली से २२ बज कर १५ मिनट के बजाय २२ बजे छूटेगी।

(१४) २०१ अप दिल्ली से २२ बजे के बजाय २२ बज कर १० मिनट पर छूटेगी।

(१५) २ यूं के कालका से ७ बजे के बजाय ७ बज कर ५० मिनट पर छूटेगी और अम्बाला पर ९ बज कर ३० मिनट के बजाय १० बज कर २५ मिनट पर पहुँचेगी।

(१६) २ पी बी बैजनाथ पपरौला से ३ बज कर ३० मिनट के बजाय ४ बजे छूटेगी।

(१७) १ एफ टी डी फरुख़ाबाद से १९ बजे के बजाय २० बजे छूटेगी और दिल्ली पर ९ बज कर ५० मिनट के बजाय १२ बज कर ४० मिनट पर पहुँचेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१८) ६४ अप दिल्ली से १० बजे के बजाय १० बजकर १५ मिनट पर छूटेगी।

(१९) १७ डाउन दिल्ली १८·२० बजे और ६३ डाउन १७ बजकर ३५ मिनट पर पहुँचेगी।

८. **निम्न ट्रेनों में वातानुकूलित तथा प्रथम श्रेणी की सुविधाएं बन्द कर दी गयीं हैं**

(१) २७ अप / २८ डाउन फ्लाइंग मेल, नयी दिल्ली और अमृतसर के मध्य वातानुकूलित सुविधा बन्द की गयी है।

(२) दिल्ली और देहरादून के मध्य चलने वाली ४१ अप और ४२ डाउन मसूरी एक्सप्रेसों में वातानुकूलित सुविधा बन्द कर दी गयी है। (१६ अक्टूबर १९६४ से)

(३) भटिण्डा और सिरसा के मध्य चलने वाली १ बी बी एस। २ बी बी एस पैसेन्जरों में बहुत कम सवारियों के कारण प्रथम श्रणी की सुविधा बन्द कर दी गयी है :

९. **तृतीय श्रेणी, स्लीपर क्लास सर्विस जारी की गयी**

८५ अप ८६ डाउन आसाम मेल में दिल्ली और बरौनी के मध्य (दो टायर)

१०. **थ्रू / विभागीय डब्बे जोड़े गये**

स्टेशनों के मध्य	ट्रेन नम्बर	श्रेणियाँ	डब्बों की संख्या	आवर्तता	विशेष सूचना
(१) नयी दिल्ली-कोचीन	२२/२३/२७/३० और २५/४२/२१	प्रथम और तृतीय	एक	सप्ताह में पाँच दिन	सदर्न एक्सप्रेस चलने वाले दिनों पर
(२) नयी दिल्ली बेंगलोर सिटी	२२/२३ और ४०/२१	प्रथम और तृतीय	एक	(उपरोक्त) (द्विसप्ताहिक के बजाय)	(उपरोक्त)
(३) नयी दिल्ली मांगलौर	२२/२३/२७/२९ और २/२५/४२/२१	प्रथम और तृतीय	एक	सप्ताह में दो बार	नयी दिल्ली से मंगल और शुक्रवार को तथा मांगलोर से मंगल और शनिवार को
(४) वाराणसी-मद्रास	४७/२८/१६ और १५/२७/४८	प्रथम और तृतीय	एक	सप्ताह में दो बार	मद्रास और वाराणसी से सोम और शुक्रवार को एक साथ।
(५) लखनऊ-मद्रास	१०६/१६ और १५/१०५	प्रथम और तृतीय	एक	सप्ताह में दो बार	मद्रास और लखनऊ से बुध और शनिवार को एक साथ।
(६) दिल्ली-समस्तीपुर	८६/१ एस बी और ४ एस बी/८५	तृतीय	एक	नित्यप्रति	
(७) कालका-हिन्दमालकोट	८७/१ बी एच और २ बी एच/८८	तृतीय	एक	नित्यप्रति	

ट्रेनों के समय, नये जारी किये गये तथा केन्सिल किये गये थ्रू डब्बों के विवरण, श्रेणीगत व्यवस्थाओं में परिवर्तन आदि सूचनाओं तथा विस्तृत विवरण के लिए अक्टूबर १९६४ की समय सारिणी पुस्तिका देखना आवश्यक है। रेलवे की बुकिंग, रिजर्वेशन तथा पूछताछ की खिड़कियों पर और बड़े स्टेशनों के बुक स्टालों पर उक्त अक्टूबर १९६४ की समय सारिणी पुस्तिका प्राप्य रहेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

बीजांकुरों की यह भीमसेनी शक्ति !

जब यह जानने को मिला कि एक पौण्ड बीजों ने अंकुरित होकर १२०० पौण्ड की एक कार को भी अंगुलभर उठा दिया, तब यह समझ में आ गया कि किस प्रकार लोहे जैसी चट्टानी किले की दीवारों में भी नये उगते पेड़-पौधे उन दीवारों को चटखा देते हैं। प्रयोगस्वरूप एक पौण्ड सेम के बीजों को एक कलईदार लोहे के सिलिण्डर में डालकर, ऊपर से केवल एक इंच उठा हुआ पानी डाला गया। बीजों ने जब पानी ठीक से सोख लिया तब उन पर एक गोल पत्थर ढंककर उसके भी ऊपर लोहे का एक बेलन खड़ा कर दिया। अनुमानित समय पर एक मोटरकार का अगला धुरा उस बेलन पर टिका दिया गया। इस प्रयोग को देखने वालों ने अचम्भे से देखा कि अंकुरित होते हुए उन बीजों ने उस कार को $\frac{1}{2}$ इंच उचका दिया था !

शिकार की टोह, ताप-संचार से

यह चित्र है, पिट वाइपर (*Pit Viper*) सर्प का। सरीसृप वर्ग की क्रोटेलाइनी (*Crotalinae*) उपशाखा के इस सर्प में एक विलक्षणता ऐसी है जो सामान्य सर्पों में नहीं मिलती। सामान्य सर्प तो अपने शिकार की टोह, भूमि पर उसके चलने से उत्पन्न प्रकम्पनों द्वारा पा लेता है, किन्तु यह पिट वाइपर अपनी आंखों और नासा-छिद्रों के मध्य दो ऐसे नन्हें गड्ढों से युक्त है, जो दूर की वस्तु द्वारा प्रसारित ताप-लहरों के प्रति तीव्र संवेदक हैं। वे ताप-लहरें अति सूक्ष्म होते हुए भी इसकी पकड़ से बाहर नहीं और उन्हीं के सहारे यह अपने शिकार तक अचूक पहुँच जाता है।

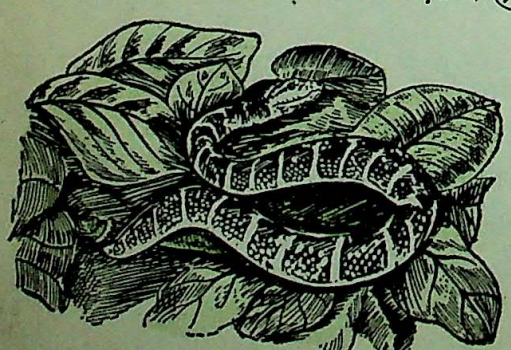

सरसों हथेली पर नहीं, होंठों पर जमायी

भारत के सिद्ध-सन्यासियों, योगी-हठयोगियों और फकीरों ने मानवशक्ति से परे, सहनशीलता के प्रदर्शन कर-करके विदेशियों को प्रायः ही चमत्कृत किया है। एक उदाहरण का उल्लेख है कि एक योगी जमीन पर चित लेट गया, शरीर को निस्पन्द कर लिया और गीली मिट्टी अपने होंठों पर रखवा कर मुँह को मानो सील कर लिया। उस मिट्टी में सरसों बो दी गयी। चार दिन, चार रात वह योगी दिन की झुलसाती धूप-गर्मी में और रात की हड़कम्प सर्दी में निश्चेष्ट पड़ा रहा। चौथे दिन सरसों के कुल्ले-फूटे और नवांकुर भी लहलहाने लगे। यों, हथेली पर न सही, होंठों पर तो उसने सरसों जमा कर दिखा ही दी!

गधे का गधापन, लाखों-करोड़ों के मोल का

उ० अमरीका के इडाहो (Idaho) की पर्वतश्रेणियों में आज जो केलॉग (Kellog) नामक उद्योग-बस्ती आबाद है, ६०-७० वर्ष पूर्व बंजर, पहाड़ी इलाका था। रूरके और केलॉग नामक दो व्यक्तियों के साझे का एक गधा उस ओर नजर बचाकर छूट भागा। गधा किराये पर लिया हुआ था, मालिक कोई दूसरा ही था। भागते-भागते गधा जहां ठोकर खाकर रुका, वहां दोनों साझेदारों को चांदी मिश्रित-सीसे की खान का सूराग मिल गया। करोड़ों रुपये वार्षिक आमदनी की उस खान पर गधे के असली मालिक ने भी दावा जमाया तो कोर्ट ने उसे तीसरे हिस्से का साझेदार घोषित कर दिया। अब इसे उस गधे का गधापन कैसे कहा जाय जिसने अपने मालिकों को जनम-जनम के लिए बहुत बड़ी रियासत के हकदार बना दिया!

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कन्क्रीट का पुल, आग से भस्म !

इस बात की कल्पना जितनी विचित्र है, उससे अधिक विचित्र है इसका सच होना। टेक्सास (अमरीका) के लाइमस्टोन नामक गांव से नावासोटो नामकी जो नदी गुजरती है, उस पर बना हुआ कन्क्रीट का पुल १९२२ में सचमुच आग से ही नष्ट हुआ था।

हुआ यों कि भारी वर्षा के कारण उस नदी में बहकर आये हुए वन-काष्ठ के मनों लक्कड़ उस पुल के नीचे तथा अगल-बगल काफी मात्रा में अटके हुए जमा होते रहे। उसके निकट ही से मेक्सिया आइल कम्पनी की बड़ी पाइपलाइन गुजरती थी। उसके लीक होने के कारण उसके नदी की ओर बहते हुए तेल ने चारों ओर एकत्र हुए लक्कड़ों को भी खूब तेल पिलाया। संयोगवश, तेल पिये हुए उस काष्ठ-समूह पर आकाशीय विद्युत गिरने से, जो आग फैली उसने बीच लपेट में आये हुए पुल को भस्मीभूत करके खण्ड-खण्ड कर दिया !

अपना हाथ, जगन्नाथ

पोलेण्ड की सबसे धनी महिला-काउण्टेस रोजा ब्रेनिका ने ६३ वर्ष की आयु में वह आश्चर्य कर दिखाया जो उस आयु में मनुष्य के लिए प्रायः असम्भव ही है। १८४३ में जब उसने जर्मनी के सबसे बड़े सर्जन से डाक्टरी सलाह ली तो उसने एपेण्डिक्स का केन्सर बताया और तुरन्त आपरेशन न कराने पर मृत्यु तक की आशंका भी करा दी। तिस पर भी काउण्टेस कुछ निराले ही तत्त्वों की बनी थी और उसने सोच लिया था कि इसे प्रकट करके वह अपने परिवार के सदस्यों को चिन्तित न करेगी। चुपचाप वह देश-विदेश घूमती रही और एक बार में एक ही एक करके सर्जरी के औजार खरीदती रही ताकि एक साथ खरीदने पर किसी को शंका न हो जाए।

औजार खरीद लेने पर उसने पेरिस की होटल में अलग कमरा लेकर स्वयं को तीन घण्टे के लिए बन्द कर लिया और मानव के लिए असम्भव ऐसे साहस से स्वयं ही आपरेशन करके एपेण्डिक्स को निकाल फेंका। आपरेशन के बाद टाँके लगाकर अपने घर लौट आयी, मानो कोई बड़ी बात ही नहीं। तत्पश्चात् वह १९ वर्ष और स्वस्थ जीवन कैसे बिता सकी, इस पर उस जर्मन सर्जन को सदैव आश्चर्य होता आया। अन्त में उसने जब रहस्य मालूम किया तो दाँतों तले अँगुली दबा कर रह गया !

बन्दर-टावर

रोम में यह टावर आज भी बड़े चाव से देखा जाता है। इसके ऊपर प्रज्जवलित दीप विगत ६०० वर्षों से निर्बाध जलता आ रहा है। इसके साथ एक ऐसी कहानी जुड़ी है जो दुखान्त होते-होते सुखान्त बन गयी। हुआ यह कि इस टावर के सामने वाले मकान में एक नर्स को बड़ी देर से बन्दर देख रहा था कि किस जतन और प्यार से वह बच्चे के कपड़े बदल रही है। बस, बन्दर मचल गया और नर्स के पीठ मोड़ते ही लपककर बच्चे को उठा कर यह जा, वह जा ! भगदड़ मच गयी, टावर के नीचे लोग इकट्ठा हो गये कि बच्चा यदि छूट-गिरे तो बांहों में सम्हाल लें, किन्तु बच्चे की माँ थी कि जान दिये दे रही थी। टावर पर बैठा बन्दर दम-दम पर बच्चे के कपड़े उतारता और पहनाता, नर्स की नकलकर रहा था।

जाने क्या सूझी कि बन्दर आखिर चुपके से बच्चे को सीने से चिपकाये नीचे उतरा, मां की गोद में दिया और चलता बना ! उस दैवी प्रेरणायुक्त बन्दर के सम्मान में नगरवासियों ने उस टावर का नाम ही बन्दर-टावर रख दिया और उसमें अक्षय-दीप जलाकर रखा जो सदियों से जलता ही रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेशम का उत्पादन

नरेन्द्र छाबड़ा

रेशम के उत्पादन का इतिहास भूतकाल के गर्भ में छिपा है, लेकिन ऐसा माना जाता है कि आज से ४,६०० वर्ष पूर्व सर्वप्रथम रेशम के कीड़े चीन में पाये गये। वहाँ ही पहले-पहल शहतूत के वृक्षों का होना पाया गया, जिन पर कीड़े पलते हैं। स्पष्टतः चीन-वासियों ने इस रहस्य को तीन हजार वर्ष तक गुप्त रखा और इस मूल्यवान रेशे के बने पदार्थों का निर्यात अन्य देशों, विशेषकर भारत में करते रहे। अन्य देशों में माल पहुँचाने के लिए चीनियों ने बैक्ट्रीयन नस्ल के ऊँटों का प्रयोग किया था। अन्त में ईरान और मिस्र तथा यूरोप के अन्य देशों का इस मूल्यवान वस्तु की ओर ध्यान आकर्षित हुआ।

चीन के बाद जापान ही पहला देश है, जहाँ रेशम का उत्पादन शुरू हुआ। वहाँ से भारत और ईरान में रेशम के कीड़ों का पालन तथा रेशम और रेशम के कपड़े का निर्माण शुरू हुआ। पर आज उन सभी देशों में जहाँ शहतूत का पेड़ सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है, रेशम-उत्पादन होता है। जापान, चीन, भारत, इटली, कोरिया, रूस, स्पेन, फ्रांस, स्विट्जरलैंड, इंगलैंड और अमरीका में आज रेशम-उद्योग जोरों पर है।

रेशम के कीड़े काले रंग के कैटरपिलर के रूप में सफेद शहतूत के पत्तों पर पलते हैं। ये काले शहतूत पर भी पलते हैं। वीर बूहटी लाल कीड़ा शहतूत के वृक्ष पर पलता है और उसे ही रेशम का कीड़ा माना गया है। प्रौढ़ कीड़ों के पंख होते हैं, पर वे उड़ नहीं सकते। नर-कीड़े बस इतना भर ही उड़ पाते हैं कि प्रजनन के समय वे मादा तक पहुँच जायें। कैटरपिलर बड़े ही विचित्र होते हैं, वे अपने लिए भोजन एकत्र नहीं करते और जो कुछ आसपास उपलब्ध होता है, खा लेते हैं। वे अपने स्थान से कुछ ही इंच इधर-उधर हिलते हैं।

रेशम के कीड़े का जीवन अण्डे से आरम्भ होता है। अण्डों का आकार सुई की नोक के बराबर होता है और शहतूत के एक ही पत्ते पर सैकड़ों अण्डे पड़े रहते हैं। इन्हें पत्तों से गिरने से बचाने के लिए मादा इन्हें अपने शरीर से निकलने वाले एक प्रकार के चिपचिपे पदार्थ से ढँक देती है। यह पहचानना बड़ा आसान है कि अण्डे पक गये हैं और फूटने ही वाले हैं, क्योंकि उनका रंग सफेद भूरा पड़ जाता है।

सामान्यतः आठ या दस दिनों के बाद अण्डे फूट जाते हैं और इनमें से फूटने वाला जीव ही वास्तव में रेशम का कीड़ा है। जन्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समय यह लारवा या कैटरपिलर कहलाता है। इसका रंग काला होता है। अण्डे से निकलते ही ये शहतूत के पत्तों से खूराक पाना आरम्भ कर देते हैं और तेजी से बढ़ने लगते हैं। इनके शरीर की लम्बाई पौन इंच के करीब तथा रंग हलका बादामी होता है। जन्म के चार दिन बाद इनका आकार बदलना आरम्भ होता है। नयी अवस्था में पहुँचकर ये खाना बन्द कर देते हैं और बिलकुल सुस्त निढाल पड़ जाते हैं। कालान्तर में इनके ऊपरी खोल फट जाते हैं और बिलकुल नये शरीर फूट निकलते हैं। तब पुनः ये खाना और बढ़ना आरम्भ कर देते हैं। लगभग एक सप्ताह पश्चात् फिर ऐसा कायापलट होता है और चार-पाँच बार होता है। प्रत्येक बार शरीर का आकार बढ़ता जाता है और चौथे कायापलट पर पूर्ण विकसित कीड़ा तीन इंच लम्बा हो जाता है।

इनके उदर भाग के साथ-साथ खाल के ठीक नीचे दो पतली झिल्लियाँ बनी होती हैं, जिनमें एक किस्म का तरल पदार्थ भरा रहता है। ये रेशम की ग्रन्थियाँ कहलाती हैं। जब ये प्रौढ़ता को प्राप्त करते हैं, तो ये ग्रंथियाँ एक प्रकार के चिपचिपे पदार्थ से भर जाती हैं। यदि वायु में खुली रहें तो लेसयुक्त यह पदार्थ गाढ़ा हो जाता है।

पाँचवें कायापलट से काफी पहले ही ये खाना बन्द कर देते हैं और स्वयं को पत्तों में छिपा लेते हैं। वह चिपचिपा पदार्थ अब ग्रंथियों से बहकर एक छिद्र से होता हुआ स्पिनरैट में (रेशम के कीड़े का कातने का अंग) पहुँचता है। यह अंग इनके निचले होंठ पर बना होता है। ज्यों-ज्यों यह पदार्थ निकलता जाता है,

रेशम-कीट का जीवनक्रम : सूक्ष्म अण्डावस्था में, गिराडावस्था में नर्म कोपलें, पत्तियाँ खाता हुआ, कीड़ा अपने चारों ओर कोया बनाना आरम्भ कर रहा है, कोया तैयार है अर्थात् रेशम बाहर, कीड़ा अन्दर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

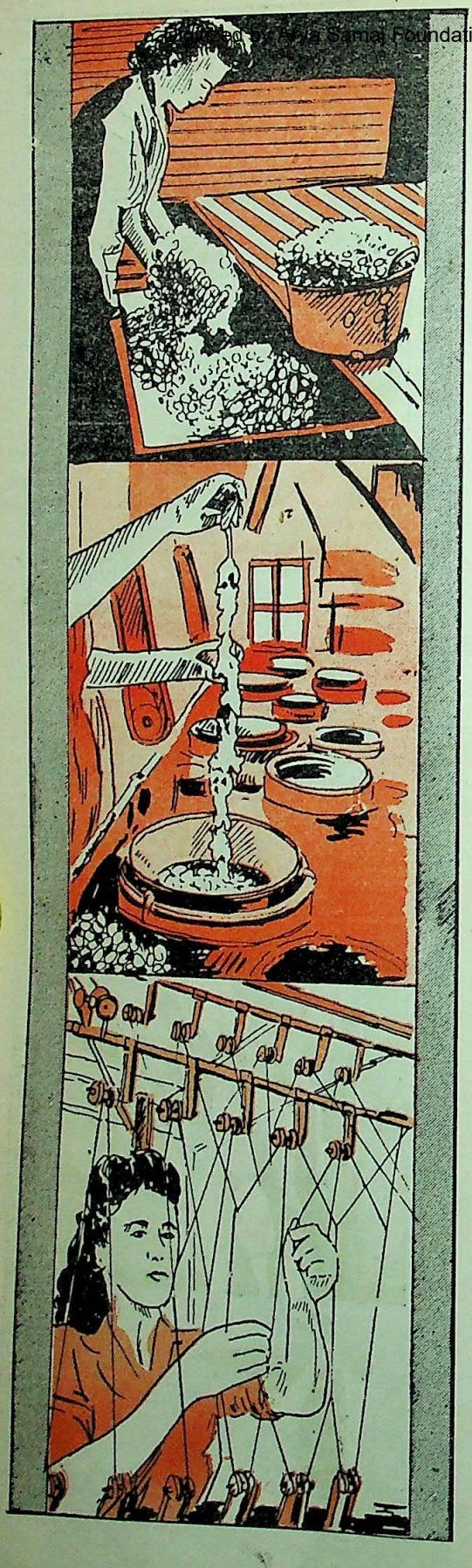

वायु लगने पर बढ़िया चमकीला रेशम का धागा बनता जाता है। यह धागा टूटता नहीं और संसार में सबसे मजबूत धागा समझा जाता है। इसमें गहरी चमक होती है। एक कीड़ा आठ सौ से एक हजार गज तक धागा छोड़ता है। धागा छोड़ते समय वह तीन दिन लगातार अपने सिर को इधर-उधर गोलाई में घुमाता रहता है। यह धागा उसके अपने शरीर के गिर्द ही लिपटता चला जाता है, जो एक आवरण का काम देता है। उसे कोकून (cocoon) याने रेशम का कोया कहते हैं। कोये की लम्बाई सामान्यत: डेढ़ इंच के करीब और रंग भूरा, पीला, फीका हरा या मटमैला सफेद होता है। कैटरपिलर के आराम की उस अवस्था को जिसे ये टहनियों या समीपस्थ अन्य किसी अपेक्षित: कठोर वस्तु से चिपककर बिताते हैं, कोशित (pupal) अवस्था कहते हैं। कोशित अवस्था १५ दिन तक चलती है और इस बीच इनके शरीर का पूर्णरूपेण परिवर्तन होता है। क्रमश: क्रिसलिस (chryslis) अर्थात् पंख निकलने से पूर्व की स्थिति में परिवर्तन होता है। इनका रंग भूरा पड़ जाता है। अन्त में यह पूरी तरह से रेशम के कीड़े के रूप में प्रकट होता है। निकलने के लिए यह कोये के भाग को आर्द्र करके उसके भागों में से बाहर निकल जाता है।

प्रौढ़ कीड़े देखने में सुन्दर नहीं होते। ये लगभग एक इंच लम्बे हो जाते हैं और इनका शरीर, शिर, वक्षस्थल और उदर-भाग नंगा होता है। शेष भाग पतिंगे के समान होते हैं। लगभग छह इंच लम्बे मटमैले सफेद या भूरे धारीदार रंग के पंख भी उग आते हैं। मादा

कीड़े से लेकर धागे तक रेशम-उत्पादन की अनेक प्रक्रियाओं में मुख्य तीन : रेशम के कोये (cocoons) पानी में उबालने के लिए डाले जा रहे हैं; कोयों में से उलझे धागे निकाले जा रहे हैं। साबुत और तने धागों की सावधानी से छंटाई हो रही है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीड़े नर कीड़ों से अधिक बड़े होते हैं। कीड़ा का रूप धारण करते ही मादा अपने स्थान से नहीं हिलती, और नर उसके गिर्द फड़फड़ाते रहते हैं और फिर से दोनों प्रजनन क्रिया आरम्भ कर देते हैं। प्रजनन-क्रिया के चार दिन बाद ही मादा शहतूत के पत्तों पर दो से चार सौ तक अण्डे देती है और फिर वही जीवन-चक्र आरम्भ हो जाता है।

चूंकि रेशम कोयों से प्राप्त होता है, इसलिए केवल वही कैटरपिलर कोशित अवस्था तक पहुँचने दिये जाते हैं जिन्हें पालना होता है। एक पौण्ड (रील पर) रेशम पैदा करने के लिए लगभग तीन हजार कोयों की आवश्यकता रहती है। पहले कोयों को भट्ठी पर तपा कर या पानी में उबालकर मार लिया जाता है। तब प्रत्येक कोये पर से लम्बा रेशम का धागा उतार लिया जाता है। रेशम के सारे धागों को इकट्ठा करके लच्छियों में बाँध दिया जाता है। लच्छियों को तेल और पानी मिले एक घोल में भिगो कर अंटी के गिर्द लपेटकर सूखने छोड़ दिया जाता है। संक्षेप में, रेशम-उद्योग प्रायः पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है: (१) रेशम-उत्पादन, जिसमें रेशम-कीट का पालन और कोयों की प्राप्ति शामिल है, (२) कोयों से रील वाला रेशम तैयार करना, (३) कताई, (४) बुनाई और (५) छपाई, रंगाई एवं तैयार कपड़ा।

कता हुआ रेशम और रेशम के वस्त्रों की कई किस्में बाजारों में चिकन, शनील, मखमल, जारजैट, प्लश, साटिन, टाफेटा, इत्यादि व्यावसायिक नामों से प्रसिद्ध हैं। इनमें से कई किस्मों के वस्त्रों में सूती धागे भी मिला लिये जाते हैं।

यह लेडीज-कोट, वह स्कार्फ और धागों की वे लच्छियां-इन सबमें रेशम ही रेशम है जिसके लिए हमें उस नन्हे रेशम-कीट का अभारी होना चाहिए

रेशमी कपड़े के उत्पादन में जापान सर्वप्रथम, स्थान रखता है, जहाँ संसार के कुल उत्पादन का आधा भाग पैदा होता है। दूसरे स्थान पर चीन, तीसरे पर रूस और चौथा स्थान भारत का है।

रेशम का कपड़ा इतना मजबूत होता है कि इस्पात के तार के १/३ के बराबर शक्ति रखता है। रेशम का कपड़ा अपने वजन के ३० प्रतिशत वजन के बराबर जल अपने में सोख सकता है। रेशम में से बिजली का करण्ट नहीं गुजर सकता और न ही यह शीघ्र आग पकड़ता है। इसे दूसरे कपड़ों से भिन्न करना बड़ा आसान है। यह हलका, चमकदार और क्रीजलैस होता है। इसे आसानी से और हर रंगों में रंगा जा सकता है। यह गर्मियों में ठंडक और सर्दियों में गर्मी देता है। ●

पिघलता पत्थर, बहते आँसू

स्मिथफील्ड (लन्दन) के सेण्ट बार्थोलोमियो चर्च में डा. एडवर्ड कुक की प्रस्तर-प्रतिमा की आंखें ऐसे जलशोषक पत्थर की बनायी गयी हैं, जो वातावरण से जलवाष्प सोख लेती हैं और वह एकत्रित जल उन आंखों से अश्रुधार के रूप में निरन्तर बहता ही रहता है!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

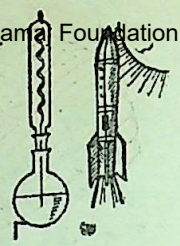

फेफड़ों की बात, कानोंकान

रोगी को सूट-बूट में सज्जित, केवल आरामकुरसी पर बैठे रहना होता है। रेडियो-ईयरफोन जैसा श्रवणयंत्र सिर के ऊपर, दोनों कानों पर फिट कर दिया जाता है। जरा ही सनसनाहट प्रतीत होती है और कानों पर के यन्त्रों में परीक्षण के लिए बूंद-दो बूंद रक्त खिच आता है और वहीं उसका फोटो-एलेक्ट्रिक परीक्षण भी हो जाता है कि उसमें आक्सीजन की मात्रा कितनी है।

तत्पश्चात् रोगी को २-४ हलकी उठक-बैठक करायी जाती हैं और कानों तक दौड़े हुए नये खून का पहले की भांति पुनः परीक्षण हो जाता है कि विशेष अवस्था में फेफड़े कितना अतिरिक्त आक्सीजन देने में समर्थ हैं। बस, हो गया फेफड़ों का परीक्षण; फेफड़ों की बात कानों ने कही, कानों ने ही सुनी!

इंजीनियरिंग का आश्चर्य

संसार के प्रथम कोटि के ईजीनियरिंग-आश्चर्यों में एक यह सुरंग भी है जो ग्रेट-ब्रिटेन

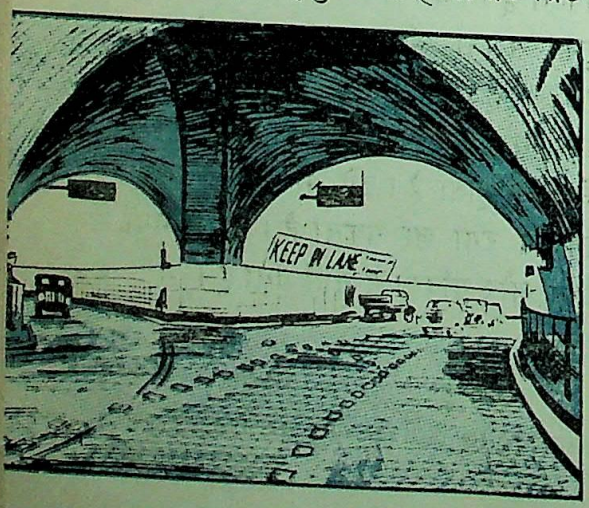

के लिवरपूल को बरकनहेड से मिलाती है। मर्से टनल (Mersey Tunnel) नामक इस सुरंग का उद्घाटन १९३४ में किया गया था। इसे बनाने के दौरान ७५० करोड़ गैलन से भी अधिक जलराशि को हटाना पड़ा था। तीन मील लम्बी, यह सुरंग आरम्भ में ही दोनों नगरों से समान रूप में बनती आगे आयी थी। इसमें आश्चर्य की बात यह है कि जिस बिन्दु पर दोनों मार्ग आपस में मिलते हैं, वहां उनकी मिलन रेखाओं और उनके लेवल में केवल १½ का सूक्ष्म अन्तर है!

अणु-भंजन के पश्चात् अब अणु-संयोजन

अणु-भंजन, अणु-विखण्डन, अणुकी तोड़-फोड़ का इतिहास अभी केवल अपनी २२ वर्ष की युवावस्था में ही है कि इसे भी मानो पेन्शन देने की योजना का बीजारोपण जर्मन वैज्ञानिकों के उवर मस्तिष्क में हो चुका है। अणु-रिएक्टर अर्थात् अणु-भट्ठियां अभी नयी-नयी ही हैं, किन्तु इन्हें अधिक आयु मिलने से पूर्व ही अणु-संयोजन का युग उदित हो जायगा।

इस क्रान्तिकारी दिशा में जर्मन वैज्ञानिक डा. हरमेन जोर्डन ने पहल की है। उन्होंने अणु-संयोजन द्वारा १० से २० माइक्रो सेकण्ड तक की अवधि में वह अत्युच्च ताप उत्पादित करने में सफलता प्राप्त की है जो अणु-भंजन द्वारा ३०,००० से ५०,००० C तक का प्राप्त किया जाता है। इसके अनुकरण में समस्त युरोप की प्रयोगशालाएं प्लास्मा भौतिकशास्त्र के विकास में लगी हुई हैं। ब्रिटेन की प्लास्मा अनुसन्धान इन्स्टीट्यूट के निर्देशक डा. एडम ने भी कहा है कि हम अपने प्रयोगों में प्राथमिक विजय पाते जा रहे हैं। आशा है, आनेवाले युग में सुख-समृद्धि के लिए अपरिमित ऊर्जा प्राप्ति, इस नये आविष्कार द्वारा सम्भव हो सकेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मारकाहक वायुयान

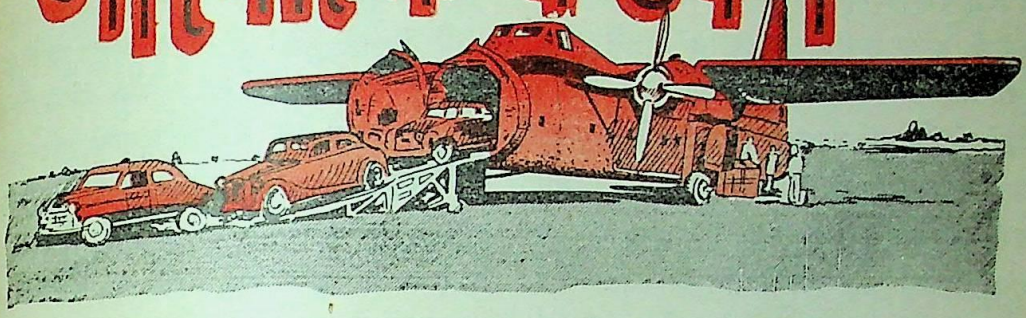

राजऋषि

यह वायुयानों का युग है। वायुयानों ने देश देशांतरों को निकट ला दिया है। यदि वायुयानों का प्रयोग परिवहन के रूप में न किया जाये तो आज के युग में अनेक महत्त्व के कार्य ठप्प हो जायें। लगभग पचास वर्ष पूर्व राईट भाइयों ने अपनी इंजन वाली पतंग हवा में कुछ फुट तक उड़ाई थी। तब हवाईयात्रा सर्कस के खेल की तरह थी, पर अब सारे संसार में वायुयानों का जाल-सा बिछ गया है। हवाई सेना ने आधुनिक युद्ध कला का कायापलट ही कर दिया है। जल और थल सेना वायु सेना की सहायता बिना युद्ध में कभी विजय प्राप्त नहीं कर सकतीं। इतना ही नहीं, अब तो वे भारी से भारी सामान भी ढोते हैं और वायुयान निर्माताओं का विचार है कि यह कार्य सबसे अधिक महत्त्व का है।

सन् १९२० में वायुयान छोटे होते थे। उनकी गति भी कम होती थी। वे रेलगाड़ियों से ज्यादा तेज भी नहीं उड़ पाते थे। कम शक्ति वाले उनके इंजन ज्यादा भार भी नहीं उठा सकते थे। इसलिए यात्रियों की संख्या बहुत सीमित रहती थी। एक यात्री को पाँच-सात पौंड सामान ही अपने साथ ले चलने की अनुमति होती थी। सामान बुक नहीं होता था। अगर किसी को कहीं दूसरे नगर किसी मित्र या परिचित को कुछ भेजना होता था तो वह छोटा-सा पैकेट बनाकर वायुयान चालक को दे देता और लेने वाला हवाई अड्डे पर आकर ले लेता। वायुयानों द्वारा सामान ढुलाई का यह प्रारम्भ ही था।

सबसे पहले, ७ नवम्बर १९१० को, रेशमी कपड़े का ७० पौंड का एक बण्डल डेटन से कोलम्बस वायुयान में भेजा गया। यह सामान बुक करके भेजने का पहला अवसर था। अट्ठावन मील तक इतना सामान ढोने का किराया तब ढाई सौ रुपये से भी अधिक लगा था। यह राईट भाइयों का निजी यान था। दूसरा प्रयास नौ साल बाद हुआ। अमरीकन रेलवे एक्सप्रेस कम्पनी ने शिकागो से न्यूयार्क तक ११०० पौंड के वजन का सामान वायुयान द्वारा भेजना चाहा। लेकिन वायुयान रास्ते में कई बार बिगड़ गया। आखिर आधे रास्ते में ही सामान यान से उतारकर रेलगाड़ी में रखना पड़ा।

उस समय के रेल और मोटर चालक वायुयानों से सामान ढोने के उल्लेखमात्र पर हंसते थे। उस समय मोटर और रेल के मुकाबले में वायुयानों का कुछ भी महत्त्व न था। सन् १९२५ तक वायुयानों द्वारा सामान ढोने के सभी प्रयास असफल रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वश्यक सरकारी डाक वायुयानों द्वारा भेजने का निर्णय किया। प्राइवेट कम्पनियों को ठेके दे दिये गये। वायुयान कम्पनियों ने नियमित हवाई डाक सेवाएं चलायीं, जिससे उन्हें नियमित आय का साधन भी मिल गया। यात्रियों से उन्हें बहुत कम भाड़ा मिल पाता था। जब यात्रियों की संख्या पूरी हो जाती तभी वायुयान भूमि से ऊपर उठता था, अन्यथा खड़ा रहता और यात्री तंग आ जाते थे। सरकारी प्रोत्साहन से नयी-नयी कम्पनियाँ खोलने की प्रतिस्पर्धा शुरू हो गयी। ये कम्पनियाँ सरकारी डाक के अतिरिक्त साधारण जन का व्यक्तिगत सामान भी बुक करने लगीं।

इधर बड़े और शक्तिशाली इंजनों का भी निर्माण होने लगा और वायुयानों द्वारा अधिकाधिक सामान ढोया जाने लगा। सन् १९२६ में ९९५ टन-मील सामान (टन-मील का अर्थ है एक मील तक एक टन सामान) ढोया गया, लेकिन सन् १९४१ में यह संख्या ५३ लाख तक पहुँच गयी।

वायुयानों का महत्त्व

दूसरे महायुद्ध ने भारवाही वायुयानों को एक अनूठा ही महत्त्व प्रदान किया। दूर देशों में पड़ी सेनाओं को थोड़े समय में अनेक प्रकार की सामग्री पहुँचाने की समस्या थी। युद्ध का सामान बनाने वाले कारखानों को वायुयानों द्वारा कल पुर्जे और कच्चा सामान पहुँचाया गया। उस समय व्यय का विचार न था। बस, तीव्र गति से काम पूरा करने की जरूरत थी। १९४२ में सवा करोड़ टन-मील से भी अधिक सामग्री वायुयानों ने संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचायी।

वायुयानों का विशेष उपयोग आपत्ति-काल में तो है ही, इसके अतिरिक्त बहुमूल्य सामग्री ढोने के लिए तथा ऐसे स्थानों पर, जहाँ अन्य यातायात साधन सरलता से सुलभ न हों वायुयान ही उपयोगी हैं।

बहुमूल्य सामग्री के लिए—हलकी और मूल्यवान वस्तुएं अब तो वायुयान द्वारा ही भेजी जाती हैं। इन मूल्यवान वस्तुओं में जीव-जन्तु भी शामिल हैं। रेस के घोड़े काफी मँहगे होते हैं। एक-एक घोड़े का मूल्य चार-चार लाख रुपये होता है। इनके मालिक भिन्न-भिन्न स्थानों में होने वाली रेसों में शामिल होने के लिए अपने घोड़े वायुयानों से भेजते हैं। वायुयानों में इन घोड़ों को आराम भी बहुत रहता है। समुद्र में सफर करने से वे बीमार हो जाते हैं और फिर समय तो काफी लगता ही है। भारवाही वायुयानों में रेस के घोड़ों के लिए विशेष प्रबन्ध रहता है।

कुछ अनूठी किस्म के कोमल फूल और मँहगे फल भी वायुयानों द्वारा भेजे जाते हैं। राइवरिया के फूल तमाम यूरोप में वायुयानों द्वारा भेजे जाते हैं। सहस्रों मील की दूरी तय करने पर भी इन फूलों की ताजगी ज्यों की त्यों बनी रहती है।

एक ही रास्ता—अभी तक दुनिया में कई ऐसे स्थान हैं जहाँ न रेलें हैं, न सड़कें। उन स्थानों पर हवाई अड्डे बना लिये गये हैं। दक्षिणी और मध्य अमरीका, अफ्रीका और सुदूर पूर्व के कई प्रदेशों में माल वायुयानों द्वारा ही भेजा जाता है।

जब न्यूगिनी में सोने की खानों की खोज हुई तो उस समय सबसे बड़ी समस्या विकट मार्गों की थी। सड़कें बनाने में कई वर्ष लग जाते और उन सड़कों की सुरक्षा और देखभाल भी एक समस्या ही होती। न्यूगिनी की खानों में सोना इतनी अधिक मात्रा में उपलब्ध होने की सम्भावना थी कि उन्हें अरक्षित छोड़ना भी सम्भव नहीं था। वायुयानों द्वारा वहाँ सभी आवश्यक मशीनें पहुँचायी गयीं। इसी तरह वहाँ काम करने वालों के लिए खाद्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता पड़ने पर बैलों की जोड़ियाँ भी वायुयात्रा का आनन्द ले लेती है

सामग्री और अन्य आवश्यक सामग्री पहुँचायी जाती रही।

जंगलों में काम करने वालों को वायुयान काफी सहायता देते हैं। किसी निश्चित बिन्दु पर जहाज पहुँच जाता है और वहाँ ठेकेदारों से खाल, कीमती लकड़ी, पशुओं की हड्डियाँ इत्यादि ले लेता है और उन्हें उनकी आवश्यकता की वस्तुएं दे देता है। अफ्रीका के जंगलों में अकसर ऐसा होता है।

वायुयानों द्वारा भेजे जाने वाली सामग्री

हवाईयात्रा करने का गर्व भी कितनी तरह की वस्तुओं को है। सन् १९५७ में सबसे पहला नम्बर फूलों ने लिया, फिर मशीनरी और पुरजे। बिजली का सामान, कपड़े, पुस्तकें, फिल्में आदि तीसरे नम्बर पर रहे। चौथा नम्बर आया तुर्की के अंडों और क्रिसमस के खिलौनों का।

सुदूर अलास्का में कुछ ही वर्ष पूर्व दूध, चुकन्दर आदि खाद्य वस्तुएं बिलकुल नहीं मिलती थीं, लेकिन आज अलास्का के नगरों में उसी तरह बड़े-बड़े बाजार हैं जैसे कि किसी भी उन्नत देश के बड़े नगरों में। वहाँ सारा माल वायुयानों द्वारा पहुँचता है।

वायुयानों द्वारा अंडों का निर्यात अब एक समृद्ध व्यापार का रूप ले रहा है। कैलीफोर्निया और तुर्की से प्रति वर्ष चार लाख पौंड के अंडे वायुयानों द्वारा अन्य देशों को भेजे जाते हैं।

ताजे और पेड़ पर पके हुए फलों में जो स्वाद होता है, वह कृत्रिम तरीकों से पकाये गये फलों में कभी नहीं हो सकता। अमरीका में न्यू ऑरलेन फ्रूट कम्पनी ने उन स्थानों में जहाँ केले पैदा नहीं होते, केले पहुँचाने के लिए विशेष तौर से हवाई सेवा का कार्य शुरू किया है। एक वायुयान में यह कम्पनी तेरह हजार पौंड केले भेजती है।

वायुयानों द्वारा इतनी भारी और विशाल वस्तुएं भेजी जाती हैं कि शायद आँखों देख कर ही विश्वास किया जा सके। एक बार दो सौ फुट लम्बा रेडियो एरियल वायुयान से भेजा गया था। सिर्फ उसके भिन्न-भिन्न अंग अलग किये गये और निर्दिष्ट स्थान पर उन्हें फिर से जोड़ा गया।

ड्रिलिंग करने वाली मशीनें और तेल के कुओं के औजार अकसर वायुयानों द्वारा तेल के क्षेत्रों में पहुँचाये जाते हैं। फर्नीचर भी वायुयानों द्वारा भेजा गया है। उसे पैक करने की भी आवश्यकता नहीं होती। न्यूयार्क के एक बहुत बड़े होटल ने फरनीचर के १८०० टुकड़े शिकागो से वायुयान में मँगाये थे।

एक नाटक कम्पनी स्काटलैंड में शेक्सपीयर का नाटक 'ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम' खेल रही थी। दो दिन बाद वही नाटक न्यूयार्क में खेला जाना था। सेट बहुत विशाल थे। लेकिन कारीगरों ने वायुयान के दरवाजों के नाप के अनुसार ही उन्हें बनाया था। जब स्काटलैंड में प्रदर्शन हो चुका तो सेट ज्यों के त्यों वायुयान में चढ़ा दिये गये। न पैक करने की जरूरत पड़ी, न बाँधने की। दो दिन बाद नाटक न्यूयार्क में खेला जा रहा था।

अफ्रीका के घने प्रदेशों में जब फिल्म निर्माता जाते हैं, तो इस तरह का प्रबन्ध करते हैं कि उन्हें वायुयानों द्वारा कच्ची फिल्म रोज मिलती रहे और 'टेक' भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी दिन वापस भेज दिये जायें जिससे निर्देशक को तुरन्त मालूम हो जाये कि कौन से दृश्यों की पुनः शूटिंग करने की जरूरत होगी।

बहुमूल्य दवाइयां तो अब वायुयानों से ही भेजी जाती हैं। कहीं महामारी फैल जाये तो वायुयान तुरन्त दवाइयाँ और जरूरी सामान पहुँचाते हैं।

फिर भी सबसे अधिक आश्चर्यचकित करने वाला सामान तो जीव-जन्तु ही हैं। तीस वर्ष पहले किसी ने एक मुर्गी किसी को किसी दूसरे नगर में भेंट स्वरूप भेजी थी। वह वहाँ इतनी अच्छी दशा में पहुँची कि वायुयानों द्वारा मुर्गियों का निर्यात करने का व्यापार ही चल पड़ा। अन्य पशु, पक्षी और मछलियाँ भी पीछे न रहे।

मुर्गियों, चिड़ियों, मछलियों, कुत्तों, बिल्लियों, घोड़ों, ढोरों जैसे साधारण जीवों के अतिरिक्त कुछ अजीब प्रकार के पक्षी, चौपाये और रेंगने वाले जन्तु भी हवाई यात्रा करते हैं।

हवाईयात्रा करने वाली गाय भैंसें साधारण नहीं, बल्कि विशेष नस्ल की होती हैं। एक बार एक वायुयान में सांड़ों को भेजा गया तो चालक की हालत ही खराब हो गयी। जहाज चलाते चलाते जब भी वह पीछे मुड़कर देखता तो अंगारों जैसी जलती हुई १२ आंखें उसे अपनी ओर घूरती नजर आतीं। शुक्र तो यह था कि वे सांड चलते हुए वायुयान में मचल नहीं उठे। लेकिन वायुयान थोड़ी-थोड़ी देर बाद भूमि पर उतारना पड़ता था क्योंकि सांडों को चारा देने और पानी पिलाने की जरूरत होती थी और हर बार ऐसा करने के बाद वायुयान का फिर उड़ना कठिन होता था। इंजन ठीक था। ढोरों की संख्या उतनी ही थी। पर बात यह थी कि वे छह सांड हर बार अपने साथ भोजन का चार मन और अधिक भार ले जाते थे जो उनके पेट में समाया रहता था।

एक गाय ने उड़ते हुए वायुयान में ही एक बछड़े को जन्म दे दिया था। वह भूमि से पांच हजार फुट की ऊँचाई पर थी। छोटे पशुओं, खरगोश आदि के साथ तो यह बात आमतौर पर घटती रहती है।

हाथी, शेर आदि समुद्री यात्रा की अपेक्षा थोड़े समय की हवाई यात्रा अधिक पसन्द करते हैं। समुद्र से भेजने में उनके खाने-पीने का खर्च भी अधिक होता है।

इस वृहद यान के पेट में यह हेलीकाप्टर तक समा जायगा

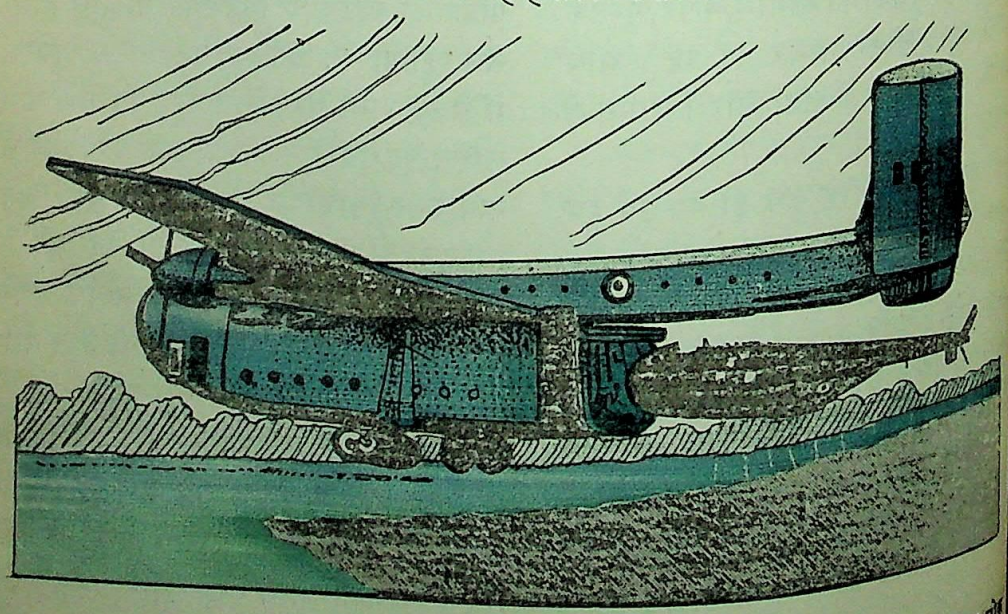

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्न-भिन्न प्रकार के जीव भिन्न-भिन्न समस्याएं पैदा करते हैं। एक बार एक वायुयान में तीन सौ बन्दर भेजे गये। वायुयान में जाने के बाद वे अपने पिंजरों से बाहर निकल आये और लगे ऊधम मचाने। उनकी देखभाल करने वाले जहाज के पिछले भाग में बैठे थे। वे घबरा उठे। सुरक्षित स्थान जहाज के अगले भाग में चालक के पास था लेकिन वहाँ तक पहुँच पाना भी आसान नहीं था। आखिर उन्हें स्वयं पिंजरों में घुस कर अपनी रक्षा करनी पड़ी। इसी तरह एक बार सांप भी वायुयान में खुल गये थे।

एक वायुयान में दो हजार चिड़ियाँ भेजी गयीं। रात तो वायुयान चालकों की चैन से कट गयी, लेकिन जैसे ही सुबह हुई सब चिड़ियों ने एक स्वर में समूह गान आरम्भ कर दिया। चालकों के कान के परदे फटने लगे। उस गगनभेदी शोर से वे पागल हो उठे। विवश होकर उन्हें जहाज नीचे उतारना पड़ा।

अत्यन्त शीत वाले प्रदेशों में सर्दी के मौसम में जब घास बर्फ के नीचे जम जाती है तो वहाँ पशुओं के लिए भूसा भी वायुयानों द्वारा भेजा जाता है।

युद्ध में सामान ढोने वाले वायुयान

सबसे अधिक आश्चर्यजनक कार्य वायु-सेनाओं के भारवाही यानों ने करके दिखाया है। ये यान ट्रक, ट्रैक्टर, तोपें, टैंक और यहाँ तक कि छोटे वायुयान और हेलीकॉप्टर भी लादकर ले गये हैं। द्वितीय महायुद्ध में वायुयानों ने ही बर्लिन को पूरी तरह से रूसियों के हाथों में जाने से बचाया था। इनके इस महान् कार्य को 'आपरेशन बर्लिन' या 'बर्लिन एयरलिफ्ट' कहते हैं।

उस समय बर्लिन एक ऐसे द्वीप के समान था जिसके चारों ओर का क्षेत्र रूसियों के आधिपत्य में था। केवल एक छोटी-सी गली ही बर्लिन को पश्चिमी क्षेत्र से मिलाती थी। उस गली में सिर्फ एक रेल और मोटर का रास्ता था। इसके अतिरिक्त तीन हवाई मार्ग थे जो बीस-बीस मील लम्बे थे। टैम्पलहाफ में हवाई अड्डा था।

रूसी मित्र वहाँ के निवासियों को खदेड़ कर बर्लिन पर लाल झण्डा फहराना चाहते थे। सबसे पहले उन्होंने भूमि का एकमात्र रास्ता जो उस गली से था बन्द कर दिया। बहाना यह था कि सड़कों और रेल की पटरी की मरम्मत की जाने वाली है। इस रास्ते का बन्द होना बर्लिनवासियों के लिए साक्षात् मृत्यु थी, क्योंकि इसी मार्ग से उन्हें खाद्यसामग्री तथा अन्य आवश्यकता की वस्तुएं पहुँचती थीं। एक ट्रक या कार भी उस रास्ते से अब नहीं गुजर सकती थी और उनकी मुक्ति का मार्ग केवल टैम्पलहाफ के हवाई अड्डे में नजर आता था। यदि उस रास्ते से खाना, ईंधन आदि आ सके तो! रूसियों को विश्वास था कि हवाई रास्ते से कोई भेज ही नहीं सकता! मित्र देशों के सेनापतियों ने यह भांप लिया कि बर्लिन में यदि आवश्यक सामग्री न पहुँचायी गयी तो वहाँ भुखमरी तो होगी ही, साथ ही रूसियों का हमेशा के लिए अधिकार हो जायेगा। बर्लिन की आबादी पचीस लाख थी और नौ हजार सैनिक भी वहाँ थे। वायुयानों से सामग्री पहुँचाकर ही उनकी जीवन रक्षा करनी थी।

तमाम यूरोप और अमरीका से पायलेट बुलाये गये। जहाँ-जहाँ से वायुयान उपलब्ध हो सके प्राप्त किये गये—चाहे छोटे, चाहे बड़े। प्रत्येक वायुयान हर समय ड्यूटी पर रहता था। इस सेवा को जनरल लीमे की 'कोल एण्ड फीड रन' का नाम दिया गया।

फिर भी वायुयान बहुत कम थे और पायलेटों की भी कमी थी। एक पायलेट बत्तीस घंटे में सिर्फ चार घण्टे की नींद ले पाता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरे सप्ताह में पायलेट इतने थक चुके थे कि कभी-कभी वायुयान चलाते-चलाते वे ऊघने लग जाते।

पांचवें सप्ताह में पायलेटों की पिचहत्तर टोलियां बन गयी थीं। पहले ९८ दिनों में सवा दो लाख टन सामान बर्लिन में पहुँचा दिया गया था। १८ सितम्बर रिकार्ड दिवस था। उस दिन मौसम बहुत खराब था, फिर भी ६५२ उड़ानों में वायुयानों ने ५५८३ टन सामान बर्लिन में उतार दिया था।

उड़ानें लगातार हो रही थीं। कोई वायुयान खाली नहीं खड़ा रहता था। हवाई अड्डे पर चालकों की भीड़ लगी रहती थी। जैसे ही वायुयान अड्डे पर उतरता उसमें से सामान उतारा जाता, चालक वायुयान के पंखों की छाया में आराम करते, काफी और सिगरेट पीते। एक मिनट की भी देर न हो, इसलिए उन्हें अड्डे से बाहर जाने की आज्ञा नहीं थी। तीन-तीन मिनट में टेम्पलहाफ के हवाई अड्डे पर वायुयान उतरता था और यह क्रम दिन-रात चलता था।

आटा, सूखे आलू अन्य अनाज, सूखे मेवे, दूध का पाउडर, कोयला आदि ही इन वायुयानों से पहुँचाया गया था। इस तरह बर्लिन-वासियों को भूखे मरने से बचाया गया। वहाँ ईंधन के लिए बहुत से पेड़ काट डाले गये थे। लेकिन फिर भी पूरे नगर के लिए ईंधन उपलब्ध न हो सका था। तभी वायुयानों में कोयला भेजने का निश्चय किया गया।

बमवर्षक यंत्र इस लड़ाकू-यान में लादा जा रहा है

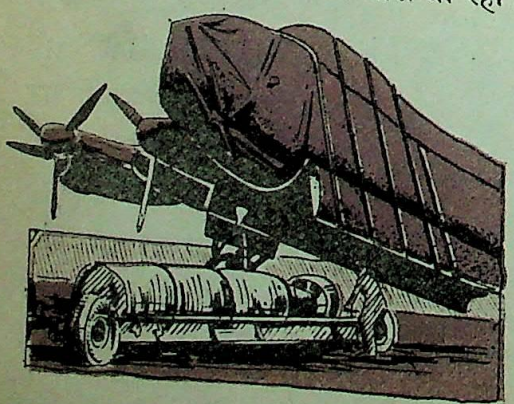

रूसियों ने यह देखा तो स्तब्ध रह गये। अब उन्हें सड़क और रेलमार्ग बन्द रखने सिवा अपनी जिद और मूर्खता के कुछ न लगा। इसलिए उन्होंने घोषित कर दिया कि रेल की पटरी, सड़क और पुलों की मरम्मत हो चुकी है। यह था 'बर्लिन एयरलिफ्ट' का प्रभाव।

द्वितीय महायुद्ध में अफ्रीका, बर्मा, आदि में जो सेनाएं भटक जाती थीं, उन्हें जीवन सामग्री वायुयानों द्वारा ही भेजी जाती थीं। बर्मा में जनरल स्टिलवेल के जवानों के लिए लाखों टन सामग्री-खाद्य पदार्थ और अस्त्रशस्त्र हिमालय की श्रेणियों के ऊपर से वायुयानों में भेजी गयी थी। कोरिया के युद्ध में भी वायुयानों ने सामान ढोने में कमाल कर दिखाया था। लड़ाई अचानक छिड़ गयी थी और संभव था कि रूसी दक्षिणी कोरिया पर अधिकार कर लेते। पर अमरीका ने तुरन्त वायुयानों में सेना, शस्त्र और अन्य आवश्यक सामग्री पहुँचाकर रूसियों को आगे बढ़ने से रोक दिया। अगर ९००० मील की दूरी से समुद्री मार्ग से सेना और सामान भेजा जाता तो ईश्वर जाने दक्षिण कोरिया पर क्या बीतती।

इन आड़े वक्तों में सामान ढोने का काम बहुत सीमा तक यांत्रिक यानों से भी लिया गया। इन यानों में बैठने की सीटें हटा दी जाती थीं। पर अब तो विशेष रूप से सामान ढोने वाले वायुयान ही बना लिये गये हैं। इनका नमूना इस तरह तैयार किया जाता है कि कम से कम खर्च में अधिक सामान ले जाया जा सके। शक्तिशाली जेट इंजन इनमें लगाये जाते हैं। इनकी गति भी ज्यादा होती है। हो सकता है कि किसी दिन हम ऐसा भारवाही वायुयान देखें जो रेलगाड़ी के समान ही भार उठाकर ले जा सके और वह दिन भी दूर नहीं जब वायुयानों द्वारा भी सामान भेजना उतना सरल हो जितना कि अब रेलगाड़ी द्वारा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. सेम्युअल हेनिमैन

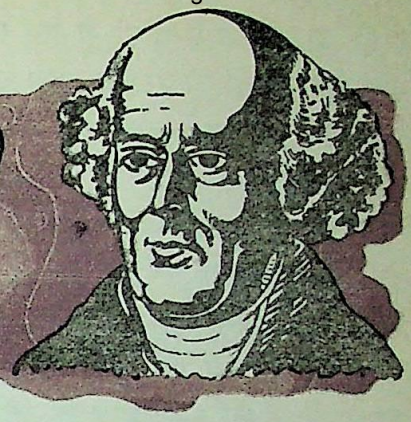

डा. हर्ष प्रियदर्शी

अठारहवीं शताब्दी यूरोप के विज्ञान और दर्शन के क्षेत्र की एक महत्त्वपूर्ण शताब्दी रही है। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध में यूरोप ने ऐसी दो महान् प्रतिभाओं को जन्म दिया; जिनके विचारों ने ओषधि-विज्ञान एवं मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। ये प्रतिभाएँ थीं, चिकित्सक डा. सेम्युअल हेनिमैन और यौन-मनोवैज्ञानिक सिग्मंड फ्रायड।

डा. सेम्युअल हेनिमैन उन महान् स्नातकों में थे, जिन्होंने ओषधि-विज्ञान और चिकित्सा दर्शन में एक नये अध्याय का सूत्रपात किया था। हेनिमैन संभवतः प्रथम चिकित्सक थे, जिन्होंने जीवन-रोग और मृत्यु की पहेली को 'जीवनी-शक्ति' सिद्धान्त के आधार पर सुलझाने की चेष्टा की थी। इस महान् प्रतिभा का जीवन, विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए एक आदर्श बन गया था। इस लेख में उनके जीवन का भी परिचय कराया जायेगा, लेकिन इसके पूर्व यदि हम उनके 'जीवनी-शक्ति-सिद्धान्त' से परिचित हो लें तो उनके संघर्षमय जीवन को आत्मसात् करने में हमें सरलता होगी।

डा. सेम्युअल हेनिमैन ने अपनी 'ओषधि-दर्शन' नामक पुस्तक के नवें सूत्र में 'जीवनी शक्ति' की परिभाषा निम्न शब्दों में दी है—

'स्वस्थ मनुष्य के पार्थिव शरीर में, आत्मिक जीवनी-शक्ति विद्यमान होती है। यह शक्ति शरीर की सम्पूर्ण मानसिक एवं भौतिक क्रियाओं को एकलयता में रखती है और यही वह शक्ति है जो हमारे तार्किक मस्तिष्क को उच्चतम जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान करती है तथा मनुष्य जीवन के उच्चतम ध्येयों का निर्देशन करती है।' दसवें सूत्र में पुनः महत्ता पर प्रकाश डालते हुए डा. सेम्युअल हेनिमैन कहते हैं, 'इस जीवनी-शक्ति के अभाव में मनुष्य का यह भौतिक शरीर निर्जीव हो जाता है और इस निर्जीव अवस्था में चेतना, क्रिया और आत्मरक्षा के गुण समाप्त हो जाते हैं। यह जीवनी शक्ति स्वस्थ मनुष्य में एक विशिष्ट लय में निरन्तर बहती रहती है और जब कभी किन्हीं कारणों से जीवनी-शक्ति का यह निरन्तर गतिशील रहने वाला प्रवाह प्रभावित होता है, तो मनुष्य रोगी हो जाता है। रोग की इस अवस्था में सर्वप्रथम उसका मस्तिष्क प्रभावित होता है, जिससे सम्पूर्ण शरीर प्रभावित हो जाता है। तदुपरान्त यह प्रभावित शरीर रोग के लक्षणों को उत्पन्न करता है। इन लक्षणों की सहायता से चिकित्सक रोगी को आरोग्य प्रदान करता है।'

डा. सेम्युअल हेनिमैन के इस सिद्धान्त को आज के इस बीसवीं शताब्दी के विश्वविख्यात आधुनिकतम चिकित्सक डा. विलियम बॉयड, जो ब्रिटिश कोलम्बिया विश्वविद्यालय, के पैथोलॉजी-विभाग के अध्यक्ष हैं, ने भी मान्यता प्रदान की है.। अपनी बहुचर्चित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पैथोलॉजी की पाठ्य पुस्तक के प्रथम अध्याय में ही डा. विलियम बॉयड ने यह स्वीकार किया है कि रोगों की उत्पत्ति प्रथम मस्तिष्क में तदुपरान्त शरीर में होती है।

रोग-आरोग्य के लिए डा. सेम्युअल हेनिमैन ने ऐसी ओषधियों का निर्माण किया जो अपने गुणों और धर्मों में उस रोगावस्था के समान गुणों तथा धर्मों वाली ही होती थी। ओषधियों के गुण एवं धर्म जानने के लिए तमाम ओषधियों का प्रभाव डा. हेनिमैन ने स्वतः अपने पर तथा दूसरे स्वस्थजनों पर किया था। डा. सेम्युअल हेनिमैन ने अपनी इस चिकित्सा प्रणाली को 'होम्योपैथी' नाम दिया।

जर्मनी के एक छोटे से नगर मेसन में एक निर्धन जर्मन कलाकार के घर १० अप्रैल १७५५ को एक प्रतिभाशाली शिशु का जन्म हुआ। कलाकार पिता ने अपने पुत्र का नाम फ्रेडरिक सेम्युअल हेनिमैन रखा। फ्रेडरिक की प्रारम्भिक शिक्षा मेसन नगर के ही दो गैर सरकारी स्कूलों में हुई। शैशवावस्था में ही फ्रेडरिक ने अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय देना आरम्भ कर दिया था; यहाँ तक कि बारह वर्ष की अल्पायु ही में उसने अपने सहपाठियों को ग्रीक भाषा की प्रारम्भिक शिक्षा देना शुरू कर दिया था। बीस वर्ष की आयु तक फ्रेडरिक की शिक्षा-दीक्षा इसी नगर में होती रही। प्रारम्भिक शिक्षा के इस दौरान युवक हेनिमैन का झुकाव ओषधि-विज्ञान और रोग-रहस्य की ओर पूर्णतया हो गया था। फ्रेडरिक की ज्ञान पिपासा शनैः-शनैः तीव्रतर होती गयी और एक दिन अपनी इस जिज्ञासा-प्रवृत्ति से विवश हो हेनिमैन ने अपना नगर, अपना घर-बार सब कुछ त्याग कर चिकित्सा प्रणाली की उच्चतम शिक्षा के लिए लिपिजिक नगर को प्रस्थान कर दिया। लिपिजिक नगर को जाने के समय युवक फ्रेडरिक के पास अपने निर्धन पिता की दी हुई कुल २० थेलर की धनराशि थी और पराये नगर में परिचय प्राप्ति के साधन के रूप में उसके पास अपने नगर के प्रख्यात चिकित्सक हार्नर ग्रेय फर्नर का पत्र था। विरासत में मिली अपनी संघर्ष प्रवृत्ति को लेकर फ्रेडरिक ज्ञान की खोज में जूझ पड़ा।

ऐसे संघर्षशील वातावरण में हेनिमैन ने लिपिजिक नगर के महान् चिकित्साशास्त्रियों से शिक्षा प्राप्त करना प्रारम्भ किया। आरम्भ में धनाभाव उस पर अभिशाप-सा छाने लगा लेकिन वह अपनी जिज्ञासाओं को न रोक सका। धनाभाव से जूझने के लिए उसे अनुवाद कार्य का भी सहारा लेना पड़ा। शीघ्र ही हेनिमैन को दो-तीन भाषाओं पर अधिकार हो गया। उसने तत्कालीन चिकित्सा-प्रणाली ऐलोपैथी का भी विशद् ज्ञान प्राप्त किया लेकिन यह सीमित ज्ञान फ्रेडरिक को संतुष्ट न कर सका। तब पुनः उसने चिकित्सा-शास्त्र के व्यावहारिक ज्ञान के लिए वियेना प्रस्थान किया। वहाँ नौ महीने रहकर उसने विभिन्न अस्पतालों में प्रायोगिक चिकित्सा की शिक्षा ग्रहण की। वहाँ से वे लिंयोपोल्ड शहर के ब्राथस दातव्य अस्पताल में जनसेवा के लिए चले आये। उस अस्पताल के प्रधान चिकित्सक, सर्जन डा. वान कोयरिन हेनिमैन की प्रतिभा एवं परिश्रम से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होने इन्हें 'चिकित्सक' की उपाधि से विभूषित किया।

हेनिमैन की कीर्ति शनैः-शनैः बढ़ने लगी और बढ़ते-बढ़ते पैनसिलवेनिया के गवर्नर तक पहुँची। पैनसिलवेनिया के राज्य पुस्तकालय को उसी समय एक सुयोग्य अध्यक्ष की भी आवश्यकता थी। अतः हेनिमैन ने पैनसिलवेनिया के गवर्नर के विशेष आग्रह पर, उक्त पद सम्हाल लिया। यहाँ रहकर हेनिमैन ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रीक, लैटिन, फ्रैंच, इटालियन, हिब्रू, अरबी, फारसी, स्पैनिश, सीरियन आदि भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। थोड़े दिनों के उपरान्त इस पद से भी अवकाश ग्रहण करके डा. हेनिमैन ने ओषधि-विज्ञान की एम. डी. उपाधि के लिए अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। सन् १७७९ में एनलाजन से आपने सम्मान सहित एम. डी. की डिग्री प्राप्त की। एम. डी. हो जाने पर हेनिमैन ने स्वतंत्र रूप से प्रेक्टिस शुरू की। १७८२ ई. में गोमर्न के सरकारी चिकित्सक के पद पर अधिष्ठित हुए। अध्ययन का वही क्रम फिर भी चलता ही रहा। इसी दौरान आपने रसायनशास्त्र, खनिजशास्त्र आदि का यथा-विधि अध्ययन किया और रसायनशास्त्र की कई पुस्तकों का अनुवाद भी किया, जिनकी तत्कालीन विद्वानों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की। गोमर्न के सरकारी चिकित्सक-पद पर कार्य करते हुए आपने अपनी चिकित्सा सम्बन्धी प्रथम मौलिक पुस्तक का प्रकाशन कराया। 'कंठमालीय घाव और उनकी चिकित्सा' नामक उस पुस्तक के प्रकाशित होते ही तत्कालीन ऐलोपैथिक चिकित्सा-समाज भली-भाँति समझ गया कि डा. सेम्युअल हेनिमैन, उस समय की एलोपैथी चिकित्सा प्रणाली से मात्र असंतुष्ट ही नहीं वरन् ऐसी नयी चिकित्साप्रणाली की खोज में भी हैं जिससे सही अर्थ में पीड़ित मानवता का कल्याण हो सके।

अतः अपने उस चिकित्सक पद को त्याग कर एक नयी खोज के लिए हेनिमैन ने पुनः जूझना शुरू किया, लेकिन तुरन्त ही धनाभाव उन्हें फिर से चिन्तित करने लगा। अतः उन्होंने अनुवाद कार्य के साथ ही, रसायन-शास्त्र पर पुनः कार्य करना आरम्भ कर दिया। सन् १७८७ से १७८९ ई. तक के अल्प समय में हेनिमैन ने रसायन शास्त्र में कई मौलिक अन्वेषण किये। आपकी पहली खोज विनेगार (vinegar) थी, जो अंगूरों से तैयार की गयी विशुद्ध शराब थी; वह एलकोहल तथा सुरासार का दूषित मिश्रण नहीं था। इन आविष्कारों में आपकी सबसे बड़ी सफलता थी—पोटासियम से सोडा तैयार करने की विधि; तथा पारा भस्म करने एवं गुणसंयुक्त करने की विधि। इन रासायनिक सफलताओं के बावजूद भी हेनिमैन का मन वहाँ भी न रम सका और उन्होंने चिकित्सा सम्बन्धी साहित्य का अनुवाद कार्य शुरू किया।

सन् १७९० में क्युलेन के प्रसिद्ध ग्रन्थ की मेटेरिया मेडिका (वह पुस्तक जिसमें ओषधियों के गुण एवं प्रयोग संग्रहीत हैं) का अनुवाद करते समय आपने समचिकित्सा विज्ञान और होम्योपैथी का आविष्कार किया। हुआ ऐसा कि जब हेनिमैन क्विनाइन नामक ओषधि के प्रकरण का अनुवाद कर रहे थे तभी उनके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि क्विनाइन रोग के जिन लक्षणों को ठीक करती है, क्या वही लक्षण यह स्वस्थ मनुष्य में भी उत्पन्न कर सकती है? अतः एक दिन परीक्षार्थ उन्होंने लगभग ४ ड्राम क्विनाइन स्वयं ही खा ली परिणाम ठीक वही हुआ, जिसकी कि हेनिमैन ने कल्पना की थी। क्विनाइन के सारे रोग-गुण उनमें उत्पन्न हो गये। फिर क्या था? आपको अपने सिद्धान्त की सत्यता प्राप्त हो गयी! तब तो एक के बाद एक अनेक ओषधियों का प्रयोग और परिणाम हेनिमैन ने स्वयं को पात्र बनाकर संकलित करना शुरू किया। हेनिमैन ने अपने ओषधि-प्रयोगों के परिणाम सन् १८११ में 'मेटेरिया मेडिका प्योरा' नाम से प्रकाशित कराये जिसके प्रकाशन ने चिकित्साजगत में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया।

सन् १८४३ ई. में चिकित्सा-जगत का यह ज्वलंत महान् नक्षत्र सदा के लिए लुप्त हो गया। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH
WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- Ehe series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : Re. 0·80
Book II.....Price : Re. 1·00
Book III.....Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to :

Sri Ram Mehra & Co.
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-क्लब

प्यारे बच्चो !

इस बार अंक पर अपनी सम्मति लिखने के साथ-साथ तुम्हें एक नये और भिन्न ही प्रस्ताव पर अपना मत अवश्य देना है। प्रस्ताव की रूपरेखा निम्न प्रकार है :

अनेक सदस्यों ने यह अनुभव किया है कि विगत पाँच वर्षों से निरन्तर चली आ रही क्लब की प्रश्न-प्रतियोगिता को कुछ नया रूप दिया जाये—सम्भवत: इसे बदल भी दिया जाए। उन प्रस्तावकों का मत है कि प्रश्न-प्रतियोगिताओं के पुरस्कार प्रत्येक बार घूम-फिर कर केवल कुछेक ही निश्चित नामों में बंध कर रह जाते हैं। इसके स्थान पर उन्होंने चाहा है कि **तुम्हारी कलम से** स्तम्भ को निबन्ध-प्रतियोगिता का रूप दे दिया जाये; जिसमें चुनाव के लिए २-३ विषय दिये गये हों और निबन्धों में से प्रथम तीन को पुरस्कृत किया जाए तथा यथासुविधा उसमें से प्रथम, द्वितीय करके एक बार में एक या दो निबन्ध प्रकाशित भी किये जाएँ। इससे सम्भव है, प्रत्येक बार नयी ही प्रतिभाएँ सामने आती रहेंगी और पुरस्कार कुछेक ही नामों में सीमित रह जाने की शिकायत भी दूर हो जायगी।

प्रस्ताव का आशय सात्विक है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रश्न-प्रतियोगिता की पुरानी लीक का टूटना स्वयं एक नयापन होगा और छोटे-छोटे, सारगर्भित तथा विज्ञान के नये विषयों पर लिखने की प्रेरणा तुम्हें मिलती रहेगी।

यह अवश्य है कि इस परिवर्तन के लिए तुम्हारा बहुमत आना आवश्यक है। अत: इस पर विचार-विमर्श और तर्क तथा युक्तियाँ प्रस्तुत करने की तुम्हें पूरी स्वतंत्रता है। लिखना अवश्य।

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ५४ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

कृष्णसिंह पुण्डीर (१२८६) नगलापिथौरा, अक्षयकुमार इन्द्रायण (५०६१) मेरठ, नरपति लूथरा (१०७८८) नयी दिल्ली, सतीशकुमार ठस्सू (११७१३) भोपाल।

द्वितीय पुरस्कार

गजेन्द्रपालसिंह (१६०५) मेरठ, जागेश्वरप्रसाद सोनी (५३०७) जबलपुर, सुरेशकुमार गुप्ता (७१६०) अमृतसर, नरेशकुमार मजीठिया (७५५६) अमृतसर, रणजय सेन (८३५७) गुरुकुल काँगड़ी, सीताराम सोनी (८७७८) जबलपुर, प्रफुल्ल राय (६०६८) बरेली, हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१) कानपुर, सुरिन्दरसिंह (१०८२२) शिमला, राजेन्द्रप्रसाद अग्रवाल (१२६०१) कटनी।

तृतीय पुरस्कार

शैलेन्द्रनाथ पाराशर (४७१८) आगरा, आर. ए. वेंकटरमन (५८०६) जमशेदपुर, अमूल्यचरण (६०४६) गोरखपुर, ओमप्रकाश पाटनी (६४२७) कलकत्ता, अनिलकुमार (७५६७) लखनऊ, शरदकुमार वर्मा (७७५६) झाँसी, प्रवीणचन्द्र एस. शाह (६७६०) गोंदिया, राजेन्द्रप्रसाद वर्मा (११६७०) कुल्टी, राकेश शर्मा (१२१७१) गोरखपुर, परमजीतसिंह (१३०२६) झाँसी।

कूपन प्रतियोगिता संख्या ५६

नाम.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मदनमोहन
(स. सं. ७४७१)

विष्णुप्रकाश
(स. सं. ७७२२)

जियाउद्दीन सिद्दीकी
(स. सं. ७९७०)

अजयकुमार
(स. सं. ८०७७)

इन्द्रराज हाण्डा
(स. सं. ८४८७)

भुवनेश्वरनाथ
(स. सं. ८५६५)

मगनलाल जैन
(स. सं. ८९८४)

श्यामकिशोर
(स. सं. ९९८९)

९०५४ सत्यनारायणप्रसाद (१७) सदाकत आश्रम, ५५ राजेन्द्र (१५) जोधपुर, ५६ गोपाल कृष्ण (१७) पूना, ५७ मोहनसिंह (२२) करनाल, ५८ रामदयाल (१४) शाहजहानाबाद, ५९ मदनलाल (१४) बख्तर, ६० ब्रजनन्दनप्रसाद (१६) ताजनीपुर, ६१ कुमार रणजीत (१२) एकगर सराय, ६२ कु. सुधा कुमारी (१०) एकगर सराय, ६३ शान्ति कुमारी (१२) एकगर सराय, ६४ सुरेश (१५) जोधपुर, ६५ भेषजप्रसाद (१५) खैरा, ६६ राजेन्द्र बिहारी (१४) फैजाबाद, ६७ निर्मलकुमार (१३) कोतमा, ६८ हशीमूर्ति देव (२०) लहेरिया सराय, ६९ विजयपाल (१७) सलेमपुर, ७० परमात्माशरण (१६) आगरा, ७१ अशोककुमार (१५) लखनऊ, ७२ राजेन्द्रप्रसाद (१४) रतनपुर, ७३ विनायकराय (१८) हरपुर, ७४ बगलाचरण (१७) लोहारदागा, ७५ विभूति भूषण (१४) लोहारदागा, ७६ सुधीर (१७) लुधियाना, ७७ विमलकुमार (१४) जयपुर, ७८ कुंवर अजयप्रताप (१७) इलाहाबाद, ७९ खुशीलाल (१२) इटारसी, ८० रवीन्द्रकुमार (१०) बाजपट्टी, ८१ सुरेशकुमार (१४) मुरैना, ८२ विजेन्द्रकुमार (१४) इलाहाबाद, ८३ सत्येन्द्रकुमार (१७) आगरा, ८४ सुभाषचन्द्र (१४) आगरा, ८५ जवाहरलाल (१६) भिवानी, ८६ चन्द्रप्रकाश (१४) नरसिंहपुर, ८७ महेन्द्रकुमार (१४) टीकमगढ़, ८८ कृष्ण मुरारीलाल (१९) विरौरा, ८९ महेशप्रसाद (१२) शहपुरा, ९० नरेन्द्रसिंह (१३) देवलीखेत, ९१ कु. ज्योति (८) किशनगंज, ९२ कु. विजया (१२) किशनगंज, ९३ अरुणकुमार (१५) सागर, ९४ इन्द्रदेव (१६) विलांसपुर, ९५ अखिलकुमार (१४) सागर, ९६ कमलेशकुमार (१६) दुमका, ९७ अनिल (११) बरेली कैन्ट, ९८ प्रफुल्लराय (१५) बरेली, ९९ राजीवकुमार (१२) आगरा, ९१०० पवनकुमार (१६) सरसावा, १ एम० मूलचन्द (२०) मारवाड़, २ बाबूलाल (१४) भाभर, ३ अनिलकुमार (१३) रांची ४ अमरकान्त (१२) रांची, ५ ज्योतिप्रसाद (८) रांची, ६ गोरखनाथ (१८) किशनगंज, ७ प्रेमप्रकाश (११) पडरौना, ८ कु. श्यामादेवी (१२) मिर्जापुर, ९ जमनालाल (१८) औरंगाबाद, १० निर्मलकुमार (१६) सीतामढ़ी, ११ उमाशंकर (१५) सीतामढ़ी, १२ गोपीकृष्ण (१७) पिपरिया, १३ प्रेमचन्द्र (१८) मानदेफिया, १४ सतीश (१४) मिर्जापुर, १५ अजपालिया (१७) भावनगर, १६ मधुरेन्द्र नारायण (९) नौबतपुर, १७ योगेन्द्रकुमार (१६) बड़ौदा, १८ घनश्यामदास (१४) हिंगनघाट, १९ गोपालदास (१४) हिंगनघाट, २० शैलेन्द्रकुमार (१०) इलाहाबाद, २१ शांतिप्रकाश (१५) देवली, २२ सीताराम (१२) फुलेरा, २३ महावीरसिंह (१५) मासों, २४ लालताप्रसाद (१२) नागदा, २५ जयप्रकाश नारायण (१६) मुरार, २६ विजयप्रकाश (१४) मुरार, २७ रामकुमार (१०) मुरार, २८ रमेशकुमार (१२) मुरार, २९ एस० एन० शुक्ला (१८) बीकानेर, ३० सुशीलकुमार (१७) धरहरा, ३१ शरदचन्द्र (१५) औराई, ३२ ग्रीशचन्द्र (१६) अतरौली, ३३ दिनेशकुमार (१८) इटारसी, ३४ रामसुन्दर (१८) जबलपुर, ३५ आनन्दकुमार (१६) नागपुर, ३६ राकेश (१२) बिजनौर, ३७ अरुणकुमार (१३) बिजनौर, ३८ सूरजमल (२२) शिरूर, ३९ रणविजयसिंह (१४) पटना, ४० महेशचन्द (१६) मुजफ्फरनगर, ४१ बसन्तकुमार (१९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिरीडीह, ४२ विमल (१७) सरदार शहर, ४३ रमाशंकर (१४) शिवपुर, ४४ दिनेशचन्द्र (१५) दतियाना, ४५ रामशरण (१९) हलधरपुर, ४६ केदारनाथ (१९) बलिया, ४७ मोहनलाल (१६) गुलाबपुरा, ४८ श्यामानन्द (१७) रांची, ४९ प्रभातकुमार (११) पटना, ५० मुरारीलाल (१५) भागलपुर, ५१ रामयज्ञ (१४) शिवदयालगंज, ५२ अनिलकुमार (१६) इन्दौर, ५३ अशोक (१३) दिल्ली, ५४ इम्तियाज अहमद (१८) वाराणसी, ५५ सीताराम (१६) ललितपुर, ५६ पुण्डलीक (१८) बरूड, ५७ सतीशचन्द्र (१६) लखनऊ, ५८ रामधनी (१३) शिवपुर, ५९ कृपाशंकर (१५) बक्सर, ६० मदन गजाधर (११) बिलासपुर, ६१ क्षितेशवर (१८) छाता, ६२ श्रीनाथ (१५) बहराइच, ६३ अशोककुमार (१३) झांसी, ६४ हरिश्चन्द्र (१७) आनन्दपुर, ६५ दयानन्द (१६) बेतिया, ६६ शशिभूषण (१८) दौलतपुर, ६७ रामेश्वरनाथ (१८) चौरा, ६८ गुलजारीलाल (१५) बम्बई, ६९ दुर्गाप्रसाद (१५) सुपौल, ७० शकुन्तला कुमारी (७) ब्यावर, ७१ दविन्दर (१५) जमशेदपुर, ७२ शशिभूषण कुमार (१४) औरिभावां, ७३ भरतकुमार (१५) बड़ौदा, ७४ गोविन्द (२६) जीराराडे, ७५ ओमसत्यप्रकाश (१३) पटना, ७६ अमिताव (१४) दिल्ली, ७७ कल्यानकुमारदास (१५) दिल्ली, ७८ शशिकुमार (२३) इन्दौर, ७९ उदयकुमार (१९) इन्दौर, ८० रमेशकुमार (१५) इन्दौर, ८१ जयन्तकुमार (१०) इन्दौर, ८२ श्रीकृष्ण (१६) बारमेर, ८३ अनिलकुमार (१५) अलीगढ़, ८४ कौशलकुमार (१५) सहजनवां, ८५ अमरकान्त (१४) भाटापारा, ८६ सुभाषचन्द्र (१२) लखमिनियां, ८७ मलयकिशोर (१३) लोहरदगा, ८८ जयसिंह (१५) रतलाम, ८९ बूधन (१७) बिरौल, ९० देशराज (१५) दुर्ग, ९१ अब्दुल रशीद (१४) इलाहाबाद, ९२ श्यामसुन्दर (१५) सहर्षा, ९३ नवकिशोर (१४) खूँटी, ९४ सत्यनारायण (१६) जबलपुर, ९५ ओमप्रकाश (१८) जमनाखास, ९६ आदित्यनारायण (१२) विलासपुर, ९७ जवाहरलाल (१२) विलासपुर ९८ नवलकिशोर (१०) सबौर, ९९ सुरेशचन्द्र (१३) हालोद, ९२०० सुधीरकुमार (११) देवरी, १ प्रेमप्रकाश (११) आगरा, २ अरविन्दकुमार (१६) चांदपुरा, ३ कान्ताराम (२०) अतरैठ, ४ विजयकुमार (८) नई दिल्ली, ५ केशवकुमार (१३) अलीगढ़, ६ ओमप्रकाश (१५) इटारसी, ७ गोपालकृष्ण, (१६) पूना, ८ आदित्यप्रकाश (१०) पटना, ९ वेदप्रकाश (१२) रतनगढ़, १० अरविन्दकुमार (१२) अस्थावा ११ रामलखन (१७) कोटमी, १२ कल्याणदास (१६) जबलपुर, १३ रमेशचन्द्र (१७) वाराणसी, १४ गिरीशकुमार (१६) अल्मोड़ा, १५ रमेशकुमार (१६) मेरठ, १६ अम्बरीश्वरशरन (१६) आगरा, १७ सुरेन्द्रकुमार (११) रायबरेली, १८ राजेन्द्रकुमार (१३) रायबरेली, १९ अरुणकुमार (१३) लुधियाना, २० दौलतसिंह (१३) बस्तर, २१ किरणकुमार (११) कांकेर, २२ कुमारी रेखा (१६) बागबाहर, २३ गुरुदेवसिंह (१७) इटारसी, २४ रामगोपाल (१५) रतनगढ़, २५ दीपककुमार (१०) झांसी, २६ श्रीकान्त (१०) भाटापारा, २७ कु. नीरा (१६) बाराबंकी, २८ रामलखनसिंह (१५) बिहटा, २९ प्रवीणचन्द्र (१६) महेलोल, ३० रनजीत (१५) लखनऊ, ३१ महेशकुमार (१६) गया, ३२ वीरपाल (१७) दाहा, ३३ सौम्येन्द्रकुमार (१३) फलना, ३४ राजेशकृष्णा (११) वाराणसी, ३५ सुशीलकुमार (१९) हमायूँपुर, ३६ अनूपचन्द (१७) धमतरी।

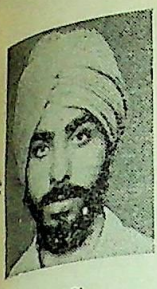

सोहनसिंह
(स.सं. १०५९८)

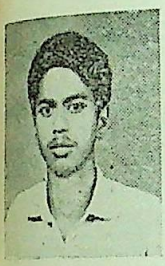

वासुदेवप्रसाद
(स.सं. १०६९०)

डी.एच. परियानी
(स.सं. १०९७५)

दीनदयाल शर्मा
(स. सं. १०९०)

उपेन्द्रनाथ
(स.सं. १११ज७)

चन्द्रमोहन
(स.सं. ११७३५)

प्रताप भण्डारी
(स.सं. ११७५६)

अब्दुल अजीज खान
(स.सं. १३०१२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

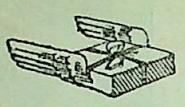

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : १५ अक्टूबर

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५३ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्दकर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५६ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर १५ अक्टूबर तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५६ के प्रश्न

१. सीमेन्टरहित कन्क्रीट में मुख्यतः क्या-क्या मिलाया जाता है? इस सीमेन्ट की कम से कम तीन विशेषताएँ लिखिए।

२. ट्रोम्बे एटमिक एनर्जी का भारतीय उपनाम क्या है और इसकी स्थापना कब की गयी?

३. एक-एक क्वार्ट अर्थात् चौथाई गैलन की दो बोतलों में पानी और दो बोतलों में अल्कोहल भरा है। चारों बोतलों को आपस में मिला दिया जाये तो मिश्रण का माप कितना होगा?

४. पृथ्वी की धुरी किस पदार्थ की बनी है और किस पर टिकी हुई है?

५. हमारे हृदय को पोषण और आक्सीजन प्राप्त करने के लिए कहाँ से प्राप्त रक्त पर निर्भर रहना पड़ता है?

६. २ और २ के अतिरिक्त दो संख्याएं, चाहे परस्पर भिन्न हों, ऐसी बताइए जिनके गुणनफल और योगफल एक समान हों।

७. एक्स-किरणों से छोटी तरंग-दैर्ध्य की, किन्तु अधिक तीव्रभेदी, रेडियोसक्रिय किरणें कौनसी हैं जो विशेषतः केन्सर-चिकित्सा में सहायक हैं?

८. K विटामिन की पूर्ति किस आहार से की जा सकती है।

९. तारपीन का तेल किस प्रकार की वनस्पति से प्राप्त होता है और यह तेल अधिकतर कहाँ उत्पादित होता है?

१०. कार्बोलिक नामक तीव्र कीटाणुनाशक पदार्थ सर्वप्रथम किसने, किस पदार्थ से प्राप्त किया?

प्रतियोगिता संख्या ५४ के प्रश्नों के उत्तर

१. अधिक दाब, भार और घिसाई सहने के लिए।

२. ११२ पौण्ड से १२६ पौण्ड के मध्य।

३. मीठे स्वाद की।

४. एनीमोमीटर (anemometer)।

५. हाइड्रोजन और मीथेन।

६. पप्पू–१२, टप्पू–१५, बब्बू–९।

७. ३०,००० °F तक।

८. एर्फवेडसन ने, १८१७ में।

९. प्लैनेटेरियम खड़ा करके।

१०. पेरिस के एलेक्जेण्डर डेबिन ने १९वीं शताब्दी में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपके प्रश्न

गोवर्धनलाल तिवारी (८६३७) उज्जैन

प्रश्न—यदि हम खाये हुए भोजन से उत्पन्न उर्जा का उपयोग न करें तो वह नष्ट हो जाएगी क्या ?

उत्तर—उसका उपयोग तो आपके चाहे-अनचाहे इस रूप में हो ही जाता है कि शरीरवृद्धि में वह काम आ जाती है। हाँ, अत्यधिक परिश्रम द्वारा हम उसका अधिक व्यय भी कर लेते हैं।

उमेशप्रतापसिंह (६०५०) देवरिया

प्रश्न—यदि ग्रामोफोन में ध्वनि-नलिका या हार्न न लगायें तो कुछ सुनाई पड़ेगा क्या ?

उत्तर—क्यों नहीं ? नलिका या हार्न का काम तो ध्वनि-उत्पादन का नहीं। ध्वनि माइक में उत्पन्न होती है और नलिका तथा हार्न का काम केवल उसकी आवृत्ति अर्थात् तीव्रता बढ़ाना है।

उदगीथराव (९७५५) मद्रास

प्रश्न—क्या कारण है कि किसी वस्तु का वजन ध्रुवों की अपेक्षा भूमध्यरेखा पर कम रहता है ?

उत्तर—भूमध्यरेखा की दूरी भू-केन्द्र से ध्रुवों की अपेक्षा कहीं अधिक होने के कारण।

निरंजनप्रकाश माथुर (३६१६) पुष्कर

प्रश्न—लेविसाइट (Lewisite) क्या है ? इसका प्रथम प्रयोग कब किया गया ?

उत्तर—इसका रासायनिक नाम अच्छा खासा लम्बा है—Chlorovinyldichloroarsine। यह अत्यन्त तीव्र विषैली गैस है। प्रथम महायुद्ध के उत्तर काल में अमरीकन कैप्टन ली लुई (Captaiu Lee Lewis) ने सर्वप्रथम इसे निर्जलीय आर्सेनिक ट्राइ-क्लोराइड और एल्यूमिनियम क्लोराइड में ऐसिटिलीन गैस प्रवाहित करके प्राप्त की थी।

ओमप्रकाश (७९०५) डाल्टनगंज

प्रश्न—सोना मुक्तावस्था में पाया जाता है या अयस्क रूप में भी ?

उत्तर—दोनों अवस्थाओं में। विस्तृत परिचय विज्ञान-लोक १९६३ के सितम्बर अंक में दिया हुआ है।

जयन्त बनर्जी (९७३१) इलाहाबाद

प्रश्न—क्या कारण है कि काफी ऊँचे उड़ते हुए हवाई जहाज की परछाईं जमीन पर नहीं पड़ती ?

उत्तर—जब तक परछाईं भूमि तक आ भी नहीं पाती कि भूमि तक फैले हुए प्रकाश में विलीन हो जाती है। सिद्धान्ततः भी परछाईं उसी वस्तु की पड़ेगी जो भूमि को छूकर खड़ी होगी या सतह के अत्यन्त निकट—कुछ ही फुट ऊँची होगी।

कन्हैयालाल नामदेव (१०४३२) टीकमगढ़

प्रश्न—वरुण ग्रह (Neptune) की खोज किसने की ? इसे गणित-ज्योतिष का चमत्कार क्यों कहा जाता है ?

उत्तर—२३ सितम्बर १८४६ को जर्मन नक्षत्रविद् ज्हान गैले (Johann Galle) ने की। यूरेनस ग्रह (Uranus) के प्रबल आकर्षण के प्रभाव से इस ग्रह की पथ-गणना तब तक सही नहीं थी। तब तक उस आकर्षण से कोई परिचित भी नहीं था। गैले ने सर्वप्रथम उसे ज्ञात करके अपने विलक्षण गणित के फलस्वरूप इस ग्रह की खोज की थी। इसीलिए इसे गणित-ज्योतिष का चमत्कार कहते हैं।

कालूराम शर्मा (९९४४) चित्तौड़गढ़

प्रश्न—गल्फ स्ट्रीम का आविष्कार किसने किया ?

उत्तर—सृष्टिकर्त्ता ने। जो वस्तु पहले ही से उपस्थित है, उसका आविष्कार कैसा ? हाँ, इस जलगत समुद्रधारा के उष्ण प्रवाह से प्रथम परिचय फ्रैन्च नाविक पान्स-डि-लियन ने १६वीं शताब्दी में किया था। इसका मनोरंजक वर्णन विज्ञान-लोक १९६३ के मार्च अंक में—सागर में छिपी सरिताएँ—नामक लेख में किया है।

उमेशचन्द्र भट्ट (५०८८) पिथौरागढ़

प्रश्न—स्टीरियोफोनिक (stereophonic) आवाज किसे कहते हैं ?

उत्तर—कभी स्टीरियोस्कोप भी देखा होगा, जिसके आधार पर थ्री-डी चित्र बनाये जाते हैं। उसी प्रकार समान ध्वनि देते हुए दो माइक्रोफोनों की ध्वनियों का संयुक्त आलेखन किया जाता है ताकि थ्री-डी चित्र की भाँति वह संयुक्त ध्वनि भी अधिकतम स्वाभाविक और स्पष्ट सुनायी दे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरदेव सरल (२४३३) हिसार

प्रश्न—टेलीविजन कार्यक्रम भारत में भी प्रसारित किये जाते हैं ? यदि हाँ, तो कहाँ ?

उत्तर—विशेष अवसरों पर देहली में प्रसारित किये जाते हैं। अभी ये प्रयोगावस्था में ही हैं। अधिक विवरण भारत सरकार के सूचना तथा प्रसारण मन्त्रालय से प्राप्त हो सकेगा।

लक्ष्मण (७६००) दिल्ली

प्रश्न—ग्लेशियल एसेटिक एसिड का संक्षिप्त परिचय दें।

उत्तर—ग्लेशियल अर्थात् हिम जैसा। यह अम्ल १६·७°C पर हिमकणों की भाँति मणिभ रूप में बन जाता है तथा ११८°C पर उबलता है। इसका अधिकांश उपयोग चिकित्सा में, वह भी हठीले, जड़ जमाये हुए ठेक (corns शल्क) उखाड़ फेंकने में होता है।

तमालकुमार बनर्जी (१२७३९) इलाहाबाद

प्रश्न—धोने वाले और खाने वाले सोडा में क्या अन्तर है ?

उत्तर—धोने वाला सोड़ा है कास्टिक सोडा अर्थात् सोडियम हाइड्रोक्साइड और खाने वाला सोड़ा है सोडियम कार्बोनेट। धोने वाले सोड़ा की पूर्ति तो खाने वाला सोड़ा कुछ अंशों में कर भी देगा, किन्तु खाने वाले सोड़ा की पूर्ति धोने वाले सोड़ा से करना प्राणघातक रहेगा। अतः सावधानी आवश्यक है।

मोहनसिंह (९०५७) थर्ड सिक्ख रेजीमेण्ट

प्रश्न—सृष्टि में जीवोत्पादन किस क्रम से हुआ ?

उत्तर—सर्वप्रथम वनस्पति, तत्पश्चात् एक-कोशीय प्रोटोजोआ अमीबा आदि मछलियाँ, रैप्टाइल्स और तदन्तर बड़े विकसित जन्तु तथा मानव आदि।

बलवीरसिंह (९४८२) रायपुर

प्रश्न—सबसे पहला तत्त्व कौनसा, किसने और कब खोजा ?

उत्तर—सोना, चाँदी, तांबा आदि १२ तत्त्व तो ऐसे हैं जो सहस्राब्दियों पूर्व ही ज्ञात कर लिए गये थे। तत्पश्चात् प्रथम आलेख आल्बर्टस मैगरस (Albertus magrus) का प्राप्य है जिसने १३वीं शताब्दी में आर्सेनिक खोजा था।

कृष्णकुमार शर्मा (१२३५५) शिमला

प्रश्न—सुपरसानिक विमान से क्या तात्पर्य है ? इनकी गति अधिक से अधिक कितनी है ?

उत्तर—सुपरसानिक—ध्वन्यातीत का अर्थ है ध्वनि-वेग से भी आगे। जेट इंजनयुक्त इन विमानों के बनाने और तीव्र गति की स्पर्धा १९५५ से आरम्भ हुई है। सामान्यतः ध्वनि की गति लगभग ७५० मी. प्र. घ. है और १९५५ में प्रथम निर्मित इंगलैंड के विमान का रिकार्ड ८२२ मी. प्र. घ. था। १९६२ में १६६६ मी. प्र. घं. का रिकार्ड सोवियत संघ का है और आज तक अविजित है।

इन्द्रसागर अग्रवाल (१२७७६) जुन्नारदेव

प्रश्न—शान्तिमय कार्यों में परमाणु शक्ति के क्या उपयोग हो सकते हैं ?

उत्तर—अग्नि की भाँति इसके लिए भी कहा जा सकता है कि मानव का हित इसका दास नहीं स्वामी बनने में ही है। इसके शान्तिकालीन उपयोग अनेकानेक और आश्चर्यजनक हो सकते हैं। समय-समय पर इसकी चर्चा विज्ञान-लोक में होती रही है। विशेषतः अंक देखिए—जनवरी १९६१, जुलाई १९६२ और अक्टूबर १९४३।

सुभाषचन्द्र कथूरिया (१२१८३) गंगानगर

प्रश्न—रासायनिक एवं भौतिक तुलाओं में क्या अन्तर है ?

उत्तर—भौतिक तुलाएँ अधिक भारी वस्तुएं तथा रासायनिक तुलाएँ कोमल एवं अत्यन्त हलकी वस्तुएँ तौलने के काम आती हैं।

कु० शीला गोयल (१००३६) जबलपुर

प्रश्न—मोटरसाइकल का आविष्कार किसने किया ?

उत्तर—इसमें आविष्कार जैसा कुछ था ही नहीं। इसमें लगने वाला अन्तर्दाही इंजन पहले ही आविष्कृत हो चुका था और बाइसिकल उससे भी पहले। हाँ, इसे आरम्भ करने का श्रेय अंग्रेज मैकेनिक एडवर्ड बटलर को है जिसने १८८४ में एक ट्राइसिकल पर इंजन लगाने का सफल प्रयोग किया था।

इस स्तम्भ के लिए प्रश्न पोस्ट कार्ड पर लिखकर कृष्णा दीदी के पते पर भेजिए। पोस्ट कार्ड पर प्रश्न तथा अपना नाम, पता और सदस्य संख्या के अतिरिक्त और कुछ न लिखें।

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा स्टूडियो, आगरा के लिए प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिरस्थायी मित्रता प्राय:

उत्तम व्हिस्की

के गिलास से ही प्रारम्भ होती है

चतुर मेजबान सदैव "डिप्लोमैट" ही प्रस्तुत करते हैं क्योंकि यह अति उत्तम व्हिस्की है और विशिष्ट पार्टियों में आदर की दृष्टि से देखी जाती है। सभी ख्यातिप्राप्त होटलों, क्लबों और रेस्टोरेंटों की पय सूची में इसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

इसे पूर्ण विश्वास के साथ प्रस्तुत कीजिये और सानन्द पीजिये

डिप्लोमैट
डी लक्स व्हिस्की

डायर मीकिन के तहखानों में वर्षों रखने के उपरान्त चुनिन्दा माल्ट व्हिस्कियों का सर्वोत्तम सम्मिश्रण

डायर मीकिन ब्रुअरीज लिमिटेड

स्थापित १८५५

सोलन ब्रुअरी — लखनऊ डिस्टीलरी — कसौली डिस्टीलरी
मोहन नगर ब्रुअरी ऐन्ड एलाइड इन्डस्ट्रीज (यू० पी०)

शताब्दी पुराना अनुभव विश्वास की गारण्टी है

DMB-NP-180A

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price : 75 Paise September 1964 Regd. No. L 1410
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामबिहारीसिंह तोमर द्वारा लिखित

नवीन प्रकाशन

एम. ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान
२. ग्रामीण समाजशास्त्र
३. नागरिक समाजशास्त्र
४. हिन्दू विवाह एवं परिवार की समस्याएं
५. सामाजिक सूक्ष्मदर्शी : व्यैक्तिक अध्ययन प्रणाली
६. सामान्य समाजशास्त्र : समाज, संस्कृति तथा व्यक्तित्व
७. सामाजिक सिद्धान्त : व्यक्तित्व का समाजशास्त्रीय अध्ययन
८. व्यक्तित्व
९. भारतीय समाज, संस्कृति तथा संस्थाएं
१०. भारतीय संस्कृति के मूलाधार

बी. ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान परिचय
२. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग १ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)
३. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग २ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)
४. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग ३ (भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए)
५. समाजशास्त्र के सिद्धान्त (राजस्थान, जोधपुर, पंजाब, मुजफ्फरपुर)
६. सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब)
७. सामाजिक नियन्त्रण एवं सामाजिक परिवर्तन (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब, रांची)
८. समाजशास्त्र की प्रकृति एवं आधार (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
९. सामाजिक संरचना एवं सामाजिक गतिशास्त्र (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
१०. भारतीय जनता एवं संस्थाएं (आगरा, जबलपुर, भागलपुर)
११. भारतीय समाज एवं संस्कृति (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
१२. भारतीय सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, काशी, पंजाब)
१३. भारत की सामाजिक संस्थाएं (राजस्थान, जोधपुर)
१४. तुलनात्मक सामाजिक संस्थाएं (गोरखपुर)
१५. प्रारम्भिक ग्रामीण समाजशास्त्र

इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए

१. माध्यमिक समाजशास्त्र
२. भारतीय सामाजिक संगठन

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-लोक

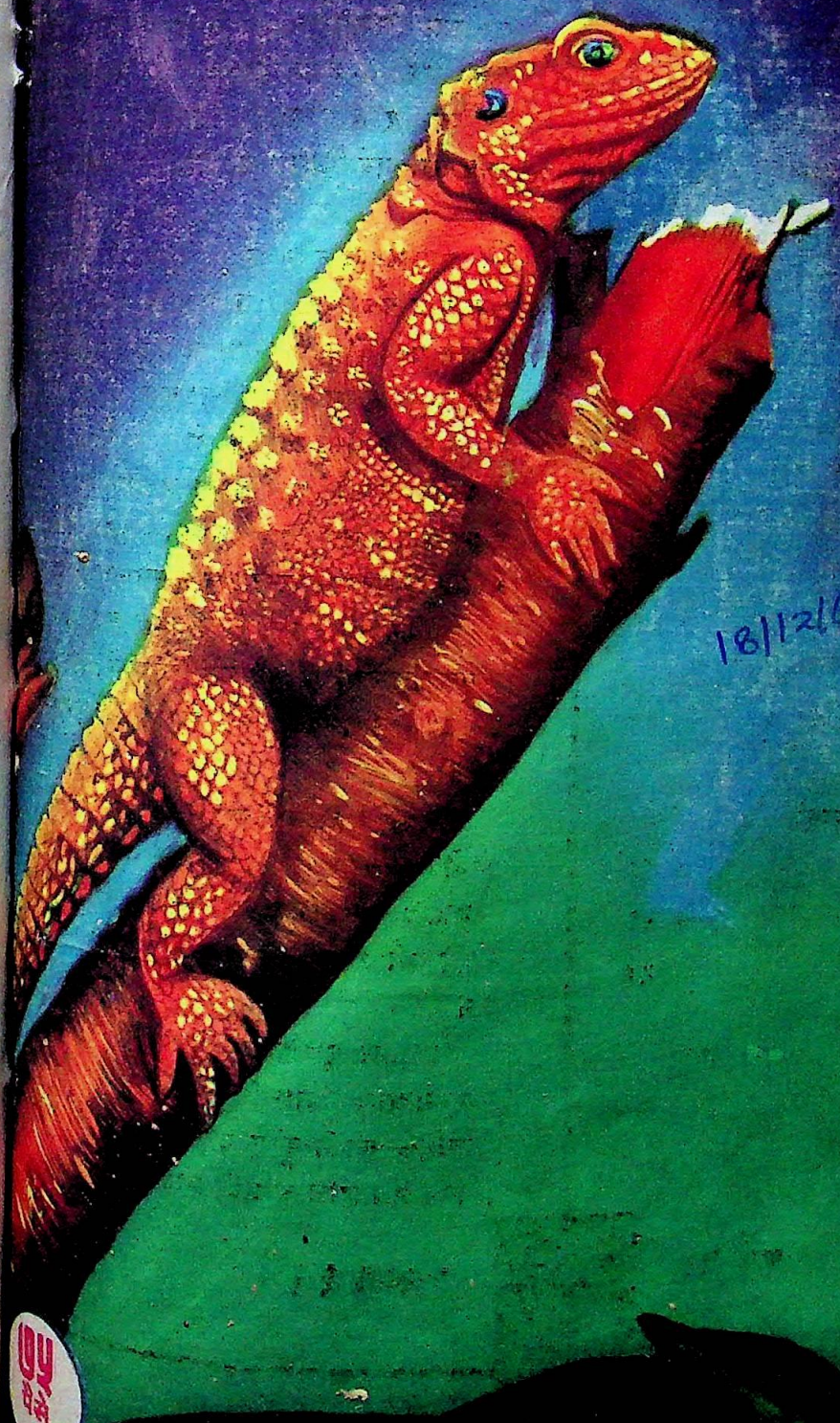

18/12/64

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िये

छिपकलियाँ और गोधिकाएँ ३
—नरेन्द्रसिंह माथुर

जीवन के तीन गोपनीय रहस्य १०
—डा. अरविन्दमोहन

गगनचुम्बी वृक्षों की खोज १४
—कीर्तिमोहन

बुढ़ापा १६
—डा. महेश्वरसिंह सूद

आदिम स्तनपोषियों के बीच २३
—कृष्णकुमार वर्मा

इवेन्जेलिशा टारिसेली ३१
—राजेन्द्रकुमार

मानव की सागर-विजय ३४
—नरेन्द्रमोहन वंसल

प्राचीन मिस्र का गणित ४३
—गुणाकर मुले

यदि पानी न हो तो ५५
—प्रेमानन्द चन्दोला

स्थायी स्तम्भ

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ४२
विचित्र संसार ४६
विज्ञान क्लब ५१
इनाम लो ५४

अपनी बात

२ दिसम्बर को ७२ वर्ष की आयु में प्रोफेसर हाल्डेन की मृत्यु हो गयी। प्रोफेसर हाल्डेन १९५७ में भारत आये और भारतीय नागरिक बन गये। १९६१ तक आप इण्डियन इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता में रिसर्च प्रोफेसर के पद पर कार्य करते रहे। मृत्यु के समय आप आनुवंशिकी एवं जीवाकिकी प्रयोगशाला, भुवनेश्वर के डायरेक्टर थे। प्रोफेसर हाल्डेन का प्रमुख कार्य विज्ञान की इन्हीं दो शाखाओं में है।

प्रोफेसर हाल्डेन को १९३२ में रॉयल सोसायटी का फैलो चुना गया। १९३३ में डार्विन पदक प्रदान किया गया। १९६१ में नेशनल ऐकेडमी ऑफ साइंसेज, यूनाइटेड स्टेट्स ने आनुवंशिकी के क्षेत्र में किये गये आपके कार्यों के फलस्वरूप आपको किम्बर मैडल प्रदान किया। अनेक विश्वविद्यालयों ने आपको आनेरेरी डाक्टरेट से सम्मानित किया।

प्रोफेसर हाल्डेन ने विज्ञान की अनेक पुस्तकें लिखीं हैं। आपकी पुस्तकें वैज्ञानिकों एवं जन-साधारण दोनों में ही लोकप्रिय हुई हैं।

प्रोफेसर हाल्डेन जीवन पर्यन्त विज्ञान की सेवा करते रहे। अनुसंधान के प्रति उनका मोह इतना अधिक था कि अपने पार्थिव शरीर को भी वह मैडिकल अनुसंधान के लिए दे गये।

प्रोफेसर हाल्डेन की मृत्यु से भारत ने एक महान् वैज्ञानिक खो दिया। महान् वैज्ञानिक की मृत्यु पर विज्ञान-लोक अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

वर्ष ५

अंक ११

मूल्य
एक प्रति : ७½ पैसे
वार्षिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा ब्रदर्स, अलवर

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

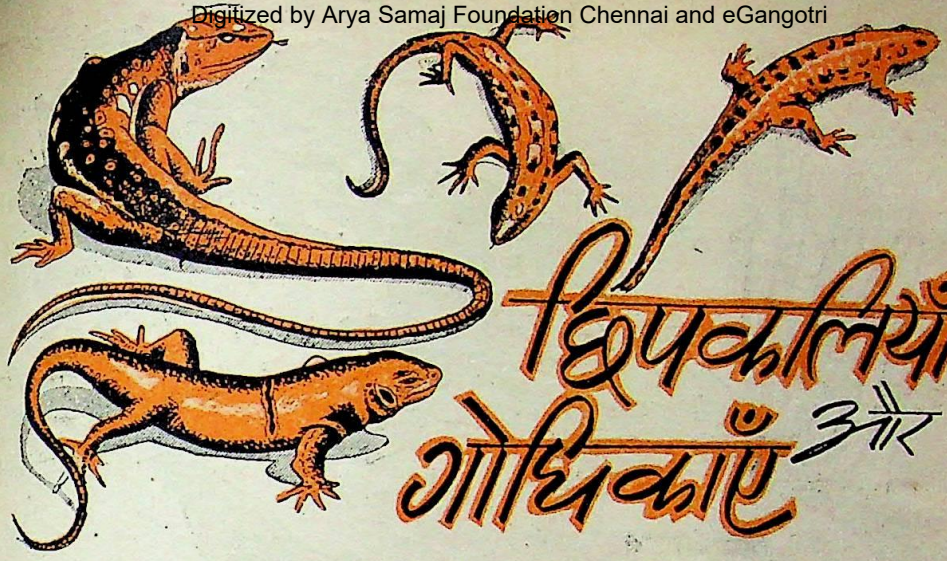

छिपकलियाँ और गोधिकाएँ

नरेन्द्रसिंह माथुर

डिनासर-युगीन रेप्टाइल्स कैसे होंगे, यह जानने के लिए उनके सजीव आकार-प्रकारों का आभास आज भी पाया जा सकेगा। उनके रूप-स्वरूपों का अनुमान लगाना हो तो घरों की दीवारों पर फुदकती किसी छिपकली को देखिये अथवा सागरतटीय या मरुस्थलीय गोधिकाओं (वृहद् छिपकलियों) को देखिये। सरीसृप अर्थात् रेप्टाइल-वर्ग के सामान्य जन्तुओं से सर्वथा भिन्न शरीरधारी इन छिपकलियों को सरलता से पहचाना जा सकता है।

दूसरे शब्दों में प्रागैतिहासिक काल के दानवीय डिनासरों के सही प्रतीक स्वरूप से छिपकलियां और गोधिकाएं हैं जो मगर, घड़ियाल, कछुओं और कुछेक श्रेणी के सर्पों से निकटतः सम्बन्धित हैं। उस युग में वे दैत्याकार डिनासर तो बदलते हुए समय के साथ स्वयं को अनुकूलित न कर पाये और परिणामतः नष्ट होकर रह गये, किन्तु उनके साथ ही विचरते, उनसे डर-डरकर रहते छोटे-छोटे जीव परिस्थितियों से समझौता करते रहे और समय की मार से बचते रहे। अतः आज भी इन्हें देखकर हम उन लुप्त डिनासरों के आकार-प्रकारों का आभास पा सकते हैं।

आज २००० से भी अधिक जाति-उप-जातियों में बंटे हुए इन जीवों को अलग-अलग देखें तो इनके बहुरंगी और बहुरूपी विविधताओं को देखकर यह मान लेना कठिन हो जायगा कि ये सब एक ही वर्ग लेसरटीलिया (*Lacertilia*) वर्ग के प्राणी हैं।

ये छिपकलियाँ, ये गोधिकाएं

इनकी निराली दुनिया में विचरा जाये तो जहाँ १०-१२ और १५ फुट तक की दैत्याकार गोधिकाएं मिलेंगी, वहीं इर्द-गिर्द में २-३ और ४ इंच की नन्हीं छिपकलियाँ भी दिखेंगी। जहाँ चमकीली और चटकीली नीली, लाल और हरे रंग की झलकियाँ होंगी वहीं काले, भूरे, कत्थई और स्लेटी जैसे फीके रंग भी दिखायी पड़ेंगे। उनमें कुछ ऐसी भी होंगी जो अपने सुदृढ़, चार पांवों से दौड़-भाग कर रही होंगी, कुछ केवल अगले ही पांवों युक्त होंगी, कुछ के पिछले पांवों के स्थान पर केवल खूँटे उभर कर रह गये होंगे, तो कुछ बिलकुल ही पांवहीन होंगी। उनमें पेड़ों पर डेरा डालने वाली, जलचारी तथा भूमिचारी, यों तीन स्पष्ट प्रकार की मिलेंगी। इन सभी को जहरीली समझ लेना तो इनसे अन्याय करना होगा। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह रेगिस्तान की सुरसा है। हरे रंग की, कालरदार इस छिपकली की पकड़ में आया हुआ शिकार, अब इसके पेट में ही चैन पायेगा

केवल मैक्सिको की हेलोडर्म (Heloderm) और दक्षिण-पश्चिमी संयुक्त राज्य अमरीका की गिला मान्स्टर नामक दो श्रेणियाँ आपत्ति-जनक रूप से जहरीली हैं।

उष्ण और समशीतोष्ण कटिबन्ध के समस्त देशों में इन्हें देखा जा सकता है। उष्ण जलवायु इन्हें विशेषत: अनुकूल रहता है। छोटी-छोटी छिपकलियां नन्हें कीट तथा कीड़े-मकोड़ों का आहार करती हैं और बड़ी गोधिकाएं चूहे, मेंढक, कछुए, नन्हें मगर, छिपकलियां आदि खा लेती हैं। अमरीका में पायी जानेवाली छह फुट बड़ी गोधिकाएं—इगुआना—केवल शाकाहारी जीवन व्यतीत करती है।

पूंछ की क्या पूछ ?

अधिकांश छिपकलियों की विशेषता ही यह है कि जहां पूंछ पकड़ायी में आयी, यह पूंछ छोड़कर ही पीछा छुड़ा लेती है। पकड़ने वाला उस तड़पती पूंछ को देखता ही रह जाता है और शिकार हाथ से निकल जाता है। उसकी जगह तुरन्त नयी पूंछ उगना शुरू कर देती है और शीघ्र अपने आकार में आ जाती है। प्राणी को नयी पूंछ मिल जाती है। इनमें भी घरों में रहने वाली गेको (Gecko) वर्ग की छोटी छिपकलियां बड़ी विलक्षण हैं। कभी-कभी टूट-गिरने वाली पूंछ का जब थोड़ा-सा भाग अटका रह जाता है, तब वह शरीर से पुन: जुड़ जाता है और नयी पूंछ के साथ पुरानी पूंछ भी मिलकर छिपकली को दो पूंछ वाली बना देते हैं। कभी-कभी तो अजायब-घरों में ३-३ पूंछ वाली छिपकलियां भी देखने को मिल जाती हैं।

अन्य जातिगत विशेषताएं

अधिकांश छिपकलियां जब-कभी क्रोध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शाते समय सिसकारियों के अतिरिक्त अन्य कोई ध्वनि नहीं उठातीं। कुछेक छिपकलियां, विशेषत: घरों में पायी जाने वाली छिपकलियां विभिन्न स्वरोत्पादन द्वारा परस्पर संकेत-वहन का कार्य कर लेती हैं। उनकी ध्वनियाँ स्पष्ट सुनायी भी देती हैं। उनकी विविध ध्वनियों पर से उन्हें विभिन्न नाम भी दिये गये हैं। चीचाक (Cheechak), टोके (Tokay) और गेको (Gecko) ऐसे नामों के कुछ उदाहरण हैं।

कुछ उपयोगी, कुछ अनुपयोगी

साधारण रूप से छिपकलियों के बारे में दो मत प्रचलित हैं। ये उपयोगी इस प्रकार हैं कि अनेक हानिकारक कीटों, कीड़ों-मकोड़ों और नन्हें जन्तुओं को खा-खाकर घटाती रहती हैं। ऐसा न होता तो वे जन्तु हमारा रहना भी मुश्किल कर देते। इनके अनुपयोगी होने के पक्ष में काफी सबल तर्क है। एक तो यही कि इनमें से अनेक जातियां विषैली होती हैं। दूसरे यह कि जो स्वयं विषैली नहीं, वे हमारे खाने-पीने की चीजों को विषैली बना देती हैं। हां, रेगिस्तानों में पायी जाने वाली छोटी-बड़ी छिपकलियों में स्किन्क (Skink) जाति चिकित्सा के लिए विशेष उपयोगी मानी जाती है। अरबस्तान के निवासी आज भी उनका उपयोग महत्त्वपूर्ण दवाएं बनाने में करते हैं। वह स्किन्क तो इगुआना तथा मानीटर जैसी बड़ी और खाद्योपयोगी गोधिकाओं की भाँति खाने के भी काम में ली जाती है।

विशाल गोधिकाएं

कुछेक अति विचित्र और वृहत्काय गोधिकाओं का संक्षिप्त विवरण स्थानोचित रहेगा।

दढ़ियल गोधिका (Bearded Lizard) आस्ट्रेलिया निवासिनी यह गोधिका दाढ़ीयुक्त है। वास्तव में दाढ़ी के बालों जैसा तो कुछ नहीं होता; किन्तु गले के नीचे कांटे जैसे उभारों की एक पट्टी जब आवेश में तन उठती है, तब दाढ़ी जैसी ही दिखती है। क्रोधावस्था में इसका मुंह खड़ा खुलने के साथ-साथ आड़ा भी अधिक खुल जाता है। इतना ही दृश्य आक्रमणकारी को डरा देने के लिए पर्याप्त है।

आस्ट्रेलिया की दढ़ियल गोधिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और, यह है आस्ट्रेलिया की पंखे जैसी मुकुटधारी वृहद् गोधिका

शत्रु यह समझ ही नहीं पाता कि पलभर पहले का यह जन्तु एकाएक दुगने सिर और डरावने मुंह का कैसे बन गया। अपनी रक्षा के लिए यह शरीर की रंगत बदल लेने में भी कुशल है। शान्त अवस्था में इसका रंग फीका हरित कत्थई होता है और छेड़े जाने पर चमकीला पीला तथा नारंगी धारियों युक्त हो जाता है।

झालरदार गोधिका (Frilled Lizard) यह भी आस्ट्रेलिया की सम्पत्ति है। यह अपनी गर्दन के चारों ओर कालर जैसी झालर खड़ी करके शत्रु को डराती है। इसके गले और गर्दन के दोनों ओर २-२॥ इंच तक जो अतिरिक्त त्वचा लटकी रहती है, वही आवेशित अवस्था में खड़ी होकर गोल झालर का रूप ले लेती है। यह तेजी से दौड़ती तो है ही, पीछे की ओर भी दौड़ जाना इसके लिए कठिन नहीं। पीछे दौड़ते समय यह अपने अगले पंजों को अधर उठाये इस प्रकार हिलाती है, जैसे दौड़ते समय मनुष्य अपने हाथ हिलाता है। यह खूबी इसी में पायी जाती है।

गिला मॉन्स्टर (Gila Monster)— अमरीका के, दक्षिण-पश्चिमी भाग में तथा मेक्सिको में पाया जानेवाला यह जन्तु एरिजोना नदी के गिला नामक क्षेत्र में अधिकता से पाया जाने के कारण गिला का दैत्य अर्थात् गिला मॉन्स्टर (Gila Monster) कहलाता है। जहाँ अनेक छिपकलियाँ तथा गोधिकाएं गंध से आकर्षित होकर शिकार की ओर बढ़ती हैं, यह अपनी जीभ के सहारे बढ़ता है। गंध पर तो यह बहुत कम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्भर रहता है। बीच-बीच में अपनी जीभ निकालकर मानों धरती की गंध और स्वाद लेता रहता है। जेकबसन नामक एक प्राणि-शास्त्री ने यह पता लगाया कि इसकी जीभ पर कुछेक उभार होते हैं जो तालुए के कुछेक गड्ढों से सम्पर्क रखते हैं। पुनः वे गड्ढे भी तालुए के अन्दर स्थित इसकी स्वादेन्द्रिय से सम्बन्धित रहते हैं। इस खोज के उपलक्ष में उस स्वादेन्द्रिय को जेकबसन-इन्द्रिय नाम दिया गया।

यह जन्तु रेगिस्तान में भी रहने का अभ्यस्त है। अतः कुछेक दिन वगैर खाये-पिये भी यह सरलता से रह लेता है। यह अपनी खाद्य से अर्जित ऊर्जा को चरबी आदि के रूप में अपनी पूँछ में संचित रखता है। अतः उपवास की अवस्था में इसकी पूँछ का खजाना चुकता रहने से पूँछ दुबली-पतली होती जाती है। उपवास के पश्चात् भरपेट खाना मिलने पर पूँछ तेजी से मोटापा प्राप्त करती जाती है। अधिकतर तो ये वर्षा के चार महीने ही बाहर विचरते दिखायी पड़ते हैं। शेष जितने दिनों सूखा रहता है, ये अपने-अपने बिलों में छिपे रहते हैं। जुलाई मास इनका प्रजननकाल है। इनके अण्डे प्रायः डेढ़ इंच व्यास के और ढाई इंच लम्बे होते हैं। गीली मिट्टी में दबे-दबे अण्डे लगभग तीस दिन में तैयार हो पाते हैं।

वृहत्काय कोमोडो (Komodo Dragon)—यह जन्तु केवल ईस्ट इण्डीज में पाया जाता है। इसकी खोज हुए अधिक समय भी नहीं हुआ। उससे पहले केवल कल्पनाओं का सहारा लिया जाता था। शरीर में आज यह जन्तु भले ही उतना विशाल न रहा हो, किन्तु शक्ल-सूरत, आकार-आकृति, हाथ-पांव और अन्य समस्त बातों में यह अपने प्रागैतिहासिक पुरखों का सही प्रतीक है। लम्बी पुष्ट गर्दन, भारी-भरकम शरीर और उससे जुड़ी मोटी-लम्बी पूँछ के साथ खम्भे जैसे हाथ-पांव और विकराल चेहरा, इतना होने के पश्चात् सचमुच दैत्य होने में कसर ही क्या रही। यह विकरालता इसकी लपलपाती जीभ से और भी बढ़ जाती है, जो सर्प-जिह्वा जैसी दो-फनी होती है और मुँह से बाहर, काफी आगे

रतिक्रिया-रत छिपकली का नर-मादा युगल

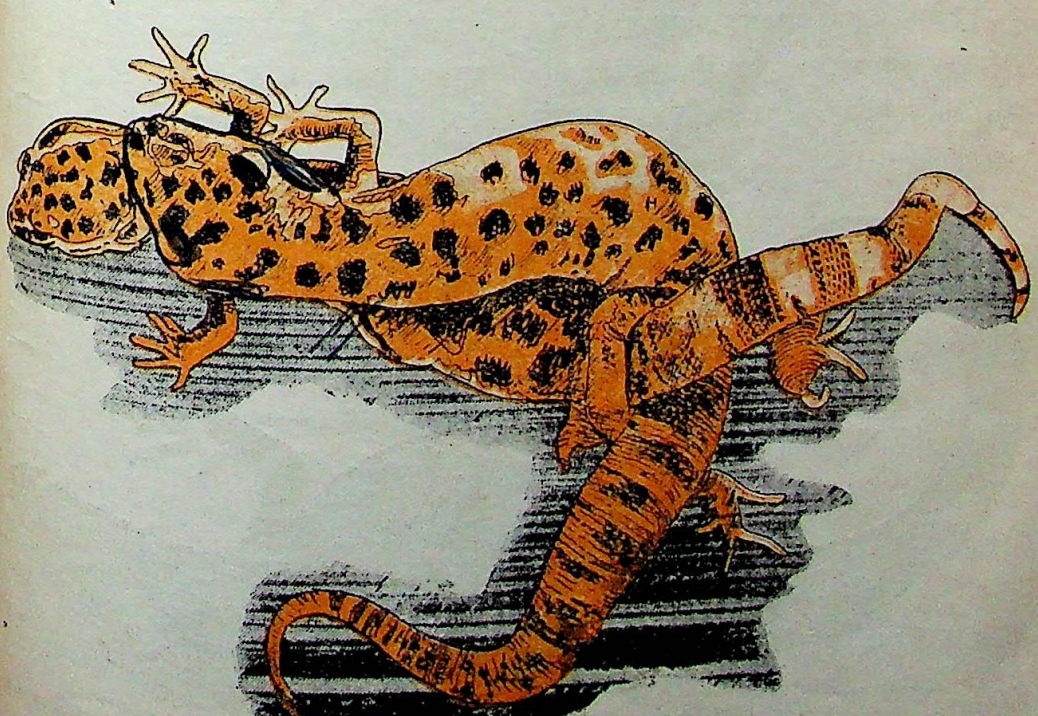

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकाली जा सकती है। यह गोधिका १०-१२ फुट तक लम्बी और ३००-४०० पौण्ड तक भारी पायी जाती है। जिस कोमोडो नामक टापू से इसका नाम पड़ा है, वह ईस्ट-इण्डीज का केवल १० मील चौड़ा और २० मील लम्बा, छोटा-सा क्षेत्र घेरे हुए है। खाने के लिए भी इसे बड़े ही जन्तुओं की खोज रहती है। नन्हें कछुए, शूकर और हिरन पर यह अधिकतर निर्भर रहता है।

इसकी पूँछ और अति सुदृढ़ जबड़े, इसके मुख्य अस्त्र हैं। पूँछ की एक ही फटकार से यह पेड़ की डाल को तोड़-गिरा सकता है और जरा ही मुंह चलाकर हिरन की गर्दन चबाकर चूर कर सकता है।

शृंगधारी गोधिका (Florned Lizard) यह गोधिका शरीर में छोटी अवश्य होती है, किन्तु इसके सिर पर अनेक सींग तथा शरीर पर खूंटे जैसे उभार रहते हैं। इसे सींगधारी भेक भी कहते हैं, किन्तु है यह गोधिका अर्थात् छिपकली ही। अमरीका के मध्य भाग और दक्षिण-पश्चिम भाग में यह पायी जाती है। इसका कुछ चपटा शरीर, खुरदरी और ऊबड़-खाबड़ पीठ, नन्हें हाथ-पांव आदि देखकर ही पहले इसे सींगधारी भेक माना गया था। तभी से इसका वह दूसरा नाम भी प्रचलित है। सामान्यतः तो इसके सींग और पीठ के कांटे जैसे उभार इसे अपनी रक्षा करने में सहायक होते हैं, किन्तु चतुर आक्रमणकारी इनसे डरता नहीं और इनका शिकार कर ही लेता है। भूमि से सटे-ही-सटे, यह चींटियों तथा गिराड़ों से अपना पेट भरती रहती है। पीठ के वे कांटे इसकी त्वचा की आर्द्रता सूख जाने से बचाने का भी काम करते हैं। अधिक भयभीत अथवा क्रोधित होने पर सही अर्थ स्वरूप इसकी आँखों में खून उतर आता है।

घरेलू छिपकलियां (Gecko)—हमारे घरों की दीवारें, छतें और छप्पर इन छिपकलियों से प्रायः आबाद ही रहते हैं। लैम्प के उजाले में मच्छरों का पीछा करते तथा उन्हें चट कर जाते, इन्हें सरलता से देखा जा सकता है। जब कभी ये परस्पर चीं-चीं के स्वर द्वारा बातचीत भी कर लेती हैं। इनकी जो विलक्षणता हमें अचरज में डाले रहती है वह है, दीवारों और छतों पर ऐसी सरलता से सरपट दौड़ते जाना, जैसे फर्श पर दौड़ रही हों। यह विशेषता इनके पंजों और अंगुलियों की संरचना में रहती है। पंजों की त्वचा में कहीं-कहीं गड्ढे होते हैं और उन स्थलों पर ऐसी विशिष्ट कोशिकाएं रहती हैं जो चाहे जितनी फिसलनी सतह पर भी नहीं फिसलता यहाँ तक कि कांच की सतह भी इनके लिए खुरदरी हो जाती है। अन्यथा ऐसे

चोला बदलने के लिए पत्थर से शरीर रगड़ती हुई छिपकली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

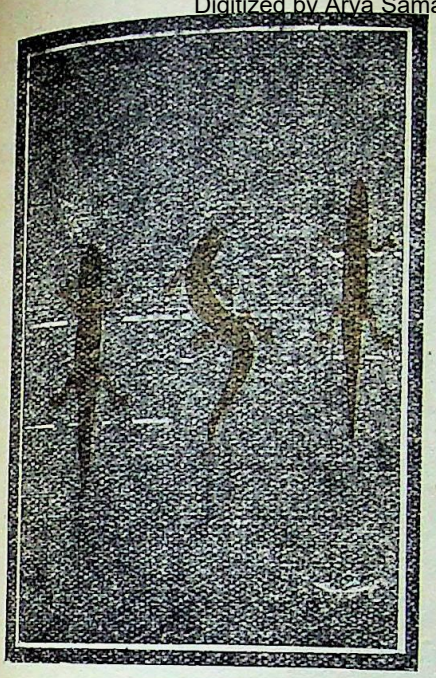

छिपकली के पाँव चलने में नहीं, शरीर को साधने में काम आते हैं। चलने को तो छिपकली अपने शरीर को ही हिला-डुलाकर चलती है

अनुमान गलत सिद्ध किये जा चुके हैं कि पंजे हवा के दबाव से चिपके रहते हैं, अथवा पंजों पर कोई चिपचिपा पदार्थ स्रवित होता है जो इन्हें चिपकाये रखता है। मलाया के बालक तो छिपकली की इस विशेषता का नया ही खेल बनाते हैं। वे अपनी पालतू छिपकली की पूँछ में डोरा बांधकर उसे नीचे लटका देते हैं और रास्ता चलने वालों के टोप को छुआ देते हैं। बस, डोरी खींचते ही छिपकलो के साथ टोप भी उठा चला आता है और सड़क के लोग तमाशा देखते हैं।

ये छिपकलियां दिन में सुस्त रहती हैं और रात को बड़ी चहल-पहल मचाती हैं। न्यूजीलैण्ड की कुछ जातियों को छोड़कर छिपकलियां अधिकतर अण्डे देती हैं। एक बार में प्रायः दो और कभी-कभी केवल एक ही अण्डा देती हैं। ये अपने अण्डे पत्थरों के ढेर में तथा दरवाजों, खिड़कियों की ओट में देती हैं। कुछेक छिपकलियां समुद्र-किनारे के पेड़ों की खोह में अण्डे देती हैं तब वे ही पेड़ तूफानों में टूटकर, गिरकर, पानी में दूर-दूर तक बह जाते हैं। उनमें छिपे हुए अण्डे समय पाकर जब फूटते हैं तब वे नन्हें किसी दूसरे ही देश में आँखें खोलते हैं। यों इनका देशांतरण भी हो जाता है।

रात को भी ये छिपकलियां देर तक चहकती रहती हैं और आधी रात के लगभग सोती हैं। सुबह भी देर से तब आंखें खोलती हैं, जब सूरज की कुछ गरमी पा लेती हैं। उस समय आलस्य तोड़ने के दौरान में भी मक्खी जैसे अपने शिकार को लपकना नहीं भूलतीं। झींगुर जैसे कीट को पकड़कर पहले तो अपने मजबूत जबड़ों से उसे पीस देती हैं, फिर उसे निगलकर मुँह पर इस तरह जीभ फेर लेती हैं मानों शिकार करके मूंछों पर ताव दे रही हों। इसका यही एक लक्षण स्तनपायी प्राणियों से मिलता-जुलता है।

इन छिपकलियों का पारस्परिक लड़ाई-झगड़ा भी देखने योग्य होता है। प्रायः इनकी लड़ाई का कारण शिकार की छीना-झपटी होता है। उस लड़ाई में एक-दूसरे की जान तो नहीं जाती, किन्तु हारने वाली खिसिया कर जीतने वाली की पूँछ कुतर लेती है। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। नयी पूँछ शीघ्र ही उग आती है।

रेप्टाइल-वर्ग स्वयं ही प्राणी जगत् में सबसे अधिक विस्तृत है और इसके अन्तर्गत छिपकलियों और गोधिकाओं का यह उपवर्ग सबसे बड़ा है। इनकी विविधताओं का पार नहीं है, इनकी विभिन्नताओं का अन्त नहीं है। मगर, घड़ियाल, सर्प और मेंढकों से मिलती-जुलती इन छिपकलियों को अनेक रंगों, अनेक स्वरूपों और आकार-प्रकारों में देखा जा सकता है। सच है, प्रागैतिहासिक दैत्याकार जन्तुओं की चलती-फिरती तस्वीरें ये छिपकलियां और गोधिकाएं ही हैं। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन के तीन गोपनीय रहस्य

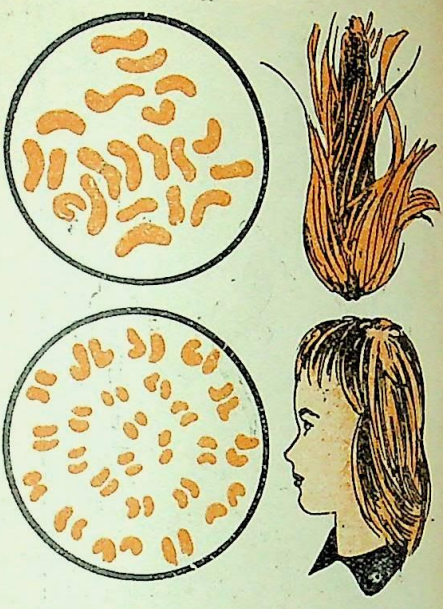

डा. अरविन्द मोहन

कई अवसरों पर हमें एकाएक सोचने को विवश होना पड़ता है कि जीवन क्या है ? खाना-पीना, सोना-जागना और कुछ बेकार के कामों में समय बिता कर इस जिन्दगी को पूरा कर लेना यदि जीवन है, तो इसके पहले और पीछे क्या है ? दार्शनिकों तथा तत्त्वज्ञानियों के भिन्न-भिन्न मत हैं। वैज्ञानिक-गण भी इस गुत्थी को सुलझाने में लगे हुए हैं। आज जब हमारा विज्ञान प्रयोगशाला में निर्जीव तत्त्वों को जोड़कर जीवित पदार्थ बनाने का दावा कर चुका है, तब जीवन क्या है ? इसका पूरा-पूरा जवाब हमें मिलना ही चाहिए।

जीवन की इकाई एक सेल है। जैसे मकान की बनावट के लिए पत्थर या ईंट एक इकाई है। ठीक उसी तरह से कई सेल मिलकर एक जीवित पशु, पक्षी या मानव का ढाँचा खड़ा करते हैं। सेल तो सजीव पदार्थ है, परन्तु सेल की बनावट में लगे रसायनिक अणु निर्जीव हैं। उदाहरणार्थ हाइड्रोजन, लोहा, कोयला, पारा इत्यादि सभी निर्जीव हैं। इसी प्रकार सेल की बनावट में लगने वाले तत्त्व भी निर्जीव हैं, परन्तु मिलकर वे सजीव रूप का सेल बनाते हैं। यह जीवन की पहली गुत्थी है जिसको समझना आज की वैज्ञानिक खोजों के आधार पर कुछ हद तक सम्भव है।

जीवन के लक्षण

जीवित पदार्थों का प्रथम गुण है भोजन को ऊर्जा में परिवर्तित करना। मोटर या रेल का इंजन भी तो पेट्रोल या कोयला लेकर ऊर्जा या शक्ति उत्पन्न करता है ! उसी प्रकार किसी भी जीव के भीतर यह क्रिया बिना प्रयास, अपने आप, कितनी खूबसूरती से पूरी हो जाती है। न कहीं मशीनी गड़गड़ाहट है, न हो-हल्ला और न ही गर्मी का पैदा होना। भोजन का एमीनोएसिड, फैटीएसिड तथा शक्कर में बदलना और एडिनोसिन ट्राइफास्फेट (ए. टी. पी.) द्वारा ऊर्जा में परिवर्तित हो जाना, विज्ञान की नवीनतम खोजों से ज्ञात किया गया है।

जीवित पदार्थों के अन्य गुण भी हैं। बाहरी वातावरण तथा परिवर्तनों को पहचानना, उनसे प्रभावित रहना, संवेदनों की तांत्रिक व्यवस्था का होना, फूलने-फलने तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी वंशपरम्परा को पुनरुत्पादन द्वारा बनाये रखना आदि गुण जीवित पदार्थों में ही पाये जाते हैं। जीवित पदार्थों में चलने-फिरने की क्षमता रहती है, परन्तु इसका न होना (जैसे, वनस्पति जगत् में) कोई विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं।

विचित्र बनावट

सेल की बनावट बड़ी जटिल होती है। आज से कुछ वर्ष पहले तक वैज्ञानिक सेल को एक सरल बनावट की वस्तु समझते थे, परन्तु अब तो सेल के विषय में 'गागर में सागर' वाली बात प्रमाणित हो रही है। पानी जैसी पतली, लसलसी (जेली) वस्तु के भीतर क्या करामात है, इसी पर अचरज होता है। इसके भीतर मानो एक फैक्टरी छिपी है जिसमें नक्शे-नवीस, मॉडल बनाने वाले, पावर हाउस, निर्माण कक्ष और तैयार माल को बाहर भेजने की पूरी व्यवस्था है। सूक्ष्मसेल एक विशाल कारखाना है।

सेल के चारों ओर पानी-सा सरल पदार्थ है और मकड़ी के जाले से भी पतली झिल्ली की दीवार के भीतर तरल साइटोप्लाज्म (cytoplasm) सेल के भीतर है। इस दीवार से होकर सेल का भोजन बाहर से भीतर आता है। सेल में लम्बी-लम्बी खाइयाँ बनी रहती हैं, जिनकी गहराइयों में होकर सेल बीच में न्यूक्लियस तक पहुँचाया जा सकता है। न्यूक्लियस मानो सेल का इंजीनियर है। क्रमशः बढ़ने पर सेल में क्रोमोसोम (chromosome) अर्थात् गुणसूत्र, रिबोसोन (ribosone) जहाँ प्रोटीन बनता है, लाइसोम (lysome) जो पुलिस की भांति सेल के दुश्मनोंका सिर तोड़ डालते हैं, ऐसे ही विचित्र पदार्थ भीतर रहते हैं। इनके अतिरिक्त सेल का पावर हाउस है, माइटोकोनड्रीय, जिसकी स्वयं एक लम्बी गाथा है।

संकेत भेजने वाला सेल

सेल का तंत्रिका तंत्र मकड़ी के समान लम्बी-लम्बी अनेक टाँगों के समान होता है। सबसे लम्बी टाँग चार फुट तक की होती है जिसे 'एक्सोन' कहा जाता है। इतनी लम्बाई के बावजूद भी यह सेल का ही एक अंग है। इसके ऊपर चर्बी चढ़ी रहती है।

मान लें कि आपके दरवाजे के बाहर किसी ने खटखटाया तो ध्वनि मस्तिष्क में इसका बोध उत्पन्न करती है तथा मस्तिष्क

एक-कोशीय जीव की कोशिका इतनी समर्थ होती है कि उच्चतर जीवों की भाँति जीवन-यापन कर सकती है, खा-पी सकती है, चल-फिर सकती है। यह ऊपर प्रदर्शित स्टाइनीलोशिया माइटिलस (Stylonichia mytilus) **नामक एक-कोशीय जीव से सिद्ध होता है**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

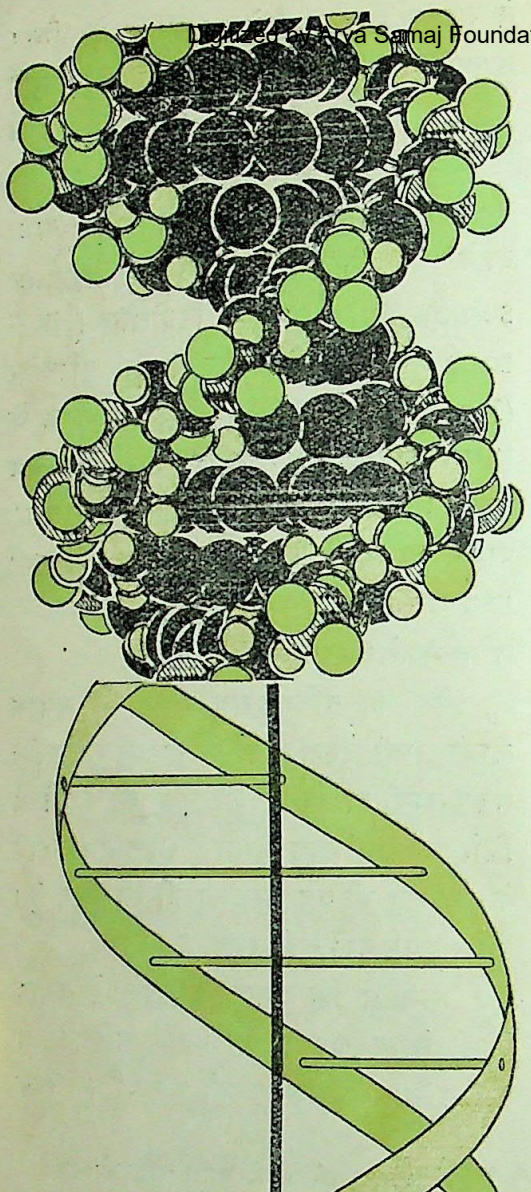

प्रत्येक सेल के भीतर सर्पिल आकार के, सीढ़ियों जैसे डी. एन. ए. अणु रहते हैं

इसकी सूचना हाथ की उंगलियों तक पहुँचाता है कि वे दरवाजा खोलने का काम करें। सूचना बिजली की धारा द्वारा जाती है और धारा को मार्ग की लम्बाई एवं रास्ते में रुकावट द्वारा रोकने की व्यवस्था भी यही करते हैं।

ऐक्सोन की यह क्रिया हाल ही में ज्ञात की गयी है। इसके भीतर पोटाशियम के अणु (नीले गोले) हैं तथा बाहर सोडियम के गोले (लाल) हैं। दोनों विद्युत आवेश रखते हैं। जगह-जगह पर इन गोलों का आदान-प्रदान होकर धारा की प्रबलता बढ़ायी जाती है ताकि मस्तिष्क से चलकर धारा शरीर के दूर कोने तक अपनी शक्ति बनाये रखकर पहुँच सके। एक धारा या एक सूचना पूरी हो जाने पर ए.टी.पी. कार्यशील होकर सोडियम वपोटाशियम का संतुलन ठीक बना देता है। ए.टी.पी. की चुस्ती का अन्दाजा आप इस प्रकार लगा सकते हैं कि एक सेकण्ड में वह एक के बाद एक करके १००० सूचना भेजने के लिए एक्सोन को तुरन्त तैयार कर देता है।

माँसपेशी के विचित्र सेल

अब देखिये कि हमारी मांसपेशियों के सेल कैसे काम करते हैं। सूचना पाकर कैसे हाथ ऊपर उठता तथा सिटकिनी खोलता है? इसके सेल लम्बी-लम्बी तिल्लियों जैसी बनावट के होते हैं। पतले तार के समान समानान्तर टुकड़ों के जोड़ से सेल बना होता है। इनकी बनावट में मियो-सिन प्रोटीन (लाल तिल्ली) तथा एकटिन प्रोटीन (पीली तिल्ली) के दो टुकड़े हैं। जब मांशपेशियां ढीली (आराम से) होती हैं तब एकटिन की तिल्लयों के दोनों समूह दूर-दूर रहते हैं। मांसपेशियाँ कसने पर वे पास-पास हो जाती हैं। एक्सोन के आदेश-नुसार ए.टी.पी. की ऊर्जा निकलकर दोनों समूहों को पास-पास लाती है। इस भाँति हमारे अंगों को काम करने की प्रेरणा मिलती है।

अद्‌भुत कारखाना, यह प्रोटीन

विज्ञान के इस नये क्षेत्र में तीसरी नवीनतम जानकारी जीवित सेल का बढ़ना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रजनन करना) तथा पूर्वजों के गुण दोषों का हस्तान्तरण क्योंकर होता है—इन बातों से सम्बन्ध रखती है। यह खोज इसी वर्ष की गयी है। जिससे विदित हो सका है कि सेल प्रोटीन बनाने का काम कैसे करता है। प्रत्येक सेल के भीतर सर्पिल आकार के (पीली सीढ़ियों जैसे) डी. एन. ए. अणु रहते हैं। ये बड़े मार्के के अणु हैं, क्योंकि इनके भीतर वे आदेश छिपे रहते हैं जो तय करते हैं कि प्रोटीन सेल कैसे बनायेगा ?

पहिले डी. एन. ए. की सीढ़ी मुड़कर दो भागों में ठीक वैसे ही चटक जाती है जैसे सेम की फली। फिर इस चिटके अंग में आर. एन. ए. (नीले टुकड़े) अणु के टुकड़े फंसने लगते हैं। आर. एन. ए. जुड़कर टूटे अंग (डी. एन. ए.) का स्वरूप ले लेते हैं। अब यह सीढ़ी पुनः एक बार चिटकाती है तथा आर. एन. ए. संदेशवाहक बनकर न्यूक्लियस के बाहर इटोप्लास्म में आगे बढ़ता है जिसमें दूसरे प्रकार के (हरे) आर. एन. ए. अणु फंसकर पूर्ण सीढ़ी बनाते हैं। यह काम रिबोसोम (भूरे) के इर्द-गिर्द होता है। रिबोसोम को प्रोटीन के कारखाने ही समझिए। हरे रंग वाले आर. एन. ए. अणुओं के साथ अमीनोऐसिड का समूह भी रहता है। ये हरे आर. एन. ए. से सट जाते हैं। ए.टी.पी. तथा एन्जाइमों का योग पाकर लाल तथा पीले नोकदार पदार्थ यही दिखलाते हैं। हरे, नीले आर.एन.ए. तथा साथ में अमीनोऐसिड की लम्बी दुम लगकर बने पदार्थ प्रोटीन हैं। प्रोटीन रिबोसोम छोड़कर अपनी जरूरत की जगह पर निकल जाते हैं।

इस प्रकार पूर्व निश्चित योजना के आधार पर डी.एन.ए. के आदेशानुसार, संदेशवाहक आर.एन.ए. फिर उनसे बदलकर दूसरे आर.एन. ए. को जोड़कर सेल के भीतर प्रोटीन

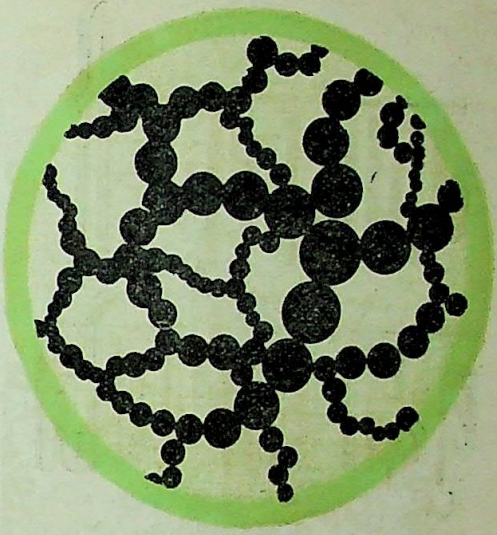

प्रोटीन के तंतुओं का जाल—एक अद्भुत कारखाना है

की लम्बी कड़ी तैयार होती है। सेलों का खास काम इन्हीं का निर्माण करना है, क्योंकि बढ़ने के लिए जीवित पदार्थों को प्रोटीन चाहिए और किस प्रकार के प्रोटीन हों इसका निर्णय वंशपरम्परा रखने वाले डी. एन. ए. अणु हैं।

ये प्रसिद्ध वैज्ञानिक

जीवन क्या है ? इसका सरल उत्तर देना कितना कठिन है यह तो स्पष्ट हो गया। उपरोक्त विवरण का आधार पिछले दस वर्षों में एक दर्जन से अधिक नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले वैज्ञानिकों की खोजें हैं। इनमें फ्रिटज लिपमैन (१९५३, ए. टी. पी.), हैन्स क्रेन्स (१९५३), जेम्स वॉटसन फ्रांसिस क्रिक (१९६२, डी. एन. ए.), एडवर्ड टेटन (१९५८, इन्जाइम एवं जीन्स), ह्यू गो थोरेल (१९५५, माइटोकोन्ड्रिया), अल्बर्ट ज्यॉर्जी (१९३७, ऐकटिन प्रोटीन) की खोजों के आधार पर उपरोक्त तीन रहस्यों का ज्ञान हमारे सामने आ सका है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गगनचुम्बी वृक्षों की खोज

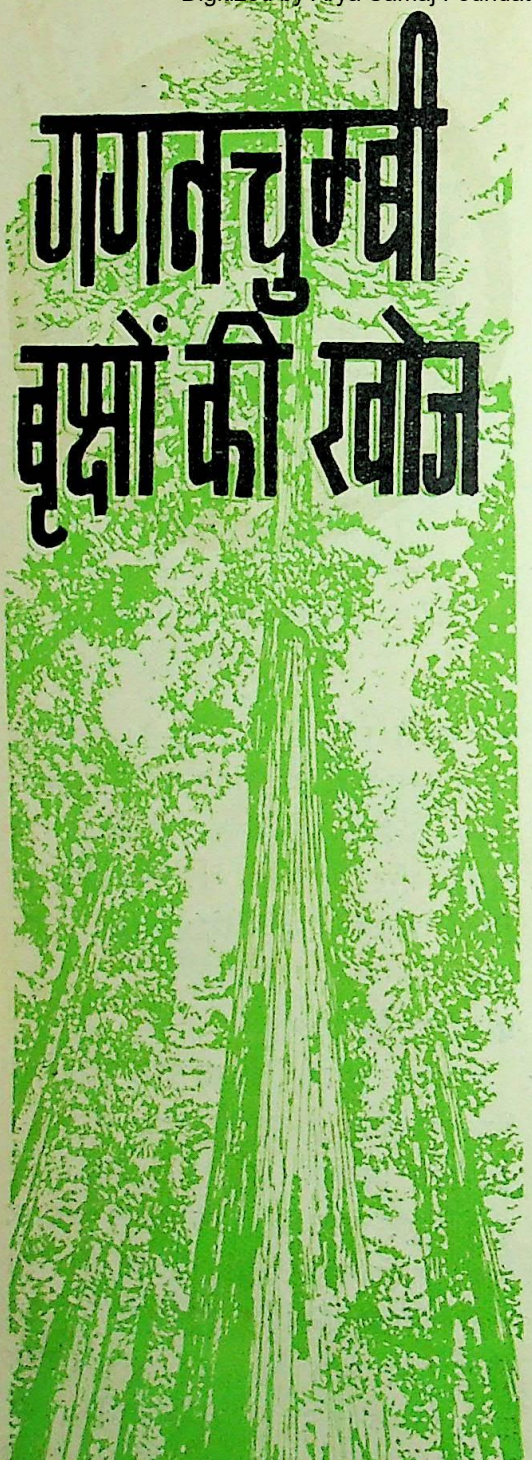

कीर्ति मोहन

सही अर्थ में तो गगनचुम्बी वृक्ष एक भी नहीं। गगन की कोई सीमा ही नहीं। हाँ, अनेक वृक्ष ऐसे अवश्य हैं जो बादलों को चूमते हैं। ऐसे वृक्षों की खोज, उनका अन्वेषण, अवलोकन और अध्ययन उतने ही रोचक सिद्ध होते हैं, जितने रोचक अमरीका की खोज तथा ध्रुव-प्रदेशों के अनुसन्धान और एवरेस्ट अभियान रहे होंगे।

जीव-जगत के ये अचरज भरे आंकड़े

वनस्पति जीवनमयी है, जीवनदायिनी भी है। जैसे जन्तुओं में नील ह्वेल (Blue Whale) सर्वाधिक वृहदाकारी है, वैसे ही वनस्पति-जगत् में भी इतने विशाल, इतने लम्बे-चौड़े और पर्वत की भाँति सिर उठाये वृक्षराज हैं, जिनके आंकडे हमें अचरज में डाल देंगे। यह कल्पना में भी न समा सकेगा कि नन्हीं पिन के नन्हें मत्थे जितना सूक्ष्म बीज इतना बढ़-चढ़ जायेगा कि सीमाओं के भी बन्धन न मानेगा। चार शताब्दी पूर्व के महान् नक्षत्रविद् गेलीलियो ने केवल अनुमान लगाकर कहा था कि २००-२५० फुट से अधिक ऊँचा वृक्ष अपने पाँवों पर खड़ा न रह सकेगा और अपने ही बोझ तले ढह जायेगा। उस समय गेलीलियो को यह ज्ञात भी न होगा कि प्रकृति इस विषय में कितनी सम्पन्न और समर्थ है जो ३०० फुट तक की ऊँचाई पर फहराती नयी कोंपल तक भी भूमिगत जड़ों से जीवन-रस पहुँचाती रहती है। अधिक विस्तार में उतरने से पूर्व सामान्यतः ये आंकड़े ध्यान में रखने योग्य हैं कि औसतन ३०० फुट ऊँचे वृक्ष के तने का घेरा भूमि के निकट ८०, १००, १२० फुट तक का होता है। ऐसे वृक्ष के केवल पत्तों ही पत्तों का भार २०० टन तथा समूचे वृक्ष का भार ५००० टन तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। ऐसे वृहद् एक-एक वृक्ष को काटने पर उससे इतना काष्ठ प्राप्त हो सकता है, जितना पाँच एकड़ भूमि में सटे-खड़े वृक्षों से प्राप्त हो जाये। आयु में ये वृक्ष २००० से ३००० वर्ष तक की भी सीमा लांघ जाते हैं!

इन वृक्षराजों की अपनी अलग दुनिया

अमरीका का पश्चिमी सागरतट, प्रशान्त महासागर के किनारे-किनारे उत्तरी केलीफोर्निया का ३० मील चौड़ा और ५०० मील लम्बा क्षेत्र तो संसार प्रसिद्ध वृक्षराजों से आबाद है ही, तस्मानिया और आस्ट्रेलिया के भी प्रशान्त महासागरीय तट मुख्यतः तीन जाति के गगनचुम्बी वृक्षों से सम्पन्न हैं। उनमें तस्मानिया का यूकेलिप्टस रेगनान्स (Eucalyptus Regnans) ३२२ फुट, आस्ट्रेलिया का यूकेलिप्टस ३०५ फुट और २७२ तथा २९१ फुट के सेक्युआ (Sequoia) उल्लेखनीय हैं। ऐसा ही भीमकाय (उतना ऊँचा न सही) बाओबाब (Baobab) नामक वृक्ष अफ्रीका में भी है। इसका व्यास ३० फुट अर्थात् घेरा लगभग ८०-९० फुट तक का होता है। इसी तने को कई ओर से काट-खोदकर खोखला कर लेते हैं और रहने के लिए कोठरियों की तरह काम में लेते हैं। इसका काष्ठ तो काम में आता ही है, ऊपर की छाल को कूटकर जो रेशे बनाते हैं, उनके रेशे बहुत उत्तम बनते हैं। इसका फल भी कुछ खट्टा, किन्तु अत्यन्त स्वादिष्ट होता है। यूकेलिप्टस वृक्ष अब तो अनेक देशों में बहुतायत से उगाये जाते हैं और इन्हीं के पत्तों के आसवन से बहुमूल्य यूकेलिप्टस तेल औद्योगिक पैमाने पर निकाला जाता है।

केलीफोर्निया के रेडवुड जंगलों में

जैसा कि ऊपर कहा है, इन विशालकाय वृक्षों की घनी क्रीडाभूमि तो केलीफोर्निया का वह क्षेत्र है जो उत्तर में ओरेगॉन (Oregon) से लेकर दक्षिण में सानफ्रान्सिस्को (San Francisco) तक ३० मील चौड़ा और ५०० मील लम्बा फैला हुआ है। इनमें अधिकांश वृक्ष सेक्युआ सेम्परवाइरेन्स (Sequoia sempervirens) जाति के हैं। इन्हें सामूहिक रूप से रेडवुड अर्थात् लाल काष्ठ इसलिए कहा जाता है कि इनका बाह्यावरण लाल वर्ण का होने से इनके तने लाल ही अधिक दिखते हैं। इसी वर्ष (१९६४) खोज-निकाले गये अब तक के वृक्षों में सर्वोच्च वृक्ष को सम्मिलित करते हुए नीचे छह वृक्षों की ऊँचाई के आंकड़े क्रम से दिये जा रहे हैं:

ऊँचाई	किस कुंज में प्राप्य
३६७·८ फुट	रेडवुड त्रीक
३६७·४	हम्बोल्ट काउण्टी
३६४·३	रेडवुड त्रीक
३५६·५	हम्बोल्ट रेडवुड स्टेट पार्क
३५२·६	हम·····
३५२·३	रेडवुड त्रीक

कोई लम्बा, कोई चौड़ा

इन लम्बे ही लम्बे वृक्षों के बीच एक वृक्ष ऐसा भी है जो चौड़ाई में अपनी सानी नहीं रखता। वह भी सेक्युआ जाति का ही

जन्मकुण्डली वृक्षों की भी होती है। चित्र में प्रदर्शित, संसार का उच्चतम वृक्ष, प्राचीनतम भी है। २२०० वर्ष से भी अधिक आयु प्राप्त, इस वृक्ष पर पिछले ५८३ वर्षों का इतिहास भी अंकित है

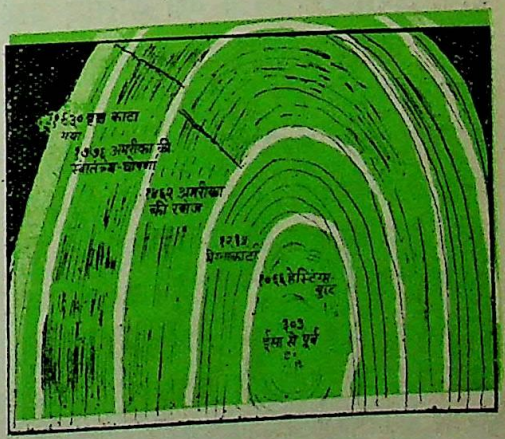

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन वृक्षों की नीची शाखाओं में लम्बे, चपटे और हरे पत्ते उगते हैं, जबकि अधिक ऊँचाई पर, सिरे के निकट, कत्थई रंग की सीकें जैसी उभर कर रह जाती हैं

है। उसे अति विशाल आकार के कारण वृहद् वृक्ष (Big Tree) का नाम दिया गया है जो पूर्णतः सार्थक है। इस समूह के वृक्ष एक प्रकार से डिनासुर-युग अर्थात् आदि-मानव से भी पूर्व काल के आज तक सजीव प्रतीक हैं। हिमयुग से बहुत पहले ये वृक्ष मध्य और उत्तरी यूरोप तक भी फैले हुए थे, किन्तु हिम-युग में शीत के प्रभाव से हटते-सिमटते, अब केवल केलीफोर्निया के जंगलों में सीमित रह गये हैं।

ये वृक्ष २७५ से ३२० फुट तक की ऊँचाई प्राप्त करते हैं और इनका तना ७० से ११० फुट तक के घेरे का होता है। लगभग आधी ऊँचाई तक तो ये वृक्ष शाखाएं और पत्रों से विहीन होते हैं। इन वृक्षों की ऊपरी छाल दो फुट से कम मोटी नहीं होती। एक-एक वृक्ष इतना काष्ठ दे सकता है कि उससे ५-५ कमरेवाले १५० मकान खड़े किये जा सकें। एक ही वृक्ष की भूमिगत जड़ें दो-तीन एकड़ भूमि में फैली रहती हैं। इनकी आयु २५०० से ५००० वर्ष तक पायी गयी है। आकाशीय बिजली इन पर प्रायः ही चोट करती है, किन्तु हलकी-फुलकी चोटें तो ये फुलझड़ी के समान सह लेते हैं। किसी विद्युत-प्रहार से यदि आग लग भी जाये तो काष्ठ का कुछ ही भाग जलकर रह जायेगा। इसकी लकड़ी मकानों तथा फर्नीचर आदि बनाने में मूल्यवान सिद्ध होती है। इन्हीं की भव्यता से प्रभावित होकर रोमन दार्शनिकों ने इनके कुंज-वन को 'देवताओं की क्रीडाभूमि' कहा है।

यह अनमोल धन और मानव-प्रवृत्ति!

सृष्टि द्वारा खुले हाथों लुटाया गया यह खजाना जिस देश के जिस भाग को आबाद किये हुए है, वह अपने उस देश-प्रदेश के लिए कितनी बहुमूल्य सम्पत्ति माना जाता होगा, यह केवल कल्पना का ही विषय है। १८वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सान-फ्रान्सिस्को तथा केलीफोर्निया जैसे महानगर खड़े करने में इन वृक्ष-कुंजों के जंगल के जंगल साफ कर दिये थे। तब से मोटर-ट्रकों द्वारा परिवहन तथा यंत्र-चालित आरे-आरियों की घरघराहट इन जंगलों पर छायी रही। इनके अतिरिक्त, अतिवृष्टि, पानी की बाढ़ तथा तत्पश्चात् के तीव्र पवन-झकोरों ने भी करनी में कसर नहीं रखी। इन वृक्षों के पाँवों तले से धरती धसकने लगी और ये ताश के महलों की भांति ढहते भी रहे। इस प्रकार अनुमान लगाया गया कि यदि ऐसा ही चलता रहा, तो आगामी ५० वर्षों से पूर्व ही इन सम्पत्ति से कहीं हाथ धोना न पड़ जाये। अतः अब तो राज्याश्रय में इनके संरक्षण और संवर्धन की समुचित व्यवस्थाएं की जा रही हैं।

यदि ये वृक्ष काष्ठ के न होते

और, पत्थर या लोहे के ढांचे हो तो अनुमान है कि अपने विस्तार और वजन को देखते हुए पत्थर के होने पर वाशिंगटन की प्रस्तर प्रतिमा और लोहे के होने पर संसारप्रसिद्ध, पेरिस के एफील टावर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक को नीचा दिखा देते। किन्तु लोहा और पत्थर अपनी जगह पर हैं और पेड़-पेड़ ही है, काष्ठ, काष्ठ ही है। काष्ठ अपने गुण कैसे छोड़ सकता है? वनस्पतिज्ञ जानते हैं कि पानी का अपना संरचनात्मक गुण और वानस्पतिक कोशाओं की रसाकर्षण विशेषता ही वे दो विलक्षण शक्तियां हैं जो भूमिगत जड़ों से लेकर गगनचुम्बी नवांकुर तक जीवद्रव्य पहुँचाती हैं। पत्तों द्वारा जलवाष्पन भी उस रस को ऊपर खींचने में विशेष सहायता करता है, क्योंकि ज्यों-ज्यों ऊपर के जल का वाष्पन होता जाता है, उसका स्थान लेने के लिए नीचे का जलभाग ऊपर उठता आता है।

केवल कुछ सप्ताहों का यह कोमल अंकुर, जो अभी एक पिन से बड़ा नहीं, आयु पाकर आकाश को चूमने लगेगा

प्रकृति ने इस बात की भी सावधानी रखी है कि ये पेड़ कहीं अनियन्त्रित रूप से १०००-५०० फुट ऊँचे उठते ही न चले जायें, क्योंकि अधिक ऊँचाई पर पवन के आंधी-तूफानी वेग को ये सह न सकेंगे। प्रायः ही ऐसे तीव्र पवन की चपेट में आकर लेटे-गिरते अनेक वृक्ष देखने को मिलते भी हैं।

इन्हें गिराना, एक विलक्षण विज्ञान

इन्हें काट-गिराना एक अत्यन्त जटिल गणनाओंयुक्त विज्ञान है। यह नहीं कि सामान्य वृक्षों की भांति आरा चलाया और चाहे जहां काट-गिराया। जैसी इनकी आकाशीय ऊँचाइयां हैं, वैसे इन्हें कठोर भूमि पर, चट्टानों पर या खड्ड-खाई में गिरने देना, लाखों का मूल्यवान काष्ठ नष्ट करना सिद्ध होगा। इसके लिए आधुनिक यंत्र-सज्जा और वैज्ञानिक उपकरणों सहित एक पृथक् ही दल नियत रहता है। वह विशेषज्ञ दल यह देखता है कि पेड़ का झुकाव किस ओर है, गिरते

ये रेडवुड के गगनचुम्बी वृक्ष कहीं (बायें से दायें) तो वाशिंगटन स्थित नेशनल ज्याग्राफिक के केन्द्रीय भवन को, तो कहीं संसारप्रसिद्ध पीसा की मीनार को, तो कहीं लन्दन के विख्यात बिगबेग-टावर को आधे और तिहाई तक बौने करके दिखा देंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय इसका अनुमानतः वेग क्या होगा और किस विशेष दिशा तथा कोण पर इसे गिराना आवश्यक है। दूसरा दल गिरने की भूमि को चारों ओर खोदकर नर्म बिस्तरे के रूप में कर देता है ताकि वृक्ष गिरे तो भी उसका काष्ठ चूर-चूर न हो जाये। इसके लिए सबसे पहले भूमि से कुछ ही ऊपर पहली काट लगायी जाती है और उस काट पर ही पेड़ के गिरने की दिशा निर्भर रहती है। काट लग जाने पर एक व्यक्ति १०० फुट ऊँचा तने पर जा पहुँचता है और वहां तने के गिर्द एक स्टील का रस्सा लपेटकर कस देता है। उस रस्से का सिरा नीचे एक भारी क्रेन से बंधा रहता है। जब गिराने की बारी आती है तब सब व्यक्ति सुरक्षा सीमा तक दूर हट जाते हैं और क्रेन झटके देना आरम्भ करता है। दूसरे-तीसरे झटके पर पेड़ चरमराकर नीचे भूमि के नर्म बिस्तर पर पहले धीरे, तत्पश्चात् वेग प्राप्त करता हुआ एक धमाके के साथ आ गिरता है।

१९१४ में टेलीफोन-आविष्कारक, ग्राहम बेल ने कितना समुचित परामर्श दिया था कि भेड़ों की भांति चौड़े रास्ते पर ही रेंगते-चलते जीवन व्यतीत क्यों करते हो? कभी-कभी तो रास्ते से हटकर खेतों-जंगलों की पगडण्डियों में विचार कर देखो। प्रत्येक बार अवश्य ही तुम्हें ऐसी-ऐसी चीजें देखने-जानने को मिलेंगी जो पहले कभी सुनी भी न हों। इन गगनचुम्बी वृक्षों की खोज वस्तुतः ऐसा ही रोमांचक विषय है जो केवल अनुभव ही किया जा सकता है, एकमात्र पढ़ लेने से उसकी प्रतीति नहीं होती। ०

मुसीबत क्यों मोल लेते हैं ?

क्या आप लेना चाहेंगे? नहीं, न! लेकिन आप हमेशा खरीददारी सेर या पौंड में करते हैं।

ये बाट गैरकानूनी हैं। जो दुकानदार इनका प्रयोग करते हैं उन्हें सजा मिल सकती है। पर आपको तो तुरन्त सजा मिल जाती है—आपके पैसे के बदले में आपको वस्तु कम मिलती है।

किलो में ही खरीददारी कीजिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुढ़ापा

डा. महेश्वरसिंह सूद

मनुष्य जानता है कि वह तथा अन्य प्राणी जिनके सम्पर्क में वह रहता है, उत्पन्न होते हैं; बढ़ते हैं, वृद्ध होते हैं तथा मृत्यु को प्राप्त होते हैं अथवा यों कहा जाये कि जन्म से लेकर मृत्यु तक शरीर में पहले शक्ति का संचय, बढ़ाव और फिर घटाव होता है। यही घटाव की प्रक्रियाएं मिलकर बुढ़ापा प्रदान करती हैं। जैसे-जैसे जीवन शक्तियों का ह्रास आरम्भ होता है, बुढ़ापा आने लगता है और एक अवस्था आने पर शरीर तथा इन्द्रियां निष्काम होकर अन्त में निष्प्राण हो जाती हैं।

अनेक प्राणी विज्ञानवेत्ताओं और तत्त्व-विज्ञानशास्त्रियों ने बूढ़ेपन को समझने और समझाने का प्रयास किया है, परन्तु अभी तक पूर्णरूप से इसके सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं हो पाया है। वृद्धावस्था का वर्णन करते हुए 'पर्ल' (Pearl) तत्त्व-विज्ञानवेत्ता ने कहा है कि वृद्धावस्था उन सब कारनामों का प्रसाद है जो हम बढ़ती हुई अवस्था में करते हैं। 'वारथिन' (Warthin) नामक वैज्ञानिक के अनुसार जड़ और प्राणी जगत दोनों ही नाशवान हैं और प्रकृति में ह्रास का भी उतना ही महत्त्व है जितना कि विकास का। जिस प्रकार प्राणीमात्र वृद्धि करते हैं उसी प्रकार सब वृद्धावस्था पाते हैं तथा मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

बुढ़ापा होता क्या है ?

'वृद्धि ही बुढ़ापा है और बुढ़ापे का अध्ययन ही वृद्धि का अध्ययन है।' यह कथन पूर्णरूप से यथार्थता को नहीं पहुँचता है, क्योंकि प्राणी की जन्म से लेकर युवावस्था तक की समस्त प्रक्रियाओं को वृद्धि कहा जाता है, परन्तु युवावस्था से वृद्धावस्था तक की वृद्धि को 'वृद्ध' होना कहा जाता है, इसका कारण यह है कि जीवन के प्रथम चरण अर्थात् पूर्वार्द्ध की प्रक्रियाओं और अन्तिम चरण अर्थात् उत्तरार्द्ध की प्रक्रियाओं में अन्तर रहता है, विशेषकर चपलता, बर्दाश्त और शक्ति का। इन्हीं गुणों की न्यूनता होने पर प्राणी वृद्ध कहा जाता है। सामान्यतः सभी का अनुभव है कि आयु के साथ मस्तिष्क की शक्तियों का भी क्षय होता है, आरम्भ में जो मस्तिष्क की विशेष शक्तियाँ होती हैं, जैसे बर्दाश्त, तुरन्त बातों का समझना, नवीन-नवीन बातों और कई-एक बातों का साथ-साथ ग्रहण करने की क्षमता आदि सब ही आयु के उत्तरार्ध में कम होने लगती हैं। यही नहीं एक समस्या का दूसरी समस्या से सम्बन्ध मिलाने की शक्ति, तुरन्त की घटी हुई घटनाओं और अपने आप रखी हुई वस्तुओं की याददाश्त तो प्रायः समाप्त ही हो जाती है। बार-बार प्रत्येक हार के साथ स्वयं को यह अनुभव होने लगता है कि अब याद ही नहीं रहती, बीते हुए दिन अच्छे थे और अब तो मुसीबत है। उदासीनता, उत्तेजनशीलता, ग्राह्यता, उग्रता, प्रति निविष्टता, उद्यमहीनता सब ही अपना घर करते चले जाते हैं और प्राणी स्वयं अपने आपको वृद्ध समझने और कहने लगता है। इन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तिष्क की शक्तियों के ह्रास के साथ-साथ शारीरिक बल में भी कमी होने लगती है। पहले प्राणी-विज्ञानवेत्ताओं का विचार था कि शरीर हाड़ और माँस का पुतला है यदि यह मजबूत है तो शरीर भी मजबूत है, परन्तु अब इस विचार में परिवर्तन आ गया है और विचार है कि तंत्रिका की दशा का द्योतक तंत्र ही शरीर की दशा है। हृष्ट-पुष्ट शरीर में ही मजबूत तंत्रिकाएं होती हैं और वही शरीर मजबूत कहा जाता है जिसमें मजबूत तंत्रिकाएं होती हैं। शरीर के सब ही अंगों का आपस में गठबंधन रहता है और स्वस्थ शरीर में ही समस्त अंग स्वस्थ होते हैं। शारीरिक बल में कमी प्रारम्भ होने पर सबसे पहले शरीर का भार कम होने लगता है फिर त्वचा में ढिलायी आती है जिससे झुर्रियाँ पड़ती हैं, चलने-फिरने में दिक्कत होने लगती है। शरीर के प्रत्येक जोड़ में भारीपन आ जाता है तथा दर्द आदि होने लगता है। इस प्रकार शरीर में अनेक अपवाद धीरे-धीरे इकट्ठे होते चले जाते हैं और इससे प्राणी में स्वयं अपने आप यह आभास होने लगता है कि अब वह बूढ़ा हो गया है। बूढ़ापन आहिस्ता-आहिस्ता आता है। शुरुआत तब मानी जाती है जब मनुष्य को घटनाओं को याद करने में दिक्कत होने लगती है, छोटी-छोटी बातें भूलने लगता है, आसपास के साथी-सम्बन्धियों के नाम याद नहीं रह पाते हैं, बार-बार एक ही बात को दोहराते रहने पर भी वह समय पर ठीक-ठीक याद नहीं कर पाता है। शरीर और मस्तिष्क का समन्वय अस्त-व्यस्त हो जाता है। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी के जीवन में वृद्धावस्था आती है और मानव में इस दशा को डाक्टर सिनाइल डिमेनशिया (*Senile Dementia*) नामक शब्द से उद्‌बोधित करते हैं।

चेतन जगत का बुढ़ापा तथा जड़ जगत का पुरानापन

चेतन जगत अर्थात् जन्तुओं और पेड़-पौधों दोनों में ही बुढ़ापा आता है। अक्सर लोगों ने देखा है कि बड़े-बड़े वृक्ष एक अवस्था आने पर रस टपकाने लगते हैं, जिसको आँसू बहाना कहा जाता है और इसके बाद वृक्ष कुछ ही दिनों में सूख जाता है। जन्तु जगत के बुढ़ापे से तो सब ही परिचित हैं। इस प्रकार चेतन जगत में तो बुढ़ापा आता ही है, इसी प्रकार का पुरानापन जड़ जगत में भी आता है। जड़ जगत में पुरानापन निरन्तर घिस-पिट, पर्यावरण के प्रभाव तथा टूट-फूट के कारण आता है। जबकि चेतन जगत में बुढ़ापा उसमें स्वतः अपने अन्दर मरम्मत करने की शक्ति के कम हो जाने तथा जीवन-काल में बीमारी आदि के कारण आता है।

क्या सब ही जन्तु बूढ़े होते हैं ?

१९वीं शताब्दी के प्रमुख प्राणी-विज्ञान-वेत्ता वीजमेन का यह विश्वास था कि सब ही बहुकोषकीय जन्तुओं में बुढ़ापा अवश्यम्भावी है। साथ ही उनका यह विचार था कि प्राणी की भलाई के लिए यह अवश्य होना ही चाहिए। परन्तु वर्तमान वैज्ञानिक तथ्यों के अनुसार अब यह आसानी से कहा जा सकता है कि सब ही प्राणी बूढ़े नहीं होते हैं। निम्न श्रेणी के जन्तु जैसे हाइड्रा, सीएनीमोन आदि में जीवन पर्यन्त अपनी कोषिकाओं का पुनः निर्माण करते रहते हैं, यहाँ तक कि सम्पूर्ण शरीर के कोषिकाएं बदल जाने पर भी जीवाणु वैसा-का-वैसा ही बना रहता है। वैज्ञानिकों ने सीएनीमोन जन्तु का परीक्षण भलीभाँति किया है और उनसे प्राप्त तथ्यों के आधार पर उनका कहना है कि जन्तु ९० वर्ष तक बिना नाप और रूप बदले बना रहता है, जबकि लगातार इसमें कलिकाओं द्वारा उत्पादन भी होता रहता है। एडिन्वर्ग विश्वविद्यालय में सेगेरिटा (Sagarita) नामक जन्तु को सन् १८६२ से लगातार १९४२ तक जीवित रखा जा सका। १९४२ में इस जन्तु की पानी के दूषित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने पर मृत्यु हो गयी, अन्यथा वैज्ञानिकों का मत था कि यह जन्तु अभी इतने ही वर्ष और इसी प्रकार जीवित रहता। कुछेक केशरूदण्डियों में कृत्रिम तौर पर साइनाइड के व्यवहार से वृद्धि तथा परिपक्वता को भी पलटा जा सका है। स्टिीनोस्टोमम कृमि में कलिकोत्पादन पूँछ के हिस्से से होता है जब सामान्यतः सब ही प्राणियों में जिनमें कलिकोत्पादन पाया जाता है सिर या शरीर के हिस्से से होता है तथा सिर का भाग बन जाने पर पिछला भाग बना करता है। परन्तु सोनेबर्न वैज्ञानिक ने यह दिखलाया कि पूँछ से नये कृमि बनते चले जा रहे थे, जबकि सिर के हिस्सों से कलिकोत्पादन न होकर, शीघ्र ही समाप्त होते चले जा रहे थे। इस प्रकार की प्रक्रियाएं प्रकृति में आश्चर्य ही उत्पन्न करने वाली मानी जाती हैं। अनेक अकशेरूदण्डियों में कोषिकाओं की संख्या निश्चित होती है और निष्कासन के पश्चात् किसी प्रकार का कोषिका विभाजन नहीं होता है अर्थात् उनकी संख्या अपरिवर्तित ही रहती है। इन जन्तुओं में पुनरुत्पत्ति करने की शक्ति बिलकुल नहीं होती है और यह अपने शरीर की टूट-फूट तथा जख्मों आदि की मरम्मत कर सकते हैं। ऐसे जन्तुओं में बुढ़ापा स्पष्ट दिखायी देता है। कुछ एक रोटीफर्स या सन्धिपादों में निश्चित जीवन-काल होता है तथा उनमें बुढ़ापा भी सदैव आता है। जन्तु चाहे अकशेरूदण्डी हो या केशरूदण्डी, पर जिनमें निश्चित वृद्धि-काल होता है अर्थात् जिनका शरीर निश्चित अवस्था तक बढ़ता है उनमें वृद्धि के समाप्त होते ही घटाव शुरू हो जाता है और यही घटाव बुढ़ापा होता है।

वृद्धि का सम्बन्ध कोषिकाओं के दुर्गुण होने से है। कुछ समय तक कोषिकाओं में यह शक्ति रहती है कि वे लगातार बढ़ती रहती हैं, जैसे ही कुछ काल के बाद कोषिकाओं में बढ़ने की शक्ति कम हो जाती है, उनकी वृद्धि अर्थात् बढ़ने की शक्ति समाप्त हो जाती है। सब ही कोषिकाओं का जीवन निश्चित होता है। मनुष्य के रक्त के लाल रुधिरकण का जीवन-काल तंत्रिका कोषिकाओं की अपेक्षा कहीं कम होता है। यदि रक्त कणों का जीवन-काल १०० दिन का रहता है, तो तंत्रिका कोषिकाओं का जीवन-काल १०० से १२० वर्ष तक का रहता है। इसी प्रकार विभिन्न जन्तुओं का जीवन-काल भिन्न हुआ करता है। कछुए आदि की कोषिकाएं मानव की कोषिकाओं से कहीं अधिक जीवित रहती हैं और इसीलिए कछुए का जीवन-काल अधिक होता है। शरीर की सब ही कोषिकाओं में केवल तंत्रिका कोशिकाओं को छोड़कर पुनरुत्पत्ति की शक्ति होती है। प्रोफेसर जी. पी. विडर ने यह सिद्ध किया कि मछली, साँप और मेंढक में जीवन पर्यन्त बढ़ने की शक्ति होती है और उनमें पक्षी तथा स्तनियों की अपेक्षा बुढ़ापा कम आता है। उसने यह भी सिद्ध किया कि उन पक्षियों और स्तनियों में जो पृथ्वीवासी होते हैं तथा शरीर से भारी होते हैं, बुढ़ापा जल्दी आता है तथा उनका जीवन-काल अर्थात् आयु कम होती है।

आयु को प्रभावित करने वाले कारक

आयु को प्रभावित करने वाले मुख्यतः दो कारक माने जाते हैं, एक पैत्रिक या आनुवंशिक और दूसरा, जीवन-यापन की विधि। मानव में आयु आनुवंशिक रहती है और इसी कारण प्रत्येक परिवार के सदस्यों की आयु प्रायः समान होती है। परिवार के सदस्यों की आयु उनकी ओज (vigour) के अनुसार होती है। ओज से शीघ्र वृद्धि, उच्च उत्पादन, शक्ति, बड़ा नाप तथा लम्बी आयु प्राप्त होती है। प्राणी-विज्ञानवेत्ताओं के अनुसार ओज उन बालकों में अधिक आता है जो दूर तथा भिन्न परिवारों से सम्बन्धित माता-पिता से उत्पन्न होते हैं अर्थात् जो विषम युग्मज होते हैं। प्रकृति में इसी कारण सदैव परसंसेचन की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिरुचि रहती है, क्योंकि इससे विषम-युग्मज प्राप्त होते हैं और इसी कारण ऐसे पिता से उत्पन्न बालक अपेक्षाकृत ओजस्वी और तेजस्वी होते हैं अर्थात् अधिक पुरुषतत्व के लिए और दीर्घ आयु वाले होते हैं। आयु को प्रभावित करने वाला दूसरा कारक व्यक्ति विशेष की जीवन-यापन विधि होती है। धर्म-प्रचारकों का यह मत है कि संयमी जीवन सदैव दीर्घ आयु वाला, सुखी तथा सम्पन्न होता है और असंयमी अर्थात् भोगी अल्प आयु वाला, दुःखी तथा निर्धन होता है। यह कथन स्तनीयों के सम्बन्ध में ही ठीक कहा जा सकता है। निम्न जन्तुओं में जीवन-काल ताप तथा खाद्य भिन्न करने से भी घट या बढ़ जाता है। वैज्ञानिकों ने अनेक जन्तु जैसे रोटीफर या वाटरफिलीज पर प्रयोग कर सिद्ध किया है कि कम तापमान पर जीवन-काल लम्बा हो जाता है तथा अधिक तापमान पर कम। इसी प्रकार खाद्य परिवर्तन से भी मैकके नामक वैज्ञानिक ने सिद्ध किया कि जीवन-काल घटता और बढ़ता है। यदि कम कैलोरीज वाला भोजन चूहों को दिया जाता है, तो उनकी वृद्धि कम होती है, परन्तु आयु अधिक हो जाती है, लेकिन यह क्रम एक काल तक ही चल पाता है। अवरुद्ध-वर्धन आयु को बढ़ने वाला माना जाता है या जितना वर्द्धन अवरुद्ध होकर होता है उतना ही जीवन-काल, अर्थात् आयु बढ़ जाती है।

क्या बुढ़ापे को रोका जा सकता है ?

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में हुई क्रान्ति-कारी खोजों के आधार पर यह कहना कुछ गलत नहीं होगा कि निकट भविष्य में ही मानव अपने को बूढ़े होने से रोक सकेगा। वैज्ञानिकों के इस विचार को कि प्रत्येक प्राणी के जीवन में बुढ़ापा अनिवार्य होता है, चुनौती दी जा चुकी है। प्राणी-विज्ञानवेत्ताओं का स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त है कि 'जीवन-काल' वंशानुगत ही होता है, भी हिल चुका है। विज्ञान ने बुढ़ापे की घटाव की प्रक्रियाओं को रोकने के साधन मालूम किये हैं और इनमें सबसे प्रमुख 'प्रापरडीन' नामक इलेक्ट्रोन की खोज है जिसको वैज्ञानिकों ने इलेक्ट्रोन माइक्रोस्कोप की सहायता से परमाणु के बाहरी खोल में देख लिया है और गुण जान लिये हैं। इसके प्रयोग से शरीर में सभी प्रकार के रोगों को रोकने की सामर्थ्य आ जाती है साथ ही ऐसे रासायनिक परिवर्तन भी हो जाते हैं जिनसे प्राणी के वंशानुगत लक्षण बदल जाते हैं तथा इतने परिवर्तित हो जाते हैं कि प्राणी कभी बुढ़ापा महसूस ही नहीं करता है। इसके प्रयोग से मानव अपने आपको सदैव युवक ही रखने में सफल हो सकेगा, ऐसा वैज्ञानिकों का दृढ़ मत हो गया है। ज्ञान वृद्धि से प्रोटीनों (खाद्योंगों) के सारे रहस्य सरलता से सामने आते जा रहे हैं और शीघ्र ही रसायनिक उपायों द्वारा सारी मानसिक अशांतियों और तंत्रिकाओं की अव्यवस्थाओं पर पूरा-पूरा काबू संभव हो सकेगा और इसके होते ही प्राणी के जीवन और मृत्यु का प्रश्न वैज्ञानिक का अपना हो जायेगा। ऐसा दिन अब दूर नहीं है, यह निश्चित समझ लेना चाहिए।

इलाज का घूंसा कौन आज्माए ?

लन्दन का प्रसिद्ध घूंसेबाज, डेनी ही आज्मा सका था। जन्म से बहरा और गूंगा होने पर भी उसने अपनी अपंगता से हार नहीं मानी और घूंसेबाजी में नाम कमाया, खूब कमाया। घूंसेबाजी के ही दौरान में विपक्षी का एक घूंसा जो चूककर डेनी के सिर पर लगा, उसने अचानक ही मुंह और कान की बन्द इन्द्रियों के मानो द्वार खोल दिये। अब डेनी बोलता भी था और सुनता भी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

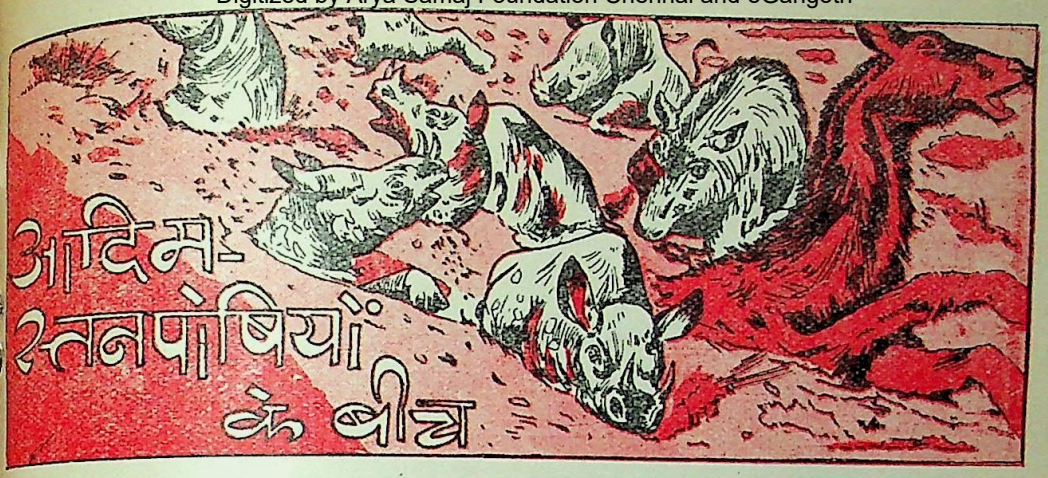

आदिम स्तनपोषियों के बीच

कृष्णकुमार वर्मा

करोड़ों वर्ष पूर्व हमारी यह पृथ्वी कैसी रही होगी, यह ज्ञात करने के लिए हमें पृथ्वी के गर्भ में झाँकना होगा। इसके गर्भ में ऐसे-ऐसे प्राणियों तथा वनस्पतियों के अवशेष, विशेषत: प्रस्तरावशेष मिलते रहते हैं जो हमें अपने-अपने युग की बहुत-सी बातें बताते हैं। फिर भी इनकी बातें समझना साधारण-तया सरल नहीं। उसके लिए विशेष प्रशिक्षण और कठिन अभ्यास की आवश्यकता है। वह विज्ञान की एक पृथक् ही शाखा है जिसे जीवाश्म विज्ञान (palaeontology) कहते हैं। ऐसे विज्ञानवेत्ता भू-स्तरों को इस प्रकार देखता है, मानो प्राचीन ग्रन्थ के पृष्ठ उलट रहा हो।

पृथ्वी के वे पट, जीवित समाधियां

आज से ५००-७०० करोड़ वर्ष पहले पृथ्वी पर दैत्याकार डिनासरों (dinosaurs) का साम्राज्य था। डिनासरों के बाद स्तनपोषियों और तत्पश्चात् मानवों को भी पृथ्वी पर आना ही था, क्योंकि सृष्टिक्रम ऐसा ही था। अत: बाद के आने वाले प्राणियों को जीवनधारण में कठिनाई न पड़े इस हेतु प्रकृति को यह भी देखना था कि उनसे पूर्व के सत्तारूढ़ प्राणियों से यह भू-मण्डल खाली कराया जाये। इसके लिए प्रकृति के पास एक ही उपाय था और वह यह कि वे अजेय प्राणी स्वत: ही नाश को प्राप्त हों। इसके लिए जिन साधनों का आश्रय लिया गया, उनमें से कुछेक थे—ज्वालामुखीय लावा, दलदल के समुद्र-के-समुद्र, कोलतार की बड़ी-बड़ी झीलें तथा हिम के आवरण आदि।

आज अमरीका का जो उत्तरी भाग है वह उन दिनों ऐसे विशालकाय प्राणियों का मुख्य समाधि-स्थल रहा है। वहाँ के विस्तृत मैदानों पर अतिवृष्टि के दिनों में जो नदियाँ उफन उठती थीं, वर्षाभाव के दिनों में वे ही अपने मार्ग बदल देती थीं और लम्बे-चौड़े गहरे दलदल छोड़ जाती थीं, पानी के अभाव में आकुल-व्याकुल उन प्राणियों के दल-के-दल उस ओर आ निकलते और प्यास उन्हें दलदल की ओर खींच ले जाती। प्यास तो उनकी बुझती, न बुझती किन्तु चार कदम आगे बढ़ते ही वे दलदल में धंसने लगते। आगे बढ़ने तथा पीछे लौटने, का कोई प्रश्न ही नहीं और यह इसलिए सम्भव नहीं हो पाता, क्योंकि पीछे से आने वाले हजारों अन्य जीव उन्हें आगे ही धकेलते हुए स्वयं भी धंस जाते।

यही हाल कोलतार के पोखरों का होता है। सतह के ऊपर की पतली झिल्ली ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खतरनाक रहती कि पांव रखते समय तो पता न चलता, किन्तु एकाएक ही धोखा दे जाती और प्राणी जितना निकलने को छटपटाता, उतना ही अन्दर धंसता जाता। इसी प्रकार हिमयुगीन बर्फ के तूफान और ज्वालामुखीय लावा जिधर को रुख कर लेते, प्राणियों को खड़े-ही-खड़े अपनी लपेट में ले लेते। बर्फ में दबे ऐसे अनेक कंकाल मिलते रहे हैं जिनसे प्राणियों की ऐसी जीवित समाधियों के प्रमाण प्राप्त होते हैं। यह पृथ्वी ऐसे ही समय-समय पर प्राणियों को अपने अंक में ले-लेकर करवट बदलती रही है, मानो पृष्ठ उलटती रही है। वे ही पृष्ठ आज का हमारा जीवाश्मवेत्ता पढ़-पढ़कर हमें अति रोचक इतिहास सुनाता है।

युग-युगों के प्राणियों का काल-विभाजन

पृथ्वी के काल-निर्धारण की सुविधा के लिए आज से केवल २० हजार वर्ष पूर्व से लेकर लगभग ५ खरब अर्थात् ५×१०^{१२} वर्ष के काल-विस्तार को चार बड़े-बड़े युगों में विभाजित किया गया है—१. प्री-केम्ब्रियन (pre-cambrian) आरम्भ से ६० करोड़ वर्ष तक; २. पेलियोजाइक (paeleozoic) २१ करोड़ वर्ष तक; ३. मेसोजाइक (mesozoic) १३ करोड़ वर्ष तक और ४. सीनोजाइक (cenozoic) २० हजार वर्ष पूर्व तक। इन युगों में क्रमशः निम्न प्राणियों का अपना-अपना उदय, मध्य और अस्तकाल रहा है—१. नन्हें, छिपे जन्तु (hidden life); २. अपृष्ठवंशी (invertebrates) तथा मत्स्य (fishes); ३. रेप्टाइल्स (reptiles) तथा ४. स्तनपोषी (mammals) और १० लाख वर्ष पूर्व से मानव (man) उपरोक्त चौथा युग अर्थात् सीनोजाइक युग लगभग ७ करोड़ वर्ष का रहा है और छह चरणों में विभाजित है। इसके चौथे चरण में अर्थात् आज से डेढ़ करोड़ वर्ष पूर्व आदिम स्तनपोषियों का अस्तकाल आरम्भ हो चुका था और पाँचवें चरण में अर्थात् एक करोड़ वर्ष पूर्व हिमयुग तथा मानव का उदय आरम्भ हुआ था। उन आदिकालीन स्तनपोषी प्राणियों की ५½ करोड़ वर्ष की गाथा बड़ी गौरवमयी रही है, जिसकी यत्र-तत्र झलकियाँ निम्न पंक्तियों में प्रस्तुत हैं।

आज के सफेद अफ्रीकन राइनो का सिर

स्तनपोषियों का विकास मन्द क्यों?

अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि आदिकालीन रेप्टाइल्स और स्तनपोषियों को प्रकृति ने लगभग एक समान ही (७-८ करोड़ वर्ष) काल-विस्तार दिया था, किन्तु जितने शीघ्र और विशालकाय रेप्टाइल्स विकसित हुए, स्तनपोषी उतने न हो सके। ऐसा क्यों? इसका एक ही कारण समझ में आता है। वह यह कि रेप्टाइल्स के दौर-दौरे में प्रारम्भिक स्तनपोषी जीव बहुत ही छोटे होते थे और उन दैत्यों से जान बचाने के लिए जहाँ-तहाँ बिलों में भागते-छिपते थे। नन्हीं गिलहरी के आकार के टीलोडस (Ptilodus) तृणभक्षी थे और जालमडालेस्टीज (Zalambdalestes) तथा टीनेकोडान (Ctenacodon) कीट-भक्षी थे। ये उन डिनासरों के आगे ऐसे लगते थे जैसे हाथी के सम्मुख भुनगे। अतः अति दीर्घकाल के पश्चात् जब हिमयुग ने अपने पांव फैलाये और डिनासर क्रमशः समाप्त होते चले, तभी उन स्तनपोषियों को सांस लेने का अवकाश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिला और तभी से रहे सहे अल्पकाल तक वे अपनी बानगियां दिखा सके।

प्रारम्भिक स्तनपोषी कैसे रहे होंगे ?

रेप्टाइल्स में सीनोनेथस (Cynognathus) प्राणी ऐसा था जिसमें स्तनपोषी लक्षणों का मिश्रण पाया जाता था। उसमें दोनों लक्षणों के सम्मिश्रण के कारण आज भी वत्तखचोंची प्लेटिपस को हम देखते हैं कि वह स्तनपोषी होता हुआ भी अपने बच्चे रेप्टाइल्स की भांति अण्डों से पैदा करता है। साथ ही यह भी निश्चित है कि कंगारू के पुरखे, थानीयुक्त प्राणी भी आदिम स्तनपोषियों में थे। इसीलिए आज प्लेटिपस (Platypus) तथा ओपोसम (Opossum) दोनों को सजीव फासिल्स माना जाता है। सजीव फासिल्स पर विस्तृत लेख विज्ञान-लोक, अप्रैल १९६४ के अंक में दिया जा चुका है।

वह आदिम स्तनपोषी जन्तु, सीनोनेथस सात फुट लम्बा था और दांतों की रचना स्तनपोषियों की दन्त-रचना का प्रारम्भ प्रदर्शित करती थी अर्थात् भेदक (canine) दांत रेप्टाइल्स की अपेक्षा लम्बे और शेष दांत अधिक तीक्ष्ण होते जा रहे थे। इस जन्तु के पांव मजबूत थे और रेप्टाइल्स की भाँति शरीर के पार्श्व में न होकर नीचे की ओर थे जो शरीर को उठाये रखते थे। दूसरे स्तनपोषी जन्तु, ओपोसम का वर्णन भी विज्ञान-लोक अप्रैल १९६४ के अंक में दिया जा चुका है।

गर्भनालयुक्त स्तनपोषी

यह न समझा जाय कि गर्भनालयुक्त (placental) स्तनपोषी जीव इसी युग के हैं। छह करोड़ वर्ष पूर्व भी ये थे, इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। ऊपर वर्णित सीनोनेथस तो आधे रेप्टाइल, आधे स्तनपोषी थे, क्योंकि प्लेटिपस की भांति वे बच्चे तो अण्डों से ही उत्पन्न करते थे। इनके अतिरिक्त सालेनाडान (Solenodon) गर्भनालयुक्त स्तनपोषी का सही-सही स्वरूप हैं। ये भी उस आदियुग में थे और आज भी अधिकतर क्यूबा तथा हेइती द्वीपों में पाये जाते हैं। इन्हें भी इसी कारण जीवित फासिल्स का नाम दिया गया है। इनमें और ओपोसम में मुख्य अन्तर यही है कि ओपोसम की मादा वर्ष में दो बार २०-२० बच्चे मक्खी जैसे नन्हें-नन्हें देती है जबकि सालेनाडान की मादा वर्ष में एक बार, एक ही बच्चा देती है।

खुरों वाला प्रथम स्तनपोषी

सीनोजाइक युग के प्रथम एक करोड़ वर्षों के मध्य एक स्तनपोषी जन्तु ऐसा भी था जिसके प्रत्येक पंजे खुर सहित थे। पेण्टोलम्डा (Pantolambda) नामक वह प्राणी लगभग एक भेड़ जितना ही था। उसका सिर लम्बा, उसके भेदक दाँत बड़े और निचले जबड़े के अगल-बगल निकले रहते थे। उसकी टांगें ठिगनी, किन्तु गठी हुई और एक-एक पंजे में एक-एक खुर था। वह अधिकांश पर्णजीवी था।

उसके कुछेक लाख वर्षों पश्चात् उसी का एक वंशज पाया गया। उसे बारीलम्डा (Barylambda) नाम दिया गया। वह अपने पुरखे के मुकाबले डील-डौल में काफी बढ़ा-चढ़ा था। चार फुट ऊँचा और आठ फुट लम्बा उसका शरीर भारी-भरकम भी था। उसके पिछले पांव अगले पांवों की अपेक्षा लम्बे होने से वह आगे को झुक कर चलता था। उसकी पूंछ काफी घनी और सुदृढ़ थी। वह प्राणी भी कन्दमूलाहारी था।

उस काल का सबसे बड़ा जन्तु

जिस काल में उपरोक्त प्राणी, बारीलम्डा उत्तर-पश्चिमी अमरीका के मैदानों में विचर रहा था, यूटा (Utah) के उत्तरी यूनिटा (Unitas) पर्वत-प्रदेश में एक अन्य विशाल प्राणी भी आबाद था। यूनीटाथीरीयम (Unitatherium) नामक वह प्राणी उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल का सबसे विशालकाय प्राणी था। १२ फुट लम्बा उसका शरीर कंधों तक ७ फुट पहुँचता था। गेंडे जैसा भारी उसका शरीर था, पांव मोटे और पूँछ पतली थी। पूँछ के सिरे पर बालों का गुच्छा था। उसकी सबसे बड़ी विचित्रता यह थी कि उसके सिर पर छह सींग थे। उनमें दो सींग आँखों के पीछे, दो सींग आँखों से सटे हुए और दो उसकी नाक के सिरे पर थे। नाक के सिरे के नीचे ही दो भेदक दाँत, मुड़े और तीक्ष्ण थे जो ऊपर के होंठों से निकले हुए नीचे को झुके थे।

बदलते युग के बदलते प्राणी

युग बदलता आ रहा था। हिमयुग का अस्तकाल वातावरण में नयी गर्मी ला रहा था। जंगल के जंगल वनस्पतियों से भरपूर थे। अन्तिम युग सीनोजाइक के ईयोस नामक उस काल की यह बात है जिसका विस्तार आज से १।। करोड़ वर्ष से लेकर ५ करोड़ वर्ष तक रहा है। उस काल में क्रमशः चीते, भेड़िये, घोड़े, ऊंट और हाथी आदि के पुरखे कैसे-कैसे रहे होंगे, उनकी संक्षिप्त झाँकी निम्न भांति है।

बिल्ली, चीते, शेर के वंशप्रवर्तक

पेट्रिआफील (Patriofelis) उस प्राणी का नाम था जिसकी उपज है बिल्ली-परिवार के ये शेर, चीते आदि। वह प्राणी आज के शेर के बराबर था। उसका सिर अवश्य बड़ा था, किन्तु बुद्धि का भाग उतना ही छोटा था। उसके जबड़े मजबूत और दाँत शिकार की चीराफाड़ी योग्य पैने और लम्बे थे। शरीर बालों से ढंका रहता था। पांव छोटे और पंजे चौड़े होने के कारण प्रायः ही उसे तैरने में सरलता रहती थी।

टोक्सोडान्ट (Toxodont) का सिर

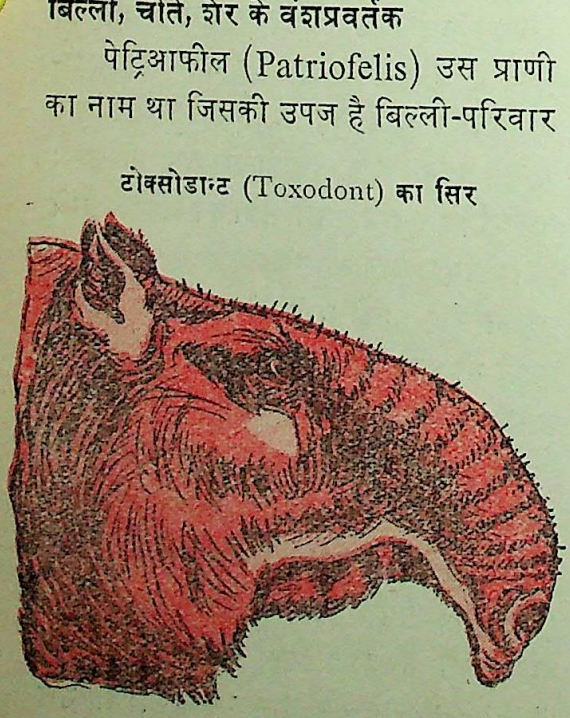

इतने लक्षण मिलते हुए भी पेट्रिआफील की अपेक्षा मायकिस (Miacis) को बिल्ली-परिवार का सही प्रवर्तक माना जाता है। यह जन्तु नन्हा था और गिलहरी से बड़े आकार का नहीं था। इसके नाम का अर्थ है—नन्हा नुकीला जो इसके दाँतों को देखते हुए कहा गया है। उस काल के स्तनपोषियों में यही प्राणी सर्वप्रथम ऐसा था जिसके दाँत शिकार को चीरने-फाड़ने योग्य थे। इसका सिर, कान और पूँछ, तीनों विशेषतः लम्बे थे। इसके प्रत्येक पंजे में पांच-पांच अंगुलियाँ और उन्हीं में तीखे नाखून थे। उन पंजों से उसे पेड़ों पर चढ़ने में तथा शिकार को पकड़ने में सहायता मिलती थी।

कुत्ते, भेड़िये के पुरखे

लगभग ५० लाख वर्ष पूर्व पृथ्वी पर विचरता डेफीनोडान (Daphoenodon) नामक प्राणी कुत्ते, भेड़िये का पुरखा माना जाता है। इसके ४।। फुट लम्बे शरीर में लम्बी पूंछ भी थी। ठिगने, मजबूत पांवों से बिल्ली जैसी चुस्ती से चल लेता था, किन्तु इसका सिर आज के भेड़िये जैसा ही था। यह अधिकतर हिरन के सींगयुक्त जन्तुओं का शिकार करता था।

आरम्भिक घोड़ा

उपरोक्त काल के अन्तर्गत बिल्ली जितना हाथभर का छोटा प्राणी भेड़िये शेरों से जान बचाये फिरता था, उसे एपीहिप्पस (Epihippus) कहते थे। शरीर-रचना खासकर पंजों की बनावट पर ही वह प्राणी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

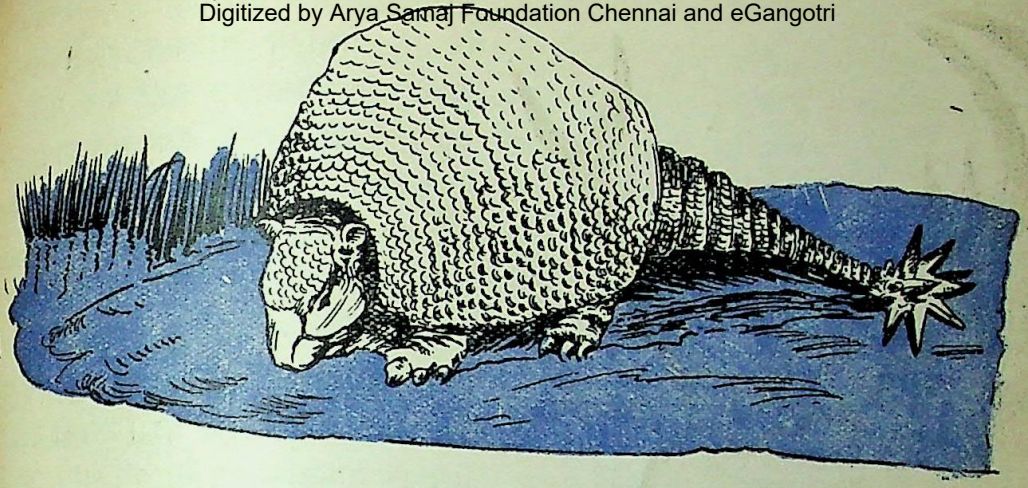

ग्लाप्टोडान (Glyptodan)

आगे चलकर विकसित होता हुआ घोड़े के रूप में आया। उसके अगले पंजों में चार-चार और पिछले में तीन-तीन अंगुलियाँ थीं। उसकी पूंछ के सिर पर बालों का गुच्छा था और दांत इस योग्य थे कि केवल घास-पात चबा सके। कालान्तर में वही प्राणी भेड़ जितना बड़ा होने पर एपीहिप्पस (Epihippus), कुछ और बड़ा होने पर मेसोहिप्पस (Mesohippus) और गधे जितना होने पर मेरीकहिप्पस (Merychippus) होते-होते अन्त में ईक्वस (Equus) नाम से विकसित हुआ जो आज के घोड़े से बहुत मिलता-जुलता था।

पहला ऊँट

प्रोटिलोपस (Protylopus) नामक प्राणी वह पहला जन्तु था जिसे आज के ऊँट में क्रमशः परिणत होना था। यह भी आरम्भिक घोड़े, ईयोहिप्पस अर्थात् उस छोटी बिल्ली से बड़ा नहीं था जिसका विकसित रूप आज का घोड़ा है। प्रोटीलोपस समय के साथ-साथ आक्सीडक्टाइलस (Oxydactylus) और स्टीनोमाइलस (Stenomylus) नाम से शरीर में बढ़ता रहा और ये दोनों प्राणी तब तक आज के ऊँट जैसे लम्बे पांवों, लम्बी गर्दनयुक्त हो चुके थे। अपनी लम्बी टाँगों की सहायता से ये तेज दौड़ भी लेते थे। उन्हीं में से कोलोराडो के मैदानों में विचरता ऐसा प्राणी भी पाया गया जो हूबहू आज के ऊँट जैसा था और १८ फुट ऊँचा भी था। उसकी कुल ऊँचाई में आधा भाग तो गर्दन का ही था। उसे अल्टीकेमीलस (Alticamelus) अर्थात् ऊँचा ऊँट कहते थे। जिराफी-ऊँट (Giraffie-camel) उसका दूसरा नाम था।

और, हाथी इनके वंशज हैं

मुश्किल से तीन फुट ऊँचा और आज के औसत शूकर जैसा छोटा प्राणी मीरीथीरियम (Moeritherium) आज के हाथियों का वंशप्रवर्तक था। उसी से अगली पीढ़ी में ट्राईलोफोडान (Trilophodon) हुआ जो मीरीथीरियम से लम्बाई में दो फुट अधिक और ऊँचाई में कुल दस फुट तक पहुँचा था। साथ ही इसके एक सूँढ़ और दो लम्बे, बाहर निकलते दांत भी थे। इसमें विचित्रता यह थी कि इसका नीचे का होंठ ६–७ फुट लम्बा, लगभग सूंढ़ के जितना था। उसी की शाखाएं अफ्रीका और एशिया तक भी पहुँची। उन शाखाओं में विशालकाय हाथी मेमथ (Mammoth) की भी एक प्रशाखा निकली जो अपने युग के सबसे बड़े जन्तु माने गये। उनमें से जो मेमथ एशिया, अफ्रीका और उत्तरी अमरीका के निवासी थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोसिनथेटोसरस (Prosynthetoceras)

वे बिलकुल ही केशरहित शरीर के थे और जो यूरोप तथा साइबेरिया में रहते थे वे लम्बे बालों युक्त थे, जिन्हें ऊनी रोयेंदार मेमथ (Wooly Mammoth) कहते थे। सही अर्थ में विशाल गजराज कहलाने योग्य तो भारी-भरकम मस्टोडान (Mastodon) थे जो उत्तरी अमरीका के बर्फीले मैदानों में विचरते थे और जिनके लम्बे-लम्बे दांत अन्दर की ओर मुड़े रहते थे।

कुछ अति विचित्र जन्तु

वज्र-अश्व (Thunder horse), मूर्ख-पाद (Foolish footed), खंजर-बिल्ली (Stabbing cat) तथा शैतानी पेंच (Devil corkscrew) नामक चार प्रकार के जन्तु उस काल में ऐसे थे जिनके लिए अति विचित्र जन्तु शीर्षक सर्वथा सत्य सिद्ध होता है।

वज्र-अश्व—अमरीका स्थित डकोटा प्रदेश के आदिवासियों में जिस पौराणिक तूफानी घोड़े का उल्लेख है उसे वे मानते थे कि आकाशीय मेघ गर्जन के साथ ही वह धरती पर आता होगा। उन्हें प्राय: ही शिकार करते-करते ऐसे विशाल प्राणी के अस्थि-कंकाल मिलते थे जिनका वे अनुसन्धान नहीं कर पाते थे। अनुसन्धानकों ने खोज के पश्चात् ज्ञात किया कि आकाश से बरसने वाला वैसा कोई जन्तु नहीं था। वह ब्रान्टोथीरियम (Brontothetium) वर्ग का विशालकाय जन्तु था जो अपने भारी पांवों से ही छोटे प्राणियों का शिकार कर लेता था। उसका शरीर १५ फुट लम्बा तथा ८ फुट ऊँचा था। उसकी नाक के सिरे पर दोमुहा बड़ा सींग भी था। उसी से मिलता-जुलता मिस्र के मैदानों में विचरता अरसीनोईथीरियम (Arsinoitherium) नाम का एक जन्तु और था जो ११ फुट लम्बा तथा ५॥ फुट ऊँचा था। उसका शरीर आज के हाथी जैसा था और सिर गेंडे जैसा। उसके चार सींग थे जिनमें दो तो आँखों से सटे हुए, छोटे ही थे। शेष दो सींग नाक के ऊपर, काफी बड़े थे। उनका भार सम्हालने के लिए ऊपरी जबड़े और नथुने से निकलती एक अतिरिक्त हड्डी भी थी।

मूर्ख-पाद

यह प्राणी लगभग २॥ करोड़ वर्ष पूर्व उत्तरी अमरीका में पाया जाता था। लम्बे समय तक इसके अस्थि-कंकाल वैज्ञानिकों को चक्कर में डालते रहे, क्योंकि वे सहज तय ही न कर पाये कि इसे किस निश्चित वर्ग में रखा जाये। इसका शरीर (ऊपरी भाग) एक जन्तु से मिलता-जुलता था तो इसके पांव दूसरे ही जन्तु जैसे थे। इसे मोरोपस (Moropus) अर्थात् मूर्खपाद (Foolish footed) नाम दिया गया था। इसके पांवों में खुर के स्थान पर नुकीले नाखून होते थे जिनसे अनुमान लगाया गया कि ये या तो मिट्टी में बिल बनाते होंगे या पेड़ों पर चढ़ते होंगे। इतना अनुमान भी तभी लगाया जा सका जबकि संयोगवश इसका एक पूरा कंकाल हाथ लगा। ऐसा हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र प्राणी डाइनोहीयस (Dinohyus) था जो ११ फुट लम्बा और छह फुट ऊँचा था और जिसका सिर कम-से-कम तीन फुट लम्बा था। इसके भेदक दांत नुकीले हाथी दाँत की भाँति जबड़ों के अगल-बगल निकले रहते थे।

खंजर-बिल्ली

इसका समय एक करोड़ वर्ष पूर्व का आंका जाता है। स्मीलोडान (Smilodon) नामक यह जन्तु नुकीले दांतोंयुक्त बिल्लियों में सबसे बड़ा था। इसके नाम का अर्थ भी खंजर-दन्ती (knife-tooth) है। इसे साबरदन्ती बाघ(Sabertoothed tiger) का निकटतम जन्तु समझा जाता है, यद्यपि वह जन्तु इससे अलग ही शाखा का है। यह जन्तु आज के शेर जैसा था, किन्तु शरीर में कुछ ही छोटा और भारी था। इसके ऊपरी जबड़े से जो इंच भर लम्बे, तीक्ष्ण, डरावने दांत बिलकुल खंजर जैसे ही निकले रहते थे। यह अपने मजबूत हाथ-पांव से शिकार को जकड़े रखकर अपने छुरी जैसे दांतों से चीरकर रख देता था। इसके नथुने मुंह की थूथन से काफी पीछे को हटकर थे जिससे विकराल दांतों के लम्बे बालों में मुंह धँसा हुआ होने पर भी श्वास लेने में सरलता रहती थी। इसी के जैसा विशाल और विकराल आज के बीवर (Beaver) का आदिजन्तु था जो शरीर में १० फुट लम्बा और तीन फुट पूँछ युक्त था। बड़े-से-बड़ा पेड़ गिरा लेना उसके लिए सरल था।

शैतानी पेंच

प्रथम बार जब वैज्ञानिकों को खुदाई में प्रस्तरावशेष बने हुए मिट्टी के कुछेक पेंच जैसी आकृतियाँ मिलीं तब वे यही समझे कि कदाचित् कोई पेंचदार पौधे की जड़ का भाग होगा जो उस रूप में बन गया। अधिक खोजने पर उन्होंने देखा कि मिट्टी की वे सूखी हुई पेंचदार नालियाँ ऐसी थीं, मानो कोई बिलकारी जन्तु उसी मार्ग से अपने भूमिगत घर में रहता रहा हो। वास्तविकता भी यही थी कि सेरातोगालस (Ceratogaulus) नामक वह जन्तु था जो शरीर में दो फुट का था और जिसके सिर के बीचोंबीच दो पैने सींग भी थे।

आदिम-स्तनपोषियों के युद्ध का एक काल्पनिक चित्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस काल का सबसे बड़ा भूमिचर

इस जन्तु का सबसे पहला कंकाल १९२४ में पाया गया। मूलत: उसे गेंडे जैसे राइनोसिरोज (Rhinoceros) वर्ग का माना गया। टेलियोसिरोज (Teleoceros) और लम्बे बालोयुक्त राइनोसिरोज (Woolly rhinoceros) उस काल के वृहत्काय जन्तु थे। उन्हीं से यह जन्तु भी विकसित हुआ जिसे बेलूचिथीरियम (Baluchitherium) नाम दिया गया। यही जन्तु अपने काल के भूमिचरों में सबसे विशालकाय था। इसका शरीर तो १८ फुट लम्बा था ही, सिर उससे भी चार फुट ऊँचा था। वह आज के किसी भी दुमंजिले मकान के बराबर अपना सिर रखकर निकल सकता था।

सर्वाधिक बुद्धिशाली और सर्वविजयी जन्तु मानव !

जन्तु-विज्ञान की दृष्टि में मानव एक जन्तु पहले है, अन्य कुछ, बाद में। प्लाइस्टोसन (Pleistocene) काल के अर्द्धभाग में अर्थात् आज से लगभग ५ लाख वर्ष पूर्व मानव नामक ऐसे जन्तु का प्रादुर्भाव हो चुका था जो बड़े-से-बड़े और विकट-से-विकट जन्तु का शिकार निडरता से कर लेता था, क्योंकि उसके पास वृहत् मस्तिष्क जैसी एक ही विलक्षण वस्तु थी जो अन्यान्य जन्तुओं के पास अपेक्षाकृत बहुत ही न्यून अथवा नहीं के बराबर थी। बुद्धि के ही बल पर वह आदिमानव अपने गिर्द की परिस्थितियों पर काबू पा लेता था, आवश्यक निर्णय कर लेता था और अपने शरीर-सामर्थ्य से कितने ही गुना अधिक सम्पन्न जन्तुओं को चतुरता से फांस लेता था।

मीगाथिरियम (Megatherium)

आदिकालीन अन्तिम स्तनपोषी जन्तु

प्रस्तुत लेख में चर्चित काल की शृंखला का अन्तिम स्तनपोषी जन्तु उत्तर और दक्षिण अमरीका में रहने वाला विशालकाय रीछ जैसा मीगाथीरियम (Megatherium) और स्माइलोडान (Smilodon) था। इसका काल केवल १० लाख वर्ष से लेकर आज से ८,००० वर्ष पूर्व तक का है। इस काल के अन्तर्गत चार बार तो हिमयुग आया और चला गया। अन्तिम बार उसे लौटे हुए १२,००० वर्ष हो गये और अभी भी क्रम जारी ही है। भूमण्डल का ताप बढ़ने के साथ ही बड़े-बड़े हिमनद पिघल कर उत्तर से दक्षिण की ओर जो उतरने लगे, तो इन्होंने प्रागैतिहासिक स्तनपोषियों को अपनी लपेट में लेना शुरू किया। उसी दौर में ये दो प्राणी बच रहे थे जो ८,००० वर्ष पूर्व ही समाधिस्थ हो चुके हैं। इनमें मीगाथीरियम एक हाथी जैसा ही था। भूमि पर खड़े-खड़े वह १८ फुट ऊँची वृक्ष की डाल के पत्ते मजे से चबा सकता था।

यों ५॥ करोड़ वर्ष पूर्व आरम्भ होकर आज से ८,००० वर्ष पूर्व तक की इन आदिकालीन स्तनपोषी प्राणियों की कहानी ने जो उतार-चढ़ाव देखे हैं, वे कम रोचक हैं नहीं !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकही युग का दूसरा गेलीलियो

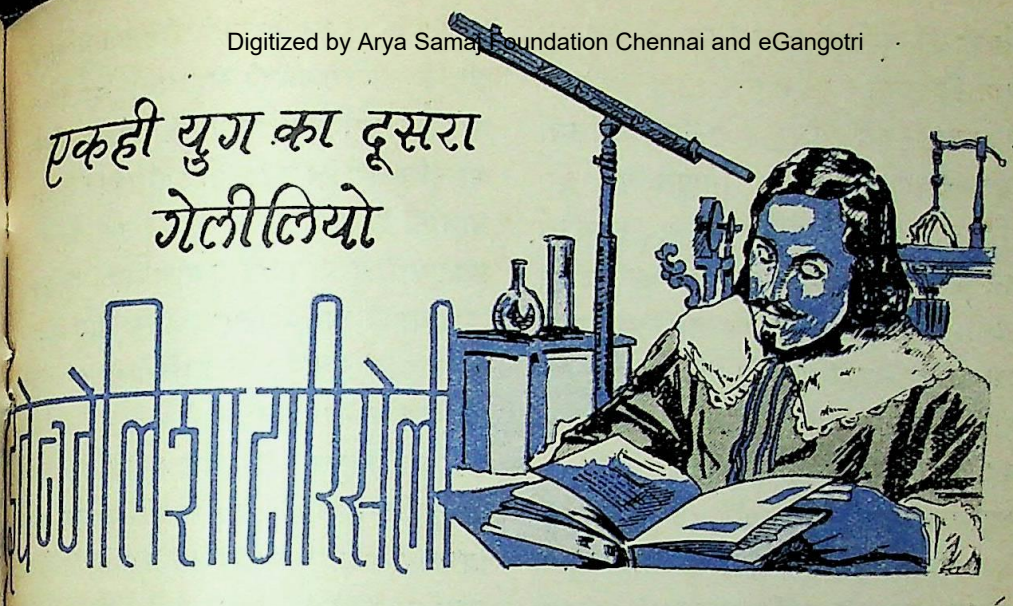

राजेन्द्रकुमार

सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विज्ञान के व्योम पर जहाँ एक ओर संसारप्रसिद्ध गेलीलियो, मालपिघो, विलियम हार्वे, डेस्कार्टेस, बेकन, पास्कल, लिबिनीज और जहान केप्लर जैसे नक्षत्र जगमगा रहे थे, वहाँ उदय के क्षितिज पर एक नयी ही जाज्वल्यमान नक्षत्र उभर रहा था। इस नयी प्रतिभा—इवेन्जेलिशा टारिसेलो ने युवावस्था में ही गेलीलियो के समकक्ष कीर्ति अर्जित कर ली थो।

उस युग का आश्चर्य

टारिसेली का नाम प्राय: वायुदाबमापो के आविष्कार से जुड़ता आया है। तथ्य यह है कि गणित और भौतिक शास्त्र में भो उसको उपलब्धियां गिनाना सम्भव नहीं। उदाहरणस्वरूप, इटलो के फ्लोरेन्स नगर में आज भो वह संग्रहालय देखा जा सकता है जिसमें विगत ३०० वर्षों के विज्ञान का इतिहास सुरक्षित है। उसो संग्रह में एक लेन्स भो है। देखने में वह केवल चार इंच व्यास का एक साधारण लेन्स नजर आता है और सामान्य दर्शक को उसमें कोई भो विशिष्टता का आभास न होगा, किन्तु उस लेन्स को सूक्ष्ममापो विलक्षणता से जो लोग परिचित हैं, वे जानते हैं कि उस कोटि को कारीगरो आज जैसे सम्पन्न साधनों और उपकरणों से विहोन, उस युग में प्रस्तुत करना मानव के लिए असम्भव ही था फिर भी टारिसेली ने आज जैसे उपकरणों की सहायता के बिना ही चार इंच व्यास का वह लेन्स ऐसा बना दिया जिसकी मापशुद्धता एक मिलीमोटर के १०,०००वें अंश तक गणित-शुद्ध थो !

वह देखो, दूसरा गेलीलियो

इस इतावली भौतिज्ञ तथा गणितज्ञ, इवेन्जेलिशा टारिसेली का जन्म इटली के फेन्जा नामक गांव में १५ अक्टूबर, १६०८ को हुआ था। प्रतिभा तो इसकी आरम्भ ही से प्रखर थी। अत: १९ वर्ष की किशोरावस्था में ही इटली की महानगरी रोम के बेनेडिक्टाइन नामक प्रसिद्ध शिक्षण संस्थान में उच्च अध्ययन के लिए इसे प्रवेश मिल गया और शीघ्र ही उसो संस्था में प्राध्यापक का भी पद मिल गया। अपने अध्ययन तथा अध्यापन काल में वह गेलीलियो के पाण्डित्य से बहुत प्रभावित रहा और उसो से अनमोल प्रेरणा पाता रहा। अत: गेलोलियो की ही उपलब्धियों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कारों, कृतियों तथा सिद्धान्तों पर यह अपनी नित नूतन खोजें और गहन अध्ययन करता रहा। सन् १६४१ में जबकि गेलीलियो अपने जीवन के अन्तिम सोपान पर था, टारिसेली का गेलीलियो-परक खोजपूर्ण निबन्ध प्रकाशित हुआ। उसके प्रकाशन ने इसे इतनी प्रसिद्धि दिलायी कि इसके प्रतिद्वन्द्वी तक इसकी सराहना किये बगैर न रह सके और इसे राह चलते देख, प्रायः ही कहते—वह देखो, दूसरा गेलीलियो।

महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति

आखिर वह शुभ घड़ी भी टारिसेली के जीवन में आयी जबकि उसे अपने आचार्य समान, महान् गेलीलियो से भेंट करने का अवसर मिला। तब तक इसकी यशोगाथा टस्केनी के ड्यूक तक भी पहुँच चुकी थी। फ्लोरेन्स में गेलीलियो के आश्रय तले टारिसेली कुल तीन ही महीने कार्य कर पाया था कि गेलीलियो की मृत्यु हो गयी। अतः स्वाभाविक था कि ड्यूक को उसकी स्थानपूर्ति के लिए उसी स्तर के महान् वैज्ञानिक की खोज हो वह सम्मान टारिसेली को प्राप्त हो गया। फलतः टारिसेली ने भी उस पद की प्रतिष्ठा के योग्य कार्य कर दिखाने में कोई कसर न उठा रखी। टारिसेली ने भौतिकी, यान्त्रिकी, प्राक्षेपिकी, प्रकाशिकी, नक्षत्रविद्या भवन-निर्माण-कला, सैन्य इंजीनीयरिंग, द्रव-विज्ञान तथा गणित-शास्त्र जैसी विज्ञान की शाखाओं का विशेष प्राप्त करके मानो विज्ञान के क्षेत्र में कुछ भी विशेष जानने योग्य बाकी नहीं छोड़ा।

युग-निर्माता टारिसेली

जैसा कि अन्य अनेक महान् वैज्ञानिकों के साथ होता आया है, टारिसेली की योग्यताओं और उसके लेखनों का वास्तविक प्रकाशन उसके जीवन काल में पर्याप्त रूप से न हो पाया। २५० वर्ष से भी अधिक बीत जाने पर १८१८ में इस ओर प्रयत्न आरम्भ हुए कि टारिसेली की महानता का अध्ययन और प्रकाशन किया जाये। आज भी टारिसेली का अधिकांश चित्रण उसी एक प्रकार से किया जाता है जिसमें उसे पारा-भरे एक प्याले के ऊपर पारे से ही भरी एक नलिका लिये हुए दिखाया जाता है। स्पष्ट है कि वायु के दाब की प्रतीति कराना ही टारिसेली का प्रमुख आविष्कार माना जाता है।

यह महत्त्व भी अपने स्थान पर उचित ही है। इससे पहले तो लोगों में यह अन्ध-विश्वास फैला हुआ था कि प्रकृति किसी भी स्थल या कोने को खाली नहीं छोड़ना चाहती और इसीलिए जल तथा वायु को दौड़ा कर रिक्त कोने तुरन्त ही भरती जाती है। उदाहरणार्थ, तेजी से भागती हुई कोई भी वस्तु या राकेट जैसा पटाखा ही अपने पीछे जो शून्य छोड़ जाता है, उसे भरने को प्रकृति तेजी से वायु दौड़ा देती है। वायुमण्डलीय दाब का इतिहास-प्रसिद्ध प्रदर्शन टारिसेली की मृत्यु के पश्चात्, १६५४ में उसी के एक शिष्य आटो वान ग्वेरिक ने किया था जिसमें धातु के दो अर्धगोले आपस में जोड़कर, बीच की हवा निकाल कर रख देने पर, दोनों ओर जुते ८-८ घोड़े भी अलग नहीं कर सके थे।

ऐसे ही दूसरे उदाहरण का उल्लेख उन दिनों के एक दार्शनिक का मिलता है। जब उसका नौकर पीपे से शराब निकालने के लिए एक छोटी-सी नली को धरातल से ऊँचे ही उठाये रहा, तब दार्शनिक ने कहा था—तब तो स्वभावतः गुरुत्वाकर्षण के कारण नीचे ही गिरेगा, ऊपर क्यों उठने लगा? इस पर बोकर ने कहा था—अवश्य यह सत्य है, किन्तु यह भी सत्य है कि द्रव के ऊपर यदि वायुमण्डलीय दाब पड़ता हो तो वह अपेक्षाकृत निम्न स्तर पर, किन्तु गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध भी ऊपर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठ सकेगा। इसी सिद्धान्त की खोज टारिसेली ने की थी, जो वायुदाबमापी यन्त्रों के बनाने का आधारभूत सिद्धान्त है।

प्रकृति के इस सिद्धान्त की खोज ने उस युग के लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। तब तक तो उन्हें यह ज्ञात ही न था कि हमें और हमारी पृथ्वी को इस असीम वायुमण्डल के आवरण का कितना वृहद् और अमाप्य दाब दबोचे हुए है। इसी आविष्कार ने तो टारिसेली के प्रतिद्वन्द्वियों को भी उसका प्रशंसक बना दिया था! गेलीलियो के दूरदर्शी का आविष्कार उस सत्रहवीं शताब्दी का पहला आश्चर्य था और दूसरा आश्चर्य था टारिसेली के इस वायुदाब-सिद्धान्त का आविष्कार। टारिसेली की ऐसी ही आश्चर्य-जनक प्रतिभा गणित तथा ज्यामिति में भी थी। समाकलन (integral calculus) जैसे कठिनतम सूत्र के सूत्रपात का भी श्रेय टारिसेली को ही दिया जाता है। गणित के क्षेत्र में किये हुए टारिसेली के कार्यों ने गणितज्ञों का मार्गदर्शन किया है।

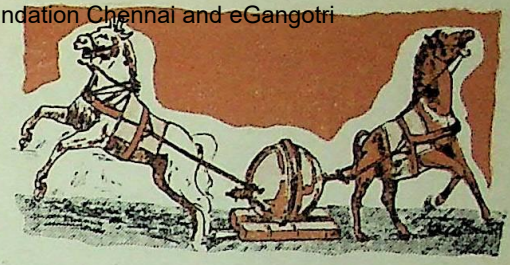

वायुमण्डल की दाब बहुत है—यह दिखाने के लिए १६५४ में मैगडेबर्ग में प्रदर्शन किया गया था! 'मैगडेबर्ग प्रयोग' के नाम से यह प्रयोग प्रसिद्ध है

केवल ३९ वर्ष की अल्पायु पाये हुए टारिसेली का जीवन यद्यपि रातों-दिन अत्यधिक व्यस्त रहता था, फिर भी कुछेक प्रिय शिष्यों को वह अपने वक्तव्य तथा भाषणों से लाभान्वित करता ही रहता था। टारिसेली के कुछेक साहित्यिक ग्रन्थों से यह भी सिद्ध होता है कि वह अपने युग के श्रेष्ठ साहित्यकारों में से भी एक था।

२५ अक्टूबर १६४७ को इवेन्जेलिशा टारिसेली की ३९ वर्ष की अल्पायु में मृत्यु हो गयी। ●

हाईस्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. **जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

२. **वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

३. **प्रारम्भिक भौतिकी**—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३·५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

४. **प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

५. **प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

६. **सामान्य विज्ञान**—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६·२५

७. **सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५·००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाईस्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ९ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

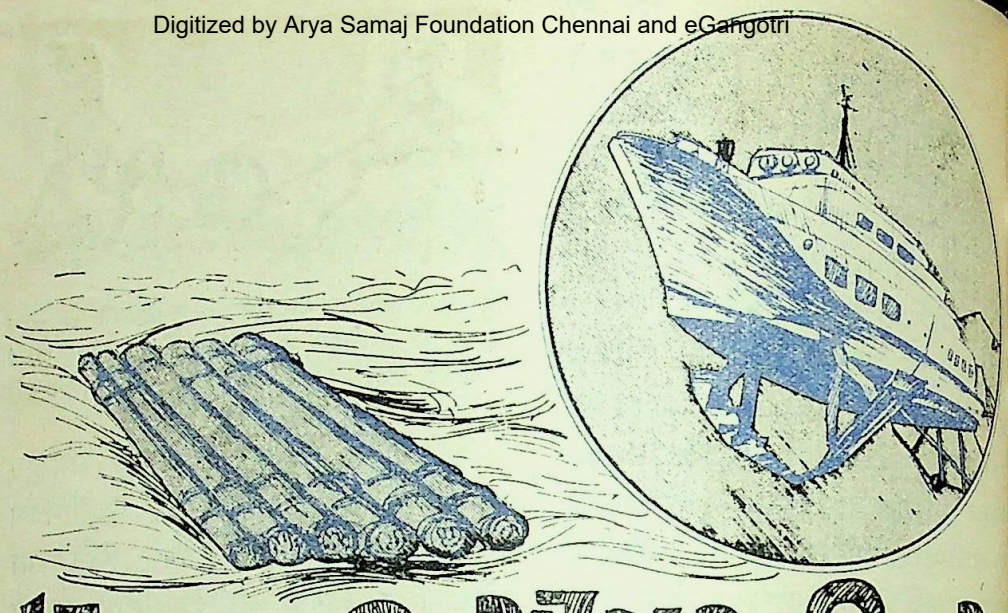

मानव की सागर-विजय

नरेन्द्रमोहन बंसल

सागर-प्रयास के प्रारम्भिक प्रयासों की एक कहानी आप जुलाई-६४ के अंक में पढ़ चुके हैं। यह कहानी उन्हीं प्रयासों को आगे बढ़ाती है। जैसा कि उस आरम्भिक कहानी में कहा गया था, इसमें सन्देह नहीं कि मानव की सागर-विजय कुछ कम महान् उपलब्धि नहीं है। साथ ही यह भी कम आश्चर्यजनक नहीं कि इतनी बड़ी उपलब्धि के प्रेरणास्रोत अत्यन्त ही नगण्य रहते आये हैं। आदि-मानव देखता जा रहा था कि पेड़ों के टूटे तने पानी पर तैरते हैं, पेड़ों की छालें तैरती हैं तथा पशुओं के फूले हुए शव अर्थात् हवाभरी पशु-खालें भी तैरती हैं। इन्हीं की देखा-देखी उसने नदी-नालों को कहीं तो लट्ठों से पार किया, कहीं छालों के तख्ते बनाकर पार उतरा तो किसी अवसर पर कुछ भी न हुआ तो खाल की मशक बनाकर उसी से चिपटा हुआ पार हो गया।

बीच-बीच में उसने यह भी देखा कि बहते हुए पत्ते जिनके किनारे जब-जब तेज हवा से जरा उठ जाते थे, हवा का ही रुख पकड़ लेते थे। इस पर से उसे अपनी नाव पर पाल बनाने की भी सूझी। कुछ युग और बीते, तब तक उसने तारों-नक्षत्रों से दिशा-संकेत भी सीख लिया। तब तो वह रातों को भी बेधड़क सागर-विहार कर लेता था। मध्य-युग आते-आते तो उसने सागर-मार्गों को अपने व्यापार और शत्रु-देशों पर आक्रमण करने का साधन बना लिया।

अज्ञान-अन्धकार से विज्ञान-आलोक की ओर

और, यों युग-दर-युग सागर-विहार और पोत-निर्माण की दिशा में मानव अपने अज्ञान के अन्धकार से धीरे-धीरे बाहर निकलता विज्ञान के आलोक में प्रवेश करता गया। अथक् परिश्रम और अत्यधिक समय के पश्चात् वह पोत, जहाज, जलयान के रूप में हमें वह सबल साधन दे सका जिसके द्वारा नये-नये देशों को खोज और देश-विदेशों से व्यापारिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव हो सका।

प्रत्येक युग के ये सिन्दबाद

कल्पित कथा का नायक सिन्दबाद एक ही था, किन्तु अतुल साहस और सूझ-बूझ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का परिचय देने वाले साहसिक सिन्दबाद की समता करने वाले नाविक प्रत्येक युग में होते ही आये हैं। जिन आरम्भिक और अल्प-विकसित नौकाओं तथा यानों द्वारा वे नाविक आश्चर्यजनक कार्य करते रहे, उनकी स्मृति दिलाने योग्य वैसे ही जलयान आज भी पिछड़े हुए लोगों में मिल जायेंगे। प्रशान्त तथा हिन्द महासागर के दूरवर्ती द्वीपों तथा ब्राजील और पूर्व-पाकिस्तान के नदी तटों के निवासियों में अब भी पुराने ढंग की खोखले तने से बनायी डोंगी नामक नावें प्रयुक्त होती हैं। ग्रीनलैण्ड का हिमनिवासी आज भी आधुनिकता पसन्द नहीं करता और अपने चिर-पुरातन साधन-सील की खाल से बनी 'कायाक' (kayak) नामक नावों को अपने शिकार-प्रयोजन के लिए सुविधाजनक समझता है। इसी प्रकार चीन के जन्क (junk), अरबस्तान के धाओ (dhow), मलाया के प्रो (proa), ब्राजील के जंगादा (jangada), यूनान के केक्स (caiques), वेस्ट इण्डीज के शूनर (schooner) आदि चित्र-विचित्र जलपोत ऐसे हैं जो युग-युगों के सच्चे प्रतीक हैं और वर्तमान में भी उपयोगी हैं।

सागर-तट से महासागरों के बीच

अभी तक छोटे समुद्र और खाड़ियों के किनारे ही सैकड़ों-हज़ारों मील अपने जहाजों से नाप लेने वालों को विशाल महा-सागरों से पाला नहीं पड़ा था। महासागरों के मैदानों में खुल कर खेलने के लिए असीम साहस और कौशल की आवश्यकता थी। यद्यपि उन नाविकों को महासागरों से तब तक काम नहीं पड़ा था, तथापि भू-मण्डल के तीन-चौथाई भाग, अर्थात् जल ही जल पर उनका जीवन व्यतीत हो रहा था।

यह माना जाता है कि नौका-विज्ञान का आरम्भ पूर्वीय एशिया से आरम्भ होने के कारण वहाँ के निवासी नौका-निर्माण में सबसे आगे थे। किन्तु नौका बनाना तथा जहाज बना लेना एक बात है, और उन्हें महासागर की उत्ताल तरंगों पर चला ले जाना बिलकुल ही दूसरी बात है। अतः नौकायन के कौशल में वे नेतृत्व न कर सके। यदि एशिया के नाविक वास्तव में कुशल होते तो अमरीका की खोज कोलम्बस से सैकड़ों वर्ष पूर्व हो गयी होती। दूसरे शब्दों में, यदि यूरोप के नाविक साहस करके महासागरों से न जूझते तो शायद अमरीका आज भी अनजाना, अनचीन्हा, बगैर खोजा हुआ रहा होता!

एशियाई नाविकों की यह किनारे ही किनारे चलते रहने की प्रवृत्ति कितनी प्रबल रही होगी, इसका अनुमान एक उदाहरण से लगाया जा सकता है। १९३८-३९ के मध्य एक अमरीकन यात्री फारस की खाड़ी से अरबस्तान के जलयान—धाओ (dhow) में सवार होकर देश-देशान्तर की सैर को निकला। उसने अपने यात्रा-विवरण में लिखा है कि किनारे ही किनारे ८००० मील

दिक्सूचक (compass)—**इसका निर्माण कार्क के ऊपर चुम्बकीय सुई रखकर किया गया है**

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

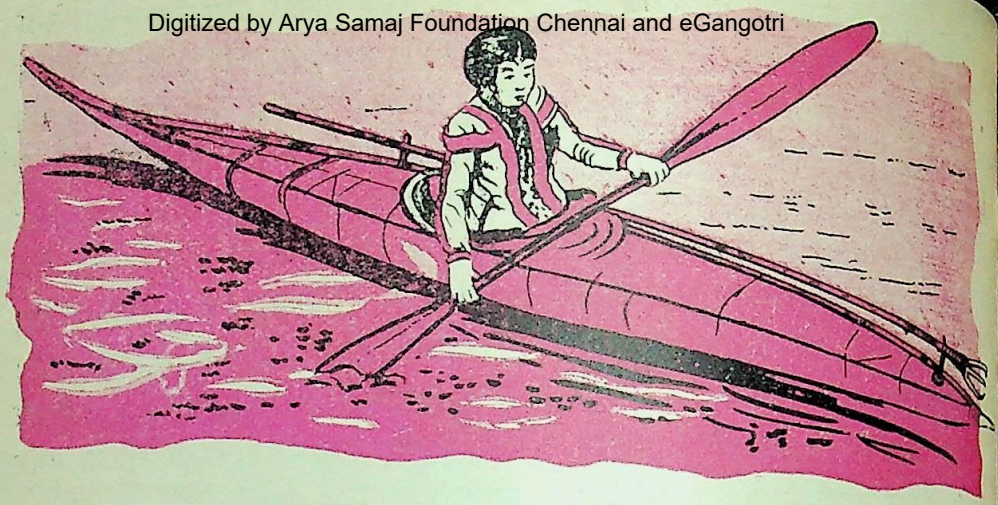

'कायाक' का उपयोग एस्किमों द्वारा आज भी किया जाता है

यद्यपि हमारा जहाज पूरे ८ महीने चलता रहा, फिर भी किनारा उससे केवल एक ही दिन छूटा था ! जहाज के कप्तान को हमारी यात्रा में पड़ने वाले प्रत्येक किनारे की भूमि का, पर्वतमाला का और भूगोल का अरब प्रदेश से लेकर पूर्वीय अफ्रीका के समूचे समुद्र-तट और मोजाम्बिक तक का विस्तृत ज्ञान था। यह कदाचित् इसलिए था कि उसके पास पुश्त-दर-पुश्त चली आ रही एक ऐसी पुरानी पोथी थी जिसमें इन प्रदेशों के भौगोलिक वर्णन, नक्शे तथा दिशा-सूचन आदि विस्तार से लिखे हुए थे। उसी पर उसका परम्परागत ज्ञान आधारित था।

एशियाई नाविकों में गणितज्ञ तथा नक्षत्रविशारद भी उत्तम थे। तारों की स्थिति पर आधारित उनका दिशा-ज्ञान उल्लेखनीय था। मध्यपूर्व एशिया के अरब नाविकों ने दिशा तथा दूरी मापने का एक अद्भुत यन्त्र बना रखा था। वे जानते थे कि तारों की गति समझ लेने पर घोर जंगलों तथा रेगिस्तानों में भी भटका हुआ व्यक्ति एक बार तो जहाँ से चला था वहाँ लौट सकता है। वैसे तारों की गति समझना सहज भी नहीं, क्योंकि अनेक तारे भी तो अपनी दिशा और गति बदलते रहते हैं। यह तो लम्बे अभ्यास के बाद ही समझ में आ पाता है कि कौनसा तारा, किस निश्चित समय पर किस दिशा में गतिमान होगा।

यात्रोपयोगी यन्त्र

कोलम्बस को अपनी यात्रा के अन्तर्गत केवल अक्षांश रेखा ज्ञात करने की आवश्यकता पड़ती थी जिसे वह अपने जहाज की स्थिति में पड़ते मध्यान्ह सूर्य की दूरी के अनुमान से ज्ञात कर लेता था। अक्षांश ज्ञात कर लेने पर रेखांश ज्ञात करना उसके लिए सरल था। यों वह अपने जहाज की निश्चित अवस्थिति मालूम कर लेता था। अक्षांश ज्ञात करने में वही एस्ट्रोलोब (astrolobe) नामक यन्त्र काम आता था इस विधि में भी सूर्य की ऊँचाई अधिकतम सही रूप से मापी नहीं जा सकती थी।

इंगलिस गणितज्ञ ज्हान हेडले ने इसमें सुधार किया। १७३१ में उसके तैयार किए हुए क्वाड्रेन्ट (quadrant) की सहायता से सूर्य की ऊँचाई काफी शुद्धता से मापी जा सकती थी। इस यन्त्र में अधिकतर दर्पण काम करते थे। दर्पणों के परावर्तन से कार्य अधिक सरल होता था और इसके विपरीत, सूर्य की सीधी चमक से कठिनाई पड़ती थी। समय के साथ वह क्वाड्रेन्ट ही परिशोधित होते परिष्कृत होते-होते सेक्स्टेन्ट के रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया, जो आज भी एक महत्वपूर्ण उपकरण है।

दूसरा यन्त्र था क्रोनोमीटर। यह एक घड़ी ही है। इसका प्रथम उपयोग १८वीं शताब्दी में इंगलिश नाविक, जेम्स कुक ने किया था और तत्पश्चात् इसका अधिक परिष्करण ह्वान हेरिसन ने किया। इसकी आवश्यकता गणित की जटिल शाखा—त्रिकोणमिति के द्वारा समय का सर्वशुद्ध ज्ञान करने के लिए पड़ती थी। यह ज्ञात हो जाने पर ही रेखांश मालूम की जा सकती थी, अन्यथा नहीं। इन अपेक्षाकृत आधुनिक यन्त्रों की आवश्यकता प्राचीन जहाजों के स्थान पर नये वाष्प-इंजनचालित जहाज बन जाने से और भी बढ़ गयी। तिस पर भी पुरातन तरीके काम में आना तो बन्द न हो सका। उनका भी महत्त्व अपने स्थान पर तो बना ही रहा।

तरह-तरह के मध्यकालीन जहाज

यह तो सर्वमान्य है कि पूर्व एशियाई देशों के नाविक अपने समय के ही नहीं, आनेवाले युग तक के लिए श्रेष्ठतम थे। चीनी पोत, जिन्हें जन्क कहते हैं, वस्तुतः अद्भुत थे। उनके कुछेक यन्त्र और उपकरण तो ऐसे थे कि जिनकी कल्पना ही अन्य देशों में सदियों बाद जागृत हो पायी थी। १३वीं शताब्दी के महान् यात्रिक मार्को पोलो ने ऐसे एक जन्क का वर्णन करते हुए लिखा है कि उस पोत में ६० केबिन तो थे ही, ३०० मल्लाहों तथा यात्रियों के लिए अतिरिक्त स्थान-सुविधा भी थी। पोत के अधोभाग में १३ जल-अवरोधक कक्ष थे। ऐसे पोत एक ही साथ हजारों मील की यात्रा कर लेने योग्य क्षमता से पूर्ण थे। वे पोत चीन से चलकर बंगाल की खाड़ी, फारस की खाड़ी और समस्त पूर्व-अफ्रीकी किनारा तय कर लेते थे। इन जन्क जहाजों का इतिहास सबसे लम्बा चला है। जहां एक ओर इन जहाजों को कभी-कभी अब भी चित्तागोंग (पू. पाकिस्तान) के किनारों पर देखा जा सकता है, वहां दूसरी ओर आज से २००० वर्ष पूर्व, अर्थात् ईसा से २०० वर्ष पूर्व भी कप्तान ही-ली (*Hee Li*) के नेतृत्व में ऐसे एक जन्क जहाज की फू-साँग (*Fu-Sang*)—आज के केलीफोर्निया के निकट—यात्रा का भी उल्लेख प्राप्य है।

बड़े-बड़े जहाज बनाना कोई नयी कल्पना नहीं है। यूरोप के इतिहास-प्रसिद्ध लड़ाकू वाइकिंग्ज (Vikings) १५-१६वीं शताब्दी से ही बड़े-बड़े जहाज बनाने लग गये थे। वे जहाज मुख्यतः लड़ाकू जहाज होते थे। इंगलैण्ड के सम्राट हेनरी अष्टम के नाम पर बनाया गया हेनरी ग्रेस नामक जहाज ४ मस्तूल और ८ डेकयुक्त था जिस पर ३८५ तोपें लादी जाती थीं। प्रत्येक डेक अपने-अपने जोड़ से अलग किया जा सकता था। ऐसे जहाज पर शत्रुओं के चढ़ने योग्य एक मात्र स्थल जहाज के मध्य से था और वहाँ से चढ़ने का अर्थ होता था तोप से उड़ाये जाना।

१५वीं शताब्दी में जब से पुर्तगालियों ने भारत से यूरोपीय व्यवसाय का सूत्रपात किया, तब से जहाज-निर्माण में इनका विशेष कौशल प्रदर्शित होने लगा। उनके बनाये विशेष प्रकार के जहाज कैरक (Carrack) कहलाते थे। उस समय विशालतम वे कैरक जहाज एक हजार टन माल-सामान तथा हजारों की संख्या में सैनिक भर कर ले जाते थे। वे बड़े जहाज केवल पालों के ही सहारे नहीं चलते थे। उन्हें आवश्यक चाल देने के लिए डांड तो चलाने ही पड़ते थे। डांड चलाने का काम युद्धबन्दियों तथा गुलामों द्वारा लिया जाता था।

सागर-यात्रा में नये कौशल का चमत्कार १५७७ से १५८० के मध्य इंगलिश नाविक, फ्रान्सिस डैक ने प्रस्तुत किया। अपेक्षाकृत काफी छोटे जहाज गोल्डन हिन्द (Golden Hind) द्वारा उसने पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीनी जंक

दिखायी जिसमें ९७०० मील तक की एक ही यात्रा बिना रुके सम्पन्न की। डैक का वह कौशल तब तक के इतिहास में अपने ढंग का अद्वितीय था। उस १६वीं शताब्दी के अन्त तक डैक ने इंगलैण्ड को इस योग्य बना दिया कि भूमण्डल पर कहीं भी उसका कोई भी जहाज निरापद रूप से जा-आ सकता था। उस समय के युद्धपोत बड़े ही चटकीले रंगों के बनाये जाते थे। प्रायः उनकी सजावट पर पोत-निर्माण के कुल व्यय का छटवां भाग खर्च कर दिया जाता था।

१७वीं शताब्दी से पोत-निर्माण में गणित और विज्ञान ने प्रवेश किया। तब से पुराने तरीके तेजी से बदलते चले। इंगलिश सम्राट जेम्स प्रथम ने फाइने पेट्ट (Phineas Pett) नामक एक कुशल इंजीनियर को विशेषतः युद्धपोत बनाने के लिए नियुक्त किया। उसके द्वारा निर्मित ९६ तोपोंयुक्त, १४०० टन वजन का प्रिंस रॉयल (Prince Royal) जहाज तो प्रसिद्ध था ही, सागर-सम्राट (Sovereign of Seas) नामक युद्धपोत अपने समय का संसार में अजेय माना गया और अपने आरम्भ अर्थात् १६३७ से १६९६ तक वस्तुतः उसने एक भी संघर्ष में हार नहीं खायी, अविजित ही रहा। १६५२ तक तो वह जहाज तीन मंजिल का रहा और तत्पश्चात् उसे दो मंजिल का कर दिया गया। उसकी रंग-सज्जा, नक्काशी और अन्य कारीगरी इतनी अनमोल थी कि उस पर कुल व्यय का छठा भाग खर्च किया गया था। लगभग ६० वर्ष के अपने उज्ज्वल कीर्तिकाल के पश्चात् १६९६ में लंगर डाले, किनारे खड़े ही खड़े, आग लग जाने से वह पोत नष्ट हो गया।

जेम्स वाट ने इतिहास बदल दिया

१७६५ में ज्योंही जेम्सवाट ने पहला वाष्प इंजन प्रस्तुत किया, त्योंही उन पुराने जहाजों को हार खानी पड़ी। तत्पश्चात्, पुराने जहाजों से लिए जाने वाले अनेक कार्यों में एक यह भी था कि उन्हें समुद्री घाट बनाने के लिए नींव डालने के स्थान पर प्रयुक्त किया जाता था। आज भी उस प्रकार के बनाये घाटों की खुदाई कराने पर पुराने जहाजों के अस्थिपिंजर नींव की तरह गड़े पाये जाते हैं।

पोत-निर्माण में वाष्प इंजन का प्रवेश होने से बहुत कुछ तेजी से बदलता चला। पैडल से स्क्रू-प्रापेलर और काष्ठ से लोहे द्वारा स्थानपूर्ति की जाने लगी और जहाज क्रमशः आकार में बड़े और क्षमता में भी बड़े-चढ़े बनने लगे। स्टीम-पिस्टन, स्टीम-टर्बाइन, डीजल और गैस टर्बाइन प्रयोग में आने लगे।

आरम्भिक संशय की दुर्भेद्य दीवारें

जहाजों में यह यन्त्रीकरण एकाएक तो न हो सका, क्योंकि डांड और पतवार लेकर पवन के आसरे चलना छोड़कर यन्त्रीकरण के उन्माद में पवनदेवता का अपमान करना उन लोगों को बेहद अनुचित लगता रहा। इसी असमंजस और द्विविधा में ज्हान फिच नामक एक अमरीकी इंजीनियर स्टीमर बनाने के अपने आविष्कार को उचित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्रय न दिला सका, अमरीका सरीखे देश ने उसे आवश्यक उत्साह से अपनाया नहीं। उसने १७९० में पहला नन्हा-सा स्टीमर नदी में दौड़ाने का प्रयोग तो किया किन्तु, उसे सफलता न मिली।

इसके पश्चात् पेन्सिलवेनिया के राबर्ट फुल्टन ने प्रयत्न प्रारम्भ किये और क्लेरमॉन्ट (Clermont) नामक स्टीमर बनाकर सफलता प्राप्त की। यह वही फुल्टन था जिसने उससे पूर्व नाटिलस (Nautilus) नामक एक छोटी पनडुब्बी बनाकर उसके आविष्कार का श्रेय प्राप्त किया था। उस नाटिलस पनडुब्बी का एक सफल परीक्षण ब्रेस्ट बन्दरगाह पर इतिहास-प्रसिद्ध महान् नेपोलियन ने किया, था किन्तु उस समय उसने पनडुब्बी की उपयोगिता न समझ पायी, यह उसकी सबसे बड़ी अदूरदर्शिता मानी जाती है। अनुमान है कि यदि फ्रान्स ने उस पनडुब्बी को उसी समय अपना लिया होता तो नेल्सन-विजित ट्फाल्गर की निर्णयात्मक लड़ाई का ऐसा भिन्न परिणाम होता जो इतिहास ही बदल कर रख देता। उसी आविष्कर्ता फुल्टन ने अपने क्लेरमान्ट स्टीमर में जेम्स स्काट के सिद्धान्त पर तैयार किया गया वाष्प इंजन लगाया और न्यूयार्क से अल्बेनी तक का हडसन नदी-मार्ग ३२ घण्टे में तय करके नया रिकार्ड स्थापित किया।

सन् १८२३ आते-आते अमरीकन नदी-मार्गों में ३०० स्टीमरें घूमने लगीं। अमरीका ही वह देश था जिसने अतलांतिक महासागर पर सर्वप्रथम अपना स्टीम इंजन-चालित स्टीमर उतारा। अमरीकी नदी-मार्गों के किनारे-किनारे के जंगलों से ईंधन-काष्ठ प्रचुरता में मिलने के कारण स्टीन इंजनों के बायलरों को चलाये रखने में बड़ी सुविधा रहती थी। अतः उस समय का प्रथम और प्रसिद्ध विशाल जहाज सवान्हा (Savannah) जहाज-निर्माण की उन दिनों एक सचमुच आश्चर्य ही था। उस १०० फुट लम्बे जहाज में ९० हार्सपावर का शक्तिशाली इंजन लगाया गया था। यद्यपि इस जहाज ने दो-दो बार अतलांतिक पार कर दिखाया, फिर भी इसके प्रशंसकों की संस्था न बढ़ पायी। एक स्थल पर तो कुछ लोग इसे पालवाला जहाज स्टीम इंजन के ब्वायलर का धुआँ निकलने के कारण आग में घिरा हुआ समझकर बुझाने दौड़ पड़े थे! यह जहाज भी प्रायः निराश अमरीका लौटा, जहाँ इसका इंजन खोलकर इसे सादा, पालवाला बना दिया गया और १८२१ में इसे नष्ट कर दिया गया।

सवान्हा के पश्चात् तो अतलांतिक महा-सागर पर चहल-पहल बढ़ाने के लिए और भी बढ़ी-चढ़ी कारीगरी के नमूनों जैसे प्रसिद्ध जहाज आये और आते रहे। ग्रेट ब्रिटेन (Great Britain), टर्बाइनिया (Turbinia), यूनाइटेड स्टेट्स (United States), ग्रेट वेस्टर्न (Great Western), ग्रेट ईस्टर्न (Great Eastern) तथा ब्रिटानिया (Britannia) जैसे कुछेक नाम उन जहाजों के गिनाये जा सकते हैं जिनके इतिहास अपने-अपने अलग-अलग हैं और जो अपनी-अपनी

जीवन रक्षा के लिए १० व्यक्तियों की क्षमता वाली आधुनिक डोंगी (dinghy)

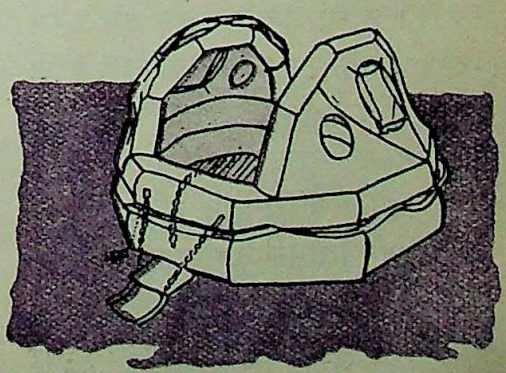

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषताओं में अनोखे रहे हैं। इनमें टर्बाइनिया का विशेष उल्लेख इसलिए आवश्यक है कि इसके साथ टर्बाइन के आविष्कार का नाम जुड़ा हुआ है। चार्ल्स ए. पारसन्स वह व्यक्ति था जिसने १८८४ में प्रथम टर्बाइन इस प्रकार का बनाया जो ड्राइविंग शाफ्ट से जुड़े हुए पंखों को सीधे ही वाष्प द्वारा गति प्रदान करता था। इसके प्रयोग से जहाज की गति में वृद्धि और इंजन पर अनावश्यक दबाव में काफी कमी उपलब्ध हो सकी। उस प्रथम-निर्मित टर्बाइनिया जहाज का सफल प्रदर्शन १८९७ में महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के अवसर पर किया गया था।

वाष्प का प्रतिद्वन्द्वी डीजल

जर्मन वैज्ञानिक रुडोल्फ डीजल द्वारा आविष्कृत डीजल इंजन ने और भी क्रान्ति ला दी। संसार के प्रमुख मालवाहक जहाज डीजल इंजन पर ही चल रहे हैं। इसमें सबसे बड़ा लाभ तो स्टीम-उत्पादक ब्वायलर के लिए आवश्यक लम्बी-चौड़ी जगह की बचत है। डीजल के आ जाने पर भी वाष्प का उपयोग बना रहा। वस्तुस्थिति यह है कि जहाँ भारी जहाजों को लम्बी यात्रा और तीव्र गति से काम पड़ता है, यहाँ अब डीजल की अपेक्षा वाष्प का आश्रय लिया जा रहा है। ऐसे भारी-भरकम जहाजों में आज के टेन्कर (tankers) गिनाये जा सकते हैं जिनके लिए १५-२० हजार टन भारी होना कोई बड़ी बात नहीं। चार्ल्स डबल्यू मार्गन जैसे टेन्कर तो मानो चलती-फिरती विशाल फैक्ट्री है जो ह्वेल-उद्योग में ह्वेल के शिकार से लेकर उसके अंजर-पंजर खोल-खोलकर, तेल, चर्बी, दाँत आदि से बनने वाली वस्तुओं के निर्माण तक कर देने वाली मशीनरी से सम्पन्न है। बस, यही समझ लीजिए कि टेन्कर के एक सिरे से शिकार की हुई ह्वेल प्रवेश करती है और दूसरे सिरे से उससे तैयार होने वाली वस्तुएं बिक्री के लिए पैक हालत में निकलती हैं! गणना है कि वर्तमान में संसार के व्यापारिक जहाजों में से कम से कम २० प्रतिशत जहाज टेन्कर हैं।

और, अब परमाणु-शक्ति की ओर

जुलाई १९५९ में न्यूजर्सी के निकट केम्डन (Camden) पर प्रथम बार सागर में परमाणु चालित जहाज उतारा गया। इस परमाणु चालित पोत, सवान्हा की लम्बाई ५९५ फुट है और ९५०० टन वजन २० नाट्स की गति से ले जा सकता है। १९६२ तक इसने अनेक लम्बी यात्राएं सम्पन्न की हैं। इससे भी पहले परमाणुचालित पनडुब्बी भू-मण्डल की अभेद्य हिम-परतों के नीचे ही नीचे पृथ्वी-प्रदक्षिणा करके हजारों मील की दूरियाँ काफी घटाकर संसार को आश्चर्यचकित कर चुकी थी।

नव-नूतन प्रयोगों की परम्परा

पोत-निर्माण की दिशा में चल रही नूतन प्रयोगों की परम्परा अक्षय है। अभी तो १७२९ का वह ऐतिहासिक प्रयोग दोहराना शेष है, जिसके अन्तर्गत जेट-चालित जहाज हमारे समक्ष आने चाहिए। इंगलैण्ड के आविष्कर्ता ज्हान एलन ने जेट-सिद्धान्त पर जहाज बनाने की कल्पना का सूत्रपात किया था। उसका उद्देश्य ऐसा जहाज बनाने का था जो समुद्र के पानी को मानो आगे के मुँह से पीकर पीछे की पूंछ से एक जेट की भांति फेंके और यों स्क्वीड की भाँति अपना परिचालन सम्पन्न करे। इस दिशा में प्रयोग आज भी जारी हैं।

ऐसे प्रयोगों में हमारे सामने हाइड्रोफाइल यान आ ही चुका है जो सागर हो या भूमि, सतह से बस, बालिश्तभर उठा हुआ, मानो हवा की गद्दी पर सवार, समुद्र पर, जंगलों में और रेगिस्तानों में माल-असबाब तथा सवारियाँ लादकर एक शतुर्मुग की भांति दौड़ता चला जायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

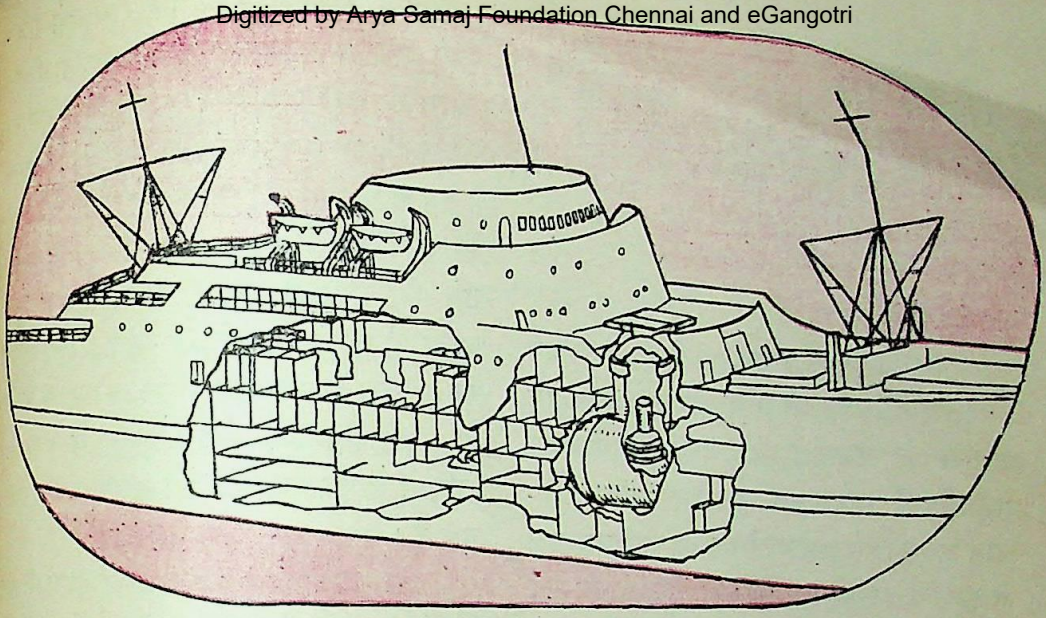

परमाणुचालित 'सवान्हा'

यों, नावें आयीं, जहाज आये, युद्धपोत आये, टेन्कर आये, परमाणुचालित जहाज आये, एक चलती-फिरती महानगरी जैसा विशाल जहाज—क्वीन मेरी आया और यह हाइड्रोफाइल भी, और आगे भी आते ही रहेंगे, किन्तु आदिकाल के उस बहते लट्ठे से लेकर आज के परमाणुचालित जहाज, तक सागर-विजय का यह मानव-अभियान जो सदियों से चला आ रहा है चलता ही रहेगा। मानव की जिज्ञासाएं और उसकी अन्वेषण-क्षमता असीम हैं। ●

इस मूल्य की सीमा कहाँ ?

प्रोमीथियम (Promethium) वह दुष्प्राप्य पदार्थ है जिसकी मात्र उपस्थिति ही परमाणु-भंजन की क्रिया के अन्तर्गत खोजी गयी है; अभी तक प्राप्त नहीं किया जा सका है। प्लूटोनियम, थोरियम और यूरेनियम के विघटन में यह विशेष रूप से विद्यमान रहता है। अनुमान है कि इस पदार्थ का मूल्य, प्रति ग्राम लगभग दो खरब (२×१०^{१२}) रुपया होना चाहिए।

सात मिनट तेज घड़ी ने जानें बचायीं

नोरलीज (जर्मनी) के टाउनहाल की टावरघड़ी विगत ७०० वर्षों से सात मिनट तेज जो रखी जा रही है, उसके पीछे एक अत्यन्त रोचक स्मृति है। उस वर्ष नगरपालिका के सदस्यों की सामूहिक हत्या करने के षड्यंत्रकारियों ने सोच रखा था दोपहर के दो बजे, खाने के समय बाहर निकलने वाले उन सदस्यों को एकबारगी घेर कर मार दिया जायगा। उन्हीं में से एक फूट गया और सदस्यों को पूर्व सूचना देकर पुलिस के साथ एक जाल रच लिया। योजनानुसार सदस्यों ने टावर की घड़ी को सात मिनट आगे कर दिया। दो के घण्टे से ४-५ मिनट पहले अर्थात् वास्तव में १२ मिनट पहले षड्यंत्रकारियों के एकत्र होते ही उलटे उन्हें घेर कर कब्जे में कर लिया गया टावर की घड़ी द्वारा इस प्रकार जानें बचाने के उपलक्ष और इनकी स्मृति अमिट बनाने के लिए तभी से इसे सात मिनट आगे चलाया जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

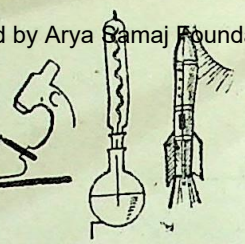

राकेट में ईंधन-सम्पूर्ति

तब एक समस्या बन जाती है जब ईंधन बीच ही में समाप्त हो जाये और उस भारहीन अवस्था के अन्तर्गत ही इंजनों में द्रव-ईंधन पहुँचाने की आवश्यकता उपस्थिति हो। भार-हीन अवस्था में द्रवीय ईंधन अनियन्त्रित रूप से इधर-उधर भागता फिरेगा, किन्तु उस नली तक न पहुँचेगा जो उसे इंजन के अन्दर पहुँचा दे। इसके लिए अमरीका के अन्तरिक्ष-उड्डयन-प्रशासन—नासा (NASA) के इंजीनीयर, स्टीफेन पेपेल ने एक प्रयोग द्वारा उक्त द्रव ईंधन में आइरन आक्साइड का बारीक चूर्ण इस प्रकार मिलाकर दिखाया कि वह सतह के नीचे न बैठे और द्रव के साथ ही तैरता रहे। तत्पश्चात् ईंधन-संग्राहक नली को चुम्बक-प्रभावित कर देने पर वह द्रव अनिवार्य रूप से नली की ओर ही गया और कहीं भी इधर-उधर भटका नहीं। उक्त इंजीनीयर का मत है कि इसी प्रकार द्रवीय आक्सीजन तथा अन्यान्य चरम शीत के द्रवों को भी चुम्बक-सम्पन्न किया जाना अन्तरिक्षोपयोगी ईंधनों में सहायक सिद्ध होगा।

दांत भी रोपे जाते हैं

फिलाडलफिया (अमरीका) के डा. राल्फ मेजरो ने दांत रोपने का प्रथम सफल प्रयोग तब किया, जब उसके पास दो रोगी एक साथ ऐसे आये जिनमें से एक अपना दांत खो चुका था और दूसरे के मुँह में एक दाँत अधिक था। दोनों को कष्ट मुक्त हुए आज पाँच वर्ष हो गये हैं और नया दांत रोपानेवाला व्यक्ति अपने उस नये दांत से पूर्ण संतुष्ट है।

डाक्टर का कहना है कि रोगी को संज्ञा-शून्य किये बाद उसके उखड़े दांत के रिक्त स्थान को नया दांत फिट करने योग्य बनाया जाता है। इसमें कठिनाई तब उत्पन्न हो जाती है जब अधिक समय हो जाने के कारण उस गड्ढे में अतिरिक्त अस्थि-भाग उग आता है। तब उसे काटकर सही आकार में गड्ढा कर लिया जाता है। नये दांत के इर्द-गिर्द खाली जगह रह जाये तो उसमें प्लास्टिक की फाँसें फंसा दी जाती हैं। उक्त चिकित्सक अब तक ७५ रोगियों में लगभग दांतों का सफल रोपण कर चुके हैं।

दूसरा उदाहरण एक किशोरवय छात्र का है जिसने एक हौज में तैरने के लिए कूदते समय अपना एक दांत जड़ से तुड़ा लिया था। चिकित्सक ने तुरन्त ही हौज का पानी निकलवा कर उस दांत को ढूँढ़ लिया और सफलता-पूर्वक उसका रोपण भी कर दिया।

न कुछ का भी वजन ज्ञात कीजिए

चित्र में प्रदर्शित चूहा कोई सर्कस का तमाशा नहीं दिखा रहा, बल्कि प्रतीकरूप से कुछ नयी खबर दे रहा है। आधुनिक विज्ञान ने ऐसे एलेक्ट्रानिक तोलमापी तैयार किये हैं जिनकी सूक्ष्म-मापकता अकल्पनीय ही कही जायेगी! उदाहरणार्थ, तार पर फुदकते चूहे के पदचिह्न, १००० पृष्ठों के ग्रन्थ के अन्त में बढ़ाये हुए एक फुलस्टाप, किसी भी वस्तु की परछाईं जैसी न कुछ वजनी वस्तुओं के भी भार ज्ञात किये जा सकेंगे।

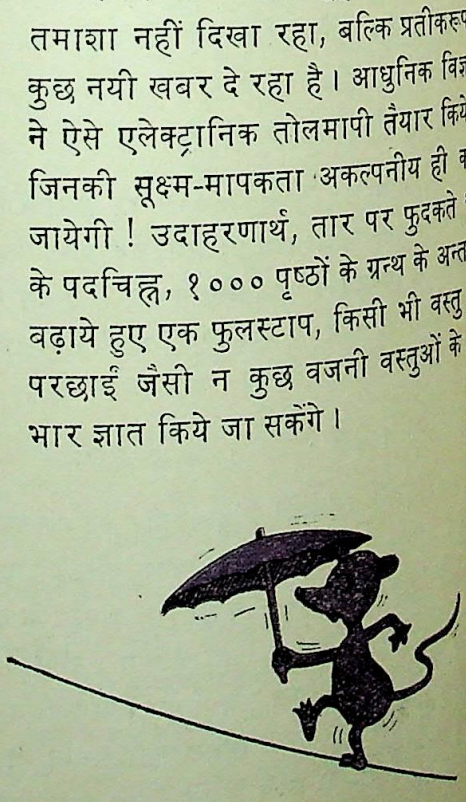

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन मिस्र का गणित

गुणाकर मुले

आज से लगभग पांच हजार वर्ष पहले नील, दजला-फरात, सिन्धु आदि नदियों की घाटियों में जिन प्राचीन सभ्यताओं ने जन्म लिया था, उन्हीं में हमारी आधुनिक वैज्ञानिक संस्कृति की नींव रखी गयी थी। विज्ञान के वर्तमान विशाल प्रवाह को भली-भांति समझने के लिए उसके मूल स्रोतों का ज्ञान विज्ञान के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए लाभ-प्रद हो सकता है। प्रस्तुत लेख में प्राचीन मिस्र की गणित-उपलब्धियों का संक्षिप्त परिचय है।

गणित की पेपीरस पुस्तकें (Papyrus scrolls)

प्राचीन काल में नील नदी के दलदल में पापु (Papu) नाम के बरू (सरकंडे) की जाति के लगभग दो मीटर ऊँचे एक पौधे की खेती होती थी। इस पौधे की छाल के भीतर से सफेद चिंधियाँ निकालकर कई परतों में उन्हें जोड़ा जाता था। पहले पीटकर और फिर घोटकर पेपीरस कागज तैयार किया जाता था। छोटे-छोटे टुकड़ों को जोड़कर कई मीटर लम्बे रोल (rolls) बना लिये जाते। फिर इन पर सरकंडे की कलम से लाल और काली स्याही में लिखा जाता। लगभग चार हजार वर्षों का लम्बा काल बीत जाने पर भी, मिस्र की मम्मियों की तरह, मिस्र की ये पेपीरस-पुस्तकें आज भी ताजी दिखायी देती हैं।

वैसे तो प्राचीन मिस्र की अनेक पेपीरस-पुस्तकें प्राप्त हुई हैं; परन्तु इनमें गणित से सम्बन्धित दो पेपीरस विशेष महत्त्व के हैं। १८५८ में इंगलैंड के ए. हेनरी रिंड ने लक्सर (मिस्र) से एक पेपीरस खरीदा। कहा जाता है कि यह पेपीरस प्राचीन थेबीज (Thebes) के खंडहरों में मिला था। परन्तु यह पेपीरस पूर्ण नहीं था। इसके कुछ अंश गायब थे। लेकिन संयोग! इस पेपीरस के कुछ अंश, लगभग पचास वर्ष बाद, न्यूयार्क की इतिहास-सोसायटी के संग्रहालय में मिले, जिन्हें चिकित्सा-विज्ञान से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण पेपीरस के साथ एडविन स्मिथ ने प्राप्त किया था। यह रिंड-पेपीरस अपने मूल रूप में लगभग ६ मीटर लम्बा और ३५ सेंटीमीटर चौड़ा था।

इस पेपीरस की लिपि हाइरेटिक (Heiretic) है जो मिस्र की प्राचीन चित्रलिपि हाइरोग्लिफिक (Hieroglyphic) का एक अनवरुद्ध (cursive) रूप है। ये दोनों लिपियां दाहिनी ओर से बायीं ओर को लिखी जाती थीं। रिंड-पेपीरस के लिपिक का नाम है, 'आः मोस' (Ah-mose)। आः मोस स्वीकार करता है कि वह स्वयं इस पेपीरस का लेखक नहीं है; उसने एक प्राचीन पेपीरस की नकल करने का ही काम किया है। शुरू में ही वह स्वीकार करता है : 'सभी वस्तुओं, सभी रहस्यों···सभी गुप्त बातों पर यह सूक्ष्म लेखन। ३३वें वर्ष में बाढ़ के मौसम के चौथे महीने में उत्तर और दक्षिण मिस्र के राजा आ-उसेर-रे (A-user-Re) के शासन-काल में मैंने यह प्रतिलिपि तैयार की है। उत्तर और दक्षिण मिस्र के राजा एट-रे (et-Re) के शासन-काल में लिखी गयी एक कृति से मैंने यह प्रतिलिपि तैयार की है। देखो, लिपिक आः मोस यह प्रति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखता है !" विद्वानों का अनुमान है कि आ. मोस का समय १७८८ ई. पू. से १५८० ई. पू. के बीच रहा होगा, और वह जिस प्राचीन कृति का उल्लेख करता है, वह मिस्र के १२वें राजवंश के काल (१८४९-१८०१) में लिखी गयी थी। संभव है कि तथाकथित यह प्राचीन कृति भी किसी और भी प्राचीन कृति की प्रतिलिपि हो।

गणित से ही सम्बन्धित एक अन्य पेपीरस गोलेनिशेव (Golenischev) ने प्राप्त किया था, जो आज मास्को के संग्रहालय में सुरक्षित है। प्राचीन मिस्र की गणितीय उपलब्धियों के बारे में हमारा ज्ञान मुख्यतः इन्हीं दो पेपीरस पुस्तकों पर आधारित है।

अंकगणित

भारत में आविष्कृत दशमलव अंक-पद्धति का ही आज सर्वत्र प्रयोग होता है, अतः मिस्र की शून्य-रहित अंक-पद्धति बहुतों को कुतूहल-जनक लगेगी। वे १ से ९ तक के अंकों के लिए I, II, III…जैसी खड़ी लकीरों का प्रयोग करते थे। १० के लिए स्वतंत्र चिह्न था, ∩। २० से ९० तक के लिए ∩∩, ∩∩∩… आदि चिह्नों का प्रयोग होता था। इसी प्रकार, सैकड़ा, हजार, दस हजार और लाख के लिए स्वतंत्र अंक-संकेत थे। वस्तुतः केवल छह स्वतंत्र चिह्नों से ही लाखों की संख्याएं लिखी जाती थीं; परन्तु बड़ी संख्याएं लिखने के लिए इन चिह्नों की जो पुनरावृत्ति होती थी, वह सचमुच भयानक थी। ९९,९९९ को लिखने के लिए कुल ९ × ५=४५ चिह्न बनाने पड़ते थे। उदाहरण के लिए, मिस्री अंक-संकेतों में लिखी गयी नीचे की २७,५२९ संख्या को ही देखिए। इनमें कुल २५ चिह्न हैं :

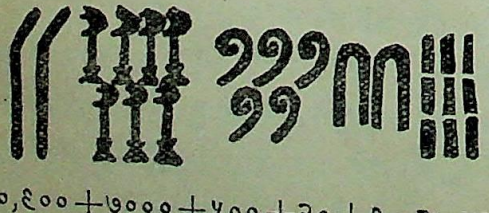

२०,९००+७०००+५००+२०+९=२७,५२९

रिंड पेपीरस का प्रथम प्रकरण भिन्नों (fractions) से सम्बन्धित है। इसमें विषम-संख्याओं द्वारा २ के भागों (divisions) की सारणी दी गयी है। इस सारणी की जरूरत इसलिए थी कि मिस्र के गणितज्ञ केवल इकाई के भिन्नों (unit fractions)—ऐसे भिन्न जिनके अंश-स्थान में हमेशा १ ही हो—का ही प्रयोग जानते थे। जटिल भिन्नों को पहले इकाई के भिन्नों में परिवर्तित कर लेने पर ही वे गणनाओं में उनका प्रयोग करते थे, जैसे :

$$\frac{३}{४}=\frac{१}{२}+\frac{१}{४}$$

$$\frac{२}{६१}=\frac{१}{४०}+\frac{१}{२४४}+\frac{१}{४८८}+\frac{१}{६१०}$$

(वे + चिह्न का प्रयोग नहीं करते थे।)

$\frac{२}{३}$ ही एक ऐसा भिन्न था जिसके लिए उनके पास एक स्वतंत्र चिह्न था। बड़े आश्चर्य की बात है कि विशाल पिरामीडों का निर्माण करने वाली और गणित की जटिल गणनाओं में कुशल मिस्री प्रतिभा जटिल भिन्नों को व्यक्त करने के लिए एक सुगम पद्धति का आविष्कार नहीं कर पायी। वस्तुतः देखा जाय तो जटिल भिन्नों को इकाई के भिन्नों के संकलन-रूप में व्यक्त करना ही अधिक जटिल कार्य है। आश्चर्य तो इस बात पर अधिक होता है कि यूनान के महान् गणितज्ञ भी, जो गणित के लिए मिस्र वालों के ऋणी हैं, भिन्नों को व्यक्त करने की एक सरल पद्धति नहीं खोज पाये। उन्होंने मिस्र वालों का ही अनुकरण किया। महान् आर्किमीडिज (२८७-२१२ ई. पू.) भी $\frac{३}{४}$ को $\frac{१}{२}+\frac{१}{४}$ के रूप में ही लिखता था।

रिंड-पेपीरस में कुल ८५ सवाल हैं। ये सवाल भिन्नों के प्रयोग, सरल समीकरणों एवं श्रेणियों के हल और क्षेत्र एवं आयतनों की गणनाओं से सम्बन्धित हैं। उनका अंकगणित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्यतः संकलन के परिकर्म पर आधारित था। गुणा तथा भाग के परिकर्मों को वे, बच्चों और विद्युत्-गणकों की तरह, संकलन तथा व्यवकलन क्रियाओं का बार-बार प्रयोग करके सम्पन्न करते थे। उनका १९ × ६ का हल देखिये :

१	१९
/२	३८
/४	७६
योग ६	११४

चिह्न / गुणक-अवयवों को व्यक्त करता है। यहाँ गुणक-अवयव २ और ४ का योग है ६, जो प्रश्न का मूल गुणक है।

बीजगणित

व्यक्त (known) राशियों के स्थान पर जब हम अव्यक्त-राशियों (unknown quantities) का प्रयोग करने लग जाते हैं, तो अंकगणित से बीजगणित के क्षेत्र में पदार्पण करते हैं। अव्यक्त-राशियों के लिए स्वतंत्र संकेतों का निर्माण करना पड़ता है और आःमोस ने ठीक यही किया है। आःमोस-पेपीरस का एक सवाल है :

"हाउ, इसका संपूर्ण, इसका सप्तमांश; यह उन्नीस के बराबर है।" यहाँ यह 'हाउ' शब्द कोई आश्चर्य-बोधक उद्गार नहीं है; बल्कि, भास्कराचार्य बीजगणित की 'यावत्-तावत' अव्यक्त-राशियों की तरह, अव्यक्त-राशि का द्योतक एक शब्द है। प्राचीन मिस्री भाषा में 'हाउ' का अर्थ होता है—'ढ़ीग' या 'समूह'। 'हाउ' को यदि हम 'क्ष' माने तो आधुनिक पद्धति में उपरोक्त प्रश्न का स्वरूप होगा :

$$\text{क्ष} + \frac{\text{क्ष}}{७} = १९$$

आज इस प्रश्न को—इस समीकरण को—हम बड़ी आसानी से हल कर सकते हैं। परन्तु रिंड-पेपीरस में इस सवाल का हल बहुत ही लम्बा है। अन्त में आःमोस सही हल देता है : क्ष अर्थात् 'हाउ' = $१६ + \frac{१}{२} + \frac{१}{४} = १६\frac{३}{४}$। आःमोस-पेपीरस में '+', '−' और '=' के लिए भी शब्द-संकेत मिलते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि यूनानी गणितज्ञ ज्यामिति का विकास तो कर पाये, परन्तु बीजगणित में कुछ विशेष नहीं जोड़ पाये। अलेक्जेंड्रिया (मिस्र की ही भूमि पर स्थित) के दो यूनानी गणितज्ञ डायोफैन्टस (ल. ३०० ई.) और पाप्पस (२८० ई.) ने बीजगणित को कुछ उपलब्धियां दी हैं।

मिस्र की 'भूमिति'

मिस्र की नील नदी की बाढ़ उतर जाने पर दोनों ओर के किनारों पर उपजाऊ मिट्टी का क्षेत्र फैल जाता था। इस क्षेत्र के उचित बटवारे के लिए इसके उचित मापन की व्यवस्था जरूरी थी। इसी क्षेत्र-मापन (land-measurement) ने प्राचीन मिस्र में भूमिति को जन्म दिया है। आज भी हम देखते हैं कि पटवारी लोग खेतों को मापने के लिए लोहे की शृंखलाओं का प्रयोग करते हैं। प्राचीन मिस्र के लोग, गाँठों द्वारा निशान पड़े हुए रस्सों (रज्जु) का प्रयोग करते थे जिसे वे हार्पेडोनाप्ता (harpedonapta) कहते थे। हमारे देश के शुल्वसूत्र-ग्रंथों (जो ज्यामिति के ग्रंथ हैं) में हार्पेडोनाप्ता (=रज्जु को धारण करने वाला) के लिए समानार्थी शब्द मिलते हैं—सम-सूत्र-निरंचक, रज्जुक और रज्जु-ग्राहक।

आःमोस-पेपीरस में त्रिभुजों, चतुर्भुजों एवं समलंबाभों (trapeyoids) के क्षेत्रफलों और सिलिंडरों एवं प्रिज्मों के आयतनों की गणनाएं दी हुई हैं। वृत्त के क्षेत्रफल की भी गणना की गयी है। इस पेपीरस का एक प्रश्न है : 'सिलिंडर के एक धान्य-कुंड का व्यास ९ है और ऊँचाई ६ है, तो इसमें कितना धान्य समायेगा?' हम जानते हैं कि किसी भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिलिंडर का आयतन ज्ञात करने के लिए पहले हमें इसके घेरे (वृत्त) का क्षेत्रफल ज्ञात करना होता है; क्योंकि, वृत्त का क्षेत्रफल × ऊँचाई = सिलिंडर का आयतन। इस प्रश्न को हल करने के लिए आ:मोस ने वृत्त का क्षेत्रफल दिया है, $(\frac{१६}{९}त)^२$; जहाँ त वृत्त की त्रिज्या है। आधुनिक सूत्र के अनुसार वृत्त का क्षेत्रफल $=\pi त^२$, जहाँ π = वृत्त की $\frac{\text{परिधि}}{\text{व्यास}}$ \/ अब, यदि ये दोनों सूत्र समान हैं, तो $\pi त^२ = (\frac{१६}{९})^२ त^२$; अर्थात् $(\pi \frac{१६}{९})^२$ या $\pi = ३·१६०५$। चार दशमलव स्थानों तक π का सही मान है, ३·१४१६ !

यदि मास्को-पेपीरस का अध्ययन किया जाय तो प्राचीन मिस्र ज्यामितीय उपलब्धियाँ हमें और भी अधिक चकित कर देती हैं। इसमें गोलार्ध (hemisphere) का सही क्षेत्रफल तो मिलता ही है। (उनके π के मान में थोड़ा अंतर होने पर भी वे गोलार्ध का सही क्षेत्रफल कैसे ज्ञात कर पाये ?); साथ ही, तिर्यक्छिन्न-पिरामीड (fruncated-pyramid) के आयतन के लिए सूत्र मिलता है $= (क/३)(अ^२ + अब + ब^२)$, जहाँ अ और ब वर्ग की भुजाओं की लम्बाइयाँ हैं और क पिरामीड की ऊँचाई है। नीचे के चित्र में तिर्यक्छिन्न-पिरामीड से सम्बन्धित मास्को-पेपीरस का एक सवाल है। ऊपर के अंश में हाइरेटिक-लिपि में मूल प्रश्न है; उसके नीचे उसी प्रश्न का हाइरोग्लिफिक-लिपि में रूपान्तर है और इन दोनों के नीचे प्रदत्त प्रश्न का हिन्दी में पंक्तिबद्ध अनुवाद है। लेकिन यह ध्यान में रहे कि ये दोनों लिपियां दाहिनी ओर से बायीं ओर को लिखी गयी हैं :

(१) जोड़िये इस १६ को
(२) इस ८ और ४ के साथ (तो)
(३) तुम्हें मिलेंगे २८। गणना करो
(४) ६ के $\frac{१}{३}$ की (तो) तुम्हें मिलेंगे २। गुना
(५) करो २८ को २ से। तुम्हें मिलेंगे ५६।
(६) देखो : यह है ५६। तुमने सही हल खोज लिया है।

बायीं ओर की रेखाकृति में ऊपर की

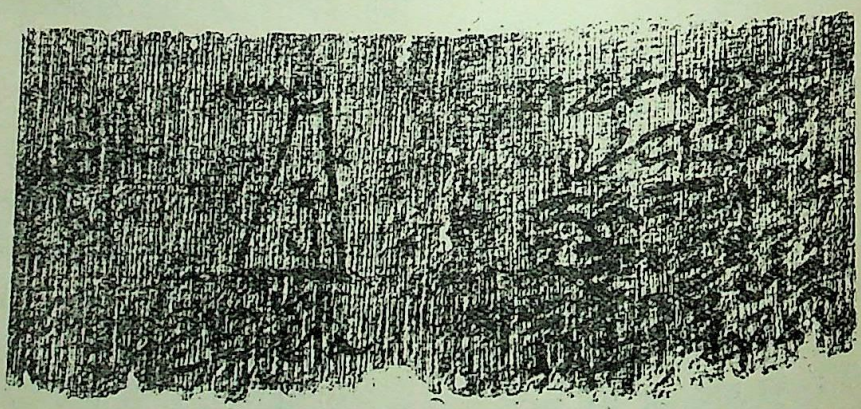

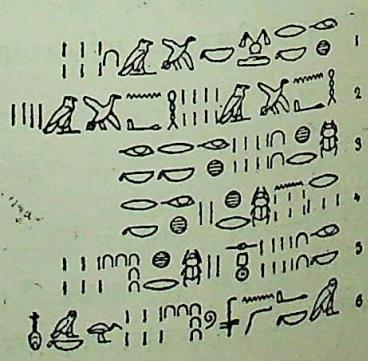

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और २ को इसके वर्ग ४ के साथ लिखा गया है। नीचे आधार की लम्बाई ४ है और ऊंचाई ६ है। रेखाकृति के भीतर आयतन लिखा हुआ है, ५६, जो प्रश्न का उत्तर है। २ × २८ की आकृति की बायीं ओर लिखा गया है।

संक्षेप में, यह है प्राचीन मिस्र के गणित का परिचय। ज्ञान-विज्ञान की अन्य अनेक बातों की तरह यूनान की सभ्यता गणित के लिए मिस्र की ऋणी है। यूनान के आदि-गणितज्ञ थेलस एवं पाइथेगोरस ने मिस्र के पण्डितों से ही गणित का ज्ञान प्राप्त किया था। यूनानी लोग, न केवल गणित के लिए, बल्कि लेखन-सामग्री के लिए भी मिस्र वालों के ऋणी हैं। यूनानियों के पास लिखने के लिए कोई स्वतंत्र सामग्री नहीं थी; वे पेपीरस कागज का ही इस्तेमाल करते थे। कागज के अर्थ का अंग्रेजी पेपर (paper) शब्द पेपीरस से ही व्युत्पन्न है।

फिर भी, यूनानी संस्कृति के ऋणी यूरोप के विद्वानों की गर्वोक्ति है कि 'प्रकृति की अंध-शक्तियों के अलावा इस संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसका मूल स्रोत यूनान न हो।' ('सर हेनरी जेम्स समर माइने' का कथन)। विपरीत, प्राचीन मिस्र के पुत्रों की यही व्यथा है : 'मिस्र की मेहनत—विदेशियों की विरासत!' (एक अरबी कहावत)। ●

कलम का पहला सौदागर

किसी साहित्यिक कृति पर पुरस्कार मिलना एक बात है और उसका पारिश्रमिक मांगना, बिलकुल दूसरी बात। यों, साहित्य में सौदा करने तथा कलम को बेच-खाने की प्रथा का आरम्भ आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व, यूनान के कवि सीमोनाइड (ई. पू. ५५६-४६७) द्वारा किया गया माना जाता है।

वह भी शीत-युद्ध था

सही अर्थ में—शब्दार्थ के रूप में शीत-युद्ध का एक उदाहरण पूर्व काल में रूस की एक साम्राज्ञी प्रस्तुत कर चुकी है। अन्ना नानोवना नामक उक्त साम्राज्ञी ने विशेष आज्ञा देकर साइबेरिया के हिम-खण्डों से दो तोपें और हिम के ही तोप-गोले बनवाये थे। उन तोपों का जिस युद्ध में खुलकर उपयोग हुआ था, उसमें मैदान उन तोपों के ही हाथ रहा था।

कितना चौकस, सृष्टि का विधान !

सूर्य का ताप हमारी पृथ्वी तक केवल $\frac{३}{१ \times १०^{१०}}$ अंश में पहुँच पाता है। इसमें ५% तक की भी वृद्धि या कमी, समूचे जीव-जगत को समाप्त कर सकती है।

दांत खोने का सरल, सफल नुस्खा

हमारे शरीर का प्रायः प्रत्येक अंग कटने-टूटने पर स्व-वर्द्धन द्वारा अथवा चिकित्सा द्वारा पुनः प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु दांतों का चमकीला, रक्षावरण—एनेमल, इस सम्भावना का अपवाद है। यह एक बार गया, सो गया। इसे खोने का एक सरल, सहज उपाय यह है कि तेज गर्म वस्तु खाकर कुछ तेज ठण्डा पीजिए, तेज ठण्डी वस्तु खाकर कुछ दहकती, गर्म वस्तु पीजिए और दांतों की सफाई से सख्त परहेज रखिए। एनेमल से और तत्पश्चात् दांतों से सरलतापूर्वक छुटकारा मिल जायेगा!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH

WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the mdium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded.*
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly.*
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress.*
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The work books are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : Re. 0·80
Book II.....Price : Re. 1·00
Book III.....Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञ संसार

इस झील को न भूलिए

जितना अनजान इस झील का नाम है, उतने ही अज्ञात इसके गुण हैं। पूरे हालैण्ड देश जितनी इसकी लम्बाई-चौड़ाई है और किसी भी स्थल पर इसकी गहराई २००० फुट से कम नहीं। झील का मध्य भाग एक मील से भी अधिक—५७१४ फुट गहरा है और चारों ओर पहाड़, कहीं-कहीं इतने सीधे उठे हैं, मानो दीवारें खड़ी हों। सबसे बड़ी खूबी इसकी यह है कि यह झील संसार की सबसे बड़ी मीठे पानी की झील है। बेकल (baikal) नाम की यह झील पूर्वी साइबेरिया में है।

प्रत्यावशेषों के संरक्षण की प्राकृतिक विधियाँ

लाखों-करोड़ों वर्ष बीत गये एवं बीतते जा रहे हैं और प्रकृति अपना काम बिना भूले-चूके किये जा रही है। बीते हुए युगों के ऐसे जीव-जन्तुओं को, जिनकी हम मात्र कल्पना कर सकते थे, प्रकृति ने रसायन के कोई जटिल मसाले नहीं, सीधी-सादी बर्फ, एल्फाल्ट (कोलतार) तथा अम्बर जैसे द्रवों में सुरक्षित कर रखा है। उस सरलता का एक उदाहरण निम्न है:

पेड़ पर मक्खी, ऐसी मक्खी जो पांच करोड़ वर्ष पहले थी, आज नहीं। पेड़ था चैदार तथा पाम की जाति का और वह आज के बाल्टिक सागर के किनारे खड़ा था। नकायक पेड़ के एक कटाव से कुछ रस टपका और मक्खी उसमें लिपट गयी। वह पूरी झटपटा भी नहीं पायी कि वह रस जम गया।

युग बदला, परिस्थितियाँ बदलीं और वह पेड़ भूगर्भ में समा गया, पथरा गया। वह कीमती पत्थर में परिणत हो गया। आज खान के खोदने वाले नगीने जैसे उस बहुमूल्य पत्थर को जब खोदते हैं, तो उस अम्बर नामक नगीने में वे ही मक्खियाँ प्रायः दबी हुई मिलती हैं, जो करोड़ों वर्ष पहले उसमें कैद हो गयी थीं। पुरातत्ववेत्ताओं को अपने अध्ययन में इनसे बड़ी सहायता मिलती है।

यह कातिल ईंट का नहला

किसी स्काटलैण्ड निवासी से ताश के पत्ते के ईंट के नहले का जिक्र कर देखिए, सहम कर रह जायगा। उसके इस प्रकार सहम जाने के पीछे दो ऐतिहासिक मान्यताएं हैं। प्रथम यह कि १६९२ में अर्ल आफ स्टेयर (तत्कालीन स्काटलैण्ड के स्टेट सेक्रेटरी) ने जेकोबाइट विद्रोहियों के सामूहिक कत्ल के लिए जब आज्ञापत्र लिखा था, तब उसकी वर्दी पर तमगे के रूप में ९ नगीने ईंट के नहले की शक्ल के लगे हुए थे। दूसरा यह कि १७४६ में ड्यूक आफ कम्बरलैण्ड ने जिस क्लोडेन के युद्ध की घोषणा ताश के ईंट के नहले के पत्ते पर की थी, उस युद्ध ने उठते-उभरते हुए स्काटिशों को धूलिसात् करके रख दिया था।

वह कौन-सी शक्ति है ?

उस शक्ति को क्या कहेंगे जो एक साथ दोहरी-तिहरी चोट करती है ? उदाहरणार्थ, इंगलैण्ड के प्लीमथ बन्दरगाह पर, समुद्र के बीच, जो प्रसिद्ध एडीस्टोन नामक प्रकाश-स्तम्भ है उसे हेनरी विस्टनले नामक शिल्पी ने बनाया था और उसी का एक छोटा नमूना अपने ड्राइंगरूम में भी सजा रखा था। २६ नवम्बर १७०३ को समुद्री तूफान आया तो इधर उसने प्रकाश-स्तम्भ को तोड़ गिराया, उधर वह शिल्पी अपनी चारपाई पर दम तोड़ गया और २०० मील दूर स्थित, उसके मकान के ड्राइंगरूम में सजाकर रखा हुआ नमूना भी गिरकर चकनाचूर हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बच्चे की सम्हाल, बच्चा होने से पहले !

यह असम्भव नहीं, सम्भव है। और, केवल सम्भव ही होने से काम नहीं चलेगा, यही आवश्यक भी है, राष्ट्र को सबल सन्तानें प्रदान करने के लिए। वह कैसे ?

अमरीकी चिकित्सक, कार्लो सिरटोरी ने इसका उपाय ठीक वही बताया है, जो भारतीय संस्कृति का प्राण है और जिसके प्रमाणों से भारतीय वांग्मय भरा पड़ा है। कितना शोचनीय है कि हम भूले बैठे हैं और विदेशीगण हमारे ही उन प्राचीन विधानों से लाभान्वित हो रहे हैं !

उक्त चिकित्सक का कथन है कि बच्चा, बच्चे का बच्चा और हमारा समूचा वंशवृक्ष तभी सबल, सशक्त और दीर्घजीवी हो सकता है, जब हम उसे इस संसार में लाने से पूर्व ही अपने दाम्पत्य जीवन को संयम द्वारा सुगठित कर लें। असंयमित माता-पिता के बच्चों और पिल्लों में कोई अन्तर नहीं होता, न ही समाज या देश का उनसे कोई भला हो सकता है।

हमारे वेद, पुराण और इतिहास साक्षी हैं कि संयम की महिमा से ऐसे देशरत्न उत्पन्न किये जा सकते हैं, जिन पर युगानुयुग की प्रजाएँ गर्व कर सकें। प्लान्ड पैरेन्टशिप अर्थात् सुनियोजित परिवार का मूलमन्त्र यही तो है !

केंचुआ है, पर केंचुआ नहीं

यहाँ आँखें भी धोखा खा जाती हैं। बाइपस-बाइपोरस (bipes-biporus) नामक एक रेंगता हुआ जीव, देखने में केंचुआ है, बिलकुल केंचुआ। केंचुए की भाँति ही यह भूमिगत रहता है। बाहर निकालिये तो तुरन्त सिर के बल पुनः मिट्टी में समा जाने को छटपटायेगा। केंचुए जैसा ही गहरे कत्थई रंग का इसका शरीर नन्हे मार्गों में विभाजित है।

फिर भी यह केंचुआ नहीं। यह छिपकली-वर्ग का एक प्रागैतिहासिक जीव की लुप्त होती हुई शाखा का प्राणी है। छिपकली की भाँति ही इसके आगे को दो नन्हे पाँव हैं। पिछले पाँव कालान्तर में क्रमशः लुप्त हो चुके हैं। अर्द्ध पारदर्शक त्वचायुक्त शरीर का यह जीव अब केवल बाजा केलीफोर्निया अर्थात् ठेठ दक्षिणी केलीफोर्निया में कभी-कभी दिखायी दे जाता है अथवा न्यूयार्क के प्राणी संग्रहालय में एक जोड़ा सुरक्षित पल रहा है।

निशाना चूक कर देखिए

.....फिर भी काम हो जायगा ! सच मानिये अन्यथा आजमा कर देखिए। बिजली के एक बल्ब को निशाना साधकर नहीं, जरा ही चुकाकर गोली दाग दीजिए, बल्ब धड़ाके से बोल जायगा। क्यों ? इसलिए कि गोली नहीं, गोली छूटने से उत्पन्न हवा की जबर्दस्त और आकस्मिक चोट उसे चूर-चूर कर देने के लिए काफी थी।

शहद, कड़वा-कड़वा

यह अनिवार्यतः आवश्यक नहीं कि शहद मीठा ही हो। नीम की भी गिनी-चुनी जातियाँ मीठी होती हैं। इसी प्रकार गोयाज (ब्राजील) दक्षिणी-अमरीका में शहद की ऐसी मक्खियाँ भी हैं जो डंक नहीं मारती फिर भी शहद देती हैं। प्रकृति ने ठीक ही सोचा है; यदि शहद मीठा चाहिए तो डंक की तकलीफ उठाने को तैयार रहें और डंक से बचना हो, तो शहद की मिठास का लोभ छोड़ना पड़ेगा।

सफेदी यहाँ प्राणघातक है

ज्हान्स वर्ट (Ghonnes Wort) एक विषैली जल-वनस्पति का नाम है। सामान्यतः किसी भी जीव-जन्तु के लिए यह हानिकारक नहीं, किन्तु यदि जन्तु श्वेत शरीर का है अथवा एक नन्ही-सी सफेद चित्ती कहीं उसके शरीर पर है, तो उसके लिए वह वनस्पति हानिकारक ही नहीं, प्राणघातक तक सिद्ध हो सकती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-क्लब

प्यारे बच्चो !

सदैवकी भाँति तुम्हें प्रस्तुत अंक भी नवीन सामग्री से भरपूर मिलेगा, ऐसा विश्वास है। इस अंक में तुम्हें कौन-कौनसे लेख पसन्द आये यह अवश्य लिखना—यह भी लिखना कि तुम और क्या-क्या चाहते हो !

नवम्बर अंक तुम सबको खूब पसन्द आया, यह तुम्हारे पत्रों से स्पष्ट है ! **नाइट्रोजन अदालत में** (प्रेमानन्द चन्दोला) सबने ही पसन्द किया है। और अनेक सदस्यों ने आग्रह किया है कि इसी प्रकार के और लेख दिये जाते रहें। इस लेख के अतिरिक्त **हमिंगवर्ड** (कुमारी प्रमिला), **गणक प्रतिभाएँ** (गुणाकर मुले) और **मौसम संचार उपग्रह** (एडिसन एम. रोथरौक) भी अधिकांश ने पसन्द किये !

इस बार एक महत्त्वपूर्ण बात कहना चाहती हूँ ! **पत्र-व्यवहार** करते समय अपना पूरा पता और सदस्य-संख्या अवश्य लिखा करो। अधिकांश सदस्य ऐसा नहीं करते। अतः उनके पत्रों का उत्तर नहीं जा पाता ! **इनाम लो** प्रतियोगिता के साथ कूपन अवश्य भेजा करो। उम्मीद है तुम आज से इन दोनों ही बातों पर ध्यान दोगे !

एक बात और भी है। मैं एक और प्रतियोगिता प्रारम्भ करने का विचार कर रही हूँ। उस प्रतियोगिता का स्वरूप क्या हो, इस बारे में तुम्हारे विचार जानना चाहती हूँ।

नतन वर्षाभिनन्दन !

सस्नेह तुम्हारी

कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ५७ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

कृष्णसिंह पुण्डीर (१२८६) नगला पिथौरा, रवीन्द्रकुमार शर्मा (६३५६) लखनऊ, सुरेन्द्रकुमार मण्डल (८४१७) फारबसगंज, महेशचन्द्र अग्रवाल (१२१५६) बसेडा।

द्वितीय पुरस्कार

सन्तकुमार जायसवाल (१०७८६) इलाहाबाद, ऐस. ऐस. कुकरेजा (१०८२२) शिमला, जयप्रकाश कांटिया (१२६८६) शाहपुरा, अरुणकुमार (१३०३२) मेरठ।

तृतीय पुरस्कार

आर. ए. वेंकटरमन (५८०६) जमशेदपुर, कु. मोहिनी शाहनी (७८२७) रांची, प्रफुल्लराय (६०६८) बरेली, सतीशचन्द्र पाण्डेय (६१५७) लखनऊ, शशीकान्त गुप्ता (१०६६४) आगरा, सुभाषचन्द्र शर्मा (११५६५) मेरठ, सतीशचन्द्र डस्सू (११७१३) रायपुर, सच्चिदानन्द श्रीवास्तव (१२५६६) पाकुड (म. प्र.)।

कूपन प्रतियोगिता संख्या ५६

नाम.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाबूलाल
(स. सं. ४७९७)

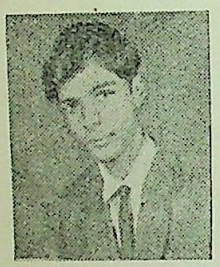

प्रतापभानु
(स. सं. ५१६३)

नवलकिशोर
(स. सं. ५६७१)

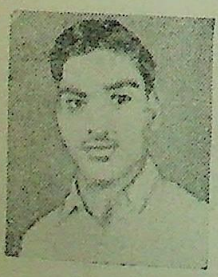

मनपालसिंह
(स. सं. ८००९)

९६०५ संजय (१२) भोपाल, ६ प्रमोदकुमार (१३) वाराणसी, ७ प्रणवकुमार (१२) बिहटा, ८ विनोदकुमार (१३) झांसी, ९ विष्णुकुमार (१६) वाराणसी, १० विजयकुमार (१८) लखनऊ, ११ देवीदास (१४) चन्दौसी, १२ भीखमचन्द (१८) सुजानगढ़, १३ सुरेन्द्र दत्त (१७) जबलपुर, १४ मनोहरलाल (१४) बम्बई, १५ श्यामदास (१८) गोरखपुर, १६ चतुरसिंह (१४) झोडाल, १७ रामधनीराम (१४) शिवपुर, १८ इन्द्रजीतप्रसाद (१७) पटना, १९ सतीश (१६) दिल्ली, २० विष्णुकुमार (११) फैजाबाद, २१ अशोक (१४) टेलको वर्क्स, २२ बंसी रमणलाल (१८) बड़ौदा, २३ ऋषभलाल (१६) चित्तौड़गढ़, २४ होरीलाल (१५) सबलगढ़, २५ विजय (१५) सहारनपुर, २६ रामवीज (१३) मझगावां, २७ कु. विष्णुलता (१२) ब्यावर, २८ प्रकाश-नारायण (१०) ललितपुर, २९ राजवीर (१४) काशीपुर, ३० नर्वदेश्वर (१३) मझगावां, ३१ गोपालराय (१६) बासदेवपुर, ३२ विजयकुमार (१६) उदयपुर, ३३ गुरुदीपक सिंह (११) नई दिल्ली, ३४ नन्दकुमार (१६) आश्रम वृन्दावन, ३५ गोपाल (१४) ब्यावर, ३६ सूरजप्रकाश (१६) देहरादून, ३७ कृष्णचन्द्र (१६) मेरठ, ३८ जयेन्द्रकुमार (१४) मीठापुर, ३९ किरीटकुमार (१८) राजकोट, ४० विजयकुमार (१५) बम्बई, ४१ प्रीतम (१७) कुआर मुण्डा, ४२ रणजीतसिंह (२२) नैनीताल, ४३ सत्येन्द्र (१४) बम्बई, ४४ रमेश (१८) तिरोरा, ४५ कु. मनोरमा (१५) पूर्णिया, ४६ शिवराज किशोर (१५) मुजफ्फरनगर, ४७ कृष्ण-मोहन (१४) आजमगढ़, ४८ सतीशचन्द्र (१४) सेवटा, ४९ राजकुमार (१४) आजमगढ़, ५० नारायणराव (२०) लश्कर, ५१ अनिलकुमार (१३) चन्दौसी, ५२ लक्ष्मणप्रसाद (१५) अछनेरा, ५३ अनिल (१५) नैनीताल, ५४ भूपतलाल (१३) पटना, ५५ नरेन्द्रकुमार (१४) अमृतसर, ५६ सूर्यकान्त (१६) दिल्ली, ५७ मोहनप्रसाद (१३) गया, ५८ श्रीप्रकाश (१२) मुजफ्फरपुर, ५९ अमरनाथ (१५) मधुपुर, ६० अब्दुल अजीज (१०) हिंगनघाट, ६१ कु. नीरजा (११) इटारसी, ६२ अजयकुमार (१७) कलकत्ता, ६३ राजेन्द्रप्रसाद (१२) दिघवारा, ६४ अजयकुमार (१२) दिल्ली, ६५ विजयकुमार (९) दिल्ली, ६६ नरेन्द्रप्रताप (१५) सरांव, ६७ काशीनाथ (१८) चुरिया, ६८ अमरेनारायण (१३) बरौनी, ६९ गोविन्दप्रसाद (१३) इन्दौर, ७० शव्वीर हुसैन (६) इटारसी, ७१ फय्याज हुसैन (९) इटारसी, ७२ प्रतापसिंह (२३) नागपुर, ७३ श्रीकान्त (१४) नासिक, ७४ बल्लाराम (१३) अजुनी, ७५ निर्मलकुमार (१४) भागलपुर, ७६ गिरिधारीलाल (१५) दरभंगा, ७७ कु. सुमित्रा (१२) दरभंगा, ७८ प्रमोदकुमार (१२) बम्बई, ७९ रमेश (१२) सोनगढ़, ८० विष्णुकुमार (१३) नेतरहाट, ८१ लालचन्द (१५) डाबला, ८२ पृथ्वीराज (१७) गोंदिया, ८३ कल्याणसिंह (१४) गुलाबपुरा, ८४ दुर्गाशंकर (१९) इन्दौर, ८५ रवीन्द्रनाथ (१३) वाराणसी, ८६ उल्लास (१२) भोपाल, ८७ कु. प्रमिला (११) भोपाल, ८० विजयकुमार (१५) लखनऊ, ८९ संतजी (१२) उरई, ९० सोमनाथ (१४) बाराबंकी, ९१ सत्य-कुमारी (१४) छिबरामऊ, ९२ पद्माकर (१५) इलाहाबाद, ९३ अशोककुमार (१३) कानपुर, ९४ रामाशंकर प्रसाद (२०) धनबाद, ९५ रंगीला (१३) पिपरिया, ९६ नरेन्द्रकुमार (१७) करणयरा,

राजनारायण
(स. सं. ८५६२)

सुरेन्द्रनाथ
(स. सं. ८९७२)

साँवरमल
(स.सं. १००२३)

माधवप्रसाद
(स.सं. १०३००)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुरेन्द्रसिंह
(स.सं. १०८२२)

विजय
(स.सं. ११५८३)

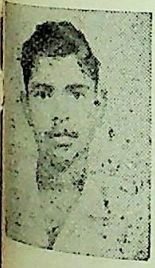

पी. के. बाल
(स.सं. ११७६५)

अजेयकुमार
(स.सं. १२१७४)

९७ राजकोट, ९९ कु. पार्वती (८) आड़सर, ९७०० भारतकुमार (१५) सरदारशहर, १ कु. भारती (१३) सरदारशहर, २ जीतेन्द्रप्रसाद (१४) बहपुरा, ३ कु. रत्नप्रभा (१६) बिलासपुर, ४ परमानन्द (१५) नीम्बाहेड़ा, ५ नरेन्द्रकुमार (१३) फैजाबाद, ६ दिनेशकुमार (१७) इटारसी, ७ सतीशचन्द्र (१४) फैजाबाद, ८ कृष्णकुमार (१७) चन्दौली, ९ सुदर्शनकुमार (१३) अल्मोड़ा, १० मनहरणलाल (१४) रायपुर, ११ रामनाथ (१६) गया, १२ सुरेशचन्द्र (१५) विदिशा, १३ बृजभूषण (१५) कानपुर, १४ सुजितकुमार (१४) मुजफ्फरपुर, १५ रमेशचन्द्र (१५) कृष्णपरा, १६ नरेन्द्रकुमार (१९) रतलाम, १७ मदनेश्वर प्रसाद (१५) सहजनवा, १८ अरुणकुमार (१५) सहजनवा, १९ अमरजीतसिंह (१४) रामनगर, २० प्रेमनारायण (१४) रामनगर, २१ अनिल-कुमार (१४) रामनगर, २२ मेराजुद्दीन (१४) रामनगर, २३ बृजमोहन (१५) सागर, २४ दिलीपयसवन्त (१६) उज्जैन, २५ स्वतन्त्रकुमार (१५) झांसी, २६ महीपसिंह (२१) कटनी, २७ सीताराम (१७) कलकत्ता, २८ विनोदकुमार (१४) सीतामढ़ी, २९ शिवप्रकाश (१४) देहरादून, ३० सुरेन्द्रकुमार (१८) रामनगर, ३१ जयन्त (१४) इलाहाबाद, ३२ विनोद बिहारीलाल (१५) फुलेरा, ३३ रामसेवक (१८) पिपरिया, ३४ मुन्नालाल (१४) जबलपुर, ३५ जयन्तीलाल (१३) इन्दौर, ३६ वशिष्टप्रसाद (१५) जौनपुर, ३७ कीमतीलाल (१५) अमृतसर, ३८ व्यासनारायण (१८) रायगढ़, ३९ धीरेन्द्रनाथ (१२) महेन्द्रू, ४० राजेन्द्रपाल (१५) सहारनपुर, ४१ प्रीतइन्दर (१७) सहारनपुर, ४२ सुभाषचन्द्र (१४) गोंदिया, ४३ मुहम्मदीन (१६) कटेया, ४४ कु. रेखा (१४) रांची, ४५ कु. कल्पना (६) आगरा, ४६ दानीशकुमार (१०) आगरा, ४७ विजयकुमार (१४) रांची, ४८ रमेशचन्द्र (१६) बाँटवा, ४९ कृष्णकुमार (१४) सहर्षा, ५० चन्द्रा (१८) हरीराहर बाजार, ५१ प्रयाणमोहन (११) समस्तीपुर, ५२ उदय-मोहन (१३) समस्तीपुर, ५३ गन्नी (१४) वैशाली, ५४ कौशलेन्द्र-नारायण (११) समस्तीपुर, ५५ उदगीथ वी० राव (१५) नई दिल्ली, ५६ ज्ञानचन्द (१६) डूंगरगांव ५७ प्रकाशचन्द्र (१४) उदयपुर, ५८ सुनीलप्रसाद (१३) असरगंज, ५९ चन्द्रकान्त (१२) काशीपुर, ६० प्रवीणचन्द्र (१८) गोंदिया, ६१ विधुरंजन कुमार (१५) सुलतानगंज, ६२ अश्विनीकुमार (१२) कल्याणपुर, ६३ रामसिंह (२५) ककरिया, ६४ हरीश (१४) अजमेर, ६५ जितेन्द्र (१०) अजमेर, ६६ कुन्दनमल (१६) सीकर, ६७ भृगुनाथ (१५) एकौना, ६८ श्यामसुन्दर (१८) धीरपुरा, ६९ राजेन्द्रप्रसाद (१३) मेरठ, ७० वेदप्रकाश (१५) कुन्डेश्वरी, ७१ कौशिकराय (१२) राजकोट, ७२ गोविन्दराम (१७) वाराणसी, ७३ श्रीकान्त (१६) सीकर, ७४ मुन्नालाल (१४) डोंगरगांव, ७५ लक्ष्मी (१४) जनकपुर, ७६ केशवचन्द्र (१४) आगरा, ७७ लीलाराम (१६) मथुरा, ७८ बाबूलाल (१३) सबलगढ़, ७९ विष्णुशंकर (१६) वाराणसी, ८० यशवीरसिंह (१६) बलरामपुर, ८१ वीरेन्द्रनाथ (१२) पटना, ८२ श्यामसुन्दरप्रसाद (१३) विष्णुपुर, ८३ अश्विनीकुमार (१०) आगरा, ८४ मोहनलाल (१५) दुर्ग, ८५ मायकलनाना (२२) तिलकनगर, ८६ द्वारकादास (१८) नागपुर, ८७ बोनीफस इनास लापीस (२५) मानिकपुर, ८८ अमरप्रकाश (९) कलकत्ता, ८९ उदयप्रकाश (१२) कलकत्ता।

सुभाषचन्द्र
(स.सं. १२१८३)

अरुणकुमार
(स.सं. १२४८२)

ज्ञानचन्द्र
(स.सं. १२६७९)

ललितकुमार
(स.सं. १३०११)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

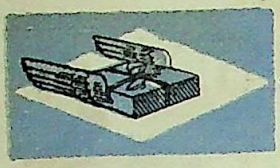

इनाम लो

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५९

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : १५ जनवरी

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५१ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५९ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर १५ जनवरी तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५९ के प्रश्न

१. कौनसी मछली पानी के बाहर उत्पन्न होती है ?

२. तापमापी के किस अंक पर C और F के अंक समान हो जायेंगे ?

३. प्रायः सभी वस्तुएँ धूप में सुखायी जाती हैं किन्तु पसीना धूप में क्यों नहीं सूखता ?

४. कहाँ पर यह आवश्यकता पड़ती है कि जलयान को रेल-इंजन द्वारा खींचा जाये ?

५ एस्पीरीन (aspirin) का रासायनिक नाम क्या है और इसका आविष्कारक कौन था ?

६. ध्वनि के माप की इकाई किस अंग्रेजी शब्द द्वारा व्यक्त की जाती है और उसमें जिस वैज्ञानिक का नाम आधा जुड़ा है, उसे पूरा बताओ।

७. क ने सोचा कि यदि वह १० मील प्र. घ. की रफ्तार से साइकिल पर जायगा तो स्कूल १५ मिनट देर से पहुँचेगा। इसकी अपेक्षा यदि २० मील की रफ्तार से मोटर पर जाये, तो ३० मिनट पहले पहुँच जायेगा। बताओ, उसका स्कूल कितना दूर है?

८. स्वभावतः ही सीधी चलने वाली प्रकाश-किरणों को मरोड़ने का उपयोग किस क्षेत्र में अधिक किया जा रहा है। इसकी सूझ देने का श्रेय किसको है ?

९. एस्किमो लोग सील (seal) की खाल से जो नाव जैसा वाहन बनाते हैं, उसे अंग्रेजी में क्या कहते हैं ? वह नाम सीधा, उलटा, दोनों ओर से एक समान है।

१०. इसी वर्ष के पूर्वार्द्ध में एक भारतीय वैज्ञानिक छात्र ने गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी नयी खोज करके अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। उसका नाम बताओ।

प्रतियोगिता संख्या ५७ के प्रश्नों के उत्तर

१. १९६३ में, मलाया, सिंगापुर, सारवाक और साबाह (उत्तरी बोर्नियो)।

२. थर्मोकपुल (thermocouple) द्वारा।

३. ५ पैसे के २ और ५ पैसे के ३ के हिसाब से।

४. तितली—ऊपर, उठे हुए, नोक से नोक जुड़े हुए;
पतंगा—नीचे, पेट तक ढंके हुए तथा कभी-कभी क्षैतिज तक फैले हुए भी।

५. पैरावेन (paravane)

६. श्वास का वेग और चीखने पर अंकुश करने के प्रयास में श्वास-नली के संकुचन के कारण।

७. उत्तर ध्रुव— ९०°F
दक्षिण ध्रुव—११४°F

८. छठी शताब्दी के लगभग यूनानी नक्षत्रविदों ने।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

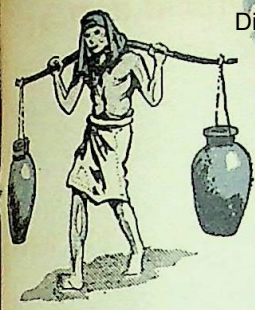

पानी न हो तो

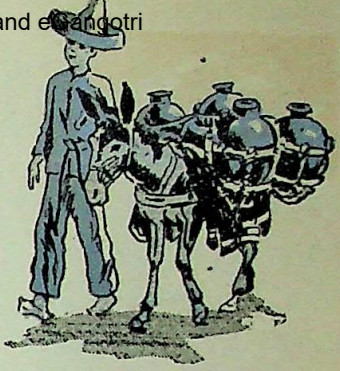

प्रेमानन्द चन्दोला

हाँ, जरा सोच कर बताइये कि यदि पृथ्वी पर पानी न हो, तो जीवन सम्भव हो पायेगा ? शायद नहीं।

लगता है इसी बात से प्रेरित होकर कवि रहीम ने लिखा था—'बिन पानी सब सून।' सचमुच पानी के बिना समस्त जीवन-क्रियाएं असम्भव हैं। जब जीव ही न होंगे, जीवन ही न रहेगा, तो सब सूना न होगा तो और क्या ? पृथ्वी पर सबसे अधिक मात्रा में पानी ही है। पृथ्वी का तीन चौथाई भाग पानी से ही घिरा हुआ है। यदि हम कहें कि चारों ओर जल ही जल है, तो भी कोई अत्युक्ति न होगी। पृथ्वी के गर्भ में, नदियों-तालाबों में, कुओं-सोतों में, समुद्रों और बादलों में, प्राणियों और वनस्पतियों में, समस्त वातावरण में पानी ही पानी तो है।

यह रंगहीन, गंधहीन पानी प्रकृति में इतनी आसानी और अधिकता से मिलता है कि इसे हम एक बिलकुल साधारण पदार्थ समझते हैं। हमने कभी इस पर विचार ही नहीं किया कि वास्तव में यह कितनी असाधारण उपयोगिता की वस्तु है। जीवन का आधार यह पानी हमारे लिए प्रकृति की एक अमूल्य देन है। प्राणीमात्र जीवित रहने के लिए आवश्यक वस्तुएँ हैं, हवा, पानी और भोजन। हवा के आक्सीजन से हमारी श्वसन-क्रिया होती है और भोजन से भरण-पोषण। पानी, भोजन के छह संघटकों में से प्रमुख है और अकार्बनिक है।

विकासवाद भी यही बताता है कि सृष्टि में सबसे पहले पानी के ही एक-कोशीय जीव (प्राटोजोआ आदि) उत्पन्न हुए। इसीलिए प्राचीन काल से पानी को पाँच तत्त्वों से बनी जीव सृष्टि का एक प्रमुख तत्त्व माना जाता रहा है। यहाँ तक कि परमाणु सिद्धान्त के संस्थापक जान डाल्टन तक की सूची में पानी को तत्त्व की श्रेणी में रखा गया। बाद में अन्य वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया कि पानी वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार तत्त्व नहीं बल्कि यौगिक है, जो निश्चित अनुपात में हाइड्रोजन और आक्सीजन के संयोग से बनता है। रासायनिक भाषा में यह हाइड्रोजन आक्साइड कहलाता है जिसका सूत्र H_2O है, अर्थात् हाइड्रोजन का उदासीन आक्साइड।

प्राणियों तथा पौधों में करीब ७०-७५ प्रतिशत भाग केवल पानी ही होता है। यही कारण है कि हमारे शरीर में इतनी लचक रहती है। यदि हमारे शरीर के रक्त में पानी का स्थान कोई अन्य द्रव (जैसे—एलकोहल) ले ले, तो हमारा शरीर एकदम उबल पड़ेगा। यह इसलिए कि अन्दर की विविध प्रक्रियाओं के फलस्वरूप शरीर में बेहद उष्मा उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है और यदि शरीर अपने अन्दर के जल भाग में जज्ब करके बाहर विसर्जित न की जाये तो शरीर का ताप ३००°F तक चढ़ सकता है। स्मरण रहे कि सामान्यतया शरीर का ताप ९८·४°F से अधिक न होना चाहिए। पानी का हिमांक और क्वथनांक क्रमशः ३२°F और २१२°F है। इसी ताप-रेखा के बीच हमारा जीवन बिना किसी असुविधा के मजे में चल सकता है। पानी की अधिक मात्रा के कारण ही प्राणियों के शरीर का ताप एक-सा रहता है। ताप नियंत्रण की अपनी अद्वितीय क्षमता के कारण शरीर में उत्पन्न उष्मा को पानी ही रक्त के माध्यम से समस्त अंगों तथा कोशिकाओं में समान रूप से पहुँचाता रहता है। अमोनिया के अतिरिक्त केवल पानी ही अन्य समस्त द्रवों की अपेक्षा अधिक ताप की मात्रा शोषित और संचित कर सकता है। मेंढक आदि विषमतापी प्राणियों को वातावरण में ताप के उतार-चढ़ाव के कष्टों से भी पानी ही बचाता है।

पानी का एक गुण यह भी है कि यह

कैक्टस

अपने गुप्त ताप (latent heat) के कारण हमारे शरीर को आवश्यकतानुसार शीतल रखता है। श्वसन तथा त्वचा के छिद्रों से होने वाले निरन्तर वाष्पन के रूप में गरमी के निष्कासन से ही हमें ठंडक का अनुभव होता है। गर्मियों में हमारे शरीर से पसीना निकलना और हाँफते हुए कुत्ते का जीभ लटकाकर ठंडक पाना इसी क्रिया के उदाहरण हैं। कुत्ते में त्वचा से पसीना नहीं निकलता। वह जीभ लटकाकर सीधे ही वाष्पन कर लेता है। इसी तरह पौधों में भी ताप एक-सा बनाये रखने के लिए ताप की मात्रा कमीवेश करने के लिए, नीचे जड़ों से ऊपर पत्तियों तक पानी खींचने के लिए तथा लवणों का घोल प्रवाहित करते रहने के लिए पत्तियों की सतह से निरन्तर उत्सवेदन होता रहता है।

पानी एक आदर्श, सार्वभौम घोलक (universal solvent) भी है। इसमें करीब-करीब सभी पदार्थ कम या अधिक मात्रा में घुल जाते हैं। पौधों तथा प्राणियों का आधार-भूत पदार्थ जीवद्रव्य (प्रोटोप्लाज्म) भी पानी और विभिन्न रासायनिक पदार्थों का ही योग है। जीवों के पोषण के लिए आवश्यक समस्त पदार्थ पानी में घुलनशील हैं। विसर्जित किये जाने वाले मल पदार्थों में भी पानी रहता है। उच्च प्राणियों में पचे हुए भोजन तथा छने हुए मल पदार्थों का वहन रक्त द्वारा होता है। निम्न समुद्री प्राणियों में (स्पंज, मछलियाँ आदि) यह कार्य समुद्री पानी द्वारा ही सम्पन्न होता है। पौधे अपना भोजन जड़ों द्वारा केवल तरल रूप से ही ग्रहण करते हैं। पौधों का वह भोजन, पानी में खाद अर्थात् विभिन्न खनिज लवणों का ही घोल होता है।

पानी न तो अम्लीय है और न क्षारीय ही, बल्कि उदासीन है। अनेक पदार्थों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं में घुलाकर वह उनको पारस्परिक प्रक्रिया में सहायता करता है। बहुत-सी रासायनिक क्रियाएं तो ऐसी हैं जो शुष्क अवस्था में सम्पन्न हो ही नहीं सकतीं। उनके लिए पानी ही उत्प्रेरक का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। वर्षा, नदियों तथा भूमि का जल, भूमिगत लवणों को घोलकर इधर-से-उधर बहाता रहता है ताकि सभी वनस्पतियाँ उसका उपयोग कर सकें। फिर भी अधिकांश भाग बह कर समुद्र में पहुँच जाता है जहाँ क्षारों का अगाध भण्डार जमा होता जाता है। उन्हीं के सहारे समुद्री जीवों का जीवन चलता है। हमें भोजन के लिए नमक भी अधिकांश समुद्री जल से प्राप्त होता है। वातावरण के कार्बन डाइआक्साइड के संयोग करके तो यह एक शक्तिशाली घोलक का कार्य करता है। उस संयोग से कार्बनिक अम्ल बनता है, जो कड़ी-से-कड़ी चट्टानों को तोड़ने की शक्ति रखता है।

पौधों की प्रकाश-संश्लेषण क्रिया में पत्तियों का हरा भाग (पर्णहरिम) सूर्य के प्रकाश में, पानी एवं कार्बन डाइआक्साइड की सहायता से स्टार्च तथा शर्करा अर्थात ग्लूकोज बनाता है। इन दोनों पदार्थों तथा भूमि से अवशोषित अन्य खनिज लवणों के संयोग से ही पौधों का जीव द्रव्य जड़ों से लेकर पत्ती-पत्ती तक पहुँचता है। पानी की उच्च-पृष्ठ-तनाव (surface tension) विशेषता, इस संचार में मुख्य कार्य करती है।

भूमि के रज कणों का संगठन इस प्रकार होता है कि उनके बीच के रिक्त स्थान नन्हीं नलियों तथा केशिकाओं का कार्य करते हैं। पानी के उच्च-कोशिकाकर्षण के कारण भूमि के लवणयुक्त जल धीरे-धीरे ऊपर पौधे तक चढ़ पाता है। पानी न होता तो केशिकाभूमिक तथा आर्द्रताग्राही जल जो

तुम्बि-पौधा (Pitcher Plant)

पृथ्वी के भीतर रहता है, पौधे को नहीं मिल पाता।

पानी की एक विचित्रता और है कि अन्य पदार्थों के विपरीत जमकर आयतन में लगभग १० प्रतिशत बढ़ जाता है। फलस्वरूप घनत्व में कम हो जाने और बर्फ बन जाने पर बर्फ सतह के ऊपर तैरने लगती है। उसके नीचे के पानी का ताप हिमांक से नीचे नहीं गिरने पाता। सोचिए, यदि नदियों तथा झीलों आदि में ऐसा द्रव्य पदार्थ होता जो दूसरों की तरह जमने पर सिकुड़ता तो वह जमकर और भारी होकर नीचे तले में बैठ जाता। तब वह केवल गर्मियों में ही नहीं, बारहों महीने वैसा ही बना रहता। सूर्य की किरणें उसे पिघलाने के लिए नीचे तक पहुँच ही कैसे पातीं ? पानी के इस गुण का कारण ही चट्टानों की दरारों में भरा हुआ पानी जमने पर चट्टानों को तोड़ फोड़ कर बाहर निकल पड़ता है, जिससे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

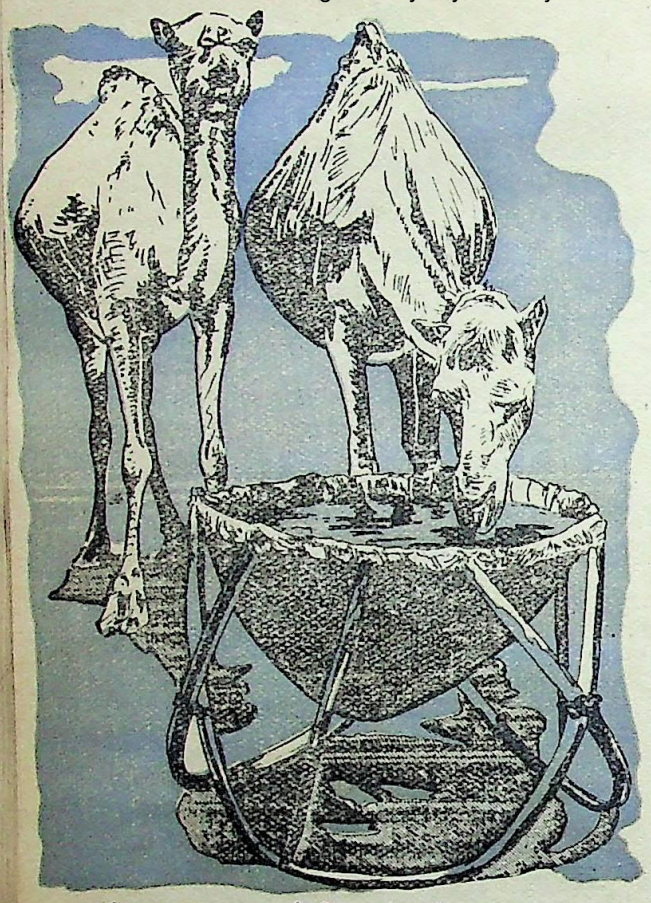

'मरुस्थल का जहाज' भी पानी वगैर नहीं रह पाता।

खुली भूमि के बनने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

किसी स्थान की स्थल-रूपरेखा तथा जलवायु संतुलित करने में भी पानी का ही हाथ है। जहाँ पानी की कृपा हो गयी वहाँ हरियाली लहलहाने लगी और जहाँ प्रकोप हो गया वहाँ मरुस्थल बन गया। पानी धीरे-धीरे ही गर्म तथा ठण्डा होता है, इसलिए समुद्रों और नदियों के पानी का ताप करीब-करीब एक-सा ही बना रहता है और परोक्षरूप से वह समीपवर्ती स्थानों के ताप का भी नियमन करता रहता है। इसी प्रभाव के कारण उस स्थल की जलवायु में बारहों महीनों अधिक उतार-चढ़ाव नहीं हो पाता। समुद्र के अन्दर की ठण्डी तथा गर्म जलधाराएं भी तटवर्गी भू-भागों को स्थिर जलवायु प्रदान करने में योग देती हैं।

पानी के वाष्पन की उच्च-गुप्त-उष्मा वातावरण को ताप-नियमन करने में भी सहयोग देती है। जहाँ भी पानी से वायु का सम्पर्क होता है, वहीं वाष्पन होने लगता है। गर्मियों में तो यह क्रिया अधिक तीव्रता से होने लगती है। अन्य पदार्थ की अपेक्षा पानी को वाष्प में बदलने के लिये अधिक ताप की आवश्यकता होती है। अतः वायु में उष्मा की काफी मात्रा कम हो जाती है। उष्मा की यह मात्रा व्यर्थ नहीं जाती, बल्कि वाष्प रूप बादलों के ठण्डा होने पर जब किसानों को नवजीवन देने वाली वर्षा होती है, तब पुनः वह उष्मा वायु को गरम बना देती है। पानी के अतिरिक्त और किसी भी द्रव में इतनी क्षमता नहीं कि वाष्पन के समय इतनी अधिक गरमी सोख सके और द्रवीकरण के समय पुनः दे दे।

इसके अतिरिक्त नदियों तथा सागरों के वक्ष पर तैरते हुए भारी-भरकम जहाजों तथा किश्तियों का यातायात पानी के द्वारा ही सम्भव है। बड़े-बड़े बाँध तथा विद्युत-शक्ति के उत्पादक केन्द्र भी पानी की ही शक्ति के ऋणी हैं। पानी की वाष्प के दम से ही रेलगाड़ी धड़धड़ाती हुई दौड़ी चली जाती है। सृष्टि को जीवन देने वाले असाधारण गुणयुक्त पानी का विशद् विवेचन तो बहुत ही कठिन है, किन्तु यह तो दावे से कह ही सकते हैं कि पानी के अभाव में जीवन ऐसा ही होगा जैसे निर्वात में संगीत।

• • •

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा के लिए प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वश्रेष्ठ तथा
मस्त सुगन्धि
के लिये

ट्रिप्ल क्राउन न०१

प्योर ग्रेप **ब्रान्डी**

डायर मीकिन ब्रुअरीज़ लिमिटेड

स्थापित १८५५

सोलन ब्रुअरी — लखनऊ डिस्टिलरी — कसौली डिस्टिलरी

मोहन नगर ब्रुअरी एन्ड एलाइड इन्डस्ट्रीज़ (यू० पी०)

DMB-NP-640

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Price : 75 paise December 1964 Regd. No. L 1410
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामबिहारीसिंह तोमर द्वारा लिखित

नवीन प्रकाशन

एम. ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान
२. ग्रामीण समाजशास्त्र
३. नागरिक समाजशास्त्र
४. हिन्दू विवाह एवं परिवार की समस्याएं
५. सामाजिक सूक्ष्मदर्शी : व्यैक्तिक अध्ययन प्रणाली
६. सामान्य समाजशास्त्र : समाज, संस्कृति तथा व्यक्तित्व
७. सामाजिक सिद्धान्त : व्यक्तित्व का समाजशास्त्रीय अध्ययन
८. व्यक्तित्व
९. भारतीय समाज, संस्कृति तथा संस्थाएं
१०. भारतीय संस्कृति के मूलाधार

बी. ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान परिचय
२. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग १ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)
३. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग २ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)
४. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग ३ (भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए)
५. समाजशास्त्र के सिद्धान्त (राजस्थान, जोधपुर, पंजाब, मुजफ्फरपुर)
६. सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब)
७. सामाजिक नियन्त्रण एवं सामाजिक परिवर्तन (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब, रांची)
८. समाजशास्त्र की प्रकृति एवं आधार (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
९. सामाजिक संरचना एवं सामाजिक प्रतिशास्त्र (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
१०. भारतीय जनता एवं संस्थाएं (आगरा, जबलपुर, भागलपुर)
११. भारतीय समाज एवं संस्कृति (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
१२. भारतीय सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, काशी, पंजाब)
१३. भारत की सामाजिक संस्थाएं (राजस्थान, जोधपुर)
१४. तुलनात्मक सामाजिक संस्थाएं (गोरखपुर)
१५. प्रारम्भिक ग्रामीण समाजशास्त्र

इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए

१. माध्यमिक समाजशास्त्र
२. भारतीय सामाजिक संगठन

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2011-64

In main Gurukul Kangri Vishwavidyalaya, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर पढ़िये

हमिंग बर्ड —कुमारी प्रमिला	३
मौसम संचार उपग्रह —एडिसन एम. रोथरौक	८
चरमशीत के नये उपयोग —डा. रामचरन	१५
गुरुत्वाकर्षण की गहन गुत्थियां —कुमारी मालती	१८
गणक प्रतिभाएं —गुणाकर मुले	२५
मंगल हमारी प्रयोगशाला में —विनोदप्रसाद श्रीवास्तव	३१
जब मेंढक ने हमें छकाया —मदनमोहन शर्मा	३४
नाइट्रोजन अदालत में —प्रेमानन्द चन्दोला	३९
सीलों की दुनियाँ में —विशम्भरदत्त नौटियाल	४३
पी-एच. (pH.) —सत्यकुमार	४८

स्थायी स्तम्भ

वैज्ञानिक उपलब्धियां	३०
विचित्र संसार	५१
विज्ञान क्लब	५३
इनाम लो	५७

अपनी बात

विगत मास की १३ तारीख को समानव अन्तरिक्ष-अभियान के इतिहास में एक पृष्ठ जोड़ा गया था। वह दिन सोवियत संघ के लिए विशेष गौरव का दिन है। उस दिन १० बजकर ४७ मिनट पर तीन मानवयुक्त अन्तरिक्षयान 'वोस्खोद' चौबीस घण्टे अन्तरिक्ष में घूमकर और निर्धारित अनुसन्धान कार्य सम्पन्न करके सकुशल पृथ्वी पर लौटा था।

उक्त यान के तीनों यात्री—कोमारोव, फियोक्तिस्तोव और येगोरोव, अन्तरिक्ष-अध्ययन के क्षेत्र में अपने-अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं। इन्होंने जो कुछ स्वयं प्रत्यक्ष देखा है, उसने आगामी अभियानों का मार्ग अत्यन्त प्रशस्त कर दिया है। भारहीनता, अकल्पनीय वेग, सौर-विकिरण और प्रकम्पनों आदि के प्रभाव अन्तरिक्ष-यात्री पर क्या-क्या होंगे, इनका प्रत्यक्ष अवलोकन करने का यह प्रथम और अत्यन्त सफल प्रयास है।

कक्ष में पहला स्पूतनिक छोड़ने से लेकर तीन मानवयुक्त यान को अन्तरिक्ष में भेजने और सकुशल पुनः प्राप्त करने तक की उपलब्धियाँ दर्शाती हैं कि सोवियत संघ इस क्षेत्र में कितना अग्रगामी है, उसका विज्ञान कितना विकसित है तथा उसकी गणनाएं कितनी शुद्ध हैं। इन उपलब्धियों ने संसार में सोवियत संघ की प्रतिष्ठा तो बढ़ायी ही है, मानव में आत्मशक्ति, संकल्प की दृढ़ता और निष्ठा में भी वृद्धि की है।

सोवियत संघ के इन तीनों सूरमाओं का उनकी इस अप्रतिम सफलता पर हार्दिक अभिनन्दन है।

वर्ष ५ अंक १०

मूल्य
एक प्रति : ७५ पैसे

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा ब्रदर्स, आगरा

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

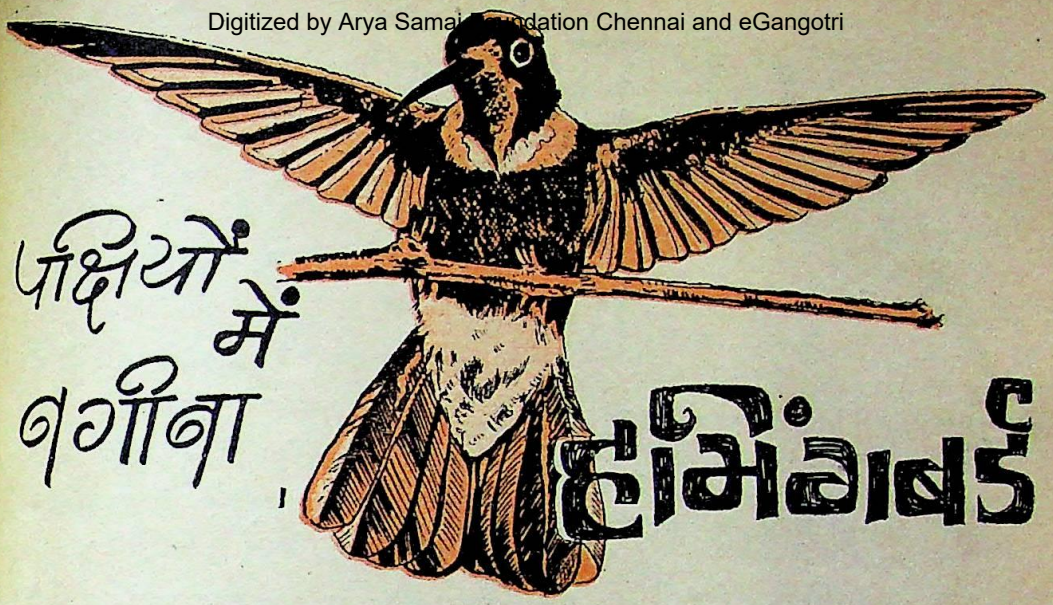

पक्षियों में नगीना, हमिंगबर्ड

कुमारी प्रमिला

मुंगूठी में जैसे नगीना, वैसे ही पक्षियों में हमिंगबर्ड। प्रकृति के रत्नकोष का यह एक नन्हा किन्तु विरल नगीना है। ऐसा रंग-रंगीन पक्षी और वह भी मुँह से नहीं, परों से ही गुनगुनाये ! इसके उस गुंजन ने ही इसे गुजन-पक्षी अर्थात् हमिंगबर्ड (Hummingbird) का नाम दिलाया है।

दक्षिण अमरीका का वृहद पश्चिमी भू-भाग, ब्राजील उस द्वीपांश का दो तिहाई भाग घेरे हुए है। यों तो विचित्र और अन्यत्र अप्राप्य, ऐसे जीव-जन्तुओं के लिए दक्षिण अमरीका संसार में आस्ट्रेलिया की भाँति ही प्रसिद्ध है, किन्तु ब्राजील उन सबमें आगे है। इस क्षेत्र को प्रकृति ने अति विचित्र जीव-जन्तुओं से भरकर मानो स्वयं की विचित्रता को भी विराम दे दिया है। संसार के वृहत्तम जन्तु यहाँ मिलेंगे, तो सूक्ष्मतम भी यहीं मिलेंगे। अनाकाण्डा (anacanda) नामक ३५ फुट लम्बे सर्प, केपीबारा (capibara) नामक और गिनीपिग से मिलता-जुलता बिलकारी जन्तु ऐसा मानो पुलिस का कुत्ता, बड़े-बड़े चींटे, मकोड़े और गुबरीले, मीठे पानी की सामान्य मछली भी १४-१५ फुट की, थाली जैसे बड़े भेक (toad), विशालकाय कछुए, एक फुट विस्तार वाले पंखयुक्त पतंगे (सो भी कम से कम २०,००० जाति-उपजातियों के !) आदि, अनेक में से कुछेक विचित्रताएं हैं जो केवल ब्राजील में ही पायी जाती हैं।

आकार की यह विशालता तो अपनी जगह रही, विचित्रता छोटे नभचारी प्राणियों में देखने को मिलती है। हमिंग-बर्ड उनमें प्रमुख है। हमिंगबर्ड की लगभग ५८० जातियों में ८० जातियाँ और जिस एक फूल से इन्हें विशेष अनुराग रहता है, वह आर्किड (Orchid) अपनी १५,००० जातियों में से ३,००० जातियों सहित ब्राजील में ही विद्यमान है।

सब कुछ अति ही अति

हमिंगबर्ड में सब कुछ अति ही अति है। पक्षियों में सबसे छोटा तो हमिंगबर्ड, सबसे सुन्दर है तो हमिंगबर्ड और सबसे कुशल नटबाज उड़ाका ढूँढ़ोगे तो भी हमिंगबर्ड ही मिलेगा। इसकी सर्वदिक् उड़ान प्रसिद्ध है। यह आगे-पीछे, अगल-बगल, आड़े-तिरछे और ऊपर-नीचे, चाहे जिस दिशा में सहज ही उड़ लेता है और हवा में अधर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

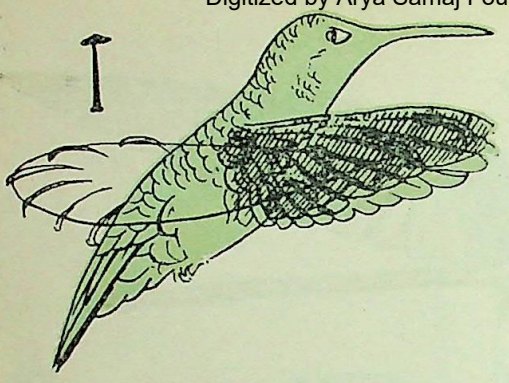

अधर उतराता हुआ हमिंगबर्ड हेलीकाप्टर की भाँति अपने पंखों को विशिष्ट कोण तथा केवल ५० बार प्रति सैकण्ड की गति देकर सीधा ऊपर उठ लेता है तथा स्थिर मंडराता भी रह सकता है

चाहे जितनी देर स्थिर मंडराता रहता है। इसकी इस हेलीकाप्टर जैसी उड़न-विशेषता के कारण इसे 'पक्षियों में हेलीकाप्टर' नाम भी दिया गया है।

इसके साथ कठिनाई केवल इतनी है कि अत्यन्त छोटा होने के कारण इसकी समस्त खूबियों को स्पष्ट देखना, समझना संभव नहीं हो पाता। उड़ान के दौरान में तो केवल यह आभास होता है कि कोई रंग-रेखा आँखों के आगे खिंची चली जा रही हो। इसकी प्रणय-पटुता, रंग-रंगीन कलाबाजियाँ, शिशु-पालन साहस और शौर्य तथा उड़नगत खूबियों ने प्राणि-शास्त्रियों को स्वर्गिक पक्षी (Bird of Paradise) से भी अधिक मोहित किया है। इसकी पूँछ, गर्दन, पंख, परों की जोड़ी और शरीर के रोम-रोम से इन्द्रधनुषी छटाएँ झलकती हैं। सभी हमिंगबर्ड छोटे नहीं होते। बड़ी जातियों में कबूतर जैसे ८-८ इंच बड़े हमिंगबर्ड भी पाये जाते हैं।

उत्पत्ति, स्विफ्ट चिड़िया से

एक दृष्टिकोण इसकी उत्पत्ति स्विफ्ट चिड़िया से मानता है। बाह्याकार में तो यह स्विफ्ट से बहुत मिलता-जुलता है ही। स्विफ्ट आकार में नन्हीं होने पर भी तेज उड़ान में उकाब, गिद्ध और गरुड़ जैसे पक्षीराजों के कान काटती है। समस्त पक्षी-जगत में तीव्रतम उड़नगति ३०० किलो-मीटर प्र.घ. का रेकार्ड स्विफ्ट का ही है। उड़ते-उड़ते ही यह चिड़िया हवा में मंडराते, अपने शिकार योग्य कीटों को चट करती जाती है और उसके लिए पलक मारने को भी नहीं रुकती।

माना जाता है कि इन्हीं चिड़ियों में एक वर्ग ऐसा अलग पड़ गया जिसे पुष्पों की पराग-नाल में छिपे कीटों को चुगना आवश्यक हो गया। इसके लिए यह भी आवश्यक हुआ कि फूलों के आगे-पीछे, ऊपर-नीचे और अगल-बगल मंडराया जाये तथा उसके सम्मुख कुछ देर स्थिरावस्था में भी अधर हवा में रहा जाये। यह कार्य तीव्रगामी स्विफ्ट के लिए तो असंभव ही था। अतः उसी वर्ग में एक उपवर्ग पृथक् पड़ गया और हेलीकाप्टर जैसी इन उड़ानों के भरने वाला वह वर्ग हमिंगबर्ड कहलाया।

उड़ान की विशेषता

उड़ान की विशेषता इनकी विशिष्ट शरीर-रचना की आभारी है! शारीरिक अनुपात से इसके कंधे की माँस-पेशियाँ और स्नायु-

मोटरकार की तरह पंखों को रिवर्स गीयर में डालता हुआ हमिंगबर्ड पीछे उड़ने की तैयारी में

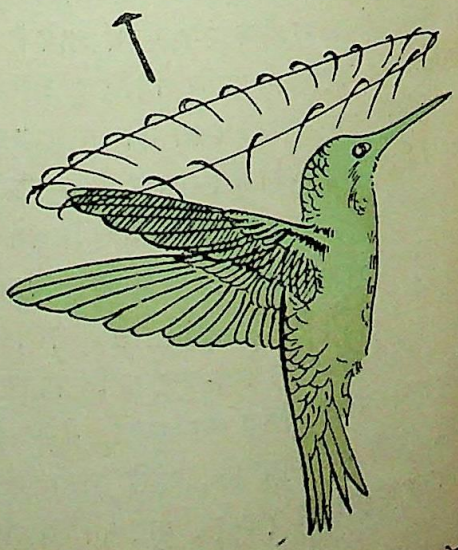

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गठन समूचे प्राणी-जगत में सर्वाधिक सशक्त और सम्पन्न है। जब-जब इसे फूल के पराग-नाल से रस चूसना तथा अपने शिशुओं की चोंच में चोंच डालकर उन्हें चुगाने की आवश्यकता पड़ती है, तब यह पर मारता हुआ हवा में स्थिर रहता है। उस समय इसकी पर मारने की गति प्रति सैकण्ड ५४ होती है। ८० किलोमीटर प्रति घण्टे के वेग से उड़ते समय पर मारने की गति ७५ तक पहुँच जाती है। यही गति मादा के सम्मुख प्रणय-नृत्य करते समय २०० हो जाती है।

इसके पंखों के भार में तथा शरीर के भार में $\frac{2}{3}$ का अनुपात रहता है जबकि अन्य समस्त पक्षियों में रहता है। पंखों के उस भार की और विस्तार की यह अपेक्षाकृत अधिकता ही इसकी इस विलक्षण उड़न-कला का रहस्य है। यदि यही $\frac{2}{3}$ का अनुपात अन्य पक्षियों को भी प्रकृति ने दिया होता तो हंस के पंख खुली अवस्था में ६५ फुट होते और नॅट (gnat) नामक मक्खी के पंख तो सूक्ष्मदर्शी के नीचे ढूँढ़ने पड़ते।

चोंच और जीभ की रचना

खाने-खिलाने की इसकी विविधता और विचित्रता के अनुरूप ही इसकी चोंच और जीभ की रचना में अनेक भेद-प्रभेद हैं। अधिकांश तो इसकी चोंच ही शरीर के अनुपात से काफी लम्बी होती है। उस लम्बी चोंच में भी इसकी जीभ मेंढक की जीभ की भाँति आगे को जुड़ी अर्थात् बाहर फटकारने योग्य होती है। तलवार जैसी चोंच वाला हमिंगबर्ड (swordbilled) जो अधिकतर वेनेज्यूएला, कोलम्बिया,

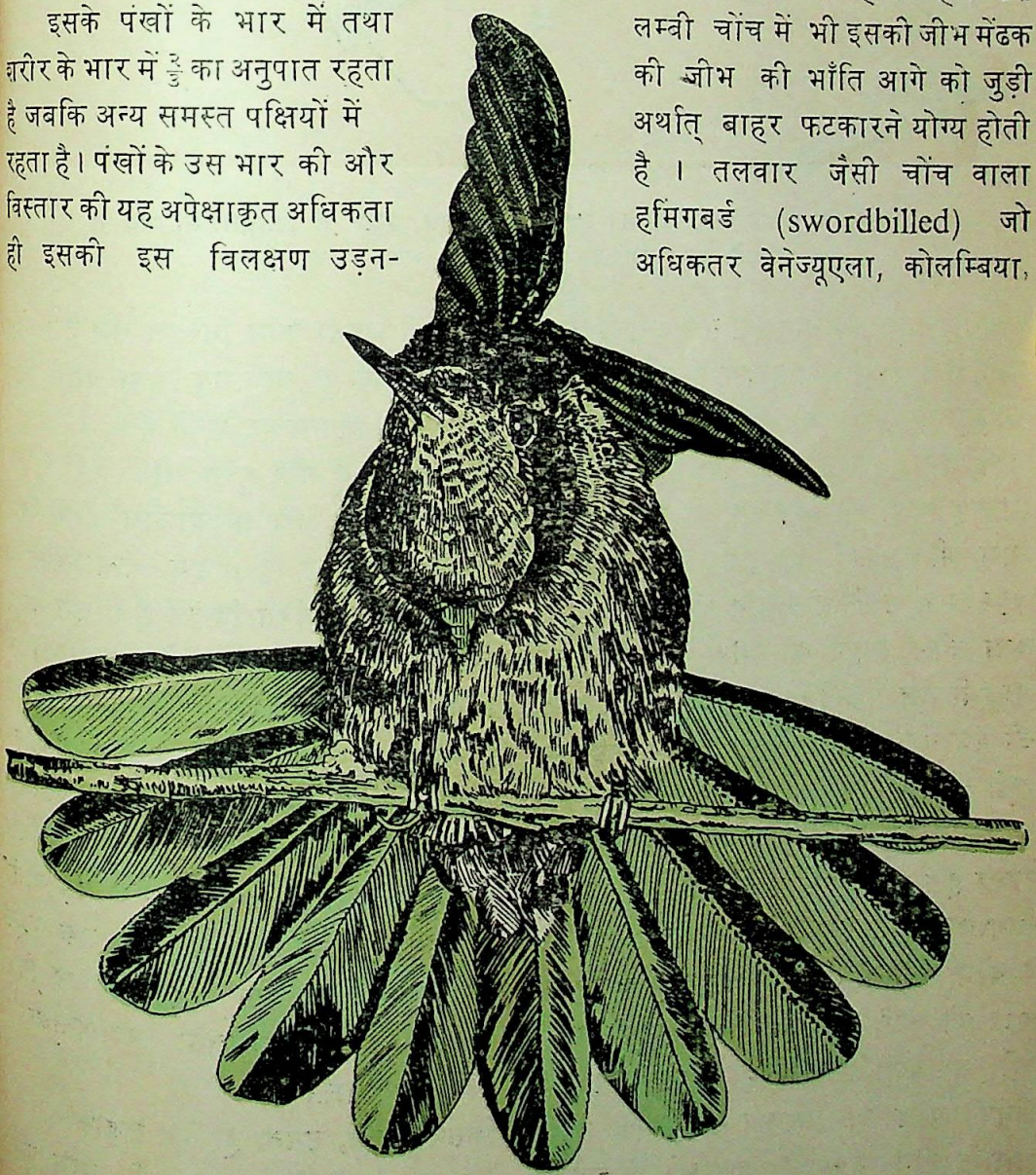

उड़ने से पहले, आलस्य तोड़ने के लिए अंगड़ाई लेता हुआ हमिंगबर्ड क्रमशः अपने रंगीन पंखों को खोलता जा रहा है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

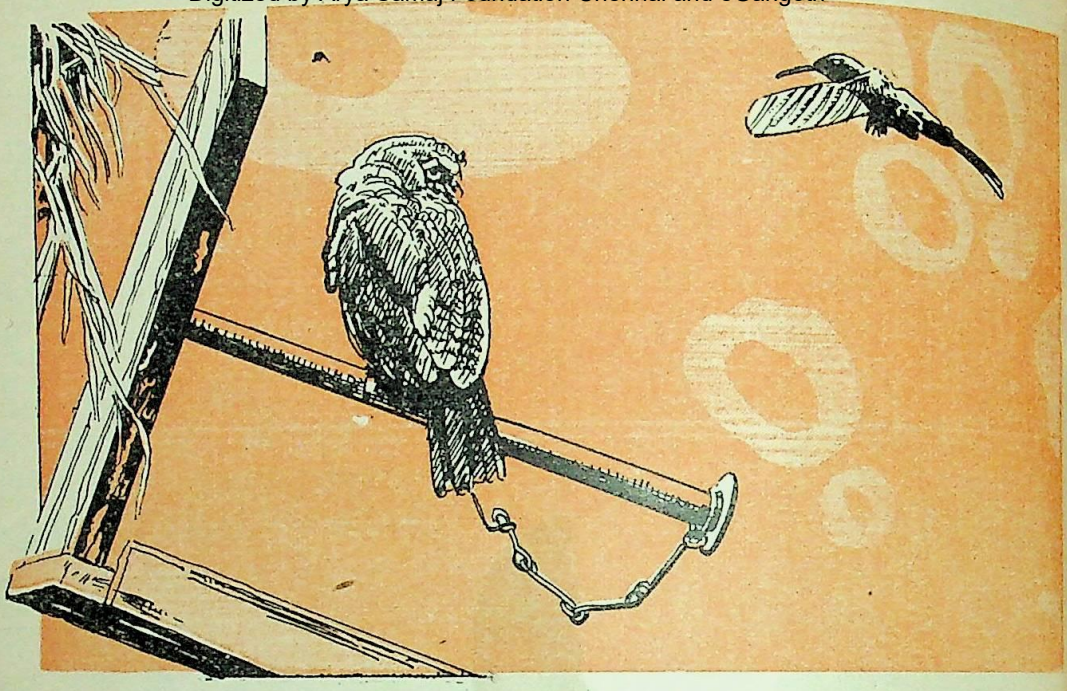

घोंसले के निकट ताक में बैठे हुए शिकारी शत्रु उलूक से किंचित भी भय न खाते हुए हमिंगबर्ड सीधा झपटा चला आ रहा है

इक्वेडोर तथा पेरू में पाया जाता है, उसकी चोंच शरीर से लम्बी होने का उत्कृष्ट नमूना है। शरीर के अनुपात से मानव को भी यदि हमिंगबर्ड जैसी चोंच मिल जाये तो क्या कहने ! तब तो वह खाने की मेज पर काफी दूर की चीज भी सफाई से गटक सकेगा। उस अवस्था में उसके होंठ सात फुट लम्बे होंगे तथा जीभ बाहर को और भी पाँच फुट आगे निकल सकेगी। दूसरे शब्दों में वह खाने की मेज पर अपनी कुरसी से १२ फुट दूर रखी चीज को भी मुँह से उठा सकेगा !

इनकी चोंच के आकारों में भी विभिन्नता रहती है। जिस आकार के पुष्प-नाल से जिसे काम पड़ता है, उसे वैसी ही चोंच मिली है। ये चोंचें कहीं तो लम्बी-सीधी, कहीं चन्द्रकार ऊपर को उठी, तो कहीं नीचे को झुकी, कहीं टेढ़ी, तो कहीं तिरछी भी पायी जाती हैं। जिनकी चोंच इतनी लम्बी न हो कि पुष्प-नाल के भीतर तक प्रवेश कर सके, वे अपनी ठिगनी चोंच से पुष्प के पराग कोष में छेद करके ही अपना काम निकाल लेते हैं। उस छेद के मार्ग से पुष्प-मधु तथा उसमें छिपे कीटों से वे अपना पेट भरते हैं।

ये चुस्त भी हैं और सुस्त भी

उषाकाल और सन्ध्याकाल इनके लिए चुस्ती के काल हैं। इन दोनों समय ये फुर्तीले और कार्यरत दिखते हैं। उस समय ये चिड़ियों की भाँति बड़े-बड़े झुण्डों में विचरते हैं। रात पड़ते ही ये सुस्त हो जाते हैं और एक प्रकार से रातभर के लिए शीत-निद्रा की भाँति लीन हो जाते हैं। वास्तविक शीतनिद्रा की अवधि में इनकी आन्तरिक शारीरिक क्रियाएं अत्यन्त मन्द पड़ जाती हैं और सामान्यतः १०० अंश तक रहने वाला शारीरिक ताप ६४ अंश तक गिर जाता है। ऐसी शिथिलता अन्य जन्तुओं में नहीं पायी जाती।

जितना नन्हा, उतना ही तेज लड़ाका

वजन में केवल कुछ ही ग्राम होने पर भी यह अपने शरीर के अनुपात में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बेहद तेज लड़ाका है। इसकी कठोर त्वचा और गठा हुआ शरीर लड़ाई के समय इसकी तेजी, फुर्ती, गुस्सा और साहस को बढ़ावा देते हैं। छोटे-मोटे सर्प और अन्य सामान्य पक्षी तो इसके हमले के आगे घुटने टेक देते हैं और इसे रास्ता दे देने में ही अपनी कुशलक्षेम समझते हैं। संकट बिलकुल सिर पर आ जाने की अवस्था में भी यह अपना साहस नहीं खोता और बहादुरी से मुकाबला करता है। उड़ने की कला में तो यह अपना सानी रखता ही नहीं, अतः किसी बड़े आक्रमणकारी पक्षी का भी वार चुका जाना इसके लिए सहज है। सर्प के लिए तो इसका सामना पड़ जाना जीवन-मरण का प्रश्न बन जाता है। अनेक बार देखा गया है कि पहले ही वार में यह अपनी लम्बी नुकीली चोंच से सर्प की आँखों का काम तमाम कर देता है।

इसकी मादा अपने घोंसले तथा बच्चों की रक्षा के लिए जान रहते किसी को भी पास फटकने नहीं देती। जब दो नर आपस में उड़ते-उड़ते ही गुत्थमगुत्था कर बैठते हैं, तब एक बार तो दोनों जुड़े ही जुड़े एक ढेले के समान धरती पर आ गिरते हैं, फिर उठते, उलझते हैं, कुछ ऊँचे उड़ते हैं और दूसरी बार उसी प्रकार गिरते हैं। अन्तिम फैसला होने तक कोई भी एक-दूसरे को नहीं छोड़ता।

हमिंगबर्ड अपना घोंसला भी बये की भाँति ही कलात्मक तथा सुदृढ़ बनाता है। तिनके, हरे पत्ते, नर्म डालियाँ तथा घास-फूस से बनाये हुए अपने घोंसले को मकड़ी के जाले तथा अपनी लार से लपेटकर मजबूत बना लेता है। बये के घोंसले जैसे ही इसका भी घोंसला दूर से एक टोकरी जैसा दिखता है। एक नर एक अनेक मादाओं से संसर्ग करता है और अधिकांश जातियों में नर अपने बच्चों की देखभाल के समय जान बचाकर पीछा छुड़ाये फिरता है।

चोंच से लेकर पूँछ के सिरे तक मणि-मुक्ताओं, रत्नों और नगीनों जैसे इन्द्रधनुषी चमकीले रंगों के कारण एक बार तो शौकीन महिलाओं द्वारा सजावट के लिए इनकी बढ़ती हुई माँग ने इनकी नस्लों को समाप्ति के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया था, किन्तु समय से पूर्व ही इस ओर कड़े प्रतिबन्ध लगाकर प्रकृति के इस रत्नकोष को लुप्त होने से बचाया जा सका है। ●

बया के घोंसले जैसी ही सुदृढ़ किलेबन्दी में यह शिशु-हमिंगबर्ड पूर्ण सुरक्षित है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानव जाति की सेवा में मौसम एवं संचार उपग्रह

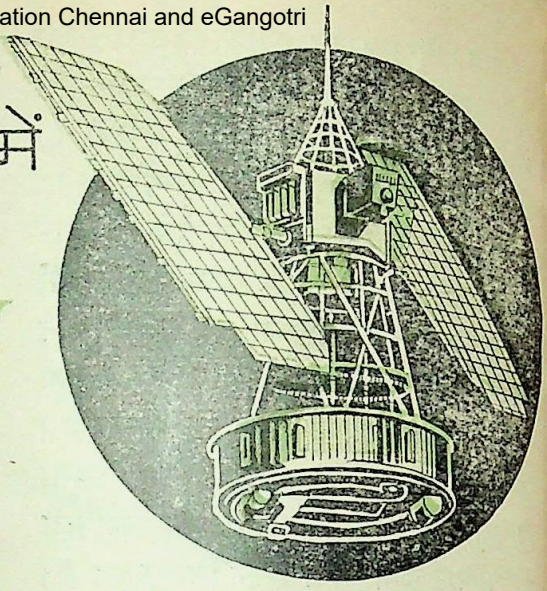

एडिसन एम. रोथरौक

अन्तरिक्ष अनुसन्धान का संसारवासियों के जीवन पर जो प्रभाव पड़ रहा है, वह आज इसके असैनिक उपयोगों के रूप में सर्वत्र स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रहा है।

टाइरोस उपग्रह द्वारा प्रेषित आंकड़े और तथ्य आज मौसम सम्बन्धी अधिक सही प्रमाणिक भविष्यवाणी करने में मौसम-वैज्ञानिकों की अत्यन्त सहायता कर रहे हैं। टाइरोस–१ उपग्रह की स्थापना एक अनुसन्धानात्मक एवं विकासशील अन्तरिक्षयान के रूप में की गयी थी। इसके बाद जो टाइरोस उपग्रह अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त किये गये उनका उद्देश्य एक व्यावहारिक प्रणाली के विकास हेतु आवश्यक तथ्यों और आंकड़ों का संचय करना था। लेकिन, बाद में अमरीका के मौसम-ब्यूरो ने बराबर सूचना प्रेषित करते रहने का अनुरोध किया और उसके इस अनुरोध को दृष्टि में रखते हुए 'नेसा' ने अपने कार्यक्रम का और अधिक विस्तार कर दिया।

टाइरोस उपग्रह में सबसे बड़ा दोष यह है कि हर परिक्रमा में केवल थोड़े समय के लिए ही इसका मुख पृथ्वी की ओर रहता है। इस दोष का परिहार करने के लिए ऐसी नियंत्रण प्रणाली का विकास करने की आवश्यकता पड़ी, जिसका उपयोग मरकरी और मैरिनर अन्तरिक्ष-यानों तथा कक्षागत सौर वेधशालाओं में किया जाता है और जो इनमें प्रयुक्त नियंत्रण-प्रणालियों से अधिक लोचशील हो। 'निम्बस' नामक मौसम उपग्रह में इसी प्रकार की नियंत्रण प्रणाली की व्यवस्था की गयी है।

संचार के क्षेत्र में टेलस्टार और रिले उपग्रहों द्वारा अतलांतिक महासागर के आर-पार प्रेषित साफ टेलीविजन एवं रेडियो प्रसारणों ने यह भली प्रकार सिद्ध कर दिया है कि अन्तरिक्ष-यान के अन्दर रेडियो और टेलीविजन संदेशों के आदान-प्रदान और विस्तारण की जिस विश्वसनीय प्रणाली की आवश्यकता है, वह लगभग पूरी होने जा रही है।

सिनकोम–२ की सफल स्थापना से अन्तरिक्ष-यान को पृथ्वी की कक्षा में इस प्रकार स्थापित करने की दिशा में एक और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

70251
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दम उठा लिया गया है, जिसमें वह सदैव एक ही स्थान पर दृष्टिगोचर रहेगा। इस प्रकार की स्थिर प्रतीत होने वाली कक्षा में स्थापित होने के कारण अतलांतिक महासागर के आर-पार अनवरत रेडियो टेलीविजन संदेश भेजना सम्भव हो गया। पृथ्वी पर रहने वाले व्यक्ति को यह उपग्रह आकाश में सदैव एक ही स्थान पर स्थिर प्रतीत होगा।

अगस्त, १९६३ में सिनकोम उपग्रह इस तरह पृथ्वी की कक्षा में प्रक्षिप्त किया गया कि वह पृथ्वी की विषवत् रेखा के समानान्तर ५५ डिग्री पश्चिमी देशान्तर पर इस गति से परिक्रमा करे कि पृथ्वी से देखने पर वह सदैव एक ही स्थान पर दृष्टिगोचर रहे। सिनकोम उपग्रह पृथ्वी की धुरी के चारों ओर एक विशाल वृत्ताकार कक्षा में, जो पृथ्वी की विषवत् रेखा पर ३३ अंश के कोण पर झुकी है, परिक्रमा करता है। इसकी वृत्ताकार कक्षा का व्यास ६० हजार मील है, जिसे पूरा करने में उपग्रह को पूरे २४ घण्टे लगते हैं!

सिनकोम–२ उपग्रह में टेलीफोन की कई लाइनें भी हैं। इन टेलीफोन-लाइनों की संख्या इस बात पर निर्भर करती है कि डेल्टा राकेट कितना भारी उपग्रह कक्षा में स्थापित कर सकता है।

एटलस-एगना राकेट का उपयोग करके हम सिनकोम-२ से १० गुना अधिक वजनी उपग्रह कक्षा में स्थापित कर सकते हैं। लेकिन इस प्रकार का अन्तरिक्ष-यान पृथ्वी से देखने वाले को एक स्थान पर स्थिर दृष्टिगोचर नहीं होगा, अपितु एक बड़े क्षेत्र में आगे और पीछे सरकता प्रतीत होगा। और, यदि इस विशाल उपग्रह का आधा भाग एक खण्डीय राकेट से युक्त हुआ तो हम उपग्रह को विषवत् रेखा के ऊपर लाकर उसकी स्थिति को एक बिन्दु पर स्थिर करने में समर्थ हो जायंगे। इस प्रकार संदेश प्रेषित करने और उन्हें ग्रहण करने की व्यवस्था पूर्ण हो जायेगी। उपग्रह की चाल और दिशा इत्यादि में परिवर्तन करने के लिए उस प्रकार की विधियाँ काम में लायी जायेंगी जैसी मैरिनर और सौर-वेधशालाओं के लिए प्रयुक्त की गयी हैं।

सैटर्न राकेट की सहायता से हम उस उपग्रह से भी चौगुने वजन का उपग्रह स्थिर प्रतीत होने वाली कक्षा में स्थापित कर सकेंगे, जितना कि एटलस-एगना राकेट की सहायता से स्थापित करना सम्भव है। इसके द्वारा समुद्रों के आरपार एक साथ कई टेलीविजन कार्यक्रम प्रसारित किये जा सकेंगे तथा समुद्र के आरपार एक साथ कई सौ टेलीफोन भी किये जा सकेंगे।

हमारे राष्ट्रीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम का अधिकांश भाग समानव अन्तरिक्ष-यान के विकास, संचालन और उपयोग से सम्बन्धित है। नेसा के कार्यक्रम में मरकरी, जेमिनी और एपोलो अन्तरिक्ष-यान शामिल हैं। मुख्य लक्ष्य चन्द्रमा के धरातल पर मनुष्यों को उतारना है। वस्तुतः कार्यक्रम का क्षेत्र इससे कहीं अधिक विस्तृत और व्यापक है। अनेक अनुसन्धानात्मक समानव अन्तरिक्ष-यानों के विकास और सफल संचालन के उपरांत ही मनुष्य में अन्तरिक्ष-यात्रा करने की क्षमता आ सकेगी। चन्द्रमा के धरातल पर उतारने की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करके हमने एक लक्ष्य निर्धारित कर लिया है—वह लक्ष्य है, समानव अन्तरिक्ष-यान के संचालन सम्बन्धी समस्त आधारभूत पहलुओं का पूर्ण विकास। जब तक तीन अन्तरिक्ष-यात्री अपने यान पर सवार होकर अन्तरिक्ष-यात्रा के लिए प्रस्थान करेंगे, तब तक हमें पृथ्वी की कक्षा में समानव अन्तरिक्ष-यानों की उड़ानों में कम से कम दो हजार घण्टे का अनुभव प्राप्त हो चुका होगा। इन दो हजार घण्टों में हम पृथ्वी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

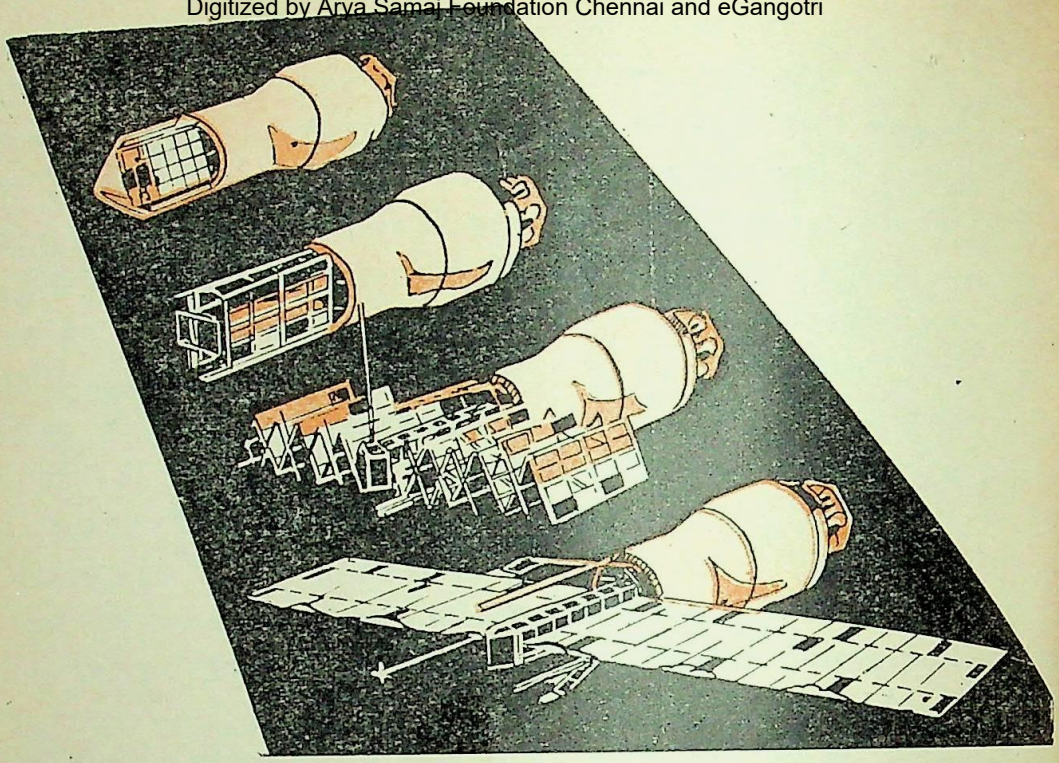

यह उपग्रह वे वल १½ टन वजन का है और अन्तरिक्ष मे पहुँचने पर इसकी पांखें क्रमशः (१,२,३,४) १०० फुट तक का फैलाव प्राप्त कर लेंगी

की १३०० परिक्रमाएं पूरी कर लेंगे। कक्षा में परिक्रमा करते हुए अन्तरिक्ष-यान तक पहुँचने और उससे वापस लौटने में मनुष्य समर्थ हो चुका होगा। यही नहीं, अन्तरिक्ष में परिक्रमा करते हुए अन्तरिक्ष-यानों का निरीक्षण करना तथा एक अन्तरिक्ष-यान से दूसरे अन्तरिक्ष-यान में सामग्री और मनुष्यों को हस्तान्तरित करना भी सम्भव हो चुका होगा।

मरकरी अन्तरिक्ष-यान और कक्षागत सौर-वेधशालाओं की तरह हम अन्तरिक्ष-यानों की दिशा इत्यादि बदलने में समर्थ हो चुके होंगे। यही नहीं, हम इसमें भी पूर्णतः सिद्धहस्त हो चुके होंगे कि आवश्यकता पड़ने पर अन्तरिक्ष-यान के यात्रा-पथ में किस प्रकार परिवर्तन किया जाये। मैरिनर और सिनकोम के मामले में हम यह कार्य अभी भी सफलतापूर्वक सम्पन्न कर चुके हैं। ये ही वे कार्य हैं, जो समानव अन्तरिक्ष-यान का विकास करने और सफलतापूर्वक उनका संचालने एवं नियंत्रण करने की दृष्टि से परमावश्यक हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये सभी कार्य सफलतापूर्वक पूरे कर लिये जायेंगे।

इस राष्ट्रीय अन्तरिक्ष-यात्रा के कार्यक्रम से अवगत होने के सन्दर्भ में यह समझ लेना नितान्त आवश्यक है कि अन्तरिक्ष-यात्राएं या अन्तरिक्ष-उड़ानें पृथ्वी के वायुमण्डल में भरी जाने वाली उड़ानों से सर्वथा भिन्न हैं। अनुसन्धानात्मक अन्तरिक्ष-यान और व्यावहारिक अन्तरिक्ष-यानों की उड़ानें सामान्य वायुयानों की उड़ानों से उसी प्रकार भिन्न हैं जिस प्रकार हवाई जहाज की यात्रा स्थलीय और समुद्री यात्रा से सर्वथा भिन्न होती है।

इतनी नीची कक्षा में स्थापित अन्तरिक्ष-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि वह न्यूयार्क के ऊपर से गुजरता हो, २४ घण्टे के अन्दर ही मैड्रिड, रोम, वोल्गाग्रेड, अंकारा, सैगोन, टोकियो, ब्यूनस एयर्स, ब्राजीलिया और हवाना के ऊपर से अथवा उनके कुछ सौ मील इधर-उधर से गुजर जाएगा। वस्तुतः अमरीका या रूस के किसी भी अन्तरिक्ष-यान के लिए यह सम्भव नहीं कि वह अपनी यात्रा के दौरान में अनेक देशों के ऊपर से न गुजरे; लेकिन इसके लिए न तो कोई स्वीकृति माँगी जाती है और न दी जाती है तथा अभी तक किसी ने इस पर कोई विरोध भी प्रकट नहीं किया है।

अन्तरिक्ष में मानवयुक्त यान भेजने की स्पर्धा आगे और कदम बढ़ाने से पहले जब तक वृहद तैयारियों में रुकी हुई है, तब तक मानव-रहित यान भेजने की श्रृंखला तो बढ़ी ही चली जा रही है। विगत छह वर्षों के लेखे से ज्ञात होगा कि समानव यानों की अपेक्षा मानवरहित यानों, मौसम तथा संचार उपग्रहों ने अन्तरिक्ष में कहीं अधिक प्रमाण में समय-यापन किया है, कहीं अधिक जटिल क्रियाएं सम्पन्न की हैं और अधिक ही अधिक अन्तरिक्षीय स्तिथतियों के विवरण पृथ्वी पर भेजे हैं। अन्ततः तो अवश्य ही मानव अपने अन्तरिक्ष-अनुसन्धानों में इन मानवरहितयानों पर निर्भर रहना नहीं चाहेगा, किन्तु अभी काफी समय आगे तक तो इनकी महत्ता बनी ही रहेंगी।

आने वाले मानवरहित उपग्रह विगत यानों की अपेक्षा और भी वृहत्तर रहेंगे और तदनुसार कार्य भी बड़े ही बड़े कर दिखायेंगे। इस योजना की एक मनोरंजक श्रेणी अमरीका के सात उपग्रहों की श्रृंखला रहेगी जिसे आई.एम.पी. I.M.P. (Interplanetary Monitoring Platform) श्रृंखला कहेंगे। वे यान पंख लगी प्रयोगशालाएं होंगी जो अन्तरिक्ष के नये और अनुसन्धानों को खोज-खोजकर हमारे सम्मुख प्रस्तुत करेंगी। पृथ्वी को आवरित किये हुए चुम्बकीय कटिबन्ध, कास्मिक तथा सौर-आंधियाँ एवं भू-आकर्षण से परे के क्षेत्रों के विवरण जैसे जटिल विषय उन उड़ती हुई प्रयोग-शालाओं के कार्यक्रम में सम्मिलित होंगे।

आई.एम.पी. श्रृंखला के आरम्भिक अनुसन्धानों में एक यह भी होगा कि सूर्य के ११ वर्षीय चक्र और विशेषतः शान्त-सूर्य-काल में भी सूर्य से तथा अन्य तारों से विकीरित विद्युत-कणों के उद्गम तथा अन्य रहस्यों की खोज की जाये। इस प्रकार के विवरण मानवयुक्त यान अन्तरिक्ष में भेजने से पूर्व ही प्राप्त करना अत्यावश्यक होगा। इस प्रकार के कुछेक तथ्य विगत प्रयोगों में —बिशेषतः अमरीकन एकस्प्लोरर श्रेणी के अन्तर्गत प्राप्त भी किये जा चुके हैं। उन तथ्यों ने प्रकट किया है कि सौर-हलचल की अधिकता के काल में अन्तरिक्ष में कास्मिक विकिरण भी काफी बढ़ जाता है। अतः न केवल उन हानिकारक विकिरणों से बचने के उपाय किये जायेंगे, बल्कि उनकी पूर्वागाही भी प्राप्त करके उन तूफानों के समय को टाल दिया जायगा और समानव उड़ान तभी की जायगी, जब अन्तरिक्षीय वातावरण अधिकाधिक शान्त हो।

दूसरा अनुसन्धानिक यान एक सौर-वेधशाला सरीखा होगा। वह तथा तत्पश्चात् भेजे जाने वाले वैसे ही अन्य यान नक्षत्रविदों का कार्य अत्यन्त सरल कर देंगे। उनसे प्राप्त विवरणों द्वारा वे वायुशून्य केन्द्रों से प्राप्त ऐसे अन्तरिक्षीय एवं नक्षत्रमण्डलीय रहस्य ज्ञात कर सकेंगे जो अन्यथा पृथ्वी से देखे जाने पर वायुमण्डल द्वारा विक्षेपित होते रहते हैं और यथार्थ दृष्टिगत नहीं होते। वेधशाला सरीखा ऐसा एक यान ओ.एस.ओ–१ OSO-1

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

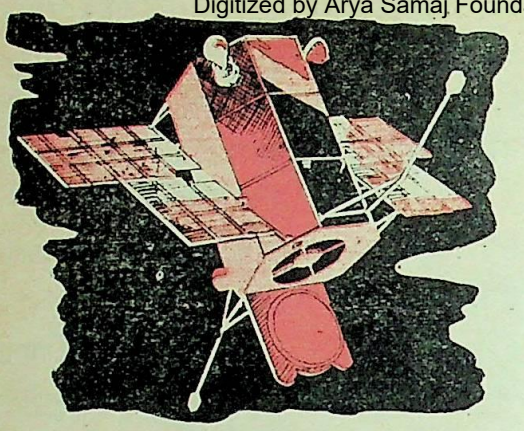

इस सौर-वेधशाला में ६ विभिन्न टेलीविजन कैमरे ग्रहों, नक्षत्रों और तारों के चित्र प्रसारित करेंगे

(Orbiting Solar Observatory) नामक मार्च १९६२ में अमरीका ने भेजा था जो तब से बराबर महत्त्वपूर्ण विवरण भेज रहा है। उसी में और संशोधन, परिवर्तन करके ओ.एस.ओ–२ जो भेजा जायगा उसमें बढ़ाये हुए वैज्ञानिक उपकरणों का भार ही समूचे यान का एक-तिहाई भाग होगा। उन उपकरणों में कोरोनोग्राफ नामक एक सर्वथा नवीन यन्त्र होगा जो सूर्य का अवलोकन करते समय उसके गिर्द कृत्रिम ग्रहण उपस्थित कर देगा ताकि अधिक स्पष्टता से अवलोकन किया जा सके। अब तक के यानों में ऐसा यन्त्र न होने के कारण उन्हें अपने अवलोकनों के लिए सूर्यग्रहण तक प्रतीक्षा अनिवार्यतः करनी पड़ती थी।

ओ.एस.ओ. में तीन मुख्य यन्त्र और भी हैं। पहला यन्त्र एक पहिया है जो एक मिनट में अपनी धुरी पर ३० चक्कर लगाता है। यह पहिया एक गाइरोस्कोप (gyroscope) का काम करता है, अर्थात् यान का सन्तुलन सम्हाले रखता है। इसी में लगे अन्य यन्त्र सूर्य को प्रत्येक दिशा तथा हरेक पहलू से देखने में समर्थ होते हैं। दूसरा महत्त्वपूर्ण उपकरण एक पाल जैसा है जो पहिये की गति के विरुद्ध हरकत करता है और यों निर्निमेष दृष्टि सूर्य की ओर ही लगाये रहता है ताकि सौर-वेधशालाओं को अधिकाधिक ऊर्जा मिलती रहे। तीसरा भाग ऐसे दो कक्षों का होगा जिनमें रखे उपकरण सूर्य की ओर अचूक दृष्टि जमाये रहेंगे और उपरोक्त द्वितीय उपकरण—पाल की गति से साम्य रखते हुए घूमेंगे। अमरीकी योजना है कि इस नये ओ.एस.ओ–२ को १९६७ के लगभग अन्तरिक्ष में भेजा जाये क्योंकि उन्हीं दिनों सौर-तूफान अपने चरम पर होंगे।

जैसा कि ऊपर कहा है, ऐसे सौर-निरीक्षण के अतिरिक्त पृथ्वी के वायुमण्डल से परे, अबाध रूप से तारों, नक्षत्रों के भी अवलोकन में अमरीकी नक्षत्रविद नयी दिलचस्पी रखते हैं। इसके लिए ओ.एस.ओ. नहीं, ओ.ए.ओ. OAO (Orbiting Astronomical Observatories) के नाम से उपग्रह भेजे जायेंगे। ऐसे प्रथम यान में एक १२-इंची दूरदर्शी होगा जो पराबैंगनी प्रकाश में आकाशीय चित्र उतारेगा। दो दूरदर्शी, १६ तथा ८ इन्च के होंगे जो तारों और तारक समूहों का अवलोकन करेंगे। उसी यान में दो वर्णक्रममापी भी होंगे जो पराबैंगनी प्रकाश में तारों का अवलोकन करेंगे। दूसरे-तीसरे ओ.ए.ओ. में ३६ इंची एक-एक दर्पण भी होगा जो वर्णक्रममापी को अधिक से अधिक प्रकाश प्रदान करेगा।

इन दूरदर्शियों का दिशा-नियन्त्रण भू-स्थित वेधशाला के हाथ में रहेगा। वहीं से वैज्ञानिक उपग्रह को सूचित करते रहेंगे कि कब, किस दिशा में चलना, चढ़ना या उतरना है। इस प्रकार भू-स्थित वेधशालाओं के जिन शक्तिशाली दूरदर्शियों में भरसक प्रयत्नों के बावजूद भी नक्षत्रीय चित्र अधिक स्पष्ट नहीं आ पाते, वे इस अन्तरिक्षीय वेधशालाओं द्वारा प्राप्त किये जा सकेंगे।

ऋतु-अनुसन्धानक उपग्रह

अमरीका से २१ दिसम्बर १९६३ को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़े गये टाइरॉस-८ मौसम उपग्रह द्वारा प्रक्षेपित विवरण संकलित करने के लिए पूरे युनाइटेड स्टेट्स में स्थल-स्थल पर जो ४२ संस्थान नियत किये गये हैं, उन सबका केन्द्र वाशिंगटन में है। कुछ ही सप्ताहों पश्चात् वे समस्त केन्द्र टाइरॉस-८ द्वारा भेजे जाने वाले विवरणों का संग्रह करने में व्यस्त हो जायेंगे। उक्त टाइरॉस-८ में ए.पी.टी. APT (Automatic Picture Transmission) अर्थात् चित्र-प्रक्षेपण की जो स्वचालित नयी व्यवस्था रखी है, उसकी सहायता से ऋतु-सम्बन्धी पूर्व-सूचनाएं और भी सही रूप में प्राप्त की जा सकेंगी। टाइरॉस श्रेणी के इन उपग्रहों का अब तक का रिकार्ड अति उत्तम तथा उत्साहवर्द्धक रहा है। इनसे आने वाले आँधी, तूफानों की सूचना काफी पहले मिलती रही होने से जान-माल की अन्यथा होने वाली हानियों से बचा जा सका है।

ऐसे ४२ केन्द्रों में ही उपरोक्त ए.पी.टी. की यन्त्रसज्जा है। अतः सचित्र ऋतु-सूचनाएं पहले इन्हीं केन्द्रों पर संग्रहीत होती हैं और तत्पश्चात् सर्वत्र प्रसारित की जाती हैं। अतः आगे के लिए जो देश इस यन्त्रसज्जा को अपने यहाँ लगाना चाहें वे इसे लगभग ५० हजार डालर के मूल्य पर प्राप्त कर सकेंगे। इन ४२ केन्द्रों में २ केन्द्र अमरीका से बाहर के भी सम्मिलित हैं, जिनमें एक तो इंगलैण्ड में है और दूसरा उस अनुसन्धानक पोत पर है जो अन्तरराष्ट्रीय हिन्द महासागरीय अनुसन्धान के अन्तर्गत भेजा गया है।

ये टाइरॉस उपग्रह यद्यपि केवल उष्ण तथा समशीतोष्ण कटिबन्धों के अर्थात् भूमण्डल के २०% भाग के ही चक्कर लगा रहे हैं, तथापि मौसम-आगाहियों में इनके प्रयोग चमत्कारिक सिद्ध हुए हैं। इन्होंने ऐसी-ऐसी आगाहियाँ दी हैं जो पहले कभी अन्यान्य साधनों द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकी थीं। इन्होंने तूफानों को उनकी उद्गम-अवस्था पर ही पकड़कर उनकी पूर्व सूचनाएं पृथ्वी पर भेजी हैं जिनसे जन और सम्पत्ति की विशेष रक्षा हो सकी है। इनसे अब तक लगभग सवा दो लाख चित्र और उपयोगी विवरण प्राप्त किये जा चुके हैं। विनाशकारी तूफानों की कम से कम १००० पूर्व-सूचनाएं इनसे ऐसी मिली हैं जो अन्य कैसी भी सम्पन्न वेधशाला के लिए सम्भव नहीं था। इसका एक ज्वलंत उदाहरण निम्नलिखित है।

टाइरॉस-३ ने १९६१ में कार्ला हरीकेन (Carla Hurricane) नामक प्रचण्ड तूफान की जो आगाही टेक्सास और ल्यूसीयाना के पूर्वीय विस्तारों के लिए दी, उससे काफी समय पूर्व वहाँ की बस्तियों को खाली कराया जा सका था। अपेक्षित समय जो तूफान ने अपना ताण्डव दिखाया उसमें केवल ४६ व्यक्तियों की जनहानि हुई। ऐसी ही जनहानि का अंक सन् १९०० में आये हुए तूफान के फलस्वरूप ६००० का था!

१९६१ में ही उक्त टाइरॉस-३ ने दूसरे विनाशकारी तूफान हरीकेन एस्थर (Hurricane Esther) की सूचना दो दिन

ईको द्वितीय (Echo II) **नामक सबसे बड़ा मौसम-उपग्रह जो केलीफोर्निया से इस वर्ष के आरम्भ में अमरीका ने छोड़ा था, उसके क्रमशः खुलने के टेलीविजन चित्र**

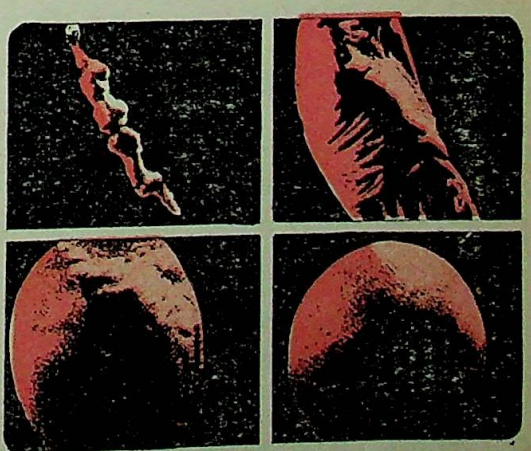

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

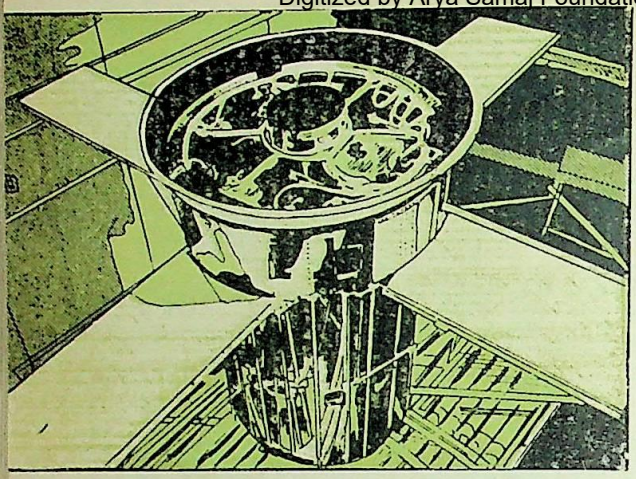

विगत परीक्षणों के आधार पर नवसंशोधित मौसम-उपग्रह का वह प्रारूप जिसके अनुसार नया उपग्रह आगामी वर्ष छोड़ने की अमरीकी योजना है

पूर्व दे दी थी। अब तक के छोड़े गये समस्त टाइरॉस-उपग्रहों में टाइरॉस-१ के अतिरिक्त सबों ने अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य सम्पन्न किये हैं। टाइरॉस-६ ने १३ महीनों तक पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर-कर के बादलों के ६७००० चित्र अब तक भेजे हैं जिनसे ऋतु-अनुसन्धान में काफी सहायता मिली है। ये ही उपग्रह सर्दियों में हिम-आवरण, ग्लेशियरों तथा बर्फ के चित्र भी भेजते हैं। एक बार तो टाइरॉस ने पूर्व अफ्रीका से उठते हुए टिड्डी-दल की पूर्व सूचना तथा चित्र भेजे थे जिनसे उनके गुजरने वाले क्षेत्रों पर टिड्डी-विनाशक अभियान समय से पूर्व ही सम्पन्न करके बहुमूल्य कृषि-क्षेत्रों की रक्षा करना सम्भव हो सका था।

इन संचार तथा मौसम-उपग्रहों का भविष्य, या कहिये, इनके चमत्कारों से संसार का भविष्य निःसन्देह अति उज्ज्वल है।

सात मिनट तेज घड़ी ने जानें बचायीं

गोरलीज (जर्मनी) के टाउनहाल की टावरघड़ी विगत ७०० वर्षों से सात मिनट तेज रखी जा रही है, उसके पीछे एक अत्यन्त रोचक स्मृति है। उस वर्ष नगरपालिका के सदस्यों की सामुहिक हत्या करने के षडयंत्रकारियों ने सोच रखा था कि दोपहर के दो बजे, खाने के समय बाहर निकलने वाले उन सदस्यों को एक बारगी घेर कर मार दिया जायगा। उन्हीं में से एक फूट गया और सदस्यों को पूर्व सूचना देकर पुलिस के साथ एक जाल रच लिया। योजनानुसार सदस्यों ने टावर की घड़ी को सात मिनट आगे कर दिया। दो के घण्टे से ४-५ मिनट पहले अर्थात् वास्तव में १२ मिनट पहले षड्यंत्रकारियों के एकत्र होते ही उन्हें पकड़ लिया गया। टावर की घड़ी द्वारा इस प्रकार जानें बचाने के उपलक्ष्य और इसकी स्मृति अमिट बनाने के लिए तभी से इसे सात मिनट आगे चलाया जा रहा है।

बिस्तर छोड़िये भी, न···न··· छोड़ना नहीं !

अगर कभी बिस्तर पकड़ लिया तो मानो बिस्तर ने ही आपको पकड़ लिया। बुखार बाकी हो और आप का जी ताजा हवा खाने को हो, तो जबर्दस्ती आपको लिहाफ में लिटा दिया जायगा। यह भी क्या मुसीबत है ? वास्तव में पुराण-पन्थियों को यह समझाने की आवश्यकता है कि कुछ बीमारियां ऐसी हैं जो बीच-बीच में चारपाई छुड़वाना पसन्द करती हैं, और कुछ ऐसी हैं जो रोगी को बिस्तर पकड़े ही देखना चाहती हैं। न्यूमोनिया, चेचक और गठिया के रोगियों को दो दिन के अन्तर से बिस्तरे से छुट्टी दिलाना उन्हें स्वास्थ्य लाभ में वेग प्रदान करता है। इसके विपरीत, लिवर के रोगियों को और पक्षाघात अर्थात् पोलियों के रोगियों को हाथ-पाँव की हरकत करने देना हानिकारक सिद्ध होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

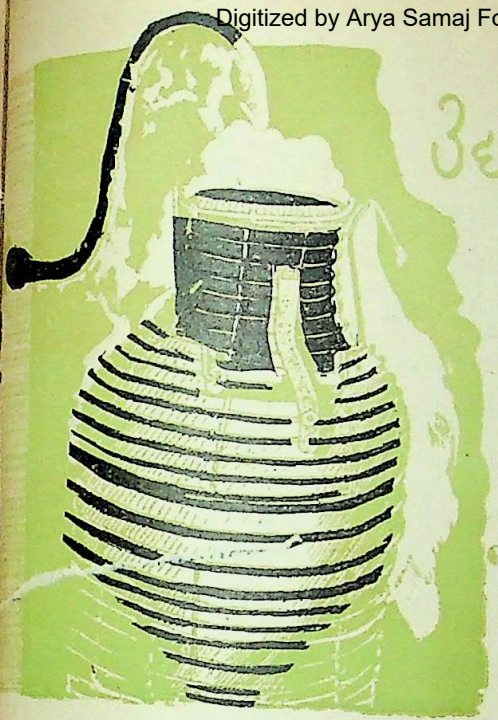

उद्योग और तकनीक में

चमत्कारिक शीत के नये उपयोग

डा. रामचरन

सामान्य जीवन में हमें सीमा से परे के ताप और शीत से काम नहीं पड़ता। हमें केवल दो ही तापांकों से काम रहता है—पानी का घननांक ०°C और क्वथनांक १००°C। यह तो हुई हमारी अति सीमित, छोटी-सी दुनिया की बात; किन्तु सृष्टि, अखिल विश्व और असीम अन्तरिक्ष तो सीमाओं में नहीं बंधते। इनकी हरेक छोटी-सी बात हमारे लिए बड़ा आश्चर्य बनी रहती है। विशाल व्योम के किसी भी तारे (सूर्य से भी कहीं बढ़कर) का केन्द्रीय ताप गणित के अंकों के लिए एक चुनौती बन जायगा। ऐसे ही, अन्तरिक्ष के अभी तक अनचीन्हे कई कोने ऐसे भी हैं जहाँ –४५९°F तक का शीत होना सहज बात है!

चरम शीत का यह विज्ञान, जिसे निम्न-तापी विज्ञान अर्थात् क्रायोजेनिक्स (Cryogenics) कहेंगे, इसी अर्द्धशताब्दी की उपज है। आज से १० वर्ष पूर्व तक यह विज्ञान केवल प्रयोगशालाओं तक ही सीमित था और सामान्य लोगों के लिए एक अचरजभरी, नुमाइशी वस्तु था। यह तो इधर १० वर्षों के अथक परिश्रम का सुफल है जो इसके चमत्कारिक उपयोग हमें चिकित्सा-विज्ञान, जीव-विज्ञान तथा प्रमुख उद्योगों में देखने को मिलते हैं।

अमरीका में प्रथम श्रेणी की वैज्ञानिक प्रगति आज इसी दिशा में हो रही है। चरम शीत की सहायता से चरम ताप द्वारा विद्युत-उत्पादन के सफल प्रयोग किये जा रहे हैं।

कल्पनातीत विशेषताएं

इस ताप पर आप फौलाद को मुक्का मारकर तोड़ सकते हैं। इसी ताप पर आक्सीजन, हाइड्रोजन, नियान और हीलियम जैसी गैसें पानी की तरह बहती नजर आयेंगी और अनेक शुद्ध तथा मिश्र धातुएं अपनी विद्युत-प्रतिरोधन शक्ति ही खो देंगी। उन्हीं धातुओं को इस निम्न ताप पर यदि कुण्डलाकार बनाकर उनमें विद्युत-धारा प्रवाहित की जाये तो पुनः विद्युतधारा का स्रोत बन्द कर देने पर भी वे अनन्त और अनवरत रूप से विद्युन्मय हो जायेंगी। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्रता को सुपरकन्डक्टिविटी (super-conductivity) अर्थात् परम चालकता का नाम दिया गया है। इसी परम चालकता द्वारा अनेक उद्योगों तथा तकनीकी संस्थानों में क्रान्तिकारी प्रयोग किये जाते रहे हैं।

चरम शीत प्राप्ति के साधन

इस ताप तक पहुँचने के एक से अधिक मार्ग हैं, अनेक साधन हैं। प्रमुख साधन है गैसों का द्रवीकरण। किसी भी गैस को जब चापित (compress) करके फैलने दिया जाता है (expanded) तब वह अपना ताप खो कर अत्यन्त शीतावस्था में आ जाता है। अतः आक्सीजन, हाइड्रोजन और हीलियम आदि गैसों के द्रवीकरण द्वारा यह निम्न ताप प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार किसी भी धातु, धातु-निर्मित वस्तु अथवा प्राकृतिक तत्त्व को द्रवीकृत गैस के मध्य इसी निम्न ताप पर रखा जा सकता है।

ये चमत्कारिक उपयोग

अमरीकी वैज्ञानिकों ने एक नये प्रयोग के अन्तर्गत केवल एक पौण्ड भार सुपरकन्डक्टिंग धातु का लिया। उसे छह वाट की कार-बैटरी द्वारा विद्युत-चुम्बक में परिवर्तित कर दिया। विधि के पश्चात् बैटरी हटा लेने पर भी वह टुकड़ा स्थायी चुम्बक बना रहा। उसकी चुम्बक शक्ति भी अति विलक्षण—पृथ्वी के सामान्यगत चुम्बकत्व से एक लाख गुना अधिक थी। उस शक्ति को प्राप्त करने के लिए सोचिए, कितने बड़े साधन जुटाने पड़ते? उस एक पौण्ड धातु-खण्ड के बदले कई टन भार लोहे का ढेर लेना पड़ता और उस चुम्बकत्व के उत्पादन के लिए १०० किलोवाट का जनरेटर चलाये रखना पड़ता और उत्सर्जित ऊष्मा को ठण्डा करने के लिए काफी महंगा सरंजाम रखना पड़ता। उन सब झंझटों से दूर, इस छोटी-सी विधि से तुरन्त काम हो गया। बस, केवल कुछ देर के लिए उस चुम्बक को द्रव-हीलियम में डुबोये रखना पड़ा।

तत्पश्चात् उसी हीलियम के पात्र में रखे हुए चुम्बक पर ४५००°F तक की अति तप्त गैसें प्रवाहित की गयीं। इस विधि को प्लास्मा-विधि कहा जाता है। इस प्रयोग के परिणाम-स्वरूप वह चुम्बकीय क्षेत्र स्थायी विद्युतक्षेत्र में परिणत हो गया। चुम्बक से इस प्रकार विद्युत प्राप्त करने के विज्ञान को मेग्नेटोहाइड्रोडिनेमिक्स (Magneto hydrodynamics) का नाम दिया गया है। अन्तरिक्ष उड्डयन तथा राकेट-विज्ञान में इस विधि के उपयोगों की अनन्त सम्भावनाएं हैं। अन्तरिक्ष-यानों के राकेट-इंजन तैयार करने के अन्तर्गत शून्य अन्तरिक्ष के चरम शीत का वातावरण प्रयोगशाला में प्रस्तुत करना ही पड़ता है।

–४५२°F (परम शून्यांक) पर, चरम शीतयुक्त द्रवीय हीलियम में सुपरकन्डक्टिंग चुम्बक डुबोया गया है। जब तक यह इसमें डूबा रहेगा, इसकी चुम्बक शक्ति अत्यन्त विलक्षण बनी रहेगी

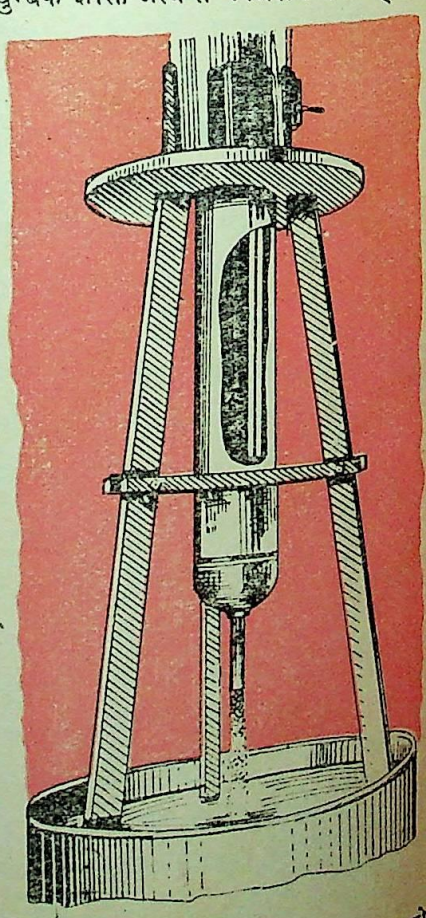

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमरीका द्वारा प्रक्षेपित इस्टार उपग्रह में रेडियो का संग्राहक एरियल द्रवीय हीलियम के मध्य रखना ही पड़ा है।

चिकित्सा-क्षेत्र में भी

अमरीका के चिकित्सकों ने अपने लिए भी इस चरम शीत का उपयोग ढूंढ़ निकाला है। रक्तदान के लिए जो रक्त संग्रहीत करके रखा जाता है, वह सामान्यतः एक नमूना, तीन सप्ताह से अधिक नहीं टिकता और उससे पहले ही उसका उपयोग कर लेना पड़ता है। अब उस रक्त को चरम शीतावस्था में -३२०°F के निम्न ताप पर पांच वर्ष तक अविकृत दशा में रखा जा सकता है। आज संसार में ५० से भी अधिक ऐसे अस्पताल हैं जिनमें चरम शीत की चिकित्सा-विधि अपनायी जा रही है। इसका एक उदाहरण है, पार्किन्सन-व्याधि का उपचार। इस इलाज में मस्तिष्क की शल्यक्रिया, रक्त की एक भी बूंद गिराये वगैर की जाती है। इसका रहस्य यह है कि मस्तिष्क की उन विशेष, रोगग्रस्त कोशाओं को ही चरम शीत द्वारा निष्प्राण अर्थात् नष्ट कर दिया जाता है।

पिछले चित्र में वर्णित विलक्षण चुम्बक केवल पांच पौण्ड वजन का होने पर भी एक वयस्क व्यक्ति का भार उठाने में समर्थ है

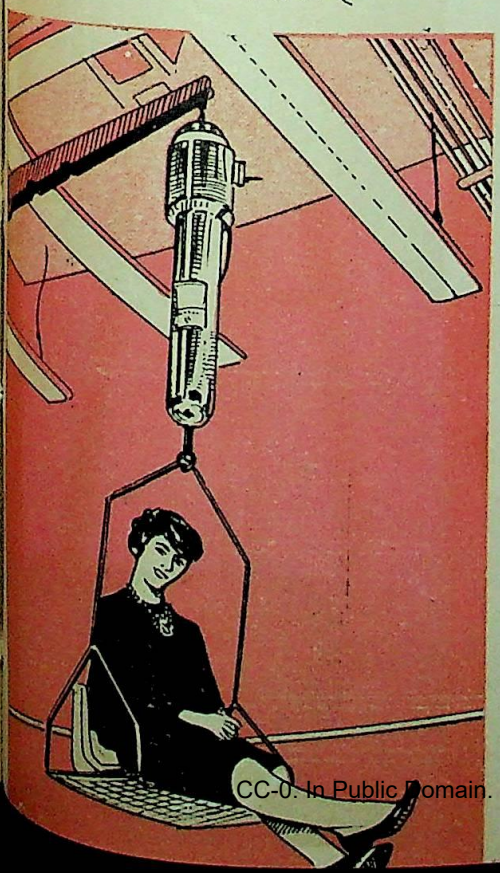

विभिन्न उद्योगों में भी

इस विधि के प्रयोग ने खाद्य-संरक्षण के लिए यान्त्रिक प्रशीतन अर्थात् रेफ्रीजरेशन की भी आवश्यकता मिटा दी है। हरेक प्रकार की खाद्य-वस्तु को वातानुकूलित ट्रक अथवा रेलवे द्वारा —३२० °F शीत का द्रवीय नाइट्रोजन छिड़क दिया जाता है। नाइट्रोजन में रंग, गंध तथा स्वाद जैसा कुछ भी न होने के कारण खाद्य-वस्तुएं सुरक्षित तथा अपरिवर्तित रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान तक लायी-ले-जायी जा सकती हैं।

अमरीका में जन्तुओं के कृत्रिम गर्भाधान सम्पन्न करने के लिए नर-शुक्राणुओं को इस चरम शीत द्वारा ही लम्बे समय तक स्वस्थ और सुरक्षित रखा जा रहा है। वहाँ के कुछेक प्रमुख स्टीलोत्पादक कारखानों में विशाल भट्ठियों के निकट ही चरम शीत की प्राप्ति के लिए द्रवीय आक्सीजन के भी साधन विद्यमान रहते हैं। राकेट की उड़ानों में विगत नवम्बर के लगभग अमरीका के सेन्टावर (Centaur) नामक राकेट में द्रवीय हाइड्रोजन का ईंधन के रूप में प्रयोग करके देखा ही जा चुका था। उस प्रयोग ने यह सिद्ध कर दिया था कि किसी काल में कल्पनातीत रूप से गर्म और अस्पर्श्य द्रवीय हाइड्रोजन को विज्ञान अपने शिकंजे में बांध सका है और अब यह चरम शीत ईंधन के रूप में प्रचलित अन्यान्य ईंधनों से ३५% अधिक शक्ति प्रदान करता है। शक्ति की यही वृद्धि राकेट-उड़ानों में उन भीमकाय वजनी भारों को उठाने के लिए वरदान रूप है।

अभी इस दिशा में बहुत आगे बढ़ना शेष है और नित नये प्रयोगों की उत्सुक प्रतीक्षा भी स्वाभाविक ही है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुत्वाकर्षण की गहन गुत्थियाँ

कुमारी मालती

तीन शताब्दियाँ पीछे घूमें तो १७वीं शताब्दी में पहुँच जायेंगे। वर्तमान विज्ञान का प्रगति-सूत्र हमें वहीं मिलेगा। उसी शताब्दी में आधुनिक विज्ञान ने आँख खोली थी। वैज्ञानिक संगठनों, संस्थाओं तथा हस्त-लिखित पत्रिकाओं का भी वह आरम्भ-काल था। उससे पूर्व तक विज्ञान की बातें कहने वाला तथा तद्विषयक भविष्यवाणी करने वाला मनुष्येतर व्यक्ति समझा जाता था, चमत्कारिक पुरुष माना जाता था। पुरातन दार्शनिकों में अरस्तू ऐसा ही देवपुरुष माना गया जिसके कुछेक मत उसके पश्चात् भी २००० वर्ष तक लोगों के लिए ब्रह्मवाक्य, देववाणी आदि की भाँति पुजते रहे। किसी को भी उसके किसी दर्शन अथवा सिद्धान्त का खण्डन करने का साहस नहीं होता था और वैसा दुस्साहस करने वाला नास्तिक घोषित कर दिया जाता था। वही अरस्तू एक जगह कह गया कि किसी भी वस्तु के गिरने का वेग, उसके भार के समानुपाती होता है। १७वीं शताब्दी से यहाँ तक, न जाने कितनी बार यह सिद्ध किया जा चुका है कि अरस्तू की वह मान्यता भ्रमपूर्ण थी, गलत थी, उपहासास्पद थी। गुरुत्वाकर्षण को अरस्तू ने पहचाना ही नहीं था।

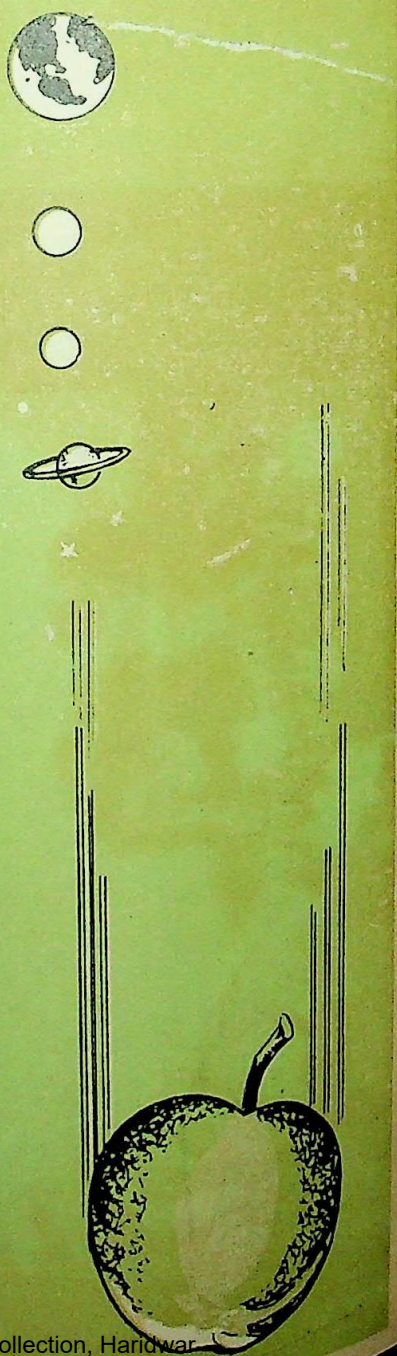

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमीं कितना जानते हैं?

कहने को हम गुरुत्वाकर्षण से अपरिचित नहीं, किन्तु सवाल वहीं का वहीं है कि वास्तव में हम इसके बारे में कुछ जानते भी हैं क्या? स्वयं विज्ञान इस प्रश्न का उत्तर देने में ३०० वर्षों से लगा हुआ है और आज भी स्वयं को इसका पूर्ण ज्ञाता नहीं मान पाता। हर सांस, हर कदम पर हम गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित रहते हैं। विश्व की प्रबलतम शक्ति यही है और इसकी गहन गुत्थियों में वैज्ञानिक आज भी भूले-भटके हैं। ३०० वर्ष पहले से इसकी गुत्थियों को सुलझाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। १७वीं शताब्दी से ही वैज्ञानिकों ने विश्व की इन वैज्ञानिकताओं को गणित-शुद्ध दृष्टि से देखना तथा मापना-जोखना शुरू किया हुआ है। उसी शताब्दी में दूरदर्शी भी आया और सूक्ष्मदर्शी भी। इन दोनों यंत्रों से विश्व की गतिविधि देखने समझने में बड़ी सहायता मिलती रही है।

केप्लर, गेलीलियो और फिर न्यूटन भी

एक लम्बे समय तक सागर-ज्वार भी लोगों को उलझन में डाले रहा। उस समय के वैज्ञानिक भी अपने सीमित साधनों तथा सूझ-बूझ द्वारा यह पूरी तरह नहीं समझ पाते थे कि घड़ी के जैसी अचूकता से किस प्रकार सागर में ज्वार उठता है और फिर बैठ भी जाता है? ऊपर जो तीन नाम गिनाये हैं, वे संसारप्रसिद्ध वैज्ञानिक, नक्षत्रविद् और गणितज्ञों के हैं। केप्लर भी अधिक से अधिक इतना कह पाया कि सागर-ज्वार कुछ अंश तक चन्द्रमा के प्रभाव से उठता होना चाहिए। गेलीलियो ने तो इसका उपहास करते हुए कहा था कि केप्लर को चाहिए था कि आकाशीय दिव्य शक्तियों को ऐसी छोटी बातों के साथ न जोड़े। अन्ततः श्रेय का अधिकारी तो न्यूटन ही रहा जिसने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया कि पृथ्वी के प्रति अधिकतर तो चन्द्रमा और अल्पांश में सूर्य के गुरुत्वाकर्षण सागर-ज्वार के लिए उत्तरदायी हैं।

पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण अरस्तू की दृष्टि से समझा जाय तो एक पंख, एक लकड़ी और एक धातु की गेंद, इन तीनों वस्तुओं को समान ऊंचाई से फेंके जाने पर क्रमशः धातु, काष्ठ और पंख को धरती पर आ-गिरना चाहिए। इसके विपरीत, गेलीलियो के प्रसिद्ध प्रयोग के अनुसार यदि तीनों वस्तुओं को एक निर्वात कक्ष में, काँच के सिलिण्डर में गिराया जाये तो तीनों एक समान ही वेग से नीचे गिरेंगे। इतना भी समझ में आ जाना पर्याप्त तो नहीं था। वह तो न्यूटन ही था जिसने इस विषय पर तलस्पर्शी प्रकाश फेंका। उसके गति सम्बन्धी नियम तो अकाट्य हैं ही, उसके सार्वभौमिक गुरुत्वाकर्षण (Law of Universal Gravitation) के नियम ने यह समस्या काफी हद तक सुलझा दी। इस एक ही नियम ने अनेक तथ्यों को लपेट लिया जिनमें वस्तुओं का गिरना, सागर-ज्वार का उठना और ग्रहों का परिभ्रमण आदि प्रमुख बातें सम्मिलित थीं। सरलतम शब्दों में यह नियम इस प्रकार कहा जा सकता है कि विश्व की प्रत्येक वस्तु का कण-कण, अपने निकट आने वाली प्रत्येक वस्तु के कण-कण पर अपना अदृश्य आकर्षण फेंकता है, अपनी ओर खींचता है; और वह खिचाव उन वस्तुओं की संहति तथा पारस्परिक दूरी पर आधारित रहता है। इसी के उदाहरणस्वरूप न्यूटन ने लोगों को समझाया कि सूर्य और चन्द्रमा का सम्मिलित आकर्षण पृथ्वी के जलभाग को अपनी ओर खींचता है और सूर्य अपने प्रबल आकर्षण द्वारा परिक्रमारत ग्रहों को उनकी निर्धारित कक्षा में टिकाये रखता है।

पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण

हम अपनी ही धरती की बात करें। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी का भी आकर्षण कम न होता तो ... ? तो, ... कल्पनीय वेग से गतिमान हमारी पृथ्वी, हमें आकाश में उछाल फेंकती

पृथ्वी का भी आकर्षण कम न होता तो हम कहीं के न रहते ! एक ओर तो हम गुरुत्वाकर्षण के मारे परेशान रहते हैं कि न तो तेज दौड़ सकते हैं, न लम्बा कूद सकते हैं और न ऊँचा उछल सकते हैं। जरा से ही परिश्रम में पसीना-पसीना हो जाते हैं। दूसरी ओर यह भी सोचिए कि यदि यह होता ही नहीं तो क्या होता ? कभी तेज दौड़ती हुई बस, ट्राम या ट्रेन से कूदकर देखा है ? कैसे बेकाबू हो जाते हैं और कभी धूल भी चाटते दिखते हैं ! ऐसे ही, कल्पनातीत तीव्र गति से अपनी धुरी पर और सूर्य के गिर्द भी परिक्रमा करती हुई यह पृथ्वी हमें अपने आकर्षण से बाँध न रखती तो हम शून्य में न जाने कहाँ उड़ते-टकराते फिरते ? इस गुरुत्वाकर्षण के कारण ही हम जो पृथ्वी पर

चन्द्रमा का आकर्षण पृथ्वी का छठवाँ भाग भी नहीं। वहाँ पहुँच जायेंगे तब तो मानो हम यहाँ के अच्छे-अच्छे ओलम्पिक खिलाड़ियों को मात दे देंगे और १००-१०० फुट की खाईयाँ तथा ३०-४० फुट ऊँची पहाड़ियाँ सरलता से कूदते जायेंगे विपरीत, बृहस्पति ग्रह हम अपने बढ़े हुए चौगुने भार को स्वयं ढोने में असमर्थ पायेंगे और यथार्थ में हमारा एक-एक पग, एक-एक मन का हो जायेगा। इससे भी बढ़ कर यदि हम सूर्यलोक में पहुँच गये तो वहाँ हम अपने चालीस गुने भार तले ढेर ही हो जायेंगे।

यह ध्यान देने योग्य है कि वस्तुओं का पारस्परिक आकर्षण उनके केन्द्र से केन्द्र तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलता है। अत: ज्यों-ज्यों दो वस्तुओं के केन्द्र एक-दूसरे से दूर हटते जाते हैं, उनका पारस्परिक आकर्षण कम होता जाता है।

आधुनिक दृष्टिकोण

इस शताब्दी के आरम्भ से हमारा भौतिक विज्ञान इस तथ्य को नयी ही दृष्टि से देखता आया है। उन देखने वालों में आपेक्षिकता-सिद्धान्त के प्रणेता, आइन्स्टीन का नाम सबसे आगे है। उन्होंने बड़े गहन गम्भीर तथ्य हमारे सामने रखे हैं। उनका यह तर्क क्रांतिकारी ही कहा जायेगा जिसमें उन्होंने कहा है—यदि मान लें कि गुरुत्वाकर्षण का वेग वस्तुओं के संघटन, गठन तथा संहति आदि से प्रभावित नहीं होता तो, इतने पर भी आकर्षण की तीव्रता में जो अन्तर पड़ता रहता है, उसके लिए अन्तरिक्ष में व्याप्त उन अणु-परमाणुओं को उत्तरदायी माना जायगा जिनमें वस्तुएं घूमती, फिरती तथा गिरती हैं।

इसके प्रतिपादन के लिए आइन्स्टीन ने ज्यामिति का सहारा लिया। ज्यामिति के नाम से हम केवल युक्लीडियन (Euclidean) ज्यामिति से ही परिचित हैं, जो सामान्यत: हमारे दैनिक उपयोग में आती है; परन्तु समय-समय पर गणितज्ञों द्वारा अनेक प्रकार की ज्यामितियां रची गयी हैं। आइन्स्टीन ने अपने उस सार्वभौमिक आपेक्षिकता के सिद्धान्त (General Theory of Relativity) को ज्यामिति द्वारा इस प्रकार समझाया कि गिरती अथवा तेजी से घूमती हुई वस्तु अपने पीछे शून्य में चाप जैसा एक वक्र (curve) छोड़ जाती है।

इस वक्र वाली स्थिति को भी समझना पड़ेगा। वक्र केवल लिख देना जितना सरल है, शून्य में दिखायी देना, उतना ही असम्भव-प्राय है। उदाहरणस्वरूप, यदि हम अन्तरिक्ष में पहुँचकर अपने दूरदर्शी द्वारा चन्द्रमा का

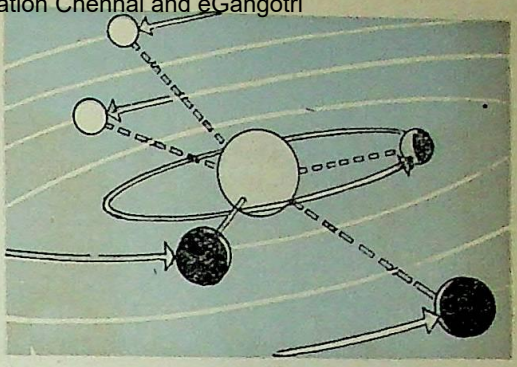

अदृश्य गुरुत्वाकर्षण का बल ही सौरमण्डल में तारों, ग्रहों, नक्षत्रों को परस्पर नियत कक्षापथों पर स्थापित किये हुए हैं और इसी मर्यादा में अखिल विश्व बँधा हुआ है।

एक भाग देखें तो उसी दूरदर्शी को घुमाकर चन्द्रमा के दूसरी ओर भी देखा जा सकेगा क्या? उपरोक्त वक्र-सिद्धान्त से कदाचित् इसका उत्तर हाँ हो, किन्तु प्रयोगरूप से यह असम्भव ही रहेगा। इसका कारण यह है कि पृथ्वी और चन्द्रमा जैसे विशाल ग्रहों की सीमाएं ही इतनी असीम होती हैं कि इनका वक्र भी सीधी रेखा ही नजर आयेगा, वक्र दिखेगा ही नहीं।

दूरदर्शी की क्षमता भले ही अति सीमित रहे, वे विशाल वक्र मापने के अन्य साधन भी सम्भव हैं। एक तो यही कि किसी भी तारा-पुंज अथवा नीहारिका का संघटन जिस ओर छिछला दिखायी पड़े (दूरदर्शी में ही) और दूरी बढ़ने के साथ-साथ छिछला दिखायी पड़ेगा भी, तो उसी स्थल पर वक्र की उपस्थिति और गणना की जा सकेगी। इसे और भी सरल रूप में इस प्रकार समझा जा सकता है—यदि एक समतल, चिकने फर्श पर बाल-बेयरिंग जैसी दो गोलियाँ कुछ ही इंच की दूरी से रख दी जायें तो हम देखेंगे कि उनके केन्द्र बिन्दु एक-दूसरे को आकर्षित करने की क्षमता रखते हुए भी, उस अवस्था में काम नहीं करते और गोलियाँ वैसी ही पड़ी रहती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। कारण स्पष्ट है कि वह अत्यन्त सूक्ष्म होता है कि गति प्राप्त करने में रुकावट डालने वाले वायु तथा घर्षण-प्रतिरोध तथा पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण आदि विरोधी शक्तियों को वह प्रभावित नहीं कर पाता। इसके विपरीत, यदि एक गोल घेरे पर कपड़ा ढोलक की भांति तान दिया जाये और उस पर वे गोलियाँ रखी जायें तो निश्चय ही वे एक-दूसरे से आ-मिलेंगी। सही रूप में देखें तो उनका वह अज्ञात आकर्षण वास्तव में होता ही नहीं। होता केवल यह है कि उस कपड़े को चाहे जितना तान लिया जाये फिर भी जहाँ गोलियाँ रखी गयीं, वहाँ सूक्ष्म भर तो वक्र पड़ ही गया। उसी वक्र ने गोलियों को गति प्रदान कर दी और हमें ऐसा प्रतीत हुआ मानो दोनों ने एक-दूसरे को आकर्षित किया।

ठीक इसी प्रकार हमारी यह धारणा पूर्ण वैज्ञानिक नहीं कही जा सकती कि अन्तरिक्ष में ग्रहों का पारस्परिक आकर्षण एक-दूसरे को खींचता है तथा अन्य अनेक प्रकार से प्रभावित करता है। वास्तविकता यह है कि तेजी से चक्कर लगाते हुए ये आकाशीय पिण्ड अपने गिर्द, अन्तरिक्ष में छोटे-बड़े वक्र ठीक ऐसे ही छोड़ जाते हैं जैसे तेज दौड़ती हुई कार अपने पीछे वैकुअम छोड़ जाती है और उसमें सड़क की हलकी वस्तुएँ खिंची चली जाती हैं। इस प्रकार फिर वही आइन्स्टीन का कथन सत्य प्रमाणित होता है कि वस्तुओं, पिण्डों की गति और आकर्षण का सम्बन्ध उनके संघटन से न होकर आकाशीय अणु-परमाणुओं की स्थिति से रहता है।

केवेण्डिश द्वारा पृथ्वी का भार-मापन

जिस प्रकार अरस्तू के सिद्धान्तों का बोलबाला उसके पश्चात् २०० वर्षों तक रहा, उसी प्रकार न्यूटन के सिद्धान्त भी अपना गहरा प्रभाव जमाये रहे हैं। अतः आइन्स्टीन के सिद्धान्तों ने बड़े-बड़े महत्त्व के अनुसन्धानों में सहायता दी है। उन्हीं में एक मुख्य कार्य केवेण्डिश द्वारा पृथ्वी का भार-मापन भी कहा जा सकता है। केवेण्डिश द्वारा प्रयुक्त उपकरण तथा विधि इस प्रकार है।

दो छोटे गोले (सोने अथवा प्लेटिनम के) एक हलकी-सी छड़ के सिरों पर आमने-सामने बिठा दिये गये। उस छड़ को बीचो-बीच क्वार्ट्ज के एक बारीक तार से लटका दिया गया। उसी तार के अधबीच में एक दर्पण इस प्रकार टाँग दिया कि उस पर फेंकी हुई प्रकाश-किरण उसके सामने ही रखे हुए एक स्केल पर परावर्तित होती रहे। इस प्रकार उपकरण तैयार कर लेने के पश्चात् दो अन्य कुछ बड़े और सीसे के बने गोलों को एक-एक करके उन छोटे गोलों के निकट लाया गया। बड़े गोलों की ओर छोटे गोलों द्वारा आकर्षित होने के फलस्वरूप दर्पण जो किंचित घूमा तो उस पर पड़ रही प्रकाश-किरण का प्रतिबिम्ब भी स्केल पर घूम गया। यह घुमाव आकर्षण-बल के कम या अधिक होने के अनुपात में बढ़ता-घटता रहा। स्केल पर प्राप्त इस अंक को गणना की सुविधा के लिए हम G कहेंगे।

अब न्यूटन के सिद्धान्तानुसार दो वस्तुओं की संहति और पारस्परिक दूरी ज्ञात होने पर गुरुत्वाकर्षण-बल की गणना की जा सकती है। इसी प्रकार पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण ज्ञात करने के लिए हमें इसकी ओर आकर्षित होती हुई वस्तु की संहति तथा दूरी सही रूप में ज्ञात होना पर्याप्त है। फिर तो न्यूटन के निम्न समीकरण से प्रश्न हल किया जा सकेगा :

$$F = \frac{Gm_1 m_2}{r^2}$$

इसमें F गुरुत्वाकर्षण-बल है, m_1 पृथ्वी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

m_2 गिरने वाली वस्तु है, r पृथ्वी के केन्द्र से उस वस्तु की दूरी है। G गुरुत्वाकर्षण का सार्वभौमिक स्थिरांक है। इस समीकरण में हमें वस्तु के गिरने की गति, वस्तु की संहति तथा पृथ्वी के केन्द्र से उसकी दूरी, ये तीन वस्तुएं ज्ञात हैं। चौथी वस्तु रही G जो ऊपर लिखे हुए उपकरण द्वारा केवेण्डिश ने ज्ञात की ही थी। अतः समीकरण को हल करने पर पृथ्वी की संहति अर्थात् भार ६·६ × $१०^{२१}$ टन आता है, अर्थात् ६·६ पर २१ शून्य चढ़ाइए ! यह बड़ी अनन्त संख्या लगती है। इसे अभी एक ओर रखें।

गणित को छोड़कर अब हम विज्ञान का सहारा लें तो $V = \frac{४}{३}\pi r^3$ समीकरण द्वारा हम पृथ्वी का आयतन ज्ञात कर सकेंगे और उसका भी अंक १,$०^{११}$ घन मील (१० पर ११ शून्य !) आयेगा। यह भी बेहद अनन्त संख्या लगती है। इन्हीं का संक्षिप्तीकरण हम भौतिकी के उस नियम द्वारा कर सकते हैं जिससे हम घनत्व अर्थात् आयतन की इकाई पर वस्तु का भार ज्ञात करते हैं। इसके लिए पृथ्वी की संहति को उसके आयतन द्वारा भाग देना होगा। यथा

आकार में समान हों तो भार में भिन्न होने पर भी ऊंचे से फेंकी हुई वस्तुएं समान ही समय में नीचे गिरेंगी। इसके विपरीत, भार में समानता हो किन्तु आकार में भिन्नता हो, तो गिरने की गति में अन्तर आ जायगा

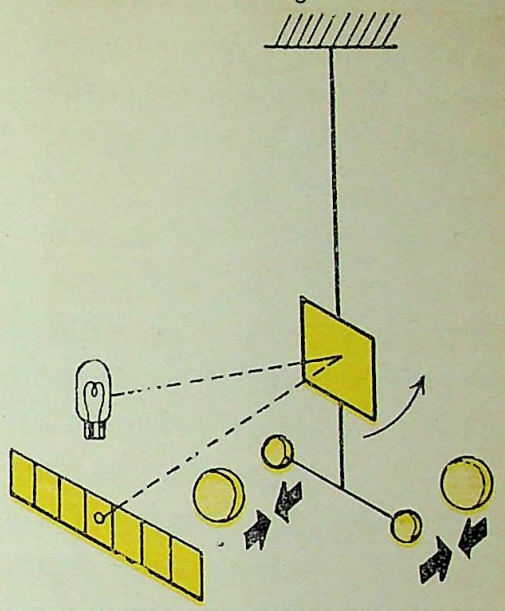

गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त पर ही पृथ्वी का भार ज्ञात करने का आरम्भ में प्रयुक्त सरल उपकरण

$\frac{६·६ \times १०^{२१}}{१०^{११}}$। परिणामतः हमें पृथ्वी का घनत्व ३४३·४ पौण्ड, प्रति घन फुट अर्थात् पानी की अपेक्षा पांच गुना से भी कुछ अधिक प्राप्त होगा।

यह भी प्रत्यक्ष है कि पृथ्वी की सतह पर पाया जाने वाला कोई भी पदार्थ इतने घनत्व का नहीं है जितनी यह पृथ्वी। अतः समझा जा सकता है कि ज्यों-ज्यों पृथ्वी के गर्भ में उतरेंगे, घनत्व बढ़ता ही जायगा। दूसरे शब्दों में, जितना हम पृथ्वी के केन्द्र से दूर हटते जायेंगे, गुरुत्वाकर्षण अर्थात् हमारा भार घटता जायगा। अंकों में इसे इस प्रकार समझेंगे।

पृथ्वी की सतह पर जो वस्तु २५ पौण्ड की है, १६००० मील दूर आकाश में पहुँच जाने पर केवल एक पौण्ड रह जायगी। दूसरी ओर पृथ्वी का केन्द्र इसकी सतह से लगभग ४००० मील भीतर को है। वहाँ पहुँचने पर वही वस्तु १०० पौण्ड भारी हो जायगी !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें सन्देह नहीं कि आइन्स्टीन के आपेक्षिकता-सिद्धान्त ने और गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी नव-नूतन अनुसन्धानों ने अनेक चमत्कारिक रहस्य उद्घाटित किये हैं प्रमुखत: २-३ इस प्रकार हैं।

प्रथम यह कि बुध-ग्रह का कक्षापथ जो अब तक किसी भी प्रकार ज्ञात न हो सका था, आइन्स्टीन के ही प्रयासों के फलस्वरूप ज्ञात किया जा सका है। द्वितीय यह कि एक अत्यन्त दूरस्थ किन्तु छोटे और अत्यधिक घने तारे से लाल वर्ण का प्रकाश निकलता देखा गया है। उसकी खोज अभी भी जारी है। तीसरा तथ्य अत्यन्त विस्मय-पूर्ण और क्रान्तिकारी हाथ लगा है। उस तथ्य ने प्रकाश विज्ञान के इस सिद्धान्त की जड़ ही उखाड़ फेंकी है कि प्रकाश रेखा सदैव बगैर किंचित भी मुड़े, सीधी ही गति करती है। इस तीसरे तथ्य में पाया गया कि सूर्य के निकट से गुजरने वाली प्रकाश-रश्मियाँ मोड़ ले लेती हैं और यहीं पर अब तक सनातन सत्य समझा जाने वाला सिद्धान्त भी मुड़कर रह गया है।

आइन्स्टीन ने अपने जीवन के अन्तिम वर्ष इन्हीं प्रमुख रहस्यों की और भी अधिक खोज-बीन में व्यतीत किये थे और आज भी हमारे आधुनिकतम विज्ञान के लिए, समर्थ वैज्ञानिकों के लिए गुरुत्वाकर्षण की गुत्थियाँ कम गहन नहीं हैं।

बूढ़ी धरती थक चली

हमारी पृथ्वी की चाल और ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधि पर ही नक्षत्रविदों की विभिन्न गणनाएं निर्भर रहती हैं और इन्हीं से संसार की घड़ियाँ ठीक रखी जाती हैं। बढ़ी हुई अवस्था के प्रभाव से यह पृथ्वी भी मुक्त नहीं है, इसका ज्ञान विगत ३१ मार्च १९६४ को जब हुआ, तब नक्षत्रविदों को अपनी घड़ियाँ $\frac{१}{८०}$ सैकण्ड पीछे हटानी पड़ी थीं !

एलेक्ट्रानिकी का आगे कदम

अमरीका की स्पेरी जाइरोस्कोप कम्पनी ने ऐसी नयी एलेक्ट्रानिक विधि आविष्कृत की है जिसकी सहायता से दृष्टि-अवरोधक धुन्ध छाये रहने पर भी यानचालक अपने वायुयान को नीचे उतारने के लिए यान-पथ स्पष्ट रूप से देखता रह सकेगा।

प्लास्टिक लेन्सयुक्त चश्मों से सावधान

लेन्सों का दोषयुक्त फिटिंग, चाहे जैसे अशुचिकर हाथों अथवा रूमाल से उतारना, पोंछना तथा अनावश्यक ही लगातार पहने रहना, ये ऐसे दोष हैं जो अच्छी-भली आंखों को बड़े संकट में डाल सकते हैं—अन्धापा तक भी संभवित हो सकता है।

धरती को धूलि-भेंट, आकाश की

१०,००० टन रोज, फिर भी मानो चार चावल चढ़ाने की भाँति, अक्षत-अर्चन की तरह आकाश हमारी धरती को धूल भेंट कर जाता है। अमरीका के अन्तरिक्ष अनुसन्धानक दल ने गणना द्वारा अनुमान लगाया है कि अमरीका और रूस द्वारा अन्तरिक्ष में छोड़े गये उपग्रहों से धूल के ये बादल टकरा-टकरा कर पृथ्वी पर नित्य ही लगभग इसी मात्रा में गिरते रहते हैं।

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

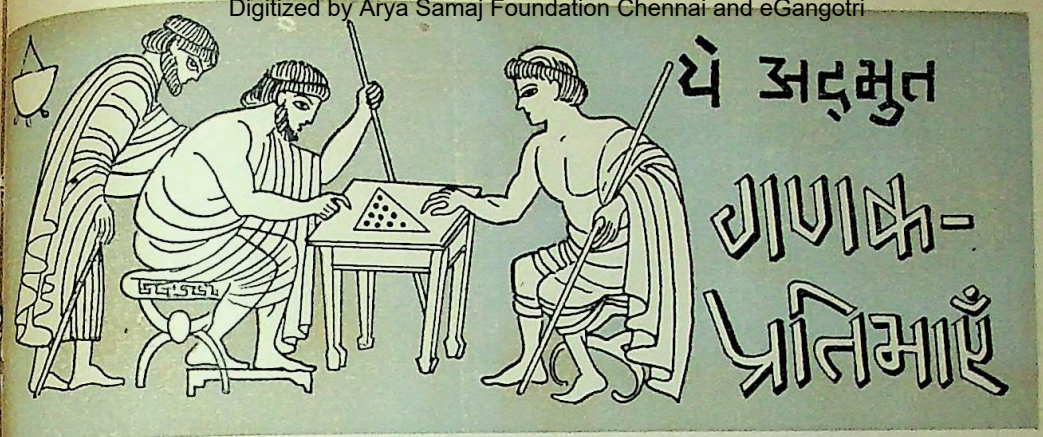

ये अद्भुत गणक-प्रतिभाएँ

गुणाकर मुले

स्वयं प्रकृति रहस्यमय लीलाओं का एक अक्षय भंडार है और प्रकृति के ये रहस्य मानव-मस्तिष्क को निरंतर चुनौतियाँ देते रहते हैं, परन्तु प्रकृति की सर्वोत्तम कृति, स्वयं मानव का मस्तिष्क ही, प्रकृति का सबसे बड़ा रहस्य है। ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में मानव-मस्तिष्क की विलक्षणता प्रकट होती है, परन्तु मस्तिष्क की चरम विलक्षणता के दर्शन होते हैं गणितशास्त्र में। नीचे की पंक्तियों में हम महान् गणितज्ञों की प्रतिभाओं की चर्चा नहीं करेंगे, परन्तु कुछ ऐसी गणक-प्रतिभाओं का विवेचन करेंगे जिन्होंने अल्पायु में ही अपनी अद्भुत गणक-शक्ति से न केवल सर्वसाधारण को, अपितु गणितज्ञों एवं मानस-वेत्ताओं को चकित कर दिया है।

संसार के हर कोने में समय-समय पर इस प्रकार की अद्भुत गणक-प्रतिभाओं ने जन्म लिया है, परन्तु उनमें से कुछेक का ही मनोवैज्ञानिक अध्ययन हो पाया है। प्रायः ऐसा देखने में आता है कि कम उम्र में इस प्रकार की गणक-शक्ति अपने चरमोत्कर्ष पर रहती है और बढ़ती आयु के साथ उसमें क्षय होता रहता है। इसलिए ऐसी बहुत ही कम गणक-प्रतिभाएँ मिलती हैं जो बाद में जाकर नामांकित गणितज्ञ हुई हों। कुछ अपवाद जरूर हैं, जैसे, प्रसिद्ध भौतिक वेत्ता **आंपेर** (१७७५-१८३६); जब चार साल का बालक था, मस्तिष्क में ही बड़ी-बड़ी गणनाएँ कर लेता था। जर्मनी का महान् गणितज्ञ **कार्ल फ्रेडरिक गौस** (१७७७-१८५५) तीन साल की अल्पायु में ही अंकगणित के परिकर्मों पर अधिकार प्राप्त कर चुका था और वेतन के भुगतान से सम्बन्धित अपने पिता की गलतियाँ दुरस्त करता था! प्रसिद्ध फ्रेंच गणितज्ञ **पास्कल** (१६२३-१६६२) की बाल-प्रतिभा बड़ी ही विलक्षण थी। जब वह १२ साल से भी कम आयु का था और जब कि उसने यूक्लिद की ज्यामिति के दर्शन भी नहीं किये थे और गणित की शब्दावली से भी भलीभाँति परिचित नहीं था; तभी उसने स्वयं अपनी बुद्धि से यूक्लिद की ज्यामिति के कई प्रमेय खोज निकाले थे!

इस संदर्भ में प्रसिद्ध भारतीय गणित-प्रतिभा **श्रीनिवास रामानुजन** (१८८७-१९२०) का विशेष महत्त्व है। मद्रास प्रदेश के कुंभकोणम् गाँव में एक गरीब ब्राह्मण परिवार में उसका जन्म हुआ था और वहीं के स्कूल में उसकी प्रारम्भिक शिक्षा हुई। अभी वह प्राथमिक कक्षाओं का ही विद्यार्थी था और प्रमेयों और सूत्रों से अपने सहपाठियों का मनोरंजन किया करता था। $\pi = 3{\cdot}14159$ और $\sqrt{2} = 1{\cdot}41421$ के दशमलव मानो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चाहे जितने स्थानों तक मौखिक ही बता देता था। जब वह हाईस्कूल का ही विद्यार्थी था, बी. ए. की कक्षाओं में पढ़ाई जाने वाली त्रिकोणमिति की पुस्तक को पढ़ चुका था और बी. ए. के जिस विद्यार्थी से उसने यह पुस्तक प्राप्त की थी उसे कठिन प्रश्नों को हल करने में मदद करता था ! उसी समय **कार** लिखित उच्च गणित की पुस्तिका Synopsis of Pure Mathematics उसके हाथ में लग गयी। फिर क्या था ? रामानुजन ने न केवल उस पुस्तक के विषयों पर अधिकार प्राप्त कर लिया, अपितु उच्च गणित के अनेक नये प्रेमेयों और सूत्रों की स्वतन्त्र खोज की—और वह भी १५ वर्ष की अल्पायु में, हाईस्कूल के विद्यार्थी-जीवन में ! लेकिन यही विलक्षण गणित-प्रतिभा हाईस्कूल की परीक्षा में तो उत्तीर्ण हुई, इन्टर की परीक्षा में दो बार फेल हुई ! जीवन के अंतिम क्षणों तक उसकी यह अद्भुत प्रतिभा सतेज रही। ३३ वर्ष की अल्पायु में रामानुजन की मृत्यु हो गयी।

एक बार की घटना है, रामानुजन तब

भारत-गौरव, संसारप्रसिद्ध गणितज्ञ, श्रीनिवास रामानुजन (१८८७-१९२०)

बीमार थे और लंदन के एक स्वास्थ्य-केन्द्र में स्वास्थ्य लाभ कर रहे थे। प्रसिद्ध आंग्ल-गणितज्ञ डा. हार्डी उनसे मिलने गये। टैक्सी का नम्बर था—१७२९(=७ × १३ × १९)। इस संख्या का एक गुणनखंड १३ है और परम्परा से यह संख्या अशुभ मानी जाती रही है। इसलिए मिलते ही डा. हार्डी ने रामानुजन से कहा—'१७२९ तो बड़ी अशुभ संख्या है।' रामानुजन ने फौरन उत्तर दिया—'नहीं, यह तो एक अद्भुत संख्या है। यह, वह सबसे छोटी संख्या है जिसे दो घन (cube) संख्याओं के योग के रूप में दो प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है, अर्थात् १७२९=$१२^३$+$१^३$ अथवा $१०^३$+$९^३$।

डा. लिटलवूड रामानुजन के बारे में कहा करते थे—'प्रत्येक पूर्णांक संख्या के साथ उसकी व्यक्तिगत मित्रता है।'

लेकिन यह तो हुई महान् गणितज्ञों की चर्चा। यदा-कदा कुछ ऐसी भी गणक-प्रतिभाओं का प्रादुर्भाव होता रहा है, जो अल्पायु में तो अद्भुत गणक-शक्ति का परिचय देती हैं, परन्तु बाद में उनकी वह शक्ति क्षीण हो जाती है। इसी प्रकार के कुछ विलक्षण मस्तिष्कों की अब हम चर्चा करेंगे।

जेडेडियेह बक्सटन (१७०७-१७७२) इंगलैंड के एक स्कूल मास्टर का लड़का था, परन्तु वह कभी भी लिखना-पढ़ना नहीं सीख पाया। जीवन भर उसने खेत पर एक किसान का जीवन बिताया और दूसरी अनेक बातों में वह मंदबुद्धि था; परन्तु बड़ी-बड़ी संख्याओं की गणनाएँ करने में उसकी क्षमता बड़ी तीव्र थी। खेतों के क्षेत्रफलों से सम्बन्धित सवालों के उत्तर वह द्रुतगति से देता था। जब वह बालक ही था तब ३५१ गज लम्बे और २६१ गज चौड़े क्षेत्र में कितने एकड़ होंगे, ४२६ फुट लम्बा, २६३ फुट चौड़ा और २½ फुट गहरा एक गड्ढा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोदने के लिए कितने घन गज मिट्टी बाहर निकालनी होगी; जैसे प्रश्नों के उत्तर वह १५ मिनट से कम में ही दे देता था। बाद में उसकी गणित-शक्ति में वृद्धि हुई तो, २३,१४५,७८९ गज लम्बे ५,६४२७३२ गज चौड़े और ५४,९६५ गज ऊँचे एक ब्लॉक में कितने घन-इंच होंगे, जैसे प्रश्नों को भी वह आसानी से हल करने लगा। उसकी प्रसिद्धि लंदन तक पहुँची और उसे वहाँ की प्रसिद्धि रायल-सोसायटी के सदस्यों के सामने पेश किया गया। सोसायटी के परीक्षकों ने बक्सटन की गणना शक्ति की सत्यता को स्वीकार किया। उसी लंदन-यात्रा में एक व्यक्ति यह देखने के लिए बक्सटन को एक नाटक दिखाने ले गया कि, देखें वह इस प्रकार के प्रोग्रामों में कैसी रुचि लेता है। खेल के अंत में देखा गया कि नाटक के कथानक या कलाकारों के अभिनय का बक्सटन पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ा, परन्तु बाहर आते ही उसने अपने साथी को विभिन्न पात्रों द्वारा उच्चारित शब्दों की एवं नृत्यों के कदमों की संख्याएँ ठीक-ठीक बता दीं।

झेराह कॉलबर्न (१८०४-१८४०) का जन्म अमरीका के एक किसान-परिवार में हुआ था। वह छह साल का था, तभी से मस्तिष्क गणनाओं से लोगों को अचम्भित करने लगा था। दो वर्ष बाद उसे इंगलैंड लाया गया, वहाँ योग्य परीक्षकों ने उसकी परीक्षा ली। चार अंकों वाली दो संख्याओं के गुणन का वह फौरन उत्तर देता था, परन्तु दोनों संख्याएँ यदि १०,००० से बड़ी होतीं तो उत्तर देने में उसे कुछ देर होती। उस समय उससे जो प्रश्न पूछे गये, उनमें से एक प्रश्न था: $८^{१६}$ कितना होगा? सैकण्डों में ही उसने सही उत्तर दिया: २८१,४७४,९७६,७१०,६५६, उसके बाद उससे $२^{१०}$, $३^{१०}$ ... $९^{१०}$ के उत्तर पूछे गये और कालबर्न इतनी तेजी से उत्तर देता गया कि उत्तर लिखने वाले आदमी को उसे कहना पड़ा कि, धीरे-धीरे! संख्याओं के गुणन-खंड बताने में उसकी बुद्धि विशेष निपुण थी।

कॉलबर्न अपने ही विशेष नियमों से गणनाएँ करता था और गणना के समय उसके होंठ ऐसे हिलते थे, मानो गणना-क्रिया को वह शब्दों में प्रकट कर रहा हो। एक समय उससे २१,७३४ और ५४३ का गुणनफल पूछा गया; उसने फौरन उत्तर दिया: ११,८०१, ५६२।

बाल-प्रतिभा **जार्ज पारकर बिडेर** (१८०६-१८७८) को अच्छी शिक्षा मिली थी। उसने जीवनभर अपनी गणना शक्ति बनाये रखी और जीवन के अन्तिम दिनों में अपनी विलक्षण गणना शक्ति का विवेचन भी प्रस्तुत किया। बिडेर का जन्म इंगलैंड में हुआ था। छह वर्ष की आयु में उसने १०० तक गिनती सीखी। उसे स्कूल भेजा गया, परन्तु वहां वह कुछ भी नहीं सीख पाया। शुरू में वह गणित के शब्दों और अंक-चिह्नों से भी अनभिज्ञ था। १०० तक की गिनती के ज्ञान से गोलियों, बटनों आदि के सहारे उसने जोड़, गुणा, भाग आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया। बाद में बिडेर ने कहा था कि अंक-चिह्नों से अपरिचित होने के कारण ही गणनाओं में उसे अधिक

इतिहास प्रसिद्ध, गणित-विभूति, यूक्लिद
(लगभग २३०० वर्ष पूर्व)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुविधा होती थी। बालक बिडेर की इस विलक्षण गणना शक्ति से लाभ उठाने के लिए उसके पिता ने इंगलैंड के विभिन्न नगरों में उसके प्रोग्राम आयोजित किये। कैम्ब्रिज-विश्वविद्यालय के स्नातक उसकी बुद्धि से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने बिडेर की पढ़ाई के लिए रुपये जमा किया। शुरू में बिडेर की शिक्षा के लिए उसके पिता भी सहमत हुए, परन्तु अर्थलोभवश वे पुनः बिडेर का प्रदर्शन करने लगे। एक समय जब पिता-पुत्र एडिनबरा में प्रोग्राम करने गये थे तो विश्वविद्यालय के सदस्यों ने पिता-बिडेर से आग्रह किया कि वह बालक-बिडेर को उनकी सुरक्षा में छोड़ दें। अतः बिडेर को वहीं छोड़ दिया गया। कालान्तर में बिडेर एडिनबरा-विश्वविद्यालय का स्नातक हुआ और उसने सिविल-इंजीनियरिंग को अपनाया।

बिडेर की गणना शक्ति का दिनोदिन विकास होता गया। ९ से १३ साल की आयु के बीच उसे जो सवाल पूछे गये, उनमें से कुछ यहाँ दिये जाते हैं। ये सभी गणनाएँ पुस्तकों, पेंसिल या कागज की सहायता के बिना की गयी थीं। प्रश्न : ११,१११ पौंडों पर, प्रतिवर्ष ५ प्रतिशत के हिसाब से, ११,१११ दिनों का ब्याज क्या होगा? उत्तर १६,९११ पौंड ११ शिलिंग; उत्तर का समय एक मिनट। प्रश्न : ५ फुट १० इंच परिधि वाले एक पहिये को ८००,०००,००० मील की दूरी पार करने के लिए कितने चक्कर लगाने पड़ेंगे? उत्तर ७२४,११४,२८५,७०४ चक्कर और २० इंच शेष; उत्तर का समय ५० सैकंड। केवल ३० सैकंड में बिडेर ने ११९,५५०,६६९,१२१ का वर्गमूल बताया, ३४५,७६१! प्रसिद्ध खगोलवेत्ता **विलियम हर्शेल** ने बिडेर से सवाल पूछा था : मान लो कि सूर्य से पृथ्वी तक प्रकाश को पहुँचने में ८ मिनट लगते हैं और सूर्य पृथ्वी से ९८,०००,००० मील दूर है। यदि प्रति वर्ष में ३६५ दिन और ६ घंटे और प्रति महीने में २८ दिन मान लिए जायँ तो एक दूरस्थ तारे से पृथ्वी तक प्रकाश पहुँचने में लगनेवाले समय ६ वर्ष ४ महीनों में प्रकाश-किरणों को कितने मीलों की दूरी तय करनी होगी? बिडेर ने मौखिक गणना करके उत्तर दिया : ४०·६३३,७४०,०००,००० मील!

बिडेर ९८४ जैसी संख्याओं की अंक-संकेतों के रूप में कल्पना नहीं कर सकता था। वह इस संख्या को ४१ ठोस वस्तुओं के २४ विभिन्न इकाई-समूहों में ही सोचने का आदी था। बिडेर का कहना था कि संख्याओं को कागज पर लिखकर गणना करने में उसे मौखिक-गणना से अधिक समय लगता है! बिडेर की स्मरण शक्ति भी गजब की थी। एक उदाहरण पर्याप्त होगा। बिडेर तब १० साल का था। एक प्रश्नकर्त्ता एक लम्बी संख्या को उलटे क्रम से पढ़कर बिडेर से उसे सीधे क्रम से पढ़ने को कहा। उसने तुरंत ठीक-

अपने युग का महानतम, जर्मन गणितज्ञ, फ्रेडरिक गौस (१७७७-१८५५)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ्रेन्च ज्यामितिज्ञ, दार्शनिक एवं लेखक पास्कल (१६२३-६२)

ठीक उत्तर दिया। एक घंटे बाद जब उसे वही संख्या दोहराने को कहा गया तो उसने सही उत्तर दिया।

गणक-प्रतिभाओं में हेम्बर्ग के **जोहान मार्टिन झाकारियास डेस** (१८२४-१८६१) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उसे थोड़ी प्रारम्भिक शिक्षा भी मिली थी, परन्तु गणना शक्ति के अलावा अन्य किसी क्षेत्र में उसने किसी प्रकार की असाधारणता नहीं दिखायी। स्ट्रास्भनिकी के अनुरोध पर उसने अपनी गणना शक्ति का वैज्ञानिक कार्यों के लिए उपयोग करना स्वीकार कर लिया। गौस, शूमाखेर, पीटरसन आदि गणितज्ञों के सम्मुख डेस ने अपनी गणक शक्ति का परिचय दिया। शूमाखेर ने ७९, ५३२, ८५३ × ९३, ७५८, ४७९ का उत्तर पूछा। डेस ने ५४ सैकंड में सही उत्तर दे दिया। देखा गया कि २० अंकों वाली दो संख्याओं का गुणनफल बताने में डेस को ६ मिनट; ४० अंकों वाली ६ संख्याओं का गुणनफल बताने में ४० मिनट; १०० अंकों वाली दो संख्याओं का गुणनफल बताने में ८ घंटे ५४ मिनट का समय लगा! १०० अंकों वाली संख्या का वर्गमूल बताने में उसे ५२ मिनट का समय लगा था।

कठिन सवाल गणक-प्रतिभाओं के लिए भी कठिन होते हैं। डा. एडम ने दस साल के **ट्रुमन हेनरी साफोर्ड** (१८३६-१९०१) के गणना-प्रदर्शन का विवरण दिया है। डा. एडम ने साफोर्ड से कहा : 'अपने मन में ३६५, ३६५, ३६५, ३६५, ३६५, ३६५, को ३६५, ३६५, ३६५, ३६५, ३६५, ३६५ से गुणा करो।' एक लट्टू की तरह साफोर्ड ने कमरे के चक्कर लगाये; अपने हाथों को काटा, अपनी आँखों को विचित्र रूप से घुमाया; कभी हंसा; कभी मुस्कराया; और तब मानो असह्य पीड़ा से कराह रहा हो, एक मिनट के बाद उसने उत्तर दिया : १३३, ४९१, ८५०, २०८, ५६६, ९२५, ०१६, ६५८, २९९, ९४१, ५८३, २२५।

आज मानव ने बड़े-बड़े विद्युत-गणक यंत्रों का निर्माण कर लिया है, जिनके लिए उपरोक्त सभी प्रश्नों का हल प्राप्त करना केवल सैकण्डों का काम है। जिन प्रश्नों का हल प्राप्त करने के लिए कई गणितज्ञों को कई वर्षों का समय लग सकता है, उन प्रश्नों को ये विद्युत-गणक मिनटों में हल कर लेते हैं। इन यंत्रों के लिए गुणा-भाग के सवाल तो बहुत ही सरल हैं। उच्च गणित से सम्बन्धित प्रश्नों के लिए ही इन गणकों का इस्तेमाल होता है, परन्तु ये दैत्याकार विद्युत-गणक भी मानव मस्तिष्क की ही तो उपज है! ●

मानव, चेतते रहना !

मानव भी आखिर जन्तु ही तो हैं! आंकड़े साक्षी हैं कि विगत केवल २०० वर्षों में महत्त्वपूर्ण जन्तुओं की ६०० नस्लें लुप्त हो चुकी हैं। अवश्य, मानव अपनी सूझ-बूझ द्वारा सदियों के मोड़-तोड़ से मोर्चे ले सका है, किन्तु पता नहीं, किस सदी का कौनसा मोड़ इसके भी लोप का कारण बन जाए!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

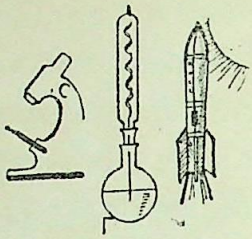

पराश्रव्य ध्वनि द्वारा एलेक्ट्रिक-लीकेज-परीक्षण

पराश्रव्य-ध्वनि का उपयोग अब ऐसे नये उपकरण में किया जायेगा जो भारी दबाव की एलेक्ट्रिक लाइन में जब कभी हो जाने वाली लीकेज की जाँच कर सकेगा। ऐसा लीकेज तब होता है जब विद्युतधारा अनियन्त्रित और अधिक मात्रा में बहती हुई अपने पथ से विचलित होने की हरकत करती है और फल-स्वरूप पथ से बाहर के वातावरण में अपनी शक्ति फैलाती है। अधिक संकटपूर्ण स्थिति प्राप्त करने से पूर्व तो वह अतिरिक्त धारा हलका नीला-पीला प्रकाश देने लगती है और तीव्रता बढ़ने पर सनसनाहट तथा चटख भी देने लगती है। इसका भी अतिरेक हो जाने पर आग लग जाने की संभावना हो जाती है और उससे सम्बन्धित रेडियो आदि यन्त्रों के लिए संकट उपस्थित हो जाता है। इस अवस्था को विद्युत-विज्ञान में कोरोना (Corona) कहते हैं। ये कोरोना ऐसी परा-श्रव्य-ध्वनि उत्पन्न करते हैं जो हमारे कान सामान्यावस्था में नहीं सुन सकते।

इसके लिए पोट्सबर्ग (अमरीका) की वेस्टिंग हाऊस रीसर्च लैबोरेटरीज के ३ इंजीनियरों (डबल्यू. एच. पाकला, जे. एच. थामसन और आर. ए. लेस्टर) ने एक ऐसा उपकरण तैयार किया है जो बन्दूक के लकड़ी के कुन्दे पर फिट हो जाता है और बन्दूक की भाँति निशाना साधने पर लीकेज की टोह ले लेता है। इस उपकरण में दूरदर्शी और २० की संख्या में ट्रान्सड्यूसर्स (transducers) एक गोलाकार डिस्क के रूप में फिट होते हैं। ऊपर कथित कोरोना द्वारा उत्पन्न पराकम्पनों को ये दो ट्रान्सड्यूसर्स इस प्रकार पकड़ लेते हैं जैसे ध्वनि-लहरों को रेडियो पकड़ लेता है। ये इतने तीव्र संग्राहक होते हैं कि एलेक्ट्रिक लाइन से ७० फुट तक की दूरी पर चल रही त्रुटि और कोरोना को कुछ ही इंच के अन्तर नजदीक पकड़कर बता देते हैं और मरम्मत करने वालों का कार्य अत्यन्त सरल कर देते हैं।

अभिशाप को वरदान में बदलता यह विज्ञान

शरीर की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में पिट्यूइटरी ग्रन्थ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। शरीर का लम्बा होना या बौना रह जाना, इसी के स्राव पर निर्भर है। अतः जो जन्मजात बौने हैं, उनकी भी सहायता को विज्ञान आगे आया है। अमरीका की नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ आरथ्राईटिस एण्ड मेटाबोलिक डिसीज के डा. राबर्ट एम. ब्लीजर्ड ने इस ग्रन्थि का स्राव अतिरिक्त रूप से देने की योजना प्रचारित की है। तदनुसार बाल्टीमोर की ज्हान हाप-किन्स यूनीवर्सिटी हास्पीटल में १३ बौने लड़के इन प्रयोगों के अन्तर्गत रखे गये हैं।

उनमें १४ वर्ष का एक किशोर लम्बाई में केवल ८ वर्ष के जितना था। इन प्रयोगों के फलस्वरूप आशा है कि उसकी जन्मजात लम्बाई ४ फुट से बढ़ाकर ५ फुट की जा सकेगी। इसी प्रकार ७ वर्ष के एक बालक ने १५ महीने के इलाज में ही ७½ इंच अतिरिक्त लम्बाई प्राप्त कर ली है। अनुमान है कि एक रोगी के लिए आवश्यक मात्रा में पिट्यूइटरी का स्राव देने के लिए २००-२५० व्यक्तियों से अतिरिक्त स्राव प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनोदप्रसाद श्रीवास्तव

मंगल ग्रह पर हमारी प्रयोगशाला हो अथवा हमारी प्रयोगशाला में मंगल ग्रह (परोक्ष रूप से) हो, इन दोनों बातों में उतना ही अन्तर है, जितना हम में और मंगल ग्रह में। ग्रह अन्तर छोटे से छोटे रूप में भी साढ़े तीन करोड़ मील से कम नहीं। यह किन-किन बातों में हमारे भू-ग्रह से समता रखता है, इसका विस्तृत वर्णन विज्ञान-लोक, १९६१ के, जनवरी अंक में दिया जा चुका है। अतः निम्न पंक्तियों में मुख्य चर्चा उन नवीन अवलोकनों और परीक्षणों की रहेगी जो प्रयोगशाला में ही मंगल का वातावरण उत्पन्न करके मंगल ग्रह पर जीवनधारण की संभावनाएं समझने के लिए किये जा रहे हैं।

पृथ्वी और मंगल भेंट प्रति १७वें वर्ष

हमारी गणना के हिसाब से प्रति १६-१७वें वर्ष और मंगल के दिनमान की गणनानुसार ८-९ वें वर्ष, पृथ्वी और मंगल, परस्पर निकट आते हैं। उस समय भी बीच की दूरी कम-से-कम होते हुए भी साढ़े तीन करोड़ मील से कम नहीं होती। पिछली ऐसी भेंट १९५६ में हुई थी। तभी एक दूसरे को निकट से देखना संभव हो पाता है। हमारे खगोलवेत्ता ऐसे ही अवसरों की टोह में रहते हैं। इस हिसाब से आने वाली भेंट के लिए १९७२-७३ तक दोनों के पुनर्मिलन की आशा रखी जा सकती है।

नये अवलोकन, नये अनुमान

ऐसे ही अवसरों पर जब-जब मंगल हमारी पृथ्वी के निकट आता रहा, खगोलवेत्ता नये-नये अवलोकन करते रहे और उन्हीं के आधार पर अनुमान लगाते रहे। मंगल ही हमारे निकटतम होने के कारण खगोलवेत्ताओं और नक्षत्रविदों की सहज रुचि इसी की ओर आकृष्ट हुई है। उनका अनुमान है कि मंगल ग्रह को जो वातावरण चारों ओर से लपेटे हुए है, वह इतना झीना है, जितना हमारी भू-सतह से १५-२० मील की ऊँचाई पर होगा। मंगल का लोहित वर्ण कदाचित् इसलिए है कि वहाँ के धूलिकणों में लोहे की मात्रा अधिक है और उस लौह ने वहाँ के विरल वातावरण का प्रायः समूचा आक्सीजन और आर्द्रता सोखकर, स्वयं आक्सीकृत होकर वहाँ की भूमि को लौहवर्ण कर दिया है। इसके फलस्वरूप वहाँ कार्बन डाइआक्साइड की ही प्रचुरता है।

प्रश्न हो सकता है कि आक्सीजन की ऐसी विरलता में, प्राणियों की बात तो पीछे, कोई भी वनस्पति कैसे उग पाती होगी? इसका भी समाधान दूर नहीं है। हमारी पृथ्वी पर ऐसी भी वनस्पतियाँ हैं जो वगैर आक्सीजन जी लेती हैं और अन्य ऐसी हैं जो अंधेरी रातों में वातावरण से आक्सीजन लेती हैं तथा दिन के उजाले में स्वयं निर्मित कर लेती हैं। काई जैसी दिखने वाली लाइकेन (lichen) वनस्पति इसके एक उदाहरण स्वरूप कही जा सकती है। यह वनस्पति इतनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठोरजीवी है कि शुष्क, बंजर, पहाड़ी ढलानों पर और असामान्य ताप-शीत में भी जी लेती है। इसी पर आधारित उक्त अनुमान यह भी है कि मंगल की मध्यरेखा पर जो हरित वर्ण के धब्बे दिखते हैं, वे सम्भवतः इसी वनस्पति की विपुलता के कारण हों। अतः मंगल के ग्रहीय वातावरण युक्त प्रयोगशाला में ऐसी ही वनस्पतियाँ तथा कुछेक निम्न स्तरीय जीवों को रखकर अवलोकन किये जा रहे हैं।

अन्तरिक्ष को उठता मानव, अभी शैशवावस्था में

यह निश्चित है कि ग्रहीय यात्रा में मानव को सामना करने के लिए एक-से-एक विकट संकटों की कमी न रहेगी। कई संकट तो ऐसे भी सामने आयेंगे, जिनकी उसे कल्पना भी न होगी। कठिनाई तब और भी बढ़ जायेगी जब अपने प्रथम ग्रहीय स्टेशन—चाँद पर पहुँच कर हमें पृथ्वी से अपना सम्पर्क तोड़ना पड़ेगा। यदि हमारी चन्द्रयात्रा वास्तव में ज्ञानवृद्धि तथा आगे चलकर आर्थिक लाभ देने वाली सिद्ध हो सकी, तो यह भी निश्चित है कि हम वहीं तक पहुँचकर ठहर नहीं जायेंगे और तब हमारा दूसरा निकटतम पड़ाव होगा मंगल ग्रह। उसी दूरी तक हमें आशा है कि किन्हीं विशिष्ट परिस्थितियों में ही सही, जीवन धारण के कुछेक लक्षण तो मिलेंगे ही। मंगल की सतह पर जो ऋतु-ऋतु में रंग-परिवर्तन दूरदर्शी द्वारा दिखायी पड़ते हैं, उनसे अन्दाजा लगाया जाता है कि वहाँ कुछ तो हमारी परिचित वनस्पतियाँ उगती ही होंगी।

हमारा मंगल, अपने हिमक्षेत्रों में ग्रीष्म के दिनों बहुत कुछ ऐसा ही तो होगा !

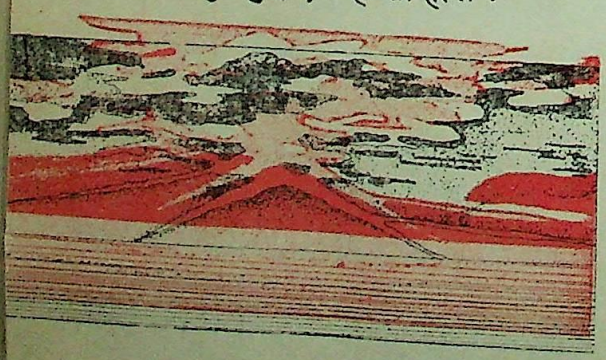

डा. सीजेल की प्रयोगशाला में मंगल ग्रह

अमरीका की अन्तरिक्ष उड्डयन संस्था 'नासा' द्वारा किये गये एक अनुबन्ध के अनुसार वहाँ के डा. एस. एम. सीजेल (S. M. Siegel) ने अपनी प्रयोगशाला के एक कक्ष को मंगल ग्रह के जलवायु और वातावरण से यथाशक्ति अधिकाधिक मिलता-जुलता तैयार किया है। उसमें वे निम्न जीवों तथा वनस्पतियों पर प्रयोग किये जा रहे हैं जिनसे ज्ञात किया जा सके कि जीवन धारण की सम्भावना मंगल पर किस अंश तक सम्भव है।

आक्सीजन की नितान्त अनुपस्थिति के प्रभाव के विषय में उनका कथन है कि क्लोस्ट्रडीयम बोट्यूलिनम (*Clostridium botulinum*) जैसे विषैले जीवाणु तो अपनी जीवन शक्ति वगैर आक्सीजन ही प्राप्त कर लेते हैं। वायु में आर्द्रता के अभाव से यदि कुशंका उपस्थित होती तो इनका कहना है कि अपनी पृथ्वी पर ही रेगिस्तानी और नितान्त शुष्क पहाड़ी इलाकों को देखिये जहाँ कुछ न कुछ वनस्पति और जीव-जन्तु निर्वाह कर लेते हैं। यदि शीत का प्रश्न हो तो भी यह न भूलना चाहिए कि कुछेक लाभकारी बैक्टीरिया को $-२०°C$ तक के अति शीत पर भी हम १२ घण्टे तक सुरक्षित रखते हैं और प्रशीतन द्वारा खाद्य-संरक्षण के उद्योग में तो अति शीत अत्यन्त आवश्यक है।

प्रयोगों के अन्तर्गत यह देखा जा रहा है कि कुछेक जटिल प्रकार के जीवाणु, सूक्ष्म-बीजी पौधे, फन्जाई और अपृष्ठवंशीय जीव मंगल गृहीय वातावरण में जी सकते हैं या नहीं। उक्त प्रयोगशाला की वायु में ९७% नाइट्रोजन, और ३% कार्बन डाइआक्साइड इस प्रकार मिश्रित अवस्था में रखा गया है कि $-६०°C$ पर वह वायु द्रवित हो जाये। प्रतिदिन शाम को ४ बजे उस कक्ष में अंधेरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

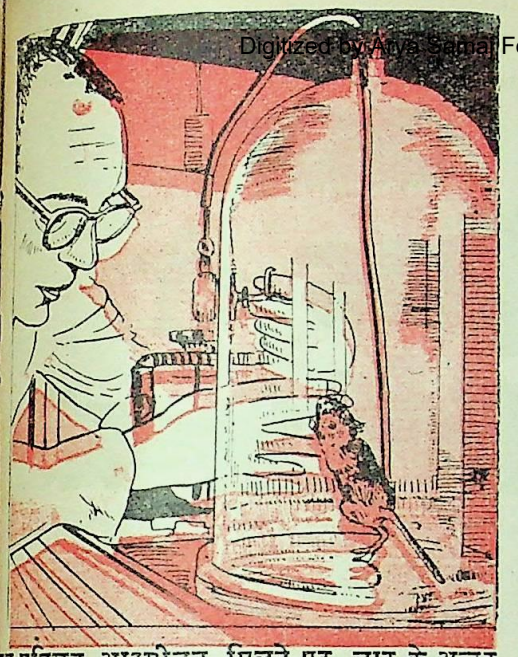

शत-प्रतिशत आक्सीजन मिलने पर, जार के अन्दर बन्द, यह चूहा छटपटा भी रहा है

कर दिया जाता है ताकि उसे १२ घण्टे की मंगल जैसी रात मिल सके। उस रात भर कक्षा का ताप –२०°C रखा जाता है। यह तो स्मरण ही होगा कि पृथ्वी के वायुमण्डल में २१% आक्सीजन है, जबकि इस कक्ष को आक्सीजन-शून्य रखा गया है।

एक भिन्न कक्ष में कुछ पौधों पर प्रयोग किये जाते हैं। सामान्य श्रेणी की मटर-बेल को केवल ५% आक्सीजन के वातावरण में रख कर देखा तो बेल काफी स्वस्थ और पुष्ट रही और शर्करा, प्रोटीन, तेलभाग तथा प्रकिण्व जैसे पदार्थ उसके कोशाद्रव में बहुतायत से पाये गये। इसी प्रकार केवल २% आक्सीजन में खीरे को रखकर देखा तो उसने भी ऐसा ही परिणाम प्रदर्शित किया। हिमेटाइट जैसी खनिज-प्रचुर मिट्टी में सामान्य वातावरण के ३०वें भाग जितने विरल वातावरण में भी कुछ पौधे उगाये जा सके हैं।

जन्तुओं पर किये जाने वाले प्रयोग भी कम नहीं हैं। ५४ दिन तक कछुओं को समुद्र किनारे के सामान्य वायुमण्डलीय दाब के १०वें भाग पर जीवित रखा जा सका है। तारा मछली (स्टारफिश) भी न्यून दाब पर जीवित रह सकती है। जिस प्रकार चन्द्रयात्रा के आरम्भिक प्रयोगों में चूहे, बिल्ली, कुत्ते और बन्दर आदि भेजे जाते रहे, उसी प्रकार मंगलयात्रा के भी प्रारम्भिक परीक्षणों में चूहे, तिलचट्टे आदि भेजे जायेंगे, क्योंकि अधिक दिनों तक बगैर खाये-पिये, जीवित रहने की क्षमता इन्हीं में पायी जाती है।

एक प्रयोग के अन्तर्गत कैक्टस आदि कुछेक रेगिस्तानी पौधे विभिन्न बर्तनों में सील करके तीन महीनों के लिए कठिन सर्दी गुजारने भेज दिये गये। जिन बर्तनों में मंगल ग्रहीय वातावरण रखा गया था, उनके पौधे परीक्षण के पश्चात् भी स्वाभाविक स्थिति में पाये गए, जबकि जिन बर्तनों में सामान्य वायु रखी गयी थी, उनके पौधे सफेद- पड़कर मृतप्राय हो गये।

ये और ऐसे अन्य विभिन्न प्रयोग अभी शैशवावस्था में ही सही, हमारे लिए वह नया मार्ग बना रहे हैं जो हमें आज नहीं तो अधिक दूर भी नहीं, कदाचित् इसी दशक में मंगल ग्रह की ओर बढ़ने में सहायक होगा।

इन पौधों में बीच के दो को पहले पृथ्वी के वातावरण में उगाकर तत्पश्चात् मंगल के वातावरण में रखा गया तो वे छठवें ही दिन मुरझा गये। सिरे के दोनों को पहले इससे उलट क्रिया करने पर इस कुप्रभाव से मुक्त रखा जा सका है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब मेंढक ने हमें धक्का

मदनमोहन शर्मा

बात मेंढक की है। वह भी मेंढक ही था, किन्तु था सबसे भिन्न। मेंढकों में मेंढकराज अर्थात् बुल फ्राग (Bull frog) था। घर में हम सबने उसे एक प्यारा-सा, छोटा-सा नाम दे रखा था—पाल। पाल क्या था, मस्ती का पिटारा था। किस तरह वह हमें, खासकर फोटोग्राफी में मुझे छकाता रहा, उसका वर्णन निश्चय ही आपको रुचेगा।

धुन का पक्का

पहले-पहल जब वह हमारे यहाँ न मालूम कहाँ से आया, तब काफी हंगामा रहा। हंगामा, हमारे घर में नहीं, हमारे बगीचे के उस मीनालय में हुआ जिसमें हमने सुन्दर-सुन्दर, सुनहरी गोल्डफिश मछलियाँ पाल रखी थीं। समय था आधी रात का। मीनालय से उठती अजीब चिचियाहट से हमारी नींद उचट गयी। उस ओर जाकर हमने देखा तो बुल फ्राग को नये मेहमान के रूप में मीनालय की मेंड़ पर पानी में उचकता हुआ पाया। बच्चों को डर था कि कहीं हमारी सुनहरी मछलियों पर वह नया मेहमान हाथ साफ न कर बैठे। दो ही दिन में सब यह जानकर आश्वस्त हो गये कि मीनालय के अन्यान्य जलजीवों से उसकी दोस्ती हो गयी है। तभी हमने उसे भी अपना पालित जीव समझ लिया और उसे 'पाल' का प्यार भरा नाम दे दिया।

मैं यह देखकर पहले तो हैरान था कि मछलियों को दिया जाने वाला चारा, हमारा नन्हा—६ इंच का धड़, ८ इंच की टांगों वाला—पाल, खाने के लिए इच्छा ही नहीं दर्शाता! सहसा मुझे याद आया कि जैसे शेर किसी का दिया हुआ नहीं, शिकार करके ही खाता है, वैसे शायद इसे भी उछल-कूदकर अपना खुराक झपटने के अवसर की तलाश है। प्रयोगस्वरूप जब मैंने ताजा मांस का एक टुकड़ा धागे में लटकाकर उसके मुँह से कुछ ऊँचा थामा तो पलक मारने में शायद मुझे देर लगी हो, वह टुकड़ा उससे पहले ही गायब हो चुका था!

पलक-झपकती कूद

मेंढक की कूद वैसे तो बच्चों के लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नयी बात नहीं थी, किन्तु पाल की उछल-कूद में उन्हें काफी मजा आने लगा। किसी भी कीड़े या भुनगे का बस, इसके दायरे में आना ही काफी था। तब इसकी छटा, इसके दांव-पेच देखते ही बनता था। आँख मींचकर तो ये शिकार पर कभी नहीं टूटता। आरम्भ में तो हलकी-सी हरकत ही करता दिखता है। दांव में आ जाने पर केवल अपने मुँह को शिकार की सीध में रखता है और बाकी शरीर के मुड़ाव तथा कोण आदि की परवाह नहीं करता और परिणाम यह होता है कि सृष्टि में वह एक कीड़ा कम होकर ही रहता है। पलक मारते, गायब हो जाता है, पाल के पेटे में। पाल अपना शिकार शायद कभी नहीं चूकता। बच्चों की खिलवाड़ के लिए मैंने एक छड़ी में धागे से एक-एक कीड़े को लटकाकर पाल के आगे रखना शुरू किया। फिर तो बच्चों ने इसका खेल ही बना लिया। खेल ही खेल में पाल दो फुट तक सीधा उछल लेता था।

उछलते हुए मेंढक की वह तेजी, मेरी फोटोग्राफी के लिए मानो एक चुनौती थी। उछलते हुए मेंढक के क्रमबद्ध फोटो लेना वैसे भी सरल नहीं; पाल के बारे में यह और भी कठिन क्यों था, सो मैं बड़ी देर में समझ पाया। पाल की प्रायः प्रत्येक कूद मेरी कैमरा रील के हर टुकड़े को बेकार कर देती थी। हारकर मैंने नयी तैयार की गयी ऐसी स्पीड-लाइट का सहारा लिया जो सैकण्ड के १५०००वें भाग में अपनी झलक दिखा जाती थी। मैंने सोचा, अब तो पाल के पांवों को कैमरे में जकड़ ही लूँगा।

इस बार भी हारना मुझे ही पड़ा। कैमरा और वह द्रुतगामिनी दामिनि जैसी स्पीडलाइट भले ही अपनी-अपनी जगह सही रहें, बाकी की तैयारियों में तो मेरे ही हाथ-पांव का काम था न! उसी दांव पर पाल जीतता गया, मैं हारता गया। हर फिल्म पर देखा, या तो हजरत पाल जमे बैठे हैं या हाथ हिलकर रह गये हैं। वह

ये किसी नृत्य-कोरस में रत, तीन मेंढक नहीं हैं, विभिन्न मुद्राओं में प्रदर्शित, एक ही है।

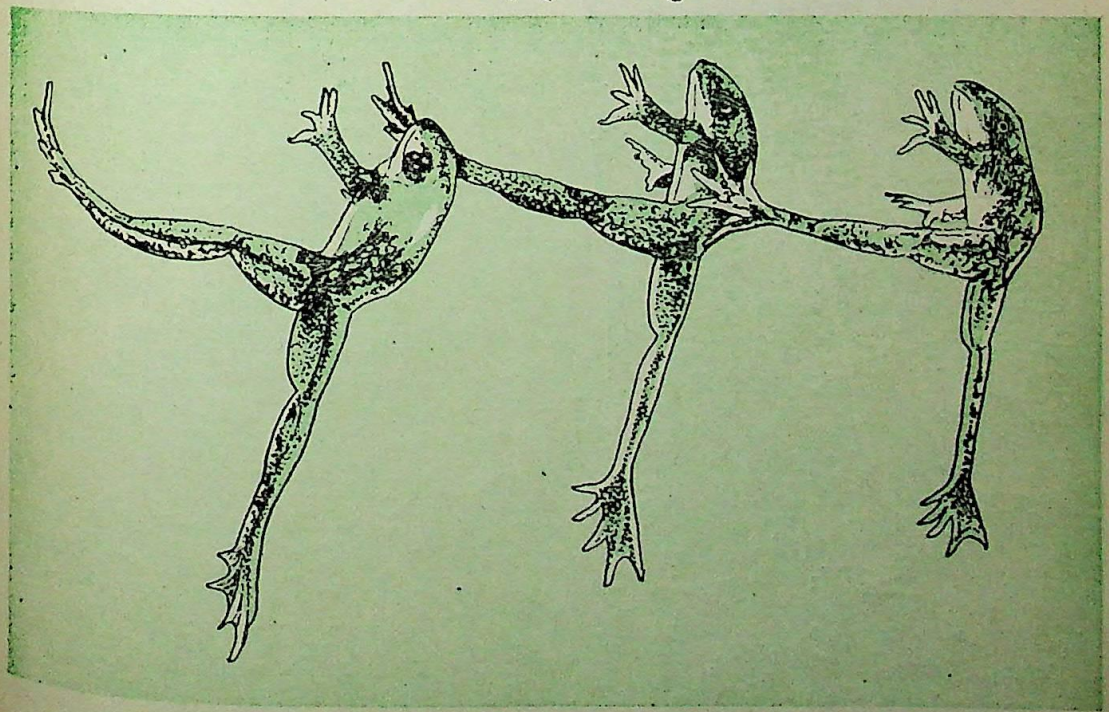

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

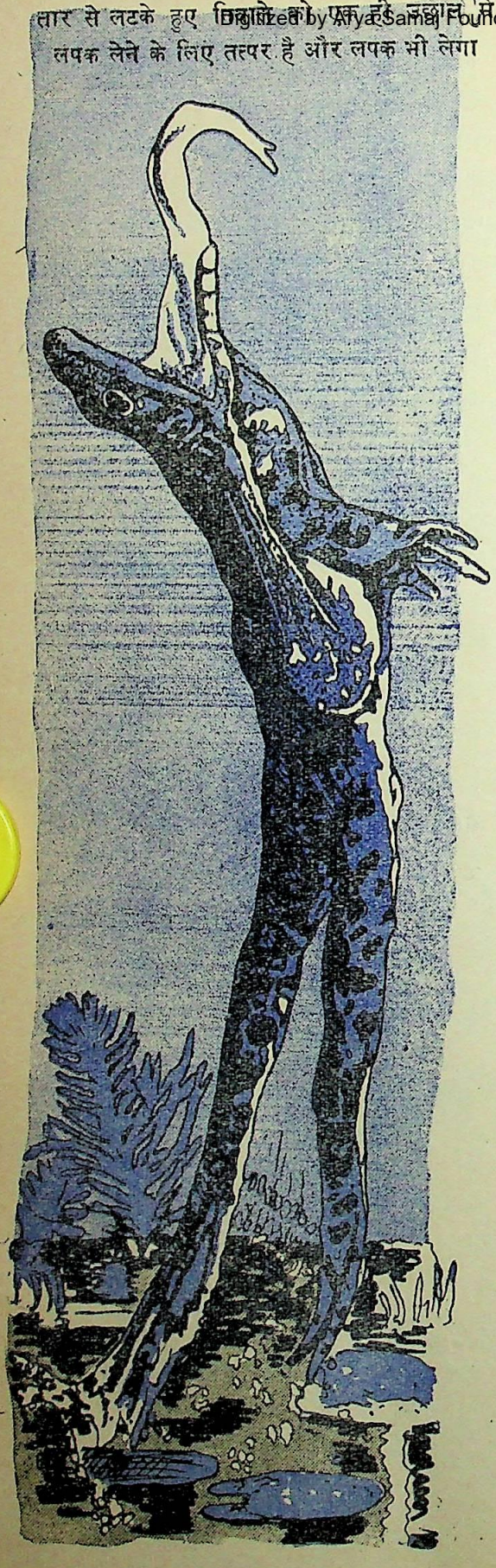

तार से लटके हुए शिकार को पल ही उछाल में लपक लेने के लिए तत्पर है और लपक भी लेगा

फिर भी पाल, पाल ही था; और मैं, मैं। मैंने अपनी उस युक्ति का प्रयोग किया जिसके द्वारा १९५८ में मैंने प्रथम बार एक उछलते कछुए के फोटो स्वचालित ढंग से, अर्थात् फोटो द्वारा ही लिवाये थे। मैंने अपने कैमरे का संयोजन उस हाईस्पीड फ्लेशलाइट से, फोटो एलैक्ट्रिक सेल से तथा रेडार सर्किट में काम आने वाली थाइरेट्रान ट्यूब से संयोजन किया। अब मानव के आगे मेंढक के हारने की बारी थी और पाल कैसा भी हो, इस बारे में तो अपवाद नहीं था। आखिर उसे हथियार डालने पड़े और प्रत्येक बार, ज्योंही वह उछलता, सैकण्ड के १५०००वें हिस्से में फ्लैशलाइट झपक जाती और ७७वें हिस्से में कैमरे का शटर खटक जाता। अब कहीं जाकर मनचाहे फोटो हाथ आने लगे।

कूद की क्रमिक क्रिया

सीरीज फोटो प्राप्त होने पर पाल की-मेंढक मात्र की कूद का क्रमिक रहस्य समझा जा सका। संक्षेप में वह इस प्रकार है:

मेंढक अपने शिकार पर झपटने से पहले, आँखों को पैनी करके लक्ष्य पर दृष्टि गड़ाता है और अपने शरीर को वायु के प्रतिरोध से रक्षित अर्थात् स्ट्रीमलाइन कर लेता है। फिर अपनी आँखों को सन्मुख आक्रमण से बचाने के लिए उन्हें निचली पारदर्शक झिल्ली से ढंक लेता है। उचकते समय इसके हाथ लटकते रहते हैं और जीभ जो अन्य जीवों की अपेक्षा, पीछे को नहीं, आगे को जुड़ी रहती है, बाहर लपलपाती है। जब तक शिकार उसकी लपक में और जीभ की लपेट में आता है और मेंढक पुनः अपनी स्वाभाविक दशा में आ जाता है, तब तक हम अपनी आँखों और कानों से केवल एक धुँधली-सी आकृति की उछाल और छपाक् की ध्वनि ही देख-सुन पाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाल के और भी साथी-मेंढकों की, नये बुल फ्राग की मेरी तलाश में मेरे पड़ोसियों ने काफी सहायता करना शुरू किया। विशेषकर ९-१० वर्ष के दो किशोर-भाइयों ने बड़े चाव और उत्साह से इस काम को उठा लिया। ये दोनों भाई पेन्सिलवेनिया के मेंढकों के अच्छे नमूने लाने लगे। बाहर के भी मेरे मित्रगण फ्लोरिडा और ल्यूसियाना से वहाँ के प्रसिद्ध बुल फ्राग मेंढक पार्सलों द्वारा मेरे पास भेजने लगे।

मेंढक के स्टाक की ओर से मेरी चिन्ता दूर हुई तो दूसरी ओर मैं अपने फोटोग्राफी के सरन्जाम से सन्तुष्ट न हो पाया। अपने पालतू मेंढक, पाल की उछल-कूद भले ही अब मैं अपने कैमरे से ले पा रहा था, किन्तु एक बार में एक ही निगेटिव ले पाता था। ऐसे में मुझे प्रो. एजर्टन ने बहुमूल्य सहायता दी। उन्होंने अपना नया हाईस्पीड फ्लेश मेरे सिपुर्द करते हुए मेरे पालित मेंढक, पाल के विविध पोज लेने का आग्रह किया। मुझे मानो मन की मुराद मिल गयी, क्योंकि उनका सरन्जाम मेरे कैमरे से कहीं तीव्र था।

मेंढक को उछलने के लिए प्रेरित करना भी सहज प्रतीत नहीं हुआ। जिस घड़ी हम चाहें, उस घड़ी अपने नमूने के मेंढकों को कुदाने में हम प्रायः ही असफल रहे। तब हमारे एलेक्ट्रिकल इन्जीनियर मि. बाब ने नयी युक्ति से काम लिया। जमकर बैठे हुए किसी भी मेंढक के पीछे उन्होंने बैटरी का एक स्पार्क छोड़कर देखा। युक्ति काम कर गयी और तब मैं नये हाईस्पीड रील कैमरे से मेंढक की उछाल को आठ रीलों में बाँध सका।

इन मेंढकों में मैंने खास बात यह पायी कि शिकार पकड़ में आने के लिए यह आवश्यक है कि वह शिकार किंचित हरकत भी करे। निस्पन्द जन्तु इनके गिर्द कितने ही पड़े रहें, ये पहचान ही न पायेंगे कि वे भी कोई खाने की वस्तु हैं और भूखे रह लेंगे।

अगल-बगल, आगे और पीछे तक एक साथ देखने वाली बड़ी आँखें, तीव्र कर्कश स्वर और चपल, लम्बी उछाल इस मेंढक के वे अवलम्ब हैं जो बड़े-बड़े शत्रुओं से इसे बचाए रखते हैं।

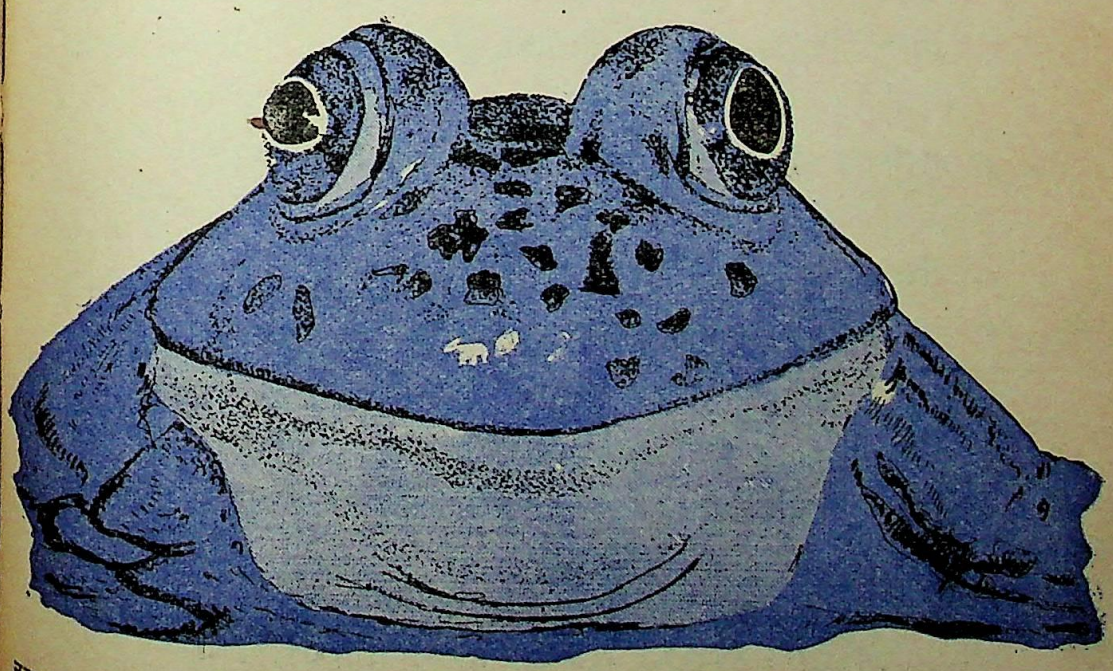

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे यह कि इनके समूह में सबसे बड़ी स्त्री ही नेता बन बैठती है और जब तक अपना पेट ठूंस-ठूंसकर नहीं भर लेती, तब तक साथियों को हस्तक्षेप करने नहीं देती। उसी समूह में मेरा पाल राजा की भूमिका बखूबी अदा कर रहा था।

विज्ञान इनका कृतज्ञ है

बहुत कम लोग यह समझ पाते हैं कि मानव-जाति तथा हमारा विज्ञान इन मेंढकों का कितना कृतज्ञ है। सबसे प्रमुख तो यही कि यदि मेंढक न होते तो कीड़े-मकोड़े और कीटों से ही सृष्टि भर जाती तथा हमें खड़े होने तक को स्थान न रहता। १७८० में जिस दिन इटालियन वैज्ञानिक गैलवानी ने मेंढक की मृत टांग के भी विद्युत-संवेदक होने का रहस्य ज्ञात किया, उस दिन उस रहस्य ने विज्ञान के लिए एक नया ही पृष्ठ खोला था। उसी से प्रेरित होकर १९वीं शताब्दी में दूसरे वैज्ञानिक वोल्टा ने विज्ञान-जगत को विद्युत और संचित धारा वाली बैटरी के सर्वथा नये ही ज्ञान का उपहार दिया। वोल्टा के उन प्रयोगों पर ही आज के विद्युत-विज्ञान की नींव आधारित है। जैव-विज्ञान के अध्ययन में तो मेंढकों का अप्रतिम योग है ही। इनके पालने में कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता और इनकी सहायता से मानव की शरीर-रचना समझने में जो अमूल्य सहायता मिली है, उसका मूल्यांकन सम्भव नहीं।

● ● ●

हाईस्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए
हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. **जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

२. **वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

३. **प्रारम्भिक भौतिकी**—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३·५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

४. **प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

५. **प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

६. **सामान्य विज्ञान**—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६·२५

७. **सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५·००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाईस्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ९ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

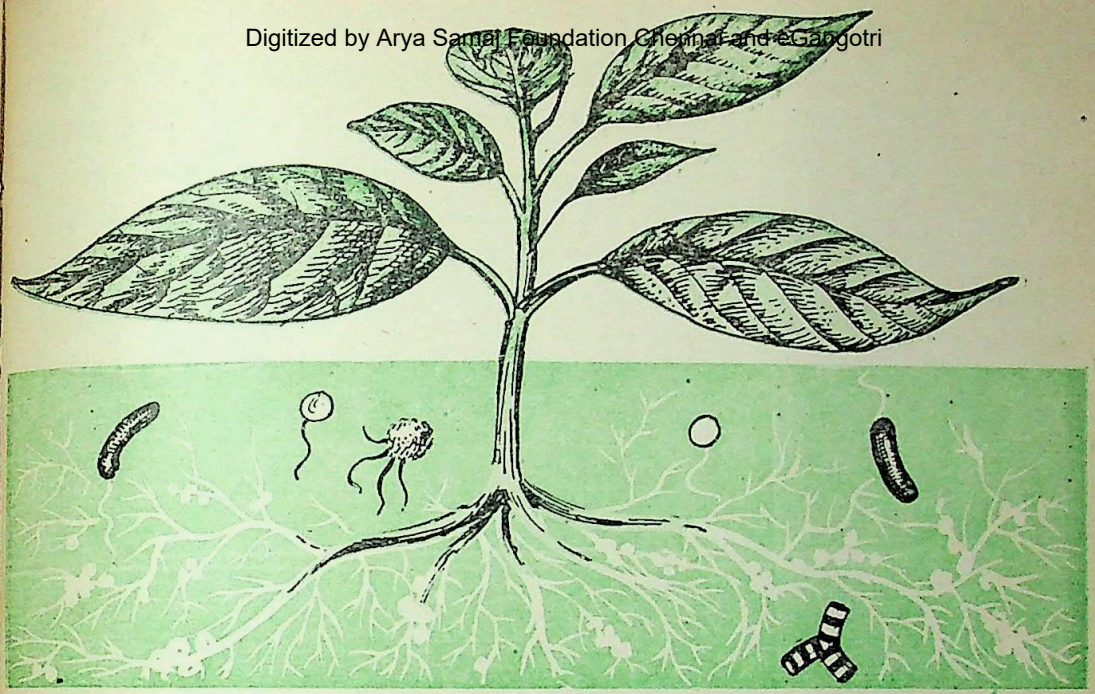

नाइट्रोजन, अदालत में

प्रेमानन्द चन्दोला

पात्र

नाइट्रोजन, न्यायाधीश, सरकारी वकील, नाइट्रोजन का वकील, पेशकार, चपरासी तथा अदालत में उपस्थित लोग।

(अदालत का दृश्य)

न्यायाधीश—(हथौड़ी पीटकर) मुकदमा पेश किया जाये।

सरकारी वकील—(आगे आकर) मिलॉर्ड! नाइट्रोजन के अत्याचारों से (पब्लिक की ओर इशारा करते हुए) लोग बहुत दुखी हैं। सारी पब्लिक गवाह है कि यह कितनी बर्बरता से लोगों को मौत के घाट उतार देती है।

न्यायाधीश—बातें पूरी तरह से बतायी जायें।

सरकारी वकील—मिलॉर्ड! यह नाइट्रोजन तो शैतान की मौसी हो गयी है। लोगों के पीछे हाथ धोकर पड़ गयी है। पूरी बातें सुनकर आपको विश्वास हो जायेगा कि इसके दुष्कर्मों से दुनिया कितनी हाय-तोबा मचा रही है।

मिलॉर्ड! युद्ध की विभीषिका की कल्पना कीजिये तो आपको भृकुटियां ताने हुए और कुटिल अट्टहास करते हुए हिंसा-राक्षसी नजर आयेगी। गोली और कारतूसों में छिपी हुई इस नाइट्रोजन से धांय की आवाज होती है और हाय! प्राणी मौत की तड़प से छटपटाने लगता है। इसकी उच्छृंखल प्रचण्ड शक्ति से दिल दहला देने वाला बम का धड़ाका होता है और क्षण भर में ही अनगिनत मनुष्य ढेर हो जाते हैं। दुनिया का सारा वैभव धरा-धराया रह जाता है। माँ वसुंधरा की गोद छलनी हो जाती है। लोगों का सुख-चैन छिन जाता है। भयंकर प्रलय मच जाती है और सृष्टि का विनाश हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक करारी चोट लगती है। एक जबरदस्त धमाका होता है। छोटी-सी आग की चिनगारी के साथ षड्यंत्र रचकर इसके अणु विध्वंस की योजना बना लेते हैं और पलक मारते ही एक भयानक और हृदय विदारक विस्फोट हो जाता है, जिसका फल होता है, सबका सफाया—सबका विनाश।

मिलॉर्ड ! इसका एक रूप हो तो कहूँ, यह तो बहुरूपी है, बहुरूपी। किस्म-किस्म के रूप धरकर हमें छलती है। कभी नाइट्रोग्लिसरीन के रूप में, कभी गन-कॉटन के रूप में, तो कभी डायनेमाइट के रूप में प्रकट होती है और यम-दूती बनकर हमें अपने फंदे में बांधकर सीधे

मिलॉर्ड, इसके षड्यंत्र का फल है, एक भयंकर विस्फोट और महाविनाश !

जरा भी हिचकती नहीं।

पहले तो इसका क्षेत्र केवल बारूद तक ही सीमित था, क्योंकि गंधक, कोयले और इसके यौगिक, शोरे के मिश्रण से ही तो बारूद बनता है। लेकिन अब तो इसके अत्याचार दिन-प्रतिदिन बढ़ते ही चले जा रहे हैं। इसका ध्येय, इसका काम, बस केवल एक ही रह गया है और वह है—लोगों का सफाया करना। अब तो यह हत्यारिणी पिक्रिक एसिड, नाइट्रो-सेल्युलोज, टी. एन. टी. आदि के रूप में भी बेहिचक संहार का कार्य करती ही चली जा रही है।

और मिलॉर्ड ! आखिर में, मैं यही कहना चाहूँगा कि आये दिन यह पत्थरदिल अनगिनत हत्याओं के लिए जिम्मेदार है। इसलिए इसे अपनी करनी का फल अवश्य मिलना ही चाहिए ताकि लोग सुख-शांति से रह सकें।

(सरकारी वकील की बहस के बाद नाइट्रोजन का वकील बहस के लिए तैयार हो जाता है।)

नाइट्रोजन का वकील—(सामने आकर) मिलॉर्ड ! सरकारी वकील की दलील आपने सुनी। ये सब बातें कुछ-कुछ सही हो सकती हैं, किन्तु इसमें दोष नाइट्रोजन का नहीं है। दोष है तो केवल आज के इन वैज्ञानिकों का, आज के इन लड़ने वालों का। यह तो सृष्टि में सृजन और पालन के कार्यों के लिए जन्मी थी। लेकिन इन वैज्ञानिकों ने सारा तख्ता ही पलट दिया। सारे मोहरे ही बदल डाले। मेरी बातों से आपको विश्वास हो जायेगा मिलॉर्ड, कि नाइट्रोजन वास्तव में दोषी नहीं, पोषक है।

सबसे पहले तो, मिलॉर्ड यह एक निष्क्रिय गैस है। न जलती है और न जलने में सहायता देती है। हवा का एक बटा पांच हिस्सा आक्सीजन का है, जो वस्तुओं को जलाने पर ही तुली रहती है। यदि हवा में चार बटा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

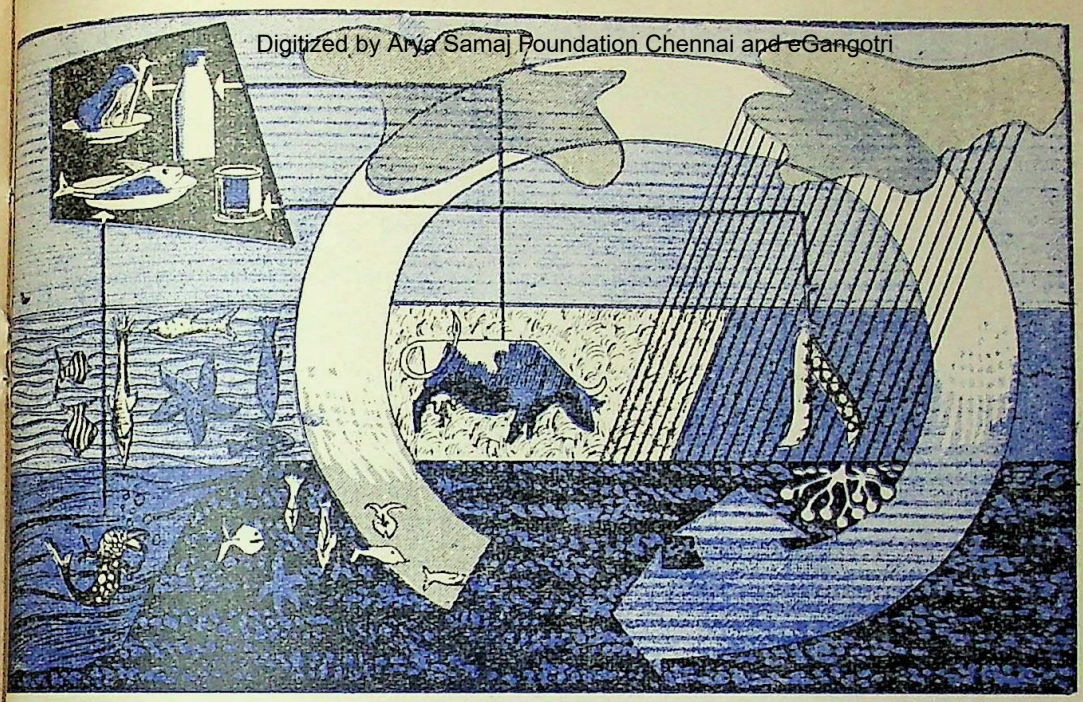

सोचिये, नाइट्रोजन के बगैर जीव-जगत का टिकना असंभव न हो जायगा !

पांच हिस्सा नाइट्रोजन का न होता तो न जाने यह आक्सीजन क्या गजब ढा देती? यह दुनिया कभी की भस्म हो गयी होती। यह नाइट्रोजन की ही बिसात है कि वह आक्सीजन के ज्वलनशील प्रभाव को संतुलित किये हुए है, सृष्टि को बचाये हुए है। इसकी खूबी को देखिए कि सृष्टि को भस्म होने से बचाने के लिए तो यह निष्क्रिय बन जाती है और उपयोगी रचनात्मक कार्यों को करने के लिए सक्रिय भी बन जाती है। इसी नाइट्रोजन से प्रोटीन बनते हैं जो जीवों के जीव-द्रव्य निर्माण के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं और इन्हीं प्रोटीनों से मिलॉर्ड जीवों के टूटे-फूटे अंगों की मरम्मत तथा वृद्धि होती है जिससे जीवों का जीवन-चक्र सुचारु रूप से चल पाता है।

मिलॉर्ड ! यदि नाइट्रोजन न हो तो—खाद के लिए नाइट्रेट कहां से बने ? और यों खादों के अभाव में क्या अकाल न पड़ जायेगा ? तब बिना नाइट्रोजन युक्त खादों के वनस्पतियों का जीवन और बगैर वनस्पतियों के मनुष्य और पशुओं का जीवन असम्भव न हो जायेगा ? वनस्पति और जन्तु इस संसार से लुप्त न हो जायेंगे ? और तब पृथ्वी पर शेष बचा ही क्या रहेगा ? मिलॉर्ड ! कुछ भी तो नहीं।

यह बिचारी स्वयं तो विष्ठा, मल-मूत्र तथा सड़ी-गली चीजों में उत्पन्न होती है, लेकिन जीवों की भलाई के लिए ऊँची-ऊँची जगहों तक पहुँच जाती है। नीच कुल की अवश्य है, लेकिन कर्म तो इसके ऊँचे हैं जो इसके परोपकारी कार्यों से भली-भाँति सिद्ध हो जाता है···।

सरकारी वकील—(बीच में टोक कर) मिलॉर्ड ! नाइट्रोजन की एकाध दिखावे की उपयोगी बातें बतलाकर इसके असली अपराधों को ढकने की कोशिश की जा रही है, जिसका कि मुकदमे से कोई सम्बन्ध नहीं···।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाइट्रोजन का वकील—(बात काटकर) मिलॉर्ड ! इन सब बातों का मुकदमे से बहुत गहरा सम्बन्ध है। इनसे सच्चे अपराधी सामने आ जायेंगे और निर्दोष बेचारे निर्दोष सिद्ध हो जायेंगे। यदि इसी तरह दलील में दखल दी जाती रही तो हो सकता है कि इस गड़बड़ी में ही कुछ बातें अदालत के सामने आने से रह जायँ और फैसला ठीक से न हो पाये।

न्यायाधीश—(हथौड़ी पीटकर) ऑर्डर-ऑर्डर ! बहस जारी रहे।

नाइट्रोजन का वकील—(सिर झुकाकर) मिलॉर्ड ! इससे बने डाइनेमाइट को—जिसे कि अभी-अभी संहारक बताया गया है—चट्टानों को तोड़ने, बंजर भूमि को सुधारने, सड़कों को बनाने तथा दलदलों को सुखाने आदि के काम में लाया जाता है। इसके यौगिक अमोनिया से ही तपती गर्मीयों में सूखा गला तर करने वाली बर्फ बनायी जाती है और दूसरे यौगिक, नौसादर से बैटरी के सैल बनाये जाते हैं। इसी से नाइट्रिक एसिड आदि पदार्थ बनते हैं, जो औद्योगिक क्षेत्रों में बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं जिनके बिना औद्योगिक प्रगति कठिन क्या बिलकुल असम्भव है। इसी से लॉफिंग गैस बनती है जो कि दांतों की चीरफाड़ के समय सुंघाई जाती है ताकि मनुष्य को दर्द का जरा भी अनुभव न हो और उसका ऑपरेशन आसानी से हो जाय ! यही नहीं, इसके अन्य यौगिकों जैसे—सेलुलाइड आदि से फिल्म, सलाइयां, कंघी, शृंगारिक वस्तुएं, पारदर्शक झिल्लियाँ, कृत्रिम रेशम तथा वार्निश आदि अन्य सैकड़ों चीजें बनायी जाती हैं।

इसकी उपयोगिता मैं कहाँ-कहाँ तक गिनाऊँ, मिलॉर्ड। ऐसा कहीं, कोई भी क्षेत्र नहीं, जहाँ इसका उपयोग न हो। इन सब बातों से क्या यह स्पष्ट सिद्ध नहीं हो जाता कि यह एक परोपकारी योगी की तरह सृष्टि के लिए कितनी उपयोगी है !

और मिलॉर्ड ! यह जो संहार का कार्य होता है, उसमें इसका रत्ती-भर भी कसूर नहीं। इन हत्याकाण्डों में इन वैज्ञानिकों और लड़ाई करने वाले संहारकों का ही सारा हाथ है जो इस तरह की चीजें बनाते और प्रयोग करते हैं। इससे जबरदस्ती बन्दूक की नोंक पर यह काम कराया जाता है। इसके सीधे स्वभाव का नाजायज फायदा उठाकर, इसे हाथ की कठपुतली बनाकर ये वैज्ञानिक और युद्धप्रिय हिंसक ही पब्लिक के पालक की जगह संहारक बनते चले जा रहे हैं।

(बहस समाप्त हो जाती है। पेशकार न्यायाधीश के पास फाइल ले जाता है। अदालत में खुसपुसाहट होने लगती है। लोग उत्सुक दिखायी देते हैं। न्यायाधीश सोचने-विचारने के बाद फैसला सुनाते हैं।)

न्यायाधीश—मुकदमा खारिज किया जाता है। नाइट्रोजन को रिहा किया जाता है। साथ ही फरमान जारी किया जाता है कि वैज्ञानिकों के तोड़-फोड़ वाले आविष्कारों और लोगों की युद्ध विषयक चालों पर निगरानी रखी जाये।

(हथौड़ी पीटने का स्वर होता है और अदालत बर्खास्त होती है।)

यास्को से न्यूयार्क, ३० मिनट में

मान लीजिए, आप मास्को के लेनिन पुस्तकालय में किसी ग्रन्थ का अवलोकन कर रहे हैं और बीच ही में किसी संदर्भ के लिए ऐसी पुस्तक की आवश्यकता पड़ी जो आपको याद हो, कि न्यूयार्क की नेशनल कांग्रेस लाइब्रेरी में प्राप्य है। तब आप साथ वाले मित्र से कहेंगे—जरा उस मेज पर देखते रहें, मैं न्यूयार्क होकर अभी आया। उस समय आपको अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष-उड्डयन पुरस्कार के सोवियत विजेता, एरिया शर्नफेल्ड अपने यात्री और माल-वाहक उस राकेट में ले उड़ेंगे जो उनकी योजनानुसार केवल ३० मिनट में आपको न्यूयार्क पहुँचा देगा और एक घण्टा पूरा होने तक आप मास्को लौट भी आयेंगे !

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सीलों की दुनियाँ में

विश्वम्भरदत्त नौटियाल

यद्यपि सभ्यता के विकास के साथ संसार के अनेक प्राणियों ने व्यक्तिगत विकास एवं पारिवारिक शान्ति के लिए बहुपत्नीत्व प्रथा को तिलांजलि दे दी है, किन्तु मनुष्य तथा पशु-पक्षियों में अभी भी ऐसे अनेक परिवार हैं जो इस प्रथा को अपनाये हुए हैं। पशु-जगत में समुद्र का प्राणी सील उनमें से प्रमुख है। समुद्र का यह 'छैला' अनेक मादा सीलों से अपने रनिवास की शोभा बढ़ाये रहता है। एक नर सील के हरम में एक सौ मादा तक रहती हैं, जिनकी देखभाल करने में कभी-कभी इसे अपने प्राणों की बाजी भी लगानी पड़ जाती है।

मछली की तरह दिखायी देने तथा पानी का प्राणी होने पर भी सील मछली नहीं है। यह मांस भक्षी प्राणी स्तनपायी है। मछलियों के समान ये पानी में घुली हुई आक्सीजन को नहीं चूस सकते। अतः हवा के लिए इन्हें पानी से बाहर आना पड़ता है। मछलियों की तरह अण्डे देने की अपेक्षा मादा सील सामान्यतः एक बच्चे को जन्म देती है। कुछ सील दो बच्चों को भी जन्म देती हैं।

शरीर की बनावट के आधार पर प्राणि-शास्त्रियों ने सील को दो मुख्य परिवारों में विभक्त किया है—कान वाले सील तथा असली सील। कान वाले सील के वर्गीकरण में 'फरसील' तथा 'जलसिंह' आदि आते हैं और असली सील के वर्गीकरण में 'बाल वाले सील' तथा 'समुद्री हाथी' आदि आते हैं। सील का यह पारिवारिक वर्गीकरण उनके शरीर की बनावट पर ही आधारित है। अन्यथा मुख्य गुण-धर्मों में वे एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं।

फर सील—इसकी लम्बाई ६ फुट तथा वजन प्रायः ३०० से ५०० पौण्ड तक होता है। ७०० पौण्ड के फरसील भी पाये गये हैं। मादा सील का वजन करीब ९० पौण्ड होता है। फरसील की चमड़ी बहुत ही खूबसूरत तथा आकर्षक होती है। इसकी पीठ पर रेशम के समान चमकदार मुलायम और चित्ताकर्षक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूरे रंग के रोयें होते हैं। इसके अग्रद्वार पैर पीछे की ओर मुड़े हुए होते हैं और तैरने में विशेष सहायक होते हैं। दांत न होने पर भी यह अहिंसक नहीं है, छोटे-मोटे जीवों को वैसे ही निगल जाता है।

अधिक मादाओं को अपने हरम में रखना फर सील अपनी शान समझता है। एक नर अपनी आयु एवं क्षमता के अनुसार ५० से लेकर १०० मादाएं तक रखता है। यह शान्ति-प्रिय तो अवश्य है लेकिन कायर नहीं। यही वजह है कि जब कभी कोई नर सील इसके हरम की ओर नजर गड़ाता है, तो यह अपनी भरपूर शक्ति से उस पर टूट पड़ता है। उस समय इनका युद्ध देखते ही बनता है। आक्रमणकारी यदि अधिक शक्तिशाली हुआ तो गृहस्वामी को या तो अपनी जान गवानी पड़ती है अथवा अपनी प्रिय पत्नियों को बाइज्जत शत्रु के सुपुर्द कर स्वयं अन्यत्र शरण लेने के लिए चल देना पड़ता है। फरसील पत्नियों से प्रेम अवश्य करता है, लेकिन विश्वास नहीं। यही वजह है कि यह अपने रनिवास को छोड़कर भोजन के लिए भी कहीं बाहर नहीं जाता! जो कुछ मिल जाता है, उसी से सन्तोष कर लेता है अथवा मादाओं तक आता ही रहता है। यदि मादा ने इसे 'तलाक' देकर भागने की जरा भी कोशिश की तो नर मार-पीटकर उसे पुनः अपने जनानखाने में कैद कर लेता है।

नर सील ७ वर्ष तथा मादाएं २ वर्ष की आयु में प्रजनन के उपयुक्त हो जाती हैं। प्रायः तीन साल की उम्र से ही मादाएं बच्चों को जनने लगती हैं। बच्चों का पालन-पोषण मादाएं बड़ी सतर्कता एवं प्यार से करती हैं। असंख्य बच्चों में से अपने बच्चे को तुरन्त ही पहचान लेने की इनमें विलक्षण क्षमता है। नर की अपेक्षा हलका शरीर होने के कारण मादाएं अपेक्षाकृत कुशल तैराक होती हैं और सालभर में छह हजार मील तक आसानी से तैर लेती हैं। सील कितने वर्ष तक जीवित रहते हैं यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है, लेकिन सामान्यतः ये १५-१६ वर्ष तक जीवित रहते हैं। २०-२२ वर्ष के सील भी पाये गये हैं। नर की अपेक्षा मादाएं अधिक आयु तक जीवित रहती हैं।

फर सील अलास्का के उत्तर केलीफोर्निया के तट तथा प्रिबिल्फ द्वीप समूहों के तटों पर अधिक पाये जाते हैं। दक्षिण अमरीका, आस्ट्रेलिया के तट, दक्षिण अफ्रीका, हिन्द-

पानी ही पानी में. शिकार का पीछा करता हुआ तैराक सील

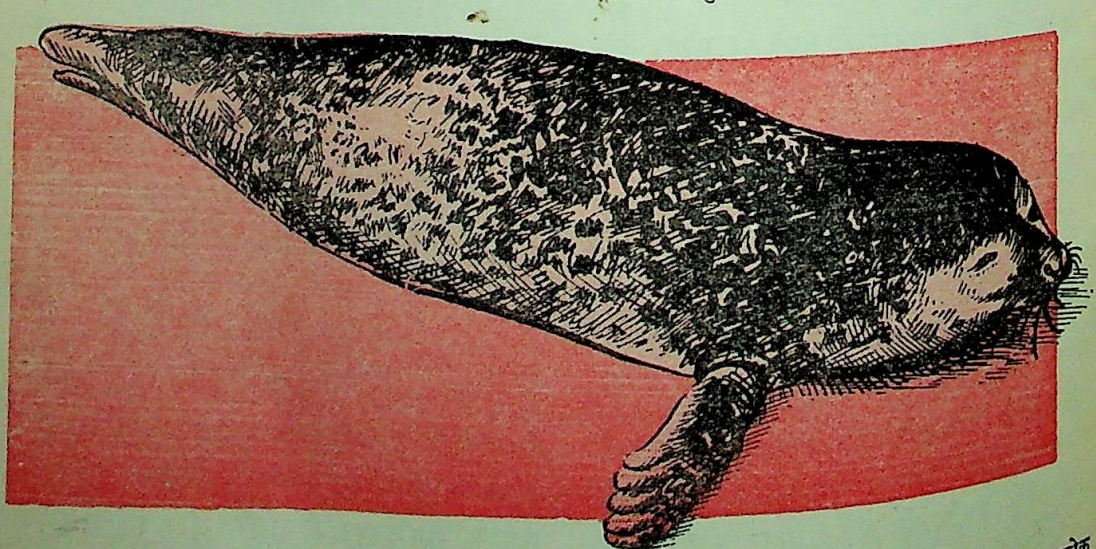

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महासागर एवं ध्रुवीय प्रदेशों में भी पर्याप्त संख्या में रहते हैं।

जलसिंह—भारी शरीर तथा कन्धों के पास विशालकाय होने के कारण ही इसे जलसिंह कहा जाता है। ये अलास्का, केलीफोर्निया, सैनफ्रांसिस्को के उत्तर तथा मैक्सिको के दक्षिण में पाये जाते हैं। इनका वजन १५०० पौण्ड से १८०० पौण्ड तक तथा लम्बाई १० से १२ फुट तक होती है। मादाओं का वजन नर से आधा होता है।

जलसिंह का दाम्पत्य जीवन सम्बन्धी कुछ उदार दृष्टिकोण है। विशाल हरम की अपेक्षा यह १०-१५ मादाओं को ही रखना पसन्द करता है। पत्नियों की देखभाल में भी फर सील की तरह न तो यह भूखों ही मरता है और न पत्नियों के लिए लड़ाई मोल लेकर जान ही गंवाता है। भारी भरकम शरीर होने के कारण नर मादाओं का पीछा नहीं कर पाता। अतः वे स्वतंत्रतापूर्वक कहीं भी चली जाती हैं। मादाएं ३५-४० पौण्ड तथा ३८-४० इंच लम्बे एक बच्चे को जन्म देती हैं। जन्म के समय बच्चे के १०-१२ दांत होते हैं।

बाल वाला सील—उत्तर अटलांटिक तथा पैसिफिक सागर के किनारे पाये जाते हैं। इनके शरीर पर चीते के समान घने, किन्तु पीले और भूरे बाल होते हैं। ये सील पांच फुट लम्बे और २५६ पौण्ड वजन के होते हैं। मादाओं का वजन कुछ कम होता है। ये पानी के अन्दर नहीं सो सकते हैं।

इनकी मादाएं २५-३० पौण्ड वजन वाले एक बच्चे को जन्म देती हैं। बच्चों का पालन-पोषण ये तब तक करती हैं जब तक कि वे तैरना न सीख जायें। ये सील १२ से १५ मील की गति से तैर लेते हैं। इनके स्वादिष्ट मांस को एस्किमो बड़े चाव से खाते हैं।

ग्रीनलैण्ड सील—इस सील का रंग गहरा भूरा होता है। पीछे के पैर इनके रंग-बिरंगे चित्र वाले होते हैं। ये सील ७ फुट लम्बे तथा ६०० से ८०० पौण्ड वजन के होते हैं। सेण्ट लारेन्स, न्यू फाउण्डलैण्ड और लेब्रोडोर के मध्य ये अधिक संख्या से पाये जाते हैं। तैरने में ये बहुत कुशल होते हैं और २० मील प्रति घण्टे की गति से आसानी से तैर लेते हैं। सागर के अन्दर ये २०-२४ मिनट तक मजे में रह लेते हैं।

बलयित सील—इस सील के शरीर पर पीले रंग के घेरे होते हैं। आकार तथा वजन में ये बाल वाले सील के बराबर ही होते हैं। मार्च या अप्रैल में मादाएं, आकर्षक सफेद ऊन वाले एक अथवा जुड़वां बच्चों को जन्म देती हैं।

पट्टिका सील—इस सील के चारों ओर एक पट्टी होती है। आकार तथा वजन में ये भी बाल वाले सील के ही बराबर होते हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि खाने की खोज में ये स्थल की ओर भी मुड़ जाते हैं और कभी-कभी खाने की तलाश में पर्वतों पर भी चढ़ते हैं। पर्वतों पर चढ़ते समय घर्षण के कारण इनकी चमड़ी बुरी तरह छिल जाती है और धूप तथा चमड़ी के अधिक छिल जाने के कारण कभी-कभी इनकी मृत्यु भी हो जाती है। एस्किमो तथा अलास्कावासियों को इसकी भूरी-पीली चमड़ी अधिक आकर्षक लगती है। अतः वे इसका शिकार अधिकता से करते हैं।

धूसर सील—इस सील का वजन ८०० पौण्ड तथा लम्बाई १०-१२ फुट होती है। ये उत्तरी अटलांटिक में ग्रेट ब्रिटेन से आइसलैण्ड तथा ग्रीनलैण्ड से नोवास्कोशिआ तक पाये जाते हैं। ये साल में ७ माह तक सागर की चट्टानों के अन्दर ही रहते हैं। मादाएं सामान्यतः एक पिल्ले को जन्म देती हैं। जब तक पिल्ला दो-तीन सप्ताह का नहीं हो जाता है, तब तक मादा न तो खाना ही खाती है और न सागर के अन्दर ही जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिरश्छद सील—इनके प्रत्येक पैर में पांच अंगुलियां होती हैं। ये आर्कटिक सागर से दक्षिण में न्यूफाउण्ड-लैण्ड तक तथा दोनों ध्रुवीय प्रदेशों में पाये जाते हैं।

मांस पेशियों का एक पिण्ड होता है। क्रोधित होने अथवा शिकारी द्वारा पीछा किये जाने पर यह इस पिण्ड को बड़ी जोर से बजाकर अपने शत्रुओं को डराने का प्रयास करते हैं। इनका वजन ७००-९०० पौण्ड तथा लम्बाई ७ से साढ़े १० फुट तक होती है। मादाएं सामान्यतः छोटी होती हैं। वे ८-९ पौण्ड के भूरी पीठ तथा सफेद बालों वाले एक बच्चे को जन्म देती हैं। यद्यपि ये झगड़ालू स्वभाव की नहीं होती हैं, किन्तु बच्चों की सुरक्षा के लिए मादाएं जान तक की बाजी लगा देती हैं। इस नर सील की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह अन्य सीलों की तरह अपने नवजात बच्चे तथा मादा को अकेला नहीं छोड़ता, बल्कि दुश्मनों से उनकी सुरक्षा करता रहता है। समुद्र के अन्य प्राणियों की अपेक्षा इसका मांस अधिक स्वादिष्ट होता है। इनकी खाल पर अधिक छेद होते हैं, अतः यह विशेष उपयोगी नहीं

शिकारी से आतंकित, आर्तनाद करता हुआ सील

दाढ़ी वाले सील—थुथनी के ईर्द-गिर्द दाढ़ीनुमा बाल होने के कारण ही इन्हें दाढ़ी वाला सील कहा जाता है। इनकी लम्बाई आठ-दस फुट तथा वजन ८०० पौण्ड तक होता है। संभोग-काल में ही ये स्थल पर आते हैं अन्यथा वर्फ की चट्टानों के अन्दर ही रहते हैं। मादा मार्च के महीने में एक बच्चे को जन्म देती है। इनका मांस खुरदरा तथा स्वादहीन होता है। अतः मांस की अपेक्षा चमड़े के लिए ही इनका शिकार किया जाता है। कलेजा भी इनका ध्रुव-प्रदेश के रीछ के समान ही विषैला होता है।

समुद्री हाथी—सील जाति में यह सबसे विशालकाय प्राणी है। इसका वजन ५००० पौण्ड तथा लम्बाई पन्द्रह फुट तक होती है। दक्षिण-ध्रुव प्रदेश में पाये जाने वाले समुद्री हाथी और भी अधिक विशालकाय होते हैं। ये ७०० फुट गहरे पानी में भी तैर लेते हैं। सागर की तेज धाराओं के बीच सीधा खड़ा होना इनका प्रिय खेल है। प्रत्येक साल खाल बदलते रहने के कारण धूप, मक्खियां, चीटियाँ तथा केकड़े-घोंघे आदि समुद्र के छोटे-छोटे जीव इनके शरीर से चिपक जाते हैं और इन्हें विशेष कष्ट पहुँचाते हैं। ह्वेल के समान ये भी तेल के विशाल स्रोत हैं। मशीन के लिए इनका तेल ह्वेल के तेल से भी अधिक उपयोगी है। एक समुद्री हाथी से २०० गैलन से भी अधिक तेल आसानी से मिल जाता है। केलीफोर्निया के तट पर ये अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

सील का दाम्पत्य जीवन अधिक सुखद न होने पर भी मादाएं संतानवत्सला होती हैं। मादाएं नर के अंकुश से जब-तब मुक्त होने की फिराक में रहती हैं। संभवतः नर का विलास-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

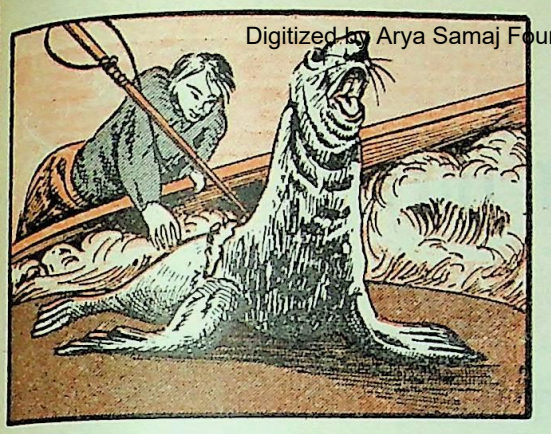

कुशल शिकारी के नुकीले भाले से सील बच नहीं पाता

प्रिय जीवन उन्हें प्रिय न हो। नर सील संतान की ओर से बिलकुल मुक्त रहता है। मादाओं को ही उनकी पूर्ण देखरेख करनी पड़ती है।

प्राणिशास्त्रियों का कहना है कि उत्तरी, ध्रुव प्रदेश के सील के कण्ठ से एक मधुर स्वर लहरी का संचार होता है जो संगीत प्रेमियों को काफी आकर्षक लगती है।

सामान्य जीवन एवं औद्योगिक दृष्टि से सील बहुत महत्त्वपूर्ण प्राणी है। इसका मांस खाने के काम तथा तेल जलाने के काम, मशीनों के लिए, साबुन तथा चमड़े के उद्योग में विशेष प्रयोग किया जाता है। इसके चमड़े एवं हड्डियों से विभिन्न सामान बनते हैं। सील की एक खाल ४५० रुपये से भी अधिक में बिकती है। १९४६ में अमरीका को सील की खाल से ही २४,५३,१५६ डालर की आय हुई थी। लेकिन सील की यह विविध उपयोगिता सील के लिए ही घातक सिद्ध हुई। विभिन्न देशों के शिकारी सील का शिकार प्रतिवर्ष असंख्य मात्रा में करते हैं। इससे अनेक प्रदेशों में तो अब सील नाम मात्र को ही रह गये हैं। सील की इस क्षति को देखकर अनेक राष्ट्रों ने सील को संरक्षण प्रदान करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नियम बनाया है, जिसके अन्तर्गत सील के बच्चों एवं मादाओं को मारना वर्जित है। लेकिन फिर भी शिकारी ऐसे नियमों को ताक पर रखकर असंख्य सील प्रतिवर्ष मारते ही रहते हैं।

मनुष्य के अतिरिक्त, ह्वेल, ध्रुव-प्रदेश का रीछ तथा समुद्री घोड़ा भी इसके प्रमुख शत्रु हैं। खूनी ह्वेल तो पाँच-छह फुटके सीलको पूरा ही निगल जाता है। ध्रुवीय रीछ बर्फ की विशाल शिलाखण्डों पर चुपचाप दुबककर इसकी टोह में बैठा रहता है और जैसे ही सील को देखता है उसे अपने पैने पंजों से धर पकड़ता है। बर्फ की शिलाखण्डों के नीचे से सांस लेने के लिए जब यह अपने दांत अथवा पंजों से उनमें दरार बनाने का प्रयत्न करता है, तो इसके पंजे और दांत टूट जाते हैं। कभी-कभी इसकी चमड़ी भी छिल जाती है। इससे इनके शरीर में एक ऐसा भयानक रोग प्रवेश कर लेता है जो सारे शरीर में फैलकर इनकी मौत का कारण बन जाता है।

स्तनपायी होने पर भी सील मांसभक्षी प्राणी है। केकड़ा घोंघा, सीप, तारक मछली एवं अन्य छोटे-मोटे असंख्य प्राणियों को ये साफ कर जाते हैं। लेकिन मांसाहारी होने पर भी वनस्पतियों से इन्हें परहेज नहीं है। समुद्र के तल अथवा किनारे पैदा होने वाली वनस्पति पर तो इसका हक है ही। विशाल चर्बी युक्त शरीर होने के कारण नर सील महीनों तक बिना भोजन के भी आसानी से रह सकता है।

सागर के अन्य प्राणियों की तरह सील भी हमारे लिए अभी तक रहस्यमय प्राणी है। सागर की विषम परिस्थितियों के कारण प्राणिशास्त्री अभी तक इसका पूर्ण अध्ययन कर सकने में सफल नहीं हुए हैं। अतः व्यावसायिक महत्त्व के साथ ही सागर के एक प्रमुख प्राणी के रूप में भी सील का महत्त्व कुछ कम नहीं है। ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पी-एच (pH)

सत्यकुमार

आज के युग में रसायन विज्ञान में और तदनुसार उद्योगों में पी-एच (pH) का बड़ा महत्त्व है। प्रायः पदार्थ अम्लीय, क्षारीय या उदासीन (लवण) होते हैं। सभी पदार्थ इन तीनों में से किसी न किसी श्रेणी में आ जाते हैं। पी-एच द्वारा हम इसी प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

किसी पदार्थ की अम्लता उसके विलयन में हाइड्रोजन आयनों की सान्द्रता पर निर्भर करती है। यदि विघटित होने में कोई विलयन अधिक हाइड्रोजन आयन देता है, तो वह दुर्बल आम्लिक है। इसी प्रकार क्षारीय प्रकृति हाइड्रोकिम्ल (OH) आयनों पर निर्भर करती है। जल उदासीन है, क्योंकि उसके एक अणु के विघटन में एक हाइड्रोजन एवं एक हाइड्रोकिम्ल आयन मिलता है। जल का आयनीकरण बहुत कम होता है। जल के ५५० अणुओं में एक अणु का आयनीकरण होता है।

$$H_2O \rightleftharpoons H^+ + OH^-$$

$$\text{या } \frac{[H^+]\,[OH^1]}{[H_2O]} = K \text{ (विघटन स्थिरांक)}$$

यदि सान्द्रता ग्राम आयतन प्रति लिटर में प्रदर्शित की जाये तो जल के आयनों का गुणनफल लगभग 1×10^{-14} आता है। जल में H^+ व OH^1 दोनों आयनों की संख्या बराबर होती है। अतः हम कह सकते हैं कि जल में प्रत्येक आयन 1×10^{-7} ग्राम प्रति लिटर है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि यदि किसी विलयन में हाइड्रोजन आयनों की सान्द्रता 10^{-7} से अधिक होगी तो कोई भी विलयन अम्लीय होगा और यदि कम होगी तो क्षारीय होगा। इसी आधार पर pH मापदण्ड बनाया गया है।

अम्लीय विलयन	$[H^+]$	10^{-0}	10^{-1}	10^{-2}	10^{-3}	10^{-4}	10^{-5}	10^{-6}
	pH	0	1	2	3	4	5	6
क्षारीय विलयन	$[OH^1]$	10^{-8}	10^{-9}	10^{-10}	10^{-11}	10^{-12}	10^{-13}	10^{-14}
	pH	8	9	10	11	12	13	14

pH शून्य से pH6 तक अम्लीयता रहती हैं। pH 7 उदासीनता का प्रतीक है। pH8 से 14 तक क्षारीयता है; अर्थात् किसी विलयन का pH उस विलयन की हाइड्रोजन आयन सान्द्रता के व्युतक्रम के लघुक (log) के बराबर होता है।

$$pH = -\log (H^+)$$

यह तो हुई pH की तकनीकी बात। अब जरा व्यवहारिक पहलू ले लीजिये। अच्छी भूमि के लिए pH 7 के लगभग होना चाहिए। कम होने से अर्थात् अम्लीयता बढ़ने से मिट्टी की संरन्ध्रता कम हो जाती है, मिट्टी में वायु का प्रसरण कम हो जाता है। फलतः केंचुए इत्यादि भूमि को संरन्ध्र रखनेवाले जीव जीवित नहीं रहते।

इसके विपरीत, क्षारीयता बढ़ने से मिट्टी के कण बारीक हो जाते हैं। इससे पर्याप्त मिट्टी बहकर एवं उड़कर नष्ट हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौधों की भूमि से पोषक तत्त्वों की प्राप्ति pH पर बहुत निर्भर करती है। भूमि के pH से ही पौधों के रोग सम्बन्धित हैं। अम्लीय भूमि में पौधों की जड़ें पतली हो जाती हैं और पनप नहीं पातीं।

क्या कहा, तबीयत खराब है? खट्टी डकारें आ रही हैं? घबराइये नहीं। आमाशय का pH कम हो गया है। अम्लीयता बढ़ गई है। कोई ऐसी दवा लीजिये कि अम्लीयता कम हो, क्षारीयता बढ़े।

कठोर पानी को कोमल बनाने में कैल्सियम कार्बोनेट pH 9·4 पर अवक्षिप्त होता है। मैग्नीशियम हाइड्रोक्साइड pH 10·6 पर अवक्षिप्त होता है।

तैरने के तालाब का जल pH 7·2 तथा 7·6 के बीच होना चाहिये। पानी के नल भूमिगत ले जाने में उनका क्षरण भूमि के pH पर निर्भर करता है।

गन्दे नालों का pH उपयुक्त करके गन्दगी को अवक्षिप्त कर दिया जाता है।

शक्कर बनने के अन्तर्गत कार्बोनीकरण स्तंभ में pH 10 8 से 11·6 तक होना चाहिये। सल्फाइटीकरण वाले स्तंभ में pH 7·0 से 7·5 तक रहना चाहिये और चूना मिलाये जाने से पहले pH 4·7 से 5·3 तक होना चाहिये।

जिलेटिन के अनेक उपयोग हैं। छोटे बच्चों के भोजन में प्रयुक्त जिलेटिन का pH 6·0, आइसक्रीम के लिये pH 6·3, फोटोग्राफी में फिल्म इत्यादि बनाने के लिये जिलेटिन का pH 5·0 से 6·0 तक और अन्य साधारण व्यवसायिक कामों के लिये 3·0; 4·0 pH पर जिलेटिन श्रेष्ठ परिणाम देता है।

सरेस की अधिकतम चिपकने की शक्ति pH 7·0 के आसपास होती है। चमड़ा उद्योग में चमड़े से बाल अलग करते समय द्रव का pH 12·3 होना चाहिये।

ऊन और सिल्क रंगने के लिए pH क्रमशः 4·8 एवं 3·8 होना चाहिये। सूती कपड़े के लिये 11 से 13 pH तक ठीक है।

सफेद सूती कपड़ा धोने के लिये pH 11·0 के आसपास होना चाहिये। रंगीन कपड़ा धोने के लिये pH 9·6, ऊनी कपड़ों के लिये 10·0 तथा रेशमी कपड़ों के लिये pH 9·2 होना चाहिये।

रसोई के बर्तनों से चिकनाई इत्यादि छुड़ाने के लिये 9·10 pH का विलयन पर्याप्त है, किन्तु धातुओं के बड़े सामान अलमारी, साईकिल इत्यादि के लिये 12·0 से 13·0 तक होना चाहिये।

स्नान करने के साबुन का pH 10·0 के लगभग होना चाहिये।

कागज उद्योग में pH का विशिष्ट महत्त्व है। अम्लीय कागज जल्दी खराब होने लगता है। कागज का pH साधारणतः 7·0 के आस-पास होना चाहिये।

विद्युत-रंजन में एक धातु की दूसरे पर पालिश, विद्युत की धारा तथा धातु की मात्रा आदि पर निर्भर करती है। वहाँ भी विद्युत-विच्छेदक विलयन का pH संयमित रखा जाना चाहिये। ताँबे की पालिश बहुत अम्लीय pH शून्य से नीचे विलयन में होती है। निकेल की पालिश pH 5·2; 6·2 तक श्रेष्ठ होती है। जस्ते की पालिश के लिये यदि विलयन में एल्यूमीनियम उपस्थित है तो pH 3·4; 4·4 अन्यथा 5·0; 5·5 होना चाहिये।

5·8 pH के ऊपर के विलयन द्वारा एल्यूमीनियम का संक्षरण नहीं होता। इसी लिये दूध के लिये प्रायः एल्युमीनियम के बर्तनों का प्रयोग किया जाता है। दूध का pH 6·5; 6·7, क्रीम का 6·60; 6·61, मक्खन का 5·99; 6.0 मट्ठा या छाछ का 4·30; 4·31 आइसक्रीम का 6·61; 6·62 पनीर का 4·90; 4·94 होता है।

हाल के पिसे आटे का pH 6·0; 6·2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। खमीर उठाने में pH 4·8 से 7·2 तक होना चाहिए। pH का स्वामी के आविष्कार से ही काम नहीं चल जाता। उसको बनाकर स्थायी, सुरक्षित रखे रहना भी रसायन का उत्तरदायित्व है।

मिट्टी और चीनी के बर्तन आदि के उद्योग में उपयुक्त pH रखने से अपार हानि बच जाती है।

रंगाई एवं छपाई के उद्योग में तो जरा-सा pH बदलने से रंग बदल जाता है। तैयार कपड़े बनाकर बेचनेवाले इस सिल-सिले में लाखों का घाटा उठा चुके हैं। वहाँ मशीनों द्वारा कमीज का कालर, तीरा, जेब, आगा, पीछा, आस्तीन, कफ अलग-अलग जगह बनकर फिर एक जगह इकट्ठे सिल जाते हैं। कालर और कफ में कलफ (स्टार्च) लगाया जाता है जिससे pH में परिवर्तन होता है और जब पूरी कमीज जुड़ी तो कालर और कफ अलग रंग के दीखते हैं। यों, कपड़ा एक ही लिया गया, किन्तु pH की मात्रा भिन्न हो गयी।

रासायनिक विश्लेषण में pH घटाने-बढ़ाने से अद्‌भुत चमत्कार नजर आते हैं। आज के युग में कोई ऐसा क्षेत्र नहीं जहाँ pH का महत्त्व न हो।

जब कभी आप खट्टे मीठे बेर, आम या सेब या अन्य फल आप चखते हैं। उनके अन्दर हो रही क्रियाओं के फलस्वरूप उनका स्वाद खट्टा या मीठा होता है। शहद 5·3 pH पर अत्यन्त सुस्वादु होता है।

डिब्बों में बन्द खाद्य पदार्थों को कीटाणु-मुक्त रखने के लिए pH 3·0 ; 4·5 उत्तम है।

ओषधियों का अपना pH होता है। उसी pH पर वे हितकर एवं गुणकारी होती हैं। रखे रहने पर भी उनका वही pH बना रहना चाहिए। पेनिसिलीन 5·5; 7·0

२१२ वर्ष पुरानी पतंगबाजी, नये रूप में

बेन्जामिन फ्रेंन्कलिन ने १७५२ में पतंग उड़ायी और बिजली का ज्ञान सर्वप्रथम संसार को देने का नाम कमा लिया। अब अमरीका की एयरफोर्स रीसर्च लेबोरेटरीज के वैज्ञानिकों ने जो योजना बनायी है, उसके अनुसार वे आकाश में ३०,००९ फुट की ऊँचाई तक ऐसे राकेट दागेंगे जो बिजली कड़काते बादलों से टकरायेंगे। उन राकेटों के पुच्छ भाग से लगा पतला, किन्तु अत्यन्त मजबूत स्टील का तार रील से खुलता जायगा जिसका सिरा धरती पर ही रहेगा। उस तार को प्रथम माध्यम बनाती हुई आकाशीय बिजली धरती पर उतरेगी और साथ ही, वह तार धुआँ बनकर उड़ जायगा। तब उसका स्थान एक आयनीकृत ऐसी रेखा ले लेगी जो तत्पश्चात् की बिजलियों को निर्बाध रूप से धरती पर भेजती रहेगी। यों, आकाशीय बिजली को धरती पर प्रयोगशाला में प्राप्त करके अर्थात् बेन्जामिन फ्रेंन्कलिन के प्रयोग को चाहे जितनी बार दोहराकर, उसकी संरचना का सूक्ष्म अवलोकन किया जा सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

मछुए का मछली से मल्लयुद्ध

पुर्तगाल के मछुए एक बात में बड़े विकट हैं। साधारणतया तो वे जाल द्वारा मछलियाँ पकड़ते ही हैं, किन्तु ट्यूना (Tuna) नामक मछली का शिकार तो मानो उन्हीं के बस की बात है। ६०० पौंड की वह भारी-भरकम मछली प्रायः ही कैसे भी मजबूत जाल से छूट निकलती है। तब मछुआ उसके पीछे ही पीछे पानी में कूद पड़ता है। दोनों का मल्लयुद्ध बड़ी देर तक चलता है। वे लोग बाजी को बीच में छोड़ना नहीं जानते और फैसला करके रहते हैं। फैसले में एक न एक को अपनी जान देनी पड़ती है। अधिकतर जीत मछुए की ही रहती है।

ये मदारी-महिलाएँ

दक्षिण-पश्चिमी एशिया में महिला-मदारियों की एक जाति बड़ी विचित्र है। अन्य मदारियों की भाँति वे सर्प को वश में करने के लिए बीन आदि संगीत का उपयोग नहीं करतीं। वे एक विशेष ध्वनि में कानाफूसी करती हैं जो कैसे भी सर्प को विवश कर देने के लिए काफी है। उनका विश्वास है कि सर्प ने ही अपनी कानाफूसी से आदम और हव्वा को बहकाया था जिसके फलस्वरूप उन्हें स्वर्गोद्यान से बाहर निकाला गया था।

और, तलाक हो गया

अफ्रीका की बाबिंरा जाति में तलाक प्राप्त करने का बड़ा सरल उपाय है। उन्हें किसी कोर्ट या पंचों की पंचायत में पड़ने की आवश्यकता नहीं। केवल इतना ही पर्याप्त है कि जिसे तलाक देना हो उसकी चौखट के आगे एक तेल भरा पात्र; दो खाली बर्तन और एक लाठी रख दी जाए। बस, हो गया तलाक!

फैशन में इनका भी हिस्सा है

डेन्मार्क के सम्राट, किंग क्रिश्चियन चतुर्थ (१५८८-१६४८) की महारानी की यह कहानी है। उसके सिर की पीड़ा वर्षों से उसे कष्ट देती रही थी। उसके कारण उसके लम्बे केश न तो काटे जा सकते थे, ना ही भारी जूड़े के रूप में सहारे जा सकते थे। अतः हार कर उसने पतली-पतली दो चोटियों के रूप में उन्हें गूंथ लिया और सिरे पर रंगीन फीते टाँक दिये। उसके इस ढंग को तत्कालीन महिला समाज ने एक फैशन के रूप में अपना लिया। अतः आज के फैशन के श्रेय का भागी उसे भी माना जाता है।

मन की ये अमाप गहराइयाँ

मन की थाह पाना, महासागर के अतल तल में डुबकी लगाना जैसा ही है। सम्मोहन विद्या (हिप्नोटिज्म) इस क्षेत्र में आश्चर्यजनक चमत्कार प्रस्तुत करती रही है। ऐसे एक उदाहरणस्वरूप, इंगलैण्ड के एक १२ वर्षीय किशोर, जोन रशफोर्ड का उल्लेख मिलता है। टिमौथी क्राउथर नामक एक सम्मोहन-विशेषज्ञ ने इस बालक को सम्मोहित करके एक दर्पण में झाँकने को कहा। बालक ने दर्पण में देखा कि इंगलैंड के प्रसिद्ध नागरिक, ज्हान सिम्सन को उनकी कोयले की खान के दो मजदूरों ने घेरा, कत्ल किया और खान के निकट ही एक कोने में लाश को गाड़ दिया।

८-१० वर्षों के विफल परिश्रम किये हुए वहाँ के पुलिस विभाग को यह सूत्र दिया गया। इसी के आधार पर उन्होंने मृतक की लाश खोज निकाली और अपराधियों को भी पकड़कर फाँसी के फन्दे पर झुला दिया!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब दौलत बरसी थी

सही अर्थ में दौलत बरसी थी। ४८ घण्टे तक बिना रुके बरसी थी। लोगों ने लूटी भी खूब थी। वे दो दिन थे, बगदाद के खलीफा और उनके प्रधान मन्त्री की कन्या के परस्पर विवाह के। नवीं शताब्दी के आरम्भ की यह बात है। विवाह-मण्डप में एकत्र हुए आमंत्रित जनों को पूरे दो दिन आवभगत में ठहराया गया था। उन ४८ घण्टों तक मण्डप की छत में रखे गये सुराखों से स्वर्ण मुद्राएं बरसायी गयी थीं।

उस बरसी हुई दौलत का अनुमानित मूल्य केवल छह करोड़ रुपये था!

ज्वालामुखी से पानी की बाढ़

द. अमरीका के इक्वेडोर में कोटोपेक्सी नामक ज्वालामुखी बड़ा विचित्र है। लगभग पौने चार मील ऊँचा यह ज्वालामुखी जब विस्फोट करता है, तब दूसरों की भांति लावा, धुआँ, धूल आदि का तूफान खड़ा नहीं करता। लावा की एक पतली सतह जैसी ही बिछा देता है। वह सतह समुद्र की लहरों पर होती हुई विशाल हिम-नदों तक पहुँच जाती है। वे हिम-नद उस अत्यन्त तप्त लावा के प्रभाव से अत्यधिक मात्रा में पिघल जाते हैं। वह पिघली हुई बर्फ विनाशकारी बाढ़ के रूप में उफनाती हुई,अपनी चपेट में आने वाले क्षेत्र में जल-प्रलय का दृश्य उपस्थित कर देती है।

दौलत ने पुकारा

दौलत ने सपने में पुकारा और सपना सच हो गया। वह भाग्यवान था, इंगलैण्ड के स्वाफाम गाँव का एक फेरी वाला। उस गरीब ने एक रात सपना देखा कि लन्दन तक जाने-आने की यात्रा उसकी गरीबी को एक सपना कर देगी। उसे गड़ी दौलत मिलेगी। कभी न देखे हुए लन्दन की ओर वह चल पड़ा। नये-नये मोड़ पर उसे रास्ता तो पूछना ही पड़ता था।

उसके पढ़ने में और दौलत की खोज बाबत सुनने से चिढ़ा हुआ एक व्यक्ति उससे बोल उठा—किस चक्कर में पड़ गये? सपने को ही सच मानता तो मैं ही न स्वाफाम गाँव के ज्हान चैपमेन के घर पहुँच जाता? सपना मैंने भी देखा था कि उसके घर के पिछवाड़े दौलत गड़ी पड़ी है। सपनों का क्या?

चैपमेन वह फेरी वाला स्वयं ही था। चुपचाप उसने घर का रास्ता लिया। आधी रात को घर का पिछवाड़ा खोदा तो उसमें दो घड़े सोने की मुद्राएं भरी मिलीं।

सपना आखिर, सच हो ही गया!

आग में कूदती है, जान देने नहीं, लेने के लिए

मलाया तथा आस्ट्रेलिया में पायी जाने वाली रेड काइट, वह चील है जिसकी पीठ लाल होने के कारण उसे यह नाम दिया गया है। सूखे जंगलों की आग, अर्थात् बडवानल से जहाँ समस्त जीवों में भगदड़ मच जाती है और हर कोई अपनी जान बचाने के लिए भाग निकलता है, वहाँ यह चील उलटे आग में झपट-झपटकर कूदती है और जान बचाकर भागने वालों में से अपने शिकार खोज-खोजकर ले उड़ती है।

भूकम्प का आशीर्वाद और नवसृजन

सान्ता केटेरीना का रेगिस्तान (दक्षिणी केलीफोर्निया में) और १९५६ के ९ फरवरी की सुबह। उस घड़ी जो प्रबल भूकम्प आया, वह हजारों, लाखों में अकेला एक ऐसा था जो उस रेगिस्तान के लिए आशीर्वादक सिद्ध हुआ और उससे पूर्व, पानी के घोर अभाव में मस्त, उस मरुधरा के अन्तस्तल को भेदकर एक ऐसा जल-प्रपात बाहर निकाल गया जिसने उस विस्तार को लहलहाते खेतों में बदलकर, वहाँ के रहने वालों का दुर्भाग्य, एक बड़े सौभाग्य में बदल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-क्लब

प्यारे बच्चो !

दीपावली की मेरी शुभकामनाओं सहित यह नवम्बर अंक तुम्हारे पास पहुँच रहा है। इस अंक में कहाँ, क्या, कितना पसन्द आया, यह तुम्हारे पत्र ही मुझसे आकर कहेंगे।

अभी तो अक्टूबर अंक पर आयी हुई तुम्हारी सम्मतियाँ मेरे सामने हैं। संगरिया से सुभाषचन्द्र कथूरिया (१२१८३) तथा जुगसलाई से एच.ए. तारिक ने **लन्दन से टोकियो ६० मिनट में** तथा **मरुस्थल के प्राणी** लेखों को विशेष पसन्द किया लिखा है। इसी प्रकार गोरखपुर से अल्मूयचरण(६०४६)ने**ट्रांजिस्टर** तथा कलकत्ता से कु. रूपज्योति (६४११) ने **विद्युत गणक** लेखों को सराहा है और इनकी क्रियाविधि पर प्रकाश फेंकने योग्य और भी लेख देते रहने का आग्रह किया है।

एक उल्लेखनीय पत्र श्रीगंगानगर (राजस्थान) के आर्य हायर से. स्कूल के विज्ञान-क्लब का भी मेरे सामने है। लिखा है, आगामी जनवरी (१९६५) में वह क्लब एक विज्ञान-प्रदर्शनी का आयोजन करने जा रहा है। साथ ही, तत्सम्बन्धी कुछ उपयोगी सुझाव भी आमन्त्रित किये हैं। मेरी दृष्टि से यह एक अत्यन्त उपयोगी और अनुकरणीय आयोजन हो सकता है। प्रयोगों के प्रदर्शनकर्ताओं को मेरा एक ही नम्र सुझाव है कि वे इसे अवश्य लक्ष्य में रखें कि बदले हुए समय, विज्ञान की प्रगतियाँ तथा राष्ट्र की आवश्यकताएँ देखते हुए आयोजन ऐसे रखें जो केवल नगण्य मनोरंजन तक सीमित न रहें और कुछ न कुछ सक्रियता का बोध करायें उदाहरणार्थ, अन्तरग्रहीय यात्राएं आज का सुर्खीभरा विषय है। अतः ग्रहों के बारे में अधिक विस्तृत जानकारी राकेट, अन्तरिक्ष-परिधान, यात्रा के साधन तथा रासायनिक ईंधन, आदि विवरण विदेशी पत्रिकाओं, पुस्तकों, मानचित्रों तथा संभव हो तो डाक्यूमेण्टरी फिल्मों द्वारा भी छात्रों के आगे रखें। अवश्य, इसमें सफलता की मात्रा साधनों की प्राप्ति पर ही निर्भर रहेगी।

अन्य शाखा-क्लबों के लिए ऐसी प्रदर्शनी अनुकरणीय रहेगी।

सस्नेह तुम्हारी
कृष्णा दीदी

प्रतियोगिता संख्या ५६ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

कृष्णसिंह पुण्डीर (१२८६) नगला पिथौरा, सुधीरकुमार राठौर (१६१६) आगरा, अशोक गुप्ता (२७०१) बहराइच, मंजू गुप्ता (७२६०) बहराइच, शशीकान्त गुप्ता (१०६६४) आगरा।

द्वितीय पुरस्कार

भुवनेश्वर गुप्ता (६१४) आगरा, प्रमोदकुमार शर्मा (११८५) इलाहाबाद, वीरेन्द्र श्रीवास्तव (३४२६) इलाहाबाद, शैलेन्द्र पाराशर (४७१८) आगरा, पुरुषोत्तमकुमार सूरी (७३४१) जगदलपुर, सतीशचन्द्र मिश्रा (१००४६) मेरठ, आलोक अदावाल (१०७६०) इलाहाबाद, राधेश्याम शर्मा (११२६५) मेरठ, सत्येन्द्रकुमार चौधरी (१२२६५) पाकुड, सच्चिदानन्द श्रीवास्तव (१२५६६) पाकुड, अरुण कुमार (१३०३२) मेरठ।

तृतीय पुरस्कार

अशोककुमार माधुर (४४५) सिरोही, अक्षय कुमार इन्द्रायण (५०६१) मेरठ, रवीन्द्रकुमार शर्मा (६३५६) लखनऊ, ओमप्रकाश पाटनी (६४२७) कलकत्ता, कु० गीता बेनेगल (६७२२) देहरादून, बृजेश अस्थाना (६६३५) उरई, नरेशकुमार मजीठिया (७५५६) अमृतसर, कुलदीपकुमार भट्ट (८५८१) आगरा, हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१) कानपुर, जावेद असगर (११६८३) रायपुर।

कृपया प्रतियोगिता संख्या ५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान वलब के नये सदस्य

नरोत्तमनाथ
(स. सं. २७८७)

ए. के. अग्रवाल
(स. सं. ४३२२)

राजेश्वरप्रसाद
(स. सं. ४८५७)

विनोदकुमार
(स. सं. ७२४०)

९४२५ कृष्णमुरारी (१४) अजमेर, २६ विनय (१३) वाराणसी, २७ सुरेशप्रसाद (१६) आरा, २८ काशीप्रसाद (१४) साहबगंज, २९ जसवन्त (१५) इन्दौर, ३० जगत वन्दनप्रसाद (१४) सत्संग, ३१ अरुणकुमार (१४) हरदा, ३२ राधेश्याम (१६) ढ्यावर ३३ सुरेन्द्रप्रसाद (१५) देवरिया, ३४ अंचलकुमार (९) दहिआँवा, ३५ सुरेश (१८) वरुड़, ३६ अतिनकुमार (१६) किशनगंज, ३७ कु. चन्द्रकांता (२०) जोधपुर, ३८ कु. किरन (१२) अलीगढ़, ३९ राजेन्द्रप्रकाश (१४) गोरखपुर, ४० आर. एस. (१७) पिपरिया, ४१ मालेश्वरप्रसाद (१७) रतैठा, ४२ अशोककुमार (१४) रामनगर, ४३ तेजकरन (१५) सरदार शहर, ४४ मदनलाल (१६) मुवा, ४५ प्रफुल्लकुमार (२५) आगरा, ४६ अरुणकुमार (१६) बलिया, ४७ एम. चन्द्रशेखर (१६) वाराणसी, ४८ सतीशचन्द्र (१२) छिन्दवाड़ा, ४९ रमेशकुमार (१४) आगरा, ५० प्रदीपकुमार (१६) उदयपुर, ५१ महेन्द्रप्रसाद (१७) पिन्डवारा, ५२ वेदप्रकाश (१६) विशेसरगंज, ५३ रामलाल (१३) विलासपुर, ५४ कृष्णकुमार (१४) विलासपुर, ५५ महेन्द्रसिंह (१५) विलासपुर, ५६ कु. रीता (१४) ग्वालियर, ५७ राकेशकुमार (१३) ग्वालियर, ५८ कु. मंजू रानी (१२) झांसी, ५९ चन्द्रकान्त (१७) लश्कर, ६० विजयकुमार (१३) अमृतसर, ६१ कैलाशचन्द्र (२२) भीलवाड़ा, ६२ खीमाराम (१६) झाडोली, ६३ स्वतन्त्रकुमार (१५) फारबिसगंज, ६४ रमेशचन्द्र (१८) मिर्जापुर, ६५ मारकण्डेय (१४) बढ़या चौक, ६६ भगवानप्रसाद (१५) गोरखपुर, ६७ चन्द्रभूषण (१६) भाटपारा रानी, ६८ पपीन्द्रकुमार (१०) भीलवाड़ा, ६९ कुलदीप नारायण (१२) काशीपुर, ७० दिनेशचन्द्र (१६) भागलपुर, ७१ तानाजी (१७) हिंदके, ७२ हरीशरन (१६) बड़ौदा, ७३ विलास परशुराम (१७) इचलकरजी, ७४ यशवंत (१८) मिठबाव, ७५ कु. जया (१४) कोलहापुर, ७६ अर्जुन राय (१०) निमेज, ७७ अरुणकुमार (१५) बरेली, ७८ राजेन्द्रकुमार (१५) इन्दौर, ७९ मुखतार अहमद (१७) इलाहाबाद, ८० रमनलाल (१५) जगदलपुर, ८१ मणीशंकर (१५) सागर, ८२ बलबीर सिंह (१२) रायपुर, ८३ भवानीशंकर (१३) पूसा, ८४ कु. पुष्पा (१३) मथुरा, ८५ जमील अहमद (१५) बस्ती, ८६ अजयकुमार (७) घनबाद, ८७ रतनसिंह (१५) मेरठ, ८८ नरेन्द्रप्रसाद (१३) दलसिंह सराय, ८९ कृष्णराज (१२) मैसूर स्टेट, ९० जगदीश (१७) दिल्ली, ९१ नीलरतन (१४) रामदयालगंज, ९२ सुरेश-चन्द्र (१७) मुरादनगर, ९३ जयेशकुमार (१३) बिहार, ९४ बालकृष्ण (१६) शिवपुरी, ९५ विजयकुमार (१५) दरूआरा, ९६ बद्रीसिंह (१७) अहेरीपुर, ९७ केवलचन्द्र (१६) बम्बई, ९८ विमलादेवी (१२) जयपुर, ९९ सम्पतराज (१६) बम्बई, ९५०० रामानन्द (१२) आगरा, १ सुशीलकुमार (१४) प्रेमनगर, २ नूरमोहम्मद (१५) बांधाबाजार, ३ अशोककुमार (१३) इलाहाबाद, ४ अरुण (१५) इलाहाबाद, ५ पवनकुमार (१६) गंगानगर, ६ हमेशचन्द्र (१६) आगरा, ७ त्रिलोचनसिंह (१७) मुरादनगर, ८ सुरेश दत्त (१७) जबलपुर, ९ अशोककुमार (१५) रायबरेली, १० विजयप्रताप सिंह (१७) भानपुर, ११ प्रीतमसिंह (१८) राजनन्दगांव, १२ कु. कमला (१५) अजमेर, १३

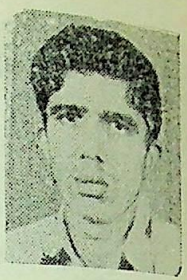

एम.एच. कीकाणी
(स. सं. ७४२२)

वृजेश्वरलाल
(स. सं. ७८५८)

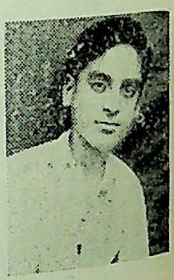

विजयमोहन
(स. सं. ७९६०)

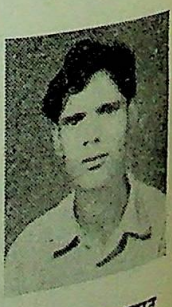

सत्यनरायनप्रसाद
(स. सं. ९०५८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेमचन्द्र जोशी
(स. सं. ९११३)

विजयकुमार
(स. सं. ९६३२)

श्यामसुन्दर
(स. सं. ९७६८)

भुलभुलिया
(स.सं. १०६७३)

रामाशंकर (१८) औसई, १४ कु. पुष्पा (१३) पियारागढ़, १५ ओमप्रकाश (२०) मेरठ, १६ अमरकुमार (१५) कानपुर, १७ रामलाल (१४) आलिराजपुर, १८ रमेशचन्द्र (१७) हरदोई, १९ प्रभाशंकर (१६) होशंगाबाद, २० किशोरकुमार (१६) सिओन्धा, २१ तवारकहुसैन (१७) मदनगंज, २२ कमलचन्द (१७) इन्दौर, २३ देवेन्द्रकुमार (१६) इन्दौर, २४ अनंत महिपतराव (१४) शिवपुरी, २५ शमशाद हुसैन (१५) इलाहाबाद, २६ कु. उमादेवी (९) आगरा, २७ गंगाविशन (१५) ब्यावर, २८ द्वारकास्वरूप (१२) सिरोही, २९ राधेलाल (१८) डूंगरगढ़, ३० कंचनकुमारी (१७) झुमरी तलैया, ३१ कृष्णचन्द्र (१८) मन्दसौर, ३२ वालेश्वरकुमार (१४) बक्सर, ३३ नन्दकिशोर (१७) धमतरी, ३४ रमेशकुमार (१५) सिवान, ३५ चन्द्रनाथ (१४) रायपुर, ३६ उमाशंकर (१२) नेतरहाट, ३७ कृष्ण मोहन (१०) नेतरहाट, ३८ श्यामाचरन (१६) आजमगढ़, ३९ विनयकुमार (११) जवलपुर, ४० जगदीशचन्द्र (१७) रणोली, ४१ श्रीप्रकाश (१५) थानेसर, ४२ मोहन (१८) पूना, ४३ निरंजन (१७) तुलसीपुर, ४४ चन्द्रमोहन (१३) बीकानेर, ४५ विजयकुमार (१६) लकसर, ४६ प्रकाशचन्द्र (१७) उदयपुर, ४७ मुरली मनोहर (१२) नेतरहाट, ४८ बालकृष्ण (१५) सागर, ४९ पदमचन्द (१३) अजमेर, ५० विजयलक्ष्मी (१०) अजमेर, ५१ देवकीनन्दन (१४) कलकत्ता, ५२ हीरालाल (१४) कलकत्ता, ५३ देशप्रिया (१४) कलकत्ता, ५४ अजीतकुमार (१४) सागर, ५५ अशोककुमार (१८) कानपुर, ५६ अश्विनीकुमार (१२) वाराणसी, ५७ राजीव रंजन (७) दावाँ, ५८ सुरेशचन्द्र (१४) कुरवाई, ५९ दानमल (१५) डूंगरगढ़, ६० राजकुमार (१५) चुरू, ६१ नरेन्द्रप्रसाद (१४) इच्छावर, ६२ बलदाऊजी (१५) वनपुरा, ६३ अशीशकुमार (११) लहेरिया सराय, ६४ सुरेशकुमार (१६) मुरादाबाद, ६५ विनोदकुमार (१५) मुण्डावा, ६६ पवनकुमार (९) आगरा, ६७ विजयकुमार (१९) अकोला, ६८ सतीशकुमार (१५) गाजियाबाद, ६९ जसविन्दरसिंह (१६) नई दिल्ली, ७० कु. अहिल्या (१६) भाटापारा, ७१ रवीन्द्रनारायण (१४) सिहोर, ७२ कृष्णकुमार (१५) सीतामढ़ी, ७३ संतोषकुमार (१२) आगरा, ७४ कृष्णकुमार (१६) रहूई, ७५ तारकेश्वर (१३) गया, ७६ बल्देव (१६) हरदा, ७७ चिमनलाल (१५) जबलपुर, ७८ देवकृष्ण (१३) हनुमानगढ़, ७९ गोविन्दराम (१६) कुरुक्षेत्र, ८० प्रेमकुमार (१२) आगरा, ८१ प्रेमप्रसाद (१३) बीकानेर, ८२ रणजीतसिंह (१४) बीकानेर, ८३ अशीमकुमार (१३) मथुरा, ८४ राजेन्द्रसिंह (१७) बड़ौत, ८५ द्वारिका (१५) कंचनपुर, ८६ दिवाकर (१४) कानपुर, ८७ जितेन्द्र बक्स (१६) सिंगावर, ८८ मदनलाल (१५) ऐरा स्टेट, ८९ अर्जुनप्रसाद (१९) गया, ९० भीखालाल (२२) शाहपुर, ९१ सुरेशकुमार (१८) राजकोट, ९२ महेशचन्द्र (१५) गंगानगर, ९३ इम्बेसान (१२) नेतरहाट, ९४, यदुनंदन सिंह (२४) अजगरहा, ९५ शंभुप्रसाद (१५) नेतरहाट, ९६ सुरेन्द्रकुमार (१२) झांसी, ९७ ओमप्रकाश (१४) वाराणसी, ९८ अवधेशकुमार (१४) नेतरहाट, ९९ जगदीशनारायण (१३) नेतरहाट, ९६०० गोपाललाल (१६) सांभर लक, १ सतीशचन्द्र (१७) सरसावा, २ तेजभान (१८) गान्धीधाम, ३ सतीशकुमार (१७) खुरई, ४ यतीन्द्रनाथ (१३) भागलपुर।

कैलाशनरायन
(स.सं. १०८२०)

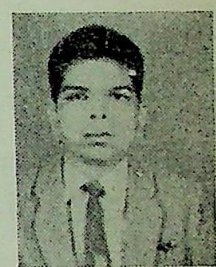

नवीनचन्द्र
(स.सं. १०९८२)

देवेन्द्रकुमार
(स.सं. ११५६३)

जगदीशकुमार
(स.सं. १२६२४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक साथ चलो—
मिलजुल कर काम करो !

"देश के अलग अलग भागों में रहने वाले लोगों की धारणाएं कुछ खास मामलों में चाहे जितनी भी दृढ़ हों, उन्हें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वे पहले भारतीय हैं, और यह कि उन्हें अपने सभी विवादों का हल एक राष्ट्र और एक देश के अपरिवर्तनीय ढांचे में रहकर ही करना है। आइए, हम इस एकता की भावना को दिलों में जगह देने की पूरी कोशिश करें और राष्ट्रीय एकता को मजबूत बनाएं।"

—लालबहादुर शास्त्री
प्रधान मंत्री

एक शक्तिशाली भारत के निर्माण का हमारा लक्ष्य साफ और सीधा है जिसमें सभी की समृद्धि हो और आजादी बनी रहे।

एक राष्ट्र के रूप में हम साहस, दृढ़ संकल्प और सद्भाव व उदारता के साथ मिलजुल कर काम करें और आगे बढ़ें।

जय हिन्द

आजादी की रक्षा के लिए एकता बनाए रखिए।

डीए १४/फ्रंट ७

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : १५ दिसम्बर

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ५३ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्द कर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५८ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर १५ दिसम्बर तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५८ के प्रश्न

१. ऐलेक्ट्रान माइक्रोस्कोप के सिद्धान्त की खोज किसने की ?

२. एम्पायर स्टेट बिल्डिंग का शिखर अर्थात् एरियल कितना ऊँचा है और किस धातु का बनाया गया है ?

३. (Eka-boron) से क्या तात्पर्य है ? इसका संकेत सर्वप्रथम किसने दिया ?

४. बुफन (Buffon) का प्रयोग किस लिए किया जाता है ?

५. संसार प्रसिद्ध डरबी की घुड़दौड़ किस मैदान (कोर्स) पर की जाती है ?

६. दूध को दही बना देने में कौन-से बेक्टीरिया काम करते हैं और वे किस आकार के होते हैं ?

७. मोड़ पर मोटरकार के आगे-पीछे के पहियों की गति में अन्तर रहते हुए भी किस उपकरण द्वारा मोटर की चाल में बाधा नहीं आने पाती ?

८. वायुयान की गति ध्वनि की गति के समान हो या उससे अधिक, उसके माप के लिए कौनसा मान निर्धारित है और उसका एक मान कितने मील प्रति घण्टे के बराबर होता है ?

९. इंजन के परिचालक पहिये (driving wheels) माल गाड़ी के बड़े होते हैं या सवारी गाड़ी के और क्यों ?

१०. रैडार शब्द किन शब्दों के प्रथमाक्षरों से बना है ?

प्रतियोगिता संख्या ५६ के प्रश्नों के उत्तर

१. कार्बोनेट से मुक्त, सूखी रेत, रोड़ी तथा फरफुरियल रेजिन का मिश्रण होता है। केवल चार मिनट में ही ए. सी. विद्युतधारा का ताप पाकर यह अत्यन्त कठोर बन जाता है। यह जल-निरोधक तथा अग्नि-निरोधक तो है ही, इस पर अम्लों तथा क्षारों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

२. अप्सरा, स्थापित—४, अगस्त १९५६ को।

३. ३. ८ क्वार्ट।

४. धुरी की केवल कल्पना है। गुरुत्वाकर्षण के बल पर टिकी हुई है।

५. कारोनरी धमनी से प्राप्त रक्त पर।

६. ३ (×) (+) $1\frac{1}{2}$ तथा ४ (×) (+) $1\frac{1}{3}$ ।

७. गामा किरणें।

८. हरी पत्ती की भाजी, ताजा फल, नीबू तथा केले आदि द्वारा।

९. देवदार की श्रेणी के वृक्षों से। दक्षिण पूर्वीय संयुक्तराज्य, अमरीका इसका सबसे बड़ा उत्पादक है।

१०. जासेफ लिस्टर ने, कोलतार से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

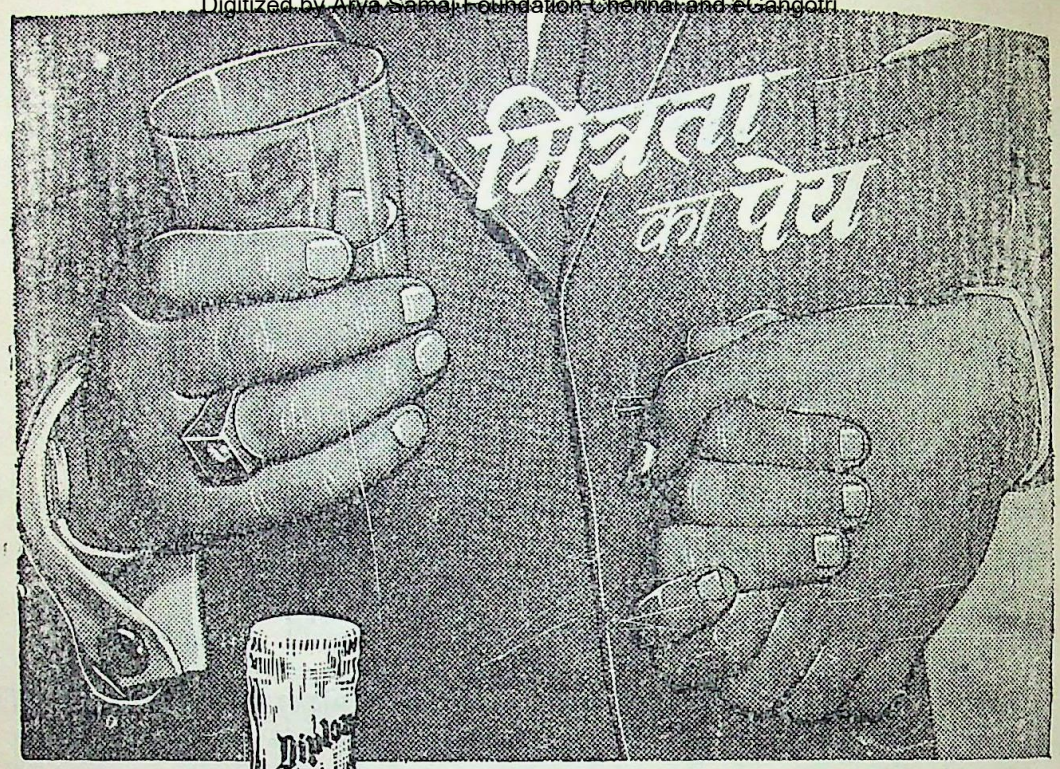
मित्रता
का पेय

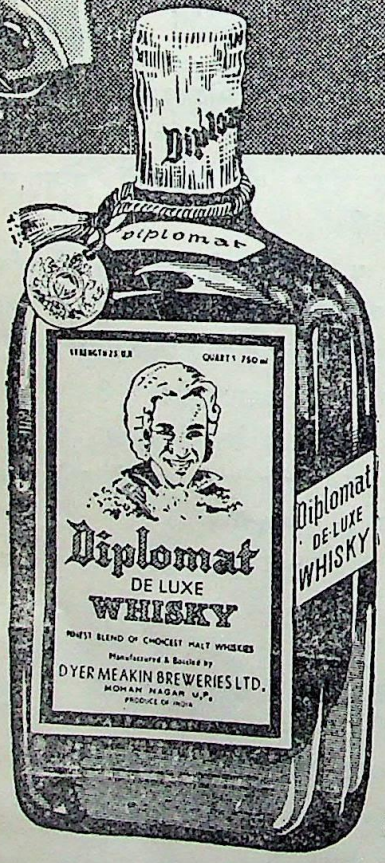

चिरस्थायी मित्रता प्राय:

उत्तम व्हिस्की

के गिलास से ही प्रारम्भ होती है

चतुर मेजबान सदैव "डिप्लोमैट" ही प्रस्तुत करते हैं क्योंकि यह अति उत्तम व्हिस्की है और विशिष्ट पार्टियों में आदर की दृष्टि से देखी जाती है। सभी ख्यातिप्राप्त होटलों, क्लबों और रेस्टोरेंटों की पय सूची में इसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

इसे पूर्ण विश्वास के साथ प्रस्तुत कीजिये और सानन्द पीजिये

डिप्लोमैट

डी लक्स व्हिस्की

डायर मीकिन के तहखानों में वर्षों रखने के उपरान्त चुनिन्दा माल्ट व्हिस्कियों का सर्वोत्तम सम्मिश्रण

डायर मीकिन ब्रुअरीज लिमिटेड

स्थापित १८५५

सोलन ब्रुअरी — लखनऊ डिस्टीलरी — कसौली डिस्टीलरी

मोहन नगर ब्रुअरी ऐन्ड एलाइड इन्डस्ट्रीज (यू० पी०)

शंताब्दी पुराना अनुभव विश्वास की गारण्टी है

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा के लिए प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH

WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- The series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : Re. 0·80
Book II.....Price : Re. 1·00
Book III.....Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रामबिहारीसिंह तोमर द्वारा लिखित

नवीन प्रकाशन

एम. ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान
२. ग्रामीण समाजशास्त्र
३. नागरिक समाजशास्त्र
४. हिन्दू विवाह एवं परिवार की समस्याएं
५. सामाजिक सूक्ष्मदर्शी : व्यैक्तिक अध्ययन प्रणाली
६. सामान्य समाजशास्त्र : समाज, संस्कृति तथा व्यक्तित्व
७. सामाजिक सिद्धान्त : व्यक्तित्व का समाजशास्त्रीय अध्ययन
८. व्यक्तित्व
९. भारतीय समाज, संस्कृति तथा संस्थाएं
१०. भारतीय संस्कृति के मूलाधार

बी. ए. कक्षाओं के लिए

१. सामाजिक मनोविज्ञान परिचय
२. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग १ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)
३. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग २ (आगरा, गुजरात, नागपुर, पटना, भागलपुर)
४. समाजशास्त्र के मूल तत्त्व भाग ३ (भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए)
५. समाजशास्त्र के सिद्धान्त (राजस्थान, जोधपुर, पंजाब, मुजफ्फरपुर)
६. सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब)
७. सामाजिक नियन्त्रण एवं सामाजिक परिवर्तन (लखनऊ, गोरखपुर, काशी, पंजाब, राँची)
८. समाजशास्त्र की प्रकृति एवं आधार (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
९. सामाजिक संरचना एवं सामाजिक गतिशास्त्र (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
१०. भारतीय जनता एवं संस्थाएं (आगरा, जबलपुर, भागलपुर)
११. भारतीय समाज एवं संस्कृति (विक्रम, इन्दौर, ग्वालियर)
१२. भारतीय सामाजिक व्यवस्था (लखनऊ, काशी, पंजाब)
१३. भारत की सामाजिक संस्थाएं (राजस्थान, जोधपुर)
१४. तुलनात्मक सामाजिक संस्थाएं (गोरखपुर)
१५. प्रारम्भिक ग्रामीण समाजशास्त्र

इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए

१. माध्यमिक समाजशास्त्र
२. भारतीय सामाजिक संगठन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

26·10·64
गुरुकुल कांगड़ी

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अन्दर पढ़िये

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिराड अवस्था की रंगीनियां ३
—कुमारी प्रमिला

माटी की महिमा ११
—प्रेमनरायन अग्रवाल

लन्दन से टोकियो ६० मिनट में १७
—सुरेन्द्र शर्मा

पौलिथीन २१
—रमेशचन्द्र कपूर

विद्युत गणक २६
—गुणाकर मुले

मरुस्थल के ये प्राणी ३३
—ब्रजमोहन गुप्त

ट्रान्जिस्टर ३८
—डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा

जीवों का क्रमिक विकास ४४
—वीरेन्द्रप्रसाद श्रीवास्तव

चन्द्रयात्रा आखिर क्यों ? ५४
—सुभाषचन्द्र

स्थायी स्तम्भ

विचित्र संसार ३१
वैज्ञानिक उपलब्धियां ४३
विज्ञान क्लब ४६
इनाम लो ५३

अपनी बात

हमारे प्रदेश में शिक्षा के क्षेत्र में इस समय दो गम्भीर समस्याएँ हैं—एक, स्कूलों में विज्ञान की शिक्षा की समुचित व्यवस्था का न होना और दूसरी, अध्यापकों की शोचनीय दशा, विशेषरूप से बेसिक स्कूल के अध्यापकों की।

हमारे यहां के विद्यालयों में प्रयोगात्मक कार्य कराने के लिए अच्छी प्रयोगशालाओं का नितान्त अभाव है और वगैर प्रयोगात्मक कार्य के विज्ञान की शिक्षा सम्भव है ही नहीं।

अध्यापकों की दशा भी शोचनीय है। अध्यापकों को जो वेतन मिलता है वह जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भी पर्याप्त नहीं है। जब तक वेतन स्तर में सुधार नहीं होता, यह आशा करना व्यर्थ कि शिक्षा का स्तर उन्नत होगा ! अतः आवश्यकता इस बात की है कि उनका वेतन बढ़ाया जाय।

शिक्षा संचालक के पद पर श्री बलवन्तसिंह स्याल की नियुक्ति शुभ संकेत है। श्री स्याल प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री एवं कुशल प्रशासक हैं। विज्ञान की शिक्षा में आपकी प्रारम्भ से ही रुचि रही है। अध्यापकों की समस्याओं का भी आपको गहन अध्ययन है। आशा है आप विज्ञान की शिक्षा एवं अध्यापकों की दशा दोनों ही में सुधार करेंगे।

विज्ञान-लोक श्री स्याल की नियुक्ति का स्वागत करता है।

वर्ष ५ अंक ६

मूल्य
एक प्रति : ७५ पैसे
वार्षिक : ६ रुपये

सम्पादक : शंकर मेहरा
प्रकाशक : मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिराड अवस्था की रंगीनियाँ

कुमारी प्रमिला

गिराड अवस्था की भी बस, कुछ न पूछिए। अण्डावस्था से लेकर पूर्णावस्था तक पंतगे, तितलियां और विभिन्न कीट जो चोला-दर-चोला बदलते हैं, उसमें दूसरे चरण की यह अवस्था है। इसी अवस्था से तीसरी अर्थात् प्यूपावस्था में पहुँचा जाता है जो पूर्णावस्था के अत्यन्त निकट है। अतः गिराडावस्था में चोला जल्दी-जल्दी बदलना पड़ता है और इस कार्य में क्रम भी बहुत पड़ता है।

रंग-बिरंगी तितलियों और पंतगों के सौन्दर्य, आकर्षण और मोहकता के बारे में जितना कुछ लिखा जाता रहा है, उसका दशांश भी इन कीटों की गिराडावस्था पर नहीं लिखा गया है। तितलियों के मोह में उनके प्रशंसक यह भूल जाते हैं कि वे भी कभी गिराडें रही होंगी। इसके विपरीत, सत्य तो यह है कि कहीं-कहीं तो गिराड स्वयं इतनी आकर्षक और नयनाभिराम बन उठती हैं कि उसके आगे विकसित तितली लजाकर रह जाये। यही नहीं, कुछेक गिराडों का वेश-परिवर्तन ऐसा अद्‌भुत होता है कि मनुष्य की बुद्धि चकरा जाती है।

तरह-तरह के मूड

कीट-पालन के शौकीन लोग जानते हैं कि कीट-जगत में भी मूड बहुत काम करता है। विशेषतः खाने के मध्य कोई भी रुकावट एक वर्ग सख्त नापसन्द करता है, तो दूसरा वर्ग कुछ भी खयाल नहीं करता। पालित अवस्था में, पिंजरों में कैद, ये कीट तरह-तरह के मूड प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणार्थ, तितली वर्ग के गिराड को दाना चुगते समय अथवा पिंजरा साफ करने के बहाने यदि छेड़ा जायेगा तो वह अपने बचाव के समस्त साधनों का और गहरी अरुचि का प्रदर्शन करेगा। कहीं तो वह चीं-चीं करेगा, कहीं पिंजरे में बेचैनी से चक्कर लगाता रहेगा, किन्तु जल्द ही खाने पर पुनः केन्द्रित न हो पायेगा। इस प्रवृत्ति की अधिकता के फलस्वरूप प्रायः ही ऐसे गिराड पेट नहीं भर पाते और तीसरी अवस्था (प्यूपावस्था) बहुत विलम्ब से प्राप्त करते हैं, और मरियल ही रह जाते हैं। इनके विपरीत, कुछेक गिराड ऐसे भी हैं जो जिस पत्ती को कुतर रहे हों, उस पत्ती को टहनी समेत आप तोड़ लें, तो भी जब तक अपना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

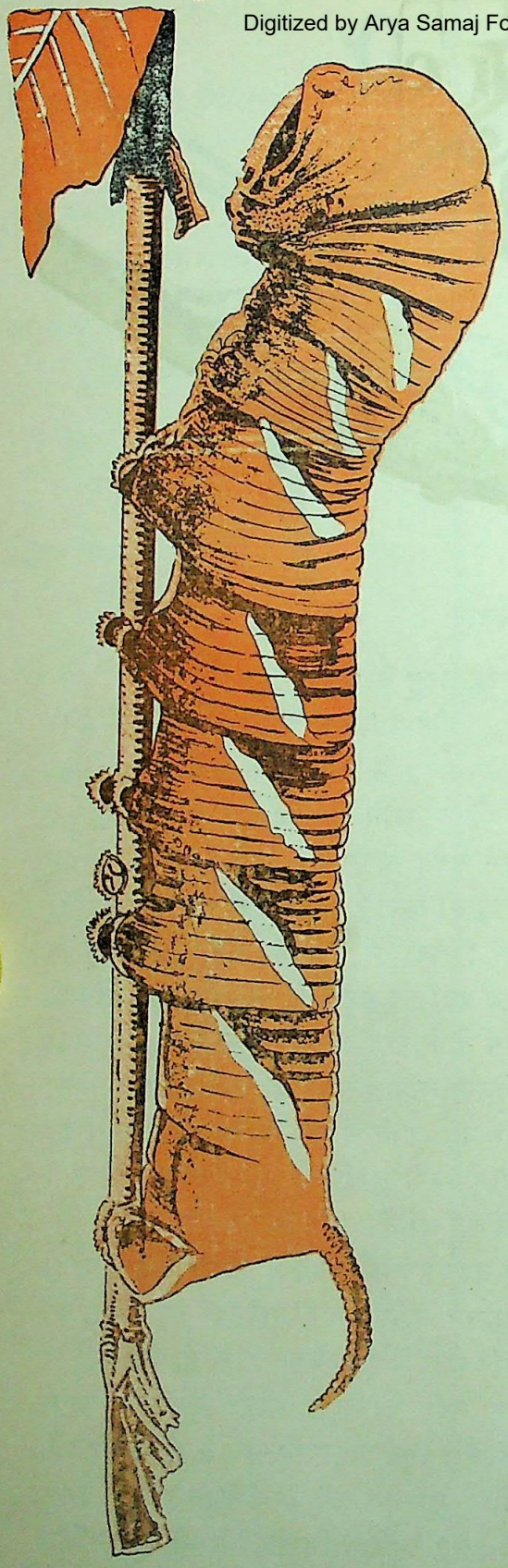

हॉक मॉथ (Hawk Moth) नामक बड़े पतंगे का गिराड अपनी आकर्षक मुद्रा में

खाना पूरा न कर लें, वे ऐसे विक्षेपों की ओर ध्यान भी न देंगे।

कहीं घिरे; कहीं एकाकी

इनमें कुछ वर्ग ऐसे हैं जो अपनी समूची गिराडावस्था समूह में, व्यतीत कर देते हैं, कुछ ऐसे हैं जो केवल दो बार के वेश-परिवर्तन तक मिल-जुलकर रहना पसन्द करते हैं और शेष ऐसे भी हैं जो नितान्त एकाकी रहना चाहते हैं और नाम के लिए भी किसी दूसरे का साथ पसन्द नहीं करते। ऐसों को यदि एकाकी न रख कर समूह में रखा जाये तो वे अधिक जीवित नहीं रहते। ऐसे प्रतिकूल संजोगों में रखे गये कीट भोजन की मात्रा एकदम घटा देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि शिशर ऋतु में जब कि हरियाली सूख जाती है, तब इन्हें सूखे पत्तों को पौष्टिक रसायनों से युक्त करके देने पर भी ये प्यूपा-वस्था को सहज प्राप्त नहीं करते।

रक्षा-प्रतिरक्षा के चित्र-विचित्र उपाय

पट-परिवर्तन इनकी पहली विशेषता है। रंग-बिरंगे तथा धारियों और बूंदोंयुक्त इनके तरह-तरह के शरीर ऐसे होते हैं जो आवश्य-कतानुसार पलक मारते ही वातावरण में घुल-मिल जाते हैं। हरी पत्ती पर हरे, पीले पर पीले और लाल पर लाल, ये ऐसे छिपे बैठते हैं कि इनके शत्रु और कुशल मानव तक धोखा खा जाता है। कहीं-कहीं इनके सुनहले और रुपहले शरीर सूर्य के प्रकाश में दर्पण की भाँति ऐसे चमक उठते हैं कि आक्रमणकारी पक्षी इनकी शरीररेखा देख ही नहीं पाता और उस चका-चौंध में भटक कर रह जाता है। अपने इस भ्रमजाल को ये तब और भी दृढ़ बना लेते हैं जब अपनी क्षमतानुसार मिनटों तक अपलक, स्थिर पड़े रहते हैं और कीट जैसे हिलते-रेंगते नजर ही नहीं आते।

प्रतिरक्षा-प्रवृत्ति में इनकी विलक्षणता कुछेक उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जापान में अधिकतर पाया जाने वाला जापोनिका (*Japonica*) जाति का गिराड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिराड अवस्था में न इन्हें सुनाई देता है न ये सुन पाते हैं। फिर भी शत्रु-पक्षी के निकट आने की परखशक्ति प्रकृति ने इन्हें दूसरे प्रकार से दे रखी है। जिस डाल पर ये पत्ती कुतरते होते हैं, उस पर ज्योंही पक्षी उतरा, ये डाल के अति सूक्ष्म स्पन्दन से उसके आने का आभास पा लेते हैं। जब तक पक्षी इनके निकट पहुँचे, तब तक या तो ये पक्षियों में घोर अरुचि उत्पन्न करने वाली वस्तु का रंग धारण कर लेते हैं, या ऐसे जन्तु का जिससे स्वयं पक्षी को डर रहता हो।

स्पाइस बुश (spice bush) **का गिराड अपनी घ्राणेन्द्रिय को डरावने रूप से फैलकर शत्रु को आतंकित कर देता है**

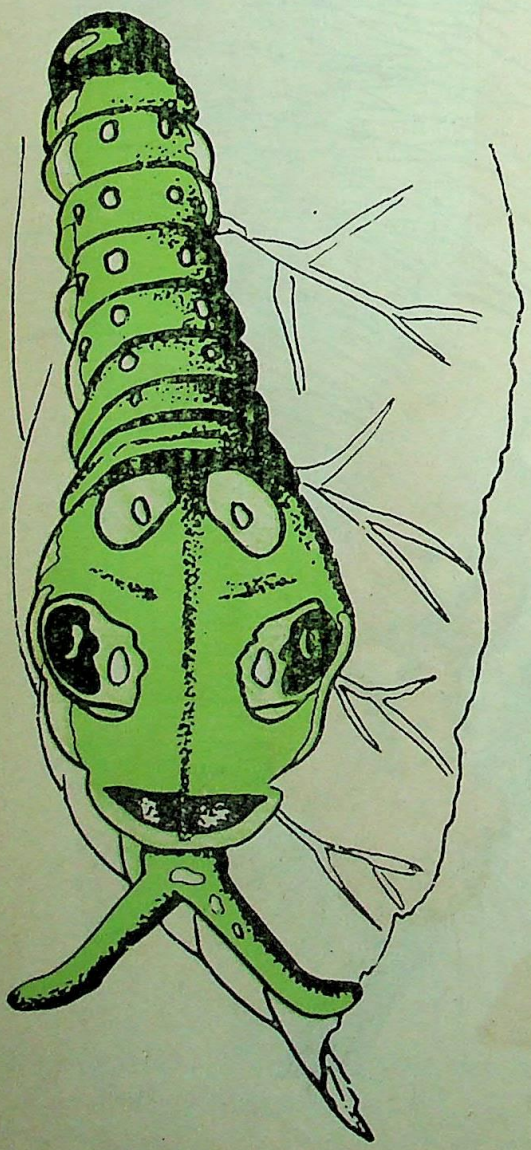

तबी वालची (*Brahmaea wallichii*) नामक सींगयुक्त गिराड का कौशल विशेष उल्लेखनीय है। शत्रु से सामना होने पर यह अपने चार कक्षोंयुक्त शरीर के आगे वाले दो कक्षों को सिर सहित भीतर को इस तरह मोड़ लेता है कि तीसरा और चौथा कक्ष फैलकर चौड़े हो जाते हैं। फलतः प्रथम दो कक्षों के अन्त में स्थित दो छोटे काले धब्बे दिख उठते हैं और चौथे कक्ष के अन्त वाले दोनों धब्बे फैलकर बड़े हो जाते हैं। अन्त वाले धब्बे आँखों और पीछे वाले धब्बे नथुने जैसे दिखते हैं। उस समय मालूम होता है, कोई विकराल जन्तु उस पक्षी पर अपनी दृष्टि गड़ाये हुए है। वह विकरालता तब और भी बढ़ जाती है जब वह गिराड अपने सींगों को उन दिखाने वाली कृत्रिम आँखों के दोनों ओर तथा अपने हाथ-पांव हिलाता रहता है। तब मालूम होता है कि वह बस, झपटने ही वाला है और वह पक्षी भयभीत होकर भाग जाता है। उस गिराड की वह मुद्रा उस समय एक विकराल अगजर जैसी ही दिखती है जो किसी को भी डरा देने के लिए काफी है।

तीसरी प्रकार का उपाय बाजीगरी का है। संकट का सामना होते ही कुछ गिराड अपना पकड़ा हुआ आधार छोड़ देते हैं और यों पड़ जाते हैं मानो मर ही गये हों। जब तक आक्रमणकारी दूसरी पलक झपकता है, ये भाग कर पत्तों में छिप जाते हैं। कभी-कभी ये गिरते ही एक कठोर छल्ले के रूप में हो जाते हैं और तब उन्हें दबाने पर भी यह प्रतीत नहीं होता कि वे गिराड हैं अथवा अन्य कुछ। ऐसे गिरने वालों में कई तो अपनी लार के बनाये हुए रेशमी धागे से नीचे लटक जाते हैं और शत्रु के निकल जाने पर पुनः उसके ऊपर चढ़ आते हैं। पिंजड़े की कैद से भी ये भाग-निकलने की चेष्टा में कमी नहीं उठा रखते। चौकठों में दरार हो अथवा बहुत ही छोटा छिद्र हो जिसमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयो (Io) नामक पतंगे के नन्हें गिराड, अपने ही अण्डों के खोल कुतरते रहे हैं

से हम समझें कि ये निकल ही न सकेंगे, सफाई से निकल जायेंगे। पूर्वीय भारत का लियोपा कैटिन्का (*Leopa katinka*) नाम का पतंगा अपनी गिराडावस्था में बड़ी सफाई से भाग निकलता है। उसके शरीर की अपेक्षा जरा छोटा-सा सिर इस कार्य में सहायता करता है। बस, किसी सूराख या दरार में सिर जरा प्रवेश कर जाये, फिर यह अपने शरीर को रबर की भांति खींचकर इतना पतला कर लेता है कि सरलता से उस मार्ग से निकल सके।

खाना और बस, खाना

गिराडावस्था भी क्या मजे की अवस्था है! खाने ही खाने से काम। जैसा कि आरम्भ में कहा जा चुका है, खाने की यह अधिकता इसलिए विशेष रहती है कि जल्द ही चोले बदल-बदलकर इन्हें प्यूपावस्था में पहुँचने और तत्पश्चात् पूर्ण रूप धारण करने की उत्सुकता रहती है। इनकी भोजन-क्षमता पर वातावरण की आर्द्रता और ताप का बहुत प्रभाव पड़ता है। अधिकतर तो यह देखा गया है कि कीट-पालन के लिए दूर विदेशों से लाये गये गिराड प्रायः ६५°F ताप से नीचे के वातावरण में पनपते नहीं। पहली कमी तो उनकी भूख में ही हो जाती है और अनेक प्रयत्नों के बावजूद उनकी भूख और विकास रुक जाता है। यदि कठिनता से प्यूपावस्था में पहुँच भी गये तो कुछ समय पश्चात् उसी अवस्था में या तो समाप्त हो जाते हैं, या निर्बल शरीर प्राप्त करके पूर्णावस्था में पहुँचते हैं। ऐसे कीटों की सन्तानें भी मरियल ही होती हैं। यदि ६५°F का वह ताप और भी १५° तक गिर जाये तो इनके बचे रहने की कोई सम्भावना शेष नहीं रहती।

इसके विपरीत, यदि ताप ८५°F के इर्द-गिर्द रखा जाये तो अपेक्षाकृत उस उच्च ताप में कुछ वर्ग के गिराडों की भूख असीम रूप से बढ़-जाती है। उस बढ़ी भूख में इनके खाने की गति, प्यूपावस्था प्राप्त करने की तथा पूर्ण

मोनार्क (Monarch) नामक तितली का गिराड! सिर के बल लटका हुआ और क्राइसेलिस का रूप धरने से पूर्व की अवस्था में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

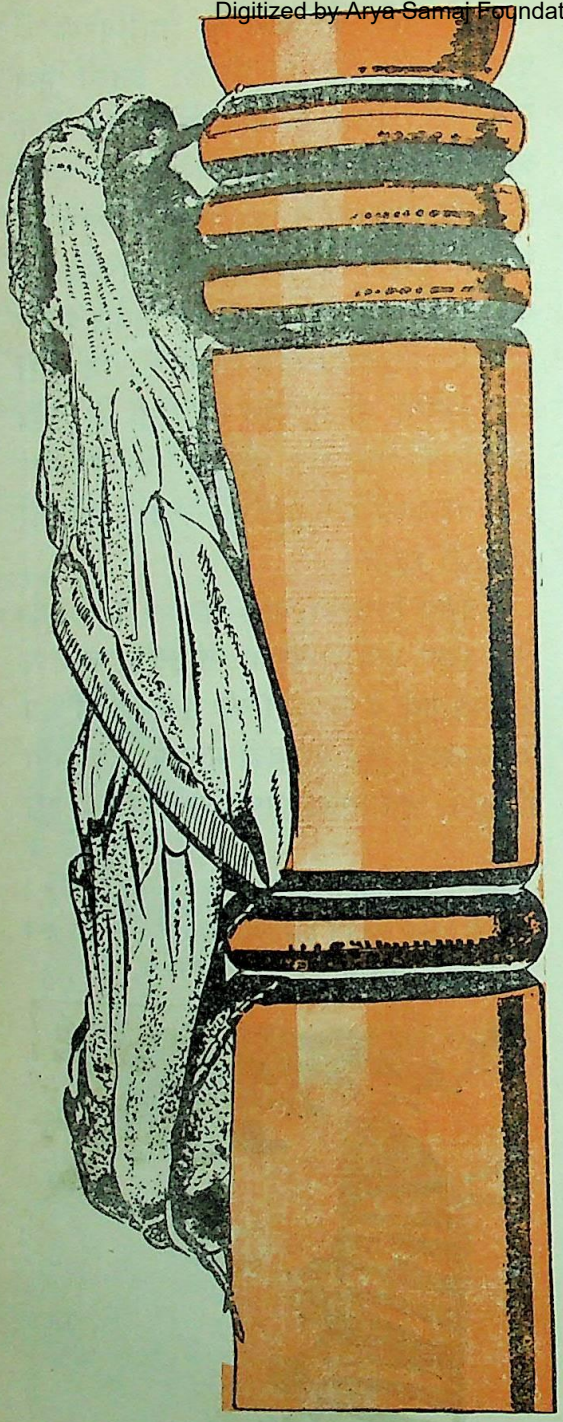

हॉक मॉथ (Hawk Moth) का नर-मादा-युगल। नीरव रात्रि में यह पुष्प-मधु की खोज में पुष्पों पर मंडराता है और हमिंगबर्ड पक्षी की भाँति हवा में अधर, पंख फड़फड़ाता हुआ, अपनी लम्बी नलिका द्वारा काफी गहरे छिपा हुआ भी रस चूस लेता है।

विकसित होकर, सन्तानोत्पादन करके मर जाने तक की गति विशेष रूप से तीव्र हो जाती है—इतनी कि उन्हीं में से कुछेक को यदि ६५°F ताप पर ही रखा जाये तो वे इस दौड़ में पिछड़कर प्यूपावस्था भी पार न कर पायेंगे। ऐसा ही प्रभाव वायु की आर्द्रता का भी पड़ता है। एन्थेरिया माइलिटा (*Antheraea mylitta*) जाति के कीट जो दक्षिणी भारत और श्रीलंका में पाये जाते हैं, बिलकुल ही बूंदे, टपकता वातावरण पसन्द करते हैं। जब ये अपना रक्षावरण धारण करते हैं तब ऐसा दिखता है मानो किसी पत्ती से बूंदें टपक रही हों। दूसरी ओर, सूडोहैजी हेरा (*Pseudohazis hera*) जाति के कीट, यदि उन्हें ताजा भोजन मिलता रहे तो अति शुष्क, रेगिस्तानी वातावरण को भी अपना लेते हैं।

सामान्यगत शरीर-रचना

सामान्यस्तरीय गिराड का शरीर प्रायः सिर के बाद तीन कक्षों में विभाजित रहता है और उस प्रत्येक कक्ष पर एक-एक जोड़ा सन्धि-युक्त पांव होते हैं। उन पांवों के अतिरिक्त अन्य भी अनगिनत किन्तु सन्धिहीन पांव इनके पेट पर होते हैं जिन्हें उप-पाद (pro-legs) कहते हैं। इन पांवों के सहारे ये अपने शरीर को गोल लपेटकर और पुनः सीधा खींचकर परिचालन कर लेते हैं। इनकी श्वसन क्रिया शरीर के दायें-बायें स्थित श्वसन-छिद्रों (trachea) द्वारा सम्पन्न होती है। हरे पत्र-पुष्प ही इनका मुख्य आहार हैं और भिन्न-भिन्न जाति के कीट, विभिन्न पत्तियाँ अपने लिए चुन लेते हैं। उनके स्थान पर अन्य कैसा भी भोजन उन्हें ग्राह्य नहीं होता। गोट मॉथ (goat moth) नामक पतंगा तो अण्डा-वस्था और गिराडावस्था से ही पेड़ के तने की खोल में घर कर लेता है और प्यूपा तथा पूरा पतंगा बन जाने तक उसी तने का रस पीता रहता है। जो कीट कपड़ों-वस्त्रों को अपना भोजन बनाते हैं, वे हमारे लिए अत्यन्त हानिकारक होते हैं क्योंकि उनके खाये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

वस्त्र जो छिद्रयुक्त हो जाते हैं, वे किसी भी उपयोग के लायक नहीं रहते।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीटों-गिराडों की यह विभिन्नता

पतंगों की कुछेक जातियों में मादाएं बड़ी विचित्र होती हैं। वे अपने बच्चों के लिए अण्डों से पूर्ण विकसित होने तक बीच की एक अवस्था ही घटा देती हैं। अन्य कीटों की भाँति वे अण्डे देना पसन्द नही करतीं और उन्हें शरीर में ही सेह कर सीधे गिराडों को जन्म देती हैं। यों, आरम्भ की अण्डावस्था कम हो जाती है। अण्डे देने वाली कीट-मादाएं सुरक्षापूर्ण वातावरण में अण्डे देती हैं। वे यह भी देख लेती हैं कि अण्डों, गिराडों को उनके निकट ही अनुकूल भोजन सुलभ रहे।

गिराडों के खान-पान में भी पर्याप्त विविधता है। जैसा कि ऊपर लिख आये हैं, अधिकांश तो खाने ही खाने से काम रखते हैं और उनके विपरीत, कुछेक ऐसे भी हैं जो खाने पर इस प्रकार नहीं टूट पड़ते। इनका मुख्य भोजन पत्ते ही पत्ते अवश्य है, किन्तु अनेक ऐसे भी हैं जो अन्य वस्तुएं भी खा लेते हैं। उनके भोजन में मुलायम बीज, नर्म अंकुर, फूलों की पंखुरियां और मीठे फल भी सम्मिलित हैं। अन्य कुछ ऐसे भी हैं जो मृतोपजीवी हैं अर्थात् सड़ी-गली वस्तुओं से पेट भरते हैं और कुछ परोपजीवी हैं जो अपने से निर्बल कीटों का संहार करके उन पर निर्वाह करते हैं। पत्तों, टहनियों और पेड़ों की नर्म छाल पर रहने वाले गिराड उनमें बिल बना कर रहते हैं और वहीं खाते-पीते हैं तथा जो पानी में रहते हैं, वे पानी के पौधों पर निर्भर रहते हैं। वस्तुतः जिन गिराडों का भोजन पत्ते ही पत्ते है, उन्हें हम पत्तों के झुरमुट में प्रायः ही रेंगते हुए देख सकेंगे।

नन्हें दाने जैसी अण्डावस्था, गिराडावस्था तथा पंख निकलने से पूर्व की क्राइसेलिस अवस्था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गिराडों की शरीर-रचना में भी भिन्नता बहुत है। सॉ-फ्लाई (saw-fly) नामक कीट का गिराड केवल देखने में दूसरों से मिलता-जुलता है, अन्यथा उसकी अगल-बगल की आँखों और मध्य देह से जुड़े पांवों की रचना में औरों की अपेक्षा स्पष्ट भिन्नता है। इंचवर्म (Inchworm) नामक पतंगे के गिराड में तो मध्य देह के पांव होते ही नहीं। इसीलिए उस गिराड को अपना शरीर गोलाकार बना लेने में विशेष सुविधा रहती है। कई जाति के पतंगों के गिराडों के शरीर पर सख्त रोयें, कुछ नुकीले और विषभरे पाये जाते हैं। उन्हें ज्योंही वे विपक्षी के शरीर में चुभोते हैं, विष की जलन से विपक्षी तिलमिला जाता है। ऐसे समूह में निम्न जातियाँ गिनायी जा सकतीं हैं: स्लग मॉथ (slug moth), फ्लेनल मॉथ (flannel moth), ब्राउनटेल मॉथ (browntail moth), ईयो मॉथ (io moth)। इनके अतिरिक्त, दूसरे प्रकार के आक्रमणकारी गिराड ऐसे भी हैं जो विपक्षी पर तीव्र दाहक द्रव की पिचकारी फेंकते हैं। स्वालोटेल (swallotail) का गिराड तीसरा ही साधन अपनाता है और अपने शत्रु पर काटने अथवा द्रव उछालने की अपेक्षा तीव्र गैस फेंकता है।

आश्चर्य नहीं कि खाने ही को अपना जीवन समझने वाले ये कीट प्रकृतिदत्त लम्बी अवधि की गिराडावस्था को ही अपने जीवन का स्वर्णकाल मानते हैं!

पंख निकलने के आरम्भ से पूर्ण विकसित अवस्था तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिट्टी की महिमा

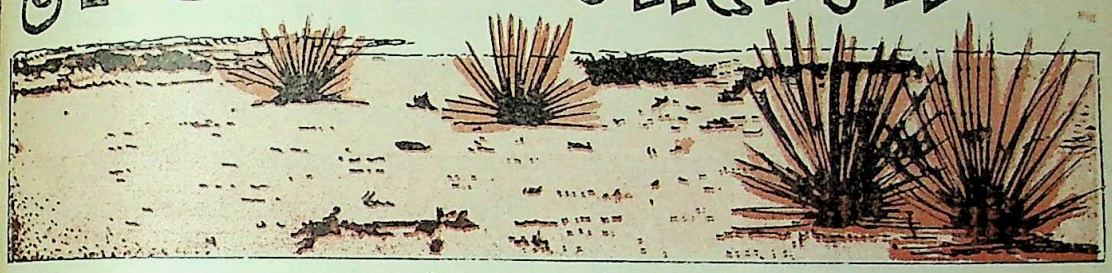

प्रेमनरायन अग्रवाल

मिट्टी की उपयोगिता से मानव भलीभांति परिचित है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इसके महत्त्व की अवज्ञा नहीं की जा सकती। भारत सरीखे कृषिप्रधान देशों में मिट्टी की विशेष उपयोगिता है। मिट्टी का इतना महत्त्व है कि अपने देश की मिट्टी के एक-एक कण के लिए देशवासी प्राणों तक की आहुति देने को तत्पर रहते हैं। यदि हम भावना के प्रवाह में न बहें तो भी मिट्टी वैज्ञानिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

प्राचीन काल में जब विज्ञान इतना विकसित नहीं था तब भी भारत में मिट्टी को पंचतत्त्वों में से एक तत्त्व माना जाता था। आज के वैज्ञानिक युग में मिट्टी को एक तत्त्व नहीं माना जा सकता और साथ ही इसकी वैज्ञानिक उपयोगिता की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। आदिकाल से ही मिट्टी का उपयोग गृह-निर्माण से ओषधियों तक होता आया है।

किसी भी स्थल की मिट्टी वहाँ के धरातल तथा शिलाओं का एक महत्त्वपूर्ण अंग होती है। मिट्टी की उत्पत्ति यों तो कई प्रकारों से होती है, परन्तु मुख्यः प्रकार दो हैं—(१) धरातल से नीचे की शिलाओं के परिवर्तन से प्राप्त मिट्टी जिसमें कुछ कम घुलनशील पदार्थ तो विलय हो जाते हैं और कुछ कार्बनिक पदार्थ मिश्रित हो जाते हैं तथा (२) नदियों द्वारा लायी जाकर संचित की हुई मिट्टी। यह उत्तम प्रकार की होती है। प्रथम प्रकार की मिट्टी से भारत के दक्षिणी भाग का अधिकांश तथा दूसरी प्रकार की मिट्टी से गंगा के उपजाऊ मैदानों का निर्माण हुआ है। दक्षिण भारत की मिट्टी में जगह-जगह अनेकरूपी विभिन्नता है और उत्तर भारत की मिट्टी में कम विभिन्नता है।

रासायनिक दृष्टि से मिट्टी और रेत अर्थात् बालूकण में विशेष अन्तर नहीं है। बालू में सिलिका (silica) का अंश अधिक होता है और मिट्टी में सिलिका तथा एल्यूमिनियम दोनों का अंश मिश्रित होता है। बालू के कण १/२५ इंच व्यास तक के भी होते हैं और मिट्टी के कण १/२०० इंच से भी कम व्यास के हो सकते हैं। जो मिट्टी गीली करने पर इतनी मुलायम हो जाये कि उसे बांछित रूप में परिवर्तित किया जा सके, वह अधिक उपयोगी होती है।

आपेक्षिक भार—साधारण मिट्टी का आपेक्षिक भार २·२ तथा ३·३ के मध्य होता है। मिट्टी का आपेक्षिक भार प्राप्त करने के लिए मिट्टी के भार को उतने ही आयतन जल के भार से भाग देना होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिट्टी का गठन—मिट्टी के विभिन्न कणों का पारस्परिक संयोजन मिट्टी का गठन कहलाता है। जिन शिलाओं के क्षरण से मिट्टी बनी हो, उन शिलाओं के खनिज पदार्थों पर मिट्टी का गठन निर्भर रहता है। मिट्टी गीली होने पर चाहे जिस आकार में ढाली जा सकती है। बगैर फटे जो मिट्टी अधिक से अधिक आकृतियों में ढल सके, उतनी ही वह अच्छी समझी जाती है।

संरन्ध्रता—मिट्टी के बहुछिद्रल होने के गुण को संरन्ध्रता कहते हैं। छिछले होने अथवा घने सटे होने पर यह गुण निर्भर करता है। मोटे कणों की मिट्टी छिछली तथा बारीक मिट्टी घनी होती है।

शोषण—मिट्टी धारा शोषण भौतिक तथा रासायनिक, दोनों प्रकार से होता है। मिट्टी वातावरण की विभिन्न अवस्थाओं में जल की विभिन्न मात्रा सोखती है। साथ ही सूर्य की उष्मा तथा खनिज, लवण आदि विभिन्न घुले हुए पदार्थ भी सोखती है।

रंग—मिट्टी का रंग प्रायः उसमें मिले हुए कार्बनिक पदार्थों, आक्सीकरण की मात्रा तथा रंग देने वाले पदार्थों के परिमाणों पर निर्भर करता है। अतः मिट्टी सफेद, भूरी, काली तथा पीली भी पायी जाती है।

विभिन्न मिट्टियों के विश्लेषण से ज्ञात हुआ कि मिट्टी में प्रायः वही खनिज होते हैं जो इसकी पैतृक चट्टान में होते हैं। पैतृक चट्टान के खनिजों में अनेक रासायनिक तथा भौतिक परिवर्तन होते रहते हैं जिनके फलस्वरूप मिट्टी में भी वे गुण आ जाते हैं। सामान्य मिट्टी में मिश्रित चिकनी मिट्टी (clay) में जटिल एल्यूमिनियम सिलीकेटों के तथा कैल्सियम, मैग्नीसियम, पोटेसियम, सोडियम आदि के लवण भी होते हैं। मिट्टी के सम्पर्क में जब विभिन्न धातुओं के नाइट्रेट, सल्फेट, क्लोराइड आदि आते हैं तब उनके क्षारीय तत्त्व मिट्टी द्वारा सोख लिये जाते हैं परन्तु अम्लीय अंश रह जाते हैं।

मिट्टी में जो भी कार्बनिक पदार्थ मिश्रित होते हैं, वे विशेषतः नाइट्रोजन-उत्पादक होते हैं। कार्बनिक पदार्थों का होना न होना मिट्टी की उपयोगिता तथा उर्वरा शक्ति पर बहुत प्रभाव डालता है। कार्बनिक पदार्थ रेतीली मिट्टी में बहुत कम तथा उपजाऊ मिट्टियों में ७०% तक होते हैं। मिट्टी में मिश्रित विभिन्न प्रकार के कार्बनिक पदार्थों के आधार पर अनेक प्रकार की तथा विभिन्न उपयोगिताओं की मिट्टी प्राप्त होती है। एक विशेष प्रकार का गहरे रंग का कार्बनिक पदार्थ जिसे ह्यूमस (humus) कहते हैं बहुधा मिट्टी में मिला होता है। ह्यूमस की उत्पत्ति मिट्टी के कणों तथा जीवावशेषों के बीच विभिन्न प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप होती है।

मिट्टी की उपयोगिता इस गुण से भी बढ़ जाती है कि उसको तप्त करने से उसके कुछ अवयव पिघल जाते हैं। मिट्टी जब ठंडी होकर पुनः ठोस होती, तब वे अवयव मिट्टी के अन्य अवयवों को सीमेण्ट की भाँति जकड़ लेते हैं। जिस मिट्टी में यह गुण होता है, वह मिट्टी ईंट, बर्तन, चीनी के बर्तन (potteries) आदि बनाने के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है। यदि मिट्टी से ईंटें बनानी हों तो उसे केवल थोड़े ही ताप तक पकाने की आवश्यकता होती है। ऐसी ईंटें अधिक ताप सहने में असमर्थ होती हैं। वे ईंटें केवल मकान बनाने में ही प्रयुक्त की जा सकती हैं। साधारण ईंटों के निर्माण के लिए वही मिट्टी उत्तम होती है जिसमें ४५% एल्यूमिनियम सिलीकेट, ३५% सिलिका, ३ से ६% तक लोहा, ३ से ८ % तक चूना, ३ से ४ % मैग्नीशिया, ३ से ६ % तक पोटास अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोडा तथा ४ से ६% तक जल की मात्रा हो। जिस मिट्टी में एल्यूमिनियम-सिलिकेट का अंश अधिक होता है उस मिट्टी से निर्मित ईंटें जलकर छोटे आकार की हो जाती हैं। सिलिका का अंश मिट्टी को लाल अथवा पीला रंग प्रदान करता है। भारत में ईंट-निर्माण के उपयुक्त मिट्टी प्रायः हर स्थान पर प्राप्य है। ऐसे स्थानों पर जहाँ यह मिट्टी अधिकता से मिलती है, ईंटों तथा खपरैलों का निर्माण बड़े पैमाने पर होता है।

अग्नि-रोधक मिट्टी से ऐसी ईंटों का निर्माण होता है जो ३५०० °C तक का ताप सहने की क्षमता रखती हैं। ऐसी मिट्टी में शीघ्र पिघलने वाले पदार्थ तथा क्षारीय अंश कम होते हैं। इस मिट्टी से ईंटें बनाने के लिए मिट्टी को बहुत अधिक ताप पर पकाना पड़ता है। जिस मिट्टी द्वारा वनस्पति की उपज अधिक होती है, उस मिट्टी से पौधे अपने भोजन के लिए क्षारीय तत्त्व अधिक खींचते रहेंगे। फलतः ऐसी मिट्टी से कालान्तर में क्षार का अंश कम होता जाता है। पश्चिमी भारत में अग्नि-रोधक मिट्टी अधिकता से मिलती है। मध्य प्रदेश के विभिन्न जिलों में अग्नि-रोधक मिट्टी का उपयोग ईंटें बनाने में होता है।

अन्य मिट्टियों की अपेक्षा चीनी मिट्टी अधिक मूल्यवान होती है। इस मिट्टी की उत्पत्ति ग्रेनाइट (granite) नामक आग्नेय शिला (igneous rock) से प्राप्य फेल्सपार (falspar) नामक खनिज पदार्थ के क्षय से होती है। यह पदार्थ क्षार, सिलिका तथा एल्यूमिनियम के सम्मिश्रण से बनता है। जल तथा वायु की क्रिया से चीनी मिट्टी तो रह जाती है तथा क्षारांश घुलकर पृथक् हो जाते हैं। क्षार के अभाव में चीनी मिट्टी अग्नि-रोधक भी हो जाती है। अतः इसका उपयोग बर्तन बनाने, सफेद बढ़िया कागज बनाने तथा सफेद रोगन में मिलाने में होता है। भारत में चीनी मिट्टी अनेक स्थानों में उपलब्ध है, परन्तु सर्वोत्तम चीनी मिट्टी सिंहभूम जिले में तथा राजमहल की पहाड़ियों में अधिकता से मिलती है। इसके अतिरिक्त चीनी मिट्टी साधारण रूप से बिहार, मद्रास, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान में कई स्थानों पर प्राप्य है।

मुल्तानी मिट्टी (fullers earth) के कण बहुत ही छोटे होते हैं। अतः इसे मिलाकर सुगमता से वस्तुओं के ऐच्छिक आकार प्राप्त नहीं किये जा सकते। यह मिट्टी चिकनी सफेद, भूरे तथा पीले रंग की होती है। इसमें रंग कारक द्रव और चिकनाई सोख लेने की क्षमता होती है। इसलिए इसका उपयोग ऊन से चिकनाई साफ करने, तेलों को स्वच्छ तथा रंग विहीन करने और साबुन तथा कपड़ों के

और, मिट्टी बनती चली :—(बाँयें के दायें) सृष्टि के आरम्भ में पहाड़ ही पहाड़ थे। कड़ी धूप, तेज तीव्र पवन और तूफानी पानी के थपेड़े तथा वायु से विलग हुआ कार्बन डाइआक्साइड, इन सबों ने मिलकर पहाड़ी चट्टानों के टांके ढीले किये। बैक्टीरिया तथा नन्हें कीड़े-मकोड़ों ने भी जड़ें खोदना जारी रखा। वनस्पतियों की जड़ें अलग से फैलती-घुसती जाती रहीं। और, यों ही क्रमशः पत्थर, कंकड़, रेत, कीचड़ और मिट्टी बनती चली और हमारी पृथ्वी की यह ऊपरी सतह उपजाऊ होती चली

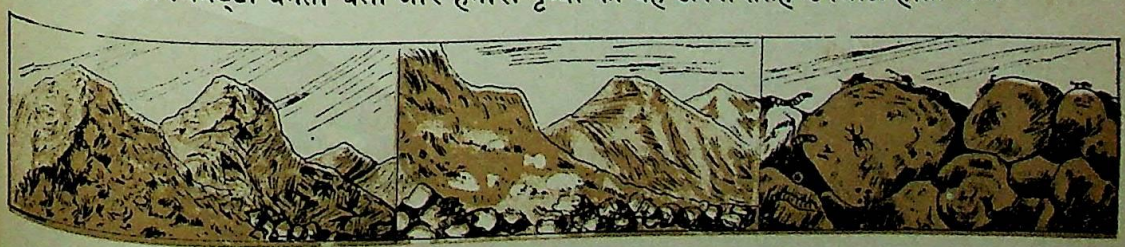

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारखानों में होता है। कुछ कारखाने मिट्टी से सर भी धोते हैं। मुल्तानी मिट्टी बीकानेर, जैसलमेर, जोधपुर, जबलपुर और मैसूर में मिलती है। इसी मिट्टी के समान एक अन्य मिट्टी बेन्टोनाइट (bentonite) राजस्थान तथा पंजाब के कुछ जिलों में प्राप्य है जो पानी डालने से फूल जाती है। बेन्टोनाइट का उपयोग तेल को स्वच्छ करने तथा एन्टीफ्लोजिस्टीन जैसे प्लास्टर बनाने में किया जाता है।

दक्षिण भारत के विशाल क्षेत्रों में परिवर्तित शिलाओं (metamorphic rocks) के क्षरण से बलुआ तथा पथरीली मिट्टी प्राप्त होती रहती हैं और बेसाल्ट (basalt) नामक आग्नेय शिला के क्षरण से काली, उपजाऊ मिट्टी प्राप्त होती है। इस काली मिट्टी में मैग्नीशियम तथा कैल्सियम के कार्बोनेट, क्षार और फास्फेट के अंश होते हैं जो पौधों के मुख्य आहार हैं।

मिट्टी का उत्तम होना बहुत अंश तक इस बात पर भी निर्भर करता है कि जिन शिलाओं के क्षरण से उस की उत्पत्ति हुई है, उनमें कितने रासायनिक गुण तथा कितनी अशुद्धियाँ हैं। उदाहरणार्थ भारत में जो मिट्टी गोण्डवाना शिलाओं के क्षरण से प्राप्त होती है वह अधिक बलुई तथा कम उपजाऊ होती है। कृषि की दृष्टि से गंगा के मैदानों तथा दक्षिण में नदियों द्वारा लायी मिट्टियाँ सर्वोत्तम सिद्ध हुई हैं।

उत्तरी भारत के मैदानों की मिट्टी (alluvial soil) कृषि की दृष्टि से अत्यन्त उपजाऊ है। उत्तर भारत, पंजाब, उत्तरप्रदेश,

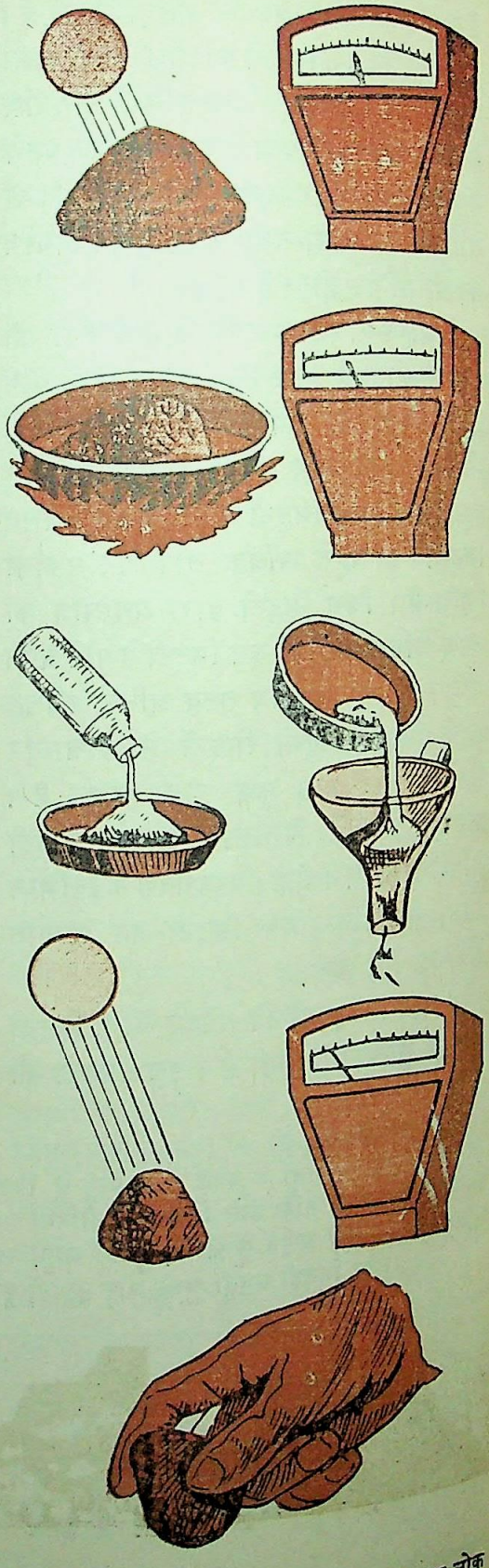

मिट्टी यह भी, मिट्टी वह भी : —(ऊपर से नीचे) खुली धूप में सूखा हुआ मिट्टी का ढेला भार में कुछ अधिक ही होता है। भट्ठी पर उसे पकाने से उसके कार्बनिक पदार्थ उड़ जाते हैं, तब उसका भार भी कम हो जाता है। उसमें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिला कर, उसकी शेष अशुद्धियाँ गला कर, उसे छान लेने पर जो शुद्ध मिट्टी रह जाती है उसे पुनः धूप में सुखा लिया जाता है। तत्पश्चात् उसे गीली करके चाहे जिस आकार में मोड़ा-बनाया जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिहार, उत्तरी राजस्थान तथा बंगाल आदि की मिट्टी के क्षेत्र हैं। यह मिट्टी गंगा तथा सहायक नदियों द्वारा लायी गयी है। पश्चिम में यह क्षेत्र लगभग ३०० मील की चौड़ाई तथा पूर्व में लगभग ९० मील की चौड़ाई में विस्तृत है। इस मिट्टी में समस्त प्रकार के अन्न उपजाये जाते हैं।

लाल मिट्टी (red soil) का वर्ग भी अत्यन्त विस्तृत वर्ग है। इस वर्ग में अनेक प्रकार की मिट्टियाँ पायी जाती हैं। बुन्देलखण्ड से दक्षिण भारत तक का लगभग आठ लाख वर्ग मील का विस्तार लाल मिट्टी का ही क्षेत्र है। दक्षिणी बंगाल, उड़ीसा, तथा मध्यप्रदेश के कुछ भाग, पूर्वी हैदराबाद, मैसूर तथा मद्रास के विस्तृत भाग में लाल मिट्टी पायी जाती है। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर, झाँसी, हमीरपुर तथा बुन्देलखण्ड में भी यह मिट्टी प्राप्य है। इस मिट्टी की उर्वरा शक्ति स्थानीय जलवायु पर निर्भर रहती है। इस मिट्टी में विशेषकर बाजरा उपजाया जाता है, क्योंकि इस मिट्टी में नाइट्रोजन, फास्फेट तथा ह्यमस का अंश कम और क्षार तथा चूने का अंश अधिक होता है। इस वर्ग की मिट्टी ग्रेनाइट (granite) तथा अन्य शिलाओं से, जिसमें लौह तथा मैगनीशियम की अधिकता हो, प्राप्त होती है। यह मिट्टी प्रायः लाल रंग की होती है परन्तु भूरे, पीले, कत्थई तथा काले रंग की मिट्टियाँ भी प्राप्य हैं। यह ध्यान देने योग्य है कि दक्षिण भारत की लाल दिखने वाली कुछेक मिट्टियाँ इस वर्ग में नहीं आतीं।

काली मिट्टी (regur) के वर्ग में भी अनेक मिट्टियों के समूह आते हैं—सौराष्ट्र, गुजरात तथा मध्यप्रदेश में पायी जाने वाली विभिन्न काली मिट्टियाँ इस वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। काली मिट्टी के कुछ कम महत्त्व के ढेर मद्रास में भी प्राप्य हैं। इस समूह की मुख्य मिट्टी दक्षिण भारत के पठारों के ऊपर एक महीन परत के रूप में मिलती है। अनुमान है कि लौह तथा लौह-टीटेनियम के यौगिक तथा अन्य कुछेक कार्बनिक पदार्थ इस मिट्टी के काला होने के लिए उत्तरदायी हों। अनेक काली मिट्टियाँ ऐसी भी होती हैं जिनमें कार्बनिक पदार्थ बहुत कम होते हैं।

मुख्य काली मिट्टी में क्ले (clay) का अंश अधिक तथा मोटी बालू का अंश कम होता है। गीली होने पर यह मिट्टी चिपचिपी हो जाती है। अतः वर्षा के बाद जब यह पुनः ताप ग्रहण करती है तब इसमें सिकुड़न तथा बड़ी-बड़ी दरारें पड़ जाती हैं। इस मिट्टी में लगभग ६०% बालू, २५% एल्यूमिना तथा १५% आइरन आक्साइड होता है। बेसाल्ट चट्टान के क्षरण से उत्पन्न मिट्टी रुई की उपज के लिए सर्वोत्तम होती है। अतः उसे ब्लैक काटन सॉइल (Black Cotton Soil) भी कहते हैं। इस मिट्टी की उर्वरा शक्ति बहुत होती है तथा इसे काफी समय तक क्षारों की आवश्यकता नहीं होती।

लैटराइट तथा लैटरिटिक मिट्टियों का वर्ग अधिक विस्तृत नहीं है। यों तो लैटराइट स्वयं ही मिट्टी के ऊपर एक चादर की भाँति फैली रहती है। अतः इसे मिट्टी की संज्ञा देना ही न्यायसंगत नहीं है। कालान्तर में विभिन्न परिवर्तनों तथा मिट्टी उत्पन्न करने वाले कई कारणों से लैटराइट (एक लाल रंग की मिट्टी, जिसमें लोहे के नन्हे कण मिले रहते हैं) का रूप धारण कर लेती है। यद्यपि लैटराइट की परत कहीं-कहीं २०० फुट तक भी मोटी हो सकती है, परन्तु प्रायः २-३ फुट ही मोटी तह के रूप में मिलती है। इसकी तह दक्षिण भारत, मध्य प्रदेश, पूर्वी बंगाल तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आसाम में पायी जाती है। कुछ रासायनिक कमियों के कारण लैटराइट कम उपजाऊ रहती है।

क्षार युक्त मिट्टियों में रेह (reh), ऊसर (usar) तथा केलार (kelar) मिट्टियाँ आती हैं। ये मिट्टियाँ कृषि की दृष्टि से महत्त्वहीन तो हैं ही, हानिकारक भी हैं। उत्तरी बिहार, उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा राजस्थान के शुष्क भागों की मिट्टियाँ नमक तथा क्षार युक्त होने के कारण कृषि के लिए हानिप्रद सिद्ध हुई हैं। इस मिट्टी में खनिजों के जो कण क्षरित होने से बच जाने के कारण मिश्रित रहते हैं, वे रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप सोडियम, मैग्नीशियम तथा कैल्सियम के लवण और गंधकीय अम्ल उत्पन्न करते हैं। ऐसी मिट्टी ठोस होकर सिंचाई में अवरोध उत्पन्न करती है। फलतः उपजाऊ क्षेत्र भी इनके मिश्रण से अनुर्वर हो जाते हैं। ये लवण मिट्टी की ऊपरी सतह पर जम जाते हैं। जिन क्षेत्रों में नहर द्वारा सिंचाई होती है वहाँ यह शिकायत अधिक पायी जाती है। उदाहरण-स्वरूप पिछले २०-३० वर्षों से पंजाब के जिन क्षेत्रों में नहर से सिंचाई होती है, वे कृषि के अयोग्य हो गये हैं। इसमें क्षारों तथा लवणों की अधिकता और नाइट्रोजन तथा कार्बनिक पदार्थों की न्यूनता होती है। यदि गंगा के उपजाऊ मैदानों से हम इन हानिकारक भागों को नष्ट करने में सफल हो जायें तो हमें लाखों एकड़ भूमि कृषि के लिए उपलब्ध हो जाये।

हाईस्कूल और हायर सेकण्डरी कक्षाओं के लिए हमारे उपयोगी प्रकाशन

१. **जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

२. **वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ३·००
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

३. **प्रारम्भिक भौतिकी**—दयाप्रसाद खण्डेलवाल, मूल्य : ३·५०
(उत्तर प्रदेश बोर्ड द्वारा स्वीकृत)

४. **प्रैक्टिकल जन्तु-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

५. **प्रैक्टिकल वनस्पति-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : २·००

६. **सामान्य विज्ञान**—मेहरोत्रा, विद्यार्थी, खण्डेलवाल, मूल्य : ६·२५

७. **सरल माध्यमिक जीव-विज्ञान**—आर. डी. विद्यार्थी, मूल्य : ५·००
(राजस्थान बोर्ड द्वारा हाईस्कूल और हायर सेकण्डरी की कक्षा ९ और १० के लिए स्वीकृत)

श्रीराम मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२,००० मील के वेग से उड़ान?

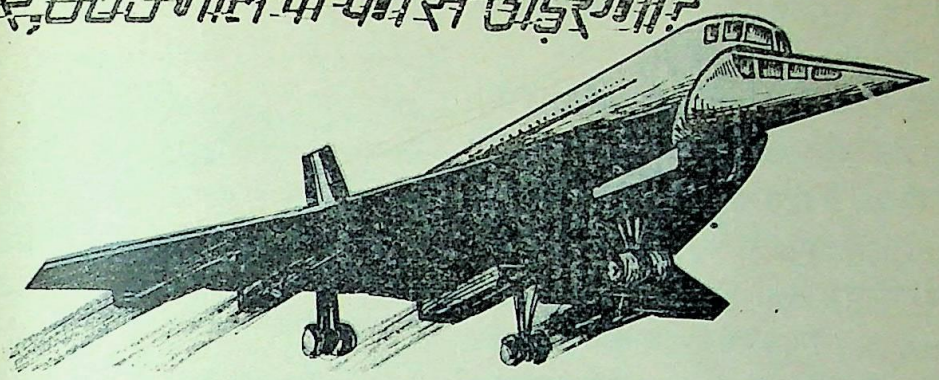

लन्दन से टोकियो ९० मिनिट में?

सुरेन्द्र शर्मा

तीव्र गति से तीव्रतर और तीव्रतम की ओर हमारी आकांक्षा आज उन्माद की सीमाएँ छूने लगी है, यह कहना मिथ्या नहीं। इस क्षेत्र में उड्डयन-विशेषज्ञों के वर्तमान प्रयत्नों को देखते हुए इस विलक्षण उपलब्धि की ५-७ वर्षों में ही सिद्धि की आशा रखी जा सकती है।

सारगर्भित योजनाएँ

अमरीका की FAA अर्थात् फेडरल-एविएशन एजेन्सी (Federal Aviation Agency) के आगे यान-निर्मायक जिन तीन प्रसिद्ध संस्थाओं ने अपने डिजाइन प्रस्तुत किये हैं, वे हैं—बोइंग, (Boeing), लॉकहीड (Lockheed) और नार्थ अमरीकनएविएशन (North American Aviation)। उक्त एजेन्सी ने उन डिजाइनों पर विचार-विमर्श करने के लिए २२० विशेषज्ञों की जो समिति बनायी है उसमें उड्डयन-विशेषज्ञों के साथ-साथ बड़ी एयरलाइन्स कम्पनियाँ भी हैं। एजेन्सी के प्रशासक श्री नजीब ई हेलेबी को अपना निर्णय निर्धारित करने में प्रेसीडेण्ट ज्हॉनसन का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त होने की आशा है।

इस उड़ान में ध्वनि का वेग (लगभग ७५० मील प्रति घंटा) तो पिछड़ी और पुरानी बात बन चुका है। १५०० मील प्र. घ. की प्रचलित उड़ानें और २००० मील प्र. घ. की प्रायोगिक उड़ानें आज की चर्चा के विषय हैं। उदाहरणार्थ, लास एन्जेलस से न्यूयार्क की हवाई यात्रा ५ घंटे से घटा कर २ घंटे तक ला देने और न्यूयार्क से पेरिस की यात्रा का समयांक ६ घंटे से २ घंटे पर ले आने की योजनाएँ बल पकड़ती जा रही हैं। आज तो यात्री लन्दन से केवल ९० मिनट में टोकियो पहुँच जाना चाहता है, जब कि कभी-कभी ट्राफिक की अधिकता के कारण लन्दन शहर से हवाई अड्डे तक ही पहुँचने में ९० मिनट से अधिक लग जाते हैं!

नवम्बर १९६२ में ब्रिटेन और फ्रान्स ने एक पारस्परिक अनुबन्ध किया था कि नुकीली नाक और त्रिकोणीय पंखों वाला ऐसा यान बनाया जाये जो १५५० मील प्र. घ. की गति से १०४ यात्रियों को बिठाये हुए उड़ा ले जा सके। लगभग दुगुनी ध्वन्यातीत गति वाले उस यान का नाम कन्कॉर्ड (Concorde) रखना निश्चित किया था। यात्रीवाहक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वन्यातीत (supersonic) यान के लिए संक्षिप्त नाम SST दिया हुआ है। उक्त अनुबन्ध अनुसार वह कन्कॉर्ड यान १९७० तक देना तय हुआ है।

इस अनुबन्ध की विज्ञप्ति ने अमरीका के उन-उड्डयन विशेषज्ञों को आश्चर्य में डाल दिया जो १९५६ से ठीक इसी दिशा में अध्ययनरत थे। उक्त विज्ञप्ति के अनुसार पेन अमरीकन वर्ल्ड एयरवेज (Pan American World Airways) ने गत वर्ष जून में वैसे ६ कन्कॉर्ड यानों का आर्डर दिया था। उसी आर्डर के संदर्भ में तत्कालीन अमरीकी प्रेसीडेण्ट केनेडी ने FAA के प्रशासक हेलेबी से चर्चित यानों के डिजाइनों के प्रस्ताव आमन्त्रित करने का अनुरोध किया था और यह इच्छा भी दर्शायी थी कि अमरीकी SST भी १९७० तक तैयार हो जायें तो उत्तम है। इस लेख के आरम्भ में उल्लिखित तीन डिजाइनों का प्रस्तुतीकरण इसी आर्डर के अन्तर्गत हुआ था।

कुछेक वर्तमान ध्वन्यातीत जेटयान

अमरीका के वर्तमान प्रेसीडेण्ट ज्हॉनसन ने जिन कुछेक ध्वन्यातीत जेटयानों की तुलना में लाकहीड-निर्मित लॉकहीड-ए-११ का डिजाइन पसन्द किया है, उनकी तुलनात्मक स्थिति निम्न भाँति है।

जनरल डिनेमिक्स बी-५८—यह यान लगभग १४०० मील प्र. घ. का वेग एक घण्टे तक बनाये रह सकता है, जबकि अधिकांश ध्वन्यातीत यान अपनी ध्वन्यातीत गति १०-१५ मिनट की मानो एक छलांग मात्र के रूप में बनाये रख पाते हैं। करोड़ों की लागत के इस बी-५८ डिजाइन के भी प्रयोग लाभकारी सिद्धनहीं हुए, क्योंकि जो ११६ यान बनाये गये उनमें ११ तो नष्ट हो गये।

नार्थ अमरीकन बी-७०—इसके लिए आशा की जाती है कि यह यान २००० मील की रफ्तार लगभग एक घण्टे तक बनाये रख सकेगा, किन्तु अभी तो यह निर्माणावस्था में ही है।

अन्य यान	गति, मील प्र. घं.	यात्री-संख्या
बोइंग-७३३	१८००	१५० से २२७
लॉकहीड सी-एल ८२३	२०००	२१८
नार्थ अमरीकन एन-ए-सी६०	१७५० से १८७ २०००	
इंग्लिश-फ्रेन्च कन्कॉर्ड	१४५०	१०४
सामान्य वर्तमान यान	५६०	१७६

यद्यपि लॉकहीड-२१ नामक जेटयान ने ७०,००० फुट की ऊँचाई पर २००० मील प्र. घं. की वेगमयी उड़ान में सफलता प्रदर्शित की है, तथापि इसे यात्रीवाहक रूप देने में अभी काफी कठिनाइयाँ सम्मुख हैं और उनके निवारण में समय भी पर्याप्त लगेगा।

वेग बढ़ता है तो ताप भी

यान की गति जितनी अधिक तीव्र होती है, उसे उतना ही अधिक वायु-घर्षण का सामना करना पड़ता है। उस घर्षण के फलस्वरूप यान चारों ओर से अत्यधिक तप्त हो जाता है। वह अति उच्च ताप यान के यात्रियों, चालकों, परिचारकों, टायरों, जलयंत्र-सज्जा तथा ईंधन और विद्युत-व्यवस्था के लिए हानिकारक है। उस ताप का दूसरा दुष्परिणाम यह होता है कि यान के ढाँचे की धातु अपना बल खो देती है। इसे लक्ष्य में रखते हुए ब्रिटिश-फ्रेन्च निर्माणाधीन कान्कॉर्ड यान को एल्यूमीनियम-मिश्रित धातु का बनाया जायेगा ताकि वह ३००°C तक के ताप में भी अप्रभावित रहे। इससे भी आगे बढ़कर अमरीकी निर्माताओं द्वारा प्रस्तुत डिजाइनों के यान ऐसी धातुओं के मिश्रण से मनाये जायेंगे जो कान्कॉर्ड की अपेक्षा डेढ़ गुने वेगवान तो होंगे ही, ताप भी ६६०°C। तक का सहन कर लेंगे। उन धातु-मिश्रणों के लिए स्टेनलैस स्टील, टाइटे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियम आदि धातुएँ प्रयुक्त की जाने की योजना है।

वेग-परिवर्तन में भी कठिनाई

ऐसे यान के निर्माण में वेग-परिवर्तन के समय कठिनाइयाँ उत्पन्न होंगी। ध्वन्यातीत वेग से उड़ते हुए यान को भूमि पर उतरने से पहले अवध्वनिक अर्थात् ध्वनि से निम्न वेग पर आना पड़ेगा। इसके लिए प्रचलित बोइंग यानों के खुलने-मुँदने वाली पांखों का डिजाइन उपयुक्त समझा जा रहा है। पांखों को खोल देने पर मन्द गति से भूमि पर दौड़ता हुआ यान अधिक सरलता से ऊँची उठान पा सकता है। ऊँचाई प्राप्त कर लेने पर उन पांखों को बन्द कर लिया जायेगा ताकि सीधी उड़ान में तीव्रगति प्राप्त की जा सके। इस डिजाइन में यह भी सुविधा रहेगी कि उतरते समय यान अधिकतः समतल स्थिति में रहेगा जिससे यान-चालक अपने भूमि-मार्ग को अधिक स्पष्टतः देख सकेगा।

उड़ानगत कठिनाइयाँ

बन्दूक की गोली की तरह छूटने वाले यान में बैठने का रोमांच अनोखा ही होगा। २००० मील प्रति घण्टे की चाल देखते हुए चालक को ३००० मील तक की दूरी का लाइन-क्लीयर लेना पड़ेगा। उस कल्पनातीत तीव्र उड़ान में चालकों, परिचारकों को ऐसी छोटी-छोटी सेवाओं का अवसर ही न मिल पायेगा कि यान का दिशा-परिवर्तन कर लें, रेडियो खोल लें अथवा अन्य कुछ कर लें। अतः ऐसी छोटी सेवाओं को कम्प्यूटर यन्त्रों द्वारा सम्पन्न कराया जायगा।

उस तीव्र वेग के फलस्वरूप वायु के झोंके भी काफी प्रचण्ड लगेंगे। ७०,००० फुट अर्थात् १४ मील की ऊँचाई पर वायु-प्रतिरोधन की क्या स्थिति होगी, यह भी अभी गणना करना है। अनुमान है कि उतनी ऊँचाई पर वायु की लगभग वह स्थिति होगी जो और भी ऊँचे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊर्ध्वाकाश में है। वहाँ वायु का दाब एक दम गिर जायगा, आक्सीजन की पूर्ति भी काम न देगी और सम्भव है, शरीर का रक्त एवं अन्य द्रव पदार्थ उबलने लगें। इसके निवारणार्थ यात्रियों के केबिनों को वायुदाब-सम्पन्न बनाया जायगा ताकि वायु-दाब की स्थिति प्रत्येक अवस्था में अनुकूल रहे।

१४-१५ मील की ऊँचाई पर उड़ने में अन्तरिक्ष-किरणों से तो कम ही खतरा रहेगा किन्तु सौर-तूफानों से बहुत बचना पड़ेगा। वे सौर-तूफान वर्षभर में ४-५ बार तो उठते ही हैं। इनकी पूर्व-सूचना प्राप्त करने के ऐसे यन्त्र तो बनाये ही गये हैं जो तूफान उठने से २५ मिनट पूर्व ही सावधान कर देते हैं। अतः योजना है कि ऐसे यन्त्रों का संजाल फैलाया जाये जो इन ध्वन्यातीत यानों को समय से पूर्व सावधान कर सकें। उक्त सूचना प्राप्त होते ही वे यान ७०,००० फुट की ऊँचाई से ५०,००० फुट के स्तर पर आ जायेंगे और यों उस तूफान से बच जायेंगे।

कर्णभेदी गड़गड़ाहट

ऐसे यान की उड़ान में यात्रीगण तो आनन्द ले रहे होंगे, किन्तु भूमि पर रहने वालों का आराम हराम हो जायगा। उन्हें १५ मील ऊँचा उड़ता यान दिखेगा तो नहीं, किन्तु कानों के पर्दे फोड़नेवाली यान की चीत्कार सभी के रोष का कारण बन जायगी। अतः FAA संस्था इस बात पर गम्भीरता से सोच रही है कि केवल कुछ शौकीनों की खातिर शेष जनता को यदि अनिवार्य असुविधा पड़नेवाली हो, तो इन योजनाओं को ही टोकरी में फेंक दिया जाए। फिलहाल तो वे अपने यहाँ लोगों को ऐसे गगनभेदी शोरगुल को सुनने-सहने की तालीम दे रहे हैं।

ऐसे यान भूमि से उठने पर आरम्भ में तो

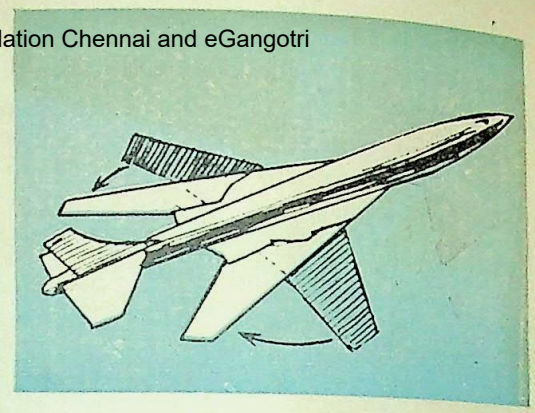

इस नये यान की पाँखें ऊँची-नीची की जा सकेंगी। पाँखें खोलकर कम गति पर भी ऊँची उठान सरल रहेगी और ध्वन्यातीत गति तक बढ़ाने के लिए ये पाँखें बन्द भी की जा सकेंगी। उतरते समय पुनः खोल ली जायेंगी

४०,००० फुट ऊँचाई प्राप्त करने तक अवध्वनिक वेग से उड़ान भरेंगे। तत्पश्चात् ७०,००० फुट की ऊँचाई प्राप्त करने के लिए ध्वन्यातीत वेग का आश्रय लेंगे। यों, उनकी गति जब ध्वनि की गति से भी आगे बढ़ जायगी तब वायु-तरंगों को एकबारगी तो इसकी पूर्व-सूचना ही न होगी कि पीछे कोई यान आ रहा है। पीछे से आता हुआ वह यान उन तरंगों में आकस्मिक भगदड़ मचा देगा और उन्हें चीरता हुआ निकल जायगा। वायु-तरंगों की वह भगदड़ बादलों की सी गडगड़ाहट उत्पन्न कर देगी और भूमि पर रहने वालों को लगेगा कि न जाने कहां तोपों पर तोपें छूट रही हैं!

उपरोक्त समस्त कठिनाइयों को अपने लक्ष्य में रखते हुए FAA के लिए समुचित निर्णय कर पाना निस्सन्देह अत्यन्त कठिन है और वह दिन अत्यधिक दूर नहीं, तो निकट भी नहीं, जबकि हम ध्वन्यातीत यान में उड़ते हुए, साथही छूटी हुई बन्दूक की गोली को पीछे छोड़ जायें!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

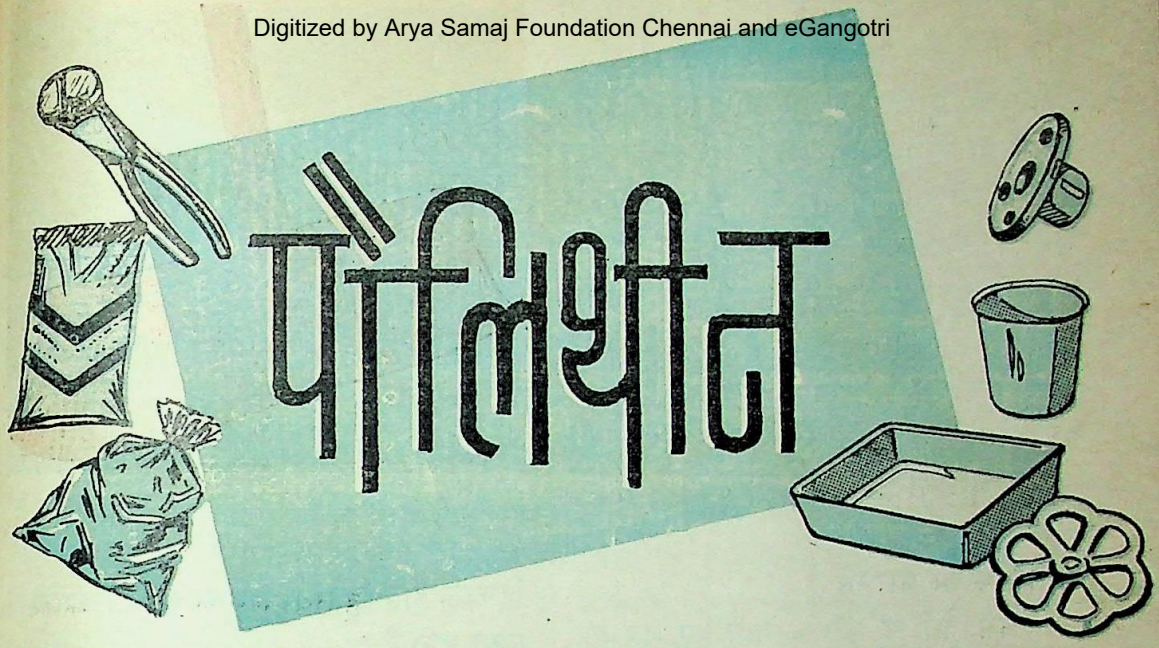

पौलिथीन

रमेशचन्द्र कपूर

दर्जी थान का कपड़ा उठाता है और आपके लिए सूट तैयार कर देता है; मोची काफ लेदर का टुकड़ा लेता है और आपके लिए खूबसूरत जूता तैयार कर देता है। इसी प्रकार राजमिस्त्री ईंट-चूने की सहायता से आपके लिए मकान खड़ा कर देता है। इन सबसे भिन्न एक कारीगर-वर्ग ऐसा भी है जो केवल कुछेक अणुओं को लेता है और उनसे अनेक फैन्सी वस्तुएँ बनाता रहता है। सुन्दर कप, रकाबियाँ, फूलदान, मशीनों के गीयर, बेयरिंग, फिल्में, लैन्स, कंघे, बिजली का सामान, मेजपोश आदि कुछेक वस्तुएँ उस अनन्त सूची में हैं जो यह नया कारीगर-वर्ग आपके लिए तैयार किये जा रहा है। आज वह अपने हजारों साथियों के साथ ऐसे जिस उद्योग में लगा हुआ है, उसे प्लास्टिक उद्योग कहते हैं। निश्चय ही, प्लास्टिक उद्योग का भविष्य अति उज्ज्वल है।

प्लास्टिक

प्लास्टिक शब्द एक विशेषण मात्र है और ऐसे पदार्थों की विशेषता व्यक्त करता है जो चाहें जिस रूप तथा आकार में न केवल बना-बनाकर मिटाये जा सकें, बल्कि मिटा-मिटा कर बनाये भी जा सकें। इसका सरलतम उदाहरण चिकनी मिट्टी है जिसे चाहे जिस आकृति में गढ़ लीजिए और पुनः उसे पिण्ड बनाकर चाहे जो दूसरा नया रूप दे दीजिए। हाँ, नव-निर्मित प्लास्टिक और मिट्टी के पिण्ड में यह अन्तर अवश्य रहेगा कि प्लास्टिक को यों सहज ही मिट्टी की तरह पिण्डाकार न बनाया जा सकेगा। कठोरता और स्थायित्व इसके वे प्रमुख गुण हैं जिनके कारण इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है।

यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि सरेस भी तो गरम करने पर नरम हो जाता है, पिघल जाता है और चाहे जिस रूप में ढलकर ठण्डा पड़ने पर कठोर भी हो जाता है; तो क्या सरेस को भी प्लास्टिक कहेंगे? एक दृष्टि से कह भी सकते हैं, क्योंकि प्लास्टिक पदार्थों के भी मुख्यतः दो भिन्न प्रकार हैं। एक तो वे हैं जो पहली बार गरम करने पर चाहे जिस रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में ढल जाते हैं और ठण्डे पड़ने पर कठोर भी हो जाते हैं, किन्तु पुनः किसी ताप पर द्रवित नहीं होते। दूसरे वे हैं जो पुनः गरम करने पर द्रवित हो जाते हैं और चाहे जो दूसरा नया रूप भी ले़ने योग्य हो जाते हैं। यों, सरेस दूसरी श्रेणी का प्लास्टिक कहा जा सकता है। प्रथम श्रेणी के पदार्थों के उपरोक्त गुणों को थर्मो-सेटिंग (thermosetting) कहते हैं और दूसरे श्रेणीगत पदार्थों के उपरोक्त गुण को थर्मोप्लास्टिक कहते हैं। इस लेख का विषय पौलिथीन, थर्मोप्लास्टिक श्रेणी में आता है।

पौलिथीन का प्रारम्भ

तीस वर्ष से अधिक नहीं हुए जब यह पदार्थ सर्वप्रथम गिब्सन और फासेट (Gibson and Fawcett) के हस्तगत हुआ। तत्पश्चात् भी औद्योगिक पैमाने पर इसका उत्पादन प्रारम्भ हुए बीस ही वर्ष बीते हैं। इतने कम समय में भी इसकी व्यापकता तथा लोकप्रियता आश्चर्यजनक है। इसका रहस्य यही है कि इसके बने हुए पदार्थ वजन में अत्यन्त हलके फिर भी इस्पात की भाँति मजबूत और

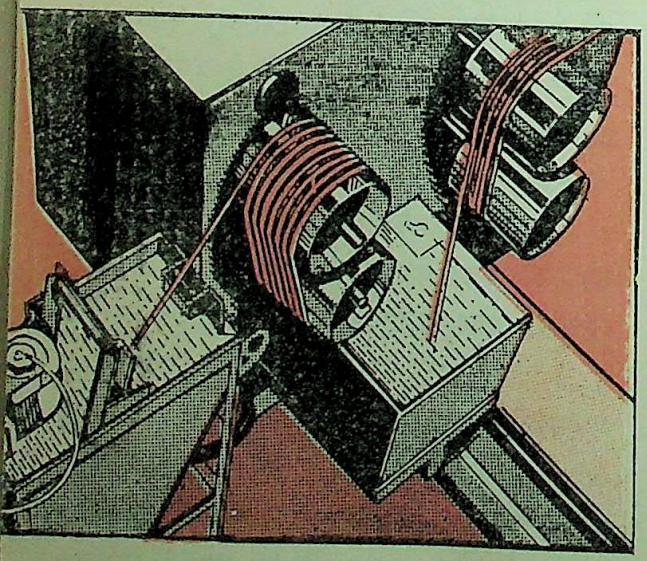

जाल, रस्से तथा कपड़े बुनने योग्य पौलिथीन के रेशों को मजबूत बनाने के लिए क्रिया के अन्तर्गत उन्हें पानी में से भी गुजारा जाता है

फर्श साफ करने का यह ब्रुश पूर्णतः पौलिथीन का ही बना है

टिकाऊ होते हैं तथा जंग लगने की झंझट से मुक्त होते हैं।

जिन दिनों इसका आरम्भकाल था, उन दिनों जीवन-स्तर काफी ऊँचा उठा होने के कारण नये फैशन और नयी वस्तुओं की माँग बराबर बढ़ती जा रही थी। खासकर तैयार खाद्य-पदार्थ पैक करे-कराये अर्थात् रैडीमेड पैकिटों के रूप में माँगे जाते थे। अतः अनेक ऐसे पात्र जो पहले कलईदार अथवा इनेमलयुक्त लोहे की चद्दरों के (बाल्टियाँ, टब आदि) बनते थे, वे भी पौलिथीन के बनाये जाने लगे।

पौलिथीन-उद्योग

यह ऊपर कहा जा चुका है कि पौलिथीन थर्मोप्लास्टिक की श्रेणी में आता है। अतः स्वाभाविक है कि गरम करने पर यह नरम हो जाता है और तब इसे पुराने आकार की जगह नया आकार दिया जा सकता है। बड़े पैमाने पर पौलिथीन उत्पादित करने की मुख्य तीन विधियाँ हैं। तीनों विधियों में प्रमुख भेद भट्ठी की ताप क्रिया तथा उत्प्रेरक के चुनाव में रहता है। पहली विधि पुरानी है अर्थात् उच्च-दाब-प्रणाली है। इसमें आक्सीजन का उपयोग उत्प्रेरक के स्थान पर किया जाता है। शेष दो विधियाँ, जीगलर (Zeigler) और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection; Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिलिप्स (Phillips) विधियाँ अपने अपने उत्पादक-संस्थानों के गूढ़ व्यापारिक रहस्य होने के कारण प्रकट नहीं की गयी हैं।

इस श्रेणी के पदार्थों का रासायनिक नाम पौलिमर्स (Polyemrs) है और क्रिया विधि का नाम पौलिमराइजेशन है। इसे बहुमाजन भी कहते हैं। क्रियाविधि की भिन्नता के फलस्वरूप उत्पन्न पदार्थों के गुणों तथा उपयोगिता में भी भिन्नता आ जाती है। सन् १९३३ के आरम्भिक प्रयोगों में छोटे-छोटे विस्फोट प्राय: ही होते रहने से कुछ समय तक इस दिशा में प्रगति रुकी रही। तत्पश्चात् उच्च-दाब विधि की सहायता से विस्फोटों के संकट को टाला गया। फिर तो पौलिथीन का उत्पादन बेखटके होने लगा। इसके बनाने में जिस एथिलीन की आवश्यकता पड़ती है, उसे अनेक प्रकारों तथा अनेक प्रकारों द्वारा प्राप्त किया जाता है। एथिलीन मुख्यत: एल्कोहल से तैयार किया जाता है और एल्कोहल प्राप्त करने का सरल साधन है चीनी-मिलों से बेकार निकलने वाला शीरा प्राकृतिक गैसें—एथेन तथा हाइड्रोकार्बन से एसीटिलीन गैस प्राप्त करके इन दोनों को एथिलीन में परिवर्तित किया जा सकता है। तेल-शोधन के अन्तर्गत पेट्रोलियम से भी एथिलीन प्राप्त कर लिया जाता है।

उच्च-दाब-प्रणाली में और उत्प्रेरक के स्थान पर आक्सीजन की उपस्थिति में एथिलीन गैस को वायुमण्डलीय दाब से १०० गुना अधिक अर्थात् १४७०० पौण्ड प्रति वर्ग इंच के दाब में चापित करना पड़ता है और साथ ही २००°C तक का ताप बनाये रखना पड़ता है। वास्तव में यह एक लम्बी शृंखलायुक्त

पौलिथीन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा वृहद् उपयोग विद्युत केबुल बनाने में होता है। चित्र में केबुल के आन्तरिक भाग दिखाने के साथ-साथ तैयार केबुल भी प्रदर्शित है

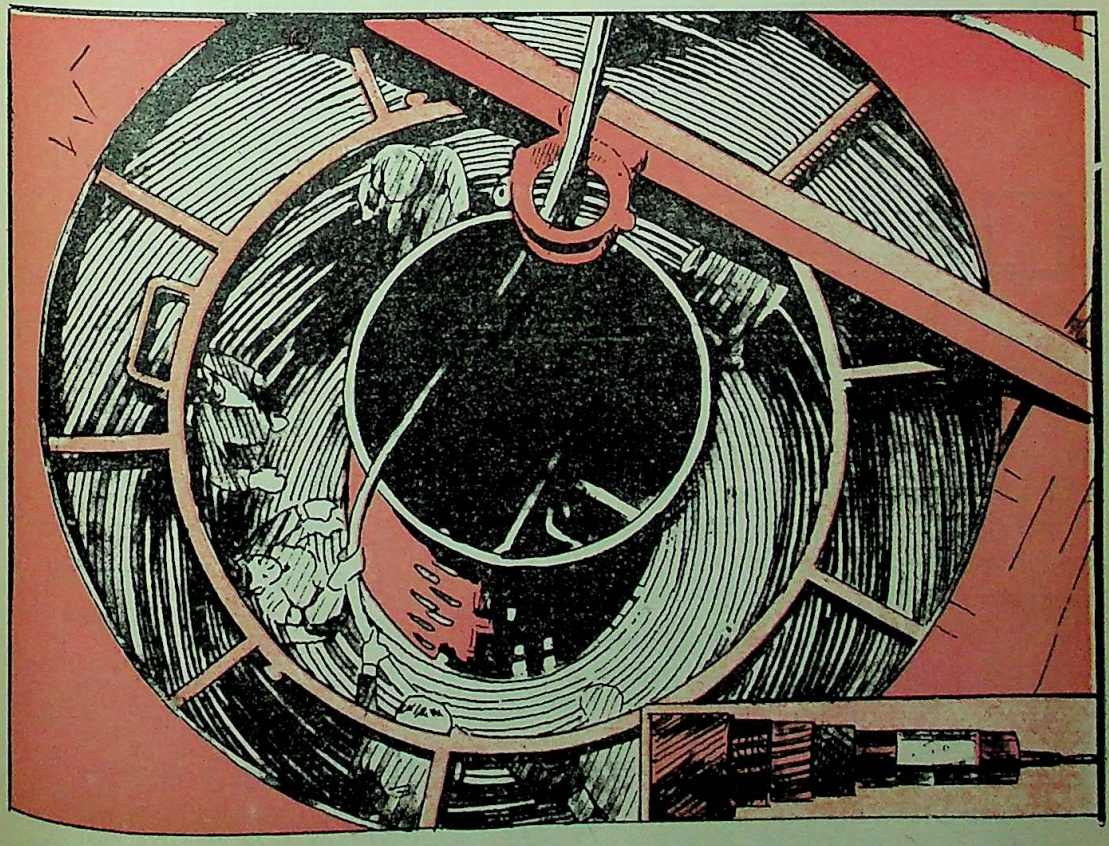

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

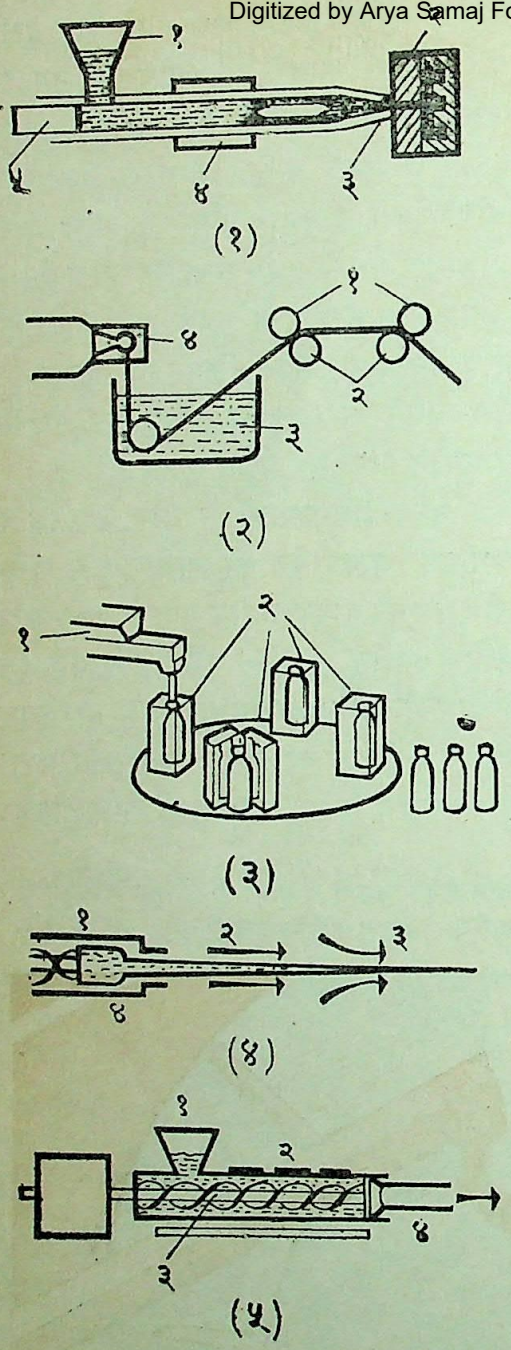

ऊपर से नीचे : (१) इन्जेक्शन मोल्डिंग विधि—इसमें पिघला हुआ पौलिथीन एक सँकरे मुँह की पिचकारी द्वारा फरमे में दबाया जाता है। (२) एक्सट्रूडिंग फिल्म—इसमें पतली पट्टी के रूप में पौलिथीन को दो बेलनों की दाब से गुजारा जाता है। (३) ब्लो मोल्डिंग—इसमें शीशियाँ, डब्बे जैसे पोले पात्र बनाये जाते हैं। (४) एक्सट्रूडिंग फिलामेण्ट्स—पिछली डाई से गुजारे बाद रेशों को खींचा तथा ठण्डा किया जाता है। (५) पाइप-एसक्सट्रूजन—विशेष प्रकार की डाइयों द्वारा पौलिथीन के पाइप बनाये जाते हैं

पारदर्शक अर्थात् अतिशोधित पैरैफिन (super paraffin wax) है। यथा—

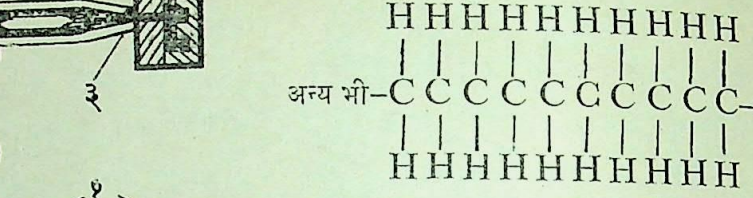

जीगलर तथा फिलिप्स विधियाँ व्यापारिक रहस्य होने पर भी अनुमान है कि जीगलर-विधि में एल्यूमीनियम अल्काइल तथा फिलिप्स-विधि में क्रोमियम आक्साइड का उपयोग उत्प्रेरकों के स्थान पर होता है। दोनों विधियों में पुरानी विधि की अपेक्षा कहीं कम दाब और ताप की आवश्यकता पड़ती है। पुरानी विधि से निम्नतर घनत्व का मोम जैसा पौलिथीन प्राप्त होता है। यह अर्द्धपारदर्शी तथा अमणिभीय होता है। दोनों नवीन विधियों से प्राप्त पौलिथीन की अपेक्षा यह घटिया पौलिथीन छोटी तथा अधिक शाखाओं-युक्त कार्बन-शृंखला का होता है। इसके विपरीत, जीगलर तथा फिलिप्स विधियों से प्राप्त पौलिथीन निश्चित मणभीय आकारों में तथा पारदर्शी होता है। इसकी कार्बन-शृंखलाएँ लम्बी और कम शाखाओंयुक्त होती हैं। इस कोटि के पौलिमर के एक अणु में CH के ७५० से ३५०० तक युग्म होते हैं। पौलिमर का उत्पादन तथा तत्पश्चात् उससे विभिन्न वस्तुएँ बनाना दो विभिन्न निर्माणशालाओं में सम्पन्न किया जाता है।

विविध वस्तुएँ बनाने के लिए पौलिमर चूर्ण रूप में दिया जाता है। उसमें आवश्यकतानुसार रंग मिलाये जाते हैं। अन्य प्रकार के प्लास्टिक बनाने के लिए पौलिमर के चूर्ण में कुछेक विजातीय द्रव्य इस अनुपात में मिलाये जाते हैं कि केवल द्रव्य की ही मात्रा बढ़ने पाये, गुणों में अन्तर न आने पाये। बढ़िया पौलिथीन बनाने के लिए इस प्रकार के मिश्रणों की सहायता नहीं ली जाती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें गुण हैं, तो अवगुण भी

पौलिथीन हाइड्रोकार्बन का अतिशोधित रूप है। अतः इसमें कुछेक विद्युतीय गुण अवश्य रहते हैं। सामान्य ताप पर यह किसी भी विलायक में घुलनशील नहीं। ७०-७२°C से अधिक तप्त विलायक हों तो विशेषतः खनिज तेलों, टाल्युइन, बेन्जीन आदि में यह घुल जायगा। साधारण अवस्था में यह एल्कोहल, एसीटोन, पानी तथा वानस्पतिक तेलों में अघुलनशील है और इसका यही गुण इसकी उपयोगिता का रहस्य है। पराबैंगनी रश्मियों तथा ओजोन से भी यह अप्रभावित रहता है। सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक तथा नाइट्रिक एसिड उच्च ताप पर भी इसे प्रभावित नहीं कर पाते। हाँ, सान्द्र गंधक के तेजाब में यह द्रवित हो जाता है। इसकी तनाव-क्षमता लगभग २०० पौण्ड प्रति वर्ग इंच होती है।

पौलिथीन के उपयोग

विभिन्न विधियों से प्राप्त पौलिथीन की विविध वस्तुएँ तैयार की जाती हैं। इन्जेक्शन मोल्डिंग (injction moulding) विधि से ठोस वस्तुएँ तथा ब्लो मोल्डिंग (blow moulding) विधि से पोली वस्तुएँ बनायी जाती हैं। अनेक प्रकार के पाइप, कपड़े तथा जालियाँ बनाने के रेशे तैयार किये जाते हैं। पौलिथीन की चादरों के थान के थान बनाये जाते हैं जो पैकिंग के काम में बहुत आते हैं। विशेष प्रकार के कागजों तथा अन्य वस्तुओं पर इसकी पतली सतह (thin film) चढ़ाकर उन वस्तुओं को इसकी अतिरिक्त मजबूती प्रदान की जाती है। मौसम अनुसन्धान के लिए आवश्यक अति विशाल बैलून इसी के बनाये जाते हैं।

इन सबसे बढ़कर पौलिथीन का सर्वप्रधान गुण है विद्युत्पृथक्करण (electric insulation)। अतः इसी प्रयोजन में इसकी सबसे अधिक खपत होती है। वस्तुतः पौलिथीन का प्रारम्भ ही द्वितीय महायुद्ध के अन्तर्गत ब्रिटिश रैडार यन्त्रों के लिए पृथक्कारी के रूप में हुआ था। अब तक के प्राप्य समस्त पृथक्कारिक में पौलिथीन के ही पृथक्कारी श्रेष्ठ भी हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि पौलिथीन हाइड्रोकार्बन है, अतः यह पानी से सर्वथा अप्रभावित रहता है। इसके इसी गुण के कारण रैडार यन्त्रों में तथा एक लाख वोल्ट तक की अति उच्च विद्युतधारा में पृथक्कारों के स्थान पर यही काम आता है।

पौलिथीन ताप का भी प्रबल अवरोधक है। इसलिए पानी के पाइपों के लिए भी यही सर्वोत्तम रहता है। इसके बने पाइप, धातुनिर्मित पाइपों की भाँति अत्यधिक सर्दी में पानी जम जाने के कारण फट नहीं जाते। वास्तविकता यह है कि उनमें पानी जम ही नहीं पाता। ●

इन्जेक्शन मोल्डिंग विधि द्वारा तैयार किया गया बड़ा बर्तन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

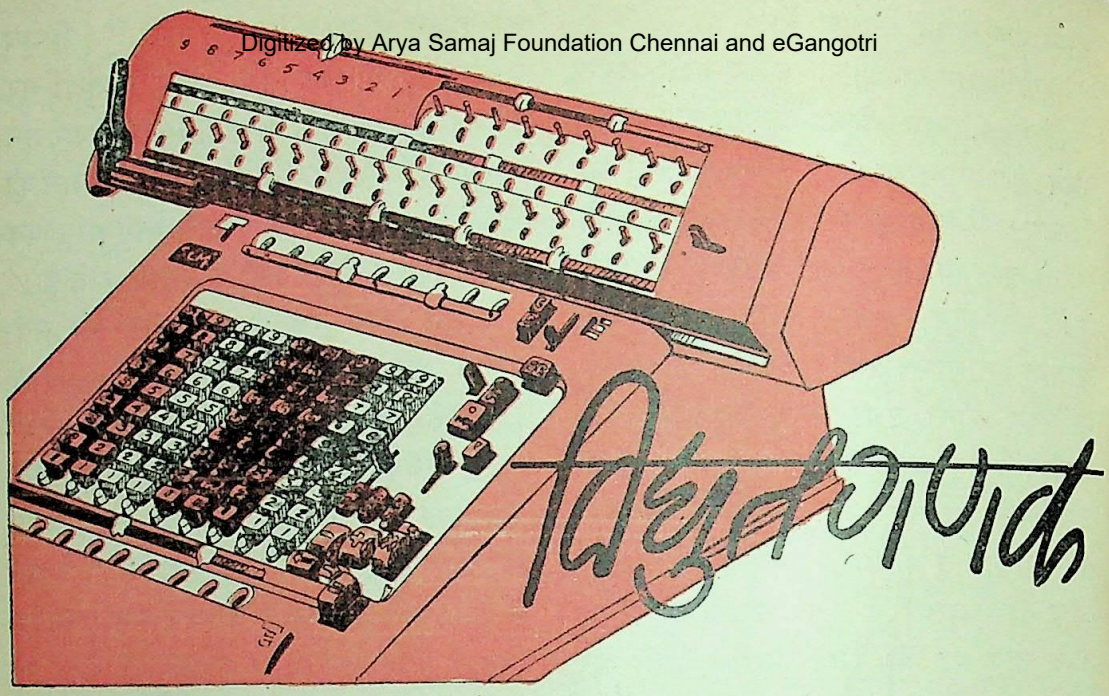

विद्युत-गणक

गुणाकर मुले

बेंजामिन फ्रैंकलिन के शब्दों में कहा जाये तो, आदमी एक ऐसा जानवर है जो यंत्र बनाना और उनका उपयोग करना जानता है। सभ्यता के प्रारम्भ से आदमी ऐसे यंत्रों का निर्माण करता आया है जो, या तो किसी वस्तु को आकार-प्रकार प्रदान करते हैं, या गति देते हैं। कुम्हार का चक्र और उत्तोलक (लीवर) मनुष्य द्वारा आविष्कृत आदि यंत्र कहे जा सकते हैं। केवल शक्ति प्रदान करने वाले यंत्रों का ही विकास होता रहा हो, ऐसी बात नहीं है। वस्तुतः सभी प्राणियों की तरह, यंत्र भी दो दिशाओं की ओर विकसित होते रहे हैं—एक शक्ति की ओर, दूसरे मस्तिष्क की ओर। एक प्रकार के यंत्रों में हाथ का विकास देखने को मिलता है, तो दूसरे में बुद्धि का। और ये दोनों प्रकार के यंत्र, शक्ति के यंत्र और बुद्धि के यंत्र, एक-दूसरे के परिपूरक हैं। मानव के हाथों की सहायता करनेवाले यंत्रों की तो आज इतनी भरमार है कि उनके नाम गिनाना भी संभव नहीं है; परन्तु, बाह्य-जगत से सामग्री एकत्र करके मस्तिष्क की मदद करने वाले यंत्र प्रायः प्रयोगशालाओं में ही देखने को मिल सकते हैं। दूरदर्शी, कैमरा, वर्णक्रमदर्शी, विद्युत-गणक, विद्युत-सूक्ष्मदर्शी आदि यंत्र इसी कोटि के हैं। नीचे की पंक्तियों में इनमें से केवल एक—विद्युत-गणक-यंत्र की चर्चा है।

विद्युत-गणकों की वर्णमाला

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह एक ऐसा यंत्र है जिसमें विद्युतगति से गणित की गणनाएँ होती हैं। पहले हम इसके विद्युत पक्ष को छोड़कर, इसके गणक पक्ष पर ही विचार करेंगे। अंकगणित की गणनाओं में हम दस अंक चिह्नों (१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, ०) और कुछ मौलिक परिकर्मों (+, ×, ÷, −) का इस्तेमाल करते हैं; परन्तु, यह परमावश्यक नहीं कि संख्याओं की गिनती के लिए ठीक दस अंक-संकेतों की ही जरूरत हो। दस से कम या अधिक अंक-संकेतों से भी समस्त संख्याओं को व्यक्त करना संभव है। १० के स्थान पर १२ या १६ या ३ हम गणना का आधार चुन सकते हैं। केवल दो अंक-संकेतों—० और १ से भी समस्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संख्या-क्रम को लिखा जा सकता है। जैसे दशमानपद्धति में ४१६३२ का अर्थ होता है, $४\cdot१०^{४}+५\cdot१०^{३}+६\cdot१०^{२}+३\cdot१०+२$, उसी प्रकार द्विमान-अंक-पद्धति में—

१ = १
२ = १·२ + ०
३ = १·२ + १
४ = १·२² + ०·२ + ०
५ = १·२² + ०·२ + १
६ = १·२² + १·२ + ०
७ = १·२² + १·२ + १
८ = १·२³ + ०·२² + ०·२ + ०
९ = १·२³ + ०·२² + ०·२ + १
१० = १·२³ + ०·२² + १·२ + ०
११ = १·२³ + ०·२² + १·२ + १

इत्यादि।

अब यदि २ के विभिन्न घातों के केवल गुणांकों (coefficients) को ही लिखें—

१ = १	७ = १११
२ = १०	८ = १०००
३ = ११	९ = १००१
४ = १००	१० = १०१०
५ = १०१	११ = १०११
६ = ११०	१२ = ११००

इत्यादि।

तो हम कहेंगे कि संख्याओं को द्विमान-अंक पद्धति में व्यक्त किया गया है। इसमें केवल दो ही अंक-संकेतों का प्रयोग हुआ है—० और १। हमारी प्रचलित दशमान-पद्धति की तरह इस पद्धति में भी प्रत्येक अंक अपनी स्थिति के अनुसार २ का घात दरशाता है। इस पद्धति में जोड़, गुणा आदि क्रियाएँ भी सरल हैं। जैसे; यदि ५ और ६ को जोड़ना हो तो द्विमान-पद्धति में हम, १०१ और ११० को जोड़कर प्रथम २११ (अर्थात् २·२² + १·२ + १) प्राप्त करेंगे। परन्तु, चूंकि, २·२² = २³, इसलिए २११ को हम १०११ लिखेंगे।

आधुनिक विद्युत-गणकों में इसी द्विमान-पद्धति का इस्तेमाल होता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि विद्युत-उपकरणों में दो ही सुस्थिर स्थितियाँ होती हैं—चालू (on) और बन्द (off) या आवेश (charge) और निरावेश (no-charge)। और फिर, अंकगणित के मूल परिकर्म केवल दो ही हैं—वृद्धि (+) और ह्रास (—)। ६२३ को यदि ४३ से गुणा करना तो तो ६२३ को ४३ बार जोड़ने से भी काम चल सकता है।

शताब्दियों से गणितशास्त्र, गणितज्ञों के इसी प्रयास में विकसित होता रहा है कि गणितीय-गणनाओं में कम से कम समय लगे, कम से कम स्थान लगे अर्थात् अधिक से अधिक सूत्रीकरण हो; लेकिन उपरोक्त द्विमान-पद्धति के विवेचन से तो ऐसा लगता है कि हम पुनः पीछे की ओर जा रहे हैं। नहीं! यह सही है कि मानव-मस्तिष्क ही सबसे अच्छा गणक-यंत्र है; लेकिन यह है बहुत धीमी गतिवाला। मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों की अपनी सीमाएँ हैं; इसलिए मानवीय-सीमाओं के परे के बाह्यजगत को ग्रहण करने के लिए मनुष्य ने ज्ञानेन्द्रिय-सहायक-यंत्रों का आविष्कार किया है। करोड़ों प्रकाश-वर्ष (light-years) दूर की नीहारिकाओं को देखने के लिए उसने दूरदर्शियों का निर्माण किया; दूर की मन्द आवाज को सुनने के लिए उसने वायरलेस और लाउडस्पीकर की खोज की; सूक्ष्म जगत देखने के लिए एलेक्ट्रान-सूक्ष्मदर्शी का निर्माण किया और वर्षों का समय लेनेवाली गणनाओं को मिनटों में हल करने के लिए एक विद्युत-मस्तिष्क (electronic brain) का भी आविष्कार कर डाला।

गणकों का इतिहास

आदि-मानव, अंक-संकेतों का आविष्कार करने के पहले, अपने हाथों की अंगुलियों पर गणनाएँ करते देखे जा सकते हैं। प्राचीन ग्रीस और रोम में एबेकस (abacus) पर गणनाएँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

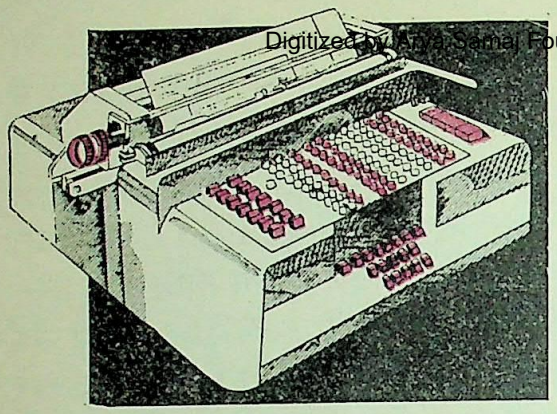

स्वचालित (रोबट) कंश रजिस्टर यंत्र। १८८४ में अमरीकी वैज्ञानिक, जेम्स रिटी द्वारा आविष्कृत यंत्र का यह परिष्कृत एवं आधुनिक रूप है

होती थीं; चीन और जापान में आज भी एबेकस का इस्तेमाल देखने को मिल सकता है। इतिहास का सर्वप्रथम गणक-यंत्र (computer) तैयार करने का श्रेय है, फ्रांस के गणित-प्रतिभा पास्कल (१६२३-६२) को। घड़ियों के दंतुर चक्रों (notched wheels) को सिलिंडरों के साथ जोड़कर १६४२ में पास्कल ने यह गणक-यंत्र तैयार किया था। चक्रों की योजना इस प्रकार की थी कि इकाई वाले चक्र के दस दंतुरों का एक चक्कर पूर्ण हो जाने पर दहाई वाले चक्र का एक दंतुर आगे सरकता था। इसी प्रकार, दहाई वाले चक्र का एक चक्कर पूर्ण हो जाने पर सैकड़े वाले चक्र का एक दंतुर आगे सरकता था और यह क्रम चलता रहता था। पास्कल के इस प्रथम गणक-यंत्र में छह सिलिंडर थे। अर्थात् उस गणक से १००००० तक की जोड़-गणनाएँ सम्भव थीं। सिलिंडरों के साथ संलग्न हैन्डलों को घुमाकर ये गणनाएँ की जाती थीं। अनेक प्रकार के बिक्री-केन्द्रों में मूल्य जोड़ने के लिए और द्रुतवाहनों की किलोमीटर-दूरी मापने के लिए इसी प्रकार के विकसित गणक-यंत्रों का इस्तेमाल होता था। कालान्तर में सन् १६६७ में जर्मनी के दार्शनिक-गणितज्ञ लाइबनिट्ज (१६४६-१७१६) ने इस यंत्र में गुणा की क्रिया भी स्थापित की। तब से यह यंत्र 'पास्कल-लाइबनिट्ज गणक' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पिछली शताब्दी में ऑक्सफोर्ड-विश्वविद्यालय में गणितशास्त्र के प्राध्यापक चार्लेस बॅबेज ने अनुभव किया कि गणनाएँ करते-करते आदमी का दिमाग थक जाता है; और इस प्रकार, गलतियाँ हो जाने की संभावनाएँ रहती हैं। बॅबेज ने यह भी सच ही कहा, 'एक अच्छे मस्तिष्क के लिए आंकड़ों का जोड़, गुणा, भाग आदि करना सबसे निम्न कोटि का बौद्धिक कार्य है। अतः क्यों न यह कार्य हम मशीनों के हवाले कर दें?' बॅबेज ने एक ऐसा मॉडल गणक-यंत्र तैयार किया जिसमें १८ चक्र थे और वह पांच अंकोंवाली संख्याओं की गणनाएँ कर सकता था। बाद में बॅबेज ने एक ऐसे विशाल गणक इंजन की योजना तैयार की जिसमें लगभग ५०,००० कल-पुर्जे होंगे और जो एक मिनट में साठ जोड़ करके प्रिंट कर सकें और पचास अंकोंवाली दो संख्याओं का एक मिनट में गुणा कर सकें। इस मशीन के लिए उन्होंने २३९ ड्राइंग तैयार किये थे और अनुमान लगाया था कि वह इंजन लगभग दो टन वजन का होगा; परन्तु बॅबेज अपनी इस महान् योजना को पूर्ण नहीं कर पाये। उनके सपने अपने समय से सौ वर्ष आगे के थे। उस समय इंजिनीयरिंग विज्ञान इतना विकसित भी नहीं हो पाया था कि वह बॅबेज के जटिल यंत्र के लिए आवश्यक शक्ति का समायोजन कर सके।

सन् १९३५ में एक नये प्रकार के इलेक्ट्रानिक-ट्यूब पर इंजिनीयरों की नजर पड़ी। इसका एक सरल नाम 'फ्लिप-फ्लॉप' (flip-flop) भी है, जो इसके कार्य का सही द्योतक है। दो 'फ्लिप-फ्लाप' ट्यूबों को जोड़ने पर विद्युत-प्रवाह को एक सेकंड में दस लाख बार आगे-पीछे स्विच (switch) किया जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है। इस ट्यूब की यह विशेषता है कि इसमें से विद्युत प्रवाहित भी हो सकती है और यह प्रवाह को पूर्णतः रोक भी सकती है। गणतिज्ञों ने तत्काल इस उपकरण के महत्त्व को समझ लिया। उन्होंने सोचा कि जो उपकरण एक सेकंड में दस लाख गणनाएँ कर सकता है या पूर्णरूप से 'मृत' हो सकता है, उस पर एक नये प्रकार की गणना-पद्धति का भार सौंपा जा सकता है। उस फ्लिप-फ्लॉप निर्वात ट्यूब की चालू और बन्द स्थिति हमारी द्विमान-अंक-पद्धति के ० और १ का प्रतिनिधित्व कर सकती है और गणित के समीकरण विद्युतवेग से हल किये जा सकते हैं यह सब सोचकर इंजिनीयर गणक-यंत्र तैयार करने में जुट गये।

सन् १९४४ में पहला विद्युत-गणक तैयार हो गया। उसे तैयार करने में पांच वर्षों का समय लगा। उसमें २०० मील तार, ३००० रिले, १५० मोटर, २३,००० इलेक्ट्रानिक-ट्यूब और ३ टाइपराइटरों का संयोजन था। उसमें कुल ३५,००० कल-पुर्जे थे और उसका वजन था १०० टन। उस विद्युत-गणक—एनियाक (ENIAC)—से बमों की सारणियाँ तैयार की गयीं। किसी तोप-गोले के अपने निशाने पर पहुँचने के पहले यह 'गणक' उस गोले का प्रक्षेप-पथ (trajectory) तैयार कर देता था। बॅबेज का सौ वर्ष आगे का वह स्वप्न साकार तो हुआ, परन्तु मानव के सपनों की भी क्या कोई सीमा है?

ENIAC एक समय में केवल बीस अंकों को ही याद रख सकता था। वह केवल ३००० अंकों का संग्रह कर सकता था और दो संख्याओं को जोड़ने में उसे ३००,००० माइक्रो सेकंड (micro second) का समय लगता था। १००,००,०० माइक्रोसेकंड का १ सेकंड होता है। अर्थात् लगभग $\frac{1}{3}$ सेकंड। दूसरा विद्यत-गणक MARK I केवल ३०,००० माइक्रोसेकंड में दो संख्याओं को जोड़ देता था और उसकी अंक-संग्रह-क्षमता ४००,००० थी। MARK II, जो १९५२ में तैयार हुआ, ८० लाख सूचना-इकाइयों के संग्रह की क्षमता रखता है और ६० माइक्रोसेकंड में दो संख्याओं को जोड़ सकता है। MARK III, जो १९५४ में तैयार हुआ, ५ करोड़ अंकों के संग्रह की क्षमता रखता है और केवल १४ माइक्रोसेकंड में दो संख्याओं को जोड़ सकता है। UNIVAC एक सेकंड में १००,००० गुणन-क्रियाएँ कर सकता है। ZEPHYR तो एक प्रकार का वृहद् शब्द-कोष ही है। यह अंग्रेजी भाषा का तीन विदेशी भाषाओं में अनुवाद करता है। IBM 704 के शब्दकोश में ६०,००० शब्द हैं और इसमें १,१७९,६४८ स्मृतिकोषों की व्यवस्था की गयी है। सन् १९६३ में न्यूयार्क में एक ऐसा गणक-यंत्र लगाया गया है जो एक मिनट में १२०,००० कानूनी मामलों को जांच सकता है। विशिष्ट विषयों से सम्बंधित सांकेतिक शब्द कार्ड पर पंच कर दिये जाते हैं और वही कार्ड गणक-यंत्र में डाल दिये जाते हैं। गणना-यंत्र में रोशनी जलती-बुझती रहती है और रीलें घूमती जाती हैं। अंत में कागज के एक रोल पर, ९२० पंक्तियाँ प्रति मिनट की गति से उत्तर आ जाता है। ऐसी सूचना एकत्र करने में एक व्यक्ति को सप्ताहों का समय लग सकता है।

दूसरा गणक-यंत्र, एक सेकंड में १३ अंकोंवाली दो संख्याओं के, जैसे, ४५७८९७-३२१५४२३ और ७३२१४५७६८३५३२ के गुणनफल को निकालने के साथ-साथ इसी प्रकार के चार हजार अन्य सवालों को हल कर देता है। एक नया गणक-यंत्र, २ मिनट ५९ सेकंडों उन सभी भिन्न समीकरणों को हल कर देता है जिनके द्वारा ५ अरब वर्ष पूर्व हुए सूर्य के उद्भव पर प्रकाश पड़ता है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जटिल प्रश्न को हल करने के लिए लगभग ८ करोड़ गणनाएँ करनी पड़तीं।

शुरू के गणक-यंत्रों में पंच किये हुए कार्डों का प्रयोग होता रहा, परन्तु अब चुम्बकीय-फीतों का इस्तेमाल होने लग गया है। चुंबकीय फीतों पर अंकित तथ्यों एवं सूचनाओं के रूप में गणक-यंत्र बहुत अधिक प्रमाण में तथ्यों एवं सूचनाओं का संग्रह कर सकता है, उन तथ्यों की परस्पर तथा अन्य नये तथ्यों से तुलना कर सकता है तथा उनके परिणामों की सूचना भी दे सकता है। आज एक सेंटीमीटर चौड़ी चुंबकीय फीते की रील चुंबक-बिन्दुओं के रूप में २५,००० कार्डों की सूचनाओं को संग्रहीत कर सकती है। साथ ही, २४०० फुट लम्बा फीता केवल छह मिनटों में खुल सकता। समय की बचत का सबसे बढ़िया अंग है, इस गणक-यंत्र का 'स्मृति-ड्रम'। इसकी एक वर्गइंच सतह पर अंकित एक हजार चुंबकीय-बिंदु, किसी भी समय, ज्ञात उत्तरों के रूप में, एक सेकंड के हजारवें हिस्से में हाजिर हो जाते हैं।

समय में तो कटौती हो गयी; परन्तु इलेक्ट्रानिक-ट्यूबों और अन्य कलपुर्जों की वृद्धि के साथ-साथ गणक-यंत्र का आकार भी बढ़ने लगा। विद्युत-गणक वाले भवन को वातानुकूलित रखने के लिए भी अधिक खर्च आने लगा। वैज्ञानिक ऐसे उपकरण की खोज में जुट गये जो इलेक्ट्रानिक ट्यूबों का स्थान ले सके। अंत में, सन् १९४८ में ट्रान्जिस्टर के आविष्कार की घोषणा हुई। हम देख ही रहे हैं कि इन ट्रान्जिस्टरों ने हमारे रेडियो को कितना छोटा बना दिया है। उसी प्रकार वृहदाकार विद्युत-गणकों को इन ट्रान्जिस्टरों ने काफी छोटा बना दिया है। इनका जीवन-काल भी इलेक्ट्रानिक ट्यूबों से अधिक लम्बा है; इनके इस्तेमाल में शक्ति बहुत कम लगती है और विद्युत-गणक के भवन को वातानुकूलित रखने की भी कोई जरूरत नहीं है।

अभी हाल ही में टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च, बम्बई ने एक आधुनिक गणक-यंत्र लगाया है। इसे मिनेसोटा (अमरीका) के कन्ट्रोल डेटा कार्पोरेशन ने तैयार किया है और भारत सरकार ने इसे लगभग एक करोड़ रुपये में खरीदा है। इस यंत्र का नाम है, CDC-3600। इस गणक से १५ अंकों वाली संख्याओं के, एक सेकंड में, २ लाख गुणनफल या भाजनफल निकाले जा सकते हैं। इसके एक खंड में ३२,००० शब्द संग्रहीत किये जा सकते हैं और इस यंत्र में इस प्रकार के ८ खंडों की व्यवस्था की जा सकती है। टाटा इन्स्टीट्यूट ने स्वयं भी लघु आकार के 'टिफरेक' (TIFREC) गणक-यंत्र का निर्माण किया है।

आज जीवन के विविध क्षेत्रों में स्वचालित यंत्रों एवं विद्युत-गणकों का इस्तेमाल अधिक होने लग गया है। फैक्ट्रियों का संचालन भी इन्हीं यंत्रों से होने लगा है। विद्युत-गणक ऐसे जटिल सवालों को सेकंडों में हल करके रख देते हैं जिनके लिए किसी गणितज्ञ को अपना सम्पूर्ण जीवनकाल तक लगाना पड़े।

तो क्या, कुछ दिनों के बाद, इस स्वचालित यंत्रों एवं विद्युत-गणक-मस्तिष्कों की अधिकता के कारण हमें मनुष्यों की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी? पहला वाष्प-इंजन बना था तब भी यही सवाल औद्योगिक क्रान्ति के रूप में बड़े जोर-शोर से उठाया गया था। प्रश्न है, इन यंत्रों से क्या सचमुच आदमी पहले से अधिक बेकार हुआ है?

● ● ●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचित्र संसार

बिजली गिरी और चर्च खड़ा हो गया !

कड़कती बिजली का गिरना हो काफी है, फिर तो जिस पर गिरती है, उसके बने रहने का कोई प्रश्न ही नहीं। किन्तु स्पेन के सालामान्का गाँव का सेन मेक्रो चर्च एक अपवाद ही है। बिजली गिरी तो सही, परन्तु गिरने-गिरने के फर्क ने ही एक कहानी खड़ी कर दी। वहाँ के दुर्ग-द्वार के मीनार पर बिलजी ने गिरकर अन्त में उस मीनार को एक मानव-सिर के आकार में परिणत कर दिया। वह सिर भी चाहे जैसा, बेतुका नहीं; वहाँ के शासक, अल्फान्जो द्वितीय से हूबहू मिलता-जुलता। दूसरे दिन सम्राट् ने स्वयं अपनी प्रतिमा प्रकृति द्वारा यों बनी देखी तो गद्गद् हो गया और परमपिता के प्रति श्रद्धास्वरूप यह चर्च बनाकर भेंट कर दिया।

और, यह पुनर्मिलन···?

कैसा अभूतपूर्व पुनर्मिलन था वह ! बिछुड़े अफ्रीका में और मिले ६३०० मील दूर, उत्तर ध्रुव की ओर ! समुद्र की लहरों और पवन के थपेड़ों का ही वह कमाल था कि एक भूगोलवेत्ता और तेल के दो पीपों में वह पुनर्मिलन सम्पन्न हुआ। केप्टन एडवर्ड सेबाइन नामक वह इंगलैण्ड-निवासी भूगोल-वेत्ता रॉयल इन्स्टीट्यूट की ओर से अफ्रीका की केप-आफ-लापेज पर विशेष अनुसन्धान के लिए भेजा गया था। वहाँ उसने समुद्रतट से कुछ दूर, एक हाल ही डबे हुए जहाज के तेल के दो पीपे देखे जो लहरों और पवन के थपेड़ों से असहाय टकराते दूर भटके जा रहे थे। लगभग डेढ़ वर्ष पश्चात् उसे जब उत्तर ध्रुव की ओर नये अनुसन्धान के लिए भेजा गया तो वह यह देखकर चकित रह गया कि वे ही पीपे ६३०० मील की यात्रा करके १८ महीने पश्चात् भी उससे पुनः मिलने के लिए किनारे पर आ रहे थे !

यह मजाक महंगा पड़ा

बात है श्रीलंका के पूर्वकालीन शासक, यासालालक की। सात वर्ष तक राज चलाने के पश्चात् सम्राट् को यह ज्ञात हुआ कि उसकी प्रजा में एक गरीब मजदूर ऐसा भी है जो हूबहू सम्राट् से मिलता है—मानो जुड़वाँ ही हो। बड़ी उत्सुकता से सम्राट् ने प्रकृति की उस विचित्रता को—अपनी कार्बन-कापी को अपने पास बुला लिया और मनोविनोद के लिए उसे अपने खास महल का पहरेदार नियुक्त कर दिया।

सोमा नाम का वह पहरेदार अपने इस भाग्य-परिवर्तन पर चकित था। राजमहल में रहते-रहते और राजदरबार में जाते-आते वह राज-काज की बातें और तरह-तरह के प्रेंतरों से जल्द ही परिचित हो गया। सम्राट् अपने दरबारियों को छकाने के लिए सोमा से नया ही काम लेने लगे। दरबार लगने से पहले ही वे उसे अपनी पोशाक पहना कर, गद्दी पर बिठाकर, स्वयं उसके लिबास में, छड़ी थामे, प्रवेशद्वार पर खड़े हो जाते। प्रत्येक दरबारी को उस सोमा-सम्राट् के प्रति झुक-झुककर अभिवादन करते देख वे मुश्किल से हंसी रोक पाते।

इसी दौरान में सोमा ने एक नया ही निश्चय किया। सिंहासन पर बैठने के समय बीच में ही उसने आदेश देकर पहरे पर खड़े उस असली सम्राट् को पकड़वाकर जेल भिजवा दिया और शाम होने से पहले ही मरवा भी दिया। बेचारे सम्राट् की हर कोशिश बेकार गयी, दरबारियों ने उसे पागल समझा और नकली सम्राट् ने तत्पश्चात् ८-९ वर्ष ठाट से राज्य किया !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब सोना, दो पैसे तोला था

शायद मानने को जी न चाहे, किन्तु ऐतिहासिक प्रमाण तो इस सत्य के हैं ही कि पूरे चार वर्ष तक सोना पानी के मोल बिकता रहा था। १८५४ से १८५८ के मध्य, संसार के समस्त देशों से जापान ऐसा विच्छेदित रहा कि वहाँ के निवासी अपने यहाँ की सोने की खानों का मूल्य ही भूले रहे। दूसरे शब्दों में, सोने का विनिमय ही बन्द हो गया और उत्पादन तो चलता ही रहा। १८५८ में कमाण्डर पेरी द्वारा जापान का व्यापार-विनिमय पुनः खोलने पर यह आश्चर्य सहित देखा गया कि वहाँ के निवासी विदेशी प्रवासियों को केवल १६ सेण्ट के बदले ५ डालर के मूल्य तक का सोना दे देते थे ! चतुर प्रवासियों द्वारा यह लूट चार वर्ष तक ऐसी चली कि उनकी ओर के लोग कुबेरपति बन गये और इधर जापान में सोने के अकाल की नौबत आ चली। तुरन्त ही तत्कालीन सम्राट् ने जापान से किंचित भी सोना बाहर निकलना-निकालना मृत्यु-दण्ड जैसा अपराध घोषित कर दिया।

मीठी-मीठी दीवारें, मीठे-मीठे दरवाजे

जब किसी ने कहा—दरो दीवार पर, हसरत से नजर करते हैं; तो यह पूछा कि क्यों ? जवाब मिला—शक्कर के बने हैं। और सच ही, उस मन्दिर में जाने वाले जो बालक चीनी के चटोरे होते हैं, वे उसकी दीवारों को जहाँ-तहाँ से चाटते रहते हैं ! वह मन्दिर हमारे राजस्थान की परतापगढ़ रियासत में कटरा मदारीगंज के नाम से सुपरिचित है।

इस मन्दिर की नींव के तले एक इतना मीठा झरना बहता है कि उसके पानी को डिस्टिल करके चीनी प्राप्त की जा सकती है। समय-समय पर वह झरना उफन भी उठता है तब उसकी सीलन मन्दिर की दीवारों पर मीठी सतह के रूप में छा जाती है। उन्हीं दीवारों को चीनी-चटोरे बालक चाटते हुए देखे जा सकते हैं।

कहने को मक्खी, समझने को लक्खी

मक्खी को मक्खी ही न समझिए। गुनों में यह लक्खी है। सच ही इसमें लाख गुन भरे हैं। मक्खी, याने शहद की मक्खी प्रकृति की कोमल और जटिलतम रचना-कौशल का प्रतीक है। ५ आँखें और ५००० नासा-छिद्रों वाली यह मक्खी एक मिनट में ११,४०० बार पंख फड़फड़ाती है और एक पौण्ड भार का शहद एकत्र करने तक मानो पृथ्वी की दो परिक्रमा कर आती है, अर्थात् ५०,००० मील की दौड़-भाग कर लेती है ! यह जीवनभर में केवल एक बार डंक मारती है तब इसके शरीर के २२ स्नायु हरकत करते हैं। वही डंक इसका पहला और अन्तिम होता है। डंक लगने वाले का हाल देखने तक के लिए यह जीवित नहीं रह पाती। हाँ, रानी मक्खी का जीवन इनसे ५० गुना दीर्घ होता है। इसके इशारे इसकी साथिनें ही समझ सकती हैं। ज्यों ही कोई नया खाद्यकण, रुकावट अथवा शत्रु इसके मार्ग में आता है, यह अजीब मुद्रा में अपने छत्ते की जाली पर रेंग कर साथिनों को सावधान कर देती है। बस, बाकी खबर लेने के लिए साथिनों का झुण्ड आ ही जाता है और विक्षेप डालने वाला जान बचाकर भाग जाता है !

कभी लढ़ा, नाव पर···

तो, कभी नाव, लढ़े पर। बड़े-बड़े जहाज, भारी मोटरें, ट्रकें, रेल के इंजन और डब्बे लादकर एक देश से दूसरे देश पहुँचाते ही हैं। कहीं-कहीं इसकी उलट भी करनी पड़ती है। रूमानिया के ओरसोवा और टुरनू शहरों के मध्य का नदी मार्ग संकरा और छिछला है। अतः नदी की पूरी लम्बाई तक पक्का प्लेटफार्म बनाकर उस पर चलता हुआ इंजन, साथ वाले जहाज को खींच कर नदी पार कराता है ताकि जहाज दूसरे सिरे पर समुद्र तक पहुँच सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मरुस्थलीय प्राणी

ब्रजमोहन गुप्त

रेगिस्तानों का विस्तार, पृथ्वी-पटल पर वैसे ही कम नहीं, तिस पर भी नाम मात्र को वनस्पति इनके पाँचवें भाग से भी कम विस्तार में पायी जाती है। रेत के इन अनन्त महा-सागरों पर खुले, आकाश और सूरज का एक-छत्र राज्य होने से सूरज वहां खुलकर खेलता है। जहाँ दिन में सूरज अंगारे बरसाता हुआ १३०°F १४०°F तक ताप पहुँचा देता है, वहाँ उसके पीठ मोड़ते ही रातें ठिठुराती हुई सर्द हो जाती हैं। इस तीव्र विरोधाभास का मुख्य कारण है वहां पर वायुमण्डल का अत्यन्त क्षीण अवस्था में होना। इसी कारण वहां न तो पृथ्वी पर सूरज का सीधा ताप आने से रुकता है और न ही पृथ्वी का ताप सूर्यास्त के पश्चात् एकदम उड़ जाने से बचता है। ऐसे विस्तारों में पानी का तो विकट अभाव रहता ही है, सूखी जगहों पर पानी होने का दृष्टिभ्रम भी कम नहीं होता। प्रखर ताप में भू-सतह के निकट की वायु तप्त होकर उठती हुई एक ऐसी वर्तक (rafractory) सतह बन जाती है जिसमें प्रकाश-रश्मियां पृथ्वी तक पहुँचने से पहले ही लौटती हुई आसपास की वस्तुओं का उलटा बिम्ब दिखाती हैं। साथ ही, नीले आकाश की नीली आभा उस सतह पर दिखायी देने लगती है। फलस्वरूप, प्यासा मानव तथा प्राणी उसी ओर दौड़ता है और अपने साथ उसे भी आगे ही आगे दौड़ता हुआ पा कर, हार-थककर निराश हो, बैठ रहता है।

प्रमुख समस्या

इन परिस्थितियों में मरुस्थलीय प्राणियों के समक्ष पानी की समस्या मुख्य रहती है। फिर भी इससे यह अनुमान लगा तो सत्य न होगा कि वहाँ के प्राणी मरियल होते होंगे। इसके विपरीत, आश्चर्य यह है कि पृथ्वी पर अन्यत्र और सम्पन्न परिस्थितियों में रहने वाले प्राणियों के समान ही पुष्ट और फुर्तीले बने रहते हैं। प्रकृति ने इनकी कठिनाइयों को पूरा-पूरा समझा है और प्रत्येक प्राणी को जीवनक्रिया के अनुरूप ही साधन, शक्ति और सामर्थ्य दी है।

युगों से ये प्राणी रेगिस्तानों में रहते हुए वहाँ की परिस्थितियों से पूर्णतयः अभ्यस्त हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुके हैं। सूर्य की शक्ति इन्हें ज्ञात रहती है और ये जानते हैं कि दोपहर को बाहर निकलना, जल-मरना होगा। अतः दिन में जब बाहर धरातल का ताप १४०°F के निकट रहता है, ये प्राणी केवल १८ इंच गहराई पर अपने बिलों, सुरंगों में ६०°F की ठण्डक में मस्त पड़े रहते हैं। पानी के बगैर हफ्तों, महीनों रह लेने पर भी जब कभी इनकी भेंट जल-संग्राहक पौधों से हो जाती है, तब ये अपना नया स्टाक भर लेते हैं। मांसाहारी प्राणियों को तो और भी कम पानी की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि वे अपने शिकार के मांस से काफी जल-तत्त्व ग्रहण कर लेते हैं।

कंगारू-रैट

यह कम आश्चर्यजनक नहीं कि कंगारू-रैट जैसा नन्हा प्राणी, डैथ वेली (Death Valley) जैसे १४०°F के उग्रतम ताप में रहते हुए जीवनपर्यन्त एक बूंद पानी की आवश्यकता अनुभव नहीं करता। मरुस्थलीय प्राणियों की विशेषता ही ऐसी है। इनमें रेगस्तानी भेक (toad) बगैर पानी के ११-१२ महीने रह सकता है, किन्तु यह रैट-कंगारू तो अपवाद ही है।

यह नन्हा प्राणी शरीर से तो रैट अर्थात् चूहा है और स्वभाव से कंगारू है। पूंछ के सिरे से नाक तक केवल १२ इंच लम्बे इसके शरीर में ७ इंच की लम्बाई तो पूंछ ही घेर लेती है। पूँछ के सिरे पर ब्रुश जैसा एक केश-गुच्छ होता है जो दौड़ते समय तथा ऊँची छलांग लगाते समय शरीर का संतुलन बनाये रखता है। विशेष प्रयत्न करने पर यह छोटा-सा प्राणी आठ फुट तक की छलांग लगा लेता है। इसकी यह छलांग इसके शरीर के अनुपात में आस्ट्रेलिया के प्रसिद्ध कंगारू की लम्बी छलांग से भी बढ़कर सिद्ध होगी। इसके पिछले पाँव कंगारू के समान ही लम्बे और मजबूत होते हैं। इन्हीं की सहायता से यह रैटलस्नेक जैसे शत्रु-सर्प का सामना पड़ जाने पर उसकी आंखों में धूल झोंककर भाग निकलता है।

बगैर पानी के, जीवित रह लेने की इसकी क्षमता इसकी शरीर-रचना की विशेषता है। यही नहीं कि इसे पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती, बल्कि यह भी कि यह केवल एक ही प्रकार के ऐसे सूखे बीज खाकर निर्वाह कर लेता है जिनमें ५% भी जल-भाग नहीं होता। होता यह है कि यह अपने

रोडरनर पक्षी अपनी तेजी और फुर्ती से सर्प तक को चकरा देता है

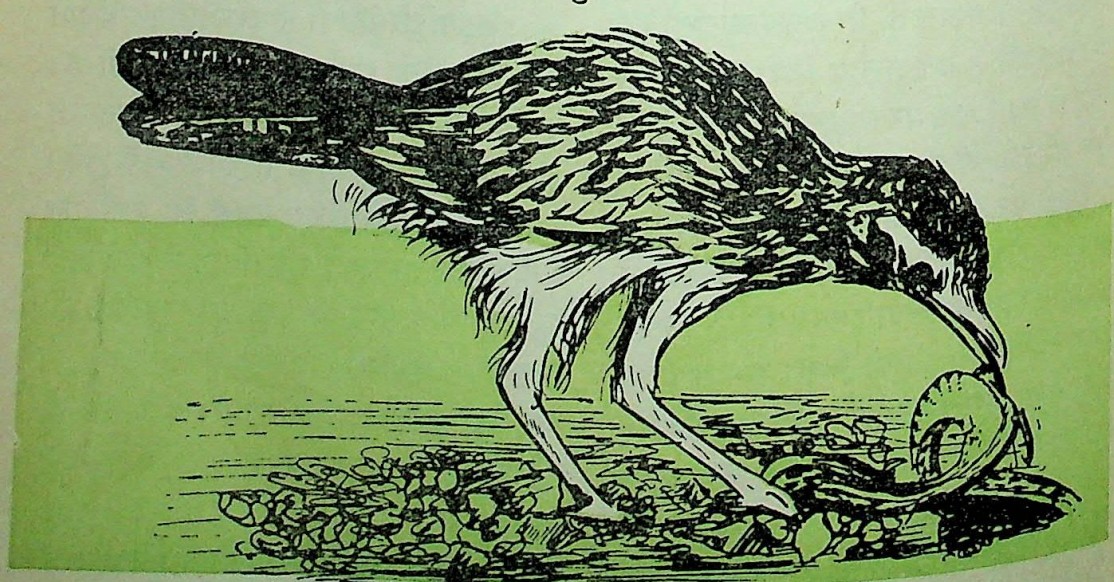

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर की अन्तःक्रिया द्वारा कार्बोहाइड्रेट को पानी में परिवर्तित करता रहता है और उच्छिष्ट आदि में जल-भाग विसर्जित नहीं करता। फलतः आवश्यक जल-भाग इसके शरीर में सुरक्षित ही रहता है।

मरुस्थलीय प्रभात और पक्षीगण

मरुधरा पर ज्योंही प्रभात वेला प्रस्फुटित होती है, सबसे पहले पक्षियों का चहचहाना उसकी सूचना देता है। पक्षियों को अपना कार्य शीघ्र ही पूरा कर लेना पड़ता है, क्योंकि सूरज अधिक चढ़ आने पर उसका ताप ये सहन नहीं कर पाते। सूरज के तपते ही ये कंटीली झाड़ियों में बने अपने बसेरों में छिप जाते हैं। कुछ अधिक समर्थ पक्षी झरनों, गड्ढों आदि की तलाश में लम्बी उड़ानें भी भर लेते हैं, जबकि अधिकतर पक्षी अपने शाकाहार अथवा मांसाहार से जल-भाग प्राप्त कर लेते हैं।

इन पक्षियों में मांसभक्षी रोडरनर (roadrunner) एक बड़े मुर्ग जैसा विशाल पक्षी है। इसकी आहट मात्र से खरगोश, गिलहरी और छिपकली जैसे-नन्हे जन्तु ही नहीं, रैटलस्नेक जैसा बड़ा सर्प भी भय-त्रस्त होकर भागने लगता है। इससे सामना पड़ जाने पर रोडरनर बड़ी चुस्ती से सर्प के प्रहारों को चुकाता हुआ उसे थका-थका देता है। प्रारम्भिक जोश में सर्प की लपलपाती हुई जीभ एक ही फटकार में इसका काम तमाम कर देने को काफी होती है किन्तु इसके वार को बचाता हुआ यह उसे थका कर चूर कर देता है। थक कर निढाल हुए सर्प की आँखें यह पक्षी पहले अपनी नुकीली चोंच से चुग लेता है और फिर सिर की ओर से शुरू करके इंच-दर-इंच निगलता हुआ अपने लम्बे-चौड़े शिकार का आराम से कलेवा करता है। इसके आहार में काँतर, टिड्डी, तिलचट्टा तथा मकड़े-मकड़ियाँ भी सम्मिलित हैं। जैसा इसका नाम है, दौड़ने में भी यह पक्षी बहुत तेज है। अपने मजबूत पांवों पर पंजों के सहारे, यह बिजली की तेजी से दौड़ता है और छोटे किन्तु सुदृढ़ पंखों की सहायता से झाड़ियों को लांघता हुआ छोटी-बड़ी छलांगें भी लगा लेता है।

बड़ी छिपकलियाँ

गिला मान्स्टर, इगुआना, छिपकली-परिवार के भारी-भरकम जन्तु हैं। ये रेप्टाइल वर्ग के होने के कारण ठण्डे खून के हैं। अतः सूर्य के ताप में तपती रेती इन्हें व्याकुल नहीं करती। इस कारण ये रेगिस्तान के दिनचारी प्राणियों में सम्मिलित हैं। इनमें मांसाहारी श्रेणी के जन्तु चींटियों का भोजन बड़े चाव से करते हैं। चींटियों के टीले जैसे बिलों के बाहर बैठ जाते हैं और बाहर निकली हुई चींटियाँ समेट-समेटकर चट करते जाते हैं। अपने शत्रु से बच निकलने का भी ये भरपूर प्रयत्न कर लेते हैं। ग्रिडाइरन (Gridiron) नामक छिपकली १५ मील प्र. घ. के वेग से दौड़कर अपनी झाड़ी में छिप जाती है। चकवाला (Chuckwalla) छिपकली पत्थरों के ढेर की किसी दरार में घुसकर अपना शरीर इस प्रकार फुला लेती है कि शत्रु के लिए उसे खींच निकालना असम्भव हो जाता है। इसकी पूँछ पकड़ में आ जाने पर टूटकर अलग हो जाती है और धीरे-धीरे पुनः उग आती है।

बर्र-मकड़े का द्वन्द-युद्ध

बर्र का नन्हा शिशु जब गिराडावस्था त्याग कर नया कोमल शरीर धारण करता है, तब उसे अन्य भोजन के साथ-साथ बड़े मकड़े के नरम मांस की भी आवश्यकता पड़ती है। मादा बर्र अपने शिशु की आवश्यकता खूब पहचानती है, किन्तु यह भी जानती है कि मकड़े का मांस प्राप्त करना, चील के घोंसले में हाथ डालना है। उसे यह भी ज्ञात रहता है कि किसी का मारा, पड़ा हुआ मकड़े का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बर्र का यह अन्तिम और निर्णायक वार है जिसे मकड़ा अपनी जान देकर भी नहीं बचा पाता

माँस ४–५ दिन में ही जहरीला हो जाता है।

मकड़े का शिकार करने के लिए मादा बर्र निकल पड़ती है। आठ हाथ-पांवों युक्त बड़ा मकड़ा किसी दैत्य से कम नहीं होता। मकड़ा १ इंच चौड़ी और १२ इंच गहरी अपनी सुरंग की किलेबन्दी में रहता है। मुहाने पर वह रेशम का जाल-सा बुना रखता है ताकि उसमें असावधान शिकार तो फँसे ही, स्वयं को भी आने-जाने में सुविधा रहे। इसके आँखें भी आठ होती हैं और अपने शिकार अथवा शत्रु की टोह में चौकन्नी रहती हैं।

बड़े धैर्य के साथ मादा बर्र उस घड़ी की प्रतीक्षा में रहती है जब मकड़ा बाहर निकले। गुत्थम-गुत्था में यदि वह मकड़े के शरीर में ठीक स्थल और ठीक अवसर पर चोट करके ठीक ही मात्रा में अपना विष डंक द्वारा पहुँचा दे तो मकड़ा भले ही मरे नहीं, संज्ञा-शून्य तो हो ही जायगा। मकड़े की नर्म रोयों युक्त छाती ही उसका मर्म-स्थल है। वहां तक बर्र का डंक पहुँचने के लिए यह आवश्यक है कि मकड़ा बजाये अपने पांवों को समेटने की मुद्रा में होने के, आठों पांवों से चल रहा हो। दाँव लगने पर बर्र उसके पाँवों को अपने मजबूत जबड़ों में जकड़ लेती है और शरीर को दोहरा करके पूरा-पूरा डंक उसके सीने में संकर की तरह उतार देती है।

दूसरी ओर मकड़े का भी दांव लग सकता है। वह भी बर्र की गर्दन के निकट उसके मर्म-स्थल को जानता है और बर्र के वार चुकाने तथा अपना दाँव आजमाने के पैंतरे आजमाता है। आखिर बर्र का डंक लगते ही मकड़ा काँपता हुआ पस्त हो जाता है। तब बर्र का काम केवल यह रह जाता है कि उस बड़े शिकार को अपने घर तक घसीट ले जाये। अत: बीच-बीच में थकती-सुस्ताती अन्तत: वह अपने शिकार को घर ले ही आती है।

रेगिस्तानी चीते

बॉबकैट (bobcat) और कोयोट (coyote) रेगिस्तान के शेर-चीते हैं। ये

यह रेगिस्तानी पक्षी तीखे लम्बे काँटों वाले वृक्ष में ही अपना घोंसला बनाता है ताकि हर कोई सरलता से वहाँ तक पहुँच न सके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

अधिकतर रातों में बाहर निकलते हैं और रात्रि-विचरण करने वाले प्राणियों का शिकार करते हैं। ५०-६० फुट ऊँचे कँटीले केक्टस पर सरपट सरसराते हुए चढ़ जाते हैं। उस तीक्ष्ण काँटोंयुक्त केक्टस पर चढ़ना हर किसी के लिए सहज नहीं। ये अपने गद्दीदार पंजों से काँटों को नोक की बजाय बगल की ओर से दबाते हुए चढ़ते हैं। उस ऊँचाई से दूर-पास का निरीक्षण करते हैं और शिकार नजर आते ही अपना कौशल आरम्भ कर देते हैं। यदि शिकारगत प्राणी ने सख्त मुकाबला किया तो ये धर्मयुद्ध की मर्यादा त्याग कर दानवीय दाँव-पेच पर उतर आते हैं और घुड़ककर, नोंच-खसोट कर उस पर हावी हो जाते हैं। इनमें अच्छाई केवल यही है कि ये भूख लगने पर ही शिकार करते हैं, अन्यथा ठण्डक में आराम से पड़े रहते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरी-फरवरी इनका ऋतुकाल होता है। तब ये रात के सन्नाटे को अपनी मादा के बुलाने में अजीबो-गरीब चीखो-पुकार से गुँजा देते हैं। उस वेला में इनके उस शोर-गुल से नन्हे जन्तु भय नहीं खाते। वे जानते हैं कि उसके विपरीत, इनकी खामोशीभरी चाल ही खतरनाक होती है।

यह है मरुस्थल के प्राणियों की निराली दुनियाँ। जैसा कि अन्यत्र सर्वत्र है, यहाँ भी हर बड़ा जन्तु, छोटे को हड़प जाने की ताक में रहता है। दिन की सुनहरी धूप हो या रात की तारोंभरी झिलमिल चादर, इनका जीवन संघर्ष, शिकार करना और शिकार बनना, अनवरत चलता ही रहता है। नन्हे शाकाहारी बिलकारी जीव इधर कुछ बड़े जन्तुओं का निवाला बनते हैं, तो उधर उन बड़ों से भी बड़े उन्हें डकार जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

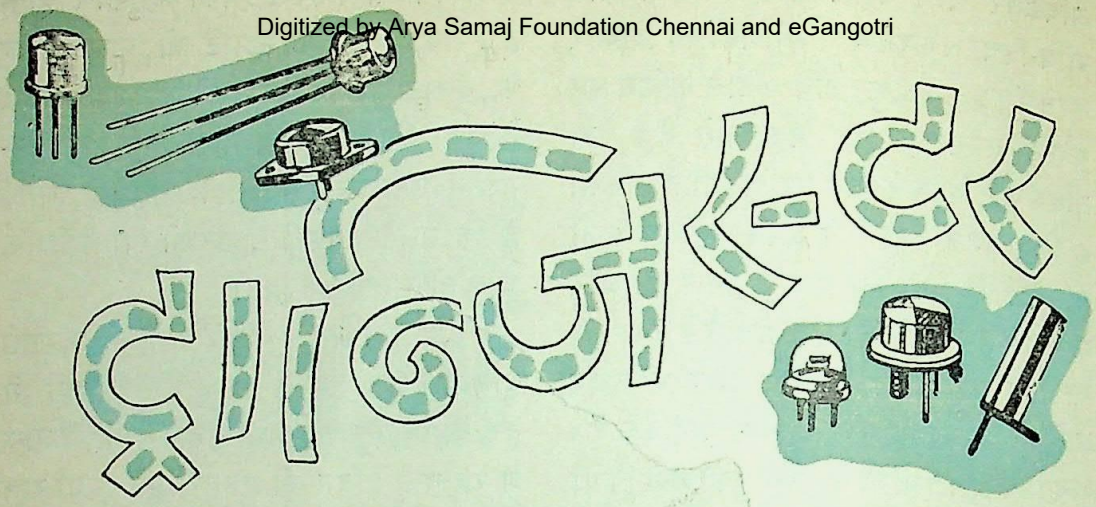

डा. अयोध्याप्रसाद शर्मा

आप अच्छी तरह जानते हैं कि रेडियो में, टेलीविजन सैटों में अथवा विज्ञान के अनुसंधान सम्बन्धी यंत्रों में एलेक्ट्रान ट्यूबों की कितनी भरमार रहती है। बिना एलेक्ट्रान ट्यूबों के आधुनिक विज्ञान का कोई भी कार्य नहीं चल सकता है। इन्हीं एलेक्ट्रान ट्यूबों का प्रयोग रेडार, सिनेमा तथा नवीनतम एलेक्ट्रान मस्तिष्कों में भी किया जाता है। अनेक दूसरे कार्यों में इन ट्यूबों का प्रयोग अब तक किया जाता रहा है।

ट्रान्जिस्टर का जन्म कैसे हुआ ?

वैज्ञानिकों को इन एलेक्ट्रान ट्यूबों को काम में लाने में कुछ परेशानियाँ सामने आती हैं जिनमें मुख्य यह है कि एलेक्ट्रान वैकुअम ट्यूब काम में लाते समय काफी गर्म हो जाती हैं। अतः उन यन्त्रों के बारे में जिनमें कि अनेक वैकुअम ट्यूब लगे हों, आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि वे कितने गर्म हो जाते होंगे। आपका रेडियो सैट ही काम में लाने पर इन एलेक्ट्रान ट्यूबों के कारण काफी गर्म हो जाता है। अनुसंधानशालाओं में लगे अनेक वैकुअम ट्यूबों वाले उपकरणों में इतनी अधिक गर्मी उत्पन्न होती है कि उससे उपकरण के नष्ट होने का भी काफी भय रहता है। यही कारण है कि बहुत से उपकरणों में बिजली के पंखे उपकरण को ठंडा करने के लिए लगाये जाते हैं अथवा उपकरण को बाह्य पंखों द्वारा ठंडा करना आवश्यक हो जाता है। अब आप आसानी से कल्पना कर सकते हैं कि जैट विमानों अथवा राकेटों में लगे एलेक्ट्रानिक कन्ट्रोल के अनेक एलेक्ट्रान ट्यूबों से उत्पन्न गर्मी को शान्त करने के लिए अवश्य ही विशेष प्रबन्ध करना पड़ता होगा। प्रचण्ड मात्रा में उत्पन्न हुआ वह ताप व्यर्थ ही चला जाता है अथवा आप यह भी कह सकते हैं कि इन एलेक्ट्रान ट्यूबों में बहुत-सी विद्युत ऊर्जा व्यर्थ ही जाती है।

इन कारणों को ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिकों ने एलेक्ट्रान वैकुअम ट्यूबों के स्थान पर ऐसे साधन खोजने के प्रयत्न किये जिनको काम में लाने पर गर्मी के रूप में उत्पन्न हुई ऊर्जा व्यर्थ ही नष्ट न होने पाये अथवा इनमें गर्मी उत्पन्न ही न हो। अमरीका की बैल टेलीफोन प्रयोगशाला नवीन वैज्ञानिक अनुसंधान कार्यों के लिए सदैव प्रसिद्ध रही है। इसी अनुसंधानशाला में सन् १९४८ में बैटेन तथा बारडीन नामक दो वैज्ञानिकों ने ट्रांजिस्टर की खोज की और संसार को यह दिखा दिया कि बड़े आकार और काफी कीमत वाले एलेक्ट्रान ट्यूबों के स्थान पर बहुत ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ष्म आकार के ठोस पदार्थ के टुकड़े जिनकी कीमत काफी कम होती है, आसानी से काम में लाये जा सकते हैं। इस नवीन खोज के लिए उपरोक्त दोनों वैज्ञानिकों के अतिरिक्त शोकले नामक वैज्ञानिक को भी सन् १९५२ में नोबुल पुरस्कार प्रदान किया गया था।

ट्रांजिस्टर क्या है और कैसे कार्य करता है ?

साधारणतः ट्रांजिस्टर जर्मेनियम नामक सैमीकन्डक्टर (अर्द्ध चालक) की छोटी-छोटी कतरनों से बने होते हैं। यदि आप अपने हाथ में छोटे से एक ट्रांजिस्टर क्रिस्टल को लें तो आप देखेंगे कि उसमें तीन बारीक तार निकले रहते हैं जिनमें से एमिटर तथा कलैक्टर नामक दो तार तो जर्मेनियम क्रिस्टल की एक ओर की सतह से सम्बन्धित रहते हैं। तथा तीसरा तार क्रिस्टल की दूसरी सतह (बेस) से जोड़ा हुआ होता है। एमिटर (डोनर) और कलैक्टर (एक्सैप्टर) तथा बेस नामक तार एक ट्रांजिस्टर में क्रमशः वही कार्य करते हैं जो वैकुअम ट्यूब में कैथोड, एनोड तथा ग्रिड से पूरा किया जाता है।

ट्रांजिस्टर बनाने के लिए जर्मेनियम को शुद्ध क्रिस्टल (स्फटिक) के रूप में नहीं लिया जाता, बल्कि इसमें कुछ अशुद्ध पदार्थ मिला दिये जाते हैं जिनके कारण जर्मेनियम क्रिस्टल के ढांचे (लैटिस) और उसकी चालकता में परिवर्तन आ जाता है। जर्मेनियम में मिलाई गयी ये अशुद्धियाँ दो प्रकार की होती हैं जिनमें से एक एमिटर (डोनर) तथा दूसरी कलैक्टर (एक्सैप्टर) कहलाती हैं। डोनर प्रकार की अशुद्धि जर्मेनियम में एलेक्ट्रानों की अधिक संख्या उत्पन्न कर देती है जिसके द्वारा क्रिस्टल में विद्युत धारा प्रवाहित होने लगती है। इस प्रकार के क्रिस्टल (सेमीकन्डक्टर) को N प्रकार के क्रिस्टल कहते हैं। कलैक्टर प्रकार की अशुद्धि के कारण जर्मेनियम में एलेक्ट्रानों की संख्या में कमी उत्पन्न हो जाती है अथवा यों कहिये कि घनात्मक छिद्र (पौजिटिव होल) उत्पन्न हो जाते हैं। क्रिस्टल में इन घनात्मक छिद्रों के एक स्थान से दूसरे स्थान को चलने के कारण ही विद्युत-धारा उत्पन्न होती है। इस प्रकार के क्रिस्टलों को P प्रकार के क्रिस्टल कहते हैं। अब आसानी से कहा जा सकता है कि एक ट्रांजिस्टर N

दवा की टिकिया (कैप्सूल) के बराबर का यह सूक्ष्म ट्रांजिस्टर गले के नीचे उतार लेने पर पेट में पहुँचकर छिपे रोग की छिपी बातें इस खूबी से फोटो में उतार लायेगा कि उसमें आगे एक्स-रे भी चकरा जायेगा

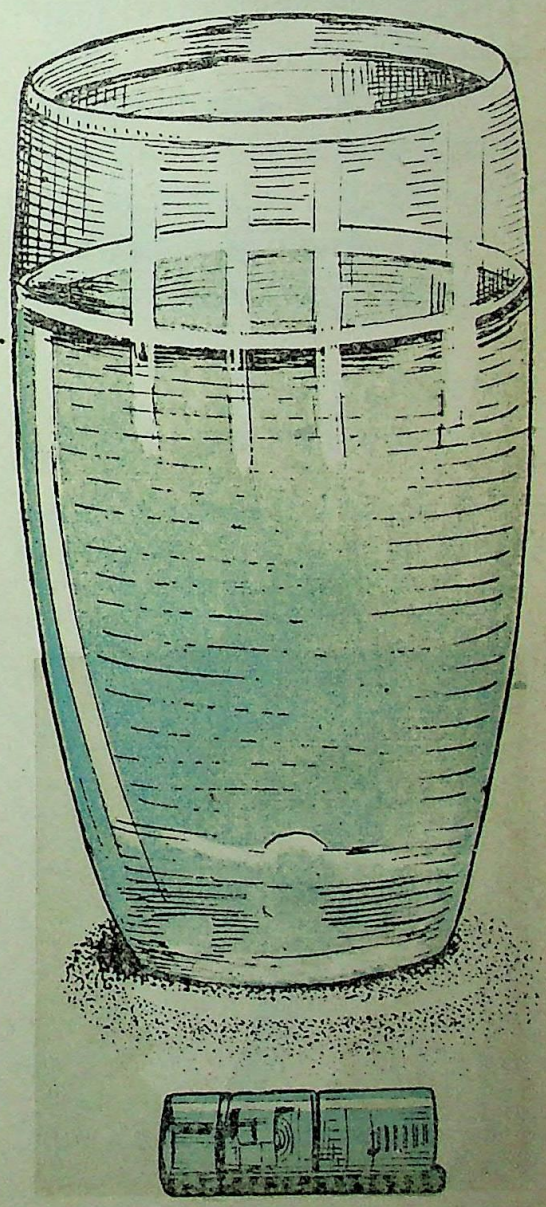

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा P प्रकार के क्रिस्टलों का ही यौगिक होता है।

जर्मेनियम की भाँति सिलीकन क्रिस्टल से भी ट्रांजिस्टर का कार्य लिया जाता है। सिलीकन के लिए फास्फोरस, आरसैनिक तथा एन्टीमनी को डोनर अशुद्धियों के मिश्रण के लिए काम में लाते हैं अर्थात् अशुद्धियाँ एलैक्ट्रान की अतिरिक्त संख्या प्रदान करती हैं तथा एल्यूमीनियम, बोरोन, इडियम और गैलियम को एक्सैप्टर अशुद्धियों की भाँति काम में लाते हैं। यह एलेक्ट्रान के अभाव में घनात्मक छिद्र उत्पन्न करती है। इन अशुद्धियों को विस्तार (डिफयूजन) सिद्धान्त से मिलाया जाता है।

शुद्ध जर्मेनियम अथवा सिलीकन स्वयं चालक नहीं होते, क्योंकि उनमें स्वतंत्र एलेक्ट्रान नहीं होते। अशुद्धि मिला देने के बाद ये क्रिस्टल N अथवा P प्रकार के अर्द्ध-चालक (सैमीकन्डक्टर) का कार्य करने लगते हैं।

ट्रांजिस्टर की कुछ विशेषताएँ

बहुत से जर्मेनियम क्रिस्टल के टुकड़े १/८ के पीछे लगे रबर से भी छोटे होते हैं। इंचवर्ग से भी छोटे और १/३२ इंच से भी पतले बनाये जाते हैं। जर्मेनियम ट्रांजिस्टर पेन्सिल अपने से सैकड़ों गुने बड़े आकार वाली एलेक्ट्रान ट्यूबों के स्थान पर ये उनसे भी अच्छा कार्य करते हैं।

शरीर में प्रवेश कराने योग्य कहीं-कहीं अति सूक्ष्म ट्रान्जिस्टर को इतना सूक्ष्म भी होना पड़ता है कि सुई के छिद्र से पार हो सके

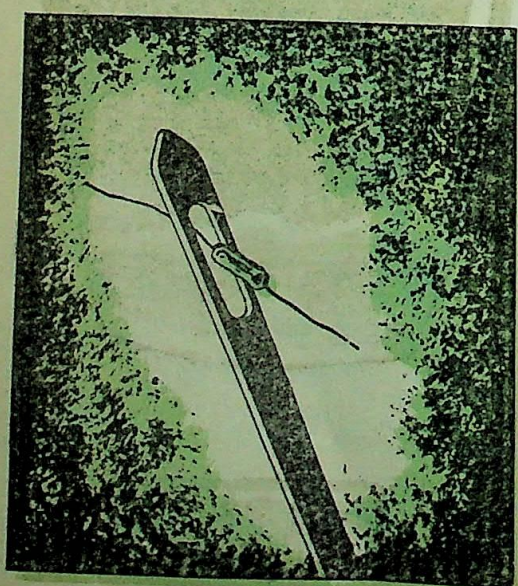

ट्रांजिस्टर में वैकुअम ट्यूब की तरह कोई फिलामेंट नहीं होता जिसको कि अलग से गरम करना पड़े। इसके अतिरिक्त ट्रांजिस्टरों को वैकुअम ट्यूबों की अपेक्षा बहुत कम विद्युतधारा की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि इसमें गर्मी बहुत ही कम (नहीं के बराबर) उत्पन्न होती है।

यदि वैकुअम ट्यूब विभव-व्यवस्थित-उपकरण कहा जाये तो ट्रांजिस्टर एक धारा-व्यवस्थित-उपकरण होता है। ट्रांजिस्टर सैट बहुत कम विद्युत ऊर्जा खर्च करते हैं तथा इनके लिए बहुत कम स्थान की आवश्यकता होती है।

वैकुअम ट्यूब के फिलामेंट जलने पर तो ट्यूब बेकार हो जाता है, किन्तु ट्रांजिस्टर में इस प्रकार की कोई बाधा नहीं होती है।

कोई भी क्षेत्र ट्रांजिस्टरों से खाली नहीं

आजकल ट्रांजिस्टर रेडियो का कितना प्रचार है यह सबको भलीभांति विदित है। छोटे आकार के ट्रांजिस्टर रेडियो अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। इन्हें घर-बाहर, हर स्थान पर सुनने के काम में ला सकते हैं। टेलीविजन सैट, एलेक्ट्रानिक मस्तिष्क और बहुत से अन्य एलेक्ट्रानिक साधन एलेक्ट्रानिक ट्यूब के स्थान पर ट्रांजिस्टरों का प्रयोग करने लगे हैं। सबसे विशेष बात तो यह है कि ट्रांजिस्टरों के प्रयोग से उपकरण बहुत छोटे से आकार के बनाये जा सकते हैं। विदेशों में हाथ की घड़ी में भी ट्रांजिस्टर सैट लगाने का कार्य तेजी से प्रारम्भ किया जा रहा है। ट्रांजिस्टर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का उपयोग घर, कारखानों, प्रयोगशालाओं और अनुसंधानशालाओं आदि हर क्षेत्र में हो रहा है।

ट्रांजिस्टर द्वारा थर्मिस्टर बनाये जाते हैं जो विशाल विद्युत मशीनों, ट्रांस्फार्मर और एलैक्ट्रोमेगनेट के स्वचालित स्विचों में काम में लाये जाते हैं। ट्रांजिस्टरों का उपयोग फोटोकन्डकिटव सेल, थर्मोकपुल, रेफ्रीजरेटर, पीजोएलैक्ट्रिक्स तथा फोटोसेल आदि में अधिकता से किया जा रहा है।

ट्रांजिस्टरों का उपयोग श्रवण-सहायक यंत्रों में अर्थात् ध्वनि प्रवर्धक के रूप में किया जाता है। आँखों के चश्मों की कान की डंडी में ही ट्रांजिस्टरों को फिट करने से कम सुनने वाले मनुष्य आसानी से सुन सकते हैं।

ट्रांजिस्टर हृदय

अभी हाल का समाचार है कि पोलेंड निवासी विस्जार्ड पैराडाडल्की नामक एक इंजीनियर ने ट्रांजिस्टर हृदय की नयी खोज की है।

ट्रांजिस्टर के उपयोग से एक अदृश्य और अत्यन्त सूक्ष्म मोटर का सम्बन्ध दो नालियों रोगी मनुष्य के हृदय के दो स्थानों पर टाँके लगाकर कर दिया जाता है। इन सब उपकरणों सहित अतिसूक्ष्म और अदृश्य बक्स रोगी के पेट की खाल के अन्दर लगा दिया जाता है। इस उपकरण के काम में आने वाले अति सूक्ष्म सेल हर २० महीने बाद बदल दिये जाते हैं। रोगी की हृदयगति के ठीक रखने के लिए यह सब एक जादू जैसा खेल है।

भारत में ट्रांजिस्टर का भविष्य

कुछ दिनों पूर्व का समाचार है कि राजस्थान में भीलवाड़ा के निकट एक पहाड़ी में अर्द्धचालक (सैमीकन्डक्टिंग) पत्थरों की खान का पता लग गया है जिसके उपयोग से

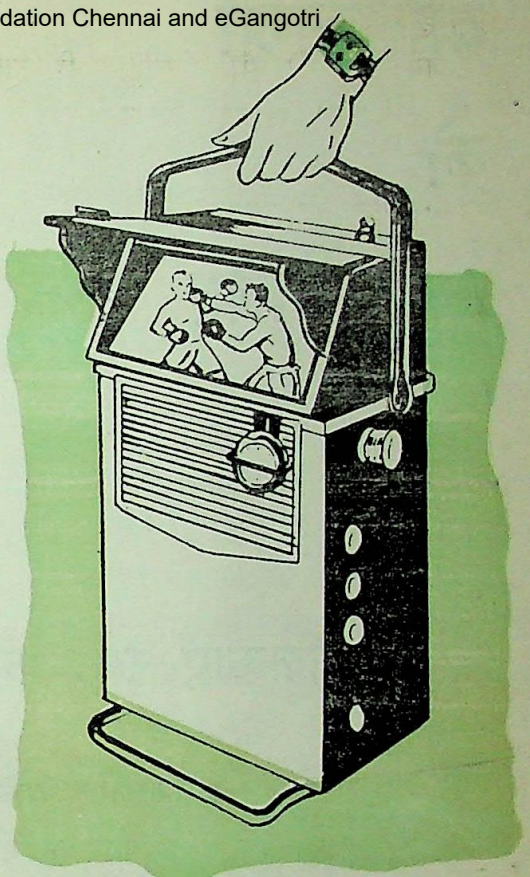

सरलतापूर्वक चाहे जहाँ ले जाने योग्य नन्हे रेडियो और टेलीविजन बनाना ट्रांजिस्टर के आविष्कार के ही आभारी है

ट्रांजिस्टर की कीमत काफी कम हो सकती है। अब तक ट्रांजिस्टर अधिकतर जर्मेनियम से बनाये जाते हैं जिसकी कीमत एक हजार चार सौ डालर प्रति पौण्ड के लगभग होती है। इन सब बातों से यह निर्णय निकाला गया है कि भविष्य में एक अच्छा ट्रांजिस्टर रेडियो स्वयं भारत में ही पचास रुपये का बिकने लगेगा। राजस्थान के इस पहाड़ी पत्थर में ८०% रांगा, १५% गंधक, २% चाँदी तथा शेष में एल्यूमीनियम, मैगनीज और क्रौमियम शामिल हैं। इससे बने ट्रांजिस्टर की धारावाहक क्षमता भी बाहर से आने वाले ट्रांजिस्टरों की धारावाहक क्षमता से काफी अधिक पायी जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालिकाओं को स्कूल भेजिए

क्यों ?

बालिकाएँ राष्ट्र की भावी नागरिक हैं ।

- शिक्षिति बालिकाएँ बड़ी होकर विभिन्न क्षेत्र में राष्ट्र-हित के कार्य करेंगी ।
- शिक्षित बालिकाएँ परिवार तथा राष्ट्र का पिछड़ापन दूर करेंगी ।
- शिक्षित बालिकाएँ स्वावलम्बी बन राष्ट्र को सशक्त बनायेंगी ।
- शिक्षित बालिकाएँ अपने देश की भावी माताएँ हैं।

एक शिक्षित माता सौ शिक्षकों से भी बढ़कर है ।

शिक्षा प्रसार विभाग, उत्तर प्रदेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक उपलब्धियाँ

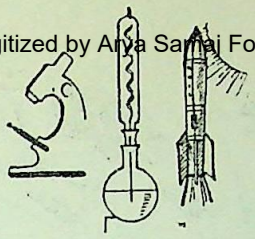

काँच की खिड़कियाँ पत्थर तोड़ेंगी

अब तक काँच की खिड़कियों में रहने वाले लोग दूसरों पर पत्थर नहीं फेंकते थे। पलट कर आने वाले पत्थरों का उन्हें पूरा डर रहता था। आज का विज्ञान अनेक ऐसी परिस्थितियों को उलटने में लगा हुआ है और अब काँच से ही मानो पत्थरों को कहला रहा है—जो हमसे टकरायेगा, चूर-चूर हो जायेगा। स्टील को भी मात करने वाले ऐसे काँच की कुछ पिघली हुई बूँदों का निर्माण करके पश्चिम जर्मनी के बेवेरिया स्थित काँच-निर्माताओं ने प्रदर्शन किया और उन बूँदों का घन की चोटें कुछ भी न बिगाड़ सकीं! ऐसे काँच की बनी तख्ती को गगनचुम्बी इमारत की छत से गिराकर देखा गया तब भी उसमें दरार तक नहीं पायी गयी। शीशे को तेल अथवा द्रवित लवण में भिगोकर गरम करने के विविध प्रयोगों के पश्चात् परतदार कांच बनाने में क्रमशः निपुणता प्राप्त की गयी, तब कहीं इस प्रकार का अटूट काँच बनाया जा सका है। अटूट रहने की इसकी विशेषता के साथ अभी किंचित त्रुटि यह दिखती है कि इसकी पारदर्शिता कुछ कम है किन्तु आशा है, आगे चलकर यह त्रुटि भी दूर हो जायेगी।

यह सौर-दूरदर्शी सबसे बड़ी है

सूर्य-अनुसन्धान के लिए अब तक की बनी दूरदर्शियों में सबसे अधिक शक्तिशाली दूरदर्शी दक्षिण-पश्चिमी अमरीका में टैक्सास (एरिजोना) के समीप, किट्पीक नेशनल आब्जरवेटरी की गगनचुम्बी मीनार में रखी गयी है। मैक्मथ नामक इस अति विशाल दूरदर्शी में तीन शीशों की एक शृंखला का प्रयोग किया गया है। इनकी सहायता से सूर्य का जितना विशाल और चमकीला दृश्य देखा जा सकता है, पहले कभी नहीं देखा जा सका। प्रथम दर्पण जो हीलियोस्टेट के नाम से पुकारा जाता है, सूर्य के प्रकाश को दिन भर ग्रहण करने के लिए स्वचालित उपकरणों पर घूमता रहता है। यह दर्पण ४८० फुट लम्बे और तिरछे स्थित एक ऐसे डण्डे में से सूर्य का प्रकाश नीचे भेजता है जिसका दो तिहाई भाग पृथ्वी के नीचे रहता है। उस डण्डे के पेंदे में दूसरा दर्पण उस प्रकाश को पृथ्वी की सतह पर परावर्तित कर देता है। वहाँ लगा हुआ तीसरा दर्पण उस प्रकाश को भूमिगत अवलोकन कक्ष में पुनः भेज देता है। इसके फलस्वरूप सवा नौ करोड़ से भी अधिक दूरी पर स्थित सूर्य के ५०० मील के क्षेत्र के आकार द्वारा निकलने वाली सौर-ज्वालाओं तथा सूर्य-कलंकों का अध्ययन सहज ही किया जा सकता है।

पृथ्वी पर जलता बल्ब, चन्द्रमा से दिखेगा

पिन का मत्था तो अधिक बड़ा नहीं होता! बस, उतने ही आकार में वह उपकरण समा जायेगा जिसे फोटोपैरामेट्रिक डायोड नाम दिया है। इसे अमरीका के स्पेरी रेण्ड रिसर्च सेन्टर के श्री डेविड. ई. सायर ने तैयार किया है। यह अन्तरिक्ष-यात्राओं के लिए अत्यन्त उपयोगी रहेगा। इसके द्वारा इतना क्षीण प्रकाश भी पकड़ा जा सकेगा जो एक वाट का एक लाखवाँ भाग हो। दूसरे शब्दों में, हमारे यहाँ जलता हुआ ४०० वाट के लैम्प का प्रकाश भी चन्द्रमा पर पहुँचकर देखा जा सकेगा। इसकी फ्रीक्वेन्सी रेन्ज इतनी वृहद् है कि लाखों मील पार कर लेने पर भी चाहे जितना क्षीण प्रकाश इसकी पकड़ में आ सकेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

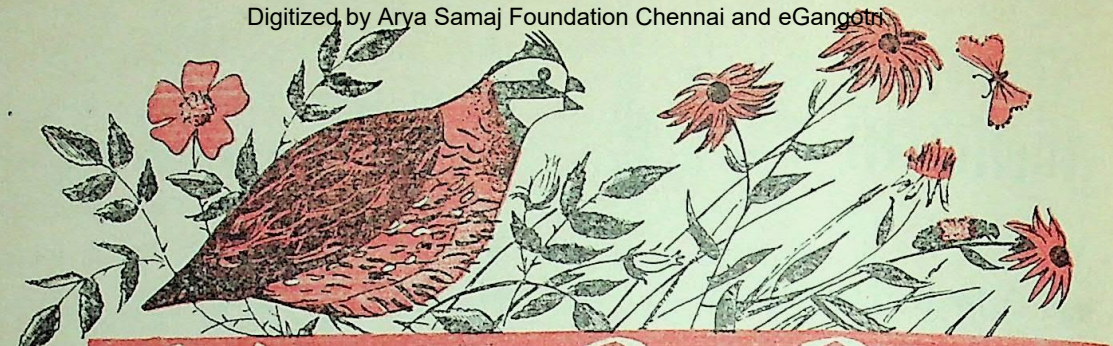

जीवों का क्रमिक विकास

वीरेन्द्रप्रसाद श्रीवास्तव

नन्हे से नन्हे और बड़े से बड़े प्राणी का विकास एक पूर्ण वैज्ञानिक क्रिया है। सृष्टि का इसके लिए सुनिश्चित विधान है। उत्पन्न होने की घड़ी से लेकर अन्तिम क्षण तक अंग-प्रत्यंग के विकास का अपरिवर्तनीय क्रम है।

कोई पूछे, आप कैसे बढ़ते हैं; तो आप कहेंगे—भोजन से। ठीक भी है, भोजन द्वारा ही हमारी कोशाएं नया जीवन, नया बल पाती हैं और बदले में हमारे अंगों का विकास करती हैं। लेकिन उपरोक्त प्रश्न का उत्तर अभी तो बहुत शेष है और वह उत्तर ही इस लेख का विषय है।

अपने अल्बम को उलटकर देखिए। यदि आपने नन्ही अवस्था से अब तक के अपने कुछेक फोटो सम्हालकर रखे हैं तो आज उनका निरीक्षण एक नया ही आनन्द देगा। आप यह देखकर मनोरंजक अचरज में पड़ जायेंगे कि छोटे से आप कैसे थे, किशोरवय में कैसे थे और आज कैसे हो गये हैं! इतना तो स्पष्ट देख सकेंगे कि कुछ खास-खास अंगों ने बढ़ने का अपना अलग ही ढंग अपनाया है। बाल्य-काल के कुछ दिनों, अन्य अंगों की अपेक्षा आपका सिर अधिक तेजी से बढ़ता रहा था। उसके बाद और किशोरवय से तनिक पहले तक आपका धड़ अन्य अंगों से अधिक बढ़ता रहा है। किशोरवय के दायरे में आते ही आपके हाथ पाँवों ने तेजी से बढ़ना आरम्भ किया और विभिन्न अंगों के पृथकतः बढ़ते रहने पर भी एक सुन्दर समानुपाती और पूर्ण विकसित शरीर आपकी अनमोल निधि हो गया अतः यह समझने की आवश्यकता है कि इस प्रकार की बढ़ोत्तरी केवल बढ़ना ही नहीं है निर्धारित अनुपात में विकसित होना भी है।

बात पेड़-पौधों की

जल्दबाजी के कुछ प्रयोग, मानो पौधों को भूमि से खींच निकालने के लिए, कुछ वर्षों पूर्व जापान में किये गये थे। उन्होंने कृषकों से सुन रखा था कि फफूंद जैसी किसी वस्तु के प्रभाव से धान के सीकें पतले जरूर हो जाते थे, किन्तु लम्बे भी बेहद होते थे। इसकी जाँच करके वहाँ के वैज्ञानिकों ने पता लगा लिया कि वह जिबेरेला (Gibberella) नामक फफूंद का काम था। उससे उत्पन्न अम्ल उस पौधों को प्रभावित कर देता था। वैज्ञानिकों ने सोचा कि उस अम्ल को अन्य पौधों पर भी आजमा कर देखा जाये। उन्होंने तदनुसार प्रयोग किये तो पाया कि नीबू का पेड़ अपनी सामान्य ऊँचाई से छह गुना आगे बढ़ गया और गोभी का पौधा फूल उपजाना भूलकर पन्द्रह फुट ऊँचा उठ गया! तब उन्हें मानना पड़ा कि यह अप्राकृतिक हस्तक्षेप व्यर्थ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक पेड़-पौधे ऐसे हैं जो निरन्तर बढ़ते ही रहते हैं। केलिफोर्निया (अमरीका) के संसार प्रसिद्ध २५०-३०० फुट ऊँचे रेडवुड (Redwood) वृक्ष पिछले लगभग ३-४ हजार वर्षों से (उनकी आयु भी इतनी बड़ी है !) निरन्तर बढ़ते ही रहे हैं। कदाचित् इसी कारण वे उस ऊँचाई को पा सके हैं। इतने पर भी पेड़-पौधों का विकास शीतकाल में तो रुक ही जाता है। तब वे भी मानो शीतनिद्रा में लीन हो जाते हैं। इसका रहस्य यह है कि उनकी नस-नस में प्रवाहित होने वाला जीवद्रव शीत के कारण कहीं-कहीं गाढ़ा हो जाता है, तो कहीं-कहीं जम भी जाता है जिसके फलस्वरूप वह प्रवाहित होने से रुक जाता है। ग्रीष्म आते ही वह द्रव पिघलने लगता है, अंग-प्रत्यंगों में पहुँचना आरम्भ करता है और नये अंकुर, नयी कलियाँ जीव द्रव की पूर्ति पाकर खिल जाती हैं और तभी पेड़-पौधों पर नये पत्र-पुष्पों की चादर तन जाती है।

जीवन एक पहेली

सागर-तल में पाँच मील गहरे उतर जाइए, वहाँ भी जीवन मिलेगा। ऊर्ध्वाकाश में पाँच मील ऊपर उठ जाइए, जीवन वहाँ भी मिलेगा। जीवित अणु ऐसे भी सूक्ष्म हैं जिन्हें शक्तिशाली दूरदर्शी के ही नीचे देखा जा सकेगा। दूसरी ओर जीवित प्राणी—ह्वेल, ऐसा भी विशाल है जो एक तैरता हुआ द्वीप-खण्ड सा दिखता है।

मेफ्लाई नामक कीट को पूर्ण विकसित जीवन बिताने के लिए केवल चौबीस ही घण्टे मिलते हैं, जबकि केलीफोर्निया के गगनचुम्बी रेडवुड वृक्ष आज भी अपने जीवन के ३५००वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं।

आखिर, यह सब क्या है? जितना हम नहीं समझ पाते, वह सब सहज, संभव मान लेते हैं और जो उस 'सहज-संभव' का भी अन्तर्दर्शन करने का श्रम उठाते हैं, वे सृष्टि और सृष्टिकर्ता का लोहा मानने से इनकार नहीं करते।

पौधों के लिए प्रकाश बाधक या सहायक ?

यह एक प्रचलित भ्रम है कि पौधों के लिए प्रकाश सहायक है। जिस प्रकाश में पौधे प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया सम्पन्न करते हैं, वह केवल सूर्य की रश्मियाँ उन पर पड़ने तक ही है। शेष ऐसा प्रकाश जो सीधा सूर्य की रश्मियों द्वारा पौधों तक नहीं पहुँचता, पौधों के तनों को अपनी ओर मोड़ लेता है। इस दिशा में चार्ल्स डारविन तथा अन्य वैज्ञानिकों ने अपने-अपने प्रयोग भी किये। डारविन ने अपने प्रयोग के अन्तर्गत पौधे युक्त एक गमले को इस प्रकार रखा कि उसका केवल एक भाग उजाले में और शेष भाग अंधेरे में रहें। कुछ ही घण्टों बाद उन्होंने देखा कि पौधों का तना प्रकाश

जब कोई ग्रन्थि चूकती है, तब ऐसा ही होता है। नन्हा टेडपोल बढ़ते-बढ़ते बड़े मेंढक से कितना ही अधिक बढ़ तो गया, किन्तु स्वयं मेंढक न बन सका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ओर मुड़ गया था। अवलोकन के पश्चात् उन्होंने ज्ञात किया कि तने के सिरे पर जहाँ प्रकाश केन्द्रित हुआ वहाँ विशिष्ट वृद्धिकर्ता पदार्थ ने अपना काम बन्द कर दिया और उसी भाग के अंधेरे पक्ष ने अपना काम विशेष तेजी से किया। परिणाम यह हुआ कि तना प्रकाश की ओर मुड़ गया।

दूसरे वैज्ञानिक ने डारविन के इस निष्कर्ष की पुष्टि के लिए अपने प्रयोगाधीन पौधों के तने का अग्रभाग तनिक छोड़कर, नीचे की ओर एक छोटा-सा चीरा लगाया। उस चीरे में उसने गटापारचे की एक पट्टी फिट कर दी ताकि तने में बनने वाला वृद्धिकर्ता पदार्थ उस चिरे भाग में न आने पाये। सब कुछ ठीक से बाँधकर उसने उस पौधे युक्त गमले को एक ओर प्रकाश में और दूसरी ओर अंधेरे में रख दिया। डारविन के प्रयोगानुसार उस पौधे के तने को भी प्रकाश की ओर मुड़ जाना चाहिए था, किन्तु ऐसा हुआ नहीं। यों सिद्ध किया गया कि पौधे की वृद्धि में सहायक विशिष्ट पदार्थ तने के शीर्षभाग में निर्मित होता रहता है। बाद में उस विशिष्ट पदार्थ को हारमोन्स का नाम दिया गया और यह प्रतिपादित किया गया कि केवल तना ही नहीं, ये हारमोन्स पौधे की जड़ें, पत्तियाँ, कलियाँ, फल और फूल भी बढ़ाने में विशेष बल देते हैं।

प्राणी-जगत भी

ये हारमोन्स प्राणी-जगत में भी क्या-क्या करामातें दिखाते हैं। अजगर, सर्प, कछुए, केकड़े, घोंघे, स्टारफिश मछली, कीड़े, ह्वेल और स्क्वीड ऐसे प्राणी हैं जो जीने से लेकर मरने तक बढ़ते ही रहते हैं। यदि यह क्रिया निरन्तर न चलती रहे तो ३०-४० फुट का अजगर, ५०-६० फुट का स्क्वीड और १०० फुट तक की ह्वेल कैसे देखने को मिलें? विशेषतः स्तनपायिओं और पक्षियों में यह देखा गया है कि शिशु-अवस्था में उनकी वृद्धि तीव्रतर रहती है। मानव-शिशु अपने प्रथम वर्ष में ही जन्मकाल के अपने वजन से तिगुना वजन प्राप्त कर लेता है। साथ ही यह भी है कि वैसी तीव्र वृद्धि पुनः नहीं हो पाती।

शरीरवृद्धि का समस्त उत्तरदायित्व हमारे शरीर में स्थित गिनी-चुनी अवाहिनी ग्रन्थियों पर ही है। इनमें भी थाइराइड (thyroid) ग्रन्थि मुख्य है। हमारी गर्दन की दीवारों से सटा हुआ, इस ग्रन्थि का एक जोड़ा

अजगर को प्रकृति का यह वरदान है कि वह तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है जिसका स्राव शरीर की वृद्धि को नियंत्रित रखता है। यदि एक अविकसित मेंढक के बच्चे (tapdole) के गले से ये ग्रन्थियाँ निकाल ली जायें तो जीवनपर्यन्त वह शिशु ही बना रहेगा, चाहे आयु में बड़े मेंढकों से कितना भी बढ़ जाये। इसके विपरीत, यदि उस नन्हे बच्चे को थाइराइड का स्राव अतिरिक्त रूप से पहुँचाया जाये तो वह शिशु-अवस्था में ही बड़ा-बूढ़ा बन जायेगा; अर्थात् पूर्ण विकसित वह मेंढक छोटा-सा ही रहा आयेगा!

किसी-किसी मानव-शिशु की भी थाइराइड ग्रन्थि जब क्रियाशून्य हो जाती है, तो वह अविकसित ही रह जाता है। आज तो नवीन चिकित्सा के अन्तर्गत उसे थाइराइड का इन्जेक्शन भी दिया जा सकता है और उसकी सहायता से वह पूर्णता प्राप्त कर सकता है।

अवाहिनी ग्रन्थिओं की भी एक सर्वेसर्वा संचालक ग्रन्थि है। वह है पिट्युइटरी (pituitry) ग्रन्थि जो केवल एक मटर के दाने बराबर है और मस्तिष्क के तल से चिपकी हुई है। इसका काम ही यह है कि समस्त अवाहिनी ग्रन्थों के कार्यकलाप को नियंत्रण में रखे और उन्हें कम या अधिक स्राव देने के आदेश प्रसारित करती रहे। जब यह ग्रन्थि स्वयं कम स्राव देती है, तो शेष ग्रन्थियों को आवश्यक आदेश नहीं मिल पाते और बालक का सर्वांगीण विकास रुक जाता है। वह ४० वर्ष का प्रौढ़ बनकर भी २-२॥ फुट का रह जाता है। यही ग्रन्थि जब अन्धाधुन्ध स्राव बहाती है तब बालक १६-१७ की आयु में ही ७-८ फुट की ऊंचाई प्राप्त कर लेता है। ऐसी विलक्षण हैं ये अवाहिनी ग्रन्थियाँ!

हमारे शरीर में कोशा-विभाजन

हमारे शरीर के प्रत्येक अंग की करोड़ों कोशाएं निरन्तर बढ़ती रहती हैं और दिन-रात में कम से कम १८ घण्टे तो विभाजन द्वारा संख्या में बढ़ती ही हैं। तत्पश्चात् उनका बढ़ना रुक जाता है और विभिन्न अंग अपने क्रमानुसार बढ़ते हैं। यदि चौबीसों घण्टे ये कोशाएं बढ़ती रहें तो हम एक ही दिन में दुगुने हो जायें, किन्तु प्रकृति ने इस ओर विशेष सावधानी बरती है। अनुमान है कि हमारे शरीर में प्रतिदिन कम से कम दो पौण्ड वजन की कोशाओं का क्षय होता है, किन्तु साथ ही उतनी ही नयी उत्पन्न होकर उस घाटे को पूरा करती रहती हैं।

न है कि तक शरीर में बढ़ता ही जायेगा

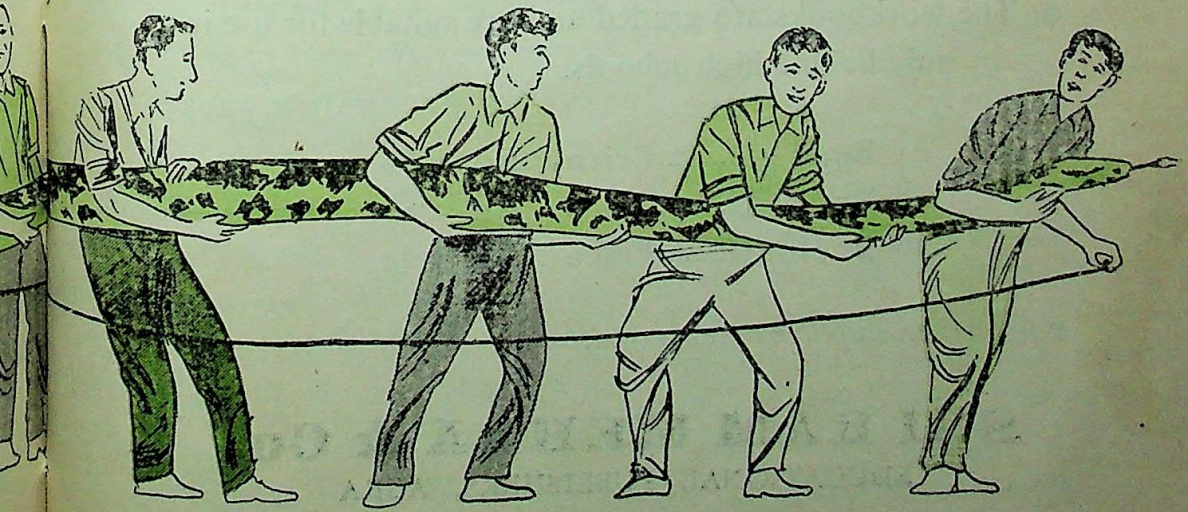

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ENGLISH
WORK BOOK

- A Modern Course for Writing as well as Reading through the medium of Hindi.
- The Course provides exercises in spelling, punctuation, very simple grammar, sentence-structure, picture-composition, story-writing, cross-word puzzles, letter-writing and comprehension.
- The exercises are fresh and original, varied and interesting, and are carefully *graded*.
- An interesting technique is used to teach the young pupils how to write sentences correctly. They learn by doing, and by doing *correctly*.
- Exercises are so arranged that even slow children are sure to make *rapid progress*.
- Illustrations are given to attract the child's attention and to awaken his interest in the subject.
- Ehe series is based upon a limited vocabulary of 1200 words.
- The workbooks are graded and are suitable for use in middle and high schools.

Book I.....Price : Re. 0·80
Book II.....Price : Re. 1·00
Book III.....Price : Re. 1·20

For further enquiries please write to :

SRI RAM MEHRA & Co.
EDUCATIONAL PUBLISHERS, AGRA

विज्ञान-लोक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान-क्लब

प्यारे बच्चो !

शरद के ये सुहाने दिन और यह अक्टूबर-अंक, दोनों तुम्हारे सामने हैं। इसे अवकाश और आनन्द से पढ़ने के लिए दशहरे की छुट्टियाँ भी हैं। इस अंक के बारे में तुम्हारे सम्मति-पत्रों की मुझे प्रतीक्षा रहेगी।

विगत दो मास—अगस्त और सितम्बर के अंकों को तुम सभी ने बहुत पसन्द किया है। कानपुर से हर्ष श्रीवास्तव (१०७२१) ने लिखा है कि सितम्बर-अंक का मुखपृष्ठ और तत्सम्बन्धी लेख-**पैराशूट** बहुत रोचक लगा। इसी प्रकार अगस्त अंक के लेख—**पदार्थ की तरंगें** नवीन ज्ञानयुक्त तथा **ये बच्चे किसके हैं** पसंद करने वाले हैं, बिलासपुर से जाय मुकर्जी (१३१०१), कानपुर से कुमारी माया (८६०४) तथा कलकत्ता से अच्युत (११७९४)। इसी अंक में जुन्नारव से इन्द्रसागर अग्रवाल (१२७७६) तथा गंगानगर से सुभाषचन्द्र (१२१८३) को **हीलियम द्वितीय** और **लगी आग बुझाते हैं** विशेष पसन्द हैं। सितम्बर-अंक में **हृदय-रोग, उत्प्रेरण**, तथा **बाँस** लेख पसन्द करने वाले निरंजनप्रकाश माथुर (३६१६) मसूदा, केशवदत्त भारद्वाज (१३०१६) बम्बई और अक्षयकुमार (५०९१) मेरठ हैं।

अब तुम तनिक ध्यान और दो तो प्रतियोगिता-पूर्तियों के साथ कूपन भेज कर पुरस्कार की सम्भावना सुनिश्चित कर सकते हो। इस नियम के पालन में अब भी त्रुटियाँ होने के कारण याद दिलाना पड़ रहा है। यदि तुम्हारा फोटो छपने में विलम्ब होता हो, तो समझना चाहिए कि या तो फोटो में कहीं त्रुटि है अथवा धैर्य और प्रतीक्षा की आवश्यकता है।

सस्नेह तुम्हारी

कृष्णा दीदी

7625

प्रतियोगिता संख्या ५५ के विजेता

प्रथम पुरस्कार

वीरेन्द्रनाथ श्रीवास्तव (३४२९) इलाहाबाद; राधेलाल गुप्ता (६४३७) बुलन्दशहर, मंजू गुप्ता (७२९०) बहराइच, प्रफुल्लराय (९०९८) बरेली, सेवाराम (१३१०३) किशनपुर (मेरठ)।

द्वितीय पुरस्कार

मदनगोपाल (१३२३) उदयपुर, सुरेन्द्रकुमार (८४१७) फारबिसगंज श्यामप्रसाद मिश्र (८७२३) देवरिया, शिवप्रकाश (९७२९) देहरादून, सतीशप्रसाद अग्रवाल (१०५६३) समस्तीपुर, रवीन्द्र कुमार (१२०५५) मुजफ्फरनगर, आनन्दप्रकाश अग्रवाल (१२१९३) आगरा, देवेन्द्रसिंह राय (७१२६१) बिलासपुर।

तृतीय पुरस्कार

राकेश निगम (३५६०) मेरठ, एन. पी. माथुर (३६१६) पुष्कर, विनोदकुमारजैन (६६१२) इन्दौर, सूर्यकान्त नागर (६६८९) सारंगपुर, महेन्द्रप्रताप (९०६१) झांसी, विजयलक्ष्मीसिंह (११०५०३) बरेली, रंजन माथुर (१२४८०) जयपुर, राजेन्द्रसिंह अरोरा (१२२४२) रुड़की, जयप्रकाश कांटिया (१२६८९) शाहपुरा, कु. स्नेह (१२७७७) मेरठ, विमलकुमार जैन (१३१०४) कलकत्ता।

कूपन प्रतियोगिता संख्या ५७

नाम.....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर रेलवे

एक टिकट पर सामान ले जाने की अधिकतम भार-सीमा

१ अक्टूबर १९६४ से आई. आर सी. ए. कोचिंग टेरफि नं० १८ में नया नियम सं. ६१५-ए निम्न भाँति बढ़ाया गया है :

६१५-ए प्रति यात्री, बुक करने योग्य सामान का अधिकतम भार :

१. प्रति यात्री, बुक करने योग्य सामान ले जाने का भार (निर्धारित छूट सहित) निम्न भाँति सीमित किया गया है :

वातानुकूलित श्रेणी	...	१२० कि.
प्रथम श्रेणी	...	८० कि.
द्वितीय श्रेणी	...	६० कि.
तृतीय श्रेणी	...	५० कि.

२. ऐसा सामान जो सैन्य तथा सरकार द्वारा आवश्यक निर्दशित हो तथा ऐसा भी सामान जो रेलवे ने उपरोक्त भार-सीमा के अतिरिक्त, विशेष अनुमति के अन्तर्गत बुक किया हो, उसी देन के ब्रेक-वान में ले जाया जायेगा, जिसमें सम्बन्धित यात्री यात्रा कर रहा हो।

३. जो यात्री उपरोक्त उप-पैरा (१) में निर्धारित भार-सीमा से भी अधिक भार बुक कराना चाहे, उसे उस अतिरिक्त भार का सामान्य दर से ५% अधिक शुल्क देना होगा।

उपरोक्त कालम (२) में वर्णित विशेष अनुमति (अतिरिक्त भार के लिए) केवल चीफ कमर्शियल सुपरिन्टेन्डेन्ट, बड़ौदा हाउस, उत्तर रेलवे, नयी दिल्ली, उसी स्थिति में देंगे जिनका यथार्थ आवश्यकतापूर्ण आवेदन-पत्र यथा सुविधा काफी पूर्व से प्रस्तुत किया गया होगा। उपरोक्त कालम (३) में वर्णित ५% अतिरिक्त शुल्क देने वाले सामान के लिए ऐसी अनुमति प्राप्त करना आवश्यक होगा। ऐसी स्थिति में लगेज बुक करने के सामान्य नियम ही लागू होंगे।

निर्धारित भार से अधिक सामान बुक कराने वाले यात्रियों की सुविधार्थ उनका सामान बुक करने के लिए लगेज-खिड़की पर ही विशेष व्यवस्था कर दी गयी है ताकि पार्सल-आफिस तक सामान ले जाने की सुविधा उन्हें न उठानी पड़े।

स्वयं को ही असुविधा न हो इस हेतु इस नियम के पालन की जनता से अपेक्षा है।

—चीफ कमर्शियल सुपरिन्टेन्डेन्ट

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान क्लब के नये सदस्य

सुबोधशंकर
(स. सं. ४७०५)

शान्तिप्रकाश
(स. सं. ५९७९)

जीवराम चावड़ा
(स. सं. ७७७३)

बबुलन शुक्ल
(स. सं. ७८१४)

सुभाषचन्द्र
(स. सं. ७९९३)

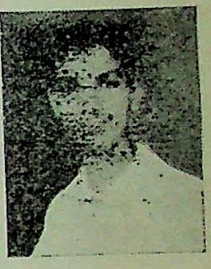

रविन्द्रनाथ
(स. सं. ८२३७)

देवीदास
(स. सं. ९६११)

राखोहरी
(स. सं. ९९८५)

९२३७ कु. उषाकिरण (१२) नई दिल्ली, ३८ अखिलेश बिहारी (१६) नई दिल्ली, ३९ देवीचन्द (१५) पाली, ४० अवधेशकुमार (११) लहेरिया सराय, ४१ विनोद (१४) नांगल टाउनशिप ४२ प्रीतमसिंह (१४) इन्दौर, ४३ प्रफुल्लकुमार (१८) रायगढ़, ४४ अख्तर हुसैन, (१०) झरिया, ४५ सत्यनारायण (१६) जबलपुर, ४६ विनोदकुमार (१६) अलीगढ़, ४७ सनतकुमार (१५) रायपुर, ४८ प्रेमनारायण (११) जयपुर, ४९ रामसिंह (१८) बैतूलगंज, ५० अरुणकुमार (१३) दमोह, ५१ राजेन्द्रकुमार (१५) दमोह, ५२ कु. सुनीता (१२) बीकानेर, ५३ शुभकरन (१६) सरदार शहर, ५४ जितेन्द्रकुमार (१३) नेतरहाट, ५५ कुमारी नीलम (१४) गोण्डा, ५६ रामनरेशसिंह (१४) बरेजा, ५७ प्रभाकर (१९) मिठबाव, ५८ भालचन्द्र (१६) मिठबाव, ५९ कृष्णकुमार (१२) लोहरदगा, ६० कु. उषा (१८) बम्बई, ६१ बनवारीलाल (२१) बम्बई, ६२ रविनकुमार (१२) हरदोई, ६३ कृष्णकुमार (३) फतेहपुर, ६४ पूरणसिंह (२०) जसोई, ६५ सुनीलकुमार (१६) समस्तीपुर, ६६ अमलेन्द्रकुमार (९) नेहटा, ६७ अवधकिशोर (१७) कटिहार, ६८ शान्ताकुमारी (१४) ग्वालियर, ६९ रमेशप्रसाद (१३) शिमला, ७० फूलचन्द्र (१७) अहरौला, ७१ शशीकान्त (१०) चन्दौसी, ७२ राजीव लोचन (१३) चन्दौसी, ७३ फूलचन्द (१४) उज्जैन, ७४ रक्षपालसिंह (१५) काशीपुर, ७५ रमेशचन्द्र (१६) बड़ली, ७६ प्रतापसिंह (१४) गुलाबपुरा, ७७ जोहरीलाल (१४) गुलाबपुरा, ७८ कु. सरोज (१४) इन्दौर, ७९ रोशन जमीर (१६) भागलपुर, ८० अकदस (१५) भागलपुर, ८१ शमीम (१३) भागलपुर, ८२ सुभाषचन्द्र (१४) ललितपुर, ८३ राजकुमारी (१२) चित्तौड़गढ़ ८४ दिनेशचन्द्र (१५) फुलेरा, ८५ प्रतापसिंह (१७) बीकानेर, ८६ अनिलकुमार (१७) फरीदपुर, ८७ रामराज (१५) जलालपुर घई, ८८ रामदास (१४) जलालपुर घई, ८९ इंकिसारअली (१५) जलालपुर घई, ९० सुरेशचन्द्र (१६) डूंगरगढ़, ९१ मगनलाल (१४) भाभर, ९२ कुलदीपचन्द्र (१३) काशीपुर, ९३ डाहयालाल (२०) अमरापुर, ९४ शिवनरायण (२१) भिलाई, ९५ प्रदीपकुमार (१३) अलीगढ़, ९६ पंकजकुमार (८) बोकारो, ९७ संदीपकुमार (६) बोकारो, ९८ संजयकुमार (४) बोकारो, ९९ पन्नालाल (१३) लाडनूं, ९३०० प्रतपालसिंह (१६) रांची, १ मदनसिंह (१४) दमदेवल, २ योगेन्द्रप्रसाद (१२) गोरखपुर, ३ मिथिलेशप्रसाद (१४) टैटरी, ४ धनराज (१७) रतनगढ़, ५ नरेश (१७) बड़नगर, ६ बलराम (१८) भटिंडा, ७ बिपरेन्द्रकुमार (१६) सहारनपुर, ८ भुवनेश्वर (१५) चाईबासा, ९ प्रीतमलाल (१५) अमृतसर, १० शुभेन्दुप्रकाश (१५) बनारस, ११ विनोद कुमार (१९) जोधपुर, १२ रामदयाल (१४) मन्दसौर, १३ सुरेशचंन्द्र (१२) आगरा, १४ जगदीशचन्द्र (१४) कानपुर, १५ प्रदीपकुमार (१४) मिर्जापुर, १६ सत्यनारायण (१५) डोंगरगढ़, १७ गोपालप्रसाद (१५) मथुरा, १८ धीरेन्द्रकुमार (१२) मेरठ, १९ रमेशकुमार (१५) टूण्डला, २० अरविन्दकुमार (१३) अकोला, २१ मोतीलाल (१६) मालवा, २२ व्यासनारायण (१५) दुर्ग, २३ अमरचन्द (१९) व्यावर, २४ मदनेश्वरप्रसाद (१५) सहजनवां, २५ शिवलखनसिंह (१५) बनकट, २६ सुदर्शनप्रसाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयप्रकाश
(स.सं. १०६४१)

रणजीतकुमार
(स.सं. १०७५४)

ओमप्रकाश गर्ग
(स.सं. १११७२)

नन्दलाल जैन
(स.सं. ११४०७)

(१५) झरिया, २७ महेन्द्रकुमार (१७) [illegible] (१६) अतरौली, २९ सुरेन्द्र (१६) उदयपुर, ३० लवकुशप्रसाद (१४) दुर्ग, ३१ प्रेमनारायण (१२) दुर्ग, ३२ रमाकान्त (१६) केराकत, ३३ अब्दुलअजीज (१२) कुजू, ३४ सुरेन्द्रप्रसाद (१३) मथुरा, ३५ जैनेन्द्रकुमार (१४) मुरैना, ३६ कैलाशप्रसाद (१५) अहियापुर, ३७ विश्वपति (१३) सबलगढ़, ३८ अजीतकुमार (१२) सबलगढ़, ३९ कु. हंसा (१४) सोनगढ़, ४० रामसिंह (१७) चीखलदा, ४१ शुभकरण (१२) डाबड़ी बलौदा, ४२ राजकुमार (१३) डोंगरगाँव, ४३ कु. शोभा (१६) बांदा, ४४ कु. प्रेमलता (१३) पीसांगन, ४५ अशोककुमार (१२) जालना, ४६ शारिकाप्रसाद (११) लखनऊ, ४७ कुलदीपसिंह (१३) पिपरिया, ४८ भूपेन्द्र नारायण (१४) अनिरुद्ध, ४९ राजेन्द्रप्रसाद (१५) कदमा, ५० सुरेन्द्रकुमार (१५) अमृतसर, ५१ कनवर शेखर (१९) नाथद्वारा, ५२ अजीतकुमार (११) भागलपुर, ५३ तरुणकुमार (१८) रायपुर, ५४ अजीतकुमार (१५) नई दिल्ली, ५५ महेशकुमार (१८) रायपुर, ५६ महीउद्दीन (१५) कादिराबाद, ५७ श्यामसुन्दर (१७) घुबड़ी, ५८ धनपाल (१६) इचलकरजी, ५९ प्रकाशकुमार (१३) रांची, ६० बंसीधर (१५) पिपरिया, ६१ मोहन (१२) एंकगर सराय, ६२ होरेन्द्रकुमार (१६) डुमरा, ६३ रामदेवलाल (१५) रांची, ६४ परमानन्द (१७) मण्डलेश्वर, ६५ अशोककुमार (१५) गोदिया, ६६ सत्यनारायण (१६) सानकक्ष, ६७ विजयचन्द (१६) जोधपुर, ६८ शैलेशकुमार (१५) पुनपुन, ६९ रमेशकुमार (१३) पेन्ड्रारोड, ७० वासुदेव (१५) धमदाहा, ७१ कु. नीलिमा (१२) बाढ़, ७२ कु. अहिल्या (१३) बाढ़, ७३ पुष्कर, (१२) बाढ़, ७४ गोपाल (१७) बछवाहा, ७५ रमेशकुमार (१४) नान्देड, ७६ सन्तोषकुमार (१३) झांसी, ७७ सुभाषचन्द्र (१२) इटावा, ७८ सूर्य (१८) बसविटा, ७९ रामानन्द (१३) मुजफ्फरपुर ८० परमानन्द (१३) भिलाई, ८१ अशोककुमार (१५) अलीगढ़, ८२ दिलीपकुमार (१५) मुजफ्फरपुर, ८३ शिवनदास (१५) शहपुरा, ८४ अमरचन्द (१५) जोधपुर, ८५ इन्द्रपदन (१६) उकाई, ८६ उदयकुमार (११) सोनगढ़, ८७ कु. रेहानाबाई (१३) सोनगढ़, ८८ महेशकुमार (१५) सोनगढ़, ८९ कु. सुरेशा (१५) सोनगढ़, ९० दीपककुमार (१४) सोनगढ़, ९१ राजेशकुमार (१३) सोनगढ़, ९२ भीखुभाई (१६) सोनगढ़, ९३ नरेशकुमार (१३) सोनगढ़, ९४ नटवरलाल (१७) सूरत, ९५ मोहनप्रसाद (१६) तेलबीगहा, ९६ विजयकुमार (१५) लाडनू, ९७ रामकुमार (१७) राजीम, ९८ रामचन्द्र (१७) पूना, ९९ प्रवीनकुमार (१३) आगरा, ९४०० राघवेन्द्र (१७) इलाहाबाद, १ जयप्रकाश (१६) नागौर, २ अजीतकुमार (१५) श्योपुर कलां, ३ बसन्त (१८) अकोला, ४ परमानन्द (१५) निम्बाहेरा, ५ उदाराम (१५) रावतसर, ६ सुरेशचन्द्र (१६) पवा, ७ जयप्रकाश (१२) बम्बई, ८ कृष्ण मुरारीलाल (१६) गहासाड, ९ ठाकुरदास (१६) नंगल टाउनशिप, १० शम्भूप्रसाद (१३) वाराणसी, ११ कु. रूपज्योति (१४) कलकत्ता, १२ सुरेशचन्द्र (१३) निम्बाहेड़ा, १३ रवीनरायण (१३) कानपुर, १४ अशोककुमार (१०) सागर, १५ श्यामसुन्दर, (१५) जूनागढ़, १६ मनोज (११) वाराणसी, १७ जयप्रकाश (१४) लोटन, १८ गोपीराम (१३) चिडावा, १९ सुभाषचन्द्र (१३) वाराणसी, २० सुरेन्द्रकुमार (१९) केशोद, २१ मो. अकबर (१६) सांची, २२ प्रीतइन्दर (१७) सहारनपुर, २३ कैलाशप्रसाद (१८) बांदा, २४ सुमंगलप्रकाश (११) मेरठ ।

सुभाष शंकरराव
(स.सं. ११४८३)

अशोककुमार
(स.सं. ११५८१)

दिवाकर सेठ
(स.सं. ११७६३)

श्री केशवकुमार
(स.सं. १२८४७)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

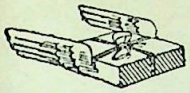

इनाम लो!

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५७

प्रथम पुरस्कार	२५ रु. की पुस्तकें
द्वितीय पुरस्कार	२० रु. की पुस्तकें
तृतीय पुरस्कार	१५ रु. की पुस्तकें

अन्तिम तिथि : १५ नवम्बर

इस प्रतियोगिता में केवल विज्ञान क्लब के सदस्य भाग ले सकते हैं। प्रतियोगिता में भाग लेने का कोई शुल्क नहीं है। नीचे दिये हुए प्रश्नों के उत्तर अलग कागज पर स्याही से साफ-साफ लिखकर पृष्ठ ४९ पर छपे कूपन के साथ लिफाफे में बन्दकर इस पते पर भेज दो :

कृष्णा दीदी, संचालिका, विज्ञान क्लब, विज्ञान-लोक, आगरा

लिफाफे पर 'विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५७ का उत्तर' लिखना आवश्यक है। उत्तर १५ नवम्बर तक उपरोक्त पते पर अवश्य पहुँच जाने चाहिए। बाद में आये उत्तरों पर विचार नहीं किया जायेगा।

विज्ञान क्लब प्रतियोगिता संख्या ५७ के प्रश्न

१. मलयेशिया का नवसंगठन किस वर्ष हुआ और इसमें कौन-कौन से देश सम्मिलित हैं।

२. जहाँ अति उच्च ताप में कोई भी तापमापी ठहर न सके, वहाँ किस यंत्र द्वारा ताप मापा जा सकेगा ?

३. क और ख ने पहले दिन ३०-३० सेब मिला कर कुल ६० सेब प्रति १० पैसे के ५ सेब के हिसाब से बेचे। दूसरे दिन दोनों ने अलग-अलग ३०-३० सेब किस हिसाब से बेचे जो उन्हें कुल मिला कर ५ पैसे की बचत रही ?

४. तितली तथा पतंगा बैठते समय अपने पंखों को जिन अवस्थाओं में रखते हैं, उनमें मुख्य भेद क्या है ?

५. वह कौनसा यंत्र है जो समुद्र में शत्रु द्वारा बिछायी हुई विस्फोटक सुरंगों की टोह लेता है और उनके रस्से काट कर उन्हें सतह पर तिरा देता है, ताकि उन्हें नष्ट किया जा सके ?

६. हर्ष, शोक अथवा क्रोध के आवेग में हम गले में कुछ अटका हुआ सा क्या और क्यों अनुभव करते हैं ?

७. उत्तर ध्रुव और दक्षिण ध्रुव में निरन्तर ताप कहाँ का है और दोनों का निम्नतम ताप लगभग कितना-कितना पाया गया है ?

८. सर्वप्रथम कब और किस देश के नक्षत्र-विदों ने ज्ञात किया कि पृथ्वी सपाट नहीं, गोल है ?

प्रतियोगिता संख्या ५५ के प्रश्नों के उत्तर

१. जीव-जगत के पारस्परिक सहजीवन को कहते हैं। सेमफली तथा भूमिगत बैक्टीरिया एक-दूसरे से क्रमशः नाइट्रोजन तथा शर्करा लेते हैं, यह असंख्य उदाहरणों में से एक है।

२. एल्बट्रास (Albatross); इसके पंखों का फैलाव १२ फुट तक पहुँचता है।

३. पुतर्हिमायन (regelation) के सिद्धान्त पर, ताँबे के एक पतले तार के सिरों दोनों पर भार बाँध कर बर्फ की सिल्ली पर लटका देने से तार तो पार हो जायगा किन्तु सिल्ली कटती-कटती भी साबुत बनी रहेगी।

४. एर्फवेडसन ने, १८१७ में।

५. पारे में।

६. काइमोग्राफ (Kymograph) द्वारा

७. पानी को उबाल कर वायु-रहित कर देने से पानी में रखे रहने पर भी कीलों पर जंग नहीं लगेगा।

८. ६०० वोल्ट तक, जो कि एक घोड़े को भी अंग-शून्य कर देने को पर्याप्त है।

९. क्वथनांक–१०१·४°C; घननांक–३·८°C

१०. वायुमण्डल के अभाव में पूर्ण अंधकार हो रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रयात्रा आखिर क्यों?

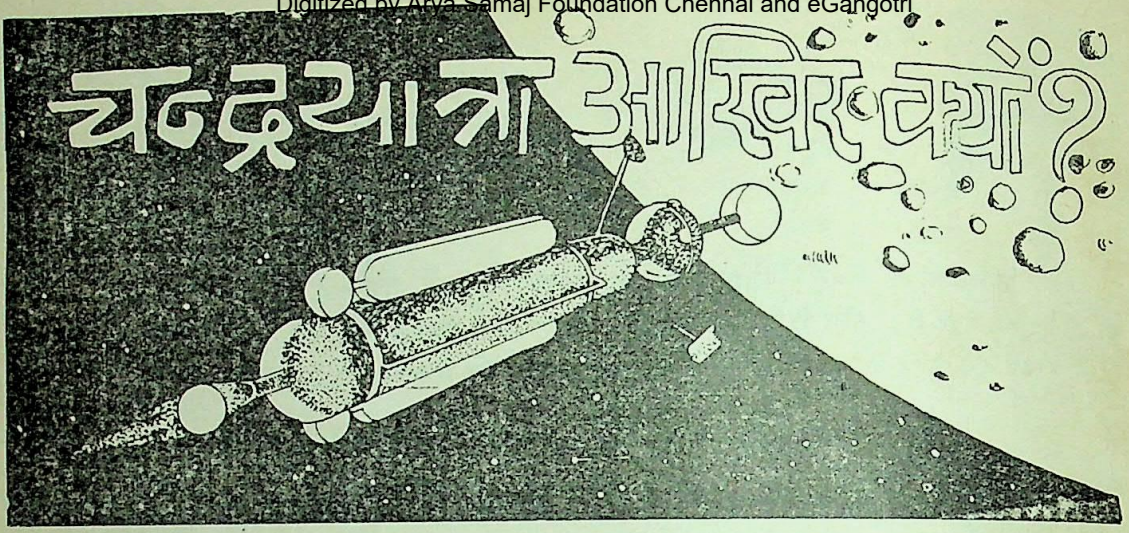

सुभाषचन्द्र

आज सबका ध्यान चन्द्रमा की ओर लगा हुआ है, कुछेक वैज्ञानिक और विशेषज्ञ भी ऐसे हैं जो प्रतिदिन, प्रतिक्षण उस दिशा में कार्यरत हैं और जिनके पांव चन्दा की ओर उठने को मचल रहे हैं। अमरीका की संसार-प्रसिद्ध अन्तरिक्ष उड्डयन संस्था—नासा (NASA) के डिप्टी एडमिनिस्ट्रेटर डा. ह्यू ड्राइडन (Hugh Dryden) अपने क्षेत्र के अप्रतिम विशेषज्ञ हैं जिन्होंने अपने जीवन के ४५ वर्ष इसी अनुसन्धान में व्यतीत किये हैं। इस विषय में उनका प्रत्येक मत विशेष महत्त्व रखता है।

आओ चलें

चलने को तो हम कल ही तैयार हैं, सवाल यह है कि व्यय का प्रबन्ध क्या होगा? इसमें सन्देह नहीं कि व्योम-मण्डल में केवल चन्द्रमा ही पृथ्वी के अधिकतम निकट है, अतः हमारी यात्रा का पहला पड़ाव चन्द्रमा ही होना चाहिए। अभी तो समस्त योजना कागज पर है और निकटतम अनुमान यह है कि पहली बार भी चाँद पर पहुँचने में कम से कम चालीस खरब (४×१०^{१२}) रुपया व्यय होगा।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि आज पृथ्वी पर ऐसा धनी व्यक्ति कोई भी नहीं है जो अकेला यह व्यय-भार उठा सके। यदि यह भी मान लें, कि कुछेक बहुसंख्यक बड़े-बड़े उद्योग संस्थान इस खर्च को मिल-जुलकर उठाना स्वीकार कर लें, तो इसमें वे यह ध्यान पहले रखेंगे कि लगाया हुआ धन कितना शीघ्र, मुनाफे सहित वापिस मिल सकता है! अतः प्रतीत तो यह होता है कि इस कार्य को कोई भी राष्ट्र अपने राष्ट्रीय पैमाने पर शायद उठा सके। शर्त उसमें भी यह रहेगी कि इसका आर्थिक लाभ कितना और कब मिलेगा?

तो क्या, विचार ही छोड़ दें?

इतनी निराशा क्यों? चाँद तक हमें पहुँचना है और हम न सही, हमारी आने वाली पीढ़ी तो पहुँच कर रहेगी; किन्तु उचित साधन तथा प्रकार से। दूसरे शब्दों में, चन्द्रमा हमारा आज के लिए प्रथम लक्ष्य न होकर द्वितीय लक्ष्य रहेगा अर्थात् हमारा चरण ठहरेगा किसी मानव-निर्मित चाँद—अर्थात् कृत्रिम उपग्रह पर। हमारा वह प्रथम पड़ाव शान्ति-काल तथा युद्धकाल में ऐसी महत्त्वपूर्ण सेवाएं देगा कि उस योजना पर लगाया हुआ धन आकर्षक मुनाफे सहित वसूल होता रहेगा। युद्धकाल में किसी भी देश के लिए यह असम्भव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जायगा कि वह उपग्रह से ताकती हमारी वैधक दृष्टि से छिप कर कहीं भी कोई मोर्चा खड़ा कर ले। बस, एक बार वहाँ पहुँच जायें फिर चन्द्रमा की दूरी भी तो काफी घट जायेगी! शान्तिकाल के लिए भी हमारे रसायनज्ञों का अनुमान है कि चन्द्रमा पर कल्पनातीत मूल्य तथा महत्त्व के खनिज पदार्थ, धातुएं आदि प्राप्त की जा सकेंगी।

प्रश्नों की बौछार

'चलो चन्द्रमा'—क्या यह दौड़ एक पागलपन है या बुद्धिमानी? सड़क पर चलने वाले एक अति सामान्य व्यक्ति को इससे क्या लाभ? यदि रूस ही पहले चाँद पर पहुँच जाये तो क्या अन्तर पड़ेगा? चन्द्रमा के बाद क्या? ये प्रश्न जटिल होते हुए भी डा. ड्राइडन के लिए सरलतम थे और उन्होंने निम्न भाँति एक-एक का समाधान किया।

सुनियोजित दौड़

यह दौड़ अवश्य है किन्तु पागलपन की दौड़ नहीं, एक सुनियोजित स्पर्धा है। १९६० से ही हमारे देश के वैज्ञानिकों का दल अपनी समय-समय की बैठकों में इस पर गम्भीरता से विचार करता आया है—विशेषत: इसी बात पर कि चन्द्रमा पर रूस से भी पहले कदम अमरीका का किस प्रकार सम्भव हो। यह तो कहना युक्तिसंगत नहीं कि हमारी यह योजना एक दौड़ है जिसमें पहले हमीं को चन्द्रमा पर पाँव धरना है। हम और रूस साथ ही चल रहे हैं और उनकी भाँति हम भी इस नवीन उपलब्धि के प्रवर्तक होने का गौरव प्राप्त करना चाहेंगे।

खर्च के ये गगन-चुम्बी आँकड़े

ये आंकड़े तो हम अपनी राष्ट्रीय कांग्रेस को 'एपोलो प्रोजेक्ट' प्रस्तुत करते समय दे चुके थे। हमने उसी समय अपनी सरकार से कह दिया था कि खर्च के आंकड़ों को सबसे पहले लक्ष्य में रखे रहें और यदि स्वीकार्य हो तो ही हमें आगे पग बढ़ाने को कहें, अन्यथा कुछ समय तक इस योजना को कागज पर ही पलने दें। आज जब यह धन लेने का समय आया है, तब सामान्यजनों को यह भार असह्य प्रतीत हो रहा है; किन्तु सच तो यह है कि आगामी ५-६ वर्षों तक इस खर्च का वार्षिक औसत हमारे राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति पर २५-२६ डालर (लगभग १०० रुपया) ही पड़ेगा, जबकि इससे कहीं अधिक तो प्रत्येक व्यक्ति पान-बीड़ी, चाय-सिगरेट और चाकलेट आदि में खर्च कर देता है।

प्रति व्यक्ति इसका लाभांश क्या होगा?

इस प्रश्न का उत्तर आज देना असम्भव है। कोई दे भी न सकेगा। जिस दिन राइट बन्धुओं ने प्रथम बार मानव को हवा में उड़ने के लिए पांखें दीं, उस दिन वे भी ऐसे प्रश्न का उत्तर न दे पाते। उनकी उस उपलब्धि के प्रति ऐसे प्रश्न का उत्तर हमारे, आपके, सबके सामने है। यही बात मोटरकार के आविष्कार के सम्बन्ध में कही जा सकती है। इतना अवश्य है कि 'चलो चन्द्रमा' की पुकार ने आधुनिक विज्ञान की प्रगति में कितना वेग और बल ला दिया है, यह आज सबके सम्मुख है। स्कूलों के नन्हें बच्चे तक तो कहने लगे हैं कि चन्दा पर चलने के लिए अभी से सीट रिजर्व करा लो, १०-१२ वर्ष में नम्बर आ ही जायगा! यह वैज्ञानिक जागृति क्या कम महत्त्व की बात है?

चन्द्रमा पर मानव ही क्यों, यंत्रों से काम न चलेगा?

प्रश्न बड़े औचित्य और महत्त्व का है। आप को स्मरण ही होगा कि हमारी नासा (NASA) संस्था ने आरम्भ ही यन्त्रों से किया है। हमारे 'मैरिनर-द्वितीय' ने सिद्ध किया था कि लगभग साढ़े पांच करोड़ मील की ऊँचाई पर भी अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर रेडियो-सम्पर्क

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा रास्ता साफ और सीधा है...

भारत अब जाग उठा है और पुरानी व्यवस्था कल की बात होती जा रही है . . . अब हमारे लोगों के हाथ में नये काम शुरू करने का अवसर है और हम अपनी पसन्द के इतिहास का निर्माण करेंगे। आइये, हम सब मिल कर इस महान् कार्य मे जुट जाएं और भारत को अपने हृदय का गौरव, एक महान् राष्ट्र बनाएं और अपने देश को शान्ति और प्रगति के कामों में सबसे आगे रखें। दवार खुला हुआ है और आने वाली सुबह की रोशनी में हमारी मंजिल साफ दिखाई दे रही है।

—जवाहरलाल नेहरू

भारतकाल
04052
विश्वविद्यालय

हमारा रास्ता साफ और सीधा है और यह है देश में एक समाजवादी गणतंत्र की स्थापना, जिसमें सभी को आजादी और खुशहाली हासिल हो। दुनिया मे शांति बनी रहे और तमाम देशों से दोस्ती कायम रहे।

—लालबहादुर शास्त्री
प्रधान मंत्री

हमारी आर्थिक योजना और तटस्थ नीति ने प्रगति, समृद्धि और शांति की जड़ें मजबूत कर दी है।

आइये, हम सब मिल कर एक मजबूत और खुशहाल भारत को बनाने में जुट जाएं।

अनुशासन और मिला-जुला प्रयत्न ही आज की चुनौती का जवाब है।

जय हिन्द

मिल कर चलो, मिल जुल कर काम करो।

फी ए ६५/२४७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधा जा सकता है। हमारे दूसरे यंत्र ने वायु-मण्डल में हीलियम-आवरण का भी पता लगाया था। इससे भी आगे बढ़ कर हमारे तीसरे प्रयास में हम यह रहस्य प्रकट कर सके थे कि पदार्थ-अपदार्थ की प्रचलित मान्यताएं भ्रमपूर्ण हैं और तथ्य यह है कि पदार्थ और अपदार्थ अन्तरिक्ष में निरन्तर क्षरित होने के साथ-साथ नये निर्मित भी होते रहते हैं।

ऐसे ही कार्य हमारी योजना के प्रमुख अंग हैं। हम और भी अधिक सम्पन्न वेध-शालाएं अन्तरिक्ष में स्थापित करके इस दिशा में नये-नये रहस्योद्घाटन कर सकेंगे। सचाई फिर भी यह है कि अन्तर्ग्रही यात्राओं में मानव की आवश्यकता तो पड़ेगी ही। यह इसलिए कि मान लीजिए, मंगल ग्रह से लौटा हुआ हमारा यन्त्र वहाँ की कुछ भी खबर न लाया, तब हम क्या समझेंगे! तब हमें अनुमान लगाना पड़ेगा कि या तो वह यन्त्र ही बीच में खराब हो गया अथवा मंगल ग्रह पर उतरा ही ऐसे स्थल, पर, जहाँ शून्य ही शून्य हो। उस समय यदि मानव भी उस यान में होगा, तो ऐसी किसी भी शंका को अवकाश न होगा और हम निश्चितपूर्वक परिस्थिति ज्ञात कर सकेंगे। हमारा समानव-चन्द्र अभियान कार्यक्रम (Manned Lunar Landing Programme) इस दिशा में तेजी से क्रियाशील है। हमें आशा है कि अपनी जैमिनी (Gemini) योजना के अन्तर्गत हम मानव-रहित यान तो १९६५ के अन्त तक चन्द्रमा पर भेज ही सकेंगे और समानव यात्रा होने तक १९०७ की साल आ लगेगी।

पहले कौन...?

'पहले कौन-का' हमारे निकट अधिक महत्त्व नहीं। यदि रूस ही पहले चन्द्रमा पर मानव उतारने में सफल हो जाये, तो भी अनन्त अन्तरिक्ष इस संसार को फिर भी चुनौती देता रहेगा और हमारे ही लिए क्यों, किसी भी राष्ट्र के लिए अन्य कोई भी ग्रह-उपग्रह अभियान के लिए खुला रहेगा।

रही चन्द्रमा के पश्चात् की बात; सो इस विषय में भी मेरी अलग ही धारणा है। बजाय इसके कि हम भी चन्द्रमा पर उतरने के बाद उसी के पीछे लगे रहें, मैं चाहूँगा कि हम ऐसे विशिष्ट मानवचालित उपग्रह बनायें जो पृथ्वी की ही परिक्रमा कम से कम वर्ष भर करते रहें। उन यानों में हमारे भौतिज्ञों, रसायनज्ञों, नक्षत्रविदों तथा जैव-विज्ञानिकों के दल रहें। वे यान पृथ्वी से केवल ३५० मील ही दूर इस प्रकार रहे आयें कि न तो पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के खिंच जायें और न अधिक ऊँचे जा कर घातक विकिरणों के शिकार बनें। उन परिक्रमाओं के अन्तर्गत अपने विविध अवलोकनों के साथ-साथ यह भी परीक्षण करते रहें कि लम्बे समय तक भारहीन अवस्था का तथा अन्यान्य परिस्थितियों के उनके सहयात्रियों पर अर्थात् मानवों पर क्या-क्या प्रभाव पड़ते हैं।

डा. ह्यू ड्राइडन आज ६५ वर्ष के हैं फिर भी अन्तरिक्ष अनुसन्धान में उनकी तत्परता, लगन और कार्यक्षमता तब से अधिक ही निखरी हुई है जो आज से ४५ वर्ष पूर्व उनमें विद्यमान थी।

भूल-सुधार

अगस्त अंक में प्रकाशित लेख 'क्लाडियस गेलेन' के लेखक डा. हर्ष प्रियदर्शी हैं, हमें खेद है, भूल से अगस्त अंक में उनका नाम न जा सका। पाठक कृपया सुधार कर लें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

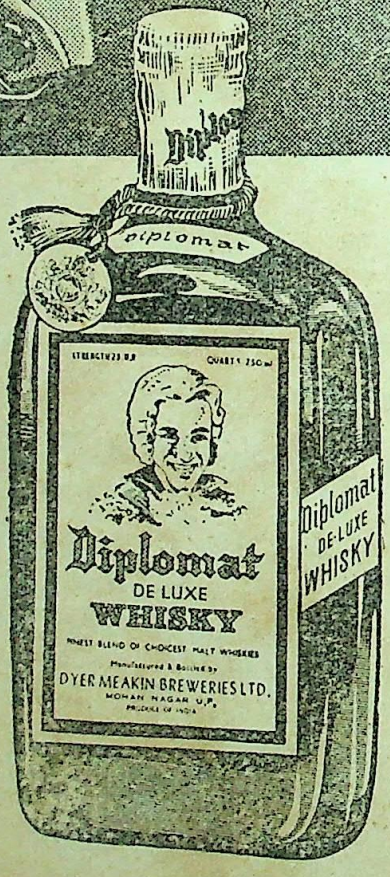

चिरस्थायी मित्रता प्राय:

उत्तम व्हिस्की

के गिलास से ही प्रारम्भ होती है

चतुर मेजबान सदैव "डिप्लोमैट" ही प्रस्तुत करते हैं क्योंकि यह अति उत्तम व्हिस्की है और विशिष्ट पार्टियों में आदर की दृष्टि से देखी जाती है। सभी ख्यातिप्राप्त होटलों, क्लबों और रेस्टोरेंटों की पय सूची में इसे सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

इसे पूर्ण विश्वास के साथ प्रस्तुत कीजिये और सानन्द पीजिये

डिप्लोमैट
डी लक्स व्हिस्की

डायर मीकिन के तहखानों में वर्षों रखने के उपरान्त चुनिन्दा माल्ट व्हिस्कियों का सर्वोत्तम सम्मिश्रण

डायर मीकिन ब्रुअरीज लिमिटेड
स्थापित १८५५

लोअर ब्रुअरी — लखनऊ डिस्टीलरी — कसौली डिस्टीलरी
मोहन नगर ब्रुअरी ऐन्ड एलाइड इन्डस्ट्रीज (यू० पी०)

शताब्दी पुराना अनुभव विश्वास की गारण्टी है

DMB-NP1SUP

जगदीश मेहरा द्वारा मेहरा आफसेट प्रेस, आगरा में मुद्रित एवं मेहरा न्यूजपेपर्स, आगरा के लिए प्रकाशित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-2000

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri